RASHTRADHARAM Vol. 36 1999-2000
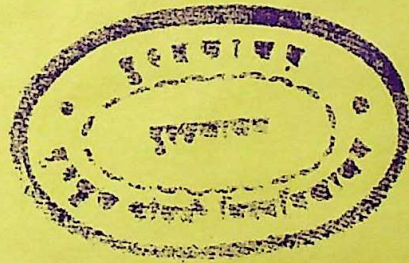
राष्ट्रधर्म

ज्येष्ठ (द्वितीय) -२०५६ जून-१९९९
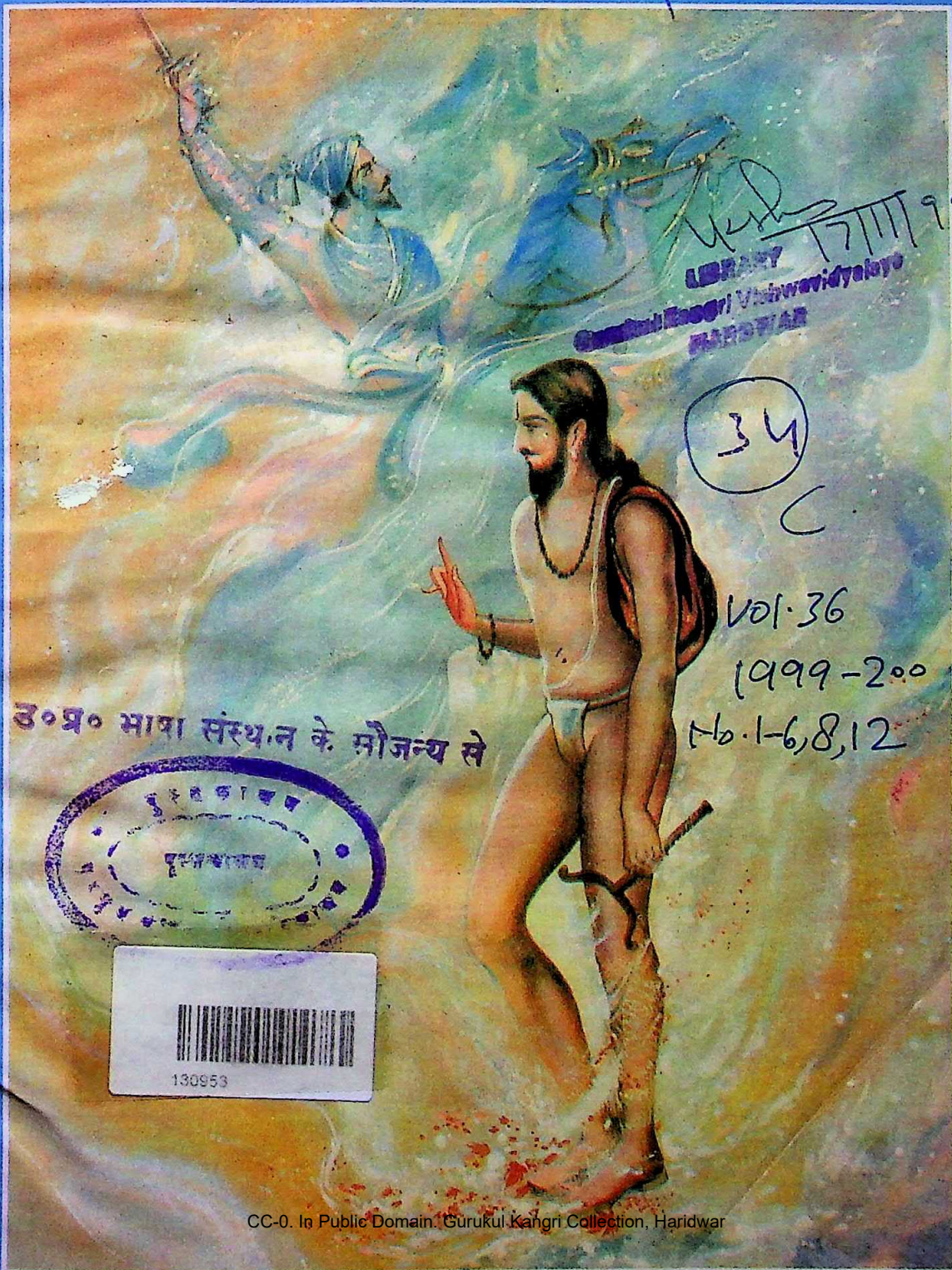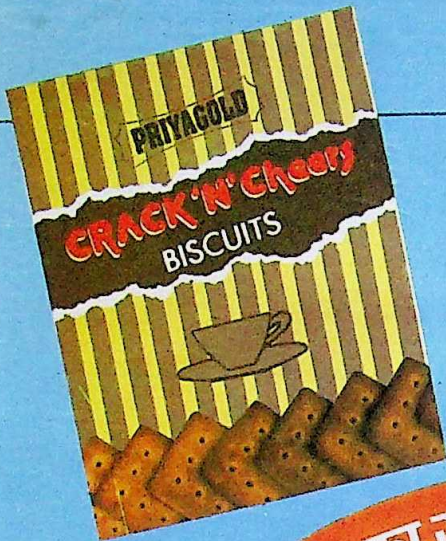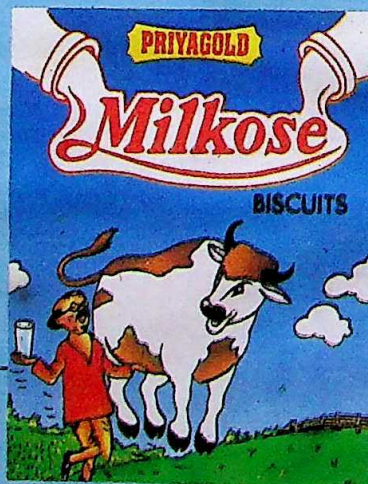
राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा प्रकाशित एवं नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र, लखनऊ द्वारा मुद्रित
संपादक : आनन्द मिश्र 'अभय'

अमृतवाणी

अप्रियस्य च पथ्यस्य परिणामः सुखावहः।
वक्ता श्रोता च यत्रास्ति रमन्ते तत्र सम्पदः।।

(हितोपदेश, २/१३५)

अप्रिय किन्तु हितकर बात का परिणाम सुखद होता है। ऐसी बात कहने और सुनने वाले लोग जहाँ होते हैं, वहाँ सम्पत्तियाँ निवास करती हैं।

उपकारचापकारश्च यस्य व्रजति विस्मृतिम्।
पाषाणहृदयस्यास्य जीवतीत्यभिधा मुधा।।

(भोजप्रबन्ध, ४१)

जो व्यक्ति अपने प्रति किये गये उपकार और अपकार को भूल जाता है, पत्थर के समान हृदयवाले उस व्यक्ति के सम्बन्ध में 'वह जीवित है' ऐसा कहना असत्य है।

अप्रगल्भस्य या विद्या कृपणस्य च यद् धनम्।
यच्च बाहुबलं भीरोः व्यर्थमेतत् त्रयं भुवि।।

(भोजप्रबन्ध, ४८)

बोलने में संकोच करनेवाले व्यक्ति की विद्या, कृपण व्यक्ति का धन और डरपोक व्यक्ति का बाहुबल– ये तीनों चीजें इस संसार में व्यर्थ ही हो जाती हैं।

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।।

(शाङ्‌र्गधर पद्धति, ३४५)

दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सरसों के बराबर दोषों को भी देखता है, किन्तु अपने बेल के फल के समान दोषों को भी देखते हुए भी नहीं देखता है अर्थात् मन में अपने दोषों को जानते हुए भी उन्हें झुठलाने का प्रयास करता है।

अकरुणत्वमकारण विग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्।।

(नीतिशतक, ५२)

करुणा का अभाव, बिना कारण के ही दूसरों से लड़ना–झगड़ना, दूसरों की सम्पत्तियों और पत्नियों के प्रति लोभ, सज्जनों और बन्धुजनों के प्रति सहनशील न होना– ये सब बातें दुष्ट व्यक्तियों में स्वभाव से ही होती हैं।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्ताः।।

(नीतिशतक, ७३)

सज्जन अच्छे मित्र का यही लक्षण बताते हैं कि वह अपने मित्र को बुरे कार्यों से बचाता है तथा उसे हितकर कार्यों में लगाता है, उसकी छिपाने योग्य बातों को छिपाता है तथा उसके गुणों को सबके सामने प्रकट करता है। सच्चा मित्र आपत्ति में पड़े हुए मित्र का त्याग नहीं करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर मित्र को धन आदि देकर उसकी सहायता करता है। □

प्रस्तुति-डॉ अम्बिकानन्द मिश्र

अपनी बात

इस बार ६ जून को 'हिन्दवी स्वराज्य' के संस्थापक छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक को ३२५ वर्ष पूर्ण हो जायेंगे। केन्द्र–सरकार इस शुभ–अवसर पर दो रुपये की एक मुद्रा शिवाजी पर निर्गत करेगी, यह घोषणा स्वयं प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने रायगढ़ दुर्ग पर गत दिनों आयोजित एक भव्य–समारोह में की है।

मुगलों की इस्लामी–सत्ता के घोर अत्याचारों से इस सनातन राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा करने में चार महान् विभूतियों के नाम उभरकर सामने आते हैं– (१) महाराणा प्रताप, (२) छत्रपति शिवाजी, (३) गुरु गोविन्द सिंह, (४) महाराज छत्रसाल। इन चारों महापुरुषों के तप, त्याग और सतत संघर्ष के फलस्वरूप अकबर द्वारा दृढ़ीभूत इस्लामी सत्ता को औरंगजेब के समय में छिन्न–भिन्न हो जाते, इतिहास ने प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा। महाराणा प्रताप छत्रधारी थे; शिवाजी उन्हीं के वंश की एक शाखा में जन्मे और 'स्वयमेव मृगेन्द्रता' के बल पर 'छत्रपति' बने, छत्रसाल बुन्देला भी अपने बल पर मुगल–सत्ता को धता बताकर छत्रधारी बने और गुरु गोविन्द सिंह तो दसों सिख गुरुओं में एकमात्र 'कलगीधर' हैं। महाराणा प्रताप की यदि गोस्वामी तुलसीदास से भेंट हो गयी होती, तो जो कार्य शिवाजी के समय में सम्पन्न हुआ, वह तभी हो गया होता। ध्यातव्य है कि समर्थ स्वामी रामदास जहाँ शिवाजी के प्रेरणा–स्रोत थे, वहीं स्वामी प्राणनाथ छत्रसाल के और गुरु गोविन्दसिंह तो इस सनातन राष्ट्र की परिभाषा–

अग्रतश्चतुरोवेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः। इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं, शापादपिशरादपि।।

के प्रतिरूप 'सन्त सिपाही' थे ही।

उपर्युक्त चारों महान् विभूतियों में से तीन से सम्बन्धित कुछ विशेष सामग्री इस अंक में समाहित किये जाने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है और इसीलिए यह अंक 'छत्रपति अंक' के रूप में सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

– सम्पादक

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

छत्रपति अंक

वर्ष – ३६ अंक–१
युगाब्द – ५१०१
ज्येष्ठ (२) – २०५६
(जून – १९९९)

मूल्य : रु. १२.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : ६९१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/व्यंग्य

कविता

बालवाटिका

स्तम्भ

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३६ अंक–२
युगाब्द – ५१०१

आषाढ़ – २०५६
(जुलाई – १९९९)

मूल्य : रु. १२.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : ६६१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/व्यंग्य

कविता

बालवाटिका

स्तम्भ

अमृतवाणी

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।।

(हितोपदेश, २/१६)

वन में पशुओं के द्वारा सिंह का न तो अभिषेक किया जाता है और न संस्कार। वह तो अपने पराक्रम से अर्जित राज्य का स्वयं ही राजा बन जाता है।

एतावज्जन्मसाफल्यं यदनायत्तवृत्तिता।
ये पराधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृताः।।

(वही, २/२२)

इस जन्म की यही सफलता है कि अपनी जीविका दूसरे के अधीन न हो। यदि पराधीन व्यक्तियों को जीवित माना जाये, तो फिर मरा हुआ किन व्यक्तियों को माना जायेगा ?

किं पौरुषं रक्षति यो न वाऽऽर्त्तान्,
किं वा धनं नार्थिजनाय यत् स्यात्।
सा किं क्रिया या न हितानुबद्धा,
कि जीवितं साधुविरोधि यद् वै।। *(भोज प्रबन्ध, १५३)*

वह बल किस काम का, जिससे बलहीनों की रक्षा न की जाय। वह धन किस काम का, जिससे याचकों की सन्तुष्टि न हो। वह क्रिया किस काम की, जिससे प्राणियों का हित न हो। वह जीवन किस काम का, जिसमें सज्जनों से विरोध हो।

मित्रस्वजनबन्धूनाम् बुद्धेर्धैर्यस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणे जनो जानाति सारताम्।।

(भोजप्रबन्ध, १५६)

मनुष्य अपने मित्रों, स्वजनों, बन्धुओं, बुद्धि तथा धैर्य की परख, इन्हें विपत्तिरूपी कसौटी पर कसकर ही कर सकता है।

आत्मायत्ते गुणग्रामे नैर्गुण्यं वचनीयता।
दैवायत्तेषु वित्तेषु पुंसां का नाम वाच्यता।।

(वही, २२४)

गुणों को प्राप्त करना अपने अधीन है, अतः जो व्यक्ति गुणों को नहीं प्राप्त करता, वह निन्दा के योग्य है। धन की प्राप्ति भाग्य के अधीन है, अतः जिसके पास धन नहीं है, वह निन्दा के योग्य नहीं है।

स्वायत्तमेकान्तहितं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।

(नीतिशतक, ७)

विधाता ने अज्ञान को ढँकने के लिए एक ऐसा साधन बनाया है, जो अपने ही अधीन है तथा सदैव हित ही करने वाला है। वह साधन है मौन। विद्वानों के समाज में तो मूर्ख व्यक्तियों के लिए मौन आभूषण ही होता है। □

प्रस्तुति–डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

खेद है कि...

गतांक में 'अपनी बात' में छत्रपति शिवाजी के राज्यारोहण की तारीख '६ जून' भ्रमवश लिख गयी है। इस वर्ष यह तारीख २६ जून को पड़ रही है। कृपया एतदनुसार तिथि शुद्ध कर लें। हमें इस भयंकर भूल के लिए हार्दिक खेद है।

पृष्ठ ७ पर प्रूफ की भूल से प्रथम स्तम्भ, प्रस्तर दो की पंक्ति १७ में 'था' छप गया है, इसकी जगह पर 'थे' पढ़ा जाय। □

– सम्पादक

शाबाश पेस ! शाबाश भूपति !!

जब इंग्लैण्ड में खेले जा रहे विश्व–कप क्रिकेट टूर्नामेण्ट के कारण पूरा देश क्रिकेट के तीव्र–ज्वर से ग्रस्त है, फ्रेंच ओपेन टेनिस में लिएण्डर पेस और महेश भूपति की जोड़ी ने पहली बार ग्रैण्ड स्लैम युगल खिताब जीतकर विश्व–विजेता के रूप में भारत का सिर ऊँचा किया है। दोनों की खेल में प्रभञ्जन–गति को देखते हुए उन्हें दुनिया के टेनिस प्रेमी 'इण्डियन एक्सप्रेस' कहने लगे हैं। 'राष्ट्रधर्म' की इन दोनों शीर्ष टेनिस खिलाड़ियों को बहुत–बहुत बधाई। □

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

लोकतंत्र सुरक्षा विशेषाङ्क

वर्ष – ३६ अंक–३
युगाब्द – ५१०१
श्रावण – २०५६
(अगस्त – १९९९)

मूल्य : रु. १५.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

प्रस्तुति

लेख

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३६ अंक–४
युगाब्द – ५१०१
भाद्रपद – २०५६
(सितम्बर – १९९९)

मूल्य : रु. १२.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : ६६१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/व्यंग्य/प्रसंग

कविता

बालवाटिका

स्तम्भ

कुछ महत्त्वपूर्ण डाक टिकट

माता जीजाबाई

↑ माता जीजाबाई पर भारत सरकार ने रु. ३.०० पै. का एक डाक टिकट जारी कर राष्ट्र की मातृ–शक्ति को अपूर्व गौरव प्रदान किया। इस डाक टिकट का लोकार्पण गत ७ जुलाई को प्रधानमन्त्री माननीय अटल जी ने नयी दिल्ली में किया था। इसी तिथि को गुवाहाटी, चण्डीगढ़, अहमदाबाद, नागपुर, चेन्नै और कलकत्ता में इस टिकट का लोकार्पण किया गया। यह देखकर दुःखद आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि इस अति महत्त्वपूर्ण टिकट की अनुकृति प्रकाशित करने से तथाकथित अपने को 'नेशनल प्रेस' माने बैठे समाचार–पत्रों ने पूरा 'परहेज' रखा। वाह रे सेक्यूलरिज्म!

स्वामी रामानन्द तीर्थ

जिनेवा समझौता

↑ जिनेवा समझौते की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में भारतीय डाक एवं तार विभाग द्वारा मानवता के संदेश से भरा जारी एक डाक टिकट।

← प्रसिद्ध स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी स्वामी रामानन्द तीर्थ पर डाक एवं तार विभाग द्वारा जारी डाक टिकट।

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३६ अंक–५
युगाब्द – ५१०१

आश्विन – २०५६
(अक्टूबर – १९९९)

मूल्य : रु. १२.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : ६९१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/व्यंग्य

कविता

बालवाटिका

अमृतवाणी

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।।
कार्यकाले समापन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।

(चाणक्यनीतिसार, ८३)

जो विद्या पुस्तक में स्थित है (कण्ठ या मस्तिष्क में धारण नहीं की गयी है) तथा जो धन दूसरों के हाथ में स्थित है, आवश्यकता पड़ने पर न वह विद्या काम आती है और न वह धन काम आता है।

न कश्चित् कस्यचिन् मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः।
व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।।

(हितोपदेश, १/७१)

संसार में न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है। हमारे व्यवहार से ही लोग हमारे मित्र या शत्रु बन जाते हैं।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेः नाधः शिखाः यान्ति कदाचिदेव।।

(नीतिशतक, १०५)

किसी धैर्यशाली पुरुष को कष्टपूर्ण अवस्था में डालकर भी उसके धैर्यरूपी गुण को मिटाया नहीं जा सकता। अग्नि का मुँह नीचे कर देने पर भी अग्नि की लपटें कभी नीचे की ओर नहीं जाती हैं।

प्रत्यक्षं गुणवादी यः परोक्षे चापि निन्दकः।
स मानवः श्ववल्लोके नष्टलोकपरावरः।।

(महाभारत, शान्तिपर्व, ११४/१२)

जो सामने होने पर गुण गाता है; किन्तु पीठ पीछे निन्दा करता है, वह मनुष्य कुत्ते के समान है। उसके लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

अनागतविधाता यः प्रत्युत्पन्नमतिश्च यः।
द्वावेव सुखमेधेते दीर्घसूत्रो विनश्यति।।

(वही, १३७/२०)

जो विपत्ति के आने से पहले ही उससे बचने का उपाय कर लेता है, वह 'अनागतविधाता' और जिसे ठीक समय पर अपने बचाव का उपाय सूझ जाता है, वह 'प्रत्युत्पन्नमति'– ये दोनों ही सुखपूर्वक उन्नति करते हैं; किन्तु प्रत्येक कार्य को अनावश्यक रूप से टालते रहने वाला 'दीर्घसूत्री' नष्ट हो जाता है।

प्रत्युपकुर्वन् बह्वपि न भाति पूर्वोपकारिणा तुल्यः।
एकः करोति हि कृते निष्कारणमेव कुरुतेऽन्यः।।

(वही, १३८/८२)

कोई किसी के उपकार का कितना ही अधिक बदला क्यों न चुका दे, वह पहले उपकार करनेवाले के समान शोभा नहीं पाता है; क्योंकि बाद में उपकार करनेवाले ने किसी के उपकार करने पर बदले में उपकार किया है; किन्तु पहले उपकार करनेवाले ने बिना स्वार्थ के ही किसी की भलाई की है। ❑

प्रस्तुति– डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

क्षमस्व मे

गताङ्क (सितम्बर, ९९) में प०पू० बाला साहब देवरस की जन्मतिथि ११ सितम्बर प्रकाशित हो गयी है, उसे कृपया ११ दिसम्बर पढ़ें। इस गम्भीर लेखकीय भूल के सुधार के सम्पादकीय दायित्व में हुई चूक के लिए हमें अत्यन्त दुःख एवं खेद है। **- सम्पादक**

मनमोहन सिंह को सिखों का जवाब

लखनऊ जनपद के सभी ४४ गुरुद्वारों तथा समस्त ८ पन्थिक संस्थाओं की ओर से सर्वश्री राजेन्द्र सिंह बग्गा, डॉ० गुरुमीत सिंह, कमलपाल सिंह सेठी, निर्मलसिंह सैनी, कमलजीत सिंह, मानसिंह मान, तेजपाल सिंह बीरजी, सन्त महेन्द्र सिंह तथा मनजीत सिंह बाबा द्वारा गत १२ सितम्बर, ९९ को रा०स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक रज्जू भइया जी को अभिनन्दन पत्र और सरोपा भेंट कर सम्मानित किया गया।

सरस्वती-कुञ्ज, निरालानगर में आयोजित इस दिव्य एवं भव्य समारोह में कई हजार गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। इसी कार्यक्रम में विश्व-संवाद-केन्द्र लखनऊ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका के 'विजयी भारत' अंक का विमोचन भी रज्जू भइया जी के कर कमलों से सम्पन्न हुआ। ❑

प०पू० सरसंघचालक रज्जू भइया जी को सरोपा भेंट करते हुए सरदार राजेन्द्र सिंह बग्गा

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

विजय दीप विशेषांक

वर्ष – ३६ अंक–६
युगाब्द – ५१०१
कार्तिक – २०५६
(नवम्बर – १९९९)

मूल्य : रु. १५.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

परामर्शदाता :

• वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :

• आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :

• रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :

• सुरेश चन्द्र

दूरभाष : ६६१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/संस्मरण/व्यंग्य

कविता

बालवाटिका

स्तम्भ

ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह की स्मृति में डाक टिकट

गत २७ अक्तूबर को भारतीय डाक विभाग ने मरणोपरान्त महावीरचक्र विजेता ब्रिगेडियर, राजेन्द्र सिंह की स्मृतिं में एक डाक टिकट जारी किया। ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह को कश्मीर का रक्षक कहा जाता है। श्री सिंह ने वर्ष १९४७ में कश्मीर पर सीमा पार से धोखे से हुए आक्रमण का सामना करते हुए मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी।

स्वर्गीय श्री सिंह को स्वतन्त्रता के बाद पहला वीरता का पुरस्कार प्राप्त करने का श्रेय प्राप्त है।

जारी डाक टिकट की कीमत तीन रुपये है, जो कि एक विशेष रंग का है। नासिक स्थित भारतीय प्रतिभूति मुद्रणालय से चार लाख डाक–टिकट जारी किया जायेगा।

डॉ० नगेन्द्र नहीं रहे

गत २६ अक्तूबर को प्रसिद्ध आलोचक एवं साहित्यकार मनीषी–प्रवर डॉ० नगेन्द्र का स्वर्गवास हो गया। 'राष्ट्रधर्म' का उनकी पवित्र स्मृति को शत–शत प्रणाम।

भूल-सुधार

इस अंक के पृष्ठ ६७ पर कहानी 'श्रद्धा के दीप' में दाहिने स्तम्भ की २५वीं पंक्ति (कुछ अंकों में) कम्प्यूटर की मूल–भाषा में छप गयी है। जिन पाठकों के पास यह त्रुटिपूर्ण अंक पहुँचे, उस पंक्ति को **'अब वे देश की नींव की पुख्ता ईंट बन गये हैं'** पढ़ें। आपको हुई असुविधा का हमें खेद है।

– *सम्पादक*

संस्थापक :
पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

लोक-चेतना विशेषाङ्क

वर्ष – ३६ अंक–८
युगाब्द – ५१०१
पौष – २०५६
(जनवरी – २०००)

मूल्य : रु. १५.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

परामर्शदाता :
● वीरेश्वर द्विवेदी

सम्पादक :
● आनन्द मिश्र 'अभय'

सहसम्पादक :
● रामनारायण त्रिपाठी

प्रभारी निदेशक :
● सुरेश चन्द्र

दूरभाष : ६६१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/संस्मरण/जीवनी/व्यंग्य

कविता

बालवाटिका

स्तम्भ

प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है

– स्वामी विवेकानन्द

भारत !

केवल दूसरों की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर, दूसरों की इस क्षुद्र नकल के द्वारा, दूसरों का मुँह ताकते रह कर... क्या तू इसी पाथेय के सहारे, सभ्यता और महानता के चरम शिखर पर चढ़ सकेगा ?

क्या तू अपनी इस लज्जास्पद कायरता के द्वारा उस स्वाधीनता को प्राप्त कर सकेगा जिसे पाने के अधिकारी केवल साहसी और वीर हैं ?

हे भारत !

मत भूल, तेरा नारीत्व का आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती है।

मत भूल कि तेरे उपास्यदेव देवाधिदेव सर्वस्वत्यागी, उमापति शंकर हैं।

मत भूल कि तेरा विवाह, तेरी धन–सम्पत्ति, तेरा जीवन केवल विषय–सुख के हेतु नहीं है, केवल तेरे व्यक्तिगत सुखोपभोग के लिए नहीं है।

मत भूल कि तेरी समाज–व्यवस्था उस अनन्त जगज्जननी महामाया की छायामात्र है।

मत भूल कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, अपढ़, चमार, मेहतर सब तेरे रक्त–मांस के हैं, वे सब तेरे भाई हैं।

ओ वीर पुरुष !

सहास बटोर, निर्भीक बन और गर्व कर कि तू भारतवासी है। गर्व से घोषणा कर कि, "मैं भारतवासी हूँ प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई।"

मुख से बोल, "अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र और पीड़ित भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सभी मेरे भाई हैं।" तू भी एक चिथड़े से अपने तन की लज्जा को ढक ले और गर्वपूर्वक उच्च–स्वर से उद्घोष कर, "प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देव–देवता मेरे ईश्वर हैं। भारतवर्ष का समाज, मेरे बचपन का झूला, मेरे यौवन की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है।"

मेरे भाई !

कह, "भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।" अहोरात्र जपा कर, "हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो। हे शक्तिमयी माँ मेरी दुर्बलता को हर लो, मेरी कापुरुषता को दूर भगा दो और मुझे मनुष्य बना दो माँ !"

X X X

भारत फिर उठेगा, किन्तु केवल शारीरिक शक्ति से नहीं अपितु आत्मा के बल से; विध्वंस की पताका के नीचे नहीं तो शान्ति और स्नेह के उस ध्वज को लेकर जो संन्यासी के वेश का प्रतीक है।

अपने आन्तरिक देवत्व का आह्वान करो, जो तुम्हें भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी सहने की शक्ति प्रदान करेगा। भोग–विलासयुक्त घरों में रहना, जीवन के समस्त सुखों से घिरे रहना और एक तुच्छ अविकसित धर्म को पकड़े रहना अन्य देशों के लिए भले ही उपयुक्त हो, किन्तु भारत के पास सच्ची चेतना है। यह सहज बुद्धि से ढोंग को पहचान लेता है। तुम्हें इसे त्यागना होगा। महान् बनो। त्याग के बिना कोई भी महान् कार्य होना सम्भव नहीं।

अपने सुखों की, आनन्दों की, अपने यश की, प्रतिष्ठा की, यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी आहुति चढ़ा दो और मानव आत्माओं का ऐसा सेतु बाँध दो, जिस पर होकर ये करोड़ों नर–नारी भवसागर को पार कर जायें।

'सत्य' की समस्त कठिनाइयों को एकत्र करो। यह चिन्ता मत करो कि तुम किस पताका के नीचे चल रहे हो। यह भी चिन्ता मत करो कि तुम्हारा वर्ण क्या है– लाल, हरा या नीला। बल्कि सब वर्णों को मिला दो और स्नेह के प्रतीक श्वेत रंग का प्रखर तेज उत्पन्न करो। हम केवल कर्म करें। परिणाम अपनी चिन्ता स्वयं करेंगे।

मैं भविष्यद्रष्टा नहीं हूँ; न मैं उसके लिए चिन्तित ही हूँ। किन्तु एक दृश्य मेरे सामने बिलकुल स्पष्ट है कि हमारी प्राचीन मातृभूमि एक बार फिर जग उठी है। वह नययौवन प्राप्त कर पहले से कहीं अधिक भव्य दीप्ति के साथ अपने सिंहासन पर बैठी है। समस्त संसार को शान्तिपूर्ण और मंगलमय वाणी से उसका सन्देश सुनाओ। □

संस्थापक :

पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ – २२६ ००४

वर्ष – ३६ अंक–१२
युगाब्द – ५१०२
वैशाख – २०५७
(मई – २०००)

मूल्य : रु. १२.००
वार्षिक शुल्क : रु. १३०.००

दूरभाष : ६६१३८४

प्रस्तुति

लेख

कथा/संस्मरण/व्यंग्य/प्रसंग

कविता

बालवाटिका

स्तम्भ

आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व महाकवि सूरदास ने 'लखियत कालिन्दी अति कारी' लिखा होगा, तो उन्हें क्या पता था कि देश के स्वतन्त्र होने के पचास वर्षों के भीतर ही कालिन्दी वास्तव में 'कारी' हो जायेगी, इतनी 'कारी' कि उसके जल में अनादिकाल से पलते रहे कछुए और मछलियाँ तक अब जीवित नहीं रह सकते हैं। दिल्ली जैसे महानगरों, नगरों के मलोत्सर्जन और तटवर्त्ती कल–कारखानों के विषैले कचरे को जिस जलधारा में दिन–रात सतत डाला जाता रहेगा, उसका जल, 'जीवन' जिसका पर्यायवाची है, जीवनदायी भला क्यों कर रह पायेगा ? कहा जाता है कि मुगल बादशाह ने अपने प्रत्युत्पन्नमति दरबारी वीरबल से एक बार पूछा कि किस नदी का पानी सबसे अच्छा है, तो वीरबल का उत्तर था– 'यमुना का'। अकबर ने कहा और 'गंगा' तो वीरबल तपाक से बोले– 'वह तो अमृत है'। तो अब उस 'अमृत' (गंगा–जल) की बात करें। सर्वोच्च–न्यायालय तक के आदेशों के रहते आज उसकी क्या स्थिति है ? गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक क्या गंगाजल की वही पवित्रता, वही निर्मलता, वही गुणवत्ता और वही अलौकिक सात्विकता अभी भी अक्षुण्ण रह गयी है कि दसों नहीं, सैकड़ों वर्ष तक गंगाजली में, बोतल में बन्द रहते हुए भी उसमें किसी प्रकार का विकार, दूषण न पैदा हो ? यह गुणवत्ता, यह सत्व नष्ट हो जाने पर गंगा का 'देव–नदी' या 'सुरसरि' नाम की भला क्या सार्थकता रह जायेगी ? गंगा का उत्स हिमानी 'गोमुख' वर्षानुवर्ष पीछे खिसकता जा रहा है; पर्यटन–प्रोत्साहन के नाम पर उसके उद्गम से लेकर सागर–संगम तक कितना कूड़ा–कचरा फैलाया गया है, इसका कोई भान है किसी को ? देव–नदी के देवत्व के विनाश के उपक्रम जारी हैं, यह हमें भूलना नहीं चाहिए।

लखियत कालिन्दी अति कारी

जब गंगा और यमुना का यह हाल है, तो अन्य नदियों, जलधाराओं, जलाशयों की क्या दशा होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कानपुर में गंगा के सुधार की योजना का करोड़ों रुपया कहाँ चला गया ? गंगा तो अब भी जैसी की तैसी है। हमारी पुण्यसलिला नदियों के तटों पर स्थित प्राचीनतम तीर्थ, घाट, मन्दिर, धर्मशालाएँ सब आज संकट में हैं। पश्चिम की अन्धी नकल में उन पर बड़े–बड़े, ऊँचे–ऊँचे बाँध बनाने की सभी परियोजनाएँ नदीघाती, जलघाती, जीवनघाती और जनघाती हैं, यह हमारी समझ में कब आयेगा ? कभी आयेगा भी या नहीं ? वैज्ञानिक अभी से सचेत कर रहे हैं, चेतावनी पर चेतावनी दे रहे हैं कि जल–संकट आसन्न है। भू–गर्भ–जल का स्तर लगातार नीचे जा रहा है; कुएँ ही नहीं, नलकूप तक सूखते जा रहे हैं, 'इण्डिया मार्क–२' बेकार हो रहे हैं। भयंकर जलाभाव सबको त्रस्त कर देगा। 'बिन पानी सब सून' अपनी चरितार्थता की ओर अग्रसर है। उर्वरकों और कीटनाशकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग ने वनस्पतियों और मिट्टी को ही नहीं, भूगर्भीय–जल को भी विषाक्त कर दिया है।

वायु–प्रदूषण के लिए किस–किस को दोषी ठहरायेंगे ? कारखानों की चिमनियों से निकलता धुआँ, जहरीली गैसें, वाहनों द्वारा उत्सर्जित जहरीला धुआँ; आतिशबाज़ी, कारबाइड गैस लैम्प और उससे भरे गुब्बारे, कीटनाशकों का बिना विचार प्रयोग, धूमपान की लत, सड़कों पर बिकते अण्डे–आमलेट, वायुयानों, राकेटों का धुआँ जैसे न जाने कितने उपादान हैं। ध्वनि–प्रदूषण भी वायु–प्रदूषण का ही अभिन्न अंग है। पूरे वाल्यूम पर लाउड–स्पीकर,हाहाकार बैण्ड, जवाबी कव्वाली, कीर्त्तन और देवी–जागरण जैसे अभद्र आयोजनों के जन्मदाता

भी तो हम ही हैं। किस–किस को गिनायें, किस–किस को दोष दें ? कहने का तात्पर्य यह कि ऐसी कौन–सी तरकीब बची है, जो हमने आकाश से लेकर पाताल तक हर जीवनदायी तत्त्व जल, वायु, भूमि को प्रदूषित कर डालने में प्रयुक्त न की हो ? जल-शुद्धि के नैसर्गिक उपादान मगरमच्छ, शिंशुमार, कछुए, मछलियाँ पहले तो मरवा डालीं, अब उनके प्रजनन, पालन की परियोजनाएँ और उनको फिर से जलाधाराओं, जलाशयों में छुड़वाने के उपक्रम हो रहे हैं, पहले प्राकृतिक जंगल कटवा डाले बड़े–बड़े फार्म बनवाने के लिए और अब सामाजिक–वानिकी के उद्यम; भूमि–सुधारों के नाम पर पहले तो सार्वजनिक उपयोग की भूमियों का विनाश और अब उस पर सोचने–विचारने के लिए भी कोई तैयार नहीं ? वन्य–जीवों ही नहीं, पालतू जीवों का भी जीना दूभर हो गया है।

लेकिन यह सब आखिर है किसकी देन ? इस प्रश्न का सही–सही उत्तर खोजने निकलें, तो पता चलेगा कि इस सबकी जड़ में है वह मानसिक–प्रदूषण, जो विदेश से आयातित निर्वाचन–प्रणाली से जन्मी राजनीतिक कुत्सा का सहचर है। इस राजनीतिक–कुत्सा ने इस सनातन–राष्ट्र की अस्मिता को अष्टपादीय–पाश में जकड़ लिया है, जिससे मुक्ति का उपाय खोजा जाना अब अपरिहार्य हो गया है। 'सेक्यूलरिज्म' के नाम पर इस राष्ट्र के प्राण–तत्त्व को समाप्त कर डालने का कौन–सा कुचक्र नहीं रचा गया; नहीं रचा जा रहा है ? 'साम्प्रदायिकता' को गालीवाचक संज्ञा बना डालने वाली मानसिकता की ही क्या यह निर्लज्ज करामात नहीं है कि चतुर्दिक् शत्रुओं से घिरे देश के अस्तित्व की रक्षा के अचूक उपाय परमाणु परीक्षणों और प्रक्षेपास्त्रों के परीक्षणों का भी अन्ध–विरोध किया जाय; 'साम्प्रदायिक शक्तियों' को 'नेस्त–नाबूद' कर डालने की आये दिन कसम खायी जाय; 'सेक्यूलरिज्म' की रक्षा के नाम पर राष्ट्र की आधारभूत मान्यताओं को ही मटियामेट करने की कुचेष्टा की जाय; यही नहीं उसकी आत्मा 'अध्यात्म' और प्राण 'धर्म' पर प्रहार पर प्रहार किया जाय। जब राष्ट्र ही नहीं रहेगा, तो राष्ट्र–जीवन कैसे बचेगा ? जब वृक्ष की जड़ ही काट दी जायेगी, तो शाखा–प्रशाखा और पल्लव कब तक हरे रह पायेंगे ? जब वृक्ष ही नहीं रहेगा, तो उस पर अपने अलग–अलग बनाये गये घोंसले कैसे बचेंगे ? ध्यान रहे, जब तक इस देश में हिन्दू है, हिन्दुत्व है, तब तक ही यह देश भारत है। जिस दिन हिन्दुत्व नहीं रहेगा, उस दिन यह देश भी यूनान, रोम, मिस्र, बेबीलोन, मेसोपोटामिया, ईरान की तरह मात्र एक भूमि–खण्ड ही रह जायेगा। भारत की भारतीयता तभी तक है, जब तक यहाँ हिन्दू बहुसंख्यक है। यह सनातन हिन्दू राष्ट्र आज इतिहास के ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया गया है कि जरा–सी भी चूक; जरा–सा भी दिग्भ्रम इसके प्राणों को संकट में डालने को पर्याप्त है। मात्र 'एक वोट' से सरकार गिरी, यह गिरानेवालों के लिए चाहे जितना आह्लादकारी रहा हो, समूचे राष्ट्र के लिए परम विषादकारी भी कम नहीं रहा है। 'कांग्रेसी सोनिया नौटंकी' का ताल–स्वर क्या स्पष्टतः यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि विदेशी शक्तियाँ अभी भी हारी नहीं हैं, थकी नहीं हैं। सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी 'गुलामों के गुलामों की जमात' बनकर रह गयी है और यह 'जमात' देश की सत्ता पर 'चील झपट्टा' शैली में बलात् आधिपत्य जमाने के लिए कितनी आतुर, आकुल है, यह भी मध्याह्न के सूर्य की भाँति जग जाहिर है। एक विदेशी मूल की कलम भारतमाता की छाती पर आरोपित करने का हर सम्भव प्रयत्न पोप–तन्त्र, अमरीकी–षड्यन्त्र और मार्क्स–मन्त्र के समन्वित संजाल के द्वारा परिचालित किया जा रहा है; किन्तु भारत की आँख का पानी अभी मरा नहीं है, कांग्रेस के अन्दर विद्रोह से यह एक बार पुनः प्रमाणित हो गया है। ऐसे में क्या यह आवश्यक नहीं कि लोकतन्त्र की रक्षा के लिए प्रत्येक देशवासी 'युद्धाय कृतनिश्चयः' की स्थिति में आ जाय।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो में सव्य आहिता।

□

– आनन्द मिश्र 'अभय'

ऐसे हुआ था शिवाजी का राज्याभिषेक

– डॉ० कमल गोखले

शनिवार, ६ जून, १६७४ के मंगल प्रभात में शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक का शुभकार्य प्रारम्भ हुआ। यह शुभ दिन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

यह दिन शिवाजी महाराज के जीवन की ही नहीं, उनके चरित्र, महाराष्ट्र तथा भारतीय जनमानस के लिए भी एक अभूतपूर्व घटना थी। शिवाजी ने राज्याभिषेक से बीस वर्ष पूर्व अपने शौर्य एवं धैर्य के बल पर अपने पिताश्री द्वारा अर्जित जागीर को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापित किया था। यवनों (मुसलमानों) तथा विदेशों से आये पश्चिमी व्यापारियों पर शिवाजी के पराक्रम की पूरी तरह से धाक जम चुकी थी। उन्होंने गढ़ और किले जीते थे, थलसेना तथा नौसेना का गठन किया था। इस कार्य के पीछे शिवाजी का प्रमुख उद्देश्य था अपनी प्रजा में विश्वास जगाना। वे अपनी प्रजा के प्रिय नेता था, उन्हें अपने रक्षक से स्थायित्व की भावना प्राप्त हुई थी। लेकिन बीजापुर का आदिलशाह अभी तक यही मानता था कि शिवाजी उनके प्रमुख सरदार शाहजी का बागी पुत्र है। गोलकुण्डा का कुतुबशाह भी शिवाजी के बारे में यही सोचता था। उधर औरंगजेब का विचार था कि शिवाजी के पास दक्षिण का वह क्षेत्र है, जिसकी कोई कीमत नहीं है, विदेशों से आने वाले विदेशी भी शिवाजी को मात्र एक बागी और लुटेरा ही मानते थे।

शिवाजी ने राज्याभिषेक से बीस वर्ष पूर्व अपने शौर्य एवं धैर्य के बल पर अपने पिताश्री द्वारा अर्जित जागीर को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापित किया था। यवनों (मुसलमानों) तथा विदेशों से आये पश्चिमी व्यापारियों पर शिवाजी के पराक्रम की पूरी तरह से धाक जम चुकी थी। उन्होंने गढ़ और किले जीते थे, थलसेना तथा नौसेना का गठन किया था। इस कार्य के पीछे शिवाजी का प्रमुख उद्देश्य था अपनी प्रजा में विश्वास जगाना। वे अपनी प्रजा के प्रिय नेता था, उन्हें अपने रक्षक से स्थायित्व की भावना प्राप्त हुई थी।

इस भ्रान्ति को बदलने के लिए जरूरी था कि शिवाजी स्वयं को उन सत्ताधारियों की श्रेणी में लाये। यद्यपि शिवाजी अपने प्रान्त में स्वयं सर्वसत्ताधारी थे, लेकिन जब तक वे राजा की पदवी प्राप्त नहीं कर लेते, सामान्य नागरिक ही माने जाते। वे एक नागरिक की हैसियत से प्रजा की निष्ठा एवं भक्ति पर कोई कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते थे। यद्यपि उन्होंने प्रजा को आश्वासन एवं अधिकार अवश्य दिये थे, लेकिन स्वयं राजप्रमुख नहीं थे और जब तक प्रामाणिक अधिकारों की पवित्रता एवं सत्यता प्राप्त नहीं कर लेते, वे नियमतः किसी सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते थे, वैध रूप से किसी भूमि पर न तो अधिकार कर सकते थे और न दे ही सकते थे। वैसे महाराष्ट्र में एक राज्य की स्थापना तो हो चुकी थी, लेकिन वह राज्य राजा–विहीन था। शिवाजी महाराज को राजपद एवं अधिकार की कभी कोई अभिलाषा नहीं रही, लेकिन इन सब कठिनाइयों को देखते हुए शास्त्रोक्त रूप से राज्याभिषेक करा लेना ही एक युक्तिपूर्ण उपाय था।

प्राचीनकाल में राजा को साक्षात् ईश्वर का अवतार माना जाता था। वंश–परम्परा से राजपद की प्राप्ति होती थी। राज्य को स्थिरता प्राप्त होती थी। शिवाजी के राज्याभिषेक से भोंसले कुल का नाम भी ऊँचा होने वाला था। शिवाजी के पराक्रम ने ही भोंसले कुल को ऊँचा उठाया था। जब शिवाजी की जयजयकार हो रही थी, राज्याभिषेक की चर्चा हो रही थी, उधर मोहिते, जाधव तथा निंबालकर आदि सरदार घरानों में शिवाजी के प्रति ईर्ष्या होने लगी। ये द्वेषी आदिलशाह के राजनिष्ठ सेवक थे, उनकी दृष्टि में भी शिवाजी बागी और लुटेरे थे। शिवाजी इन लोगों की आँखें भी खोलना चाहते थे कि म्लेच्छों की चाटुकारी की अपेक्षा गर्व से रहना ही श्रेयस्कर है। शिवाजी चाहते थे, ये सरदार घराने भी आगे आयें और देश को विदेशियों के शिकंजों से छुड़ा कर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना में सहयोग दें। इसलिए शिवाजी को अभिषिक्त राजपद स्वीकार करना पड़ा। इस पद–प्राप्ति के बाद शिवाजी सत्ताधारियों के समकक्ष आ जानेवाले थे। आज वही स्वप्न साकार होने जा रहा था।

शिवाजी ने जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया, जो

ख्याति अर्जित की, जो राज्य स्थापित किया, राज्याभिषेक और राजा का पद भी उसी का ही एक परिणाम है। जो लोग सोचते हैं कि शिवाजी ने सन्त–महन्तों को विशेष महत्त्व देकर धर्म की रूढ़िगत कल्पनाओं को नया रूप दिया, तो वे यह भूल जाते हैं कि प्रबल सत्ताधारियों से विरोध करने के लिए जनता को साथ लेकर उनमें उत्तेजना जगाना भी जरूरी है और जनता जो धर्म, परम्परा, निष्ठा में अटूट श्रद्धा रखती है, उसे उसी दृष्टि से उत्साहित किया जा सकता है। धार्मिक विचार वाले व्यक्ति को धर्म के सहारे से ही अपना बनाया जा सकता है, न कि अधर्म की बात कह कर।

मुद्रा भद्राय राजते

छत्रपति शिवाजी की मुद्रा

पर अंकित श्लोक–

प्रतिपच्चन्द्ररेखेव
वर्द्धिष्णुर्विश्ववन्दिता,
शाहसूनोः शिवस्यैषा
मुद्रा भद्राय राजते।

शिवाजी महाराज अभिषिक्त राजा बने, लेकिन उनका उद्देश्य एवं ध्येय समाज एवं देश–कल्याण ही रहा। राजपद लेकर उन्होंने समाज को कभी नहीं लूटा। जो दुःखी एवं निरीह थे, उन्हें शिवाजी ने सान्त्वना दी, स्वराज्य की प्रतिष्ठापना की।

राज्याभिषेक से पूर्व की अड़चनें

राज्याभिषेक से पहले कई प्रश्न सामने आये। इसके बारे में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। प्राचीन हिन्दू समाज में कुछ ऐसी मान्यता थी कि 'राजा' की पदवी केवल क्षत्रिय ही ग्रहण कर सकता है। कुछ मतावलम्बी भोंसले कुल को क्षत्रिय नहीं मानते; लेकिन कुछ उन्हें क्षत्रिय मानते हैं। कवि भूषण ने अपनी प्रख्यात कृति 'शिवराज भूषण' में भोंसले घराने को सिसोदिया, राजपूत–क्षत्रिय लिखा है। इसी प्रकार शाह जी महाराज ने कर्नाटक से बीजापुर दरबार को एक पत्र में यह सम्मानपूर्वक लिखा बताते हैं– "आम्ही तो राजपूत" हम तो राजपूत हैं। उनका पराक्रम, उनका शौर्य, उनके गुण–कर्म सब क्षत्रियोंवाले थे, वे क्षत्रिय ही थे, यह निर्विवाद है; पर राज्याभिषेक के समय यह प्रश्न उठाया गया कि उनका उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) नहीं हुआ था। फिर उसका भी हल निकाला गया कि राज्याभिषेक से पहले यदि उनका यज्ञोपवीत किया जाये, तो यह कठिनाई भी दूर हो जायेगी और वे छत्र सिंहासन के अधिकारी भी होंगे। यह निर्णय दिया था तत्कालीन विद्वान् गागा भट्ट तथा अनन्तदेव भट्ट ने, जो इस धार्मिक–संस्कार के प्रमुख पुरोहित थे, इसलिए शिवाजी ने धर्म और परम्परा को मानते हुए पण्डितों को चर्चा का अवसर प्रदान किया और उन्हीं की राय को स्वीकार किया। तीसरी कठिनाई थी कि युद्ध में शिवाजी के हाथ से अगर ब्रह्महत्या हुई हो, तो वे राज्याभिषेक के अधिकारी नहीं हैं। उस दोष को नष्ट करने के लिए 'तुला–पुरुष–दान' की विधि का उपाय सुझाया गया। शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक समारोह में आनेवाली सभी अड़चनों का समाधान महापण्डित गागा भट्ट की विशुद्ध शास्त्रीय– पद्धति से किया गया।

कुछ मतावलम्बी भोंसले कुल को क्षत्रिय नहीं मानते; लेकिन कुछ उन्हें क्षत्रिय मानते हैं। कवि भूषण ने अपनी प्रख्यात कृति 'शिवराज भूषण' में भोंसले घराने को सिसोदिया, राजपूत–क्षत्रिय लिखा है। इसी प्रकार शाह जी महाराज ने कर्नाटक से बीजापुर दरबार को एक पत्र में यह सम्मानपूर्वक लिखा बताते हैं– "आम्ही तो राजपूत" हम तो राजपूत हैं। उनका पराक्रम, उनका शौर्य, उनके गुण–कर्म सब क्षत्रियोंवाले थे, वे क्षत्रिय ही थे, यह निर्विवाद है।

इस राज्या– भिषेक का विवरण किसी ग्रन्थ में वर्णित नहीं है, फिर भी उपस्थित जनसमुदाय में से एक अंग्रेज वकील 'आक्सिडेन' ने इस स्मरणीय घटना पर प्रकाश डाला है। गागा भट्ट की 'शिवराज्याभिषेक प्रयोग' पोथी में भी धार्मिक विधि की जानकारी मिलती है, अन्य किसी भी स्थान पर इसका वर्णन नहीं है।

देवताओं के दर्शन से समारोह का समारम्भ

राज्याभिषेक से पूर्व शिवाजी महाराज ने विभिन्न क्षेत्रों में जाकर देवताओं के दर्शन किये, चिपलूण के परशुराम और प्रतापगढ़ की तुलजा भवानी की उन्होंने पूजा की। भवानी माता को सवा मन सोने का छत्र उन्होंने अर्पित किया। २१ मई को प्रतापगढ़ से वापस आये। उसके बाद धार्मिक–विधि प्रारम्भ हुई। समारोह के प्रमुख पुरोति गागा भट्ट के मार्गदर्शन में भोंसले कुल के कुलोपाध्याय प्रभाकर भट्ट और बाल भट्ट द्वारा देवताओं के दर्शन तथा पूजा–विधि सम्पन्न की गयी।

२९ मई को शिवाजी महाराज का उपनयन–संस्कार, तुलादान व तुला–पुरुषदान सम्पन्न हुआ। ३० मई को उनका अपनी रानियों से विवाह एक बार फिर किये जाने के बाद शिवाजी महाराज पटरानी सहित शास्त्रानुसार राज्याभिषेक के पात्र बने। राज्याभिषेक समारोह विवाह के दिन से ही प्रारम्भ हुआ, जब शिवाजी ने संकल्प किया था–

(शेष पृष्ठ ११ पर)

राजनीति

सावधान ! कोई घुसपैठिया कहीं प्रधानमन्त्री न बन जाय

- हृदय नारायण दीक्षित

(भूतपूर्व संसदीय कार्यमन्त्री, उ०प्र०)

प्रधानमन्त्री भारत में राज्य–व्यवस्था का प्रमुख होता है। वह देश के बाहर भारत के राष्ट्र जीवन का प्रतिनिधि होता है। उसे भारत की प्रकृति, परम्परा और संस्कृति का ध्वजवाहक बनकर काम करना पड़ता है। उसके वाणी और कर्म में भारत राष्ट्र की अभिव्यक्ति साकार रूप लेती है। किसी व्यक्ति के आन्तरिक मनस्तन्त्र, निष्ठा और राग की अन्तर्ध्वनि ही वाणी और कर्म में प्रतिध्वनि पाती है। राष्ट्रीय मन, निष्ठा और राग की भावभूमि मातृभूमि के प्रति परम श्रद्धा व आस्था से बनती है। परम्परा, संस्कृति और इतिहास की समझ इस भावभूमि को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है। इसी सृदृढ़ आधार पर निर्मित होता है एक परम परिशुद्ध भारतीय चित्त!

चित्त परिशुद्ध रूप से राष्ट्रीय हो, तो वाणी, वचन, कर्म और गति अपने आप राष्ट्रीय होते जाते हैं। सोनिया गांधी भारत के प्रधानमन्त्री पद की दावेदार हैं। भारत–विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्रों ने उन्हें गत मास प्रधानमन्त्री की कुर्सी तक पहुँचाने में कोई कोर–कसर बाकी नहीं रखी। देश की सबसे पुरानी (अ) राष्ट्रीय पार्टी कांग्रेस उन्हें प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर बिठाने को बेताब है। वे परिशुद्ध–अभारतीय हैं। भारत की धरती की त्यागमयी परम्पराओं और उदात्त आदर्शों से उनका कोई लेना–देना नहीं है। वे भारत के लोक–जीवन के सरोकारों तथा सपनों से भी सर्वथा अपरिचित हैं। भारतमाता और वन्दे मातरम् से उनके रागात्मक सम्बन्ध भी नहीं हो सकते। सोनिया गांधी को भारत कभी भी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने १९६८ में राजीव गांधी से शादी की। भारतीय नागरिकता कानून के अनुसार वे ५ वर्ष बाद भारत की नागरिकता के लिए आवेदन कर सकती थीं; परन्तु उन्हें भारत की नागरिकता में कोई रुचि थी ही नहीं। उन्होंने विवाह के १५ साल बाद तक भारत की नागरिकता के लिए कोई आवेदन नहीं किया। भारत में जन्म लेनेवाले लोग भारत के स्वाभाविक नागरिक होते हैं। उनकी नागरिकता बिना शर्त होती है। जो विदेशी भारतीय नागरिकों से विवाह करते हैं और भारत में रहते हैं उन्हें कानून "पञ्जीकृत नागरिक" मानता है। सोनिया सम्प्रति भारत की पञ्जीकृत नागरिक हैं। नागरिकता कानून की धारा १० पञ्जीकृत नागरिकों पर अनेक शर्तें लगाता है। शर्तों के प्रश्नवाचक से नागरिकता भी प्रश्नवाचक हो जाती है। कह सकते हैं कि भारत की नागरिकता कानून भी विदेशी को स्थायी नागरिकता नहीं देता। विदेशी लोगों को मिलने वाली भारतीय नागरिकता अस्थायी ही होती है।

फिर सोनिया गांधी इटली की भी समानान्तर नागरिक हैं। भारत का नागरिकता कानून किसी विदेशी को भारत की नागरिकता देते समय वह सारी शर्तें लगाता है, जो उस देश में भारत के नागरिकों को उस देश की नागरिकता देते समय लगायी जाती हैं। इटली में भारतीयों को मिलने वाली सुविधाएँ और अवसर ही भारत में सोनिया गांधी को भविष्य में मिलनेवाले अवसरों का निर्धारण करेंगे। सोनिया गांधी की भारतीय नागरिकता का चरित्र अस्थायी है। भारत के प्रति उनकी निष्ठा और भारत के जन–जन के साथ उनकी एकात्मकता अभी भी प्रश्नवाचक है। कांग्रेस दीवालियेपन की शिकार है। सोनिया गांधी को राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में कांग्रेस के किसी फोरम ने विधिवत् चुना ही नहीं। वे सीताराम केसरी को षड्यन्त्र–पूर्वक बलात् हटाकर कांग्रेस अध्यक्ष की कुर्सी पर काबिज हो गयी हैं। कांग्रेस तो अब कोई राजनीतिक पार्टी नहीं; वरन् इन्दिरा, राजीव, सोनिया और (अब आगे) प्रियंका वगैरह की निजी सम्पत्ति बनकर रह गयी है। कांग्रेस अगर वास्तव में पार्टी होती, तो सोनिया गांधी को राष्ट्रीय अध्यक्ष की कुर्सी तक पहुँचना स्यात् कभी सम्भव न हो पाता; मगर कांग्रेस तो बस सोनिया गांधी का माल–असबाब बन कर रह गयी है। कांग्रेस के पास कभी लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, लाजपत राय, गांधी जी, सरदार पटेल जैसे प्रखर भारत भक्त थे। आज देश की १०० करोड़ जनसंख्या में से कांग्रेस के पास एक भी "भारतीय

नागरिक" प्रधानमन्त्री पद की औपचारिक दावेदारी की खातिर भी उपलब्ध नहीं है। देश के गृहमन्त्री लालकृष्ण आडवाणी ने कांग्रेस से सोनिया के नेतृत्व पर पुनर्विचार की अपील की है। समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव ने बीते सप्ताह एक बड़ा लेख लिखकर सोनिया को समर्थन न देने के कारण बताये हैं और कहा है कि सोनिया को समर्थन न देकर उन्होंने देश को "विदेशी ताकतों का खिलौना" बनने से रोका है। मुलायम सिंह ने सोनिया के व्यक्तित्व में विदेशी ताकतों की दुरभि–सन्धि को देख लिया है। सोनिया के कारण कांग्रेस अकेली पड़ गयी है। माकपा के अलावा कांग्रेस का कोई साथी नहीं बचा; किन्तु माकपा और सोनिया दोनों का ही चरित्र और चिन्तन विदेशी है। दो पूर्णतः अभारतीय विचार माकपा और सोनिया के रूप में गठजोड़ कर चुके हैं। लालू प्रसाद यादव का सोनिया समर्थन बिहार की सरकार के परस्पर लेन–देन से जुड़ा हुआ है। लालू भारतीय राजनीति की किसी भी विचारधारा का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

राजनीतिक क्षेत्र की तमाम चरित्रहीनता के बावजूद भारत विश्व राजनीतिक परिदृश्य में अपनी पूरी आभा के साथ खिल रहा है। दुनिया के अनेक देश भारत के नवोन्मेष और स्वाभाविक आरोहण से क्षुब्ध हैं। भारत अब विश्व की महाशक्ति बन चुका है। भारत की इस निर्मिति में भारत की स्वाभाविक राष्ट्रीय प्रकृति का योगदान है। भारत की स्वाभाविक प्रकृति को प्रखरता देने का काम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने किया है। संघ ने राजनीति से प्रत्यक्षतः अलग रहकर भी राजनीति को नये प्रतीक, प्रतिमान और आदर्श दिये हैं। नितान्त वैयक्तिक राजनीति करनेवाले मुलायम सिंह मार्का राजनीतिज्ञ भी अब राष्ट्रवाद की भाषा बोलने को बाध्य हैं। इस पूरे कार्यकरण का स्वाभाविक अधिष्ठान्–हिन्दुत्व है। अतः दुनिया के सारे देश भारत की हिन्दू–चेतना को भोथरा बनाने में संलग्न हैं।

अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी जैसे नेता भारत की राष्ट्रवादी चेतना के प्रतिनिधि हैं। विदेशी राजनीतिक शक्तियाँ किसी भी सूरत में भारत की राष्ट्रवादी चेतना को तोड़ना चाहती हैं। सोनिया गांधी भारत की राजनीति में पश्चिम की राजनीतिक चेतना– (चर्च चेतना) की एक घुसपैठिया हैं। अब तो इसी गम्भीर प्रश्न पर शरद पवार, पूर्णो ए० संगमा और तारिक अनवर ने भी सोनिया के विरुद्ध बिगुल बजा दिया है। सोनिया इटली की फासीवादी पार्टी के संस्थापक मुसोलिनी के अनुयायी स्टीफानो माइनो की पुत्री हैं। विदेशी राजनीतिक ताकतें तथा चर्च सोनिया को किसी भी तरह भारत की राजनीति में शीर्ष पर स्थापित करना चाहते हैं; ताकि हिन्दुत्व पर चल रहे आक्रमण की उनकी कूट–योजना की सफलता में कोई बाधा न हो। इसीलिए भारत की राजनीति में विदेशी हस्तक्षेप का ताण्डव जारी है।

३ जून १९९८ को अमरीकी कांग्रेस में खुफिया एजेन्सी सी०आई०ए० की सुनवाई थी। डेविड जेरामाइक के संयोजन में हुई इस बैठक में सी०आई०ए० का बजट चार करोड़ डालर प्रतिवर्ष से बढ़ाकर ५० करोड़ डालर सालाना कर दिया गया। सुनवाई में तर्क दिया गया, "भारत में सी०आई०ए० की गतिविधियों का संचालन करने के लिए आवण्टित धनराशि दस लाख डालर प्रतिवर्ष बहुत कम है। धन और साधनों के अभाव में दिन–प्रतिदिन एजेण्टों की कमी होती जा रही है। इन दोनों कारणों से यह सम्भव नहीं हो पा रहा है कि भारतीय जनता पार्टी की सरकार को हटाकर कांग्रेस की सरकार लाने के लिए और माहौल बनाया जा सके। इसके लिए बजट के साथ–साथ उससे जुड़े व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ानी होगी, नहीं तो भाजपा सरकार को हटाकर कांग्रेस की सरकार को पुनः वापिस लाने में कामयाबी नहीं मिल सकती।" सी०आई०ए० की बाबत हुई उक्त सुनवाई अमरीका की गृद्ध–दृष्टि की पोल खोलने को काफी है। अमरीकी संविधान विदेशी नागरिकों को देश के सर्वोच्च पद पर पहुँचने की साधारणतया इजाजत नहीं देता।

भारत के संविधान में विदेशी नागरिकों को सर्वोच्च पद धारण से रोकने की कोई व्यवस्था नहीं है। हमारे संविधान निर्माता ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़नेवाले अग्रिम पंक्ति के योद्धा थे। वे इस्लामिक कट्टरवाद से भारत को हो चुके नुकसान से भी परिचित थे। संविधान निर्माण के कालखण्ड में किसी विदेशी के प्रधानमन्त्री के दावे की बात स्वप्न में भी नहीं सोची जा सकती थी। उस कालखण्ड में विदेशी व्यक्ति की बात तो दूर, विदेशी वस्त्र भी घोर निन्दा की चीज बन चुके थे। वे नहीं जानते थे कि आगे आने वाले भारत में भारत का राजनीतिक तन्त्र और कोई राजनीतिक दल इस सीमा तक नपुंसक हो सकता है कि उसे प्रधानमन्त्री पद के लिए भी "आयात" की विवशता होगी।

यह प्रश्न भारत के जीवन और मरण से जुड़ा हुआ है। हमारी राज्यव्यवस्था के रिमोट चर्च के हाथ हो ही नहीं सकते। हमारी राजनीतिक प्रणाली भले ही विकलांग और नपुंसक हो गयी हो, भारत का लोक–जीवन पहले से ज्यादा जीवन्त है। लोक–जीवन की प्रखरता ऐसे अपाहिजपन को कभी बर्दाश्त कर ही नहीं सकती। इसलिए एक बार फिर ललकार कर चुनौती देने की आवश्यकता है। शालीनता टूटे तो भी। □

(पृष्ठ ८ का शेष)

'मम प्रजापरिपालनाधिकार सिद्धि द्वारा परमेश्वर प्रीत्यर्थं साम्राज्यादिक फलप्राप्तयर्थं गणेशपूजनं तदंगत्वेन ब्राह्मणैः पुण्याहवाचनं मातृकावसोद्धारापूजनं नांदीश्राद्धं पुरोहितवरणादिकं च करिष्ये।'

इस संकल्प के अनुसार प्रथम गणेश–पूजन, कलश की स्थापना, पुण्याहवाचन, यजमानों का अभिषेक, षोडश मातृका पूजन, नांदीश्राद्ध, मधुपर्क, रक्त–सूत्रकंकण और पट्टबन्धन आदि हुए। उसके पश्चात् शान्ति–यज्ञ, आचार्यों को दक्षिणा दी गयी और अग्नि–विसर्जन हुआ।

रविवार दिनांक ३१ मई, समारम्भ का दूसरा दिन था। महाराज ने रात्रि को उपवास किया। भू–शय्या का पालन करते हुए ब्रह्मचर्य का भी पालन किया। दूसरे दिन सजा कर कण्ठ में वस्त्र पहनाये गये। यजमानों के लिए औदुंबर शाखाओं का आसन बनाया गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न नदियों तथा समुद्र के जल के कुम्भ, रत्न गन्ध, पुष्प, फल आदि के साथ औषधिपूर्ण जल के कुम्भ निकट ही रखे गये। फिर महावेदी पर अग्नि और ग्रहों की स्थापना करने के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण होम किया गया। यह सब पहले से ही निश्चित था। पूर्णाहुति के बाद यजमान ने अभिषेकशाला में जाकर सुगन्धित तेल, चूर्ण और उष्ण जल से मन्त्र सहित स्नान किया। उसके बाद शिवाजी शुभ्र वस्त्र पहन कर पीठ पर आये। उच्च मन्त्र घोष के समय पुण्यक्षेत्र की पवित्र मृत्तिका लगाकर पंचामृत स्नान कराया गया। महाराज फिर शुभ वस्त्र पहनकर चन्दन लगाकर मण्डप में पधारे। वेदी पर

इस समारोह के समय आठ दिशाओं में अष्ट प्रधान खड़े थे। प्रधानमन्त्री मोरोपन्त पिंगले घृत से भरा स्वर्णकलश लेकर पूर्व दिशा में खड़े थे। आग्नेय दिशा में प्रधान सचिव अण्णाजी छत्र लेकर खड़े थे। दक्षिण दिशा में सेनापति हंबीरराव मोहिते चाँदी के कलश में दूध लिये हुए थे। नैऋत्य दिशा में हाथ में पंखा लिये सुमन्त, पश्चिम दिशा में ताँबे के कलश में दही लिये रामचन्द्र पन्त, उत्तर दिशा में कलश में मधु लिए रघुनाथ पण्डित राव खड़े थे। ईशान एवं वायव्य दिशा की ओर चँवर लिये न्यायाधीश निराजी पन्त एवं दत्ता जी पन्त खड़े थे। दायीं ओर पत्र लेखक बाला जी आवजी और बायीं ओर गणक लेखक चिमणा जी आवजी खड़े थे। इसके उपरान्त भाँति–भाँति के कुम्भों में जल लेकर महाराज का मन्त्रघोष के साथ अभिषेक किया गया।

ऐंद्रिशान्ति–विधि सम्पन्न हुई। सोमवार १ जून को गृहयज्ञ, नक्षत्र होम हुआ। मंगलवार २ जून को मंगलवार एवं नवमी निषिद्ध होने के कारण कोई संस्कार सम्पन्न नहीं हुआ। बुधवार ३ जून को उत्तरपूजन के बाद आचार्यों को प्रतिमाएँ अर्पित की गयीं। गुरुवार ४ जून को रात्रि के समय निर्ऋतियाग हुआ। यह विधि काले रंग के वस्त्र पहन कर काले रंग के पुष्प चढ़ाकर सम्पन्न की गयी। उसके बाद उन्होंने स्नान किया, शुभ्र वस्त्र पहन कर पुण्याहवाचन किया।

इसके बाद मुख्य राज्याभिषेक विधि प्रारम्भ हुई। शुक्रवार द्वादशी २२ घड़ी, ३५ पल का समय था। राज्याभिषेक का मुहूर्त त्रयोदशी को होने के कारण धार्मिक विधि सायंकाल से लेकर प्रातःकाल के प्रथम प्रहर तक थीं, राज्याभिषेक, सिंहासनारोहण एवं राजदर्शन ये तीन समारोह शनिवार, दिनांक ६ जून त्रयोदशी को सम्पन्न हुए।

गणेश पूजन, स्वस्तिवाचन, मातृकापूजन, वसुन्धरा पूजन के बाद नांदीश्राद्ध, नारायणपूजन और आज्यहोम हुआ। आज्याहुति देने के बाद शिवाजी महाराज सपत्नीक पधारे। मण्डप पूजा हुई। महावेदी के चारों ओर, यज्ञ वेदिका के चारों ओर हर दिशा में चार–चार कुम्भों की स्थापना की गयी। पूर्व दिशा में स्वर्ण कुम्भ, पश्चिम में ताँबे के कुम्भ, दक्षिण में रजत कुम्भ और उत्तर में मिट्टी के कुम्भ रखकर उनमें घृत, दुग्ध, दधि और जल भरा गया। कुम्भों को फूलों तथा पत्तों से प्रस्थापित आसन को पैरों का स्पर्श न करते हुए दोनों घुटने टेक कर महाराज ने उस पर विधिपूर्वक आरोहण किया। उसके बाद अभिषेक प्रारम्भ हुआ। आचार्य और पुरोहितों ने शिवाजी महाराज पर समन्त्र अभिषिंचन किया। अग्नि के निकट आकर पूजन किया गया और अभिषेकशाला में होने वाले सुवर्ण सिंहासन पर सपत्नीक आरोहण किया।

'महते क्षत्राय महते आधिपत्याय महते जानराज्याय
एषवो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।'

घोष करते हुए तरह–तरह के पवित्र जल से अभिषेक करने के लिए ब्राह्मण महाराज को अभिषेकशाला में ले गये। यहाँ महाराज के सभी अधिकारी उपस्थित थे। महारानी सोयरा बाई ने रत्नजटित कमरपट्टा पहना हुआ था। युवराज सम्भाजी, रानी सोयरा बाई और शिवाजी महाराज स्वर्ण सिंहासन पर बैठे।

आठ दिशाओं में अष्ट प्रधान

इस समारोह के समय आठ दिशाओं में अष्ट प्रधान खड़े थे। प्रधानमन्त्री मोरोपन्त पिंगले घृत से भरा स्वर्णकलश लेकर पूर्व दिशा में खड़े थे। आग्नेय दिशा में प्रधान सचिव अण्णाजी छत्र लेकर खड़े थे। दक्षिण दिशा में सेनापति हंबीरराव मोहिते चाँदी के कलश में दूध लिये हुए थे। नैऋत्य दिशा में हाथ में पंखा लिये सुमन्त, पश्चिम दिशा में ताँबे के

कलश में दही लिये रामचन्द्र पन्त, उत्तर दिशा में कलश में मधु लिए रघुनाथ पण्डित राव खड़े थे। ईशान एवं वायव्य दिशा की ओर चँवर लिये न्यायाधीश निराजी पन्त एवं दत्ता जी पन्त खड़े थे। दायीं ओर पत्र लेखक बाला जी आवजी और बायीं ओर गणक लेखक चिमणा जी आवजी खड़े थे। इसके उपरान्त भाँति-भाँति के कुम्भों में जल लेकर महाराज का मन्त्रघोष के साथ अभिषेक किया गया।

"इमं देवा असपत्नं सुवध्यं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठाय महते राजातराजस्योंद्रियाय...विष एष वोमी राजा सोमो अस्माकं ब्राह्मणानां राजा..."

इस अभिषेक में सभी जाति एवं वर्ण के लोगों ने भाग लिया। अभिषेक के पश्चात् पुत्रवती स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र धारण कर आगे आयीं और उन्होंने महाराज की आरती उतारी। स्नान के उपरान्त महाराज ने ताँबे के थाल में रखे घृत में अपना मुख देखा और ब्राह्मणों को दक्षिणा दी। महाराज नये वस्त्र एवं अलंकार धारण कर मण्डप में पधारे। उसके पश्चात् वे गागा भट्ट के साथ रथ के समीप गये, रथ एवं अश्वों की विधिवत् पूजा की। रथ पर ध्वज और छत्र की स्थापना करने के बाद महाराज रथ पर आरूढ़ हुए। मन्त्रोच्चारण के साथ उन्होंने धनुष धारण किया और सभी धार्मिक विधियाँ सम्पन्न करके वे पुनः मण्डप में आये। स्वर्णासन पर बैठ कर अक्षक्रीड़ा की।

अनेक शताब्दियों के बाद भारतवर्ष में स्वदेशी राज्य की स्थापना हो रही थी। सिंहासन पर आरूढ़ छत्रपति शिवाजी के सम्मुख अनेक व्यक्ति नतमस्तक खड़े उनका अभिवादन कर रहे थे। ऑक्सिडेन, जिसने इस समारोह में भाग लिया, लिखते हैं– "हम प्रातः सात बजे ही रायगढ़ आये, राज दरबार में पहुँच कर महाराज का अभिवादन किया एवं इंग्लैण्ड की ओर से हीरे की एक अँगूठी तथा साढ़े सोलह रुपये के मूल्य की अन्य वस्तुएँ महाराज को नजराने के रूप में भेंट कीं। युवराज, प्रधानमन्त्री तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को भी भेंट दी। महाराज ने प्रसन्न होकर हमें अपने निकट बुलाया और वस्त्रादि उपहार स्वरूप भेंट देकर बिदा किया।

इन समस्त धार्मिक विधियों के पूर्ण होते-होते प्रातःकाल का प्रथम प्रहर आ पहुँचा था। प्रभात वेला में ही सिंहासनारोहण विधि नियत की गयी थी। महाराज सभा में पधारे। सभास्थल की दीवारों पर बत्तीस शुभ लक्षणों एवं शुभवृक्षों के चिह्न अंकित थे। सभागृह की छत मुक्ता लड़ियों से सजी हुई थी। सुन्दर कालीन बिछे थे। बीच में रत्नजटित स्वराज्य- चिह्न से अंकित सिंहासन रखा हुआ था।

अंग्रेज वकील ऑक्सिडेन ने यह सिंहासन देखा था। वह लिखता है... हम कुछ समय के लिए सिंहासन के सामने खड़े हुए, स्वर्णांकित भाले की नोंक पर कई अधिकार प्रदर्शित करनेवाले चिह्न एवं राजसत्ता के चिह्न लगे थे। दाहिनी ओर विशाल दाँतोंवाली दो मछलियों के सोने के सिर रखे थे तथा बायीं ओर बहुत से अश्व-पुच्छ और एक बहुमूल्य भाले की नोंक पर रखी सोने के काँटों की पगड़ी न्याय-चिह्न प्रदर्शित करती थी।

सिंहासन की आठों दिशाओं में आठ रत्नजटित खम्भे थे। सिर पर धारण करने हेतु बारीक पच्चीकारी से युक्त तथा मणिमुक्ताओं से जटित छत्र था। राजसभा के प्रवेशद्वार पर रणभेरी गूँज रही थी। द्वार के बाहर स्वर्णालंकारों से सजे दो हाथी झूम रहे थे। ढाल-तलवार, धनुष-बाण एवं अन्य अस्त्र-शस्त्रों की पूजा के उपरान्त शिवाजी सभा की ओर बढ़े। उन्होंने कुल देवताओं तथा ब्राह्मणों की वन्दना की। इसके बाद शिवाजी महाराज अपनी पटरानी सोयरा बाई और युवराज सम्भाजी सहित अपनी माता जीजाबाई का अभिनन्दन करने एवं उनका आशीष प्राप्त करने के लिए उनके पास गये। अपनी माता का आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद महाराज राजसभा में पधारे। वेदमन्त्रों की ध्वनि के मध्य वे सिंहासन पर बिराजे। महाराज के मस्तक पर पीले पुष्पों एवं अक्षत की वर्षा की गयी। मंगल वाद्यों एवं तोपों के गर्जन से रायगढ़ का समस्त क्षेत्र गूँज उठा। महाराज को तिलक लगाया गया और सौभाग्यवती स्त्रियों ने उनकी आरती उतारी। गागा भट्ट ने महाराजा के सिर पर स्वयं आगे बढ़कर राजमुकुट रखा। ब्राह्मणों ने मंगलाचार वाचन किया और राजा को आशीष दिया। इसके उपरान्त प्रधानमन्त्री मोरोपन्त ने महाराज को प्रणाम किया, आठ सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ उन पर से न्योछावर कीं। अन्य राज्याधिकारियों ने भी महाराज को स्वर्ण मुद्राओं से 'स्नान' कराया।

अनेक शताब्दियों के बाद भारतवर्ष में स्वदेशी राज्य की स्थापना हो रही थी। सिंहासन पर आरूढ़ छत्रपति शिवाजी के सम्मुख अनेक व्यक्ति नतमस्तक खड़े उनका अभिवादन कर रहे थे। ऑक्सिडेन, जिसने इस समारोह में भाग लिया, लिखते हैं– "हम प्रातः सात बजे ही रायगढ़ आये, राज दरबार में पहुँच कर महाराज का अभिवादन किया एवं इंग्लैण्ड की ओर से हीरे की एक अँगूठी तथा साढ़े सोलह रुपये के मूल्य की अन्य वस्तुएँ महाराज को नजराने के रूप में भेंट कीं। युवराज, प्रधानमन्त्री तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को भी भेंट दी। महाराज ने प्रसन्न होकर हमें अपने निकट बुलाया और वस्त्रादि उपहार स्वरूप भेंट देकर बिदा किया। ऑक्सिडेन ने आगे लिखा– जब हम दरबार में

पहुँचे तो महाराज सिंहासन पर बैठे हुए थे। सम्भाजी, पेशवा मोरोपन्त तथा एक पुरोहित (गागा भट्ट) सिंहासन के नीचे बैठे थे। सेनाध्यक्ष तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारी एक ओर खड़े थे। मैंने महाराजा का अभिवादन (कोर्निश) किया। नारायण शेणवी ने 'नजर' की अँगूठी हाथ से ऊपर उठा ली। शिवाजी महाराज ने हमें वस्त्र देकर सम्मानित किया और फिर हम सभाद्वार के बाहर आ गये। बाहर हमें दो सजे हुए हाथी खड़े दिखे। इनके अतिरिक्त दो सुन्दर श्वेत अश्व भी वहाँ खड़े थे। गढ़ पर जाने का मार्ग इतना दुरूह था कि ये जानवर यहाँ किस प्रकार आये होंगे, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे।"

७ जून का दिन निषेध का दिन था। इस दिन कोई कार्य सम्पन्न नहीं किया गया। अगले दिन शिवाजी महाराज ने पूर्ण शास्त्रीय विधि से अपनी पूर्व पत्नी के साथ चौथी बार विवाह किया। मंगलवार एवं बुधवार को ब्राह्मणों को दान आदि देकर समारोह सम्पन्न किया गया। पुरोहित एवं ब्राह्मणों द्वारा शास्त्रोक्त विधि से राज्याभिषेक का समारोह सम्पन्न कराने के बाद ठीक तीन मास बाद शिवाजी महाराज ने एक तान्त्रिक राज्याभिषेक भी कराया। संस्कृत ग्रन्थ 'शिवराज राज्याभिषेक कल्पतरु' के अनुसार यह समारोह कुछ असन्तुष्ट ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने हेतु आयोजित किया गया था।

निश्चलपुरी गोसाई नामक एक साधु भी राज्याभिषेक समारोह में आमन्त्रित था। गागा भट्ट, जो उक्त समारोह के प्रमुख पुरोहित थे, ने अपने परिचित ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा आदि दिलवायी और गोसाई द्वारा भेजे ब्राह्मणों का सम्मान नहीं किया, गोसाई को इस बात पर आपत्ति थी। कहते हैं, इस राज्याभिषेक में तथा उसके तुरन्त बाद कुछ अपशकुन भी हुए थे– महाराज की पत्नी काशीबाई का देहावसान, सेनापति प्रतापराव का युद्ध में मरण, गायत्री मन्त्र का उपदेश लेने से पूर्व उल्काओं का पतन हुआ और इसी दौरान एक अस्तबल भस्म हो गया। स्वर्णतुला के समय लकड़ी का गिरना और गागा भट्ट की नाक पर आघात होना, राज्यपुरोहित बाल भट्ट के सिर पर कमल पुष्प का गिरना, राजमाता का राज्याभिषेक के बारहवें दिन स्वर्गवास। महाराज को राज्याभिषेक के समय [illegible] पूजन अवश्य करना चाहिए था, जो उन्होंने नहीं किया और ये अपशकुन सब उसी के कारण हुए हैं– यह प्रचार निश्चलपुरी ने प्रारम्भ किया। इस प्रचार के निवारणार्थ ही इस दूसरे तान्त्रिक राज्याभिषेक का आयोजन किया गया था।

राज्याभिषेक होते ही महाराज ने 'राज्याभिषेक–शक' (संवत्) का प्रारम्भ किया, फलस्वरूप शालिवाहन के बाद भारत को दूसरा संवत्कर्त्ता प्राप्त हुआ। यह राज्याभिषेक भारतीय अस्मिता के पुनरुत्थान का प्रतीक था। अभारतीय–परकीय शब्दों, पदचिह्नों को नकारते हुए शिवाजी ने एक नये वातावरण के निर्माण का प्रयास प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने पदाधिकारियों के पहले से प्रचलित नामों को बदल कर उनके स्थान पर मुख्य प्रधान, आमात्य, मन्त्री, सुमन्त, सचिव, पण्डितराव, सेनापति, न्यायाधीश आदि शब्द प्रसारित किये। उन्होंने अपनी भाषा में आये सभी अभारतीय शब्दों को समाप्त करने के लिए "राज्य व्यवहारकोश" स्थापित करने की आज्ञा दी। योग्य शासक महाराज शिवाजी जानते थे कि भाषा का प्रश्न राष्ट्रीय–जीवन से सम्बन्ध रखता है।

यह राज्याभिषेक भारतीय अस्मिता के पुनरुत्थान का प्रतीक था। अभारतीय– परकीय शब्दों, पदचिह्नों को नकारते हुए शिवाजी ने एक नये वातावरण के निर्माण का प्रयास प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने पदाधिकारियों के पहले से प्रचलित नामों को बदल कर उनके स्थान पर मुख्य प्रधान, आमात्य, मन्त्री, सुमन्त, सचिव, पण्डितराव, सेनापति, न्यायाधीश आदि शब्द प्रसारित किये। उन्होंने अपनी भाषा में आये सभी अभारतीय शब्दों को समाप्त करने के लिए "राज्य व्यवहारकोश" स्थापित करने की आज्ञा दी। योग्य शासक महाराज शिवाजी जानते थे कि भाषा का प्रश्न राष्ट्रीय–जीवन से सम्बन्ध रखता है।

शिवाजी ने सोने और ताँबे की अपनी मुद्राएँ भी प्रचलित कीं, जिस पर 'श्री शिव छत्रपति' अक्षर अंकित थे। जो मुद्रा उनकी पन्द्रह वर्ष की आयु के समय जारी की गयी थी, उसे उन्होंने उसी तरह चालू रखा। इस मुद्रा पर ये, शब्द अंकित थे।

"प्रतिपच्चन्द्र रेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता।
शाहसूनो शिवस्यैषांभ मुद्रा भद्राय राजते।"

देवता, अग्नि और गुरुजनों को साक्षी मान शिवाजी ने शपथ ली कि वे धर्म और नियम के अनुसार ही शासन करेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया। उन्होंने मुल्की और फौजदारी नियम समान स्तर पर सभी पर लागू किये। उदाहरणार्थ, राज्याभिषेक का खर्च एकत्र करने के लिए शिवाजी ने सभी वतनदारों पर 'सिंहासन कर' नाम से स्वतन्त्र कर जारी किया। ध्यातव्य है कि यह कर केवल देशमुख, देश कुलकर्णी, पाटिल, ग्रामकुलकर्णी इत्यादि अधिकारियों और धनिकों पर ही लागू किया गया था।

इस प्रकार भारत की दासता के उस काल में स्वदेशी राज्य और स्वदेशी भाषा, स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान का एक नया युग आरम्भ हुआ। □

धन्य हो गयी पोकरण की धरती

भारत को पाँच परमाणु शक्तियों की पाँत में खड़ा करने वाले पोकरण क्षेत्र ने जहाँ विश्व की बड़ी-बड़ी शक्तियों को हैरत में डाल दिया, वहाँ परमाणु विस्फोटों के धमाके से थर्रा उठने वाली इस धरती के भाग्य पर पड़ी रहने वाली अकाल की छाया भी सदा के लिए लोप हो गयी है। पोकरण क्षेत्र की धरती परमाणु विस्फोटों से धन-धान्य से भरपूर होती जा रही है।

राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक 'प्रौद्योगिकी दिवस' पर निर्गत डाक टिकट

पोकरण क्षेत्र का खेतोलाई गाँव के निवासियों के अनुसार गत वर्ष ११ मई को किये गये परमाणु परीक्षण काफी गहरायी पर किये गये थे, जिससे किसी प्रकार का ज्यादा नुकसान नहीं हुआ। विस्फोट स्थल के नजदीकी गाँव खेतोलाई के कुछ मकानों, भवनों आदि में थोड़ी बहुत दरारें आयीं थीं। राज्य सरकार ने उन्हें मुआवजा प्रदान कर दिया है। जहाँ १९७४ के परमाणु परीक्षण के बाद खुजली, कैंसर जैसे गम्भीर रोग हो गये थे तथा कई मवेशी विकलांग हो गये थे वहीं इस बार उससे अधिक शक्तिशाली विस्फोटों से किसी प्रकार की रेडियोधर्मिता नहीं फैली और न ही किसी प्रकार का नुकसान हुआ।

पहले यह पूरा क्षेत्र अकाल की छाया में रहता था, लेकिन परमाणु परीक्षण के बाद यहाँ पर हर साल जोरदार रिकार्ड वर्षा हो रही है। विस्फोटों के बाद पोकरण से जैसलमेर तक भू-जल के अथाह भण्डार ही नहीं मिले, बल्कि मीठा जल मिल जाने से लगभग १०० किलोमीटर के क्षेत्र में बंजर भूमि हरी-भरी हो गयी।

अकाल राहत कार्यों में सैकड़ों कुएँ खुदवाये गये जिनमें बढ़िया मीठा जल मिला। अब इसकी काया पलट गयी है। जहाँ पहले रेत की धोरो अधिक नजर आते थे, वहीं अब हरे-भरे खेत ही दिखायी देते हैं। जहाँ पहले अकाल से पशुधन मर जाते थे, वहीं अब जंगल में पानी भर जाता है। घास प्रचुर मात्रा में मिलने से गाँव-गाँव से दूध शहरों में जाने लगा है। पोकरण के पास से चान्धन और लाठी क्षेत्र के लोगों ने परमाणु विस्फोटों के बाद भूमिगत चमत्कारों का लाभ उठाया है।

आज पोकरण परमाणु विस्फोट के बाद दुनिया हमें अलग नजरों से देखने लगी है। पोकरण परमाणु-स्थल पर सेना द्वारा इतनी सतर्कता बरती जा रही है कि उस स्थान पर परिन्दा भी पर नहीं मार सकता। आज पूरे देश को परमाणु विस्फोटों का सफलतापूर्वक परीक्षण करने वाले वैज्ञानिकों पर गर्व है, वे बधाई के पात्र हैं।

दूसरी उपलब्धि भी रही है पोकरण में विस्फोट की। जयपुर-जोधपुर सड़क मार्ग पर सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा लगाये जाने वाले मील के पत्थर 'माइलस्टोन' पर अब पोकरण भी लिखा नजर आता है।
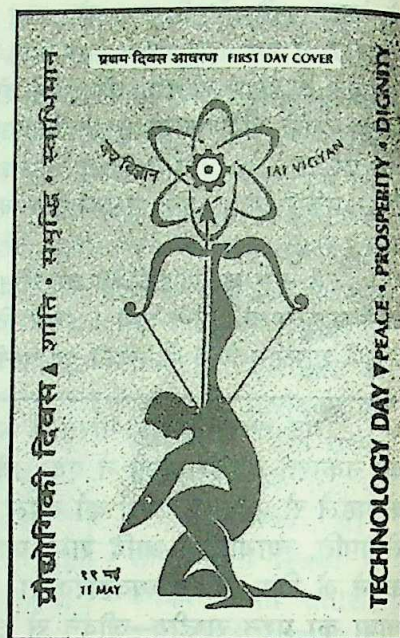
निर्गत डाक टिकट का प्रथम दिवस आवरण

यह परिवर्तन पिछले वर्ष पोकरण में ११ मई और १३ मई १९९८ को किये गये, आणविक परीक्षण के बाद आया है। इससे पहले माइलस्टोन पर जैसलमेर का नाम अंकित होता था; किन्तु अब पोकरण मील के पत्थर पर आ गया है।

पोकरण में द्वितीय परमाणु परीक्षण की पहली वर्षगाँठ ११ मई को थी। यूँ तो पोकरण १८ मई १९७४ को तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासनकाल में भारत के प्रथम आणविक परीक्षण से चर्चित हो चुका था लेकिन २४ वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने पोकरण फायरिंग रेंज में दो दिनों में पाँच परमाणु परीक्षण करके समूचे विश्व को स्तब्ध कर दिया। □

...हर हर गंगे !

- रघोत्तम शुक्ल

ब्रह्मा के कमण्डलु, विष्णु के चरणों तथा शंकर के जटा–कलाप से सम्बन्ध रखनेवाली गंगा त्रिदेवों से अभिन्न तो हैं ही, साथ ही त्रिलोक उनका प्रवाह–क्षेत्र भी हैं। भूत भावन भगवान् शंकर के नृत्य से राधा–माधव द्रवित हुए। इसी ब्रह्मद्रव को सृजनकर्त्ता विरञ्चि ने कमण्डलु में भर लिया, जो देवलोक या स्वर्ग में देवनदी, सुरसरि या सुरापगा तथा मन्दाकिनी आदि नामों से प्रवाहित और लोक विश्रुत है। पृथ्वी पर राजा सगर की सन्तानों को कपिल मुनि द्वारा भस्मीभूत किये जाने पर, उनकी आत्माओं के उद्धार हेतु उनके वंशज भगीरथ द्वारा ब्रह्मा को तप से प्रसन्न कर गंगा को पृथ्वी पर लाया गया। पृथ्वी पर सीधे अवतरण होने पर अतिशय वेग के कारण उनके अविराम पाताल चले जाने की आशंका थी। अतः ब्रह्मा के परामर्श पर भगीरथ ने तप द्वारा शिव जी को प्रसन्न किया, ताकि वे गंगावतरण अपने शिर पर कर लें। आशुतोष द्वारा स्वीकृति देने पर वे शिव शीश पर अवतरित हो पृथ्वी पर आयीं और बाद में 'भोगवती' नाम से रसातल में प्रवाहित हुईं। इस प्रकार 'सुरसरि', 'भागीरथी' और 'भोगवती' बनकर वे 'त्रिपथगा' कहलायीं। गंगा की उत्पत्ति और महत्त्व की कथाएँ अनेक और बहुधा उल्लिखित हैं। वामन पुराणानुसार भगवान् वामन ने विराट् रूप से जब त्रिलोक नापा, तो उनका भी चरण ब्रह्माण्ड के कपाल पर पड़ा, जिससे उसमें खल्वाट हो गया और पवित्र जलधार फूट पड़ी। यही गंगा है और इस प्रकार विष्णु–चरण–सम्भूता अथवा 'विष्णुपदी' है।

गंगा जीवितों और मृतकों का कल्याण करती हैं। उनके जल का आचमन या पान, स्नान और दर्शनं जीव के दैहिक, दैविक और भौतिक तापों को नष्ट करता है। उनका सम्पूर्ण तटवर्त्ती प्रदेश पवित्र देश है। स्थान–स्थान पर तीर्थ हैं। जो मानव कल्याण का विस्तार करते हैं। महाभारत में कहा गया है–

"यत्र गंगा महाराज स देशस्तपोवनम्।
सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गंगातीर समाश्रितम्।।

(वनपर्व अध्याय ८६ श्लोक ९७)

(पुलस्त्य जी भीष्म से कहते हैं कि महाराज ! जहाँ गंगा बहती हैं वही उत्तम देश है, वही तपोवन है। गंगा के तटवर्त्ती स्थान को सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिए।)

सतयुग में सभी तीर्थ, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलियुग में गंगा की विशेष महिमा है। केवल प्रयाग में साठ करोड़ दस हजार तीर्थों का निवास है। आर्ष–ग्रन्थों, पुराणों, हिन्दी, संस्कृत काव्यों की वे वर्ण्य–विषय हैं। हिन्दू तो क्या, मुस्लिम कवियों की भी गंगा श्रद्धा–केन्द्र है। रसखान कहते हैं– "तेरोई पानि पियौं रसखानि सजीवन–लाभ लहौं सुख तो से।" रहीम ने कहा है–

"अच्युत चरन तरंगिनी सिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी कीजौ इन्दवभाल।।"

यह सब तो है ही; किन्तु गंगा जी का एक सुन्दरी तरुणी होकर जननी स्वरूप भी है। किसी भी युवती की मातृत्व प्राप्ति की सहज इच्छा होती है। काम सामान्यतया विकार है; किन्तु सन्तानोत्पत्तिकारक काम शास्त्रोक्त तथा ब्रह्म–स्वरूप है। प्राणी को नरक से उद्धार करनेवाला पुत्र होता है। इसीलिए यह नाम दिया गया। (पुत् (नरक) से 'त्र' (त्राण देने वाला) ! गीता के दशम अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने को "प्रजनश्चास्मि कंदर्पः" (श्लोक २८) कहा है। अर्थात् हे अर्जुन ! शास्त्रोक्त रीति से सन्तान की उत्पत्ति का हेतु मैं कामदेव हूँ।" सुरसुन्दरी चिरयौवना गंगा ने भी शिव तेज को धारण किया और षडानन जैसे महापराक्रमी पुत्र को उत्पन्न किया। यही नहीं कुरुवंशी नरेश शान्तनु की पत्नी बनकर उन्होंने वसुओं को जन्म दिया और संसार प्रसिद्ध पराक्रमी, दृढ़प्रतिज्ञ और नीतिवान् गंगादत्त, देवव्रत अथवा भीष्म की माता बनीं।

श्रेष्ठ प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार शिव और उमा का विवाह शिव अंश से उत्पन्न पुत्र पाने हेतु ही हुआ था; क्योंकि वही देव सेनापति बनकर 'तारकासुर' का वध कर सकता था, जिसके अत्याचारों से देवता, मानव, ऋषि, मुनि, सज्जन त्रस्त थे। अमोघ महान् तेज को धारण कर पृथ्वी तप्त हो गयी। सुरों के अनुरोध पर अग्नि देव ने तब

उसे अपने में समाहित कर लिया। बाद में आवश्यकतानुसार ब्रह्मा जी के परामर्श से वह तेज गंगा जी के गर्भ में रुद्र रूप 'अग्नि' ने स्थापित किया। वे उमा की बड़ी बहन थीं। वे इस दुःसह तेज को यथोचित समय तक सहन न कर सकीं और व्यथित हो हिमालय पर स्थापित कर दिया। यह अमोघ तेज जम्बूनद स्वर्ण तुल्य कान्तिमान् और वर्धमान् था। छह कृत्तिकाओं ने इस बालक को स्तन्य पान कराया, जिस हेतु उनके छह मुख हुए। वे वीर बालक 'स्कन्द', 'षण्मुख', 'कार्त्तिकेय' आदि नामों से प्रसिद्ध हुए तथा उमा, गंगा, कृत्तिकाएँ उनकी माता हुईं। ये शिव-पुत्र सेनानियों में सर्वश्रेष्ठ देव सेनापति हुए और इन्होंने तारक का वध कर लोकहित साधन किया। इस प्रकार गंगा जी का षडानन की उत्पत्ति में योगदान रहा और वे लोकमंगल-कारिणी बनीं।

एक अन्य प्रसंगानुसार, जो महाभारत के आदि पर्व में आया है, राजा शान्तनु गंगा जी पर आसक्त हो गये और अपनी पत्नी बनाने का प्रस्ताव रखा। गंगा ने यह प्रस्ताव इस शर्त पर स्वीकार किया कि 'वे भला-बुरा जो भी करें, राजा उसमें रोक-टोक नहीं करेंगे न कोई अप्रिय वचन कहेंगे ! अन्यथा गंगा उनका साथ छोड़ देंगी।' राजा शान्तनु ने यह शर्त स्वीकार कर ली। गंगा शान्तनु की पत्नी बनीं। वसिष्ठ मुनि के शापवश 'वसुओं' (आठ) को नरलोक में जन्म लेना था। उन लोगों ने गंगा को माता बनने हेतु पहले ही राजी कर लिया था और यह प्रार्थना करली थी कि जन्म लेते ही उन्हें अपने जल में प्रवाहित कर दें, ताकि उन्हें मर्त्य मानव-योनि से मुक्ति मिल जाय। गंगा ने इतना अवश्य परन्तुक लगा दिया था कि जिससे वे सम्बन्ध स्थापित करेंगी, उसके एक पुत्र की व्यवस्था होनी चाहिए। अतः शान्तनु से पति सम्बन्ध स्थापित कर क्रम से सात पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्हें पूर्व वचनानुसार गंगा ने जल-प्रवाह कर दिया। आठवें पुत्र को जब वे गंगाजल में प्रवाहित करने चलीं, तो राजा ने टोक दिया। ऐसा ही होना था ! वे आठवें पुत्र 'गंगादत्त' या 'देवव्रत' थे। जो कठिन प्रतिज्ञा करने के कारण 'भीष्म' कहलाये। सारा परिचय और वृत्तान्त बताकर गंगा जी चली गयीं। भीष्म महाभारत के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हुए। इच्छा-मृत्यु का वरदान लिये महापराक्रमी भीष्म ने युधिष्ठिर को राजधर्म और नीति के उपदेश दिये, जो 'शान्ति' 'अनुशासन' पर्व में विद्यमान रहकर समाज का पथ आलोकित कर रहे हैं। गंगा माँ की कोख उनसे धन्य हुई।

गंगा-तट पर बसे अनेक लोग पाण्डित्य और पौरोहित्य करके जीविकोपार्जन करते हैं, वे 'गंगापुत्र' कहलाते हैं। कितने ही निषाद-वर्ग के लोग राम सरीखों की नैया पार लगाते हैं। अनेक मत्स्य और जलचर जीवी हैं। गंगा का परिक्षेत्र जल और सिंचन की पर्याप्त व्यवस्था तथा भूमि उपजाऊ होने के कारण धनधान्यपूर्ण रहता है। क्षेत्रीय निवासियों का वे शिशुवत् पालन करती हैं। तभी तो उन्हें श्रद्धा से 'गंगा मैया' कहते हैं।

□

हमने कितने नाटक खेले

- रामानुज त्रिपाठी

छिपा आस्था को परदे में,
हमने कितने नाटक खेले।

राग-रागिनी को भरमाने-
जुटी आज दुर्वृत्ति आसुरी;
जाने कहाँ सप्त स्वर भटके,
भौचक्की रह गयी बाँसुरी।

लय की नहीं कहीं गुंजाइश,
किस स्वर को अपने सँग ले ले।

मानव की पहचान मापने के,
लगते ओछे पैमाने;
भरी भीड़ में नहीं लग रहे,
हर चेहरे जाने-पहचाने।

हैं अनभिज्ञ परस्पर जन-जन,
लेकिन लगे हुए हैं मेले।

कहीं घोंसलों में रोती है,
पंखहीन पंछी की ममता;
कहीं गले से गले लग रही,
हँस कर समता और विषमता।

कैसे चलें चरणचिह्नों पर,
डरे-डरे हम आज अकेले।

- ग्राम तथा डाकघर-गरयें-२२७३०४
सुलतानपुर (उ०प्र०)

राजपूती आन-बान के प्रतीक जौहर समारोह में मुस्लिम, रावत और मीणा भी

राजस्थानी राजपूती आन-बान के प्रतीक जौहर की याद ताजा करने के लिए गत मार्च में चित्तौड़गढ़ के किले में सम्पन्न समारोह में इस बार मुस्लिम, रावत एवं मीणा समाज ने भी राजपूतों के साथ शामिल होकर एक अनूठी मिसाल प्रस्तुत की।

मेवाड़ के पूर्व महाराणा महेन्द्र सिंह ने चित्तौड़गढ़ के ऐतिहासिक किले में राजपूती आन-बान से आयोजित इस समारोह में परम्परा से अलग हटकर इस बार मेवाड़ के राजपूतों के साथ ही मुस्लिम, रावत एवं मीणा समाज के मुखियाओं को पत्र लिखकर इस समारोह में भाग लेने को निमन्त्रित किया। समारोह का आयोजन जौहर स्मृति संस्थान द्वारा किया गया।

पूर्व महाराणा द्वारा समाज के मुखियाओं को लिखे इस निमन्त्रण का मुस्लिम समुदाय ने स्वागत किया। बदनोर के मुहम्मद हुसैन के अनुसार पूर्व महाराणा द्वारा जौहर समारोह के इतिहास में पहली बार मिले इस निमन्त्रण में लगभग पाँच हजार मुस्लिम, रावत एवं मीणा समाज के लोगों ने समारोह में भाग लिया। इनमें प्रमुख रूप से मार्शल समुदाय की ३६ जातियों में से बकसूरिया पठान समूह के लोग भारी संख्या में भाग लेने चित्तौड़गढ़ पहुँचे।

राष्ट्र प्रेम और बलिदानों के साक्षी चित्तौड़गढ़ किले में वीरांगनाओं द्वारा प्रमुख रूप से तीन जौहर किये गये थे। इनमें पहला जौहर महारानी पद्मिनी के नेतृत्व में किया गया था, जिसमें १४ हजार वीरांगनाओं ने किले में अपने प्राणोत्सर्ग किये थे। इस जौहर के समय राजपूती लड़ाई में मेवाड़ के वीरों में गोरा और बादल ने प्रमुख रूप से भाग लिया था।

इसके बाद विक्रम सम्वत् १५२२ में महारानी हाडी कर्णावती के नेतृत्त्व में चैत्र शुक्ल पंचमी को १३००० वीरांगनाओं ने अपने जीवन की आहुति दी थी। इस दौरान लड़ाई में ३२ हजार राजपूत वीर-गति को प्राप्त हुए थे।

राजपूती इतिहास में तीसरा बड़ा जौहर चैत्र कृष्ण मास विक्रम सम्वत् १६२४ में फत्ता तथा जयमल के समय लगभग ३० हजार वीरांगनाओं का हुआ। इस जौहर के समय साका में बकसूरिया पठान के नेतृत्त्व में एक हजार मुस्लिम रणबांकुरे शहीद हुए थे। मुगल सम्राट् अकबर के समय हुए इस जौहर में चित्तौड़गढ़ के किले में अकबर ने प्रवेश कर हजारों लोगों को मौत के घाट उतारा था। मेवाड़ में हुए इन जौहरों में न केवल राजपूत समाज; बल्कि रावत, मीणा एवं मुस्लिम सरदारों ने भी राजपूतों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर भाग लिया था। □

बड़े मंगल पर विशेष–

बजरंग बली का २५१ किलो का रोट

दिल्ली के कृष्ण नगर स्थित रघुनाथ मन्दिर में गत हनुमान् जयन्ती पर २५१ किलो के एक ही रोट का भोग चढ़ाया गया।

प्रवासी राजस्थानियों की हनुमान् महोत्सव समिति के सचिव के अनुसार राजस्थान दिवस पर रघुनाथ मन्दिर में २५१ किलो के एक ही रोट का यह अनूठा भोग देश-विदेश में नया कीर्तिमान है।

इस रोट को बनाने में १२१ किलो आटा, ३० किलो चीनी, ७० किलो घी, ५० किलो दूध, २० किलो सूखा मेवा, चार किलो नमक आदि सामग्री का उपयोग किया गया।

इस एक ही रोट को बनाने के लिए एक विशाल गड्ढा बनाया गया तथा रोट की सिकाई के लिए राजस्थान से दस क्विंटल उपले मँगाये गये तथा करीब ढाई क्विंटल लकड़ी का इस्तेमाल किया गया।

इस रोट को बनाने के लिए उपयोग में लायी गयी सम्पूर्ण सामग्री को मिलाकर ५ फुट आकार की एक परात में रखा गया और इसे शिवलिंग की तरह ऊपर तक ले जाकर पाँच फुट आकार की एक अन्य परात से इसे ढका गया तथा परातों के नीचे एवं ऊपर तथा चारों ओर लकड़ी उपलों से ढक कर आग लगायी गयी।

२५१ किलो के इस विशाल रोट को पकने में करीब पाँच घण्टे का समय लगा। रोट को भोग लगाने के बाद छोटे-छोटे हिस्सों में काटकर प्रसाद के रूप में वितरित किया गया। □

आपातकाल (२५ जून, ७५) पर विशेष-

वह काली रात

- अवधेश नारायण मिश्र, 'अवधेश'

काली करतूतों का किस्सा बारह घण्टे की बनी रात;
आराम हेतु जो रात बनी कर दिया उसे आपात रात।
पचहत्तर सन् पच्चीस जून जिसका कि अभागा दिवस—रात;
भारत में हुआ इसी दिन से आपातकाल का सूत्रपात।
तारीख नहीं थी कोई भी घोषणा अजब थी लाजवाब;
तानाशाही के चेहरे पर था प्रजातन्त्र का यह नकाब।
जिस तरह अचानक चोर रात में घर घुस आया करते हैं।
चोरी के साथ ध्वंस आदिक अपनी मनमानी करते हैं।
आतंक और सेंसरशिप ले घुस आया त्यों आपातकाल;
सामान्य रात्रि यह नहीं, बनी थी देशभक्त हित महाकाल।
बिजली गुल थी इसलिए कहीं अखबार न कोई निकल सके;
दिल्ली रहस्य में डूबी थी प्रातः जब सोकर लोग जगे।
जिन अखबारों ने सेंसर—पालन नहीं किया;
उनके सम्पादक को बन्दी अविलम्ब किया।
अखबारों ने निज को जागृति से जोड़ दिया;
सम्पादकीय कालम था खाली छोड़ दिया।।

☆ ☆ ☆

बन्दी हो जाया करते जब मूलाधिकार के अनुपम क्षण;
मुस्कान स्वप्न हो जाती जब शासन खुलकर खेलता दमन।
तब धीरे—धीरे आग सुलगती जलता रहता है कण—कण;
छिपकर संघर्ष चलाने का है नाम भूमिगत आन्दोलन।।

☆ ☆ ☆

देशवासी देशभक्तों पर कराये जुल्म ऐसा;
देशवासी देशवासी पर करे जब जुल्म ऐसा।
देखकर यह सब अगर धिक्कार निकले तो बुरा क्या!
और आँखों से अगर अंगार बरसें तो बुरा क्या!!
उचित अनुचित और मानवता इन्होंने सब भुला दी;
चन्द दिन अधिकार पाकर देश की जनता रुला दी।
कुछ समय इस देश में ऐसा पुलिस—शासन हुआ था;
साँस लेना सभ्य लोगों का यहाँ दूभर हुआ था।।
देखकर अंग्रेज भी क्षण—मात्र को तो काँप जाते।
नाजियों की छातियों पर लोट सचमुच साँप जाते।।

☆ ☆ ☆

लहलहाते चमन को पतझड़ बना दे, वह दमन है।
दमन के उन सब शहीदों को प्रथम कवि का नमन है।।

(आपातकाल पर कवि के खण्ड—काव्य 'क्या भूलें क्या याद करें' से)

— ७०ग/१, रेलवे अस्पताल के दक्षिण,
महमन्द जलालनगर, शाहजहाँपुर—२४२००१

विहंगावलोकन-महाराणा प्रताप की वंश-परम्परा का

- डॉ० श्रीकृष्ण सिंह सोंढ़

महाराणा प्रताप का जन्म

तिथि–ज्येष्ठ शुक्ल ३, रविवार, कलियुगाब्द ४६४२, वि०सं० १५९७ (९ मई १५४० ई०, कुछ के अनुसार ३१ मई १५३९ ई०) **जन्मस्थान**– कुम्भलगढ़, **माता**–जयवन्त बाई (जैवन्ता बाई) पाली के शासक अखेराज सोनेगिरा चौहान की पुत्री, **पिता**–महाराणा उदयसिंह (गुहिलोत सिसोदिया), मेवाड़ (मेववाड़, मेवालय, मेदपाट, मेदिनीपाट, मेधवाट, मध्यवाट), **उदयसिंह**– माता–हाड़ा चौहान राजकुँवरि कर्मावती या कर्णवती, **पिता**–महाराणा संग्राम सिंह (सांगा), **धायमाता**–पन्ना (गागरौन के शासक राजा शत्रुशाल खींची चौहान की राजकुँवरि एवं सिसोदिया राजवंश के गनायत शाखा के सामन्त समर सिंह सिसोदिया की पत्नी)। **महाराणा उदय सिंह**– प्रथम पत्नी धारबाई भटयाणी से पुत्र जगमाल, द्वितीय पत्नी जयवन्त बाई से पुत्र प्रताप, तृतीय पत्नी सज्जाबाई सोलंकिनी से पुत्र शक्ति सिंह, अन्य पत्नी से शक्ति सिंह के छोटे भाई– सागर ! **शक्ति सिंह का जन्म**– ज्येष्ठ शुक्ल ३, क०यु० ४६४०, वि०सं० १५९६, शक्तावत शाखा के संस्थापक।

प्रताप की जन्मकुण्डली

तीसरे (घर) में– मंगल, छठे में–राहु, चन्द्रमा, ग्यारहवें में–शुक्र एवं बारहवें में–बुध, बृहस्पति, शनि, सूर्य, केतु।

प्रताप के पूर्वज

(१) विष्णु (नारायण), (२) ब्रह्मा, (३) मरीचि, (४) कश्यप, (५) विवस्वान् सूर्य्य, (६) वैवस्वत मनु, (७) इक्ष्वाकु, ६४वें श्रीराम, (६५) लव, २२५वें सेनापति भट्टारक (भावनगर के समीप 'वल' नामक स्थान में वल्लभी राजवंश का संस्थापक)– इसके चार पुत्रों ने (२२६) धरसेन प्रथम (शिलादित्य प्रथम), द्रोणसिंह, ध्रुवसेन प्रथम और धरपट्ट (ने क्रमशः राज्य किया और 'सेनापति महाराज' कहलाये), (२२७) धरसेन द्वितीय, (२२८) शिलादित्य प्रथम का पौत्र ध्रुवसेन द्वितीय या शिलादित्य धर्मादित्य का भतीजा ध्रुवसेन द्वितीय, (२२९) शिलादित्य धर्मादित्य, (२३०) धरसेन तृतीय, (२३१) धरसेन चतुर्थ, (२३२) शिलादित्य द्वितीय– पारसी नरेश यज्द–गिर्द की बड़ी पुत्री राजकुमारी महाबानु के संग विवाह किया। (२३३) शिलादित्य तृतीय (२३१वें धरसेन चतुर्थ के बाद भी) वल्लभी राजवंश ने एक शताब्दी से अधिक काल तक वल्लभी (सौराष्ट्र) पर शासन किया। इसके अन्तिम शासक शिलादित्य सप्तम का शासनकाल गुप्त सम्वत् ४४७ प्राप्त होता है।) (२३४) गोहिल या गुहिल या गुहादित्य (लगभग ५५० ई०) क०यु० ३६६८, सन् ५६६ ई० (ईडर) (२३५) भोज या अपराजित या कालभोज प्रथम, (२३६) महेन्द्र प्रथम या नागादित्य प्रथम, (२३७) नाग या अपराजित द्वितीय या कालभोज द्वितीय, (२३८) शील या महेन्द्र द्वितीय या नागादित्य द्वितीय (२३९), अपराजित तृतीय, (२४०) महेन्द्र तृतीय– चित्रांगद गढ़ या चित्तौड़गढ़ के अन्तिम मौर्य शासक मानसिंह मौर्य या मान मोरी की बहन से विवाह किया। (२४१) कालभोज तृतीय (बाप्पा रावल) सन् ७२५ ई०, (नागद्रह), सन् ७२८ ई० (चित्तौड़) क०यु० ३८३० या ३८३६, वि०सं० ७९१, (२४२) खुम्माण प्रथम क०यु० ३८५५ सन् ७५३ ई०, (२४३) मत्तट या मंत्तभट या मत्तहट (२४४) भर्तृभट्ट प्रथम, (२४५) सिंह, (२४६) खुम्माण द्वितीय, (२४७) महायक, (२४८) खुम्माण तृतीय, (२४९) भर्तृभट्ट द्वितीय, (२५०) अल्लट या अल्लहट (हुण
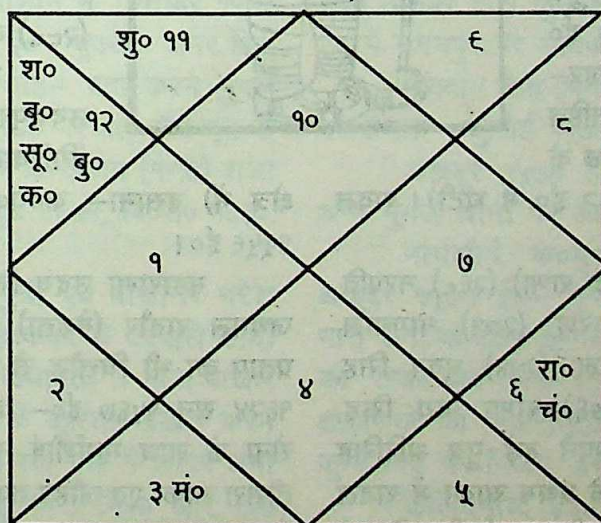
राजकुंवरि हिरिया देवी से विवाह किया।) (२५१) सत्वाहन, (२५२) शालिवाहन, (२५३) शक्तिकुमार, (२५४) अम्बा प्रसाद–निःसन्तान होने के कारण राज्य भाइयों को मिला। (२५५) शुचि वर्मा, (२५६) नरवर्मा या माधव वर्मा, (२५७) कीर्ति वर्मा या यशो वर्मा, (२५८) योगराज या यशोराज–इसके निःसन्तान मरने के कारण दूसरी शाखा के वैरट गद्दी पर आये, (२५९) वैरट, (२६०) हंसपाल, (२६१) वेरिसिंह, (२६२) विजय सिंह, (२६३) अरिसिंह, (२६४) चौड़ सिंह (२६५) विक्रम सिंह, (२६६) रणसिंह या कर्ण सिंह, चार पुत्र– महण, क्षेम, माहप, राहप, महण व राहप मर गये; **क्षेमसिंह को चित्तौड़ की गद्दी मिली व रावल कहलाये।** माहप को सीसोदा की जागीर मिली, राणा कहलाये, (२६७) खेमसिंह या क्षेम सिंह, (२६८) सामन्त सिंह या समरसी, (२६९) कुमार सिंह या कर्ण, (२७०) मंथन सिंह, (२७१) पद्म सिंह, (२७२) जैत्र सिंह (नागदा एवं चित्तौड़ दोनों स्थानों पर राजधानी रही) (२७३) रावल तेज सिंह, **(२७४) समर सिंह, (२७५) रावल रतन सिंह– दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर आक्रमण, भाद्रपद शुक्ल १३ क०यु० ४४०५, वि०सं० १३६० फरवरी १३०३ ई० से ६ माह तक युद्ध तब सन्धि, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा दगाबाजी, तब पुनः युद्ध, अन्त में २५ अगस्त १३०३ ई० को मेवाड़ का प्रथम साका एवं जौहर– चित्तौड़गढ़ में महारानी पद्मिनी सहित अनेक क्षत्राणियाँ भस्मीभूत। (कुछ के मतानुसार यह घटना सन् १३०२ ई० में घटी)। रावल शाखा समाप्त।**

(२६७) माहप (सीसोदा के राणा) (२६८) नरपति, (२६९) दिनकर, (२७०) जशकरण, (२७१) नागपाल, (२७२) पूर्णपाल, (२७३) पृथ्वीपाल, (२७४) भुवन सिंह, (२७५) राणा भीम सिंह, (२७६) राणा जय सिंह, **(२७७) राणा लक्ष्मण सिंह– अपने बड़े पुत्र अरिसिंह सहित ६ पुत्रों के साथ मेवाड़ के प्रथम साका में रावल रतन सिंह के लिए एवं मेवाड़ की रक्षार्थ वीरगति को प्राप्त हुए। सातवें पुत्र राणा अजय सिंह ने अपने सबसे बड़े भाई अरि सिंह के पुत्र हम्मीर की बहादुरी एवं दूरदर्शिता के कारण उसे मेवाड़ का अधिपति महाराणा बनाया। अजय सिंह के पुत्र सज्जन सिंह एवं क्षेम सिंह इससे नाराज होकर दक्षिण चले गये। (सज्जन सिंह, दुली सिंह, (दिलीप सिंह), मेरूप सिंह भोंसला, देवराज सिंह, इन्द्रसेन सिंह, शुभकृष्ण सिंह, रूपा सिंह, भूपीन्द्र सिंह, रायजी भोंसला, बारहट जी भोंसला, खेलोजी भोंसला, कर्ण सिंह भोंसला शंभा जी भोंसला, बाबाजी भोंसला, मालोजी भोंसला, शाहू जी भोंसला, छत्रपति शिवाजी भोंसला,** (२७६) महाराणा हम्मीर, (२७७) क्षेत्र, (२७८) लक्ष (लाखा), (२७९) मोकल, (२८०) कुम्भकर्ण (कुम्भा), (२८१) उदयकर्ण (ऊदा), (२८२) रायमल, (२८३) संग्राम सिंह (सांगा), (२८४) रतन, (२८५) विक्रमादित्य, (२८६) उदयसिंह, (२८७) प्रताप, (२८८) अमर, (२८९) कर्ण, (२९०) जगत, (२९१) प्रताप, (२९२) राजसिंह।

(२८६) महाराणा उदयसिंह का कुम्भलगढ़ में राज्याभिषेक।

(२८७) प्रताप का विवाह– क०यु० ४६५६ वि०सं० १६१४, सन् १५५७ ई०, मामरख पंवार की पुत्री अजबा दे से।

मेवाड़ के एक तरफ स्थित मांडलगढ़– सन् १५५६–५७ ई० में मुगल अकबर के कब्जे में आया।

प्रताप के पुत्र अमरसिंह (२८८) का जन्म– १६ मार्च १५५९ ई०।

मेवाड़ की नई राजधानी उदयपुर महाराणा उदयसिंह द्वारा (गिरिवाह या गिर्दनवाह या देवड़ावाटी क्षेत्र में) बसाना– क०यु० ४६६१, वि०सं० १६१६, सन् १५५९ ई०।

महाराणा उदय सिंह द्वारा चित्तौड़ त्यागना एवं जयमल राठौर (मेड़ता) द्वारा जोर देने पर युवराज प्रताप का भी चित्तौड़ से जाना– क०यु० ४६६९ वि०सं० १६२४ सन् १५६७ ई०– कारण मुगल अकबर का भारी सेना के साथ मार्गशीर्ष माह में आक्रमण– चित्तौड़ का तीसरा साका एवं जौहर तथा जयमल फत्ता का बलिदान– चैत्र कृष्ण ११ क०यु० ४६६७, वि०सं० १६२५ (उत्तर भारत की मान्यता); चैत्र कृष्ण ११ क०यु० ४६६९ वि०सं० १६२४

(दक्षिण भारत की मान्यता) अतः दोनों ही इतिहास की पुस्तकों में लिखे मिलते हैं। २५ फरवरी १५६८ ई०– चित्तौड़ अकबर के अधीन, चित्तौड़ के ३० हजार निर्दोष नागरिकों का अकबर ने सरे–आम कत्ल करवा दिया।

महाराणा उदयसिंह का राजधानी गोगून्दा में देहावसान व जगमाल को उत्तराधिकारी बनाना, पर मेवाड़ के सामन्तों द्वारा गोगून्दा की महादेव बावड़ी के निकट प्रताप का राजतिलक करना– फाल्गुनी पूर्णिमा (होली) क०यु० ४६७३ वि०सं० १६२८, २८ फरवरी सन् १५७२ ई०; कुम्भलगढ़ में राज्याभिषेक समारोह हुआ– ३ मार्च १५७२ ई०।

राणा जगमाल का मुगल अकबर का साथ पकड़ना। इसके कुछ ही समय पश्चात् प्रताप के संग विवाद कर राणा शक्ति सिंह का मुगल अकबर के दरबार में पहुँचना।

अकबर का दूत जलाल खाँ कोरची सन्धि– प्रस्ताव लेकर महाराणा प्रताप से मिलने आया। मार्गशीर्ष (अगहन) क०यु० ४६७४ वि०सं० १६२९, नवम्बर १५७२ ई० (कुछ के मत से अगस्त–सितम्बर १५७२ ई०)। अम्बर (ढूंढाढ़) के युवराज मानसिंह कछवाहा का प्रताप से वार्त्तालाप के लिए आना– चैत्र क०यु० ४६७५, वि०सं० १६३०, अप्रैल १५७३ ई०। ढूंढाढ़ (अम्बर) नरेश भगवन्तदास कछवाहा, अकबर के तीसरे दूत बनकर प्रताप से वार्त्ता करने आये– आश्विन में, सितम्बर १५७३ ई०, कार्तिक में, अक्टूबर १५७३ ई०– युवराज अमर सिंह को प्रताप ने वार्त्ता करने एवं थाह– पता करने मुगल दरबार भेजा; अमरसिंह के लौटने के पश्चात् चौथे दूत के रूप में सन्धि–वार्त्ता करने अकबर के दीवान (मन्त्री) राजा टोडरमल मेवाड़ आये, पौष क०यु० ४६७५, वि०सं० १६३०, दिसम्बर १५७३ ई०।

महाराणा प्रताप पर निर्गत डाक टिकट

राणा शक्तिसिंह की सुपुत्री एवं बीकानेर नरेश के भाई कवि पृथ्वीराज राठौर (अकबर के दरबारी कवि) की पत्नी किरण देवी उपनाम जयावती ने मीना बाजार (नौरोज मेला) में मुगल अकबर के कुत्सित प्रयास करने पर उसे पटककर छाती पर पाँव रख गले में कटार लगा दी; अकबर को माँ कहकर छुटकारा मिला और उसे नौरोज मीना बाजार मेला अब से न लगाने का वचन देना पड़ा। तब से नौरोज मेला बन्द हुआ

हल्दी घाटी युद्ध की तैयारी सन् १५७६ में मानसिंह ने मुगल फौज के साथ माँडलगढ़ में रहकर युद्ध की तैयारी की– १५ जून १५७६ ई० को गोगुन्दा पर मानसिंह का अधिकार हुआ।

हल्दी घाटी का प्रसिद्ध युद्ध प्रारम्भ– आषाढ़ कृष्ण ७, शुक्रवार, क०यु० ४६७८, वि०सं० १६३३ यानी १८ जून १५७६ ई०– युद्ध तीन माह तक चला। खमनोर की पहली लड़ाई में मुगल सेना भागी; पर पुनः दूसरी लड़ाई में मेवाड़ी सेना (राजपूती सेना) को पीछे हटना पड़ा, प्रताप को युद्ध से बाहर जाने के लिए बाध्य किया गया, सदरी के झाला सरदार मन्ना (मानसिंह झाला) का प्रताप का वेश बनाकर वीरगति प्राप्त करना, चेतक का बलिदान, शक्ति सिंह का प्रताप से पुनर्मिलन व आगे साथ निभाने का वचन, प्रताप का कोल्यारी प्रस्थान। गोगुन्दा में मुगल सेना की दुर्गति, मानसिंह तथा आसफ खाँ गोगुन्दा से भागे। प्रताप ने मुगलों द्वारा जीते क्षेत्र पर फिर अधिकार किया। महाराणा प्रताप की गोगुन्दा पर विजय सितम्बर १५७६ ई०।

महाराणा की कन्या चम्पा– बचपन में मरते समय चम्पा ने प्रताप से घुटने न टेकने और आजीवन संघर्ष करने का वचन लिया।

अकबर का मेवाड़ पर आक्रमण मार्गशीर्ष क०यु० ४६७८, वि०सं० १६३३, ११ अक्तूबर १५७६ ई०– विशाल सेना के साथ अकबर द्वारा कुछ क्षेत्र जीतना तथा नवम्बर १५७६ ई० में उदयपुर पर अधिकार।

भगवान सिंह (भगवन्तदास) एवं मानसिंह गोगुन्दा पर हमला– जुलाई १५७७ ई०।

अक्तूबर १५७७ ई० में प्रताप द्वारा मोही तथा अन्य मुगल थानों पर आक्रमण एवं विजय।

मार्गशीर्ष, क०यु० ४६७९, वि०सं० १६३४, १५ अक्तूबर १५७७ ई०– मुगल सेनापति शाहबाज खाँ का भारी सेना के साथ कुम्भलगढ़ पर आक्रमण, मेवाड़ी वीरों का साका एवं माण–सोनगरा का बलिदान, गढ़ की क्षत्राणियों का जौहर, अप्रैल १५७८ ई० में मुगलों की कुम्भलगढ़ पर विजय, तब शाहबाज खाँ वापस लौटा।

कलियुगाब्द ४६८०, वि०सं० १६३५, सन् १५७८ ई०– मेवाड़ के खजाँची भामाशाह कावड़िया चित्तौड़ के [illegible] के समय मेवाड़ का खजाना हाथियों पर लादकर

बाहर सुरक्षित निकल गये और प्रताप के संघर्ष काल में यही धन वे उन्हें उपलब्ध कराते रहे। प्रताप की आर्थिक कठिनाई बढ़ जाने पर भामाशाह ने सन् १५७८ ई० में अपना सर्वस्व प्रताप को सौंप दिया तथा भामाशाह ने मालवा पर आक्रमण किया और लूट का धन भी प्रताप को इसी वर्ष भेंट कर दिया। प्रताप ने उन्हें मेवाड़ का प्रधानमन्त्री बनाया। सन् १५७८ ई० में प्रताप की सेना डूँगरपुर, बाँसवाड़ा पर आक्रमण तथा नवम्बर १५७८ ई० में कुम्भलगढ़ पर प्रताप की पुनः विजय।

सन् १५७८ ई० में प्रताप का 'छप्पन' के राठौरों के विद्रोह को दबाना एवं चावण्ड को कुछ काल ठिकाना बनाना।

पौष क०युo ४६८०, वि०सं० १६३५, १५ दिसम्बर १५७८ ई०– विशाल सेना के साथ शाहबाज खाँ का दूसरी बार आक्रमण– प्रताप की पहाड़ियों में मोर्चेबन्दी; छापामार हमलों से त्रस्त हो शाहबाज खाँ को वापस लौटना पड़ा। एक वर्ष बाद सन् १५७९ ई० में शाहबाज खाँ का तीसरी बार आक्रमण; परन्तु सन् १५८० ई० में प्रताप की पुनः विजय और शाहबाज खाँ जो भागा तो पुनः लौटकर नहीं आया।

क०युo ४६८२, वि०सं० १६३७, सन् १५८० से क०युo ४६८६, वि०सं० १६४१, सन् १५८४ ई० के बीच प्रताप का मैदानी भाग के थाने उठाना और माँडलगढ़, चित्तौड़गढ़ तक आक्रमण करना। विजयदशमी क०युo ४६८४ ई० वि०सं० १६३९, अक्तूबर १५८२ ई०– प्रसिद्ध दिवेर युद्ध में अकबर का काका सुल्तान खाँ अमर सिंह के भाले से मारा गया, बहलोल खाँ को प्रताप ने एक ही वार से जिरह–बख्तर तथा घोड़े सहित चीर डाला, मुगलों की पराजय हुई, आसपास के सभी मुगल थानों पर प्रताप का अधिकार हुआ; मुगल सैनिक मृत्यु के भय से कुम्भलगढ़ छोड़कर भागे, प्रताप का इस दुर्गम दुर्ग पर पुनः अधिकार हुआ। पौष क०युo ४६८६, वि०सं० १६४१, दिसम्बर १५८४ ई० अकबर के आदेश पर मुगल सेनापति जगन्नाथ कछवाहा का मेवाड़ पर आक्रमण, प्रताप का छापामार युद्ध, मुगल सैनिकों की दुर्दशा, जगन्नाथ कछवाहा मात खाकर लौटा।

क०युo ४६८७, वि०सं० १६४२, सन् १५८५ ई०– 'छप्पन' के विद्रोही राठौर लूणा चावण्डिया को परास्त कर पूरे क्षेत्र पर प्रताप का अधिकार, चावण्ड को राजधानी बनाने पर विचार। सितम्बर १५८५ ई० में मुगल सेनापति जगन्नाथ कछवाहा का पुनः मेवाड़ (चावण्ड) पर आक्रमण; परन्तु मात खाकर लौटा। तब मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना का मेवाड़ पर आक्रमण व उसकी पराजय, प्रताप ने अमरसिंह द्वारा बन्दी बनाये गये मिर्जा की बेगमों एवं बच्चों को ससम्मान लौटाया (१५८५ ई०)। प्रताप द्वारा माँडलगढ़, (चित्तौड़गढ़) छोड़कर समस्त मेवाड़ पर विजय।

क०युo ४६८८, वि०सं० १६४३, सन् १५८६ ई० प्रताप ने चावण्ड को मेवाड़ की नई राजधानी बनाया। आगामी दस वर्षों में मेवाड़ को व्यवस्थित कर पुनः समृद्ध व शक्ति–सम्पन्न बनाया। मेवाड़ भारत की स्वाधीनता का केन्द्र बना रहा।

महाराणा प्रताप का स्वर्ग प्रस्थान– माघ शुक्ल ११, वि०सं० १६५४, क०युo ४६९९, माघ कृष्ण, वि०सं० १६५३, क०युo ४६९८, १९ जनवरी १५९७, ११ जनवरी १५९७, २९ जनवरी १५९६, २९ जनवरी १५९६, (इनमें से कौन–सी तिथि व दिनांक शुद्ध व सही है, इतिहासकारों को एकमत होकर प्रकट करना चाहिए)। चावण्ड से पूरब २ कि०मी० दूर बण्डोली ग्राम के समीप बहते नाले के त्रिवेणी संगम पर दाह–संस्कार हुआ।

महाराणा अमर सिंह ने सन् १६०८ ई० में दिवेर में तथा तीन वर्ष बाद १६११ ई० में खमनौर में मुगल जहाँगीर को पराजित किया। चित्तौड़गढ़ पर अधिकार पाया। माँडलगढ़ को महाराणा राजसिंह ने मुगलों से जीता।

महाराणा प्रताप के ठिकाने एवं राजधानियाँ– १. गोगुन्दा– उदयसिंह व प्रताप की राजधानी, उदयसिंह का निधन स्थल, जगमाल का उत्तराधिकारी घोषित होने का स्थान, प्रताप का गोगुन्दा के उत्तर में महादेव बावड़ी के समीप राजतिलक। २. कमलनाथ महादेव मन्दिर एवं आवरगढ़– चित्तौड़ से निकलने के पश्चात् उदयसिंह कुछ काल यहाँ रहे। हल्दी घाटी युद्ध के समय घायल प्रताप की शरण–स्थली एवं पश्चात् कई बार यह गढ़ ठिकाना बना। ३. मचीन्द– यह भी प्रताप का गढ़ रहा, युवराज अमरसिंह का पुत्र कर्ण सिंह यहीं पर हुआ था। युद्धाभ्यास–मैदान के दायीं ओर एक लम्बी सुरंग है, जो पश्चिम दिशा में ६–७ कि०मी० आगे निकलती है। मुगल आक्रमण के समय प्रताप साथियों सहित इस सुरंग द्वारा बच निकलते थे। ४. मायरा की गुफा– हल्दीघाटी में स्थित इस गुफा में देवी–स्थल है, सामने पानी का नाला है। प्रताप का यहाँ शस्त्रागार रहता था और संकटकाल में २०० लोगों के साथ यहाँ मन्त्रणा करते थे। ५. जावरमाला की पहाड़ीगुफा– छोटे–छोटे छिद्रों से हवा एवं प्रकाशयुक्त गुफा। छापामार युद्ध के समय प्रताप यहाँ अपने दो सौ अनुचरों के साथ विश्राम करते थे एवं मन्त्रणा करते थे। ६. राणा–महल व

(शेष पृष्ठ ६८ पर)

ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर

- डॉ० शैलेन्द्र नाथ कपूर

(प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)

वैदिक साहित्य में ज्योतिष–विद्या का नाम 'नक्षत्र–विद्या' मिलता है। चन्द्रमा जिस मार्ग से आकाश में भ्रमण करता है, उस मार्ग पर पड़नेवाले प्रमुख तारों को ज्योतिष में 'नक्षत्र' कहते हैं। २६ दिनों में चन्द्रमा २७ नक्षत्रों में गतिशील होता है। यजुर्वेद (३०.१०) में ज्योतिषी के लिए 'नक्षत्रदर्श' शब्द उल्लिखित है। वस्तुतः सप्ताह के सात दिनों का नामकरण प्राचीन भारतीय ज्योतिषाचार्यों की देन है। यह नामकरण ग्रहों के नाम पर आधारित है। पृथ्वी से ग्रहों की दूरी का क्रम चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु और शनि है। इनमें प्रत्येक चौथा ग्रह यदि क्रम से गिना जाय, तो वह दूसरे दिन का वार होता है। उदाहरणतः चन्द्रवार या सोमवार का चौथा मंगलवार, फिर मंगलवार का चौथा बुधवार आदि। वैदिक साहित्य में दिन एवं रात्रि को 'अहोरात्र' कहा गया है। एक दिन एवं एक रात में २४ होराएँ होती हैं। इसी से अंग्रेजी का 'आवर' शब्द बना प्रतीत होता है।

प्राचीन भारत के लब्धप्रतिष्ठ ज्योतिषाचार्यों में वराहमिहिर की गणना की जाती है। वे सूर्य देवता के अनन्य भक्त थे। ईरानी भाषा में सूर्यदेव को 'मिथ्रदेव' कहा गया है। इसी से 'मिहिर' शब्द बना है, जो उनके नामान्त का अंश है। ब्राह्मणों का एक कुल 'मग' कहलाता था, जो ईरानी मूल के सूर्योपासक थे। वराहमिहिर इसी मग कुल के थे। वराहमिहिर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की; किन्तु उनका ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ सूर्य–स्तुति से होता है। इसमें उन्होंने यह निर्धारित किया है कि सूर्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा मग करें। उनके पिता का नाम उनके ही एक ग्रन्थ बृहज्जातक में आदित्यदास मिलता है।

प्राचीन भारत में ज्योतिषशास्त्र के तीन अंग मान्य थे–

१. तन्त्र (गणित–ज्योतिष)
२. होरा (जन्म कुण्डली–विवाह, यात्रा आदि से सम्बन्धित फलित ज्योतिष)
३. संहिता (दैनन्दिन जीवन से सम्बन्धित फलित ज्योतिष)

आचार्य वराहमिहिर द्वारा रचित तन्त्र शाखा का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्चसिद्धान्तिका' है। इस ग्रन्थ में खगोल–विज्ञान सम्बन्धी पूर्ववर्ती पाँच सिद्धान्तों का विवरण मिलता है–

(१) पैतामह, (२) वसिष्ठ, (३) सौर, (४) पौलिश और (५) रोमक। इनमें पौलिश तथा रोमक विचारधाराओं का सम्बन्ध यवन देश (यूनान) से था। स्पष्ट है कि आचार्य को यूनानी ज्योतिष–विद्या का ज्ञान रहा होगा। उनके ग्रन्थों में कम–से–कम छत्तीस यूनानी शब्दों का उल्लेख मिलता है।

'पञ्चसिद्धान्तिका के त्रैलौक्य–संस्थान को वराहमिहिर का सर्वोच्च अनुसन्धान माना जा सकता है। इसमें ब्रह्माण्ड की रचना और उसके रूप, प्रतिष्ठा, आकर्षण–शक्ति, पृथ्वी का अक्ष–भ्रमण, सूर्य और चन्द्र का एक होना, चन्द्रमा की कलाओं का क्षीण और पूर्ण होना आदि अतिशय महत्त्वमयी बातों पर प्रकाश पड़ता है। लेखक के अनुसार–

'पञ्च महाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
रवेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो कृतः।।'

अर्थात् 'पृथ्वी पञ्चमहाभूतों से निर्मित है। यह तारागणों के पिंजरे में घिरी हुई वैसे ही अवस्थित है, जैसे आकाश में लोहा चुम्बकों के बीच में पड़ा हो।'

प्रस्तुत अंश से स्पष्ट है कि विद्वान् खगोल–शास्त्री को पृथ्वी का गोल होना, उसके ऊपर–नीचे बिना आधार का होना, ग्रहों की आकर्षण–शक्ति से उसकी प्रतिष्ठा आदि का सम्यक् ज्ञान था। 'पञ्चसिद्धान्तिका' में उल्लेख है कि 'ज्यों–ज्यों चन्द्रमा सूर्य से विमुख या सम्मुख होता है, त्यों ही त्यों उसका प्रकाशमय भाग घटता या बढ़ता है; जैसे घटका पश्चिम भाग मध्याह्न के उपरान्त अधिकाधिक प्रकाशित होता है।

वराहमिहिर ने अनेक खगोलशास्त्रियों का उल्लेख किया है। जैसे लाट, सिंह, प्रद्युम्न, विजयनन्दी एवं आर्यभट। इनमें आर्यभट के ही तीन ग्रन्थ, 'आर्यभटीयम्', 'दशगीतिकासूत्र' एवं 'आर्याष्टशतं' अब प्राप्य हैं। गणित में दशमलव पद्धति वस्तुतः आर्यभट की ही देन है।

ज्योतिष की 'होरा' शाखा के अन्तर्गत वराहमिहिर

ने निम्न ग्रन्थों की रचना की— (१) बृहज्जातक, (२) बृहद्विवाहपटल एवं (३) बृहद्यात्रा। इनके लघु संस्करण 'लघुजातक', 'स्वल्प–विवाह–पटल' एवं 'स्वल्प यात्रा' हैं। इनमें 'बृहज्जातक' एवं 'लघुजातक' ग्रन्थों को फलित ज्योतिष की दृष्टि से अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

ज्योतिष की संहिता शाखा की सर्वोत्कृष्ट कृति 'बृहत्संहिता' है। आचार्य वराहमिहिर इस ग्रन्थ की रचना करके अमर हो गये। ज्योतिष विद्या के इस महाकोष में उचित, अनुचित तथा शुभ–अशुभ व्यवहारों का विस्तृत वर्णन है। इसमें परम्परागत अन्धविश्वासों का भी उल्लेख मिलता है। आचार्य ने इसमें देश के सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की विवेचना के साथ–साथ भूगोल, स्थापत्य–कला एवं मूर्त्ति–कला पर अपनी सत्यान्वेषिणी शक्ति की सूर्य–रश्मि प्रस्तुत की है।

आचार्य वराहमिहिर के ग्रन्थों का प्रारम्भ सामान्यतः सूर्य की स्तुति से होता है। जिस प्रकार पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर पतञ्जलि का महाभाष्य महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार वराहमिहिर के ग्रन्थों पर दसवीं शती ई० के विद्वान् उत्पल (भटोत्पल) की टीकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। उत्पल द्वारा वर्णित अंशों से बृहत्संहिता के प्रति नयी दृष्टि मिलती है। उत्पल ने वराहमिहिर को 'महाग्रन्थाभीरु' तथा 'समासोक्तिप्रिय' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि वे किसी भी विषय के सम्बन्ध में अपने विचारों की अभिव्यक्ति में सन्तुलन रखते हुए उसका संक्षिप्त एवं सारगर्भित उत्तर प्रस्तुत करने के पक्षधर थे। संस्कृत, प्राकृत एवं ग्रीक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य का ज्योतिष–शास्त्र का अध्ययन अत्यन्त गहन था। उनके ग्रन्थों के अध्ययन से विदित होता है कि वे न केवल खगोल–शास्त्री एवं ज्योतिष की अन्य विधाओं में निष्णात थे; वरन् संस्कृत साहित्य के उच्चकोटि के कवि भी थे। साहित्य में अर्थालंकार के प्रयोग में वे सिद्धहस्त थे। सरल रीति से शुद्ध उत्तर प्रस्तुत करना महत्त्वपूर्ण कला है। इस कला में वराहमिहिर निपुण थे। उत्पल ने वराहमिहिर की प्रशंसा में उन्हें 'सूर्य के अवतार' की संज्ञा देते हुए लिखा है कि कलियुग में इस संसार में वे ज्योतिष–शास्त्र को उसके विनाश से बचाने के लिए अवतरित हुए—

'यच्छास्त्रं सविताचकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्यौतिषम्।
तस्योच्छित्तिभयात् पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।।

कालान्तर में अनेक विद्वानों ने वराहमिहिर के सम्बन्ध में इस उक्ति को अपने ग्रन्थों में उल्लिखित किया।

ग्यारहवीं शती ई० का अरब लेखक अल्बेरूनी वराहमिहिर के ज्योतिष–शास्त्र से अत्यधिक प्रभावित था। उसने लिखा है कि वराहमिहिर अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योतिषी थे, जिन्होंने स्पष्ट रूप से सत्य तथ्य प्रतिपादित किये। उसने बृहत्संहिता तथा लघुजातक ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया था। दुर्भाग्य से आज ये अनुवाद अनुपलब्ध हैं।

वराहमिहिर ने 'पञ्चसिद्धान्तिका' में शक काल ४२७ का उल्लेख किया है। यदि शक संवत् की गणना ७८ ई० मानकर की जाय, तो यह तिथि ५०५ ई० आती है। प्रस्तुत सन्दर्भ में लेखकों के मतों में भिन्नता है; किन्तु अधिकांश विद्वान् ५०५ ई० का समय प्रामाणिक मानते हैं। वराहमिहिर का नाम 'पञ्चतन्त्र' की प्रथम पुस्तक में मिलता है। कोलब्रुक के अनुसार वराहमिहिर ईरान के राजा खुसरू नौशेरवाँ के समकालीन अथवा उसके कुछ पूर्व हुए होंगे; क्योंकि ५३१–५७६ ई० के बीच शासन करने वाले इस राजा के समय सम्भवतः 'पञ्चतन्त्र' का पहलवी भाषा में अनुवाद किया गया था।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि यवन–ज्योतिष शास्त्र से प्रभावित आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थों के माध्यम से अपने समकालीन एवं भविष्य की पीढ़ी के निमित्त जो अमूल्य कोष दिया है; उसके समुचित अध्ययन एवं तदनुरूप किये गये व्यवहार से राष्ट्र, विज्ञान के विविध क्षेत्रों में प्रगति करता रहेगा। □

– 'सुरेन्द्रालय'
ए–३५४, इन्दिरा नगर, लखनऊ–२२६०१६

सूक्ष्मिकाएँ

– मिश्रीलाल जायसवाल

- उन पर
  रकम की
  हेरा–फेरी का
  आरोप
  है एक भ्रम,
  वे
  खुद हैं
  एक ऊँची रकम।

- पार्टी की
  गुत्थी
  सुलझाने के
  सभी ने
  इरादे जताये
  गुत्थम गुत्थी पर
  उतर आये।

– सुभाष चौक, कटनी (मं०प्र०)

वैभव और विपद्-कथा-'वन्देमातरम्' की

- देवदत्त

यह कथा है इतिहास के षड्यन्त्र की।
गाथा यही परतन्त्रता के अन्त की।।
यह व्यथा क्लीवों के प्रशासन तन्त्र की।
यह कथा वन्देमातरम् के मंच की।।

"वन्देमातरम् राष्ट्र की प्राणवायु के द्वारा प्रदत्त जागरण मन्त्र है। यह केवल भारतवर्ष ही नहीं अपितु समस्त एशिया का उद्‌बोधन है।"

– श्री अरविन्द

वन्देमातरम् का इतिहास इन अर्थों में तो परम प्राचीन है कि भारतवर्ष में राष्ट्र को माँ माना जाता है; किन्तु बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने १८६३ के जिस संन्यासी विद्रोह की पृष्ठभूमि में 'आनन्दमठ' उपन्यास लिखा था उसका घोष-वाक्य था 'ॐ वन्देमातरम्।' ढाका की रमना कालीबाड़ी के मराठी पुजारी भी इससे सुपरिचित थे। यह गान भी १८७५ के पूर्व आनन्दमठ के लिए नहीं, बल्कि उस दुर्गाष्टमी की रात्रि की अनुभूति की प्रेरणा से लिखा गया था, जब बंकिम को मृण्मयी मूर्त्ति में चिन्मयी भारतमाता के दर्शन हुए थे और बंकिम हो गये थे उपन्यासकार से ऋषि। उस रात्रि में उनके बड़े भाई संजीव चन्द्र पूजा मण्डप में थे। कीर्त्तनिया बलरामदास का पद "एसो एसो वधू एसो, आध आँचर वसो। नयन भरिया तो माय देखि" गान कर रहे थे, तभी उन्हें साक्षात्कार हुआ था– अनन्त अकूल अन्धकार में, अरुणोदय के समान, लोहितोज्ज्वल आलोक विकीर्ण हुआ। पहचाना, यही है जननी जन्म भूमि... मृण्मयी, अनन्त रत्नभूषिता, ...कालगर्भ निहिता, सर्व मंगला स्वदेश जननी। इसके पश्चात् ही बंकिम ने घोषणा की थी– "देश की माटी को माँ मानकर जो पूजा नहीं कर सकते वे मातृहीन हैं। मातृहीन का कोई देश नहीं होता।"

बंकिम द्वारा सम्पादित पत्रिका "बंगदर्शन" वर्ष ७, चैत्र संख्या में १८७५ में वन्देमातरम् का प्रकाशन हुआ था। प्रेस से रामचंद्र वन्द्योपाध्याय सामग्री कम होने के कारण जब माँगने आये, तो बंकिम ने हिचकिचाहट के साथ इसे रोक दिया था। बाद में वन्देमातरम् को 'आनन्दमठ' में ही उन्होंने सम्मिलित कर लिया था; किन्तु पाठकों की उदासीनता देखकर बंकिम ने काली प्रसन्न घोष को लिखा था– "मैं आनन्दमठ लिख कर क्या करूँगा और आप इसका मूल मन्त्र समझा कर क्या करेंगे? इस ईर्ष्यालु आत्मोदर परायण राष्ट्र की उन्नति नहीं होगी। इसलिए बोलिये– 'वन्दे उदरम्'। किन्तु मृत्युशय्या से अपनी पुत्री को उन्होंने कहा था– "देख लेना, बीस-तीस वर्ष बाद यही 'वन्देमातरम्' सारे देश के लोगों के हृदय-रक्त को खौला देगा।"

भट्टपाड़ा के श्रीराम न्यायवागीश से बंकिम ने संस्कृत पढ़ी थी। अतः उन्होंने वन्देमातरम् को संस्कृत बाङ्ला के चम्पू में लिखा था। राग मल्हार ताल कौव्वाली में धुन बनायी थी। भट्टपाड़ा के यदुनाथ भट्टाचार्य ने इसी बन्दिश में इसे गाया था। आनन्दमठ में 'वन्देमातरम्' का प्रथम पद सुनकर जब महेन्द्र कहते हैं कि यह तो माँ नहीं, तो भवानन्द वाल्मीकि का उदाहरण देते हैं– "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी..."

यह सत्य है कि बंकिम के जीवनकाल में 'वन्देमातरम्' चर्चित रहा था। उनकी मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् १८६४ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे स्वयं धुन बनाकर गाया था। इस धुन को वे बंकिम को सुनाकर आशीष प्राप्त कर चुके थे। राग था देस, ताल कौव्वाली। वे इसके प्रथम प्रशंसक और प्रसारक थे। दुर्भाग्य है कि उन्हीं के "जनगणमन" को वन्देमातरम् का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर राजनीतिक साजिश के तहत वरीयता दी गयी है।

वन्देमातरम् में प्राण-प्रतिष्ठा श्री अरविन्द ने की थी। उनका कथन था– "भागवत मुहूर्त्त में कोई गा उठा था वन्देमातरम्... एक दिन में सम्पूर्ण राष्ट्र स्वदेश-धर्म में धर्मान्तरित हो उठा। ...यह दर्शन जिस राष्ट्र के लिए हुआ था, उसे तब तक शान्ति और नींद नहीं है, जब तक मन्दिर का निर्माण और विग्रह की प्रतिष्ठा नहीं होती।"

अचानक सभी वन्देमातरम् की शक्ति से अभिभूत हो उठे। बंगाल के पूर्व गवर्नर लार्ड रोनाल्डशे ने कहा था– "वन्देमातरम् मूर्तिमन्त देशभक्ति है जैसे मार्सेइ जैसे गण प्रचलन के जयगीत ने फ्रान्स में राष्ट्रभक्ति का संचार

किया था।" रवीन्द्रनाथ इसे स्वदेश की आत्मा और केवल बंग माता की नहीं; अपितु विश्व माता की वन्दना मानते थे। राष्ट्र–पितामह ऋषि राजनारायण वसु ने तो इसका आंग्ल अनुवाद १८८८ में ही किया था।

बंग–भंग कालेज चौक में हुई विरोध सभा ७ अगस्त १६०५ को वन्देमातरम् के गायन तथा जयघोष से प्रारम्भ हुई थी। श्री अरविन्द अपने स्वभाव के अनुसार नेपथ्य से सभा का संचालन कर रहे थे। उन्होंने लिखा– "मन्त्र दे दिया गया और एक दिवस में ही समस्त जन राष्ट्रभक्ति के धर्म में दीक्षित हो गये।" कलकत्ता में ही मन्मथनाथ मित्र की अध्यक्षता और सुरेश चन्द्र समाजपति के मन्त्रित्व में गठित 'वन्देमातरम् सम्प्रदाय' के सदस्य रविवार को गायन करते हुए प्रभात फेरी निकालते थे, जिसमें सम्मिलित होते थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर और द्विजेन्द्र लाल राय जैसे कविर्मनीषी। १२ नवम्बर १६०५ को ढाका के मुख्य सचिव ने वन्देमातरम् के सार्वजनिक उच्चारण पर रोक लगा दी थी।

१४ अप्रैल १६०६ को बारीसाल में बंग प्रान्तीय कांग्रेस का अधिवेशन युद्ध घोषणा था। वन्देमातरम् प्रतिबन्धित हुआ और प्रतिवाद में प्रारम्भ हुआ सत्याग्रह। रक्त से भारतमाता की अर्चना इसी मन्त्र से प्रारम्भ हुई थी। वन्देमातरम् एक ही दिन में आसेतु–हिमाचल जन-जन के कण्ठ में आसीन हो गया था। इसी से प्रेरित होकर सुब्रह्मण्यम् भारती ने स्वदेश संगीत लिखा। के० कृष्ण स्वामी अयंगार ने वन्देमातरम् की हजारों प्रतियाँ वितरित कीं। लाला लाजपत राय और लोकमान्य तिलक ने वन्देमातरम् पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। श्री अरविन्द का वन्देमातरम् पत्र तो क्रान्ति का पाञ्चजन्य हो गया था।

वन्देमातरम् से भारत के वायसराय, तथा ढाका के नाम के नवाब समी उल्लाह खाँ को चिढ़ थी। राष्ट्रवादी धारा के समानान्तर पूर्व–शासकों की भाव धारा भी प्रवहमान थी। अतः सर सैयद अहमद खाँ लार्ड कर्जन की प्रेरणा से ढाका आये और नवाब को बंग–भंग का समर्थक बनाकर मुसलमानों को अंग्रेजों का समर्थन करने को प्रेरित किया। कांग्रेस भी तब स्वतन्त्रता की माँग करने में शर्माती थी। **२७ दिसम्बर १६०५ के कांग्रेस के वाराणसी अधिवेशन का प्रारम्भ होने के समय महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों ने जब वन्देमातरम् की माँग की तो सावधान पन्थी गोपाल कृष्ण गोखले तैयार नहीं थे; किन्तु प्रतिनिधि अड़े रहे और गोखले को हारकर सरला देवी चौधुरानी को वन्देमातरम् गायन के लिए बुलाना पड़ा। निर्देश दो पदों के गायन का था। यहीं पर सरला देवी ने मूल सप्तकोटि के स्थान पर त्रिंशकोटि का प्रयोग किया और रवीन्द्रनाथ की धुन में ही गाया था। जब वे दो पद गाकर रुक गयीं, तो समस्त प्रतिनिधियों की माँग पर अध्यक्ष गोखले को पूरे गायन की अनुमति देनी ही पड़ी। वन्देमातरम् के पश्चात् प्रतिनिधियों का चिन्तन और अधिवेशन का चरित्र कैसे बदला, इसका अलग इतिहास है। वन्देमातरम् के घोष के कारण ही डॉ० केशव बलिराम हेडगेवार को विद्यालय से निकाला गया था; किन्तु उन्होंने खेद प्रदर्शन नहीं किया था। वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य तभी प्रारम्भ हो गया था, जब १६०६ को राम पांयली के विजयादशमी उत्सव में डॉ० हेडगेवार ने वन्देमातरम् का उद्घोष किया था। नई भर्त्ती के कारण सेना में भी इसका प्रसार बढ़ा और यह अब यौगिक नहीं रूढ़ शब्द बन गया था। वन्देमातरम् का अर्थ था अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति।**

इतनी प्रसिद्धि के कारण १२ सितम्बर १६०६ को लन्दन की टाइम्स पत्रिका में प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ग्रियर्सन का मत छपा था कि हिन्दुओं में मातृभूमि की कल्पना असम्भव है। वन्देमातरम् अंग्रेज निधन हेतु काली की वन्दना है; किन्तु १३ सितम्बर को इसी पत्रिका ने सर हेनरी काटन का मत प्रकाशित किया कि यह मातृभूमि की वन्दना ही है। इन चर्चाओं में यथार्थ सामने आया कि वन्देमातरम् के समर्थन में हिन्दू समाज का बहुमत था किन्तु अब्दुल रसूल, खान बहादुर मुहम्मद यूसुफ या सैयद मेहताब हुसेन जैसे प्रखर राष्ट्रवादी मुसलमानों के पीछे बहुसंख्य मुस्लिम समाज नहीं था।

दिसम्बर १६०६ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वन्देमातरम् का गायन किया था। अध्यक्ष थे दादा भाई नौरोजी, जिन्होंने अध्यक्षीय भाषण में घोषित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य है पूर्ण स्वराज। गोखले ने इस घोषणा के विरोध में अधिवेशन का बहिष्कार किया था। कांग्रेस की नीति और आदर्श को लेकर यह द्वन्द्व १६०७ के अधिवेशन में संघर्ष के रूप में बदल गया था और कांग्रेस बँट गयी थी। इसके पश्चात् राष्ट्रवादियों का कांग्रेस में स्थान समाप्त हो गया।

१६०८ में जब विनायक दामोदर सावरकर ने १८५७

(शेष पृष्ठ ६९ पर)

प्राचीन भारत में भी होता था कुक्कुट-युद्ध

– डॉ० शिवनन्दन कपूर

['मुर्गा लड़ाना' मुस्लिम शासन–काल की देन है, इस बहु प्रचारित भ्रान्ति का निवारण प्रस्तुत लेख से हो जाता है। – सम्पादक]

प्राचीन भारत में जल–क्रीड़ा, संगीत समारोह, उद्यान–यात्रा (पिकनिक) तथा विभिन्न पशु–पक्षियों की लड़ाइयाँ प्रमुख मनोरंजन थे। इन सबमें कुक्कुट–युद्ध राजा वर्ग से लेकर सामान्य जन तक अतिप्रिय था। उद्यान–यात्राओं में, जिसमें नारियाँ भी रहतीं, इसका आयोजन अवश्य होता था (कादम्बरी)। स्त्रियों को भी इसमें आनन्द आता था। चन्द्रगुप्त मुर्गों की लड़ाई के लिए वार्षिक मेले का प्रबन्ध करता था। मुर्ग आदि पक्षियों एवं पशुओं की लड़ाई को "समाज" कहा जाता था। अहिंसा–प्रिय सम्राट् अशोक ने समाजों का प्रचलन बन्द कर दिया था।

कुक्कुट–युद्ध की प्राचीनता की पुष्टि तथा लोक–प्रियता का परिचय मोहन–जोदाड़ो से प्राप्त एक मुद्रा से भी होता है। उस पर दो लड़ते मुर्गे अंकित हैं। मुद्रा पर भी उक्त क्रीड़ा का अंकन रुचि, प्रचलन तथा मान्यता का परिचायक है। बौद्ध–ग्रन्थ "दीर्घनिकाय" में भी इसका उल्लेख है। विरागी तथा घर–फोड़ कहे जाने वाले नारद जी भी इसमें रस लेते थे–

लावकतित्तिरकुक्कुटमेषैर्महिषैश्च या रणक्रीड़ाः।
दुहिणाच्युत कलियोनेस्ताः प्रीत्यैनारदस्य मुनेः।।

केवल उद्यान–यात्राओं में ही नहीं सौदागरों के पड़ाव के पास, सार्वजनिक स्थानों पर तथा राजा के आगमन से पूर्व राज–सभा में सभासद भी अन्य जनों की तरह मुर्गे लड़ा कर मनोरंजन करते थे। "हर्ष–चरित" में ऐसे प्रसंगों का उल्लेख वाण ने किया है। इस जन–प्रियता के कारण उस समय की वेश्याओं को भी इसका शिक्षण लेना पड़ता था। 'काम–शास्त्र' के प्रणेता आचार्य वात्स्यायन ने नागरिकों को भोजन के बाद कुक्कुट–युद्ध से मन बहलाने की मन्त्रणा दी है। इसी आकर्षण के कारण वराहमिहिर ने कुक्कुट को शकुन–सूचक पक्षियों में गिना डाला।

जहाँ भी कुक्कुट–युद्ध आयोजित होता, अच्छी भीड़ जमा हो जाती। जब राजा इसकी व्यवस्था करता, तो उच्च–वर्ग तथा राज–परिवार के बैठने का स्थान निश्चित रहता था। प्रायः ऐसे अवसरों पर दो दल हो जाते थे। वे अपने–अपने मुर्गे को बढ़ावा देते थे। बाजियाँ भी लगती थीं।

बाजी लगा कर जो क्रीड़ाएँ होती थीं, उसे "समाह्वय" कहा जाता था। उद्यान–यात्राओं में "समाह्वय" अवश्य होता। मुर्ग लड़ाना भी एक कला मानी जाती थी। वात्स्यायन ने "काम–सूत्र" में इसकी गणना चौंसठ कलाओं में की है। वेश्याओं ही नहीं, राज–पुत्रों को भी अन्यान्य विद्याओं के साथ मुर्ग लड़ाना भी सीखना पड़ता था। इसका उदाहरण "दशकुमारचरित" है। प्रमति नामक राज–पुत्र अपनी यात्रा में व्यापारियों के एक सार्थवाह से मिलता है। उनके पड़ाव पर मुर्गों की लड़ाई के कारण बड़ा कोलाहल हो रहा था। वह राजपुत्र भी दर्शकों में सम्मिलित हो गया। कुछ विचार कर वह मुस्काया। पास के वृद्ध ब्राह्मण के पूछने पर उसने कहा, "कहाँ यह पूरब का "नालिकेर" कुक्कुट और कहाँ वह पछाँह का 'बलाका' मुर्ग। यह बलाका शक्ति तथा आकार में बला का है।" ब्राह्मण बोला, "इन मूर्खों को यह कौन बताये ? चुपचाप तमाशा देखिये," दोनों मुर्ग लड़ रहे थे। उभय पक्ष में जोश था। ज्यों ही कोई मुर्ग चोट देता, उसके पक्ष के लोग वाह–वाह कर उठते। अन्त में वह प्रतीच्य बलाका मुर्ग जीत गया। राज–पुत्र मुर्ग की जातियों से भी परिचित थे।"

पूर्वकाल में राजाओं के यहाँ उत्तम नस्ल के मुर्ग पाले जाते थे। विशेषज्ञों पर उनके भोजन, जल तथा अन्य देख–रेख का भार रहता था। उनके निरीक्षण में, उन्हें नमक मिले कीचड़ में लड़ने की शिक्षा दी जाती थी। राजा तथा रानियों के अपने मुर्ग होते थे। उनकी लड़ाई विशेष समारोह से होती थी। उनके युद्ध की सूचना ध्वज फहरा कर अथवा उद्‌घोषणा से दी जाती थी। सभी को

उसे देखने का अवसर मिलता। शनिवार की रात में धरती स्वच्छ कर, गोबर से लीपकर, उस पर चावल के आटे या शंख-चूर्ण का "रतिमण्डल" (छोटा सा ऊँचा अखाड़ा) बनाया जाता। फिर मंत्रों से देवियों का आवाहन होता। 'रति-मण्डल' के समीप मोक्षक (रेफ्री) नियुक्त होता था। मोक्षक मंत्र पढ़कर विजयी मुर्ग को मंच पर बुलाता। गरुड़ का ध्यान कर, वह उस मुर्ग की विशेषता बताता था। विजयी मुर्ग की चूड़ा पर नजर बचाने के लिए काजल लगाया जाता था। फिर अन्य प्रतिद्वन्द्वी मुर्ग बुलाकर युद्ध प्रारम्भ किया जाता। ये आयोजन कार्त्तिक से फाल्गुन तक चलते थे। प्रातः से खिला-पिला कर तैयार किये मुर्ग एक-दूसरे पर पिल पड़ते थे। अन्त में विजयी दल पराजित का ध्वज छीन लेता था। इस अवसर पर उत्साह-वृद्धि हेतु वादक तथा नर्त्तक भी विद्यमान रहते थे।

इस युद्ध का एक रूप और था। मुर्गों की लड़ाई के लिए एक अखाड़ा बनाया जाता। उस पर एक वेदिका रहती। वेदिका पर स्थित सिंहासन पर राजा बैठता। अंग-रक्षक निकट रहते। कभी-कभी अन्तःपुर की नारियाँ भी इस समारोह का आनन्द लेने आती थीं। मुर्गों की टाँगों में छोटी-छोटी छुरियाँ बँधी रहती थीं। जो मुर्ग अपने विरोधी की कोई शिरा काट देता, वह विजयी माना जाता था। इन लड़न्त मुर्गों में से यदि कोई मैदान छोड़कर भाग निकले या मर जाये, तो अशुभ लक्षण माना जाता था। इसमें भी विजयी दल परास्त समूह का ध्वज छीन लेता था।

दक्षिण भारत में मुर्गों की लड़ाई में "त्रिपदी" की प्रथा प्रचलित थी। इसमें पराजित मुर्ग का स्वामी विजयी मुर्ग के अधिकारी को अपनी पीठ पर चढ़ाता था। फिर उसे संगीत की ताल पर त्रिपद अर्थात् तीन डग चलने पड़ते थे। इसके पश्चात् विजयी मुर्ग को हाथी पर बिठा कर समस्त नगर में उसकी शोभा-यात्रा निकाली जाती थी। उत्साहभरी जनता स्थान-स्थान पर कोलाहल करती उस शोभा-यात्रा का स्वागत करती थी। नर्त्तक वाद्य की लय पर नृत्य करते चलते थे। जगह-जगह विजयी मुर्ग पर पुष्प-वृष्टि की जाती थी।

इन मुर्गों को पाँच सोमवारों तक तैयार कराकर, छठे सोमवार को लड़ाया जाता था। उस दिन उसे सुनहरे धागे से बुना वस्त्र तथा मालाएँ पहनायीं जाती थीं। अधिक से अधिक बारह बार युद्ध होता था। युद्ध की समाप्ति पर दोनों पक्ष ताम्बूल, चन्दन, पुष्प, वस्त्र आदि द्वारा एक-दूसरे की अभ्यर्थना करते थे। परस्पर बाहु, ललाट, वक्ष आदि पर कुंकुम-चूर्ण से कुक्कुट की छाप वाली मुद्राएँ अंकित की जाती थीं।

"मानसोल्लास" में इन्हें लड़ाने से पूर्व इनकी जाति, आकार, पोषण, रूप, शकुन, आयोधन-प्रकार, व्यवस्था आदि पर विचार कर लेना आवश्यक बताया है। इस ग्रन्थ में इनकी शंख, गृध्र, अंशु, नार, तेग, श्रोणि, सर्प, कूर्म आदि अनेक अद्भुत जातियों का उल्लेख है। इन्हें भात में दही, घी आदि अँगूठे से मसल कर, आँवले बराबर ग्रास बनाकर खिलाया जाता था। इसके साथ शीतल जल पिलाने एवं गरम पानी से धोने का विधान है। मुख तथा चोटी पर नमक मिली मिट्टी लगायी जाती थी। धूल भरे स्थान में क्रीड़ा करने के बाद उन्हें अलग-अलग दरबों में बन्द कर दिया जाता था। संध्या समय पुनः उनके मुख, जाँघों तथा तलवों में तेल लगाया जाता। कुछ ऐसे शकुन भी बताये गये हैं, जिनके घटित होने पर उस मुर्ग की विजय निश्चित मानी जाती थी। यथा- यदि मुर्ग दरबे में दक्षिण की ओर घूम कर, पूँछ को कली जैसा बना कर, बाघ की चाल चलता है, तो निश्चय ही विजयी होगा।

मुगल-काल में भी सामान्य जनता, धनिकों तथा नवाबों में मुर्ग लड़ाने का शौक रहा। धीरे-धीरे यह सर्व-साधारण तक सीमित हो गया। भारत के कई भागों में आज भी इसकी लड़ाई प्रचलित है। प्राचीन परम्परा का पालन करते हुए, अब भी उनके पैरों में नन्ही छुरियाँ बाँधी जाती हैं। ३० दिसम्बर ५६ को इस मुर्ग-युद्ध के प्रकरण में झरिया में एक दुर्घटना हो गयी थी। हजारों ग्रामवासी उसे देखने एकत्र थे। युद्ध के बीच एक मुर्ग अपने स्वामी के पास शरण लेने आया। विजयी मुर्ग ने झपट्टा मारा, तो पराजित मुर्ग के साथ उसका स्वामी भी घायल हो गया। अन्त में उसकी मृत्यु हो गयी।

भारत ही नहीं, यूनान, रोम, चीन, मलाया, ईरान आदि में भी यह शौक प्रचलित था। यूनान में इसका प्रचार थेमिस्टोकिल्स के समय से हुआ। इसके प्रचलन की कथा अद्भुत है। थेमिस्टोकिल्स ने ईरान पर आक्रमण किया। मार्ग में दो मुर्गों की लड़ाई में उसे इतना आकर्षित किया कि वह सेना सहित रुक गया। उसने कहा, "इन मुर्गों जैसी तल्लीनता से हम लड़ें तो अजेय हो जाएँ। सैनिकों ने मुर्गों की लड़ाई से प्रेरणा ली तथा विजयी हुए। परिणामतः मुर्गों के युद्ध ने धार्मिक तथा राष्ट्रीय रूप ले लिया।"

रोम में इसका प्रचार एथेन्स से हुआ। रोमवासी

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

मलयालम-विनोद

जब दूसरे खूँटे से बाँधा गया

-वेलूर कृष्णन कुट्टी

(बांग्ला और तेलुगु साहित्य की बानगी पिछले अंकों में दी जा चुकी है। इस बार मलयालम व्यंग्य की एक रचना। – सं०)

मैं मर नहीं पाया, इसके दण्डस्वरूप घरवालों ने पुनः उस पब्लिक परीक्षा में बैठने की आज्ञा सुनायी। एक ही विषय में बार–बार अनुत्तीर्ण होनेवाले को सरकार की तरफ से कुछ ग्रैंट देने की योजना हो, तो उसके लिए प्रार्थना–पत्र भेजने की ताक में बैठा था मैं। कॉपियाँ लिख–लिखकर मेरा हाथ ऐंठ चुका था। सम्भवतः कोट्टयम् और मेरी जन्मराशि में मेल न होने के कारण ही बार–बार परीक्षा में हार खानी पड़ी रही है, यह सोच कर इस बार मैंने तिरुवन्नतपुरम् को परीक्षा केन्द्र चुना, जैसे कि वंध्या गाय के खूँटा बदल कर बाँधने की प्रथा है।

इस बार खूब तैयारी करने की प्रेरणा मिली। परीक्षा–शुल्क भरने के पहले ही माँ ने, इस सितम्बर की परीक्षा में उत्तीर्ण होनेपर तुरन्त शादी करा देने का आश्वासन दे दिया था। वह भी ऐसी–वैसी लड़की से नहीं, नारंगी के समान मृदुल कोमल और सुन्दर, दूर के रिश्ते की सत्रह वर्षीया किशीरी के साथ! साइकिल, घड़ी, पार्कर पेन आदि दिला देने के माताजी के पूर्व प्रलोभनों को भी मेरी पराजय के सामने मुँह की खानी पड़ी थी, तभी तो माताजी को यह नयी युक्ति सूझ पड़ी। पहले ही यह प्रलोभन मिला होता तो कभी का मैं उत्तीर्ण हुआ होता। गणित (कणक्कु) और विवाह (कल्याणम्) में प्रथमाक्षर प्रास के अतिरिक्त भी कोई सम्बन्ध है कि नहीं, कौन जाने।

पहले की परीक्षाओं के प्रश्न–पत्रों का ढेर, स्थानीय गंजे सिरवाले व्यापारी को बेच कर ही परीक्षा–शुल्क भरा था। थोड़े पैसे की जो कमी रही, उसे अपनी ओर से पूरा किया था।

एक मंगलवार को थी परीक्षा। राहुकाल के पहले ही तिरुवनन्तपुरम् को रवाना हुआ। कई दिनों की नींद हराम करके तथा मस्तिष्क पर खूब दबाव डालकर गणित याद कर चुका था। कितना ही सम्भाल कर रखने पर भी, स्मृति का बन्धन तोड़कर खिसक जानेवाला नमकहराम है 'अलजिब्रा'। उसका नाम सुनते ही भय तथा जीब्रा के वंश के किसी जानवर की प्रतीति मन में होती है। पाँव तले तथा हथेलियों में अलग–अलग किस्म के प्रश्नों के फार्मुले लिख रखे थे। कमीज़ की आस्तीनों के मोड़ों पर चार प्रकार के गणित के प्रश्नों के नमूने छिपा रखे थे।

निरीक्षकों की गिद्ध दृष्टि पड़ जाने पर इन कागज़ के पर्चों को चबा जाने का विचार था। पकड़ा गया तो प्रधान निरीक्षक से यह कहता कि निरीक्षक महोदय मुझे पहले से बुरा मानते हैं, इस प्रकार सम्भावित शादी का कल्पना–सुख भोगता हुआ तथा सौ–सौ विचारों में डूबता–उतरता और दाहिना कदम रखता हुआ मैं परीक्षा–भवन में प्रविष्ट हुआ। फिर भी जेल तोड़ भागने पर दुबारा पकड़कर इंस्पेक्टर साहब के सामने पेश किये गये किसी कैदी के समान कँपकँपी तथा भय मुझे खा रहा था।

दूसरी घंटी बजते ही निरीक्षक महोदय ने नीले रंग का प्रश्न–पत्र मेरी तरफ बढ़ाया। तत्प अंगार के समान मैंने उसे अपने हाथ में लिया। किसी सभा में लेख पढ़ने के लिए खड़ी महिला के जैसा मैं और मेरे हाथ में वह प्रश्नपत्र काँप उठा।

'गणित पेपर – १' शीर्षक ही प्रथम दर्शन में पढ़ सका। शेष सब धुआँ–सा लगा।

इस बीच एक दूसरे धर्मसंकट में मैं फँस गया। मेरा निरीक्षक ऐंची आँखों वाला था। आस्तीनों के मोड़ पर प्रेम–पत्रों के समान दम साधे बैठनेवाले कागजों का प्रयोग इस निरीक्षक के नेत्रों पर आधारित था। एक–दो परीक्षणों के बाद भी मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि निरीक्षक की दृष्टि के किस कोण में आने पर उसकी गिद्ध दृष्टि का शिकार बनूँगा।

मैंने फिर प्रश्नपत्र पर दृष्टि डाली। पहली घबराहट के ज़रा शान्त होते ही उसमें इधर–उधर कुछ अक्षर उभर आने लगे। कागज़ को उलट–पलट कर देखा। पुल पर खड़े होकर सागर की अतल गहराई की ओर देखनेवाले का भय एवं आशंका मुझे सता रही थी। तभी शादी की बात मस्तिष्क में कौंध उठी। कैसे भी हो, उत्तीर्णांक पाने ही हैं, साहस बटोर कर दुबारा प्रश्न–पत्र पर दृष्टि गड़ा

दी।

प्रश्न–पत्र के मुखपृष्ठ पर नज़दीक के दो–दो खूँटों पर 'अलजिब्रा' को बाँधकर अपशकुन कराया गया था। किसी साहित्यकार के कमरे में फैले कूड़े–करकट की नाईं बिना किसी क्रम के, कुछ अक्षर, कुछ चिह्न और कुछ संख्याएँ इधर–उधर बिखरी हुई थीं। उन्हें देखते ही शरीर शिथिल पड़ने लगा। एक बार उलट–पलट कर पूरा छान लिया। इधर–उधर देख कुछ रेखाएँ भी खींचीं।

अन्धे ने चोर पकड़ा, वाली बात थी। फिर भी मन में ठान लिया कि कोई प्रश्न छूटने न पाए। पृष्ठ पलटा तो देखा– तीन अंकों का एक प्रश्न। कहीं के किसी मकान का 'प्लान' देकर पूछा गया था कि उसके निर्माण में कितनी ईंटें लगेंगी। मकान की लम्बाई–चौड़ाई सब दी गयी थी। प्रश्न पढ़ते ही कुछ ऐसा लगा कि जैसे मेरे द्वारा ईंटों की संख्या बताने पर ही मकान बन पाएगा! खैर, उत्तर माँगे जाने पर न देना अनुचित है, यह सोचकर मैंने एक उत्तर दे ही दिया। यह दूसरी बात है कि मेरे उत्तर के मुताबिक ईंटें खरीदी जाने पर मकान के दो–तीन कमरे अधूरे रह जाते।

वाह! दूसरे पृष्ठ के नीचे एक कोने पर पाँच अंकों का एक प्रश्न सोया पड़ा है।

मरने से पूर्व किसी शख्स ने एक 'विल' लिखा था। उसकी गर्भवती स्त्री के बच्चा होने पर सम्पत्ति का ३/५ भाग और बच्ची होने पर बच्चे की अपेक्षा १/४ भाग अधिक और शेष भाग पत्नी को प्राप्त होगा। परं पत्नी ने एक ही प्रसव में एक बच्चे तथा एक बच्ची को जन्म दिया तो संपत्ति का बँटवारा कैसे किया जाए?

प्रश्न पढ़ते ही शादी की सम्भावना समाप्त–सी लगी। सोचो तो सही, ऐसे प्रश्नों का क्या समाधान देंगे? जब कोट्टयम् केन्द्र से परीक्षा दे रहा था, तब ऐसी गड़बड़ियाँ नहीं थीं, यह शायद तिरुवनंतपुरम् का फैशन होगा!

प्रश्न पढ़ते समय मेरे मन में एक ही प्रश्न बार–बार उठता रहा कि चार अन्य भले मानसों के जैसे यह भी शान्ति से क्यों नहीं मरा? ऐसी हरकत की उसे क्या पड़ी थी? वह अभागा तो खतम हुआ, पर और लोग चैन की नींद नहीं ले पाते।

जनतन्त्र शासन प्रथम बार इस देश में कायम हुआ है। अधिकारी लोग ऐसे प्रश्नों की जाँच–पड़ताल नहीं करते।

इस प्रश्न से मूँड मारते एक घंटा बीत गया। बीच–बीच में माता का शादी करा देने का वायदा मेरे मस्तिष्क में कीड़े के समान रेंगता। प्रश्न हल करने के लाख प्रयत्न किये, पर किसी भाँति हल नहीं हो पा रहा। उस स्त्री ने मात्र बच्चे को जन्म दिया होता तो प्रश्न किसी प्रकार हल हो जाता। पर यहाँ एक प्रसव में सन्तान हैं दो।

उसकी प्रसव–पीड़ा से अधिक पीड़ा प्रश्न–पत्र के सामने बैठे मुझे अनुभव हो रही थी। मृत पति की अपेक्षा उस स्त्री के प्रति अधिक ईर्ष्या अनुभव होने लगी। मैं मानता हूँ, स्त्री नियमानुसार प्रसव का अधिकार रखती है। वह इच्छानुसार दस क्यों, सौ बार सन्तान को जन्म दे, कौन पूछता? किन्तु उसने क्यों जुड़वे को जन्म दिया? अगर गलती से ऐसा हुआ तो क्यों न एक ही प्रकार की सन्तानों को जन्म दिया? तब भी किसी न किसी प्रकार इस प्रश्न का हल हो सकता था। सम्भवतः 'विल' लिखते समय उस बेचारे में मन में पत्नी के द्वारा ऐसा अपराध होने की आशा न रही होगी। कुछ भी हो, उसका यह 'विल' लिखना, उसकी मृत्यु, स्त्री का यह प्रसव, सब मेरे भाग्यदोष के लिए हुआ। यह सब देखने–सुनने के पहले ही उसकी साँस का निकल जाना भी अच्छा ही हुआ।

मैंने जो फार्मुले लिख रखे थे, उनमें कहीं भी प्रसव का फार्मुला नहीं था। इसलिए उस प्रश्न से किसी न किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाकर लेना ही उचित समझा। पश्चिम की ओर नब्बे डिग्री में स्थित अध्यापक की आँख उत्तर की अक्षांश रेखा साढ़े तेईस पर कार्यरत थी। आस–पास परीक्षार्थियों की उत्तर–पुस्तिकाओं पर सिर टेढ़ा करके वह कौए के समान देख रहा था। सब बदमाश तमिल में प्रश्न हल कर रहे थे।

अगले प्रश्न पर मेरी दृष्टि पड़ी। तवे से निकालकर चूल्हे में पैर रखने का अनुभव था। प्रश्न कुछ इस प्रकार का था– साढ़े चार फुट लम्बा बीस वर्षीय एक युवा प्रतिवर्ष डेढ़ इंच बढ़ता है। उसके अब के सिर के स्थान पर उसका गला किस वर्ष पहुँच पाएगा। गले तथा कन्धे की दूरी दी गयी है। प्रश्न जरा परेशान करनेवाला था। आगे का प्रश्न लड़कों को काला बाजारी सिखाने वाला था। एक दूधवाले के दूध में पानी मिलाने की अपख्याति का सवाल था।

यह प्रश्न कैसे भी हल हो जाता था, पर दूधवाले तथा दूध आदि के स्थान पर निर्लज्ज अंग्रेजी अक्षर छाती ताने खड़े थे। 'अलजिब्रा' का ही वंशज था।

कुछ भी हो, शादी बड़ी गड़बड़ में थी। मलयालम विषय लेकर एम.ए. करके कालेज में प्राध्यापक बनने का मोहक संकल्प रखनेवाले, मुझे ये प्रश्न हल करने पर ही आगे बढ़ने देंगे।

मैं पुनः प्रश्न–पत्र के उस प्रसव–वार्ड में प्रविष्ट

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

आजादी के दीवाने सरदार नन्दसिंह

कनकाँदियाँ फसलाँ पाकियाँ ने...

– वागीश

उसको पंजाब के, खासकर तरनतारन के लोग कभी का भूल चुके। कारण, वह था एक गरीब आदमी। और यह गरीबी उसने खुद ही तो अपने गले लगा रखी थी। वह खासी मजदूरी कर लेता था, मिस्त्री था। चाहता तो उसे कभी रोटी–कपड़े की तो कमी रहती नहीं, लेकिन उसे एक ख़ब्त सवार था– एक सनक उसके श्रमिक–जीवन में समा गई थी जिसके कारण उसका बहुत–सा समय रोजी–रोटी के अलावा अन्य कामों में खर्च हो जाता था। वह काम था देश की आजादी के लिए प्रचार– पूरा पूरा दिन और कभी–कभी रात तक वह इसी खब्त में खपा करता था। उसका नाम था सरदार नन्दसिंह। रहने वाला था पंजाब के पलासौर ग्राम का। तरनतारन के ही पास था यह गाँव। बहुत छोटी उम्र से वह मेहनत–मजदूरी करके अपनी रोजी कमाने लगा था। लेकिन दूसरे तमाम लोगों की तरह वह बड़े होकर सिर्फ खाने, कमाने को ही जिन्दगी न समझ सका बल्कि जाने कहाँ से उसकी उस मजदूर जिन्दगी में एक यह सनक या लगन प्रवेश कर गयी कि देश गुलाम है, अंग्रेज इसे लूट रहे हैं– तबाह, बरबाद कर रहे हैं और यह हमारा सबका पहला फर्ज है कि हम इन अंग्रेजों को जैसे भी हो देश से बाहर निकाल दें, आजाद करायें हिन्दुस्तान को। अंग्रेजों ने पंजाब में मार्शल लॉ लागू किया तो सरदार नन्दसिंह अपनी मजदूरी के काम में हर्जा करके दिन–दिनभर डुग्गी पीट–पीटकर तरनतारन शहर के लोगों को हड़ताल कर देने के लिए उकसाता फिरा। इसके कारण उसे पकड़कर बन्द भी किया गया। यातनाएँ दी गईं। मारा–पीटा गया लेकिन सरदार नन्दसिंह ने हड़ताल के लिए फिर भी डुग्गी पीटना जारी रखा। वह थाने से छूटते ही शहर में फिर से वही एलान करता फिरा– अपनी मजदूरी, मिस्त्रीगीरी के काम पर नहीं गया। और उसकी वह डुग्गी भी क्या थी! था वह सिर्फ एक पुराना टूटा कनस्तर। वही कनस्तर बजा–बजाकर वह तरनतारन के हर गली, चौराहे, सड़क पर घूम–घूमकर जनता को अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ हड़ताल करने की नसीहत करता घूमता। पता नहीं, ऐसा करने के लिए नन्दसिंह से किसी नेता ने कहा भी था या नहीं। नन्दसिंह प्रायः अकेला ही नजर आता था इस काम में। कारण, उन दिनों लोग ऐसी देशभक्ति के शौक से दूर ही रहते थे। समझते थे, कौन अंग्रेजों की खिलाफत करके सांसत–मुसीबत मोल ले, लेकिन नन्दसिंह ने हमेशा यह जिल्लत अपने जीवन में पाल रखी। उसका मुख्य काम, जीवनोद्देश्य जैसे एक यही हो– आजादी, भारत को आजाद कराना। कभी–कभी लोग उसका मजाक उड़ाते। कहते, "नन्दसिंह! क्यों दीवाना हो रहा है। न तेरे तन पर कभी सलीके के कपड़े होते हैं, न घर में सेर भर आटा दूसरे दिन के लिए। क्या तेरे कनस्तर पीटने से आजादी दौड़ी चली आयेगी?"

नन्दसिंह कहता, जरूर आयेगी। हिन्दुस्तान एक दिन इसी तरह आजाद होकर रहेगा। याराँ! कुछ करो भी। सिर्फ बक–बक ही करोगे या कुछ 'करम' भी करोगे। कुछ सेवा भी तो करो मुल्क की।"

पर क्या सेवा करें! यह नन्दसिंह न समझा पाता उन्हें, न वे खुद समझ पाते या हो सकता है– वे न समझने का महज झूठा बहाना ही करते हों। निष्क्रियता हजार बहाने ढूँढ लेती है।

फिर एक दिन बैसाखी का पर्व आया। तमाम यात्री अमृतसर की यात्रा पर चल पड़े पर्व मनाने। स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, जवान। गाते–बजाते गाँवों में बैसाखी का समाँ बँध गया। नाचने–गाने का रंग किसानों ने जमा लिया। लोग भांगड़ा नृत्य करते हुए गाते,

"कनकांदियाँ फसलाँ पकाँकियाँ ने,
जट पैली दे विच गजदाये।
पकवान पकाँदियाँ जटियाँ ने,
वा दाता वै रब जी।।"

–अर्थात् "गेहूँ (कनक) की फसलें पक गईं, किसान अपने खेतों में झूमते–गाते उसे काट रहे हैं और घरों में किसानों की पत्नियाँ (जटियाँ) बढ़िया–बढ़िया पकवान बनाने में व्यस्त हैं। हे रब जी (भगवान)! तेरी कृपा से ये दिन देखने नसीब हुए।

पंजाब में गेहूँ की फसल की पहली कटाई का यह गीत खेत–दर–खेत और घर–घर गूँज उठा था। दीवाना–मस्ताना नन्दसिंह भी गाता फिरा था यह फसल–गीत और अमृतसर के एक बाग, जलियावाला बाग में लोगों को सभा के लिए इकट्ठे होने के लिए अपना वही पुराना–टुटहा कनस्तर बजा–बजाकर उकसाता रहा

था।

और उस दिन सभा में खासी भीड़ उमड़ पड़ी थी। जलियाँवाला बाग में। और फिर गोरों ने मशीनगनों से उस भीड़ को भून दिया था। हजारों लोग हताहत हुए थे। नन्दसिंह भी लहूलुहान हो गया था और भला कनस्तर बजा–बजाकर लोगों को जलियाँवाला बाग में बुलाने वाला नन्दसिंह खुद उस सभा में कैसे न जाता! लेकिन वाद में किसी ने न जाना कि मिस्त्री सरदार नन्दसिंह कहाँ गया, क्या हुआ उसका? वह मर गया या जेल में डाल दिया गया। या जेल में ही मरा वह? उसकी खोज खबर लेने वाला था ही कौन? हाँ, उस दिन लाशों के बीच उसका वह पुराना टुटहा कनस्तर भी खून से रंगा वहीं छूट गया था। और वह कनस्तर नन्दसिंह के खून से ही रंग गया था। इतना पता चला था कि उसका एक हाथ गोली लगने से काट दिया गया था। अगर नन्दसिंह तरनतारन से अंग्रेजों द्वारा निर्वासन पाकर कहीं जिन्दा बचा होगा, तो तय है कि उसे कोई कभी 'स्वतन्त्रता–सेनानी' न मानेगा, न उसे कोई ताम्रपत्र या पेन्शन ही मिली होगी जबकि यह एक सच है कि सरदार नन्दसिंह के उस कनस्तर की करामात से कई लोग जोश में आकर, प्रेरणा पाकर जेल तक पहुँच गये। फिर आजादी आने पर मंत्री–मुख्यमंत्री तक हो गये। अगर अज्ञात रह गया इतिहास में तो वह सरदार नन्दसिंह मिस्त्री ही था। ❐

(पृष्ठ ३० का शेष) **जब दूसरे खूँटे से...**

हुआ। वह स्त्री तथा दोनों सन्तान पूर्ववत् स्वर्ग के द्वार पर पड़ी हैं। कोई विशेष समाचार नहीं रहा। मैं उन्हें कोस रहा था। परीक्षा की समाप्ति के पाँच मिनट पहले ही घंटी बज उठी। शादी तो तहस–नहस हो गयी। तो मुझे लगा कि ऐसा क्यों न लिख डालूँ– "इस प्रश्न में उल्लिखित समस्त बातें अवास्तविक, मिथ्यात्मक एवं जनद्रोहपरक हैं। इस प्रश्न से सम्बन्धित मुद्दालेह पति की अकाल मृत्यु से शोकातुर हो दूसरी मुद्दालेह पत्नी भी गर्भावस्था में ही मर गयी थी। उसका प्रेत इस प्रश्नकर्ता पर बुरी तरह सवार है। वह उन्मादी है। सावधान।"

पर क्या करूँ, यह लिखने के पहले ही अन्तिम घंटी के बजने के कारण, शिशु के हाथ की रोटी छीन लेनेवाले कौए के समान इनविजिलेटर ने पीछे से मेरी उत्तर–पुस्तिका छीन ली। ❐

अनुवाद– डॉ० किजकेतिल पद्मनाभ कुट्टन पिल्लै
१६०, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया कॉलोनी,
गान्धीनगर, हैदराबाद–५०००८०

चाय की चाह कम ही करें

मनुष्य के जीवन में चाय एक ऐसा पेय है, जो हर सुख और दुख का साथी होता है। पश्चिमी सभ्यता की मार झेल रहे भारतीय लोगों ने भी चाय को विशिष्ट पेय पदार्थ मानकर मजबूरी और आवश्यकता के सिद्धान्त पर चलकर अपना लिया है।

क्यों पीते हैं?

इस कलियुग की आधुनिक सस्कृति और सम्पन्न तथा विपन्न समाज के लोगों में चाय एक सम्मान का प्रतीक सी बन गयी है। व्यक्ति गरीब है या अमीर, छोटा है या बड़ा, गोरा या काला, सभी चाय की चाहत में इस कदर डूबे हुए हैं कि सुबह–शाम, दोपहर–रात, खुशी हो या गम, चाय की उपेक्षा कभी नहीं कर सकते।

आखिर चाय में ऐसी क्या बात है कि बच्चे, बूढ़े, नौजवान व महिलाएँ इसे नहीं छोड़ पाते हैं। चाय की पत्ती का मूल्य सौ रुपए प्रति किलो से भी ऊपर पहुँच चुका है, लेकिन इसकी माँग और पूर्ति ऐसी है कि व्यक्ति बार–बार इसे पीता है।

वैज्ञानिकों का मत है कि चाय में तीन प्रकार के विष विद्यमान हैं। परीक्षण के बाद यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुकी है कि यह हानिकारक पेय है। इन हानिकारक पदार्थों से मनुष्य को अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है।

चाय में एक प्रकार का क्षारीय पदार्थ होता है। इस क्षारीय पदार्थ को रसायन–विष की भाषा में थेईन कहा जाता है। चाय में थेईन होने के कारण ही इसके पीनेवालों को एक अजीब अहसास आता है व आनन्द की प्राप्ति होती है।

हानियाँ

१. चाय में एक तेल वोलेटाइल होता है जिसके कारण चाय पीने पर नींद नहीं आती।
२. चाय के ज्यादा सेवन से नेत्रों की चमक पर भी फर्क पड़ता है।
३. वैज्ञानिकों का कहना है कि चाय के कारण मस्तिष्क को भारी क्षति पहुँचती है।
४. व्यक्ति को भूलने की बीमारी हो जाती है।
५. अधिक चाय पीने से स्वप्नदोष होता है व पुंसत्व–शक्ति में कमी आ जाती है।

चाय को थोड़ी मात्रा में ही कम बार पीना चाहिए। दिन में दो बार या तीन बार से ज्यादा चाय नहीं पीनी चाहिए। चाय को भूलकर भी खाली पेट नहीं पीना चाहिए, क्योंकि इसमें एक हानिकारक रसायन टेनिन होता है। इसका सीधा प्रभाव लीवर पर पड़ता है। इसके चाय में होने से शारीरिक व मानसिक शक्ति का ह्रास होता है। चाय को ज्यादा देर तक नहीं उबालना चाहिए, क्योंकि इस अवस्था में टेनिन सीधे जहर का काम करता है। ❐

जन्म-शती पर विशेष-

कलम के जादूगर श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

- विमल कुमार

"यह लेखनी है या जादू की छड़ी आपके हाथ में" राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कभी यह टिप्पणी हिन्दी के अनूठे शैलीकार प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी, समाजवादी चिन्तक और निर्भीक पत्रकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के बारे में की थी। श्री बेनीपुरी राष्ट्रीय आन्दोलन के उन गिने–चुने लेखकों पत्रकारों में से थे, जिन्होंने जेल की कोठरी को एक तरह से अपना घर बना लिया था और वहीं से वे अपनी लेखनी के माध्यम से ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ शंखनाद करते रहे।

२३ दिसम्बर, १८९९ को बिहार मुजफ्फरपुर जिले में बेनीपुर गाँव में जन्मे श्री रामवृक्ष बेनीपुरी आजादी की लड़ाई के दौरान दसियों बार जेल गये और करीब नौ वर्ष तक कैद रहे। उनकी जेल यात्रा १९३० से शुरू हुई, जो १९४५ तक बीच–बीच में चलती रही। जेल के भीतर वह साहित्य साधना करते रहे और जेल के बाहर निकलकर पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन करते रहे। उनका प्रसिद्ध नाटक 'आम्रपाली', जो पृथ्वीराज कपूर को समर्पित था, बहुचर्चित रेखाचित्र संग्रह "माटी की परतें" के अधिकांश रेखाचित्र, अनोखा उपन्यास "कैदी की पत्नी" जीवनी तथा "गेहूँ और गुलाब" जैसे उत्कृष्ट निबन्ध–संग्रह की ज्यादातर रचनाएँ जेल में ही लिखी गयीं। इसके अलावा अंग्रेजी के कई रोमांटिक कवियों की कविताओं के अनुवाद भी उन्होंने जेल में रहकर किये और हजारीबाग जेल से हस्तलिखित पत्रिका "कैदी" भी निकाली।

श्री बेनीपुरी ने अपने लेखन का शुभारम्भ १९२१ में "तरुण भारत" साप्ताहिक से किया। १९२२ में उन्होंने "किसान मित्र" तथा १९२४ में "गोलमाल" नामक साप्ताहिक निकाला। १९२६ में वह बच्चों की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'बालक' के संपादक बने। उसके बाद उन्होंने १९२९ में गंगा शरण सिंह के साथ मिलकर "युवक" निकाला, जो काफी चर्चित मासिक रहा। १९३४ में माखनलाल चतुर्वेदी के साथ खण्डवा में रहकर "कर्मवीर" में भी काम किया। १९३५ में "योगी" तथा १९३७ में "जनता" के सम्पादक बने। "जनता" के माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ धुआँधार सम्पादकीय लिखे। १९४२ के आन्दोलन में बेनीपुरी जी ने बढ़चढ़ कर भाग लिया और हजारीबाग जेल में जयप्रकाश नारायण के साथ कैद रहे। जयप्रकाश नारायण को जेल से भगाने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। "दीवाली फिर आ गयी सजनी" उनका प्रसिद्ध लेख है, जिसमें उन्होंने जयप्रकाश नारायण के जेल से भागने का रोचक वृत्तान्त लिखा है। जेल में वह जयप्रकाश नारायण के अत्यन्त निकट आये और उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उनकी पहली जीवनी लिखी, जो हिन्दी में काफी लोकप्रिय हुई। हजारीबाग जेल में उन्होंने "तूफान" नामक हस्तलिखित पत्रिका भी निकाली। १९४६ में आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ मिलकर "हिमालय" नामक पत्रिका निकाली, जो हिन्दी की बहुचर्चित पत्रिका साबित हुई। १९४६ में कुछ महीने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव के साथ काशी में रहकर "जनवाणी" का भी सम्पादन किया। आजादी के बाद उन्होंने महत्त्वपूर्ण पत्रिका "नई धारा" का सम्पादन किया।

बेनीपुरी जी पत्रकारिता और लेखन के साथ–साथ राजनीतिक मोर्चे पर भी काफी सक्रिय थे। वह १९२० से १९४६ तक कांग्रेस से जुड़े रहे; पर वह कई मुद्दों पर कांग्रेस की नीतियों के आलोचक थे और कांग्रेस के भीतर समाजवादी धारा से जुड़े रहे। १९२६ में बिहार राजनीतिक कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश किया और फैजपुर कांफ्रेंस में जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पेश किया। वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा बिहार सोशलिस्ट पार्टी (१९३१) के संस्थापकों में से थे। अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की पहली कार्य समिति के भी वह सदस्य थे। इसके अलावा वह सोशलिस्ट पार्टी (बिहार) में पार्लियामेन्टरी बोर्ड के अध्यक्ष थे। आचार्य नरेन्द्र देव, एस०एम० जोशी, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, युसुफ मेहर अली, मीनू मसानी जैसे नेताओं की तरह बेनीपुरी जी राष्ट्रीय स्तर के समाजवादी नेताओं में प्रमुख थे। लेकिन उन्होंने अपना ध्यान लेखन पर ही केन्द्रित रखा, यद्यपि वह १९५७ के चुनावों में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में विजयी होकर बिहार विधानसभा के सदस्य भी बने।

बेनीपुरी जी ने कई साहित्य–संस्थाओं को खड़ा करने में बड़ी प्रमुख भूमिका निभायी। १९१९ में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वह १९४६ से ५० तक उसके सहकारी मंत्री, संयुक्त मंत्री, प्रधानमंत्री तथा सभापति भी रहे। १९२९ में वह अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मन्त्री भी थे।

कुल पन्द्रह पत्र–पत्रिकाओं तथा ५० से अधिक पुस्तकें लिखनेवाले बेनीपुरी जी ने साहित्य की हर विधा में अपनी कलम चलायी। वह अपने नाटकों और रेखाचित्रों के कारण काफी लोकप्रिय हुए। 'आम्रपाली', 'शकुन्तला', 'तथागत', 'नेत्रदान', 'संघमित्रा', 'सीता की माँ' उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। रेखाचित्रों में उनका कोई सानी नहीं है। वह हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने अद्वितीय रेखाचित्रों की रचना की और एक तरह से एक नई विधा को जन्म दिया। बेनीपुरी जी हिन्दी के महत्त्वपूर्ण जीवनी लेखकों में से भी हैं। उन्होंने अपने अनुज मित्र जयप्रकाश नारायण की जीवनी लिखने के अलावा कार्ल मार्क्स, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, विद्यापति, लंगर सिंह, रोजा लक्जयक आदि की भी जीवनियाँ लिखीं। उन्होंने पर्याप्त मात्रा में जेल जीवन के अनुभवों को भी शब्दबद्ध किया। "जंजीर और दीवारें" उनकी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कृति है। बेनीपुरी जी ने काफी संख्या में बाल साहित्य की भी रचना की, 'बगुला भगत', 'सियार पाण्डे', 'बिलाई मौसी', 'हीरामन तोता', 'जान हथेली पर' बच्चों में काफी लोकप्रिय रही।

पिछले दिनों दिवंगत हुए कवि बाबा नागार्जुन के शब्दों में "बिहार में मेरी तरह दर्जनों कलमजीवी बेनीपुरी जी को अपना अग्रज मानते हैं।" समाजवादी दलों के सैकड़ों युवक और अधेड़ अपनी अन्तरात्मा के साथ "साथी" बेनीपुरी को एकाकार पाते हैं। बीसियों पत्रकार सगौरव घोषित करते रहे हैं कि बेनीपुरी जी ने और "जनता" ने बिहार के लिए उस युग में वही भूमिका अदा की, जो अमर हुतात्मा गणेश शंकर विद्यार्थी के "प्रताप" ने उत्तर प्रदेश में की थी। ❑

(पृष्ठ २८ का शेष) **प्राचीन भारत में भी...**

अपनी समस्त आय इनकी लड़ाई में दाँव पर लगा देते थे। मुर्गों को उन्मत्त बनाने के लिए वे उन्हें मादक द्रव्य खिलाते थे। पंजों में लोहे के काँटे बाँधते। अपोलो, मर्करी, मार आदि देवताओं में भी वे प्रिय रहे। इसी कारण यूनानी ही नहीं, रोमवासी भी इन्हें बड़े यत्न तथा आदर से पालते तथा साथ रखते थे। उनकी मुद्राओं पर भी इनका आलेखन होता था।

रोम से इनकी लड़ाई इटली, जर्मनी एवं ब्रिटेन में प्रचलित हुई। ईसाइयों के विरोध करने पर इस पर प्रतिबन्ध लगा; किन्तु स्पेन तथा पूर्वी देशों में यह चलता रहा। अमेरिका में इसे कानूनन बन्द किया गया। ब्रिटेन में विद्यालय के छात्रों को लड़ाकू मुर्ग खरीदने के लिए विशेष भत्ता प्राप्त होता था। यह क्रम १२वीं से १९वीं शती तक चला। विवाह तथा त्यौहारों पर मुर्गे अवश्य लड़ाये जाते। मलाया में विवाह के समय संध्या को इनकी लड़ाई की व्यवस्था अब भी होती है।

हेनरी द्वितीय के शासन–काल में तो विद्यालय के अध्यापक फुर्सत के समय इससे मनोरंजन करते थे। मरे मुर्ग वे घर ले जाते थे। क्रामवेल ने इसे बन्द करने का प्रयास किया, पर असफल रहा। हेनरी आठवें के प्रासाद में मुर्ग–युद्ध के आयोजन के लिए विशेष स्थान बना था। चार्ल्स द्वितीय भी मुर्ग–युद्ध में रुचि लेता था। कर्नल मोरडोण्ट तो इसका इतना शौकीन था कि इसके लिए भारत से मुर्ग ले गया था। इंग्लैण्ड में इसका प्रसिद्ध युद्ध १८३० में हुआ था। मरवेज मार्खम की पुस्तक "राजाओं के मनोरंजन" में भी मुर्ग–युद्ध का उल्लेख है। यह ग्रन्थ १६१४ में प्रकाशित हुआ था। जनता गिरजोघर की चहारदीवारियों में भी इसका आयोजन करती थी। सामूहिक युद्ध भी हुआ करते थे। २० फीट के मण्डलाकार घेरे में अनेक मुर्गे लड़ाये जाते। १९वीं शती तक यह धनी–निर्धन सभी में लोक–प्रिय रहा। कहीं–कहीं तो मुर्गे के स्मारक भी बने। इस प्रकार भारत का यह प्राचीन मनोरंजन यहाँ से विश्व में प्रचलित हुआ। ❑

– विट्ठलनगर, खण्डवा (म०प्र०)

केरलीय "अष्ट वैद्य" कुल-परम्परा एवं विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति

- वैद्य संजीव कुमार ओझा

देवताओं की अपनी भूमि "केरल" की विशिष्टता वहाँ की हरियाली, लोगों के प्रकृति-प्रेम, आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा तथा सांस्कृतिक रुझान से स्वतः ही स्पष्ट होती है।

समुद्र के किनारे छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बसा, संस्कृत के अत्यन्त निकट समझी जाने वाली भाषा मलयालम बोलने वाले, छह से आठ माह तक वर्षा ऋतु होने से एक हाथ में छाता दूसरे में टार्च लिये, लुंगी व प्लास्टिक की चप्पल पहने शैव भक्त माथे पर चन्दन का आड़ा टीका लगाये आस्थावादी लोग सच्चे हृदय से आतिथ्य-सत्कार करते विशेष प्रकार का सोंठ, रक्त चन्दन व अन्य औषधियों से संस्कारित जल, जिसे "चुक वेल्लम" कहते हैं, पान हेतु प्रस्तुत करते हैं।

यह जल प्रत्येक होटल, घर अथवा संस्था हर जगह उपलब्ध रहता है, यह इस बात की विशिष्टता का द्योतक है कि आयुर्वेद यहाँ रग-रग में व्याप्त हो चुका है। ऐसे में प्रकृति भी प्रचुर मात्रा में जड़ी-बूटी प्रदान कर सहयोग कर रही है।

अष्टांग-हृदय की शशिलेखा व्याख्या के लेखक इन्दु के कई शिष्यों ने परम्परागत-रूप से आयुर्वेद के ज्ञान को न सिर्फ सँभालकर रखा; वरन् परिमार्जन कर इसे और अधिक चमक व गरिमा प्रदान की। संख्या में आठ होने से इन्हें "अष्ट-वैद्य" की संज्ञा दी गयी, जबकि एक अन्य मतानुसार आयुर्वेद के आठों अंगों (यथा- कायबाल ग्रहोर्ध्वाङ्ग-शल्यदंष्ट्रा जरावृषैः) में निष्णात होने के कारण इन्हें "अष्ट-वैद्य" कहा जाता है।

ये सभी परिवार नम्बूदरि (ब्राह्मण) हैं और नाम के आगे "मूस" (Moosad) लगाते हैं।

इनके परिवार के प्रमुखों के नाम निम्नलिखित हैं :-

(१)	पुलामन्थोल मूस	(Pulamanthole Moosad)
(२)	कुट्टनचेरी मूस	(Kuttanchery Moosad)
(३)	वयस्करा मूस	(Vayaskara Moosad)
(४)	वेल्लोद मूस	(Vellod Moosad)
(५)	चिरत्तमऊ मूस	(Chirathamau Moosad)
(६)	इलयद्थु मूस	(Elayadathu Moosad)
(७)	अलतायुर मूस	(Alataiyur Moosad)
(८)	थायकट्टु मूस	(Thaickattu Moosad)

द्रोणी - १

इनके अतिरिक्त अष्ट वैद्यों की श्रेणी में श्री नारायण नम्बूदरि का परिवार आता हैं, जिन्होंने कुल-परम्परा के रूप में इसे अपनाया है। मेषीत्तूर नामक स्थान पर "वैद्यमठम्" के नाम से इनका निवास एवं चिकित्सालय है। ये पञ्चकर्मोक्त "रक्तमोक्षण" को शास्त्रीय विधि से करने वाले अन्तिम जीवित व्यक्ति हैं। इनके पिता व बाबा दोनों का नाम नारायण नम्बूदरि था, जो कि इनके गुरु थे।

शास्त्र व परम्पराओं को सँभालकर रखने में इन अष्टवैद्यों का विशिष्ट योगदान है, जिसके लिए सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत् को इनका कृतज्ञ होना चाहिए।

अधिकतर प्रत्येक चिकित्सक को 'अष्टांग–हृदय' कण्ठस्थ है तथा संस्कृत भाषा भी अधिकारपूर्वक प्रयोग करते हैं। ये शास्त्रोक्त पञ्चकर्म को अधिक प्रयोगात्मक बनाकर प्रयोग में ला रहे हैं। साथ ही स्नेहन, स्वेदन (पूर्व–कर्म) में अभिनव प्रयोग कर एक स्वतन्त्र–विधा 'केरलीय–चिकित्सा–पद्धति' के रूप में विकसित की है। इसमें पड़िचिल (परिषेक) पोडिकिडि (चूर्ण पिण्ड स्वेद) एलाकिडि (पत्रपिण्ड स्वेद) नवराकिडि (षष्टिकशालि पिण्ड स्वेद), उडिचिल (अभ्यंग), मर्म चिकित्सा और कलारी पायट्टु (मार्शल आर्ट) आदि विशेष रूप से विकसित रूप में हैं।

इन्हीं अष्ट वैद्यों में से एक श्री कुट्टनचेरी वासुदेवन मूस के एक प्रमुख शिष्य वैद्यरत्नम् पी०एस० वारियार भी हुए हैं, जिन्होंने उनसे पाँच वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की। तदुपरान्त दो वर्ष तक अंग्रेजी पढ़ने के बाद तीन वर्ष तक डॉ० वर्गीज से एलोपैथी की शिक्षा ग्रहण कर सन् १६०२ में कोट्टकल नामक स्थान पर आर्य वैद्यशाला की स्थापना की। जो चिकित्सा कार्य के अतिरिक्त औषधियों का भी निर्माण करती है, शुद्ध एवं वीर्यवान् जड़ी–बूटियों द्वारा इनका निर्माण होता है।

आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान करने हेतु एक आयुर्वेदिक कालेज की भी स्थापना की, साथ ही 'आर्यवैद्यन्' के नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का भी प्रकाशन होता है।

'वैद्यरत्नम्' ने आयुर्वेद के प्रचार–प्रसार के लिए 'वैद्यक समाज' व कथकली नृत्य के प्रचार–प्रसार के लिए 'नाट्य संघम्' की स्थापना की। वैद्यरत्नम् संस्कृत एवं आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ–साथ कवि–हृदय एवं उच्च–कोटि के संगीतकार भी थे।

'अष्टांग शारीरम्' नामक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा, जो कि प्राचीन शारीर–शास्त्र व आधुनिक शारीर–विज्ञान का समन्वय होने से अधिक तथ्य–परक बन सका है।

वैद्यरत्नम् के द्वारा प्रारम्भ किये गये एकल प्रयास ने आज एक आन्दोलन का रूप ले लिया है। वर्तमान में इसके ध्वजावाहक के रूप में डॉ० पी०के० वारियार इसकी कीर्त्ति देश–विदेश में पहुँचा रहे हैं। यहाँ तक कि विश्व पर्यटन मानचित्र में कोट्टकल का भी नाम आयुर्वेद की विशिष्ट–चिकित्सा हेतु सम्मिलित किया गया है।

केरल की विशिष्ट चिकित्सा पद्धति

पञ्चकर्म के पाँच प्रधान कर्मों के अतिरिक्त केरल के चिकित्सकों ने पूर्व–कर्म (स्नेहन, स्वेदन) को पृथक् महत्ता प्रदान करते हुए विशेष रूप से विकसित किया है। साथ ही अन्य छोटी–छोटी विधाओं का भी पोषण समुचित रूप से किया है। इनमें से प्रमुख हैं– पिण्डस्वेद, धारा, परिषेक, शिरोलेप, अन्नलेपन आदि।

द्रोणी - २

(१) पिण्ड स्वेद :– यह अग्नि अथवा ऊष्म स्वेद के भेदों में से एक है। पिण्ड–स्वेद को पोट्टली स्वेद भी कहते हैं।

एक १८ X १८ अंगुल का वर्गाकार सूती कपड़ा लेकर उसके बीच में औषधीय पौधों के पत्ते (यथा– सहजन, मदार, एरण्ड, इमली) अथवा वातहर द्रव्यों के चूर्ण, नींबू का रस, नारियल का चूरा, **सैन्धव** अथवा साठी के चावल आदि को बीच में भरकर विभिन्न रूपों में प्रयोग करते हैं। मुख्यतः वात रोग, वात रक्त, शोथ आदि में प्रयुक्त होता है। जबकि साठी का चावल, बलामूल कषाय व गोदुग्ध में पकाकर पोट्टली बनाकर मांसपेशी–क्षय, दौर्बल्य, धातु–क्षय आदि में प्रयोग करते हैं।

पत्र पोट्टली को एलाकिडि, चूर्ण पोट्टली–को

पोडिकिडि–षष्टिक शालि पिण्ड स्वेद को नवरा किडि कहते हैं।

(२) परिषेक :– द्रव स्वेदन के दो भेद हैं–

(१) परिषेक, (२) अवगाहन

अवगाहन :– औषधि–युक्त क्वाथ अथवा तैल में पूरे शरीर को डुबोकर स्वेदन कराते हैं। इसमें अत्यधिक मात्रा में तैल व औषधि लगती है, जबकि परिषेक में केवल वस्त्र अथवा पात्र की सहायता से शरीर पर डालते हैं। इसे पिडिचिल भी कहते हैं। उपर्युक्त क्रिया करते हुए हल्के हाथ से संवहन भी करते हैं।

वस्तुतः परिषेक व अवगाहन एक ही जैसे हैं; किन्तु अवगाहन महँगा पड़ता है। अतः कम खर्च में उसके लाभ को प्राप्त करने का तरीका परिषेक या पिडिचिल है।

पक्षाघात में सम्पूर्ण शरीर व सूजन तथा सन्धि–वात में स्थानीय प्रयोग करते हैं।

(३) मूर्द्धा तैल :– (१) अभ्यंग, (२) धारा, (३) पिचु, (४) वस्ति ये चार प्रकार से तेल का शिरस् पर प्रयोग करने का निर्देश "धाराकल्प" नामक पुस्तक में दिया है।

(अ) शिरो अभ्यंग :– मूर्द्धा–स्थान पर तेल की मालिश, अभ्यंग है। खालित्य, पालित्य, सिरदर्द आदि रोगों में लाभप्रद है।

(ब) मूर्द्धा तैल अथवा शिरोधारा :– एक धारा–पात्र द्वारा तैल को धारा के रूप में मस्तक पर गिराते हैं। तैल अधिक मात्रा में लगता है।

इसमें तैल के अतिरिक्त, घृत, क्षीर, कषाय व तक्र का भी प्रयोग किया जा सकता है। तक्र धारा उच्च रक्तचाप, अनिद्रा, कुण्ठा, विसर्प आदि रोगों में आश्चर्यजनक रूप से लाभकारी है।

(स) शिरोपिचु :– धारा के प्रभाव को कम लागत व खर्च में प्राप्त करने हेतु एक कपड़े को सिर के चारों तरफ इस प्रकार बाँधते हैं कि तेल कुछ समय तक रुके। इससे औषधि व धन, दोनों की बचत होती है तथा "धारा" का लाभ मिलता है।

(द) शिरोवस्ति :– चमड़े की टोपी के आकार का शिरोवस्ति उपकरण सिर पर धारण कराकर उड़द की पिठ्ठी द्वारा सील करके कपड़े के एक पट्ट से चारों ओर बाँध कर बीच में किञ्चित् उष्ण तैल भर देते हैं साथ ही सम्पूर्ण शरीर में धीरे–धीरे अभ्यंग करते हैं। यह वात–विकार, अर्दित, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह आदि विकारों से आशातीत सफलता देने वाला है।

(४) अन्न लेपन :– विशेष कर सूखा रोग एवं धातुगत क्षय आदि विकारों में मांस–पेशियों को पोषण एवं शक्ति पहुँचाने के उद्देश्य से साठी का चावल, दूध, बला–कषाय, कई बार मास–रस आदि को मिलाकर पूरे शरीर पर लेपन करते हैं।

(५) शिरोलेप :– पित्तहर औषधियों के कल्क को शिरस् पर धारण कराकर कदली–पत्र से बाँध देते हैं यह मानस विकार एवं पित्तज विकारों के लिए श्रेष्ठ है।

केरलीय पञ्चकर्म में प्रयुक्त होने वाले उपकरण एवं औषधियाँ

(१) द्रोणी :– चार हाथ लम्बी, एक हाथ चौड़ी, लकड़ी की नौकाकार या छोटी टबनुमा संरचना, जिसमें धारा, परिषेक, अभ्यंग उद्वर्तन आदि कराया जाता है।

लकड़ी विशेषकर वातहर कुपीलु की लकड़ी का चयन द्रोणी बनाने में करते हैं। यद्यपि आम, कटहल, गूलर आदि की लकड़ी भी ली जा सकती है। आजकल फाइबर ग्लास की द्रोणी का भी प्रयोग कर रहे हैं, जोकि शास्त्रीय नहीं है।

(२) धारा–यन्त्र :– मृदा की हाँडी, जिसमें तीन, साढ़े तीन लिटर द्रव आ सके, जिसके मध्य में छेद होता है, जिसमें कपड़े की पट्टी डाल देते हैं, ताकि द्रव निर्बाध रूप से धारा बनकर निकले।

(३) वस्ति–यन्त्र :– यद्यपि यह पीतल, ताँबा, सोने व चाँदी की, गाय की पूँछ के आकार की नौ और ग्यारह अंगुल की खोखली नली होती है, जिसमें दो कर्णिकाएँ होती हैं।

(विस्तृत वर्णन एवं चित्र श्री कस्तुरे जी की पुस्तक **'पञ्चकर्म'** विज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है।)

वर्तमान में एनिमा यन्त्र का प्रयोग इसकी जगह करते हैं।

(४) शिरोवस्ति की टोपी :– ग्यारह अंगुल ऊँची चमड़े की टोपी, जो ऊपर से भी खुली रहती है तथा जो सिर की परिधि की गोलाई वाली होती है। आजकल रैक्सीन की टोपी भी प्रयुक्त होती है।

केरलीय पञ्चकर्म में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख औषधियाँ

(१) कषाय / चूर्ण / कल्क :– मुख्यतः वातहर द्रव्यों के कषाय यथा– रास्नाएरण्डादि कषाय, बलागुडूच्यादि कषाय, पटोल कटुरोहिणी कषाय, दशमूल कषाय, पुनर्नवाष्टक–कषाय आदि का प्रयोग बहुतायत में होता है।

(२) तैल :– बला तैल, क्षीर बला तैल, चन्दन लांक्षादि तैल, सहचरादि तैल, महानारायण तैल आदि का बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग होता है। ❐

– ३/४, कैसर बाग, कॉलोनी, लखनऊ

राजस्थान का कल्पवृक्ष-खेजड़ी

- डॉ० जे०एस० वर्मा

खेजड़ी राजस्थान के थड़ रेगिस्तान में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाला पेड़ है जो देश के प्राकृतिक अन्य सूखे भागों में भी सहज रूप से मिलता है। इसे पंजाब के लोग 'जन्ड' के नाम से जानते हैं। एक कहावत है कि मनुष्य को अकाल के समय भी मौत नहीं आ सकती अगर उसके पास खेजड़ी का पेड़, बकरी और ऊँट, क्योंकि कहा जाता है कि तीनों मिलकर मनुष्य को अति दुर्भिक्ष के समय में भी सहारा देते हैं। खेजड़ी सूखे एवं भारत के मरूभूमि जैसे राजस्थान, हरियाणा, पंजाब गुजरात और पश्चिमी उत्तर प्रदेश पर उगने वाला पौधा है। प्राकृतिक रूप से यह जहाँ-जहाँ पाया जाता है वहाँ का मौसम की विशेषता यह है कि गर्मी में अति गरम और ठण्ड में इतना ठण्ड की दिसम्बर-जनवरी में पाला पड़ता हो।

खेजड़ी एक दलहन फली मध्यस्थ लम्बाई का हमेशा हरा-भरा रहने वाला छोटे काँटे युक्त, पत्रक वाला पौधा है। इसका तना कभी सीधा नहीं रहता पर इसकी इतनी शाखाएँ निकलती हैं कि इसको एक ताज का रूप देती है।

यह विरला ही १५ मीटर लम्बा तथा ६० सेमी० व्यास से ज्यादा का होता है। यह कम वर्षा वाले तथा बलुई क्षेत्र में अच्छा उगता है। इस पेड़ का हर भाग रेगिस्तान में रहने वालों के लिए उपयोगी है क्योंकि इससे उन्हें चारा, फल, जलौनी, इमारती लकड़ी, निर्माण एवं आड़ के लिए सामग्री तथा छाया प्राप्त होती है।

यह चारे की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण पेड़ है। यह सर्दियों के महीनों में काफी घना रहता है जब इस मरूस्थल में खास करके कोई हरा चारा नहीं मिलता है। यह ऊँट, बकरी, भेड़ और गाय, बैलों के लिए हरा तथा सूखा चारा जो पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होता है, उपलब्ध कराता है। चारे की कमी के समय खास कर नवम्बर दिसम्बर में यह हरी पत्तियाँ तथा कोमल टहनियाँ चारे के रूप में प्रदान करता है। इसी तरह गर्मी के दुर्भिक्ष समय में यह हरा चारा देता है। इस तरह यह पूरे वर्ष हरे चारे का प्रबन्ध करता है। अकाल एवं सूखे वर्ष के समय सिर्फ इसकी पत्तियाँ ही हरे चारे के रूप में पशुओं के लिए उपलब्ध रहती है। औसत रूप से पूर्णता को प्राप्त पेड़ से ५५-६० किलोग्राम हरा चारा उत्पन्न होता है बीच के शूट को छोड़कर २५-३० किलोग्राम जब नीचे का २/३ हिस्सा काटा जाता है और लगभग २० किलोग्राम जब नीचे का १/३ हिस्सा काटा जाता है। हरियाणा में पेड़ के विकास को बिना हानि पहुँचाये सबसे ज्यादा वार्षिक चारा प्राप्त किया जाता है। हालाँकि पेड़ जो १५ सेमी० के व्यास से कम का हो उसकी छटाई नहीं की जाती है।

इसकी पत्तियाँ बहुत ही पोषक होती हैं। इसकी रासायनिक रचना हालाँकि मौसम और स्थान के साथ भिन्न हो सकती है। प्रोटीन, ईथर और फास्फोरस इनकी पत्तियों में ज्यादा होता है तथा रेशा सर्दियों में गर्मियों तथा वर्षा के मौसमों से अपेक्षित कम होता है।

शुष्क अवयव लगभग २.१८ किलोग्राम प्रति १०० किलोग्राम हैं। औसत पाचन क्षमता प्रोटीन, इर्थर रेशे उक्त ३२-५३, ३४-५२, ५०-६० और ४१.१३ क्रमशः है। सुपाच्य प्रोटीन (डी०सी०पी०) और कुल पाचक पोषक (७० एन) क्रमशः ४.४६ और ४०.६६ प्रतिशत पाये गये हैं।

इसकी फली का गूदा मीठा होता है जो पशुओं के चारे के काम आता है। फली का उत्पादन पेड़ के शुष्क पदार्थ तथा उसके तने (वृक्ष स्थल) के अनुसार होता है। जहाँ बाढ़ प्रति वर्ष आती है वहाँ फली का औसत उत्पादन १.४६ प्रति हेक्टेयर तथा सूखे स्थानों पर इसका उत्पादन १०-७० प्रतिशत तक बढ़ा पाया गया।

मरुस्थलीय बेकार भूमि तथा बलुई टीले वाले भूमि पर जंगल लगाने के लिए खेजरी उपयुक्त पेड़ है। यह वातावरणीय दशा को सुधारने और पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने का कार्य भी करता है। इसके साथ ही चूँकि यह दलहनी वंश का है तथा प्रकृति का इससे कोई नुकसान नहीं है यह वन-चारागाह एवं कृषि वानिकी तन्त्र के लिए बहुत उपयुक्त है। खेजड़ी पेड़ों के नीचे फसल अच्छी उगती है क्योंकि अपने साथ उगने वाले फसलों को यह अनुरूपता प्रदान करता है यह नमी, उपजाऊपन, कार्बनिक पदार्थ और अच्छी पी०एच० बनाये रखता है। ग्रामीण मरूस्थलीय क्षेत्र के आर्थिक सुधार में खेजड़ी पेड़ों ने एक अच्छी भागीदारी निभाई है।

□

आखिर मिट्टी की महिमा या राष्ट्रीय हित जैसी भी कोई चीज होती है

– डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय

सन् १७६० की प्रथम राज्य क्रान्ति में जो आदर्श उभर कर फ्रान्स में प्रतिष्ठित हुए, उनमें समता, स्वतन्त्रता और बन्धुभाव सर्वोपरि हैं। पेरिस की बहुत–सी इमारतों के ऊपर 'लिबर्ती, इगालिती और फ्रातरनिती'– ये तीन शब्द बड़े आकारों में उत्कीर्ण हैं। लगभग दो सौ वर्षों से यहाँ की सरकारें और जन–जीवन इन्हीं आदर्शों पर गतिशील हैं। मत, मजहब, पन्थ और जाति–पाँति के आधार पर किसी को भी कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। किसी विशेष वर्ग या समुदाय को तनिक भी आरक्षण या संरक्षण प्राप्त नहीं है। उत्तर प्रदेश की बसों में जिस तरह पत्रकारों, विधायकों, सांसदों और स्वतन्त्रता–सेनानियों के लिए सीटें सुरक्षित रहती हैं, ऐसा यहाँ कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की विशेष सुविधाओं की यहाँ कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हाँ; लगड़े–लूले या अपाहिजों अथवा बच्चों की पालनानुमा गाड़ियों को लोग स्वतः स्थान दे देते हैं। लिंग के आधार पर भी कहीं कोई भेद–भाव नहीं दिखायी देता। सुरक्षा के नाम पर कोई भी राजमार्ग कभी भी सील होता हुआ नहीं दिखा। हाँ, अल्जीरियायी मुस्लिमों के द्वारा यदा–कदा कहीं रखे गये बम की सम्भावना वाले स्थान पर लोगों को अवश्य नहीं जाने दिया जाता। किसी वी०वी०आई०पी० के लिए सड़कें प्रायः खाली नहीं करायी जातीं। समता या स्वतन्त्रता केवल नारा नहीं है। ये वे महत्तम जीव– मूल्य हैं, जिन पर वस्तुतः यहाँ बल दिया जाता है।

मत, मजहब, पन्थ और जाति–पाँति के आधार पर किसी को भी कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। किसी विशेष वर्ग या समुदाय को तनिक भी आरक्षण या संरक्षण प्राप्त नहीं है। उत्तर प्रदेश की बसों में जिस तरह पत्रकारों, विधायकों, सांसदों और स्वतन्त्रता–सेनानियों के लिए सीटें सुरक्षित रहती हैं, ऐसा यहाँ कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की विशेष सुविधाओं की यहाँ कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हाँ; लगड़े–लूले या अपाहिजों अथवा बच्चों की पालनानुमा गाड़ियों को लोग स्वतः स्थान दे देते हैं। लिंग के आधार पर भी कहीं कोई भेदभाव नहीं दिखायी देता। सुरक्षा के नाम पर कोई भी राजमार्ग कभी भी सील होता हुआ नहीं दिखा। हाँ, अल्जीरियायी मुस्लिमों के द्वारा यदा–कदा कहीं रखे गये बम की सम्भावना वाले स्थान पर लोगों को अवश्य नहीं जाने दिया जाता। किसी वी०वी०आई०पी० के लिए सड़कें प्रायः खाली नहीं करायीं जाती। समता या स्वतन्त्रता केवल नारा नहीं है। ये वे महत्तम जीवन–मूल्य हैं, जिन पर वस्तुतः यहाँ बल दिया जाता है।

प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व यहाँ गोलुआ नाम की जाति रहती थी। आज के फ्रान्सीसी उसी गोलुआ जाति के ही वंशधर हैं– जातीय स्मृतियों में यह ऐतिहासिक तथ्य अभी भी सुरक्षित है। एक वृद्धा महिला ने गत वर्ष बड़े गर्व से मुझे बतलाया था– 'हम लोग गोलुआ हैं। बाद में रोमन जाति से इस जाति का सम्बन्ध स्थापित हुआ; क्योंकि फ्रान्स के एक बड़े भूभाग पर किसी काल विशेष में रोमनों ने अधिकार कर लिया था। इसलिए फ्रान्सीसियों को बहुत बार 'गालो–रोमन' भी कह दिया जाता है। शार्ल दे गोल (फ्रान्स के एक और महान् राष्ट्रपति, जिन्हें आधुनिक फ्रान्स का यशस्वी निर्माता माना जा सकता है) के नाम का 'गोल' अंश उसी जातीय गौरव का ही ज्ञापक है। लेकिन आज यह गौरव केवल ऐतिहासिक महत्त्व का आस्पद ही रह गया है। पेरिस का जन–समुदाय वास्तव में अब किसी जाति विशेष को कोई प्रतिष्ठा नहीं देता। विश्व के इतने भूभागों से यहाँ लोगों का आवागमन हुआ है और इतनी विविधतापूर्वक वैवाहिक सम्बन्ध सम्पन्न हुए हैं कि यहाँ के समाज को वास्तव में वर्ण–संकर ही कहा जा सकता है। लेकिन कुल–परम्परा का गौरव कहीं–न–कहीं अब भी लोगों के मन में है और नामों के अन्त में आनुवंशिक उपनामों का प्रयोग भी लोग श्रद्धा से करते ही हैं, किन्तु संविधान में जाति, कुल, गोत्र, वंश इत्यादि का कोई स्थान नहीं है। हर फ्रान्सीसी नागरिक कानून की दृष्टि में एक समान है। लेकिन गोरे–काले का भेद

मस्तिष्क से अभी भी निकल नहीं पाया है। उत्तरी अफ्रीका पर फ्रांसीसियों का सुदीर्घकाल तक शासन रहने के कारण पेरिस और पूरे फ्रान्स भर में काले लोग विशाल परिमाण में रहते हैं। कानून की दृष्टि में समान होने पर भी, मुझे बतलाया गया है कि इन्हें सरकार में उच्च पद प्रायः नहीं प्राप्त हो पाते। इन्हें यहाँ बस या मेट्रो के चालक, दफ्तर में बाबू, सफाई कर्मचारी, स्कूली शिक्षक इत्यादि के कार्यों में ही संलग्न देखा जा सकता है। नीग्रो महिलाएँ या लड़कियाँ बहुधा घरों में शिशु–परिचारिका (बेबी–सिटर) का कार्य करती हैं। विश्वविद्यालयों में भी प्रोफेसर–पद से नीचे के पदों पर ही इन्हें काम करते पाया है मैंने। यों भी कोई गैर फ्रान्सीसी नागरिक, जो कितने ही वर्षों से यहाँ क्यों न रह रहा हो, कभी प्रोफेसर का पद नहीं पा सकता। विदेशी एशोसिएट प्रोफेसर से ऊपर नहीं पहुँच सकता। फ्रान्सीसी जनों की इच्छा न होने पर भी गोरी लड़कियाँ कभी–कभी काले लड़कों के प्रेमपाश में आबद्ध हो ही जाती हैं और इसी प्रकार काली लड़कियाँ गोरे लड़कों के साथ मौज–मस्ती मनाती भी नजर आ जाती हैं। लेकिन इन स्थितियों को अभिजात फ्रान्सीसी मन सरलता से स्वीकार नहीं कर पाता। मुस्लिम लड़कों के साथ भी फ्रान्सीसी जन अपनी लड़कियों का वैवाहिक सम्बन्ध बेहद नापसन्द करते हैं। कई फ्रान्सीसी पुरुषों ने मुझे बतलाया कि हमारे परिवार की लड़कियाँ मुस्लिम परिवारों में सामंजस्य नहीं बिठा पातीं। इसलिए सामान्यतः बच्चों के शादी–ब्याह में हस्तक्षेप न करने वाले फ्रान्सीसी भद्रजन भी किसी मुस्लिम के साथ अपनी लड़कियों को घूमते–फिरते देखकर उन्हें यह समझाने का पूरा प्रयत्न करते हैं कि यह वैवाहिक सम्बन्ध उनके लिए हितकर नहीं सिद्ध होगा।

कानून की दृष्टि में, सभी फ्रान्सीसी नागरिकों के समान होने पर भी, फ्रान्स में विदेशियों को सदैव सन्देह भरी दृष्टि से ही देखा जाता है, भले ही वे फ्रान्सीसी नागरिक बन गये हों। यहाँ की एक विदुषी हैं डॉ॰ वसुन्धरा फिलियोजा। उन्होंने एक फ्रान्सीसी संस्कृतज्ञ प्रो॰ पियर सिल्वाँ फिलियोजा से ब्याह किया है। सन् १९६५ में पेरिस आयी थीं। मूलतः कर्नाटक (मैसूर) की हैं। वर्ष में कुछ मास अब भी यह युगल मैसूर में ही बिताता है। वसुन्धरा जी ने मुझे बताया कि पियर जी के साथ रहने पर भी, पेरिस की पुलिस वसुन्धरा के कागज–पत्र (पासपोर्ट, वीसा इत्यादि) प्रायः चेक करती रहती है। फ्रान्स के राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री जैसे पदों पर ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं चुना जा सकता, जिसका जन्म फ्रान्स में न हुआ हो। भारत में जिन दिनों अर्जुन सिंह और शरद पवार जैसे शूरमा सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री के रूप में अभिषिक्त करने के लिए बेचैन थे, उन दिनों कई फ्रान्सीसी मित्रों ने मुझसे प्रत्यक्ष रूप से और दूरभाष पर भी बार–बार यह प्रश्न किया कि क्या भारत में कोई ऐसा भी व्यक्ति प्रधानमन्त्री हो सकता है, जो भारत में उत्पन्न न हुआ हो और जिसका राजनैतिक जीवन मात्र एक वर्ष का हो। अमेरिका में तो राष्ट्रपति बनने के लिए केवल प्रत्याशी को ही नहीं, बल्कि उसके पिता को भी अमेरिका में जन्मा होना चाहिए। मैंने उन मित्रों को यह कहकर आश्वस्त करने का प्रयत्न किया कि भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास करता है। लेकिन इन मित्रों को, विदेशी होने पर भी, सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री बनाने का प्रयत्न अच्छा नहीं लगा। कुछ ने दबे–ढके शब्दों में यह कहा भी कि अन्ततः देश की मिट्टी की महिमा या राष्ट्रीय हित जैसी कोई चीज भी होती है या नहीं! भारत में जब कोई विदेशी आता है, तो हम पलक–पाँवड़े बिछा देते हैं उसका स्वागत करने के लिए, खासतौर से तब, जब कोई गोरी चमड़ीवाला आया हो! लेकिन यहाँ विदेशियों की ओर कोई नजर उठाकर भी नहीं देखता। उनकी नोटिस लेता है केवल यहाँ का पुलिस–प्रशासन, जो बेहद बारीकी से उसके एक–एक

फ्रान्स के राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री जैसे पदों पर ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं चुना जा सकता, जिसका जन्म फ्रान्स में न हुआ हो। भारत में जिन दिनों अर्जुन सिंह और शरद पवार जैसे शूरमा सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री के रूप में अभिषिक्त करने के लिए बेचैन थे, उन दिनों कई फ्रान्सीसी मित्रों ने मुझसे प्रत्यक्ष रूप से और दूरभाष पर भी बार–बार यह प्रश्न किया कि क्या भारत में कोई ऐसा भी व्यक्ति प्रधानमन्त्री हो सकता है, जो भारत में उत्पन्न न हुआ हो और जिसका राजनैतिक जीवन मात्र एक वर्ष का हो। अमेरिका में तो राष्ट्रपति बनने के लिए केवल प्रत्याशी को ही नहीं, बल्कि उसके पिता को भी अमेरिका में जन्मा होना चाहिए। मैंने उन मित्रों को यह कहकर आश्वस्त करने का प्रयत्न किया कि भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास करता है। लेकिन इन मित्रों को, विदेशी होने पर भी, सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री बनाने का प्रयत्न अच्छा नहीं लगा। कुछ ने दबे–ढके शब्दों में यह कहा भी कि अन्ततः देश की मिट्टी की महिमा या राष्ट्रीय हित जैसी कोई चीज भी होती है या नहीं!

कदम का निरीक्षण करता रहता है, उसकी एक-एक गतिविधि पर सावधान रहता है। गुजराल जी के कार्यकाल में ब्रिटेन के राजा-रानी की यात्रा के समय भी लोगों ने यहाँ मुझसे कई बार यह पूछा कि क्या भारत आज भी ब्रिटेन का उपनिवेश है, जो इन राजा-रानी को इतना महत्त्व दिया जा रहा है ? क्या जरूरत थी इन राजा-रानी को बुलाने की ? और बुलाने पर भी इतना महत्त्व देने की क्या आवश्यकता थी ? और सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री पद पर अभिषिक्त कराने के प्रयत्नों को देखकर कहीं-न- कहीं यह बात चुभी तो जरूर है उस फ्रान्सीसी मानस को, जो इसके मूल में दासता के अवशेष चिह्न खोज रहा है। निष्ठावान् लोकसेवक के रूप में, मैं स्वयं राजनीतिक विवादों से दूर रहने का ही प्रयत्न करता हूँ, लेकिन फ्रान्सीसी मनीषा भारतीय विद्या के प्रोफेसर के रूप में मेरे सामने ये प्रश्न उछालने में संकोच नहीं करती- यद्यपि उन क्षणों में मौन ही मेरा कवच सिद्ध होता है, क्योंकि विदेश मन्त्रालय के साथ हुए अनुबन्ध के अनेक उपबन्धों ने मेरी जिह्वा पर तालेबन्दी-सी कर रखी है।

इसी प्रकार के सवालों का सामना मुझे तब करना पड़ा था, जब पोकरण में परमाणु-परीक्षण हुआ था। उस समय लालू प्रसाद जैसे नेताओं के द्वारा की गयी परमाणु- परीक्षण की बेहद घटिया और सतही आलोचना को भी वे फ्रान्सीसी बुद्धिजीवी रत्ती भर भी नहीं पचा पाये, जिनकी भारत के प्राचीन गौरव में आस्था है और आज मैं यह शपथपूर्वक कहने की स्थिति में हूँ कि पोकरण-परीक्षण के बाद विश्वभर में भारत की प्रतिष्ठा हजारों गुना ज्यादा बढ़ गयी है और उस घटना के बाद भारतीयों को फ्रान्स में सम्मान के साथ देखा जाने लगा है। भले ही यह बात लालू, मुलायम और सुरजीत जैसे नेताओं की समझ में न आये, लेकिन यह सही है कि पश्चिमी प्रेस और मीडिया भारत की नोटिस तभी लेंगे, जब अभी यह कुछ और शक्ति सम्पन्न बने। स्काई लैब, सी०एन०एन० जैसे समाचार-चैनल तो अभी भी विश्व-समाचारों में भारत की उपेक्षा करने के आदी हैं। सितम्बर ९८ में, जब भारतीय प्रधानमन्त्री का पेरिस में आगमन हुआ, तब मुझे अच्छी तरह याद है, यहाँ के किसी दूरदर्शन-चैनल ने उसकी कोई खास नोटिस नहीं ली- दो दिनों तक किसी भी चैनल में इस विषय में कोई सामान्य समाचार तक प्रसारित नहीं हुआ। हाँ; एक दैनिक पत्र ने भीतर के किसी पृष्ठ पर वाजपेयी जी के चित्र सहित एक छोटा-सा समाचार अवश्य छापा था। लेकिन इसके विपरीत भारत में किसी अदने-से-अदने राष्ट्राध्यक्ष के आने पर भी दूरदर्शन उसकी कवरेज कितने विस्तार से करता है- शायद उस दिन पहला समाचार ही वही होता है। लेकिन पश्चिम में, छह करोड़ जनसंख्या का एक देश, लगभग १०६ करोड़ जनसंख्या वाले गणराज्य के गरिमामय प्रधानमन्त्री के आगमन पर भी विशेष उत्सुकता प्रदर्शित नहीं करता। आखिर कब जायेगा हमारा ध्यान इन बिन्दुओं पर ? और कब हम मुक्त होंगे विदेश-निष्ठा या गुलामी के संस्कारों से ? और कब तक हम कालीन की तरह बिछते रहेंगे इन विदेशी मेहमानों के बूटों तले ? पश्चिमी देशों की वनिताएँ निश्चित ही गोरी चमड़ी की हैं- उनके हाव-भाव और लटके-झटके भी आकर्षक हो सकते हैं- लेकिन क्या उनके सम्मोहन में हम इतना तल्लीन हो जायेंगे कि अपनी पूजनीया माता को भी भुला देंगे ? कभी-कभी वारवनिता बहुत सुन्दर होती है- यहाँ तक कि उसके मुकाबले में माँ का झुर्रीदार चेहरा अनाकर्षक भी लग सकता है- लेकिन इतनी बात तो छोटा बच्चा भी समझता है कि माँ माँ होती है- भले ही वह कैसी भी क्यों न हो ? और वारवनिता उसका स्थान कभी भी नहीं ले सकती।...

सितम्बर ९८ में, जब भारतीय प्रधानमन्त्री का पेरिस में आगमन हुआ, तब मुझे अच्छी तरह याद है, यहाँ के किसी दूरदर्शन-चैनल ने उसकी कोई खास नोटिस नहीं ली- दो दिनों तक किसी भी चैनल में, इस विषय में कोई सामान्य समाचार तक प्रसारित नहीं हुआ। हाँ; एक दैनिक पत्र ने भीतर के किसी पृष्ठ पर वाजपेयी जी के चित्र सहित एक छोटा-सा समाचार अवश्य छापा था। लेकिन, इसके विपरीत, भारत में किसी अदने-से-अदने राष्ट्राध्यक्ष के आने पर भी, दूरदर्शन उसकी कवरेज कितने विस्तार से करता है- शायद उस दिन पहला समाचार ही वही होता है। लेकिन पश्चिम में, छह करोड़ जनसंख्या का एक देश, लगभग १०६ करोड़ जनसंख्या वाले गणराज्य के गरिमामय प्रधानमन्त्री के आगमन पर भी विशेष उत्सुकता प्रदर्शित नहीं करता। आखिर कब जायेगा हमारा ध्यान इन बिन्दुओं पर ? और कब हम मुक्त होंगे विदेश-निष्ठा या गुलामी के संस्कारों से ? और कब तक हम कालीन की तरह बिछते रहेंगे इन विदेशी मेहमानों के बूटों तले ?

□

- अतिथि आचार्य, सारबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस

अलग-अलग खेमे

– सिद्धेश्व

समाजवादियों ने
नारा लगाया
जुलूस निकाला/और
सूरज उनकी खातिर
जमीन पर उतर आया...
फिर, चील–कुत्तों की तरह
लोग टूट पड़े और
टुकड़े–टुकड़े कर दिये
सूरज की रोशनी के...।
रोशनी बँट गयी
कई टुकड़ों में
और उसे कुछ/मुट्ठी भर लोगों ने
साजिश कर हड़प लिया
एकता के नाम पर/और
बन्द कर दिया/अपने–अपने बक्से में...।
हर दिन
कोई न कोई हादसा
घटता रहा है इसी तरह
इस प्रगतिवादी युग में...
हम फिर भी
सन्तोष करते हैं
संघर्ष करते हैं
संघर्ष के नाम पर
जबकि/इस कदर
शोषण से पीड़ित जनता
तड़पती–चीखती रह जाती है...।
जब–जब गुजरता है
समाजवादियों, प्रगतिवादियों, जनवादियों औ
मार्क्सवादियों का जुलूस
उनके नारों से
कान फट जाते हैं
आँखें धँस जाती हैं
गूँगा हो जाता है आदमी
और लुट जाता है/वह
उसके पैरों तले
जबकि–
उसके जिस्म से बहते खून को
चाट–चाट जाते हैं
ये हरामखोर
भेड़ियों की तरह
और–
फिर नये खेमे बनाने का
षड्यन्त्र रचने लगते हैं
मुट्ठी भर ये लोग
आम जन को लूटने के लिए...।

– अवसर प्रकाशन, पो०बा०नं०–२०
करखिगडिया, पट

पाठकीयम्

ईसाई मिशनरियों के अनुसार बिना ईसा मसीह की शरण में आये किसी इन्सान को मुक्ति नहीं मिल सकती। वे कहते हैं कि सूली पर चढ़कर ईसा ने अपने रक्त द्वारा सारी मानवजाति के पापों को धो दिया, इसलिए अपने पापों से तरने का आसान रास्ता है ईसा का अनुयायी बन जाना।

एक बार 'डें' नाम का एक पादरी आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द से मिला। उसने स्वामी जी से कहा– "हमारा धर्म कितना महान् है, ईसा मसीह सब मनुष्यों के पापों की गठरी अपनी पीठ पर लाद कर ले गये।"

दयानन्द जी ने उत्तर दिया– "ईसा ऐसा नहीं कर सकते। पाप या पुण्य सभी प्रकार के कर्मों का फल मनुष्य को खुद भोगना पड़ता है और यदि ईसा ऐसा कर गये हैं तो उनका यह काम दुनिया में पाप को बढ़ावा देनेवाला है; क्योंकि लोग सोच सकते हैं कि पाप या बुरे काम करते रहो तथा ईसा की शरण में जाकर बच जाओ।"

पादरी निरुत्तर हो गया। कोई ईसाई धर्मप्रचारक स्वामी जी के तर्क पर कुछ कहना चाहेंगे? □

–जया मित्तल, *६७, खन्दक मेरठ (उ०प्र०)*

उस भवन के बाहर 'सत्यमेव जयते' वाक्य झलक रहा था, जहाँ मुझे जाना था। जाना क्या था परिस्थितियाँ ऐसी बन पड़ी थीं कि मैं वहाँ के चक्कर लगाने को बाध्य था। सब सामान्य चल रहा हो, तो कौन गुण्डे-बदमाशों के मुँह लगता है। अपनी प्रतिष्ठा तो सबको प्यारी होती है। कौन चाहता है कि वह सन्दिग्ध लोगों से मिले।

भवन चलती सड़क पर था और हर दूसरा चेहरा पहचान का सामने से निकल रहा था। मेरी अवस्था मेडिकल स्टोर से गर्भ-निरोधक सामग्री माँगने वाले उस प्रतिष्ठित सज्जन की तरह थी, जो मात्र रुपये आगे बढ़ा देता है और इन्तजार करता है इच्छित वस्तु का। यदि दूकानदार मनचला निकला, तो बलात्कार की शिकार हुई युवती की तरह लज्जित भी हो जाता है। दूकानदार बलात्कार करता रहता है और वह लज्जित होता रहता है। सज्जन आदमी नेता तो होता नहीं कि वह लज्जित ही न हो सके। राष्ट्र लज्जित है; पर ये सब अब भी मुस्करा रहे हैं।

व्यंग्य

दण्डमेव जयते

– सुधीर ओखदे

संकोच मेरे स्वभाव में है। उधार दी हुई रकम माँगने में मुझे संकोच होता है। अपने हक के लिए झगड़ने में मुझे संकोच होता है। संसद् में माननीय सदस्यों का व्यवहार देखकर मुझे संकोच होता है।

ऊँची आवाज में बात करनेवाले प्रत्येक उस सज्जन से मुझे संकोच होता है, जो क्षण भर में अपनी ऊँची आवाज के बल पर मुझे दुर्जन साबित कर देता है। ऊँची आवाज भी सब की नहीं हुआ करती। थानेदार की होती है। तहसीलदार की होती है। सूबेदार की होती है। चौकीदार की होती है। वजनदार की होती है। जिनकी होती है, वे सफल व्यक्ति कहलाते हैं। ऊँची आवाज, ऊँचा रहन-सहन, ऊँची उड़ान सभी से संकोचित व्यक्ति का 'सत्यमेव जयते भवन' में प्रवेश के समय सकुचा जाना उचित ही है।

बात सामान्य-सी थी। मेरे पड़ोस में चोरी हो गयी थी और कर्त्तव्य से बँधा मैं पड़ोसी से उसके नुकसान की बाबत पूछताछ करने जब उसके घर पहुँचा, तो वहाँ धरती के प्रभु को उस घर की छानबीन करते पाया। मेरा पड़ोसी, अपराधी-सा प्रभु के सम्मुख खड़ा था। प्रभु के साथ एक 'विशेष डण्डाधिकारी' हवलदार भी था, जो पड़ोसी की पत्नी को मुदित भाव से देख रहा था। उसकी ड्यूटी में शायद यह कार्य भी सम्मिलित था।

हवलदार को सरकार ने डण्डा शस्त्र के रूप में क्यों दिया, यह शोध का विषय है। जब अपराध हाथों से होते थे, तब भी डण्डा था और ए०के० ४७ के दौर में भी डण्डा अब तक अपने कर्त्तव्य को यदा-कदा अंजाम देता रहता है।

डण्डा जुलूस तोड़ने के काम आता है; गरीब दूकानदारों को खदेड़ने के काम आता है; हफ्ता वसूलने के काम आता है। सामान्य जनता के लिए डण्डा प्रशासन की पहचान है; प्रशासन की ताकत है; प्रशासन का दम्भ है।

डण्डा भीड़ में बरसता है, जहाँ कोई अपराधी नहीं होता। डण्डा प्राकृतिक आपदा की तरह है, जो पाप-पुण्य, मोह-माया, शरीफ-बदमाश की परवाह किये बिना बरसता है। बस बरसता है बिना रुके। सरकार हथियारों की होड़ में विश्वास नहीं रखती। वह नियम के अनुसार आचरण करती है। अपराधी हथियार रखते हैं तो रखें। उन्हें कभी न कभी तो भगवान् देख ही लेगा। जिस थाने में भगवान् नहीं होंगे, वहाँ भी कोई न कोई तो होगा ही, जो देख लेगा। जो लोग डण्डे से काबू किये जा सकते हैं, उनके आँकड़े तो आपको सभी थानों में मिल जायेंगे।

हाँ, तो बात पड़ोसी के घर छानबीन की हो रही थी। अपेक्षित मेहमानों के स्वागत का पूरा प्रबन्ध दिखायी दे रहा था। गरमागरम पकौड़े और चाय की चुस्कियों के बीच पूछताँछ का रोचक दृश्य जब आरम्भ था तब मेरे कदम उस घर में पड़े। मुझे देखते ही प्रभु की नजरें चमकने लगीं।

नाम बोल?

बनवारी लाल।

यहाँ क्यों आया?

चोरी की खबर सुनकर।

चोरी तूने की है?

नहीं।

तब क्यों आया?

यह मेरा मित्र है।

मित्र के घर चोरी करता है। शरम नहीं आती?

मैंने मदद के लिए मित्र की तरफ निहारा, तो वह संयुक्त सरकार के छोटे–छोटे घटकों की तरह व्यवहार करता प्रतीत हुआ।

अबे, मैंने क्या पूछा है? बोलता क्यों नहीं?

सरकार, मैं शरीफ आदमी हूँ। यह मेरा मित्र है, इसीलिए पूछताँछ के लिए आया हूँ।

क्या करेगा पूछताँछ? तू पुलिस है?

सरकार, मैं तो....

क्या मैं तो...?

मैं टूट चुका था। मुझे टूटा–सा देख प्रभु की आँखों में वही भाव आये, जो देशहित में प्रस्तुत किसी विधेयक का विरोध करते समय विपक्षी दलों की आँखों में आते हैं। पकौड़े की प्लेट में से अन्तिम पकौड़े के साथ न्याय कर प्रभु हँस पड़े। प्रभु हँसे, तो सभी हँस पड़े। वह भी, जिनके घर चोरी हुई थी।

सरकार ने फिर मुझसे पूछा– काम क्या करता है?

सरकारी अधिकारी हूँ।

क्या है?

अधिकारी हूँ।

सरकारी?

हाँ।

फिर भी डरता है। अधिकारी होकर मास्टर की तरह व्यवहार करता है। तेरा विभाग समाज–कल्याण से जुड़ा हुआ नहीं है क्या?

मैं चुप रहा।

नाम बोल?

बोला तो था।

फिर बोल?

बनवारी लाल।

उम्र बोल?

पैंतीस वर्ष ।

पता बोल?

मैंने पता बताया।

अब इधर हस्ताक्षर कर।

मैं सकुचाया, तो सरकार मुस्कराई, प्रभु मुस्कराये। बोले, सरकारी अधिकारी होकर सकुचाता है, तो विभाग में आया बजट कैसे पार लगाता होगा। नाटक करता है क्या?

मैं फिर सकुचाया।

अबे, हस्ताक्षर कर। तू चोर हो नहीं सकता। बात–बात में सकुचाता है। तू क्या चोरी करेगा! तू गवाह है। मौके का गवाह। इस बात का सक्षी कि तेरे मित्र के घर चोरी हुई है।

हुई है न?

चोरी तो हुई है।

तुझे पता है न? फिर हस्ताक्षर कर।

मैंने फिर मित्र की तरफ देखा, तो वह परे देखने लगा। सद्भावना की सजा तो मुझे मिलनी ही थी। अतः हस्ताक्षर कर मैंने उस घटना का पटाक्षेप किया।

प्रभु ने सन्तोष की साँस ली। मुझे देखकर बोले, कल थाने आ जाना। वहाँ भी कुछ कागजों पर तेरे हस्ताक्षर लगेंगे। मुझे विचलित होते देख प्रभु पसीजे। नरम आवाज में बोले, अबे! अभी से क्यों घबरा रहा है? घबराना तब, जब चोर पकड़ा जायेगा। वह पकड़ा गया कि तुझे अदालत भी आना पड़ेगा। कई बार आना पड़ेगा। बार–बार आना पड़ेगा यह बताने कि तेरे मित्र के घर सचमुच चोरी हुई थी। चल, आज का काम खतम।

प्रभु फिर बोले, तू सज्जन आदमी है। ऊपर से सरकारी अधिकारी भी है। तेरे जैसे लोगों से हमें नम्रता से, कोमलता से बात करनी पड़ती है। आदत नहीं होती, इसीलिए दिक्कत होती है। आज तुझसे इतनी नम्रता से मैंने बात की। पता नहीं, किसी चोर, बदमाश से बात करते समय भी सामान्य हो पाऊँगा या नहीं।

प्रभु जा चुके थे और मित्र बेवफा की तरह नजरें चुरा रहा था। अतः मैं भी वहाँ से चुपचाप बाहर निकल गया।

'सत्यमेव जयते भवन' के बाहर मैं अब भी खड़ा हूँ। प्रभु का आदेश है टाला कैसे जा सकता है? मन ही मन चोर की सलामती की दुआ के साथ अन्ततः मैं मन्दिर में प्रविष्ट हो ही गया। □

– III/२, आकाशवाणी कालोनी,
जलगाँव, (महाराष्ट्र) ४२५००१

है कोई माई का लाल, जो...

- ओंकार भावे

देश की स्वतन्त्रता के पूर्व हम अपने देश को हिन्दुस्थान या हिन्दुस्तान के नाम से पुकारते थे। हमारे पास–पड़ोस के देश, विशेषतः इस्लामी देशों के लोग भी इसे हिन्दुस्तान ही कहते थे। स्वतन्त्रता–संघर्ष को भी हमने हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता या आजादी की लड़ाई ही कहा। इस देश के उस समय के मात्र .०२ प्रतिशत से भी कम अंग्रेजी पढ़े लोगों में से भी कुछ लोगों ने ही बोलते समय अंग्रेजी में इसे 'इण्डिया' कहा अन्यथा वे भी इसे हिन्दुस्थान के नाम से ही सम्बोधित करते थे। हिन्दुस्थान का अर्थ है हिन्दुओं के रहने का स्थान या देश। स्वतन्त्रता के पूर्व यहाँ ६० प्रतिशत हिन्दू थे। देश की स्वतन्त्रता आने पर मुसलमानों की बड़ी संख्या, देश से अलग हुए भूमिखण्ड पर अर्थात् पाकिस्तान बने भूभाग पर रहने के कारण पाकिस्तानी हो गयी। कुछ मुसलमान स्वतन्त्र हिन्दुस्थान के भूभाग से जाने के कारण स्वतन्त्र हिन्दुस्थान की जनसंख्या में हिन्दू लगभग ६५–६६ प्रतिशत हो गये थे। स्वाभाविक रीति से और व्यावहारिक रूप में भी यह हिन्दुस्थान हो गया था। इस देश में ईसाई नगण्य था और मुसलमान अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए चिन्तित हो गया था।

परन्तु हमारे देश के कर्णधारों ने इस देश का स्वाभाविक नाम हिन्दुस्थान न स्वीकार कर इसे योजनापूर्वक एक नया नाम "भारत" दिया। वैसे तो यह नाम भी अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आया हमारा सांस्कृतिक नाम है। इस नाम को पुनः अपनाने में हमें प्रसन्नता ही होनी चाहिए; परन्तु हमारे कर्णधारों ने अपने देश का एक बड़ा विचित्र नाम रखा "इण्डिया दैट इज भारत"। दुनिया में शायद किसी देश ने अपना ऐसा द्विविधाजनक नाम नहीं रखा। ऐसा ही रखना था तो विदेशी नाम पूर्णतः हटाकर इसका भारत या हिन्दुस्थान एक नाम रखा जाना चाहिए था। दोनों नाम रखना चाहते तो 'भारत अर्थात् हिन्दुस्थान' या 'हिन्दुस्थान अर्थात् भारत' नाम रख लेते; परन्तु विदेशी गुलामी के अवशिष्ट चिह्न के रूप में 'इण्डिया' नाम रखा, जो आज स्वतन्त्रता के ५२ वर्ष के बाद भी कलंक के टीके कें समान हमारे उज्ज्वल भाल पर लगा हुआ है। भारत नाम केवल इस देश के लोगों को मात्र समझाने के लिए लगा है कि इस देश का नाम इण्डिया ही है, तुम इसे भारत समझ लो। सारी दुनिया इसे (हमें) इण्डिया ही कहती है, हम अपने को कुछ भी समझें। दुनिया हमें अभी भी अंग्रेजी गुलामी से मुक्त नहीं देख पा रही है। भारत या हिन्दुस्थान नाम रखा जाता, तो संसार की दृष्टि में हमारे प्रति यह भाव नहीं रहता। हमें भी सन्तोष होता कि अब हमारे माथे से यह विदेशी सम्बोधन का कलंक हटा।

हमारे कर्णधारों ने अपने देश का एक बड़ा विचित्र नाम रखा "इण्डिया दैट इज भारत"। दुनिया में शायद किसी देश ने अपना ऐसा द्विविधाजनक नाम नहीं रखा। ऐसा ही रखना था तो विदेशी नाम पूर्णतः हटाकर इसका भारत या हिन्दुस्थान एक नाम रखा जाना चाहिए था। दोनों नाम रखना चाहते तो 'भारत अर्थात् हिन्दुस्थान' या 'हिन्दुस्थान अर्थात् भारत' नाम रख लेते; परन्तु विदेशी गुलामी के अवशिष्ट चिह्न के रूप में 'इण्डिया' नाम रखा, जो आज स्वतन्त्रता के ५२ वर्ष के बाद भी कलंक के टीके के समान हमारे उज्ज्वल भाल पर लगा हुआ है। भारत नाम केवल इस देश के लोगों को मात्र समझाने के लिए लगा है कि इस देश का नाम इण्डिया ही है, तुम इसे भारत समझ लो। सारी दुनिया इसे (हमें) इण्डिया ही कहती है, हम अपने को कुछ भी समझें। दुनिया हमें अभी भी अंग्रेजी गुलामी से मुक्त नहीं देख पा रही है। भारत या हिन्दुस्थान नाम रखा जाता, तो संसार की दृष्टि में हमारे प्रति यह भाव नहीं रहता। हमें भी सन्तोष होता कि अब हमारे माथे से यह विदेशी सम्बोधन का कलंक हटा।

किन्तु हमारे देश की स्वतन्त्रता के कर्णधारों की बड़ी दूर–दृष्टि थी। वे इसे सबका देश बताना और बनाना चाहते थे, विशेषतः हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सभी का। इसके लिए उन्हें हिन्दुस्थान शब्द हटाना आवश्यक था। **कहीं हिन्दू भूल से इसे अपना न समझने लगे, कहीं उसे अपनी अस्मिता की, अपने गौरव गरिमा की याद न आ जाये।** विदेशी संस्कृति में पले, बढ़े और पढ़े अपने

कर्णधारों की इस चाल को भोला-भाला, विश्व-समन्वय एवं विश्व-कल्याण की भावना रखनेवाला हिन्दू समझ न सका और 'गांधी-नेहरू कं०' के षड्यन्त्र का शिकार हो गया। गत बावन वर्षों में ही यह स्थिति आ गयी है कि हिन्दू अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए तड़फड़ा रहा है। उसके अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिह्न लग रहा है।

इस देश की अस्मिता अभी भी यहाँ ८५ प्रतिशत हिन्दू जनता होने के कारण, हिन्दू ही है। यहाँ धर्म, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास सभी हिन्दू नाम से पुकारे जाते हैं। यहाँ की भाव-भावनाएँ, विचार-चिन्तन की धाराएँ सभी कुछ हिन्दू हैं। इस देश की सब प्रकार की विविधताओं को समन्वित करने की शक्ति हिन्दू गंगा में ही है। इस हिन्दू गंगा की शरण में आकर ही शक-हूण आदि विदेशी भी यहाँ के हिन्दू समाज के साथ एकरूप-एकरस हो गये। आज लाख प्रयत्नों के बाद भी उन्हें हिन्दू समाज से अलग कर खोजा नहीं जा सकता है। सबकी भावना, उपासना भी उसी (एक) परमात्मा को ही प्राप्त होती है। इस सिद्धान्त को मानने वाले हम सबकी अस्मिता विशाल समुद्र के समान एकरूप, एकरस हो चुकी है। देश की विशालता के कारण रहन-सहन, खान-पान, पहनावा-भाषा, अलग-अलग होने पर भी हममें मूल एकता की अनुभूति है। कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक कहीं भी हिन्दू-अस्मिता पर आघात होने पर हमें वह आघात अपने ऊपर ही लगता है। यह समाज अपनी भावनाओं से अखण्ड, अविभाज्य तथा एकरूप और एकरस है। इसका सब कुछ इस देश में ही है, उसकी जड़ें यहीं पर हैं। यहीं वह फूल-फल सकता है, विकसित हो सकता है।

आज के मुसलमान और ईसाई भी हमारे रक्त और हाड़-मांस के ही हैं। देश की स्वतन्त्रता के बाद इन्हें भी अपनी हिन्दू माता की गोद में स्थान बना लेना चाहिए था। देश की गुलामी हटाने के बाद हम अब अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्र हो गये हैं। जैसे हम अपनी

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत के 'जिस भूभाग में हिन्दू घटा, वह भाग अपने देश से कटा' और एक नया शत्रु राष्ट्र सीमा पर बन गया। अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इसी कारण कोई हिन्दू मुसलमान या ईसाई बनता है, तो सारे हिन्दू समाज के कान चौकन्ने हो जाते हैं; क्योंकि यह किसी व्यक्ति का साधारण उपासना-पद्धति का परिवर्त्तन नहीं; वरन् राष्ट्रान्तरण, समाजान्तरण जैसा है। सनातनी से आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, सिख आदि कुछ भी बन जाये, हिन्दू के मन में तनिक भी चिन्ता नहीं होती; क्योंकि हम सब एक मूल के ही हैं। उपासना-पद्धति बदलनेवाले उस व्यक्ति का यहाँ राष्ट्रान्तरण नहीं होता। वह राष्ट्र का विरोधी नहीं बनता है; परन्तु मुसलमान, ईसाई बनने पर वह दूसरे के मन्दिरों के गिराने तथा धार्मिक पुस्तकों के जलाने का तरफदार बन जाता है। वह दूसरों की भावनाओं पर आघात करना अपना अधिकार मानता है। अतः मुसलमान और ईसाई जब तक अपना अलगाववाद या अलग अस्मिता का राग अलापना नहीं छोड़ते, तब तक वे यहाँ के 'राष्ट्रीय' कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

आशा और आकांक्षा एक प्रकार की हो गयी है। हम सबकी मान्यता "वसुधैव कुटुम्बकम्" की है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य सबका एक अर्थात् "मोक्ष" है। उपासना की स्वतन्त्रता का अधिकार हमने सबके लिए मात्र स्वीकार ही नहीं किया है; अपितु अपने भाव-भावना के अनुसार ईश्वर की उपासना करने से उसी एक परमेश्वर की प्राप्ति होती है यह भी माना है—

'आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कार केशवं प्रति गच्छति।'

आकाश से गिरा हुआ (वर्षा का) पानी जिस प्रकार भिन्न-भिन्न मार्गों से (अन्ततोगत्वा) समुद्र से जाकर मिलता है, उसी प्रकार भावपूर्वक अपनी पद्धति से की गयी पूजा आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं, उसी प्रकार उन्हें धर्म के नाम पर विदेशियों की गुलामी से भी मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए था। हमारे मुस्लिम और ईसाई भाइयों को विदेशी धार्मिक गुलामी से मुक्त होकर अपने पुरखों के घर वापसी की तैयारी करना चाहिए थी; परन्तु अभी भी वे विदेशी धार्मिक गुलामी में फँसे हैं। इस कारण उन पर कट्टरपान्थिक उन्मेष बना हुआ है। हिन्दुओं से अलगाव का भाव बना हुआ है 'सेपरेट आइडेन्टिटी' (अलग पहचान) का भूत उन्हें अपने प्राचीन पुरखों की गोद में आने से रोक रहा है। इस अलग अस्तित्व के लिए वे समय-समय पर झगड़े, दंगे करते रहते हैं। भारत के घोषित जनतान्त्रिक

देश होने के कारण अपना संख्या बल बढ़ाकर व इसको पाकिस्तान के समान ही नया इस्लामिस्तान तथा ईसाईलैण्ड बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत के "जिस भूभाग में हिन्दू घटा, वह भाग अपने देश से कटा" और एक नया शत्रु राष्ट्र की सीमा पर बन गया। अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इसी कारण कोई हिन्दू मुसलमान या ईसाई बनता है, तो सारे हिन्दू समाज के कान चौकन्ने हो जाते हैं; क्योंकि यह किसी व्यक्ति का साधारण उपासना–पद्धति का परिवर्त्तन नहीं; वरन् राष्ट्रान्तरण, समाजान्तरण जैसा है। सनातनी से आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, सिख आदि कुछ भी बन जाये, हिन्दू के मन में तनिक भी चिन्ता नहीं होती; क्योंकि हम सब एक मूल के ही हैं। उपासना–पद्धति बदलनेवाले उस व्यक्ति का यहाँ राष्ट्रान्तरण नहीं होता। वह राष्ट्र का विरोधी नहीं बनता है; परन्तु मुसलमान, ईसाई बनने पर वह दूसरे के मन्दिरों के गिराने तथा धार्मिक पुस्तकों के जलाने का तरफदार बन जाता है। वह दूसरों की भावनाओं पर आघात करना अपना अधिकार मानता है। अतः मुसलमान और ईसाई जब तक अपना अलगाववाद या अलग अस्मिता का राग अलापना नहीं छोड़ते, तब तक वे यहाँ के 'राष्ट्रीय' कहलाने के अधिकारी नहीं हैं, हिन्दू राष्ट्र के अविच्छिन्न अंगभूत नहीं बन सकते। अल्पसंख्यक (माइनारिटी) का नारा निरर्थक है। दूसरे शब्दों में यह देश से अलगाव का ही नारा है।

यह अखण्ड, अविभाज्य एकरस हिन्दू राष्ट्र है। यहाँ कोई अल्पसंख्यक नहीं है। देश की अस्मिता के साथ कोई सौदे की बात नहीं। इस देश की जड़ से उपजे सभी धार्मिक सम्प्रदाय हिन्दू समाज के अन्तर्गत हैं। यही देश की राष्ट्रीयता है। हिन्दू छाते के अन्तर्गत सभी सुरक्षित हैं। यह बात अब सभी गिरिवासी और वनवासी तथा पिछड़े बन्धु भी समझने लगे हैं। पूर्वोत्तर भारत में विशेष रूप से बरगलाकर ईसाई बनाये गये जनजातियों वाले अब इस तथ्य को समझकर पुनः अपने पूर्वजों (पुरखों) के धर्म–पन्थ में वापस आ रहे हैं। वे अनुभव करने लगे हैं कि हम हिन्दुओं में हजारों वर्षों से रहते आये हैं, फिर भी उन्होंने हमें हमारी अपनी विशेष अस्मिता से विमुख नहीं किया। ईसाइयों के साथ हम ५०–१०० वर्षों में ही अपनी अस्मिता को छोड़ बैठे। हिन्दू समाज के अन्य पन्थों ने हमारी अस्मिता पर कभी आघात नहीं किया। वे भी हमारे ही समान भाव–भावनाओं वाले हैं। प्रकृति पूजक हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि की उपासना करते हैं। गाय, सर्प–नाग, तुलसी, पीपल आदि, पशु तथा वृक्षों की पूजा करते हैं। अतः हम उनके साथ सुरक्षित हैं। उन्होंने एक और महत्त्व की बात यह अनुभव की कि सागर के एक बिन्दु का अस्तित्त्व तभी तक सुरक्षित है, जब तक वह उस विशाल समुद्र का एक अभिन्न अंग हैं। नागाओं का जेलियाङ्राङ् हरक्का असोसिएशन तथा खासी जनजाति का सङ्–खासी आन्दोलन इसी प्रकार की जागृति का परिणाम है। इस प्रकार ये गिरिवासी, वनवासी जनजातियाँ, जो हमसे अलगाव मानती थीं, अब वे मुख्य धारा में सम्मिलित हो रही हैं।

आज देश में अल्पसंख्यक की राजनीति चल गयी है। राजनीतिक दलों द्वारा इनके अलगाववादी तत्त्वों को अल्पसंख्यक या माइनारिटी के नाम पर संरक्षण प्रदान किया जा रहा हैं। कांग्रेस, जनता, समाजवादी, वामपन्थी सभी दलों द्वारा इनकी अलगाववादी भावनाओं को भड़काया जा रहा है। उन्हें हिन्दुओं से दूर करने, तोड़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है। उनके वोट अपने लिए सुरक्षित करने की होड़ में ये राजनीतिक दल किसी भी नीचे से नीचे स्तर तक गिरने को तैयार हैं। **देश के साथ किसी प्रकार का द्रोह करने में भी ये पीछे नहीं हटेंगे। हर एक को अल्पसंख्यक की ही चिन्ता है। बहुसंख्यक की भावनाओं का विचार भी किसी को छू नहीं रहा है। कश्मीर घाटी सें हिन्दुओं को भगाया जा रहा है। मारा–काटा जा रहा है, किसी को परवाह नहीं। बहुसंख्यकों का खून, खून नहीं, पानी है। चकमा हिन्दू मारे जा रहे हैं, किसी को चिन्ता नहीं। रियाङ् खुले आसमान में सारे जाड़े रहे, भूखे रहे, उनके लिए कोई रोनेवाला नहीं है। कोई आतंकवादी, मुसलमान या ईसाई मारा जाये, तो सारे देश में ही नहीं, दुनिया भर में तहलका मचा दिया जाता है। हिन्दुओं की गोरक्षा की माँग स्वतन्त्रता के ५२ वर्षों के बाद तक भी किसी को सुनने की फुर्सत नहीं है। गोहत्या करना दण्डनीय अपराध नहीं, गोरक्षा की माँग दण्डनीय हो गयी है। विद्यालयों में देश, धर्म के संस्कार देना हिन्दुओं के लिए दण्डनीय अपराध है, अन्यों को छूट है। सरस्वती वन्दना, वन्दे मातरम् गाना अपराध ही नहीं, पाप हो गया है, दण्डनीय हो गया है। हिन्दू लड़कियाँ भगाना "माइनारिटीज" का धर्म है उन्हें रोकना साम्प्रदायिकता भड़काना है। ऐसी स्वतन्त्रता को अगर अधूरी स्वतन्त्रता कहा जाता है, तो कहने वाला देशद्रोही माना जाता है। अल्पसंख्यकों की हर माँग राष्ट्रीय और हिन्दू की हर माँग साम्प्रदायिक हो गयी है।** अगर यह

कहा जाये कि हमारा यह राष्ट्र अब अल्पसंख्यकों का राष्ट्र हो गया है, जहाँ बहुसंख्यकों के साथ ऐसा व्यवहार हो, तो हमें यह कहने को बाध्य होना पड़ रहा है कि– अर्थात् भारत यह अल्पसंख्यकों का देश बन गया है। अब यह बहुसंख्यकों (हिन्दुओं) का देश नहीं रहा।

हिन्दू की बात करते ही हम कम्यूनल या साम्प्रदायिक हो जाते हैं। राजनीतिक दलों की शह पाकर मुसलमान, ईसाई तो हमको कोसते ही हैं; परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश, धर्म के प्रति गौरव के भाव बढ़ानेवाली बातों को करने के लिए हमें एक विशेष साँचे में ढला हिन्दू भी कोसता है। उसे डर है कि कहीं उसे साम्प्रदायिक न कह दिया जाये। कांग्रेस, जनता, सोशलिस्ट, वामपन्थी सभी तो अधिकांश हिन्दू ही हैं। गरीब, अपढ़, वनवासी हिन्दुओं को छल–कपट, लोभ–लालच और जोर–जबर्दस्ती से ईसाई या मुसलमान बनाना वे जायज मानते हैं। सारा समाचार–जगत् आज विदेशियों के चंगुल में हिन्दुत्व का विरोध करता है। ये भी १०० नहीं, तो ९५ प्रतिशत हिन्दू ही हैं। अपना ही सिक्का खोटा हो, तो किसे दोष दिया जाये? परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस देश में अपमानित और हताश हिन्दू भी बचेगा? उसकी अस्मिता या विशेषता बचेगी, क्या उसका धर्म बचेगा? गीता में कहा है— "कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनः।" हिन्दू तो इतिहास में नामशेष हो जायेगा साथ ही उसका सनातन धर्म भी नष्ट हो जायेगा। शायद कुछ हिन्दू बचें तो वे अजायबघर में ही रखने लायक बचेंगे और उन्हें देखकर शायद आगे कुछ प्रामाणिक शोधकर्ता ही लम्बी साँस लेकर कहें कि "आह! इस देश में कभी हिन्दू नाम का एक निरीह प्राणी रहता था। बड़ा अच्छा था पर अब बेचारा मिट गया इस दुनिया से।" इस देश में चलने वाले तथाकथित सेक्युलरिज्म की यही परिणति है। हमें प्राणपण से अपने इस हिन्दू समाज की रक्षा करनी होगी।

क्या हमें इस अपने देश, हिन्दुओं के हिन्दुस्थान में, आज जिसे भारत कहा जा रहा है, उस भारत में कोई बहुसंख्यक बचाओ अभियान (Save majority Campaign) प्रारम्भ करना होगा। "बहुसंख्यकों की रक्षा करो" के नारे स्वतन्त्र भारत के स्वर्ण जयन्ती वर्ष मनाने के बाद भी लगाने होंगे। **देश में आज लुप्तप्राय वन्य प्रजातियों की रक्षा की चिन्ता की जा रही है, यह ठीक ही है। उनको बचाने के लिए करोड़ों रुपये खर्च किये जा रहे हैं। हिंस्र और घोर विषैले पशुओं की प्रजातियों की भी रक्षा की जायेगी; क्योंकि परमपिता परमात्मा द्वारा निर्मित वे प्रजातियाँ कहीं लुप्त न हो जायें। "ब्राह्मणे गवि हस्तिनी" या "शुनिचैव श्वपाके च" सबको एक भाव से देखनेवाले हिन्दुओं के लिए ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है। परन्तु ऐसा सोचनेवाला हिन्दू ही नहीं बचेगा, तो उनकी भी रक्षा कैसे होगी? क्या कोई माई का लाल संसार से मिटने वाली इस हिन्दू प्रजाति की रक्षा की भी चिन्ता करेगा?** □

– संकट मोचन आश्रम, सेक्टर–६, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–११००२२

हिन्दू की बात करते ही हम कम्यूनल या साम्प्रदायिक हो जाते हैं। राजनीतिक दलों की शह पाकर मुसलमान, ईसाई तो हमको कोसते ही हैं; परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश, धर्म के प्रति गौरव के भाव बढ़ानेवाली बातों को करने के लिए हमें एक विशेष साँचे में ढला हिन्दू भी कोसता है। उसे डर है कि कहीं उसे साम्प्रदायिक न कह दिया जाये। कांग्रेस, जनता, सोशलिस्ट, वामपन्थी सभी तो अधिकांश हिन्दू ही हैं। गरीब, अपढ़, वनवासी हिन्दुओं को छल–कपट, लोभ–लालच और जोर–जबर्दस्ती से ईसाई या मुसलमान बनाना वे जायज मानते हैं। सारा समाचार–जगत् आज विदेशियों के चंगुल में हिन्दुत्व का विरोध करता है। ये भी १०० नहीं, तो ९५ प्रतिशत हिन्दू ही हैं। अपना ही सिक्का खोटा हो, तो किसे दोष दिया जाये? परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस देश में अपमानित और हताश हिन्दू भी बचेगा? उसकी अस्मिता या विशेषता बचेगी, क्या उसका धर्म बचेगा? गीता में कहा है— "कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनः।" हिन्दू तो इतिहास में नामशेष हो जायेगा साथ ही उसका सनातन धर्म भी नष्ट हो जायेगा। शायद कुछ हिन्दू बचें तो वे अजायबघर में ही रखने लायक बचेंगे और उन्हें देखकर शायद आगे कुछ प्रामाणिक शोधकर्ता ही लम्बी साँस लेकर कहें कि "आह! इस देश में कभी हिन्दू नाम का एक निरीह प्राणी रहता था। बड़ा अच्छा था पर अब बेचारा मिट गया इस दुनिया से।" इस देश में चलने वाले तथाकथित सेक्युलरिज्म की यही परिणति है।

पर्यावरण-दिवस (५ जून) पर विशेष—

गैंडा कहीं यह लुप्त न हो जाय

गैंडा हाथी के बाद विश्व का सबसे बड़ा स्थलजीवी प्राणी है। गैंडों की पाँच जातियाँ हैं, उनमें से दो अफ्रीका में पायी जाती हैं और तीन एशिया में। आकार की दृष्टि से भारत का एकशृंगी गैंडा सबसे बड़ा है, उसका वजन दो–ढाई टन होता है। मादा कुछ छोटी होती हैं। एकशृंगी गैंडा भारत के उत्तर–पूर्वी भागों और नेपाल में पाया जाता है।

गैंडे की चमड़ी बालहीन, अत्यन्त मोटी, कठोर और सिलवटोंवाली होती है। कंधे, जाँघों और नितम्बों में चमड़ी पर अनेक गिलटियाँ बनी होती हैं। जावा के गैंडे का शरीर बालयुक्त होता है। उसे गैंडों की सबसे प्राचीन जाति माना गया है। आज वह लुप्तप्राय अवस्था में जी रहा है। उसके शायद बीस से भी कम नमूने बचे हैं।

भारत के गैंडे की नाक के सिरे पर केवल एक सींग होता है, जबकि गैंडों की अन्य जातियों में दो सींग होते हैं, ये सींग नर और मादा दोनों में रहते हैं। गैंडे के सींग गाय– बैल के सींग के समान हड्डी के नहीं बने होते; वरन् ये बालों के परिवर्त्तित रूप होते हैं, वे उसी पदार्थ के बने होते हैं। जिससे गाय–बैलों के खुर, उखड़ जाने पर नया सींग उग आता है।

ऐसी मान्यता है कि गैंडे के सींग में काम–शक्ति में वृद्धि लाने की अद्भुत क्षमता है। यह विश्वास चीन व सुदूर–पूर्व के देशों में अधिक प्रचलित है। इसी अन्धविश्वास के कारण गैंडों का बड़े पैमाने पर शिकार होता है, यहाँ तक कि इस प्राणी का अस्तित्व ही अब खतरे में पड़ गया है। गैंडे के सींग से कटारों के हत्थे व अन्य कलाकृतियाँ भी बनायी जाती हैं। पुराने जमाने के लोग यह भी मानते थे कि गैंडे के सींग से बना कटोरा जहर को भी निष्क्रिय बना देता है। राजा–महाराजा गैंडे के सींग के कटोरों का ही उपयोग करते थे; क्योंकि उन्हें हमेशा डर बना रहता था कि उनके शत्रु उन्हें जहर पिला देंगे। आज ऐसे बहुत से कटोरे अजायबघरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। कहने की जरूरत नहीं कि इन विश्वासों में वैज्ञानिक सच्चाई जरा भी नहीं है।

गैंडे की देखने की शक्ति कमजोर होती है। २०–४० मीटर की दूरी पर खड़े आदमी या पेड़ को भी वह साफ–साफ नहीं देख सकता। उसकी सुनने की शक्ति अधिक विकसित होती है। सबसे अधिक विकसित उसकी सूँघने की शक्ति होती है, जो कुत्ते की बराबरी कर सकती है। अपना बचाव करने के लिए गैंडा अपने सींगों का प्रयोग तो करता ही है, आगे के तीक्ष्ण दाँतों से काटता भी है। गैंडा सामान्यतः धीमी चाल से चलता है, पर जरूरत पड़ने पर ४० किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ भी सकता है।
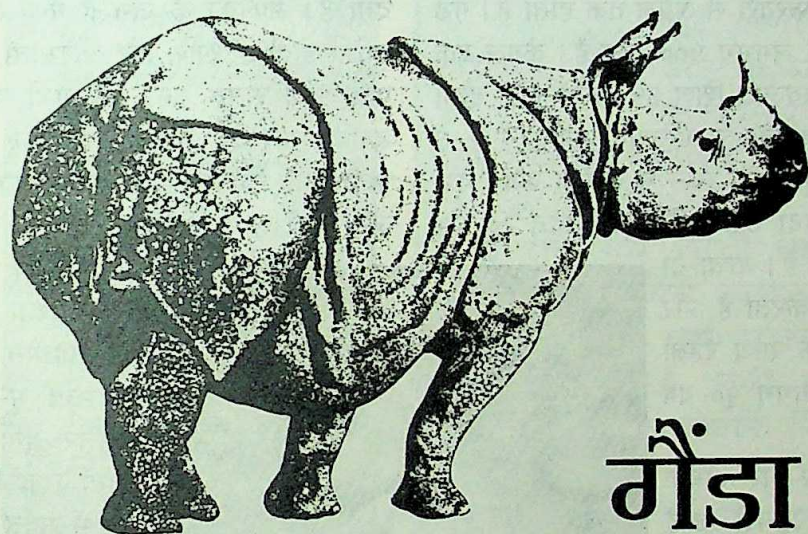
गैंडा घास, टहनी आदि खाता है। वयस्क नर को रोजाना १०–२० किलो वनस्पति खानी पड़ती है और ८०–१०० लीटर पानी पीना पड़ता है। उसे कीचड़ में लोट लगाना पसन्द है। यह उसकी चमड़ी को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक भी है। गैंडा अच्छा तैराक होता है और ब्रह्मपुत्र जैसी चौड़ी नदियों को भी तैरकर पार कर सकता है।

किसी इलाके के सभी गैंडे एक ही स्थान पर आकर मल–त्याग करते हैं। ये स्थान जल–स्रोतों के पास, कीचड़वाले स्थानों में अथवा घास के मैदानों के

इनका भी अस्तित्व संकट में
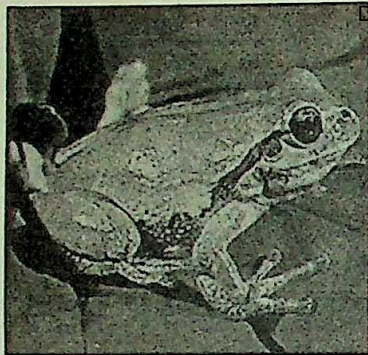
किनारे होते हैं, गैंडे ऊँची घास में रात बिताते हैं। दिन की उष्णता से छुटकारा पाने के लिए भी वे घास में लेटे रहते हैं। गैंडा हर रोज ८–१० घण्टा सोता है, वह ज्यादा घुमन्तू प्राणी नहीं है। हर गैंडे का एक निश्चित क्षेत्र होता है, वह वहीं रहता है।

मादा तीन वर्ष की होने पर प्रजनन करने लगती हैं; पर नर इसके लिए ७ से ६ वर्ष लगा देते हैं।.असम में गैंडों का मैथुन–काल फरवरी से अप्रैल तक होता है। गैंडे के गर्भाधान की अवधि लगभग ५०० दिन है। केवल एक बच्चा पैदा होता है। नवजात शिशु ६५ किलो भारी होता है। वह तेजी से बढ़ता है। रोज उसके वजन में २–३ किलो की वृद्धि होती है। एक साल में उसका वजन दस गुना बढ़ जाता है। मादा उसके लिए प्रति दिन २०–२५ लीटर दूध पैदा करती है। बच्चा दो साल तक स्तन–पान करता है और ३–४ साल तक माँ के साथ रहता है। गैंडों की आयु लगभग ५० वर्ष की होती है।

गैंडे के शरीर पर अनेक परजीवी पनपते हैं। इनसे उन्हें ओक्सपेकर नामक पक्षी छुटकारा दिलाता है। वह गैंडों की पीठ पर ही बैठा रहता है और उनके शरीर पर रेंग रहे कीड़ों को खाता है। वह निडरता से गैंडे के कान, नाक, आँख आदि के अन्दर घुसकर वहाँ से कीड़े पकड़ता है।

बहुत कम दिखता है पेलिकन

अन्य जानवर गैंडों से अलग ही रहते हैं; क्योंकि गैंडे थोड़े चिड़चिड़े स्वभाव के होते हैं। आपस में भी वे बहुत लड़ते हैं और एक–दूसरे को घायल करते रहते हैं। वे समूहचारी प्राणी नहीं हैं, केवल माँ और बच्चे साथ–साथ विचरते हैं। घास के मैदानों में गैंडों के चलने से कुछ सुनिश्चित रास्ते बन जाते हैं। इनमें से कुछ रास्तों पर सभी गैंडे आते–जाते हैं, लेकिन कुछ निजी रास्ते भी होते हैं, जिन पर केवल एक गैंडा चल सकता है। दूसरे गैंडों के उस रास्ते पर आने पर वह उन पर आक्रमण कर देता है। पर्यटकों के हाथियों पर भी गैंडा कई बार हमला कर देता है; पर सामान्यतः वह हाथी के बहुत पास तक आकर बिना कुछ किये पलट जाता है।

जंगल में बड़े गैंडे केवल हाथियों से डरते हैं। उनके साथ मुठभेड़ हो जाने पर वे आमतौर पर हाथियों को रास्ता दे देते हैं; पर कुछ बड़े नर कभी–कभी हाथियों को चुनौती भी दे बैठते हैं। तब दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। इसका अनिवार्य परिणाम गैंडे की मृत्यु होता है। हाथी उसे अपने दाँत चुभोकर मार देता है। मारने के बाद कई बार हाथी उसके शरीर को टहनियों या मिट्टी से ढँक देता है। अफ्रीका के जंगलों में ऐसी घटनाएँ अनेक बार घटित होती हैं, खास कर जलस्रोतों के पास। कभी–कभी पानी पीते समय मगरमच्छ गैंडों को पानी में खींचकर डुबोकर मार देते हैं। एक बार एक बड़े दरियाई घोड़े ने पानी पीते गैंडे को पानी में खींचकर उसे अपने कटार जैसे दन्तों से फाड़ डाला। अफ्रीका में सिंह गैंडों के बच्चों को मारते हैं। भारत में बाघ उनका शिकार करता है।
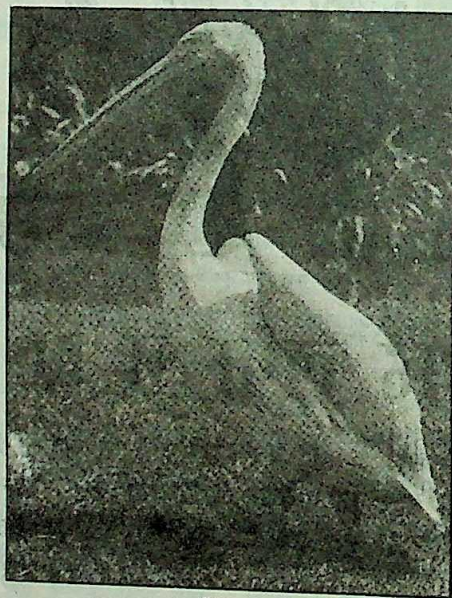
प्राचीन समय में गैंडे भारत के विस्तृत भू–भागों में पाये जाते थे। उत्तरी बर्मा से लेकर सिन्धु नदी के तटों तक हिमालय के पादवर्ती प्रदेशों में सर्वत्र गैंडे स्वच्छन्द विचरते थे। सारस्वत (सिन्धु घाटी) सभ्यता की अनेक मुद्राओं में गैंडे के चित्र अंकित हैं, जिससे स्पष्ट है कि आज से ५००० साल पहले गैंडे भारत के पश्चिमी भागों में पाये जाते थे; परन्तु आज वे असम व पश्चिम बंगाल के दो–एक छोटे अभयारण्यों में सिमटकर रह गये हैं। असम में स्थित काजीरंगा अभयारण्य में भारतीय गैंडे का सबसे बड़ा झुण्ड है। वहाँ लगभग १२५० गैंडे हैं।

भारत में गैंडे के संरक्षण में अनेक अड़चनें आती हैं। एक तो वे बहुत धीमी गति से प्रजनन करते हैं और दूसरे वनों के विनाश से उनके फलने–फूलने के लिए

(शेष पृष्ठ ६७ पर)

बधाई।

प्रतिभा आयु की मुखापेक्षी नहीं होती' यह कथन सिद्ध कर दिखाया है मेरठ निवासी ढाई वर्षीय भैया आयुष जैन ने। इतनी कम आयु में इन्होंने ५४ किमी० की रोड स्केटिंग करके विश्व कीर्तिमान स्थापित किया है।

प्रतिदिन २ किमी० की स्केटिंग करके शिव मन्दिर में शिवलिंग पर जलाभिषेक करनेवाले भैया आयुष जैन स्केटिंग की अनेक प्रतियोगिताओं में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करते हुए राष्ट्रीय वैजयन्ती से सम्मानित हो चुके हैं।

हिन्दुस्थान की इस उदीयमान प्रतिभा को 'राष्ट्रधर्म' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई। भैया आयुष जैन का पता है—

आयुष जैन पुत्र श्री विनीत जैन
प्रेमपुरी, मेरठ (उ०प्र०)

प्रकृति सिखाती

– हरि प्रकाश मिश्र 'अमित'

सूरज कहता हरो अँधेरा,
आभा नवल पसारो।
धवल रजतधर चन्दा कहता
शीतलता को धारो।
तारे कहते मिलो सभी से
प्यार अनूठा करना।
धरा सिखाये बोझ उठाना
धुआँ गगन पर चढ़ना।
कुक्कुट कहता जगो सबेरे
नहीं कभी अलसाओ।
कोयल रानी अलख जगाये
गीत मधुरतम गाओ।
तोता कहता जपो राम को
सीखो नित शुभ करना।
नन्हें तन की चींटी कहती
काम लगन से करना।
पर्वत कहता चूम गगन लो
नहीं कभी तुम झुकना।
सरिता की जलधार सिखाती
मत राहों में रुकना।
बादल कहते सरस बनो सब
दो प्यासे को पानी।
वृक्ष धरा के सुन्दर गहने
कहते बनना दानी।
भौंरा कहता गुण अपनाओ,
रहना हरते सब गम।
कहता फूल सदा मुस्काओ
जब तक है दम में दम।
सागर कहता भरो उमंगें
खुद में जगत् बसाओ।
सीख अनोखी एक क्षितिज की
उर समता उपजाओ।

–ग्राम–खजुरिया मिश्र, कठार जंगल,
बस्ती–२७२३०२

गणितज्ञ भी थे सर आशुतोष मुखर्जी

- जयव्रत चटर्जी

इस बात को बहुत कम लोग ही जानते होंगे कि बंग-केसरी सर आशुतोष मुखर्जी एक विश्व ख्याति के गणितज्ञ भी थे। उनका जन्म २६ जून १८६४ को कलकत्ता में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गंगा प्रसाद मुखर्जी था। गंगा प्रसाद उन दिनों प्रसिद्ध चिकित्सकों में गिने जाते थे। घर, रहन-सहन अच्छे स्तर का था। आशुतोष की देखभाल ठाठ-बाट से होने लगी। आरम्भिक शिक्षा घर पर ग्रहण करने के बाद आशुतोष ने स्थानीय एक स्कूल में १५ वर्ष की अवस्था में हाईस्कूल की परीक्षा पास की। कक्षा में उन्होंने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रेसीडेंसी कालेज में दाखिला लिया।

आशुतोष बड़े कर्मठ युवा थे। पुस्तकों से उन्हें विशेष प्रेम था। विद्यार्थी समाज में वह किताबी-कीड़ा नाम से प्रसिद्ध थे। गणित उनका प्रिय विषय था। वह अपना अधिकतर समय गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों को हल करने में लगाते थे। अपनी कक्षा के प्रश्नों को उन्होंने आसानी से हल कर दिया था। गणित में उनकी इस योग्यता की ख्याति इंग्लैण्ड तक जा पहुँची थी।

गणित में उनकी प्रतिभा को देखकर उन्हें लन्दन में मेडिकल एसोसिएशन का सदस्य बनाया गया। उन्होंने गणित और ज्यामिति के तमाम प्रश्नों को हल कर बहुत सारे पुरस्कार जीते।

ज्यामिति में कुछ सूत्र उनके इतने सुन्दर और मौलिक थे कि उन्हें इंग्लैण्ड के गणित-अध्ययन में शामिल कर लिया गया। इनको मुखर्जी क्योरियम का नाम दिया गया। आशुतोष अभी स्कूल के विद्यार्थी ही थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने उनके इस सूत्र को पर्याप्त समर्थन दिया।

आशुतोष की गणित के प्रति दिन-प्रतिदिन रुचि बढ़ती जा रही थी। इसी समय की एक रोचक घटना है कि कलकत्ता के ही एक गणित के अध्यापक महोदय को अपनी गणित की विद्वत्ता पर बड़ा गर्व था। उन्होंने आशुतोष के बारे में सुना- अध्यापक महोदय ने अपने स्कूल में आशुतोष को बुलाया और कुछ कठिन प्रश्न हल करने को दिये। अध्यापक महोदय ने आरम्भ में खुद इन प्रश्नों को हल करना चाहा; पर बहुत सिर खपाने के बाद भी वे इन प्रश्नों को हल न कर सके। कक्षा के विद्यार्थियों के सामने अध्यापक महोदय की हालत खराब हो रही थी। आखिर आशुतोष ने उठकर इन प्रश्नों को हल कर दिया। अध्यापक महोदय का सिर लज्जा से झुक गया।

आशुतोष गणित के साथ-साथ अंग्रेजी, दर्शन, संस्कृत आदि विषयों का भी अध्ययन करते थे।

इसी समय रेजीडेंसी कालेज के गणित अध्यापक डॉ० मैकन की मृत्यु हो गयी। आशुतोष ने इन गणित के अध्यापक महोदय की स्मृति में कालेज में ही 'मैकन मेमोरियल कमेटी' की स्थापना की तथा इन अध्यापक महोदय की स्मृति में पदक प्रदान करने का सिलसिला आरम्भ किया।

इस कालेज से उन्होंने एम०ए० की परीक्षा गणित से लेकर पास की। एम०ए० की परीक्षा में अच्छे नम्बर प्राप्त करने के कारण उन्हें छात्रवृत्ति मिलने लगी। आशुतोष साहित्य विषय लेकर एम०ए० करना चाहते थे; पर विश्वविद्यालय ने उन्हें यह कहकर अनुमति नहीं दी कि उन्हें गणित में छात्रवृत्ति मिल रही है। इसी समय उन्हें "रायल सोसायटी ऑफ लन्दन" का सदस्य बनाकर सम्मानित किया गया। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

अचानक आशुतोष गणित का अध्ययन अध्यापन छोड़कर कानून के पेशे में आ गये। उन्होंने कानून को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। उनकी गिनती कलकत्ता के प्रमुख वकीलों में होती थी।

सरकार ने उन्हें कलकत्ता उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश बनाकर सम्मानित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को भी सुशोभित किया। भारतीय जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी इन्हीं के सुपुत्र थे।

इस महान् भारतीय विभूति का देहावसान २५ मई १९२४ को हुआ था। महान् देशभक्तों की सूची में सर आशुतोष का नाम सदा अमर रहेगा। ▪

— १८०३, गली रामदास, मण्डी रामदास, मथुरा (उ०प्र०)

बलिदान-दिवस (१७ जून) पर विशेष-

सुखी जीवन की राह

– चित्रेश

यह घटना पाँचवें सिख गुरु अर्जुन देव जी के समय की है। एक दिन गुरु महाराज के पास भजन गायकों की एक मण्डली पहुँची। मण्डली के बुजुर्ग गायक ने उनसे फरियाद की– "हमारे महान् गुरु! हम बड़ी आशा लगाकर आपके पास आये हैं, मेहरबानी करके हमारी मदद करें।"

गुरु जी ने उनको बड़े प्रेम से बैठाया, फिर बोले– "तुम्हें क्या परेशानी है? साफ–साफ बताओ, मैं तुम लोगों की हर सम्भव मदद करूँगा।"

"महाराज जी! हमारी सारी परेशानियों की जड़ है हम सबकी गरीबी। अगर हमें कहीं से मोटी रकम मिल जाये तो हम भी खुशहाल हो सकते हैं। बूढ़े भजनीक ने एक क्षण के लिए रुककर अपनी बात आगे बढ़ायी। "यह सच है कि कोई एक आदमी हमें इतना पैसा नहीं दे सकता, मगर प्रभु के सारे सच्चे भक्त एक–एक रुपये की दर से भी हमारे लिए निकाल दें, तो हमारा काम बन सकता है..."

गायक शान्त चित्त बैठे गुरुजी पर एक नजर डालकर आगे कुछ कहने वाला था, तभी मण्डली का नौजवान ढोलकिया बोल पड़ा– "पूज्य गुरुजी! हमारी प्रार्थना पर शायद ही कोई इसके लिए तत्पर होगा। हाँ, आपके जरिये यह बात सारे भक्तों तक पहुँचा दी जाये तो सब तत्काल अपने हिस्से का पैसा खुशी–खुशी आपके पास हाजिर कर देंगे।"

ढोलकिये की बात समाप्त होने पर वहाँ चुप्पी छा गयी। मण्डली वालों की याचना भरी निगाहें गुरु महाराज पर टिकी थीं, साथ ही सबके मन में उथल–पुथल मची थी कि पता नहीं, गुरु जी हमारा काम करने को राजी भी होंगे या नहीं। तभी अर्जुन देव जी नजर उठाकर कुछ क्षण सबको सहानुभूति के साथ देखते रहे, फिर धीरे–धीरे उनके गम्भीर चेहरे पर मुस्कान दौड़ गयी। उन्होंने सबको आश्वस्त करते हुए कहा– "तुम सब निश्चिंत रहो, मैं तुम लोगों के सुझाव के अनुसार सभी सच्चे भक्तों का पैसा इकट्ठा करके तुम्हारे हवाले कर दूँगा, मगर इसमें थोड़ा समय लगेगा।" यह सुनते ही मण्डली के सारे सदस्य खुशी से उछल पड़े। वे गुरुजी का गुणगान करते अपने–अपने घर चले गये। उनका ख्याल था कि पन्द्रह–बीस दिन बाद ही गुरु जी बुलवाएँगे और तब.... ढेरों पैसा पाने की कल्पना से उनकी प्रसन्नता आसमान छूने लगती।
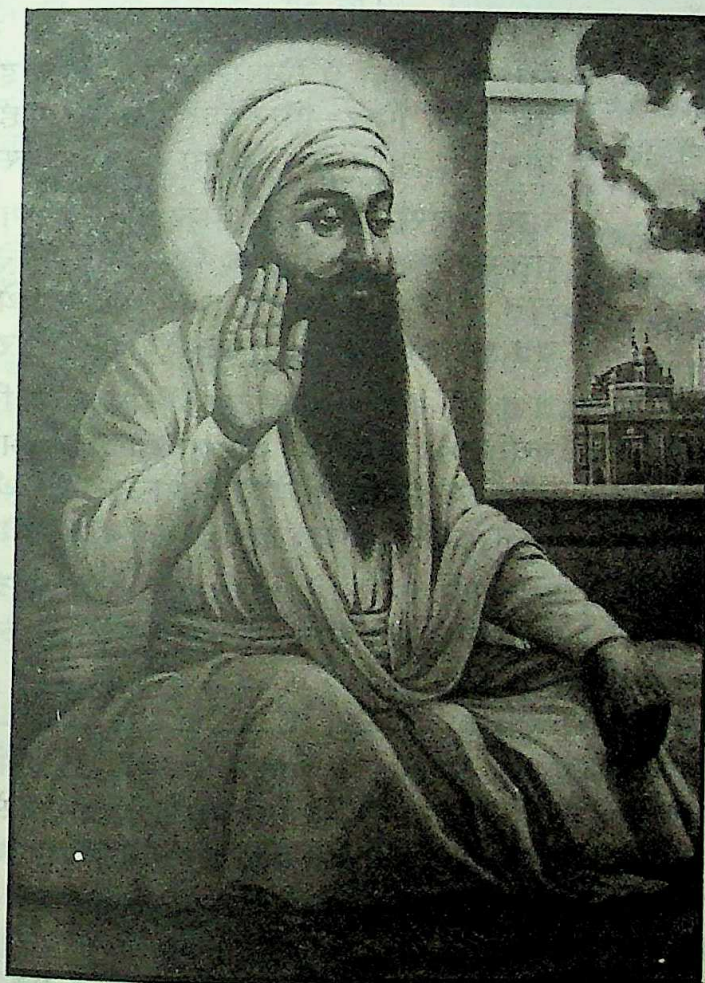
मगर एक महीना बीत गया। गुरु महाराज के दरबार से कोई सूचना न आयी। उनका धैर्य टूट गया। वे दोबारा गुरुजी के यहाँ जा पहुँचे।

"मैं भूला नहीं हूँ, पर अभी कुछ दिन और इन्तजार करना पड़ेगा।" अर्जुन देव जी ने गायकों को बताया।

इस बार भजन मण्डली पूरी तरह निश्चिन्त होकर लौटी थी। गायक लोग अपने सुखमय जीवन के लिए योजनाएँ बनाने में लग गये। रहने के लिए सभी को अच्छे मकान चाहिए थे। इसके दरवाजे और खिड़कियों का नक्शा भी सब अपनी रुचि के अनुसार तय कर चुके थे। रही कमाने-खाने के स्थायी साधन की बात, तो कोई किसानी के लिए जमीन खरीदने की सोच रहा था, किसी की रुचि पशुपालन में थी, वे गाय-भैंस और अच्छी नस्ल की बकरियाँ खरीदने की फिराक में थे। ढोलकिया और मजीरा बजाने वाले के मन में दुकानदारी की बात थी। मगर अभी कुछ हो नहीं पा रहा था। क्योंकि धीरे-धीरे दो माह बीतने के बाद भी अब तक गुरु जी ने कोई सन्देश नहीं भिजवाया था। उन्हें फिर शंका घेरने लगी- "कहीं गुरु जी भूल तो नहीं गये?"

"ऐसा नहीं हो सकता।" बूढ़े गायक ने जोर देकर अपने साथियों को समझाया- "गुरु जी वादा करके भूलने वाले नहीं हैं। किसी खास वजह से देर हो रही है। मैं कल जाकर पता कर आता हूँ।"

अगले रोज दरबार में हाजिर होकर बूढ़े भजनीक ने गुरु जी को प्रणाम किया। उसके आने का मतलब गुरु महाराज जानते ही थे। बोले- "अब इन्तजार का समय खत्म हुआ। तुम सब परसों आ जाओ।"

उसने लौटकर यह खुशखबरी अपने साथियों को सुनायी। ढोलकिये ने शंका प्रकट की- "मगर अभी तक गुरुजी की तरफ से प्रभु के भक्तों के लिए ऐसा कोई सन्देश नहीं प्रसारित हुआ है, जिसमें हमारे लिए पैसा देने की बात कही गयी हो।"

"हो सकता है, गुरु जी सारे भक्तों की तरफ से खुद पैसा देने वाले हों।" एक गायक ने अपना विचार रखा।

दूसरे ने उसकी बात काट दी- "इतना पैसा कहाँ होगा गुरु जी के पास?"

"कैसे नहीं होगा? तीसरे ने अपना तर्क रखा- "गुरु जी जितने प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं, वह

माँ मुझे फिर से सुना दो...

– सुमन श्रीवास्तव
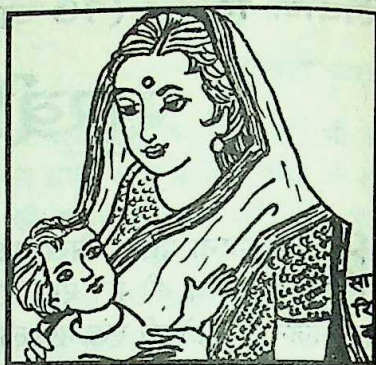
माँ! मुझे फिर से सुना दो, वीर पुत्रों की कहानी।
वह उफनती धार–सी, रणभूमि में लड़ती जवानी।।

पाँच होकर भी जिन्होंने, सैकड़ों का गर्व तोड़ा।
लेट शरशय्या पे जिसने, था अमिट इतिहास छोड़ा।।
वह कथा फिर–फिर कहो, होती नहीं है जो पुरानी।
वीर था अभिमन्यु कैसा, और कैसा कर्ण दानी?

घाव अस्सी थे लगे, फिर भी न रण से पीठ मोड़ी।
वन में भटक रह युद्धरत, किसने नहीं निज आन छोड़ी।।
चुन गये दीवार में जो, कौन थे धर्माभिमानी?
वह मराठा कौन? मुगलों की न जिसने एक मानी।।

देश के स्वातन्त्र्य हित, फौज थी किसने बनायी?
क्यों नहीं 'आजाद' की, गाथा गयी अब तक भुलायी?
दाँत खट्टे कर दिये अंग्रेज के, थी कौन रानी?
झूल फाँसी पर गये, थे कौन वे देशाभिमानी?

माँ मुझे फिर से सुना दो, वीर पुत्रों की कहानी।
वह उफनती धार–सी, रणभूमि में लड़ती जवानी।।

– *'अवस्थी भवन', बीड़े हलवाई के पीछे, कटरा, बाँदा–२१०००१ (उ०प्र०)*

बिना ढेरों पैसा पास हुए सम्भव ही नहीं।

"उनके पास पैसा हो सकता है, लेकिन खुद देना होता, तो तीन महीना इन्तजार क्यों कराते?" मँजीरे वाले ने सवाल उठाया।

"जो भी होगा, दो दिन बाद सामने आ जायेगा।" बुजुर्ग गायक ने उनको बहस से रोकते हुए कहा– "हो सकता है, परसों उन्हें कोई महाजन इस मद के लिए मोटी रकम देने का वादा किया हो।"

जैसे–तैसे दो दिन बीता। भजन मण्डली के सदस्य बड़े–बड़े थैले लिए गुरु महाराज के सामने हाजिर हो गये। गुरु जी ने जेब से एक छोटी सी थैली निकाल कर गायकों की तरफ बढ़ा दी– "यह लो।"

सारी मण्डली भौंचक्की रह गयी। कहाँ तो वे सोच रहे थे चार–छह बोरे सिक्के मिलेंगे और यह छोटी–सी थैली। बुजुर्ग गायक ने थैली लेकर इस आशा से खोलकर देखा– हो न हो इसमें बहुमूल्य मणियाँ या हीरे हों। मगर ऐसा कुछ न होकर थैली में उस जमाने के चाँदी के चार सिक्के और एक अठन्नी पड़ी थी।

सबके चेहरे उतर गये। वे नासमझी के भाव से गुरु महाराज की तरफ देखने लगे। ढोलकिये से न रहा गया। उसने हिचकते हुए गुरुजी से कहा– "महाराज जी, क्या आपने यह वादा नहीं किया था कि हमें प्रभु के सारे सच्चे भक्तों की तरफ से एक रुपये की दर से पैसा दिलवायेंगे?"

"हाँ, मैंने यही कहा था।" अर्जुन देव जी ने स्वीकार किया।

"फिर यह रकम इतनी कम..." एक गायक कहते–कहते झिझककर रुक गया।

गुरु महाराज ने पूरी मण्डली पर अपनी प्रेमभरी नजर दौड़ाते हुए उनको समझाया– "देखो, जहाँ तक मेरी जानकारी है, अब तक प्रभु के सच्चे भक्त सिर्फ चार हुए हैं, वे हैं– गुरुनानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास और गुरु रामदास। इन सच्चे भक्तों की तरफ से मैंने तुम्हें चार रुपये दिये हैं। अठन्नी मैंने अपनी तरफ से दी है। क्योंकि मैं खुद को अभी प्रभु का सच्चा भक्त नहीं मानता। मेरे पास एक साथ साढ़े चार रुपये नहीं थे। इसे एकत्र करने में इतना विलम्ब हो गया।"

मण्डली के सदस्य आश्चर्यचकित रह गये। उनका धन्धा अधिक कमाई वाला भले ही न था, लेकिन बराबर भजन गायन का कार्यक्रम करते रहने से शायद ही कोई गायक हो, जो तीन महीने में इतनी छोटी पूँजी न इकट्ठी कर पाता। इस हिसाब से तो गुरु जी की भी स्थिति अच्छी न थी। फिर उनके हमेशा प्रसन्नचित्त रहने का राज? दिक्कत यह थी कि इस विषय में सीधे–सीधे कुछ पूछताँछ करना उन्हें उचित नहीं लग रहा था। घुमा– फिराकर यह बात जानी जा सकती थी। इसलिए ढोलकिया बातचीत जारी रखना चाहता था। उसने आदर के साथ पूछा– "गुरु महाराज! आप अपने को अधूरा भक्त क्यों मानते हैं?"

"पहले मैं तुम सबको भक्ति का मतलब समझा दूँ।" गुरु जी ने सब पर अपनी स्नेहभरी दृष्टि डालते हुए बात आगे बढ़ायी। "भक्ति का अर्थ है अपने काम के प्रति गहरी लगन और इससे जो प्राप्त हो, उसी में पूरा सन्तोष। यह कला जिसे आ जाती है– वही पूर्ण सुखी और सच्चा भक्त कहलाता है। मैं यह कला अभी सीख ही रहा हूँ। इसलिए अपने को पूरा भक्त नहीं मानता।"

मण्डली के सदस्य, जो क्षण भर पहले निराशा और विस्मय से घिरे थे– अचानक ही प्रसन्नता से खिल उठे; क्योंकि गुरु अर्जुन देव जी की बात से सुखमय जीवन का चमकता रास्ता उन्हें साफ–साफ दिख गया था। □

– जासापारा, गोसाईगंज, सुलतानपुर–२२८११६ (उ०प्र०)

लेकर हरि नाम को

– विजय बजाज

तन से, मन से,
थोड़े से जतन से,
कीजिए जो भी काम,
पूरी ही लगन से।
आलस न कीजिये,
टालिये न काम को;
शुरू तो कर दीजिये,
लेकर हरि नाम को।

– बैंक ऑफ बड़ौदा, सागर (म०प्र०)– ४७०००२

जाने किस घर रहता सूरज

- महेश शुक्ल

हमसे क्या–क्या कहता सूरज,
दिन भर चलता रहता सूरज।

बूँद–बूँद को धरा तरसती,
नील गगन से आग बरसती,
लम्बे दिन औं छोटी रातें,
अँधियारे में आँख ठहरती।

सबसे ऊपर आसमान में–
सब कुछ सहता रहता सूरज।

साँय–साँय करता सन्नाटा,
कहीं बवंडर सा बन जाता,
घनी छाँव के लिए भटकते,
पेड़–पेड़ से जिनका नाता।

पात–पात मुरझा जाते जब–
जेठ–दुपहरी तपता सूरज।

बीच खेत में बनी मड़ैया,
प्यासी सारी ताल–तलैया,
कच्ची राहें धूल उड़ातीं,
जल बिन तरसे धरती मैया।

हम छिप जाते अपने घर में–
जाने किस घर रहता सूरज।

– सनातन धर्म सरस्वती शिशु मन्दिर,
लखीमपुर–खीरी

○ साहू

इन्हें पहचानो

देश के लिए बलिदान हुए हैं यह इनका परिचय १५ जून के पूर्व भेजने वाले भइया/बहनों के नाम 'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित किये जायेंगे। कक्षा १० तक के भैया/बहिन इसमें भाग ले सकते हैं।

भारत में कठमुल्लों ने उसे जलाया

- वचनेश त्रिपाठी

कैसी विडम्बना कि जिस फारसी-ग्रन्थ की ईरान में ३००वीं बरसी मनायी गयी जबकि वह इस्लामी देश ही है, वहीं इसके विपरीत उसी फारसी ग्रन्थ को भारत के कठमुल्ले मुसलमानों ने जला दिया, यह अग्नि-काण्ड हुआ था लाहौर के कश्मीरी बाजार स्थित मुसलमान पुस्तक विक्रेता शेख फजलदीन की दुकान पर। इस ग्रन्थ का नाम था- "हसन-उल-आरिफीन"। इसमें ५० या ५१ उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया है। अनुवादक था औरंगजेब का बड़ा भाई मुहम्मद दारा शिकोह यानी शाहजहाँ ने जिसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था। इसको लाहौर में छपाया था अपने प्रेस में शेख फजलदीन ने। उन दिनों लाहौर भारत में ही था, पाकिस्तान नहीं बना था। फिर भी कट्टरपन्थी मुसलमानों ने शेख की दुकान पर हमला करके उक्त ग्रन्थ की सब प्रकाशित प्रतियाँ आग लगाकर जला दीं- साथ ही दारा शिकोह के लिखे जो वहाँ अन्य ग्रन्थों की भी प्रतियाँ बिक्री के लिए मौजूद थीं-"उमानुल जवाहर", "मज्म-उल-बहरैन", तथा "मखजनुनुकात" आदि- वे भी आग को भेंट कर दीं। ५० उपनिषदों का जो अनुवाद दारा शिकोह ने किया था, उसे बड़ी कोशिशों से एक फ्रेञ्च पर्यटक इन्कोटल-डी-पैरोन ने नवाब शुजाउद्दौला की सिफारिश से प्राप्त कर लिया। उन दिनों एक फ्रेञ्च रेजीडेण्ट भी शुजाउद्दौला के यहाँ रहता था। उसी से उक्त फ्रेञ्च पर्यटक ने शुजाउद्दौला को कहलाया था। इस तरह यह ग्रन्थ सन् १८०१ में लैटिन भाषा में पेरिस (फ्रान्स) में छपा। यह फ्रेञ्च पर्यटक सन् १७५७ में भारत इस इरादे से आया कि वह यहाँ पारसी धर्म ग्रन्थों की खोज कर सके। अपने देश ले जाने के लिए बम्बई में रहकर वह ऐसे ग्रन्थ खोजता रहा था। ५० उपनिषदों का जो फारसी अनुवाद उसको मिला, उसे दाराशिकोह ने सन् १६५७ में दिल्ली, कश्मीर, काशी के संस्कृतज्ञ पण्डितों के सहयोग से लिखा था। दारा ने इसमें 'कुरान शरीफ' की वे रहस्यमयी आयतें भी उद्धृत कीं- जिनमें कहा गया है कि कुछ और भी ऐसी पवित्र किताबें हैं, जिनका समझ पाना यद्यपि मुश्किल काम है, लेकिन जिनमें महान् ज्ञान की बाबत बताया गया है। दारा शिकोह ने उन आयतों के आधार पर अपने अनुवाद-ग्रन्थ में साबित किया कि कुरान द्वारा इंगित वे ज्ञान-ग्रन्थ यही संस्कृत भाषा की उपनिषदें हैं; परन्तु यह बात कठमुल्लों को कब बर्दाश्त होने लगी! चिढ़कर उन्होंने इस ग्रन्थ के विक्रेता शेख फजलदीन की दुकान ही जला दी ताकि उक्त फारसी ग्रन्थ की एक भी प्रति बाकी न बचे और एक इस्लामी देश ईरान भी है- जहाँ सन् १९१७ में इसे ठेठ फारसी में छापकर उसके प्रकाशन पर उत्सव मनाया गया था; क्योंकि दाराशिकोह द्वारा उसे लिखे ३०० साल पूरे हो रहे थे, यानी उस ग्रन्थ की ३००वीं वर्षगाँठ का जलसा किया। प्रसन्नता और गर्व अनुभव किया। **"लेखक ने इस ग्रन्थ को 'सिर्रे अकबर' शीर्षक से कोई २५-३० साल पहले एक प्राचीन ग्रन्थ-प्रदर्शिनी" में देखा था। इसमें दारा ने प्रस्तावना में ऊपर 'श्री' से प्रारम्भ किया है। यह प्रथम अनुवादक था, जिसने दुनिया में संस्कृतेतर भाषा (फारसी) में ५० उपनिषदों का रूपान्तर किया। यह प्रेरणा दारा शिकोह को एक प्रसिद्ध हिन्दू योगी बाबा लाल दयाल ने दी थी, जिससे दारा का सम्पर्क-सत्संग सन् १६५३ में लाहौर में हुआ। उसी योगी के उपदेशों से दारा हिन्दू धर्म दर्शन की ओर तीव्रता से उन्मुख हुआ। अतीव श्रमपूर्वक उसने संस्कृत में उपनिषदों को पण्डितों के माध्यम से समझा, पढ़ा। उक्त हिन्दू योगी का आश्रम गुरदासपुर में था। उसे ध्यानपुर आश्रम कहते थे। दारा इस योगी के सिवा प्रसिद्ध सूफी सन्त सरमद और मियाँ मीर के प्रति भी श्रद्धा रखता था।** इसके विपरीत औरंगजेब छल-छन्दी और कपटाचारी था तथा उसकी समग्र शक्ति और प्रचेष्टा गद्दीनशीन होने का लक्ष्य लेकर थी जबकि दारा अपने पिता शाहजहाँ द्वारा उत्तराधिकारी मान्य किये जाने के बावजूद अपना तमाम समय और प्रतिभा का सदुपयोग हिन्दू धर्म-दर्शन के गम्भीर अध्ययन-मनन तथा उसके उपनिषदों के अनुवाद-कार्य में लगा रहा था। ५० उपनिषदों का अनुवाद कर लेना हँसी-खेल नहीं है, फिर जब कि पहले दारा

संस्कृत बिल्कुल न जानता था।

दारा शिकोह कृत उपनिषदों का अनुवाद–ग्रन्थ जब लैटिन भाषा में जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेनहावर और इम्पे ने पढ़ा, तो कहा, "यदि मुझे तनहाई की जेल मिले और वहाँ मुझे केवल ये उपनिषद् ही नित्य पढ़ने को प्राप्त हो जायें, तो फिर चाहे पूरा जीवन ही जेल में बिताना पड़े, मुझे उपनिषदों के सिवा वहाँ और कुछ नहीं चाहिए। उपनिषदों का अनुशीलन शोपेनहावर और इम्पे जैसे दार्शनिकों की दिनचर्या का प्रमुख अंग बन गया था। सिद्ध हुआ कि बाबर खानदान का मुगल शाहजादा मुहम्मद दाराशिकोह इस देश की प्राचीन संस्कृति और प्राचीन हिन्दू धर्म–दर्शन को किस तरह महान् मानकर उसकी महत्ता अपनी कलम और जीवन से उजागर कर गया, भारतवासियों के लिए यह बात भुलाने की नहीं।" □

जो रायफल के धुएँ को बढ़िया इत्र बताती थी

– वागीश

सम्भवतः सन् १९८३ की बात है। उन दिनों चीन में एक लड़की थी, नाम था उसका 'चाओतान हांग'। रायफल की निशानेबाजी का उसने खूब अभ्यास किया था। छोटे बोर की ५० मीटर रायफल निशानेबाजी की प्रतिस्पर्द्धा में व्यक्तिगत और टीम–मुकाबलों में उसने जब दो स्वर्ण–पदक जीते तो उससे एक दिन पत्रकारों ने पूछा– "क्या तुम्हारा विवाह हो गया?" जब उसने इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में दिया, तो उससे दूसरा प्रश्न किया गया कि "क्या तुम्हारा कोई 'ब्वाय–फ्रेण्ड' है?" तब उसने बड़ी तेजस्विता से उत्तर दिया, कहा, 'नहीं, मेरा कोई ब्वाय–फ्रेण्ड नहीं। अभी मेरी आयु ही क्या है। (वह तब १९ वर्ष की थी) विवाह की बात मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोची। मुझे तो एकमात्र अपनी रायफल से ही प्यार है। यही मेरी मित्र है। जब मैं इससे निशाने पर सटीक वार करती हूँ और उस समय इसकी नली से जो धुआँ निकलता है, उस धुएँ की महक मेरे लिए संसार का सबसे बेहतरीन इत्र है। अलबत्ता मुझे पढ़ने का तो शौक है, पर मुझे लगता है कि मैं अपने हाथ में रायफल लेकर ही जन्मी हूँ। ओलम्पिक में आप देखेंगे कि मैं फिर सोना ही जीतूँगी।"

जब फोटोग्राफर उसका फोटो खींचने लगे तो उन्हें सामने देखकर वह लजा गयी। □

देना फिर अवसर जन्म का

–महेश कौल

(श्री. कौल अपने ही देश में शरणार्थी बना दिये गये एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू हैं, उनकी व्यथा उमड़ी है इस रचना में – सम्पादक)।

हिन्दमहासागर की गहराइयों में,
ढूँढ़ रहा है जो स्वयं को; अपने अस्तित्व को,
हृदय में अग्नि–समान ज्वाला का,
मस्तिष्क में उथल–पुथल करती जिज्ञासा रूपी लहरों का,
संयोगवश हो विकल्प इसकी गंभीरता में।
विद्रोह, आतंक और द्विविधा है मन में,
रुद्र रूप का प्रचण्ड स्वर दौड़ रहा है,
प्रत्येक विषय को टटोल रहा है,
समाधान की प्रबल आकांक्षा लिये,
रक्षा करे अपने प्रभाव से, नहीं तो खो
जायेगा जीवन वन में।
मछुआरे का मायाजाल,
आशा है अन्तर स्पष्ट हो मन के अन्तर में,
मन तो है विरोध का प्रबल पक्षधर,
वियोग विरक्ति का परिचायक,
यह उलझा जीवन–काल।
चाहे जितना उलझाएँ चंचल मन,
प्रयास रहेगा ज्ञान का प्रचार–प्रसार,
भारत–भू पर है ईश्वर का महाप्रवास,
वेद–पुराण भी करते हैं जिसका यशोगान,
बस यही हमारी परम्परा है–
परम सत्य का चिन्तन–मन्थन।
यही प्रार्थना है अब मन में,
आर्यावर्त्त की भूमि पर,
लिखित न हो फिर घायल इतिहास,
कवि को देना फिर अवसर जनम का,
मातृभूमि भारत के आध्यात्मिक अनुपम उपवन में।

– आर०ई०सी० शिविर कक्षाएँ, केनाल मार्ग जम्मू–१८०००१ (जम्मू–कश्मीर)

छत्रसाल–जयन्ती पर विशेष

राष्ट्रीयता का सम्पोषक है कवि-कर्म छत्रसाल का

– डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त

राष्ट्रनायक छत्रसाल के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर अब तक जो भी कार्य हुआ है, वह उनके बाहरी जीवन और ऐतिहासिक घटनाओं की छानबीन करता है; लेकिन उनके आन्तरिक जीवन और खासतौर से उनकी मानसिकता को परखने का प्रयास नहीं हुआ है। मुगल काल में राष्ट्र के नायकत्व की बागडोर राणा प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल के हाथों में रही और उनका इतिहास देशी–विदेशी इतिहासकारों ने लिखा है। उस इतिहास के आधार दस्तूरात रिकार्ड, अखबारों के विवरण, सनदों और पटों के प्रमाण आदि सब दूसरों ने रचे हैं, फिर उनसे उनके अन्तर्मन की पहचान कैसे हो सकती है? उनके पत्र कुछ गहराई तक जरूर पहुँचते हैं; पर उनमें कुछ बनावट–बुनावट होती है और वे पूरा चित्र कहाँ उतार पाते हैं। तीनों में अकेले छत्रसाल कविता की रचना करते थे और कविता अनजाने ही अन्तर्मन की आवाज उजागर करती है। यह बात अलग है कि उसमें वह कौशल, वह सौष्ठव और वह नवीनता न हो, जो भक्ति या रीतिकालीन कविता में मिलती है, लेकिन उसमें अनुभूति की सच्चाई तो है ही। और यह सच्चाई उनकी कविता में है, लेकिन शर्त यह है कि उसे उन्हीं की आँखों से देखा जाय। इसी दृष्टि से उनका इतिहास भी लिखा जाना चाहिए और स्वतन्त्रता के लिए उनके संघर्ष का आख्यान भी।

कवि की दृष्टि

कविता के प्रति छत्रसाल के दृष्टिकोण का पता उनकी एक–दो पंक्तियों से लगता है। एक पंक्ति है– '**सत्य भलो भाषबो सुकब को**', जिसका मतलब है कि अच्छा कवि या अच्छी कविता वही है, जो सत्य कहे या जिसमें सत्य की अभिव्यक्ति हो। सत्य कहना भला होता है– समाज के लिए भला और राष्ट्र के लिए भला। ठीक उसी तरह, जिस तरह राम का गुणगान और श्यामा–श्याम का ध्यान भला होता है। भला करनेवाला सुकवि है, क्योंकि वह अपनी कविता में सत्य की व्यञ्जना करता है। दूसरे के आश्रय या अर्थ के दबाव में असत्य नहीं कहता। इससे स्पष्ट है कि छत्रसाल का संकेत उस दरबारी कविता की तरफ था, जो सत्ता के प्रभाव से सत्य नहीं कहती। वस्तुतः उस युग और उन परिस्थितियों में सुकवि या सुकाव्य की यह व्याख्या ठोस महत्त्व रखती है।

सत्य की यह कसौटी छत्रसाल की कविता पर भी लागू होती है और यह सही है कि उन्होंने कविता के माध्यम से सत्य ही कहा था। मध्य युग में ऐसे सच्चे काव्य की प्रतिष्ठा छत्रसाल का ही काम था। अतएव छत्रसाल का कवि–कर्म एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

कविता और सत्ता

कविता और राजनीति अथवा कवि और सत्ता के सम्बन्धों का निर्णय भी छत्रसाल ने सही रूप में किया था। भूषण के सम्मान में छत्रसाल का पालकी में कन्धा देना उस युग की सांस्कृतिक घटना तो है ही, साथ ही वह कवि या कविता को सत्ता के प्रणाम करने का आदर्श भी प्रस्तुत करती है। छत्रसाल की घोषणा थी–

'आवत आप कृपा करिकें छतसाल कहैं उठ आदर कीजै।
कीरति के बिरवा कवि हैं इनकों कबहूँ कुम्हलान न दीजै।।'

छत्रसाल अच्छी तरह से जानते थे कि कवि राष्ट्रीय जागरण का संवाहक होता है। उसके बिना आजादी का संघर्ष नहीं लड़ा जा सकता। इसलिए कवि और कविता का मूल्य सबसे अधिक है। मध्ययुग में कवि के अवमूल्यन को पहचान कर उन्होंने कविता की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रयास किया था। कवियों को गाँव या नगर में 'बैठक' देना, भरण–पोषण के लिए भूमि लगाना और दरबार में 'बरोबरी की बैठक' तक पेश करना कवि के सम्मान के प्रामाणिक

उदाहरण हैं। न जाने कितने कवियों के आश्रयदाता थे छत्रसाल। इस तरह पन्ना राज्य राष्ट्रीय कवियों का गढ़ बन गया था। फिर गढ़ जीतना तो सरल है, पर काव्य का गढ़ तोड़ना बड़ा कठिन है। वहाँ तलवार का असर नहीं होता। कवियों की इस फौज के बल पर ही छत्रसाल अपने स्वतन्त्रता–अभियान में सफल हुए थे। अतएव उनकी इस व्यवस्था पर भी इतिहासकारों को ध्यान देना जरूरी है।

काव्य–सम्पदा

चरखारी से प्रकाशित 'छत्रविलास' (सं १९९६ वि०) और पन्ना से प्रकाशित 'छत्रसाल–ग्रन्थावली' (सं० १९८३ वि०) में ग्रन्थों के नाम या विभाजन के शीर्षक संकलनकर्त्ताओं और सम्पादकों की देन है। आजीवन संघर्ष करने वाले **'नौकिया सिपाही'** को किसी विशेष उद्देश्य से 'कबित्त' (कविता) रचने का अवकाश ही नहीं था। सहज भक्तिभाव में जब जो छन्द बन पड़ा, वही राम या कृष्ण या हनुमान् के प्रति उनका पूजा–सुमन हो गया। प्रश्न उठता है कि हस्तलिखित पुस्तकों में 'रामध्वजाष्टक', 'रामावतार के कवित्त', 'हनुमान पचीसी', 'कृष्णावतार के कवित्त', 'राधाकृष्ण पचीसी' जैसे एकसे नाम कैसे आ गये। स्पष्ट है कि छत्रसाल ने ही अपने छन्दों को विषयवार विभाजित करने के लिए किसी कवि से आग्रह किया था और यह वर्गीकरण पुराना ही है, भले ही छत्रसाल द्वारा न किया गया हो। 'छत्रप्रकाश' के रचयिता 'लाल' कवि को प्रदत्त सनद की पंक्तियों से प्रकट है कि छत्रसाल अपने बारे में सजग थे– **'जब ग्रन्थ की पूर्ति होगी तब बहुत सो खयाल करो जैहै, अबै बरोबरी की बैठक बकसी जात है महिर गुवान माफिक असुन सुदी १३ संवत १७६९ की साल लिखी गयी मुकाम परना।'**

उक्त स्थिति में छत्रसाल ने ही अपने छन्दों के संग्रह का भार किसी को सौंपा था और उस योग्य साहित्यकार ने पुरानी विधा पचीसी और अष्टक जैसे संख्यावाची नामकरण का सहारा लिया था। यदि हम विषयवार छन्द–संख्या का विचार करें, तो रामभक्ति–परक ६६, कृष्णभक्तिपरक ७२, हनुमद्भक्तिपरक ३७, अक्षर अनन्य के प्रश्न और छत्रसाल का उत्तर ११, नीतिपरक ३४ और फुटकर ३६ तथा कुलयोग २५९ छन्द हैं।

छत्रसाल चबूतरा, छतरपुर के पास छत्रसाल के कुछ कीर्त्तननुमा गीत हैं, जिनमें कृष्ण और स्वामी प्राणनाथ की वन्दना, आरती, अँचरी आदि हैं। उन गीतों की भाषा छत्रसाल के छन्दों की भाषा से भिन्न है। इसी तरह एक हस्तलिखित संग्रह में छत्रसाल के ८ पद हैं। भाषा की शिथिलता से वे भी छत्रसालकृत नहीं लगते।

रचना–काल की समस्या

उक्त काव्य–सम्पदा की रचना कब हुई, यह कहना कठिन है। भक्तिपरक छन्दों की अधिकता और युद्धों की शृंखला के कारण कुछ विद्वान् उसे वृद्धावस्था की उपज मानते हैं। इस मान्यता के आधार पर दो प्रश्न उभरते हैं– (१) क्या छत्रसाल का कवि–कर्म वृद्धापन के नैराश्य का प्रतिफल है ? (२) अथवा उनके काव्य में संघर्षों से ऊबे–थके मन की कहानी है ? अगर गहराई से देखा जाय, तो छात्रसाल के अधिकांश छन्दों में आदर्श की अभिव्यक्ति और उससे प्रेरणा लेना, चुनौतीभरा ओजत्व और उत्साह तथा दोनों के संगम में अन्तर्प्रवाहित एक गहरा आत्मविश्वास लहराता दिखायी पड़ता है। अतएव वे छन्द संघर्षों के दौरान स्फुट रूप में लिखे गये हैं। उनका रचनाकाल निर्धारित करना सरल नहीं है। इतना अवश्य है कि शिवाजी से भेंट (सं० १७२४) के बाद अधिकांश भक्तिपरक छन्द और राज्याभिषेक (सं० १७४४) के बाद राजधर्म के छन्द रचे गये थे। अक्षर अनन्य के प्रश्नपरक छन्दों में भी 'नृप' सम्बोधन है, अतएव वे ५ छन्द भी सं० १७४४ के बाद की रचना हैं।

पाठ–निर्धारण और संशोधन

छत्रसाल–ग्रन्थावली की भूमिका में वियोगी हरि ने स्वयं स्वीकार किया है कि छत्रविलास और पन्ना की हस्तलिखित पोथियों में पाठभेद बहुत अधिक है, अतएव उन्होंने पाठ्यालोचन के आधार पर पाठ–निर्धारण नहीं किया। पन्ना पाठ को ही 'नाममात्र का थोड़ा–सा हेर–फेर' कर प्रकाशित करवा दिया है। वियोगी हरि और उपलब्ध हस्तलिखित प्रति के पाठों को मिलान करने से स्पष्ट हो जाता है कि वियोगी हरि ने अधिकांश शब्दों को इकारान्त और उकारान्त बनाने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए ग्रन्थावली का एक छन्द (पृष्ठ ९, छन्द सं० २०) ही पर्याप्त है, जिसमें पालनी, लालनी, बिलासनी, बस, तीन का पालिनी, लालिनी, बिलासिनी, बसु, तीनि कर दिया गया है। वस्तुतः छत्रसाल के छन्दों का पाठ–निर्धारण तटस्थ दृष्टि से होना अपेक्षित है।

कविता का मूल स्वर

यह सही है कि छत्रसाल के अधिकांश छन्द राम,

कृष्ण और हनुमान् की भक्ति से जुड़े हैं, पर क्या अराष्ट्रीय तत्त्वों से आजीवन लड़ने वाला विद्रोही और राष्ट्रीय चेतना का शक्तिपुञ्ज अपने काव्य में केवल मोक्ष की याचना करेगा? फिर उनकी कविता का मूल–स्वर क्या है? यदि सूक्ष्मता से छानबीन की जाय, तो छत्रसाल की कविता का असली गन्तव्य विद्रोह और स्वतन्त्रता–प्रेम है, जो भक्ति के आवरण में छिपी राष्ट्रीयता और वीरता की भावना से संप्रेरित है। छत्रसाल का कवि अपने आराध्य से अपने मन की बात कह ही देता है, जो कुछ पंक्तियों से स्पष्ट है–

(क) **कहै 'छत्रसाल' सिंह स्यार के अधीन होय,**
कहै दुख रोय कहा सिंह की ठसक है।

(ख) **प्रभु के सब काज किये सब भाँत,**
छता जन के अरि क्यों न निपातै।

(ग) **बाल ब्रह्मचारी तू ही धर्म–धुर–धारी धीर,**
गहन मलेच्छ फार क्यों न दो फका करै।

असल में मध्ययुग की दोरंगी और छलछन्दमयी राजनीति ने कवि को सांकेतिक और व्यञ्जक पद्धति में कुशल होने के लिए विवश कर दिया था। आचार्य केशव ने **'सूछम बानी और दीरघ अर्थ'** की घोषणा की थी। इसी 'दीर्घ अर्थ' के लिए छत्रसाल का कवि भक्ति–परक कविता की रचना कर रहा था। इसलिए उसकी कविता का मूल स्वर यही 'दीर्घ अर्थ' था, जिसको समझने के लिए एक तरफ छत्रसाल की राजनीति और दूसरी तरफ तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना की नाड़ी पहचानने की जरूरत है।

भक्ति साम्प्रदायिक नहीं

साहित्य के इतिहास और भक्तिपरक काव्य की समीक्षा में छत्रसाल के काव्य को कई कठघरों में रखकर देखा गया है और अलग–अलग एकांगी निर्णय लिये गये हैं, जिससे कवि की सच्ची आवाज बिल्कुल दब गयी है। कुछ विद्वान् छत्रसाल को निम्बार्की सम्प्रदाय का अनुयायी मानते हैं, कुछ सखी सम्प्रदाय का। प्रणामी सम्प्रदाय में तो छत्रसाल को पंचस्वरूपों में एक मान लिया गया है। एक विद्वान् ने उन्हें रामरसिक भक्त ठहरा दिया है। इन विभिन्न मतों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि छत्रसाल किसी एक विशिष्ट सम्प्रदाय से बँधे नहीं थे और न ही उन्होंने अपने छन्दों की रचना सम्प्रदाय के आग्रह से की थी। उन्होंने सभी देवों की वन्दना की है। एक ही छन्द में दो चरण राम और दो चरण कृष्ण से सम्बन्धित हैं। स्वामी प्राणनाथ की भक्ति में रचे गये कुछ पद या गीत प्रणामी

यह कश्मीर हमारा प्यारा

– श्यामबाबू 'विमल'

यह कश्मीर हमारा प्यारा, भू का स्वर्ग महान्।
हम इसके हैं सीमा प्रहरी, भारत की सन्तान।।

दर्शन करने अमरनाथ का, आते हैं सैलानी।
जुड़ी भक्त हृदयों की इनसे अपनी एक कहानी।।

क्षीर–भवानी एक सुखद श्रद्धा की अमिट निशानी।
हुई यहीं पर तपेश्वरी लल्लेश्वरि जैसी ज्ञानी।।

केसर को है रही उगाती इसकी धरा प्रधान।
यह कश्मीर हमारा प्यारा भू का स्वर्ग महान्।।

यह धरती है अम्बर चुम्बित यहाँ चोटियाँ तनी हुई।
शीतल सुखद मधुर मीठे झरनों का उद्गम बनी हुई।।

यही पाक नापाक इरादों सहित खो रहा शान।
यह कश्मीर हमारा प्यारा भू का स्वर्ग महान्।।

बीच गोलियों यही तिरंगा जोशी जी ने फहराया।
उन्नत होता गया लहर फिर फहर हवा अम्बर छाया।।

उसको भाया यह प्रदेश जिसने बादाम सेब खाया।
देखी जब डल झील देख शोभा मन उसका ललचाया।।

नष्ट किया था "विमल" हमीं ने कबायली अभियान।
यह कश्मीर हमारा प्यारा भू का स्वर्ग महान्।।

– पंकज कालोनी, पूरनपुर, पीलीभीत

प्रकाशनों में मिलते हैं, पर वे भाषा की दृष्टि से इतने लचर और भिन्न हैं कि 'छत्रसाल' की छाप होने पर भी छत्रसाल रचित नहीं लगते। दूसरे, स्वामी प्राणनाथ के प्रभाव में आकर भी छत्रसाल का काव्य प्रणामी सम्प्रदाय के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। दरअसल छत्रसाल के काव्य–व्यक्तित्व में कुछ ऐसी अनाग्रही व्याप्ति है कि वह सबके प्रति श्रद्धानत होते हुए भी किसी भी सम्प्रदाय से बँधा नहीं है।

भक्ति की विशेषता

छत्रसाल के भक्तिपरक काव्य में भक्ति की विशेषता यह है कि भक्ति के अधीन कृष्ण तो हैं; परन्तु भक्ति सत्य के, सत्य धर्म के और धर्म कर्म के अधीन है (श्रीकृष्ण–कीर्त्तन, छन्द ५४)। इसी तरह ज्ञान के बिना विराग, विराग के

बिना ध्यान और ध्यान के बिना भक्ति नहीं होती (फुटकर पद्य ८)। तात्पर्य यह है कि छत्रसाल की भक्ति ज्ञान, धर्म और कर्म–सम्मत है।

भक्ति छत्रसाल के शौर्य की प्रेरणा–स्रोत है। प्रलय–पयोनिधि, लहरा, महा पारावार आदि से कवि सांसारिक मायाजाल को इंगित नहीं करता, वरन् संघर्षों के प्रलंयकर रूप को चित्रित करता है और **'अमित भरोसो मोय राम रघुरैया कौं'** कहकर राम से स्फूर्त्ति प्राप्त करता है। उसने कृष्ण और राम को 'सुभट सिरोमन' तक माना है और उन्हें 'असुरों' के संहारक के रूप में महत्त्व देकर उनसे उत्साह लेता है। इतना ही नहीं, कवि अपनी तुलना दनुज–प्रहारी कृष्ण से करने में नहीं चूकता–

'छत्रसाल' मीत मित्रजा के तुम ब्रजराज,
हमहूँ कलिन्दजा के कूल पै पुकारे हैं।
तुम गिरधारी हम क्रस्न–व्रत–धारी,
तुम दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं।।

'हम यवन प्रहारे हैं' कितनी दर्पीली बन पड़ी है। यदि छत्रसाल **यवन–प्रहारे** की भक्ति करते हैं, तो उनका लक्ष्य हिन्दुवाने की मोक्ष है, जिसे उनके कर्म के साक्षी कविवर लाल, हरिकेश, भूषण, निवाज, प्रचण्ड, धनराय, मुरलीधर आदि न जाने कितने कवियों ने बार–बार दुहराया है। इस दृष्टि से उनकी भक्ति वीर–रसात्मक हो गयी है और बुन्देलखण्ड में इस प्रकार की भक्ति की एक लम्बी परम्परा रही है।

पाखण्ड पर एक व्यंग्य

कवि ने उन साधुओं–संन्यासियों पर करारी चोट की है, जो अपना कुटुम्ब त्यागकर, सिर मुड़वाकर, वेष बदलकर, धूनी रमाते हैं; लेकिन उनके ध्यान में उनके इष्ट कभी नहीं आते। व्यंग्य सरल–सहज होता हुआ भी संवाद खड़ा करने के बाद सोच के लिए मजबूर करता है–

को हौ जू, आये तुम कहाँ ते, कौन पन्थ जात,
कहौ तौ कहौ, तुमें चेला कौन गुरु करे?
जानें बिना नाम के निकाम तें निकाम भये,
मूड़ कों मुड़ाय जान–बूझ कें कुआँ परे।
मात–पित भाई–बंध, कुटुम–कबीला छाँड़ि,
सुन्दर बसन त्याग बृथा धूर में भरे।
कहै 'छत्रसाल' कान्ह ध्यान में न आये जोपै,
भरम गमाय धूनी ढोय–ढोय कें मरे।।

सामाजिक मूल्यों की चिन्ता

आदर्शवादी कवि को सामाजिक मूल्यों की चिन्ता रहती है और छत्रसाल के समय तो कुल, समाज और देश की पत रखने का प्रश्न था, इसीलिए छत्रसाल ने सबसे अधिक स्वाधीनता को महत्त्व दिया था। उसके बिना कुल की पत और समाज के मूल्यों की रक्षा नहीं हो सकती। कवि 'कुल–साख' या 'निज कुलरीति' को न त्यागने का आग्रह करता है। सामाजिक मूल्यों के लिए उसने 'समाज–धर्म' नाम दिया है, जिसका आदर्श–स्वरूप राम के समाज में बिम्बित होता है। नारी की पत की रक्षा के उदाहरण 'अहिल्या–उद्धार' और 'द्रोपदी की पत राखी' हैं। पुरुष के लिए दान, दया और गरीब को न सताना जैसे कई मूल्यों का संकेत किया गया है।

कवि के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है कर्म। उसने कर्म के ही अधीन धर्म, सत्य, भक्ति और ब्रह्म को रखा है। धर्म और कर्म का जोड़ा है, इसलिए धर्म के धरनवारे को सुकर्म करना चाहिए। जीव की रचना कर्म के लिए हुई है। छत्रसाल रजपूती के काम करने पर जोर देते हैं–

आलस में अनख में भाव में कुभावहू में,
'छत्रसाल' कहै करौ काम रजपूती के।

तुलसी का मन्त्र था कि **'भाव कुभाव अनख आलसहू। राम जपत मंगल दिसि दसहू।।'**, छत्रसाल ने उसी को बदलकर **'करौ काम रजपूती के'** से दिशा ही बदल दी। मूल्य का यह बदलाव ही राष्ट्रनायक के व्यक्तित्व की कुञ्जी है। जो भीतर सो बाहर। जो कथनी में, सो करनी में। दोनों का मेल छत्रसाल के जीवन का सत्य है और वही काव्य का भी।

राजनीतिक मूल्यों की व्याख्या

राजा के रूप में छत्रसाल राजनीति के प्रति पूरी तरह सजग थे। उनका मत था कि राजनीति के ज्ञान के बिना राजा निर्जल कुएँ के समान होता है **(नीति बिन जाने भूप कूप बिन पानी सम)**, इसलिए उसे राजधर्म की सही पहचान होना चाहिए। उसे विचार को मन्त्री बनाकर उसी से राय लेनी चाहिए। यानी कि राजनीति का गम्भीर विचार या चिन्तन ही सही मार्गदर्शक है। मध्ययुग की छल–छन्दमयी राजनीति और कूटनीति के दाँव–पेंच की समझ बहुत जरूरी थी; क्योंकि उसकी जानकारी के बिना राज्य की सुरक्षा बहुत कठिन थी। इसीलिए छत्रसाल ने

राजनीति की असलियत जानने का सन्देश दिया था और कहा था कि–

'नीति बिन जाने भूप कूप बिन पानी सम'।

दूसरी महत्त्वपूर्ण दिशा थी सही राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, जो प्रचलित राजनीतिक अनीतियों के खिलाफ दृढ़ता से खड़े हो सकें। छत्रसाल ने एक ही कवित्त में केवल चार मूल्यों का संकेत किया है– **(१) प्रजा के लालन–पालन में कुशलता** (उसे आगे और अधिक स्पष्ट किया गया है), **(२) वीरों से प्रेम** (वे वीर, जो युद्ध के मैदान से डिगें नहीं और साहस से जंग जीतें), **(३) उद्दण्ड और अपराधियों को दण्डित करना** (न्याय–व्यवस्था की दृढ़ता) और **(४) दीन को आहत न करना** (निबल पर सबल का जोर न आजमाना यानीकि शोषणमुक्तता)। नीति के छन्दों में इन सूत्रों का अर्थ आसानी से समझा जा सकता है। छत्रसाल राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध थे–

तासों राजनीति में अनीति कहौ कौन करै,
छत्रसाल भाषत है बेदन कौ गायबो।
जोपै कोऊ निबल पै सबल जनाबै जोर,
ताकौ मद तोर आप करै जन–भायबो।।

'जन–भायबो' में जनतन्त्र की आत्मा की ध्वनि स्पष्ट है।

रैयत सब राजी रहै

राज्य की सुरक्षा के लिए छत्रसाल का एक ही मन्त्र था– **"रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।"** पहली शर्त थीं रैयत का राजी रहना। प्रजा और राजा (शासक) के सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए छत्रसाल ने तीन तरह के रूपकों की संयोजना की है– (१) माली का रूपक, जिसमें राजा को माली और प्रजा को पौधों की उपमा दी है। माली की तरह राजा का काम है– ठीक उपयुक्त जगह पर पौधों को रोपना, छोटे से बड़ा करना, फूलने–फलने पर पके फल लेना, क्षुद्र कंटकों से रक्षा करते हुए उन्हें निरन्तर सींचते रहना। (२) चम्पा और चंचरीक का रूपक, जिसमें राज्य चम्पा का पेड़ है और राजा लोभ और लाभ रूपी सुगन्ध न लेने वाला भ्रमर। कवि प्रसिद्धि है कि भौंरा चम्पा की गन्ध नहीं लेता। इस रूपक से शासक का निःस्वार्थ होना बताया गया है। (३) पुत्र और पिता का रूपक, जिसमें राजा रूपी पिता प्रजारूपी शिशु के हित–अहित को ध्यान में रखकर उसका पालन प्रेमपूर्वक करता है।

प्रजा का हित–अहित राजा पर निर्भर और राजी रहना स्वयं प्रजा पर। रैयत (प्रजा) का लालन–पालन अलग बात है और उसका राजी रहना अलग। लालन–पालन में अर्थ–नीति का प्रश्न अधिक महत्त्व का है, जबकि राजी रहने में सब कुछ आ जाता है। राजी वही रह सकता है, जो सब प्रकार से स्वतन्त्र और सुखी हो। राजी रहना एक सहज स्थिति है, उसमें दबाव या दिखावटी रीति काम नहीं करती– **'द्विरद दन्त की रीति सों करत न रैयत प्रीति'**। नीति–रीति वही सफल है, जो 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और' जैसी न हो। नीति की कसौटी है– रैयत का राजी रहना और राजी रहने में सुख, सहमति, सन्तुष्टि, अनुकूलता, प्रसन्नता सब समाहित हैं। मेरी समझ में प्रजातन्त्र के लिए इससे अधिक सार्थक शब्द दूसरा नहीं है। बारीकी से परखा जाय, तो प्रजातन्त्र का यही उद्देश्य है, क्योंकि राजी रहने में स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे की भावनाएँ भी निहित हैं। स्पष्ट है कि 'राजी' और 'ताजी' की व्यञ्जना समझे बिना छत्रसाल का मन्त्र नहीं समझा जा सकता।

मनसबदारी की समस्या

इतिहासकारों में मनसबदारी की समस्या विवाद का विषय रही है और वे यह निश्चय नहीं कर पाये कि छत्रसाल ने मनसब स्वीकार किया था या नहीं, परन्तु उनकी कविता साक्षी है कि उन्होंने मनसबदार बनकर मुगलों की अधीनता उचित नहीं समझी। कवि तो केवल ब्रजराज कृष्ण का ही मनसबदार रहना चाहता है–

नर की उदारता में कौन है सुधार, मैं तो
मनसबदार सरदार ब्रजराज कौ।

मुगल बादशाह बहादुरशाह ने लोहांगढ़ दुर्ग जीतने के उपलक्ष्य में छत्रसाल को मनसब बख्शने का फरमान लिखा था, जिसका गवाह छत्रसाल का एक पत्र है। उसके उत्तर में छत्रसाल ने बादशाह को यही छन्द लिख भेजा था, जिसका अन्तिम चरण ऊपर दिया गया है। सम्भव है कि यह छन्द लोहागढ़ की विजय के बाद रचा गया हो; पर उसमें जो व्यञ्जना है, वह छत्रसाल की स्वतन्त्रताप्रियता की प्रतीक है। सत्य–असत्य का निर्णय इतिहास करता रहे, लेकिन काव्य का सत्य यही है।

अराष्ट्रीय तत्त्व का प्रतीक 'असुर'

कवि ने अराष्ट्रीय तत्त्वों के लिए 'असुर' का प्रयोग

किया है। उससे यह मतलब नहीं कि वह हिन्दू है या मुसलमान, किस जाति या धर्म का है। एक तरफ रावण, खर, दूषण, अघासुर, बकासुर, जरासन्ध, पूतना, त्रिशिरा आदि सभी असुर हैं, तो दूसरी तरफ गोरी सुलतान भी असुर है– **'असुर बैर इक बार पकर काढ़े दृग दोऊ'।** जो भी अराष्ट्रीय है, वह असुर है। वास्तव में, मध्ययुग के कवियों ने असुर के प्रतीक को इसी अर्थ में ग्रहण किया है। भक्तिकालीन असुर को धर्म के खेमे से निकालकर राष्ट्रीय और सामाजिक सन्दर्भ प्रदान करना छत्रसाल की विशेषता है। मध्ययुगीन भक्तिकाव्य में प्रयुक्त 'असुर' पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है और छत्रसाल के काव्य के अनुशीलन में यही सतर्कता अभीष्ट है।

राष्ट्रीय चेतना की व्यञ्जना

राष्ट्रीयता या देश–प्रेम का एक पक्ष अभी स्पष्ट किया जा चुका है, जिसमें छत्रसाल का कवि अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए अराष्ट्रीय तत्त्वों से संघर्ष करता है। उसका यह विद्रोही स्वर भक्ति के समर्पण और संयम के बीच बार–बार विस्फोट करता है। **'काम रजपूती के'** से उसका संकेत क्षात्रधर्म का पालन से अर्थात् जूझने से है। इसीलिए वह जीवनभर जूझता रहा है। उसने 'देस कौ राज' करने का पूरा–पूरा 'उद्यम' किया था।

इस विद्रोही उद्यम के साथ–साथ छत्रसाल ने राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना को भी उभारने की कोशिश की है। फाग, अक्षयतृतीया, झूला आदि के छन्दों में उसका आभास मिलता है। बुन्देलखण्ड में 'बुदरिया' मारकर पति का नाम बुलवाया जाता है, उसी का संकेत इस पंक्ति में है– **जोर–जोर पानि सीता कहें 'राम' छत्रसाल, राम कहें 'सीता' लैके बोदर लतान की।** 'पंचनि त्यों परमेसुर बोलैं' में पंचों की गरिमा स्थापित करने का उपक्रम है। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यह है कि छत्रसाल ने सामाजिक और खास तौर से राजनीतिक अनीति का विरोध करते हुए सही मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया था। इस प्रकार छत्रसाल में रचनात्मक प्रवृत्ति की राष्ट्रीयता भी मौजूद थी।

सांस्कृतिक चेतना के जागरण और वीरोचित उत्साह के उद्दीपन के लिए छत्रसाल ने अपने राज्य के हर नगर में एक–एक कवि को सम्मानित स्थिति की आसनी पर बैठा दिया था। रहने के लिए भवन, पोषण के लिए भूमि और आने–जाने के लिए सवारी सभी सुविधाएँ राज्य की तरफ से दी गयी थीं। कवि की बैठक एक तरह की सांस्कृतिक केन्द्र थी, जिससे जन–जागृति आ सके। इसी प्रकार 'छत्रसाली चबूतरे, पंचायत और न्याय के संस्थान थे। तात्पर्य यह कि छत्रसाल ने राज्यभर में संस्कृति के केन्द्र स्थापित कर दिये थे। इस रूप में जन–जन राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से सम्पृक्त हो रहा था और यह छत्रसाल की कीमती सफलता थी।

काव्य की प्रासंगिकता

इतिहास–पुरुष छत्रसाल के इतिहास और व्यक्तित्व के अनुशीलन में उनके काव्य का उपयोग बहुत जरूरी है। काव्य में कवि का आत्मा बोलता है, अतएव उसके व्यक्तित्व की वास्तविक निजता स्पष्ट हो जाती है। उक्त अध्ययन से छत्रसाल की कुछ प्रवृत्तियों का पता चल जाता है और प्रामाणिकता के लिए भी कविता एक सटीक माध्यम है। उदाहरणस्वरूप मनसबदारी की समस्या का सही हल छत्रसाल के उस छन्द में है, जहाँ वे कहते हैं– **'मैं तो मनसबदार सरदार ब्रजराज कौं'।** इसी तरह उनके व्यक्तित्व के कई गुण उनकी रचनाओं में आ गये हैं, जिनसे उनके इतिहास की सन्तुष्टि हो जाती है।

छत्रसाल की रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों और राजनीति के स्पष्ट संकेत मिलते हैं, जो उनके इतिहास को ठोस आधार प्रदान करते हैं। छत्रसाल के छन्दों ने कभी–कभी देश के राजनीतिज्ञों को काफी प्रभावित किया है, जैसे बाजीराव के लिए लिखा गया दोहा इतना काम कर गया, जितना किसी दूसरे माध्यम से सम्भव नहीं था–

'जो गति गज अरु ग्राह की, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज।।'

'नीति–मंजरी' के छन्द तो आज भी प्रासंगिक हैं। छत्रसाल ने जिस राजधर्म या राजनीति का निर्देश दिया है, वह आज के प्रजातन्त्र में भी उपयोगी है। आश्चर्य है कि राजतन्त्र के शासक की नीति प्रजातन्त्र के शासन के लिए आज भी प्रासंगिक सिद्ध हो रही है। यदि हम छत्रसाल के मन्त्र को अपने प्रजातन्त्र के लिए पढ़ें, तो वह किसी भी रूप में अनुचित नहीं है–

रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल तेहि राज कौ, बार न बाँको जाहि।।

– सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर–४७१००१ (म०प्र०)

□

पठनीय पुस्तक

तिरूप्पावै

– केशव प्रसाद चतुर्वेदी

इस 'तिरूप्पावै' (व्रत–प्रबन्ध) में दक्षिण भारत की आण्डाळ (गोदादेवी) का संक्षिप्त परिचय, आळवार भक्तों की १०८ दिव्य सूक्तियाँ और उत्तर भारत के ११ दिव्य विष्णु तीर्थ क्षेत्रों का वर्णन सुन्दर भावानुवाद एवं सुबोध हिन्दी व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया गया है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

पुस्तक की समीक्षा के साथ एक संक्षिप्त भूमिका आवश्यक है। वेद हमारी धर्म साधना के मूल स्रोत हैं। वेदों, उपनिषदों और पुराणों से अनुप्राणित भक्ति–परम्परा समस्त भारत में उत्तर से दक्षिण तक जन–जन में व्याप्त थी, प्रचलित थी।

इस परम्परा के अन्तर्गत भगवान् और भक्त के मध्य सम्बन्ध–विकास के कई रूप, विभिन्न व्यवस्थाओं और क्षेत्रों की अपनी विशेषताओं के कारण दृष्टिगोचर होते हैं। अनुराग, प्रेम, माधुर्य, सेवा आदि की भावनाओं पर आधारित भगवान् और भक्त के मध्य सम्बन्धों की स्थापना सर्वप्रथम भारत के दक्षिण भू–भाग तमिल प्रदेश में हुई। इसने विकसित होकर एक सुदृढ़ भक्ति–परम्परा का रूप ग्रहण कर लिया। आळवार इसके प्रथम दिव्य पुरुष हैं, द्रष्टा–स्रष्टा हैं। तमिल शब्द आळवार का अर्थ है– भगवत्प्रेम सागर में निमग्न रहनेवाले। आळ = (क्रि०) डूबना, निमग्न होना। इन वैष्णव आळवारों की संख्या १२ है। इनका काल दूसरी शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक आता है। जनश्रुति तो इनके काल को २००० ई० पूर्व तक ले जाती है।

आळवार–युग के पश्चात् आचार्य–युग आता है। यह समस्त आचार्य आळवारों द्वारा प्रतिपादित भक्ति–मार्ग के अनुयायी थे। इन्होंने वैष्णवधर्म के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन किया। संस्कृत भाषा में 'प्रस्थानत्रयी' पर इन्होंने भाष्य लिखे। आचार्य नाथमुनि ने आळवारों के भक्ति रस गीतों का 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' के नाम से संकलन किया। नालु = चार, आयिरम् = हजार। 'चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्धम्'। इन्होंने मन्दिरों में प्रबन्धम् के चार हजार गीतों के अध्ययन–अध्यापन और गायन का प्रबन्ध किया। उत्तर भारत आकर तीर्थस्थलों में भ्रमण कर आळवारों के भक्ति सिद्धान्तों का प्रचार किया। इनके प्रपौत्र यामुनाचार्य ने इनके कार्य को आगे बढ़ाया। राज्याधिकारियों, चोल राजा और सर्वसाधारण को वैष्णवधर्म में दीक्षित किया। रामानुजाचार्य ने इसे साधना से युक्त कर दिया। उनके रंगमवासी अमुदन ने पुनर्सम्पादन के साथ टीकाएँ लिखीं। फिर तो मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य की दिग्विजयों के साथ, यह सर्वविदित है, **'भक्ति दक्षिणी ऊपजी उत्तर लाये रामानन्द'** समस्त उत्तर भारत भक्ति– रस प्लावन में निमग्न हो गया।

आण्डाळ का जीवनवृत्त

'तिरुप्पावै' आण्डाळ की रचना है। आळवार भक्तों में आण्डाळ ही एकमात्र स्त्री हैं। यह पेरिय आळवार की पौष्य पुत्री थीं। पेरिय आळवार एक दिन जब भगवान् के लिए तुलसीपत्र चयन के लिए नन्दनवन में गये, तो उन्होंने एक वृक्ष के नीचे मनोहर बालिका शिशु को पड़ा देखा। उन्होंने इस बालिका को भगवान् का प्रसाद रूप भूदेवी का अवतार समझ कर उठा लिया और लालन–पालन किया। इसका नाम कोदै (पुष्पों का गुच्छा) रखा। 'गोदा' ही तमिल के भाषा नियमों के कारण 'कोदै' हो गया। 'गोदा' सामवेद संहिता की एक लेखिका भी रही हैं। विष्णु भक्तिमय वातावरण में पोषित कोदै का मन भगवान् विष्णु में रम गया। वह उन्हें अपना पति मानने लगीं। पिता नन्दनवन से फूल चुनकर लाते। कोदै उनकी माला गूँथकर पहले स्वयं पहनकर देखतीं, फिर भगवान् को पहनातीं। एक दिन पिता ने देख लिया। वह बहुत क्रोधित हुए; कोदै को डाँटा–फटकारा। एक दूसरी माला ले जाकर भगवान् को अर्पित की। उसी रात भगवान् ने स्वप्न में उनसे कहा– आज तुमने कैसी माला मुझे पहना दी। मुझे तो कोदै की स्वयं पहनी हुई माला ही अच्छी लगती है। मुझे वही माला पहनाया करो। पेरिय आळवार ने अपनी भूल स्वीकार की। कोदै का नाम 'चूडिकोडुत्त नाच्चियार' (स्वयं पहनी माला को भगवान् को अर्पित करनेवाली) पड़ गया। पिता को जब उनके लिए योग्य वर प्राप्त नहीं हुआ, तो वह चिन्तित हो उठे। कोदै ने पिता से कहा– मैंने श्रीरंगम् में विराजमान भगवान् को ही अपने पति रूप में वरण कर लिया है। किसी अन्य को मेरा पति बनाया गया, तो मैं प्राण दे दूँगी। उसी रात भगवान् श्री रंगनाथ ने स्वप्न में पेरिय आळवार को आदेश दिया कि कोदै मेरी प्रियतमा है। उसे अलंकृत करके मेरे पास लाओ, मैं उसका पाणिग्रहण करूँगा। पिता ने आदेश का पालन किया। भगवान् को समर्पित होकर जब कोदै गर्भगृह में भगवान् की शेष–शय्या पर चढ़ीं, तो अचानक विद्युत् की चमक के साथ एक दिव्य आलोक वहाँ

व्याप्त हो गया और वह भगवान् में समा गयीं। कोदै आण्डाल बन गयीं। आण्डाळ = जिनको आण्डवन् (भगवान्) ने स्वीकार करके अपनी शरण में लिया हो।

वर्ण्य–विषय

'तिरूप्पावै' एक व्रत प्रबन्ध है। तिरू = श्री, पावै = व्रत। तमिल प्रदेश में मार्गळिनोन्बु (मार्गशीर्ष का व्रत) अनादिकाल से चला आ रहा है। इसे कात्यायनी–व्रत भी कहते हैं। मार्गशीर्ष का महीना ही क्यों? 'मासानां मार्गशीर्षोऽहं...' (श्रीमद्भगवद्गीता–१०/३६) भगवान् कहते हैं कि मैं मासों में मार्गशीर्ष मास हूँ। ऐसा विश्वास है कि जो नवयुवतियाँ इस व्रत को करती हैं, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की अनुकम्पा से योग्य और अपने मनोनुकूल वर प्राप्त होता है। 'तिरूप्पावै' नाम इसलिए भी सार्थक है; क्योंकि इसके प्रत्येक पद के अन्त में 'एल् ओर एम्पावाय्' पल्लवी आती है।

प्रथम पाँच पदों में व्रत की तैयारी और सामग्रियों का उल्लेख है। आण्डाळ का प्रादुर्भाव विल्लिपुत्तूर में (वर्तमान कामराजर् जिले में) हुआ था। यह विल्लिपुत्तूर ही आण्डाळ के लिए व्रज–भूमि बन जाता है। आण्डाळ अपनी सहेलियों से इस कात्यायनी–व्रत के लिए कहती है। उषाकाल में स्नान करना, सभी सहेलियों के एकत्र होने पर स्थानीय मन्दिर में भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करना आदि व्रत का प्रधान अंश है। यह पवित्र अवगाहन है। इसमें स्नान, व्रत भगवान् की सेवा का अनुभव कराता है। बात केवल व्यक्तिगत की नहीं है; निष्ठापूर्ण व्रत देश को श्रीवृद्धि की ओर ले जाता है। आह्वान समस्त भूमण्डल के निवासियों के लिए है। लोक कल्याण की भावना है। इस व्रत से देश धन–धान्य से सम्पन्न होगा; समय पर वर्षा होगी; विघ्न शान्त होंगे; प्राणियों के मन से अज्ञान दूर होगा; सौभाग्य की प्राप्ति होगी।

पुस्तक का नाम – तिरूप्पावै
लेखक – पा० वेंकटाचारी
प्रकाशक – श्री सेवा भारती
डी–३६ ए, नेल्शन चैम्बर्स
डी–ब्लाक ६वीं मंजिल,
११५ नेल्शन माणिक्कम् रोड,
अमिञ्जीकरै, चेन्नै–६०००२६
पृष्ठ संख्या–२२८, **मूल्य**–रु० ६६/–

अगले दस पदों में प्रबोधन गीत सुनाकर सभी सखियों को जगाया जाता है। आण्डाळ श्रीकृष्ण तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करती है। भगवान् के द्वार पर पहुँचकर द्वारपाल को अपना परिचय देती है। श्रीकृष्ण तक पहुँचने के लिए उनकी निप्पिन्नै (राधा) से प्रार्थना करती है। अन्त में सफल होकर श्रीकृष्ण का यशोगान करके उनको जगाती है। उसकी तथा उसकी सखियों की अभिलाषा पूर्ण होती है। श्रीकृष्ण को जगाना प्रतीकार्थ है। भगवान् योगनिद्रा में सोये हुए हैं। आण्डाळ प्रार्थना करती है– हे आश्रितों की रक्षा करने वाले; शत्रुओं का नाश करने वाले; परिशुद्ध स्वभाव। शयन छोड़कर उठिये। आण्डाळ स्तुति का भावार्थ ही यही है कि संसार के कल्याण के लिए दुष्टों का संहार करने के लिए, साधुओं–भद्रजनों की रक्षा के लिए अपनी योग–निद्रा का त्याग कीजिये।

आगे के पदों में श्रीकृष्ण का उद्बोधन है। आण्डाळ और सखियाँ कहते हैं कि हम तुमको माँगने आयी हैं और आपके श्री हस्त से सम्मान प्राप्ति की इच्छा है। अन्त में शरणागति के अनुष्ठान के साथ फलश्रुति है।

उत्तर के दिव्य क्षेत्र

पुस्तक के १३४ पृष्ठों तक आण्डाळ विरचित 'तिरूप्पावै' के पवित्र अवगाहन, काल, अधिकारी, कृष्ण–स्तुति, निष्ठापूर्ण मार्गशीर्ष का व्रत, जन–कल्याण की भावना, अपराध क्षमा की प्रार्थना और गोपियों द्वारा परम पुरुषार्थ की प्राप्ति का वर्णन है। शेष ६४ पृष्ठों में उत्तर भारत के दिव्य विष्णु तीर्थ क्षेत्र, इन क्षेत्रों में विराजमान भगवान् पुरुषोत्तम, परमपुरुषन्, बदरिनारायण, श्री मूर्त्ति की स्तुति–प्रार्थना और मंगलाशासन (पूजा अर्चना के साथ यशोगान) सम्बन्धी १०८ पद दिये गये हैं।

भाषावैभिन्न्य कई अनभिज्ञताओं को जन्म देकर अवाञ्छित अलगाव उत्पन्न करता है। तमिल भाषा का ज्ञान न होने के कारण उत्तर भारत में जन–साधारण और अधिकांश विद्वानों को यह ज्ञात ही नहीं कि दक्षिण के आळवारों ने तिरुक्कण्डम् कडिनगर (देव प्रयाग), तिरूपिरिदि (जोशी मठ), तिरूच्चालक्करम (श्री शालग्राम, नेपाल), नैमिषारण्यम्, अयोध्या, विरून्दावनम् (वृन्दावन), तिरूआयरपाडि (श्री गोकुल), तिरूतुवारापति (श्री द्वारका) आदि पर मंगलाशासन पदों की रचना की है।

इस पुस्तक का हिन्दी संसार में हार्दिक स्वागत है। दक्षिण के विद्वान् लेखक ने आण्डाळ की इस कृति को हिन्दी में प्रस्तुत करके सचमुच स्तुत्य कार्य किया है। इससे अनादिकाल से चले आ रहे हिन्दू राष्ट्र की चेतना, धार्मिक उत्कृष्टता और सांस्कृतिक वैभव को बल मिलेगा। उत्तर दक्षिण के बारे में सेक्युलर इतिहासकारों (जैसे डॉ० तारा चन्द) द्वारा फैलायी गयी अनेक भ्रान्तियाँ दूर होंगी। साहित्यिक क्षेत्र में अनुसन्धान के नये आयाम खुलेंगे। आशा है कि विद्वान् लेखक आळवारों की अन्य कृतियों को भी हिन्दी जगत् में लायेंगे।

अन्त में एक बात और तमिल वर्णमाला के हस्व 'ए' और 'ओ', 'क' और 'ळ'; 'र' और 'न' का प्रतिनिधित्व उचित ढंग से हिन्दी की किसी भी पत्र–पत्रिका में नहीं हो रहा है। लेखक ने लिप्यन्तरण की एक सूची भी पुस्तक के अन्त में दी है। यह बड़ी उपयोगी है। □

– ४०/२८, रघुवर दयाल लेन, नरही, लखनऊ–१

लघु-कथा

वीरता

- डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

उसको 'वीर-चक्र' से अलंकृत करने की संस्तुति सेनापति के पास भेजी गयी। इस संस्तुति का आधार यह बताया गया कि उसने कई मोर्चों पर शत्रु पर विजय प्राप्त की थी। कम संख्या में होने पर भी अधिक संख्या के शत्रुओं को परास्त किया था। युद्धभूमि में ही उसे वीरगति प्राप्त हुई थी।

सेनापति ने इस संस्तुति पर निर्णय लेने के लिए उस सैनिक को बुलाया, जो अन्तिम समय में उसके साथ था और उससे पूछा, "अन्तिम समय में उसकी क्या हालत थी, उसने तुमसे कुछ कहा ?"

उस सैनिक ने बताया, "उसको बहुत गहरी चोट लग गयी थीं। उसे इतनी वेदना हो रही थी कि उससे सहा नहीं जा रहा था। उसने मुझसे कहा कि इससे अच्छा है कि अब मर जाऊँ। मैंने उसे समझाया कि किसी भी समय चिकित्सीय सहायता आ सकती है, हिम्मत रखो। उसने कहा, नहीं! अब बर्दाश्त नहीं होता, और वह शत्रु की गोलियों की बौछार की ओर दौड़ पड़ा तथा बलिदान हो गया।"

सेनापति ने उसे वीर-चक्र देने से इनकार कर दिया। उसने निर्णय दिया-

"यह सत्य है कि वीर पुरुष मृत्यु से नहीं डरता, लेकिन दर्द से मुक्ति पाने के लिए मृत्यु को आत्मार्पण करने और मृत्यु से निर्भीकता से लड़ने में अन्तर है। दारुण से दारुण कष्ट से असीम वेदना होते हुए भी जीवित रहने की अजेय इच्छा रखना, मृत्यु की इच्छा को दूर रखना, मृत्यु से जूझते रहना ही वीरता है। किसी भी दर्द से छुटकारा पाने के लिए मृत्यु का वरण करना कायरता है।"

चोट के दर्द को न सहन कर पाने के कारण मौत के मुँह में कूदकर उसने कायरता का, न कि वीरता का कार्य किया था।" □

- ७ ए, विश्वविद्यालय परिसर, लखनऊ

(पृष्ठ ५० का शेष) कहीं यह लुप्त...

बहुत कम जगह बच गयी है। गैंडे का समस्त इलाका उल्फा अलगाववादियों की गतिविधियों से प्रभावित है। ये अलगाववादी अस्त्र-शस्त्र क्रय हेतु पैसे जुटाने के लिए गैंडे के सींगों की तस्करी करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में गैंडे के सींग की कीमत लगभग ६ लाख रुपये प्रति किलो है।

पोबितोरा वन्य जीव अभयारण्य में चोर-शिकारी गैंडा मारने के लिए अभयारण्य पर से गुजरनेवाले बिजली के तारों का इस्तेमाल करते हैं। इन तारों में बिजली का प्रवाह ३३,००० वोल्ट पर होता है। इन तारों के साथ लोहे के फन्दे जोड़कर उन्हें गैंडों द्वारा उपयोग किये जाते रास्तों में लटकाया जाता है, गैंडे इन फन्दों के सम्पर्क में आते ही करण्ट लगने से मर जाते हैं। यह विधि काजीरंगा के चोर-शिकारी भी अपनाते हैं। इन हथकण्डों से निपटने के लिए इन अभयारण्यों में पहरा बढ़ा दिया गया है और बिजली इन्जीनियरों से बिजली के तारों के साथ फ्यूज जोड़ने के लिए कहा गया है, ताकि गैंडों को करेण्ट लगने से पहले ही फ्यूज उड़ जाये।

उत्तर प्रदेश के दुधवा राष्ट्रीय उद्यान में गैंडों के एक झुण्ड को बसाने के प्रयास चल रहे हैं। वहाँ १९८९ में नौ गैंडे थे, वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के कड़ाई से पालन, गैंडे के सींग के व्यापार पर नियन्त्रण और अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संघ, विश्व प्रकृति निधि आदि के प्रयासों से गैंडे के संरक्षण को काफी प्रोत्साहन मिलता है। □

श्रावस्ती नरेश राजा सुहेलदेव की ललकार

सिंह किशोरो! है स्वर्ण सुयोग, न भूलि के पैर को पीछे हटाना।
हैं हम वंशज पारथ भीम के शत्रुओं को भलीभाँति जताना।।
यों चमके 'द्विजदीन' कृपाण, कि सोना हो स्वप्न, हराम हो खाना।
वीरो! चलो समरांगन को प्रण ठानो, न माता का दूध लजाना।।

- 'सुहेल बावनी' से

उद्यानों में वन नागफनी के घुस आये

– अजय गुप्त

उपवन की देहरी पर ओ रक्तिम हस्ताक्षर;
ओ नयी प्रगति की तथाकथित आलोक रेख!
जड़मूल काटकर पत्तों को रँगनेवाले;
सुमनों के होठों पर जहरीले शिलालेख!
उपवन की कलियों ने जाने किस हसरत से,
सौंपी थी तुमको बागडोर हर क्यारी की।
छलना का लिए हजारा एकदम रीता ही,
की देख–रेख तुमने प्यासी फुलवारी की।।
वादों की याद दिलाने को मुँह खोला जब,
पीते–पीते आश्वासन का खारा पानी।
कुछ नयी आँधिओं का झोंका जैसा डोला,
विद्रूप कर उठी तब अनुशासन की रानी।।
जो सींच गये धरती अन्तर के अमृत से,
माँ की छाती पर बिखरीं जिनकी पंखुरियाँ।
मिट्टी जिनका आलिंगन करना चाह रही,
वृन्तों पर जिनको चूम रहीं व्याकुल परियाँ।।
रक्तिम गुलाब थे जो सुभाष सेनानी के,
या थे जो विप्लव के उपवन के कल्पवृक्ष।
शाश्वत सुमनों का सौरभ तुमको भा न सका,
तब सुलग उठा गौतम का पावन बोधिवृक्ष।
इसमें कुछ तेरा दोष न माना जा सकता,
यह था जीवन का प्रश्न, स्वार्थ का सौदा था।
पूरे उपवन का दर्द नहीं था, नाटक था,
वैयक्तिक चिन्तन का अनिवार्य मसौदा था।।
अब तो राहें खुल चुकीं, झाड़ियाँ साफ हुईं,
आड़े–तिरछे हर तिनके को जलना होगा।
चाहे जैसे अब हवा बहेगी ही जी भर,
अनुशासित होकर सौरभ को चलना होगा।।
काँटों को दुलराया वे तेरे अपने थे,
अथवा तेरे पर उनके भय का साया था।
या उनके बिना न तेरे कदम घिसट सकते,
इसलिए हृदय के आसपास ठहराया था।।

काँटों को ही काँटों से दिल से प्यार हुआ,
फूलों से तो नफरत होना स्वाभाविक है।
फूलों के चुभना काँटों का यदि नित्यकर्म,
तो फूलों का आक्रोशित होना वाजिब है।।
काँटों की दुनिया में यदि जीने का मन है,
तो कोमल पंखुरिओं पर तीखी धार धरो।
काँटे तेरे चुभने की मन में सोच सकें,
इससे पहले ही बढ़कर उन पर वार करो।।
माना अनुशासन है जीवन का मूल–मन्त्र,
उच्छृंखल काँटों को वश में करना होगा।
उद्यानों में वन नागफनी के घुस आये,
उन पर पलाश के अँगारे धरना होगा।।
मर्यादित सागर का मन ताल खा रहा है,
हैं ज्वार मेरुश्रृंगों पर चढ़ने को आकुल।
हल्दीघाटी के शिला–खण्ड क्रसमसा रहे,
भुजदण्ड तोलता है अब गौतम का राहुल।।
ओ काली लपटो! लाल प्रदर्शन बन्द करो,
वरना गंगाजल का आँचल जल जायेगा।
यमुना से कोई कृष्ण काल बन निकलेगा–
अविचलित हिमालय आसन से चल जायेगा।।
हो चुका बहुत तुमने दूबों पर तोप धरी,
किसलय के कोमल अंग जला डाले तुमने।
प्रतिभा, शुचिता, सत्यता, असलियत को फूँका,
युग के सब जाली नोट चला डाले तुमने।।
बल के हल से जन मानस कुरेदने वाले,
देखना कहीं नन्दन पतझर मत बन जाये।
सदियों से शीतल, स्निग्ध, शान्त रहने वाला,
देखना कहीं चन्दन विषधर मत बन जाये।।

— श्री गान्धी पुस्तकालय, चौक,
शाहजहाँपुर (उ०प्र०)

☆

(पृष्ठ २२ का शेष) **विहंगावलोकन...**

राणी–कोट– गोगुन्दा से दक्षिण, उदयसिंह के दाह–संस्कार स्थल के समीप के गाँव राणा–गाँव से आगे धोलिया पहाड़ की तलहटी में स्थित प्रताप का गढ़।

७. रोहिड़ा– जरगा पहाड़ की तलहटी में दक्षिण–पूर्व स्थित प्रताप का संकटकालीन गढ़। ८. उबेश्वर शिव मन्दिर के समीप प्रताप का आश्रय–गढ़। ६. कोल्यारी– हल्दी–घाटी युद्ध में घायल सैनिकों का इलाज आवरगढ़ एवं कोल्यारी में हुआ था। प्रताप भी कोल्यारी के बाद आवरगढ़ गये थे। १०. लोसिंग– हल्दी घाटी युद्ध के पूर्व प्रताप की सैन्य छावनी यहाँ थी। ११. कुम्भलगढ़– महाराणा कुम्भकर्ण सिंह (कुम्भा)से लेकर प्रताप तक की यह राजधानी रही। यहीं प्रताप का जन्म हुआ। १२. उदयपुर– उदयसिंह एवं प्रताप की राजधानी रही। १३. चित्तौड़– रावल बाप्पा (कालभोज) से उदयसिंह तक यह राजधानी रही। १४. चावण्ड– 'छप्पन' क्षेत्र में स्थित चावण्ड को प्रताप ने मेवाड़ की राजधानी बनाया। यह अमर सिंह तक लगभग ४१ वर्ष राजधानी रही। ५७ वर्ष की आयु में प्रताप का निधन यहीं पर हुआ। समीप के बण्डोली ग्राम के निकट बहते नाले के त्रिवेणी–संगम पर दाह–संस्कार किया गया।

महाराणा उदयसिंह के अनुसार– "जहाँ राजा वहीं राजधानी और जब तक वह जीवित और सुरक्षित है, तब तक मेवाड़ सुरक्षित है।" □

–चित्तरपुर–८२५१०१, रामगढ़ (हजारीबाग)
छोटा नागपुर (वनांचल) बिहार

(पृष्ठ २६ का शेष)

वैभव और विपद् कथा...

के स्वतन्त्रता संग्राम समारोह के लिए लन्दन में निमन्त्रण बाँटा था, तो शीर्ष पर वन्देमातरम् ही लिखा था। यहीं मदन लाल धींगरा ने लार्ड कर्जन वायली का वध करके वन्देमातरम् का उद्घोष किया था। मदाम कामा द्वारा निर्मित राष्ट्रध्वज पर भी देवनागरी में वन्देमातरम् अंकित था। कनाडा की गदर पार्टी ने इसे अमेरिका में प्रचारित किया था और वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा मदाम कामा ने पेरिस से 'वन्देमातरम्' पत्रिका प्रकाशित की थी। फलस्वरूप १२ दिसम्बर १६११ को दिल्ली दरबार में सम्राट् जार्ज पञ्चम ने बंग–भंग की समाप्ति की घोषणा की। दिसम्बर १६११ के अन्त में कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ता में तय था। कांग्रेस ने इसमें राजदम्पति के प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शन का निर्णय लिया था।

इस हेतु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मातृपुत्री प्रतिमा देवी के राजभक्त पति आशुतोष चौधुरी ने उनसे गान लिखने का अनुरोध किया था और दामाद के अनुरोध की अवहेलना वे नहीं कर सके– रचा गया 'जनगण मन'। इसे कांग्रेस अधिवेशन में गाया गया था। यह राजवन्दना नहीं बल्कि "पतन अभ्युदय–बन्धुवर पन्था युग युग धावित यात्री" अर्थात् ईश्वर के लिए था। केवल अधिवेशन में गाये जाने के कारण यह रवीन्द्रनाथ के लिए राजभक्ति के कलंक का टीका बन गया। कालान्तर में इसी गान को वन्देमातरम् को हटाने का शस्त्र बनाया गया था; किन्तु वन्देमातरम् अजेय रहा। विपिन चन्द्र पाल के अनुसार बंकिम ने महाविष्णु के आसन पर राष्ट्रमातृका को स्थापित कर दिया था। श्री अरविन्द के अनुसार– बंकिम की सर्वोच्च राष्ट्र–सेवा यही थी कि उन्होंने हमें हमारी माता का साक्षात्कार करा दिया।

बंकिम साख्य–दर्शन–अनुयायी निराकार उपासक थे। शिवाजी और रणजीत सिंह उनके प्रेरणा–स्रोत थे। अतः मूर्त्ति पूजा का अभियोग तो निरर्थक कल्पना है। रवीन्द्रनाथ ब्राह्म थे; किन्तु उनकी रचनाओं में या माईकेल मधुसूदन दत्त की रचनाओं में देव–देवियों का उल्लेख तो साहित्य के बिम्बों का व्यवहार है, जिसके कारण उनकी धार्मिक निष्ठाओं पर किसी ने शंका नहीं की है।

भारतवर्ष के रियाजुल्करीम, मुहम्मद युसुफ, गुलाम अली, मेहताब हुसेन जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान अपने समाज को वन्देमातरम् के पक्ष में प्रभावित नहीं कर सके थे। २८ दिसम्बर १६२३ को काकीनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष मुहम्मद अली ने अधिवेशन में वन्देमातरम् पर आपत्ति उठायी थी। १६३१ के कराची कांग्रेस अधिवेशन में पारित मूलभूत अधिकारों के प्रस्ताव के अनुसार कोई अल्पसंख्यक समाज यदि कांग्रेस के किसी विधान का विरोध करे, तो कांग्रेस उस पर विचार करने को बाध्य थी। १६३५ की प्रदेश विधानसभाओं में जहाँ भी वन्देमातरम् गाया गया, तो मुस्लिम सदस्यों ने आपत्ति उठायी थी। तदनुसार १६३७ में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सुभाष, नेहरू, नरेन्द्रदेव तथा आजाद की समिति गठित की गयी थी। इस समिति को रियाजुल् करीम जैसे राष्ट्रवादी नेता ने चेतावनी दी थी कि यदि मुस्लिम लीग को सन्तुष्ट करने के लिए कांग्रेस वन्देमातरम् को पूर्णतया छोड़ दे, तो भी वे (मुसलमान) कांग्रेस के झण्डे तले आनेवाले नहीं हैं। समिति की ओर से सुभाष के निवेदन पर रवीन्द्रनाथ ने वन्देमातरम् का समर्थन किया था। वन्देमातरम् में मूर्त्तिपूजा के प्रचार की आँधी में एक बार वे विचलित हो उठे थे कि क्या सचमुच ही इसे मुसलमानों के गले के नीचे उतारना सम्भव होगा ? किन्तु बाद में वे समर्थक ही रहे।

मुस्लिम लीग ने अपने १६०८ के अमृतसर सम्मेलन में प्रस्ताव ग्रहण किया था वन्देमातरम् जैसा घोष और गीत और रक्षाबन्धन तथा शिवाजी–जयन्ती जैसे पर्व उन्हें स्वीकार नहीं हैं। कांग्रेस ने भी २६ नवम्बर १६३७ को प्रस्ताव लेकर स्पष्ट किया था कि कांग्रेस ने कभी आधिकारिक रूप से वन्देमातरम् को राष्ट्रगान स्वीकार ही नहीं किया था। मुस्लिम लीग ने १६३८ में भी ग्यारह सूत्री माँगों में वन्देमातरम् को हटाने की माँग भी पुनः रखी थी।

कांग्रेस की समिति में अकेले सुभाष ही वन्देमातरम् के पक्ष में थे किन्तु नेहरू, आजाद और नरेन्द्रदेव ने वन्देमातरम् को दो पदों को ही मान्यता देकर वन्देमातरम् का अंग–भंग कर दिया। रामानन्द चट्टोपाध्याय जैसे निराकारवादी ब्राह्म ने इसके विरुद्ध गांधी जी से अपील की थी; किन्तु गांधी जी ने वन्देमातरम् की मौखिक प्रशंसा करते हुए भी कांग्रेस के इस जघन्य कृत्य के विषय में कुछ नहीं कहा।

३० दिसम्बर १६३६ को श्री अरविन्द से इस अंग–भंग के विषय में पूछा गया, तो उनका उत्तर था– "इस तरह क्या हिन्दुओं को अपनी संस्कृति छोड़ देनी चाहिए ?" देव–देवियों के नाम पर उनका मत था– "यह राष्ट्रगान है

जिसमें वर्णित दुर्गा भारतमाता है। मुस्लिम इसे स्वीकार क्यों नहीं करते ? यह काव्य में प्रतीक है। भारत में राष्ट्र की अवधारणा में हिन्दू–दृष्टि तो स्वाभाविक रीति से रहेगी। यदि यह यहाँ स्थान नहीं पा सकती, तो हिन्दुओं को कहा जा सकता है कि वे अपनी संस्कृति छोड़ दें। हिन्दू तो अल्लाहो–अकबर पर आपत्ति नहीं करते।"

स्वाधीनता के पश्चात् २५ अगस्त १६४८ को नेहरू जी ने संविधान सभा में बताया कि स्वर–लिपि न होने के कारण १६४७ में संयुक्त–राष्ट्र–संघ के मुख्य कार्यालय न्यूयार्क में जनगणमन की धुन बजायी गयी थी। वास्तविकता यह है कि ऐसा कांग्रेस सरकार के निर्देश पर ही प्रतिनिधियों ने किया था। यह वक्तव्य सत्य नहीं था।

वन्देमातरम् की एक स्वर–लिपि पुणे के श्री कृष्णराव रामचन्द्र फुलम्बिकर ने बनायी थी। १६३६ में आनन्द बाजार पत्रिका की प्रयोजना में तिमिरवरण भट्टाचार्य ने अपनी स्वर–लिपि ही नहीं बनायी थी; बल्कि उसका रिकार्ड बाजार में उपलब्ध था। इसके वाद्य–संगीत में काली सरकार, पाल रोजारियो, अमित भट्टाचार्य, मुहम्मद आलम, जे०. मैजिम, एल कोरिया आदि तथा कण्ठ–संगीत में इभा सरकार, आरती बल, परेश देव, सागरमय घोष आदि थे। इसे राग दुर्गा की धुन में बाँधा गया था।

सम्भव था कि संविधान सभा में इस मुद्दे पर बहस होती, तो सत्य के साथ अन्य बिन्दु तथा व्याख्याएँ सामने आ सकती थीं। यह विषय बहस के लिए स्वीकृत भी हुआ था; किन्तु कांग्रेस ने अपनी फासिस्ट कार्य प्रणाली तथा निरंकुश संख्या गरिष्ठता के बल पर बहस ही नहीं होने दी। वन्देमातरम् का पुनः अंगच्छेद करके केवल प्रथम पद रखकर २४ जनवरी १६५० को संविधान सभा के अध्यक्ष ने घोषणा कर दी कि जनगणमन राष्ट्रगान होगा और बचा खुचा वन्देमातरम् राष्ट्रगीत रहेगा। नेहरू जी तो हिन्दुस्तानी भाषा में राष्ट्रगान चाहते थे। कभी रवीन्द्रनाथ से उन्होंने नया राष्ट्रगान लिखने को कहा भी था और कवि के मौन को स्वीकृति भी मान बैठे थे।

यह स्थिति आज भी है। श्री ए०जी० नूरानी ने 'फ्रन्टलाइन' के १५ जनवरी १६६६ के अंक में दर्पस्फीत घोषणा की है कि– "एक कविता (राष्ट्रगीत नहीं) जो काट–छाँट के लायक है, सार्वजनिक स्वीकृति नहीं प्राप्त कर सकती। A poem which needs surgical operation can not command universal acceptance."

वन्देमातरम् का वागर्थ

यह मन्त्र होने के साथ साथ "रमणीयार्थ प्रतिपादकं काव्यम्" परिभाषा को चरितार्थ करते हुए भागवत् के "स्वादु स्वादु पदे पदे" कथन को भी चरितार्थ करता है। इसमें भागवत् का रस, महाभारत की विशालता और रामायण की दिव्यता भारतमाता में मूर्त्तिमन्त हो उठी है। "सुजलां" से "द्रुमदलशोभिनीं" तक है मातृ–मूर्त्ति का विशेषण, बहुब्रीहि समास से ग्रथित शब्दमाला में शुभ्रज्योत्स्ना पुलकित यामिनीं" सप्तमी के तत्पुरुष में "फुल्ल कुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्" और माँ प्राणवन्त हो गयी "सुहासिनीं" से "वरदां" तक। माता का पुत्रों से सम्बन्ध "सप्त कोटि कण्ठ" प्रत्यक्ष करता है। भारत माँ किसी दैवी शक्ति से नहीं अपने पुत्रों की शक्ति से ही बहुबलधारिणीं हैं। इसी बल से वे बाधा–विघ्नों से "तारिणीं" है। अतः वे "रिपुदल नाशिनीं" नहीं, "रिपुदल वारिणीं" हैं। शत्रु का निवारण मात्र करती हैं।

विद्या और धर्म, अन्यत्र नहीं, माता में ही हैं। वही "हृदय", "मर्म" और "शरीर" में प्राण हैं। पञ्चभूतों की समष्टि से अन्तःकरण अर्थात् "हृदय" षड्गुणों से युक्त पञ्चभूत हैं "मर्म"। इन्हीं में निवसित है प्राण। ज्ञान कर्म और चित्त की मनोरचना के बाद है शरीर। उसमें कर्म का प्रतीक है "बाहु"। माता है उसमें शक्ति, भाव का प्रतीक है हृदय माता है उसमें भक्ति और पुत्रों के इस देह रूपी "मन्दिर" अर्थात् गृह में राष्ट्र माता की प्रतिमा प्रतिष्ठापित हो, यही वागर्थ है। संस्कृत में मन्दिर केवल देवालय नहीं, राष्ट्र भी मन्दिर है। ऐसी जन्मभूमि ही दुर्गा अर्थात् दुर्गतिनाशिनी है, जो दसों दिशाओं के दशप्रहरण को धारण करती है। वही "कमल" अर्थात् ब्रह्माण्ड में शिवत्व दायिका, विद्यादायिनी वाणी है। "त्वं" जहाँ कर्तृकारक का एकवचन है "त्वां" कर्मकारक का एकवचन है। जन्मभूमि ही है पुत्र के लिए एकमात्र ध्यान की देवी !

आगे यही "अमलां" अर्थात् मलविहीना माता है, अतुलनीय है, स्वच्छता का प्रतीक जल और फल की दायिका है।

वन्देमातरम् की समाप्ति ध्यान का चरमोत्कर्ष है। माँ "श्यामलां" अर्थात् हिमालयपुत्री हैं। "सरला" का अर्थ अमर कोष में है "दक्षिणे सरलोदारौ" अर्थात् उदारचेता माँ। "सुस्मितां" अर्थात् प्रसन्ना "भूषितां" अर्थात् ऐश्वर्यमयी।

साथ ही माँ है "धरणीं भरणीं" अर्थात् विश्व का भरण–पोषण करनेवाली जगद्धात्री।

यहीं बंकिम अथर्ववेद के ऋषि के साथ–

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" की घोषणा करके ऋषि पद प्राप्त करते हैं। □

– अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी–६०५००२

बादशाह बेगम गुलाम

– शंकर पुणतांबेकर

मुझे थर्मस लेना था, मैं एक बड़े स्टोर में घुसा। भीड़ थी। काउण्टर पर कोई कुछ, कोई कुछ ...ख रहा था।

थर्मस चाहिए....हाँ हाँ, मिलेगा थर्मस, उधर मिलेगा। तीन–चार काउण्टर पर वही जवाब मिला मुझे। झल्लाहट हुई, चल दो यहाँ से, लेकिन पत्नी ने ...हा था इसी स्टोर से खरीदना सस्ता मिलेगा।

और काउण्टर आजमाऊँ कि तभी स्टोर के सामने ...क कार रुकी, उसमें से एक रूपसी उतरी और स्टोर में ...यी।

उसके प्रवेश के साथ स्टोर का पूरा दृश्य ही ...दल गया।

आइए मेमसाब, पधारिए। सारे काउन्टरों ने और ...लिक ने उसका स्वागत किया।

रूपसी ने ....मैं इसे बेगम कहूँगा, वह किसी की ...म ही लगती थी। व्यक्तित्वहीन....बेगम ने स्टोर में चारों ...र दृष्टि दौड़ायी और बोली ओह, कितना 'हॉट' है।

फरवरी का महीना था, पंखे मार्च तक छुट्टी पर थे, ...र महीने की। "कितना हॉट है" सुनकर कैश पर बैठा ...लिक उठा और उसने सारे पंखे चालू कर दिये।

अब तो 'हॉट' नहीं है, मेमसाब! वह बोला।

मुझे लगा जुकाम हो ज़ायेगा, पर मैं पंखा सहता ...। पत्नी ने कहा था थर्मस इसी स्टोर से खरीदना, ...स्ता मिलेगा।

एक केस की ओर इशारा कर बेगम ने कहा, ओह ...धी, नेहरू। वे गान्धी, नेहरू दिखाओ। बहुत अच्छे ...–पीस हैं।

सभी काउण्टर उसी पर केन्द्रित हो गये थे। सो ...सी ने केस में से गान्धी–नेहरू निकालकर उसके ...मने काउन्टर पर रखे, तो किसी ने उन्हें एक कपड़े से ...छा, किसी ने उन्हें ठीक एंगल से रखा, तो किसी ने ...हा बहुत अच्छे 'शो–पीस' हैं सो खूब बिकते हैं ये। कोई ...ो, आप भी ले जाइए। कोई बोला, आपका ड्राइंगरूम ...क उठेगा इनसे।

मेरे मन में प्रतिक्रिया हुई, ड्राइंगरूम की ही चीज ...अब ये गान्धी–नेहरू, सो ड्राइंगरूम में ही रखना इन्हें. ..आचरण में नहीं।

और क्या–क्या 'शो–पीस' हैं?

शिवाजी हैं, राणा प्रताप हैं, विवेकानन्द हैं। जवाब खुद मालिक ने दिया।

और ये पीस काउण्टर पर रख वह बोला खूब बिकते हैं।

मैं अपने आपसे कह उठा, इनकी जीवनियाँ नहीं बिकतीं, इनके इतिहास नहीं बिकते। हाँ, ये चेहरे खूब बिकते हैं, खरीदो–खरीदो। जो जीवनियाँ–इतिहास खरीदते हैं, उनके आप–जैसे ऊँचे ड्राइंगरूम नहीं होते।

सारे काउण्टर और मालिक भी एक औरत में ही केन्द्रित हो गये हैं यह देखकर वास्तव में ग्राहकों को वहाँ से चल देना चाहिए था, लेकिन वे, मैंने देखा, ग्राहक से अब दर्शक बन गये हैं– फिल्म दर्शक, सो वे वहीं बने हुए थे।

मेरे भी वहाँ से चल देने का सवाल नहीं था। पत्नी ने कहा था, इसी स्टोर से थर्मस खरीदना, सस्ता मिलेगा।

वह....वह क्या है? वह दिखाओ मुझे। लटके हुए तौलियों की ओर इशारा करते हुए बेगम ने कहा।

जापानी टॉवेल...जापानी टॉवेल हैं ये। ....काउण्टर पर टॉवेल रखते हुए एक काउण्टर ने कहा। ....अब टर्किश टॉवल नहीं चलते, ये जापानी ही चलते हैं।

टर्किश टॉवेल जापानी के नाम से मारो मत्थे। कहो, ये जापानी टॉवेल इलेक्ट्रॉनिक–युक्त हैं। इनका इस्तेमाल नहाने के बाद नहीं नहाने के पूर्व किया जाता है और ये उल्लू...ये पैसेवाले प्रगत उल्लू ऐसा ही करेंगे, मैंने अपने से कहा।

बेगम ने टॉवेल स्पर्शे, सूँघे और कहा, पानी चाहिए पानी, पीने के लिए।

आप बैठिए बैठिए मेमसाब! पानी आया जाता है, मालिक ने कहा।

वह एक सोफे पर बैठ गयी।

मालिक ने पानी के साथ–साथ कोल्ड ड्रिंक लाने को कहा।

र का क्रान्तिकारी कदम...

र के साथ-साथ ग्राम पंचायतों, जिला पंचायतों को कार्य, र धन का सीधा हस्तांतरण

ई व्यवस्था का ढांचा

स्तर पर

पंचायतों को प्राप्त होने वाली धनराशि ''ग्राम निधि'' में जमा होगी, जिस पर ग्राम पंचायत का पूर्ण नियंत्रण।
प्रत्येक ग्राम पंचायत में अधिकतम **2** पंचायत कर्मी की तैनाती, जिनका पदनाम ग्राम पंचायत एवं विकास अधिकारी।
ग्राम पंचायत एवं विकास अधिकारी द्वारा केवल अपनी तैनाती की ग्राम पंचायत के सभी कार्य पूर्णकालिक बहुउद्देशीय कर्मी के रूप में सम्पादन।
कार्यों के सम्पादन एवं निगरानी के लिए समितियों का भी गठन।

ड स्तर पर

- विकास खण्ड में विकास कार्यों को संचालित करने के लिए समितियों का गठन।
- ऐसी योजना, जो कई गांवों के लिए है, का संचालन क्षेत्र समिति द्वारा।
- कार्यों के सम्पादन के लिए विभागों के बजट में नियत धनराशि का ''क्षेत्र–निधि'' में हस्तांतरण।
- क्षेत्र–निधि पर क्षेत्र–समिति का पूर्ण नियंत्रण।

न पर

- जनपद के विकास कार्यक्रमों को संचालित करने, समन्वय स्थापित करने और कार्यों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न जिला स्तरीय समितियों का गठन।
- जनपद में विकास कार्यों के संचालन के लिए जिला पंचायत को व्यापक वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकार।

लिए सभी स्तरों पर व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन।

ांतरित स्टाफ ''राजकीय सेवक। कोई छंटनी नहीं।

कल्याण सिंह सरक

सत्ता के विकेन्द्रीकरण
क्षेत्र पंचायतों तथा
अधिकार, स्टाफ औ

श्री कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

विकेन्द्रीकरण की नइ

पंचायत

- प्राथमिक पाठशाला, राजकीय नलकूप, हैण्डपम्प, राशन की दुकान, स्वास्थ्य उप–केन्द्र, पशु चिकित्सा केन्द्र, पुष्टाहार कार्यक्रम के अतिरिक्त कृषि, ग्राम्य विकास तथा पंचायती राज विभागों के चयनित कार्यों का ग्राम पंचायतों को हस्तान्तरण।
- ग्राम विकास की रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन योजनाओं का संचालन ग्राम पंचायत द्वारा।
- सौंपे गये कार्यों के लिए विभागों के बजट में नियत धनराशि का ग्राम पंचायतों को सीधा हस्तांतरण ।

विकास खण्ड

- विकास खण्ड के सभी विकास कार्यों का नियोजन और समन्वय क्षेत्र समिति द्वारा।
- प्रथम चरण में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, पशु चिकित्सा केन्द्र, बीज गोदाम, खाद्य सामग्री गोदाम आदि क्षेत्र पंचायत के अधीन।
- विकास खण्ड के अधिकारी एवं कर्मचारियों द्वारा क्षेत्र पंचायत की देख–रेख में कार्यों का सम्पादन।

जिला

- जनपद के विकास के दीर्घकालीन नियोजन तथा वार्षिक जिला योजना तैयार करने के लिए "जिला नियोजन समिति" का पुनर्गठन।
- विकास से सम्बन्धित चयनित विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी जिला पंचायत के अधीन।
- "जिला ग्राम्य विकास अभिकरण" (D.R.D.A.) का पुर्नगठन तथा जिला पंचायत का अध्यक्ष D.R.D.A. का चेयरमैन।

विकेन्द्रीकरण की नई व्यवस्था को सुचारु रूप से लागू करने के

ग्रामीण स्थानीय निकायों को हस्त
सेवा शर्तें यथावत।

जब बेगम पानी और पेय ले चुकी, तो बोली, पानी हमारे कुत्ते को भी दो। कुत्ता कार में था। उसे एक काउण्टर जाकर पानी पिला आया।

वह क्या है, वह क्या है? सोफे से उठकर वह बोली....

वे कैल्कुलेटर हैं। ...बहुत ऊँचे कैल्कुलेटर, जापानी। मालिक ने दस–बारह कैल्कुलेटर काउण्टर पर रखते हुए कहा।

हाँ, मैं कह उठा। हमारे यहाँ सब कुछ जापानी, इंग्लिशतानी या अमरीकी ही होता है। हिन्दुस्तानी तो अब गरीबी ही रह गयी है।

बहुत अच्छे कैल्कुलेटर हैं नहीं? एक कैल्कुलेटर के अंकों पर उंगली चलाती हुई वह बोली।

हाँ, बहुत अच्छे। मैं आपके खरीदे जितने भी कैल्कुलेटर हैं....इंजीनियर, सी.ए., उद्योगपति....उनके अंकों पर आप उंगली चलाइए और जैसा चाहें जोड़ हाजिर है, जैसा गुणा, भाग, बाकी चाहें हाजिर हैं। झुग्गीपट्टी घट जाये, बंगला जोड़ आ जाये, अधिकार गुणा बन जाये, कर्तव्य भाग हो जाये।

ओह आईने! कितने सुन्दर आईने। वे आईने दिखाओ, वह बोली।

अलग–अलग फ्रेम के छोटे–बड़े आईनों की ओर ध्यान गया।

वह आइने देखने–परखने लगी।

बेल्जियन ग्लास है, मालिक बोला।

हाँ, भारतीय ग्लास में तो भारतीय चेहरा भारतीय बैंक भी नहीं चढ़ पाता। वहीं विदेशी ग्लास में कोई भारतीय चेहरा झाँकता है तो वह ठाट से विदेशी बैंक, स्विस् बैंक चढ़ता है। ....मैं

बेगम आईने नहीं, अपने चेहरे को ही उनमें देख रही थी। मंत्री की तरह, जब वह विदेश में शस्त्रास्त्र, विमानादि की खरीद में अपने को देखता है।

आखिर बेगम ने एक लेडीज रुमाल खरीदा और वह वहाँ से चली।

मालिक ने कहा एक यानी एक दर्जन, तो वह बोली नहीं एक दर्जन नहीं, एक नग।

मालिक रुमाल के पैकेट को उसकी कार तक पहुँचाने गया।

सच कहता हूँ, मैं यहाँ के पक्षपाती माहौल से कभी का चला गया होता, पर पत्नी ने कहा था, इसी स्टोर से थर्मस खरीदना, सस्ता मिलेगा।

उधर मालिक लौटकर जब अपने सिंहासन पर आया, तो काउण्टरों पर दहाड़ा, चलो एक जगह भीड़ मत करो। अपनी–अपनी जगह सँभालो।

मुझे लगा बादशाह पुनः बादशाह बन गया। बादशाह, जो बेगम के पीछे गुलाम बन गया था। □

— २ मायादेवी नगर, जलगाँव–४२५०

लालू अब भी मुख्यमन्त्री कैसे ?

एक पत्रकार ने 'लालू' से पूछा– सर, आपने कहा था, "जब तक समोसे में आलू रहेगा, तब तक बिहार में मुख्यमन्त्री लालू रहेगा।"

समोसे में तो आज भी आलू रहता है।

"लेकिन आज आप मुख्यमन्त्री नहीं हैं।"

"तुम्हें ऐसा लगता है क्या?" लालू ने उत्तर दिया।

पत्रकार बेचारा घबरा गया। पलभर को सकपका गया।

"अगर लगता है तो हम अभी समझाये देते हैं
हम मुख्यमन्त्री हैं या नहीं, अभी दिखलाये देते हैं।"

बेचारा पत्रकार काँपने लगा, यस सर, नो सर बड़बड़ाने लगा। उसकी यह दशा देख–

लालू ने समझाया–

"हमारे शास्त्रों में पत्नी को अर्द्धांगिनी कहा गया है
अर्द्धांगिनी का अर्थ पति का आधा अंग।
इसलिए 'राबड़ी' तब भी मुख्यमन्त्री थीं,
जब मैं मुख्यमन्त्री था।
आज जब राबड़ी मुख्यमन्त्री है,
तो मैं भी मुख्यमन्त्री हूँ।
इसलिए
आज भी समोसे में आलू है,
और बिहार का मुख्यमन्त्री 'लालू' है।"

— हरिकिशन चावला

साभार / राजस्थान पत्रिका

पाक-प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ

अभी हाल में ही अमेरिका ने अन्तर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल के द्वारा यूगोस्लाविया के राष्ट्राध्यक्ष मिलोसेविच को युद्ध-अपराधी घोषित करा कर उनकी गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी कराया है। मिलोसेविच का अपराध? यही न कि उन्होंने अपने देश के एक प्रान्त कोसोवो को अल्बानियाई मूल के लोगों के सशस्त्र विद्रोह से मुक्त कराने के लिए सैनिक-कार्यवाही की। जो अमेरिका अपनी दादागीरी के बल पर मिलोसेविच को बलात् युद्धापराधी घोषित कराता है, वही अमेरिका क्या पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ और सेनाध्यक्ष परवेज मुशर्रफ को कारगिल पर हमला कर वहाँ के नागरिकों की ही नहीं, गश्त के समय बन्दी बनाये गये हमारे उन छह जवानों की भी नृशसतम हत्या के लिए जिम्मेदार ठहराकर उन पर युद्ध-अपराधी के रूप में मुकदमा चलाने की सोचेगा? लेफ्टिनेण्ट एस० कालिया के शव के साथ ही उनके पाँच अन्य साथी सैनिकों के शवों को जिस प्रकार क्षत-विक्षत अवस्था में भारत को सौंपा गया है, उसे देखकर तो तैमूरलंग और नादिरशाह भी शरमा जायेंगे। उनकी आँखें निकाल ली गयीं, उनकी पुरुषेन्द्रिय काटी गयी, जलती सिगरेटों से उन्हें दागा गया उनको टुकड़े-टुकड़े काटा गया और इस तरह बहशीपन की सारी सीमाएँ पाकिस्तान ने तोड़ डालीं। एक सैनिक के तो मुँह में राइफिल की नाल डालकर गोली मारी गयी। इन शवों का बीभत्स-रूप किसी के भी रोंगटें खड़े कर देनेवाला था। इसके पहले स्क्वेड्रन लीडर अजय आहूजा की भी बन्दी के रूप में गोली मारकर हत्या करने में पाकिस्तान ने कोई आगा-पीछा नहीं सोचा। कहाँ तो पाकिस्तान का यह क्रूरतम व्यवहार हमारे अपने क्षेत्र में गश्त

इन्हें फाँसी क्यों न दी जाय

करने निकले जवानों के साथ और कहाँ हमने उसके तीन गिरफ्तार सैनिकों को सही-सलामत वापस लौटा दिया बिना अपने कथित-रूप से लापता सैनिकों की सकुशल वापसी के। अभी हमारे आठ और लापता बहादुर जवानों के पाकिस्तान के कब्जे में होने की सम्भावना है। बहुत सम्भव है, उनकी हत्या भी इसी प्रकार क्रूरतम रीति से की जा चुकी हो और उनके शव भी न लौटाये जायँ।

पाक-जनरल परवेज मुशर्रफ

आखिर पाकिस्तान से हम ऐसी आशा करते ही क्यों हैं कि वह एक सभ्य देश की तरह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन करेगा? क्यों हमें यह पता नहीं रहता कि पाकिस्तान एक इस्लामी देश है, उसका निर्माण ही 'हिन्दुस्तान' से घृणा के आधार पर हुआ है; उसने आज तक किसी सन्धि, समझौते का पालन नहीं किया है; घृणा उसकी आधार-शिला है, उसकी नींव में है, उसकी रग-रग में है, धोखा देना उसके इस्लामी मूल में निहित है? जिस इस्लाम का अपने प्रवर्त्तन-काल से लेकर आज तक का इतिहास विश्वासघात, लूट, आगजनी, हत्या, बलात्कार, विध्वंस और नृशंसतम क्रूरताओं से भरा है, उसी की उपज तो है पाकिस्तान, पाकिस्तान-पोषित आतंकवाद। लाहौर की बस-यात्रा इस इस्लामी इतिहास, पाकिस्तानी इतिहास, पाकिस्तानी आचरण को भूल जाने के लिए तो नहीं थी। कारगिल पर हमला पाकिस्तान के लिए कोई नई बात नहीं और हमारे लिए भी कोई नया अनुभव नहीं, लेकिन स्मरण रखने की बात थी, बात है कि बांग्ला देश युद्ध के समय जो दो भारतीय पत्रकार पाकिस्तानी सेना के हत्थे चढ़ गये

थे, उनकी खाल उसने जिन्दा ही निकाल ली थी और उनके शव उसी हालत में लटके मिले थे। वह घोषित–युद्ध था, यह अघोषित युद्ध है। जब घोषित युद्ध में पाकिस्तान किसी नियम का पालन नहीं करता, तो अघोषित युद्ध में क्यों करेगा ? विश्व भर में इस्लामी आतंकवाद का एकमात्र निर्यातक देश पाकिस्तान दुनिया का एकमात्र आततायी देश भी है, इसे क्यों बार–बार भुला दिया जाता है ?

पाकिस्तान हत्यारा देश भी है, इसे भी सारे संसार में उजागर किया जाना चाहिए। पता नहीं क्यों, अभी तक पूरे देश में पाकिस्तान के विरुद्ध वैसा प्रबल जनाक्रोश क्यों नहीं उपजा, जैसा १९६२ में चीन के विरुद्ध और १९६५ तथा ७१ में पाकिस्तान के विरुद्ध स्वतः भड़क उठा था ? कहीं इसके पीछे 'सेक्यूलरिज्म' की मनहूस काली छाया तो नहीं है ? ध्यान रहे पोकरण–२ से लेकर गत १७ अप्रैल तक; जब तक अटल–सरकार को गिरा नहीं दिया गया, इस देश की सभी तथाकथित स्वघोषित 'सेक्यूलर ताकतों' का इकलौता लक्ष्य केन्द्र–सरकार को गिराना ही था। सरकार के (मात्र एक वोट से) गिराये जाने और कारगिल में पाकिस्तान के घुस बैठने का समय लगभग एक ही है। दोनों में कहीं न कहीं क्या कोई सामञ्जस्य नहीं दीखता ? सरकार को लगातार अस्थिर बनाये रखने के, गिराने के प्रयत्नों के बिना क्या पाकिस्तान कभी यह जुर्रत करता ? यह बात भूलने की नहीं है कि इस देश को जितना खतरा पाकिस्तान से है, उससे कम खतरा इस 'सेक्यूलरिज्म' से नहीं है। जब तक पाकिस्तान का अस्तित्व रहेगा, भारत के लिए भी तब तक संकट बना रहेगा। पाकिस्तान भारत के लिए एक स्थायी संकट है, यह भी हमें हमेशा याद रखना चाहिए। अस्तु।

कारगिल की पुकार है कि पाकिस्तान की अकल हमेशा–हमेशा के लिए ठिकाने लगाने के लिए भारत तत्काल पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ और सेनाध्यक्ष परवेज मुशर्रफ को युद्धापराधी घोषित करे; उनके विरुद्ध विशेष सैनिक–न्यायालय गठित कर इन्हें 'कोर्ट मार्शल' करके फाँसी पर लटकाया जाय। अमेरिका यदि मिलोसेविच को युद्धापराधी घोषित कर सकता है; पाकिस्तान यदि एक नागरिक और वरिष्ठ पत्रकार नजम सेठी को 'कोर्ट मार्शल' करा सकता है, तो भारत ऐसा क्यों नहीं कर सकता ? जगह–जगह नवाज शरीफ के पुतले फूँकने या पाकिस्तानी उच्चायोग पर प्रदर्शन करने का फूहड़पन बन्द कर, इन दोनों पाकिस्तानियों को फाँसी दिये जाने की माँग किये जाने का और कौन समय आयेगा ? ☐

– आनन्द मिश्र 'अभय'

माता जीजाबाई पर डाक टिकट जारी होगा

केन्द्र सरकार छत्रपति शिवाजी की माता जीजाबाई की ४०१वीं पुण्यतिथि पर ७ जुलाई को उनके नाम से एक डाक टिकट जारी करेगी। डाक टिकट का विमोचन नई दिल्ली में होगा। इसके अलावा 'राष्ट्र सेविका समिति' की ओर से इस दिन देशभर में विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया जायेगा। ☐

आगामी अंक (अगस्त, ९९)

लोकतन्त्र-सुरक्षा विशेषांक

इस बार 'राष्ट्रधर्म' का अगस्त, ९९ अंक, 'लोकतन्त्र–सुरक्षा विशेषांक' होगा, जिसमें अपने–अपने विषय के अधिकारी विद्वानों के गहन विचारपरक लेखों, ओजस्वी कविताओं के अतिरिक्त लोकतन्त्र में पनपी विकृतियों, उनके सही निदान और निराकरण के उपायों पर केन्द्रित विशेष सामग्री होगी। 'राष्ट्रधर्म' के विशेषांकों की परम्परा में ही यह विशेषांक भी कम संग्रहणीय नहीं रहेगा।

विज्ञापन की अन्तिम प्राप्ति–तिथि १५ जुलाई, ९९।

पृष्ठ संख्या – १००

मूल्य – १५/–

- व्यवस्थापक

कारगिल-घुसपैठ इस्लामी विस्तारवाद का एक चरण मात्र है

- हृदय नारायण दीक्षित
(भू०पू० संसदीय कार्यमन्त्री, उ०प्र०)

भारतमाता के वीर पुत्र कारगिल की पर्वत शृंखलाओं पर अपनी पवित्र धरती की सुरक्षा में बलिदान दे रहे हैं। आत्माहुति का प्रत्येक समाचार भारत के एक-एक व्यक्ति को सिहरन, कम्पन और आक्रोश-जन्य थरथराहट दे रहा है। कहने को भारत के फौजी जवान अपने क्षेत्र में घुस आये घुसपैठियों को बाहर खदेड़ने का साधारण काम कर रहे हैं; परन्तु वस्तुतः कारगिल की हिमाच्छादित पहाड़ियाँ, उपत्यकाएँ युद्ध-स्थल बन गयी हैं। भारत-पाक के बीच युद्ध जारी है। घुसपैठिये पाकिस्तान ने भेजे हैं। सीधे युद्ध न करने के बजाय पाकिस्तान ने अपनी सेना को भाड़े के लोगों के रूप में युद्ध करने के निर्देश देकर भारत की शान्ति व्यवस्था को पलीता दिखाया है।

पाकिस्तान अपने जन्म-काल से ही भारत के साथ युद्धरत है। आजादी के फौरन् बाद भी पाकिस्तान ने कारगिल (१९९९) की तर्ज पर कश्मीर में कबाइली भेजे थे। कश्मीर के महाराज हरिसिंह के अनुरोध पर भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने फौरन् सैन्य सहायता नहीं भेजी। पं० नेहरू देश की आलोचना का शिकार हुए। पाकिस्तान ने इसके बाद भी भारत पर तीन हमले किये। पाकिस्तान तीनों युद्ध हारा। १९६५ के पाकिस्तानी हमले के जवाब में भारतीय सेनाएँ पाकिस्तान के काफी भीतर तक घुस गयीं। सेना ने हाजी पीर के दर्रे जैसे सामरिक महत्त्व के अड्डों पर कब्जा कर लिया; किन्तु युद्ध में खून देकर जीती गयी भूमि राजनीतिक बैठकों में चाय पीकर वापिस कर दी गयी। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी शिमला समझौते के अन्तर्गत पाकिस्तान के ९३ हजार सैनिक (युद्धबन्दी) वापस किये; मगर पाक-अधिकृत कश्मीर की वापसी पर कोई बातचीत नहीं हुई। पाकिस्तान तीनों युद्ध हारकर भी कभी घाटे में नहीं रहा।

पाकिस्तान पंजाब में आतंकवाद को खुला समर्थन और हथियार देकर भारत से युद्धरत रहा है। जम्मू-कश्मीर में हिन्दुओं की थोक में हत्याएँ पाकिस्तान प्रशिक्षित इस्लामी उग्रवादियों ने कीं। उग्रवादियों से बरामद सैन्य-सामग्री की उन्हें आपूर्ति पाकिस्तान ने की। यह सारे तथ्य पाक की युद्धकामी मानकिसता का खुलासा करने को काफी हैं।

असल में पाकिस्तान का जन्म एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में हुआ ही नहीं। सम्पूर्ण भारत का इस्लामीकरण करने की इस्लामी-विस्तारवाद की आकांक्षा से ही पाकिस्तान का जन्म हुआ। एफ०के० दुर्रानी ने अपनी पुस्तक "मीनिंग ऑफ प्राकिस्तान" में कहा "पाकिस्तान का निर्माण इसलिए महत्त्वपूर्ण था कि उसको शिविर बनाकर शेष भारत का इस्लामीकरण किया जाय।" पाकिस्तान भारत के इस्लामीकरण के मंसूबे का सैन्य-शिविर बना हुआ है। उसकी भारत के सम्पूर्ण इस्लामीकरण की लालसा बहुत पुरानी है। अमीर खुसरो की काव्य कृति 'मसनवी' को अद्वितीय साहित्यिक कृति माना जाता है। 'मसनवी' में हिन्दुओं के कत्ले-आम की खातिर इस्लामी आक्रमणकारियों की तारीफें मजहबी मन को इबारत देती हैं। मसनवी में कहा गया है, "जहाँ रा कदीम आमद ई रस्मो पेशः। कि हिन्दु बुवद सैदे तुर्का हमेशः।। अजीं बेह मदों निस्बते तुर्का हिन्दू। कि तुर्क स्त चूं शेर, हिन्दू चू माह।। जि रस्में कि रफ्तऽस्त चखें खां रा। बुजूद अज पये तुर्क शुद हिन्दुआं रा।। कि तुर्कऽस्त गालिब बर एशां चुं कोशद। कि हम गौर दौ हम खरद हूम फरौशद।।" (अमीर खुसरो मसनवी युनुह सिपिहिर।।) (सत्य परमात्मा का कानून है। हिन्दू का जन्म तुर्क के लिए हुआ है।। तुर्क शेर हैं, हिन्दू हिरन हैं। हिन्दोस्तान तुर्क के शिकार की ज़गह है।। तुर्क अपनी थोड़ी-सी कोशिश से ही हिन्दुओं की खरीद-फरोख्त और (उनको) गुलामों के रूप में पा सकता है।।)

अमीर खुसरो जैसे लोगों की दृष्टि में हिन्दुस्थान तुर्कों की शिकारगाह है। हिन्दुस्थान का ७०० वर्ष का इस्लामी बर्बरता और आक्रामकता का इतिहास चिल्ला- चिल्लाकर

बोल रहा है कि इस्लामी–विस्तारवाद और कट्टरवाद की निगाह में हिन्दुस्थान लूटे जाने योग्य, हुकूमत किये जाने योग्य और ऐश किये जाने योग्य बेहतरीन मुल्क है। मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक, जलालुद्दीन और अलाउद्दीन खिलजी, फिरोजशाह तुगलक, तैमूर, बाबर, शेरशाह सूरी, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब और टीपू सुल्तान जैसे कथित बादशाहों व शासकों (वास्तव में आक्रमणकारियों) ने भारतभूमि के सांस्कृतिक केन्द्रों, मन्दिरों और भव्य प्रासादों को लूटा। सोमनाथ मन्दिर ढहाया गया। अयोध्या का राम मन्दिर 'बाबरी मस्जिद' बनाया गया। मथुरा की श्रीकृष्ण जन्मभूमि को तोड़कर विशाल मस्जिद खड़ी की गयी। काशी विश्वनाथ पर धावा हुआ। हजारों मन्दिर भूमिसात् हुए। लाखों हिन्दू मौत के घाट उतारे गये। बलात् धर्मान्तरण का थोक में नंगा नाच हुआ। अनगिनत बलात्कार हुए। क्रूरतम अत्याचारों की सीमा न रही।

ये इस्लामी आक्रमणकारी मन्दिरों का नामोनिशान मिटाकर पूरी भारतीय राष्ट्रीय चेतना को ही खत्म कर देने पर आमादा थे। मन्दिर भारतीय चेतना के शिखर कलश थे। वे भारत के राष्ट्र–जीवन की उपासना, वैज्ञानिक–श्रद्धा और पुलक के उत्स भी थे। एतदर्थ मन्दिर और उपासना–स्थल समाप्त करने का काम उनकी प्रथम वरीयता थी। वे भारत के एक–एक हिन्दू का धर्मान्तरण चाहते थे। तलवारों का चलना और हिन्दू सिरों का गिरना भारत के मध्यकालीन इतिहास का त्रासद, मगर सच्चा–अध्याय है। इतिहास की इसी कड़ुवी सच्चाई को आगे रखकर भारत के भविष्य का मानचित्र तैयार किया जाना चाहिए था; किन्तु वैसा नहीं हुआ।

भारत के स्वाधीनता संग्राम में अंग्रेजीराज को उखाड़ फेंकने की राष्ट्रीय जिजीविषा में भी कट्टरपन्थी– कठमुल्लों ने सेंधमारी की। मौलाना मौदूदी कहता था, "मुस्लिम भी भारत की स्वतन्त्रता के उतने ही इच्छुक थे, जितने कि दूसरे लोग; किन्तु वह इसको एक साधन, एक पड़ाव मानते थे– मंजिल नहीं। उसका मकसद एक ऐसे राज्य की स्थापना था जिसमें मुसलमानों को विदेश अथवा अपने ही देश के गैर–मुस्लिमों की प्रजा बनकर न रहना पड़े। शासन दारुल–इस्लाम (शरीयः कानून) की कल्पना के निकट हो।" (हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेण्ट खण्ड ३, पृष्ठ २८७) मौलाना अबुल कलाम जैसे कथित राष्ट्रीय नेता का मत था "भारत जैसे देश को जो एक बार मुसलमानों के शासन में रह चुका है, कभी भी त्यागा नहीं जा सकता। प्रत्येक मुसलमान का फर्ज है कि उस पर खोई हुई मुस्लिम सत्ता को फिर प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करे।"

पाकिस्तान इसी मुस्लिम मंसूबे की खातिर एक युद्धरत राज्य बना हुआ है। राज्य के नाते पाकिस्तान की उम्र ५१ वर्ष है। राष्ट्र के नाते उसकी कोई उम्र नहीं है। पाकिस्तान "स्वतन्त्र–राष्ट्र" की परिकल्पना भी नहीं कर सकता। पाकिस्तान की कोई प्राचीन सभ्यता नहीं; कोई संस्कृति भी नहीं। भारत हजारों वर्ष प्राचीन संस्कृति और सभ्यतावाला सनातन राष्ट्र है। पाकिस्तान की बुनियाद में सिर्फ दो ईंटें हैं– पहली इस्लामी विस्तारवाद के केन्द्र/शिबिर के रूप में स्वयं को विकसित करना और दूसरी भारत का विरोध, सम्पूर्ण भारत को जीतना इस्लामी विस्तारवाद का पुराना मकसद है। इसलिए कारगिल की घुसपैठ को साधारण परिघटना नहीं माना जाना चाहिए। कारगिल की घुसपैठ, हिन्दू पर विजय की इस्लामी विस्तारवाद और आतंकवाद की धारावाही गतिविधियों का विस्तार मात्र है।

भारत का एक–एक जन इस निहितार्थ को हृदयंगम करते हुए ही अपनी दिव्य–संस्कृति, परम्परा और प्रवाह की रक्षा कर सकता है। भारत अब पहले से ज्यादा ताकतवर है। वह परमाणुशक्ति से सम्पन्न वैश्विक महाशक्ति भी बन चुका है। मगर इतिहास के एक–एक अक्षर की चेतावनी को श्रद्धापूर्वक पढ़कर और उसे हृदयंगम कर ही भारत की भवितव्यता सँवारी जा सकती है। इतिहास से कोई शिक्षा न ग्रहण करने का परिणाम यह देश अब तक भोग रहा है। आगे न भोगना पड़े, इसके लिए एक ही मूल–मन्त्र है– 'इतिहास को भूलो मत।'

– *'अक्षर–वर्चस', एल–१५६२, सेक्टर आई, ल०वि०प्रा० कालोनी, कानपुर–मार्ग, लखनऊ*

भारत के स्वाधीनता संग्राम में अंग्रेजीराज को उखाड़ फेंकने की राष्ट्रीय जिजीविषा में भी कट्टरपन्थी–कठमुल्लों ने सेंधमारी की। मौलाना मौदूदी कहता था, "मुस्लिम भी भारत की स्वतन्त्रता के उतने ही इच्छुक थे, जितने कि दूसरे लोग; किन्तु वह इसको एक साधन, एक पड़ाव मानते थे– मंजिल नहीं। उसका मकसद एक ऐसे राज्य की स्थापना था जिसमें मुसलमानों को विदेश अथवा अपने ही देश के गैर–मुस्लिमों की प्रजा बनकर न रहना पड़े। शासन दारुल–इस्लाम (शरीयः कानून) की कल्पना के निकट हो।" (हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेण्ट खण्ड ३, पृष्ठ २८७) मौलाना अबुल कलाम जैसे कथित राष्ट्रीय नेता का मत था "भारत जैसे देश को जो एक बार मुसलमानों के शासन में रह चुका है, कभी भी त्यागा नहीं जा सकता। प्रत्येक मुसलमान का फर्ज है कि उस पर खोई हुई मुस्लिम सत्ता को फिर प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करे।"

एक ओंकार यानी ओम में आस्था का खालसा रास्ता और अकाली राजनीति

[विद्वान् लेखक राष्ट्रीय महत्त्व के सम–सामयिक सन्दर्भों पर पैनी विश्लेषणात्मक पकड़ रखनेवाले ख्यातनामा समीक्षक हैं। – सम्पादक]

– राजीव चतुर्वेदी

'क्षत्रियाँ ही धरम छोड़ियाँ मलेच्छ भाषा गही।
सृष्टी सब इकबरन हुई, धरम की गति रही।
नील बरन के कपड़े पहने, तुरक पठानी अमल भया।'

श्री गुरुनानक की उपर्युक्त पंक्तियों में भारतीय संस्कृति पर मुगल प्रभाव की प्रेत–छाया का प्रतिकार है। ओम (ॐ) में आस्था को आधार बनाकर गुरु नानकदेव ने 'एक ओंकार' का नारा दिया था। सनातन समग्र चेतना की चीख बनकर मुखर हुआ था "सतनाम" का नारा। वीर सावरकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ (तृतीय भाग) के अनुसार 'गुरुनानक का जन्म सन् १४६६ में अखण्ड भारत के ननकाना साहिब में हुआ था। उस समय मुगल आक्रमणकारियों के भारत और भारतीय संस्कृति पर हमलों का दौर था। संस्कृति पर विकृति के हमले हो रहे थे। तलवार के जोर पर हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जा रहा था। ऐसे में गुरुनानक से प्रारम्भ हुई गुरु शृंखला के दस गुरुओं ने हिन्दू संस्कृति को सुरक्षा देने और प्रदूषण से बचाने के लिए सनातन धर्म का ही एक पन्थ तैयार किया। इसी पन्थ को दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने नाम दिया 'खालसा पन्थ'। 'खालिस' या 'शुद्ध' शब्द से 'खालसा' नाम पड़ा यानी कि शुद्ध सनातन धर्म की पवित्रता बनाये रखने के लिए, इसे गहरे प्रदूषण से बचाने के लिए सनातन संस्कृति में जो नया प्रकोष्ठ या पन्थ तैयार हुआ वही है 'खालसा पन्थ।'"

तीन सौ वर्षों के शौर्यमय इतिहास में ऐसी कई घटनाएँ हुईं कि खालसा पन्थ को खालिस (पवित्र) बनाये रखने की बहसें और प्रयास हुए। इस बीच मुगलों की जगह पाकिस्तान, अफगानिस्तान के भाड़े के सैनिकों और आई०एस०आई० एजेण्टों ने ले ली और कई बार लगा कि सनातन संस्कृति की लम्बी पहरेदारी करते–करते अब खालसा थक चुका है, पर अन्तर्द्वन्द्वों से बार–बार लगातार खालसा पन्थ उबरता रहा है। अकाली राजनीति मूलतः सनातन संस्कृति का ही योद्धा–प्रकोष्ठ है। फिर भला उसमें युद्ध क्यों न हो। शेर की संस्कृति है दुश्मन पर दहाड़ना और आपस में गुर्राना।

खालसा पन्थ उस परम्परा से जन्मा है, जो सदैव संस्कारों की रक्षा के लिए सत्ता से लड़ती रही है। गाय, चोटी, हिन्दुत्व और मन्दिर की रक्षा के लिए औरंगजेब के समय से लेकर आज तक अनेक बलिदानों के गहरे घाव लिए यह पन्थ अपने विरोधी तेवरों का इतना अभ्यस्त हो चुका है कि जब भी यह सत्ता में आया है, तो इसी में दूसरा गुट इसके विरुद्ध खड़ा हो हुंकार उठा है। राजनीति के घटिया लोग इसे घटकवाद भले ही कहें; लेकिन किसी योद्धा का हाथ कृपाण की मूँठ पर अगर चला जाय, तो यह सामान्य घटना है। इसे इसी तरह देखना चाहिए। अकाली राजनीति का रुख यही रहा है। पिछले दो दशकों से सिख राजनीति में एक विचार उभरा या उभारा गया है कि 'सिख एक अलग कौम हैं'। 'कौम' शब्द अरबी का है, जिसका प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। कौम राष्ट्र भी है, जाति भी, नस्ल भी, सम्प्रदाय भी और धर्म भी। इस बात को उछालने का श्रेय जत्थेदार गुरचरण सिंह तोहड़ा को है। तोहड़ा जी की मानसिकता अजीब किस्म के अलगाव से ग्रसित है। उन्होंने अनेक बार यह बात दोहरायी है कि सिख अलग कौम है; किन्तु कभी यह स्पष्ट नहीं किया कि अलग कौम से उनका अर्थ अलग राष्ट्र (नेशन) से है या अलग समुदाय (कम्युनिटी) से है या अलग धर्म से है; किन्तु मानसिकता की थोड़ी–सी पड़ताल करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे सिखों को एक अलग 'राष्ट्र' या 'नेशन' मानते हैं। उनकी मानसिकता में मोहम्मद अली जिन्ना का द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त पूरी तरह हावी है कि हिन्दू और सिख पृथक्–पृथक् राष्ट्र हैं। जिस तरह १९७७ के चुनाव के पश्चात् जसदेव सिंह तलवण्डी बिखरे, १९८५ में सरदार सुरजीत सिंह बरनाला तथा सरदार प्रकाश सिंह बादल के मतभेद सामने आये और अब गत १९९८ के चुनाव के पश्चात् प्रकाश सिंह

बादल और गुरुचरन सिंह तोहड़ा की अदावत।

सत्तर के दशक तक अकाली गुट सत्ता में आने के लिए तथा एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए पन्थिक एकता, सिखों द्वारा अकाली दल को समर्थन देने के धार्मिक कर्तव्य इत्यादि के नारे तथा चुनावी प्रचार के लिए गुरुद्वारों का उपयोग तो करते रहे थे; परन्तु इन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया में अकाल तख्त अथवा अन्य जत्थेदारों से हुक्मनामे जारी नहीं करवाये थे। इस समय तक इस बात पर कोई विवाद नहीं था कि अकाल तख्त का जत्थेदार कौन है अथवा सरबत खालसा जत्थेदार की नियुक्ति करता है इत्यादि। हुक्मनामे जारी करने, सरबत खालसा बुलाने आदि की परम्परा का पुनः शुरू होना १९८० के मध्य में उग्रवादी आन्दोलन के दौरान आरम्भ हुआ। इससे पहले अकाल तख्त के जत्थेदार की नियुक्ति गुरुद्वारा-प्रबन्धक-समिति द्वारा की जाती थी तथा जत्थेदार सक्रिय राजनीति से अलग एक सच्चे धार्मिक-कर्मी के रूप में अपना कार्य करता था।

उग्रवादी आन्दोलन, जिसके लिए कांग्रेस शासन, अकाली दल, गुरुद्वारा-प्रबन्धक समिति सभी दोषी थे, के दौरान सभी उग्रवादी संगठनों ने अपने-अपने उचित-अनुचित कार्यों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए पुरातन परम्पराओं से सरबत खालसा तथा हुक्मनामों की प्रथाओं को खोज निकाला। परिणामस्वरूप अकाल तख्त के जत्थेदार का पद राजनीतिक बन गया। साधारण सिख धार्मिक भावनाओं से प्रेरित, उस समय की कांग्रेस नीतियों से आकृष्ट तथा उग्रवाद की वास्तविकता से अनजान इन हुक्मनामों को सम्मान देने लगा। इन्दिरा गांधी द्वारा सत्ता की नंगी राजनीति में पंजाब की स्थिति को साम्प्रदायिकता में धकेलने की प्रक्रिया ने कुछ समय के लिए सिख समुदाय के सभी आन्तरिक, वर्गीय तथा व्यावसायिक मतभेद समाप्त कर दिये। १९८४ के बाद साधारण सिख के लिए एकमात्र प्रश्न अपने सम्मान तथा अस्तित्व का रह गया था। ऐसे में अकाल तख्त उसके स्वाभाविक तथा अस्तित्व के प्रतीक के रूप में उभरा।

पंजाब तथा सिख समाज का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि सिख पन्थ, पंजाब की ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा पंजाबी संस्कृति, कोई भी कट्टरवादिता का समर्थन नहीं कर सकते। सैद्धान्तिक रूप से सिख पन्थ का उदय कट्टरवादिता तथा धार्मिक असहनशीलता के विरोध के रूप में ही हुआ था। पंजाब की सांस्कृतिक विरासत जुझारू; किन्तु सहनशीलता वाली रही है। सिख गुरुओं ने धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार के लिए इस्लामी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया, न कि एक धर्म पर दूसरे धर्म की सत्ता स्थापित करने के लिए। ग्रामीण कृषक-व्यवस्था किसानों को भगवान् से डरना सिखाती है, धार्मिक उन्माद नहीं। पंजाब ही क्या, भारत के लगभग किसी भी गाँव में साम्प्रदायिकता अथवा कट्टरवादिता सामान्यतः दिखायी नहीं देती। १९८० से पहले जब-जब भी अकाली दल के अन्दर फूट पड़ी, तो नरमपन्थी घटक को ही जनसमर्थन प्राप्त हुआ। १९९० के पश्चात् की पंजाब की राजनीति भी इसी ओर संकेत देती है।

सत्ता-संघर्ष में सिख भावनाओं को प्रेरित करना शायद सामान्य अकाली नेताओं की मजबूरी है। सत्ता से बाहर वह इसका प्रयोग मिलकर करते हैं और सत्ता में आने के बाद एक-दूसरे के विरुद्ध, जैसा कि ऊपर कहा गया है। यह आन्तरिक विरोध वर्गीय एवं व्यावसायिक संघर्ष के कारण भी हो सकता है, पुरानी-पारिवारिक अथवा खानदानी लड़ाइयों के कारण या फिर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के चलते भी सामान्य सिख, विशेष रूप से ग्रामीण किसान धर्म के लिए बलिदान देने को तो तैयार हैं; परन्तु सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में वह काफी हद तक सर्व-पन्थ-समभाव वाला है। यही कारण है कि अत्यधिक धार्मिक अपीलों के पश्चात् भी अकाली दल के लिए सभी सिखों का मत प्राप्त करना कभी सम्भव नहीं हो पाया। साथ ही अकाली सरकारों को अपने शासन की अकुशलताओं का पूरा दण्ड भुगतना पड़ा। दुर्भाग्यवश कुछ अकाली नेता पंजाब की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक वास्तविकता को या तो समझना नहीं चाहते या जुआ खेलना चाहते हैं। इसलिए वे बार-बार कट्टरवादी या उत्तेजक भाषा का उपयोग करते हैं। दूसरी ओर नरमपन्थी नेता निजी स्वार्थों तथा पारिवारिक हितों व भ्रष्टाचार की राजनीति में इतने अधिक फँस गये हैं कि वे उग्रवाद का मुकाबला ईमानदारी या मजबूती से नहीं कर सकते। साधारण सिख, जिसकी धर्म में व्यापक आस्था है, अपने धार्मिक स्थलों के प्रति अत्यधिक समर्पित है, जो सिख-इतिहास में त्याग तथा बलिदान की परम्पराओं को पूजता है तथा जो भारत में अपने पन्थिक अस्तित्व के प्रतीक के रूप में किसी संगठन तथा संस्था जैसे अकाली दल तथा शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-समिति की आवश्यकता को भी तीव्रता से महसूस करता है, वह देख रहा है किसी ऐसे प्रबुद्ध एवं क्षमतावान् नेतृत्व की ओर, जो उसे सही दिशा दे सके, उसमें विश्वास जगा सके तथा आधुनिक लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में उसकी सहज भागीदारी सुनिश्चित कर सके। □

— एम-१५०७, सेक्टर आई,
ल०वि०प्रा० कालोनी, कानपुर-मार्ग, लखनऊ

युद्ध अभी जारी है

- राम किशोर तिवारी 'किशोर'

विश्व में सनातन का ध्वज लहरा रहा था,
चारों ओर आर्य संस्कृति का बोलबाला था;
नयनाभिराम मूर्त्तियों व झाँकियों से युक्त,
कहीं पर मन्दिर, कहीं पर शिवाला था।
कहीं आरती सजायी जा रही थी राम की तो,
कोई कोई कृष्ण भक्ति में ही मतवाला था;
कोई–कोई रुचि अनुसार निराकार ध्यान,
करता था कोई योग करता निराला था।।

किन्तु आसुरी प्रवृत्तियों ने विश्व मञ्च पर,
धर्म का लबादा ओढ़ करके पुकार की।
काफिरों का क़त्ल कर देना है हमारा धर्म,
इसके लिए लड़ाई होगी आर–पार की।
होड़ लग गयी 'गाजी' की उपाधि पाने हेतु,
ऐसी हुई कुगति हमारे घर–द्वार की;
एक हाथ में लिये थे 'इसलाम की किताब',
दूसरे में पकड़े थे मूठ तलवार की।।

दाहिर नरेश ने जो थी पताका फहरायी,
सिन्धु तट वाली वह चेतना हमारी है,
कितने लुटेरे आक्रमणकारी आये सब,
हुई मुठभेड़ घटना युगान्तकारी है।
लिखे हैं हज़ार साल परतन्त्रता के नाम,
हमने परन्तु कभी हार न स्वीकारी है,
गोरी–गजनी के वंशजों को दलने के लिए
सांस्कृतिक चेतना का युद्ध अभी जारी है।।

तुर्क अफगान और मुगलों की क्रूरता की
इतिहास सिद्ध खून की कहानी सारी है;
तेग तलवार से मिटाना चाहा संस्कृति को
किन्तु वीर रण बाँकुरों से हार भारी है।
हर हर महादेव, हर महादेव
नारा देने वाले पर सब बलिहारी है;
गोरी गजनी के वंशजों को दलने के लिए
सांस्कृतिक चेतना का युद्ध अभी जारी है।।

गंगा–जमुनी बतायी जा रही है तहजीब, कहते कि संस्कृति में भी तो साझेदारी है;
भारतीय अस्मिता से करता जो खिलवाड़, उसको बताया जाता देशभक्त भारी है।
शक्ति–स्रोत राम कृष्ण शम्भु की पवित्र–भूमि को भी कहते हैं ये कि धरती हमारी है;
गोरी गजनी के वंशजों को दलने के लिए सांस्कृतिक चेतना का युद्ध अभी जारी है।।

— कविता–कुञ्ज, दशहरा बाग, बाराबंकी–२२५००१

ललित ललाम भारतीय आम

- बनवारी लाल ऊमरवैश्य

फलों के सम्राट् भारतीय आम अपने रसात्मक गुणों के कारण विश्वविख्यात रहे हैं। इस देव–वृक्ष की महिमा पुराणों में वर्णित है। इस पर किन्नर निवास करते हैं। कामदेव ने आम्र की मञ्जरी से पुष्पबाण बनाया था। पञ्च–वटों में एक वट आम भी है। इसके पल्लव से बन्दनवार बनाकर यज्ञ; पूजा आदि मांगलिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। 'आम के आम गुठली के दाम' के महत्त्व को कौन नहीं जानता ?

बौद्धकाल में पूरा देश अमराइयों का नन्दन वन था। मिथिला की अमराइयों में आम्रपालियाँ फलों की रखवाली करती थीं। बंगाल आम्र–कुञ्ज के नाम से जाना जाता था। महाराष्ट्र रसाल राष्ट्र था, जिसके रसीले आम आज भी मुम्बइया आम के नाम से प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत का आम, जिसे तमिल भाषा में 'आम्रांगों' कहा जाता है, यूरोप में जाकर 'मैंगो' कहलाने लगा। रोम की सुन्दरियाँ भारतीय आमों पर इतनी दीवानी थीं कि रोम की सरकार भारतीय आमों के आयात के लिए विदेशी मुद्रा के रूप में सोना देती थी। अरब की रूपसियाँ भारतीय आम को 'हिन्दुस्तानी मंजनू' कहती थीं। दिल्ली की मुगल शाहजादियाँ और लखनऊ की बेगमें पालकी में बैठकर आम चखने शाही बागीचे में जाती थीं। पूरे एशिया में भारतीय आम ने अपनी माधुरी बिखेर दी थी।

भारतीय आमों की दुनिया रंग–बिरंगी, रही है। अपने स्वाद, गन्ध, रूप के कारण अनेक नामों से ये जाने जाते रहे हैं। सरसता के कारण 'रसाल', सुगन्ध से 'सौरभ', रसात्मक रूप–रंग–स्वाद के कारण 'सहकार' और अम्लता के कारण 'आम्र' भारतीय आमों के पर्याय रहे हैं। मुगल शासन–काल में आमों की दो नई प्रजातियों के नाम 'सुधारस' और 'रसना विलास' रखे गये थे। भारतीय आमों के अनेक आञ्चलिक नाम हैं जैसे 'मलदहिया', 'चौसा', 'दशहरी', 'बनारसी लँगड़ा', 'सुगिया', 'सफेदा' आदि।

प्रदूषण और जनसंख्या के विस्फोट ने अमराइयों को उजाड़ दिया है। जहाँ वसन्त–दूत कोयलें अमराइयों में शहनाई बजाती थीं, अब वहाँ कल–कारखानों के भोंपू बज रहे हैं। 'लखपेड़ा बाग' तो बस मोहल्लों के नाम तक ही सिमट कर रह गया है। अमराइयों के विनाश से धरती कराह उठी है। अब आमों, (विशेषकर देशी) के वृक्षारोपण से ही अमराइयों की नयी दुनिया बसेगी और भारतीय आमों की कहानी जीवन्त रह सकेगी। □

— डंकीनगंज, मीरजापुर–२३१००१

शूरवीर को राष्ट्र नमन करता है

फ्ला० लेफ्टिनेण्ट नचिकेता को राष्ट्रपति के०आर० नारायणन् द्वारा सम्मान

फील्ड मार्शल के०एम० करिअप्पा के जन्मशती समारोह का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति के०आर० नारायणन्

श्रद्धाञ्जलि

राम-धाम को चले गये हनुमान

गत २४ मई को गंगा-स्नान हेतु हरिद्वार जाते समय भीषण कार-दुर्घटना में गम्भीर रूप से घायल गुरु हनुमान राम के धाम को प्रस्थान कर गये। भारतीय मल्ल-विद्या के भीष्म पितामह गुरु हनुमान (वास्तविक नाम विजयपाल सिंह, नि० चिड़ावा, जिला झुंझुनू, राजस्थान) के विजयपाल सिंह से हनुमान बनने की अपनी कहानी है। कठोर अनुशासनप्रियता, नियमित जीवन-चर्या, चरित्र- भ्रष्ट करने वाली आधुनिकता से कोसों दूर यह विद्या-गुरु अपने नाम को सार्थक कर गया अपने उस अलौकिक कृतित्व से कि ४०० से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त उसके शिष्यों में दो 'पद्मश्री' और दस 'अर्जुन पुरस्कार' विजेता हैं। किसे याद है कि वे बचपन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा लगाते थे?

भारतीय मल्ल-विद्या के इस महान् आचार्य की पावन-स्मृति को 'राष्ट्रधर्म' सश्रद्धा प्रणाम करता है।

✤

(अजय आहूजा)
स्क्वॉड्रन लीडर

कारगिल-क्षेत्र में पाकिस्तानी सेना से जूझ रहे अपने हजारों शूरवीरों पर हमें गर्व है। पिछली सरकारों के पापों का प्रक्षालन अपने पावन-उष्ण रक्त से करनेवाले इन बहादुर जवानों में लेफ्टिनेण्ट कर्नल से लेकर सामान्य सैनिक तक और स्क्वैड्रन लीडर से लेकर सार्जेण्ट तक सभी सम्मिलित हैं। पूरा देश इनके गौरवपूर्ण बलिदानों के प्रति सदा कृतज्ञ रहेगा।

'राष्ट्रधर्म' का अपने इन अमर बलिदानी वीर-पुंगवों की पवित्र-स्मृति को कोटिशः प्रणाम।

(राजेश सिंह)
मेजर

✤

गत मई में ख्यातनामा गीतकार विष्णु कुमार त्रिपाठी 'राकेश' का लखनऊ में अकस्मात् स्वर्गवास हो जाने से हिन्दी काव्य-मञ्च की गहरी क्षति हुई। वे लखनऊ के विद्यान्त कालेज में प्रवक्ता थे। जिन्होंने उनकी ललित-ललाम 'भारतमाता की आरती' उनके श्रीमुख से सुनी होगी, वे तो उन्हें कदापि भूल नहीं पायेंगे।

'राष्ट्रधर्म' का उनकी पुण्य-स्मृति को सादर नमन।

जब जुझार सिंह के बेटों के सिर मुगल दरबार में पहुँचे

– जगदीश प्रसाद 'साहनी'

ओरछा ने अनेक चढ़ाव उतार देखे हैं। ओरछा दुर्ग में वीरसिंह देव ने मुगल बादशाह जहाँगीर के सम्मान में 'सूर्यमहल' का नाम 'जहाँगीर महल' रखा था। जहाँगीर के समय में ओरछा का महत्त्व काफी बढ़ गया था। वहीं जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के सिंहासन पर बैठते ही ओरछा का पतन शुरू हुआ। वीरसिंह देव की सम्पत्ति का हिसाब माँगे जाने पर उनके पुत्र जुझार सिंह ने इसे अपना अपमान समझ मुगल हुकूमत से बगावत कर दी। जुझार सिंह भाग खड़ा हुआ। कितना वीभत्स था वह समय, जब जुझार सिंह के बेटों के सिर शाहजहाँ के दरबार में भेजे गये और यहीं से शुरू होता है ओरछा राज्य का पतन। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत है जुझार सिंह के शासन की एक झलक....।

बेतवा (वेत्रवती) के तट पर बने ओरछा दुर्ग का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है। ३ अप्रैल, सन् १५३१ ई० में इस विशाल दुर्ग का शिलान्यास राजा रुद्र प्रताप सिंह ने किया था। आठ साल तक बने इस दुर्ग की मजबूती का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि लगभग ४६७ वर्ष बीत जाने के बाद भी आज इस दुर्ग का शिल्प ज्यों का त्यों है।

ओरछा का महत्त्व वीरसिंह देव के शासन–काल में चरमोत्कर्ष पर था। वीर सिंह देव ने अकबर की सेना का कई बार मुकाबला किया। जब शहजादा सलीम अकबर से बगावत कर इलाहाबाद के दुर्ग में पहुँचा, तब वीर सिंह देव की भेंट शहजादा सलीम से प्रयाग में हुई। उस समय अकबर के कथित नवरत्नों में से एक अबुल फजल से सलीम असंतुष्ट था। उसने ओरछा नरेश वीरसिंह बुन्देला से अबुल फजल के सिर की माँग की थी। जब अबुल फजल दक्षिण से लौट रहा था, तभी दतिया के निकट आंतरी के पास वीरसिंह देव व अबुल फजल की मुठभेड़ हो गयी। अबुल फजल वीरसिंह देव के घेरे में आ गया। वीर सिंह देव उसे गुप्त स्थान पर सुरक्षित रखना चाहता था; लेकिन बात बढ़ गयी और अबुल फजल ने अपशब्द कहे, जिससे वीर सिंह देव ने क्रोधित होकर अबुल फजल का सिर धड़ से अलग कर उसे सलीम के पास भिजवा दिया।

ओरछा दुर्ग

ओरछा के इतिहास में वह दिन काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है, जब जहाँगीर भारत का बादशाह बना और वीरसिंह देव को बुन्देलखण्ड का राजा घोषित किया गया। वीरसिंह देव ने जहाँगीर को ओरछा आमन्त्रित किया तथा दुर्ग के 'सूर्यमहल' में जहाँगीर का सम्मान किया गया, इसी से 'सूर्यमहल' का नाम 'जहाँगीर महल' कर दिया गया। जहाँगीर के दौर में ओरछा का महत्त्व इतना बढ़ गया था कि जहाँगीर ने वीर सिंह देव का सम्मान आगरा दुर्ग में करके राजपूत मित्रता के हाथ मजबूत किये थे।

जुझार सिंह का संघर्षमय दौर

वीरसिंह देव के बाद उनके बेटे जुझार सिंह को ओरछा की सत्ता मिली। उस समय मुगल बादशाह शाहजहाँ तख्त पर आसीन था। शाहजहाँ के दौर में बुन्देलों का विद्रोह हुआ। सन् १६२७ ई० में जुझार सिंह आगरा के

शाही दरबार में उपहार लेकर पहुँचा। तभी दरबार में कृपाराम ने जुझार सिंह के विरुद्ध बादशाह को बताया कि जहाँपनाह! ओरछा में वीरसिंह देव अकूत सम्पत्ति छोड़ कर दिवंगत हुए हैं।

कृपाराम द्वारा जुझार सिंह की आलोचना से शाहजहाँ ने वीरसिंह देव की सम्पत्ति का हिसाब माँगा। इससे जुझार सिंह डर गया और आगरा से ओरछा चला गया।

हर्जाना में १५ लाख रुपये और ४० हाथी दिए

जुझार सिंह जब आगरा दरबार से ओरछा चला गया, तब शाहजहाँ ने ओरछा पर आक्रमण कर दिया। महावत खाँ, बहादुर खाँ और अब्दुला खाँ के नेतृत्व में ओरछा घेर लिया गया। फरवरी १६२९ में जुझार सिंह बन्दी बनाकर बादशाह शाहजहाँ के समक्ष प्रस्तुत किया गया। बादशाह को उसने १५ लाख रुपये तथा ४० हाथी हर्जाना रूप में दिये। शाही दरबार ने जुझार सिंह से प्रसन्न होकर पाँच हजारी मनसबदार बना दिया। सन् १६३४ ई० में जुझार सिंह शाही दरबार में अपने बेटे को छोड़कर ओरछा का राज्य सम्भालने चला आया।

आईने ने सही कहा है

— रामानुज त्रिपाठी

हर प्रतिबिम्ब हो गया वञ्चक,
आईने ने सही कहा है।

यही चाहते थे अरसे से,
सपनों का था यही इरादा;
दस्तक दे–देकर पलकों पर,
नयनों को भरमाएँ ज्यादा।

रीत गया शोणित जब तन का,
नस–नस में तेजाब बहा है।

वहम ढो रही इच्छाओं का,
पूर्ण न होगा कभी कथानक;
इर्द–गिर्द मुट्ठियाँ तानकर,
अविश्वास आ गये अचानक।

खँडहर–खँडहर शेष खड़े हैं,
खुशियों का हर महल ढहा है।

जुड़े न स्नेहिल संवादों से,
वह भावुकता नहीं भली है;
ठगे–ठगे–से संवेदन के–
बीच जिन्दगी बहुत पली है।

नहीं जगह अब तन में सुख की,
मन ने इतना दुःख सहा है।

— ग्राम, डाकघर– गरयें–२२७३०४
सुलतानपुर (उ०प्र०)

जब बादशाह के आदेश की अवज्ञा की

जुझार सिंह ने मुगल बादशाह द्वारा संरक्षित गोंड राजा प्रेम नारायण पर आक्रमण कर दिया। चौरागढ़ दुर्ग घेर लिया गया। बादशाह ने युद्ध को बन्द करने तथा चौरागढ़ दुर्ग से घेरा हटाये जाने का आदेश जुझार सिंह को भेजा, लेकिन जुझार सिंह ने उस आदेश की अवज्ञा करते हुए चौरागढ़ राज्य के गोंड राजा प्रेम नारायण की हत्या कर दी और चौरागढ़ दुर्ग पर कब्जा कर लिया। इस घटना से शाहजहाँ आगबबूला हो गया। पहले तो शाहजहाँ ने जुझार सिंह को फरमान भेजा कि गोंड राजा प्रेम नारायण के कोष से प्राप्त १० लाख रुपये और चौरागढ़ राज्य वह बादशाह के हवाले कर दे, लेकिन इस फरमान का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

बादशाह का आक्रमण और जुझार सिंह की हत्या

जब शाहजहाँ को चौरागढ़ राज्य व १० लाख रुपये जुझार सिंह ने नहीं दिये, तब ओरछा पर तीन ओर से आक्रमण किया गया। यह युद्ध १६३४ में हुआ। बादशाह द्वारा किये गये आक्रमण का मुकाबला न कर जुझार सिंह गोलकुण्डा की ओर भाग गया, परन्तु गोंडों ने उसका पता लगाकर हत्या कर दी। जुझार सिंह तथा उसके बेटे जगजीत सिंह के सिर काट कर बादशाह के पास भेज दिये।

ओरछा का एक करोड़ रुपया जब्त तथा दुर्ग पर अधिकार

जुझार सिंह की हत्या के बाद ओरछा में मुगल हुकूमत ने चौरागढ़ एवं ओरछा दुर्ग पर कब्जा कर लिया। उसे इस दुर्ग से एक करोड़ रुपये कोष से मिला। जुझार सिंह के दो बेटों उदयभान और श्याम देव को इस्लाम मजहब स्वीकार करने को बाध्य किया गया, लेकिन ऐसा न करने पर उनके उक्त दोनों बेटों की हत्या कर दी गयी। जुझार सिंह के परिवार की स्त्रियों को दासी बनाकर अपमानित किया गया। ❑

—साहनी निकेतन, मलिहाबाद, लखनऊ– २२७१११

आप मुझे हुगली में डुबो सकते हैं, किन्तु...

□ डॉ० रामशंकर द्विवेदी

(मनीषी–प्रवर प्रखर राष्ट्रभक्त सम्पादक रामानन्द चटर्जी की आदर्शवादी, दृढ़ एवम् आस्थाशील पत्रकारिता की प्रेरणाप्रद–झाँकी प्रस्तुत है इस लेख में। – सम्पादक)

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने एक घटना का जिक्र करते हुए लिखा है, "एक दिन रामानन्द बाबू ने मेरी किसी अज्ञात कहानी के लिए अग्रिम पारिश्रमिक के रूप में तीन सौ रुपये भेजे। बोले, जब हो सके, लिख दीजिए और अगर नहीं भी लिख पायेंगे, तो मैं कोई दावा नहीं करूँगा। इतना बड़ा प्रस्ताव बिना कुछ किये तो हजम हो नहीं सकता था, इसलिए लिखने बैठा, 'गोरा' ढाई वर्ष तक लगातार इसी तरह लिखा गया।"

रवीन्द्रनाथ का 'गोरा' उपन्यास इस तरह एक कौड़ी के बिना नहीं लिखा जा सकता था, आशा है ऐसा कोई नहीं सोचेगा। फिर भी, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर एक लम्बी अवधि तक सचित्र मासिक पत्रिका 'प्रवासी' का सतत प्रकाशन बंगीय संस्कृति के क्षेत्र में एक अर्थवती घटना है। 'धर्म बन्धु', 'दासी', 'कायस्थ समाचार', 'प्रदीप'– इतने पत्रों का सम्पादन करने के बाद रामानन्द बाबू ने 'प्रवासी' के सम्पादन की योग्यता अर्जित की थी। उनके सम्पादक–जीवन का इतिहास अत्यन्त स्पष्ट और विभिन्न पर्वों में विन्यस्त है। विविध रचना सम्भार, वैसा ही सचित्र और अलंकृत, उच्च–स्तर की पत्रिका प्रवासी अपने आप में एक बहुत बड़ा विस्मय थी। इस तरह की पत्रिका बाड्ला भाषा में प्रकाशित करना सम्भव है, रामानन्द बाबू के पहले ऐसा किसी ने सोचा भी नहीं था।

रामानन्द चटर्जी

'कोई अगर पूछता है कि इस वर्ष हमारे देश. में कौन–सी मुख्य स्वदेशी घटना हुई है, तो हम क्या उत्तर देंगे ? चूड़ी तोड़ना नहीं, विलायती कपड़ों को जलाना नहीं, राष्ट्रीय दल के साथ मुकदमे में पूर्वी बंगाल की सरकार की पराजय नहीं, यहाँ तक की राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना भी नहीं, सबसे प्रमुख स्वदेशी घटना है विज्ञानाचार्य जगदीश चन्द्र बसु के ग्रन्थ 'पौधों में जीवन' (Plant Response) का प्रकाशन।'

(प्रवासी १६०६)

द्विधाहीन चित्त से प्रवासी के सम्पादकीय स्तम्भ में रामानन्द के स्वदेशी व्रत ने इस तरह से अपनी अभिव्यक्ति करने में कुछ समय लिया था। प्रथम अंक में उन्होंने लिखा था 'प्रारम्भिक आडम्बर. की अपेक्षा फल द्वारा ही कार्य का विचार करना अच्छा है'। सम्पादकाचार्य रामानन्द सारे जीवन यह बात कभी नहीं भूले। जगदीश चन्द्र बसु के ग्रन्थ में उन्हें स्वदेशी भावना कहाँ से मिली, इस प्रश्न का भी उन्होंने यथातथ्य उत्तर दिया था। 'जो हमारे किसी स्वदेशवासी की मानसिक असाधारणता को प्रमाणित करे, वही महत्त्वपूर्ण स्वदेशी घटना है।'

तेरह सौ आठ बंगाब्द के वैशाख मास में ग्रीष्म के प्रारम्भ में एक अश्वारोही प्रयागधाम से कलकत्ता की ओर चला.....।

बंकिम चन्द्र के पहले उपन्यास के इस नाटकीय प्रारम्भ का अनुकरण यहीं खतम कर वास्तविक बात पर आते हैं। १३०८ बंगाब्द (अर्थात् १६०१ ईसवी) में वैशाख मास में एक प्रवासी बंगाली, (इलाहाबाद में कायस्थ पाठशाला के अध्यक्ष (प्राचार्य)) श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने, इलाहाबाद

से एक बाङ्ला मासिक पत्रिका निकली। पत्रिका उसी कलकत्ता में जाकर पहुँची, जो उस समय भारत की राजधानी, प्राच्य की एथेन्स की ख्याति से भूषित, ज्ञान, गरिमा और आकांक्षा की तरंगों से आन्दोलित थी। जहाँ से कुछ अधिक नहीं, सिर्फ डेढ़ दशक में विदा ले लेते हैं केशवचन्द्र सेन, श्री रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय। जहाँ पर उस समय भी जीवित होते हैं, ब्राह्म समाज के प्रथम संगठनकर्त्ता महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, रचना और अभिनय में रंगमंच के स्रष्टा गिरीश चन्द्र घोष, पश्चिमी गोलार्द्ध में आलोक बिखेरने के बाद शेष रश्मियों को बिखेरनेवाले स्वामी विवेकानन्द और नव–नव दिगन्तों को अपनी प्रतिभा से भरने वाले कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

पत्रिका का नाम रख गया 'प्रवासी'। क्यों ? एक प्रवासी बंगाली ने निकाली है इसलिए। 'प्रवासी' के पहले अंक में ही रवीन्द्रनाथ की 'प्रवासी' शीर्षक कविता निकली–

'सभी जगह मेरा घर है,
मैं उसी घर को खोजता फिर रहा हूँ,
'देशों देशों में मेरा देश है,
मैं उसी देश को खोज लूँगा।'

अतः 'प्रवास कहीं भी नहीं है रे। न जनम–जनम में और न मरण में'।

रवीन्द्रनाथ जैसे कवि विधाता ने जिसकी भाग्य–लिपि लिखी हो, ऐसा ही भाग्य लेकर 'प्रवासी' का आविर्भाव हुआ था।

'प्रवासी' का समाचार भगिनी निवेदिता के कानों तक पहुँचा : 'क्या रामानन्द पूरे भारत और विश्व में प्रचारित नहीं होंगे ?' कुछ दिनों बाद उनकी बात क्षिति मोहन सेन ने सुनी। उन्होंने कहा : यह जो एक प्रदीप जला है, इसकी असीम शक्ति देखी है।... समझ गया हूँ, एक दिन यह प्रदीप घर के बाहर 'आकाश दीप' बनेगा। सिर्फ बंगाल की बात कहने में ही उनकी मुक्ति नहीं है, उन्हें तो सम्पूर्ण भारत की बात कहनी होगी एवं संसार की बात भूल जाने से भी उनका काम नहीं चलेगा। वे बंगाली हैं, भारतीय हैं और सम्पूर्ण विश्व के अधिवासी हैं।

भूमिका में उन्होंने उल्लेख किया था : प्रवास से पत्रिका निकालना कितना कठिन होता है। उनका एक मात्र सहारा उनकी निजी परिश्रम, 'परमेश्वर की कृपा' एवं लेखक और पाठक वर्ग की सहानुभूति तथा सहायता थी।

रामानन्द में जन्म से ही सामर्थ्य था। बाँकुड़ा नगर के एक कुलीन ब्राह्मण वंश में २८ मई १८६५ ईसवी में उनका जन्म हुआ था। वे बड़े मेधावी छात्र थे, नियमित रूप से उन्हें छात्रवृत्ति मिलती रही, १८८२ ईसवी में इण्ट्रेन्स परीक्षा में चौथा स्थान, फर्स्ट आर्ट्स में प्रथम श्रेणी में चतुर्थ बी०ए० परीक्षा आनर्स, अंग्रेजी के साथ प्रथम श्रेणी में प्रथम और अंग्रेजी एम० ए० में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। अर्थात् उनका छात्र जीवन अत्यन्त देदीप्यमान था।

रामानन्द बाबू बड़े स्नेही प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी मातृ–भक्ति, पत्नी–प्रेम और पारिवारिक दायित्व–बोध अपरिसीम था। बी०ए० पास करने के बाद सिटी कॉलेज में पहले अवैतनिक बाद में सवेतन कुछ दिन तक अध्यापन करते हैं। छात्रावस्था में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के भाषणों और योगेन्द्रनाथ विद्याभूषण के ऐतिहासिक ग्रन्थों से देश–भक्ति की प्रेरणा मिलती है। वे कट्टर हिन्दूवादी थे, उन्हें ढुलमुलपन पसन्द नहीं था। दूसरों के लिए वे अत्यन्त उदार और क्षमाशील थे।

प्रवासी के सम्पादक होने योग्य प्रयत्नपूर्वक तैयार होने की साधना रामानन्द पहले से ही कर रहे थे। वे जैसे अशिक्षित चतुर नहीं थे, वैसे ही बिना तैयारी के कर्मवीर भी नहीं थे। जल में ठेल देने पर कोई–कोई विजयी तैराक हो जाते हैं, ऐसी दिव्य प्रतिभा में रामानन्द को विश्वास नहीं था। इसीलिए पूरी नौकरी की अवस्था में ही वे कई अंग्रेजी और बाङ्ला पत्रिकाओं का सम्पादन कर लेते हैं। पत्रिका चलाने की मूल व्यावहारिक नीति क्या है, इसे समझ लेते हैं– मूल धन का संग्रह, लेखकों का सहयोग, प्रेस की अच्छी व्यवस्था, प्रचार तंत्र– ये सभी चीजें सम्पादन के साथ जुड़ी हुई हैं। 'प्रवासी' निकालने के पहले उन्होंने 'इण्डियन मेसेञ्जर–, 'धर्मबन्धु', बच्चों की मासिक 'मुकुल', दैनिक 'इण्डियन मिरर', साप्ताहिक 'सञ्जीवनी–, दासाश्रम की 'दासी' पत्रिका, इलाहाबाद में 'प्रदीप' पत्रिका का सम्पादन किया था। मतभेद होने पर उन्होंने 'प्रदीप' पत्रिका छोड़ दी और अपना पत्र निकालना चाहा।

एक व्यावहारिक मनुष्य होने के कारण उन्होंने यह समझ लिया था कि किसी पत्रिका की आयु निर्भर करती है आर्थिक सामर्थ्य के ऊपर, योग्य लेखक वर्ग की रचनाएँ जुटा सकने की शक्ति के ऊपर। भूखे पेट अगर भजन नहीं हो सकता है, तो साहित्य तो हो ही नहीं सकता है, इसलिए लेखकों को यथा साध्य पारिश्रमिक देना होगा। उन्हें यह समझने में जरा भी असुविधा नहीं हुई कि काञ्चन–स्नेह मनुष्य के मन को जरा देर में ही तैलाक्त कर देता है और उसकी उज्ज्वलता की रक्षा सिर्फ सौहार्द और मनोयोग पूर्व सुख–मर्दन से ही हो सकती है।

और भी अनेक दिशाओं से पत्रिका चलाने के गुणों को उन्होंने अर्जित कर लिया था। मेधा, पाण्डित्य और रचना शक्ति की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। सामाजिक कार्य–कलापों के ज्ञान के लिए वे अनेक श्रेणी के व्यक्तियों

के साथ घुल-मिल सकते थे, प्रवास में रहने के कारण उनका अखिल भारतीय दृष्टिकोण गढ़ उठा था, वे जीवन के एक दौर में कांग्रेस के साथ जुड़े रहने के कारण आन्दोलनात्मक राजनीति का चेहरा पहचानते थे। इन सब कारणों से उनकी पत्रिका केवल 'बंगदर्शन' में ही आबद्ध नहीं थी, वह भारत-दर्शन की प्रतिनिधि पत्रिका थी। अपनी पत्रिका में वे देश-विदेश के सभी तरह के समाचारों का भी समावेश करते थे। इस दृष्टि से 'प्रवासी' का 'विविध प्रसंग' स्तम्भ पठनीय था।

वे प्रवासी होते हुए भी देशवासी थे। उनमें और भी अनेक शुभ गुण थे। दृढ़ आदर्श-निष्ठा ने उन्हें संग्रामी मनोभाव दे दिया था, और आदर्श निष्ठा के साथ आदर्श के ज्ञान, ध्यान को अलग रख सकते थे, इसीलिए ब्राह्म समाजी होते हुए भी उन्होंने बृहत्तर हिन्दू समाज से अपने को कभी विच्छिन्न नहीं किया था। उनमें स्वामी-सम्पादक का निःस्पृह कर्तृत्व और वेतनभोगी सम्पादक की दफ्तरी कार्यकुशलता दोनों का सम्मिलन हुआ था। इसीलिए वे बड़ी निष्ठा के साथ छयालीस वर्षों तक 'प्रवासी' को चलाते रहे। यही नहीं, १९०७ ई० से उन्होंने अंग्रेजी के 'मॉडर्न रिव्यू' को भी निकालना शुरू कर दिया था। यही नहीं, राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के लिए उन्होंने १९२८ ई० में 'विशाल भारत' भी निकालना शुरू किया, जिसके पहले सम्पादक पं० बनारसी दास चतुर्वेदी बने। उन्होंने अपने रामानन्द बाबू विषयक संस्मरणों में लिखा है कि बड़े बाबू ने 'विशाल भारत' निकालने में लाखों का घाटा सहा था।

एक सम्पादक को मासिक पत्र चलाने के लिए किन-किन विषयों की जानकारी आवश्यक है, इस सम्बन्ध में उन्होंने बंगाब्द १३२२ के ज्येष्ठ मास के प्रवासी में लिखा था: 'सामान्य लिखने-पढ़ने के अलावा सम्पादक को इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, समाज-शास्त्र, कानून, तर्क-शास्त्र, नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य, नाना देशों के गाँव-शहरों के सार्वजनिक काम-काज, उत्सव-पर्व किस प्रकार होते हैं, इनके विवरण, कृषि, वाणिज्य, औद्योगिक उन्नति के उपाय, कला-विज्ञान, विविध प्रकार के आँकड़े आदि का ज्ञान आवश्यक है। फिर भी वे कहा करते थे मैं अधिक नहीं जानता हूँ।

मानव जीवन को स्पर्श करनेवाला ऐसा कोई विषय नहीं है, जिस पर 'प्रवासी' में लेख न निकले हों। उसमें लेखकों का विस्तार भी बहुत अधिक था। १३४, बंगाब्द में छपी सूची के अनुसार उसके लेखकों की संख्या ३५४ थी। रवीन्द्रनाथ सहित बंग प्रदेश का ऐसा कोई लेखक नहीं था, जिसकी रचनाएँ 'प्रवासी में न निकली हों। व्यतिक्रम सिर्फ शरत्चन्द्र थे।

रामानन्द बाबू बड़े सूक्ष्म-द्रष्टा थे। उन्होंने रूस में जो क्रान्ति हुई, उसकी सराहना की; किन्तु रूसी साम्यवाद के मानवतावादी चेहरे के पीछे कौन-सा दानवीय चेहरा छिपा हुआ है, इसे भी उजागर करने में वे पीछे नहीं रहे।

ब्राह्म रामानन्द हिन्दू महासभा के अध्यक्ष १९२९ ईसवी में बने थे। उसके भी पहले और बाद में ब्रिटिश अधीन भारत में उन्होंने देखा था कि **हिन्दू-हित किस प्रकार पग-पग पर लांछित हो रहा है और राजनैतिक कारणों से मुस्लिम साम्प्रदायिकता का बड़े जतन से पोषण किया जा रहा है- इसकी तथ्यपूर्ण कहानी रामानन्द बाबू 'प्रवासी' के पृष्ठों पर लिख गये हैं। हिन्दू लोग ब्रिटिश शासन के विरोधी हैं। इस कारण सरकार बहादुर उन्हें गिरफ्तार करेंगे, मारेंगे, पीसेंगे, यह ठीक है; किन्तु इस कारण उन्हें न्याय न देकर उन्हें मुसलमानों का आहार बना देना होगा और उस समय इसका प्रतिवाद करने पर, 'भाई-भाई' के नारे को चोट लगेगी और वह धार्मिक संकीर्णता हो जायेगी- इस तरह के अपने गले में फाँसी लगाने वाले प्रेम में रामानन्द को विश्वास नहीं था, न रवीन्द्रनाथ को था।**

भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता कैसे बढ़ी, कैसे बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ को मुस्लिम-विद्वेषी घोषित किया गया, किस प्रकार मुसलमानों के दबाव में 'वन्देमातरम्' गीत का खंडित अंश ही कांग्रेस के अधिवेशनों में गाया जाने लगा, इसकी लोमहर्षक कहानी 'प्रवासी' के पृष्ठों में अंकित है। उस पूरे सन्दर्भ को यहाँ देना सम्भव नहीं है; किन्तु नयी पीढ़ी के लिए प्रवासी से ऐसे एक-दो लेखों को देना साम्प्रदायिकता को समझने की दृष्टि से बहुत

कटुवचन का घाव

बात के दौरान क्रूरतापूर्वक बात नहीं करनी चाहिए। किसी को नीचा देखना पड़े ऐसे शब्द भी नहीं बोलने चाहिए। जिसके कथन से किसी को उद्वेग हो ऐसी रूखी बात पापियों के लोक में ले जाने वाली होती है। अतः ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। वचनरूपी बाण मुँह से निकलते हैं और उससे बिंधकर मनुष्य रात-दिन शोक-मग्न रहता है। इसलिए जो वचन सामने वाले को उद्वेग पहुँचाते हों, उन्हें कदापि नहीं बोलना चाहिए। □

– आसाराम बापू

उपादेय होगा। एक रोचक प्रकरण है कि —

'मुस्लिम साम्प्रदायिकता को कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'प्रतीक चिह्न' में 'श्री' और 'कमल' रहने पर घोर आपत्ति थी। मुस्लिम बादशाहों के लिए 'श्री' और 'कमल' अछूत नहीं थे, अपनी मुद्राओं और अन्य स्थानों पर उन्होंने उनका व्यवहार किया है। इस्लामी पताका की चन्द्रकला शिव के शिर पर भी है, वहाँ पर तो मुसलमानों ने उसका प्रयोग छोड़ तो नहीं दिया है, इन सब बातों का कोई परिणाम नहीं निकलता है।

धर्मान्तरणके प्रश्न पर भी रामानन्द बाबू खूब विचलित हो जाते थे। धर्म को वे बेचने–खरीदने की वस्तु नहीं मानते थे। इसीलिए हिन्दू समाज के बहुप्रचारित तथाकथित अत्याचार, अनाचार को भी वे हिन्दू समाज छोड़ने के लिए कोई उचित तर्क नहीं मानते थे। १६३२ ईसवी के ज्येष्ठ मास के अंक में एक लम्बे सम्पादकीय में, अनेक तथ्य देकर उन्होंने एक बात स्पष्ट कर देनी चाही थी– **"भेद–विभेद मुसलमान, ईसाइयों सभी के धर्म मतों में है एवं विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के अन्तर्गत विभिन्न मजहबों ने अपना–अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए अनेक वर्षों तक खूनी संघर्ष किया है। किन्तु उन लोगों ने अपना धर्म तो नहीं छोड़ा।"**

१२२६ ईसवी में इतिहासकार योगेश चन्द्र बागल 'प्रवासी' पत्र के साथ जुड़े। बाद में 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' दोनों पत्रिकाओं के एकमात्र सहकारी सम्पादक के दायित्व का भी उन्हें पालन करना पड़ता है। रामानन्द बाबू ने उन्हें कार्यभार देते समय कहा था कि शुद्ध मुद्रण के साथ दोनों पत्रों को समय पर प्रकाशित करना चाहता हूँ। यत्नपूर्वक ये दोनों काम करते हुए बाकी समय में योगेश बाबू अपने अनुसन्धान काम में ही लगे रहते थे। योगेश चन्द्र बाबू ने लिखा है : 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' दोनों ही मानो विद्या के केन्द्र बन जाते हैं।' इस केन्द्र से जुड़े रहने के कारण ही उनका गवेषणा कार्य भली–भाँति चलता रहा था, योगेश चन्द्र ने यह बात खुले रूप में स्वीकार की है।

विद्या–चर्चा और चिन्तन–शक्ति का विकास कर एक आधुनिक सांस्कृतिक परिवेश के निर्माण में रामानन्द चट्टोपाध्याय की भूमिका एक पथ प्रदर्शक की है। पथ निर्देशन से उन्हें कभी विचलित होते हुए भी नहीं देखा गया।

अट्ठानवे वर्ष पहले वे जिस कार्य में बद्ध–परिकर हुए थे, उस समय उस काम के अनुकूल एक तैयार पाठक पा जाने की दृष्टि से– वातावरण निश्चय ही नहीं था। छापेखाने के विषय में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन और समाज जीवन में घटी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से पाठक समाज में अब एक अविश्वसनीय बाढ़ आ गयी है; पर शिक्षित मध्यम वर्ग के पाठकों के निर्माण का वह उषाकाल था।

रामानन्द बाबू की बहुत बड़ी देन नये–नये लेखकों को तैयार करना था। यही नहीं, वे नये–नये विषयों पर लिखवाना भी जानते थे और लेखों की तैयारी कैसे की जाय, इसमें भी सहायता देते थे। उन्होंने 'प्रवासी' में बहुत से विचित्र विषयों पर लेख प्रकाशित किये थे। डॉ० सत्य चरण लाहा के आगरपाड़ा वाले बगीचे में एक विशाल चिड़ियाघर था। इस चिड़ियाघर को देखने के बाद रामानन्द बाबू ने डॉ० लाहा से इस विषय पर लिखने का अनुरोध किया। इसी के फलस्वरूप प्रणीत सत्यचरण लाहा की पुस्तक 'कालिदास के पक्षी' है। इस तरह के अनेक उदाहरण हैं।

रामानन्द बाबू केवल 'लिखिए' कहकर ही शान्त नहीं हो जाते थे। मूल्यवान् परामर्श, प्रासङ्गिक पुस्तकों की खोज में भी संबद्ध लेखकों की सहायता करते थे। सम्भवतः उन्होंने ही सबसे पहले मासिक पत्रिकाओं में लिखनेवाले लेखकों को पारिश्रमिक देने की प्रथा का प्रचलन किया था। इसके अलावा लिखने के लिए पुस्तकें खरीदना, कॉपी आदि करने के लिए खर्चा भी देते थे। लेखक से परिचय और प्रतिष्ठा की अपेक्षा उसकी लेखन–क्षमता और विषय–बोध को ही वे अधिक महत्त्व देते थे। एक–एक लेख ऐसा लगता मानो सच्चे रचना–कर्म से युक्त है। वे हमारे लिए प्रेरणा के केन्द्र हैं। बालक पाठक को परिपक्व पाठक में रूपान्तरित कर देना, रचनाशीलता की खोज और उसके विकास में सक्रिय भूमिका लेकर उन्होंने एक सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण कर दिया था।

उनके सम्बन्ध में एक मनोरञ्जक घटना का उल्लेख पं० बनारसी दास चतुर्वेदी ने किया है : सुनते हैं एक बार बड़े बाबू काशी में गंगा–स्नान करते हुए डूबने लगे, तो एक बंगाली युवक ने उन्हें बचा लिया। बड़े बाबू ने उस युवक को अपना कलकत्ते का पता बतलाकर कहा कि अगर आपका कभी कलकत्ते आना हो, तो मेरे लिए सेवा–योग्य कार्य बतलाना। वह युवक जब कलकत्ता पहुँचा, तो अपनी एक कविता लेकर 'प्रवासी प्रेस' आया और बड़े बाबू को कविता दे दी। कविता बहुत मामूली–सी थी। बड़े बाबू ने कहा– "आपकी इस कविता को तो मैं नहीं छाप सकता, अगर आप चाहें, तो मुझे हुगली में डुबा सकते हैं।"

ऐसे थे रामानन्द बाबू अपने सम्पादन के आदर्शों के प्रति समर्पित, दृढ़ और आस्थाशील। ❐

– १२६०, नया रामनगर, उरई– २८५००१

□ मीनाक्षी दीक्षित

वह आज अपने पापा से अट्ठाइस हजार रुपये माँग रहा था। पता नहीं, क्या कह रहा था? कहाँ नाम लिखाना है, पहले बारह हजार पड़ेगा, फिर आठ–आठ हजार करके दो बार और। आपको कुछ बताया? उसकी माँ ने मुझसे कहा।

... नहीं, मुझसे तो इधर बहुत दिनों से मिला ही नहीं। महीना हो रहा है, जब उसका परीक्षाफल निकला था, उसी दिन आया था। हाँ, बाद में एक दिन और आया था, अंक–पत्र दिखाने, बस।

... तो आपको कुछ नहीं बताया उसने?

... न, मुझे कुछ नहीं मालूम।

वे मुझे आश्चर्य से देख रही थीं, उन्हें मेरे कथन पर सम्भवतः विश्वास नही हुआ, इसलिए उन्होंने बात आगे बढ़ा दी।

... यह ठीक रहेगा क्या, यह बी०–एस०सी० के साथ हो जायेगा कि नहीं? हम लोग तो इन नयी–नयी पढ़ाइयों के बारे में जानते नहीं। आप ही बताइये।

... मेरे विचार से वह बी०–एस०सी० के साथ–साथ मैनेजमेंट में कोई कोर्स करना चाहता होगा। मैनेजमेंट में आजकल आगे बढ़ने की संभावना तो बहुत है।

अनजाने में ही मैंने उसके समर्थन में अभिव्यक्ति दे दी थी, जबकि मुझे इस बात का आभास भी न था कि वह क्या करना चाहता है।

... इतनी फीस, एक बार में, बाकी तीनों भी पढ़ने वाले हैं। वह तो समझना ही नहीं चाहता। उसको तो लगता है एक बार जितना पैसा कह दे, हाथ में रख दिया जाये। ठीक से कुछ बताता नहीं, कहाँ पढ़ने जाना है, क्या पढ़ना है, उससे क्या फायदा होगा? बस पैसा दे दो। किसी से पता भी मत करो कि यह पढ़ाई किसी काम की है भी या नहीं। उसके पापा किसी से जानकारी लेना चाहते हैं, तो लड़ना–चिल्लाना शुरू कर देता है।

मैं जानती थी इतना तो, वह बगैर किसी सवाल–जवाब के अपने हाथ में पैसा देखना चाहता था। इसके लिए अभद्रता की सीमा तक जा सकता था। घर में पैसा है या नहीं; बाकी भाई–बहिनों की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं या नहीं, इन बातों से उसका कोई सरोकार नहीं था।

... हाँ; मैंने निरपेक्ष रहने की चेष्टा की।

... आप पूछिए उससे।

... क्या?

... यही, क्या पढ़ाई है? कौन–सा स्कूल है?

... देखिए, अब मेरे पूछने से कुछ नहीं होगा, वह करेगा, जो उसका मन चाहेगा या जो वह ठीक समझेगा। मेरे मार्गदर्शन का उसके लिए कोई अर्थ नहीं, उसे लगता है वह हम सब से ज्यादा अनुभवी, सबसे समझदार व्यक्ति हो गया है।।

... हाँ, आप कह तो ठीक रही हैं, लेकिन...

... लेकिन क्या? जो करता है करने दीजिए।

मैं अपने स्वभाव के विपरीत कुछ अधिक ही कटु हो गयी थी। उन्होंने बातों का रुख बदल दिया। कुछ देर बैठकर चली गयी थीं।

... मुझे अपने आप से लड़ता छोड़कर।

क्यों खीझ गयी थी मैं? उसके बिना पूरी बात बताये पैसे माँगने से, उसके और अपने बीच बन गयी दूरी से, उसके द्वारा अपनी विचारधारा को थका हुआ करार देने से या फिर उसे समाज की कलुषित गतिविधियों से बचा पाने की हार से?

☆ ☆ ☆

छोटा– सा था वह, जब गणित के सवाल या अंग्रेजी व्याकरण की प्रश्नमाला हल कराने मेरे पास दौड़ आता था। जितनी देर पढ़ता था, उससे दो गुनी देर बातें करता रहता था। देखते–देखते हाईस्कूल में आ गया, और तब तो कभी गणित, कभी भौतिक, कभी रसायन और कभी जीव–विज्ञान उसके लिए नयी–नयी परेशानियाँ खड़ी कर देते और मैं उन परेशानियों से मुक्ति पाने का एकमात्र माध्यम बन गयी थी। किशोर वय की जीवंतता, उसकी बातों, उसकी क्रियाविधि और उसके चेहरे से प्रतिक्षण परिलक्षित होती रहती।

... दीदी! बड़ा मजा आया आज, मौखिक परीक्षा

थी न, मैं तो कल मैच खेलने [illegible] था, [illegible] तो कुछ किया नहीं था, इतनी जबरदस्त ऐक्टिंग की पेट दर्द की कि मैडम भी घबरा गयीं और मेरी तो क्या, एक भी बच्चे की परीक्षा नहीं ली। सारे के सारे लड़के इतने खुश हुए– इतने खुश हुए...

...इतने खुश हुए.... यही सिखाते हैं हम तुम्हें। शर्म नहीं आयी झूठ–मूठ.....

... बस–बस बन गयीं न बुद्दू। भूल गयीं कल आप ही ने तो पढ़ायी थी परमाणु संरचना, न चाहते हुए भी मुझे हँसी आ गयी।

... दीदी ! आप मेरी चित्र वाली फाइल पूरी कर दीजिए।

... क्यों ? हम क्यों कर दें।।

... कर दीजिए, वरना कल पूरे स्कूल में मुझे झाड़ू लगानी पड़ेगी, अम्मा को बुलाया जायेगा, वह अलग से।

... देखो, तुम कुछ पढ़ते–लिखते नहीं हो, मैं तुम्हारा कोई काम नहीं कर सकती, चाहे तुम्हें झाड़ू लगाना पड़े या पोंछा।

...पढ़ता नहीं हूँ मैं, ऐं ! मुझसे कह रही हैं, इतना तो पढ़ता हूँ...

... अच्छा अब और पढ़ लूँगा। जितना आप कहेंगी उतना पढ़ लूँगा, लेकिन मेरे चित्र बना दीजिये....

वह पढ़ता था। सच में। पढ़ने में अच्छा भी था।

पढ़ाई से भी अच्छी थी एक बात– उस किशोरावस्था में भी उसमें विचार आने लगे थे, दृष्टि आने लगी थी। घण्टों चर्चा करता रहता भगत सिंह कैसे रहे होंगे ? सुभाष चन्द्र बोस कितने दिलेर होंगे ? और स्वामी विवेकानन्द, उनका तो कहना ही क्या, अपने देश को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया ? कितने ज्ञानी थे और कितने त्यागी। कितना अच्छा होता अगर मैं भी उन्हीं के युग में पैदा होता– देश की सेवा करता। अभी भी खैर कुछ बिगड़ा नहीं, फौजी बन जाऊँगा।

दीदी, आप ठीक कहती हैं, ईमानदारी दुनिया की सबसे अच्छी चीज है। अपनी मेहनत और लगन से किसी ऊँचाई तक पहुँचना बहुत बड़ी बात है। झूठ, बेईमानी, रिश्वत या किसी की दया से कुछ पा लेना, प्राप्त करना अपने आप को कितना छोटा कर देता है। मैं जो कुछ भी हासिल करूँगा अपनी मेहनत से, बस आप देखती जाइये...मैं बहुत आगे जाऊँगा।

सुनकर बहुत अच्छा लगता था।

आज हमें ऐसे विचारशील किशोरों की ही तो आवश्यकता है। यही तो भारत को ऐश्वर्य–शिखर पर ले जायेंगे।

☆ ☆ ☆

समय बदलते क्या देर लगती है ?

अगले वर्ष ही वह कालेज में प्रविष्ट हो गया।

उसने सुने कुछ नये नाम, देखे कुछ नये काम, उसे मिले कुछ सरल रास्ते।

... हर्षद मेहता, क्या टॉप क्लास आदमी है। उसकी गाड़ियों की तो गिनती ही नहीं है, उसका बंगला, जैसे सपनों में देखा हो, पैसों का तो हिसाब ही नहीं।

... लेकिन यह सब उसने धाँधली और धोखाधड़ी से कमाया है, मेहनत से नहीं। यह अपने देश और देश की गरीब जनता दोनों के प्रति अपराध है।

उसने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।

धीरे–धीरे उसका सोच और शैली दोनों बदलने लगे।

... क्या सच में बोफोर्स–काण्ड में नेता लोग पैसा खा गये होंगे?

... इसका निर्णय तो अदालत करेगी।

... आपको क्या लगता है?

हमें कुछ भी लगे, उससे क्या अन्तर पड़ता है? हमें तो अपनी न्याय–व्यवस्था पर विश्वास करना चाहिए।

यह अपेक्षा रखनी चाहिए कि दोषी को दण्ड मिले बस। मैं बता दूँ– मुझे क्या लगता है। चाहे कोई दोषी हो या न हो, लेकिन कुछ होगा नहीं, बस जाँच चलती रहेगी। जितने बड़े अधिकारी, नेता और उनके चमचे होते हैं न, सब एक जैसे होते हैं। वही कानून बनाते हैं, वही पालन कराते हैं, वही तोड़ते हैं, इसमें कौन सही गलत का निर्णय करेगा?

...ऐसा नहीं है, सब एक जैसे नहीं होते। इस देश में ईमानदारी और ईमानदारों की कमी अब भी नहीं है।

वह चला गया, लेकिन उसके चेहरे से यह स्पष्ट था कि मेरे उत्तर ने उसे संतुष्ट नहीं किया है। समय की गति के साथ जीवन आगे बढ़ता रहता है।

हमारे बीच सामाजिक या राजनैतिक विषय उठ जाते या नैतिकता की बात होने लगती, तो शायद हम दोनों को लगने लगता कि कुछ अप्रीतिकर बातें होने लगी हैं। तब हम वापस भौतिक–रसायन या जीव–विज्ञान पर लौट आते। हर दिन मुझे लगता कि बचपन में जो आस्थाएँ मैंने उसके भीतर जगायी थीं, वे धीरे–धीरे दम तोड़ रही थीं।

☆ ☆ ☆

उस दिन बहुत गुस्से में था। गलत बिल भेज देंगे बिजली का... सही करवाना हो, तो पैसे खिलाओ, वरना बिजली काट देंगे, बिल समय से नहीं जमा है इसीलिए। अरे, उनका कुछ नहीं होता जो हमेशा कटिया से काम चलाते हैं। हिन्दुस्तान में तो वही सुखी है, वरना जिनके यहाँ हजारों रुपए की बिजली की खपत होगी, वहाँ बिल आयेगा चार सौ का और हमारे यहाँ चार हजार का। मैंने तो अम्मा से साफ–साफ कह दिया, "मैं नहीं जा सकता रोज–रोज बिल सही करवाने के लिए बाबू के चक्कर काटने, कोई जरूरत नहीं बिल–विल भरने की। कटिया से काम चलाओ।"

... व्यवस्था कैसी भी हो, गलत काम गलत ही होता है।

... क्या खाक गलत होता है? पीछे वाले शर्मा जी अपना मीटर खोलकर सैंकड़ों यूनिट पीछे भगा देते हैं, हजारों का बिल सैकड़ों में बदल लेते हैं। और वह पप्पू है न मेरा दोस्त, उसने तो कई साल हुए अपना मीटर ही जला दिया। बिल के नाम पर न्यूनतम पैसा देते हैं। चलाते, पता है, क्या–क्या हैं– चार कूलर, फ्रिज, टी०वी०, वाटर पम्प, एक दर्जन बल्व और ट्यूब लाइट, छह सीलिंग फैन साथ में हीटर और प्रेस। किसी को कुछ पता चलता है क्या? सारी चोरी भी कानूनी हो जाती है।

... इस तरह की गड़बड़ी का सीधा असर हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। यह हमें स्वयं सोचना चाहिए, आवश्यक नहीं है कि सदा एक सिपाही हमारी निगरानी करता रहे। आत्म–बोध और आत्म–कर्तव्य भी कोई चीज है। यदि कोई चोर पकड़ा नहीं जाता, तो इसका यह तात्पर्य कभी नहीं हो सकता कि चोरी कानूनी हो गयी। जो लोग इस तरह की

गड़बड़ करते हैं या उसमें सहायता करते हैं – वे स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित लोग हैं, उन्हें यह अनुभूति ही नहीं कि वे अपने राष्ट्र के प्रति कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं? और सबसे सीधी बात तो यह है कि यदि एक व्यक्ति गलती करता है, तो उसका यह मतलब नहीं कि उसे देखकर हम भी गलती करें, उसके जैसे हो जायें।

... नहीं, हम वैसे न हों, केवल घण्टों बिल की लाइन में खडे हों; महीने में कई चक्कर बिल ठीक करवाने के लिए लगायें। आप की दी हुई सोच को आधार बना लें, तो जीना ही दूभर हो जाये। मुझे तो लगता है बहती गंगा में हाथ धोना ही सही है।

... नहीं, यह ठीक नहीं है। कम से कम प्रदूषण में तुम्हारा योगदान तो नहीं रहेगा।

... हाँ.... वह मुस्कराया।

उस मुस्कराहट के कई अर्थ थे।

☆ ☆ ☆

कालेज के दूसरे साल तक पहुँचते–पहुँचते वह पढ़ाई से अधिक दूसरी बातों में रुचि लेने लगा था। फिर भी परीक्षा के दिनों में पुस्तकें लेकर आया, मुझे अच्छी तरह मालूम था कि पुस्तकें तो मात्र प्रदर्शन हैं। उसका पूरा ध्यान गेस पेपर और बाकी संसाधनों पर था। सब यही करते हैं, करना ही पड़ेगा, पढ़ने से क्या फायदा।

... कल रसायन की प्रयोगात्मक परीक्षा है।

... परीक्षण याद है एक भी ?

... किताब ले जाऊँगा न।

... और भौतिक... ?

... उसकी कोई चिन्ता नहीं। हर लड़के ने चालीस–चालीस रु० जमा किये हैं, आजकल के सारे मास्टर....

... जबान सँभाल कर बात करो। तुम किसी अध्यापक के बारे में बात कर रहे हो और यह भी जान लो, यदि कोई ढंग का परीक्षक आ गया, तो सबको बाहर कर देगा

... पैसा न सही, जान तो सबको प्यारी होती है।

... कुछ को वह भी ईमान से छोटी लगती है।

... आप कहना चाहती हैं, आप मेरी परीक्षक होतीं, तो मुझे अवश्य फेल कर देतीं; लेकिन लोग इतने बेवकूफ नहीं होते, अपना भला–बुरा देख कर काम करते हैं।

मैं गुस्से से इतनी तमतमा चुकी थी कि उसको उत्तर देना भी मेरे लिए संभव नहीं था।

☆ ☆ ☆

उसका उत्तीर्ण होना मुश्किल ही है, कुछ तो पढ़ा, लिखा नहीं था, हो भी क्लास, तो क्या लाभ और न हो तो क्या हानि ? प्रश्न हानि–लाभ का नहीं है। प्रश्न है कि उसे उत्तीर्ण होना चाहिए कि नहीं ?

☆ ☆ ☆

वह उत्तीर्ण हो गया।

... लगता है आपको मेरे परीक्षाफल से खुशी नहीं हुई।

... हाँ.... क्यों नहीं, मैं जैसे तन्द्रा से जागी थी।

... सच बताइये, आपको खुशी नहीं हुई न। मुझे पता है आपको नकल, गेस पेपर, प्रयोगात्मक परीक्षा में परीक्षक को पटाना यह सब पसन्द नहीं। यह सब आपके जमाने की बातें हैं, अब नहीं चलतीं। अच्छा, अनुमान लगाइये लगभग कितने प्रतिशत अंक होंगे मेरे ?

... पचास से पचपन प्रतिशत के बीच, लेकिन आता क्या है तुम्हें ?

... सब लोग अंक–पत्र देखते हैं, अंक कितने हैं यह देखते हैं, कैसे आये हैं यह नहीं पूछते।

☆ ☆ ☆

... वैसे एक बात है, आपने अनुमान एकदम सही लगाया था। पूरे तिरपन प्रतिशत अंक हैं। यूनिवर्सिटी में तो मुझे प्रवेश मिल ही जायेगा।

... वहाँ प्रवेश परीक्षा होती है, और अच्छों–अच्छों के पसीना आ जाता है। बच्चू, अब पढ़ना पड़ेगा।

... वह बेवकूफ होते हैं जिन्हें पसीना आ जाता है, बस सोर्स होना चाहिए, न प्रवेश परीक्षा न कोई नौटंकी, देखिये मैं अपना कैसे करवाता हूँ।

... तो करवा लो जाकर, और अब यहाँ आकर मुझे मत परेशान करना।

वह चला गया। उस दिन के बाद आज उसकी अम्मा यह समस्या लेकर आ गयी थीं।

☆ ☆ ☆

हमारे बीच की दूरी बढ़ने में किसका दोष था ? न उसका, न मेरा। मैं उसे आदर्श व्यक्तित्व में ढालने की असफल चेष्टा कर रही थी और वह अपने परिवेश के गुण–दोष ग्रहण कर रहा था। नहीं; वह सिर्फ गुण–दोष नहीं ग्रहण कर रहा था– उसके भीतर की सरलता; सहजता; आस्था; नैतिकता और विश्वास सब कुछ कहीं गुम होता जा रहा था। यह ऐसी गुमशुदा चीजें हैं, जिनके गुम हो जाने की प्राथमिकी सम्पूर्ण भारतवर्ष के किसी भी थाने पर नहीं लिखवायी जा सकती। ❐

– १२३, फतेहगंज, गल्लामंडी, लखनऊ–२२६००४

सरदार बन्तासिंह जालन्धर जिले के ग्राम सगवाल में सन् १८६० में जन्मे थे। ये जालन्धर के डी०ए०वी० स्कूल के छात्र थे, छात्र जीवन के उपरान्त ये चीन गये और फिर वहाँ से अमेरिका गये। वहाँ प्रायः ये अपशब्द सुनकर ये विक्षुब्ध हो उठे– **'ब्लैक कुली'**, **'डैम इंडियन'**, **'स्लैवडॉग'**, **'काला मैन'** आदि। अनुभव हुआ कि उस स्वतन्त्र देश में हम पराधीन भारतीयों के लिए अपमान ही है, फलतः अशांत मन लेकर भारत लौट आये और स्वदेश को स्वराज्य प्राप्त कराने के लिए कुछ करने का विचार बनाया। सर्वप्रथम अपने ग्राम में ही एक विद्यालय खोला। साथ ही गाँव के विवादों को आपसी तौर पर निपटाने हेतु एक पंचायत स्थापित की। जिसके निर्णय गाँव के लोग सहर्ष मान लेते थे। एक बार तो सरदार बन्तासिंह ने चीफ कोर्ट के भी एक निर्णय को गाँव की पंचायत में रद्द करके जो दोनों पक्षों को मान्य हुआ– ऐसा योग्य निर्णय दिया। उधर अमेरिका से पंजाब लौटे प्रवासी भारतीय इनके घर इकट्ठे होने लगे। इन बातों से पुलिस का गुप्तचर विभाग चौकन्ना हो गया और एक दिन अकस्मात् पुलिस दल ने इनका मकान घेरकर तलाशी ली तो कुछ ब्रिटिश–विरोधी पर्चे बरामद हुए– उस समय बन्तासिंह घर में मौजूद नहीं थे। इस कारण ये गिरफ्तार न किये जा सके, परन्तु इनके नाम गिरफ्तारी का वारण्ट जारी हो गया।

बलिदानी सरदार बन्तासिंह जिन्होंने देशद्रोही को गोली मार दी

– क्रान्तिकारी

इनके एक क्रान्तिकारी साथी थे सरदार सज्जन सिंह फीरोजपुरी। उनके साथ एक दिन लाहौर के 'अनारकली बाजार' में एक गुप्त बैठक में शामिल होने जा रहे थे– तभी बाजार में पहुँचते–पहुँचते रास्ते में एक पुलिस उप–निरीक्षक ने कहा कि "हम तुम्हारी तलाशी लेंगे।" इन्होंने उससे पीछा छुड़ाने की बहुतेरी चेष्टा की; परन्तु जब वह नहीं माना; तो इन्होंने चुपचाप अपनी जेब से भरा हुआ पिस्तौल निकाला और उस पर यह कहते हुए कि "ले, तुझे देता हूँ– यही है मेरे पास" गोली दाग दी। वह मर गया। ये फरार हो गये। इनके साथ सरदार सज्जन सिंह फीरोजपुरी के पैर में चोट होने से वे भाग नहीं सके। उधर सरदार बन्तासिंह 'मियाँमीर रेलवे स्टेशन' आ गये और यद्यपि वहाँ भी पुलिस दल इनकी टोह में पहले से ही नियुक्त था–तथापि ये ट्रेन पर चढ़ गये। पीछे से उसी डिब्बे में और भी कई पुलिस वाले भी चढ़ गये। अभी **अटारी** स्टेशन नहीं पहुँची थी ट्रेन कि यह बीच में ही चलती ट्रेन से नीचे छलाँग लगा गये। पुलिस टापती रह गयी।

इन्हें पता लगा कि 'गदर पार्टी' के एक क्रान्तिकारी भाई (सरदार) प्यारासिंह को जैलदार चन्दासिंह ने ही गिरफ्तार कराया है जो कि नगलकलाँ (जिला होशियारपुर) में नियुक्त था। सरदार बन्तासिंह ने देशद्रोही को दंडित करने का निर्णय लेकर अन्य दो साथी सरदार जीवन्दसिंह और भाई बूरासिंह को भी अपनी इस योजना में शामिल किया और देशघाती चन्दासिंह को उसके घर में गोली मार कर समाप्त कर दिया। आगे एक दिन आपने डायनामाइट लगाकर अमृतसर जिले का एक पुल भी उड़ा दिया ताकि पुलिस दल उनके साथियों का पीछा जल्दी न कर सके। इनका पुलिस–दल से कई बार संघर्ष हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि पुलिस–दल इन्हें देखते ही किनारा कर जाते थे। एक दिन जब पुलिस का अश्वारोही दल इनको पकड़ने इनके पीछे चला, तो निरन्तर ८० मील तक चलते चले गये और पुलिस अश्वारोही इन्हें पकड़ न सके। परन्तु इसी बीच इस दौड़–भाग और अनेक संघर्षों में संलग्न रहते–रहते इनकी देह जर्जर होकर रोग–ग्रस्त हो गयी। 'गदरपार्टी' के अनेक गिरफ्तार क्रान्तिकारियों पर उन दिनों "लाहौर षडयन्त्र केस" का अभियोग चल रहा था। बीमारी से विवश होकर ये घर लौटे– कुछ दिन बीतने पर एक रिश्तेदार इन्हें बड़े आग्रहपूर्वक अपने यहाँ लिवा ले गया– कहा, "हम तुम्हारी यहाँ समुचित रूप से औषधोपचार कराएँगे।" परन्तु उसी ने एक दिन गुप्तरूप से पुलिस वालों को सूचित कर दिया। उस समय ये उस मकान के एक तंग कक्ष में एकाकी ही पड़े थे कि एकाएक पुलिस दल ने आकर वह कक्ष घेर लिया। द्वार खोला तो देखा, सामने भरी बंदूकें ताने पुलिस वाले खड़े हैं। परन्तु इनके चेहरे पर भय का कोई भाव तक नहीं कौंदा और न माथे पर कोई शिकन आई, वरन् लगे मुक्त हास्य करने– फिर अपने उस नातेदार से कहा–

"अरे यार! जब तुम्हें इन्हें ही यहाँ बुलाना था तो मेरी पिस्तौल तुमने पहले से ही क्यों गायब कर दी? पिस्तौल ले लिया था, तो कोई लाठी–डण्डा ही मेरे पास रहने देते जिससे मैं इन लोगों से दो–दो हाथ करते ही मरता।" ये गिरफ्तार करके होशियारपुर की अदालत में ले जाये गये। अदालत इनके दर्शनार्थियों से भर गई। अनन्तर इन्हें लाहौर लाकर सरदार बलवन्त सिंह ('गदर पार्टी' के एक क्रान्ति–वीर) के साथ मुकदमा चलाया गया। अन्त में इन्हें भी सरदार बलवन्त सिंह के साथ फाँसी देने का निर्णय सुनाया गया। चले गये स्वतन्त्रता के ये दीवाने देश–हितार्थ संसार छोड़कर। ❑

श्री बच्चा पाठक
मंत्री, पर्यावरण एवं
अतिरिक्त ऊर्जा, उ0प्र0
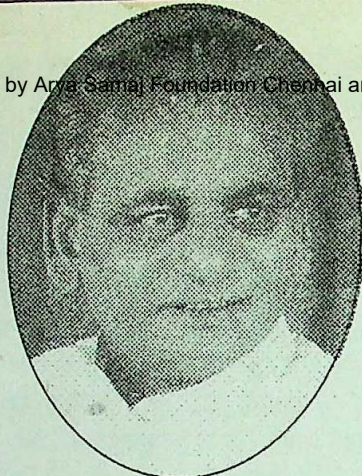
श्री कल्याण सिंह
मुख्यमंत्री, उ0प्र0

श्री विवेक कुमार सिंह
राज्यमंत्री, पर्यावरण, उ0प्र0

हमारी पृथ्वी - हमारा भविष्य - इसे बचायें।

जीवन का अस्तित्व धरा पर,
हरीतिमा से इसे सजायें।
वसुन्धरा हो मुक्त प्रदूषण,
जन-जीवन को सुखी बनायें ॥

विश्व
पर्यावरण
दिवस

5 जून, 1999

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा प्रसारित

चिट्ठी आई पेरिस से

नाव लड़खड़ाती तो है लेकिन ...

– डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय

इतिहास में, उत्थान–पतन के अनेक मोड़ों से फ्रान्स भी कम नहीं गुजरा है। जय–पराजय के रोमांचक क्षणों की बहुत बार साक्षी बनी हैं यहाँ की सेन, राइन और रोन प्रभृति महानदियाँ। फ्रांस की भौगोलिक स्थिति भी बहुत कुछ जिम्मेदार रही है इन उतार–चढ़ावों की; क्योंकि इसके चारों ओर निकटतम पड़ोसियों के रूप में इंग्लैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी, इटली प्रभृति विभिन्न यूरोपीय देश अवस्थित हैं। प्रारम्भ में इटली के रोमन सम्राटों ने फ्रांस के अनेक दक्षिणी नगरों पर आधिपत्य बनाये रखा, फिर ब्रिटेन ने भी इसे आक्रान्त कर सुदीर्घकाल तक इस पर शासन किया। जर्मनी से भी अनेक वर्षों तक फ्रांस का युद्ध चला। आज का फ्रांसीसी महानगर स्ट्रासबुर्ग सुदीर्घकाल तक जर्मनी के प्रभुत्व में ही रहा। द्वितीय विश्वयुद्ध में तो जर्मनी की सेनाओं ने फ्रांस पर अधिकार ही कर लिया था, चार वर्ष तक जर्मनी का यहाँ शासन बना रहा। हिटलर ने तो अपने किसी सेनानायक को पेरिस को बमबारी करके नेस्तनाबूत करने का ही हुक्म दे दिया था, लेकिन उस समझदार सेनानायक ने आदेश के पालन में टालमटोल कर किसी प्रकार इस भव्य नगर को ध्वंस से बचा लिया। उस अवधि में फ्रांस की सरकार किसी अज्ञात स्थान पर रहकर जैसे–तैसे अपना अस्तित्व भर बनाये रही, लेकिन सेनापति शार्ल देगोल, जो बाद में यहाँ के राष्ट्रपति भी बने, इंग्लैण्ड में रहकर, देशवासियों के मनोबल को बनाये रखने का जी–तोड़ प्रयत्न करते रहे। और फिर वह समय भी आया, जब जर्मनी की सेनाएँ पीछे हटीं, फ्रांस फिर से स्वाधीन हुआ और शार्ल देगोल के नेतृत्व में यह देश निरन्तर उन्नति की दिशा में आगे बढ़ते हुए एक महाशक्ति के रूप में परिणत हुआ। फ्रांस को पुनः अपनी स्वाधीनता पाये हुए अभी मात्र ५३–५४ वर्ष ही हुए हैं– हम से केवल दो–ढाई वर्ष पहले ही फ्रांस ने भी अपनी खोयी हुई प्रभुसत्ता को पुनः प्राप्त किया था, लेकिन फ्रान्स ने इतना अधिक विकास कर लिया और हम जाति–पाँति की अन्धी गलियों में ही भटकते रह गये; इतिहास की इस विचित्र विसंगति का मूल कारण अन्ततः क्या है ? इस चतुर्मुखी उन्नति के अतल गह्वर में सन्निहित है वास्तव में फ्रांसीसियों की राष्ट्रनिष्ठा और अगाध स्वदेश भक्ति की भावना। इस सन्दर्भ में पेरिस की महानगरपालिका का वह आदर्श–वाक्य भी पर्याप्त प्रकाश डालता है, जो लैटिन में इस प्रकार है– 'Fluctuat Nec mergitur il flatte mais ne sombre pas.' मोनोग्राम पर इसके नीचे नाव

लगभग २०० वर्षों पहले सम्पन्न हुई प्रथम क्रान्ति के समय फ्रान्स ने अपने समाज के लिए समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व का जो आदर्श चुना था, वह आज भी यथावत् है। मत, पन्थ, सम्प्रदाय, जाति–पाँति इन सबकी स्थिति उस आदर्श के सामने बिल्कुल गौण है। अल्प–संख्यक यहाँ भी हैं, लेकिन सम्प्रदाय के आधार पर किसी के लिए यहाँ के संविधान में कोई विशेष संरक्षण नही हैं। सर्वाधिक संख्या है कैथोलिकों की– लगभग ७५ प्रतिशत। उसके बाद प्रोटेस्टेंट, आर्थोडाक्स और मुस्लिम (लगभग १५ प्रतिशत) हैं, लेकिन पृथकतावादी गतिविधियों की अनुमति यहाँ किसी को भी नहीं है। सरकार न तो किसी को हज करने के लिए अनुदान या दूसरी सुविधाएँ देती है और न ही अलग मदरसे खोलने के लिए। सबके लिए समान आचार संहिता है, समान नागरिक विधि है, समान शिक्षालय है और अभ्युदय के लिए समान अवसर हैं। विवाह मान्य तभी होता है, जब उसका पंजीयन सिविल अधिकारी की उपस्थिति में हुआ हो। साम्प्रदायिक अदालतों की स्थापना की यहाँ कोई सोच भी नहीं सकता। सरकारी नौकरियों में किसी प्रकार का आरक्षण नहीं है, राजनीतिक निर्वाचन के समय भी किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है। अपराध करने पर सबके लिए एक ही दण्ड–विधान है। विवाह–विच्छेद की न्यायिक प्रक्रिया भी एक है।

का चिह्न अंकित है। वाक्य का अर्थ है कि 'नाव लड़खड़ाती तो है, लेकिन डूबती नहीं है।' अभिप्राय यह कि पेरिस (और लगभग पूरे फ्रान्स) की नाव लड़खड़ाई तो बहुत बार, लेकिन वह डूबी नहीं। फ्रांसीसी अपने अभ्युदय के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। गिरे, लेकिन फिर उठे भी। चलने वाला गिरता ही है, लेकिन अपराधी वह तब होता है, जब उठने का प्रयत्न नहीं करता। लगभग २०० वर्षों पहले सम्पन्न हुई प्रथम क्रान्ति के समय फ्रान्स ने अपने समाज के लिए समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व का जो आदर्श चुना था, वह आज भी यथावत् है। मत, पन्थ, सम्प्रदाय, जाति–पाँति इन सबकी स्थिति उस आदर्श के सामने बिल्कुल गौण है। अल्प–संख्यक यहाँ भी हैं, लेकिन सम्प्रदाय के आधार पर किसी के लिए यहाँ के संविधान में कोई विशेष संरक्षण नही हैं। सर्वाधिक संख्या है कैथोलिकों की– लगभग ७५ प्रतिशत। उसके बाद प्रोटेस्टेंट, आर्थोडाक्स और मुस्लिम (लगभग १५ प्रतिशत) हैं, लेकिन पृथकतावादी गतिविधियों की अनुमति यहाँ किसी को भी नहीं है। सरकार न तो किसी को हज करने के लिए अनुदान या दूसरी सुविधाएँ देती है और न ही अलग मदरसे खोलने के लिए। सबके लिए समान आचार संहिता है, समान नागरिक विधि है, समान शिक्षालय है और अभ्युदय के लिए समान अवसर हैं। विवाह मान्य तभी होता है जब उसका पंजीयन सिविल अधिकारी की उपस्थिति में हुआ हो। साम्प्रदायिक अदालतों की स्थापना की यहाँ कोई सोच भी नहीं सकता। सरकारी नौकरियों में किसी प्रकार का आरक्षण नहीं है, राजनीतिक निर्वाचन के समय भी किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है। अपराध करने पर सबके लिए एक ही दण्ड–विधान है। विवाह–विच्छेद की न्यायिक प्रक्रिया भी एक है। जनसंख्या के विकास की गति शून्य पर आ गयी है। वह बढ़ने के स्थान पर अब घट रही है, इसलिए सरकार सन्तानोत्पादन को बढ़ावा दे रही है। अधिक बच्चों वाले दम्पति को रेल–यात्रा के समय किराये में भी छूट मिलती है। किसी भी व्यवसाय को आप तभी कर सकते है, जब उसके लिए विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया हो। केश–प्रसाधन का काम तक बिना प्रशिक्षण के नहीं किया जा सकता। विदेशियों को कोई धन्धा करने से पहले उसके लिए 'कार्य करने की अनुमति' प्राप्त करनी पड़ती है। फ्रान्स को यहाँ के नेताओं ने 'खाला कर घर' नहीं बनने दिया है। बाहर से आये हर व्यक्ति की पूरी–पूरी जानकारी पुलिस और प्रीफेक्त्यूर के कम्प्यूटर में रहती है। बिना वैध वीसा के यहाँ कोई रह नहीं सकता। शरणार्थी भी हर हाल में एक साल बाद वापस भेज ही दिया जाता है। सम्पूर्ण व्यवस्था में

जी रहे हैं लोग कैसे आज के वातावरण में

– रामकुमार मिश्र 'मधुकर'

छोड़कर पथ सत्य का, रत भोगवादी आचरण में,
जी रहे हैं लोग कैसे, आज के वातावरण में।

स्वयं के जब आत्मघाती बात मनभाती सुनाते,
आँकते करतूत अपनी, झाँक उर अन्तर लजाते;
धर्म, मानवता मुखौटे, कह रहे कुछ कर रहे कुछ,
स्वार्थ की सब योजनाएँ, अनय पथ के गीत गाते,

सत्पथी खोई प्रभा, तम भर गया अन्तःकरण में।
जी रहे हैं लोग कैसे, आज के वातावरण में।।

नेह नाते की चतुर्दिक् जर्जरित सब शृंखलाएँ,
त्याग तप परहित समाहित, कौन क्या कुछ खोज पायें,
युग युगों से संस्कृति, जो चल रही परिवारवत् थी,
कुपित दानवता–प्रताड़ित वेदनाओं की कराहें,

बीतता प्रतिपल विकल, फिर भी निरत पर–धन–हरण में।
जी रहे हैं लोग कैसे आज के वातावरण में।।

भोग का भव–रोग बढ़ता जा रहा सब मानते हैं,
और सारे भोगवादी व्यग्र हैं यह जानते हैं,
सत्य का पथ शान्तिदाता, धर्ममय जीवन फलित है,
लोक क्या परलोक तक यह कामना जो ठानते हैं;

देर मत कर गीत "मधुकर" गुनगुना हरि की शरण में।
जी रहे हैं लोग कैसे आज के वातावरण में।।

– राघव सदन, ७६, खलीलशर्की, शाहजहाँपुर– २४२००१

कहीं कोई दरार नहीं दिखाई देती है। नियमों का पूरा-पूरा पालन किया जाता है। किसी को भी कोई छूट नहीं है उनके उल्लंघन की। कोई भी धनकुबेर देश फ्रांस की ओर कुत्सित दृष्टि से देखने का साहस तक नहीं कर सकता। आज यह सब प्रकार से सुखी और सम्पन्न देश है। यहाँ के निवासी अपनी ऊर्जा के कण-कण और समय के क्षण-क्षण का रचनात्मक सदुपयोग करने में लगे रहते हैं। लेकिन ये उपलब्धियाँ किसी जादू के जोर से या हातिमताई के कमाल से फ्रान्स को नहीं हासिल हुई हैं। तिल-तिल करके इन्हें अर्जित करने के लिए फ्रांसीसियों की पीढ़ियों ने अपना खून-पसीना बहाया है, उत्सर्ग और बलिदानों की शृंखलाएँ बना दी हैं, तब उस राष्ट्रीय चरित्र की भट्ठी

> विश्वविद्यालय के परिसर में, छात्रों को कभी आपस में लड़ते-झगड़ते या मार-पीट करते हुए नहीं देखा। मेरी आँखें तरस गयीं लेकिन किसी छात्र या छात्रा को नकल करने का प्रयत्न करते हुए नहीं देख सका। मेट्रो, रेल अथवा बस में कभी किसी बात पर 'तू-तू, मैं-मैं' करते हुए भी कोई नहीं दिखा। आवेश में भी लोग कभी जोर से नहीं बोलते। एक-दूसरे को नीचा दिखाने या अपशब्दों से नवाजने की सार्वजनिक प्रवृत्ति भी यहाँ नहीं पायी जाती- घरों में पति-पत्नी कभी बहक जाते हों, तो बात दूसरी है। कभी-कभी सोचता हूँ, कि आखिर सोरबोन विश्वविद्यालय का कुलानुशासक कार्यालय (प्राक्टर-आफिस) छात्रों की उद्दण्ड प्रवृत्ति के घनघोर अभाव में करता क्या है? क्या यहाँ के छात्र पौरुषहीन हो गये हैं जो इतनी शान्ति से केवल अध्ययन-अध्यापन, प्यार-मोहब्बत, नाटकों के अभिनय, पत्रिकाओं के सम्पादन-प्रकाशन अथवा फुटबाल खेलने में मगन रहते हैं? कभी-कभी याद आती है अपने लखनऊ विश्वविद्यालय के परिसर की, जहाँ हथगोलों के धमाकों का धुआँ प्राक्टर-आफिस को निरन्तर बेचैन किये रहता था, पी०ए०सी० के जवान दिनभर इधर-उधर दौड़ते हुए लाठियाँ भाँजते रहते थे। अध्यापक वहाँ अपनी देह की चिन्ता में इतने तल्लीन रहते हैं कि बेचारे पढ़ने-पढ़ाने का अवसर तक नहीं निकाल पाते हैं और छात्रसंघों के चुनावों तथा वार्षिक परीक्षाओं के समय प्रदेश भर की पुलिस का एकमात्र कार्य केवल छात्रों की निगरानी भर करना रह जाता है। पेरिस के १४ विश्वविद्यालयों में से किसी में भी पुलिस का कोई सिपाही कभी नहीं दिखा। १९६८ के बाद छात्रों ने कोई बड़ी हड़ताल नहीं की। अध्यापकों को अपनी वेतन-वृद्धि के लिए आन्दोलन नहीं करना पड़ता है।

का निर्माण हो पाया है, जिसमें स्वस्थ परम्पराओं का इस्पात ढलता है और आदर्श नागरिक की आचार-संहिता का विधि-विधान तैयार हो पाता है। फ्रान्स को अपनी परम्पराओं पर गर्व है, अपने महापुरुषों पर अभिमान है और अपने इतिहास पर गुमान है। यह ठीक है कि संयोग से फ्रांस को कुछ ऐसे महानायकों का करिश्माई नेतृत्व भी मिला, जिन्होंने आज के फ्रान्स का निर्माण करने के लिए अद्भुत जीवट का परिचय दिया, लेकिन इस कार्य में सर्वसाधारण नागरिक का योगदान भी कम नहीं है। प्रथम क्रान्ति के बाद, जब फ्रान्स ने गणतान्त्रिक राज्य का स्वरूप प्राप्त किया, फ्रान्स को नेपोलियन जैसे महावीर का मार्गदर्शन मिला, जिसने फ्रांसीसी सिविल विधि का तो निर्माण कराया ही, फ्रांसीसी भाषा तथा शिष्टाचार पर भी बदल दिया। और उसके बाद शार्ल देगोल का स्थान है, जिन्होंने फ्रान्स की मँझधार में पड़ी नाव को बाहर ही नहीं निकाला, उसे इतना मजबूत कर दिया कि अब वह हर झंझावात या तूफान का सामना करने में स्वयमेव समर्थ है।

फ्रांसीसी सामान्यतः बहुत परिश्रमी और शान्तिप्रिय होते हैं। सुबह से शाम तक निष्ठापूर्वक अपने काम में लगे रहते हैं। उनकी दूसरी बड़ी विशेषता है शिष्टाचार और सद्व्यवहार। औसत फ्रांसीसी नर-नारी बहुत विनयशील और शील-सम्पन्न होते हैं। विश्व भर में यह कहावत है कि इटली की प्रसिद्धि धूर्तता तथा ठगी के कारण है। इटली जाने वाले व्यक्ति ठगों के बहुधा शिकार हो जाते हैं। अंग्रेज अड़ियल होते हैं और जर्मन झगड़ालू तथा कलहप्रिय माने जाते हैं, लेकिन फ्रान्स की पहचान अपने विशिष्ट शिष्टाचार के कारण है। अपने डेढ़वर्षीय पेरिस-प्रवास की अवधि में मैंने अपने विश्वविद्यालय के परिसर में छात्रों को कभी आपस में लड़ते-झगड़ते या मार-पीट करते हुए नहीं देखा। मेरी आँखें तरस गयीं लेकिन किसी छात्र या छात्रा को नकल करने का प्रयत्न करते हुए नहीं देख सका। मेट्रो, रेल अथवा बस में कभी किसी बात पर 'तू-तू, मैं-मैं' करते हुए भी कोई नहीं दिखा। आवेश में भी लोग कभी जोर से नहीं बोलते। एक-दूसरे को नीचा दिखाने या अपशब्दों से नवाजने की सार्वजनिक प्रवृत्ति भी यहाँ नहीं पायी जाती- घरों में पति-पत्नी कभी बहक जाते हों, तो बात दूसरी है।

कभी–कभी सोचता हूँ, कि आखिर सोरबोन विश्वविद्यालय का कुलानुशासक कार्यालय (प्राक्टर–आफिस) छात्रों की उद्दण्ड प्रवृत्ति के घनघोर अभाव में करता क्या है? क्या यहाँ के छात्र पौरुषहीन हो गये हैं, जो इतनी शान्ति से केवल अध्ययन–अध्यापन, प्यार–मोहब्बत, नाटकों के अभिनय, पत्रिकाओं के सम्पादन–प्रकाशन अथवा फुटबाल खेलने में मगन रहते हैं? कभी–कभी याद आती है अपने लखनऊ विश्वविद्यालय के परिसर की, जहाँ हथगोलों के धमाकों का धुआँ प्राक्टर–आफिस को निरन्तर बेचैन किये रहता था, पी०ए०सी० के जवान दिन भर इधर–उधर दौड़ते हुए लाठियाँ भाँजते रहते थे। अध्यापक वहाँ अपनी देह की चिन्ता में इतने तल्लीन रहते हैं कि बेचारे पढ़ने–पढ़ाने का अवसर तक नहीं निकाल पाते हैं और छात्रसंघों के चुनावों तथा वार्षिक परीक्षाओं के समय प्रदेश भर की पुलिस का एकमात्र कार्य केवल छात्रों की निगरानी भर करना रह जाता है। पेरिस के १४ विश्वविद्यालयों में से किसी में भी पुलिस का कोई सिपाही कभी नहीं दिखा। १९६८ के बाद छात्रों ने कोई बड़ी हड़ताल नहीं की। अध्यापकों को अपनी वेतन–वृद्धि के लिए आन्दोलन नहीं करना पड़ता है। हाँ, एक रेल–सेवा (R.E.R.) के कर्मचारियों के अक्सर हड़ताल पर जाने की सूचना यहाँ मिली है। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के शान्तिपूर्ण विरोध–प्रदर्शन भी कभी–कभी दिख जाते हैं, पेंशनयाफ्ता लोग भी सामूहिक रूप में कभी–कभी अपनी समस्याओं के प्रति सरकार तथा जनता का ध्यानाकर्षण करते हैं, लेकिन तोड़–फोड़ के दृश्य देखने के प्रसंग नहीं आते। बेकारी या बेरोजगारी की समस्या यहाँ भी है, लेकिन सरकार बेकारों को बेरोजगारी भत्ता तब तक देती है, जब तक उन्हें कोई काम–धाम नहीं मिल जाता। लेकिन यह भत्ता लोगों में निष्क्रियता न उत्पन्न करे, इसलिए प्रतिवर्ष इसकी राशि भी घटती जाती है।

फ्रान्सीसी नर–नारी एक–दूसरे से बहुत मन्द और मधुर स्वर में वार्तालाप करते हैं। नमस्कार (बोंजूर) तो अपरिचितों तक से, यहाँ तक कि लिफ्ट में साथ चढ़ने या उतरनेवालों तक से किया जाता है। किसी भी परिचित व्यक्ति से मिलने पर केवल 'बोंजूर' ही नहीं, बल्कि कोमलतापूर्व 'बोंजूर मेसियो' या 'बोंजूर मादाम' अथवा 'बोंजूर मदमाजल' (नमस्कार कुमारी) कहा जाता है। विदा लेते समय 'औव्वा' (पुनर्दर्शनाय) कहने की अनिवार्यता है। इन शिष्टाचार–वाक्यों के आदान–प्रदान की अनिवार्यता सार्वजनिक कार्यालयों तथा सुपर मार्केट तक में है। दूकान के विक्रय कर्मचारी से बिना 'औव्वा' कहे कोई नहीं हटता। इन मान्यताओं का उल्लंघन करनेवाला यहाँ असभ्य माना जाता है। शिष्टाचार का यह पालन मात्र औपचारिक या रस्मनिर्वाह भर नहीं है, प्रत्युत बेहद आत्मीयता, मुस्कान और माधुर्य से संवलित होता हैं। किसी द्वार से निकलते समय, किवाड़ को लोग तब तक खुला रखने के लिए रोके रखते हैं जब तक पीछेवाला भी न पार हो जाए। बात–बात में लोग 'पादों' (क्षमा कीजिए) या 'एक्सक्यूजे मोआ' (मुझे माफ कर दीजिए) का प्रयोग करते रहते हैं। 'पादों' (क्षमस्व) का प्रयोग भीड़ में निकलने के लिए अथवा किसी बहुत छोटी भूल के सन्दर्भ में होता है, जबकि 'एक्सक्यूजे मोआ' का प्रयोग किसी को मार्ग में रोककर कुछ पूछने के

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

जरा–सा भी, किसी से उपकृत होने पर लोग अविलम्ब 'मर्सी' (धन्यवाद) शब्द का उच्चारण करते हैं। प्रोत्साहनपरक 'थ्रेबियाँ' (बहुत अच्छा) का प्रयोग भी विपुल परिमाण में होता रहता है। फ्रांसीसी भाषा को सीख रहे व्यक्ति के द्वारा गलती करने पर यहाँ कोई न तो उसका परिहास करता है और न ही हतोत्साहित करता है; वरन् उस शिक्षणार्थी को बार–बार 'थ्रेबियाँ' (बहुत अच्छा) कहकर उत्साहित किया जाता है। व्यवहार की यह परम्परा उन अधकचरे संस्कृत–पण्डितों से कितनी भिन्न प्रतीत होती है, जो 'अशुद्धं वदसि– अशुद्धं वदसि' या 'तुझे संस्कृत कभी नहीं आ सकती' की दहाड़ लगाते हुए, पीढ़ियों से, संस्कृत सीखने के लिए प्रयत्नशील लोगों को निरन्तर अनुत्साहित करने का अपराध करते रहे हैं। यही कारण है कि प्रवासी व्यक्ति भी कुछ ही महीनों में परिश्रमपूर्वक फ्रांसीसी सीखने में धीरे–धीरे समर्थ हो जाता है। फ्रान्सीसी न जाननेवाले, वह विदेशी ही क्यों न हो, को फ्रान्स में बहुत हीन–दृष्टि से देखा जाता है। आप चाहे जो हों, चाहे जहाँ से आये हों, लेकिन फ्रांसीसी के कुछ वाक्य बोलते ही फ्रान्सीसियों की आत्मीयता के आस्पद या अधिकारी बन जाते हैं। इसकी तुलना में, कितनी भिन्न स्थिति है अपने देश की जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी को न जानने वाले लोग प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति तक के पदों पर पहुँच जाते हैं, और केवल यही नहीं, वे बेशर्मी से अपने हिन्दी–अज्ञान का ढिंढोरा भी सगर्व पीटते रहते हैं। क्या ये लोग अपनी विदेश–यात्राओं में इतना भी नहीं सीखते?

कौन कहता है शाहजहाँ ने बनवाया था ताजमहल ?

– डॉ० बलराज शर्मा

महमूद गजनी से लेकर मुगल शासन काल के अंत तक इस्लाम के अनुयायी मंदिरों तथा भव्य भवनों को नष्ट करने में लगे रहे हैं। उन्होंने मंदिरों को गिराकर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया तथा भव्य भवनों को दरगाहों, आवास स्थानों या मकबरों का रूप दे दिया। न्यूयार्क की सिटी यूनिवर्सिटी के सिटी कालेज के प्रोफेसर तथा कार्बन–१४ परीक्षणों के विशेषज्ञ श्री मरविन एच. मिल्ज ने अपने शोध–पत्र में, जो उन्होंने नवम्बर ४, १९८३ में सम्पन्न हुई बैठक में पढ़ा था, यह सिद्ध किया था कि न केवल स्पेन में, बल्कि भारत में भी मुस्लिम शासनकाल में बनायी गयी इमारतें इस्लामी शासन से पहले की बनी हुई हैं। स्पेन तथा

भारत में मुस्लिम लुटेरों के रूप में आये थे। उनके पास नवनिर्माण की न तो योग्यता थी और न ही उन्हें इसकी आवश्यकता ही थी। इन देशों में उन्हें पहले से ही बना बनाया सब कुछ प्राप्त हो गया था। आवश्यकता थी तो थोड़े–बहुत परिवर्त्तन की। (इंस्टीच्यूट फार रिराईटिंग इंडियन हिस्टरी, एन्यूल नम्बर, १९८४ पृ० ८४, ८५)। ताजमहल भी एक ऐसा ही भवन था जो पहले से ही बना हुआ था। शाहजहाँ ने राजा जयसिंह से यह भवन छीन कर इसे मकबरे में परिवर्तित कर दिया। कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं :–
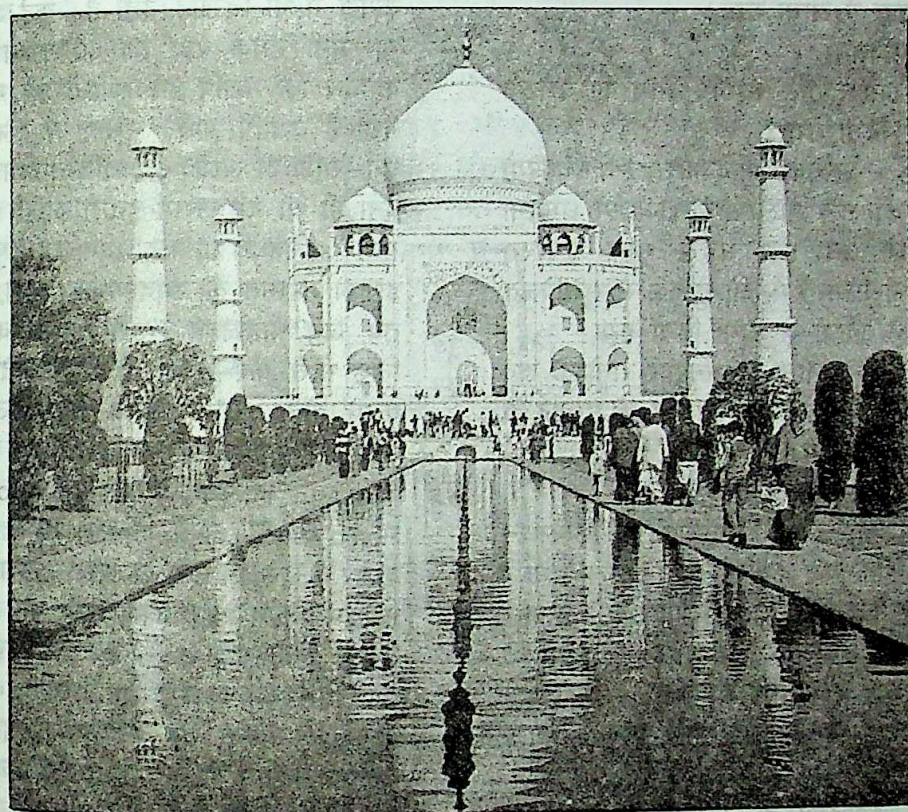
१. जहाँ मुर्दे को दफन किया जाता है, उसे रौजा या मकबरा कहा जाता है, महल नहीं। रावी के पार जहाँगीर को जहाँ दफनाया गया था, उसे जहाँगीर का मकबरा कहा जाता है। पी.एन. ओक के अनुसार ताजमहल के वर्तमान भवन का पहला नाम तेजोमहालय था। इसी का अपभ्रंश नाम ताजमहल था। आगरा के आस–पास रहने वाले भगवान शिव को तेजाजी कहते हैं। तेजा लिंग एक प्रकार का लिंग है। इस लिंग की स्थापना से इसे तेजोमहालय कहा जाता था, जो बिगड़कर ताजमहल बना।

२. शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी ने अपने बादशाहनामा नामक इतिवृत्त में, जिसमें कालक्रमानुसार घटनाओं का वर्णन है, निम्न– लिखित तथ्य अंकित किये हैं –

(क) प्रथम खण्ड, पृ० ४०२– ४०३ पंक्तियाँ २९, ३०, ३१

- **पंक्ति २९–३० का फारसी से हिन्दी अनुवाद–** उद्यान के बीच में भवन है, जिसे राजा मानसिंह का महल (मंजिल) के नाम से पुकारा जाता है, जो अब मानसिंह के पोते जयसिंह के अधिकार में है। इसे रानी, जिसका वास स्वर्ग में है, की कब्रगाह के लिए चुना गया।

पंक्ति ३३– इस भव्य महल (आली मंजिल) के बदले में उसे (जयसिंह को) सरकारी भूमि का एक खण्ड

दिया गया।

- ये पंक्तियाँ साफ बतलाती हैं कि जहाँ आज ताजमहल खड़ा है, वहाँ कोई खाली जगह नहीं थी, न ही कब्रिस्तान था; बल्कि आला मुमताज–उन जमा मंजिल था। बेगम का नाम अर्जुमंद बानो था, जिसे बाद में मुमताज महल में बदल दिया गया।
- मुमताज की मृत्यु २६.६.१६३१ ई. में बुरहानपुर में स्थित हिन्दू भवन में हुई, जहाँ उसे आसपास में स्थित प्रशाला (Pavilion) में दबा दिया गया। बादशाहनामा में दर्ज है कि शव को छह मास के बाद कब्र में से निकाल लिया गया और उसे ६०० मील दूर आगरा में लाया गया।

३५–३७ तक की पंक्तियाँ :–

पंक्ति ३५ – अगले साल स्वर्गीय बेगम का यशस्वी शव वहाँ दबा दिया गया।

पंक्ति ३६, ३७ – सरकारी आदेशानुसार कर्मचारियों ने आसमान को छूने वाले ऊँचे रौजा में धर्मात्मा रानी के शव को इस महल भव्य इमारत (इमारत–ए–आलीशान) में, जो गुम्बज से सुसज्जित थी, दुनियाँ की आँखों से छिपा दिया गया।

३. स्पष्ट है कि बादशाहनामा के अनुसार रानी के शव को मानसिंह के विशाल मंदिर प्रासाद के गुम्बज के नीचे दफना दिया गया।

इस पर कई प्रश्न उठते हैं –

१. बेगम के शव को इस्लामी कानून का उल्लंघन करके छह मास के बाद कब्र से क्यों निकाला गया? उसे बुरहानपुर में क्यों नहीं दबा दिया गया? भोपाल क्षेत्र के पुरातत्त्व अधीक्षक के जुलाई ५, १६७४ के बयान के अनुसार बुरहानपुर की कब्र को छेड़ा नहीं गया था और न ही उसमें से शव निकाला गया प्रतीत होता है।

२. लाहौरी और ट्रेवर्नियर के अनुसार शाहजहाँ ने ताजमहल का निर्माण १२ वर्ष में पूरा किया और उस पर लाहौरी के अनुसार ५० लाख और ट्रेवर्नियर के अनुसार ३ करोड़ रुपया खर्च हुआ था (वी.डी. महाजन, भारत १५२६ से आगे, पृष्ठ १७०, १६७६)। प्रश्न यह है कि बेगम का शव बुरहानपुर से छह महीने के बाद आगरा लाया जा चुका था, तो ताजमहल के निर्माण से पहले १२ वर्ष तक वह कहाँ रखा गया, इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है, जैसे ऊपर बताया गया कि बेगम का शव बुरहानपुर से निकाला ही नहीं गया था, शाहजहाँ ने यह कह कर कि वह अपनी बेगम को वहाँ दफनाना चाहता है, जयसिंह के भव्य मंदिर प्रासाद को हथियाने के लिए यह षड्यंत्र रचा था। मंदिर प्रासाद में चाँदी के दरवाजे, सोने का जँगला था। यह हीरे–मोतियों से जड़ित था। शाहजहाँ ने चालाकी से इस पर कब्जा करके इसकी अमूल्य सम्पत्ति को लूटकर अपना खजाना भर लिया।

३. औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को १६३२ ई. में लिखे पत्र में सूचना दी थी कि ताजमहल का गुम्बज दो स्थानों से रिस रहा है तथा अर्ध–गुम्बजीय मेहराबें एवं दूसरी मंजिल के कई बरामदों में दरारें आ गयी हैं। ये दरारें चार छोटे–छोटे गुम्बजों तथा उत्तरी कमरों में भी दिखाई देती हैं। कई अन्य स्थानों से भी पानी टपक रहा है। औरंगजेब ने यह स्पष्ट कहकर कि यद्यपि इन स्थानों की मरम्मत कर दी गयी है तथापि अधिक सुरक्षा के लिए और अधिक धन–राशि दी जाये। अब यदि ताजमहल अभी–अभी बना ही था, तो उसमें इतनी जल्दी दरारें कैसे आ गयीं? (निश्चय ही यह भवन बहुत पुराना था, अतः इसकी मरम्मत की आवश्यकता पड़ी, विशेष रूप से तब, जब शाहजहाँ ने इसे मकबरे का रूप देने के लिए भारी फेर–बदल किया।) यदि कारीगरों का कसूर होता, तो औरंगजेब अवश्य उन्हें सजा देता और इस बात का वर्णन करता।

४. डॉ० इवन विलियम्ज Director, Brooklin College Radio Active Laboratory ने यमुना तट के उत्तरी कुहार के दरवाजे की लकड़ी के टुकड़े का कार्बन–१४ परीक्षण किया था। उससे यह पता चला कि उस टुकड़े का समय १३५६ ई० के आस–पास होगा। ताजमहल का निर्माण तो १६३८ ई० के आसपास हुआ था। किन्तु यह परीक्षण सिद्ध करता है कि ताजमहल कम से कम शाहजहाँ के काल से २०० वर्ष पूर्व विद्यमान था।

५. ई. बी. हैवल (E.B.Havell) के अनुसार ताज रत्नजटित हिन्दू–मंदिर था; क्योंकि ताज में मकबरे की कोई विशेषताएँ नहीं हैं। नाग और त्रिशूल, जो इस पर उत्कीर्ण हैं, इसे शिव–मंदिर सिद्ध करते हैं। स्थान–स्थान पर हिन्दू–स्थापत्य–कला की निशानियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो इस्लामी कानून के अनुसार निषिद्ध हैं।

६. पुरातत्त्व–विभाग के एक पत्र में यह तथ्य पुष्ट किया गया है कि ताजमहल एक सात मंजिली इमारत है। यदि यह सत्य है, तो सभी मंजिलें क्यों नहीं दिखाई

जातीं ? इससे स्पष्ट है कि शेष मंजिलों में खंडित मूर्तियाँ तथा प्रमाण छिपाकर रखे गये हैं, ताकि वास्तविकता का पता न चले।

७. तुर्की के विद्वान् अलिओजवीरेन (Aliozverain) मानते हैं कि उनके देश के विद्यालयों में पढ़ाया जाता है कि ताज मूल रूप में हिन्दू–मंदिर था, जिसे शाहजहाँ ने मकबरे में परिवर्तित कर दिया।

८. पीटर मुण्डी (Peter Mundy) नामक अंग्रेज १.१.१६३१ से १७.१२.१६३१ तक तथा १६.१.१६३२ से ६.८.१६३२ तक आगरा में था और फिर २२.१२.१६३२ से २५.२ १६३३ तक वह आगरा में रहा। उसने वर्णन किया है कि मकबरे के इर्द–गिर्द सोने का जंगला है तथा ताज एक भव्य–भवन है। अतः यह कहना कि ताजमहल का निर्माण १६३२ ई० में शुरू हुआ था, ठीक नहीं; क्योंकि प्रासाद–मन्दिर को ही मकबरे का रूप दे दिया गया था।

९. ताजमहल एक गढ़ जैसा राजभवन–युक्त मन्दिर–समूह है, जिसने यमुना के दक्षिणी तट पर ४३ एकड़ जगह घेरी हुई है। इसमें कई भवन हैं, (जिनमें से कुछ गिराये जा चुके हैं) जैसे २ नक्कारखाने, एक मस्जिद, एक सातमंजिला इमारत, मध्य में स्थित चार मंजिलों वाला संगमरमर का भवन, आमोद–प्रमोद के स्थान, ४०० से ५०० तक कमरे, अस्तबल, नौकर चाकरों के कमरे, पहरेदारों के रहने के स्थान और १०० गउओं के लिए गऊशाला। ये सारे भवन आदि सिद्ध करते हैं कि ताजमहल पहले मकबरा नहीं था; क्योंकि मकबरों में गऊशाला नहीं होती। शाहजहाँ ने कई सौ कमरे

दूध व दही की नदियाँ बहें यहाँ फिर से

– सुरेश गिरि 'प्रखर'

आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये,
उजड़ी छत टूटी दीवारों को सुधारा जाये।

देवता स्वर्ग से आकर यहाँ ठहरते थे;
लोग पहले इसे सोने का महल कहते थे,
उसी साँचे में दुबारा इसे ढाला जाये;
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।।

बड़ा वीरान है श्मशान नजर आता है;
एक पल भी न ठहरना यहाँ सुहाता है।
ऐसे अभिशाप से फिर इसको उबारा जाये;
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।।

मकड़ियों और कीड़ों ने आसन यहाँ जमाया है;
धूल की पर्तों ने इसको मलिन बनाया है।
धो व पोंछ कर फिर इसको निखारा जाये;
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।।

लोग इस वक्त जो इस घर में रहा करते हैं।
जाति, भाषा के नाम पर सब लड़ा करते हैं।।
इनका मतभेद इनके दिल से निकाला जाये।
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।।

एक परिवार हैं ये इनको सिखाना होगा।
भेद का भाव इनके दिल से मिटाना होगा।
कलह का भूत इनके सिर से उतारा जाये।
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।

भूलकर ऊँच–नीच लोग रहें मिल–जुलकर।
प्रगति सदा करें सद्भावना का पथ चुनकर।।
पाठ राष्ट्रभक्ति का इन्हें फिर से पढ़ाया जाये।
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।।

दूध व दही की नदियाँ बहें यहाँ फिर से।
आदमी देवता बनकर रहे यहाँ फिर से।।
सोया सद्भाव फिर जन–जन में उभारा जाये।
आओ इस घर को फिर एक बार सँवारा जाये।।

– भारत अर्थ मूवर्स लिमिटेड, पो०बा० ५, सिंगरौली–४८६८८६
जिला–सीधी (मध्य प्रदेश)

जल्दी–जल्दी में चिनवा दिये थे। कुछ शौचघर भी थे, जो बन्द कर दिए गये थे। निश्चय ही मुर्दों को शौचघरों की आवश्यकता नहीं होती।

१०. ताज में बुर्ज (Towers) हैं; परन्तु मीनार नहीं। मुसलमानी मीनार भवन के स्कंध (Shoulders) से शुरू होते हैं, जबकि हिन्दुओं के बुर्ज भू–पृष्ठ (Floor Level) से शुरू होते हैं। बुर्जों में सीढ़ियाँ अन्दर से होती हैं, जबकि मीनारों में बाहर से होती हैं। ताज का बाह्य द्वार कीलों से जटित है; क्योंकि सुरक्षा की दृष्टि से ऐसा आवश्यक था; परन्तु मकबरों में आक्रमण का डर न होने से ऐसा आवश्यक नहीं है। गुम्बज का निर्माण भी हिन्दू शिल्प–शास्त्र के अनुसार है। मकबरों में गुम्बज की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि गुम्बज में आवाज गूँजती है, जिससे वहाँ की शान्ति भंग होती है। स्पष्ट है कि ताजमहल प्रासाद–मन्दिर–समूह था, जिसे शाहजहाँ ने जयसिंह से छीना था।

ताजमहल के विषय में कई कपोल–कल्पनाएँ और भ्रान्तियाँ फैलायी गयी हैं, जिनमें से एक यह भी है कि ताजमहल में मीनाकारी और पच्चीकारी के काम के लिए इटली से कारीगर मँगवाए गये थे तथा यूरोप के कारीगरों की सहायता ली गयी थी। हैवेल (Hevell) के अनुसार पाइट्रो–ड्यूरो (Pietro-Duro) का प्रचलन तो उस समय फलोरेंस (Florence) में था; परन्तु लाल इन्द्रगोप तथा गोमेद की जड़ाई का काम भारत की कला है, जिसका नमूना १५वीं शती के राजस्थानी जैन मंदिर में कर्नल टाड ने देखा है। हैवेल हिन्दू शिल्पशास्त्र का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि गुम्बद बनाने की कला भी हिन्दू शिल्पियों द्वारा ही विकसित की गई थी। अतः ताज के गुम्बद समरकन्द के गुम्बदों की नकल नहीं हैं, बल्कि हिन्दुओं के पंच–रत्न (Five Jewels) शैली के अनुसार हैं (Hohn Kea, India Discovered; The Achievement of the Brithsh Raj; p-167, Wind ward, London, 1981)।

ये सारे भ्रम अंग्रेजों द्वारा जानबूझ कर फैलाये गये थे। उनका उद्देश्य था यह दिखाना कि महाभारत काल से लेकर मुसलमानों के आने तक हिन्दुओं ने कोई भी उच्च–कोटि के भवन निर्माण नहीं किये। जो कुछ बनाया गया था, वह बौद्धों या जैनियों (जैसे कि वे हिन्दू नहीं थे) अथवा मुसलमानों ने बनाया था। वे यह भूल गये कि मुसलमानों के पास तो शिल्पशास्त्र का एक भी ग्रन्थ नहीं था। इस षड्यंत्र का सूत्रधार था भारत के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India- ASI) का प्रथम डायरेक्टर जनरल– एलक्स कनिंघम (Alex Cunningham) 1871-1885। जैम्स फर्गुसन ने भारतीय पुरातत्त्व में तथा 'पायोनियर' नामक दैनिक पत्र (जुलाई १०, १८९५) में साफ लिखा है, कनिंघम ने जो कुछ भी काम किया है, वह सारहीन है, उसके लिए सरकार को शर्म आनी चाहिए। परन्तु ब्रिटिश राज की नींव को दृढ़ करने के लिए उसने ब्राह्मणों के खिलाफ अब्राह्मणों को, बौद्धों के खिलाफ बौद्धधर्म के विरोधियों को एवं हिन्दुओं के खिलाफ मुसलमानों को भड़काया। उसका माध्यम था पुरातत्त्व की मनमानी व्याख्या। उसने १५.९.१८४२ में कर्नल साइकेस (Col. Siokes) को लिखे पत्र में अपने मंतव्य को स्पष्ट किया है। वह लिखता है कि– 'गुफाओं और स्तूपों का सर्वेक्षण ब्रिटिश सरकार के लिए राजनीतिक दृष्टि से तथा ब्रिटिश जनता के लिए धार्मिक दृष्टि से उपयोगी होगा। इससे पता चलेगा कि भारत प्रायः छोटे–छोटे राजवाड़ों में बँटा हुआ था। ब्रिटिश जनता को इससे पता चलेगा कि ब्राह्मणवाद अपेक्षाकृत नवीन है, जिसमें बढ़ोत्तरी तथा बदलाव होते रहे हैं। जिससे सिद्ध होता है कि ईसाई धर्म की स्थापना यहाँ अंत में अवश्य होगी।' (JORAS, LONDON, 1843, A.D.)। कनिंघम ने ही कूटनीति के कारण यह प्रवाद फैलाया कि ताजमहल शाहजहाँ की देन है। ❑

– (स०वि०से०, चण्डीगढ़)

यदि आप हिन्दू धर्म को छोड़ देते हैं तो आप अपनी भारतमाता के हृदय में छुरा भोंकते हैं। यदि भारतमाता के जीवन–रक्त–स्वरूप हिन्दू धर्म निकल जाता है, तो माता गतप्राण होगी। आर्य जाति की यह माता, यह पदभ्रष्ट जगत् सम्राज्ञी पहले ही आहत क्षत–विक्षत, विजित और अवनत हुई है; किन्तु धर्म उसे जीवित रखे हुए है अन्यथा उसकी गणना भूतों में हुई होती। यदि आप अपने भविष्य को मूल्यवान् समझते हैं, अपनी मातृभूमि पर प्रेम करते हैं, तो अपने प्राचीन धर्म पर अपनी पकड़ छोड़िये नहीं; उस निष्ठा से च्युत न होइये, जिस पर भारत का प्राण निर्भर है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म की रक्त–वाहिनियाँ ऐसी शुद्ध, ऐसी अमूल्य नहीं हैं, जिनमें आध्यात्मिक जीवन का रक्त प्रवाहित किया जा सके।

मैं आपको यह कार्य भार सौंप रही हूँ, हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठावान् रहो, वही आपका सच्चा जीवन है। कोई धर्म भ्रष्ट कलंकित हाथ आपको सौंपी गयी इस पवित्र धरोहर को स्पर्श न कर सके।

- डॉ० एनी बीसेण्ट

जिन्होंने अपने भाई के नाम का सिक्का चलाया था-क्रान्तिवीर अमर सिंह

– डा० श्रीकृष्ण सिंह सोंढ़

बिहार अनेक महान् विभूतियों की जन्मभूमि व कर्मभूमि रहा है। ऐसे ही थे १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के दो योद्धा बाबू कुँवर सिंह एवं उनके अनुज बाबू अमर सिंह। जगदीशपुर राज (अरण्य जनपद बाद में शाहाबाद जिला अन्तर्गत) के जमींदार राजा साहबजादा सिंह के तीन पुत्र कुँअर सिंह, दयाल सिंह एवं अमर सिंह हुए। बाबू कुँअर सिंह जगदीशपुर के शासक हुए और दयाल सिंह को दलीपपुर व अमर सिंह को मिठहाँ (मैठिलागढ़) की जागीर मिली। जहाँ दयाल सिंह अंग्रेजों के खैरख्वाह हो गये, वहीं अमरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध बाबू कुँवर सिंह का पूरा साथ दिया। वे १० मई १८५७ ई० से २६ अप्रैल १८५८ ई० तक हर अभियान में बाबू कुँवर सिंह के साथ रहे। २२ अप्रैल १८५८ ई० को विजेता के रूप में उन्होंने कुँअर सिंह के साथ जगदीशपुर में प्रवेश किया और २३ अप्रैल को स्वतन्त्रता का अपना भगवा ध्वज तथा सब द्वारा स्वीकृत हरे परचम को गढ़ पर फहराया। २६ अप्रैल १८५८ ई० को जब कुँवर सिंह ने महाप्रयाण किया, तब शासन की बागडोर सहित क्रान्ति की मशाल उन्होंने अमर सिंह के हाथों थमा दी।

अमर सिंह ने अंग्रेजों से आरा, बिहिया, गया, हेमतपुर, दलीपपुर छीना। सेनापति लुगार्ड ने लज्जा से १५ जून १८५८ ई० को इस्तीफा दे दिया और इंग्लैंड चला गया। बाद में अंग्रेजों ने मेजर अयर के नेतृत्व में भारी सैन्य बल एवं बक्सर के भारी तोपखाना की मदद से जगदीशपुर को जीता। अमर सिंह घेरे को तोड़कर निकल जाने में सफल हो गये। गढ़ की १५४ क्षत्राणियों ने अपने को तोप के सामने खड़ा कर उड़वा लिया। इसे ही जगदीशपुर–बिहार का जौहर कहते हैं।

अंग्रेजों ने बाबू कुँवर सिंह के पूर्वजों के रिहायशी निवास दलीपपुर, जहाँ उनके भाई दयाल सिंह रहते थे, पर भी गोलाबारी की थी। इसके बाद जगदीशपुर व मिठहाँ की जमींदारी अंग्रेजों ने समाप्त कर अपने अधिकार में कर ली। चूँकि डुमराँव ने कोई गतिविधि नहीं दिखाई थी, अतः उसे देशी रियासत के रूप में रहने दिया।

अमर सिंह ने तब गया में शासन–केन्द्र बनाया और बहुत काल तक अंग्रेजों की आँखों की किरकिरी बने रहे। अमर सिंह की क्रान्तिकारी सरकार बहुत ही व्यवस्थित रूप से चालू की गयी थी। न्याय विभाग में फौजदारी और दीवानी दोनों तरह के मुकदमे होते थे। परवाने या दरख्वास्त के ऊपर धर्म और ईश्वर तथा न्याय के नाम पर साक्षी के वाक्य उद्धृत रहते थे। एक अदालत आम भी खोली गई थी, जिसके चार सदस्य थे– शंकर मिश्र, मुलुक सिंह, द्वारिका माली और मंगल सिंह। अमर सिंह ने अपने समय में सिक्का भी चलाया था, जिस पर खुदा हुआ था– "सिक्के जदशाह कुँवर सिंह दर वेलायत कम्पनी"। सेना विभाग का सञ्चालन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया था। अमर सिंह की सेना में साढ़े चार हजार सैनिक थे। इनकी टुकड़ियों के नाम भी उन्हीं स्थानों के नाम पर रखे गये थे, जहाँ की रक्षा या युद्ध का भार उन पर छोड़ा गया था। इस क्रान्तिकारी सरकार को जनता 'अमर सिंह की नवाबी' कहकर पुकारा करती थी।

अन्ततः अंग्रेजी सरकार की भारी घेराबन्दी एवं पूरे सैन्य–बल एवं आधुनिकतम हथियारों के साथ आक्रमण के कारण अमर सिंह को बिहार छोड़ना पड़ा। फिर वे अपनी सेना के साथ नेपाल में नाना साहब के पास पहुँचे और उनकी सेना में अपनी सेना को मिला दिया; किन्तु नेपाल के तत्कालीन प्रधानमन्त्री राणा जंग बहादुर ने इनकी सहायता करने का वचन देकर बड़ी चालाकी से अपने कब्जे में कर लिया और अंग्रजों के हवाले कर दिया।

अमर सिंह को गोरखपुर जेल में बन्द कर दिया गया। भगवान् बिरसा मुण्डा की ही तरह इन्हें भी अतिसार का रोगी घोषित कर ३ जनवरी १८५८ ई० को जेल अस्पताल में भर्ती किया गया, जहाँ नवम्बर १८११ ई० में जन्मे इस क्रान्तिवीर का ५ फरवरी १८५६ ई० को मात्र ४७ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया।

☆

– चित्तरपुर– ८२५१०१, रामगढ़ (हजारीबाग)
छोटानागपुर (वनांचल) बिहार

(पृष्ठ २८ का शेष) नाव लड़खड़ाती तो है...

लिए अथवा अपेक्षाकृत बड़े प्रमाद के सन्दर्भ में होता है। जरा-सा भी, किसी से उपकृत होने पर लोग अविलम्ब 'मर्सी' (धन्यवाद) शब्द का उच्चारण करते हैं। प्रोत्साहनपरक 'थ्रेबियाँ' (बहुत अच्छा) का प्रयोग भी विपुल परिमाण में होता रहता है। फ्रांसीसी भाषा को सीख रहे व्यक्ति के द्वारा गलती करने पर यहाँ कोई न तो उसका परिहास करता है और न ही हतोत्साहित करता है; वरन् उस शिक्षणार्थी को बार-बार 'थ्रेबियाँ' (बहुत अच्छा) कहकर उत्साहित किया जाता है। व्यवहार की यह परम्परा उन अधकचरे संस्कृत-पण्डितों से कितनी भिन्न प्रतीत होती है, जो **'अशुद्धं वदसि- अशुद्धं वदसि'** या **'तुझे संस्कृत कभी नहीं आ सकती'** की दहाड़ लगाते हुए, पीढ़ियों से, संस्कृत सीखने के लिए प्रयत्नशील लोगों को निरन्तर अनुत्साहित करने का अपराध करते रहे हैं। यही कारण है कि प्रवासी व्यक्ति भी कुछ ही महीनों में परिश्रमपूर्वक फ्रांसीसी सीखने में धीरे-धीरे समर्थ हो जाता है। फ्रान्सीसी न जाननेवाले, वह विदेशी ही क्यों न हो, को फ्रान्स में बहुत हीन-दृष्टि से देखा जाता है। आप चाहे जो हों, चाहे जहाँ से आये हों, लेकिन फ्रांसीसी के कुछ वाक्य बोलते ही फ्रान्सीसियों की आत्मीयता के आस्पद या अधिकारी बन जाते हैं। इसकी तुलना में कितनी भिन्न स्थिति है अपने देश की, जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी को न जानने वाले लोग प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति तक के पदों पर पहुँच जाते हैं, और केवल यही नहीं, वे बेशर्मी से अपने हिन्दी- अज्ञान का ढिंढोरा भी सगर्व पीटते रहते हैं। क्या ये लोग अपनी विदेश-यात्राओं में इतना भी नहीं सीखते ?

हिन्दी या संस्कृत की तुलना में फ्रांसीसी भाषा कुछ अधिक ही कठिन है। इसके व्याकरण के विभिन्न अंगों पर संस्कृत का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। क्रियापादों के रूप तो संस्कृत के तिङन्त-प्रकरण से कम जटिल नहीं हैं, उच्चारित और लिखित रूपों में भी भारी अन्तर है, सन्धियाँ भी इसे दुरूह बना देती हैं, लेकिन फ्रांसीसियों के स्वभाषा-प्रेम का आग्रहभरा इन्द्रजाल इतना मोहक और सबल है कि फ्रान्स में पाँव रखते ही लोग फ्रांसीसी सीखने के काम को प्रथम वरीयता देते हैं। फ्रांसीसी सुदीर्घकाल से राजनयिक व्यवहार की भाषा तो रही ही है, संयुक्त-राष्ट्र-संघ की पाँच भाषाओं के मध्य भी प्रतिष्ठित है- यद्यपि इसके बोलने वालों की संख्या आज हिन्दी की अपेक्षा वास्तविक रूप से कम है।

ये बातें देखने में यद्यपि छोटी-छोटी ही हैं, लेकिन इन्होंने ही उस सुदृढ़ नींव का निर्माण किया है, जिसके बल पर छह करोड़ से भी कम जनसंख्या वाला यह देश आज चट्टान की तरह मजबूती से, विकसित राष्ट्रों की प्रथम पंक्ति में, सम्मान के साथ तनकर खड़ा है। सबके साथ मित्रता का समस्तरीय सम्बन्ध बनाये रखने पर भी इसे न तो किसी शक्ति-सम्पन्न देश की दादागिरी का खौफ है और न तेल की तिजारत से अमीर बने देशों की सकीर्ण साम्प्रदायिकता पर आधारित धौंस-पट्टी की ही चिन्ता है। अपने ही बल पर निरन्तर प्रगति के मानकों को निर्माण करता हुआ यह देश आज यूरोपीय राष्ट्रों की राजनीति में शिरोमणि बनता जा रहा है। एक जनवरी १९९९ से यूरोपीय राष्ट्रों की एकता और भी मजबूत दिखने लगी है, जब इंग्लैण्ड को छोड़कर अन्य सभी यूरोपीय देशों में 'यूरो' नाम की एक ही मुद्रा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया है। क्या विभिन्न एशियायी देशों के मध्य भी परस्पर इसी प्रकार की सहमति का विकास कभी सम्भव हो पायेगा ?...

– अतिथि आचार्य, सोरबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस

राजेन्द्र निगम 'अश्रु' की दो कविताएँ

कुर्सी खींच दंगल

भारत में कुछ दिनों से,
लगा रहे हैं होड़,
कुर्सी खींचम-खींच के,
पहलवान बेजोड़।
पहलवान बेजोड़
बैठने को संसद् में,
कसते नित्य लँगोट,
सियासत के दंगल में।
राजनीति में आज हुई,
इतनी कडुवाहट,
कल क्या होगा-
जन-जन में है यह घबराहट।

दूध के धोये

भाषण में
वायदे समेटकर,
सत्य और
त्याग लपेटकर,
उन्होंने मंच से कहा-
भारत में हमने
स्थिर-शासन के बीज बोये हैं,
सिर्फ
हमारी पार्टी विश्वसनीय है,
और केवल हम दूध के धोये हैं।

– कावसजी वार्ड, कटनी-४८३५०१

गांधी जी को वायसराय की जान की चिन्ता

- वचनेश त्रिपाठी

चन्द्र शेखर आजाद के क्रांतिकारी साथियों ने जब– अंग्रेज वायसराय लार्ड इरविन की ट्रेन को बम और डायनामाइट से उड़ा देने की प्रचेष्टा की, यद्यपि एक पूरी बोगी ध्वस्त होने के बाद भी वायसराय बच गया, तो उस अवसर पर गांधी जी ने इरविन की जान बचने के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और 'लाहौर–कांग्रेस' में इस काण्ड के क्रांतिकारियों के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसमें गांधी जी ने क्रांतिकारियों को जो कुछ बुरा–भला कहा, वह तो कहा ही परन्तु उन्हीं के एक समर्थक कांग्रेसी भक्त ने 'लाहौर–कांग्रेस' में अहिंसावाद के नशे में क्रांतिकारियों को **"Scoundrels and cowards" 'शोहदे और कायर'** तक कहने की नीचता कर डाली और वहाँ मौजूद किसी कांग्रेसी ने उसको लताड़ा नहीं– फिर भी जब इस पर मतदान हुआ, तो कुल १७१३ कांग्रेस–प्रतिनिधियों की उस सभा में केवल ८१ मतों की अधिकता से गांधी जी का प्रस्ताव पारित हो सका, वह भी तब, जब उस सभा में गांधी जी के प्रस्ताव के पक्ष में यहाँ तक वकालत की गई कि 'गांधी जी देश का नेतृत्व नहीं करेंगे, यदि उनका यह प्रस्ताव पारित न हुआ..., इस प्रस्ताव का गिर जाना देश की बदकिस्मती होगी' इस प्रकार की धमकी तथा दुहाई दी गई क्रांतिकारियों के इस निन्दा–प्रस्ताव को पारित कराने में। जितने कम बहुमत से यह प्रस्ताव पारित किया जा सका, उससे गांधी जी के बड़े–बड़े भक्तों के दिल हिल गये और कई निष्पक्ष नेताओं ने कह डाला कि 'गांधी जी के इस निन्दा–प्रस्ताव की विजय वास्तव में पराजय का प्रमाण है।' उस 'लाहौर–कांग्रेस' में या कि अधिवेशन में प्रवेश केवल अहिंसावादियों तक ही सीमित था– वहाँ गांधीजी के उक्त प्रस्ताव का इतने अल्प बहुमत में पारित होना स्वयं गांधी जी के लिए भी सन्तोष का कारण नहीं समझा जा सकता था।' यह प्रस्ताव छपा 'कल्ट ऑफ दि बम' **"Cult of the Bomb"** अर्थात् **'बम का पन्थ'** के नाम से। अनन्तर क्रांतिकारियों की ओर से इसका उत्तर दिया गया **"Philosophy of the Bomb"** ('बम का दर्शन या सिद्धान्त') और इसके लिए एक पर्चा छपवाना तय हुआ, उसे 'गणतन्त्र–दिवस', २६ जनवरी के दिन पूरे देश में वितरित करने का निश्चय किया गया।

गांधीजी के आरोपों के उत्तर वाला पर्चा

क्रांतिकारी दल 'एच.एस.आर.ए.' ('हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन') की ओर से गांधी जी के आक्षेपों ('कल्ट आफ दि बम') का उत्तर जब लिखा जा रहा था, तो वहाँ दल के सैनिक विभाग के प्रमुख चन्द्रशेखर आजाद भी मौजूद थे, अन्य साथियों में भगवती चरण बोहरा उर्फ बापू भाई (दुर्गा भाभी के पति), यशपाल (बाद में साहित्यकार), इन्द्रपाल (आनन्द स्वरूप), शिव वर्मा भी वहाँ थे। पर्चा (उत्तर) लिखा था भगवती चरण बोहरा ने और वही अब आजाद को सुनाने बैठे, वे अलग एक एकांत कमरे में बैठकर उसे लिखकर लाये थे। गांधीजी के आक्षेपात्मक लेख 'कल्ट ऑफ दि बम' के उत्तर में लिखे गये। 'फिलासफी आफ दि बम' को भगवती चरण बोहरा ने अंग्रेजी में लिखा था और आजाद वह अंग्रेजी समझ पाने में अक्षम थे, अतः भगवती भाई साथ–साथ हिन्दी में उसका अनुवाद भी करते चले। साथी इन्द्रपाल भी अंग्रेजी नहीं जानते थे। आजाद ने टोका, उनसे कहा–. 'अंग्रेजी सीख लो' और इन्द्रपाल ने मुझसे एक दिन कहा था कि 'वचनेश! भैया (आजाद) का यह आदेश (अंग्रेजी सीखने का) मैं जेल में कैद रहते ही पालन कर सका।' इन्द्रपाल ने ही मुझे यह सब ब्योरा भी बताया था। क्रांतिकारी इन्द्रपाल बहुत दिनों तक अपने छद्म

नाम "साधु आनन्द मोहन" नाम से ही जाने जाते थे। उन दिनों उन पर सच ही वैराग्य का नशा चढ़ा था। आजाद जब वहाँ आये, तो इन्द्रपाल तो तत्काल उन्हें पहचान गये, फिर यशपाल ने आजाद को बताया कि "ये हैं 'आनन्द स्वरूप', जो हमारा यह पर्चा बाँटने के लिए पंजाब ले जायेंगे। "तब आजाद ने कहा, "अच्छा! कौन वह साधू?" यशपाल ने बताया, हाँ वही"। आजाद बोले, "खूब!" वस्तुतः वायसराय की स्पेशल के नीचे बम रखने के मामले में इन्द्रपाल ('आनन्द मोहन') शामिल रहे थे, जिसका अर्थ था कि वे दल के कोई उत्तरादायी व्यक्ति हैं अर्थात् उनसे कुछ भी छिपाना, गोप्य रखना जरूरी नहीं। और तब इन्द्रपाल कुछ देर आदर–भाव से आजाद को आपाद मस्तक निहारते रहे थे। अस्तु, अब जब भगवती भाई ने वह लिखित उत्तर ("बम का दर्शन") सुनाना शुरू किया, तो सभी साथी उसे ध्यान से सुनते जाते थे और बीच–बीच में 'अपनी उस पर राय भी प्रकट करते जाते थे। यशपाल के सुझाव पर उसमें ये पंक्तियाँ जोड़ी गईं, "Terrorism is not complete Revolution and revolution can not be complete without Terrorism," अर्थात् "आतंकवाद ही पूर्ण–क्रांति नहीं और क्रांति के लिए आतंक अनिवार्य है"। उन दिनों ""आतंकवाद शब्द आज की भाँति लांछित शब्द न था; क्योंकि तब इसके अर्थ थे, "देश के शत्रुओं को समाप्त करना"। इसके बाद उसमें ये पंक्तियाँ भी जुड़वाई गईं, "Terrorism will develop into revolution and the revolution into independence-social, political and economic", अर्थात् "आतंक क्रांति का रूप धारण कर लेगा और इस क्रांति का परिणाम होगा आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता।" इस उत्तर में भूमिका रूप में कांग्रेस के विषय में यह भी लिखा गया कि "कांग्रेस ने अपना उद्देश्य स्वराज्य के स्थान पर मुकम्मिल आजादी स्वीकार किया है, इसलिए स्वाभाविक तौर पर यह आशा की जा सकती थी कि वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध–घोषणा करेगी, किन्तु बजाय इसके हम आज कांग्रेस को क्रांतिकारियों के ही विरुद्ध युद्ध–घोषणा करते हुए देखते हैं।" इसी के साथ ये पंक्तियाँ भी थीं कि, "In a way Gandhi deserves our thanks for having brought the question up for discussion and thus having shown to the world at large that even the Congress, that stronghold of non-violence is at least as much if not more, with the revolutionaries than with him...." अर्थात् "एक प्रकार से गांधी जी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रश्न को उठाया और संसार को दिखा दिया कि अहिंसा के गढ़ कांग्रेस में भी यदि अधिक नहीं तो, कम से कम उतना ही समर्थन हम क्रांतिकारियों को भी प्राप्त है जितना कि गांधी जी को।"

जो उत्तर आजाद ने जुड़वाया...

जब भगवती भाई "फिलासफी ऑफ दि बम" शीर्षक से यह उत्तर सुना चुके, तो आजाद ने तत्काल उनका ध्यान इस बात की ओर दिलाया कि "गांधीजी ने जनता और समाचार पत्रों को भ्रम में डालने के लिए कई बार कहा है कि, "इस देश का विश्वास केवल सत्याग्रह पर ही है (यद्यपि वहीं गांधी जी यह भी कह रहे हैं कि 'देश सत्याग्रह के

खुद को मोम किया तो पाया...

– कमल किशोर 'भावुक'

अभिशापों का स्वप्न सँजोना, कुछ अजीब सा लगता है।
विषधर का संन्यासी होना, कुछ अजीब–सा लगता है।

जहाँ फूल भी पत्थरदिल हैं उस पत्थर की दुनिया का–
विह्वल होकर आँख भिगोना, कुछ अजीब–सा लगता है।

खुद को मोम किया तो पाया सिर पर जलती आग मिली,
प्रकृति–नटी का जादू–टोना, कुछ अजीब–सा लगता है।

माँ ने भरे हृदय से भेजा रोजी–रोटी की खातिर,
मन ही मन वह माँ का रोना, कुछ अजीब–सा लगता है।

अपने हाथों नाश कराने पर आमादा हैं फसलें,
मौसम का कुण्ठाएँ बोना, कुछ अजीब–सा लगता है।

माना दर्द बहुत है लेकिन सगे बनें मुस्कानों के,
पलकों–पलकों आँसू ढोना, कुछ अजीब–सा लगता है।

तुमने ही तो सरगम चुनकर शब्द दिये सन्नाटों को,
कलम! तुम्हारा रोना–धोना, कुछ अजीब–सा लगता है।

– 'कान्ति–कुञ्ज', ११ बुद्ध–विहार, आलमनगर
रिलवे स्टेशन के सामने, हनुमान मंदिर के पीछे),
लखनऊ–२२६०१७

लिए तैयार नहीं')– अतः आजाद ने कहा, इस पर्च (उत्तर) में जो मैं लिखवाता हूँ, वह भी लिखकर जोड़ दो और फिर वे लिखवाने लगे कि, "गांधी जी का विचार है कि उनका यह विश्वास कि भारत की जनता शक्ति के प्रयोग में विश्वास नहीं रखती", ठीक है और सत्याग्रह पूर्ण रूप से राजनीतिक शस्त्र के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। उन्हें अपने हाल ही में किये गये ग्रामों के दौरे से धोखा नहीं खाना चाहिए। हालाँकि यह ठीक है कि साधारणतः नेताओं के दौरों की हद वहीं तक होती, जहाँ तक रेलगाड़ी उन्हें ले जाती है। गांधी जी ने इसमें इतनी वृद्धि जरूर की है कि अपने दौरे की सीमा वहाँ तक बढ़ा दी है कि जहाँ तक मोटर उन्हें ले जा सके– किन्तु सदैव धनी लोगों के यहाँ ठहरना और अपने समय का अधिक भाग अपने भक्तों और अपने पुजारियों तथा कभी–कभी अशिक्षित एवं भोली जनता, जिनके 'विश्वास' को समझने का दावा गांधी जी करते हैं– को दर्शन दे देना उनके इस दावे की कमजोरी को प्रकट कर देता है कि वे सर्वसाधारण जनता के विश्वास और इच्छा को भली प्रकार समझते हैं। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि किसी खास विषय में जनता के सामने उसने क्या विचार रखे! **क्या पिछले कुछ वर्षों गांधीजी ने जनता के सामाजिक जीवन में भाग लिया है? क्या किसी रात किसानों के साथ अलाव पर बैठकर उन्होंने यह जानने की कोशिश की है कि वे किसान क्या चाहते हैं? और क्या समझते हैं? क्या एक रात भी गांधी जी ने कारखाने के मजदूरों के दुःख पूर्ण जीवन का स्वाद चखा है? पर हमने यह सब किया है। इस लिए हम इस बात को जानने का दावा करते हैं।** "आजाद के ये उद्गार उस समय सभी साथियों को बहुत अच्छे लगे थे। स्वयं इन्द्रपाल ने "साधु आनन्द मोहन" के रूप में ग्रामों में जाकर ये सब अनुभव प्राप्त किये थे। और आजाद तो एक लम्बे समय से फरार रहकर अतीव विषम दिन गुजार रहे थे। अतः उनका यह चिन्तन सच ही इस विषय में गांधी जी द्वारा लोगों को दर्शन देकर उनके मन की बात बूझ लेने से कहीं अधिक भरोसे लायक था। क्रांतिकारियों का यह दावा था कि सर्वसामान्य जनता, किसानों या श्रमिकों के हाथ में शक्ति होती और देश के भाग्य का निर्णय उन्हीं के हाथ होता, तो "लाहौर–कांग्रेस" में गांधी जी को प्रस्ताव पारित कराने की नौबत ही नहीं आती। गांधी जी के "कल्ट ऑफ दि बम" के उत्तर में २६ जनवरी को पूरे देश में यह पर्चा ("फिलासफी आफ दि बम") इसलिए भी वितरित किया जाना था कि वे लोग जो क्रांतिकारियों को सिर्फ "भावुक", और "जोश में पागल" समझ बैठे थे, उनकी आँखें खुलें और वे क्रांतिकारियों की भावना का वास्तविक रूप समझ सकें। वस्तुतः जो समालोचक दृष्टि लोगों को ग्रन्थों के गूढ़ अध्ययन–अनुशीलन से प्राप्त हो सकती है– उसी की एक गंभीरता और गहराई हम आजाद की इस चिन्तन–धारा में देख सकते हैं। साथी उस दिन बहुत प्रभावित थे, आजाद की इन सीधी, सरल और मोटी दलीलों से। यद्यपि वे बहस और राय देने के मामले में कभी अपने ऊपर अधिक भरोसा नहीं रखते थे। वे अपना पिस्तौल कभी अपने से पृथक् न होने देते थे, यहाँ तक कि स्नान–गृह और शौचालय में भी वे उसे साथ रखते थे। कभी–कभी तो वे अपने पिस्तौल से किसी पालतू जीव की भाँति बातें भी करने लगते थे, मानो पिस्तौल सब समझ रहा हो। □

तुम बढ़ो लेकिन...

– विपिन बिहारी तिवारी

तुम बनो पावन,
किसी को पर पतित करके नहीं;
तुम हँसो, लेकिन–
किसी का दिल दुःखित करके नहीं।
जिन्दगी का अर्थ है–
गिरना, फिसलना, पुनः चलना;
तुम बढ़ो, लेकिन–
किसी को पद-दलित करके नहीं।

– डी–२, पार्क रोड–६, लखनऊ

उद्योगे नास्ति दारिद्रयं, जपतो नास्ति पातकम्।
मौने च कलहो नास्ति, नास्ति जागरिते भयम्।।

पुरुषार्थ करने वाले के पास गरीबी नहीं फटकती, जप करने वाले के पास पाप नहीं रहता, मौन रहने वाले के पास कलह नहीं होती और जागरूक रहने वाले को भय नहीं सताता।

(चाणक्य नीति)

व्यंग्य

...हम पैसे देते हैं

– डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

दूरदर्शन पर उस प्रोग्राम को देखकर मेरे मुँह से हालाँकि "यूरेका–यूरेका" तो नहीं निकला, फिर भी बेहद खुशी हुई। उससे मुझे एक ऐसी चीज मिली थी, जिसकी मुझे बहुत ही इच्छा थी, जरूरत भी और जिसके लिए मैं अन्दर ही अन्दर बेचैन रहता था।

उस कार्यक्रम का विषय था, "बच्चों से हमें किस तरह का व्यवहार करना चाहिए? उसमें मनोविज्ञान के कई विद्वान् भाग ले रहे थे। कार्यक्रम में बताया गया कि बच्चे जब कहना नहीं मानते, जिद करते हैं, तोड़–फोड़ करते हैं, स्कूल का काम नहीं करते, अपने से छोटे बच्चों से ईर्ष्या करते हैं, खाना नहीं खाते, काम करते समय डिस्टर्ब और परेशान करते हैं, घर से बाहर जाते समय रोकते हैं, अकारण रोते हैं, बाजार में अनावश्यक या कीमती चीजों की माँग करते हैं, दूसरों के घर में या मेहमानों के बीच परेशान करते हैं, तो उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए कि बच्चों को मारना–पीटना न पड़े और वे बात भी मान जायें।"

यही तो मैं जानना चाहता था। मेरा बच्चा बहुत शैतानी करता है। मैं उसे मार बैठता हूँ। मारने के पश्चात् कई घण्टों तक और कभी–कभी तो कई दिनों तक बेचैन रहता हूँ। किसी काम में मन नहीं लगता, खाना अच्छा नहीं लगता।

उस कार्यक्रम में अपने परिचय के भी एक सज्जन भाग ले रहे थे। अच्छा परिचय था। संयोग से कार्यक्रम में उनकी बात सबसे अधिक सुलझी हुई थीं। उनको देखकर तो मन और भी प्रसन्न हो गया। सोचा कि अब अपने बच्चे से सम्बन्धित किसी भी समस्या या विषय पर उनसे चर्चा करके सही मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

एक दिन मैं उनके यहाँ गया। उनके कार्यक्रम का जिक्र किया। उनकी बातों की सराहना की। इससे उनके चेहरे पर कुछ चमक आ गयी। फिर उनसे कहा कि मेरा बच्चा भी बहुत शैतानियाँ करता है और मुझसे मार खा बैठता है। इससे मुझे बहुत कष्ट होता है। वह तो कुछ देर बाद सब कुछ भूलकर खेलने लग जाता है, लेकिन मेरा "मूड" बहुत समय तक खराब हो जाता है। अब कभी कोई बात समस्या वाली लगेगी, तो मैं आपके पास आकर हल मालूम कर लिया करूँगा।

उन्होंने तपाक से एक रूखा उत्तर दिया, "हाँ! अब यही तो काम रह गया है।"

उस रूखे उत्तर को सुनकर मैं अचम्भित और अवाक् रह गया। इसके आगे बात करना मैंने बेकार समझा।

एक दिन दूरदर्शन के एक वरिष्ठ अधिकारी से किसी सम्मेलन में भेंट हो गयी। बातचीत होने लगी, तो मैंने उनसे कहा कि मुझे समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति आपके दूरदर्शन पर तो बड़ी ऊँची–ऊँची यानी अच्छी–अच्छी बातें करता है, वह दूरदर्शन से परे परामर्श माँगने पर रूखा क्यों हो जाता है?

उस अधिकारी ने अविलम्ब उत्तर दिया, "इसमें समझने की कठिनाई कहाँ है? सीधी–सी बात है। दूरदर्शन पर तो अच्छी–अच्छी बातें कहने के लिए हम पैसे देते हैं।"

– ७–ए, विश्वविद्यालय परिसर, लखनऊ–२२६००७

□

पाठकीयम् : "राष्ट्रधर्म" पढ़ने से अनुभूति

मैंने एक वर्ष से लगातार हर मासिक "राष्ट्रधर्म" को गम्भीरता से पढ़ा। हर मास के सम्पादकीय इतिहास के तथ्यों से ओत–प्रोत व्यंग्यात्मक शैली में व्यक्त एक संग्रहणीय साहित्य है। सभी अपनी कलम के धनी ओजस्वी विद्वानों के अप्राप्य ज्ञान की ओजस्वी किरण आज के राष्ट्र को बरबाद करने में संलग्न समस्त तत्त्वों और राजनीति की अनीति में नख–शिख डूबे नेताओं के लिए एक महान् प्रकाश चेतावनी है। उन्हें राष्ट्र को बचाने के लिए प्रोत्साहन दे रही है। वे भले इससे कुछ सीखने की चेष्टा करें, न करें।

यों तो कहने को बहुत है पर इस पत्रिका के सम्पादकीय को पढ़कर इमरजेंसी के समय ७४–७५ में 'तरुण–भारत' के तत्कालीन सम्पादक स्वनामधन्य श्री वचनेश त्रिपाठी की लेखनी की भी स्वतः याद आ जाती है। सम्पादकीय में सभी तो प्रशंसनीय हैं ही। विशेषकर मास अक्टूबर का सम्पादकीय "मी मोहनदास करमचन्द गांधी बोलतोय" में ऐतिहासिक तथ्यों की सत्य तिथियाँ और महात्मा जी का क्रिया–कलाप पूर्ण सत्य है।

'राष्ट्रधर्म' के लेखकों ने ईसाइयत के प्रचार का भण्डा फोड़कर रख दिया है। श्री हृदय नारायण दीक्षित के समस्त लेख, "कांग्रेस में आयातित नेतृत्व आखिर रहस्य क्या है?" लेखक श्री रामशंकर अग्निहोत्री (मास फरवरी ९९) एक स्पष्ट प्रश्न है। आखिर मुर्दा कांग्रेस को निठल्ले, भ्रष्टाचार करने में माहिर, मौकापरस्त कांग्रेसियों ने एक इटली की स्त्री के हाथों कांग्रेस की बागडोर कैसे पकड़ा दी? क्या रोमन में इन्हीं लुटेरों के हाथों लिखा पर्चा मात्र १५ मिनट में पढ़कर श्रीमती सोनिया गांधी इस कांग्रेस को 'मृगाङ्क' पिलाकर जिन्दा कर सकेंगी। ऐसे ही "भारत माँ की पूजा जब शीशार्चना से हुई" लेखक श्री वचनेश जी ने वन्देमातरम् पर भारत में न रहने योग्य मुल्लाओं के फतबों पर अमूल्य विचार प्रदान किये।

– माया प्रकाश मिश्र 'विशारद', *ग्राम व पत्रालय- सहजनपुर, जनपद- हरदोई (उ०प्र०)*

मणि-माणिक-मर्मज्ञ भी थे

महामति कौटिल्य

लेखक

□ श्याम नारायण कपूर

(आचार्य कौटिल्य के रसायन विज्ञान में तथा रस-सिद्ध-स्वर्ण बनाने में दक्ष होने की चर्चा की जा चुकी है। वे रत्न-विज्ञान के भी विशेषज्ञ और उनके गुण-दोष परखने में सिद्धहस्त थे। 'अर्थ-शास्त्र' के 'कोष-प्रवेश्य रत्न-परीक्षा' अध्याय से इसकी अच्छी जानकारी मिलती है। - सम्पादक)

महामति कौटिल्य

आचार्य कौटिल्य ने मोतियों के दस उत्पत्ति स्थान बतलाये हैं और उनकी उत्पत्ति के तीन कारण या स्रोत-शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक- यथा गजमुक्ता, और सर्पमणि। दूषित मोतियों के तेरह प्रकारों का उल्लेख किया है। उन्होंने मोटा, गोल, तलरहित, दीप्तिमान, श्वेत, भारी, चिकना और स्थान पर बिंधा मोती उत्तम बतलाया है। मोतियों की माला के भी कई नाम बतलाये हैं- जैसे १. शीर्षक- जिसमें दो छोटे मोतियों के बीच एक बड़ा मोती पिरोया गया हो, २. उपशीर्षक- जिसमें दो छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो, ३. प्रकाण्ड- जिसमें चार छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो, आदि। मोतियों की माला की लड़ियों के अनुसार भी उनकी अनेक श्रेणियों का उल्लेख किया है- जैसे एक हजार आठ लड़ियों की माला को -इन्दुच्छद', उसकी आधी पाँच सौ चार लड़ों की माला को 'विजयच्छद', सौ लड़ी की माला को 'देवच्छद', चौंसठ लड़ी की माला को अर्धहार। इसी प्रकार दस लड़ियों तक की माला का नाम बतलाया है। मोतियों के बीच यदि मणि पिरोई गयी हो, तो माला के आगे 'माणवक' शब्द जुड़ जाता है। मोती, मणि और सोने के दानों की संख्याओं के साथ और भी अनेक प्रकार की मालाओं का उल्लेख है। गले की मालाओं के साथ ही सिर, हाथ, पैर और कमर की भिन्न-भिन्न मालाओं की भी चर्चा है।

मोतियों के समान **मणियों** के भी प्रमुख उत्पादक स्थानों का उल्लेख किया है और पाँच प्रकार के माणिक्य बतलाये हैं : १. सौगन्तिक, २. पद्मराग, ३. अनवद्य, राग, ४. पारिजात पुष्पक, ओर ५. बाल सूर्यक। वैदूर्य मणि आठ प्रकार की बतलायी गयी है। इन्द्रनीलमणि (नीलम) भी आठ प्रकार की होती है और स्फटिक मणि चार प्रकार की। स्पष्ट है कि इन मणियों का बड़ी बारीकी से अध्ययन करके उनके विभिन्न भेदों और जातियों- उपजातियों का निर्धारण किया गया होगा।

मणियों के ग्यारह प्रकार के गुण और सात प्रकार के दोषों को बतलाया गया है। उनकी अठारह प्रकार की उपजातियाँ भी गिनायी गयी हैं।

मणियों की विस्तृत विवेचना के साथ ही **हीरे** के विषय में भी समुचित उपयोगी जानकारी दी गयी है। भारत में इसके छह उत्पत्ति-स्थान बतलाये हैं। इनके अतिरिक्त खदान, विशेष जल-प्रवाह और हाथी दाँत की जड़ को भी हीरे का उत्पत्ति-स्थान बतलाया है। हीरा कई आकार-प्रकार का होता है। मोटा, भारी, घन की चोट सहने वाला, पीतल के समकोण पानी के भरे बर्तन में उसको हिलाने से लकीरें डालने वाला चमकदार हीरा उत्तम होता है। नष्टकोण और छोटे-बड़े कोनों वाला हीरा दूषित माना जाता है।

प्रवाल

हीरा, मोती, माणिक्य के साथ ही उन्होंने प्रवाल (मूँगा) का भी वर्णन किया है। इसके दो उत्पत्ति-स्थान बतलाये हैं। प्रवाल दो रंग का होता है- १. रक्त और २. कमल। यह कीड़े का खाया हुआ और बीच में मोटा या उठा हुआ नहीं होना चाहिए।

चन्दन

चन्दन के बारे में उन्होंने बहुत विस्तार से लिखा है। 'रत्न-परीक्षा-प्रकरण' में रत्नों के साथ ही चन्दन के उत्पत्ति स्थानों और गुण दोषों की विवेचना की है। चन्दन के सोलह उत्पत्ति-स्थान, नौ रंग, छह गन्ध और ग्यारह गुण बतलाये हैं। कुछ स्थानों का चन्दन लाल रंग का और उसमें धरती की-सी गन्ध होती है। सभी चन्दन सुगन्ध-युक्त नहीं होते। कालिमा और लाली युक्त चन्दन में मछली जैसी गन्ध होती है। हरि नामक देश में उत्पन्न चन्दन तोते के पंख के समान हरे रंग का होता है और उसमें आम की-सी गन्ध होती है। देवसभा नामक स्थान

का चन्दन लाल रंग का और गन्ध कमल जैसी होता है। इसी प्रकार अलग–अलग प्रदेशों में पैदा होने वाले चन्दनों के रंग और गन्ध के विषय में जानकारी दी है।

चन्दन के गुण – चन्दन में ग्यारह गुण होते हैं– १. लघु, २. स्निग्ध, ३. बहुत दिनों में सूखने वाला, ४. शरीर में घी के समान लगने वाला, ५. सुगन्धित, ६. त्वचा के भीतर ठण्डक पहुँचाने वाला, ७. बिना फटा, ८. स्थायी वर्ण एवं गन्धयुक्त, ६. गर्मी शान्त करने वाला, १०. सन्ताप को दूर करने, और ११. सुखद स्पर्श देने में समर्थ।

अगरु

चन्दन के समान ही अगरु की भी विवेचना की गयी है। अगरु को भी चन्दन के समान विभिन्न गुणों से युक्त बतलाते हुए कहा है कि वह भारी, स्निग्ध, सुगन्धित, दूर तक सुगन्ध फैलाने में समर्थ, अग्नि को सहन करने वाला, इसका धुआँ कष्टकर नहीं होता और यह जलते समय एक जैसी गन्ध देता है। वस्त्रादि पर लगाने पर इसकी गन्ध बनी रहती है। चन्दन और अगरु तथा उसकी विभिन्न प्रजातियों की गन्ध का जिस प्रकार विवेचन और विश्लेषण किया गया है, वह सुगन्धों के विशेषज्ञ द्वारा ही हो सकता है।

इसी प्रकरण में विभिन्न पशुओं के चमड़ों और बालों का भी विवरण दिया है। दुशालों को देश भेद से तीन प्रकार का बतलाया है। संक्षेप में राजकीय कोषागार में संग्रह करने योग्य रत्नों और अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को परखने और गुण–दोषों की समीक्षा की है। कपास, ऊन, रेशम आदि भी इस सूची में सम्मिलित हैं।

खान व खनिज–वेत्ता

रत्न–परीक्षा प्रकरण से आचार्य कौटिल्य के रत्न–विज्ञान के विशेषज्ञ होने की पुष्टि होती है। वास्तव में उनका अर्थशास्त्र इस बात का सुस्पष्ट प्रमाण है कि वे विज्ञान की अनेक विधाओं में पारंगत थे और उनके सैद्धान्तिक पक्ष के साथ ही व्यावहारिक–पक्ष में भी उनकी दक्षता असंदिग्ध हैं।

"आकरकर्मान्त प्रवर्त्तनम्" प्रकरण २८ अध्याय १२ में उन्होंने 'आकर अध्यक्ष' (खानों के अधिकारी) को जिस प्रकार निर्देशित किया है, वह उनके खनिज और धात्विकी–विज्ञान की दक्षता को प्रमाणित करता है। उन्होंने विभिन्न धातुओं– सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा प्रभृति की खानों की पहचान को स्पष्ट रूप से बतलाया है। खनिजों से धातु प्राप्त करना, उसको शोधन करना, सोना, चाँदी को मुलायम करना तथा उन्हें ठोस रूप देने की विधि भी बतलायी है। इसी प्रकरण में खानों से प्राप्त होने वाली विशिष्ट प्रकार के गुणों से युक्त मिट्टी और पत्थर के संयोग से ताँबा और चाँदी से सोना बनाये जाने का उल्लेख है।

इस प्रकरण के अन्त में खानों का महत्त्व बतलाते हुए उन्होंने लिखा है कि राजकीय कोष की उन्नति खान पर निर्भर है। कोष की उन्नति से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है। रत्नगर्भा पृथ्वी को कोष और सेना से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अगले प्रकरण २६ अध्याय १३– 'प्रेक्षशालायां सुवर्णाध्यक्ष' से उनकी धात्विकी के व्यावहारिक ज्ञान की दक्षता सिद्ध होती है। सोने के कई प्रकार और रंग बतलाते हुए इस सिद्ध (अर्थात् रासायनिक प्रक्रिया से बने) सुवर्ण को भी गिनाया है। अक्षशाला में पूर्ण सतर्कता के साथ सोने के गुण–दोष परखने, मिलावटी सोना और उसमें मिलावट की जाँच की विधियाँ भी बतलायी गयी हैं। खान से निकाले हुए सोने को शुद्ध करने की विधि का उल्लेख है। इसी प्रकार चाँदी का भी विवेचन है। सोने की जाँच के लिए प्रयुक्त होने वाली कसौटी के पत्थर की भी समीक्षा की गई है।

अर्थशास्त्र के अगले प्रकरणों से ज्ञात होता है कि उनकी वन–वानिकी, वनस्पति–विज्ञान और खाद्य पदार्थों के गुण–दोषों एवं उपयोगिता के विषय में बहुत अच्छी जानकारी थी और इनके विज्ञानों में बहुत अच्छी पैठ। वन के उत्पादनों, लकड़ी, फल, फूल, कन्दमूल तथा अन्य उपयोगी उत्पादनों की समीक्षा से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

राजकीय कोष्ठागार में संग्रह करने योग्य वस्तुओं का वर्णन करते हुए उन्होंने एक स्थल पर कई प्रकार के लोहे के होने की चर्चा की है–

कालायस ताम्रवृन्त कांस्य सीसत्रपुर्व कृन्तकार
कूटानि लोहानि। –प्रकरण ३१, अध्याय १५– कोष्ठागाराध्यक्षः अर्थात, कालाअयस (लोहा), ताँबा, सीसा, राँगा इस्पात और पीतल यह सब लोहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि कौटिल्य के समय भारत में साधारण लोहा और इस्पात दोनों ही काम में लाये जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सोना–चाँदी के अतिरिक्त जो अन्य निम्नस्तर की विविध धातुएँ संज्ञान में थी, उन सबको लोहे के प्रकारों में माना जाता था। लोहा शब्द निम्न–स्तर की धातुओं का परिचायक था। दुर्गों और राजभवनों के निर्माण विधियों से उनके वास्तुकला विशारद होने की भी जानकारी मिलती है। □

– साहित्य निकेतन, गिलिस बाजार,
शिवाला मार्ग, कानपुर

वेद वाणी ही तो बखानी है गुरु नानकदेव जी ने

- डॉ० गुरुमीत सिंह

भारतीय परम्परा में धर्म और दर्शन के विषय में जब भी कोई बात होती है, तो सर्वप्रथम विद्वान् लोग वेद की तरफ ही देखते हैं; क्योंकि समस्त भारतीय ज्ञान एवं विज्ञान का मूल वेद ही माने जाते हैं। इसलिए आज तक वेदों के प्रति प्रत्येक भारतीय की अटूट श्रद्धा बनी हुई है। यहाँ जितने धार्मिक मत–मतान्तरों एवं दार्शनिक सम्प्रदायों का विकास हुआ, उन सबके प्रवर्त्तकों ने वेद के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की और उसके प्रामाण्य को वरीयता प्रदान की।

गुरु नानक की वाणी का अध्ययन करने से पता चलता है कि वेद के प्रति गुरु नानक की अपार श्रद्धा थी। धर्म तथा दर्शन के जिस स्वरूप का उन्होंने प्रतिपादन किया, वह वस्तुतः वेदमूलक ही है। वेद शब्द विद् धातु से बना है, जिसका अर्थ है ज्ञान। वेदों में ज्ञान ही है, ऐसी गुरु नानक की मान्यता है। गुरु नानक–वाणी में आलंकारिक भाषा में वेद को व्यापारी कहा है और उनकी राशि ज्ञान बतायी गयी है :

बेदु वपारी गिआनु रासि।।

(सारंग की वार महला १, पृष्ठ १२४४)

बसन्तु राग में गुरु नानकदेव जी का कथन है कि वेद रूपी चार ज्ञान–प्रदीप चार युगों के हाथ में दीये हैं, जो अपनी–अपनी बारी पर प्रकाश करते हैं :

नउ सत चउदह तीनि चारि करि महलति चारि बहाली।।
चारे दीवे चहु हथि दीए एका एकी वारी।।

(बसंतु हिंडोलु महला १, पृष्ठ ११९०)

वेदों का कर्त्ता

वेद भारत के ही नहीं प्रत्युत विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। बहुत प्राचीन काल से वेदों के विषय में यह विवाद चला आया है कि वेद पौरुषेय हैं या अपौरुषेय। भारतीय परम्परा वेदों को अपौरुषेय मानती है। वेद के पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व के विषय में गुरु नानकदेव का अपना मत क्या है, इसका हम यहाँ विचार करेंगे। गुरु नानक–वाणी में **पैंसठ से अधिक बार वेद शब्द का उल्लेख आया है।** इन स्थलों पर वेद के विषय में उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे एतद्विषयक उनकी दृष्टि का पता चलता है।

कुछ विद्वान् ऐसे हैं, जो यह मानते हैं कि गुरु नानकदेव वेदों को पौरुषेय मानते हैं। डा० शेरसिंह ज्ञानी अपनी पुस्तक 'विचाराधारा (लाहौर बुक शॉप, लुधियाना, पृष्ठ ३१) में लिखते हैं कि "गुरु साहिब ने वेदों की प्रामाणिकता को उतनी श्रद्धा से नहीं माना, जितनी श्रद्धा से वैदिकधर्मी मानते हैं। वे वेदों को अपौरुषेय नहीं मानते थे।" परन्तु ज्ञानी जी का यह कथन समीचीन नहीं दिखायी पड़ता। जैसा कि हम आगे देखेंगे, गुरु नानक देव जी ने तथा उनके पश्चात् शेष गुरुओं ने भी वेदों को ईश्वर–कृत माना है। हम आज आदिग्रन्थ में अंकित वामई को गुरुओं की रचना मानते हैं। परन्तु उन्हें यह वाणी परमात्मा से ही प्राप्त हुई थी, जिसके विषय में गुरु नानक मरदाना से कहते हैं कि "रबाब बजाओ! वाणी आई है।" गुरु रामदास इसे "धुर की वाणी आई" कहते हैं और गुरु नानक "जैसी में आवै खसम की वाणी।" इसी प्रकार भारतीय परम्परा यह मानती है कि वैदिक मन्त्र भी मन्त्रद्रष्टा मनीषियों को परमात्मा से प्राप्त हुए थे।

गुरु नानक वाणी में हमें बहुत से ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पर गुरु नानकदेव जी ने वेदों को ईश्वर–कृत माना है। उनके मतानुसार ईश्वर से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, उसी से पर्वत और युग बने और उसी से वेद उत्पन्न हुए :

ओअंकारि ब्रह्मा उतपति।। ओअंकारु कीआ जिनि चिति।।
ओअंकारि सैल जुग भए।। ओअंकारि बेद निरमए।।

(रामकली महला १, पृष्ठ ९२९–९३०)

बिलावलु राग में गुरु नानक लिखते हैं कि परमात्मा ने चारों वेदों की रचना की, उसी ने चार खानियों तथा विभिन्न वाणियों की रचना की। अठारह पुराण, षड्दर्शन और तीन गुणों की उत्पत्ति भी उसी से हुई। इस रहस्य को वही समझ सकता है, जिसको वह स्वयं समझाए :

चउथि उपाए चारे बेदा। खाणी चारे बाणी भेदा।।
असट दसा खट तीनि उपाए। सो बूझै आपि बुझाए।।

(बिलावलु, महला १, पृष्ठ ८२९)

चचै चार वेद जिनि साजे चारे खाणी चारि जुगा।।

(आसा महला १, पृष्ठ ४३२)

परमात्मा ने "गुरुमुख" एवं "मनमुख" दोनों को स्वयं उत्पन्न किया और उनमें स्वयं विद्यमान है; किन्तु गुरुमुखों ने वेदवाणी को अपना लिया है और मनमुखों ने नहीं अपनाया। अतः उन दोनों में झगड़ा शुरू हो गया :

दोवै तरफा उपाई इकु वरतिआ।।
बेद बाणी वरताई अंदरि वादु घतिआ।।

(वार मलार की महला १, पृष्ठ १२८०)

गुरु गोविन्द सिंह 'दशम ग्रन्थ' में लिखते हैं कि हे सत्य स्वरूप परमात्मा! वेदों को तुमने ही उत्पन्न किया है :

"सत्त सदैव सरूप सदाव्रत बेद कतेब तु ही उपजायो"।

(सवैये पातशाही १०)

गुरु नानक–वाणी में बताया गया है कि सृष्टि रचना से पूर्व शून्य की अवस्था थी। उस समय केवल निर्गुण ब्रह्म ही था। उस समय वेद, कतेब, स्मृति, शास्त्र, पुराण, सूर्योदय और सूर्यास्त कुछ भी नहीं था। परमात्मा ने ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को पैदा किया तथा ब्रह्मा को वेद समर्पित कर दिए :

स वेदवित्।। –गीता १५/१)। यहाँ यह बात बताई गई है कि ब्रह्म वृक्ष है, माया उसकी जड़ है और तीन गुण शाखाएँ हैं, इन तीन गुणों का विस्तार चारों वेद करते हैं:

साम वेदु रिगु जुजरू अथरबणु।
ब्रह्मे मुखि माइआ है त्रै गुण।।

(मारू महला १, पृष्ठ १०३८)

सासत्र बेद त्रै गुण है माइआ अंधलउ धंधु कमाई।।

(भैरउ महला १, पृष्ठ ११२६)

बेद बाणी जग वरतदा त्रै गुण करे वीचारू।।

(मलार महला ३, पृष्ठ १२७६)

त्रैगुण्य विषया वेदा। –गीता २/४५

इस प्रकार ईश्वर ने सर्वप्रथम वेदवाणी ब्रह्मा को दी। ब्रह्मा, जो कमल–नाभि से उत्पन्न हुए, ने मुँह और कंठ को सँवार कर वेदों का उच्चारण किया। ब्रह्मा ने ये वेद प्रभु प्राप्ति के लिए उच्चारित किए और इसीलिए शंकर ने माया का त्याग किया। अतः चारों वेद परमात्मा ने ही ब्रह्मा को कह दिये :

गुरु नानक देव जी ने तथा उनके पश्चात् शेष गुरुओं ने भी वेदों को ईश्वर–कृत माना है। हम आज आदिग्रन्थ में अंकित वामई को गुरुओं की रचना मानते हैं। परन्तु उन्हें यह वाणी परमात्मा से ही प्राप्त हुई थी, जिसके विषय में गुरु नानक मरदाना से कहते हैं कि "रबाब बजाओ! वाणी आई है।" गुरु रामदास इसे "धुर की वाणी आई" कहते हैं और गुरु नानक "जैसी में आवै खसम की वाणी।" इसी प्रकार भारतीय परम्परा यह मानती है कि वैदिक मन्त्र भी मन्त्रद्रष्टा मनीषियों को परमात्मा से प्राप्त हुए थे।

गुरु नानक वाणी में हमें बहुत से ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पर गुरु नानकदेव जी ने वेदों को ईश्वर-कृत माना है।

बेद कतेब न सिम्रिति सासत।।
पाठ पुराण उदै नहीं आसत।।

(मारु महला १, पृष्ठ १०३६)

ब्रह्मा बिसनु महेसु देव उपाइआ।।
ब्रह्मे दिते बेद पूजा लाइआ।।

(वार मलार की महला १, पृष्ठ १२७६)

उस ब्रह्म से वेद किस प्रकार प्रकट हुए, इस बात को बहुत सुन्दर रूपक के द्वारा समझाया गया है। एक वृक्ष है, जिसकी जड़ ऊपर को है। उसकी तीन शाखाएँ (तीन गुण) हैं, जो नीचे हैं, चार वेद जिसके पत्ते हैं :

उरध मूल जिसु साख तलाहा चारि बेदु जितु लागे।।
सहज भाइ जाइ ते नानक पारब्रह्म लिव लागे।।

(गूजरी महला १, पृष्ठ ५०३)

उर्ध्वमूल और अधः शाखाओं वाले वृक्ष की बात कठोपनिषद् २/६/१ में भी कही गई है : "ऊर्ध्व–मूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।" (तुलना– ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद

नाभि कमल ते ब्रह्मा उपजे वेद पड़हि मुख कंठि सवारि।।

(गूजरी महला १, पृष्ठ ४८९)

जै कारणि बेद ब्रहमै उचरे संकरि छोडी माइआ।।

(प्रभाती महला १, पृष्ठ १३२८)

चारे वेद ब्रहमे नो फुरमाइआ।।

(मारू महला ३, पृष्ठ १०६६)

ब्रह्मा से ये वेद ऋषियों को प्राप्त हुए। बहुत समय तक वेद–मन्त्र मौखिक रूप से ही कण्ठस्थ किए जाते थे। इसके पश्चात् व्यास मुनि ने, जो कि परमात्मा के गुणों का गान किया करते थे, वेद और व्याकरण का विचार किया और वेदों का संकलन किया। इस प्रकार ब्रह्मा के साथ–साथ इन्हें महर्षि व्यास की वाणी भी कहा जाने लगा :

गुण गावै मुनि व्यासु जिनि बेद ब्याकरण बीचारिआ।।

(सवईऐ महले पहले के १, पृष्ठ १३८९)

बेदु पुकारे वाचीऐ बाणी ब्रह्म बिआसु।।

(सिरी रागु महला १, पृष्ठ ५९)

इस प्रकार गुरु नानक–वाणी के अनुसार वेदों को

परमात्मा ने ही उत्पन्न किया। सर्वप्रथम उसने ये वेद ब्रह्मा को दिए। महर्षि ने तो केवल इनका सम्पादन और इन पर विचार किया है :

नाना खिआन पुरान वेद बिधि चउतीस अखर मांही।
बिआस विचारि कहिओ परमारथु राम नाम सरि नाही।।

(सोरठ रविदास जी, पृष्ठ ६५८)

वेदों का महत्त्व

वेद भारतीय धर्म एवं दर्शन के प्राण हैं। आज तक जितने भी भारतीय धर्म (सम्प्रदाय) हुए हैं, उनका किसी न किसी रूप में वेदों के साथ सम्बन्ध रहा है। जो वेदों में विश्वास नहीं रखता, भारतीय परम्परा उसे नास्तिक कहती आयी है। यहाँ पर हम देखेंगे कि गुरु नानकदेव का वेदों के साथ क्या सम्बन्ध रहा है और उनकी दृष्टि में वेदों का क्या महत्त्व रहा है।

गुरु नानक के प्रादुर्भाव के समय भारत पर मुसलमानों का शासन था। वे राज्य–सत्ता के बल पर भारतीयों पर इस्लाम थोप रहे थे। भारतवासियों को बलात् मुसलमान बनाया जा रहा था। इनके अत्याचारों से तंग आकर भारतवासी अपने प्राचीन वैदिक धर्म को भूलते जा रहे थे। दूसरी ओर भारतीय समाज में भी उच्चवर्ग के लोग अपने जातिगत अभिमान के कारण छोटी जाति वालों को अछूत समझने लगे थे। धर्म में पाखण्ड और बाह्याचार का बोलबाला था। बहुत से लोग गुरु बन बैठे थे, जो लोगों से अपनी–अपनी पूजा करवाते थे। वेद–शास्त्रों को लोग भूलते जा रहे थे, जिसे देखकर गुरु नानक देव को बहुत आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठाई :

सासतु बेदु न मानै कोई। आपो आपै पूजा होई।।

(रामकली की वार महला १, सलोक, पृष्ठ ६५१)

गुरु नानकदेव तथा उनकी परम्परा में उनके शेष उत्तराधिकारियों ने लोगों को पुनः वेदों का महत्त्व समझाया। उन्होंने उपदेश दिया कि वेदों में सत्यस्वरूप प्रभु की सत्यमयी वाणी है और सच्ची कीर्त्ति है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कलियुग की वाणी ही ब्रह्मा का अथर्ववेद है जो हरि के यश एवं शुभ करनी को प्रधान मानता है। वेदों में उस परमात्मा का उत्तम नाम है, (किन्तु मनुष्य) उसको सुनता नहीं और वेतालग्रस्त की तरह घूम रहा है। जिसको ऐसी अवस्था से छुटकारा पाना है, उसे चाहिए कि वह मुख से मधुर वेदवाणी पढ़े।

गुरु नानक के प्रादुर्भाव के समय भारत पर मुसलमानों का शासन था। वे राज्य–सत्ता के बल पर भारतीयों पर इस्लाम थोप रहे थे। भारतवासियों को बलात् मुसलमान बनाया जा रहा था। इनके अत्याचारों से तंग आकर भारतवासी अपने प्राचीन वैदिक धर्म को भूलते जा रहे थे। दूसरी ओर भारतीय समाज में भी उच्चवर्ग के लोग अपने जातिगत अभिमान के कारण छोटी जाति वालों को अछूत समझने लगे थे। धर्म में पाखण्ड और बाह्याचार का बोलबाला था। बहुत से लोग गुरु बन बैठे थे, जो लोगों से अपनी–अपनी पूजा करवाते थे। वेद–शास्त्रों को लोग भूलते जा रहे थे, जिसे देखकर गुरु नानक देव को बहुत आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठाई :

सासतु बेदु न मानै कोई। आपो आपै पूजा होई।।

(रामकली की वार महला १, सलोक, पृष्ठ ६५१)

गुरु नानकदेव तथा उनकी परम्परा में उनके शेष उत्तराधिकारियों ने लोगों को पुनः वेदों का महत्त्व समझाया। उन्होंने उपदेश दिया कि वेदों में सत्यस्वरूप प्रभु की सत्यमयी वाणी है और सच्ची कीर्त्ति है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कलियुग की वाणी ही ब्रह्मा का अथर्ववेद है जो हरि के यश एवं शुभ करनी को प्रधान मानता है। वेदों में उस परमात्मा का उत्तम नाम है, (किन्तु मनुष्य) उसको सुनता नहीं और वेतालग्रस्त की तरह घूम रहा है। जिसको ऐसी अवस्था से छुटकारा पाना है, उसे चाहिए कि वह मुख से मधुर वेदवाणी पढ़े :

साची कीरति साची बाणी। होर न दीसै बेद पुराणी।।

(मारू सोहले महला १, पृष्ठ १०२२)

कालि कलवाली सरा निबेड़ी काजी क्रिसना होआ।।
बाणी ब्रहमा बेद अथरवणु करणी कीरति लहिआ।।

(रामकली महला १, पृष्ठ ९०३)

वेदा महि नामु जतमु सो सुणहि नाही फिरहि जिउ बेतालिआ।।

(रामकली महला ३, पृष्ठ ९१९)

बेदु पड़ै मुखि मीठी बाणी।।

(गउड़ी महला ५, पृष्ठ २०१)

गुरु नानक–वाणी में वेदों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का ढंग भी बताया गया है। "माझ की वार" में स्पष्ट

उल्लेख है कि वेदों के साथ मनुष्य का सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है, यदि वह सत्य भाषण करे; क्योंकि सत्य का आचरण ही सर्वोपरि है :

बेदा गढु बोलै सचु कोई।।

(माझ की वाल महला १, पृष्ठ १४३)

सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु।।

(सिरीरागु महला १, पृष्ठ ६२)

वेदों के अन्दर परमात्मा का नाम ही कहा गया है और सन्तजन उसी को पढ़कर नाम की व्याख्या करते हैं। इस प्रकार युगों–युगान्तरों से वेदों के अध्ययन द्वारा ऋषिगण परमात्मा की महिमा का गुणगान करते आए हैं। वेदों के अन्दर जो वाणी है, वह साधुजनों की रसना से उच्चरित है। इसलिए साधुजन इस वाणी को खोज कर हरिनाम प्राप्त करते हैं :

आखहि वेद पाठ पुराण। आखहि पड़े करहि वखिआण।।

(जपु जी, आदिग्रन्थ पृष्ठ ५)

सिम्रिति पुराण चतुर बेदह खदु सासत्र जाकउ जपाति।।

(आसा महला ५, पृष्ठ ४५६)

गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले।।

(जपु जी, आदिग्रन्थ पृष्ठ ६)

चारे वेद होए सचिआर।।

पड़हि गुणहि तिन्ह चार बीचार।।

(आसा महला १, पृष्ठ ४७०)

गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई।।

(जपु जी, आदिग्रन्थ पृष्ठ २)

गुरमुखि नाद बेद बीचारू।।

(रामकली महला १, पृष्ठ ६३२)

इस उपदेश में वेदों के साथ–साथ शास्त्र और स्मृतियों का भी उपदेश है। गुरुवाणी ही नाद और वेद का विचार है और यही ज्ञान और ध्यान का आधार है। अतः गुरु के शिष्य के लिए सभी नाद और वेद गुरवाणी ही हैं:

गुरमुखि सासत्र सिम्रिति बेद।।

(रामकली महला १, पृष्ठ ६४२)

गुरमुखि नाद बेद बीचारु।।

गुरमुखि गिआनु धिआनु आपारु।।

(मारू महला ३, पृष्ठ १०५८)

गुरमुखि नादु बेदु है गुरमुखि गुरप चे नामु धिआवैगो।।

(कानड़ा महला ४, पृष्ठ १३११)

समि नाद बेद गुरबाणी।।

(रामकली महला १, पृष्ठ ८७६)

किसी ग्रन्थ का केवल पाठ करने का तब तक कोई विशेष लाभ नहीं होता, जब तक उसके अर्थों को न जान लिया जाये। यास्काचार्य ने वेदों के अर्थ को जाने बिना पाठ की निन्दा की है : "जो वेद को पढ़कर भी उसके अर्थ को नहीं जानता, वह तो केवल भारवाहक है। अर्थ को समझे बिना मन्त्रों को रट लेने वाला (मनुष्य), वृक्ष के ठूँठ जैसा मूर्ख है। जो अर्थ को समझता है, वही समस्त कल्याणों को प्राप्त करता है। जो अर्थ को बिना समझे मन्त्रों को कण्ठ कर लिया जाता है और पाठ मात्र से ही उच्चारण किया जाता है, ऐसा करने वाला अग्नि में रखी हुई सूखी समिधाओं के समान कभी भी प्रज्वलित (सफल) नहीं हो सकता।"

बेद पुराण सिम्रिति साधूजन इह बाणी रसना भारखी।।

(सारंग महला ५, पृष्ठ १२२७)

हरि के नामि की गति ठाढी।।

बेद पुरान सिम्रिति साधूजन खोजत खोजत काढी।।

(सारंग महला ५, पृष्ठ १२१६)

गुरु नानक–वाणी में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि चारों वेद सत्य हैं। उनको पढ़ने और विचारने से सुन्दर विचार ज्ञात होते हैं। परन्तु जब लोगों को इस संस्कृतमयी वाणी को पढ़ने में कठिनाई होने लगी और लोग कठिनाई के कारण वेदों के मत को ग्रहण नहीं कर पाये, तो गुरु नानकदेव द्वारा सरल भाषा में लिखी हुई गुरु की वाणी "गुरुवाणी" कहलाई। गुरु नानक ने अपने शिष्यों को कहा कि यह जो आपको उपदेश दिया जा रहा है, आपके लिए यही नाद है और यही वेद है–

गुरु नानक–वाणी में कुछ स्थल ऐसे भी देखने को मिलते हैं जहाँ पर उन्होंने अपनी बात को दृढ़ करने के लिए वेदों को उद्धृत किया है। इन स्थलों पर वेदों का ज्ञान प्रामाणिक माना गया :

१. **वेद बखाणि कहहि इकु कहीऐ।।**
   ओहु बेअंतु अंतु किनि लहीऐ।।

   (बसंत महला १, पृष्ठ ११८८)

२. **ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात।।**
   सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।।

   (जपु जी, आदिग्रन्थ पृष्ठ ५)

३. **भेखी हाथ न लभई तीरथि नही दाने।।**
   पुछउ बेद पंड़तिया मूठी विणु माने।।

   (मारू महला १, पृष्ठ १०१२)

(शेष पृष्ठ ४७ पर)

कालिदास की उद्भावना ग्रीष्म के परिप्रेक्ष्य में

– चन्द्रशेखर शुक्ल

ऋतु के विभागचारी सूर्य हैं। कालपुरुष पंच अरियुक्त चक्र में यह निखिल भुवन निबद्ध है। सूर्य ही काल की देह को अक्षि, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर एवं युग में बाँटते हैं। संवत्सर के दो अयन हैं– उत्तरायण और दक्षिणायन। उत्तरायण की तीन ऋतुएँ हैं– शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म। इन ऋतुओं में कटु, कषाय और तिक्त, क्रमशः तीन रसों का प्रबलाधिक्य रहता है। शिशिर की सीलन–भरी कटुता असहनीय होती है। वसन्त के दूत कोकिल को "कषाय कण्ठ" की संज्ञा दी गयी है। सुदर्शनीय "आम्र मंजरी" को भी कषाय रससिद्ध कहा गया है। वसन्त के बाद आनेवाली ऋतु का नाम ग्रीष्म है। मधुरस–युक्त निरा फलवती होने पर भी जाने कैसे इसे लोग "तिक्त" रसमयी ऋतु की संज्ञा देते हैं। वास्तव में, जीवन में "तिक्त–रस" ही सर्वाधिक परिशोधित रसौषधि है। जीवन का रग–रग इसके अनुपालन से विकार–विमुक्त हो जाता है। अपनी उद्दाम शक्ति के साथ जगत् का आत्मा–सूर्य इस ऋतु में प्रखर एवं सर्वाधिक प्रदीप्त दीखता है। "पुरुषसूक्तकार" ने इसीलिए ग्रीष्म को जीवन की "समिधा" से रूपायित किया है। कहते हैं, ग्रीष्म की पूर्व–पीठिका पर अवस्थित वसन्त, उत्कण्ठा–आकुलता, नित–नूतन अंकुरित अभिलाषाओं की पुष्पित ऋतु है और ग्रीष्म उपर्युक्त आकांक्षाओं की आपूर्ति की फलवती ऋतु। वसन्त, काम एवं अमित कामनाओं को जगानेवाली ऋतु है और ग्रीष्म उन्हें परितप्त एवं परिशोधित करने वाली ऋतु।

लगता है, ऋतुओं में ग्रीष्म, खटने की, परितप्त करने की, परिशोधित बनाने की शुचिपूर्ण वेला है। इसलिए यह सृष्टि–विलास में फल की ऋतु है। जीवन में फल की उपलब्धि तभी होती है, जब कष्ट सहने की सहिष्णुता आती है और उसके परिणामस्वरूप आंगिक रेशे–रेशे में अगराई कोमलता, स्निग्धता परिलक्षित होती है। ग्रीष्म शरीर को तपाता है, मन को पिघलाता है, भावना में शुचिता लाता है। अपनी दाहक–शक्ति में जीवन को भस्म करके यह उसे निखरा कंचन बना देता है। वास्तव में उत्कण्ठा और स्वस्ति की अनूठी सन्धि की संज्ञा है– ग्रीष्म ऋतु।

[illegible] के दृष्टिकोण से ऋतुओं में ग्रीष्म सर्वाधिक मनोरम ऋतु है। ग्रीष्म की तपन जब धरती के रोम–कूप को फोड़ देती है, तो न जाने किस उन्मादक सोंधी सुगन्ध से गगन का कोना–कोना मह–मह कर उठता है। तपती धूप में तरु–शाखाओं की शीतल छाया, नन्दन–वन की सुरभि बिखेरने लगती है। तन्वंगी सरिताओं की निष्पंक निर्मलता मन मोह लेती है।

निदाघ की संध्या अतिशय सुरुचिपूर्ण होती है। तन्वंगी गंगा की निर्मल धारा को संस्पर्श करती, पीपल–पातों को झकझोरती दशाश्वमेध की मदमाती बयार की गन्ध का स्वाद लेकर, संध्या के बाद अबेर तक जब कोई लौटता है, तपन और शीतलता के उस संगम स्थल को छोड़ने के लिए उसका मन तैयार नहीं होता। देह वहाँ से उठने का नाम नहीं लेती। जीवन में शीतलता अधिग्रहण की जितनी ललक ग्रीष्म के परिवेश में उमँगती है, स्यात् प्रकृति–कोष के किसी वातावरण में उतनी नहीं। पुरुषार्थ चतुष्टय में "काम" का उद्वेग इसी ऋतु में सर्वाधिक प्रबल होता है। तपन और काम स्यात् समसंख्यक इकाइयाँ हैं।

ग्रीष्म की किशोरावस्था वैशाख और युवावस्था, ज्येष्ठ मास है। ज्येष्ठ मास को इसीलिए, "शुचि" कहते हैं। अपनी शुचिता के कारण यह ऋतु जीवन में दोहरी प्रभान्वित उत्पन्न करती है। कष्ट, सहिष्णुता और उसके परिणामस्वरूप मन की निर्मलता। कहते हैं, ग्रीष्म दाह की ऋतु है। अपनी परिपक्वता के निमित्त इसीलिए पार्वती ने ग्रीष्म ऋतु में ही घोर तप किया। अपने चारों ओर तपन, लू का बेलाग परिवेश सजाकर उन्होंने पवित्र जेठ (शुचि) की दुपहरी में बैठकर स्वयं को तपाना आरम्भ किया था। उनकी हँसी इस घोर कष्ट में पिघलती रही। बिना इस तपन की सिद्धि के जीवन में शुचिता नहीं आती, चिर परीक्षित अभिलाषा की पूर्ति नहीं होती। कालिदास ऐसे ही परिवेश में पनपने वाले राष्ट्रकवि रहे हैं। ऋतुओं के वर्णन–विधान में स्यात् वह ग्रीष्म के उद्गाता रहे हैं।

प्रतिभा–पूरित प्रत्येक कवि अपनी अनुभूतिगम्य अन्तश्चेतना की तूलिका से एक विशेष वातावरण में जीते हुए, अन्य परिवेशों के भी सुरम्य चित्र उरेहने में सक्षम

होता है। लथपथ पसीने की देह में ... से वह ... की रिमझिम का आस्वादन प्रस्तुत कर सकता है। शिशिर की कँपती अँगुलियों से शरद की सौरभ–धारा बहा सकता है।

ग्रीष्म से सम्बद्ध कालिदास द्वारा दो परिवेशों के वर्णन–विधान का प्रस्तुतीकरण श्लाघ्य है। एक, सामन्ती परिवेश, दूसरा है समवेदनापूर्ण, समभावपरक परिवेश। प्रथम परिवेश के अन्तर्गत इस ऋतु के अधीन प्रेमी और प्रेमिका की आकांक्षा होती है कि उनकी परिश्रान्ति के निमित्त ज्योत्स्नामयी खिली हुई रजनी हो। बहुविचित्रता से निर्मित जल–यन्त्र से सज्जित प्रासाद हो। विविधाभास रत्न चतुर्दिक् बिखरे हों। चारों ओर सुगन्धमय गीला चन्दन छिटका हो। सुगन्ध से युक्त भव्य अट्टालिकाएँ हों। मधुर मदिरा से युक्त प्रेमिकाओं के मुख से सुरभिपूर्ण उच्छ्वास वाला वातावरण हो–

"निशाः शशांकक्षतनील राजयः
क्वचिद्विचित्रं जलयन्त्र मन्दिरम्
मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनं
शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम्
सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरम्
प्रिया मुखोच्छ्वास विकंपितं मधु
सुतन्त्रि गीतं मदनस्य दीपनं
शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः।।"

ग्रीष्म ऋतु परस्पर विरोधी वृत्ति वाले मानवेतर जीवों को परस्पर "समवेदन" की अवस्था में बने रहने के लिए विवश करती है– सूर्य की प्रचण्ड किरणों से अत्यन्त पीड़ित एवं मार्ग की तप्तता से झुलसा हुआ सर्प मयूर की छाया के नीचे कुण्डली मारकर बैठ जाता है–

"रवेर्मयूर वैर भितापितो भृशं
विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः
अवांमुखो जिह्यगतिः श्वसन्मुहः
फणी मयूरस्य तले निषीदति।।"

मृगराज और गजराज में भी वैर–भाव इस ऋतु में मिट जाता है। तृषित मृगराज बलहीन बन जाता है। मुख खोलकर वह बार–बार श्वास लेता है। अपनी जीभ से अपने होठों को वह चाटता रहता है। उसके कन्धे की केसर कम्पित होती रहती है। समीपस्थ गजराज पर वार करने की वह इच्छा नहीं करता–

"तृषा महन्या हतविक्रमोष्मः
श्वसन्मुहुर्दूर विदारिताननः
न हत्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वर
विलोल जिह्वश्चलिताग्र केसरः"

सामन्ती परिवेश में पली रमणियों की सुरुचि का अधोलिखित बिम्ब–विधान प्रस्तुत है–

"सुन्दरियाँ रेशमी वसन धारण करके अपने नितम्बों के ऊपर करधनी धारण करती हैं। वे अपने स्तन–मण्डलों पर कुसुमों के आभरण एवं घिसा हुआ चन्दन आलेपित करती हैं। अपने केश–पाशों में सुगन्धित स्नानीय चूर्ण तथा सुगन्धित धूप आदि लगाकर वे अपने प्रेमी–जनों के ताप का शमन करती हैं।"

"नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः
स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः
शिरोरूहै स्नान कषायवासतैः
स्त्रियो निदाघं शमयंति कामिनाम्।"

इस परिवेश में नव यौवना के शरीर से निरन्तर प्रस्वेद प्रवाहित होता रहता है। इसीलिए अपने मोटे–मोटे

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

मुकर गये तुम...

– अशोक 'अंजुम'

दिल दुखता है रह–रह के–
मुकर गये तुम कह–कह के।
सारे सपने टूट गये,
सभी सहारे छूट गये;
हमको अपने लूट गये,
बिना बात तुम रूठ गये।
उम्मीदों के महल सभी–
खण्डहर हो गये ढह–ढह के।
सारे वादे धूल हुए,
रंग सभी प्रतिकूल हुए;
सुख गूलर का फूल हुए,
रिश्ते वे अब शूल हुए।
धोखे मिले, सिर्फ धोखे–
अब जीते दुःख सह–सह के।
यादें तीर चुभाती हैं,
अक्सर ही तड़पाती हैं;
मन में अगिन जलाती हैं,
विष के घूँट पिलाती हैं।
आँसू भी अब आँखों के–
खत्म हो गये बह–बह के।

– 'संवेदना' एफ–२३, नई कालोनी,
कासिमपुर (पावर हाउस), अलीगढ़–२०२१२७

वेद-वाणी ही तो बखानी है....

(पृष्ठ ४४ का शेष)

४. बेदु पुकारे पुनु पापु सुरग नरक की बीउ।।
जो बीजै सो उगवै खादा जाणै जीउ।।
(सारंग महला १, पृष्ठ १२४३)

यही नहीं, गुरु नानक की परम्परा में शेष गुरुओं ने भी वेदज्ञान को प्रामाणिक माना है :

१. हरि जीउ अहंकार न भावई वेद कूक सुणावहि।।
(मारू महला ३, पृष्ठ १०६८)

२. मन हठि किनै पाइओ पूछहु वेदा जाई।।
(सिरी राग महला ३, पृष्ठ ८४)

३. जो सरणि परै तिसकी पति राखै जाई
पूछहु वेद पुराणी है।।
(मारू महला ४, पृष्ठ १०७०)

अर्थ सस्वर पाठ, आवृत्ति करना, वेद-अध्ययन या वेद-पाठ किया है। वे इसका अर्थ स्वाध्याय भी करते हैं (संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ ६०१)। परन्तु स्वाध्याय और पाठ में थोड़ा अन्तर होता है। स्वाध्याय अपने धर्मग्रन्थ का नित्यकर्म मानकर किया जानेवाला पाठ होता है। स्वाध्याय को ही शतपथ ब्राह्मण ११/५/६/३ में ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। सिक्ख धर्मावलम्बी जिस अर्थ में "नितनेम" का प्रयोग करते हैं, उसी अर्थ में स्वाध्याय शब्द का प्रयोग होता है; परन्तु पाठ शब्द इससे भिन्न अर्थों को लिए हुए है।

किसी उद्देश्य या फल की प्राप्ति के लिए धर्मग्रन्थ का विशेष विधिपूर्वक जो पारायण किया जाता है, उसे

"जो व्यक्ति वेद को कण्ठस्थ करके भी उसके अर्थ को नहीं जानता है, वह वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है और सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। जो अर्थज्ञ है, उसके लिए वाणी अपने स्वरूप को इस प्रकार खोलकर रख देती है, जैसे इच्छा करती हुई और सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई पत्नी अपने पति के लिए अपने स्वरूप को प्रकाशित कर देती है। जो वेदों के अर्थ को जान लेता है, उसके साथ वाणी की मित्रता पक्की होती है और विद्वत्समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है। परन्तु जो अर्थ समझे बिना मन्त्रों को केवल कण्ठ ही करता है और समझता है कि मैंने वेद का अध्ययन कर लिया है, वह भ्रम में है।"

यद्यपि किसी ग्रन्थ का केवल पाठ करने से कोई लाभ नहीं होता, फिर भी धर्मग्रन्थों का केवल पाठ करने से भी कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। भले ही इससे साधक को परमपद न प्राप्त हो; किन्तु इसका थोड़ा फल तो अवश्य मिलता है। इससे मनुष्य का संस्कार बन जाता है। दूसरे, पाठ करते समय मनुष्य सांसारिक विषयों की ओर से निवृत्त रहता है, उसका ध्यान इनमें नहीं जाता। धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करने से मनुष्य का ह्रदय धीरे–धीरे शुद्ध होता रहता है और शुद्ध ह्रदय से ही परमात्मा का नाम स्मरण करके उसे पाया जा सकता है।

४. दस अठ चारि वेद सभि पूछहु
जन नानक नाम छड़ाई जीउ।।
(मारू महला ४, पृष्ठ ६६८)

५. बिन सतिगुर किनै न पाई परमगते।।
पुछहु सगल बेद सिम्रिते।।
(प्रभाती महला ५, पृष्ठ १३४८)

६. बेद सिम्रिति कथै सासत भगत करहि बीचार।।
मुकत पाईऐ साध संगति बिनसि जाई अंधारू।।
(धनासरी महला ५, पृष्ठ ६७५)

७. कल मै एक नाम किरपानिधि जाहि जपैं गति पावै।।
अउर धरमु ताके समि नाहिनि इह बिधि बेदु बतावै।।
(सोरठ महला ६, पृष्ठ ६३२)

वेदों का पाठ

पाठ शब्द पठ् धातु से घञ् प्रत्यय करके बनता है, जिसका अर्थ है पढ़ना। श्री वामन शिवराम आप्टे ने इसका

'पाठ' कहते हैं। जिस प्रकार रामायण या आदिग्रन्थ के पाठ करवाए जाते हैं। इनके करवाने का कोई समय निश्चित नहीं है, परन्तु गुरु नानकदेव जी के समय लोगों ने
स्वाध्याय को भी पाठ समझ कर करना शुरू कर दिया था। उन दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया था।

किसी ग्रन्थ का केवल पाठ करने का तब तक कोई विशेष लाभ नहीं होता, जब तक उसके अर्थों को न जान लिया जाये। यास्काचार्य ने वेदों के अर्थ को जाने बिना पाठ की निन्दा की है: "जो वेद को पढ़कर भी उसके अर्थ को नहीं जानता, वह तो केवल भारवाहक है। अर्थ को समझे बिना मन्त्रों को रट लेने वाला (मनुष्य), वृक्ष के ठूँठ जैसा मूर्ख है। जो अर्थ को समझता है, वही समस्त कल्याणों को प्राप्त करना है। जो अर्थ को बिना समझे मन्त्रों को कण्ठ कर लिया जाता है और पाठ मात्र से ही उच्चारण किया जाता है, ऐसा करने वाला अग्नि में

रखी हुई सूखी समिधाओं के समान कभी भी प्रज्वलित (सफल) नहीं हो सकता" (निरुक्त १/१७)।

इस सम्बन्ध में वेद भी प्रमाण है। ऋग्वेद (१०/७१/४–५) में बताया गया है कि "जो व्यक्ति वेद को कण्ठस्थ करके भी उसके अर्थ को नहीं जानता है, वह वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है और सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। जो अर्थज्ञ है, उसके लिए वाणी अपने स्वरूप को इस प्रकार खोलकर रख देती है, जैसे इच्छा करती हुई और सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई पत्नी अपने पति के लिए अपने स्वरूप को प्रकाशित कर देती है। जो वेदों के अर्थ को जान लेता है, उसके साथ वाणी की मित्रता पक्की होती है और विद्वत्समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है। परन्तु जो अर्थ समझे बिना मन्त्रों को केवल कण्ठ ही करता है और समझता है कि मैंने वेद का अध्ययन कर लिया है, वह भ्रम में है।"

यद्यपि किसी ग्रन्थ का केवल पाठ करने से कोई लाभ नहीं होता, फिर भी धर्मग्रन्थों का केवल पाठ करने से भी कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। भले ही इससे साधक को परमपद न प्राप्त हो; किन्तु इसका थोड़ा फल तो अवश्य मिलता है। इससे मनुष्य का संस्कार बन जाता है। दूसरे, पाठ करते समय मनुष्य सांसारिक विषयों की ओर से निवृत्त रहता है, उसका ध्यान इनमें नहीं जाता। धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करने से मनुष्य का हृदय धीरे–धीरे शुद्ध होता रहता है और शुद्ध हृदय से ही परमात्मा का नाम स्मरण करके उसे पाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में गुरु नानक का कथन है :

दीवा बलैं अंधेरा जाइ।।
बेद पाठ मति पापा खाइ।।
उगवै सूरु न जापै चंदु।।
जह गिआनु प्रगासु अगिआनु मिटंतु।।
बेद पाठ संसार की कार।।
पढ़ि पढ़ि पंडित करहि बीचार।।
बिनु बूझे सभ होई खुआरि।।
नानक गुरमुखि उतरसि पारि।।

(सूही महला १, पृष्ठ ७६१)

यहाँ पर गुरु नानकदेव जी का स्पष्ट कथन है कि वेदों का पाठ बुद्धि के पापों को अर्थात् पाप वाली बुद्धि को नष्ट कर देता है। भाई काहन सिंह नाभा वेद का अर्थ ज्ञान मानकर इसका अर्थ करते हैं कि "ज्ञान पूर्वक किया गया पाठ बुद्धि के पापों को नष्ट करता है" (महान कोश, पृष्ठ ८८६)। परन्तु यदि सम्पूर्ण शब्द को ध्यानपूर्वक पढ़कर उस पर विचार किया जाय, तो इसका अर्थ वेदपाठ ही उचित ठहरता है, जिसको डा० जयराम मिश्र भी स्वीकार करते हैं (नानक वाणी पृष्ठ ४७१)। परन्तु इस प्रकार किया गया पाठ संसार सागर से पार नहीं उतार सकता जब तक उसे समझा नहीं जाता। अतः जब तक धर्म–पुस्तकों को अपने जीवन में न उतारा जाए, तब तक दुःख ही प्राप्त होते हैं।

मानव के लिए जो चार पुरुषार्थ बताए गए हैं उनमें मोक्ष ही सर्वोपरि माना जाता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य धर्म–ग्रन्थों का आश्रय लेता है। धर्मग्रन्थों को मनुष्य पढ़ता है या उनका पाठ करता है। गुरु नानकदेव के प्रादुर्भाव के समय लोग वेदों का पाठ किया करते थे। इस विषय में गुरु नानक का मत है कि वेदों को पढ़ने का पूर्ण फल तभी प्राप्त हो सकता है, जब मनुष्य इनके अर्थ को समझकर उस पर आचरण करे। वरना भले ही वह चारों वेदों को कण्ठस्थ कर जाए तथा दान और नियम–व्रत भी करता रहे, तब भी परमात्मा को नहीं पा सकता। यदि वह केवल धर्मग्रन्थों का पाठ ही करता है, तो वह केवल प्रकृति की शक्ति का विचार करना ही है। क्योंकि इस प्रकार अनेकों मुनिजन वेदों और पुराणों का कथन और श्रवण करके हार गए हैं किन्तु वे शान्ति नहीं पा सके। मोक्ष प्राप्ति ही हरि–नाम–स्मरण से होगी, केवल वेदों के अभ्यास से नहीं :

१. **दस अठ लीखे होवहि पासि।।**
चारे बेद मुखागर पाठि।।

(बसंत महला १, पृष्ठ ११६६)

२. **असंख गरंथ मुखि वेद पाठ।।**
असंख जोग मनि रहहि उदास।।

(जपु जी, आदिग्रन्थ)

३. **बेद पुराण कथे सुणे हारे मुनी अनेका।।**
अठ सठि तीरथ बहु घणा भ्रमि थाके भेखा।।

(मारू महला १, पृष्ठ ३–४)

४. **असट साज साजि पुराण सोधहि करहि बेद अभिआसु।।**
बिनु नाम हरि के मुकति नाही कहै नानकु दासु।।

(धनासरी महला १, पृष्ठ ६६३)

वेदों और पुराणों को पढ़–पढ़कर कितने ही व्यक्ति परमात्मा का वर्णन करते हैं। बहुत से लोग इन्हें पढ़कर परमात्मा के सम्बन्ध में प्रवचन करते हैं। पण्डितगण भी वेद पढ़ते हैं और इनकी व्याख्या करते हैं; किन्तु वे आन्तरिक रहस्य को नहीं समझते। इस प्रकार वह पण्डित वेदों को व्यर्थ में ही पढ़ता है, जो उन पर विचार नहीं करता, जिसके फलस्वरूप वह स्वयं तो डूबता है फिर भला पितरों को कैसे तार सकेगा ?

बांचै वादु न बेदु बीचारै।। आपि डुबै किउ पितरा तारै।।

(रामकली महला १, पृष्ठ ६०४)

वेदों के अर्थ को जाने बिना केवल उनको पढ़ते ही जाना और उस पर आचरण न करना ठीक उसी प्रकार कल्याणकारी नहीं है जिस प्रकार कोई रोगी भिषक् से औषधि लाकर उसका सेवन नहीं करता, केवल उसको देखता ही है। रुग्ण व्यक्ति तभी स्वस्थ हो सकता है जब वह उसका विधिपूर्वक सेवन करेगा। इस प्रकार कोई व्यक्ति चाहे अपनी सारी आयु तक अध्ययन करता रहे, उसे कोई लाभ नहीं हो सकता। इस विषय में आसा राग में गुरु नानक देव जी का कथन है :

पड़ि–पड़ि गडी लदीअहि पड़ि–पड़ि भरीअहि साथ।।
पड़ि–पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि–पड़ि गडीअहि खात।।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।।
पड़ीहे जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख।।

(आसा महला १, पृष्ठ ४६७)

कुछ लोग वेद शास्त्रों को पढ़ते हैं और अहंकार-वश लोगों को कहते हैं कि मैंने वेद शास्त्रों का अध्ययन किया है, किन्तु वे जानते कुछ भी नहीं। जब वे इन्हें समझ लेते हैं, तब उन्हें सुझाई पड़ने लगता है। फिर किसी प्रकार का चिल्लाना नहीं रह जाता :

सासत्र बेद पुराण पढ़ता।। पूकारता अजाणता।।
जां बूझै तां सूझै सोई।। नानकु आखै कूक न होई।।

(सारंग महला १, पृष्ठ १२४२)

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह केवल वेदों को पढ़ने पर ही बल न दे; बल्कि किसी गुरु अथवा आचार्य के पास जाकर इनके अर्थ को समझकर इनके तत्त्वज्ञान को प्राप्त करे। तभी उसके अज्ञान के कपाट खुल सकते हैं। फिर वेदों के उपदेश को हृदयंगम करके उस पर आचरण करने से लाभ उठाया जा सकता है :

वाचहि पुसतक वेद परानां।।
इक बहि सुनहि सुनावहि कानां।।
अजगर कपटु कहहु किउ खुल्है
बिन सतिगुर ततु न पाइया।।

(मारू महला १, पृष्ठ १०४३)

प्रस्तुत विवेचन से ज्ञात होता है कि गुरु नानक वेदों के अर्थ–ज्ञानपूर्वक अध्ययन पर विशेष बल देते हैं। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि इस विषय में गुरु नानक द्वारा व्यक्त किये गये विचार ऋग्वेद के ऊपर उद्धृत मन्त्रों से एवं निरुक्तकार यास्क मुनि के विचारों से अत्यधिक साम्य रखते हैं। □

(गुरु नानक वाणी में वैदिक धर्म दर्शन से साभार।)

(पृष्ठ ४६ का शेष) कालिदास की उद्भावना...

वसनों को उतार कर अपने उत्तुंग स्तनों को वे महीन वसनों से ढके रहती हैं।

कालिदास का 'शाकुंतलम्' एक प्रकार से सम्पूर्णतः ग्रीष्म की मधुमती गाथा है। पूरा दिन नूतन ताप के उदय से, मुखर चढ़ाव से, शनैः–शनैः परितृप्त अवसान से अनुरेखित होता है। वास्तव में जीवन का तपोमय उतार सुभग होता भी है। ऐसे परिवेश में हिमगिरि की उपत्यका में दुष्यन्त वन–विहार के निमित्त निकलता है।

'शाकुन्तलम्' के द्वितीय अंक में ग्रीष्म रस–गन्ध चतुर्दिक् ओत–प्रोत है– निदाध परिताप से व्याकुल कतिपय मानवेतर जीवन एक वन से दूसरे वन की ओर बेहाल दौड़े जा रहे हैं।

गरमी के मारे भैंसें जल में स्नान कर रही हैं। छाया में झुण्ड बाँधकर बैठे मृग जुगाली कर रहे हैं। शूकरों के समूह निर्भय होकर, छोटे–छोटे तालाबों में नागरमोथा निकाल रहे हैं।

शकुन्तला को लू लग गयी है। उसके शरीर पर खस का अनुलेपन किया जा रहा है। उसका वक्षःस्थल कमल–नाल की कर्णिका से आपूरित है, जो अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। कामिनियों पर काम और लू के संचार भले ही समान हों, किन्तु लू का सन्ताप काम से अधिक सन्तापदायक नहीं होता।

दुष्यन्त शकुन्तला की थकान को दूर करने के लिए अनेक उपक्रमों की चर्चा करता है। वह थकान लू लगने के कारण हुई है। वह कहता है, इस थकान के निवारण के लिए क्या मैं कमल–पत्र के पंखे की शीतल हवा करूँ, अथवा हे करभीरू ! तेरे कमल के तुल्य लाल चरणों को गोद में रखकर, जिस प्रकार तुम्हें सुख मिले, वही उपचार करूँ–

"किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः
अंके निधाय करभीरू सखे र्यथो सुखं
संवाहयामि चरणावृत पद्मताम्रो।"

सम्प्रति, ग्रीष्म की असह्य धूप बाहर नाच रही है। शकुन्तला को ऐसी धूप में निकलने को मनाही है। उससे कहा जा रहा है कि कमल–पत्र ही तुम्हारे वक्षःस्थल के आवरण हैं। ऐसी पुष्प–शय्या को छोड़कर पीड़ित कोमल अंगों को लेकर धूप में वह किस प्रकार निकल सकती है!

– सी १७/२०५/एम–१०, अशोक विहार कालोनी, (प्रथम चरण), पहाड़िया, वाराणसी–२२१००२

जम्मू-कश्मीर का भारत में पूर्ण-रूप से विलय किया जाय

- मथुरा प्रसाद श्रीवास्तव

जम्मू–कश्मीर के मुख्यमन्त्री डॉ० फारुख अब्दुल्ला ने विगत १५ अप्रैल सन् १९९९ ई० को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें जम्मू–कश्मीर को बृहत्तर स्वायत्तता के लिए उस आजादी की माँग की गयी है, जो सन् १९४७ ई० से लेकर सन् १९५२ ई० तक उसे प्राप्त थी और संविधान के अनुच्छेद ३७० को अस्थायी रूप में न रखकर उसे विशेष अधिकार के रूप में प्रस्तुत किये जाने की बात कही है। अनुच्छेद ३७० के द्वारा जम्मू–कश्मीर का झण्डा, संविधान और नागरिकता भारत से अलग है। दिल्ली समझौता १९५२ के द्वारा जम्मू–कश्मीर राज्य में 'सदर–ए– रियासत' (राष्ट्रपति) 'वजीरे आजम' (प्रधानमन्त्री) पद का प्रावधान है, जिसे सन् १९६६ ई० में भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री ने संशोधित कर परिवर्तित कर दिया था। 'सदर–ए–रियासत' के पद को राज्यपाल के पद में और 'वजीरे आजम' के पद को मुख्यमन्त्री के पद में बदल दिया था। डॉ० फारुख अब्दुल्ला ने अपनी रिपोर्ट में बृहत्तर स्वायत्तता के लिए उन्हीं पदों की बहाली की माँग की है। झण्डा और संविधान अलग करने के साथ अनुच्छेद ३७० के द्वारा जम्मू–कश्मीर में भारत के अन्य प्रदेशों के नागरिकों के आबाद होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। यहाँ तक कि पहले वहाँ इस धारा के कारण भारतीयों को जम्मू–कश्मीर में जाने के लिए परमिट लेना आवश्यक कर दिया गया था, जिसके विरोध में, दिल्ली समझौता १९५२ ई० के उस प्रावधान के विरोध में, जिसमें जम्मू–कश्मीर में 'सदर–ए–रियासत' और 'वजीरे आजम' पद का प्रावधान था, एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निधान का प्रावधान था और भारत के स्वनाम– धन्य डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने संघर्ष किया था और अपना बलिदान दिया था। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद ३७० और दिल्ली समझौता १९५२ के द्वारा पाकिस्तान के नागरिकों को जम्मू–कश्मीर की नागरिकता प्रदान करने के लिए पुनर्वास विधेयक ८२ पारित किया गया है, जिसका लाभ

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी
जो कश्मीर के लिए बलिदान हुए

प्राप्त कर पाकिस्तान से लाखों की संख्या में कट्टरपन्थी, जिहाद समर्थक, जम्मू–कश्मीर में आकर आबाद हो गये हैं। उन्होंने अपनी संगठित ताकत से कश्मीर घाटी से कश्मीरी पण्डितों को, कत्ले–आम कर निकाल दिया है। अब कश्मीर घाटी कश्मीर पण्डितों से खाली हो गयी है। कश्मीर मूवमेण्ट की रिपोर्ट के अनुसार कश्मीर घाटी में १२७ मन्दिर और कश्मीरी पण्डितों के १६००० मकान नष्ट कर दिये गये है। विस्फोट से मूत्तियाँ तोड़ दी गयी हैं। मन्दिरों में लगी जमीनों पर बलात् कब्जा कर लिया गया है। पुनर्वास विधेयक के कारण आज जम्मू में भी अल्पसंख्यक हिन्दुओं का नरसंहार हो रहा है। इसके साथ ही अनुच्छेद ३७० दिल्ली समझौता सन् १९५२ के द्वारा जम्मू–कश्मीर का झण्डा संविधान और नागरिकता भारत से अलग होने के कारण आज जम्मू–कश्मीर संसार के कुछ देशों के नजरों में विवादास्पद क्षेत्र माना जाता है, जहाँ भारत का नागरिक आबाद नहीं हो सकता है। पाकिस्तान उसे अनसुलझा मसला कहता है, जिसका हल करने के लिए वह जम्मू कश्मीर में जनमत–संग्रह के द्वारा आत्म–निर्णय की माँग उठा रहा है। संसार के समक्ष उसे रख रहा है। आज आवश्यकता है कि जम्मू कश्मीर से अस्थायी अनुच्छेद ३७० को और दिल्ली समझौता १९५२ को समाप्त कर

जम्मू–कश्मीर को पूर्ण रूप में भारत में मिलाया जाय। भारत के नागरिकों को अपने अभिन्न अंग जम्मू–कश्मीर में आबाद होने का अधिकार प्रदान किया जाये। पुनर्वास विधेयक ८२ को रद्द कर जम्मू–कश्मीर में पाकिस्तान की नागरिकता खत्म की जाये ताकि संसार की नजरों में जम्मू–कश्मीर विवादास्पद क्षेत्र न रहे। विश्व में उसकी पहिचान अखण्ड भारत के रूप में हो, अन्यथा बृहत्तर स्वायत्तता देने से आत्म–निर्णय की माँग और तेज हो जायेगी, जिससे बिना लड़े ही जम्मू–कश्मीर भारत से निकल जायेगा। ▫

– मोहल्ला–काशीनाथ, जालौन–२८५१२३

प्यारे भइया, बहिनो!

जय श्री राम।

ग्रीष्मावकाश के बाद अब आप सब अपने–अपने विद्यालय जाने की तैयारी कर रहे होंगे। आज राम के समय के जैसे 'गुरु–गृह' तो नहीं, जहाँ अल्पकाल में ही सभी विद्याएँ प्राप्त हो जाएँ; लेकिन निष्ठा और लगन से विद्यालय में अपने शिक्षकों से मन लगाकर पढ़ने से वह सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, जिससे हमारा भविष्य उज्ज्वल हो सके। इसके लिए हमें अपनी दिनचर्या वैसी ही बनानी होगी। बिलकुल राम जैसी।

प्रात काल उठि कै रघुनाथा।
मात पिता गुरु नावहिं माथा।।

और तब–

गुरु गृह पढ़न गये रघुराई।
अल्प काल विद्या सब आई।।

तो हम सब भी, अपने गुरुजनों का आदर करते हुए उनका स्नेहाशीष लेकर अपने नवीन सत्र की पढ़ाई प्रारम्भ करें।

२८ जुलाई को गुरु–पूर्णिमा है। यह भगवान् वेदव्यास जी का जन्मदिन भी है। हम सब अपने शिक्षक को इस दिन कुछ न कुछ भेंट स्वरूप देकर अपनी श्रद्धा निवेदित करें। इसमें अपने घर में भोजन कराने से लेकर दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली वस्तु देने तक की योजना अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार आप बना सकते हैं।

यह गुरु–पूजा हमारे जीवन को सात्विकता प्रदान कर 'सर्वभूत हितेरतः' की ओर ले जाने में समर्थ होगी।

शुभकामनाओं सहित,

आपका

भइया

गीजी

○ शाहू

बाल साहित्य-पुरस्कार

'राष्ट्र कवि पं० सोहनलाल द्विवेदी बाल साहित्य पुरस्कार–१९९९' हिन्दी बाल साहित्य की (कहानी, कविता विधाओं की) जनवरी ९६ से दिसम्बर ९८ के मध्य प्रकाशित मौलिक कृतियों पर दिया जायेगा। लेखक/प्रकाशक पुरस्कार के लिए आवेदन पत्र **श्री राजकुमार जैन 'राजन' चित्रा प्रकाशन, अकोला–३१२२०५** से ३०–१०–९९ तक प्राप्त कर सकते हैं।

वर्ष १९९८ का पुरस्कार डॉ० रोहिताश्व अस्थाना (हरदोई, उ०प्र०) की पुस्तक 'गीतों की माला' पर प्रदान किया गया है।

तीसरी टाँग

- नीलम राकेश

रोज की तरह सरल अपनी बैसाखी के सहारे उद्यान में आकर बैठ गया। आज उसका मन बहुत खिन्न था। स्कूल के शरारती लड़कों ने आज फिर उसका मजाक उड़ाया था। सरल की समझ में नहीं आता था कि ये शैतान बच्चे कैसे किसी की मजबूरी पर हँसते हैं। उसका एक पैर बचपन में ही पोलियो के कारण खराब हो गया था। ये सब लोग उसके मन की पीड़ा को क्यों नहीं समझते। सबको खेलते, दौड़ते देखकर क्या उसका मन भी खेलने और दौड़ने का नहीं करता?... सहानुभूति तो दूर की बात है ये लोग तो जब–तब उसका अपमान करते हैं।

आज स्कूल से लौटते समय उस शैतान टोली ने "तीन टाँग का बच्चा" कह कर उसका कितना मजाक उड़ाया। उसे अपने आप पर गुस्सा आ रहा था कि क्यों नहीं वह उनकी किसी बात का जवाब दे पाया। माँ को आकर बताता है तो वह दुःखी हो जाती है, आखिर माँ बेचारी क्या कर सकती है। इसलिए सरल ने फैसला कर लिया है कि अपने साथ घटने वाली ऐसी घटनाओं का जिक्र वह अपनी सीधी–सादी माँ से नहीं किया करेगा। उन्हें दुःखी करने से क्या लाभ! परन्तु यह समस्या का हल नहीं था। वह समझ नहीं पा रहा था कि अपने अन्दर की इस बेचैनी का क्या करे। अपने सिर को पीछे की ओर बेंच पर टिका कर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

"ऐ ऽ ऽ ऽ.................. उठो"

"................." एक तेज आवाज से चौंक कर सरल ने अपनी आँखें खोल दीं।

उसके सामने उसका सहपाठी और उस शैतान टोली का नेता अशोक खड़ा था।

"क्या है?" स्वर को संयत बनाकर सरल ने पूछा।

"तुम इस बेंच से हट जाओ। यहाँ ये दोनों, मेरे भाई–बहन, बैठेंगे।" अशोक ने आदेश सा दिया।

"ठीक है, बैठा दो। बेंच तो बहुत बड़ी है।"

"नहीं, वो लोग तुम्हारे साथ नहीं बैठेंगे।"

"क्यों?"

"तीन टाँग वाले के साथ मैं अपने भाई–बहन को नहीं बैठा सकता।"

अशोक की बात सुनकर उसके साथी खिलखिला कर हँसने लगे। अपमान से सरल का चेहरा लाल हो गया। अपने आँसुओं को बहने से रोकने की कोशिश करता हुआ सरल बैसाखी के सहारे उठकर वहाँ से थोड़ी दूर जाकर बैठ गया। उसका मन फूट–फूट कर रोने का हो रहा था।

अशोक ने अपनी दो वर्ष की बहन को बेंच पर बैठा कर खिलौना पकड़ा दिया और सात वर्षीय भाई से बोला–

"तुम यहीं बैठो और गुड़िया का ख्याल रखना। रोये तो मुझे बुला लेना।"

भाई–बहन की ओर से निश्चिन्त होकर अशोक उद्यान में साथियों के साथ खेलने में मस्त हो गया। उसका छोटा भाई भी थोड़ी देर बाद तितलियों के पीछे–पीछे भागने–दौड़ने लगा। सरल ने मुड़कर अकेले बैठी गुड़िया की ओर देखा तो एकदम घबरा गया। अपनी सारी नाराजगी भूल कर उसने अशोक को आवाज दी परन्तु अशोक काफी दूर था वह सरल की आवाज

नहीं सुन पा रहा था।

एक काला साँप उसी बेंच पर चढ़ रहा था जिस पर नन्हीं गुड़िया बैठी थी। समय बहुत कम था अतः सरल तेजी से गुड़िया के पास पहुँचा और अपनी बैसाखी से उस साँप को मारने का प्रयास करने लगा।

दूर खेल रहे अशोक ने देखा तो उसे लगा सरल उसका बदला उसकी छोटी बहन को मारकर लेना चाहता है। वह गुस्से से भर उठा और सरल को मारने के लिए दौड़ा; परन्तु पास पहुँच कर वह स्तब्ध रह गया। आत्मग्लानि से उसका सिर झुक गया।

जिस सरल को कभी उसने उसके नाम से भी नहीं पुकारा था, सदा ही "तीन टाँग का आदमी" कहकर उसका मजाक उड़ाता रहा था। वही सरल अपनी शारीरिक कमी के बावजूद अपनी उसी बैसाखी से उस साँप को मारने का प्रयास कर रहा था जो मौत बनकर उसकी प्यारी बहन की ओर बढ़ रहा था। अपना अपमान करने वाले की बहन के जीवन की रक्षा करने के लिए सरल ने अपनी जान को खतरे में डाल दिया था। साँप उसकी बैसाखी पर लिपट गया था। सरल ने तेजी से साँप सहित बैसाखी को दूर फेंक दिया।

सन्तुलन बिगड़ जाने से सरल डगमगा कर गिरने ही वाला था कि अशोक ने आगे बढ़कर उसे अपने हाथों का सहारा दे दिया।

"सरल..... मुझे माफ कर दो।" अशोक का स्वर पश्चाताप से भरा था।

"...ह....ह....." तेजी से घटे घटनाचक्र से सरल हाँफ रहा था।

"सरल.... मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। मैंने हमेशा तुम्हें सताया और तुमने मेरी बहन को नई जिन्दगी दी। मैं ...."

"अशोक, मैंने जो कुछ भी किया वह अपना कर्त्तव्य समझ कर किया है।"

"अब क्या तुम मेरा एक काम कर दोगे ?"

"हाँ–हाँ, बोलो सरल। तुम्हारा कोई भी काम करके मुझे खुशी होगी।" अशोक जल्दी से बोला।

"मेरी तीसरी टाँग उठा दो। मैं उसके बिना नहीं चल सकता।"

"मुझे शर्मिन्दा मत करो मित्र" कहते हुए अशोक ने हाथ जोड़ दिये।

"अशोक तुमने मुझे मित्र कहा है तो पिछली सब बातों को भूल जाओ। मुझे खुशी है मुझे एक मित्र मिला।"

डबडबा आयी आँखों से सरल की ओर देखता हुआ अशोक बोला–

"सरल, मैं आज तक तुम्हें अपने से कम समझने की भूल करता रहा। आज तुमने सिद्ध कर दिया मैं कितना गलत था। तुम हिम्मत में, क्षमाशीलता में और मानवता में मुझसे कितना बढ़कर हो। यह मेरा सौभाग्य है कि तुम मुझे अपना मित्र स्वीकार रहे हो। मुझे हमेशा तुम्हारे जैसा नेक और बहादुर मित्र पर गर्व रहेगा।"

दोनों ने एक दूसरे को गले से लगा लिया। सरल की आँखों में खुशी और अशोक की आँखों में पश्चाताप के आँसू झिलमिला रहे थे। □

– द्वारा श्री राकेश चन्द्रा, अपर जिलाधिकारी (वित्त/ राजस्व), गाजीपुर–२३३००१ (उ० प्र०)

सन्तों की शिक्षा

- कु० अंशु शुक्ला

करो सदा उपकार सभी पर,
निज कर्त्तव्य समझकर।
निर्धन का कल्याण करो तुम,
अपना धर्म समझकर।।
सत्य–मार्ग पर चलते जाना,
धैर्य हृदय में धरकर।
सोच समझकर कदम बढ़ाना,
गिरना नहीं फिसलकर।।
काम, क्रोध और लोभ मोह से,
रहो हमेशा बचकर।
प्रेम, दया, करुणा, नैतिकता,
ले लो मित्र समझकर।।
मानव हो मानव सेवा कर,
मानव का कल्याण करो।।
मानवता को धर्म मानकर,
मानव के दुःख–दर्द हरो।।
ये शिक्षाएँ हैं सन्तों की,
इनको जब अपनाओगे।
मेरे प्यारे बच्चो तब तुम,
महापुरुष कहलाओगे।।

– ३, गोविन्द गंज, दतिया (म०प्र०) ४७५६६१

चोरी का दण्ड

— तृप्ति शुक्ला

बहुत समय पहले की बात है। भारत के किसी राज्य में धनञ्जय नामक बहुत ही न्यायप्रिय और प्रजाप्रिय राजा राज्य करता था। उसे इस बात का घमण्ड था कि उसके राज में थोड़े से अपराध की भी कड़ी सजा होने से नाम मात्र भी अपराध नहीं होते। वह स्वयं वेश बदलकर प्रजा के हर सुख–दुःख की जानकारी रखता था। राज मन्त्रियों को भी यह डर रहता था कि राजा उनके क्रियाकलापों पर नजर रख रहा होगा। इसलिए वे भी पूरी ईमानदारी से काम करते थे। सर्वत्र राज्य में खुशहाली छायी थी।

एक बार रक्षक एक अपराधी को रस्सी से बाँधकर दरबार में लाये। राजा के पूछने पर रक्षक ने बताया कि इस व्यक्ति ने राज्य के एक जौहरी के यहाँ स्वर्ण की चोरी की है। राजा ने जब चोर से इसकी सच्चाई पूछी, तो चोर ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। राजा ने उसे कारागार में बन्द करने का आदेश दे दिया। चोरी में मृत्यु–दण्ड यह उस राज्य की प्रथा के अनुसार था। एक मास के बाद जब उस स्वर्ण चोर की फाँसी का दिन आया तो उसे कारागार से बाहर लाकर फाँसी के फन्दे के पास खड़ा किया गया। जब उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी तो वह कुछ न बोला। राजपुरुषों ने सोचा कि यह मृत्यु के भय से हमें अपनी बात नहीं बताना चाहता। वे राजा के पास गये और उनसे मृत्यु से पूर्व उस चोर के अपनी अन्तिम इच्छा न बताने का उल्लेख किया। राजा स्वयं उसकी अन्तिम इच्छा जानने के लिए उसके पास आया। राजा के पूछने पर वह बोला– राजन्! मैंने चोरी की, जिसका दण्ड आपने मुझे दिया है। मैं मृत्यु से नहीं डरता। मैंने अपराध किया था इसकी सजा तो मुझे मिलनी थी। पर मुझे खेद है कि मेरे पास जो विद्या है वह मेरे साथ ही समाप्त हो जायेगी। यदि कोई मुझसे वह विद्या सीख लेता, तो उसका कल्याण हो जाता। उसकी बात सुनकर राजा समेत सभी आश्चर्य में पड़ गये। तब राजा ने उससे कहा कि वह कौन सी विद्या है जो तुम किसी को बताना चाहते हो। चोर ने कहा– राजन्! वह विद्या है लोहे को सोने में बदलने की। मैं चाहता हूँ कि कोई मुझसे वह विद्या सीख ले ताकि मैं चैन से मर सकूँ। तब राजा ने कहा कि वह ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे वह विद्या सीखने के लिए तुम्हारे समक्ष लाया जाये। चोर ने कहा कि जिसने कभी चोरी न की हो वही इस विद्या को सीख सकता है। अन्यथा उसकी मृत्यु हो जायेगी। तब राजा ने अपने सेनापति से कहा– तुम इस विद्या को सीख लो क्योंकि मेरी नजर में तुम राज्य के सबसे ईमानदार व्यक्ति हो। तब सेनापति को याद आया कि पड़ोसी राज्य की विजय से जो धन प्राप्त हुआ था, उसमें से उसने थोड़ा धन चुरा लिया था। तब उसने कहा कि नहीं राजन्! मुझसे भी ज्यादा निष्ठावान् व्यक्ति तो राज पुरोहित जी हैं। आप उन्हीं से इस विद्या को सीखने को कहें। तब राजा ने राज पुरोहित से कहा– राज पुरोहित ने सोचा कि उसने भी भगवान् के चढ़ावे से कुछ गहने व धन चुराया था। तब उसने कहा कि राजन्! हम सबमें आप सबसे ईमानदार हैं। इसलिए आप ही यह विद्या सीख लीजिये। राजा सोच में पड़ गया क्योंकि उसने भी तो धोखे से राज्य प्राप्त किया था। यह सोचकर उसने भी कोई उत्तर नहीं दिया। तब चोर ने कहा कि– राजन् जब इस राज्य में हर किसी ने किसी न किसी प्रकार की चोरी की है तो मृत्यु–दण्ड सिर्फ मुझे ही क्यों दिया जा रहा है? उसकी बात सुनकर राजा को अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने उस चोर को कारागार से मुक्त कर दिया। ❐
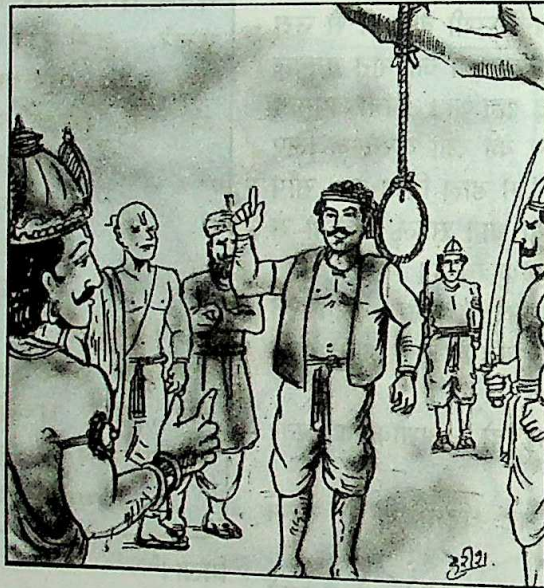
— सी/३, विवेक विहार कालोनी,
वी०आई०पी० रोड, कैंट, लखनऊ (उ०प्र०)

पानीदार रहे तो जीवन!

— कृष्ण शलभ

पानी है अनमोल रे बच्चो पानी है अनमोल!
सबकी प्यास बुझाता पानी,
तभी कहातीं नदियाँ दानी।
खेत पियें पी सोना उगले,
धरती पीकर होती धानी।
यह बादल का घर छोड़े तो बिजली पीटे ढोल।
पानी अगर न हो तो कैसे,
गुड़िया नाव चले।
रोटी कैसे बने बताओ,
कैसे दाल गले,
पानी नहीं मिले तो सबझो सबका बिस्तर गोल।
पानी से बिजली बनती है,
जिससे सब सुख पाते।
रेल, रेडियो, पंखा, कूलर,
बटन दबे चल जाते।
पानीदार रहे— तो जीवन, ये सच सबसे बोल!

— ५४२, नया आवास विकास, सहारनपुर (उ०प्र०)

प्यारे बदरा कब बरसोगे

— सतीश तिवारी 'सरस'

गरमी से तन—मन अकुलाए,
प्यारे बदरा कब बरसोगे।
शुष्क पड़े हैं नहर—सरोवर,
सूने—से हैं बाग—बगीचे।
पीने को पानी न मिल रहा,
कृषक खेत फिर कैसे सींचे।।
प्यासा चातक टेर लगाये,
प्यारे बदरा कब बरसोगे।
अवसादों से भरी जिन्दगी,
ऊपर से गरमी का मौसम।
जितनी तपती धरती उतना,
बढ़ता प्रति—पल अन्तर का गम।।
व्यथित—चित्त हरदम यह गाये,
प्यारे बदरा कब बरसोगे।
तड़प रहे खग और मवेशी,
तड़प रहे हैं मोर व दादुर।
ओ कजरारे बादल—तुम से
धरती है मिलने को आतुर।
गरमी में कुछ नहीं सुहाए,
प्यारे बदरा कब बरसोगे।।

— पत्रालय—मोहद (करेली), जिला—नरसिंहपुर (म०प्र०)—४८७२२१

प्रश्न हमारे उत्तर आपके

१. विश्व का सबसे ऊँचा ज्वालामुखी कहाँ है और उसका क्या नाम है?
२. अभिज्ञान शाकुन्तलम् के लेखक कौन हैं?
३. विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य कौन सा है और वह किस भाषा में है?
४. पंचतन्त्र के लेखक का नाम बताओ?
५. हरियाणा के किस गाँव में खुदाई के समय ५ हजार वर्ष पूर्व (हड़प्पाकालीन) अवशेष मिले हैं?
६. 'आजाद हिन्द फौज दिवस' एवं 'पृथ्वी दिवस' किन तारीखों को मनाया जाता है?
७. खालसा—पन्थ—स्थापना—त्रिशताब्दि पर सोने के सिक्के जारी करने वाली कम्पनी का नाम बताओ?
८. भारत का वह कौन सा राज्य है जहाँ १ अप्रैल १९९९ से पंचायती राज व्यवस्था लागू हो गयी है?
९. प्रेमचन्द का वास्तविक नाम बताओ?
१०. 'कामायनी' में कितने सर्ग हैं?

उपर्युक्त प्रश्नावली में कक्षा १२ तक के भइया/बहिन भाग ले सकते हैं। सर्व शुद्ध हल भेजने वालों में से लाटरी पद्धति से प्रथम विजेता का नाम निकाल कर उसे पुरस्कृत किया जायेगा।

प्रश्नों के उत्तर भेजने की अन्तिम तिथि २५ जुलाई ९९ है। उत्तर भेजते समय पत्र पर 'बालवाटिका— प्रश्न हमारे उत्तर आपके' अवश्य लिखें।

— प्रस्तुति : भूमिका

– हेमराज भट्ट 'कुमार'

टूटा घमण्ड

प्राचीन समय की बात है। एक राजा था, उसका नाम था दम्भोद्भव। वह अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी और वीर योद्धा था, उसने अपने बाहुबल से संसार के अनेक शक्तिशाली राजाओं को परास्त कर पूरी पृथ्वी पर अपने शासन का विस्तार कर लिया था।

सारी पृथ्वी को जीतने पर दम्भोद्भव को अपनी शक्ति पर घमण्ड हो गया, वह सोचने लगा कि संसार में उसके समान शक्तिशाली कोई दूसरा नहीं है। अभिमान के वशीभूत होकर एक दिन उसने अपनी सभा के, देश–विदेश भ्रमण करने वाले ब्राह्मणों से कहा, "हे ब्राह्मणो! बताओ क्या संसार में कोई ऐसा क्षत्रिय है, जो मुझसे समानता रखता हो? मैं उससे युद्ध करूँगा।" ब्राह्मण कहते, "राजन्! अधिक घमण्ड करना अच्छा नहीं है, शारीरिक शक्ति ही सब कुछ नहीं होती, संसार में अनेक बलशाली हैं, जो शरीर और आत्मबल में आपसे बहुत आगे हैं।" फिर भी दम्भोद्भव ब्राह्मणों से बार–बार आग्रह कर कहता कि वे ऐसा वीर योद्धा बतायें जो उससे बलवान् हो। वह उससे युद्ध कर उसे परास्त करना चाहेगा।
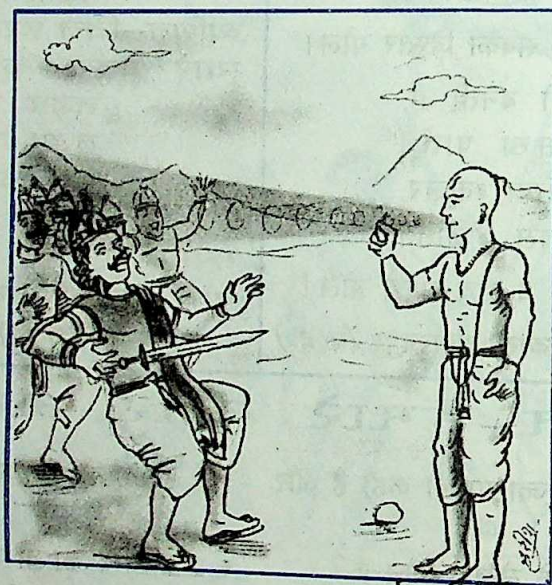
बार–बार ललकारने पर एक ब्राह्मण दम्भोद्भव से बोला, "राजन्! इस पृथ्वी पर नर और नारायण नाम के दो भक्त हैं। जो असीम शारीरिक और आत्मबल से परिपूर्ण हैं। आप उनकी समानता नहीं कर सकते। इस समय दोनों भक्त गन्धमादन पर्वत पर भगवान् विष्णु की भक्ति और कठोर तप में लीन हैं। आप उनके पास जाकर अपना शौर्य प्रदर्शन करें।" दम्भोद्भव अपनी विशाल सेना और अस्त्र–शस्त्र लेकर गन्धमादन पर्वत की ओर चल पड़ा।

दम्भोद्भव के गन्धमादन पर्वत पर स्थित नर–नारायण आश्रम में पहुँचने पर दोनों भक्त, नर–नारायण ने राजा का सेना सहित आदरपूर्वक स्वागत किया। उन्हें आसन दिया, जल पिलाया और कन्द–मूल–फलों से उनकी क्षुधा शान्त की। फिर वन में उचित स्वागत न करने की असमर्थता प्रकट की और राजा के आने का कारण पूछा।

राजा बोला, "हे नर–नारायण! मैंने सुना है तुम दोनों अत्यन्त पराक्रमी हो, मैंने संसार के अनेक बलशाली राजाओं को परास्त किया है और अब तुम्हारे साथ युद्ध की इच्छा से आया हूँ।" नर बोले, "हे राजन्! यह युद्ध–स्थल नहीं है। न ही हम किसी राज्य के राज्याधिकारी हैं। यह तो शान्त, निर्जन और निर्मल तपस्यास्थल है। न यहाँ धनुष–बाण हैं न ही सैनिक। यहाँ घृणा है न द्वेष, न ईर्ष्या है और न वासना। हम तो तपस्वी हैं और भगवान् की अविचल भक्ति और तप के लिए इस शान्त, एकान्त वन में आये हैं, संसार में अनेक वीर हैं। तुम कहीं और जाकर अपनी युद्ध की इच्छा पूरी करो।"

राजा दम्भोद्भव नर और नारायण को बार–बार युद्ध के लिए ललकारने लगा। बार–बार ललकारने और युद्ध के लिए उकसाने पर अन्त में नर बोले, "राजन्! तुम युद्ध ही चाहते हो, तो तैयार हो जाओ। मैं तुम्हारी युद्ध–पिपासा शान्त करूँगा। यह कहकर उन्होंने एक मुट्ठी सूखे तिनके हाथ में उठा लिये। वे शान्त, एकाग्र, ध्यान में बैठ गये और दम्भोद्भव के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे।"

दम्भोद्भव और उसकी सेना अनेकानेक अस्त्र–शस्त्रों से नर पर आक्रमण करने लगी। नर एक तिनका उठाते और अभिमन्त्रित कर दम्भोद्भव की सेना पर छोड़ देते। उन सूखे तिनकों से राजा के अस्त्र निस्तेज होने लगे। वे बीच मार्ग में ही कट जाते, सैनिकों के हाथ–पैर, नाक–कान आदि अंग कटने लगे और सेना धराशायी होने लगी। तिनकों से अपनी सेना का ऐसा संहार होते देख राजा नर के चरणों में नत मस्तक हो गया। वह उनसे बार–बार क्षमा याचना करने लगा, राजा बोला, "हे भक्तश्रेष्ठ! मैं पराजित हुआ। मुझे क्षमा करो और कृपा

करके बताओ कि ये सूखे तिनके इतने शक्तिशाली किस प्रकार हैं? नर बोले, "हे राजन्! झूठा अभिमान मत पालो, विद्वान्, वेदानुयायी ब्राह्मणों के बताये मार्ग पर चलो, स्वयं को पहचानो, आत्मज्ञान प्राप्त करो और अपनी इच्छाओं को जीतो।"

नर आगे बोले, "किसी का अनादर मत करो चाहे वह तुमसे छोटा ही क्यों न हो। किसी की शक्ति अथवा कमजोरी जाने बिना उसका अपमान मत करो। अपनी प्रजा का पालन करो। पवित्र और दयालु बनो। भगवान् की भक्ति से आत्मबल प्राप्त करो। शारीरिक शक्ति से अधिक शक्तिशाली, तपस्या से प्राप्त आत्मबल होता है। इन सूखे तिनकों में तपस्या की शक्ति है, जो शारीरिक शक्ति से श्रेष्ठ है।

दम्भोद्भव का घमण्ड टूट चुका था, उसने नर नारायण के चरणों में मस्तक नवाया और अपने राज्य में लौट आया और अभिमान त्याग कर सुखपूर्वक राज्य करने लगा।" ▫

— श्री शशि भूषण बडोनी

६६, कालेश्वर मार्ग, जोशियाड़ा, उत्तरकाशी

बादल भैया

— अम्बरीष कुमार दुबे

आओ बादल भैया आओ।
जमकर तुम पानी बरसाओ।।
हर प्राणी गर्मी से व्याकुल।
तुम्हें निहारे होकर आकुल।।
उनको राहत देने को तुम,
जल्दी अपना दल ले आओ।
आओ बादल भैया आओ।।
सूख गये सब ताल–तलैया,
प्यासी खड़ी हमारी गइया।
लेकर गगरी पानी की तुम।
उसकी प्यास बुझा जाओ।
आओ बादल भैया आओ।।
सूख रहे हैं पौधे सारे,
मोर, पपीहा तुम्हें निहारे।
हरा–भरा धरती को करने।
मोती–बूँद लुटा जाओ।
आओ बादल भैया आओ।।

— जनक रानी, मार्ग, करेहटा,
ऐशबाग, लखनऊ–२२६००४

होते हैं सम्बल वे युग के

— डॉ० गणेशदत्त सारस्वत

जिद नहीं करते हैं बच्चे—
अच्छे जो होते हैं।
उठते सुबह नहीं अलसाते।
जल्दी ही सोकर जग जाते।
अभिवादन करते हैं सबका—
हाथ जोड़कर शीश नवाते।
रखते हैं हिसाब पल–पल का—
समय नहीं खोते हैं।।
पढ़ने में मन खूब लगाते।
शाबाशी सबसे हैं पाते।
मीठी बोली सदा बोलते—
इसीलिए सबको हैं भाते।
हैं प्रसन्न रहते सदैव वे
कभी नहीं रोते हैं।।
नहीं किसी को कभी सताते।
सबसे हैं मित्रता निभाते।
करते है सम्मान बड़ों का—
छोटों से आदर हैं पाते।
मिलते फल वैसे ही जैसे—
बीज लोग बोते हैं।।
कोई निन्दित काम न करते।
निज कुल को बदनाम न करते।
जब तक लक्ष्य नहीं पाते हैं—
तब तक हैं विश्राम न करते।
होते हैं सम्बल वे युग के—
भार नहीं होते हैं।।

— सारस्वत–सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर
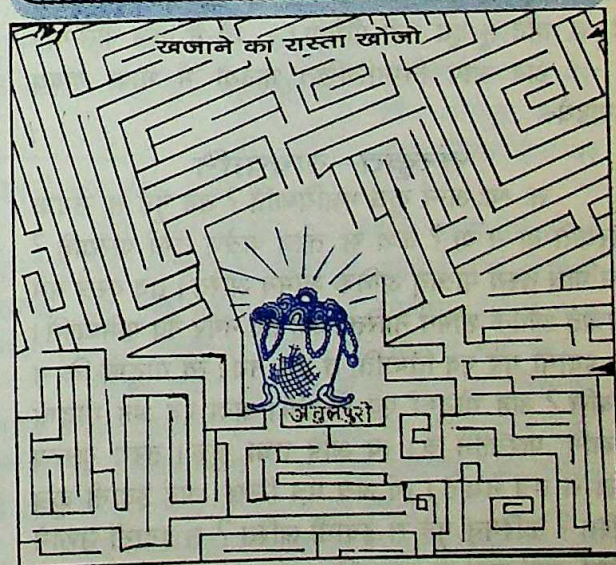
देववाणी शिक्षण

(भाग-२, पाठ-१)

[मार्च ९९ अंक में देववाणी शिक्षण के पाठ १८ व १९ आपके समक्ष प्रस्तुत किये गये थे। इस प्रकार पाठमाला का प्रथम भाग पूर्ण हो गया।

अप्रैल ९९ व मई ९९ अंक विशेषांक होने के कारण उनमें पाठमाला नहीं दी जा सकी। जून अंक पिछली सामग्री को समाहित करने में ही पूरा हो गया। अतः इस अंक से 'देववाणी शिक्षण' पाठमाला का द्वितीय भाग प्रारम्भ कर रहे हैं। – सम्पादक]

निम्नलिखित शब्द ध्यान में रखिये–

शब्द

पिबति = (वह) पीता है। **पिबसि** = (तू) पीता है। **पिबामि** = (मैं) पीता हूँ। **भक्षयति** = (वह) भक्षण करता है। **भक्षयसि** = (तू) भक्षण करता है। **भक्षयामि** = (मैं) भक्षण करता हूँ। **पास्यति** = (वह) पीयेगा। **पास्यसि** = (तू) पीयेगा। **पास्यामि** = (मैं) पीऊँगा। **भक्षयिष्यति** = (वह) भक्षण करेगा। **भक्षयिष्यसि** = (तू) भक्षण करेगा। **भक्षयिष्यामि** = (मैं) भक्षण करूँगा।

संस्कृत–वाक्यानि

१. अहं जलं पिबामि। २. त्वं जलं किं न पिबसि? ३. सः इदानीं दुग्धं नैव पिबति। ४. सः दुग्धं न पास्यति। ५. सः फलं न भक्षयिष्यति। ६. सः तत्र अन्नं भक्षयति। ७. यदि त्वं दुग्धं न पास्यसि। ८. तर्हि अहं जलं पास्यामि।

भाषा वाक्य

१. मैं जल पीता हूँ। २. तू जल क्यों नहीं पीता है? ३. वह अब दूध नहीं पीता है। ४. वह दूध नहीं पीयेगा। ५. वह फल नहीं खायेगा। ६. वह वहाँ अन्न खाता है। ७. यदि तू दूध नहीं पीयेगा। ८. तो मैं जल पीऊँगा।

अब आप निम्नलिखित वाक्यों में भाषा वाक्य बनाइये–

संस्कृत–वाक्यानि

सः श्वः अन्नं कुत्र भक्षयिष्यति? तव गृहे सः उदकं पास्यति वा न वा? कथं सः तस्य पात्रेण दुग्धं पास्यति? मम पात्रं तस्य पात्रात् अधिकं शोभनं अस्ति। तव वस्त्रं मम वस्त्रात् अधिकं शोभनं नास्ति। अहं तव नगरं नैव गमिष्यामि। सः इदानीं गृहे एव तिष्ठति, तं तत्र नय। त्वं गोदुग्धं किं न पिबसि? अहं गोदुग्धं एव पिबामि। सदा एव अहं गोदुग्धं पिबामि, पास्यामि च। त्वं अपि तथा कुरु। तस्य वृक्षस्य फलं स तत्र नयति। त्वं अत्र पत्रं लिख। अहं इदानीं कुत्र अस्ति? कस्मिन् गृहे स इदानीं अस्ति? स इदानीं उद्याने अस्ति, पुष्पं फलं च आनयति। त्वं अत्र आगच्छ, उपविश, पुस्तकं च पठ।

निम्नलिखित शब्द अब स्मरण कीजिये–

शब्द

वानरः	=	बन्दर	लेखः	=	लेख
बिडालः	=	बिल्ली,	दण्डः	=	सोटी
मार्जारः	=	बिल्ली,	कूपः	=	कुआं
आतपः	=	सूर्यकिरण, धूप	कुमारः	=	लड़का
मन्त्रः	=	मन्त्र	अपराधः	=	गुनाह
वेदः	=	वेद	बालः:	=	लड़का

अब इनका वाक्यों में उपयोग कीजिये–

संस्कृत–वाक्यानि

१. तत्र पश्य, वानरः दुग्धं पिबति। २. तत्र वानरः नास्ति, स बिडालः अस्ति, यः दुग्धं पिबति। ३. तस्मिन् आतपे त्वं किं न गच्छसि? ४. तस्मिन् पात्रे त्वं किं करोषि? ५. स कस्य शोभनः कुमार? ६. सः हरिश्चन्द्रस्य शोभनः बालः।

भाषा वाक्य

१. वहाँ देख, बन्दर दूध पीता है। २. वहाँ बन्दर नहीं है, वह बिल्ली है, जो दूध पीती है। ३. उस धूप में, तू क्यों नहीं जाता? ४. उस पात्र में तू क्या करता है? ५. वह किसका सुन्दर लड़का है? ६. वह हरिश्चन्द्र का सुन्दर लड़का है।

अब निम्नलिखित वाक्य आप पढ़ते ही समझ सकते हैं–

सन्धि किये हुए वाक्य

तव पुस्तकमहं तत्र नयामि। स मम फलमत्रानयति। गोपालो गोदुग्धं कुत्र नयति? भीमसेन इदानीं यत्रास्ति, तत्र त्वमधुना न गच्छ। यत्र मम बिडालोऽस्ति, तत्र त्वमिदानीमेव गोदुग्धं नय। सुवर्णस्याभूषणं कः करोति? मया सुवर्णस्याभूषणं कदापि न कृतम्। मम गृहे एकः पुरुषोऽस्ति तव पात्रमत्राऽऽनय।

☆

व्यंग्य

वीणापाणि विदेश को

– डॉ० लक्ष्मीकान्त पाण्डेय

देवर्षि नारद सारंगी बजाते ब्रह्मा जी के धाम में पहुँचे। नाभि–कमल पर ब्रह्माजी और श्वेत कमल पर सरस्वती जी वहाँ विराजमान थीं। सबसे पहले सरस्वती जी का ध्यान उनके उस अनोखे वाद्ययन्त्र की ओर गया। बिना अभिवादन किये नारद जी जब एक आसन पर चुपचाप बैठ गये, तो ब्रह्माजी को बोलना ही पड़ा– "कहो पुत्र! भूलोक के किस क्षेत्र से आ रहे हो, जो तुम सामान्य शिष्टाचार भी भूल गये हो।"

"भारतवर्ष से" नारद जी ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"अहा, देवभूमि से! भारत तो देवों के लिए भी दुर्लभ है" माता सरस्वती ने उत्सुकता से कहा– "कुछ नये समाचार भी लाये होगे।"

"इसे समाचार कहो या शोक सन्देश, लेकिन देवभूमि तुम्हारे लिए अनुकूल नहीं है माम" नारद जी ने उत्तर दिया।

"सो तो ठीक है, लेकिन हुआ क्या? यह तो बताओ। भारत में तो हमारे ही पुत्र बसते हैं। अभी हमारे एक भारत–पुत्र ने नोबेल प्राइज प्राप्तकर विश्व को आश्चर्य चकित कर दिया है।" सरस्वती ने कहा।

नारद जी ने सारंगी को धीरे से बजाया और फिर बोले– "जिसे तुम भारत–पुत्र कहती हो, वह भारत–पुत्र तो है, पर मेरी तरह विश्व–यात्री है। भारत में रहता, तो नोबेल प्राइज क्या पाता? अब तक वेतन के लिए हड़ताल करता और फिर हड़ताल के बदले वेतन माँगता और ये सब करते–करते अपने घर का अर्थशास्त्र ही नहीं सम्भाल पाता। भला हो उस बेचारे का, जो समय रहते देवभूमि को त्याग गया।"

> **"पर अब ऐसा नहीं होगा। भारत में सब कुछ हो सकता है, पर सरस्वती-वन्दना नहीं हो सकती। तुम्हारा नाम साम्प्रदायिक है। तुम्हारी लड़ाई लक्ष्मी से रहती थी न। लक्ष्मी के पुत्रों के सामने तुम वैसे ही दयनीय थीं। तुम्हारे पुत्र लक्ष्मी-पुत्रों के यहाँ नाक रगड़ते हैं, तब दो जून की रोटी की जुगत होती है। अब नन्हें–मुन्नों तक ही तुम सीमित रह गयी थीं, पर अब वहाँ भी..."**
>
> **"हाँ, हाँ, कहो।"**
>
> **"अब तुम उन विद्यालयों से भी गयीं, जहाँ किसी प्रकार तुमसे वर माँगा जाता था, 'वर दे' नारद जी ने कहा।**

ब्रह्मा जी ने बात को घुमाते हुए पूछा– "लेकिन मैं बात शिष्टाचार की कर रहा था। तुम मेरी अवज्ञा कर सकते हो, लेकिन अपनी माता की अवज्ञा भी कर दी! और फिर तुम्हारा वह वाद्य–यन्त्र? तुम्हारी वीणा कहाँ खो गयी।"

"वीणा को तो मैंने स्वयं तिलांजलि दे दी, वीणा में साम्प्रदायिकता की गन्ध आती है। मैं साम्प्रदायिक नहीं होना चाहता डैड...।" सरस्वती जी ने बात काटी– यह माम, डैड क्या है, तुम सीधे बात नहीं कर सकते?"

नारदजी ने थोड़ा गला साफ किया, फिर धीरे से बोले– "माते, जो मैं नहीं कहना चाहता था, उसे कहना ही पड़ेगा। भारत में तुम्हारा निवास खतरे से खाली नहीं है। तुम किसी दूसरे देश में चली जाओ। वहाँ तुम्हारी छवि ठीक नहीं है।"

"मुझे पता है। एक चित्रकार ने मेरा चित्र अनावृत रूप में बना दिया है। पर इससे क्या होता है?"

"बात हुसैन के चित्र की नहीं है माताश्री! उसने तुम्हारा चित्र ही अनावृत्त किया है; लेकिन अब तो तुम्हें उनके पास भी नहीं आने को मिलेगा, जिन्हें तुम सरस्वती–पुत्र कहती हो" नारद का संक्षिप्त तर्क था।

"लेकिन क्यों? अभी भी मैं ही विद्या की देवी हूँ। नारद! जब विह्वल–स्वर में कोई 'वर दे, वीणावादिनी, वर दे,' की अनुहार करता है, तो मुझे अतिशय प्रिय लगता है और मैं वहाँ स्वयं उपस्थित हो जाती हूँ।"

"पर अब ऐसा नहीं होगा। भारत में सब कुछ हो सकता है, पर सरस्वती-वन्दना नहीं हो सकती। तुम्हारा नाम साम्प्रदायिक है। तुम्हारी लड़ाई लक्ष्मी से रहती थी

न। लक्ष्मी के पुत्रों के सामने तुम वैसे ही दयनीय थीं। तुम्हारे पुत्र लक्ष्मी-पुत्रों के यहाँ नाक रगड़ते हैं, तब दो जून की रोटी की जुगत होती है। अब नन्हें-मुन्नों तक ही तुम सीमित रह गयी थीं, पर अब वहाँ भी..."

"हाँ, हाँ, कहो।"

"अब तुम उन विद्यालयों से भी गयीं, जहाँ किसी प्रकार तुमसे वर माँगा जाता था, "वर दे" नारद जी ने कहा।

प्रजापति बोले- "क्या भारत में शिक्षा-व्यवस्था ही समाप्त हो रही है।"

"नहीं! शिक्षा में सुधार हो रहा है। तय तो यह हुआ था कि अंग्रेजों की चली आती शिक्षा-व्यवस्था को समाप्त किया जाय; पर तय यह हो गया कि सरस्वती को शिक्षा से अलग किया जाय" नारद जी ने थोड़ा विस्तार से कहा।

"शिक्षा तो सरस्वती ही देती है, उनकी कृपा से ही शिक्षा प्राप्त होती है" प्रजापति बोले।

नारद जी ने कहा- "नहीं, भारत में शिक्षा सरस्वती की कृपा से नहीं प्राप्त होती, माँ लक्ष्मी की कृपा से मिलती है। जिन पर लक्ष्मी जी की कृपा है, वे पहले तो शिक्षा खरीदते हैं और पिताश्री! जिनकी आपने कपाल-क्रिया कर दी है, तो वे शिक्षित नहीं हो पाते और शिक्षितों को खरीदते हैं। शिक्षा खरीदने से शिक्षित खरीदना सरल भी है और सस्ता भी। इसलिए तुम्हारे पुत्र तो जो कुछ थोड़े-बहुत बचे थे, वे बिक गये और उन पर शासन करनेवाले अशिक्षित होने के कारण तुम्हारे विरोधी हो गये। उनका कहना है कि शिक्षा हम देंगे, सरस्वती नहीं। इसलिए तुम्हारे प्रवेश क्या, तुम्हारे अभिवादन पर भी पाबन्दी है।"

सरस्वती को कुछ हताशा हुई। लक्ष्मी के सामने उनकी हेठी हो रही थी; पर उन्होंने हिम्मत बाँधकर कहा- "ठीक है! भारतवासी भी देखेंगे, मेरे रूठने का क्या परिणाम होता है। मैं तो अदृश्य रहकर उनका विकास कर रही थी; पर अब भारत की सरस्वती एकदम लुप्त हो जायेगी।"

नारद बोले- "इसकी उन्हें परवाह नहीं। जब वे प्याज तक बाहर से मँगाते हैं, तो तुम क्या चीज हो, विद्या भी आयात कर लेंगे। वैसे भी लक्ष्मीपुत्रों को भारतीय शिक्षा पसन्द नहीं आती।"

सरस्वती को कुछ क्रोध आया। वे बोलीं- "मेरे विरोधियों का नाम तो बताओ वत्स!

"मैं उन्हें ऐसा शाप दूँगी कि उनकी कई पीढ़ियाँ में कोई अपना नाम तक नहीं लिख पायेगा। अपने अपमान का ऐसा बदला लूँगी कि..."

"माते! भारत में लोकतन्त्र है। वहाँ अशिक्षा तो अंग्रेजों ने ही दी थी। अब अशिक्षितों के समूह से जो नेता निकलेगा, वह कैसा होगा, तुम स्वयं समझ सकती हो। इसलिए तुम्हारी भाग्य-रेखा वे बनाते हैं, जिनसे तुम्हारा जन्म से विरोध है। फिर जिन पर तुम कृपा करती हो, वे उनके नौकर हैं और जो तुम्हारी सेवा करते हैं और शिक्षा देना ही जिनका कार्य है, वे उन नौकरों के नौकर हैं। इसलिए तुम्हारे लिए भारत में कोई स्थान नहीं है। फिर तुम पर एक आरोप भी है, तुम हिन्दू हो।"

"माते! भारत में लोकतन्त्र है। वहाँ अशिक्षा तो अंग्रेजों ने ही दी थी। अब अशिक्षितों के समूह से जो नेता निकलेगा, वह कैसा होगा, तुम स्वयं समझ सकती हो। इसलिए तुम्हारी भाग्य-रेखा वे बनाते हैं, जिनसे तुम्हारा जन्म से विरोध है। फिर जिन पर तुम कृपा करती हो, वे उनके नौकर हैं और जो तुम्हारी सेवा करते हैं और शिक्षा देना ही जिनका कार्य है, वे उन नौकरों के नौकर हैं। इसलिए तुम्हारे लिए भारत में कोई स्थान नहीं है। फिर तुम पर एक आरोप भी है, तुम हिन्दू हो।"

"मैं हिन्दू हूँ। यह हिन्दू क्या होता है? यह तो मैं पहली बार सुन रही हूँ। मैं तो अपने को देवी ही जानती थी।"

"देवी, देवता मैं नहीं जानता। भारत में वह सब हिन्दू कहा जाता है, जो भारत में पहले से है। तुम्हारी वीणा भी हिन्दू है, तुम्हारा हंस भी हिन्दू है और कमल और 'वर दे वीणावादिनी' वाला गीत भी। ये सभी साम्प्रदायिक हैं।"

"ये कौन कहता है?"

"यह मत पूछो, लेकिन माते! एक बात मान लो। हुसैन ने तुम्हें आधुनिका बना दिया है। तुम अपने उसी रूप में विदेश चली जाओ और वायलिन या गिटार बजाती हंस की जगह अगर विमान से वापस आओ माइकल जैक्सन का कोई गीत गुनगुनाते, तो शायद भारतीय तुम्हें स्वीकार कर लें; क्योंकि तब तुम धर्म-निरपेक्ष हो जाओगी। यह शुभ्रवस्त्रावृता रूप त्याग दो। हुसैन ने तुम्हें नया रास्ता दिखाया है। उसकी कलाकार दृष्टि ने तुम्हारा भविष्य का रूप देख लिया है।"

"ठीक ही तो कहता है नारद! भारत में सरस्वती की क्या आवश्यकता! मैंने तो बहुत पहले ही वहाँ अशिक्षा गरीबी को भाग्य के साथ जोड़ दिया था और तुम्हारे पुत्र

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

भक्ति और शक्ति के अवतार थे

गुरु गोविन्दसिंह

- डॉ० रामलाल वर्मा

भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि परिस्थितियों की पुकार के अनुरूप कभी देश में धार्मिक नेतृत्व अवतरित हुआ, तो कभी राजनीतिक नेतृत्व; कभी आर्थिक दुर्दशा को सँवारने की क्षमता वाला नेतृत्व देश में आया, तो कभी सामाजिक नेतृत्व। जहाँ तक गुरुगोविन्द सिंह जी का सम्बन्ध है, उनमें मीरी (शासक) और पीरी (गुरु) का मणिकांचन–संयोग है। इनके व्यक्तित्व में भक्ति और शक्ति का अद्भुत मिश्रण है। यह वैशिष्ट्य अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं, अपितु असम्भव है।

उपर्युक्त विशेषताओं से विभूषित विभूति गुरु गोविन्दसिंह का जन्म बिहार के पाटलिपुत्र नगर में गुरु तेगबहादुर जी के घर संवत् १७६३ को हुआ था। ५–६ वर्ष तक पटना रहने के बाद पिता के साथ आनन्दपुर (पंजाब) आते समय इन्हें देश भर के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों के दर्शनों का सुअवसर मिला। उस समय इनकी आयु छोटी थी, तब भी उन तीर्थों से इन्हें जो संस्कार मिले, उन संस्कारों ने इनके व्यक्तित्व–निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

पटना में ही इनके बाल्यकाल की एक घटना उल्लेखनीय है, जिससे प्रतीत होता है कि बाल्यकाल में ही इनके व्यक्तित्व में राष्ट्रीय स्वाभिमान, साहस, निर्भीकता आदि का समावेश हो चुका था। घटना के अनुसार पटना के नवाब की सवारी बाजार में आ रही थी। आगे चलते हुए चोबदार ने इन्हें नवाब को सलाम करने का आदेश दिया, जिसे सुनकर बालक गोविन्द राय ने नवाब को स्वयं तो सलाम नहीं ही किया, अपितु अपने साथ चल रहे साथियों को भी सलाम करने से रोक दिया।

यह घटना अपने आप में छोटी होते हुए भी इनके

भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि परिस्थितियों की पुकार के अनुरूप कभी देश में धार्मिक नेतृत्व अवतरित हुआ, तो कभी राजनीतिक नेतृत्व; कभी आर्थिक दुर्दशा को सँवारने की क्षमता वाला नेतृत्व देश में आया, तो कभी सामाजिक नेतृत्व। जहाँ तक गुरुगोविन्द सिंह जी का सम्बन्ध है, उनमें मीरी (शासक) और पीरी (गुरु) का मणिकांचन–संयोग है। इनके व्यक्तित्व में भक्ति और शक्ति का अद्भुत मिश्रण है। यह वैशिष्ट्य अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं, अपितु असम्भव है।

'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।'

'शस्त्र बल से सुरक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र का चिन्तन और मनन किया जा सकता है।'

जब–जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब मैं दुष्टों के विनाश और सज्जनों के उद्धार के लिए संसार में अवतार लेता हूँ, यह बात श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन के समक्ष उद्घोषित की थी–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत!
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

इससे मिलती– जुलती बात 'विचित्र–नाटक' में गुरु गोविन्द सिंह ने अपने जन्म और उद्देश्य के विषय में स्पष्ट की है :–

हमें ईश्वर ने धरती पर इसलिए भेजा है कि मैं जहाँ–जहाँ दुष्टों को देखूँ, उन्हें जड़मूल से नष्ट कर दूँ। आप सब लोग इसे मन में भली–भाँति समझ लें कि धर्म का प्रचार, सज्जनों का उद्धार तथा समस्त दुष्टों का विनाश ही मेरे जीवन का मूल लक्ष्य है–

हम इह कांज जगत माँ आए।
धरम हेतु गुरुदेव पठाए।
जहाँ तहाँ तुम धरम विचारौ।
दुसट देखियत पकरि पछारो।
यही काज हम धरा जनमम्।
समझ लेऊ सब मनमम्।
धरम चलावन सन्त उबारन।
दुसट सबन को मूल उपारन।

भावी जीवन के गौरवशाली इतिहास की ओर इंगित करने के लिए पर्याप्त है।

आनन्दपुर में रहते हुए बालक गोविन्दराय ने अपने पिता गुरु तेग बहादुर जी को हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बलिदान देने की जो महत्त्वपूर्ण प्रेरणा दी थी, उसने तो तेगबहादुर जी को आश्वस्त कर दिया था कि उनके बाद देश और धर्म की रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेने की क्षमता इस बालक में विद्यमान है। अब वह निश्चिन्त होकर धर्म के लिए बलिदान हो सकते हैं। घटना इस प्रकार है :

आनन्दपुर में काश्मीर से ब्राह्मणों के नेतृत्व में हिन्दुओं का जत्था गुरु तेगबहादुर के पास आया। उन्होंने बताया कि दिल्ली के शासक औरंगजेब का प्रतिनिधि शेर अफगन उन्हें धर्म–परिवर्तन के लिए विवश कर रहा है। उसके अत्याचारों से पीड़ित हम आपकी शरण में आये हैं। यह सुन कर गुरु तेगबहादुर जी को लगा कि इन लोगों की धर्मरक्षा के लिए किसी महान् व्यक्ति को बलिदान देना होगा। गुरु जी जब इस प्रकार के विचारों में मग्न थे, उनके समीप बैठे बालक गोविन्दराय ने पिता से कहा कि आपसे बड़ा और महान् व्यक्ति कौन होगा, जो बलिदान दे। आपको स्वयं ही बलिदान के लिए प्रस्तुत होना होगा। बालक गोविन्द की बात ने गुरु तेगबहादुर जी के मन को छू लिया और उन्होंने स्वयं बलिदान देने का संकल्प करते हुए काश्मीरी पंडितों को कहा कि वे जाकर शेर अफगन को कह दें कि यदि उनके गुरु तेगबहादुर जी हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान बनने को प्रस्तुत होंगे, तो वे भी उनके पीछे धर्म–परिवर्तन कर लेंगे। फलतः गुरुतेगबहादुर औरंगजेब के पास दिल्ली ले जाये गये और वहाँ हिन्दू धर्म न छोड़ने के कारण उन्होंने शीश दे दिया, पर धर्म न दिया, तभी तो कहा गया था कि "तेगबहादुर हिन्दू दी चादर", अर्थात् तेगबहादुर जी ने अपना शीष देकर हिन्दुत्व को बचा लिया। इस प्रकार बालक गोविन्द ने पिता को हिन्दू धर्म पर बलिदान होने की बात कहकर हिन्दुत्व की रक्षा में अपने पिता की बलि चढ़ाकर धर्म पर हौतात्म्य की शुरूआत की।

गुरु तेगबहादुर के अद्वितीय बलिदान के बाद मात्र ९ वर्ष की वय में ही इन्हें गुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। इससे कुछ लोग इनसे ईर्ष्या भी करने लगे। अनेक पहाड़ी राजाओं ने ईर्ष्यावश इन्हें युद्धों के लिए भी ललकारा, परन्तु उन्हें मुँहकी खानी पड़ी। इन युद्धों में इनके युद्ध–कौशल, राजनीतिक सूझ–बूझ तथा युद्ध करने वाले अनुयायी योद्धाओं ने इनके व्यक्तित्व को और भी निखार दिया। इन युद्धों के नेतृत्व की क्षमता का परिचय मिला। निरन्तर अनेक वर्षों के युद्धरत रहने के कारण कुछ योद्धा तंग आकर इनसे हट गये थे, पर अन्ततः वे इनके पास वापस लौट आये और अवज्ञा के लिए क्षमा माँगने को विवश हुए। गुरुजी ने अपने हृदय की विशालता एवं उदारता का परिचय देते हुए इन्हें क्षमा कर दिया।

गुरु गोविन्दसिंह मात्र ३ वर्ष तक यमुना के किनारे (हिमाचल प्रदेश) पौंटा साहब में रहे। शेष समय उन्होंने आनन्दपुर साहब में ही बिताया।

सम्वत् १७४६ के आस पास के ५–६ वर्ष शान्ति के वर्ष थे। इस समय का उपयोग उन्होंने रामायण, महाभारत, चण्डी–चरित्र, हनुमान् जी से संबद्ध रचनाओं के अध्ययन, मनन, चिन्तन में बिताया। इसी समय काशी में संस्कृत के अध्ययन के लिए भी उन्होंने कुछ सिंहों को भेजा। हिन्दुत्व की सांस्कृतिक चेतना की प्रतिमूर्ति गुरु गोविन्द सिंह ने भक्ति के क्षेत्र में व्याप्त रूढ़ियों एवं बाह्य आडम्बरों का खण्डन कर सरलता और स्पष्टता प्रदान की। उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व के माध्यम से औरंगजेब के अत्याचारों के विरोध करने का शौर्य, साहस और अदम्य उत्साह समाज को प्रदान किया। विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों के फलस्वरूप निष्प्राण, शौर्यहीन, हतप्रभ, सुषुप्त एवं मुमूर्षु हिन्दू जाति को अत्याचारों का प्रतिकार

सम्वत् १७४६ के आस पास के ५–६ वर्ष शान्ति के वर्ष थे। इस समय का उपयोग उन्होंने रामायण, महाभारत, चण्डी–चरित्र, हनुमान् जी से संबद्ध रचनाओं के अध्ययन, मनन, चिन्तन में बिताया। इसी समय काशी में संस्कृत के अध्ययन के लिए भी उन्होंने कुछ सिंहों को भेजा। हिन्दुत्व की सांस्कृतिक चेतना की प्रतिमूर्ति गुरु गोविन्द सिंह ने भक्ति के क्षेत्र में व्याप्त रूढ़ियों एवं बाह्य आडम्बरों का खण्डन कर सरलता और स्पष्टता प्रदान की। उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व के माध्यम से औरंगजेब के अत्याचारों के विरोध करने का शौर्य, साहस और अदम्य उत्साह समाज को प्रदान किया। विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों के फलस्वरूप निष्प्राण, शौर्यहीन, हतप्रभ, सुषुप्त एवं मुमूर्षु हिन्दू जाति को अत्याचारों का प्रतिकार करने के लिए क्रियात्मक पाठ भी पढ़ाया। इससे उनके व्यक्तित्व में विद्यमान धर्म–सुधारक एवं राजनीतिक नेतृत्व की शक्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन औरंगजेबी अत्याचारों से स्थायी रूप से समाज को निश्चिन्त करने के लिए उन्होंने जिस खालसा पन्थ की स्थापना की, वह भी इतिहास की एक अद्भुत घटना ही है।

करने के लिए क्रियात्मक पाठ भी पढ़ाया। इससे उनके व्यक्तित्व में विद्यमान धर्म–सुधारक एवं राजनीतिक नेतृत्व की शक्ति स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन औरंगजेबी अत्याचारों से स्थायी रूप से समाज को निश्चिन्त करने के लिए उन्होंने जिस खालसा-पन्थ की स्थापना की, वह भी इतिहास की एक अद्भुत घटना ही है। पराजित प्रताड़ित एवं निर्वीर्य बने हिन्दू समाज में जीवन का मंत्र फूँकने के लिए उन्होंने एक सजे दीवान में हिन्दू समाज में जातीयता और क्षेत्रीयता की विष बेलों का जड़ से उन्मूलन कर सर्वप्रथम धर्म के लिए बलिदान होने वाले पाँच व्यक्तियों को गुरु के समक्ष आने का आह्वान किया। गुरु के सामने उपस्थित होकर अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए आने वाले वीर थे– लाहौर का खत्री दयाराम, दिल्ली का जाट धर्मदास, द्वारका का धोबी हुकमचन्द, बीदर का नाई साहब चन्द, जगन्नाथ पुरी का कहार हिम्मतराय। गुरु जी ने इन पाँचों वीरों को साथ ले जाकर एक–दूसरे तम्बू में छिपा दिया। उनके स्थान पर पाँच बकरों का सिर काटकर बलिदान दे दिया, जिनकी प्रवाहित रक्त–धारा से दीवान में उपस्थित संगत को विश्वास हो गया कि पाँचों वीरों का बलिदान हो गया है। इस घटना के थोड़ी देर बाद पाँचों वीरों को संगत के सामने प्रस्तुत कर गुरु जी ने उन्हें नमन कर सम्मानित किया, जो बाद में 'पंज प्यारे' के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरुजी ने उन्हें गुरुत्व प्रदान किया और उन्हीं के हाथों से अमृत पान कर उन्हें प्रतिष्ठा प्रदान की। इस प्रकार एक नये पन्थ का निर्माण कर उन्होंने मृतप्राय जाति में संजीवनी का संचार किया और उन्हें पाँच ककार (कक्के) कड़ा, कच्छा, कंघा, कृपाण, और केश धारण करने की आज्ञा देकर नवीन सेना की स्थापना की।

यह गुरुजी का ही आशीर्वाद था कि नये उत्साह से सम्पन्न खालसा सेना ने गुरु जी के समय में और उसके बाद मुगल सेना और ब्रिटिश सेना के साथ सैकड़ों युद्ध करके अपने जीवट का परिचय दिया। इस प्रकार चिड़ियों से बाज लड़ाने का गुरुजी का आप्तवचन सार्थक हो पाया।

खालसा पन्थ की स्थापना ने औरंगजेब सरीखे हिन्दू–विरोधी शासक को और भी बेचैन कर दिया। उसने आनन्दपुर को घेरने और गुरुजी को पराजित करने के लिए अनेक सेनापतियों को विशाल सेना देकर भेजा। इधर दो मसन्दों के छल से गुरुजी के दो साहबजादे सरहिन्द के नवाब के यहाँ पहुँचाए गये, जिन्होंने हिन्दू धर्म छोड़ने की अपेक्षा अपने को दीवारों में चुना जाना स्वीकार कर अपने यशस्वी और तेजस्वी पिता की धर्मध्वजा को और भी ऊँचा उठा दिया, जबकि हजारों योद्धाओं के साथ गुरु जी के दो साहबजादे युद्ध में खेत रहे। चारों बच्चों के

दुःख हरने के नाम पर

– कुमुद

हे ईश्वर!
आज तेरी धरती पर
धर्म के नाम पर भी
क्रय–विक्रय होता है
दुःख हरने के नाम पर
झूठा स्वाँग रचा जाता है
देवेन्द्र को 'डेविड' बनाकर
मानवता का उपहास
उड़ाया जाता है
अनगढ़ पत्थरों को
अनजाने में ही
ईसाइयत में तराशा
जाता है
रोको! वरना
कल भाई को ही
भाई से लड़ाया जायेगा
यीशू के एजेण्टों द्वारा
भारत को रक्त की धार में
नहलाया जायेगा।

– आदर्श नगर, नजीबाबाद, जनपद–बिजनौर (उ०प्र०)

बलिदान के बाद युद्ध से लौटे गुरुजी ने अपनी पत्नी को बेटों की शहीदी पर जो उत्तर दिया, वह इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों में अंकित है–

इन पुत्रन के कारणे वार दिये सुत चार।
चार मुए तो क्या हुआ जीवित कई हजार।।

उन्होंने भारतीय–संस्कृति के अनुसार अपनी उदारता और हृदय की विशालता का परिचय देते हुए सारे योद्धाओं को ही अपनी सन्तान कह कर खालसा वीरों को सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान की। इसीलिए गुरुजी को 'दशमेश पिता' भी कहा जाता है।

अनेक वर्षों तक युद्धों में रत रहने के उपरान्त गुरु जी ने पंजाब से बाहर देश के दक्षिण-क्षेत्र में जाकर रहने का मन बना लिया। दक्षिण भारत की ओर जाते हुए मार्ग में एक स्थान पर उनकी भेंट माधवदास वैरागी से हो गयी। गुरु जी ने उनकी रीति–नीति और व्यक्तित्व की परख के उपरान्त उन्हें वैराग्य छोड़ पंजाब में हिन्दुओं पर अत्याचार करनेवाले मुगलों से लोहा लेने की प्रेरणा दी। गुरुजी से प्रेरणा प्राप्त कर माधवदास ने बन्दा बैरागी बनकर अनेक वर्षों तक मुगल सेना से लोहा लेकर उसके

छक्के छुड़ा दिये और जीवन के आखिरी क्षण तक उनसे लड़कर प्राणोत्सर्ग किये।

इधर जब गुरुजी दक्षिण में जा रहे थे, तो सरहिन्द के सूबेदार ने दो पठानों को उनके पीछे भेज दिया, जो मौका मिलने पर उनकी हत्या कर दें। नान्देड़ में वे पठान उनके भक्तों और श्रद्धालुओं में मिल गये और गुरु जी के उपदेशों को श्रवण करने लगे। अचानक एक दिन अवसर पाकर एक पठान ने उनके पेट में छुरा घोंप दिया। गुरु जी ने बड़ी तत्परता से तलवार चलाकर उसे मार तो दिया, पर छुरे के घाव ने उन्हें बहुत दुर्बल कर दिया। बहुत दिनों बाद जाकर उनका जखम ठीक हो पाया। इसी बीच एक दिन कमान पर चिल्ला चढ़ाते हुए उनके पेट का घाव फिर खुल गया, जो अन्ततः प्राणान्तक सिद्ध हुआ।

अपना अन्त समय निकट देखते हुए गुरु जी ने अपनी शिष्य–मण्डली को एकत्र कर उन्हें उच्च आचरण और मर्यादापूर्वक धर्मपालन का संदेश देकर विधिपूर्वक गुरु ग्रन्थ साहब को गुरु पद पर आसीन करते हुए कहा कि अकाल पुरुष के आदेश से ही उन्होंने खालसा–पन्थ की स्थापना की थी। अब सब शिष्यों के लिए यही आदेश है कि वे उनके बाद गुरुग्रन्थ साहब को ही अपना गुरु मानें। गुरु ग्रन्थ को ही गुरु मानना चाहिए; क्योंकि इसी में गुरुओं की वाणी विद्यमान है। जो शिष्य प्रभु को मिलना चाहेंगे, उन्हें गुरु–वाणी ही मार्गदर्शन करेगी –

आगिया भइ अकाल की, तभी चलायो पन्थ।
सब सिक्खन को हुकम है, गुरू मानियो ग्रन्थ।।
गुरु ग्रन्थ जो मानियो, प्रकट गुराँ की देहु।
जो प्रभु को मिलबो चहै, खोज शबद में लेहु।।

गुरु जी समझते थे कि इस देश की संस्कृति में व्याप्त असीम श्रद्धा के फलस्वरूप शिष्य मंडली कहीं उनमें ईश्वरत्व की स्थापना कर ईश्वर–विमुख न हो जाए, इसलिए उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में उद्घोष किया था कि जो मुझे ईश्वर मानने की बात करेगा, वह नरक का अधिकारी होगा। इसी प्रकार उन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए खालसा पन्थ का निर्माण करते हुए उद्घोषित किया था कि–

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजै।
जगै धरम हिन्दू सकल भण्ड भाजै।।

प्रभु से प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा था कि प्रभु! आप आज्ञा दीजिए, मैं सकल जगत से तुरकों को मिटा दूँ और गोहत्या के पाप को संसार भर से समाप्त कर सकूँ–

यही देहु आग्या तुरक को मिटाऊँ।
गऊ घात का पाप जग से हटाऊँ।।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दुत्व के शत्रुओं से संघर्षरत गुरुजी ने शक्ति की आराधना करते हुए भगवती से यही वर माँगा था कि माँ! आपके आशीर्वाद से मैं युद्ध में ही शत्रुओं का संहार करते हुए प्राणार्पण करूँ। भारतीय संस्कृति एवं हिन्दुत्व की इस श्रेष्ठ एवं उज्ज्वल परम्परा का निर्वाह करते हुए ही इन्होंने प्राणों की बाजी लगाकर माँ–भारती की गौरवमयी परम्परा का निर्वाह करते हुए, अपने पिता, अपने पुत्रों और स्वयं का बलिदान कर भारतीय इतिहास में तीन पीढ़ियों का बलिदान देकर बलिदानियों की परम्परा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। इनका महान् बलिदान एक प्रकाश–स्तम्भ बनकर तब तक परवर्त्ती पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा, जब तक कि चन्द्र और दिवाकर संसार में प्रकाशमान रहेंगे। ❑

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दुत्व के शत्रुओं से संघर्षरत गुरुजी ने शक्ति की आराधना करते हुए भगवती से यही वर माँगा था कि माँ! आपके आशीर्वाद से मैं युद्ध में ही शत्रुओं का संहार करते हुए प्राणार्पण करूँ। भारतीय संस्कृति एवं हिन्दुत्व की इस श्रेष्ठ एवं उज्ज्वल परम्परा का निर्वाह करते हुए ही इन्होंने प्राणों की बाजी लगाकर माँ–भारती की गौरवमयी परम्परा का निर्वाह करते हुए, अपने पिता, अपने पुत्रों और स्वयं का बलिदान कर भारतीय इतिहास में तीन पीढ़ियों का बलिदान देकर बलिदानियों की परम्परा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। इनका महान् बलिदान एक प्रकाश–स्तम्भ बनकर तब तक परवर्त्ती पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा, जब तक कि चन्द्र और दिवाकर संसार में प्रकाशमान रहेंगे।

(पृष्ठ ६० का शेष) **वीणापाणि . . .**

के भाग्य में गुलामी लिख दी थी। भारत में न तो तुम्हारे पुत्रों के लिए स्थान है और न तुम्हारे लिए।"

"तो यह सब तुम्हारा किया धरा है बूढ़े" खीझकर सरस्वती बोलीं। "क्या करता देवी, मैं प्रजापति हूँ और भारत में प्रजातन्त्र है। वहाँ के प्रजापतियों की बात कैसे टाल देता! वे कहते हैं सब कुछ बदले, लेकिन शिक्षा न बदले; नहीं तो उन मूर्खों को सस्ते में नौकर कहाँ मिलेंगे।"

सरस्वती मौन होकर शून्य की ओर देखने लगीं और सोचने लगीं, अब नहीं सुनायी पड़ेगा– 'हे शारदे माँ'।

– ७१ बी, काकोमी बँगला, जूही, कानपुर

टर्मीनेटर या बाँझ बीज हमारी कृषि के लिए जान लेवा खतरा

– प्रो० कृष्ण स्वरूप वशिष्ठ,
प्रधान वैज्ञानिक (से०नि०)

वैज्ञानिकों ने अनेक प्रजातियाँ फसलों, फल, फूलों की संकर–विधि से प्राप्त की थी; पर सन् १९७० में एक नयी विधि का विकास किया, जिसमें मनचाहे गुण वाली प्रजातियाँ प्राप्त करने की सम्भावना की कोई सीमा नहीं थी। जैसे जुगनुओं के रात में चमकने वाले गुण को तम्बाकू के पौधों में स्थानान्तरण करके रात में चमकने वाली तम्बाकू की फसल तैयार की जा सकती है। इसे रिकांबिनेट डी०एन०ए० टेक्नालॉजी या "जिनेटिक इन्जीनियरिंग" या "जीन क्लोनिंग" का नाम दिया गया। इस विधि में गुण–सूत्रों में उपस्थित डी०एन०ए० को प्राप्त कर लिया जाता है, जो मनचाहे गुण लिये होता है, जिसे किसी भी प्रकार के प्राणी जैसे पेड़–पौधों या जीव–जन्तुओं में नियोजित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में एक विशेष जीवाणु एग्रो बैक्टीरियम ट्यूनि फौसीएन्स व कभी–कभी विषाणु या वाइरस का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की उच्चतम वैज्ञानिक कारीगरी करने वाले वैज्ञानिक तथा प्रयोगशालाएँ उन पर व उनके द्वारा बनायी गयी मनचाही प्रजातियों एवं उनके बीजों पर अपना वर्चस्व तथा सम्पूर्ण व्यापारिक हक (बौद्धिक सम्पदा अधिकार) चाहते हैं। हालाँकि जिन दो अमेरिकन प्रोफेसरों ने इस विधि को विकसित किया था, उन्होंने अमेरिकन प्रशासन के विधि विभाग के बार–बार जोर देने पर भी इस पर पेटेण्ट अधिकार लेने से इस आधार पर मना कर दिया था, कि उच्चतम वैज्ञानिक–ज्ञान भी मानवता की सेवा के लिए होता है। पर अब अमेरिकन कृषि विभाग तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नीति है कि नयी विकसित प्रजाति के बीज हर वर्ष फसल उगाने के लिए उन्हीं किसानों को प्राप्त हों, जो उन्हें विदेशी कम्पनियों से हर वर्ष मँहगे दामों पर खरीद सके। उसके लिए उन्होंने फसलों में बनने वाले बीजों में एक प्रकार की ताला प्रणाली लगा कर उन्हें उगने के अयोग्य बना दिया है।

> अब अमेरिकन कृषि विभाग तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नीति है कि नयी विकसित प्रजाति के बीज हर वर्ष फसल उगाने के लिए उन्हीं किसानों को प्राप्त हों, जो उन्हें विदेशी कम्पनियों से हर वर्ष मँहगे दामों पर खरीद सकें। उसके लिए उन्होंने फसलों में बनने वाले बीजों में एक प्रकार की ताला प्रणाली लगा कर उन्हें उगने के अयोग्य बना दिया है।

विधि का ज्ञान संक्षेप में

किसी भी जीव व उसकी विभिन्न किस्मों के गुणों का निर्धारण उस जीव या पौधों की कोशिकाओं में पाये जानेवाले गुण–सूत्रों (क्रोमोसोम) तथा उनमें उपस्थित एक जैविक–रसायन 'डी०एन०ए०' से प्राप्त होता है। यह ही समय–समय पर प्राणी की आवश्यकतानुसार कार्य करके उसके विभिन्न अंग बनाते हैं; आकार, रूप व गुणों का विकास करते हैं। जैविक रसायन डी०एन०ए० के एक समूह को 'जीन' कहते हैं जो प्राणी के गुणों व शारीरिक रचना के लिए जिम्मेदार होती है। इस प्रकार की कार्यकारी "जीनें" एक स्विच से नियन्त्रित होती हैं, जिसे "आपरेटर" कहा जाता है। स्विच का बन्द होना तथा खुलना एक प्रोटीन (जैविक–रसायन) के द्वारा होता है, जिसे "रिप्रेसर" कहते हैं। जब एक प्रकार का ताला "रिप्रेसर" पर लगा होता है, तब काम बन्द रहता है। इस ताले को बनाने का काम एक अन्य जीन करती है जिसे "रेग्यूलेटर" या I–जीन कहते हैं।

इस प्रकार का उच्चतम वैज्ञानिक-ज्ञान प्राप्त करने के बाद वैज्ञानिकों की आकांक्षाएँ मर्यादित सीमाएँ तोड़ने लगीं। किन्हीं भी जीव किस्म के विशेष गुणों को इच्छानुसार पास-पास लाया जाय, उन पर ताला या "आपरेटर जीन" भी लगाया जाय तथा ताले को खोलने, बन्द करनेवाली "रेग्यूलेटर जीन" भी साथ रहे। इसके लिए एक विशेष जीवाणु "एग्रोबैक्टीरियम" का प्रयोग किया गया, जिसमें पाये जाने गुण सूत्रधारों (डी०एन०ए०) के हिस्से, जिन्हें 'प्लाजमिड' कहा जाता है, एक विशेष गुण रखते हैं। वे एक पौधे के डी०एन०ए० से जुड़कर उसे दूसरे में लाकर जोड़ सकते हैं। इस प्रकार से मनुष्यों द्वारा मनचाहे गुणों वाले जीवधारियों व फसलों, फल, फूलों का बनना सम्भावित हो सका। इस प्रकार से नये जीन अभियान्त्रिकी (Genetic engineering) से बने जीवधारियों को "ट्रांसजैनिक" कहा गया। यह प्रविधि असीमित सम्भावनाओं से युक्त है।

अब उपभोक्ता-संस्कृति ने साधारण मानवों के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की लालच एवं शोषण की प्रवृत्ति को अन्तहीन बना दिया है। मानव-सेवा के लिए शोध की ललक समाप्त होती लगती है।

मानवीय लालच की पराकाष्ठा अब 'टरमीनेटर जीन' के रूप में प्रकट हुई है। इसमें ईश्वर प्रदत्त सभी फसलें कुछ लोगों की बपौती हो जायेंगी। साथ ही किसी टरमीनेटर जीन से युक्त किस्म उगाने पर उस फसल की अन्य देशी किस्में (भारत में किसानों के पास) भी कालान्तर में समाप्त हो जायेंगी; क्योंकि परागण के द्वारा टरमीनेटर जीन फसल की सभी किस्मों में कालान्तर में समाहित हो जायेंगी और फसल की बीज बनाने की क्षमता समाप्त हो जायेगी। ये हत्यारी "जीन" मूल फसल में नहीं होती है। इन्हें जीवाणु अथवा अन्य पौधों से निकाल कर फसलों में समाहित और नियोजित किया जा सकता है। तीन मार्च १९९८ को अमेरिकी कृषि विभाग व डेल्टा एण्ड पाईन लैण्ड कम्पनी ने इस हत्यारी जीन (नाम दिया "टरमीनेटर जीन") का पेटेण्ट लिया।

अब उपभोक्ता-संस्कृति ने साधारण मानवों के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की लालच एवं शोषण की प्रवृत्ति को अन्तहीन बना दिया है। मानव-सेवा के लिए शोध की ललक समाप्त होती लगती है।

मानवीय लालच की पराकाष्ठा अब 'टरमीनेटर जीन' के रूप में प्रकट हुई है। इसमें ईश्वर प्रदत्त सभी फसलें कुछ लोगों की बपौती हो जायेंगी। साथ ही किसी टरमीनेटर जीन से युक्त किस्म उगाने पर उस फसल की अन्य देशी किस्में (भारत में किसानों के पास) भी कालान्तर में समाप्त हो जायेंगी; क्योंकि परागण के द्वारा टरमीनेटर जीन फसल की सभी किस्मों में कालान्तर में समाहित हो जायेंगी और फसल की बीज बनाने की क्षमता समाप्त हो जायेगी।

कृषि वैज्ञानिकों को डर है कि विदेशों से चोरी-छिपे लायी जानेवाली उन्नत किस्मों में अनजाने से यह हत्यारी "टरमीनेटर जीन" आ गयी, तो हमें पता भी नहीं चलेगा, क्योंकि इसके लिए कोई जाँच (Quarantine) का तरीका हमारे पास नहीं है। उसका कोई प्रावधान आयात कानून में नहीं है।

इस विधि में तीन जीन कार्य प्रणालियों को पास-पास लाकर काम किया गया है। इसके द्वारा बीजों में भ्रूण का बनना रोका जाता है। बीज में एक उस विशेष जीन को सक्रिय कर दिया जाता है, जो प्रोटीन बनने के कार्य को बन्द कर देती है और बीज में भ्रूण (embryo) नहीं बन पाता है। एक प्रकार की भ्रूण हत्या। हालाँकि प्रकृति ने इस हत्यारी जीन के कार्य को रोकने के लिए एक अवरोधक भी बनाया है बहुराष्ट्रीय कम्पनी एक दूसरे प्रकार की जीन प्रणाली, जो जोड़-तोड़ एन्जाईम (Recombinase enzymac) बनाती हैं, का प्रयोग करके जीवित बीज, जिसमें भ्रूण हो, बनाती रहती है।

भारत को देश में कार्यरत अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी मोनसेण्टों के कारण खतरा हो सकता है; क्योंकि "टर्मीनेटर जीन" का पेटेण्ट लेने वाली अमेरिकी कम्पनी डेल्टा पाईन लैण्ड कम्पनी को "मोनसेण्टो" द्वारा खरीदने का समझौता हो चुका है। भारतीय कृषि-अनुसन्धान-परिषद् व राज्य सरकार से छिपाकर इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स, बंगलूर ने मोनसेण्टो कम्पनी से फसलों पर भी शोध समझौता कर लिया है, जो एक खतरनाक बात है। □

- ६३, तुलसी विहार, दयाल बाग, आगरा (उ०प्र०)

कितनी असंगत है बाइबिल !

– डॉ० हिम्मतसिंह गुगालिया

[ईसा मसीह का जीवन–चरित, जैसा बाइबिल में दिया गया है, अनेकानेक असंगतियों तथा विसंगतियों से भरा पड़ा है। वास्तव में मार्क, जॉन, मैथ्यू और ल्यूक इन चार व्यक्तियों की करामाती रचना है बाइबिल, जिसकी विश्वसनीयता अनेक योरोपीय विद्वानों की दृष्टि में भी सन्दिग्ध है। अनेक तो अब इस निष्कर्ष पर जा पहुँचे हैं कि ईसा नाम का कोई व्यक्ति कभी पैदा ही नहीं हुआ। यह तो उक्त चार धूर्त्त पाखण्डियों के खुराफाती दिमाग की उपज है। मजे की बात तो यह है कि कैसे पोप–तन्त्र के प्रपञ्चपूर्ण प्रबल प्रचार–तन्त्र ने गत पाँच सौ वर्षों में इस मिथक को एक वास्तविकता के रूप में परिवर्त्तित कर दिखाया और लोग उस पर सहज ही विश्वास भी करते चले गये। क्या अब यह अपरिहार्य नहीं हो गया है कि श्री अरुण शोरी जैसे सत्यशोधकों का एक मण्डल इस मिथक का भण्डाफोड़ तथ्यात्मक रीति से करे ? – सम्पादक]

यंग इण्डिया दिनांक २५–६–१९२४ में महात्मा गांधी का यह विचार आया था– "अन्य धर्मों के प्रति आदर का यह अर्थ नहीं है कि हम उनके दोषों से आँख मूँद लेवें।" पचहत्तर वर्ष पूर्व प्रकट किये गये गांधीजी के उपर्युक्त विचार आज भी उतने ही युक्तियुक्त हैं, जैसे उस काल में थे। सब धर्मों का आदर करने के साथ ही उनमें निहित विरोधाभासों एवं असंगतियों पर भी खुले दिमाग से विचार किया जाना चाहिए। हमें धर्म के यथार्थ की तो प्रशंसा करनी चाहिए और उसके ढकोसलों एवं व्यर्थ के विवादों को व्यर्थ मानकर अस्वीकृत कर देना चाहिए। बाइबिल के नये नियम में कई स्थानों पर विरोधाभास एवं असंगतियाँ हैं, जो अध्ययन करने पर स्वतः सामने आ जाती हैं।

बाइबिल के उद्भट विद्वान् जोसेफ फिट्जमेर ने अपनी पुस्तक– 'A Christological Catechim में बाइबिल के बीस महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का विश्लेषण कारणों सहित करते हुए यह निरूपित किया है– "सुसमाचारों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सचमुच में अल्प है।" वह एक प्रश्न पूछते हैं– "क्या यीशु ने परमात्मा होने का दावा किया है ?" फिर उसका उत्तर स्पष्ट करके बताते हैं– "सुसमाचारों ने ऐसा कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया है।" फिर भी त्रित्व (Trinity) का दावा यीशु के बारे में किया गया है, यह कहाँ तक औचित्यपूर्ण है ?

नये नियम के मत्ती २ : ५१ में बताया गया है– "उसने (जूडा ने) तब पैसे मन्दिर के फर्श पर फेंक दिये और चला गया और स्वयं को फाँसी लगा ली।" जबकि "प्रेरितों के काम" में जूडा को दुर्घटना के कारण मर बताया गया है। इस विरोधाभास का कोई उत्तर बाइबि के नये नियमों में दृष्टिगत नहीं होता है।

ऐसा ही गम्भीर विरोधाभास यीशु के क्रूस के ब में बाइबिल में आया है। मत्ती २७, ३२ एवं ३३ में वर्णन है "शहर के बाहर जाते समय उन्हें शिमौन नामक ए कुरेनी मिला। उन्होंने उसे बेगार में पकड़ा कि वह यी का क्रूस उठाकर ले चले। वे उस स्थान पर आये, 'गुलगुता' खोपड़ी का स्थान कहा जाता है।" जबकि मरकुस द्वारा १५, २१ एवं २२ में बताया गया है– "शिमौ नामक एक कुरेनी मनुष्य गाँव से आ रहा था। वह उध से निकला। उन्होंने उसे बेगार में पकड़ा कि वह यीशु क्रूस उठाकर चले। वे यीशु को गुलगता नामक जगह ले आये।" इधर लूका २३ : २६ में बताया गया है– "ज सिपाही यीशु को ले जा रहे थे, तब उन्होंने मार्ग में शिमौ नामक एक कुरेनी को पकड़ा, जो गाँव जा रहा थ उन्होंने उस पर यीशु का क्रूस लाद दिया कि वह उ उठाकर यीशु के पीछे–पीछे चले।" इसके विपरीत यूहन्ना १९ : १७ में वर्णन आया है– "तब सैनिक यीशु को ले गय यीशु अपना क्रूस उठाये उस स्थान तक बाहर गये, खोपड़ी का स्थान कहलाता है और इब्रानी (हिब्रू) 'गुलगुता'।" इस प्रकार यीशु के तीन प्रमुख शिष्य य मत्ती, मरकुस एवं लूका यह बतलाते हैं कि यीशु का क्रू शिमौन नामक कुरेनी 'गुलगुता' तक लादकर ले गया जबकि चौथा सुसमाचार लेखक यूहन्ना बताता है यीशु स्वयं अपना क्रूस उठाकर गुलगुता तक ले गये

न्होंने शिमौन की कोई चर्चा ही नहीं की है। इस प्रकार
र सुसमाचार लेखकों के वर्णन में तीव्र मतभेद उभरकर
ाये हैं। यहाँ यह भी उल्लेख करना उपयुक्त लगता है
 सुसमाचारों के ये चारों लेखक यीशु के समकालीन थे,
र उनके वर्णनों में यह महत्त्वपूर्ण अन्तर क्यों कर आया,
चार करने योग्य है? यीशु और क्रूस का काफी निकट
म्बन्ध है। वस्तुतः यीशु की पहचान क्रूस ही है, और यही
साई मजहब का पवित्र प्रतीक है। क्रूस के बिना यीशु का
ई चित्र या चिह्न महत्त्वहीन माना जाता है और उसी
स की घटना में असंगति का होना नये नियम के वर्णनों
 प्रश्न–चिह्न लगाता है।

नर्जीवित

यीशु का पुनर्जीवन ईसाई धर्म का अत्यन्त ही
ह्त्त्वपूर्ण तथ्य कहा जाता है। यीशु का महिमा–मण्डन
था उन्हें परमात्मा या परमात्मा का पुत्र सिद्ध करने का
र्जीवन सर्वोत्कृष्ट मुद्दा है। यदि यीशु क्रूस पर लटकाये
ाने के पश्चात् पुनर्जीवित नहीं हुए, तो यीशु का यह
वा कि क्रूस पर लटकाये जाने के बाद, तीसरे दिन वह
 उठेगा, असत्य ठहरता है और कुछ दिनों के अन्तराल
 यीशु को स्वर्ग में उठा लिया गया, यह भी असत्य हो
ाता है। यीशु का चमत्कार पुनरुत्थान ही है, यदि वह
हीं हुआ, तो यीशु के जीवन वृत्त में काफी गड़बड़ होगी।
मरस (Reimarus) ने अपनी पुस्तक 'wobfen buttel
agments' में, जो सन् १७७४ से १७७८ के बीच मुद्रित
 थी, यह बताया है, 'यीशु के इस करिश्मे पर ध्यान भी
ा बेकार है।' उन्होंने यीशु के पुनर्जीवन से स्पष्ट इंकार
या है।

डेविड फ्रैडरिच स्ट्रास ने अपनी पुस्तक 'The life
 Jesus, Critically Examined-Two Volumes' मुद्रित
रवायी थी, जिस कारण उसे विश्वविद्यालय के अध्यापन
र्य से हाथ धोना पड़ा था, में बताया है– 'यदि हम स्वयं
ष्ट हों, तो जो कभी ईसाई मतावलम्बियों का पवित्र
तेहास था, हमारे समकालीन प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए
था मात्र (मिथक) है।'

लूका २ : १६ में बताया गया है कि 'प्रभु के दूत के
थन पर विश्वास कर, चरवाहे वैतलहम गये।' उन्होंने
रियम, यूसुफ, तथा चरनी में उस बालक को लेटे देखा।
का २ : १७ में बताया गया है 'उन्हें देखकर उन्होंने यह
त, जो बालक के विषय में उनसे स्वर्गदूत ने कही थी,
कट कर दी।' जबकि मत्ती २ : १ में बताया गया है,
'राजा हेरोदेस के दिनों में यहूदा प्रदेश के बैतलहम गाँव
में यीशु का जन्म हुआ, तब पूर्व देशों से ज्योतिषी यरूशलेम
नगर में आये।' मत्ती २ : ९ एवं १० में वर्णन है– 'ज्योतिषियों
ने पूर्व में तारा देखा और उसी के साथ वे चले, जहाँ तारा
ठहर गया, उस घर के भीतर वे गये और उन्होंने उस
बालक को मरियम के साथ देखा और भूमि पर गिरकर
साष्टांग प्रणाम किया।' इस प्रकार लूका के अनुसार
चरवाहों ने यीशु को देखा, जबकि मत्ती के अनुसार
ज्योतिषियों ने। किसे सही ठहराया जावे? यीशु के चरित्र
वर्णन में तथ्यों की भिन्नता क्या यह नहीं दर्शाती है कि
बाइबिल मात्र एक कथा है?

मत्ती के सुसमाचार २ : १ एवं लूका के सुसमाचार
२ : ४ में यीशु का जन्मस्थान बैतलहम बताया गया है।
सन् १९६२ में पाये गये ईसवी सन् की दूसरी या तीसरी
शताब्दी के एक नक्काशीदार फलक में नाजरथ का वर्णन
आया है कि वह यीशु का जन्म–स्थल था। जब यीशु बड़ा
नाजरथ में हुआ, तो उसका जन्म भी वहाँ होना कोई
अनहोनी घटना नहीं मानी जा सकती है। अब प्रश्न
उठता है कि यीशु का जन्मस्थान किसे माना जावे बैतलहम
को या नाजरथ को? इससे यह लगता है कि यीशु को
राजा दाऊद के वंश से सम्बद्ध करने के लिए यह उपक्रम
किया गया है। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि
यूहन्ना एवं मरकुस ने यीशु के जन्म एवं जन्मस्थान की
चर्चा तक नहीं की है।

'शीहन' की दृष्टि में– 'ईसाई परम्परा में, परमात्मा
के साम्राज्य के मूल सन्देश का अत्यन्त मिथ्या वर्णन हुआ
है।' यह उद्धरण शीहन की कृति– 'First coming, How
the Kingdom of God became christianity' से उद्धृत
किया गया है। जॉन का यह कथन है– 'सुसमाचार नये
नियम का सबसे अधिक असंगत भाग है, जिसकी रचना
सबके अन्त में हुई थी।' इसको ज्ञातकर क्या ऐसा नहीं
लगता है कि 'नये नियम' का एक भी उद्धरण पढ़े जाने पर
ऐसा नहीं मिलेगा, जिसको पढ़े जाने पर आपको विरोधाभासों
एवं चुनौतियों का सामना न करना पड़े?' कुलेन मर्फी का
यह कथन काफी महत्त्वपूर्ण है।

उपर्युक्त कण्डिका के वाचन से क्या हम चार्ल्स
स्मिथ के इस कथन से सहमत नहीं हैं– 'विश्व के
अधिकांश मानवों को बाइबिल की असलियत का ज्ञान
नहीं है'? □

– ५७६, स्नेह नगर, इन्दौर–४५२००१

अभिमत

मैं 'राष्ट्रधर्म' का नियमित पाठक हूँ। यूँ तो पत्रिका का हर अंक संग्रहणीय होता है, परन्तु आपने पिछले कई अंकों से पता नहीं किन कारणों से **स्मरणीय दिवस** का कालम देना बन्द कर दिया है, क्योंकि यही एकमात्र ऐसी पत्रिका थी, जो हमें हमारे राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं महापुरुषों के जन्म व पुण्य-तिथियों के बारे में स्मरण कराती थी। कृपया (स्मरणीय दिवस) कालम शीघ्र ही प्रारम्भ करें।

— प्रकाश वीर आर्य

नन्दलाल चौराहा, गोविन्दनगर, कानपुर

'राष्ट्रधर्म' में संक्षिप्त लेख एवं कहानियाँ रुचिकर लगती हैं। क्योंकि कम समय में अच्छी जानकारियाँ प्राप्त हो जाती हैं। लेखकों द्वारा बढ़-चढ़कर भाजपा की प्रशंसा अच्छी नहीं लगती है। कुछ लेखक केवल राजनीतिक प्रशंसा ही लिखते हैं, उन्हें क्या कमियाँ नहीं दिखायी देती हैं?

बच्चों हेतु सामान्य-ज्ञान प्रतियोगिता का स्तम्भ प्रत्येक अंक में प्रकाशित किया जाना चाहिए। जिससे उनमें सामान्य-ज्ञान का विकास हो सके। यह हिन्दी, एवं विज्ञान विषयों पर विशेषकर।

— वैजनाथ सिंह

गंगा सिंचाई भवन, तेलीबाग, लखनऊ

'राष्ट्रधर्म' का मैं मासिक ग्राहक सन् ६४ से हूँ। 'राष्ट्रधर्म' के नवम्बर ९८ अंक के पृष्ठ ४२ में जो चार बिन्दुओं पर पाठकों से जानकारी चाही गयी है, उसमें मेरा एक सुझाव अनुभव के आधार पर यह है कि अक्सर किसी पर्व, त्यौहार या जयन्ती के अवसर पर तत् विषयक सामग्री, विषय अभिव्यक्ति के लिए जरूरत पड़ती है। परन्तु 'राष्ट्रधर्म' में तद् विषयक सामग्री पर्व या जयन्ती होने के बाद प्राप्त होती है। इससे उस विषय की नवीन बातें भैया/बहिनों को नहीं बता पाते हैं। अतः निवेदन है कि ऐसे पर्वों, व्रतों, जयन्तियों की सामग्री एक माह पूर्व अंक में प्रकाशित किये जायें तो शिक्षा जगत में उसका ज्यादा लाभ होगा।

— प्राचार्य स०शि०मं०

कुनकुरी, जशपुर (म०प्र०)

माह दिसम्बर १९९८ का 'राष्ट्रधर्म' प्राप्त हुआ। अपने स्वभावानुसार सर्वप्रथम 'बालवाटिका' का अध्ययन किया। परन्तु बच्चों के साथ अन्याय होता देख कष्ट हुआ। जैसा कि सर्वविदित है कि 'राष्ट्रधर्म' में बच्चों के लिए आठ पृष्ठ सुरक्षित रहते हैं, परन्तु इस बार आपने एक पृष्ठ हड़प लिया। उस पृष्ठ पर आपने पंचायती राज विभाग, उ०प्र०, लखनऊ का विज्ञापन प्रकाशित किया है। मेरे कहने का तात्पर्य कदापि ऐसा न लगाया जाय कि मैं पत्रिका में विज्ञापन प्रकाशित करने के विरुद्ध हूँ। 'राष्ट्रधर्म' में विज्ञापन प्रकाशित किया जाय, परन्तु बच्चों के हिस्से के पृष्ठों को न हड़पा जाय; क्योंकि कहा भी जाता है कि "बच्चे तो भगवान् की प्यारी मूरत हैं।"

'राष्ट्रधर्म' के कुछ सुधी पाठकों ने 'बालवाटिका' स्तम्भ के लिए मात्र दो पृष्ठ काले करने का सुझाव दिया है। ऐसे बन्धुओं से मैं करबद्ध निवेदन करना चाहूँगा कि सर्वप्रथम आप बच्चों के अधिकार पर हो रहे अनावश्यक अतिक्रमण पर मेरा साथ दें। जैसा कि आपको मालूम होगा अपना 'राष्ट्रधर्म' बच्चों के लिए पठनीय सामग्री आठ पृष्ठों में प्रकाशित करता है। परन्तु इधर कुछ महीनों से 'बालवाटिका' के पृष्ठ कम कर दिये गये हैं। मेरा 'राष्ट्रधर्म' परिवार से आग्रह है कि 'बाल वाटिका' स्तम्भ के लिए निर्धारित पृष्ठ संख्या में कटौती न हो। इसका सीधा और स्पष्ट कारण है कि 'बालवाटिका' में प्रकाशित कविता, कहानी, लघु कथा आदि न केवल 'रुचिकर' बल्कि 'शिक्षाप्रद' भी होती हैं।

— राधेश्याम गुप्त, रुद्रपुर (देवरिया)

नवम्बर ९८ के 'राष्ट्रधर्म' पृष्ठ ४२ पर पाठकों से अपेक्षित राय सम्बन्धित सूचना क्रमानुसार निम्नांकि रूप में आपकी सेवा में प्रेषित की जाती है

१. प्रो० बलराज मधोक व वचने त्रिपाठी के लेख, मधुरेण समापये सम्पादक की कलम से, प्रेरण प्रसं सामयिक सन्दर्भ, व्यंग्यात्मक लेख, दे की आजादी, ऐतिहासिक एवं राजनैति दृष्टिकोण सम्बन्धी स्तम्भ तथा श्री रा बहादुर विकल, दामोदर स्वरूप 'विद्रोह हरीशंकर दीक्षित, गोपाल सिंह नेपाल छैल बिहारी वाजपेयी, शिवाकान्त मि 'विद्रोही', किशोरी लाल व्यास 'नीलकण्ठ की कविताएँ।

२. भारतीय संविधान के आवश्य अनुच्छेदों का क्या स्तम्भ।

३. समग्र रूप से 'राष्ट्रधर्म' अच है। इससे अच्छी जानकारी मिलती है सर्वेश चन्द्र शर्मा के मधुरेण समापये क्यों बन्द कर दिये गये हैं? सामयि सन्दर्भ नियमित रूप से नहीं दिये जा हैं तथा उर्दू अखबारों से लेख, जो ए आध बार देने के बाद बन्द कर दिये ग यथासम्भव दिये जायें। केन्द्र, प्रदेश सरक की उपलब्धियों के साथ खामियों स्पष्ट रूप से उल्लेख निष्पक्ष रूप किया जाना चाहिए।

— हरी प्रसाद व

सी/६१४, श्रीनगर, सिवि लाइन, देवा मार्ग, बाराबं

आपके 'राष्ट्रधर्म' में पत्रि के सम्बन्ध में अपने विचार भेजने सूचना पढ़कर पत्र प्रेषित है। (१) राष्ट्र में नवीन सामग्री का पूर्णतः अभाव (२) केवल पुराने विचारों की लकीर पी जाती है। (३) आर०एस०एस० तानाशाही से मुक्त होकर लिखें तो अच होगा। (४) संघ के लोग इसे इसलि नहीं पढ़ते कि उन्हें सब कुछ मालूम कि आप क्या लिखेंगे। (५) गैर संघ लोग इसलिए नहीं पढ़ते; क्योंकि पत्रि में पढ़ने लायक कुछ होता ही नह (६) समस्याओं पर जैसे बेरोजगा जनसंख्या-विस्फोट, महिला-जग

ल–श्रम तथा वर्त्तमान कुशासन एवं ष्टाचार विषय में आप मौन रहते हैं।) भाजपा के कुशासन, मन्त्रियों का ष्टाचार तथा बनियों द्वारा जनता की ट आदि विषयों में मौन रहते हैं।

इसीलिए आपकी पत्रिका नमानस में पैठ नहीं बना सकी। संघ पंजे से मुक्त होकर लेख प्रकाशित करें अच्छा होगा।

– कु० ज्योति सिंह
जलालपुर, लखनऊ

पौष २०५५ (दिसम्बर १९९८) क देखकर बहुत सन्तोष हुआ, क्योंकि समाज, सभी के साथ न्याय करता 'ईशु मसीह का भारत–प्रवास एवं वास' निबन्ध मनु की "वेदोऽखिलो मूलम्" स्थापना से न्याय करता है, तो लिदास के समय के समाज का विवरण कर्षक है। एक बिन्दु प्रसिद्ध है कि ईशु लन्दा में पढ़े थे; एतद्विषयक लेख तो हर्ष हो, क्योंकि बुद्ध के क्षमावाद उपनिषद् के आत्मवाद ने ही ईशु का र्माण किया था। मिस्र में द्वितीय विश्वयुद्ध ल में बालुका–उत्खनन से ईशु के तपरक उपदेश प्राप्त हुए, जिनके कारण डिक्टस् मॉंटेक्रोसा ने उन्हें 'मोनिस्ट' द्वैतवादी) सिद्ध किया। वे वन में एकान्त न करते थे, जिसके कारण अनेक चात्य ईसाई उन्हें योगी मानते हैं। है कि ऐसे अद्वैतवादी या आत्मवादी ी के नाम पर सी०आई०ए० और ानरीज भारत की फूट और गरीबी का ण करते हुए धर्मान्तरण की राजनीति विकट खेल खेल रहे हैं।

– डॉ० रामप्रसाद मिश्र
पो०बा०न० ६११७, दिल्ली– ११००६१

दिसम्बर ९८ का सम्पादकीय महँगाई ! वाह महँगाई !! एक भविष्य सम्पादक के बेबाक विचारों की व्यक्ति है। आलू, प्याज तथा सरसों तेल जैसी अति आवश्यक वस्तुओं की काश चूमती महँगाई पर आपने अपने क्त लेखनी द्वारा प्रदेश तथा देश की कारों को जो फटकार लगायी है यही ादक का असली धर्म है। सरकार के निकम्मेपन एवं अदूरदर्शिता का ही परिणाम रहा विधानसभा चुनावों में भाजपा की शर्मनाक पराजय। जमाखोरों और चोरबाजारियों की पौ बारह तथा मनमानी देखकर जनता ने समझा कि सरकार की साँठ–गाँठ से महँगाई बढ़ रही है। भाजपा सरकारों के विरुद्ध किये जा रहे षड्यन्त्रों से सरकारें अनभिज्ञ रहीं, फलस्वरूप केन्द्र सरकार की दूरगामी उपलब्धियों पर पानी फिर गया।

– राघवेन्द्र त्रिपाठी
बम्भौर हाउस, बिसवाँ, सीतापुर

आपने 'राष्ट्रधर्म' के विषय में परामर्श सम्बन्धी विचार प्रेषण हेतु कंजूसी न बरतने की अपील की है। हमें आशा है कि आप भी शिष्ट शब्द प्रयोग में 'कंजूसी' न बरतेंगे। 'राष्ट्रधर्म' में संघी विचारधारा की जूठन के अलावा कुछ नहीं है। 'वन्देमातरम्' विषयक संघी घोषणा मात्र छलावा है। १९२५ से ४७ तक कोई भी संघी वन्देमातरम् कहकर न जेल गया न ही फाँसी पर चढ़ा। अतः संघियों द्वारा 'वन्देमातरम्' नाटक क्यों किया जा रहा है? अतीत के गौरवगान के पाखण्ड की अपेक्षा आप कुछ मौलिक, अर्थपूर्ण तथा सामयिक सामग्री प्रकाशित करें तो अच्छा होगा। स्पष्ट उक्ति के लिए आप अन्यथा न लेंगे।

– शक्तिधर त्रिपाठी
बदाली खेड़ा, मानसनगर, लखनऊ–२३

अहिंसक देश, शिकारी कम, फिर सिंहों के साथ दिलचस्प अनुभव जैसे लेखों की, वह भी अधिक पृष्ठों में आवश्यक नहीं। जुलाई अंक ९८।

'न्यायप्रिय न्यायाधीश' श्रीमान् जी और ऐसे ही प्रेरक–प्रसंग जो 'गागर में सागर' का काम करते हैं। अधिक आना चाहिए। नवम्बर– ९८

'चिट्ठी आई पेरिस से' का विस्तार अनावश्यक है। उसमें जितना लेख के 'चौखटे' में है और उसके साथ मान्य० अटल जी का व्रत ही पर्याप्त है। नवम्बर–९८

'पत्थर–पत्थर–पत्थर' सामान्य पाठक का तो सिर ही फूट जायेगा। प्राप्ति क्या होगा। इसे (भगवान्) शंकर ही जाने। नवम्बर – ९८

कथा–कहानियाँ कम आती हैं। इन्हें अंकों में अधिक स्थान दें। क्योंकि जनमानस की रुचि कहानियों के प्रति अधिक है।

विकल जी, विद्रोही जी की लेखनी को क्या कहें, जहाँ लिखते हैं, पढ़ते हैं, बस वही–वही दिखते हैं। मान्य० बलराज मधोक जी का लेख सर्वाधिक राष्ट्रोपयोगी है। ऐसे विस्तार में बहुत कुछ मार्गदर्शन मिलता है।

दृष्टिकोण (मेरा भी शीर्षक के आधार और राष्ट्र की अपेक्षा पर) निवेदन शीर्षक "राष्ट्र की अपेक्षा है" कि पुनः घर वापिस आ जाओ। जय भारत प्रेम जी का 'निन्दा' के साथ भूमि–भूरि का प्रयोग, यदि ठीक है तो मौलिक माँ गंगा पर सम्पादकीय, सहज, सरल और सबको बोधगम्य है। जहाँ श्री शुक्ल का 'शंकर मौलि विहारिणी...' विद्वत समाजोपयोगी है और आचार्यत्व प्रकट करता है।

सुझाव– विशेष 'राष्ट्रधर्म' प्रति अंक ११/– उचित नहीं है। घाटा विशेषांकों से पूरा करें। १२/– के स्थान पर १५/ रु० करें।

– राममोहन शर्मा 'मोहन'
मु०–गणेश जी, गीतगली,
जालौन (उ०प्र०)

विगत कई वर्षों से 'राष्ट्रधर्म' का पाठक हूँ। वैसे इसमें सभी लेख ज्ञानवर्धक हैं, लेकिन मेरी विशेष रुचि आदरणीय वचनेश जी के ऐतिहासिक लेखों को पढ़ने व मनन करने की है।

आपसे निवेदन है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर से प्रतिबन्ध हटाने की माननीय जस्टिस "बाहरी पंचाट" के निर्णय को भी आप क्रमबद्ध रूप से 'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित करके हम स्वयंसेवकों को ज्ञानवर्धन कराने की कृपा करें। पुष्करनाथ जी का लेख भी अच्छा है।

– किशोरी लाल गुप्ता
जमुनहाँ, श्रावस्ती

'राष्ट्रधर्म' का जनवरी अंक

मिला, पढ़कर खुशी हुई। सभी रचनाएँ राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत थीं। लेख कविताएँ मन को छू गयीं। मेरे विचार देश के कोने–कोने में जन–जन क 'राष्ट्रधर्म' एकता का मन्त्र फूँक रहा है।

– उमेश चन्द्र सिंह

मनकापुर, गोण्डा (उ०प्र०)

राजशेखर जी का लेख 'ज्योति र्व परिशिष्टांक' में पढ़ा, इतिहास की जानकारी प्राप्त हुई। लेख के शब्द–शब्द में गहराई है। चिन्तन की धार है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नेताजी सुभाष चन्द्र, गांधी के प्रत्याशी के खिलाफ कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव जीते, तब यही गांधी थे जिन्होंने कहा था कि मेरे प्रत्याशी (सीतारमैय्या) की हार मेरी हार है। इसका सीधा अर्थ है, गांधीवाद हार गया था व क्रान्तिवाद जीता था। महात्मा तो सुख–दुःख में समभाव रहते हैं लेकिन गांधी का दुःखी होना क्या उनके महात्मा होने का पर्दाफाश नहीं करता? भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु को फाँसी की हरी झण्डी गांधी ने ही तो दिखायी थी। भारत का विभाजन, पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देने के लिए अनशन करना कहाँ तक उचित है। 'राष्ट्र देवो भव'। राष्ट्र से बढ़कर कोई नहीं, गांधी भी नहीं। बिड़ला भवन में उन्होंने कहा था कि अब मेरी कोई नहीं सुनता। सुनने वाले नेताजी सुभाष के साथ आपने क्या किया था? क्या हम उनको भूल सकते हैं?

– प्रदीप

मेडिकल कालेज, कानपुर

जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर के अंकों को पढ़ रहा हूँ। एक से एक बढ़कर लेख, रचनाएँ हैं। इनके अनुरूप क्या देश, समाज, मानव की रचना हो सकेगी, जब कि राजनैतिक पतन सीमा पार कर चुका है। एक किरण 'राष्ट्रधर्म' के रूप में अवशेष है। जो सूर्य बन सके, ऐसी कामना करता हूँ।

– विक्रमादित्य सिंह

कंचनकुटीर, गोरा बाजार,
रायबरेली

'राष्ट्रधर्म' का 'वन्देमातरम् अंक' मिला। मुखपृष्ठ पर भारतमाता का दुर्लभ भावपूर्ण चित्र पाकर मन प्रसन्न हुआ। सम्पादकीय ने मन–मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया। छद्म बुद्धिजीवियों की आँखों पर पड़ा परदा शायद हटे, कटे। कहानी प्रभाव न डाल सकी। 'दृष्टिकोण' से लगा कि संविधान पर बहस एवं पुनर्विचार की आवश्यकता है। अन्य लेख शोधपूर्ण सामग्री के कारण पठनीय एवं मननीय हैं। 'बालवाटिका' श्रेष्ठ बाल रचनाओं से सुवासित है।

– प्रमोद दीक्षित 'मलय'

'ईशान', भवानीगंज, अतर्रा (बाँदा)

'राष्ट्रधर्म' का खालसा पंथ स्थापना विशेषांक (अप्रैल १९९९) पढ़ा। धन्य हो गये। आत्मा गद्‌गद हो उठी। खालसा पंथ का हिन्दू–धर्म रक्षा में योगदान स्मरणीय है। गुरु नानक से लेकर, गुरु गोविन्दसिंह ने मानवता व धर्मरक्षा व संस्कृति के लिए अपूर्व सराहनीय त्याग किया व ज्ञान ज्योति फैलायी। उनका उदात्त पावन चरित्र प्रेरक है।

– नारायण मघवानी

२४८ बी सिंधी कालोनी उज्जैन

'राष्ट्रधर्म' पत्रिका में अच्छी पाठ्य सामग्री पढ़ने के लिए मिली। मेरा सुझाव है कि रामचरितमानस पर एक स्थायी स्तम्भ भी यदि नियमित रूप से प्रत्येक मासिक में सम्मिलित कर लिया जाय तो सरल व सुबोधगम्य आध्यात्मिक सामग्री भी जन मानस को इसके माध्यम से मिलने लगेगी।

– पी० एन० शुक्ल

२४०, सिविल लाइन्स, उन्नाव

अप्रैल मास का "खालसा–पंथ विशेषांक" निःसन्देह केशधारी बन्धुओं के प्रति जो भ्रम निर्माण करने के प्रयत्न राष्ट्रविरोधी तत्व कर रहे हैं, उनको दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। आगामी अंकों में भी कुछ सामग्री खालसापन्थ से सम्बन्धित रहेगी ऐसा विश्वास है।

पृष्ठ ६५ गुरुद्वारा नानकमत्ता साहिब को उधमसिंह नगर जनपद की खटीमा तहसील में बताया गया है। जबकि नानकमत्ता सितारगंज तहसील में आता है। कृपया सही करने की कृपा करें। एक और तीर्थस्थल जो बहेड़ी जिले में किच्छा के पास नानकपुरी टाण्डा के नाम से प्रसिद्ध है उसका विवरण भी कहीं आ जाये तो अच्छा रहेगा। यह स्थान बहेड़ी, रामपुर, ऊधमसिंह नगर की सीमा पर है।

– नरेश कुमार

रुद्रपुर, (उधमसिंह नगर)

'राष्ट्रधर्म' का जनवरी १९९९ का अंक पढ़ा। पृष्ठ संख्या सत्रह पर प्रकाशित 'पाञ्चजन्य' का स्वर्ण–जयन्ती–समारोह' 'राष्ट्रधर्म' के निष्पक्ष एवं निर्भीक लेखनी को संदिग्ध बनाता है। अच्छा होता कि आप इस विषय में 'राष्ट्रधर्म' का एक पृष्ठ बेमतलब 'राष्ट्रवादी पत्रकारिता के शंखनाद' के नाम आरक्षित न करते।

यदि भूले–भटके आपने एक पृष्ठ 'पाञ्चजन्य' की स्वर्ण जयन्ती समारोह के नाम खर्च करने की सोच ही लिया तो बिना लाग–लपेट और पक्षपात के आपको सच्चाई प्रकाशित करना चाहिए। शायद आपको मालूम होगा कि 'पाञ्चजन्य' के पूर्व सम्पादकों में श्रद्धेय भानु प्रताप शुक्ल आदि को इस समारोह में आमंत्रित नहीं किया गया था। कारण जो भी हो यदि आप निष्पक्ष पत्रकारिता के ध्वजवाहक हैं तो इस कारण पर भी कुछ–कुछ प्रकाश पड़ना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भी कुछ कमियाँ हैं– प्रथम, इस पृष्ठ के बायें कालम की इक्कीसवीं पंक्ति में 'वाल' शब्द लिखा है जो कि 'वाले' होना चाहिए। द्वितीय, इसी पृष्ठ के दायें कालम की बाईसवीं पंक्ति में 'श्री' एवं 'तरुण विजय जी' के बीच 'शून्य' छपा है। गलतियों में तृतीय स्थान पृष्ठ की संख्या का है। आपने 'राष्ट्रवादी पत्रकारिता का शंखनाद' पृष्ठ संख्या सत्रह पर किया है जबकि 'राष्ट्रधर्म' की विषय सूची इस 'गतिविधि' के प्रकाशित होने की पृष्ठ संख्या सोलह प्रचारित करती है।

अन्त में आपके इस विचार से कि 'महापुरुषों में भी कुछ कमियाँ रहना मानवोचित हैं' मैं अपनी सहमति प्रकट

करते हुए कहना चाहूँगा कि आपकी गलतियों की तरफ मेरे द्वारा ध्यान आकृष्ट कराना 'सूरज' को 'दीपक' दिखाने के समान है, आशा है आप अन्यथा न लेंगे।

— भुजंग भूषण निगम
रुद्रपुर, देवरिया (उ०प्र०)

'**राष्ट्रधर्म**' पत्रिका मैंने पहली बार पढ़ी। भारतवर्ष की आत्मा से साक्षात्कार हुआ... ऐसी अनुभूति हुई पढ़ने के उपरान्त। आर्य संस्कृति की पूरी पवित्रता एवं हिंदू दर्शन की चमक का संगम पाया मैंने 'राष्ट्रधर्म' में और राष्ट्रीयता से लबालब भरा पाया इस 'राष्ट्रधर्म' नामक चेतना-तालाब को, साधुवाद! कृपया १८५७ की क्रांति के नायक मंगल पाण्डेय के बारे में विशेष लेख छापें....विशेषांक।

— तिरू वी०एम०ए० अय्यर वरू
पो०बा०नं० ८३, सिलीगुड़ी-१ डब्ल्यू.बी.

'**राष्ट्रधर्म**' मासिक पत्रिका का जनवरी अंक ५ जनवरी को मिला। इस अंक में सम्पादकीय से लेकर डाक्टर ब्रह्मदत्त अवस्थी लिखित 'भारत-स्थिति, आकार एवम् आकृति' आदि बहुत कुछ ज्ञानवर्धक पढ़ने लायक था। पर इस अंक में छपी श्री मदन मोहन पाण्डेय द्वारा लिखित कहानी "साधू पार्टी" ने मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया। किस प्रकार से रामराज्य का प्रलोभन देकर एक पैसेवाला कुशल व्यापारी तिकड़म लगाकर चुनाव जीत कर मंत्री बन जाता है उसके बाद मक्कार चाटुकारों के चंगुल में फँसकर स्वार्थ-विहीन, कर्मठ व सज्जन कार्यकर्त्ताओं की दुर्गति करने पर उतारू हो जाता है। यह कहानी ५ जनवरी को ही पढ़ी थी। उस दिन सायंकाल मन अति उदास था, क्योंकि दूरदर्शन पर समाचार आ गया था कि केन्द्र में वाजपेयी सरकार अध्यादेश लाकर पेटेन्ट संशोधन विधेयक लागू करने जा रही है। इस पेटेण्ट बिल के विरोध में, हम वैज्ञानिक वर्ष १९९५ से ही जन जागरण कर रहे थे व इसी कारण से मैं विज्ञान भारती में भी सक्रिय हुआ कि एक सार्थक मंच मिलेगा स्वदेशी जागरण मंच के साथ। इस विधेयक के आने से संयुक्त राज्य अमेरिका कृषि विभाग एवम् कुछ अमेरिकन बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत के किसानों पर फसलों व फल-फूलों के टर्मिनेटर बीज थोप देंगी। इन बीजों के चंगुल में फँसकर भारतीय कृषि सत्यानाश हो जाएगी।

— कृष्ण स्वरूप वशिष्ठ
कृ.अ. सेवा प्रधान वैज्ञानिक, आगरा

'**राष्ट्रधर्म**' अपने पथ पर ठीक चल रहा है। कुछ बहस या चर्चाएँ भी चलाएँ तो अच्छा होगा। पत्रिका की रोचकता बढ़ जाएगी। वैसे आपका संपादन अच्छा है। काफी सामग्री होती है।

— डॉ० रति सक्सेना
तिरुवनन्तपुरम् (केरल)

'**राष्ट्रधर्म**' का जनवरी ९९ अंक उत्कृष्ट एवं विचारोत्तेजक है। पठनीय, चिन्तनीय सामग्री से परिपूर्ण है। आवरण चित्र 'भारतमाता ग्राम-वासिनी' को चरितार्थ कर रहा है। चित्र से ममता, करुणा एवं तेजस्विता का आभास हो रहा है। 'बालवाटिका' की रचनाएँ बच्चों के चरित्र-निर्माण में निश्चय ही प्रेरक बनेंगी। 'राष्ट्रधर्म' बालकों के चरित्र निर्माण एवं उन्हें गतिशील बनाने में महती भूमिका प्रस्तुत कर रहा है।

— श्रीराम सिंह 'उदय'
वांसडीह, बलिया (उ०प्र०)

जनवरी ९९ माह का राष्ट्रधर्म मेरे समक्ष है। पृष्ठ १० पर माननीय हृदय नारायण जी दीक्षित का लेख एक सच्चे राजनैतिक आदर्शवाद की प्रेरणा प्रदान करता है। विद्वान लेखक ने अन्य दलों को एक गिरोह की संज्ञा प्रदान की है। तथा अपेक्षाकृत भा.ज.पा. को एक आदर्श दल माना है। पृष्ठ ३१ (इसी जनवरी ९९ के अंक में) पर कहानी में जो "साधू पार्टी" पर कहानी लिखी गई है, कहीं यह भाजपा ही तो नहीं है। साधू पा[र्टी के] कार्यकर्ता किस प्रकार से उत्पीड़ि[त किये] जाता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में [...] दिशाहीन राजनैतिक वातावरण का चरित्र चित्रण है।

श्री हृदय नारायण जी दी[क्षित ने] अपने लेख में अन्य दलों को (पृ[ष्ठ १० पर]) गिरोह के रूप में मान्यता [...] जिसमें गिरोह के लोग बन्दरबाँट [...] बताये गये हैं। इन गिरोहों के नेता [...] अंगरक्षक लेकर निकलते हैं तथा [...] छोटे कार्यकर्ताओं को बन्दूक के ल[ाइसेंस] दिलाना उनकी विवशता बताई [...] आज की साधू पार्टी के निष्[ठावान] कार्यकर्ताओं का मनोबल गिर [...] क्योंकि उनकी जायज समस्या[ओं का] निदान नहीं हो पा रहा है। गाँव में [...] उनकी सुरक्षा नहीं है। रात्रि को [...] डकैत खेतों पर काम नहीं करने दे[ते] शस्त्र लाइसेंस प्राप्त करना बड़ी [टेढ़ी] खीर है, क्योंकि बिना सुविधा शु[ल्क] वह सम्भव नहीं है। भा.ज.पा. (पृ[...]) की कहानी के अनुसार साधू पा[र्टी के] नेता समस्या के निदान के [...] आदर्शवाद का पाठ पढ़ाते हैं जबकि [...] विरोधी रहे अवसरवादी लोग इस [...] पार्टी (भा.ज.पा.) में प्रवेशकर अप[नी] जायज तथा नाजायज समस्या [...] नेताओं के द्वारा हल करा रहे हैं।

श्रीमान दीक्षित जी से [...] करना चाहूँगा कि जनवरी ९९ के [...] ३१ की कहानी "साधू पार्टी" अवश्य [...] तथा अपने निष्ठावान कार्यकर्ता[ओं का] मार्गदर्शन देने की कृपा करें।

पृष्ठ ४१ पर व्यंग्य "गरीबी के मायने" बहुत अच्छा लगा।

— ओम प्रकाश [...]
बसई, फतेहाबाद [...]

कमियाँ ढूढ़ें हमें बताएँ।
सर्वश्रेष्ठ पाठक कहलाएँ।

सरकारी अस्पताल बनाम...

- सुधीर ओखदे

अंततः उस सरकारी अस्पताल के इन्स्पेक्शन का दिन आ ही गया। जब से इस कसाईखाने का सरकार ने लोकार्पण किया है मुड़कर नहीं देखा कि जनता को समर्पित यह इमारत जनता का किस प्रकार शोषण कर रही है। घर से उठी बीमारी की चीखों को इस इमारत में किस प्रकार सदा के लिए शान्त कर दिया जाता है।

आखिर बीमार व्यक्ति चाहता क्या है, बीमारी से मुक्ति ही न। फिर उस अस्पताल का क्या दोष? वह न सिर्फ बीमारी से मुक्ति दिलाता रहा है; अपितु इस कष्टमय जीवन से भी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने का महान् कार्य करता रहा है।

वह तो दुर्घटना ही कहिये कि न जाने किस अशुभ घड़ी में उसका यहाँ ...दार्पण हुआ। दिखता तो सामान्य ही था; पर असामान्य निकला। अब सरकारी अस्पताल भी सरकार का ही एक अंग माना जाता है; पर यह मूर्ख सरकार से जवाब-तलबी की हिम्मत जुटा बैठा। अब भला सरकार भी किसी की बस में आती है! ऐसा होने लगे, तो चल चुकी सरकार।

उसे इलाज डाक्टर से कराना था और डाक्टर सदा की भाँति अपने निजी अस्पताल में मरीजों से निपट रहा था। यदि डाक्टर रोज उस कसाईखाने में बैठने लगे, तो उसका माधुर्य समाप्त नहीं हो जाएगा? उसे तो वह 'फिक्स डिपाजिट' की तरह अपने निजी अस्पताल के मरीजों के लिए रखता है। वहाँ के मरीज भी कितने तरोताजा लगते हैं। उनके सामने तो डाक्टर को कभी-कभी स्वयं पर बीमार होने की शंका होने लगती है।

निजी अस्पताल के मरीज फैशन परेड में भाग लेने की तरह वहाँ अवतरित होते हैं। महिलाएँ किसी सौन्दर्य-प्रतियोगिता की प्रत्याशी लगती हैं। यह सभी उच्च-पदस्थ अधिकारी अथवा सम्पन्न घरानों के होते हैं। डाक्टर मूर्ख तो हैं नहीं कि जानबूझकर फ्रिज को छोड़ घड़े का पानी पियें।

यह ठीक है कि उसकी नियुक्ति खैराती अस्पताल में हुई है, पर उसने डिग्री तो खैरात में नहीं ली हुई है न? अब खैराती अस्पताल में कार्य करने का यह मतलब थोड़े ही है कि वह खैरात बाँटने ही लग जाए। क्या किसान नेता खेती करता है? मजदूर नेता मजदूरी करता है? मन्त्री बनने के बाद हर मंत्री को इस देश की सम्पूर्ण भूमि सौंप दी जाती है और मन्त्री उस पर खेती कर अपने हिस्से का अनाज उगाह लेते हैं।

> आखिर बीमार व्यक्ति चाहता क्या है, बीमारी से मुक्ति ही न। फिर उस अस्पताल का क्या दोष? वह न सिर्फ बीमारी से मुक्ति दिलाता रहा है; अपितु इस कष्टमय जीवन से भी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने का महान् कार्य करता रहा है।
>
> × × ×
>
> क्या किसान नेता खेती करता है? मजदूर नेता मजदूरी करता है? मन्त्री बनने के बाद हर मंत्री को इस देश की सम्पूर्ण भूमि सौंप दी जाती है और मन्त्री उस पर खेती कर अपने हिस्से का अनाज उगाह लेते हैं।
>
> × × ×
>
> मरीज होकर नाराज होता है। मरीज को भी कहीं नाराज होने का हक है। बेवकूफ जानता नहीं कि यहाँ नाराज होने का अधिकार सिर्फ डाक्टर को है। यदि वह नहीं है, तो नर्स को है और यदि वह भी नहीं है, तो वार्ड ब्वाय को है।

हाँ; तो बात उस मरीज की हो रही थी, जो डाक्टर से ही अपना इलाज कराना चाहता था। उस समय अस्पताल में मात्र एक वार्ड बॉय उपलब्ध था। जो केवल इसलिए उपलब्ध था; क्योंकि शाम अभी ढली नहीं थी। शाम के बाद तो वह स्वर्ग में पहुँच जाता है। अंग्रेजी मिल जाए, तो बात ही क्या है। नहीं तो देसी ही सही।

और यदि उसका भी जुगाड़ नहीं हो पाया, तो अस्पताल में रखी दवाइयों से ही काम चला लेता है। वह जानता है कि किन दवाइयों में अल्कोहल की मात्रा अधिक है।

बात बढ़ गयी और वह मरीज नाराज होकर वहाँ से चला गया। दूसरे दिन जब उस घटना की खबर अस्पताल के कर्मचारियों को लगी, तो उन्हें दिन भर चर्चा करने का एक मसाला मिल गया। सभी विनोद से एक दूसरे से कह रहे थे कि मरीज होकर नाराज होता है। मरीज को भी कहीं नाराज होने का हक है। बेवकूफ जानता नहीं कि यहाँ नाराज होने का अधिकार सिर्फ डाक्टर को है। यदि वह नहीं है, तो नर्स को है और यदि वह भी नहीं है, तो वार्ड ब्वाय को है; और वह इन तीनों को धता बता कर नाराज होकर चला गया!

उस दिन सभी अस्पताल में आए मरीजों से पूछ रहे थे– भाई! नाराज तो नहीं हो? मरीज उस विनोद को विनय समझ का शर्मा जाते थे।

मरीज पढ़ा–लिखा था। अतः उसने स्वास्थ्य मन्त्रालय में अपनी शिकायत दर्ज करा दी। अस्पताल की अव्यवस्था का सम्पूर्ण कच्चा चिट्ठा उसमें वर्णित था। विभाग ने तुरन्त इसकी जाँच के गुप्त आदेश दिये, जिसे उस अस्पताल के सभी कर्मचारी गुप्तता से जानते थे कि जाँच कब होनी है।

अस्पताल की साफ–सफाई करायी गयी। रोगन किया गया। मरीजों से स्नेहपूर्ण व्यवहार का प्र... आरम्भ हो गया। एक बड़ी धनराशि की व्यवस्था ... बीच कर ली गयी।

नियमत समय पर जाँच कमेटी अस्पताल ... कहीं भी अव्यवस्था के दर्शन नहीं हुए। डॉक्टर अ... में मिला, नर्स सेवा में रत मिली और वार्डब्वाय ... मिला।

अगले दो दिन कमेटी ने सभी पर्यटन–स्थल ... अच्छे भोजन से स्वयं को तृप्त किया और संतुष्ट ... चली गयी।

अपने निजी अस्पताल में बैठे डॉक्टर को ... दिनों बाद समाचार मिला कि जाँच कमेटी ने ... अस्पताल की खूब सराहना की है।

जाँच कमेटी की रिपोर्ट आने के तुरन्त बाद पारम्परिक व्यवस्था आरम्भ हो गयी। ❒

–III/२ आकाशवाणी कालोनी ...
(महा०) ...

साभार

सुशील कालरा

सुशील कालरा

क्या किसी को द्वितीय विश्व–युद्ध की याद है। यदि नहीं, तो याद करें; यदि हाँ, तो ध्यान देकर याद करें। उस युद्ध मे प्रारम्भ में एक ओर ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, कुओमितांग, चीन और दूसरी ओर जर्मनी, इटली और सोवियत संघ थे। बाद में जर्मनी के विदेश मन्त्री हर वॉन रिबनट्रॉप की कूटनीति को मात देते हुए ब्रिटेन के विदेश मन्त्री सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने रूस को फोड़ कर अपनी ओर मिला लिया था और जापान पर्ल हार्बर पर आक्रमण करके जर्मनी का साथी बन गया था। ब्रिटेन और उसके युद्ध साथी देश 'मित्र–राष्ट्र' तथा जर्मनी और उसके युद्ध साथी देश 'धुरी राष्ट्र' कहलाते थे। पहले जर्मनी, फिर जापान से सहयोग लेकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने 'आजाद हिन्द फौज' और 'आजाद हिन्द सरकार' का गठन किया था। जापान के सक्रिय सहयोग से भारत में इम्फाल तक आजाद हिन्द फौज ने अपना झण्डा गाड़ दिया था और अण्डमान–निकोबार द्वीप–समूह की राजधानी पोर्ट ब्लेअर में नेताजी ने आजाद हिन्द सरकार का ध्वज उसके अध्यक्ष के रूप में फहराया था। द्वितीय विश्व–युद्ध की समाप्ति अमेरिका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर अणु–बम गिराये जाने के फल–स्वरूप जापान के सम्राट् हिरोहितो के आत्म–समर्पण के कारण हुई। मित्र–राष्ट्रों की इस विजय ने उन्हें पराजित धुरी राष्ट्रों के तत्कालीन सत्ताधीशों हिटलर, मुसोलिनी और तोजो को युद्धापराधी घोषित कर उन पर मुकदमा चलाने का अधिकार दे दिया। न्यूरेम्बर्ग–न्यायालय में उन पर मुकदमा चलने से पहले हिटलर ने आत्म–हत्या कर ली थी और मुसोलिनी को उसके देशवासियों ने ही मौत के घाट उतार दिया था। बचा जापान का प्रधान मन्त्री जनरल तोजो, उसे उक्त अन्तर्राष्ट्रीय–न्यायालय के निर्णयानुसार फाँसी दे दी गयी। अब तक समझा जाता रहा कि नेताजी को भी अंग्रेजों ने युद्धापराधी घोषित किया था; पर अब अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, (हेग स्थित) ने अपने अभिलेखों में ऐसा कोई प्रमाण न पाये जाने की बात स्वीकार की है। यहीं पर एक प्रश्न स्वतः यह उभर कर सामने आ खड़ा होता है कि यदि कहीं विजय धुरी राष्ट्रों की हुई होती, तो ? तो युद्धापराधी के रूप में अमरीका के राष्ट्रपति ट्रूमेन, ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री चर्चिल, सोवियत संघ के तानाशाह स्टालिन और कुओमितांग

इससे अच्छा मुहूर्त्त भला कब आयेगा !

चीन के राष्ट्राध्यक्ष च्यांङ् काई शेक को फाँसी पर लटकाया गया होता तथा साथ ही लटकाया गया होता अमरीका के जनरल आइजनहोवर व जनरल मैक आर्थर को; ब्रिटेन के जनरल माण्टगोमरी व माउण्टबैटन को; सोवियत संघ के मार्शल जुखोव और फ्रान्स के मार्शल पेताँ को। तब स्वतन्त्र अखण्ड भारत के प्रथम शासनाध्यक्ष होते नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। नं होता देश का विभाजन, न बनता पाकिस्तान और न कश्मीर–समस्या जैसी कोई समस्या ही होती। गान्धी, नेहरू और मौलाना आजाद जैसे नेताओं का तो शायद कहीं अता–पता ही नहीं होता। लेकिन शस्त्र–बल की श्रेष्ठता, (अणु–बमों के प्रहार) ने सारा पाँसा ही पलट दिया। देश बँटा; पाकिस्तान बना; माउण्टबैटन भारत का प्रथम गवर्नर जनरल बना और गान्धी तथा नेहरू उसकी अँगुलियों पर नाचे। परिणाम आज 'कारगिल' है और आगे न जाने कितने 'कारगिल' इस देश को झेलने पड़ें।

कोई सोच सकता है, कह सकता है, यह क्या रागमाला अलापी जा रही है ? यह रागमाला नहीं, 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे' का प्रबलतम 'राग प्रमाण' है और यह प्रमाण उस तोप ने प्रत्यक्ष किया है, जिसे 'दलाली खाये जाने' के बहाने यहाँ तक बदनाम किया गया था कि व्यंग्य में लोग अपने हिस्से की रिश्वत या कमीशन को 'बोफोर्स' कहने लगे थे। कौन था वह राजनेता, जिसने 'बोफोर्स' के सिर राजीव गान्धी के पाप का ठीकरा फोड़कर भारत जैसे देश का प्रधान मन्त्री पद धूर्त्तता–पूर्वक (चौधरी देवी लाल का नाम उछालकर उनसे अपने नाम का प्रस्ताव तथा समर्थन ले लिया गया था और चन्द्रशेखार हाथ मलते रह गये थे) हथिया लिया था। 'लोटस' ने कितनी दलाली खायी, इसकी तो गत दस वर्षों में कोई खोज–खबर ठीक से ली नहीं गयी। हाँ; बोफोर्स तोप और उसके गोला–बारूद का समझौता जरूर निरस्त कर दिया गया; उसकी निर्माता कम्पनी को काली सूची में डाल दिया गया। परिणाम सामने है– कारगिल में किसी तोप का कोई पुर्जा खराब हो जाने पर दूसरी तोप से निकालकर लगाना पड़ा, रुं० ६०००/= की कीमत का एक–एक

गोला एक अन्य देश से ४६-४६ हजार रुपये में खरीदना पड़ा। बोफोर्स तोपें न होतीं, तो क्या होता ? सहज ही समझा जा सकता है। जयचन्द के (वास्तव में) वंशज उस प्रधान मन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह का नाम आज कोई क्यों नहीं लेता ? अन्य सेक्यूलरों को छोड़िए, वह विदेशी महिला तक फूटे मुँह से भी, (जो झपट्टा मारकर एक विदेशी ए०ओ० ह्यूम द्वारा स्थापित पार्टी कांग्रेस की जबर्दस्ती अध्यक्ष बन बैठी और उसी 'चील-झपट्टा' शैली में भारत की प्रधान मन्त्री बनते-बनते रह गयी, जो कारगिल को लेकर वर्त्तमान केन्द्र सरकार के पीछे डण्डा लेकर पड़ी है) उस राजा माँडा (स्मरण रहे माँडा और दहिया दोनों रियासतें जयचन्द के वंशधरों की थीं। दहिया से माँडा विश्वनाथ प्रताप दत्तक आये थे) का नाम नहीं लेती, जिसने 'राजा नहीं फकीर है, भारत की तकदीर है' का नारा लगवा कर राजीव गान्धी से प्रधान मन्त्री की गद्दी छीन ली थी। भले ही यह शख्स बाद में **'राजा न फकीर, देश की फूटी तकदीर'** साबित हुआ; परन्तु कारगिल ने तो अब इसे 'जयचन्द से भी बड़ा जयचन्द' सिद्ध कर दिया है।

जरा सोचें; गम्भीरता से सोचें, यदि कहीं पाकिस्तान १६४७-४८ में (कश्मीर में) जीत जाता या १६६५ में जीत जाता या १६७१ में जीत जाता या फिर आज कारगिल में जीत जाता, तो क्या होता ? तब क्या किसी पृथ्वीराज की आँखें फिर न फोड़ी गयी होतीं; किसी गुरु अर्जुनदेव को फिर गरम तवे पर न सेंका गया होता; किसी शम्भाजी की जीभ फिर न काटी गयी होती; किसी गुरु तेग बहादुर की फिर गर्दन न तराशी गयी होती; किसी मतीदास को फिर आरे से न चीरा गया होता; किसी दुधमुँहे को गुरुपुत्रों की भाँति फिर जिन्दा दीवार मे न चुनाव दिया गया होता; किसी बन्दा बैरागी की गरम सलाखों से फिर बोटी-बोटी न नोची गयी होती ? १४-१५ अगस्त की मध्य-रात्रि को बाघा सीमा पर मोमबत्तियाँ जलानेवाले कुलदीप नैयर जैसे पाकिस्तान-भक्तों; राजेन्द्र सच्चर जैसे मानवाधिकारवाद के ठेकेदारों; एन० राम जैसे फरेबी सम्पादकों; मणिशंकर अय्यर तथा उदयन शर्मा जैसे कलम के मक्कार बाजीगरों; मुलायम और लालू जैसे मुस्लिम-परस्तों; सुब्रह्मण्यम् स्वामी जैसे दिल्ली के छठे सवार स्वामियों, हर किशन सिंह सुरजीत जैसे मार्क्स के क्रीतदासों और जयललिता तथा मायावती जैसी भ्रष्टाचार की अग्रिम पंक्ति में खड़ी 'पलटी मार' 'वीरांगनाओं' से कौन पूछे कि ऐ सेक्यूलरिज्म के झण्डाबरदारो ! तुम्हारे मुँह पर 'बोफोर्स के इस रहस्योद्घाटन' को लेकर ताले क्यों लगे हैं ?

आखिर वह प्रधान मन्त्री कौन था, किस पार्टी का था; जिसने १६७२ में कारगिल-क्षेत्र में १४० कि.मी. लम्बी सीमा-रेखा पर जहाँ-जहाँ निगरानी और रक्षा चौकियाँ स्थापित की जानी थीं; नहीं करने दी थीं ? वह प्रधान मन्त्री कौन था, जिसने १६८२ से ही कारगिल-क्षेत्र की रक्षा चौकियों और बंकरों को जाड़ों में भगवान् भरोसे (या पाकिस्तान भरोसे) खाली छोड़ देने का निर्णय लिया था ? वह प्रधान मन्त्री कौन और किस पार्टी का था, जो घुसपैठी इस्लामी दरिन्दों को बिरियानी खिला-खिलाकर बाइज्जत 'पाकिस्तानी-कश्मीर' में छुड़वाता रहा था ? संयुक्त-मोर्चा सरकार का वह प्रधान मन्त्री कौन था, जिसने कथित रूप से कारगिल में सैन्य-गुप्तचरी को अनावश्यक बताकर रुकवाने की बात की थी ? उस समय कौन था वह बड़बोला रक्षा-मन्त्री ? १६४७ से लेकर १६६८ तक लगातार सेना की उपेक्षा करनेवाले प्रधान मन्त्रियों, रक्षा-बजट घटाते रहनेवाले वित्त-मन्त्रियों और सेना की अपरिहार्य आवश्यकताओं तक की अनदेखी करनेवाले रक्षा मन्त्रियों के नामों का उद्घाटन क्यों नहीं करते ये 'भारत-पाक दोस्ती' (मैत्री नहीं) के पैरोकार ? 'निशाने-ए-इम्तियाज-ए-पाकिस्तान' को गर्व से सहेजे यूसुफखाँओं (दिलीप कुमार छद्मनाम है) और कारगिल के वीरों के नाम दुआ पढ़ने से इनकार करने वाले अली मियाँओं की पैरवी बिना वकलतनामा के ही कर रहे लोग क्या इन प्रश्नों का उत्तर देने की हिम्मत करेंगे ? क्यों नहीं इन जैसों को देशद्रोह के आरोप में जेल भेजा जाये ?

वह स्वर्ण-अवसर आने में क्या अब भी कोई देर है, जब पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ, सेनाध्यक्ष जनरल परवेज मुशर्रफ तथा आई०एस०आई० के डाइरेक्टर जनरल लेफ्टि० जनरल जियाउद्दीनुल हक को युद्धापराध के आरोप में अभियुक्त बनाये जाने की जनहित याचिका दिल्ली उच्च न्यायालय में दायर की जाय ? आखिर भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३०२, २०१, ३२३, ३२५, ३२६ हैं किस लिए ? क्या सी०बी०आई०, स्क्वैड्रन लीडर अजय आहूजा और लेफ्टि० सौरभ कालिया, उनके साथी सैनिकों अर्जुन लाल, बनवारी लाल, भीकाराम, मूलाराम व नरेश सिंह की युद्धबन्दी के रूप में हत्या तथा अंग-भंग से अधिक क्रूरतम नृशंसतम, जघन्यतम अपराध और क्या हो सकता है, की स्वयं जाँच कर उक्त कार्यवाही नहीं कर सकती ? क्या इसके लिए भी सरकार को किसी जन-आन्दोलन की प्रतीक्षा है ?

पाकिस्तानी युद्धापराधियों के साथ ही देश में 'सेक्यूलरिज्म' के लबादे में घुसे बैठे देशद्रोहियों को कटघरे में खड़ा करने का इससे अच्छा मुहूर्त भला कब आयेगा ? □

— आनन्द मिश्र 'अभय'

मैं हूँ संघर्षों का किरीट, बाधाओं का यज्ञोपवीत

- राजबहादुर 'विकल'

मैं लोकतन्त्र हूँ राष्ट्रदेव का समरसता का हस्ताक्षर,
मैं विश्वासों के शैलराट् पर संघर्षों का तुंग शिखर;
मैं लोकतन्त्र हूँ महाकाव्य हूँ जन–मन की अभिलाषा का,
मैं लोकतन्त्र, मैं संविधान कुचली मिट्टी की भाषा का;

मेरी छाया में तप करके रजकण ऊँचा आसन पाते।
करके कठोर श्रम दलित, अकिञ्चन जन भी सिंहासन पाते।।

मैं अभिलाषा हूँ पूरे उपवन को पूरा मधुमास मिले,
जो पंख तौलते उन विहँगों को उड़ने को आकाश मिले;
जो दर्द दबा है गूँगा है वह मुखरित होकर स्वर पाये,
ऊसर धरती सौभाग्यवती हो हर सरिता सागर पाये;

उनकी आलोक–ऋचा जो शूलों को अनुराग दिया करते।
जो रक्त बहाते नहीं कभी सिंहासन त्याग दिया करते।।

मैंने चाहा जिनका कोई भी नहीं, सहारा मिल जाये,
मैं हूँ ऐसी पतवार नाव को सही किनारा मिल जाये;
मैं एक सुदृढ़ संकल्प तप्त मरुथल में फसल उगाने का,
मैं साहस अपराजेय, सिन्धु के तल से मोती लाने का;

मैंने चाहा प्यासी धरती को गंगावतरण मिल जाये।
चाहती अधिक जनता जिसको उसको सिंहासन मिल जाये।।

श्रम के मस्तक से गिरा स्वेद, बलिदानों का गंगा जल हूँ,
सबको ममता की छाँह मिला करती मैं माँ का अञ्चल हूँ;
मैं हूँ विषपायी नीलकण्ठ, सबके प्रहार सह लेता हूँ,
कण–कण में हरियाली आये, गंगा की धारें देता हूँ;

धरती की धुली हुई काया को चूनर धानी देता हूँ।
भूखों को अन्न दिया करता प्यासों को पानी देता हूँ।।

मैं ऊर्ध्व–गमन का महास्वप्न, मैं दीन दलित की आशा हूँ,
परिवर्त्तन हो चुपचाप सदा संगठित मौन की भाषा हूँ;
मैं वहीं फूलता फलता जन–मन में बिखराव नहीं होता,
करते संघर्ष विचार जहाँ स्वार्थों का दाँव नहीं होता;

जो निजी स्वार्थ में जुट जाते वह मुझे कलंकित कर देते।
उजियाले को तम से ढक कर, वाञ्छित को लाञ्छित कर देते।।

नश्वर मानव की राजशक्ति की रचना मैं अविनश्वर हूँ,
संगठित–शक्ति का विजय–घोष, मैं हिंसाहीन समर–स्वर हूँ;
जो मुझे पूजते श्रम करते बलिदान नहीं बेचा करते,
थोड़ी सुविधाएँ पाने को ईमान नहीं बेचा करते;

मैं जन्मा इसीलिए बरफीले युग को ज्वाला मिल जाये।
टूटी फूटी झोपड़ियाँ भी नाचें उजियाला मिल जाये।।

कुछ राजनीति में घुस आये मुझको विकृत करने वाले,?
जो लोक–सरोवर के तल में केवल कीचड़ भरनेवाले;
सागर–मन्थन से निकले अमृत–घट में जो विष घोल रहे,
आँधियाँ विदेशी आतीं अपने घर की साँकल खोल रहे;

जो साथ शत्रुओं का देते केवल सिंहासन पाने को।
जन–सागर में अब ज्वार उठेगा केवल उन्हें डुबाने को।।

मैं शौर्य–पराक्रम की गाथा, जीवन की गति का चारण हूँ,
मैं ज्वालामुखियों की भाषा का बरफीला उच्चारण हूँ;
जाग्रत् जनता के लिए अमृत, स्वार्थी जन जहर बना देते,
मैं विद्वानों का स्वर्ग, देशद्रोही ही नरक बना देते;

मानवता की एकता–सिद्धि को जो अविराम लिखा करता।
मैं अमृत में लेखनी डुबाकर उसका नाम लिखा करता।।

मैं लोकतन्त्र में अमर शहीदों के शोणित की ज्वाला हूँ,
मैं विधवाओं का पुत्र अनाथों का दाता रखवाला हूँ;
मैं चाह रहा कोई शैशव भूखा नंगा–प्यासा न रहे,
सौन्दर्य न चिथड़ों में लिपटे प्राणी में हंसा प्राण रहे;

मैं हूँ किसान का पावन श्रम, हल खुरपा कसी कुदाली हूँ।
शिल्पी की छेनी, कलाकार की तूली हूँ, हरियाली हूँ।।

मेरा विकास तब हो पनघट पर रोती प्यास न देखोगे,
पतझर के भय से उपवन में रोता मधुमास न देखोगे;
सुन्दरता की कलियाँ सुलगेंगी कभी नहीं अंगारों में,
तट पर डूबेगी नाव नहीं दीपक न बुझे अँधियारों में;

चेतनता जब कञ्चन–मृग का पीछा करने में जुट जाती।
सोने के हल से जुती हुई धरती की कन्या लुट जाती।।

मैं लोकतन्त्र कहता, जन–जन सुख–दुख के भागीदार बनो,
तुम बनो अकिञ्चन को करुणा, बाधाओं को अंगार बनो;
मिलकर तप करो ज्योति दो तो अँधियारा कभी नहीं होता,
अमृत को जंग छिड़ी, विष का बँटवारा कभी नहीं होता;

शोषण–दोहन को बन्द करो कोई न लगो अब चोरी में।
लक्ष्मी को घर–घर में भेजो मत रखना बन्द तिजोरी में।।

मैं लोकतन्त्र मैं ही लिखता हूँ पराजितों के लिए जीत,
मैं हूँ संघर्षों का किरीट, बाधाओं का यज्ञोपवीत;
मैं हूँ कुचलों का मददगार, दीनों को सम्बल देता हूँ,
धरती के प्राणों की ध्वनि को मैं बंशी में भर लेता हूँ;

मानव की समता का पोषक, रजकण में कञ्चन को देखा।
मैं भारत की संस्कृति मैंने नर में नारायण को देखा।।

मैं लोकतन्त्र हूँ भावुकता पर प्रखर बुद्धि का हूँ अंकुश,
मैं ऋषि-मुनियों के आश्रम में ही पलनेवाला हूँ लवकुश;
शिव को समझाया कई बार दानवता को सम्मान न दें,
सर्पों को गले लगायें मत, भस्मासुर को वरदान न दें;

मैं चाह रहा पूरा उपवन फूले, सबको मकरन्द मिले।
अनकही व्यथाएँ प्राणों में कसमसा रही हैं छन्द मिले।।

जिनको घेरा पतझारों ने ही, उनको भी मधुमास मिले,
जो पंख तौलते उन विहँगों को उड़ने को आकाश मिले;
समरसता का प्रारूप बनूँ मैं व्यथा-कथा अविराम लिखूँ,
महलों में जो रोशनी उसे मैं झोपड़ियों के नाम लिखूँ;

सिंहासन हो नरसिंहों का जिनके कन्धों पर शक्ति चले।
आसुरी शक्तियों के शोणित से भीगे जिनके पथ उजले।।

मैं लोकतन्त्र कुछ स्वार्थी-जन काया पर धब्बे लगा रहे,
बोलते देशद्रोही-भाषा दिन में भी हैं तम जगा रहे;
जब कोई संन्यासी सूरज सिंहासन पर आ जाता है,
तब सब अँधियारों का समूह मिलकर षड्यन्त्र रचाता है;

पर कौन धूप को रोक सका, बँध पाता है तप-त्याग नहीं।
वर्तिका एक दो बुझ जातीं मिट पाया करती आग नहीं।।

मैं लोकतन्त्र ऋषि की वाणी एकात्मवाद स्वीकार करो,
जो दलित सर्वहारा शोषित उनको सब कुछ दे प्यार करो;
मेघों की भाँति चुको बीजों से गलकर हरियाली दे दो,
दीपों से प्राण जला मावस के नयनों को लाली दे दो;

आलोक लुटा कर सूर्य जला, तप के बल पर संसार थमा।
करधनी सागरों की बाँधे धरती करती है परिक्रमा।।

जन उन्मादी, खण्डित स्वतन्त्रता पाकर जो नाचे-झूमे,
ज्यों सपने में, वन्ध्या नारी अपने बालक का मुख चूमे;
मानव-जीवन की समग्रता का हो विकास, अभिलाषा है,
मैं लोकतन्त्र कुम्भज दुख का सागर ही पिऊँ पिपासा है;

मेरी छाया में क्लीव पलें तो क्रोध भयंकर होता है।
ब्रह्माण्ड-पत्र पर महानाश का तब हस्ताक्षर होता है।।

मैं देख रहा आदर्शों का सारे मूल्यों का अवमूल्यन,
आँधी के आगे बन जाते क्यों दुर्बल तरु के उदाहरण;
फुटपाथों पर सोने वालों को क्यों आवास न मिल पाया,
पाँवों को दो गज भूमि मस्तकों को आकाश न मिल पाया;

कन्याएँ तोड़ रहीं पत्थर, सहतीं रवि के अंगारों को।
शैशव बँधुआ मजदूर बना सहता है अत्याचारों को।।

मैं लोकतन्त्र हूँ, हँसी खुशी हरियाली में मुझको देखो,
स्वातन्त्र्य–यज्ञ की लाल ज्वाल की लाली में मुझको देखो;
तप, त्याग, परिश्रम करते उनके आचरणों में रहता हूँ,
निर्माता हाथों में रहता, चलते चरणों में रहता हूँ;

मैं 'चरैवेति' का अनुगामी, दीनों दलितों का प्यार बना।
मैं 'ईशावास्यमिदं सर्वं' का ज्ञान रूप साकार बना।।

बहती विकास की गंगा जन–मन को अनुकूल बना डालो,
पथ रोक रहीं जो चट्टानें उन सबको धूल बना डालो;
नर शोणित के विक्रेताओ! तुमको मारूँगा सावधान,
शंका संकल्प नहीं बनता मैं सब प्रश्नों का समाधान;

जग की काली संज्ञाओं को धूपिया विशेषण मत देना।
जलते मरुथल को जल दो सागर का आश्वासन मत देना।।

मैं पथ हूँ स्नेह अहिंसा का न्योतो मत तानाशाही को,
मेरे आँगन में मत लाओ बर्बादी नाश तबाही को;
मैं लोकतन्त्र पूरी मानवता एक यही समझाता हूँ,
जो शोणित देते, उनका हो अभिषेक यही समझाता हूँ;

मैं लोकतन्त्र कहता शोषण दोहन उत्पीड़न बन्द करो।
हो जहाँ कहीं बन्धन खोलो सबको स्वतन्त्र स्वच्छन्द करो।।
मैं लोकतन्त्र जयकेतु प्यार का हूँ, जीवन की ज्वाला हूँ;
यदि नहीं मानते महाक्रान्ति का द्वार खोलनेवाला हूँ।।

— *महाकवि निलयम्, विकल निवास, शाहजहाँपुर–२४२००१*

'हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना स्वराज नहीं'-- की घोषणा करनेवालों ने इस प्रकार हमारे समाज के प्रति सबसे बड़े द्रोह का अपराध किया है। उन्होंने एक महान् प्राचीन समाज के जीवन को हतोत्साहित करने का जघन्य पाप किया है। जिस समाज में शिवाजी का जन्म हुआ। महान् इतिहासकार यदुनाथ सरकार के शब्दों में जिन्होंने "समस्त विश्व के समक्ष यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू अमृत रसपान किये हुए है", उस समाज को नपुंसकता का उपदेश देने तथा ऐसे महावीर्य सम्पन्न समाज के आत्मविश्वास एवं चैतन्य को भंग करने के समान विशुद्ध और बड़ा विश्वासघात संसार के इतिहास में नहीं है।

— माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

दलबदल को रोकना है, तो...

प्रो० बलराज मधोक

स्वतन्त्र भारत द्वारा ब्रिटिश माडल का वयस्क मताधिकार पर आधारित संसदीय लोकतन्त्र अपनाने से कई ऐसी समस्याएँ पैदा हुई हैं, जो लोकतन्त्र, जो भारत के लिए नहीं है, को विकृत ही नहीं कर रहीं, इसके भविष्य पर प्रश्न–चिह्न भी लगा रही हैं।

ब्रिटिश माडल के संसदीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए कुछ अन्य बातों के अतिरिक्त संसद् के अन्दर और बाहर दो ऐसे बड़े दलों का, जो एक–दूसरे के विकल्प की भूमिका अदा कर सकें, अनिवार्य माना जाता है। ब्रिटेन में दो ऐसे बड़े दलों– विग और टोरी का विकास वहाँ संसदीय लोकतन्त्र के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए संसदीय लोकतन्त्र को सही प्रकार से समझने और दलबदल की पृष्ठभूमि को जानने के लिए ब्रिटिश लोकतन्त्र और वहाँ राजनैतिक दलों के विकास की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

ब्रिटेन में राजाओं को अपना राज चलाने में सहयोग देने के लिए सामन्तों, जिन्हें 'लॉर्ड' कहा जाता था, की एक समिति हुआ करती थी। इसे 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' अर्थात् सामन्तों की समिति कहा जाता था। उन्हें कभी–कभी जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोगों को भी, नये कर लगाने के विषय में सहयोग माँगने के लिए बुलाना पड़ता था। साधारण लोगों की इस समिति को 'हाउस ऑफ कामन्स' अथवा 'लोकसभा' कहा जाने लगा। इस प्रकार ब्रिटिश संसद् और इसके दो सदनों की शुरूआत हुई।

लोकसभा को पहले स्थायी संस्था नहीं माना जाता था। इसको बुलाना या न बुलाना राजाओं की इच्छा पर निर्भर करता था। कालान्तर में इस लोकसभा के कुछ सदस्यों ने इस बात पर बल देना शुरू किया कि उनकी समिति ब्रिटिश संसद् का आवश्यक अंग है और जनसाधारण की सभा, हाउस ऑफ कामन्स या लोकसभा होने के कारण इसका महत्त्व अधिक है। ऐसे लोगों को "विग" कहा जाने लगा। जो सदस्य हर मामले में राजा का पक्ष लेते थे और लोकसभा को बुलाना या न बुलाना उसका विशेष अधिकार मानते थे, उन्हें 'टोरी' कहा जाने लगा।

ब्रिटेन की १६८८ की "स्वर्ण क्रान्ति" में लोकसभा के इन विग सदस्यों की विशेष भूमिका थी। इसलिए उस क्रान्ति के बाद बने ब्रिटेन के राजा 'विलियम द्वितीय' ने लोकसभा और उसकी विग पार्टी को विशेष महत्त्व देना शुरू कर दिया। वह अपने मन्त्री इन्हीं में से चुनने लगा और उनमें जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली होता, उसे अन्य मन्त्रियों द्वारा प्राइम मिनिस्टर अथवा प्रधानमन्त्री कहा जाने लगा। इसके बाद ब्रिटेन की राजनीति इन 'विग' ओर 'टोरी' दल के इर्दगिर्द घूमने लगी। जार्ज तृतीय ने टोरी दल को अधिक महत्त्व देना शुरू किया, तो 'विग' पार्टी विरोध पक्ष की भूमिका अदा करने लगी।

शुरू से लोकसभा के सदस्यों को चुननेवाले निर्वाचक–मण्डलों की संख्या बहुत कम होती थी। बाद में इनको चुनने का अधिकार अधिक लोगों को देने के लिए १८३२, १८४५, १८८०, १६११ और १६२८ में संसदीय सुधार कानून बनाये गये। १६२८ के सुधार कानून ने ब्रिटेन के सभी वयस्क महिलाओं को भी मताधिकार दे दिया। इस प्रकार लगभग १०० वर्ष के प्रयत्नों और सुधारों के बाद १६२८ में ब्रिटिश संसद् की लोकसभा (हाउस ऑफ कामन्स) वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी जाने लगी।

समय के साथ–साथ 'विग' और 'टोरी' दलों के अन्य, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सम्बन्ध में या दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर दिखायी देने लगा। विग पार्टी उदारवादी और जनवादी रूप लेने लगी और टोरी पार्टी अनुदारवादी पार्टी कंजर्वेटिव पार्टी बन गयी। विग पार्टी को कालान्तर में 'लिबरल' या उदार पार्टी का नाम दिया गया और बाद में इसका नाम "लेबर" पार्टी हो गया।

वैचारिक आधार पर अथवा व्यक्तिगत कारणों से इन दलों के सदस्य कभी–कभी दलबदल कर लेते थे। **१६वीं शताब्दी के ब्रिटेन के दो प्रमुख प्रधानमन्त्रियों डिजरेली और ग्लेडस्टन ने दलबदल किया था। ग्लेडस्टन पहिले टोरी पार्टी में था, बाद में विग पार्टी में आ गया और डिजरेली ने अपना राजनैतिक जीवन विग पार्टी से शुरू किया और बाद में टोरी पार्टी में आ गया। वैचारिक आधार पर दलबदल को ब्रिटिश लोकतन्त्र में स्वाभाविक और विचार–स्वातन्त्र्य के अनुरूप माना जाता है; परन्तु साधारणतः वहाँ की लोकसभा में चुने जाने के बाद**

दलबदल नहीं होता। इसी कारण वहाँ पर कई ,बार केवल एक सदस्य के बहुमत वाली पार्टी भी अपना ५ वर्ष का कार्यकाल पूरा कर पायी।

जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तब इण्डियन नेशनल कांग्रेस देश की आजादी का आन्दोलन था, १६४६ के निर्णायक चुनाव में हिन्दू महासभा समेत सभी राष्ट्रवादी दलों ने अखण्ड भारत के मुद्दे पर कांग्रेस के साथ तालमेल किया और इसके प्रतिनिधियों के पक्ष में मत दिया था। दूसरी ओर ६३ प्रतिशत मुस्लिम मतदाताओं और कुछ कम्युनिस्ट मतदाताओं ने मुस्लिम लीग और देश के विभाजन के पक्ष में मत दिया था। इस चुनाव में बनी विधानसभाओं ने बाद में भारत की संविधान सभा के सदस्यों का चयन किया था।

ब्रिटिश सरकार भारत छोड़ने से पहले खण्डित भारत अथवा हिन्दू इण्डिया की राजसत्ता कांग्रेस को सौंप गयी और पाकिस्तान अथवा 'मुस्लिम इण्डिया' की मुस्लिम लीग को।

भारत की संविधान सभा ने ब्रिटिश माडल के वयस्क मताधिकार पर आधारित संसदीय लोकतन्त्र को अपनाया। इस संविधान के आधार पर फरवरी १६५२ में भारत की विधानसभाओं और लोकसभा के पहले आम चुनाव हुए। चुनाव से पहिले कम्युनिस्ट पार्टी ने अपना पुनर्गठन कर लिया था। कांग्रेस के कुछ समाजवादी तत्त्वों ने इससे निकल कर अलग 'समाजवादी पार्टी' बना ली थी। आचार्य कृपलानी ने कांग्रेस तोड़ कर अपनी अलग किसान मजदूर प्रजा पार्टी बना ली। यह सभी दल वैचारिक दृष्टि से भी नेहरू और नेहरूवादी कांग्रेस के निकट थे।

वैचारिक आधार पर कांग्रेस के राष्ट्रवादी और हिन्दुत्ववादी विकल्प के रूप में १६५१ में डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ का उदय हुआ था। हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद् और अकाली दल ने भी इस चुनाव में भाग लिया; परन्तु कांग्रेस और विशेषकर श्री नेहरू ने जनसंघ को ही अपनी आलोचना का मुख्य निशाना बनाया। इससे जनसंघ का नाम ग्राम–ग्राम तक पहुँचने में सहायता मिली और उसे चुनाव में प्राप्त मतों के आधार पर राष्ट्रीय दल होने की मान्यता मिल गयी। चुनाव के बाद आचार्य कृपलानी की किसान मजदूर पार्टी और समाजवादी पार्टी का विलय हो गया और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नाम से काम करना शुरू किया। उसे भी राष्ट्रीय दल होने की मान्यता मिल गयी। कांग्रेस संसद् और विधानसभाओं में बहुमत वाली पार्टी के क्रम में उभरी। लोकसभा में मुख्य विरोधी दल का स्थान कम्युनिस्ट पार्टी को मिला। इस प्रकार पहले आम चुनाव के बाद चुनाव आयोग ने कांग्रेस के अतिरिक्त कम्युनिस्ट पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और जनसंघ को भी देश के राष्ट्रीय दलों के रूप में मान्यता दे दी।

कांग्रेस का लोकसभा और लगभग सभी विधान सभाओं में स्पष्ट बहुमत था। जनसंघ को लोकसभा में केवल तीन स्थान मिले। राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल को छोड़कर शेष राज्यों की विधानसभाओं में उसकी स्थिति नगण्य थी। कांग्रेस को किसी सदस्य का दलबदल करवा कर अपने दल में शामिल कराने की तब न कोई आवश्यकता थी और न प्रासंगिकता रही, फिर भी इसने विधानसभा के एकमात्र जनसंघ सदस्य ओंकार सिंह को लालच देकर उसका दलबदल करवा के उसे कांग्रेस में शामिल कर लिया। इस प्रकार कांग्रेस ने दलबदल की प्रक्रिया को पहिले आम चुनाव के बाद से ही शुरू कर दिया।

पहिले आम चुनाव के एक वर्ष के बाद जून १६५३ में काश्मीर में बन्दी के रूप में डॉ० मुखर्जी के बलिदान से जनसंघ को गहरा धक्का लगा। वह मानो अनाथ हो गया और उसकी प्रगति धीमी हो गयी।

१६६७ के चौथे आम चुनाव के समय भारतीय जनसंघ का वैचारिक आधार पर स्वतन्त्र पार्टी, हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद्, आर्य समाज और अकाली दल के साथ तालमेल हुआ। उस चुनाव में जनसंघ और उसके साथियों को लोकसभा में लगभग एक सौ स्थान मिले। अन्य दलों के साथ तालमेल के कारण यद्यपि जनसंघ ने अपने चुनाव चिह्न पर केवल २०० के लगभग प्रत्याशी ही खड़े किये थे, तो भी उसे कांग्रेस के लगभग ३२ प्रतिशत मतों के मुकाबले में लगभग १० प्रतिशत मत मिले और यह नेहरूवादी समाजवादी कांग्रेस का राष्ट्रवादी हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीय विकल्प बन गया।

इस चुनाव में दिल्ली की विधानसभा में जनसंघ को लगभग बहुमत मिला। पंजाब में जनसंघ–अकाली गठबन्धन ने स्पष्ट बहुमत जुटाकर अपनी सरकारी बनायी तथा राजस्थान में जनसंघ–स्वतन्त्र पार्टी गठजोड़ को कांग्रेस के बराबर स्थान मिले। जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार में जनसंघ प्रमुख विरोधी दल के रूप में उभरा और उन सब में कांग्रेस स्पष्ट बहुमत नहीं ले पायी। पश्चिम बंगाल की विधानसभा में १६५२ के बाद पहली बार जनसंघ का 'दीपक' जला और गुजरात की विधानसभा में भी।

जिन राज्यों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला, वहाँ उसके सदस्य दलबदल करके विरोधी दलों के साझे मोर्चा में शामिल होने लगे। इस प्रकार १९६२ में दलबदल व्यापक रूप से होने लगा।

ब्रिटिश संसदीय राजनीति के अध्येता और लोकतन्त्रवादी होने के नाते लेखक को यह दलबदल लोकतन्त्र के लिए खतरा लगा। इसलिए भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष के नाते कांग्रेस और अन्य राष्ट्रीय दलों के नेताओं को पत्र लिख कर इस पर रोक लगाने का सुझाव दिया। केन्द्र में बनी कांग्रेस सरकार ने इस सुझाव को गम्भीरता से लिया। उसने दलबदल की समस्या पर विचार करने के लिए गृहमन्त्री श्री यशवन्तराव बलवन्तराव चौहान के नेतृत्व में इस समस्या पर सुझाव देने के लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया। लेखक के अतिरिक्त सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, मीनू मसानी, डॉ हृदयनाथ कुंजरु और विख्यात विधिवेत्ता शीतलवाड इसके अन्य सदस्य थे।

इस समिति ने छह महीने में अनेक बैठकें और विभिन्न दलों के नेताओं से विचार–विमर्श करने के बाद अपनी रपट तैयार की। इसमें कहा गया था कि वैचारिक आधार पर दलबदल पर रोक लगाना लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और विचार–स्वातन्त्र्य के विरुद्ध होगा; परन्तु लालच, कुर्सी और पद के लिए किया गया दलबदल निन्दनीय है और लोकतन्त्र के लिए खतरा है। इसे रोकने के लिए इस समिति ने निम्न सुझाव दिये–

१. चुनाव के बाद यदि कोई चुना हुआ सदस्य दलबदल करता है, तो उसे कम से कम एक वर्ष के लिए मन्त्री, उप मन्त्री, विधानसभा अथवा लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष समेत कोई पद न दिया जाय।
२. मन्त्रिमण्डलों की संख्या सीमित की जाय। केन्द्र में मन्त्रियों की संख्या संसद् के कुल सदस्यों के १० प्रतिशत से अधिक न हो और प्रदेशों में जहाँ केवल विधानसभाएँ हैं, वहाँ मन्त्रियों की संख्या विधानसभा की संख्या का १० प्रतिशत हो और ज़हाँ विधान परिषद् हों, वहाँ मन्त्रियों की संख्या विधान सभा के सदस्यों के ११ प्रतिशत से अधिक न हो।

यदि इस सर्वसम्मत रपट पर तुरन्त अमल किया गया होता और इसके अनुरूप कानून बना दिया गया होता, तो दलबदल की लानत बहुत हद तक खत्म हो जाती; परन्तु चूँकि इस रपट के आने के कुछ समय बाद कई विधानसभाओं में कांग्रेस की स्थिति मजबूत हो गयी और दलबदल उसके पक्ष में होने लगा, इसलिए उसने इस रपट को ठण्डे बस्ते में डाल दिया।

१९८४ के लोकसभा चुनाव में राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस को अनपेक्षित सफलता मिली। विशेष कारणों, जिन पर चर्चा करना विषयान्तर होगा, से कांग्रेस को पहली बार लोकसभा में तीन चौथाई बहुमत मिल गया। राजीव गांधी को इसकी आशा नहीं थी। उन्हें डर लगा कि यह बहुमत वह खो न बैठें। इसलिए उन्होंने बड़ी जल्दी से संसद् में एक दलबदल विरोधी विधेयक रखा, जो बिना विरोध के पास कर दिया गया। इसके अनुसार किसी एक सदस्य के दलबदल पर, उसका आधार कुछ भी क्यों न हो, तो पूर्ण रोक लगा दी गयी; परन्तु यदि किसी दल के एक तिहाई (१/३) सदस्य अपना दल छोड़ कर कोई नया दल बना लें या किसी और दल में शामिल हो जायें, तो उसे वैध मान लिया गया।

यह विधेयक जल्दबाजी और घबराहट में बनाया गया था। यह लोकतान्त्रिक मर्यादा के विरुद्ध है। यदि कोई दल अपनी घोषित विचारधारा को छोड़ दे, उसका कोई सदस्य कुर्सी या पद के लिए नहीं; बल्कि अपनी विचारधारा और निष्ठा की रक्षा के लिए वह दल छोड़ दे तो उसे अवैध मानना सर्वथा गलत है। परन्तु जब उद्देश्य केवल कुर्सी प्राप्त करना या उसकी रक्षा करना हो, तो सिद्धान्त और आदर्शों को भुला दिया जाता है। फलस्वरूप यह कानून एक प्रकार से दलबदल को बढ़ावा देनेवाला और राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने का माध्यम बन गया है।

जब लोकसभा में किसी एक दल का बहुमत न हो और मिली–जुली सरकार बनाना अनिवार्य हो जाय, तब यह दलबदल कानून अधिक खतरनाक हो जाता है और अस्थिर सरकारों को और अधिक बनाकर लोकतन्त्र की जड़ को खोखला कर सकता है। १९९६ के बाद ऐसी स्थिति देश में बनी हुई है। १९९९ के चुनाव के बाद स्थिति क्या होगी उसके विषय में अभी कुछ कहना कठिन है। इसलिए आवश्यक है कि वर्त्तमान दलबदल कानून को यथाशीघ्र निरस्त किया जाये और १९६७ की दलबदल सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति की रपट के आधार पर नया कानून बनाया जाय। यह तभी सम्भव होगा, जब सभी राष्ट्रीय दल अपने चुनाव घोषणा पत्रों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख करें, ताकि आसन्न लोकसभा चुनाव के बाद नया कानून अविलम्ब बन सके।

□

– जे–३६४, शंकर रोड,
नई दिल्ली–११००६०
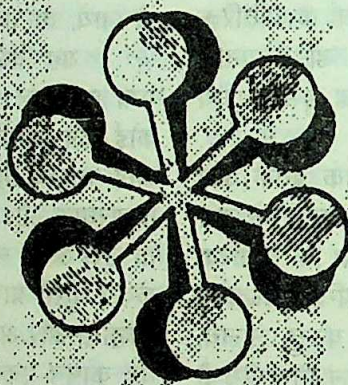
राजनीति –

भारत को चाहिए एक अमंगलहारी संसद्

– हृदयनारायण दीक्षित
(भूतपूर्व संसदीय कार्य मन्त्री, उ०प्र०)

हिन्दू जीवन–रचना सततप्रवाही है। इसमें प्राचीन को युगानुकूल और विदेशी को राष्ट्रानुकूल बनाने की अद्भुत क्षमता है। लोकतन्त्र भारत की सनातन उपलब्धि है। सृष्टि के कण–कण की युति ही लोक है। सम्पूर्ण सृष्टि की एकात्मक भागीदारी लोकतन्त्र है। सृष्टि के साथ आन्तरिक–सक्रियता मन्त्र और बाह्य–सक्रियता का नाम भारत ने तन्त्र रखा है। मन्त्र सृष्टि की आत्यन्तिक और अन्दरूनी ताकत है। अपने देश में इसी ताकत को बाह्य जगत् में जनहितकारी ढंग से प्रयोग करने वाले पदधारक मन्त्री कहलाये। पश्चिम से आयी उधार की 'डेमोक्रेसी' (लोकतन्त्र नहीं) को हम भारत के राष्ट्रानुकूल नहीं बना सके। ब्रिटेन का प्रजातन्त्र राजतन्त्र की प्रतिक्रिया से जन्मा है। भारत का लोकतन्त्र हमारी सनातन अवधारणा है। संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश परम्परा के प्रजातन्त्र की नकल करने की कोशिश की। ब्रिटिश संसदीय परिपाटी की कई अच्छी परम्पराएँ छूट गयीं। नकल यों भी असल के गुण नहीं प्राप्त कर सकती। भारत के राजनीतिज्ञों को ब्रिटिश मॉडल की संसदीय व्यवस्था कोई प्रेरणा दे नहीं पायी। त्याग, राष्ट्र–सेवा, सादगी, वाक्–संयम, सत्य–सम्भाषण की आचार–सारिणी भारत में सनातन काल से उपलब्ध है। भारत ने ब्रिटिश संसदीय परम्परा का तर्क और प्रतितर्क ग्रहण किया। सत्य हाथ से फिसल गया। शील का कहीं अता–पता नहीं। मर्यादा–विहीन संसदीय पद्धति के प्रति पूरे देश के चित्त में गजब की जुगुप्सा है।

२३ सितम्बर १९९२ को तत्कालीन प्रधानमन्त्री नरसिंहराव ने "संसद् और विधानमण्डलों के अनुशासन और व्यवस्था" विषयक गोष्ठी में एक प्यारा दृष्टान्त सुनाया। राव ने लंदन की एक कथा दुहराई। लन्दन–प्रवास में ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स के स्पीकर (अध्यक्ष) ने राव से पूछा, आपके देश की संसद् में "शून्य–काल" क्या है? राव ने तपाक से उत्तर दिया, "अध्यक्ष महोदय! यह संसदीय–परिपाटी के इतिहास में भारतीय योगदान है।" स्पीकर राव के इस उत्तर से चुप हो गये। मगर पास बैठे एक ब्रिटिश सांसद् को यह बात नागवार लगी। ब्रिटेनवासी संसदीय–व्यवस्था के जन्म और विकास का सारा श्रेय स्वयं ही लेते रहे हैं। सो उक्त सांसद् ने प्रधानमन्त्री से फिर पूछा, "आखिर यह है क्या?" राव कठिनाई में पड़ गये। शून्य–काल भारत की संसदीय नियमावली में है ही नहीं। सांसद ने पूछा, "बिना नियम के आप सदन की कार्यवाही कैसे चलाते हैं?" राव ने अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल करते हुए फिर बात काट दी "आप बिना लिखित संविधान के ही पूरी संसदीय–व्यवस्था चला रहे हैं हम एक दो चीजें अपनी संसद् में भी क्यों नहीं चला सकते?"

भारत में 'शून्य–काल' का मतलब है, उद्दण्डता, अव्यवस्था, गाली–गलौज और अराजकता। यों– शून्यकाल को भी व्यवस्थित करने के लिए भारत में अनेक कोशिशें हुईं। पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन हुए, सिफारिशें हुईं; किन्तु परिणाम शून्य ही रहे।

राष्ट्रपति से बड़ा कोई भी महिमामय पद भारत में नहीं है। राष्ट्रपति संसद् के दोनों सदनों में अभिभाषण करते हैं। राज्यों में यही प्रथा राज्यपाल पूरी करते हैं। यह परम्परा इंग्लैण्ड की फूहड़ कार्बन कापी है। इंग्लैण्ड में राजा या रानी का सम्बोधन महोत्सव बनता है, भारत में व्रज की लट्ठमार होली। १९७१ में राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय एक सांसद् ने अव्यवस्था पैदा की। तब ऐसी अव्यवस्था को गम्भीर माना जाता था। सांसद् के अपकृत्य पर संसदीय कमेटी बनी। विधि–मन्त्रालय ने मशक्कत की। निष्कर्ष बड़े मजेदार थे। राष्ट्रपति और राज्यपाल के अभिभाषण के समय दोनों सदनों के अध्यक्ष/सभापति अगल–बगल बैठते हैं। विधि–विभाग ने कहा, उस समय के संयुक्त अधिवेशन का कोई अध्यक्ष नहीं होता। कार्यवाही का अधिकार किसी के पास होता ही नहीं। विधि–विभाग ने सिफारिश की कि संविधान का संशोधन करते हुए संयुक्त अधिवेशनों की अध्यक्षता राष्ट्रपति/राज्यपाल को दी जानी चाहिए। बात खत्म हो गयी। देश के सबसे बड़े राज्य उ०प्र० में राज्यपाल का पूरा अभिभाषण लगभग दो दशकों से नहीं हो पाया। कागज के गोलों, गुब्बारों और

पत्रावलियों के..वार से महामहिम की सुरक्षा में ही जुटे रहते हैं बेचारे मार्शल। विधायी (कानूनी) कार्य के कारण ही हमारे प्रतिनिधि विधायक कहलाते हैं। कानून बनाना या पुराने कानून को संशोधित करना बड़ा गुरु–गम्भीर कार्य है। विधायी–कार्य के समय सदन की संख्या कम हो जाती है। कोरम (गणपूरक) की घण्टी कोई सुनता नहीं। जनता कानून बनाने के लिए भेजती है– वे सदन में सड़क बनाने का धन अपने नाम करवाने की खातिर हुड़दंग करते हैं। इसी हुड़दंग के गर्भ से सांसद–निधि और विधायक–निधि का जन्म हुआ। नए कानून बनाने या पुराने कानून का संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार प्रत्येक विधायक/सांसद् को प्राप्त है। पक्ष–विपक्ष में कोई विभेद नहीं है। उदाहरण के लिए उ०प्र० विधानसभा के पूरे इतिहास में विधायकों के प्रस्ताव पर बहस में आनेवाले ऐसे प्रस्तावों की संख्या अब तक १०० नहीं पहुँची। विधायी कार्य में जन–प्रतिनिधियों की रुचि है ही नहीं।

भंग हो गई लोकसभा (बारहवीं) में शान्ति–व्यवस्था का अकाल रहा। गृहमन्त्री लालकृष्ण आडवाणी के भाषण पर कई बार निर्लज्ज टोका–टोकी हुई। प्रधानमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी को भी अपनी बात पूरी करने में कठिनाइयाँ आयीं। भंग लोकसभा के कुशल वक्ता (?) "मैन आफ दि मैच" लालूप्रसाद यादव सिद्ध हुए। महिला सांसदों को अपनी प्रतिष्ठा बचाने की खातिर अध्यक्ष को अर्जियाँ देनी पड़ीं। मायावती ने लोकसभा के भीतर २४ घण्टे में ही पल्टी मार दी। उन्होंने लोकसभा को गुमराह किया। लोकसभा अराजकता का शिकार रही।

संसद् भारत की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था है। वह सरकार के प्रत्येक कामकाज पर पारदर्शी नियन्त्रण रखती है। सरकार के गठन से लेकर उसके प्रत्येक स्पन्दन पर संसद् का नियन्त्रण रहता है। संसद् भारत का हृदय है। इसके माध्यम से भारत के एक–एक जन को परिशुद्ध रक्त–पोषण पहुँचाया जाना चाहिए था। संसदीय व्यवस्था के अवमूल्यन से भारत की हृदय–गति गड़बड़ा गयी है। ब्रिटिश परम्परा से हम लोग नित्य की प्रार्थना भी नहीं सीख पाये। ब्रिटिश संसद् प्रार्थना से शुरू होती है। भारत प्रार्थना–संस्कृति का देश है; परन्तु हम बाहर के मञ्चों पर भी विद्या की देवी सरस्वती की प्रार्थना नहीं कर सकते। ब्रिटिश संसद् पूरे साल बैठक करती है। भारत की विधायी संस्थाएँ साल में तीन औपचारिक सत्र पूरा करने में भी कंजूसी करती हैं। असल में यह संसदीय प्रणाली हमारे मूल राष्ट्रीय अधिष्ठान से सर्वथा मुक्त है। इस पद्धति में भारतमाता के प्रति एकलनिष्ठा का सर्वथा अभाव है। यह भारतराष्ट्र की सनातन आत्मा से कोई मतलब ही नहीं रखती। इस पद्धति का सम्पूर्ण सार अंकगणित है। इस पद्धति में विश्व–स्तर पर लोकप्रिय और राष्ट्र–स्तर पर लोकमंगल से जुड़ी सरकार मात्र एक वोट से हार जाती है। इसी पद्धति के गोरखधन्धे में एक वोट ज्यादा रखनेवाला विपक्ष वैकल्पिक सरकार नहीं बना पाता। पश्चिम में सरकार कामों से बोलती है। विपक्ष सरकार को परामर्श देता है। प्रो० हेराल्ड लास्की विपक्ष के तीन काम गिनाते हैं (१) सरकार को परामर्श देना (२) सरकार का नीतिगत विरोध करना (३) सरकार को हटाना। भारत में विपक्ष पहले के दो काम करता ही नहीं। लास्की पश्चिम के राजनीति विज्ञानी थे। सो विपक्ष का असली काम लिखना वे भूल गये। विपक्ष का पहला काम है धीरज–प्रतीक्षा। यों ब्रिटिश परम्परा में विपक्ष को 'गवर्नमेण्ट इन वेटिंग' (प्रतीक्षारत सरकार) कहते हैं। यहाँ तो पूरा तन्त्र ही गड़बड़ा गया है अपने मौलिक अधिष्ठान से। ऐसे में भगवान् ही मालिक है इस देश का। ❑

— 'अक्षर वर्चस्', एल–१५६२, सेक्टर आई, ल०वि०प्रा० कॉलोनी, कानपुर मार्ग, लखनऊ

... कोई असेम्बली में अपना अजीज हो तो सही

– वचनेश त्रिपाठी

अभी हाल ही में एक पुरानी कब्र लखनऊ में चौक–इमामबाड़े के पास कहीं मकान की नींव खोदते हुए निकल आयी, जिसे उर्दू के शायर 'सौदा लखनवी' की कब्र बताया गया, तो नगर के हिन्दी अखबार में एक साहब ने 'सौदा' पर बड़ा लम्बा–सा लेख लिखकर उनकी शायरी की दाद दी, पर 'सौदा' साहब के दिल–दिमाग में कहीं भूलकर हुब्बे वतनी (देश–प्रेम) का जज़्बा नहीं था। वरन् उस शख्स ने ऐसी गन्दी और गलत बयानी की कि जिसे साफ शब्दों में 'गद्दारी' ही कहेंगे। शायर 'सौदा' ने लिखा था कि,

'गर हो कशिशे–शाह–खुरासान तो 'सौदा',
सिज्दा न करूँ हिन्द की नापाक जमीं पर।'

अर्थात् शायद सौदा लखनवी के लिए हिन्दुस्तान की धरती इतनी नापाक (अपवित्र) है कि वे इस सरजमीं पर अल्लाह मियाँ को सिज्दा (इबादत या वन्दना) भी करना पसन्द नहीं करते– बशर्ते कहीं खुरासान का बादशाह इन्हें जरा–सा इशारा भर कर दे कि "सौदा! तू आ जा हमारे मुल्क में" जब कि यह तय था कि खुरासान का शाह इन्हें घास डालने को रहा। 'सौदा' को जीना–मरना यहीं था। भले वे काबुल में पैदा हुए थे। ऐसे देश–द्रोहियों ने ही मोहम्मद अली जिन्ना के सपनों में रंग भरा और यह देश खण्डित करा दिया। बनवा दिया पाकिस्तान जो रोज बारूद झोंक रहा है, नतीजा कुछ भी हो। गद्दारों की देशघातियों की यहाँ कमी कभी नहीं रही। वे पकड़े भी गये। लम्बे मुकदमे चले; पर क्या कभी किसी गद्दार को यहाँ फाँसी दी ज़ा सकी? हाँ; एक बात आम हो गयी, राजनीति का पट्टा गले में डालकर जिसने भी चाहा, कुर्सी पर जा बैठा। विधायक, सांसद् और मन्त्री, मुख्यमन्त्री, यहाँ तक कि प्रधानमन्त्री तक बन गया। भले उस पर भ्रष्टाचार के, गबन के कितने ही मुकदमे बाद में चले। सत्ता में पहुँच की कोई त्याग–बलिदान की, नैतिकता की कसौटी यहाँ शर्त नहीं मानी गयी। हमारे जमाने में एक अंग्रेजी स्कूल को जिसे सूबा मुस्लिम लीग के एक लीडर अपने कब्जे में किये हुए थे, यद्यपि जिस अंग्रेज ने उसे कभी खोला था, कालेज का नाम तब तक उसी अंग्रेज के नाम पर प्रचलित था। उसी स्कूल (अन्त में कालेज) में एक हिन्दू छात्र को लीगियों ने उत्पीड़ित करना चाहा, उस कालेज के एक संस्कृत अध्यापक को एक लीगी घराने के गुण्डे छात्र ने भरी कक्षा में उसकी बाँह उमेठ कर कई घूँसे ज़मा दिये तो हम चार युवकों ने एक रोज उस स्कूल के रास्ते में पड़ने वाले एक बाग में बैठकर उस लीगी गुण्डे को सबक पढ़ाने का तय किया और स्कूल से छुट्टी होने पर उसे शाम को रास्ते में सबक दिया भी। तब उस गुण्डे का स्कूल में साथ देने वाला, उसका जो एक समर्थक गिरोह था छात्रों का, उसमें एक उसनार में जन्मा एक मुसलमान छात्र ऐसा भी रहा था, जो बाद में राजनीतिक पार्टी में अपनी हाजिरी लिखाकर न सिर्फ पार्टी की सिफारिश से विधायक बन गया, वरन् मन्त्री पद तक पहुँच गया, यद्यपि वह चुनाव कभी न लड़ा, लड़ता, तो हारता। ऐसी अनेक मिसालें हैं। यह होता इसलिए था कि फरमावरदारी दिखाकर या किसी भी युक्ति से ऐसे लोग पार्टी के किसी नेता या मन्त्री के कृपापात्र बन जाते हैं। ऐसे ही उसी नगर की प्रान्तीय मुस्लिम लीग के नेता की बीबी केन्द्रीय नेता नेहरू की मेहरबानी से मन्त्री बन गयी। दूसरी तरफ एक 'पण्डित जी', जो उसी जिले से चार बार कांग्रेस में जेल गये थे, केवल कांग्रेस–कार्य और आजादी के लिए आन्दोलन आदि करना ही जिनका जीवन–कर्म रहा; न कहीं शादी–ब्याह करके घर बसाया, न घर बनाया। हमेशा खादी का कुर्ता–धोती पहने, तिरंगा झण्डा साथ लिए जेल जाने के लिए कमर कसे रहते उनकी जवानी बीती। भले वे पहले कुरैशी (मुसलमान) रहे थे, पर आर्य समाज में आकर 'पं० शान्ति स्वरूप' नाम से गाँवों तक प्रसिद्ध हो गये थे। उनकी जैसी बुलन्द आवाज से "भारत माता की जय" का नारा कम ही लोग लगा पाते थे। 'वन्देमातरम्' गीत के बड़े प्रेमी थे। उनके साथ जुलूसों में आगे रहकर लोगों ने भी अपने पैर और टखने पुलिस के घोड़ों से खुंदवा लिये थे। पराधीनता काल में जब कांग्रेस की अन्तरिम सरकार बनी, तब सन् १६३७ के

चुनाव में वही पण्डित जी (पूर्व मुस्लिम) उस क्षेत्र (कस्बे) के प्रथम विधायक बने। उनके विरोध में उक्त लीगी नेता के समर्थन से एम०एल०ए० के लिए खड़ा एक अंग्रेज–परस्त हिन्दू राजा हार गया, जिसका झण्डा नीला था; परन्तु जब आजादी आयी, तो हमारे उन 'पण्डित जी' को कांग्रेस ने कभी टिकट न दिया, वरन् कांग्रेस टिकट दिया एक रानी को और हर बार उसे ही दिया। पं० शान्ति स्वरूप जीवनान्त तक गुमनामी में ही जिये और जिले के एक आर्य समाजी तथा स्वतन्त्रता–सेनानी के मरने पर उसी के परिवार की सेवा में संलग्न रहे। उनको दिवंगत हुए लम्बा समय गुजर चुका है। ऐसा कांग्रेसी लोकतन्त्र इस देश में जनता की छाती पर सवार रहा। 'काकोरी केस' के शचीन्द्रनाथ बख्शी सरीखे क्रान्तिकारी जिन्हें आजन्म कैद की सजा अंग्रेजों ने दी थी– आजादी आने पर कांग्रेस की रीति–नीति पर अक्सर कहा करते थे कि,

"वक्त गुलशन पे पड़ा था तो लहू हमने दिया।
बहार आई है तो कहते हैं, तेरा काम नहीं।।"

दूसरी तरफ देखा कि पुलिस–घराने के बर्तन चोर, राशन–चोर लड़के मन्त्री बन गये, क्योंकि असेम्बली में उनके "अजीज" मौजूद थे। लोकतन्त्र इसकी अनुमति नहीं देता कि पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक ही खानदान की गद्दी–नशीनी और ताजपोशी देश पर हावी रहे, पर यहाँ यही हुआ और आज भी वही कुचेष्टा चालू है। इस परिपाटी के चलते कौन देखता कि आजादी ने भारत को उसका लक्ष्य प्राप्त कराया है या नहीं? आजादी के २० वर्ष बाद सन् १९६७ में जब All India Moral and social Hygiene Association ने सर्वेक्षण कराया, तो पता चला कि "देश की आबादी में ८० हजार वेश्याएँ हैं, जिनमें ३६९ कोठे मुम्बई में हैं, जहाँ १२०५८ वेश्याएँ हैं, पश्चिम बंगाल में ५०६५ कोठे हैं। जिनमें ४५ हजार वेश्याएँ हैं– इसी तरह उड़ीसा के गंजम जिले में २०० कोठे हैं और बिहार के पटना जिले में भी १०० कोठे चलते हैं।" यही स्थिति अन्य राज्यों की भी रही है। ८० हजार संख्या तो नाम दर्ज करानेवाली वेश्याओं की है, जबकि छिपकर देह–व्यापार के लिए विवश वेश्याओं की संख्या कई लाख रही होगी। ये आँकड़े इसलिए एक क्षेत्र के दिये, क्योंकि आजाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के समय देश में 'वेश्या–उन्मूलन–प्रक्रिया' सरकार की ओर से घोषित की गयी थी; पर जो २० वर्षों में महज कागजी योजना बनकर रह गयी। जनपदों में वह पहुँची नहीं, जन–गण को उसका आभास तक न हुआ।

हमारे देश में बात–बात में नेतागण, विचारक और चिन्तक लोकतन्त्र की दुहाई देते हैं, जबकि यहाँ पाकिस्तानी अखबार व रेडियो लोकतन्त्र (जम्हूरियत) की भर्त्सना करते हुए यहाँ के मुसलिमों को यह पाठ पढ़ाता है कि "जम्हूरियत (लोकतन्त्र) का जवाब है 'ग्रेनेड' (बम) और 'ब्लारट' (विस्फोट)। मौत हमारे लिए बेमानी लफ्ज है। जो लोग हमारे इस्लामी उसूलों, अकीदों में ईमान नहीं रखते, उन्हें मार डालना ही एक हकीकत है। हमारा यह जेहाद सिर्फ गैर मुस्लिमों तक महदूद (सीमित) है, खासकर मुस्लिमों के दो खास दुश्मन, हिन्दुओं और यहूदियों तक। कुरान ने भी इन दोनों जमातों (हिन्दुओं और यहूदियों) को इस्लाम का दुश्मन करार दिया है। 'हिन्दू मजहब' शिर्क (बहुदेववाद) की सबसे बदतर शक्ल है। जिसमें ३ करोड़ देवी–देवता हैं। कश्मीर जाने वाले हमारे हजारों मुस्लिम लड़कों का यही सपना है कि 'हम जिहाद के लिए कश्मीर जायेंगे।' शहादत के लिए जेहाद करने हम बतौर वालण्टियर कश्मीर जायेंगे।" जम्हूरियत (लोकतन्त्र) उन खतरों में से एक है, जो परायी हुकूमत से हमें मिले हैं। हम इस्लामी खलीफाई की खालिस तहरीक (अवधारणा) को अमल में लाने की कोशिश करेंगे। इसके लिए मुजाहिदीन लम्बे अर्से तक शहादत देंगे, फिर एक ऐसा वक्त आयेगा कि इस्लाम की मुखालफत करनेवालों को कुचल दिया जायेगा।" यह मजमून पाकिस्तान की एक पत्रिका "मजला अल्–दावत", जिसकी प्रसार संख्या ७० हजार है, में छपा था। यह वृत्त पाकिस्तान की एक जिहादी मजलिस का है– जहाँ ये नारे दर्ज थे कि– "जम्हूरियत (लोकतन्त्र) का जवाब 'ग्रेनेड' (बम) और 'ब्लास्ट' (विस्फोट) और उक्त एलान है पाकिस्तानी "मुजाहिदीन–ए– ताईबा" के सालाना जलसे का। तभी तो तालिबान का उस्ताद अरबपति लादेन दावा करता है कि "हमारे १६–१६ साल के लड़के (तालिबान) कश्मीर जा रहे हैं।" और हम देख रहे हैं कि वही 'तालिबान' और सशस्त्र मुजाहिदीन विगत ८ वर्षों से कश्मीर में न केवल लोकतन्त्र को क्षत–विक्षत कर रहे हैं; वरन् भारतमाता के सीमान्त को जख्मी कर रहे हैं और हमारी सेना उन सब खूँखार शैतानों और पाकिस्तानी सेना, सभी से रात–दिन युद्ध कर रही है। खाली करा रही है पाकिस्तान द्वारा कब्जाये क्षेत्रों और भारतीय चौकियों को। इसीलिए क्रान्तिवीर विनायक दामोदर सावरकर का कहना था कि अखण्ड हिन्दुस्तान या अखण्ड पाकिस्तान'

रहेगा एक ही यानी पाकिस्तान नाम का विभाजन मिटाकर पुनः 'अखण्ड हिन्दुस्तान' निर्माण न केवल अतीत (इतिहास) का तकाजा है; वरन् वर्तमान की भी यही आहत आवाज है और भारत तभी सुरक्षित रह सकता है तथा अपने राष्ट्रीय सर्वांगीण विकास एवं प्रगति को पूर्णता तथा सफलता संप्राप्त कर सकता है, जब 'पाकिस्तान' नाम का अस्तित्व नक्शे से निःशेष हो रहे।

संघ और भा.ज.पा. को पानी पी–पीकर 'फासिस्ट' कहकर कोसने वाले कांग्रेसी बयानबाज इटली के जाने–माने पक्के फासिस्ट और तानाशाह मुसोलिनी के सहयोगी स्टीफानो माइनो की बेटी सोनिया को प्रधानमन्त्री पद परोसने की पेशकश करके किस लोकतन्त्र का दम भरते हैं? स्टीफानो को मुसोलिनी के बगलगीर रहने पर ही द्वितीय विश्व–युद्ध में रूस ने कैद किया था। इसी से कैद से भाग निकलने के बाद स्टीफानो ने अपने कुत्ते का नाम 'स्टालिन' रखा था। यह भारत के कम्युनिस्ट आदि वामपन्थियों के लिए क्या समाजवादी सनद है? गौरव का प्रतीक है, या वैसे ही यहाँ १० लाख ईसाई मिशनरियाँ धर्मान्तरण की आँधी चला रहे हैं, जिन्हें प्रतिवर्ष १४ अरब रुपये विदेशों से मिलता है। इसी तरह यहाँ मुल्लाओं को भी अरब देशों से हर साल १६ अरब रुपया धर्मान्तरण के लिए मिलता है। लोकतन्त्र कहाँ रहेगा, जबकि इस देश के हर नेता को विधायक या सांसद बनने का शौक चर्रा रहा हो; क्योंकि–

"बामेतरक्की तक पहुँचना तो बड़ी बात नहीं
कोई असेम्बली में अपना अजीज हो तो सही।" □

आसमान में बजे नगाड़े

\- राजनारायण चौधरी

उठो राष्ट्र के सेनानी, देखो सरहद पर लगी आग है।
पागल दुश्मन चला लूटने माँ के मस्तक का सुहाग है।।
चोरी–छिपे घुसा भीतर है, बरसाये उसने अंगारे।
चलो, बचाओ, लाज देश की, आसमान में बजे नगाड़े।।

हुआ समर का आमन्त्रण, लो मुट्ठी में बारूद सँभालो।
आँख दिखाता जो उसको तुम भस्म आज बस कर ही डालो।।
उठी लहर गंगा–यमुना में, धुँधुआयी है आग विन्ध्य पर।
हिन्द महासागर ने आकुल आज उछाला ज्वार पन्थ पर।।

महावीर ही और बुद्ध ही भारत ने पैदा न किये हैं।
हुए यहाँ वह वीर पुत्र भी जो खड्गों पर सदा जिये हैं।।
उबल रहा है खून नसों में वीर शिवा, राणा प्रताप का।
कुँवर सिंह, लक्ष्मीबाई का, वीर शिरोमणि छत्रसाल का।।

मजे चखाते ही आये हैं युद्ध थोपनेवालों को हम।
सबक सिखाते सदा पीठ में छुरा घोंपनेवालों को हम।।
बढ़ो शान से मचल–मचल कर रणचण्डी हुंकार उठी है।
आज देश के कोने–कोने की मिट्टी फूत्कार उठी है।।

बढ़ो जवानो अँगड़ाई ले, हो जाये भूडोल भुवन में।
मचे प्रलय का रास आज फिर, प्रलयंकर नाचे कण–कण में।।
धरो हौसला, कसो कमर, है समय नहीं चिन्तन करने का।
आ पहुँचा है दिन देखो फिर मातृभूमि पर मर मिटने का।।

नहीं प्रेम के, शान्ति–सत्य के पथ से हम डिगनेवाले हैं।
मगर बना जो विघ्न राह में, उसे खत्म करनेवाले हैं।।
बढ़ो, देखती माँ कब से पथ, वीर सुतों पर उसे गर्व है।
फहर रहा ध्वज हिम के तल पर, सदा हमारा विजय–पर्व है।।

— प्रोफेसर कॉलोनी, हाजीपुर (बिहार)–८४४१०१

दुर्दशा लोकतन्त्रस्य...

– डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

अवस्था सुतरां शोच्या लोकतन्त्रस्य भारते।
सा दयनीया दशा ह्यत्र दिङ्मात्रेण दर्श्यते।।१।।

इस समय भारत में लोकतन्त्र की दशा अत्यन्त शोचनीय है। यहाँ संकेतरूप में उस दयनीय दशा को कहा जा रहा है।

बलवद्भिः निर्बला अद्य पीड्यन्तेऽनारतं भृशम्।
न्यायालयेष्वपि न्यायं लभन्ते नैव पीडिताः।।२।।

आज भारत में निरन्तर शक्तिशाली व्यक्तियों के द्वारा निर्बल व्यक्ति बहुत अधिक सताये जा रहे हैं। अन्याय से पीड़ित व्यक्तियों को न्यायालयों में भी न्याय नहीं मिल पाता है।

अनीतिः महती शक्या कर्त्तुं धनबलेन वै।
यदि कुत्रचिद् धनं विफलं सफलं बाहुबलं तदा।।३।।

धन के बल से बहुत बड़े-बड़े अन्याय भी किये जा रहे हैं। जहाँ अन्याय करने में धन का बल सफल नहीं होता, वहाँ बाहुबल के द्वारा अन्याय किया जाता है।

अधिकारिषु कर्मचारिषु यः भ्रष्टाचारः प्रवर्तते।
महती लोकव्यथा तस्मात् सर्वत्रैव दृश्यते।।४।।

अधिकारियों तथा कर्मचारियों में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है, उससे सब कहीं लोग भारी कष्ट पा रहे हैं।

भेदाः जातेः धर्मस्य भाषायाः क्षेत्रस्य च।
सर्वत्रैव प्रवर्तन्ते लोकतन्त्रस्य शत्रवः।।५।।

जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के झगड़े, जो कि लोकतन्त्र के शत्रु हैं, सब कहीं देखे जा रहे हैं।

रक्षणमपराधिनामद्य क्रियते राजनेतृभिः।
रूपं लोकतन्त्रस्य विकृतं तेन जायते।।६।।

आज राजनेताओं के द्वारा अपराधियों की रक्षा की जाती है। इससे लोकतन्त्र का रूप विकृत हो रहा है।

दुर्दशा लोकतन्त्रस्य अस्माकं देशेऽस्ति या।
अस्माभिः चिन्त्यं सततं साऽपाकरणीया कथम्।।७।।

हमारे देश में लोकतन्त्र की जो दुर्दशा है, उसे दूर करने का उपाय हमें निरन्तर सोचना है।

धनबाहुबलयोः प्रभुता यावत् तिष्ठति भारते।
तावल्लोकतन्त्रस्य कल्पनापि न युज्यते।।८।।

जब तक भारत में धनबल और बाहुबल की प्रभुता स्थापित है, तब तक लोकतन्त्र की कल्पना भी उचित नहीं है।

नागरिकाः स्वाधिकारान् प्रति सचेताः स्युः सर्वदा।
सर्वथा कर्तव्याणि पालयेयुश्च निष्ठया।।९।।

नागरिक अपने अधिकारों के प्रति सर्वदा सचेत रहें तथा अपने कर्तव्यों का भी निष्ठापूर्वक पालन करें।

'भारतीयाः वयं सर्वे' इत्येकैव भावना।
सर्वेषां भारतीयानां कुर्याद् गृहं मानसे।।१०।।

'हम सभी भारतीय हैं' यह एक ही भावना सभी भारतवासियों के हृदय में घर कर जाये।

हृदयेभ्यः दूरान् कृत्वा भेदान् सर्वान् विघातकान्।
एकतासूत्रबद्धाः स्युः भारतीयाः सदा दृढ़म्।।११।।

सभी भारतीय अपने मन से विनाशकारी भेदों को दूर करके एकता के सूत्र में सदा दृढ़तापूर्वक आबद्ध रहें।

निर्वाचनं निष्पक्षं स्वतन्त्रं न्यायसंगतम्।
कथितं सुधीजनैर्नित्यं लोकतन्त्रस्य जीवितम्।।१२।।

निष्पक्ष, स्वतन्त्र तथा न्यायपूर्ण निर्वाचन को बुद्धिमान् लोग लोकतन्त्र का प्राण कहते हैं।

अतश्चेल्लोकतन्त्रस्य रक्षां वाञ्छामो वयम्।
निर्वाचनस्य पावित्र्यं तर्हि रक्ष्यं सदा ध्रुवम्।।१३।।

अतः यदि हम लोग लोकतन्त्र की रक्षा करना चाहते हैं, तो हमें सदैव निश्चित रूप से निर्वाचन की पवित्रता को बचाना ही चाहिए।

सम्प्रति भारते यद्यपि लोकतन्त्रस्य या स्थितिः।
सा सन्तोषप्रदा नास्ति तथाप्याशास्महे वयम्।।१४।।

यद्यपि इस समय भारत में लोकतन्त्र की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है, फिर भी हम आशा करते हैं कि-

भारते लोकतन्त्रं किल भविष्यति भास्वरं ध्रुवम्।
निश्शेषे विश्वे लब्ध्वा कीर्तिं जीविष्यति चिरम्।।१५।।

भारत में लोकतन्त्र निश्चित रूप से चमकेगा और सम्पूर्ण विश्व में कीर्ति प्राप्त करके चिरकाल तक जीवित रहेगा।

□

– रामनगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रामनगर, बाराबंकी

[नेहरू जी की 'दो घोड़ों पर सवारी' के कारण ही आज देश अनेक विषमतर समस्याओं से जूझ रहा है। कश्मीर की समस्या नेहरू जी की ही देन है, जो आज तक देश को साँसत में डाले हुए है। – सम्पादक]

बात सन् १९६३ की है। उस दिन राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली में हिन्दी की मीरा महादेवी वर्मा के सम्मान में एक कवि–गोष्ठी का आयोजन था, उसी शाम श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के आवास पर उनके सम्मानार्थ एक छोटा–सा आयोजन और था, सबेरे कार्यक्रम में व्यस्ततावश पं० जवाहरलाल नेहरू उपस्थित न हो पाये थे, सो शाम अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे, उनके अनपेक्षित आगमन से सभी विस्मय–विमुग्ध हो उठ खड़े हुए।

उस वक्त कवि बलवीर सिंह 'रंग' कविता पाठ कर रहे थे। रंग जी ने नेहरू जी के इस अनायास आगमन पर भी अपना कविता पाठ नहीं रोका। रंग जी को देखते ही नेहरू जी बोले– "कालीदास, तुम भी यहाँ हो ? मैं तो महादेवी से मिलने चला आया था।" रंग जी के निर्भीक स्वर पण्डित जी की उपस्थिति से भी विचलित नहीं हुए–

"पद लोलुपता और त्याग का
एकाकार नहीं होने का
दो नौका पर पग रखने से
सागर पार नहीं होने का"

हिन्दी के तथाकथित प्रगतिशील दिग्गजों की नजर में तब के अदने से कवि रंग ने उस वक्त क्या किसी 'कटु–सत्य' की ओर इशारा किया था ?

इस छोटे से स्मरण से प्रारम्भ कर उस महान् कटु सत्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयोजन यह है कि प्रायः हम अपने महापुरुषों की पुण्य–तिथियों और जन्म–दिवसों पर उनकी गुण–गाथा और यशगान ही गाया करते हैं, उनकी आलोचना या कमजोरी को सच्चाई और ईमानदारी से कहने और सहने का नैतिक साहस भी हममें नहीं है। क्या हम यह समझते हैं कि हमारे महापुरुष इतने कच्चे हैं कि वे आलोचनाओं से ढह जायेंगे ? दूसरे इनकी आलोचनाओं को उनके प्रशंसक, अनुयायी अपनी व्यक्तिगत आलोचना मान लेते हैं तथा उसे अपने अहं और सम्मान का प्रश्न बना लेते हैं। एक प्रवृत्ति और देखी गयी है, जब भी कोई आलोचक, विद्रोही, प्रचलित परम्परा, मान्यता, विश्वास और सिद्धान्तों को तोड़ने का साहस या प्रयत्न करता है, तो उसे भी घमण्डी या अहंकारी समझा जाता है। प्रायः यह भी देखा गया है कि महापुरुषों के समर्थक इतने अन्धभक्त या कट्टर होते हैं कि उनके खिलाफ सच्चाई का एक शब्द भी सुनना पसन्द नहीं करते। सम्भवतः वे यह समझते हैं कि अगर उनके प्रेरक का ही व्यक्तित्व ढह गया या वह स्वयं ही कमजोर अक्षम या गलत साबित हो गया, तो उनका स्वयं का अस्तित्व भी तब कहाँ जायेगा ? और अपने अस्तित्व ढहने की कल्पना मात्र से ही ये लोग इतने आतंकित रहते हैं कि सच्चाई कहने–सुनने का साहस भी खो बैठते हैं।

पं० जवाहरलाल नेहरू की एक विद्वान् विचारक, इतिहासकार, चिन्तक लेखक सजग विद्रोही राजनेता होने की ख्याति है। जार्ज बनार्ड शॉ ने तो यहाँ तक कहा कि "अगर नेहरू राजनीतिज्ञ नहीं होते, तो वे भारत के सफलतम और महान् लेखकों में एक होते।"

आज भी पं० जवाहरलाल नेहरू लिखित "मेरी कहानी" 'विश्व इतिहास की एक झलक' (तीन भाग), 'पिता के पत्र पुत्री के नाम', "मिलो दूर जाना है", "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया", "कुछ पुरानी चिट्ठियाँ" आदि अनेक हिन्दी और अंग्रेजी पुस्तकों की भाषा, शैली और सौष्ठव देखते ही बनता है। सच तो यह है कि वह युग की राजनीति में साहित्यिकों, पत्रकारों, विद्वानों का युग था। हमारे सभी महान् नाम मुख्यतः पत्रकार, लेखक थे। गांधी जी– "यंग

इण्डिया", "नवजीवन", पं० मदनमोहन मालवीय (दैनिक हिन्दुस्थान), लोकमान्य तिलक ("मराठा" "केसरी") राजेन्द्र बाबू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, राजा जी (कल्कि) पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, बाबू सम्पूर्णानन्द, सभी राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ कुशल पत्रकार, सम्पादक, साहित्यकार थे तथा इनकी साहित्य सेवाओं से कोई अपरिचित नहीं है।

किन्तु बंगाल के विद्रोही शेर सुभाष चन्द्र बोस स्वयं जब पं० जवाहर लाल नेहरू पर अपने ४५ पृष्ठ लम्बे पत्र में निर्भीकता के साथ यह आरोप लगायें कि मैं यह निर्भीकता से पूछना चाहूँगा कि तुम क्या हो ? समाजवादी या वामपन्थी, मध्यमार्गी या दक्षिणपन्थी या गांधीवादी या और कुछ ? इससे भी आगे बढ़कर जब वे कहते हैं- तुम लाड़-प्यार में बिगड़े एक बड़े बाप के बेटे हो, तो हमें विवशतापूर्वक पं० जवाहर लाल नेहरू के अन्तर्मन और चरित्र को वास्तविक रूप से जानना होगा। सुभाष चन्द्र बोस ने पं० जवाहर लाल नेहरू को अपने उस ४५ पृष्ठ लम्बे पत्र में जो कुछ लिखा था, संक्षेप में वह "कुछ पुरानी चिट्ठियाँ" (सं० पं० जवाहर लाल नेहरू पृष्ठ ४३८ पर) इस प्रकार हैं :

२८ मार्च, १९३९

प्रिय जवाहर,

मुझे लगता है, तुम कुछ समय से मुझे बहुत ज्यादा नापसन्द करने लगे हो। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि कोई भी बात, जो मेरे विरुद्ध पड़ती है, उसे तुम बड़े उत्साह से ग्रहण कर लेते हो और मेरे पक्ष में जानेवाली बातों की उपेक्षा करते रहे हो। मेरे राजनैतिक विरोधी मेरे खिलाफ जो कुछ कहते हैं, उसे तुम मान लेते हो; किन्तु तुम उसके खिलाफ कही जा सकनेवाली बातों के प्रति करीब-करीब अपनी आँखें बन्द कर लेते हो। मैं इस कथन को आगे स्पष्ट करने की कोशिश करूँगा। राजनैतिक दृष्टि से मैंने तुम्हें अपना बड़ा भाई और नेता माना है और अक्सर तुम्हारी सलाह लेता रहा हूँ। पिछले साल जब तुम यूरोप से वापस आये, तो मैं तुम्हारे पास इलाहाबाद आया और पूछा कि अब तुम क्या हमें नेतृत्व दोगे ? आमतौर पर जब मैं तुम्हारे सामने आया, तो तुम्हारे जवाब अस्पष्ट और अनिश्चित रहे। पहले तुमने टाला कि तुम गांधी जी से परामर्श करोगे, उसके बाद बताओगे। जब हम वर्धा में मिले, तुम गांधीजी से मिल चुके थे। फिर भी मुझे तुमने कुछ नहीं बताया। बाद में कार्य-समिति के सामने प्रस्ताव पेश किये, जिनमें नया कुछ भी नहीं था; किन्तु तुम्हारे बयान, उसके बारे में मैं क्या कहूँ ? मैं कटु भाषा का प्रयोग नहीं करूँगा और केवल यही कहूँगा कि वह तुम्हारे लायक नहीं था, तुम्हारे बयान से ऐसा मालूम पड़ता है कि अन्य १२ सदस्यों की तरह तुमने भी त्यागपत्र दे दिया है; किन्तु इस समय तक आम जनता के समक्ष तुम्हारी स्थिति एक पहेली बनी हुई है। जब कोई संकट पैदा होता है, तो अक्सर इस पक्ष में या उस पक्ष में तुम अपनी राय नहीं बता पाते और नतीजा यह होता कि जनता को तुम दो घोड़ों पर सवारी करते हुए दिखायी देते हो। मैं तुम्हें बताऊँ कि कांग्रेस अध्यक्ष चुनाव के बाद से कार्य-समिति के १२ भूतपूर्व सदस्यों ने जितना एक साथ मिलकर नहीं किया, उससे कहीं अधिक तुमने मुझे जनता की निगाह में गिराने के लिए किया है। अवश्य ही अगर मैं सचमुच इतना दुष्ट हूँ, तो यह तुम्हारा अधिकार ही नहीं, बल्कि कर्तव्य भी हो जाता है कि तुम जनता के सामने मेरा पर्दाफाश करो। किन्तु शायद तुमको यह प्रतीत होगा कि जो दुष्ट व्यक्ति तुम्हारे सामने बड़े से बड़े नेताओं, महात्मा गांधी और प्रान्तीय सरकारों के विरोध के बावजूद अध्यक्ष चुना गया, उसमें कुछ तो अच्छाई होगी। अब मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारी नीतियाँ क्या हैं ? मुझे आश्चर्य होता है जब तुम अर्द्धसत्य और असत्य का आश्रय लेते हो। तुम अक्सर कहते हो कि तुम अपना ही प्रतिनिधित्व करते हो और किसी का नहीं और तुम्हारा किसी भी पार्टी से सम्बन्ध नहीं है। अक्सर यह बात तुम इस ढंग से कहते हो कि मानो तुम इस बात पर बड़ा गर्व या सुख अनुभव करते हो।

साथ ही कभी-कभी तुम अपने को पक्का समाजवादी भी कहते हो। मेरी समझ में नहीं आता कोई समाजवादी, जैसा कि तुम अपने को कहते हो, व्यक्तिवादी कैसे हो सकता है ? एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हो सकता है ? मेरे लिए यह भी एक पहेली है कि तुम जिस व्यक्तिवाद के समर्थक हो, उसके जरिये समाजवाद कभी भी कैसे स्थापित हो सकता है ? अपने पर किसी पार्टी का बिल्ला न लगाकर आदमी सब पार्टियों का प्रिय हो सकता है; किन्तु उसका मूल्य क्या है ? अगर एक आदमी किन्हीं विचारों में या सिद्धान्तों में विश्वास रखता है, तो उसे उन्हें साकार करने की कोशिश करनी चाहिए और यह किसी पार्टी या संगठन के जरिये ही किया जा सकता है। मैंने आज तक नहीं सुना कि किसी देश ने बिना पार्टी के समाजवाद या उसकी स्थापना की दिशा में कदम आगे बढ़ाया है। महात्मा गांधी की भी अपनी पार्टी है। इस बारे में शायद तुम्हें याद होगा, जब हम शान्ति निकेतन में मिले थे, तो मैंने सुझाया था कि अगर हमारी कोशिशों के बावजूद हम कार्य-समिति के सदस्यों का सहयोग न कर सकें, तो हमको कांग्रेस को चलाने की जिम्मेदारी से मुँह

नहीं मोड़ना चाहिए। उस समय तुम मुझसे सहमत हो गये थे। बाद में पता नहीं किन कारणों से, तुम मानो बड़ी बहादुरी से दूसरे पक्ष में जा मिले। बेशक तुम्हें ऐसा करने का प्रत्येक अधिकार हासिल था; किन्तु फिर तुम्हारा समाजवाद या वामवाद कहाँ गया? बहुत साफ–साफ कहूँ, तुम कभी–कभी कार्यसमिति में लाड़–प्यार से बिगड़े बड़े बाप के बेटे की तरह बर्ताव करते थे और अक्सर तुम्हारा पारा चढ़ जाता था। मैं तुम्हें अपनी नीति और कार्यक्रम स्पष्ट करने की दावत देता हूँ। अस्पष्ट सामान्य बातों के द्वारा नहीं; बल्कि यथार्थवादी विस्तार के साथ मैं यह भी जानना चाहूँगा कि तुम क्या हो? गांधीवादी, समाजवादी, वामपन्थी और कुछ? (अत्यधिक लम्बे पत्र के चुने हुए और सम्पादित अंश)

उनका अन्तर्मन

शायद सुभाष बाबू अन्त तक नहीं जान पाये कि नेहरू की नीतियाँ और कार्यक्रम क्या हैं? इसी सन्दर्भ में एक संस्मरण और याद आया, जिसे यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा। उज्जैन में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले अखिल भारतीय कालिदास समारोह के सम्बन्ध में एक प्रतिनिधि मण्डल पद्मभूषण साहित्य वाचस्पति पं० सूर्यनारायण व्यास के नेतृत्व में पं० जवाहर लाल नेहरू से मिला। पं० व्यास कालिदास समारोह के संस्थापक तो थे ही, ज्योतिष के भी प्रामाणिक विद्वान् थे और पं० नेहरू के ज्योतिष विरोधी भाषणों, लेखों का उत्तर वे 'विक्रम' (सम्पादक स्वयं पं० सूर्यनारायण व्यास) में 'पण्डित जी का पण्डितों पर प्रकोप', 'नेहरू की नक्षत्रों पर नाराजी', 'तुनुकमिजाज नेहरू' शीर्षक से दिया करते थे और स्वयं पं० नेहरू उन्हें पढ़ा भी करते थे। प्रतिनिधि मण्डल में चर्चा के दौरान नेहरू जी सामने टेबल पर रखे कोरे कागज के पैड पर बालपेन से कुछ भी हाथ चलाते रहे, बात सुनते रहे। जब चर्चा समाप्त हुई, नेहरू जी कक्ष से उठ कर चले गये, तो व्यास जी ने पैड में से वह पन्ना निकाल कर रख लिया और बाद में उस पेज पर से "नेहरू के अन्तर्मन की एक झलक" शीर्षक से एक ज्योतिषीय और मनोवैज्ञानिक लेख "हिन्दुस्तान" (दैनिक) दिल्ली में नेहरू की जीवित अवस्था में लिखा था। उक्त लेख में व्यास जी ने स्पष्ट लिखा था कि प्रायः निर्णायक क्षणों में नेहरू का दिमाग दो भागों में बँट जाता है। उनके अन्दर वैचारिक उथल–पुथल का अच्छा खासा युद्ध मचा रहता है। उक्त प्रसंग की चर्चा तत्कालीन अखबारों में काफी हुई। स्वाधीनता के पश्चात् पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री बने और साथ–साथ कांग्रेस अध्यक्ष के पद पर भी बने रहे। प्रधानमन्त्रित्व काल में

...उनकी पोल खुले

– सुरेश चन्द्र वर्मा 'विनीत'

बहुत दिनों तक ढोल बजे जो
उनकी पोल खुले।
जिसकी जितनी सुन्दर काया
उसके अन्दर उतनी माया।
पहन मुखौटा आदर्शों का
सबको फुसलाया, भरमाया।
राग अलग ढपली थी
अन्दर से सब मिले–जुले।
महल टिके थे जिस धरती पर
रहे उसे ही सब दिन छलते।
कल के मोहक स्वप्न दिखाकर
रहे मूँग छाती पर दलते।
किस विधि धर्म–तुला पर
ऐसा निर्मम हृदय तुले।
बाघ ओढ़ सन्तों के चोले
बने रहे सब दिन से भोले।
मूँड़ सभी भक्तों के सिर को
रहे सदा बरसाते ओले।
देखे हर मठ, पन्थ
दूध के कोई नहीं धुले।

– भजन का पुरा, निकट राजकीय इण्टर कालेज
महुअरिया, मीरजापुर–२३१००१

नेहरू के लिए निर्णयों पर भी अगर हम गम्भीरता से विचार करें, तो यह बात स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगी। (स्व०) पं० जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रपति महात्मा गांधी के नाम ४ नवम्बर १९२९ को लिखे पत्र में 'कुछ पुरानी चिट्ठियाँ' पत्र क्रमांक ६३ पृष्ठ ६४) स्वीकारा भी है– "मैं इस बात को पहले से ज्यादा अब महसूस करता हूँ कि कई घोड़ों पर एक साथ सवारी करना काफी मुश्किल है।"

नेहरू युग को बीते एक अरसा बीत गया। समय पर इन दस्तावेजों पर ध्यान न देने से परिणाम यह हुआ कि आज भी दो घोड़ों पर सवारी जारी है। बस फर्क इतना है कि आज टोकने वाले सुभाष भी तो नहीं हैं।

□

– ई–६०७, कर्जन रोड अपार्टमेण्ट्स,
नई दिल्ली–११०००१
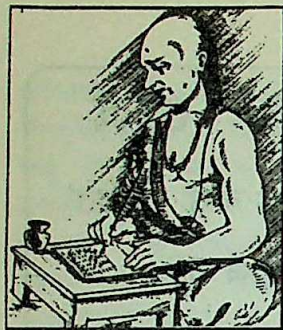
आचार्य कौटिल्य

कितनी महत्त्वपूर्ण है आयुध प्रौद्योगिकी कौटिल्य की दृष्टि में

लेखक

- श्याम नारायण कपूर

आचार्य कौटिल्य राजनीति, कूटनीति, युद्धनीति और सेना-संचालन के तो जाने-माने आचार्य ही थे। 'आयुधागाराध्यक्ष' प्रकरण में उन्होंने तत्कालीन प्रचलित जिन आयुधों को संग्रह किया जाना अनिवार्य बतलाया है, उनमें से कुछ के नाम यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। इनसे ज्ञात होता है कि उनके समय में भी तोपें और अन्य आग्नेय अस्त्र बहुत उपयोगी माने जाते थे।

उन्होंने इन आयुधों के 'स्थिर यन्त्र' और 'चल यन्त्र' नाम से दो प्रमुख विभाग किये हैं। स्थिर यन्त्रों में (१) सर्वतोभद्र (मशीन गन), (२) जामदग्न्य- जिनके बीच के छेदों से बड़े-बड़े गोले निकलते हैं, (३) बहुमुख, (४) विश्वासघाती- नगर के बाहर तिरछी बनावट का ऐसा यन्त्र, जिसको छू लेने से ही प्राणान्त हो जाय, (५) संघाटि- ऐसा यन्त्र जो महलों के ऊपर रोशनी फेंके। इस प्रकार के कुल दस यन्त्र गिनाये गये हैं। इस सूची में वरुणास्त्र नाम का भी एक यन्त्र है। यह सम्भवतः पानी की तेज बौछार करने के काम में आता हो- आग बुझाने का भी काम करता हो। इस प्रकार के यान्त्रिक साधनों का प्रयोग आधुनिक आयुधों से कुछ कम आक्रामक, प्रभावशाली और सशक्त नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार १५ प्रकार के चल यन्त्रों का भी विवरण दिया है। स्थिर यन्त्र और चल यन्त्रों की कोई स्पष्ट परिभाषा तो दी नहीं गयी है। अतः उनका मर्म समझना कुछ कठिन है। चल यन्त्रों में शतघ्नी, त्रिशूल, चक्र, देवदण्ड, मूसल, यष्टि, मुद्गर और गदा प्रभृति आयुध गिनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी परम्परागत पुराने आयुध- धनुष-बाण का विवरण है। बाण भी कई प्रकार के बतलाये गये हैं।

सामरिक महत्त्व के स्थिर और चल यान्त्रिक अस्त्रों के साथ उन्होंने राजभवन और राजकीय कोषागार के निर्माण में भी यन्त्रों को काम में लाने का उल्लेख किया है, जिससे उनके वास्तु-शास्त्र के साथ-साथ यन्त्र निर्माण के भी जानकार होने की बात स्पष्ट होती है। 'अर्थशास्त्र' के 'निशान्तप्रणिधि' अध्याय में राजभवन के निर्माण हेतु उल्लेख है कि आपत्तिकाल के निवारण के लिए यन्त्रों के आधार पर ऐसा वासगृह बनाया जाय, जो नीचे-ऊपर और इधर-उधर हटाया जा सके-

'वासगृहं यन्त्रबद्धतलावपातं कारयेद् आपत्प्रतीकारार्थम्।'
१५/१६/२

स्वचालित यन्त्र

राजकीय कोषागार (खजानों) के निर्माण सम्बन्धी निर्देश देते हुए 'साचिधातृनिचयकर्म' अध्याय (२१/५/२) में बतलाया गया है कि सीलन रहित स्थान में बावड़ी के समान एक चौरस गड्ढ़ा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और उसके फर्श को मोटी सुदृढ़ शिलाओं से चुनवाया जाय। उसके बीच में मजबूत लकड़ियों के बने पिंजरे के समान अनेक कोठरियाँ हों, उसमें तीन तल हों। तीनों तलों के बढ़िया दरवाजे और सुन्दर फर्श हो। ऊपर-नीचे, चढ़ने-उतरने के लिए उसमें 'यन्त्रचालित सोपान' अर्थात् लिफ्ट लगा हो।

यह यन्त्र कैसे कार्य करते थे, इनकी कार्य-विधि एवं सचालन-प्रक्रिया के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है; परन्तु इतना निश्चित है कि इस प्रकार के यन्त्र काम में अवश्य लाये जाते रहे होंगे। 'अर्थशास्त्र' में कार्य-विधि का उल्लेख न होना कोई असामान्य बात नहीं है। ग्रन्थ तो राजनीति और दण्डनीति का है।

सीता (कृषि), सुरा (मदिरा), गो, अश्व व हस्ति प्रकरण तथा हाथियों की श्रेणियों और उनके कार्यों के प्रकरणों में विभागाध्यक्षों को दिये जाने वाले निर्देशन उन विषयों के विशेषज्ञों द्वारा ही दिये जा सकते हैं और यह सब स्वयं आचार्य कौटिल्य ने दिये हैं। निःसन्देह वे लोकहित कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाली विज्ञान की सभी विधाओं में पारंगत रहे होंगे।

राजकाज सम्बन्धी विभिन्न प्रकरणों में उन्होंने पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए उनसे सहमत न होने पर अपने अभिमत को जिस प्रकार तर्कयुक्त रीति से प्रस्तुत किया है, वह उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक है। ☆

-साहित्य-निकेतन, गिलिस बाजार, शिवाला मार्ग, कानपुर।

कहानी

बूढ़ी अम्मा

- मदन मोहन पाण्डेय

[गत पचास वर्षों में लोकतंत्र की विडम्बना के फलस्वरूप हमारी पारिवारिक-संस्कृति पर जो दुष्प्रभाव शनैः शनैः परोक्षतः पड़ता रहा, उसी से उपजी विकृति की एक मार्मिक झाँकी इस कहानी में दृष्टिगोचर होती है। — **सम्पादक**]

राजो अपनी भैंसों को सानी खिलाकर दूध निकाल चुकी थी। वे काफी देर से चरने के लिए रँभा रही थीं। इस खाली प्लाट में डेरा जमाने के बाद यही तो विशेष सुविधा थी। आस-पास दो-चार मकान ही अभी बन पाये थे। अतः भैंसों को निर्बाध गति से घूमने में कोई बाधा नहीं थी, चाहे जहाँ उपले पाथो और चाहे जहाँ भैंसें चराओ। तंग जगह में यह सुविधा कहाँ मिलती ? इसीलिए विमल बाबू को थोड़ा किराया देकर उसके पति मनोहर ने यह प्लाट ले लिया। गाँव से आयी राजो को एक ही बात खलती थी कि यहाँ लोग एक-दूसरे से मेल-मुलाकात जल्दी नहीं बढ़ाते हैं। गाँव वाला अपनापन तलाशने के लिए वह पड़ोस के मकान की बूढ़ी अम्मा से दो बातें करके कभी-कभी जी हल्का कर लेती। मगर यह तभी सम्भव होता, जब बूढ़ी अम्मा के बेटे-बहू नौकरी पर निकल जाते। उनके रहते तो उधर ताकने की हिम्मत न तो राजो को होती और न बूढ़ी अम्मा ही मुँहजोर बहू और उसकी हाँ में हाँ मिलानेवाले बेटे के आगे ऐसी जुर्रत कर सकती थीं।

बेटा और बहू बूढ़ी अम्मा को गाँव से यहाँ लाये थे, तो उसमें उनका स्वार्थ था। खेती-पाती तो उन्होंने बेंच ही दी थी। बूढ़ी अम्मा के पास जो जमा-जथा थी, उसे मकान में लगवाने तक नरम रहे उनके तेवर बूढ़ी अम्मा के हाथ खाली होने से ही गरम पड़ने लगे थे। अब वे घर में एक गैरजरूरी जिन्स बन कर रह गयी थीं, जो घर की कुरूपता बढ़ाने में सहायक थी। बेटे-बहू यह नहीं चाहते थे कि किसी परिचित के सामने वह बाहर निकलें। उनका झुर्रियों भरा चेहरा, झुकी कमर, पुराने ढंग के कपड़े, लाठी की ठक-ठक सब कुछ बेटे की नजरों में उन्हें अपने दोस्तों और मेहमानों की निगाह में गिरानेवाला था। बहू और बेटे को घर की चौकीदारी के लिए भी अब बूढ़ी अम्मा की जरूरत कम महसूस होती थी, वे सात हजार खर्च करके एक अच्छी नस्ल का कुत्ता खरीद चुके थे। और जाहिर है, कुत्ता सात हजार खर्च करके मिला था, बूढ़ी अम्मा को पाने के लिए कोई कीमत तो खर्च करनी नहीं पड़ी थी, इसलिए कुत्ते की तुलना में बूढ़ी अम्मा यदि निर्मूल्य लगतीं, तो यह अचरज की बात भी नहीं थी। बहू कामिनी का आफिस नजदीक था, इसलिए वह जल्दी आ जाती थी। वह पहले कुत्ते को मार्शल कह-कह कर पुकारती और जब तक उसके पास पहुँचती, तब तक कुत्ता भी बेहाल हो जाता और कामिनी तो जैसे प्राण ही पा जाती। दादी के पास कोने की कोठरी में खेलते अपने बेटे बण्टी को देखने की उसे इतनी फुर्सत नहीं होती,

बेटा और बहू बूढ़ी अम्मा को गाँव से यहाँ लाये थे, तो उसमें उनका स्वार्थ था। खेती-पाती तो उन्होंने बेंच ही दी थी। बूढ़ी अम्मा के पास जो जमा-जथा थी, उसे मकान में लगवाने तक नरम रहे उनके तेवर बूढ़ी अम्मा के हाथ खाली होने से ही गरम पड़ने लगे थे। अब वे घर में एक गैरजरूरी जिन्स बन कर रह गयी थीं, जो घर की कुरूपता बढ़ाने में सहायक थी। बेटे-बहू यह नहीं चाहते थे कि किसी परिचित के सामने वह बाहर निकलें। उनका झुर्रियों भरा चेहरा, झुकी कमर, पुराने ढंग के कपड़े, लाठी की ठक-ठक सब कुछ बेटे की नजरों में उन्हें अपने दोस्तों और मेहमानों की निगाह में गिरानेवाला था। बहू और बेटे को घर की चौकीदारी के लिए भी अब बूढ़ी अम्मा की जरूरत कम महसूस होती थी, वे सात हजार खर्च करके एक अच्छी नस्ल का कुत्ता खरीद चुके थे। और जाहिर है, कुत्ता सात हजार खर्च करके मिला था, बूढ़ी अम्मा को पाने के लिए कोई कीमत तो खर्च करनी नहीं पड़ी थी, इसलिए कुत्ते की तुलना में बूढ़ी अम्मा यदि निर्मूल्य लगतीं, तो यह अचरज की बात भी नहीं थी।

जितनी मार्शल को खिलाने–पिलाने की। वह मार्शल के लिए पानी बढ़ा देती और अगर मार्शल दो बार जीभ से पानी छू भी लेता, तो नजला पूरा का पूरा बूढ़ी अम्मा पर उतर जाता कि घर में लाश की तरह पड़ी हो और प्यास से मार्शल हाल–बेहाल हो रहा है। उन पर भुनभुनाती हुई बहू के हाथ में मार्शल की जंजीर होती और बूढ़ी अम्मा की आँखों में आँसू होते।

राजो को कामिनी और उसके पति हेमन्त से मन ही मन यही शिकायत रहती कि वे अपनी माँ पर कुत्ते को वरीयता देते हैं। कामिनी परायी है, लेकिन हेमन्त तो बूढ़ी अम्मा का सगा बेटा है। इसे तो माँ पर ध्यान देना चाहिए। जिसने नौ महीने पेट में रखा, पाला–पोसा और लायक बनाया, वह कुत्ते से भी गयी गुजरी हो गयी! मार्शल को कुर्सी, सोफा, बिस्तर कहीं भी बैठने की आजादी थी, जबकि बूढ़ी बेटे–बहू के घर में रहते कोठरी की लक्ष्मण–रेखा लाँघ नहीं सकती थी। कुत्ते को छींकें आ जातीं, तो डॉक्टर बुलाया जाता, बूढ़ी अम्मा को कुछ भी हो जाता, तो कोई पूछनेवाला भी नहीं।

बेटे–बहू के घर से चले जाने पर वे कभी राजो के साथ बातचीत कर लेतीं। राजो को लगता जैसे बूढ़ी अम्मा अपनी माँ हों, इस तरह गृहस्थी चलाने का जतन उसे बतातीं। बूढ़ी अम्मा घर के काम में बड़ी निपुण महिला रही थीं। अतः राजो को मौके–बेमौके सिलाई–कढ़ाई सिखाने की कोशिश करतीं। तब राजो कहती– "अम्मा, इतना तो मुझे अपनी सगी माँ ने भी नहीं सिखाया। लेकिन काम की वजह से कुछ सीख कहाँ मिलता है। आप जैसी सास घर में होती, तो यह हुनर मैं बहुत जल्दी सीख लेती। धन्य हैं वे बेटे–बहू, जिन्हें आप जैसी माँ और सास मिली।"

"तभी तो कुत्ते से भी गयी–गुजरी दशा में रह रही हूँ। अब देह में उतनी ताकत कहाँ, जो किसी को खुश करने लायक काम कर सकूँ?" बूढ़ी अम्मा ने कहा।

मैं सब जानती हूँ। आप न हों, तो घर में मक्खियाँ भिनकने लगें। झाड़ू–बुहारू से लेकर चौका–बर्तन, पोते बण्टी को खिलाना–पिलाना सब कौन करता है? कामिनी तो आकर चाय का प्याला ही ले लेना जानती है या कुत्ते को दूध पिलाना। मैं पूछती हूँ, क्या कभी आपकी चाय की भी फिक्र करती है कुत्ते को दूध पिलानेवाली बहू?" राजो ने खरी बात कह दी।

राजो का अपनापा पाकर उस दिन बूढ़ी अम्मा के दिल का बाँध टूट पड़ा, "सुना है बहू, अब तो कोई आया रखी जाने वाली है बण्टी की परवरिश के लिए। मेरी परवरिश में उसके गँवार और गन्दे हो जाने का डर है। बाप मेरे पास गन्दा नहीं हुआ, बेटा गन्दा हो जायेगा।"

दरअसल बूढ़ी अम्मा को आया के आ जाने पर अपने पोते की तोतली बातों से भी वंचित हो जाने की आशंका थी। उन्हें लग रहा था, उनकी कोठरी की कैद और कड़ी हो जायेगी। वे गुमसुम–सी हो गयीं। उन्हें अपनी असुविधाओं का शिकवा नहीं था, लेकिन अपने और पोते के बीच में खिंचती दीवार से उन्हें दिली तकलीफ थी। फिर आया भी पता नहीं कैसी होगी। आये दिन तो चोर–उचक्के नौकरों से घरों की बरबादी की कहानियाँ सुनने में आती हैं। जन्म भर गृहस्थी जोड़नेवाली माँ की तुलना में आया पर अधिक भरोसा रखना उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उनके आँसू छलक आये थे अपने बँधते हाथ–पाँव देखकर।

राजो से उनके दिल का हाल छिपा नहीं रह सका और वह बोली– "आया तनख्वाह लेकर काम करेगी। पर चार दिन को तुम्हारे हाथ–पाँव रुक जायें, तो इन्हें आटा–दाल का भाव पता चल जायेगा। आया तो केवल बण्टी को देखेगी, वह भी पैसे की खातिर। आपकी तरह उसका बण्टी से खून का नाता तो है नहीं।"

"पर वे कहते हैं, वह बण्टी को पढ़ायेगी भी। मेरी गँवारू शिक्षा से बण्टी के बिगड़ जाने का डर है" बूढ़ी अम्मा ने कहा।

"तो अब सुधार लें। अच्छा बूढ़ी अम्मा, अब चलती

मैं सब जानती हूँ। आप न हो, तो घर में मक्खियाँ भिनकने लगें। झाड़ू–बुहारू से लेकर चौका–बर्तन, पोते बण्टी को खिलाना–पिलाना सब कौन करता है? कामिनी तो आकर चाय का प्याला ही ले लेना जानती है या कुत्ते को दूध पिलाना। मैं पूछती हूँ, क्या कभी आपकी चाय की भी फिक्र करती है, कुत्ते को दूध पिलाने वाली बहू?" राजो ने खरी बात कह दी।

राजो का अपनापा पाकर उस दिन बूढ़ी अम्मा के दिल का बाँध टूट पड़ा, "सुना है बहू अब तो कोई आया रखी जाने वाली है बण्टी की परवरिश के लिए। मेरी परवरिश में उसके गँवार और गन्दे हो जाने का डर है। बाप मेरे पास गन्दा नहीं हुआ, बेटा गन्दा हो जायेगा।"

हूँ। मुझे अभी उपले थापने हैं और उधर मुन्ना भी रोने लगा है," कहकर वह अपने तिरपाल की ओर चली गयी।

बूढ़ी अम्मा देर तक उसका पायलें बजाते हुए जाना और रोते हुए मुन्ने को उठाकर आँचल की ओट में दूध पिलाना देखती रहीं। मुन्ना हुमच–हुमच कर दूध पी रहा था और राजो के मुँह पर एक अकथनीय सन्तोष–सुख झलक रहा था। ऐसा सुख, जिस पर कुबेर का कोष न्यौछावर किया जा सकता है।

अगले दिन आया आ गयी। उसे चाय पिलाकर कामिनी ने बण्टी को सौंपते हुए कहा– "हम दोनों तो दफ्तर में रहते हैं। इसका ध्यान नहीं रख पाते। अब यह तुम्हारे जिम्मे है। देखे रहना, इसमें कोई गन्दी, गँवारूपन की आदत न पनपे। इसे छोटे लोगों से दूर रखना। थोड़ा और बड़ा हो जाये, तो इसे किसी अच्छे कान्वेण्ट में डालना अच्छा होगा।"

जवान–सा लड़का आया को अपनी बाँहों में लेने की कोशिश कर रहा था। लड़का बूढ़ी अम्मा को देखकर सिटपिटा गया और आया ने कहा– "अरे जान! इस बूढ़ी की फिकर न करो। इसकी वकत तो इस घर में मार्शल से भी कम है।"

बूढ़ी अम्मा का तपता शरीर और अधिक कमजोरी महसूस करने लगा। अपना दिल बैठता–सा लगा और अपने कमरे में आकर ढेर हो गयीं। शाम को कामिनी के आने पर आया ने कहा– "मेम साहब! मैं आपके घर के काम से आजिज आ गयी। यहाँ बूढ़ी चौबीस घण्टे सिर पर सवार रहती है। झूठे–सच्चे आरोप लगाकर नौकरी से निकलवाने की धमकी देती है। बण्टी को मेरे पास से छीनने की कोशिश करती है और तो और, मार्शल के ऊपर डण्डा फेंककर मारती है।"

आया की बात से कामिनी का पारा अप्रत्याशित

बीच में कामिनी फिर बोल पड़ी– "और जब हम आया को तनख्वाह देते ही हैं, तो टंटा क्यों बरदाश्त करेंगे। जिसे हमारी हर चीज से नफरत है, वह खुद अपना रास्ता नापे।"

इससे अधिक बूढ़ी अम्मा से बरदाश्त नहीं हुआ। वह अपना डण्डा टेकती हुई तपते बुखार में दरवाजे तक आयीं और दरवाजे पर ही चक्कर खाकर गिर पड़ीं। हेमन्त को कामिनी समझा रही थी– "यह नया त्रिया–चरित्र दिखा रही हैं। हमें बदनाम करने का तो इन्होंने जैसे बीड़ा उठा रखा है।"

शोरगुल सुनकर राजो और मनोहर भूसा सने हाथों ही इधर आ गये। बूढ़ी अम्मा को गिरते देखकर राजो से नहीं रहा गया। उसने कहा– "यह कहाँ का बड़प्पन है कि नौकर–चाकरों के कहने पर अपनी माँ को घर से निकाल दिया जाये और वह भी तेज बुखार में" यह कहते हुए राजो ने बूढ़ी अम्मा को अपने हाथों से उठाकर बैठाया।

"यस मैडम! लेकिन यह अगर अपनी दादी के पास गया तो?" आया ने आशंका प्रकट की।

"इसीलिए तो तुम्हारी जरूरत और शिद्दत से महसूस हुई। उनके पास इसे जाने देने की जरूरत नहीं है" कामिनी ने कहा और दफ्तर चल दी।

हेमन्त कामिनी से भी पहले जा चुका था और घर पर आया का राज्य था। आया ने बूढ़ी की ओर ऐसी अवज्ञा भरी कठोर दृष्टि से देखा कि उन्हें अपनी कोठरी में चुपचाप सिसकने के अलावा कुछ सूझा नहीं। थोड़ी देर में ही टी०वी० चलने की आवाज उन्होंने जरूर सुनी, रसोई में खटपट सुनी और बण्टी को डाटा जाना सुना। वह अपने ही घर में अजनबी से भी ज्यादा उपेक्षा से पस्त हो गयीं। आया के रंग–ढ़ंग उन्हें ठीक नहीं लग रहे थे। बेटे–बहू के जाने के बाद एक दिन उन्होंने ड्राइंग रूम में कहकहों की आवाज सुनी और वह कहकहों की दिशा में कदम बढ़ाती ड्राइंग रूम तक गयी भी थीं। जहाँ एक

रूप से ऊपर चढ़ गया। वह दहाड़ी– "तुझे निकालने वाली ही इस घर में नहीं रहेगी। पीठ पीछे मार्शल को डण्डा फेंककर मारनेवाली के लिए इस घर में कोई जगह नहीं है।"

कामिनी मार्शल के मुँह पर हाथ फिराने लगी। आया ने मार्शल के सामने रखे पानी में बर्फ के टुकड़े डाल दिये थे। गर्मी के कारण मार्शल काफी देर तक उन टुकड़ों में मुँह धँसाये बैठा रहा था। इसी वजह से कामिनी के हाथ में जब उसका मुँह लगा, तो उसने कहा– "हाय! कितना ठण्डा हो गया है मार्शल का मुँह। अब तो दुश्मनों का कलेजा ठण्डा हो गया होगा। हो न हो, इसे निमोनिया हो गया हो। छींके तो पहले से ही आ रही हैं।"

तभी हेमन्त ने घर में प्रवेश किया। कामिनी के क्षुब्ध चेहरे को देखकर बोला– "आखिर बात क्या है, जो सूरत पर बारह बज रहे हैं?"

"बात क्या नहीं है? यह पूछिए। आया को निकालने

का फरमान जारी हो चुका है, मार्शल पर डण्डों की बौछार होती है और हमारे आने पर बीमारी का बहाना होता है। है ना आया" आया की ओर देखकर कामिनी ने हेमन्त से कहा।

हेमन्त कुछ समझ नहीं पाया। आया की ओर से निगाह हटाकर कामिनी ने पुनः कहा– "कितनी मुश्किल से तो ऐसी अच्छी आया मिली है और तुम्हारी माँ हैं कि आया और मार्शल दोनों की जान की दुश्मन बन गयी हैं। आया को तो निकालने की वाकायदा धमकी दे रखी है। न मानो, आया से पूछ लो।"

पत्नी की हाँ में हाँ मिलानेवाले हेमन्त ने "हूँ" कहकर आया की ओर सवालिया निगाह उठा दी। आया ने बड़ी संजीदगी से कहा– "हाँ ! बाबू जी, अब इस घर में बूढ़ी और मुझमें से एक ही रहेगी।"

बीच में कामिनी फिर बोल पड़ी– "और जब हम आया को तनख्वाह देते ही हैं, तो टंटा क्यों बरदाश्त

कामिनी ने कड़क कर कहा– "जिन्हें ज्यादा हमदर्दी हो, वही ले जायें बूढ़ी अम्मा को। बड़ी बूढ़ी अम्मा की सगी बनकर आयी हैं। दो दिन निबाहना पड़ेगा, तो पता चल जायेगा।"

उत्तर राजो ने दिया– "मेम साहब, अपने घर के बुजुर्ग का स्थान नौकर–चाकर नहीं पा सकते। बूढ़े जहाँ रहते हैं, वहीं अपनी खुराक से कई गुना काम करते हैं। वे खुशनसीब होते हैं, जिनके ऊपर बुर्जुगों का साया होता है।"

"यह साया तुम्हीं ले जाओ। तुम्हीं इनकी सच्ची हमदर्द हो। तुम्हारे सिखाये–पढ़ाये से ही यह जमीन पर पाँव नहीं रखती हैं और जब इनका गरूर ठण्डा हो जाये, तो घर चली आयें" कामिनी ने कहा।

बूढ़ी अम्मा ने अपने बेटे की ओर निगाह उठाकर देखा और उसके चेहरे पर कोई रोकने का आग्रह न देखकर राजो से बोली– "चलो बहू, हमें कोई कुआँ, ताल

इसी बीच एक दिन पता चला कि आया अपने प्रेमी जॉन के साथ भागते–भागते कामिनी की अलमारी पर हाथ साफ कर गयी है और कोने में बँधा मार्शल जब–तब बेहोश पड़े बण्टी की ओर मुँह उठाकर भौंक रहा था। तब सारी वस्तु–स्थिति से परिचित होकर कामिनी ने इतना ही कहा– "अब क्या मेरी मैयत को रो रहा है?"

हेमन्त ने उससे कहा– "पहले बण्टी को ठीक कराओ। गनीमत है, इसे बेहोश करके ही छोड़ गयी। आया का गम बाद में मनाना। फिर कोई न कोई आया मिल ही जायेगी।"

करेंगे। जिसे हमारी हर चीज से नफरत है, वह खुद अपना रास्ता नापे।"

इससे अधिक बूढ़ी अम्मा से बरदाश्त नहीं हुआ। वह अपना डण्डा टेकती हुई तपते बुखार में दरवाजे तक आयीं और दरवाजे पर ही चक्कर खाकर गिर पड़ीं। हेमन्त को कामिनी समझा रही थी– "यह नया त्रिया–चरित्र दिखा रही हैं। हमें बदनाम करने का तो इन्होंने जैसे बीड़ा उठा रखा है।"

शोरगुल सुनकर राजो और मनोहर भूसा सने हाथों ही इधर आ गये। बूढ़ी अम्मा को गिरते देखकर राजो से नहीं रहा गया। उसने कहा– "यह कहाँ का बड़प्पन है कि नौकर–चाकरों के कहने पर अपनी माँ को घर से निकाल दिया जाये और वह भी तेज़ बुखार में" यह कहते हुए राजो ने बूढ़ी अम्मा को अपने हाथों से उठाकर बैठाया।

बूढ़ी अम्मा चारों ओर आँखें फाड़कर बिटर–बिटर ताकती हुई बोलीं– "मुझे छोड़ दे बहू। मैं ही अपनी औकात भूल गयी थी।"

दिखा दो" उनकी आँखें डबडबा गयीं।

राजो ने बूढ़ी अम्मा का हाथ पकड़ा और अपने प्लाट की ओर खींच ले गयी। तिरपाल के नीचे पड़ी चारपाई पर उसने बूढ़ी अम्मा के लिए बिस्तर लगा दिया और उनके लिए दूध गरम करने लगी।

एक अरसे बाद बूढ़ी अम्मा की जीभ में शुद्ध दूध का स्वाद नसीब हो रहा था। गुड़ पड़ा दूध जैसे–जैसे पेट में जा रहा था, बूढ़ी अम्मा का तन–मन राजो, मनोहर को अशीष रहा था। मनोहर का बेटा नुन्ना उन्हें डण्डा लेकर इधर–उधर ठकठका रहा था और बूढ़ी अम्मा कह रही थी– "कल से तुझे डण्डे से ठोंक–ठोंकर पढ़ाऊँगी। शैतान कहीं के !"

मुन्ना उनकी ओर देख कर मुस्करा रहा था और राजो कह रही थी– "इनके आने से अब मैं मुन्ने की ओर से बेफिक्र हो गयी। मैं दूध बाँटा करूँगी और बूढ़ी अम्मा हिसाब किया करेंगी। मुझे तो हिसाब–किताब में बहुत देर लगती है।"

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

विभाजन जैसा नर-संहार फिर न हो

- महेश चन्द्र सरल

एक प्रकार से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व भारत पर सन् १७५७ में हुई प्लासी की लड़ाई के बाद से ही स्थापित होना आरम्भ हो गया था। कम्पनी वैसे उस समय तक भारत पर अपनी प्रभुसत्ता की न सोच कर, केवल व्यापार के माध्यम से भारत से अधिकाधिक धन ले जाकर अपने देश इंग्लैण्ड को मालामाल करना चाहती थी।

भारत पर उस समय मुस्लिम शासक राज्य कर रहे थे। इन्हीं में से कुछ पूर्व से ही समय-समय पर आक्रमणकारियों के रूप में यहाँ आकर अपनी घुसपैठ बनाकर कहीं न कहीं अपना आतंक जमा लेते। मध्य एशिया से आनेवालों में कई लुटेरे भी थे, जो लूट-पाट कर वापस लौट गये। उन्हें राज्य स्थापित करने के स्थान पर धन-दौलत चाहिए थी। एक बाबर ने अवश्य यहाँ अपना पैर जमाने में पूरी सफलता पायी और उसके बेटे हुमायूँ ने आखिर संघर्ष करते रहकर मुगल साम्राज्य स्थापित कर ही लिया। आगे अकबर ने तो अपने साम्राज्य की नींव भली-भाँति सुदृढ़ कर ली। कौन जानता था कि देवभूमि भारत में एक के बाद दूसरे विदेशी अपना शासन चलाएँगे?

भारत उस समय अनेक छोटे-बड़े देशी राज्यों में विभाजित था और जिसमें जितनी शक्ति व सामर्थ्य होती, पड़ोसी राज्यों को हड़पकर अपने राज्य की सीमा का विस्तार कर लेता। **मुगल बादशाहों को देशाभिमानी हिन्दू राजाओं से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी ऐसे ही राष्ट्रकुल-गौरव थे, जो जीवन भर मुगलों से लोहा लेते रहे और उन्हें चैन से नहीं बैठने दिया; उनकी अधीनता स्वीकार करना तो दूर की बात थी। मुस्लिम शासक भारत पर राज्य तो करने लगे; किन्तु उन्होंने भारत को अपना देश कभी नहीं माना और न यहाँ के मूल बहुसंख्यक समाज की मुख्य धारा से ही जुड़े। वे अपने को देशवासियों में सर्वथा अलग, शासक-वर्ग का मानते रहे और अपने धर्म-जाति की अलग पहचान बनाने से लेकर धर्मान्तरण में लगे रहे। स्पष्ट है कि यही स्थिति न्यूनाधिक आज भी है, जब वे शासक न होकर भी उसी मनोवृत्ति के अधीन समान नागरिकता-बोध से कतराते ही नहीं, उसका विरोध करते हैं।**

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर तक भारत में मुस्लिम-राज अवश्य था, पर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी एक प्रकार से शासन का केन्द्र-बिन्दु बन चुकी थी और उसके चंगुल में देश लगभग आ ही गया था, या यों कहें कि अंग्रेजी राज की अनिधकृत रूप से स्थापना हो चुकी थी। राजकाज में उसका खासा दखल होने लगा था और देश भर में अंग्रेजी सेना का विस्तार हो चुका था। इस समर में देश के अनेक राजा-रजवाड़े, (नाम मात्र के) बादशाह बहादुरशाह 'जफर' समेत मैदान में कूद पड़े थे। आजादी के दीवाने खूब लड़े, बलिदान दिये, यातनाएँ सहीं, घर के घर बरबाद हुए, पर भाग्य ने साथ नहीं दिया। अंग्रेजों का पलड़ा भारी रहा और पूरा भारत उनके अधिकार में आ गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटिश राज में बदल गयी और उसका यह कथन कि वह व्यापार करने आयी थी, राज करने नहीं, असत्य सिद्ध हो गया। कूटनीति की यह भारी विजय थी और भारतीय राष्ट्रीयता की भयंकर पराजय।

मुसलमानों के बाद अब भारत के शासक अंग्रेज हो गये। उनका सिक्का चलने लगा। सात समुद्र पार के रहनेवाले व्यापारी गोरे भारत के भाग्यविधाता बन गये। अंग्रेजों के राज में भी खुलकर धर्मान्तरण किया गया, किन्तु भय के स्थान पर प्रलोभन द्वारा। इनकी दुर्नीतियों ने जिनमें देश की अर्थ-व्यवस्था असन्तुलित बनाये रखकर प्रमुखता से शोषण करना था, फिर स्वतन्त्रता की भावना को जन्म दिया और स्वाधीनता की लहर चल पड़ी। देशी रियासतों के निरंकुश शासकों के विरुद्ध भी प्रजा संगठित होने लगी। हिंसक और अहिंसक दोनों ढंग से आजादी का आन्दोलन चलाया जाने लगा। क्रान्तिकारियों ने जहाँ शस्त्रों और बमों से अपने प्राणों की बाजी लगाकर वीरोचित कार्य किये, वहीं गांधी जी और कांग्रेस ने असहयोग- आन्दोलनों का सहारा लिया, किन्तु जो स्थिति विदेशियों के आक्रमणों से पूर्व भारत की थी, वही बनी रही। अनेक देशवासी अंग्रेजी शासन के भक्त बने रहे और अनेक लोग भावनात्मक रूप से स्वतन्त्रता के पक्ष में होकर भी क्रियाशील न होकर तटस्थ से रहे। वे बँटे ही रहे।

वैसे अंग्रेजी सरकार ने अपने हिसाब से अनेक जन-सुधार कार्यक्रम लागू कर यहाँ के निवासियों का मनोबल उन्नत कर उन्हें प्रभावित करने के प्रयास समय-समय पर किये और अंग्रेजी भाषा लाद कर शिक्षित समुदाय को मानसिक रूप से अपना गुलाम बना लिया, लेकिन जनमानस के बीच सन् १९२० से लेकर १९३० और १९४० के आन्दोलनों की सुलगती चिनगारी ने क्रान्तिकारियों की सशस्त्र क्रान्ति से नाता जोड़कर सन् १९४२ में ज्वालामुखी का रूप ले लिया। सारा देश आन्दोलित हो उठा। अगस्त

क्रान्ति ने, 'करो या मरो' का आह्वान कर 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा उच्च स्वर से लगाने के लिए देशवासियों को प्रेरित किया। अंग्रेजों द्वारा अगस्त– क्रान्ति को दबाने के लिए क्रूर–दमन–चक्र चलाया गया, जिसे भारतीय अधिकारियों ने भारतीय जनता पर थोपा, पर आजादी के लिए आहुति देनेवालों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे दूने–चौगुने उत्साह से प्राणों की परवाह न कर देश के प्रति अपना कर्तव्य पालन करते बलिवेदी पर चढ़ गये।

अन्त में ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतन्त्र करने की घोषणा तो की, पर अखण्ड भारत को खण्डित करके अर्थात् मजहब के आधार पर मुसलमानों को पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान नाम के देश की रचना, भारतीय प्रदेशों को काट–छाँट कर की। जिन मुसलमानों से अंग्रेजों ने देश की बागडोर छीनी थी, उनके प्रति वे सदय बने रहे और आजादी पाने के लिए बिना किसी प्रकार का त्याग या बलिदान दिये, केवल मुस्लिम लीग की जिद और अड़ियल रुख के कारण देश का विभाजन कर सर्व सत्ता–सम्पन्न पाकिस्तान का निर्माण हो गया।

जिन्ना ने आबादी के आदान–प्रदान का प्रस्ताव रखा, जिसे गांधी, नेहरू ने स्वीकार नहीं किया और जो निर्दोषों की सामूहिक हत्या का कारण बना।

कहने को तो बिना रक्त–पात या 'बिना खड्ग–बिना ढाल' के देश को आजादी (खण्डित) मिली, किन्तु इसके लिए बिलोचिस्तान, सीमा प्रान्त, पंजाब, सिन्ध और बंगाल में रह रहे लाखों हिन्दू, सिख, बंगाली परिवारों को अपना घरबार तो छोड़ना ही पड़ा, वीभत्स अत्याचार, नर–संहार और हृदय–विदारक दुःख झेलने पड़े। परिवार के परिवार कत्ल कर दिये गये, सामान लूट लिया गया, महिलाओं को बलात् उठा ले जाया गया और अपना सब कुछ गँवाकर शरणार्थी के रूप में भारत आना पड़ा। आजादी वर्ष १९४७ के वे काले दिन आज जीवित रहनेवाला कौन शरणार्थी (अब पुरुषार्थी) भूल पाया है, जिसे यहाँ आकर हाथ पसारने के स्थान पर, फुटपाथ पर अपना काम शुरू करके अपनी जीविका चलानी पड़ी ? उन दिनों के समाचार पत्र, जिनमें प्रकाशित लोमहर्षक समाचार और फोटो, अथवा अप्रकाशित फोटो जिनके पास हैं, उनके दिलों के घाव क्या आज तक भरे हैं ? देश में रहने के कारण 'आजादी की स्वर्ण जयन्ती' मनाने के लिए वे भी दुःखी मन से इसमें भागीदार रहे। समय ने ही उनके रिसते घावों पर मरहम लगाया है और वे उन पैशाचिक घटनाओं को विस्मरण करने को विवश हैं। आखिर उनका दोष यही तो था कि वे उन प्रदेशों में रह रहे थे और सच्चे भारतीय के नाते उन्हें पाकिस्तान में नहीं रहना था। यदि वे धर्म परिवर्तन कर लेते, तो बात और थी। तब उन्हें इतनी यातनाएँ नहीं झेलनी पड़तीं। राजनीतिक परिस्थितियों से उपजी ऐसी त्रासदी की पुनरावृत्ति न हो, बस।

इस 'बस' ने आशंकित कर एक प्रश्न को जन्म दे दिया है कि, **आखिर यह देश किसका है ? विभाजन से पूर्व यहाँ के लगभग ९८ प्रतिशत मुस्लिमों ने, मुस्लिम लीग के प्रभाव में आकर पाकिस्तान का समर्थन किया था, जिसका निर्माण मजहब पर आधारित था। उनमें से थोड़े से मजहबी जुनून में आकर वहाँ चले गये। देश में रहने वाले हिन्दू (सिख, बौद्ध समेत), ईसाई, पारसी अथवा अन्य धर्मावलम्बी यहाँ रह गये। पाकिस्तान बनने के बाद यह देश उन्हीं का रह गया; किन्तु ऐसा नहीं हुआ। जो मुस्लिम यहाँ रह गये, वे भी समान रूप से अपना अधिकार जमा बैठे और भागीदारी के हकदार बन गये। वे न तो सरकार की परिवार–कल्याण की नीति मानते हैं और न एक समान नागरिक आचार संहिता को ही। वे खुले तौर से कहते हैं कि वे केवल खुदा को मानते हैं और किसी को नहीं। शरियत ही उनका कानून है। लगभग सभी राजनीतिक दल सत्ता–लाभ के लिए उन्हें अपने में मिलाये ही नहीं हैं, सिर पर बिठाये हैं।**

इधर स्वतन्त्र भारत में मुस्लिम लीग फिर पैदा हो गयी है। इसके सम्बन्ध में एक प्रश्न के उत्तर में तभी प्रधानमन्त्री नेहरू ने कहा था कि यह पहले वाली मुस्लिम लीग नहीं है। उनका यह उत्तर अपनी ओर से था; किन्तु आज की मुस्लिम लीग भी विभाजन से पूर्व की मुस्लिम लीग के तर्ज–तरीके पर चल रही है। इंसाफ पार्टी के शहाबुद्दीन 'मुस्लिम इण्डिया' नाम की पत्रिका निकालते हैं। क्या पाकिस्तान अथवा अन्य मुस्लिम देशों में, जहाँ हिन्दू रहते हैं, ऐसा प्रयास सम्भव है ? देश का विभाजन हो गया, मुसलमान अपना देश बनाकर अलग हो गये, फिर खण्डित भारत में भी 'मुस्लिम इण्डिया'। ऐसे ही खालिस्तान की माँग भी चलती रही, तो हिन्दुओं के लिए क्या बचा है, यह ज्वलन्त समस्या सामने है।

इसीलिए फिर से विभाजन न हो और देश को बार–बार बँटवारे की बिभीषिका न झेलनी पड़े, यह दायित्व राजनीति के दाँव–पेंच के खिलाड़ी जन–प्रतिनिधियों का है। वे देश को अखण्ड मानें और जो भाग १९४७ में अलग हुए हैं, उन्हें भी इसमें मिलाएँ। यही हमारी एकमात्र राष्ट्रीय राजनीति होनी चाहिए। पाकिस्तान के रहते, पाकिस्तानी मनोवृत्ति के रहते वर्त्तमान शेष बचा भारत भी हमेशा संकट में रहेगा, इस सत्य का साक्षात्कार प्रत्येक राजनीतिक दल ही नहीं, हर देशवासी को भी करना होगा अन्यथा आये दिन सियाचिन, कारगिल ही नहीं, १९४६, १९४७, १९६२, १९६५ और १९७१ भी होते रहेंगे। □

– महात्मा गांधी मार्ग, हरदोई–२४१००१

दृष्टि-भेद

- विक्रमादित्य सिंह चौहान

(आज के व्यावसायिक समाज तथा संसार में आदान-प्रदान मुख्यतः आर्थिक धरातल पर आश्रित हो गया है, और अर्थ की तुला पर प्रत्येक वस्तु ही नहीं, मनुष्य का भी मूल्य आँका जाता है। -सम्पादक)

एक ग्राहक, व्यापारी से -
भूसा का भाव ?
नब्बे रुपये क्विंटल,
नब्बे रुपये क्विंटल !
आश्चर्य क्या ?
ले जाओगे कहाँ ?
प्रिंसिपल साहब के यहाँ;
अच्छा, अच्छा, भाई,
पाँच रुपये कम दे देना।

□

दूसरा ग्राहक, व्यापारी से -
भूसा का भाव ?
वही नब्बे रुपये,
तुम ले जाओगे कहाँ ?
तहसीलदार साहब के यहाँ;
अच्छा, अच्छा भाई
ले जाओ, जो चाहें साहब-
वह दे देना।

□

तीसरा ग्राहक, व्यापारी से -
भूसा का भाव ?
तुम ले जाओगे कहाँ ?
सेल्स टैक्स अफसर के यहाँ;
अच्छा, अच्छा भाई
ले आओ गाड़ी
लदवा देता हूँ !
भाव-ताव क्या करना
उन्हीं का दिया हुआ-
सब मैं खाता हूँ।

□

चौथा ग्राहक व्यापारी से -
भूसा का भाव ?
तुम ले जाओगे कहाँ ?
कोतवाल साहब के यहाँ;
अच्छा, अच्छा भाई
तुम चलो, पीछे-पीछे-
भूसा अभी आता है,
और हाँ
कोतवाल साहब से कहना 'सलाम'
और कहना उनकी कृपा ही है दाम।

□

पहला ग्राहक -
पुनः व्यापारी से बोला :
सेठ ! अब बोलो भूसा का भाव ?
बता तो दिया एक बार
पाँच रुपये कम दे देना,
पचासी रुपये लगा लेना;
तुम कहते हो : प्रिंसिपल-मास्टर
प्रिंसिपल-मास्टर क्या हैं अफसर ?
सेल्स टैक्स अफसर- तहसीलदार,
कोतवाल साहब हैं सरकार,
उनकी कृपा से ही है चलता-
सारा रोजगार - सारा कारोबार,
उनको नाराज कर मैं भला-
कैसे चलाऊँगा काला बाजार ?
उन पर ही तो टिका है-
सारा ठाट-बाट
सारा ताम-झाम
सारा महल-दुमहला
होटल-रेस्ट्राँ-बार
चोरी-चपारी-कालाबाजार
नाच-गान दुराचार-
जिसे आज कहते हैं शिष्टाचार।
तुम बताते हो- **प्रिंसिपल-मास्टर**
प्रिंसिपल-मास्टर से-
हमें क्या लेना देना ?
देखते हो वह नौजवान-
जिसकी आँखें हैं धँस गयी
जिसके गाल हैं पिचक गये
जवानी में बूढ़ा है लग रहा-
मेरा लड़का है वह बी.ए. पास
एक भी कौड़ी नहीं उसके पास
दस हजार के आस-पास
किया है मैंने उस पर खर्च
तब हुआ है वह बी.ए. पास
अब खाता है बेकारी का घूँसा
और वह तौलता है भूसा,
भूसा तौलने के लिए-
क्या चाहिए बी.ए. पास ?
भूसा तौलने के लिए क्या सरकार-
है दे सकती उसे-
खाना-पीना-वस्त्र-मकान ?
अब मुझे होश है आ गया
अब मैं दूँगा भूसा-
पाँच रुपये कम लेकर नहीं
पाँच रुपये ज्यादा लेकर
पच्चानबे रुपये क्विण्टल-
प्रिंसिपल-मास्टर को,
लेना हो, लो
नहीं तो भाग जाओ। □

- कंचन कुटीर, गोरा बाजार,
सिविल लाइन, रायबरेली

"भारत सत्य के लिए और सत्य की विजय के लिए लड़ रहा है और जब तक हिन्दुस्थान और पाकिस्तान फिर से एक न हो जायें, तब तक उसे लड़ते रहना चाहिए; क्योंकि यह एकता ही उसकी आत्मा का सत्य है।"

- श्री माँ, अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी।

(पृष्ठ ३० का शेष)

बूढ़ी अम्मा

"और मैं ठाठ से भैंसें चराऊँगा। तुम सौदा-सुलुफ को जाना। बूढ़ी अम्मा घर की रखवाली को तो आ ही गयी हैं" मनोहर ने राजो से कहा।

"और बूढ़ी अम्मा के पास लेटकर मैं किस्सा-कहानियाँ सुना करूँगा" कहते-कहते मुन्ना सचमुच ही उनके पास लेट गया।

उधर हेमन्त बिना चाय पिये ही डॉक्टर को लेने जा रहा था, मार्शल को छींकें जो आ रही थीं।

बूढ़ी अम्मा के आ जाने से राजो और मनोहर घर से निश्चिन्त हो गये। जितनी देर मुन्ने को बहलाने और घर के छोटे-मोटे काम-काज में लगती थी, उतनी देर में वह हल्के-हल्के उपले थापने लगी। मनोहर भी भैंसों पर अधिक ध्यान देने लगा। बूढ़ी अम्मा के अनुभव के आधार पर चलती गृहस्थी में अधिक बचत होने लगी। छह महीने बीतते-बीतते मनोहर ने खुद का प्लाट लेकर छप्पर डाल लिया था। राजो और बूढ़ी अम्मा में प्लाट को घर का रूप दिये जाने का उत्साह बात-बात में छलकता। बूढ़ी अम्मा की हड्डियों में फिर नयी जान-सी आ गयी थी और अब तो वह काम-काज में काफी हाथ बँटाने लगी थीं।

इसी बीच एक दिन पता चला कि आया अपने प्रेमी जॉन के साथ भागते-भागते कामिनी की अलमारी पर हाथ साफ कर गयी है और कोने में बँधा मार्शल जब तब बेहोश पड़े बण्टी की ओर मुँह उठाकर भौंक रहा था। तब सारी वस्तु-स्थिति से परिचित होकर कामिनी ने इतना ही कहा- "अब क्या मेरी मैयत को रो रहा है?"

हेमन्त ने उससे कहा- "पहले बण्टी को ठीक कराओ। गनीमत है, इसे बेहोश करके ही छोड़ गयी। आया का गम बाद में मनाना। फिर कोई न कोई आया मिल ही जायेगी।"

कामिनी को हेमन्त की सीधी-सादी बात में भी व्यंग्य महसूस हुआ; मगर करती भी तो क्या करती? हेमन्त तो उसकी हाँ में हाँ मिलाता रहा। अगर हेमन्त का दोष होता, तो वह उसे कुछ कहती। अब तो उसे लग रहा था कि काश! हेमन्त ने उसकी बात काटी होती। उसने हेमन्त की ओर देखकर कहा- "एक बात कहूँ। तुम जाकर अम्मा को मना लाओ, नौकर-चाकरों के भरोसे घर नहीं छोड़ा जा सकता है और फिर..."।

"अम्मा को तनख्वाह भी नहीं देनी पड़ेगी" पता नहीं कैसे हेमन्त के मुँह से निकल गया और कामिनी कटकर रह गयी।

सच अर्थों में कामिनी और हेमन्त किसी को भी भरोसा नहीं हो रहा था बूढ़ी अम्मा के लौटने का। वे बण्टी के ऊपर पानी के छींटे मार रहे थे। मूर्च्छा टूटने पर बण्टी से कामिनी ने कहा- "तेरी दादी लौट आयेंगी, तू फिकर न कर।"

इस बात से बण्टी के चेहरे पर चमक आ गयी।

"पर उन्हें लेने तुम्हें ही जाना पड़ेगा" हेमन्त बोला- "हमारे कहे वे नहीं आयेंगी।"

"वे आयेंगी कैसे नहीं। मैं उनका डण्डा उठाकर भाग चलूँगा, फिर देखूँगा, कैसे नहीं आती हैं!" वह प्रसन्नता से किलक उठा।

तीनों प्राणी अनागत सुख की कल्पना से सराबोर होने लगे। उन्हें लग रहा था घर की सलामती के लिए बुर्जुगों का साया जरूरी है। वे भाग्यवान् होंगे, अगर यह साया लौट सका। ▭

– मसीत, साण्डला, हरदोई (उ०प्र०)

शहाबुद्दीन गोरी को सुरक्षित लौटा देने का दुष्परिणाम

– वागीश
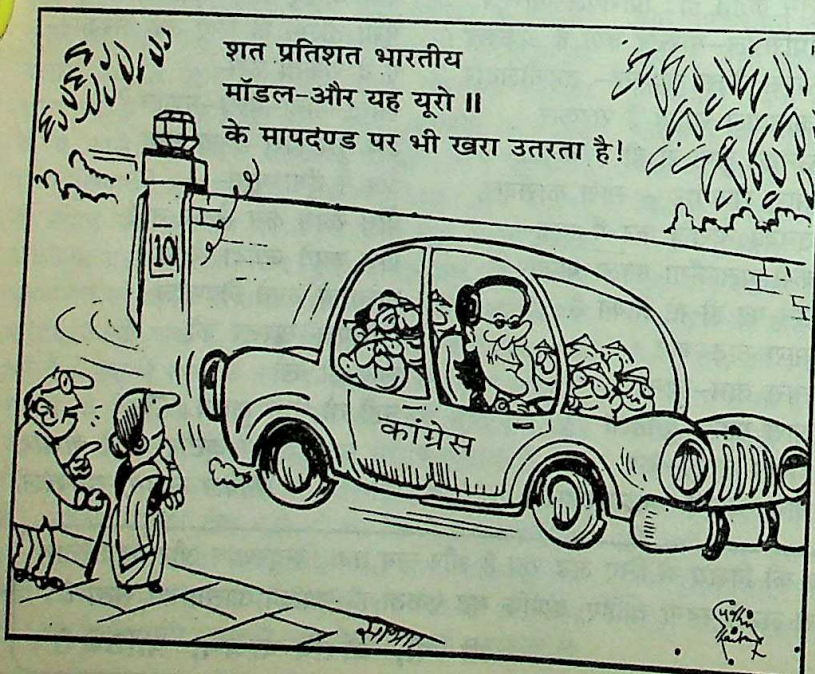
कवि चन्दबरदाई–कृत ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार अपनी राजधानी गोर से मुसलमानों की सेना सजाकर भारत पर बार–बार आक्रमण करने वाले शहाबुद्दीन गोरी ने नये सिरे से १६वीं बार भी आक्रमण किया। महान् शूरवीर पृथ्वीराज चौहान शहाबुद्दीन गोरी को १५ बार हराकर कैद कर चुका था लेकिन हर बार शहाबुद्दीन 'कुरान' की कसम खाकर और अपने कान पकड़कर 'तोबा' बोलते हुए यह वादा करके रिहाई पा जाता रहा कि "आइन्दा फिर कभी मैं हिन्दुस्तान पर हमला नहीं करूँगा।" लेकिन जैसे ही वह फिर से विपुल सेना जुटा पाता, पुनः भारत पर चढ़ाई करने से बाज न आता। इसी तरह वह अब १६वीं बार भी भारत पर आक्रमण करने आ गया था। वह इस बार युद्ध में मरने–मारने पर उतारू था। किन्तु हिन्दू सेना ने ऐसा विकट संग्राम किया कि शहाबुद्दीन की सेना के छक्के छुड़ा दिये और शहाबुद्दीन गुस्से में अपनी दाढ़ी नोचने लगा। युद्ध जारी रहते–रहते एक बार यह नौबत आ गयी कि हिन्दू सेना के एक गुल्म ने आगे बढ़कर शहाबुद्दीन गोरी को घेर लिया और उसे पकड़ लेना चाहा– यह देखकर प्राण–भय से गोरी ने दो बाण–तड़ातड़ चला दिये– फलतः उसके एक बाण से पृथ्वीराज के पक्ष में युद्ध कर रहा रघुवंश राम गोसाईं खेत रहा और गोरी के दूसरे बाण से बिंधकर हिन्दूसेना का एक अन्य योद्धा भीम भट्टी घायल हो गया। जब शहाबुद्दीन तीसरा बाण–चढ़ाने लगा तो तत्काल सामने से स्वयं पृथ्वीराज चौहान उस पर टूट पड़े– उन्होंने फुर्ती से अपने धनुष की कमान उसके गले में फँसा दी। शहाबुद्दीन तीसरा बाण न चला सका और अपनी गर्दन पृथ्वीराज की कमान में फँस जाने से विवश हो बगलें झाँकने लगा– तभी पृथ्वीराज ने तुरन्त अपनी कमान से उसे खींचकर धर दबोचा। साथ ही शहाबुद्दीन की बगल में खड़े होकर लड़ रहे उसके सरदार हुसेन खाँ का सिर अपनी तलवार से काट डाला– इसके बाद पलक मारते पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन के एक दूसरे सरदार नुसरत खाँ तातार को झोली बनाकर बाँध लिया– पश्चात् सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी को कैदी हालत में हाथी पर बाँध कर दिल्ली की ओर कूच किया। पृथ्वीराज की सेना आगे–आगे ध्वज फहराते और विजय का डंका बजाती लौट चली। गगन हिन्दू सेना के जय–नाद से निनादित हो उठा। कैद किया गया १६वीं बार पराजित शहाबुद्दीन गोरी पूरे ३३ दिन पृथ्वीराज के बन्दीगृह में पड़ा रहा, तब उसके अमीरों ने पृथ्वीराज से बड़ी खुशामद–विनती–मिन्नत की और सुलतान शहाबुद्दीन की जान बख्श देने के लिए निवेदन किया कि "हुजूर! हमसे बतौर जुर्माने के आप जो चाहें, ले लें, हम हुजूर की खिदमत में हाजिर हैं लेकिन हमारे सुलतान (शहाबुद्दीन) की जान बख्श दें और बराय मेहरबानी उस पर तरस खाकर रिहा कर दें। उन अमीरों ने शहाबुद्दीन की रिहाई के लिए पृथ्वीराज को ६ हजार कीमती रासी घोड़े और सात सौ इराकी घोड़े नजर किये, साथ–साथ ८ सफेद रंग के हाथी, ढली हुई २० बहुत सुन्दर ढालें, गजमुक्ता और अनेक माणिक्य भेंट किये। सुलतान गोरी ने पृथ्वीराज की कोर्निश करते हुए अपने कान पकड़कर सौ बार 'तोबा' की और 'कुरान' की कसम खाकर फिर कभी हिन्दुस्तान पर हमला न करने का वादा किया। पृथ्वीराज ने अपनी उदारतावश उसे १६वीं बार भी कैद से रिहा कर दिया और उसे दिल्ली से सुरक्षित अपने देश गजनी लौट जाने की अनुमति प्रदान कर दी– यही नहीं जब वह कैद से रिहा होकर उनके सामने लाया गया, तो पृथ्वीराज ने अपने एक दरबारी को आज्ञा दी कि "इसे अच्छे कपड़े पहनने को दिये जायें और इसे अच्छी तरह खिलाने–पिलाने में कोई कोताही न हो।" जब वह सुन्दर मूल्यवान् पोशाक में सजा दिया गया और उसे खूब खिलाया–पिलाया जा चुका, तो पृथ्वीराज ने उसे ससम्मान उसके अमीरों के हवाले कर दिया, ताकि वह सुरक्षित यहाँ से अपने देश वापस जा सके। चला गया शहाबुद्दीन, परन्तु वह कभी अपने को बदल न सका, वरन् नये सिरे से दिल्ली पर चढ़ाई करने का सरंजाम अपने देश में पुनः जुटाने में लग गया। पृथ्वीराज उस दुष्ट, दगाबाज दुश्मन की ओर से लापरवाह रहे– असावधान। उनकी दृष्टि में

शहाबुद्दीन गोरी तुच्छ था, तिनका जैसा था, जिसे वे १६ बार हराकर यहाँ से लौट जाने दे चुके थे। परन्तु इतिहास साक्षी है कि वही शहाबुद्दीन गोरी १७वीं बार फिर दिल्ली पर चढ़ आया और उन्हें अपने देश में ले जाकर उनकी आँखें निकलवाकर अन्धा बना दिया तथा कैदखाने में जो कि एक अंधा गहरा कुँआ था– उसमें कैद कर दिया। पृथ्वीराज की आँखें निकलवाकर उनमें सीसा भरवा दिया था। यह बात अलग है कि कवि चन्दबरदाई वेष बदल कर साधुरूप में वहाँ गया और युक्तिपूर्वक पृथ्वीराज ने उस नराधम– नरपिशाच शहाबुद्दीन गोरी को शब्दवेधी वाण से मार गिराया और साथ ही चन्दबरदाई के साथ स्वयं को भी समाप्त करके शहीद हुए– परन्तु देश को **एक शिक्षा दे गये कि 'कुरान' के नाम पर कसम खाने वालों पर कभी भूलकर भी विश्वास न करना– इन दगाबाजों को कभी माफ न करना और इनके गुनाहों का दण्ड इन्हें दिये बिना कभी चैन की नींद न सोना। आज बजाय उन 'गोरी'–'गजनवी' के इन्हीं नामों के परमाणु बम भी बनाने वाले नये गोरी–गजनबी कश्मीर की घाटी पर चढ़ आये हैं जिनकी लाशें यहीं गिरानी हैं। इसी कारण क्रांतिवीर विनायक दामोदर सावरकर कहा करते थे कि "अखण्ड हिन्दुस्तान" या "अखण्ड पाकिस्तान"। दोनों में से हमें एक को ही चुनना है, और वह होगा "अखण्ड हिन्दुस्तान"।** खेद है कि लाल बहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्रित्व–काल में भारतीय सेना लाहौर से १२ किलोमीटर दूर बर्की चौकी तक जीतकर फिर वहाँ से वापस बुला ली गयी और हमारी सेना द्वारा जीता हुआ वह सब भू–भाग पाकिस्तान को लौटा दिया गया। काश! हम अपनी बहादुर सेना द्वारा दिये गये बलिदानों और रण–भूमि में बहाये गये रक्त का मूल्यांकन कर पाते। अपने प्रधानमंत्रित्व काल में जवाहरलाल नेहरू भी यही करते रहे– वर्ना सरदार पटेल ने आदेश देकर जब भारतीय सेना को कबाइली घुसपैठियों किंवा आक्रमणकारियों पर धावा बोलने भेजा था, तो हमारी सेना ने हमलावरों को मारते–काटते कश्मीर घाटी से दूर भगा दिया और सिर्फ ४८ घण्टे की कसर और थी कि आज का वह 'गुलाम कश्मीर' वाला अपना भू–भाग भी कश्मीर में मिल जाता, पर जवाहरलाल नेहरू ने जोर डालकर आगे बढ़ती सेना को रुकवा दिया और कश्मीर का वह क्षेत्र पाकिस्तान हड़प गया– तब से पाकिस्तान उसी क्षेत्र (गुलाम कश्मीर) से सेना भर्ती कर कश्मीर पर हमला करता रहा है। ▯

अब उठें समय के सूरज की आरती उतारें हम

▫ रामसनेही लाल शर्मा

इस समय जरूरत यह आँगन की गर्द बुहारें हम।
जो आयी सिर पर तप्त चुनौती को स्वीकारें हम।।

यह अभी–अभी की बात हवा दुर्गन्धित लगती थी,
दुःशासन के कर हर लज्जा अनुबंधित लगती थी;
कर गयी कोयलें बन्द बोलना नीड़ों में छिपकर,
रुक गये विप्लवी कण्ठ समय की भीड़ों में दबकर;

मौसमी हवा ने घर–आँगन में सूनापन बोया,
इस घिरी मरघटी खामोशी का कण्ठ प्रहारें हम।
जो आयी सिर पर तप्त चुनौती को स्वीकारें हम।।

जिनकी झोली में है हमने अपना मत डाल दिया,
जिनके हाथों को भस्मित करने का वरदान दिया;
वे जहर उगलते रहे दूध के सारे घट पीकर,
हमने मारक विष पिये अभावों में सदैव जीकर;

जो लाल कमल को हटा बबूलों के वन उग आये,
उस खाण्डव वन का दाह करें गाण्डीव प्रहारें हम।
जो आयी सिर पर तप्त चुनौती को स्वीकारें हम।।

बढ़ रही चेतना जन–जन में कमलों के वन महकें,
फिर जन–जन हो उल्लसित विहँग निज नीड़ों में चहकें;
इस जहरीले मौसम की बाहें कीलित करनी हैं,
तीसरे नेत्र की शक्ति हमें उन्मीलित करनी है;

बस भस्मासुर का हाथ उसी के मस्तक पर धर दें
अब उठें समय के सूरज की आरती उतारें हम।
जो आयी सिर पर तप्त चुनौती को स्वीकारें हम।।

– ८६ तिलक नगर, बाईपास मार्ग, फिरोजाबाद- २८३२०३

विप्लवी-कवि काजी नजरुल इस्लाम की जन्म-शताब्दी पर -

आज के इस विकृत लोकतन्त्र को चाहिए एक और नजरुल इस्लाम

- क्रान्तिकारी

बंगाल के क्रांतिकारी कवि काजी नजरुल इस्लाम बर्दवान जिले के चुरुलिया नामक स्थान में जन्मे थे और यह वर्ष उनका जन्म-शताब्दी वर्ष है। उनकी जन्म-तिथि सन् १८६६ की २५ मई रही थी। अपना देश ऐसी आत्माओं को भी विस्मृत कर बैठता है, जो स्वयं अपने जीवन के लिए नहीं जिये, वरन् जिनका जीवन-ध्येय "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" रहा। काजी नजरुल इस्लाम ने कवि के नाते जितना कुछ लिखा, वह समाज को जाग्रत् करने तथा ब्रिटिश दासता की लौह-शृंखला से भारतमाता को मुक्त कराने हेतु ही लिखा। उनके क्रांतिकारी साहित्य के ही कारण उन्हें विप्लव-गायक माना गया। उन्होंने अतीव निर्भयतापूर्वक मुक्त-कण्ठ से क्रांति का आह्वान किया तथा क्रांतिवीरों का जय-जयकार किया, उस घोर दमनकारी युग में यह बड़े साहस की तो बात थी ही, साथ ही ऐसा करके विदेशी शासकों का कोपभाजन बनना तथा संकट मोल लेना भी था, परन्तु कवि काजी नजरुल इस्लाम ने अंग्रेजों के क्रूर दमन की किंचिदपि चिन्ता न करते हुए क्रांतिकारी के प्रति ये उद्गार लिपि-बद्ध किये-

"ओ रे ओई स्तब्ध चराचर,
तोरा सब जय-ध्वनि कर।
द्वादश रविर वह्निज्वाला,
भयात् ताहार नमन कटाय।।
दिग्दिगन्तरेर क्रान्दा लोटाय,
पिङ्गलेर त्रस्त जटाय......"

-"ओह! देखो जड़-चेतन, सचराचर जगत् सब स्तब्ध हैं, क्योंकि विप्लवी आ रहा है। उसी का सब लोग 'जय-जयकार' कर रहे हैं। द्वादश सूर्यों की ज्वाला से उसके नेत्र भयावह लग रहे हैं दिग्दिंगन्त का उत्पीड़न, वेदना उसकी पीली जटाओं में लोट रही है....।"

ऐसे ही क्रान्तिकारी उद्गार नजरुल इस्लाम के काव्य-संकलन "अग्नि-वीणा" में मुखर हुए हैं, जिसके कारण उन पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने अदालत में मुकदमा चलाया और फिर उन्होंने उस अदालती कटघरे में खड़े-खड़े जो ऐतिहासिक बयान दिया, वह भी बड़ा विस्फोटक माना गया। नजरुल की 'अग्नि-वीणा' अंग्रेजों ने जब्त कर ली, उसके वितरण, बिक्री, पुस्तकालयों में रखने और प्रकाशन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उसी 'अग्नि-वीणा' के अन्तर्गत नजरुल इस्लाम आत्म-परिचय के मिस विप्लवी का परिचय इन उत्तेजक शब्दों में प्रस्तुत करते हैं कि,

"आमि होम-शिखा, आमि साग्निक जमदग्नि
आमि यज्ञ, आमि पुरोहित, आमि अग्नि
आमि सृष्टि, आमि ध्वंस,
आमि टारपीडो आमि लोकालय
आमि श्मशान, आमि अवसान, आमि निशावसान
आमि इन्द्राणि-सुत, हाते चाँद, भाले सूर्ज
मम एकहाते बाँका बाँसेर बाँसुरी, आर हाते रणस्तूर्य्य
आमि कृष्ण-कण्ठ मन्थन-विषपायी व्यथा-वारिधि
आमि व्योमकेश, धुरि बन्धनहारा गंगोत्री
बोलो वीर! चिर उन्नत मम शिर।"

अर्थात् मैं होम-शिखा हूँ, मैं साग्निक जमदग्नि हूँ। मैं यज्ञ हूँ। मैं पुरोहित हूँ और मैं ही यज्ञ हूँ। मैं सृष्टि हूँ और मैं ही ध्वंस हूँ मैं ही लोकालय (संसार) हूँ। मैं श्मशान हूँ। मैं अवसान (अन्त) हूँ। मैं प्रभात हूँ। मैं जयन्त हूँ। मेरे हाथ में चन्द्रमा है और मेरे मस्तक में सूर्य है। मेरे एक हाथ में सुन्दरी वंशी है तो दूसरे हाथ में रणभेरी। मैं नीलकंठ शिव हूँ। मैंने व्यथा- सागर मथने से जो हलाहल (विष) उससे निकला, उसको पीने वाला विषपायी हूँ। मैं व्योमकेश हूँ तथा स्वतंत्र, बन्धन-मुक्त भ्रमणशील हूँ मैं गंगोत्री हूँ। हे वीर! बोलो कि मेरा मस्तक सदा से उन्नत रहा है।"

आगे नजरुल इस्लाम कहते हैं :-

"आमि उत्तर वस्यु, मलय अनिल, उदास पूरबी हवा
आमि पथिक, कविर गंभीर रागिनी वेणु वीणो-गान गावी।
आमि आकुल निदाघ पियास

आमि रौद्र रुद्र रवि
आमि मरु–निर्झर 'झर–झर'
आमि श्यामल छाया–छवि
आमि तूर्य्यानन्द घूटे चोली
एकी उन्माद, आमि उन्माद
आमि सहसा अमारे चीन्हे छी
आमार खुलिया गियाछे सब बाँध"

अर्थात् "मैं उत्तरी पवन हूँ, मलयानिल हूँ तथा मैं ही पूर्वी पवन भी हूँ मैं पथ पार कर रहे कवि की गंभीर वाणी हूँ और वेणु–वीणा का गान भी हूँ। मैं भीषण ग्रीष्म की व्याकुल पिपासा हूँ और रौद्र (क्रुद्ध) स्वरूप रुद्र रवि हूँ। मैं मरुभूमि के झरने की "झर–झर" करती ध्वनि हूँ। मैं श्यामल छाया–छवि हूँ। मैं उन्मत्त रणतुंगा (रणतूर्य) हूँ– मैं उन्माद हूँ। मैने अचानक अब स्वयं को पहचान लिया है और आज मेरे सर्व बन्धन खुल गये हैं।"

किसी भी राष्ट्र के लिए यह आत्म–विस्मृति समाप्त होकर अपनी पहचान कर लेना नितान्त अपरिहार्य प्रक्रिया है– इस पहचान के बिना कोई देश स्वधीनता के पथ की ओर अग्रसर नहीं होता और यह पहचान होते ही नजरुल इस्लाम भारत को –भारतवासी को देखिये किन–किन स्वरूपों में रूपायित करते हैं ; कहते हैं–

"मैं भगवा–वेषी हूँ"
"आमि संन्यासी, शूर, सैनिक
आमि युवराज, मम राज–वेष म्लान गैरिक
आमि वेद–विद्
आमि आपनेर छाड़ा, कोरिने काहारा कोर्निश
आमि वज्र, आमि इषाण, विषाने ओंकार
आमि इस्राफिलेर सिंगार महा होंकार
आमि पिनाकपाणीर डमरू त्रिशूल, धर्मराजेर दण्ड
आमि चक्र, महाशंख, आमि प्रणवनाद प्रचण्ड
आमि ख्यापा दुर्वासा, विश्वामित्र–शिष्य
आमि दावानल–दाह, दहन करिब विश्व"

अर्थात् "मैं संन्यासी, शूर और सैनिक हूँ। मैं युवराज हूँ तथा मेरा वेष भगवा (गेरुवा) वस्त्र–धारी का है। मैं वेदों का ज्ञाता हूँ। मैं अपने सिवा दूसरे या अन्य किसी को अभिवादन नहीं करता। मैं वज्र हूँ मैं वाण हूँ। मैं विषाण का ओंकार हूँ। मैं ग्रीक दार्शनिक इस्राफिल की महा हुँकार हूँ। मैं पिनाक–पाणि शिव का डमरू और त्रिशूल हूँ। मैं यमराज का दण्ड हूँ। मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ और "पाञ्चजन्य" महा शंख हूँ। मैं प्रचण्ड प्रणव (ओंकार)–नाद (ध्वनि) हूँ। मैं क्रोधी दुर्वासा हूँ। मैं विश्वामित्र का शिष्य त्रिशकु हूँ। मैं दावानल का दाह (जलन) हूँ। मैं संसार को जला दूँगा।"

इस्लाम मतानुयायी होते हुए काजी नजरुल इस्लाम ने विप्लवी का जिस शब्दावली में यहाँ परिचय प्रस्तुत किया है, वह भारतीय संस्कृति और भारतीय धर्मग्रन्थों के प्रति उनके गहन अध्ययन के साथ ही उन तत्त्वों के प्रति किंवा भारतीय आत्मा के प्रति उनकी प्रगाढ़ अनुरक्ति और आस्था को उजागर करता है। संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा होती है और वह भारतीय संस्कृति नजरुल इस्लाम की पंक्ति–पंक्ति में, अक्षर–अक्षर में मुखरित होती है, समग्र काव्य में और उसके सौष्ठव में समरस हुई है– यह सामान्य बात नहीं कि नजरुल इस्लाम विप्लवी का परिचय भगवा वेषधारी संन्यासी के रूप में दें। आगे अन्त में कहते हैं–

चल उर्मिर हिन्दल–दल।"
"आमि प्रान खोला हाँसी–उल्लास
आमि सृष्टि–वैरी महात्रास
आमि महा प्रलयेर द्वादश रवि–राहु–ग्रास
आमि कभू प्रशान्त, कभू अशान्त दारुण स्वेच्छाचारी
आमि अरुण खूनेर तरुण, आमि विधिर दर्पहारी
आमि प्रभंजनेर उच्छ्वास, आमि वारिधी महाकल्लोल
आमि उज्ज्वल, आमि प्रज्वल,
आमि उच्छल जल– 'छल–छल',

अर्थात् " मैं प्राणों को उद्वेलित, विचलित करने वाला उल्लसित हास्य हूँ। मैं सृष्टि का शत्रु महात्रास हूँ। मैं महाप्रलय–काल में द्वादश सूर्यों को ग्रसने वाला राहु हूँ। मैं कभी प्रशान्त रहता हूँ तो कभी अशान्त। मैं दारुण स्वेच्छाचारी (अपनी मन की करने वाला) मैं लाल खून वाला तरुण हूँ। मैं विधाता के दर्प को चूर कर सकता हूँ। मैं प्रभञ्जन का उच्छ्वास हूँ। मैं समुद्र का महाकल्लोल हूँ। मैं उज्ज्वल और प्रज्वल हूँ। मैं उछलती हुई जल–धारा की "छल–छल" ध्वनि हूँ। मैं उर्मिल प्रवाह का हिन्डोला (झूला) हूँ।"

जिन दिनों सरदार भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त, जयदेव कपूर, शिववर्मा और सुरेन्द्र पाण्डेय सरीखे क्रांतिकारी कानपुर में इकट्ठे थे, उन दिनों देखा गया कि सरदार भगतसिंह नजरुल इस्लाम की यह कविता प्रायः गुनगुनाया करते थे, जो उन्हें कण्ठस्थ हो गई थी–वह कविता यह थी,

"आमि विद्रोही चिर अशान्त
आमि विद्रोही रण–क्लान्त
आमि सेइदिन होबो शान्त

जे दिन अत्याचारीर खड्ग–कृपाण
भीम रणभूमेरणिबे ना।
जे दिन उत्पीड़ितेर क्रन्दन–रोल
आकाशे–बातासे ध्वनिबे ना।"

सरदार भगत सिंह को, जिन्हें एक दिन 'लाहौर–केस' में अंग्रेजों ने फाँसी दी, यह कविता इसलिए पसंद थी क्योंकि इसमें नजरुल इस्लाम क्रांतिकारी के मुँह से कहलवाते हैं कि "मैं चिर अशान्त रहने वाला विद्रोही (विप्लवी) हूँ और मैं उसी दिन शान्त होऊँगा, जब अत्याचारी (अंग्रेजों) की कृपाण रण–भूमि में खण्ड–खण्ड होकर टूट जायेगी और जब पीड़ितों–सताये गये लोगों का रोना–चिल्लाना आकाश और वातावरण में प्रतिध्वनित नहीं होगा अर्थात् जब उत्पीड़न समाप्त हो जायेगा।"

और इसीलिए क्रांतिकारी को नजरुल इस्लाम इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि–

'आमि शंकर प्रलयंकर
आमि परशुरामेर कठोर कुठार
निःक्षत्रिय करिब विश्व
आमि हल बलराम स्कन्धे
आमि उपाड़ि फेलिब अधीन विश्व अबहेले
नव सृष्टिर महानन्दे।
आमि मानीना कोनो आईन कानून
आमि खोदार आसन आरश भेदिया"

सच ही उन दिनों बंगाल का क्रांतिकारी "परशुराम का कठोर कुठार" बनकर दमनकारी नृशंस अंग्रेजों, फिर चाहे वह वायसराय हो, गवर्नर हो या मजिस्ट्रेट हो, उस पर बम और पिस्तौलों से प्रहार कर रहा था। नजरुल उसे ही प्रलयंकर शंकर और 'हलधर बलराम' की संज्ञा देते हैं। प्रान्तवाद, भाषावाद, मत–सम्प्रदायवाद, साथ ही समझौता–वादी तुष्टीकरण नजरुल इस्लाम के 'विद्रोही' के पास नहीं फटकते। वे राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद, वर्ग–भेद–विरहित मानववाद किंवा समता के गायक हैं, वे ध्वंस के विप्लवी होकर भी एक ऐसी सृष्टि की कामना करते हैं, जहाँ पराधीनता की बेड़ियाँ टूट चुकी होंगी और उत्पीड़न–शोषण–रुदन–क्रन्दन कहीं सुनाई न देगा। इसीलिए वे देश में ऐसा स्वराज्य लानेवाले विद्रोही (विप्लवी) को नमन् करते हैं–

"ऊर्ध्वे शून्य, निम्ने शून्य,
शून्य चारिधार
मध्ये कांदेवारिधार
सीमाहीन रिक्त हाहाकार
हे महान्! हे चिरविरही!
हे नर–सिंह! हे बंधु मोर!
हे मोर विद्रोही!
सुन्दर आमार नमस्कार।"

वस्तुतः विप्लवी ऐसी ही शून्य, रिक्ततापूर्ण और सीमाहीन रिक्त हाहाकार भरे वातावरण में ध्येय–पथ पर चलता रहता है, जहाँ अभिनन्दन, सम्मान, फूलों के हार, प्रशस्ति–पत्र की गुजर नहीं होती– वरन् जहाँ कालेपानी की आजन्म कैद की सजाएँ और फाँसी के फन्दे हिलते रहते हैं– नजरुल इस्लाम के लिए वही 'विद्रोही' सुन्दर है, उनका बन्धु है और वे उसे भरे हृदय से नमस्कार करते हैं। कैसा तादात्म्य है कवि नजरुल का क्रांतिकारी जीवन से, विप्लवी भाव–भूमि से। बिना देश की मिट्टी से प्रेमादर का, श्रद्धा–आस्था का रिश्ता जुड़े किसी के मानस से यह भाव–धारा बहिर्गत नहीं हो सकती, शब्दारूप नहीं ले सकती परन्तु अंग्रेजों द्वारा जब्त की गई नजरुल की 'अग्नि वीणा' इसी भावना का, विप्लव–रागिनी का पर्याय है, समुच्चय है।

उस पराधीनता काल में नजरुल के ये विप्लव–गीत चटगाँव, ढाका, कुमिल्ला, बारीसाल से लेकर जैसोर, मिदनापुर, बर्दवान और कलकत्ते तक, सर्वत्र एक कोने से दूसरे कोने तक गूँजा करते थे– दूसरे प्रान्तों को भी इस 'अग्नि वीणा' ने प्रभावित–प्रेरित किया था, तभी तो 'लाहौर केस' के फाँसी पानेवाले तथा जन्म कैद कालापानी की सजा पानेवाले पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार, महाराष्ट्र के क्रांतिकारी नजरुल के विप्लव–गीतों से न केवल परिचित थे, वरन् वे कालेपानी तक की अंधेरी कोठरियों में गाते रहे थे। भगतसिंह के साथी जयदेव कपूर और शिव वर्मा, डाक्टर गया प्रसाद, सुरेन्द्र पाण्डेय के मुँह से लेखक ने स्वयं अनेकों बार नजरुल के बंगला गीत सुने हैं। "भारत भारतीयों का है"– "भारत हबे भारतवासीर"। प्रत्येक भारतवासी के लिए उन्होंने यह उद्घोषणा की थी। समझौतावादी भयाक्रांत नेतृत्व के विरुद्ध दी गई उनकी यह चेतावनी आज भी सामयिक है,

"बूकेर भीतर छ पाई, न पाई, मुखे बलिए स्वराज्य चाई
स्वराज्य कथामाने तोदेरे क्रमेइ हच्छे दूराज नाई।
"भारत हबे भारतवासीर"– एइ कथा टाओ बलते भय।
सेई बूड़ोदेर बलिए नेता–तादेर कथाय चलते हय।
बोल रे तोरा बोल नवीन चाइबे ये सब ज्ञान प्रवीण"

नजरुल इस्लाम की 'अग्नि वीणा' की एक और बंगला कविता, जो क्रांतिकारियों के बीच बहुत प्रचलित रही है, वह यह है,

"दुर्गम गिरि कान्तार मरु दुस्तर पारावार
लंघिते हबे रात्रि निशीथे यात्रीरा हुशियार।
दुलिते छे तरी, फुलिते छे जल, भूलितेछे मांझीपथ
छिड़ियाछे पाल, के धरिबे हाल, आछेकार हिम्मत।
के आछे जोआन, हओ आगुआन, हांकिछे भविष्यत्
ऐ तूफान भारी, दीते हबे पाड़ी, नीते हबे तरी पार!"

अर्थात् "दुर्गम गिरि, जंगल, मरुस्थल और दुस्तर पारावार को भी हमारी अग्र गति पार करेगी, अन्धेरी रात ही क्यों न हो, प्रतिकूल से प्रतिकूल समय, स्थिति क्यों न हो, तो भी आगे बढ़ेंगे– लाँघ जायेंगे सर्वबाधाएँ। यात्रीगण, सावधान! ऊँची लहरों में फँसकर नाव डगमगा रही है, माँझी रास्ता भूल गये हैं। नौका का पाल फट गया है। ऐसे दुष्काल में कौन है, जो आगे आकर नाव की पतवार पकड़ेगा? यह साहस किसमें है? भविष्य पुकार रहा है कौन है वह जवान, आगे आये और इस अंधड़–तूफान में उत्ताल तरंगों से जूझकर नाव पार ले जाये?" वस्तुतः ऐसी ही नितान्त विपरीत स्थितियों में, घोर साधनहीनता तथा हर प्रकार की जोखिम से जूझते हुए विप्लवीगण भारतमाता को विदेशी दासता से स्वतंत्र कराने हेतु वर्षानुवर्ष संघर्ष–रत रहे थे और नजरुल इस्लाम ने खुली आँखों से, उन क्रांति–वीरों के अति निकट सम्पर्क में रहकर यह सब देखा था। नजरुल की नित्य बैठक–उठक ऐसे ही विप्लवी अखबारों के कार्यालय किंवा स्थानों में रहती थी, जो उन दिनों क्रांति–केन्द्र रहते थे और अंग्रेजों का गुप्तचर विभाग जिनकी निगरानी करता रहता था। उन्होंने भी 'धूमकेतु' साप्ताहिक पत्र निकाला था। कवि नजरुल इस्लाम की मातृभूमि के प्रति जो श्रद्धा–भक्ति है, ममता और प्रेमादर भाव है, वह द्रष्टव्य है,

अपनी जन्म–मही बंगभूमि की वन्दना, उसको नमन करते हुए वे लिखते हैं–

"नम नम नम, बांग्ला देश मम, चिर मनोरम, चिर मधुर।
बूके निखधि, बहेशत नदी, चरणे जलधिर बाजे नूपुर।।
शियरे गिरिराज, हिमालय प्रहरी,
आशिस मेघवारि सदा तारपरे झरि,
जेन उमार चेये ए आदरिणी मेये ओड़े
आकाश छेये मेघ चिकुर,
एइ देशेर माटी, जल ओ फूले फले,
जे रस, जे सुधा, नाहिं भूमण्डले।
एइ मायेर बूके, हँसे खेले सुखे,
घूमाबो एइ बुके स्वप्नातुर
नम नम नम, बांग्ला देश मम,
चिर मनोरम, चिरमधुर।"

ऐसी भक्ति–उपासना अपने जीवनान्त तक नजरुल इस्लाम ने बंगभूमि को प्रत्यक्ष चैतन्य माता मान कर की है। वह बंग मही, जिसकी छाती में शत–शत सरिताएँ प्रवहमान हैं, उस बंगभूमि को तेरा नमन है, नमन है, नमन है। वह मेरी जन्म–भूमि चिरमनोरम, चिरमधुरा है, जिसके चरण–तल में उर्मिल सागर की तरंग–ध्वनि के नूपुर झंकृत हैं, बज रहे हैं। जिसके सिरहाने प्रहरी की भाँति पर्वतराज हिमालय पहरा दे रहा है, आशीर्वाद रूप में मेघों का जल सदैव जिस पर झरता रहता है। जैसे कि उमा (पार्वती) से भी कहीं अधिक लाड़ली बेटी है मेरी यह मातृभूमि उसके लिए ये श्यामवर्णी मेघ मानों हमारी जननी-जन्म भूमि की मुक्त कुन्तल (केश)–राशि है, खुली अलकें हैं, जो उड़–उड़कर गगन को आवृत कर ले रही हैं।

हमारी इस देश–माटी, इसके जल, फूल–फल, फलों में जो अमृत–रस है, वह पृथिवी–तल पर और कहीं नहीं है। हम अपनी इस माता, मातृभूमि की गोद में ही हँस–खेलकर, सुखमय जीवनयापन कर उसी की गोद में स्वप्नातुर चिरनिद्रा में लीन हो जाना चाहते हैं। हे चिर मधुर! चिर सुन्दर मेरी बंगभूमि! तुझको नमन है, नमन है, नमन है।" जिसके मन–मानस में अपनी मातृभूमि के प्रति इतनी श्रद्धा–भक्ति समाहित है, वही ऐसी उद्दाम भाव–धारा के साथ बहिर्गत होकर शब्दरूप ले सकती है। दुर्गा–पूजा बंगाल का विशेष पर्व है। नजरुल इस्लाम भला अपनी 'कालीमाता' को कैसे भूल जाते। लिखा, जब माँ काली की आरती उतारी जाती है, तब का दृश्य–

"आमार काली मायेर पायेरतले
देखे जा आलोर नाचत।"

अर्थात्– "मेरी जो काली माता हैं, उनके चरण–तल में कैसा आलोक नृत्य कर रहा है, यह देख जा।" इसको कहते हैं इस देश की आत्मा, संस्कृति से समरस मन–प्राण और उत्प्रेरित–उत्साहित जीवन। समता–समरसता–एकता–अखण्डता और देशोन्नति के लिए नजरुल परमुखापेक्षी, किसी अन्य देश की संस्कृति–सभ्यता या धर्म के मोहताज नहीं रहे। सब कुछ उन्हें अपनी "देशेर माटी", देश की ही मिट्टी में प्राप्त है। हिन्दू–मुसलिम–एकता के लिए वे कहते हैं, "हिन्दू इस देश के प्राणस्वरूप हैं, तो मुसलमान उसके नयन–मणि हैं।" उनकी वह कविता भी द्रष्टव्य है:–

"मोरा एक वृन्ते दुटि कुसुम हिन्दू–मुसलमान,
मुसलिम तार नयन–मणि, हिन्दू ताहार प्राण।
एक से आकाश मायेर कोले,

जेन रवि–शशी दोले,
एक रक्त बूकेर तले, एक से नाड़ीर टान।
मोरा एक वृन्त दुटि कुसुम हिन्दू–मुसलमान।"

कवि नजरुल इस्लाम को समाज में, देश में विघटन, विभाजन, अलगाव, फूट, जातीय विद्वेष कभी स्वीकार नहीं हुआ– उनकी दृष्टि में हिन्दू–मुसलमान का रक्त एक ही है। वे कहते हैं कि "हिन्दू और मुसलमान एक ही वृन्त के दो पुष्प हैं, एक ही माँ की दो सन्तानें हैं; मुसलमान यदि उस माँ की आँखों का तारा, नयन–मणि है, तो हिन्दू उसका प्राण है। एक ही आकाशरूपी माता की गोद के मानो वे सूर्य–चन्द्र हैं, जो झूल रहे हैं। दोनों की छाती में एक ही रक्त प्रवाहित है। दोनों अंतरंग रूपेण एक ही हैं– दो नहीं।" ऐसे उद्‌गारों द्वारा उन्होंने अंग्रेजों की इस छल–नीति को झटका दिया जो "फूट डालो और शासन करो" का आधार बनी हुई थी। यही नजरुल इस्लाम थे और ऐसी थी उनकी लोक–छवि कि कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी उनकी भूरि–भूरि सराहना की, उनके काव्य–तत्त्व को प्रशंसा, यह सामान्य बात नहीं थी। और यही नजरुल इस्लाम ही थे, जिनकी एक कविता, जो ऊपर उद्‌धृत की गई है, "दुर्गम गिरि कान्तार" को जब एक १३ वर्षीय बालिका अपने घर के आँगन में गा रही थी, तो वहाँ का कुख्यात डी–वाई.एस.पी. अहसान उल्ला खाँ गश्त करते हुए अपने पुलिस–दल के साथ उसी समय उधर से निकला और जब बाहर से उसने यह गुनगुनाना सुना, तो घर के अन्दर घुसकर उस बालिका को इस कदर मारा कि उसके प्राण–पखेरू उड़ गये, साथ ही उसे बचानें दौड़े उसके माता–पिता को भी इतना मारा–पीटा कि वे खड़े नहीं हो सकते थे। उस शहीद बालिका की माँ की गोद में जो उसका ढाई वर्ष का भाई था, उसे पुलिस अफसर ने माँ की गोद से छीनकर फर्श पर पटक दिया और फिर उसे बूटों से कुचलकर मार डाला। अनन्तर जब स्कूल से उस मृत बच्चे व बालिका का बड़ा भाई पढ़ाई करके लौटा, तो ये हत्याएँ देखकर क्रांतिकारी बन गया और फिर एक रोज उसने अदालत की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसी दुर्दान्त डी–वाई.एस.पी. को गोली मार का खत्म कर दिया– तब उस क्रान्तिकारी की उम्र १५ वर्ष की थी– अंग्रेजों ने उसे १४ वर्ष काले पानी की सजा दिलायी। वे क्रांतिकारी थे हरिपद भट्टाचार्य। स्वयं उन्होंने ने ही लेखक को अपने परिवार की यह रोमांचकारी घटना बताई थी। मार पड़ने से विकलांग हो गये उनके माता–पिता को भी लेखक ने कलकत्ते में देखा था। ऐसा दमनकारी खूनी युग रहा था। जब नजरुल इस्लाम ने 'अग्नि–वीणा' की रचना की थी और उसी अग्नि–पथ के पथिक बनकर दमन–झञ्झा झेलते रहे थे। उन पर उनके साप्ताहिक 'धूमकेतु' के मामले में मुकदमा चला और वे कैद रहे। उनकी वही अन्तःस्थ वेदना बहु आयामी होकर "सीता ओ सीता!"– शीर्षक कविता में भी फूट पड़ी है, लिखते हैं–

"कोन–से सुदूर अशोक कानने बंदिनी तुमि सीता!
आर केनो काल ज्वलिबे आमार
बुके बिरहेर चिता! सीता! सीता!
बिरहेर तोमार अरण्यचारी
कौंदे रघुवीर बल्कल–धारी।
झरी चमेलीर अश्रु झराये
झुरिछे वन–दुहिता! सीता! सीता!
तोमार आमार एइ अनन्त असीम
विरह निया केलो आदिकवि
केनो रामायण रचिबे के जाने प्रिया!
वेदना–सुर–सागर–तीरे दयिता
आमार ऐसो एसो फिरे आबार
आंधार हृदि–अयोध्या हवे
दीपान्विता। सीता! सीता!"

अर्थात् "किस सुदूर अशोक–कानन में बंदिनी तुम सीता! और कब तक जलेगी मेरी छाती में वियोग की चिता? सीता! ओ सीता! तुम्हारे वियोग में वनवासी रुदन करते बल्कलधारी रघुवीर। और झरी चमेली जैसे अश्रु गिराकर रुदन करती वन–पुत्री! सीता! ओ सीता! तुम्हारा–मेरा यह अनन्त–असीम वियोग लेकर कितने ही आदिकवि कितनी ही रामायणें रचेंगे। कौन जाने, वेदना के सुर–सागर–तीर पर आओ, लौटकर फिर अंधकारमयी हृदय रूपी अयोध्या दीपान्वित होगी, सीता! सीता!"

बंगाल में तथा अन्य प्रान्तों में भी भक्तजन कालीमाता के चरणों में लाल जवा कुसुम चढ़ाते हैं। नजरुलइस्लाम जवा कुसुम से, जो कि माँ के चरणों में अर्पित है, पूछते हैं–

"बल रे जवा बल
कोन साधनाय पेलि रे तुइ श्यामा मायेर चरण तल!
तोर साधना आमाय शेखा (जवा) जीवन होक सफल।

अर्थात् "नजरुल इस्लाम कालीमाता के चरणों में चढ़ाये गये जवाकुसुम से बड़ी अभिलाषा से पूछते हैं कि हे जवा कुसुम! मुझे भी तू वह साधना सिखा दे, जिससे मैं भी तुम्हारी तरह कालीमाता के चरणों में अपने को चढ़ाकर अपना जीवन सफल बना सकूँ।" नजरुल की ऐसी साध, कामना रखनेवाले हममें –आपमें कितने उपासक

मिलेंगे ? अवश्य हम चाहेंगे कि नजरुल की यह नजर हमें भी प्राप्त हो ताकि हम भी ऐसी कामना कर सकें। खेद है कि आजादी आने पर देश जिस तरह कटा–बँटा, विभाजित–खण्डित हुआ, और जो जघन्य रक्त–पात, हत्याकांड हुए– तब से लेकर मृत्युकाल तक विप्लव गायक नज़रुल मूक हो गये, चिरमौन। कुछ बोलते न थे। मूक होये गेलो। पाकिस्तान ने उनकी पेन्शन भी बन्द कर दी थी। नजरुल की मजार ढाका में बनी थी क्योंकि उनका बाद का जीवन ढाका में व्यतीत हुआ था, तब ढाका बंगलादेश में ही था, पाकिस्तान से स्वतंत्र था।

एक बार यह सुना गया था कि उस मजार से मिट्टी लाकर नजरुल के जन्म–स्थान चुरुलिया में उनकी मजार बंगाल सरकार बनायेगी, और कवि का स्मारक भी किन्तु पता नहीं; वह हुआ या नहीं। उल्लेखनीय है कि नजरुल इस्लाम ने अपने पुत्र का नाम "सब्यसाची" रखा। जिसका अर्थ होता है, दोनों हाथों से शस्त्र चलाने वाला। 'गीता' में यह शब्द अर्जुन के लिए प्रयुक्त हुआ है, "सव्यसाची धनंजय :"। मजहब भिन्न होने से नजरुल ने संस्कृति कभी नहीं बदली, वे इस देश के सनातन मूल से अपने को जोड़े रहे, अवश्य वे परिवर्तनवादी, किंवा इन्कलाबी ही थे, ढोंग–पाखण्ड तथा अर्थोत्पादक धर्म के वे सदैव विरोधी रहे। उनकी आत्मा अंतरंग किस रंग में रंगा था, यह उनकी 'जवा कुसुम' वाली कविता से सहज ही समझा जा सकता है। नजरुल की इस 'जन्म–शताब्दी' पर उनके सम्मान में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'अग्नि–वीणा' (जो जब्त थी) के नाम पर अब हावड़ा–आसनसोल के बीच "अग्नि–वीणा–एक्सप्रेस" नाम की ट्रेन चलेगी। 'रेलवे संसदीय समिति' की अध्यक्षा कु० ममता बनर्जी ने इस संदर्भ में विशेष भूमिका निभायी और यह नाम उन्हीं का सुझाया हुआ है। □

हम ध्वंस की राजनीति का नतीजा भुगत रहे हैं

- मुनीन्द्र

[(स्व०) बद्री विशाल पित्ती ('कल्पना') के अन्यतम सहयोगी रहे विद्वान् लेखक गत लगभग २६ वर्षों से हैदराबाद (भाग्यनगर) से 'दक्षिण समाचार' का प्रकाशन एवं सम्पादन कर हिन्दी की एकनिष्ठ सेवा में निरत हैं। प्रस्तुत है लोकतन्त्र की विडम्बना पर उनका एक सम्पादकीय। – सम्पादक]

बचपन से हम एक कहानी सुनते आ रहे हैं कि लुटेरों के एक दल ने एक गाँव लूटा और जब लूट के माल के बँटवारे का समय आया, तो वे आपस में झगड़ पड़े और पुलिस के हत्थे चढ़कर हाथ मलने लगे। पिछले दिनों ठीक यही कहानी दुहरायी गयी। २७० लोग एकजुट हुए और उन्होंने अटलबिहारी वाजपेयी से उनकी सरकार लूट ली। उस कहानी की तरह इन लोगों में झगड़ा तब शुरू हुआ, जब इनके एक साथी (कांग्रेस) ने लूट का सारा माल अकेले हजम कर जाने की सोची। कांग्रेस इस लूट के माल (सरकार) को दूसरों के साथ बाँटना नहीं चाहती थी। कुछ हिम्मत वाले साथियों (मुलायम सिंह यादव) ने कांग्रेस की इस चालाकी का विरोध किया और परिणामस्वरूप मध्यावधि चुनाव हमारे सामने हैं और सारी पार्टियाँ हाथ मल रही हैं।

आम आदमी आज भी वाजपेयी को इस देश का सबसे बड़ा नेता मानता है उसकी नजर से देखिए तो यही पाएँगे कि बेचारे वाजपेयी को बेकार ही तंग किया गया। आपके पास विकल्प नहीं था, तो क्यों गिरायी सरकार? क्यों धकेला देश को एक और चुनाव की ओर? कुछ और दिन काम करने दिया जाना चाहिए था, वाजपेयी सरकार को।

जयललिता द्वारा वाजपेयी सरकार से समर्थन–वापसी की घोषणा के बाद राष्ट्रपति महोदय के आदेश पर अपनी सरकार पर विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए प्रधानमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी ने लोकसभा में भाषण करते हुए विपक्षी दलों से पूछा था कि बताइए, हमारी सरकार का विकल्प क्या है? जवाब आया– आप हट जाइए, पाँच मिनट में विकल्प सामने आ जाएगा। एक वोट से विश्वास मत हारने के बाद वाजपेयी सरकार ने त्यागपत्र राष्ट्रपति जी को सौंप दिया और उसके बाद जो हुआ, वह इतिहास बन चुका है।

लोकसभा भंग किये जाने के बाद से आरोपों–प्रत्यारोपों का जो दौर चल पड़ा है, वह अपेक्षित ही था। कांग्रेस इस मध्यावधि चुनाव के लिए अकेले मुलायम सिंह यादव को दोषी ठहरा रही है। कांग्रेस ने जब अल्पमत सरकार के गठन का प्रयास किया, तो समाजवादी पार्टी, आर. एस. पी. और फार्वर्ड ब्लाक को छोड़कर लगभग सभी विपक्षी दल कांग्रेस के आगे नतमस्तक हो गये। देशहित और उसूल की बड़ी–बड़ी बातें करनेवाले माकपा सचिव हरिकिशन सिंह सुरजीत तो बिल्कुल कांग्रेस के प्रवक्ता ही बन बैठे थे।

कांग्रेस–विरोध के मुलायम सिंह के अपने कारण हैं। सबसे पहले तो उनकी जड़ें समाजवादी आन्दोलन से जुड़ी हुई हैं। भारत में समाजवादी आन्दोलन का जन्म ही कांग्रेस–विरोध से हुआ है। मुलायम सिंह कांग्रेस की अल्पमत सरकार को समर्थन देकर कांग्रेस की वंशवादी राजनीति को आगे नहीं बढ़ाना चाहते थे। दूसरा मुख्य कारण मुलायम सिंह के सामने था उत्तर–प्रदेश की राजनीति। मुलायम की समाजवादी पार्टी का आधार प्रधानतः उत्तर–प्रदेश तक ही सिमटा हुआ है और वहाँ समाजवादी पार्टी का सीधा मुकाबला कांग्रेस से होता है। भारतीय जनता पार्टी का उत्तर–प्रदेश में अपना वोटबैंक है, जिस पर समाजवादी पार्टी का जोर नहीं चलता। पिछड़ों, दलितों और मुसलमानों के वोट समाजवादी पार्टी को बहुजन समाज पार्टी और कांग्रेस के साथ बाँटने पड़ते हैं। बहुजन समाज पार्टी का जनाधार संकुचित होता जा रहा है, इसलिए उससे कोई

कड़ी प्रतिस्पर्द्धा नहीं है। अब बची कांग्रेस। १९९२ में अयोध्या कांड के बाद से उत्तर–प्रदेश का मुसलमान वोटर कांग्रेस से विमुख होकर मुलायम सिंह के साथ हो लिया। उन्हीं के वोट समाजवादी पार्टी की राजनीति का मुख्य आधार हैं। केन्द्र में अपने समर्थन से कांग्रेस को सत्तासीन करके अपने वोटरों को नाराज करने का जोखिम मुलायम मोल नहीं लेना चाहते थे। इन सबके अतिरिक्त चन्द्रशेखर और मुलायम सिंह यादव जैसे लोग कांग्रेस को इस देश में हुई हर गड़बड़ी के लिए जिम्मेदार मानते हैं। इन लोगों का मानना है कि आर्थिक बदहाली, भ्रष्टाचार, पिछड़ेपन और अनेक कमियों के लिए कांग्रेस अकेली जिम्मेदार है। इसीलिए मुलायम सिंह यादव ने पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु के नेतृत्व में तीसरे मोर्चे की सरकार का प्रस्ताव रखा, जिसे समर्थन देने से कांग्रेस ने साफ मना कर दिया। असल में कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी को उन्हीं की पार्टी के अर्जुन सिंह सरीखे नेताओं ने इस खुशफहमी में रखा कि आप सरकार बनाने का प्रस्ताव तो कीजिए, सारी विपक्षी पार्टियाँ समर्थन की चिट्ठियाँ लेकर दौड़ी चली आएँगी। कुछ हद तक ऐसा हुआ भी। जयललिता, लालू यादव, वामपंथियों आदि ने अपना समर्थन कांग्रेस को परोस भी दिया; पर वे मुलायम सिंह को 'अंडरएस्टीमेट' कर गये। वाजपेयी सरकार गिरने के बाद राष्ट्रपति से अपनी पहली भेंट के बाद सोनिया गांधी ने बड़े विश्वासपूर्वक कहा था कि हमें २७२ सांसदों का समर्थन प्राप्त है और कुछ दिनों में यह संख्या और बढ़ जाएगी, लेकिन दो दिन बाद जो वे राष्ट्रपति को दे सकीं, वह था केवल २३३ सांसदों का समर्थन। राष्ट्रपति महोदय द्वारा और समय दिये जाने के बावजूद वे अपने समर्थकों की संख्या २३९ से आगे नहीं बढ़ा पायीं। यह दूसरा अवसर था, जब सोनिया गांधी अपनी नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनाने के प्रयासों में विफल हुईं। पहला अवसर पिछले आम चुनाव के समय आया था; लेकिन उस समय भी वे कांग्रेस को भाजपा से अधिक सीटें नहीं दिलवा पायीं। उस समय उन्हें राजनीति में नया माना गया था। उसके बाद उनके गम्भीर और संयत आचरण ने उन्हें सुलझे हुए राजनीतिज्ञ के रूप में खूब ख्याति दिलवायी। पिछले दिनों के सोनिया गांधी के अवसरवादी आचरण ने उनकी और कांग्रेस की छवि को धूसरित किया है, ऐसा कांग्रेसी भी मानते हैं, तभी तो अर्जुन सिंह को बलि का बकरा बनाया जा रहा है। अपनी अल्पमत सरकार बनाने की सलाह कांग्रेस अध्यक्ष को चाहे जिसने दी हो; इस प्रयास में सोनिया गांधी का कद राजनीति में छोटा हुआ है, पर कांग्रेसी नेता अभी भी सच्चाई को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनके अनुसार पहले जयललिता और फिर मुलायम सिंह यादव इस झमेले के लिए जिम्मेदार हैं।

इस अवसरवादी राजनीति और छद्म सांप्रदायिकता–विरोध के चलते भारतीय जनता पार्टी लाभान्वित हुई है। पिछले दिनों राष्ट्र के नाम अपने प्रसारण में प्रधानमंत्री ने फिर से यह याद दिलाया कि उनकी सरकार को गिराने के लिए मुद्दा क्या था? कुछ नहीं। बस क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थ। **आम आदमी आज भी वाजपेयी को इस देश का सबसे बड़ा नेता मानता है उसकी नजर से देखिए, तो यही पाएँगे कि बेचारे वाजपेयी को बेकार ही तंग किया गया। आपके पास विकल्प नहीं था, तो क्यों गिरायी सरकार? क्यों धकेला देश को एक और चुनाव की ओर? कुछ और दिन काम करने दिया जाना चाहिए था, वाजपेयी सरकार**

आम आदमी चाहे कुछ भी सोचता हो, पर हमारे विपक्षी दल ऐसा नहीं सोचते। कुछ और नहीं कर सके, इसलिए सरकार ही गिरा दी। ध्वंस की राजनीति आज 'फैशन' में है, रचनात्मक राजनीति 'आउट ऑफ फैशन' हो गयी है। राजनीति के इस नये रूप का खमियाजा आज सारा देश भुगत रहा है। कहते हैं, भीड़ उन्मादी होती है। २७० सांसदों की भीड़ के उन्माद ने बिना आगा–पीछा सोचे एक सरकार को ध्वस्त कर दिया। आज जब मध्यावधि चुनाव सिर पर खड़े हो गये हैं, तो हर कोई पछता रहा है। आवश्यकता इस बात का पता लगाने की है कि क्या इन २७० लोगों पर 'राजद्रोह' की कार्रवाई की जा सकती है? बिना सोचे–समझे देश को १ हजार करोड़ रुपये के खर्च में डालने की जवाबदेही किसकी है? अकेले मुलायम सिंह, मायावती या सैफुद्दीन सोज ही नहीं, पूरे २७० सांसद इस अपराध के दोषी हैं।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

हो नादिर की औलाद नहीं, हो बड़े बाप

- दामोदर स्वरूप 'विद्रोही'

(प्रस्तुत कविता बांग्ला देश-युद्ध के समय रची गयी थी, जो पाकिस्तान की 'इस्लामी असलियत' को उजागर करने की स्थायी क्षमता रखती है। आज भी इस्लामी पाकिस्तान का 'असली चेहरा' उतना ही कुरूप है, जितना अपने बनने से पूर्व १६ अगस्त, १६४६ को था।- सम्पादक)

मैं सोच रहा हूँ आज युद्ध के बारे में,
क्यों लड़ा गया, किसलिये कौन परिवेशों में?
मैं इसे पाक-भारत का मानूँ महासमर,
या स्वतन्त्रता की आग दास्य के केशों में?

यह देवासुर-संग्राम नहीं है सतयुग का,
है नहीं राम-रावण का संगर त्रेता का।
आभास महाभारत का इसमें कहीं नहीं,
या जौहर मानूँ जंगे-बदर विजेता का।।

कुछ भी तो इस पर घटित नहीं होता सीधा,
यह सिर्फ कत्ल भारत का पापी किस्सा है।
यह तो पैशाचिक आँधी पश्चिम से आयी,
बर्बाद कर गयी जो पूरब का हिस्सा है।।

यदि युद्धों का इतिहास उठा करके देखो,
सेना की सेना से ही हुई लड़ाई है।
पर इसे युद्ध दुनिया कैसे स्वीकारेगी,
माँ-बहनों की अस्मत पर हुई चढ़ाई है।

नारा जेहाद का लगा-लगा कर कूद पड़े,
दीनो-इमान के रखवाले बनने वालो!
बन लड़े मुजाहिद राहे-खुदा में क्या कहने,
खुद घर में आग लगा दी है रहने वालो??

तुम संस्कृति का इतिहास मिटाने आये थे,
इसलिए सभी दानिशमन्दों का खून किया।
हर क्वाँरी लड़की को अपराधी गर्भ सौंप,
भावी पीढ़ी के अनुबन्धों का खून किया।।

तुम 'पथ के दावेदार' बने 'परिणीता' के,
नापाक अरे! नजरुल का पाक कलाम किया।
अपनी बहनों-कन्याओं का कर शील-भंग,
तुमने अपनी माता का दूध हराम किया।।

तुम मर्दे मुजाहिद हो, हलाल के कायल हो,
दीनो-इमान के रखवाले हो, हक-परस्त!
पर सिद्ध कर दिया है तुमने इस बार यहाँ,
तुम लोलुप, लम्पट, कामी हो, औरतपरस्त।।

हम आशीषों का कवच वक्ष पर धारण कर,
नित न्याय-पन्थ पर निर्भय चलनेवाले हैं।
है सदाचार का टीका माथे पर रहता,
ये राखी के दो तार शील रखवाले हैं।।

तू शत्रु किन्तु तेरी माँ मेरी माता है,
तेरी पत्नी है मेरी पूजा की थाली।
तेरी बहनों का बिम्ब झलकता राखी में,
तेरी कन्या तो अरुणोदय की है लाली।।

ओ पाक वतन के जवाँ मर्द शाबाश तुझे!
तेरे कर्मों ने पशुता का उपहास किया।
घर-द्वार और बाजार-छावनी से लेकर,
तूने अपनी बंकर में भी सहवास किया!!

बस इन्हीं कारनामों पर थे तुम फूल रहे,
क्या वीर बाँकुरी ये तेरी सेनाएँ थीं।
जब आत्म-समर्पण की बेला में बँधी मिलीं,
फौजी शिविरों में फूलों सी कन्याएँ थीं।।

क्यों बार–बार दोहराते हो तानाशाहो,
हम खूब जानते किस मिट्टी से बने आप।
अब हत्याओं के आप अकेले कीर्त्तिमान,
हो नादिर की औलाद नहीं, हो बड़े बाप।।

पर हम तुमको इतना समझाते बार–बार,
हम झेल चुके हैं चंगेजी–नादिरशाही।
सारे भारत का खून चाहता बन जाना,
इतिहासकार के लिए सुर्खियों की स्याही।।

नाराज बहुत थे याहिया खाँ जब भारत के–
कुछ बच्चों ने तेरी अर्थी सुलगायी थी।
अब सारा पाकिस्तान तुम्हारी क़ब्रगाह
गिर पड़े कुण्ड में जिसमें आग लगायी थी।

था इधर हमारे शासन का सम्मान हुआ,
जयकार मची थी संसद् से घर–द्वारों तक।
लंका रावण से छीन बिभीषण को दे दी,
था युद्ध हमारा उस घर के हत्यारों तक।।

अब देख चुका है जग सारा आँखें पसार,
भारत–नफरत की मुहिम, तुम्हारा शासन है।
जब–जब जनता ने तलब किया रोटी–मकान,
तब कहकर टाला "खतरे में सिंहासन है"।।

कश्मीर दिलाने का वह तेरा आश्वासन,
पाकिस्तानी जनता को अब तक पीस रहा।
करके प्रयत्न तू देख चुका है कई बार,
पर असफलता के हाथों पड़कर खीझ रहा।।

मौलिक अन्तर है मेरे और तुम्हारे में,
तुम अधिनायक, हम लोकतन्त्र के रखवाले।
संसद् से लेकर दफ्तर के हर कमरे तक,
परिवार सदृश रहते हैं जैसे घरवाले।।

हम घर में लड़ते हैं घरवालों के समान,
पर दुश्मन उसका कोई लाभ न पा सकता।
हम पाँच उँगलियों को समेट घूँसा बनते,
मजहबी जोश का कभी न जादू छा सकता।।

तुम उदाहरण विद्रोही कवि का ही ले लो,
जिसने सत्ता को पूरी उमर झिंझोड़ा है।
पर आज तुम्हारी साजिश को सम्मुख रखकर,
इतिहास क्रान्ति का शब्दों के संग जोड़ा है।।

शासक समाज के लिए यहाँ की परम्परा,
जनसेवा है पहिचान परीक्षा शासन की।
दिल्ली की संसद् जनवाणी है भारत में,
जनता के हाथों कुञ्जी है सिंहासन की।।

इस निष्ठा से टकराने से अच्छा होगा;
अपने घर में भी निष्ठा को साकार करो।
बारूद भरो मत गोदामों के भीतर तुम,
भूखी जनता के लिए अन्न–भण्डार भरो।।

तुम रोक नहीं सकते हो जन–आन्दोलन को,
पीढ़ियाँ नई दीवार तोड़कर मानेंगी।
दो लिप्साओं ने बाँट दिया घर–आँगन था,
पर जनता उसको पुनः जोड़ कर मानेगी।।

– चमकनी बहादुरगंज, शाहजहाँपुर– २४२००१

(पृष्ठ ४४ का शेष)

हम ध्वंस की राजनीति...

को। आम आदमी की हमदर्दी आज भारतीय जनता पार्टी को मिल रही है।

आम आदमी चाहे कुछ भी सोचता हो, पर हमारे विपक्षी दल ऐसा नहीं सोचते। कुछ और नहीं कर सके, इसलिए सरकार ही गिरा दी। ध्वंस की राजनीति आज 'फैशन' में है, रचनात्मक राजनीति 'आउट ऑफ फैशन' हो गयी है। राजनीति के इस नये रूप का खमियाजा आज सारा देश भुगत रहा है। कहते हैं, भीड़ उन्मादी होती है। २७० सांसदों की भीड़ के उन्माद ने बिना आगा–पीछा सोचे एक सरकार को ध्वस्त कर दिया। आज जब मध्यावधि चुनाव सिर पर खड़े हो गये हैं, तो हर कोई पछता रहा है। आवश्यकता इस बात का पता लगाने की है कि क्या इन २७० लोगों पर 'राजद्रोह' की कार्रवाई की जा सकती है? बिना सोचे–समझे देश को १ हजार करोड़ रुपये के खर्च में डालने की जवाबदेही किसकी है? अकेले मुलायम सिंह, मायावती या सैफुद्दीन सोज ही नहीं, पूरे २७० सांसद इस अपराध के दोषी हैं।

– गांधी भवन, पो०बा० २६१, हैदराबाद–५००००१

(आर्थिक-शुचिता लोकतन्त्र के कल्याण की प्राथमिक शर्त है। गत पचास वर्षों में इस शुचिता का जैसा हनन कांग्रेसी तथा आत्मघोषित सेक्यूलर सत्ताधीशों ने किया है, उसी का दुःखद परिणाम है आज के लोकतन्त्रीय ढाँचे पर से उठता जा रहा जन-विश्वास। - सम्पादक)

लोकतन्त्र के लिए सबसे बड़ा संकट शासन-तन्त्र में आर्थिक शुचिता का अभाव

- डॉ० नरेश चन्द्र त्रिपाठी

राजतन्त्र, कुलीन तन्त्र या फिर लोकतन्त्र-शासन का कोई भी रूप हो, उसकी सफलता लोक-मंगल के परिमाण पर निर्भर करती है। सत्ता का सच्चा अधिकारी वही है, जो अपनी प्रजा के सुख-दुःख के प्रति संवेदनशील हो, उसमें भागीदार हो तथा उसकी सुख-समृद्धि के लिए प्रयत्नशील हो। महाभारत के शान्तिपर्व में स्पष्ट कहा गया है-

यस्यनार्तो जनपदः संनिकर्षगतः सदा।
अक्षुद्रः सत्पथालम्बी स राजा राज्यभाग्भवेत्।।

(शान्तिपर्व, ११५/१६)

अर्थात् जिसका देश दुःखी न हो तथा जो (प्रजा का) समीपवर्ती बना रहे, जो स्वयं भी क्षुद्र विचारों का न हो, सुदा सन्मार्ग का अवलम्बन करनेवाला हो, वही राजा राज्य का सच्चा अधिकारी होता है।

एक लोकतांत्रिक-शासन-प्रणाली में ऐसी संवेदना एवं लोकहित के प्रति सजगता केवल अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य भी है; क्योंकि वहाँ शासन का अस्तित्व ही जनता की इच्छा और विवेक पर निर्भर करता है। लोकहित एवं लोकमंगल के लिए आवश्यक है कि शासक एवं सर्वोच्च पदों पर आसीन व्यक्ति ईमानदार, सहिष्णु, दयावान्, संवेदनशील एवं मर्यादित आचरण वाला हो। शासक की शुचिता एवं मर्यादा के अनेक क्षेत्र हैं- यथा राजनैतिक तटस्थता, पक्षपात रहित व्यवहार, स्वस्थ यौनाचार, आर्थिक शुचिता आदि। शासक की मर्यादा के सम्बन्ध में महाभारत में उल्लेख आता है-

स्थापयेदेव मर्यादां जनचित्तप्रसादिनीम्।
अल्पेऽप्यर्थे च मर्यादा लोके भवति पूजिता।।

(शान्तिपर्व- १३३/१३)

(राजा को ऐसी ही मर्यादा स्थापित करनी चाहिए, जो सब लोगों के चित्त को प्रसन्न करनेवाली हो। लोक में छोटे से काम में भी मर्यादा का ही मान होता है।)

स्पष्ट है कि राजा या सत्ता के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को प्रत्येक क्षेत्र में मर्यादायुक्त व्यवहार करना चाहिएँ। उसके एक भी अमर्यादित कार्य का उसकी छवि पर एवं लोक-मंगल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। किन्तु आर्थिक मामलों में शुचिता एवं स्वच्छता अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। शासक का कर्तव्य है कि जनता द्वारा परिश्रम से अर्जित धन को राजकाज के लिए करों के रूप में संगृहीत करे और उसकी एक-एक पाई का जनता के हित में सदुपयोग करे। जनता के धन का दुरुपयोग जनता के साथ अन्याय एवं प्रवञ्चना है। महाभारत में राजकोष के उपयोग के सम्बन्ध में निर्देश दिया गया है कि जो धन राज्य की सुरक्षा करने से बचे, उसी को धर्म और उपभोग के कार्य में खर्च करना चाहिए। शास्त्रज्ञ और मनस्वी राजा को कोषागार से संचित धन से द्रव्य लेकर भी व्यय नहीं करना चाहिए।

यद्धि गुप्तावशिष्टं स्यात् तद्धितं धर्मकामयोः।
संचयान्न विसर्गी स्याद् राजा शास्त्रविदात्मवान्।।

(१२०/३५, शान्तिपर्व)

शासक की शुचिता, धर्मनिष्ठा, सत्यपालन आदि पर बल देते हुए वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रीराम भरत से कुशल-क्षेम के बहाने उपदेश देते हैं। इस प्रसंग में राजा, राज्यकर्मियों एवं मन्त्रियों से मर्यादित एवं धर्मनिष्ठ आचरण की अपेक्षा की गयी है। अमात्यों के सम्बन्ध में श्रीराम कहते हैं-

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु।।

(अर्थववेद १००/२६)

अर्थात् जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, बाप दादों के समय से ही कार्य करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतर

से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त करते हो न?

इसी प्रसंग में अर्थ–संयम एवं राजकोष की मर्यादा के सम्बन्ध में श्रीराम भरत से पूछते हैं–

आयस्ते विपुलः कच्चित् कच्चिदल्पतरो व्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित् कोषो गच्छति राघव।।५४।।
देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद् गच्छति ते व्ययः।।५५।।

हे रघुनन्दन! क्या तुम्हारी आय अधिक और व्यय बहुत कम है? तुम्हारे कोष का धन अपात्रों के हाथों में तो नहीं चला जाता। देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रों के लिए ही तो तुम्हारा धन खर्च होता है न?

न्यायिक क्षेत्र में अर्थशुचिता की आवश्यकता सर्वोपरि है। श्रीराम इसी प्रसंग में भरत से पूछते हैं–

गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धन लोभान्नरर्षभः।।५६।।

नरश्रेष्ठ जो चोरी में पकड़ा गया हो, जिसे किसी ने चोरी करते हुए देखा हो, पूछताछ से भी जिसके चोर होने का प्रमाण मिल गया हो और जिसके विरुद्ध और पर्याप्त कारण (साक्ष्य) हों, ऐसे चोर को भी तुम्हारे राज्य में धन के लालच में छोड़ तो नहीं दिया जाता है?

व्यसने कच्चिदाढ्यस्थ दुर्बलस्य च राघव।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः।।५८।।

रघुकुल भूषण! यदि धनी और गरीब में कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय के लिए आया हो, तो तुम्हारे बहुज्ञ मन्त्री धन आदि के लोभ को छोड़कर उस मामले पर विचार करते हैं न?

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय चिन्तन शासन की आर्थिक शुचिता के प्रति सतर्क रहा है। शासन के प्रत्येक क्षेत्र–विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के लिए अर्थ–संयम की अपेक्षा की गयी है। किन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् निरन्तर भारतीय राजनीति में नैतिक मूल्यों का क्षरण होता रहा है। फलस्वरूप विगत दो दशकों में राज्य सत्ता एवं सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार चरमसीमा पर पहुँच गया है। आधुनिक लोकतंत्र के चार स्तम्भ माने गये हैं– विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं प्रेस। लोकतंत्र के चारों स्तम्भ अपनी मर्यादा भूलकर अमर्यादित आचरण का प्रदर्शन कर रहे हैं।

लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में विधायिका का प्रमुख स्थान है। यह विधि–निर्मात्री निकाय जनता के प्रतिनिधियों द्वारा गठित होता है। यही प्रतिनिधि संसदीय शासन प्रणाली में सरकार का गठन करते हैं। विगत २०–२५ वर्षों से सांसद् एवं विधायक भ्रष्टाचार के दलदल में निरन्तर लिप्त होते जा रहे हैं। किसी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने पर सांसद् एवं विधायक क्रय–विक्रय की वस्तु बनकर भ्रष्टाचार का घिनौना उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। संसद् या विधानमण्डलों में शक्तिपरीक्षण के अवसर पर या अल्पमत सरकारों द्वारा बहुमत प्रदर्शित करने के अवसर पर मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री पद के दावेदार एवं उनके समर्थक थैली के आधार पर अपना बहुमत सिद्ध करते देखे गये हैं। झारखण्ड मुक्ति मोर्चे के कुछ सांसदों को आर्थिक प्रलोभन देकर नरसिंह राव द्वारा बहुमत सिद्ध करने की घटना सर्वविदित है। विधायिका द्वारा ऐसे भ्रष्टाचार के अतिरिक्त अन्य अप्रत्यक्ष तरीके भी पथभ्रष्ट करते हैं। विधायकों एवं सांसदों द्वारा दो चार या पाँच वर्षों में ही अकूत सम्पदा अर्जित कर लेना, झोपड़ी या साधारण मकान से कोठीनुमा बँगले के स्वामी बन जाना इस बात का प्रमाण है कि वे अपने पद का आर्थिक हितों हेतु भयंकर रूप से दुरुपयोग करते हैं।

कार्यपालिका लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न निकाय है। सरकार की वास्तविक शक्ति इसमें निहित होती है। यही विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों का क्रियान्वयन कराती है। भारतीय शासन–व्यवस्था में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मन्त्रिगण एवं उच्च अधिकारी इसमें सम्मिलित हैं। राज्यों में राज्यपाल, मुख्यमन्त्री, मन्त्रिमण्डल के सदस्य आदि कार्यपालिका के अंग होते हैं। चूँकि इस संस्था के पास अधिक शक्ति है, इसलिए इसके भ्रष्ट होने की सम्भावना भी अधिक रहती है। कहा गया है कि सत्ताभ्रष्ट होती है और निरंकुश सत्ता पूर्णतया भ्रष्ट। भारत में सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न पद प्रधानमन्त्री का है, क्योंकि संसदीय शासन प्रणाली में वह शक्ति का केन्द्र–बिन्दु होता है। इस सर्वोच्च पद पर आसीन कम से कम दो प्रधानमंत्री प्रत्यक्ष रूप से भ्रष्टाचार के लिए बदनाम हुए। बोफोर्स प्रकरण में श्री राजीव गान्धी पर उँगलियाँ उठीं। श्री नरसिंहराव के काल में घोटालों की बाढ़–सी आ गयी और वे स्वयं यूरिया काण्ड, सांसद रिश्वत काण्ड तथा हर्षदमेहता काण्ड में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष लिप्त पाये गये। राज्यों में मुख्यमंत्रियों के भ्रष्टाचार के अनेक किस्से चर्चा में रहे हैं, जिसमें जनता की गाढ़ी कमाई का व्यक्तिगत सम्पत्ति अर्जन के लिए राजकोष का बेशर्मी से दोहन किया गया। जयललिता ने तमिलनाडु

की जनता के साथ विश्वासघात किया और स्वयं के भोग-विलास एवं ऐश्वर्य के लिए शासन सत्ता का बीभत्स एवं कुत्सित प्रयोग कर बहुमूल्य आभूषण, कीमती पोशाकें, विलासितापूर्ण महल जुटाकर भ्रष्टाचार को चरमसीमा पर पहुँचा दिया। बिहार में लालू प्रसाद यादव ने पशुपालन विभाग एवं चाराकाण्ड में करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित कर पद के दुरुपयोग के नये कीर्तिमान स्थापित किये, जो बेहद शर्मनाक हैं। दूरसंचार काण्ड के नायक सुखराम ने केन्द्रीय मन्त्री के रूप में रसोईघर एवं स्नानागारों तक को नोटों से भर दिया। एक राज्यपाल की विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गयी, जिस दुर्घटना में अटैचियों में भरे नोट पाये गये और खेतों में उड़ते देखे गये। ये कुछ दृष्टान्त हैं, जो लोकतान्त्रिक मर्यादा को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, हरियाणा जैसे अनेक प्रदेशों में राज्य शासन के उत्तरदायी पदों पर आसीन व्यक्तियों ने पद का दुरुपयोग कर करोड़ों रुपये की बेनामी सम्पत्तियाँ अर्जित कर आर्थिक अपराधों को मूर्तिमान किया है।

जनता के लिए आशा की किरण बनी न्यायपालिका जब धन के प्रभाव में न्याय की धज्जियाँ उड़ाने लगे, तो लोकतन्त्र को निश्चित रूप से गम्भीर खतरा समझना चाहिए। जनता में न्यायपालिका में भ्रष्टाचार की चर्चाएँ अब आम होने लगी हैं। निचले स्तर से उच्च-स्तर तक न्यायालयों के निर्णय धन के प्रभाव से प्रभावित होने की घटनाएँ सुनने में आती हैं। सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश पर स्पष्ट रूप से लगा भ्रष्टाचार का आरोप और जाँच में सही पाये जाने पर उसकी गूँज संसद् तक में हुई। अब न्यायपालिका से जुड़े स्वच्छ छवि वाले लोग अनेक बार न्यायपालिका की स्वच्छता, शुचिता एवं सतर्कता के लिए आगाह करने लगे हैं।

लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ प्रेस एवं मीडिया से ऊँचे आदर्श की अपेक्षा की जाती है; क्योंकि यह स्तम्भ अन्धेरे में भटकी जनता को प्रकाश दिखाने का कार्य करता है। शासन के तीन अंगों के कार्यकरण एवं कारनामों को प्रकाश में लाकर जनता को जानकारी देने का कार्य यही स्तम्भ करता है; किन्तु दुर्भाग्य यह कि आज प्रेस एवं मीडिया भी अपनी विश्वसनीयता खो रहा है। धन एवं पद के लोभ में पत्रकार अपनी लेखनी बेचने लगे हैं। 'पाञ्चजन्य' (साप्ताहिक) के स्वर्णजयन्ती समारोह में प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इस बात की ओर संकेत किया था कि पत्रकार धन एवं पद के प्रति अधिक लोलुप होते जा रहे हैं, वे राजनीति में कूदने के लिए भी व्यग्र हैं। फलतः वे 'प्रोफेशनल' होने के स्थान पर 'कामर्शियल' होने लगे हैं। निचले स्तर पर जहाँ पत्रकार थानेदार, चिकित्साधिकारी, तहसीलदार, जिलाधिकारी, पूर्ति अधिकारी आदि को खुश करने या ब्लैक मेल करने के लिए लेखनी का दुरुपयोग करते हैं, वहाँ उच्च स्तर पर पत्रकार किसी दल विशेष या उच्च पदस्थ व्यक्ति विशेष की चाटुकारिता कर उनकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं, ताकि वे राज्य सभा या विधान परिषद् के सदस्य मनोनीत हो सकें या किसी आयोग या बोर्ड के सदस्य। अनेक आपराधिक प्रकरणों में पत्रकारों की भूमिका भी सन्दिग्ध पायी गयी है।

नेताओं को लग गया बुरा छूत का रोग

- नरेन्द्र 'उत्सुक'

धूप-छाँव है जिन्दगी, राजनीति है पोल।
अवसरवादी समय का, पीट रहे हैं ढोल।।

राजनीति षड्यन्त्र है, मचा रही है रार।
नेताओं में परस्पर, मची हुई तकरार।।

नेता कपटी लालची, चरे जा रहे देश।
निगल समूचे ही गये, गान्धी के उपदेश।।

संसद् में चोंचें लड़ें, भौंक उठे हैं लोग।
सुनें न बातें किसी की, है कैसा संयोग।।

स्वर में स्वर उनके मिला, खूब उड़ाओ मौज।
ऐसे लोगों की जुड़ी, भारत में अब फौज।।

अफसर भ्रष्टाचार में, रहते हैं तल्लीन।
रामराज्य आ पायेगा, कैसे करें यकीन।।

भाषण के अब विषय हैं, जोशीले उपदेश।
दीपक नीचे गहन तम, मिटा जा रहा देश।।

सौ प्रतिशत दें जोश में, भाषण झूठे लोग।
नेताओं को लग गया, बुरा छूत का रोग।।

- साहित्य साधना कुटीर (गायत्री शक्ति पीठ के समीप) डबरा-४७५११० जनपद, ग्वालियर (म०प्र०)

अपराधों के शमन में जाँच एजेन्सियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, किन्तु इस समय उनकी छवि भी साफ–सुथरी नहीं रह गयी है। भारत की प्रमुख जाँच एजेन्सी सी.बी.आई. पर अनेक बार अँगुली उठ चुकी है। ये एजेन्सियाँ प्रायः सत्तारूढ़ दल के प्रति अनुचित एवं अनावश्यक निष्ठा का प्रदर्शन कर अपनी भूमिका को सन्दिग्ध एवं विवादास्पद बना लेती हैं। बहुधा इन पर आरोप लगता है कि ये सत्तारूढ़ दल के इशारे पर कार्य करती हैं।

उपर्युक्त विवरण भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार का शतांश चित्रांकन भी नहीं कर रहा है। वास्तव में आर्थिक–पथभ्रष्टता कहीं अधिक व्यापक और गहरी है। भ्रष्टाचार एवं नैतिक क्षरण का यह वातावरण भारत में लोकतन्त्र को अन्दर से खोखला कर रहा है। जनता का विश्वास इसी भ्रष्टाचार के कारण अपने ही जनप्रतिनिधियों से हटता जा रहा है, जो लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी पुस्तक **'मेरी संसदीय यात्रा'** में लोकतन्त्र के ऊपर आसन्न जिन खतरों के प्रति चिन्ता व्यक्त की है, उनमें अधिकांश नैतिकता के हास से जुड़े हैं। उन्होंने लिखा है– "...क्या भारतीय लोकतन्त्र ऊपर से जितना जीवन्त दिखाई देता है भीतर से भी उतना ही सबल और शक्तिशाली है? क्या लोकतन्त्र की सभी संस्थाएँ अपने दायित्व का भली–भाँति पालन कर रही हैं? क्या लोकतान्त्रिक जीवन मूल्यों की रक्षा हो रही है? इन प्रश्नों का उत्तर खोजते समय बड़ी निराशा होती है। संसद् में वाद–विवाद कम, शोर–शराबा ज्यादा होता है, चुनाव धन–शक्ति और गुण्डाशक्ति के बड़े पैमाने पर प्रयोग के कारण दूषित हो गये हैं। दलीय पद्धति दलबदल की अनैतिक प्रवृत्ति के कारण क्षतिग्रस्त हो रही है, न्यायपालिका की निष्पक्षता पर अगुँलियाँ उठ रही हैं। चुनाव आयोग तक आरोपों–प्रत्यारोपों के घेरे में आ गया है। राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है। लोकतन्त्र का बाहरी ढाँचा बरकरार है, किन्तु उसे अन्दर ही अन्दर घुन खाये जा रहा है।"

समाज को भ्रष्टाचार से मुक्त करने तथा शुचितायुक्त नैतिक मूल्यों पर आधारित शासन–प्रणाली एवं राज्य स्थापित करने के लिए शिखर पर बैठे लोगों को सर्वोत्कृष्ट मानक स्थापित करने होंगे, उन्हें स्वयं के आचरण द्वारा लोगों को नैतिकता का आभास एवं आश्वासन देना होगा। शिखर पर आसीन अधिकार–सम्पन्न व्यक्ति ही दुराचारियों को दण्डित करने का नैतिक साहस दिखा सकता है। 'यथा राजा तथा प्रजा' और 'राजा कालस्य कारणम्' सिद्धान्त के अनुसार सर्वोच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों को भ्रष्टाचार दूर करने के लिए पहल करनी होगी। गुरुजी गोलवलकर कहा करते थे– अधिकारी को सम्पूर्ण आचरण और व्यवस्था की ओर दत्तचित्त ध्यान देकर निर्दोष होकर चलने का प्रयत्न करना होगा। अधिकारी का अर्थ है ज्यादा दायित्ववाला। अतः अपने हर व्यवहार से उसे अधिक सतर्क होकर चलने की आवश्यकता होगी। अतः राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्री, न्यायाधीश, उच्च पदस्थ अधिकारियों को अपने आचरण द्वारा शुचिता और स्वच्छता को प्रदर्शित करना होगा, तभी एक नैतिक समाज एवं सुदृढ़ राज्य की स्थापना हो सकेगी और तभी हमारी लोक–तान्त्रिक शासन प्रणाली एवं स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहेगी। ☐

– रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रामनगर, बाराबंकी (उ०प्र०)

बालवाटिका

भइया की चिट्ठी

प्यारे भइया, बहिनो,

जय श्री राम !

आप सबकी पढ़ाई ठीक से चल रही होगी, साथ ही स्वतन्त्रता दिवस की तैयारियाँ भी। आप भी उसमें अपनी सहभागिता के लिए मन बना रहे होंगे। क्या कभी आपने सोचा कि हम प्रतिवर्ष यह स्वतन्त्रता दिवस क्यों मनाते हैं ? वास्तव में हम स्वतन्त्रता दिवस नहीं मनाते, प्रत्युत प्रति वर्ष हम अपनी परतन्त्रता का स्मरण करते हैं। आज भी हम पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं हैं। तभी तो आज भी देश की स्वतन्त्रता के लिए करगिल में हमारे सैकड़ों भाई वीर गति को प्राप्त हो रहे हैं। स्मरण रखो। जब तक अपने देश की एक इंच भी भूमि दूसरों के कब्जे में है तब तक हम अपने को स्वतन्त्र कहने के अधिकारी नहीं हैं। इस तथाकथित स्वतन्त्रता दिवस पर हमारा सिर गर्व से ऊपर उठने की जगह लज्जा से नीचे झुक जाना चाहिए, क्योंकि अंग्रेजों के चले जाने के ५१ वर्षों के बाद भी और परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बन जाने के बाद भी हम अपनी पवित्र भूमि को मुक्त नहीं करा पा रहे हैं। हमारा नेतृत्व पृथ्वीराज चौहान की उदारवादी संस्कृति का शिकार हो रहा है। भाइयो, बहनो ! हम सब स्वतन्त्रता दिवस के पूर्व अपने देश के प्रधानमन्त्री व राष्ट्रपति को पत्र लिखें कि हमें भारत माँ के अमर सपूतों के रक्त की कीमत चाहिए और वह है 'अखण्ड भारत'। आओ, आज हम संकल्प लें कि जब तक भारत अखण्ड नहीं हो जाता हम चैन से नहीं बैठेंगे।

अन्त में आप सबकी ओर से करगिल के अमर बलिदानियों को विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

आपका

भइया

आत्मबली हैं हम

– महेशचन्द्र त्रिपाठी

हम धरती के पुष्प अनूठे,
अनुपम गन्ध हमारी।
भारतभूमि हमें लगती है
प्राणों से भी प्यारी।।

पंख कल्पना के पाकर हम
दूर–दूर तक उड़ते।
दृष्टि लक्ष्य पर रहती हरदम
पीछे कभी न मुड़ते।।

करते अचरज भरे काम हम,
गति सर्वत्र हमारी।
भारतभूमि हमें लगती है
प्राणों से भी प्यारी।।

हम करते अम्बुधि–अवगाहन
गिरि शिखरों पर चढ़ते।
हर बाधा, अवरोध पारकर
प्रतिपल आगे बढ़ते।।

होते चरण न शिथिल कभी,
हममें है ऊर्जा न्यारी।
भारतभूमि हमें लगती है
प्राणों से भी प्यारी।।

हम नचिकेता, काल–विजेता
युगचेता कहलाते।
जग में अपने सद्यत्नों की
कीर्त्ति–ध्वजा फहराते।।

करते व्यक्त न कभी किसी के
सम्मुख हम लाचारी।
भारतभूमि हमें लगती है
प्राणों से भी प्यारी।।

सिखलाते हैं दुनिया को हम
स्वाभिमान से जीना।
रहते सदा विनम्र, गर्व से
रहता उन्नत सीना।।

आत्मबली हैं हम,
हमसे हर महाशक्ति है हारी।
भारतभूमि हमें लगती है
प्राणों से भी प्यारी।।

– खुशवक्तराय नगर, फतेहपुर – २१२६०१ (उ०प्र०)

कथा

नकल में अकल

— कुसुमाञ्जलि शर्मा

महेश कक्षा आठ का छात्र था। वह सरकारी स्कूल में पढ़ता था। उसके सभी शिक्षक अपने–अपने विषय में मेहनत से पढ़ाते थे; किन्तु महेश का मन पढ़ने में नहीं लगता था। वह अपनी मम्मी के सामने तरह–तरह के बहाने बना कर स्कूल जाने से बच जाता था। उसकी मम्मी कहती थीं, "महेश तू रोज स्कूल जाया कर। स्कूल न जाने से तेरी पढ़ाई का नुकसान होता है।" महेश कह देता था, "मम्मी मैं कल से रोज स्कूल जाऊँगा। वैसे मैं घर पर पढ़ाई कर लेता हूँ। वह प्रायः ऐसे झूठे वायदे करके अपनी मम्मी को चुप कर देता था; परन्तु स्कूल नहीं जाता था। घर में भी वह कभी अपनी किताबें खोल कर पढ़ता नहीं था। उसे तो दिन भर बस पतंग उड़ाना अच्छा लगता था। सारा दिन वह अपने घर की छत पर पतंगें उड़ाता था। उसकी यह आदत उसकी मम्मी को पसन्द नहीं थी। किन्तु वे उसकी शिकायत पापा से नहीं करती थीं। उन्हें डर था कि शिकायत सुन कर पापा उसे मारेंगे।
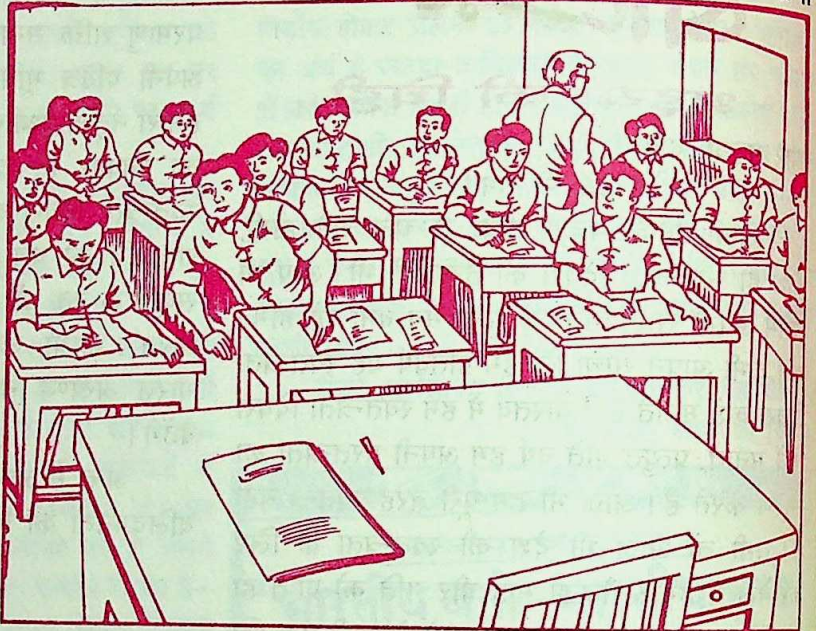
महेश ने पूरा साल खेलने और पतंगें उड़ाने में बर्बाद कर दिया। उसने छमाही परीक्षा भी पेट दर्द का बहाना करके नहीं दी। अब सालाना परीक्षा के दिन आ गये। उसे परीक्षा से डर लगने लगा। उसने अपनी किताबों को पढ़कर जरूरी प्रश्नोत्तर तैयार करने की कोशिश की किन्तु उसे न तो कोई पाठ याद हुआ न ही कोई सवाल समझ में आया। पहले वह सोचता था कि पढ़ने में क्या कठिनाई है। जब परीक्षा पास आ जायेगी मैं सब पढ़ लूँगा। नियमित रूप से पढ़ने वाले छात्रों को वह किताबी कीड़ा कहकर चिढ़ाया करता था।

परीक्षा का दिन आ गया। पहला पेपर अंग्रेजी का था। वह जाकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। उसने देखा कि उसकी पास वाली कुर्सी पर विकास बैठा है। विकास पढ़ने में होशियार लड़का था। महेश ने विकास की कुर्सी के पास अपनी कुर्सी खिसका ली। पेपर मिलते ही वह उसे पढ़ने की कोशिश करने लगा लेकिन उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। अतः वह विकास की कापी से नकल करके अपनी कापी पर लिखने लगा। उसने सोचा कि विकास की कापी से वह सब सही उतार रहा है। जितने दिन भी परीक्षाएँ चलीं, वह लगातार विकास की कुर्सी के पास बैठकर उसकी कापी से नकल करता रहा।

महेश को पक्का विश्वास था कि वह सालाना परीक्षा में पास हो जायेगा। उसकी मम्मी ने पूछा "महेश तुम्हारी परीक्षा कैसी रही ? तुम्हारे परचे खराब तो नहीं हुए ?" उसने चहक कर कहा, "मेरे सब परचे

इसके हित जीना मरना है लेकर जन्म हजार

– राम कुमार गुप्त

भारत नहीं भूमि का टुकड़ा, राष्ट्र पुरुष साकार।
अभिनन्दन, वन्दन है कवि का, नमन इसे शत बार।।

शुभ्र हिमालय मस्तक जिसकी चोटी गौरीशंकर।
है किरीट कश्मीर स्वर्ग सा गौरवशाली सुन्दर।।
बंगभूमि पंजाब पुष्ट कंधों में शक्ति अपार।।
नमन है इसको शत-शत बार।।

कटि विन्ध्याचल और नर्मदा है किंकिणि का कलरव।
पूर्व और पश्चिमी घाट दो जंघाओं के वैभव।।
है कन्याकुमारि पग जिसके सागर रहा पखार।।
नमन है इसको शत-शत बार।।

पावस के सुरमई मेघ हैं इसके कुन्तल कारे।
चन्दा, सूरज दिव्य आरती जिसकी नित्य उतारे।।
तर्पण और समर्पण के संकल्पों का विस्तार।।
नमन है इसको शत-शत बार।।

दिव्य देश भारत का कंकड़-कंकड़ भी है शंकर।
बिन्दु-बिन्दु गंगाजल इसका धन्य हुए हैं पीकर।।
इसके हित जीना, मरना है लेकर जन्म हजार।।
नमन है इसको शत-शत बार।।

– निकट मंगला देवी मन्दिर, गोला गोकर्णनाथ, जनपद– खीरी (उ०प्र०)

अच्छे हुए हैं। तुम देखना मम्मी मैं बहुत अच्छे नम्बरों से इस बार पास होऊँगा।"

परीक्षा समाप्त होने के पन्द्रह दिनों बाद परीक्षा–फल निकलने का दिन आ गया। महेश घर से प्रसन्न मन स्कूल पहुँचा। स्कूल में वह सब बच्चों से बढ़–चढ़ कर बातें करता रहा। अन्त में घंटी बजी और सब बच्चे अपनी–अपनी कक्षाओं में परीक्षा फल लेने के लिए दौड़ गये। महेश भी अपनी कक्षा में पहुँचा। वह अति उत्साह तथा विश्वास के कारण अपनी कक्षा में सबसे आगे वाली कुर्सी पर बैठ गया। उसके कक्षाध्यापक कक्षा में आये और बच्चों के नाम पुकार कर उन्हें परीक्षा फल का कार्ड देने लगे। महेश आत्म–विश्वास से भरपूर तना हुआ बैठा था। वह अपना नाम पुकारे जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। कक्षाध्यापक ने महेश का नाम पुकारा। वह जल्दी से उठ कर उनके पास पहुँचा। उन्होंने उसे कार्ड देते हुए कहा, "महेश तुम बुरी तरह से फेल हो। क्या करते रहे साल भर ?"

महेश का आत्म–विश्वास तथा उत्साह समाप्त हो गया। उसने सिर झुका कर अपना कार्ड लिया और चुपचाप आकर कुर्सी पर बैठ गया। तभी विकास का नाम कक्षाध्यापक ने पुकारा और कहा, "बच्चों! विकास कक्षा में प्रथम आया है, सब जोर से ताली बजाओ।" सब बच्चों ने जोर से ताली बजाई, महेश ने भी बजाई। लेकिन वह हैरान था कि विकास प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ है– जबकि उसी की नकल करके वह स्वयं फेल हो गया है।

सब लड़के कक्षा से बाहर निकले। महेश निराश भाव से कक्षा में कार्ड थामे खड़ा रहा। विकास ने उसे इस प्रकार खड़ा देखकर कहा, "महेश तुमने सभी विषयों में मेरी कापी से नकल की थी। नकल करते समय तुम भूल गये कि नकल में अकल की जरूरत होती है। अकल तो पढ़ने से आती है।" महेश पल भर में सब बात समझ गया। उसने कार्ड अपनी जेब में डाला और विकास के पीछे–पीछे कक्षा से बाहर आ गया। □

– प्राचार्य, राजकीय बालिका विद्यालय, ८६ विजयनगर, उरई – २८५००१
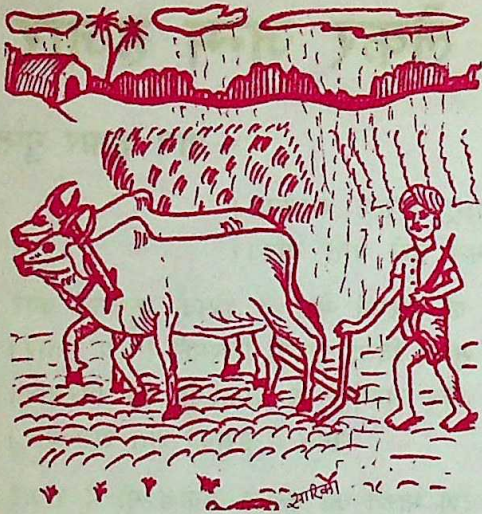
ओ सावन के मेघा...

– सुमन श्रीवास्तव

ओ सावन के मेघा! कुछ ऐसा रस बरसाओ।
देश की धरती रहे न प्यासी, तन–मन सरसाओ।।

डगर–डगर जलधार बहा दो
हल किसान के हाथ थमा दो
नदी, तलैयाँ, पोखर, तालें सब को भर आओ।
देश की धरती रहे न प्यासी, तन–मन सरसाओ।।

धरती पहने हरी चुनरिया
देख–देख मन लहे लहरिया
हरे–भरे हों खेत हमारे हरियाली लाओ।
देश की धरती रहे न प्यासी, तन–मन सरसाओ।।

अन्न भरा हो देश हमारा
मन में राष्ट्रभक्ति की धारा
जग सारा सुखमय हो जाए खुशहाली लांओ।
देश की धरती रहे न प्यासी, तन–मन सरसाओ।।

ओ सावन के मेघा! कुछ ऐसा रस बरसाओ।
देश की धरती रहे न प्यासी, तन–मन सरसाओ।।

– अवस्थी भवन, (बोड़ेराम हलवाई के पीछे)
कटरा (बाँदा) जनपद–बाँदा– २१०००१ (उ०प्र०)

मैं बादल हूँ

– महेश शुक्ल

मैं बादल हूँ! नील गगन का
तुमसे बातें करने आया।
गरज–गरज कर आसमान में
मैं भी धूम मचाया करता।
सूरज के संग आँख–मिचौली
धूप–छाँव भी लाया करता।
रिमझिम पड़ती हुई फुहारों
में भी लगता धुआँ सरीखा।
ताल–तलैया, नदियाँ–नाले
सबको ही खुश होते देखा।
मैं बादल हूँ! मस्त पवन का
साथ तुम्हारे रहने आया।

जीव जन्तु, पशु–पक्षी देखो!
बड़ी आस से मुझे निहारें।
पेंग फुहारों के संग ले लो
नौनिहाल भारत के प्यारे।
मेरी एक बूँद पाने को–
चातक राह देखता रहता।
मेरे स्वर को सुनकर वन में
देखो! मोर नाचने लगता।
मैं बादल हूँ! रंग–बिरंगा
इन्द्रधनुष सा छाने आया।

तुम मेरी बाहों में आओ
मैं तुमको बाहों में ले लूँ।
आओ मिलकर मुझसे खेलो
मैं भी जी भर तुमसे खेलूँ।
अपना सुख मिलकर के बाँटो
और कलुषता मन की धोना।
मेरे जैसी शीतलता तुम–
जीवन के हर पथ को देना।
मैं बादल हूँ! खुले चमन का
प्यास धरा की हरने आया।

सनातन धर्म, सरस्वती शिशु मन्दिर,
लखीमपुर–खीरी–२६२७०३

कथा

देश के लिए

– अभिषेक गौरव

रमेश ने इसी वर्ष बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण की थी। अब वह किसी प्रतियोगिता के द्वारा अपनी सफलता की नींव रखना चाहता था। इस कारण वह विभिन्न प्रतियोगिताओं में जाने के लिए दुकानों पर नौकरी सम्बन्धी प्रवेश पत्रों को देखता था। कभी तकनीकी, तो कभी रक्षा से जुड़ी हुई नौकरी को। इस तरह वह ऊहापोह की स्थिति में था। उसे उचित मार्गदर्शन देनेवाला कोई नहीं था। उसके पिता शहर से बाहर नौकरी करते थे। माँ भी सुबह को निकलती, तो शाम होने पर ही घर आती, जिससे वह थकी–सी रहती थी। रमेश भी इन छुट्टियों को सार्थक बनाने का प्रयास कर रहा था, लेकिन उचित प्रेरणा–स्रोत न पाकर वह बेहाल–सा खाली टहलता रहता था। प्रतियोगिता के क्षेत्र में कैसे निकले, यह प्रश्न उसके मन में मंथन करता रहता था। उसे अपने जीवन में कुछ कर दिखाना था।

एक दिन रमेश बाजार में आये नये फार्मों को देखकर सोच–विचार कर रहा था कि पीछे से एक हाथ रमेश के कंधे पर पड़ा। उसने पलट कर देखा, तो उसका मित्र वैभव खड़ा था। देखने में अच्छी मुखाकृति, स्वस्थ शरीर, कपड़े पहनने का सही ढंग यह सब देखकर रमेश ने कहा, "मित्र! तुम कब आये? तुम्हें तो कुछ अरसे बाद देख रहा हूँ और तुम्हारी ट्रेनिंग का क्या हुआ, क्या घबराकर छोड़ दी या अपना इस्तीफा देकर चले आये?"

यह सुनकर वैभव ने कहा, "न तो मैं घबराकर आया हूँ और न ही इस्तीफा देकर, बल्कि छुट्टी लेकर आया हूँ। रमेश ने कहा, "तुम बहुत ही भाग्यशाली हो, जो तुम्हें यह नौकरी मिली है। कुछ साल बाद तो तुम एक अच्छे सैनिक बन जाओगे।" रमेश वैभव से बात करते हुए बड़ा ही गर्व महसूस कर रहा था; क्योंकि उसके साथ एक सैनिक चल रहा था। उसने वैभव से कहा, "मित्र! आजकल मैं ऊहापोह की स्थिति में हूँ। मैं किसी प्रतियोगिता के द्वारा निकलना चाहता हूँ, लेकिन किस क्षेत्र में जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है, तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ?"

रमेश की बात सुनकर तो वैभव बोला, "मैं यही कहूँगा कि तुम भी मेरे पीछे चले आओ।" रमेश ने कहा, "क्या मतलब? मैं कुछ समझा नहीं।" वैभव ने कहा, "तुम भी मेरी तरह राष्ट्रीय रक्षा अकादमी का फार्म क्यों नहीं भर देते? अच्छे खासे हो, उसके मापदण्डों पर तुम खरे उतरोगे, तुम्हारा तो चयन एक बार में ही हो जायेगा। इसमें अच्छा जीवन है अच्छे वेतनमान के साथ–साथ सम्मान है जो आजकल बहुत कम नौकरियों में मिलता है। इसमें तुम्हें जो सम्मान, इज्जत मिलेगी वह और किसी क्षेत्र में नहीं मिलेगी। आम आदमी में अपने को क्यों मिलाना चाहते हो? भीड़ से अलग हटकर चलोगे, तो सैकड़ों निगाहें तुमको बड़ी उत्सुकता से देखेंगी। इसके साथ–साथ तुम्हें कई सुविधाएँ मिलेंगी, जो और किसी क्षेत्र में बड़ी कठिनाई से मिलती हैं। इसमें सबसे अच्छी जो बात है, वह है एक शहीद होना। आदमी तो

प्यारा भारत देश महान्

— डॉ० रामप्रसाद मिश्र

जिस पर नाम महासागर का,
जिसने नाम रखा हिमधर का;
हिंद–महासागर का गौरव,
उच्च हिमालय – मान।
प्यारा भारत देश महान्।।

गंगा, यमुना, सिन्धु, नर्मदा,
कावेरी का अमृत सर्वदा;
तृप्त और शीतल करता है,
शत–शत नद कल–गान।
प्यारा भारत देश महान्।।

छह ऋतुएँ बस यहीं सरसतीं,
सारे रँग औं राग बरसतीं;
हैं सारे जलवायु यहाँ पर,
अतुलित प्रकृति–वितान।
प्यारा भारत देश महान्।।

पहला गान वेद का गाया,
उपनिषदों से अद्वय पाया;
हुआ पुराणों में नर ईश्वर,
आशा – अमृत – पान।
प्यारा भारत देश महान्।।

राम–कृष्ण की पौरुष–गाथा,
उन्नत करती इसका माथा;
क्षमा, दया, करुणा से धोते,
गौतम इसके प्राण।
प्यारा भारत देश महान्।।
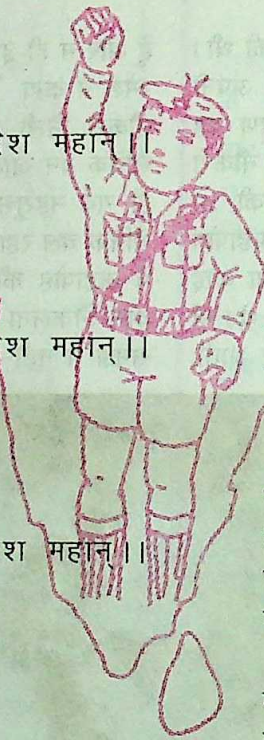
शून्य, दशमलव, अंकगणित से,
आध्यात्मिक संगीत क्वणित से;
विकसित औं आनन्दित करते,
हैं विज्ञान, सुगान।
प्यारा भारत देश महान्।।

वाल्मीकि औं वेदव्यास की,
मधुर–मधुर कवि कालिदास की,
तुलसी, सूर और मीरा की,
गूँज रही रस–तान।
प्यारा भारत देश महान्।।

साइबेरिया से खग आते,
ईरानी बुलबुल आ गाते;
सबकी शरणस्थली यहीं पर,
सबको ही अनुदान।
प्यारा भारत देश महान्।।

वज्र कठोर, पुष्प–कोमल है,
बलिदानों का चिर–संबल है;
कठिन यात्री सफल रहा है–
अमर शान्ति–आह्वान।
प्यारा भारत देश महान्।।

पो० बा० नं० ६११७, दिल्ली– ११००६१

रोज मरते हैं लेकिन सैनिक एक बार ही शहीद होता है। वह मरता नहीं है, वह वीरगति को प्राप्त होता है। तुम्हें देश के लिए कुछ कर दिखाने का मौका मिलेगा। मैं तो कहता हूँ कि देश सेवा से बढ़कर और कोई सेवा ही नहीं है। देश की रक्षा हमारे ही हाथों में है। मैंने तुम्हें समझा दिया है, अब आगे तुम्हारी इच्छा; जो चाहो फैसला करो। तुम इसके लिए स्वतन्त्र हो।" रमेश कुछ दूर तक चुपचाप वैभव के साथ चलता रहा। अचानक वैभव के कंधे पर हाथ रखकर बोला– 'मित्र! मैं भी तुम्हारी तरह एक सैनिक बनूँगा। तुम मुझे इसके बारे में प्रवेश सम्बन्धी समस्त जानकारियाँ दो, क्या इसका फार्म यहाँ मिलेगा।'

हाँ, क्यों नहीं। मैं लाकर दूँगा तुम्हें।

अगले दिन वैभव ने रमेश से फार्म भरवाकर सम्बन्धित विभाग को भिजवा दिया। कुछ दिनों के बाद राष्ट्रीय रक्षा अकादमी से रमेश के लिए बुलावा पत्र आया। यह देखकर रमेश और उसकी माँ बहुत प्रसन्न हुए। रमेश साक्षात्कार में सफल हो गया और उसका चयन वायुसेना में कर लिया गया। जब एक दिन रमेश नियमित अभ्यास के लिए जा रहा था, तभी उसकी दृष्टि वैभव पर गई, तो वह दौड़ कर उसके पास गया और उसके गले लिपट गया और बोला, 'मित्र! तुमने तो मेरी जीवन–काया ही पलट दी। यह सब तुम्हारे कारण सम्भव हो सका है। अब मेरे जीवन का प्रतिक्षण देश के लिए...।' तभी सीटी बजी और दोनों अलग–अलग दिशा में नियमित अभ्यास के लिए चल पड़े।

– २६४/३, दसवाँ मार्ग, सोहनलाल स्कूल के सामने, राजेन्द्र नगर, लखनऊ।

मालवा की लोककथा

वे मात खा गये

— डॉ० हिम्मत सिंह गुगालिया

एक समय राजा भोज एवं पण्डित माघ शाम को भ्रमण करने हेतु निकले। लौटते समय वे रास्ते से भटक गये। आस–पास कोई इंसान नहीं था, जिससे वे पूछताछ करते।

पण्डित माघ ने राजा से निवेदन किया कि निकट में खेत की रखवाली करने वाली एक बुढ़िया रहती है, उससे पूछ कर देखते हैं।

राजा एवं पण्डित खेतों के रास्ते से उस बुढ़िया की कुटिया पर पहुँचे। राजा ने बुढ़िया को "राम–राम" कहा। बुढ़िया ने भी "राम–राम", कहा।

राजा ने बुढ़िया से पूछा– "माई! यह सामने जो रास्ता है, वह कहाँ जाता है?"

बुढ़िया ने हँसते हुए कहा– "यह रास्ता तो कहीं नहीं जायेगा, यहीं रहेगा। इसके ऊपर चलनेवाले ही कहीं जायेंगे।"

तब पण्डित माघ ने कहा– "माँ! हम भी तो राही हैं।"

बुढ़िया ने कहा– "राही तो केवल दो ही हैं, एक सूरज और दूसरा चन्द्रमा। तुम इनमें से कौन हो?"

राजा ने उत्तर में कहा– "माई! हम तो मेहमान हैं।"

बुढ़िया ने तपाक से उत्तर दिया– "मेहमान तो दुनिया में दो ही होते हैं, एक धन एवं दूसरा जवानी। तुम इनमें से कौन से मेहमान हो?"

इस पर राजा भोज ने कहा– "माई! हम तो राजा हैं।"

बुढ़िया ने कहा– "राजा तो मात्र इन्द्र और यमराज होते हैं। तुम इन दोनों में से कोई हो क्या?"

"माई! हम महाबली हैं," राजा ने कहा।

"महाबली इस दुनिया में दो हैं एक पृथ्वी और दूसरी औरत; तुम इनमें से कौन हो भाई?" बुढ़िया ने पूछा।

"माई! हम तो गरीब हैं?" माघ ने कहा।

दुनिया में दो ही गरीब होते हैं, एक तो बकरा और दूसरी लड़की, तुम कौन हो? बुढ़िया ने कहा।

इस पर उन्होंने कहा– "माँ! हम तो हारे हुए हैं।"

बुढ़िया ने तुरन्त उत्तर दिया– "हारे हुए तो दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो कर्जा लेने वाला और दूसरा लड़की का बाप। तुम इनमें से कौन हो?"

राजा भोज एवं पण्डित माघ उस ग्रामीण बुढ़िया के उत्तरों को सुन खिसिया कर चुप हो गये। थोड़ी देर बाद राजा भोज ने उस बुढ़िया को कहा– "माई! हम तो कुछ भी नहीं जानते हैं। जानकार तो एकमात्र तू ही है।"

इस पर बुढ़िया ने उनको कहा– "तुम तो राजा भोज हो और वह है पण्डित माघ। सीधे चले जाओ, तुम उज्जैन पहुँच जाओगे।"

इस प्रकार राजा भोज और पण्डित माघ उस ग्रामीण, अपढ़ बुढ़िया से मात खा गये। □

— ५७८, स्नेह नगर, इन्दौर

कश्मीर हमारा है

— रामवचन सिंह 'आनन्द'

छोड़ अड़ंगा, अरे पड़ोसी!
यह कश्मीर हमारा है!!
रोज–रोज खुलकर चीखा
क्या कुछ कहा नहीं तीखा
साल हजारों तक लड़ने का
प्रणकर, तूने क्या सीखा?
झूठ–फरेब–कपट का ही तो,
लेता रहा सहारा है!
सुन, कश्मीर हमारा है!!

अब बन बैठा घुसपैठी
करता है बातें ऐंठी
बार–बार हारा हमसे
अब कर ले उट्ठा–बैठी!
तेरे दावों को जग ने
कब का साफ नकारा है!
सुन, कश्मीर हमारा है!!
जिसे दोस्त को दे आया
जिसे दबा कर इठलाया

लौटा सारे क्षेत्र हमें,
वे भारत की हैं काया!
अणु–अस्त्रों को दिखा नहीं,
देश न यह बेचारा है!
सुन, कश्मीर हमारा है!!

☆

— थाना रोड, चक्रधरपुर– ८३५१०२ (बिहार)

देववाणी शिक्षण (२/२)

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमः किल।।

(मृच्छकटिक नाटक १०/२७)

पदानि– न। भीतः। मरणात्। अस्मि। केवलं। दूषितं। यशः। विशुद्धस्य। हि। मे। मृत्युः। पुत्र+जन्म+समः। किल।।

अन्वय :– (अहं) मरणात् भीतः न अस्मि। केवलं यशः दूषितं। हि विशुद्धस्य मे मृत्युः पुत्रजन्मसमः किल।।

अर्थ– (मैं) मृत्यु से नहीं डरता हूँ, केवल यश कलंकित होने से डरता हूँ। क्योंकि विशुद्ध मृत्यु मुझे पुत्र जन्म के समान है।

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।

(मनुस्मृति ८/३३५)

पदानि– पिता। आचार्यः। सुहृत्। माता। भार्या। पुत्रः। पुरोहितः। न। अ+दण्ड्यः। नाम। राज्ञः। अस्ति। यः। स्व+धर्मे। न। तिष्ठति।।

अन्वय :– पिता, आचार्यः, सुहृत्, माता, भार्या, पुत्रः, पुरोहितः। यः स्वधर्मे न तिष्ठति, सः राज्ञः अदण्ड्यः नाम न अस्ति।।

अर्थ– पिता, गुरु, मित्र, आचार्य, सुहृत्, माता, भार्या, पुत्र, पुरोहित (इनमें से कोई भी) जो स्वधर्म का पालन नहीं करते, ये राजा से अदण्डनीय नहीं हैं। (अर्थात् अधर्माचरण करनेवालों को राजा अवश्य दण्ड दे।)

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।।

(मनुस्मृति २/१५६)

पदानि– न। तेन। वृद्धः। भवति। येन अस्य। पलितं। शिरः। यः। वै। युवा। अपि। अधीयानः। तं। देवाः। स्थविरं। विदुः।।

अन्वय :– येन अस्य पलितं शिरः, तेन वृद्धः न भवति। यः वै युवा अपि अधीयानः, तं देवाः स्थविरं विदुः।।

अर्थ– जिसका शिर (बाल) श्वेत हो गया है उसको वृद्ध नहीं कहते, जो युवा होने पर भी अध्ययनशील (बुद्धिमान) है उसे देव वृद्ध कहते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

(भगवद्गीता १६/२१)

पदानि– वि+विधं। नरकस्य। इदं। द्वारं। नाशनं। आत्मनः। कामः। क्रोधः। तथा। लोभः। तस्मात्। एतत्। त्रयं। त्यजेत्।।

अन्वयः :– आत्मनः नाशनं नरकस्य इदं त्रिविधं द्वारं। कामः, क्रोधः तथा लोभः। तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत्।।

अर्थ– स्वयं को नाश करनेवाले नरक के ये तीन द्वार हैं। इसलिए इन तीन (काम, क्रोध, लोभ) को त्याग देना चाहिए।

पाठक इन श्लोकों को बारबार पढ़ें और हो सके तो कण्ठस्थ कर लें। अब निम्नलिखित वाक्य पढ़िये–

संस्कृत–वाक्यानि

कः तत्र इदानीं गच्छति? स मनुष्यः इदानीं किं पठति? यदा स अन्नं खादति तदा त्वं किं करोषि? यथा बालकः धावति तथा त्वं अपि धावसि किम्? कदा त्वं अद्य मम गृहं आगमिष्यसि? तत्र एव त्वं गच्छ यत्र सः पुरुषः अस्ति। तस्य कूपस्य एव जलं तत्र आनय। यदा त्वं गच्छसि तदा सः आगच्छति। सः सुवर्णस्य आभूषणं शोभनं एव करोति। तव पात्रं अत्र आनय। कुत्र अस्ति तस्य पात्रम्। कः तत्र अस्ति यः एवं करोति। हे पुरुष! त्वं किं इदानीं करोषि? स इदानीं जलं पिबति? यदि त्वं अन्नं न खादसि तर्हि दुग्धं पिब। न युक्तं इदानीं दुग्धं पातुं, केवलं उष्णं जलं एव पिबामि। □
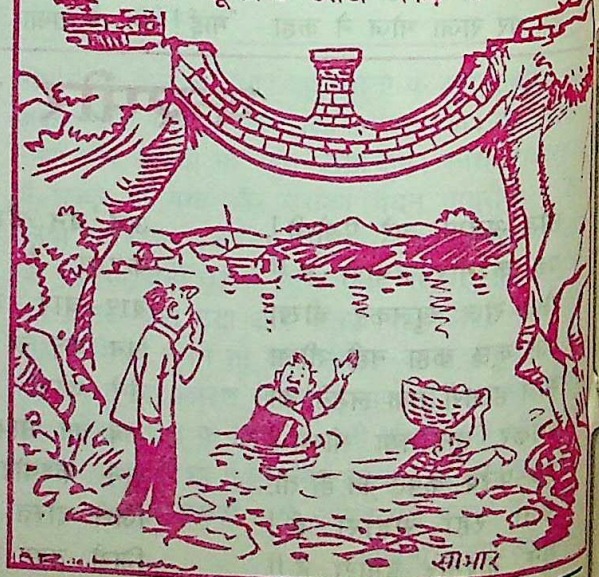
भारतीय लोकतन्त्र में सत्य और न्याय का उपहास है धर्मनिरपेक्षता

- आनन्द शंकर पण्ड्या

आज हिन्दुस्तान में अपना राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जनता को नकली विकृत सेक्युलरिज्म (धर्मनिरपेक्षता) के नाम पर झूठे प्रचार द्वारा धोखा दिया जा रहा है। इसका अर्थ ही उलट दिया गया है। इससे यहाँ ऐसी विचित्र बातें हो रही हैं, जैसी दुनिया में कहीं नहीं होतीं। इनके द्वारा ८० करोड़ हिन्दुओं पर ५० वर्ष से घोर अन्याय व उनका अपमान हो रहा है।

जैसे यदि कोई हिन्दू कहता है कि देश की अखण्डता व आजादी को खतरा है, तो उसे झूठे भय का वातावरण फैलाने वाला कहा जाता है, यदि कोई आतंकवाद को कड़ाई से दबाने का सुझाव देता है, तो उसे नाजी और तानाशाह कहा जाता है, यदि कोई भारत को अपनी पुण्यभूमि कहता है, हिन्दू समाज के जीवन, धर्म, धन और चरित्र की रक्षा, स्वदेश, स्वधर्म, स्वराज्य, भारतीयता व आध्यात्मिकता की बात करता है, तो विकृत सेक्युलरवादी नेता तथा उनके बिकाऊ समाचारपत्र उसे सम्प्रदायवादी कहते हैं। अपना वोट बैंक बनाने के लिए कांग्रेस जैसी सेक्युलर कहलानेवाली पार्टियों ने कश्मीर के हजरतबल चरारेशरीफ में आतंकवादियों को बिरियानी खिलाकर छोड़ दिया इससे उनकी हिम्मत खूब बढ़ गई और वे देश में भयंकर बम-विस्फोट की योजनाएँ बना रहे हैं। पर इन देश विरोधी कार्यों की कोई समाचार पत्र निंदा नहीं करता।

ये इसी ब्रांड के सेक्युलर दल हैं, जो मुसलमानों की आबादी बढ़ाने के लिए उत्साहित करते हैं; बांग्लादेश के डेढ़ करोड़ मुस्लिम घुसपैठियों को भारत में नागरिकता प्रदान करवाते हैं। मुसलमान तभी आगे बढ़ सकते हैं, जब वे हिन्दुओं से मिलकर व्यापार और नौकरी करें; पर नकली सेक्युलर नेता अपनी गद्दी बनाये रखने के लिए हिन्दू, मुसलमानों में घृणा फैलाकर उन्हें आपस में लड़ाते रहते हैं। कुछ राष्ट्रवादी मुसलमान हिन्दुओं को रामजन्मभूमि वापस देकर हजारों वर्ष का आपसी मनमुटाव दूर करके मुस्लिम समाज को राष्ट्रधारा से जोड़ना चाहते हैं; पर सेक्युलरवादी नेता यह होने नहीं देना चाहते।

ये नेता व बुद्धिजीवी मुस्लिम महिलाओं पर होने वाले अन्याय और अत्याचार को स्थिर रखना चाहते हैं इसलिए शाहबानो केस पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरोध में चिल्लाये। ११ वर्ष की अमीना की ६० वर्ष के बुड्ढे अरब से शादी हुई, फिर भी सेक्युलरवादी नेता तथा शहाबुद्दीन, दिलीप कुमार व शबाना आजमी चुप रहे।

सेक्युलर कहलाने वाले ये वे ही लोग हैं, जो भारत माता को गालियाँ देकर उसका अपमान करते हैं; पर गणतन्त्र दिवस पर काला झंडा दिखाये जाने तथा राष्ट्रीय झंडा जलाये जाने पर (हुबली) चुप रहते हैं। वे वन्देमातरम् का विरोध करते हैं; पर दंगा करनेवालों की पीठ ठोंकते हैं और कट्टरवादियों का गलत तुष्टीकरण करके उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। इससे ५० वर्ष में देश में २५०० दंगे हुए।

आज असत्य का प्रचार करना, देशविरोधी ताकतों व भ्रष्ट नेताओं को मदद देना व देश की आबादी के ८४ प्रतिशत व विश्व की आबादी के १४ प्रतिशत हिन्दुओं को

> **हिन्दुओं के ३००० मंदिर मुसलमानों के कब्जे में है उनके बदले वे हिन्दुओं को १ रामजन्मभूमि भी नहीं देना चाहते। केवल इसीलिए कि हिन्दू इसे परम पवित्र मानते हैं। अयोध्या में अहिंसक रामभक्तों को गोली से भून दिया गया तथा पाकिस्तान, बंगलादेश व कश्मीर के शान्तिप्रिय लाखों हिन्दुओं पर आतंकवादियों द्वारा भयंकर अत्याचार किया गया पर उसके विरोध में कोई नहीं बोला मात्र इसीलिए कि ये सब हिन्दू थे। गोहत्या से देश का आर्थिक विनाश हो रहा है। पर उसे नहीं रोका जाता क्योंकि हिन्दू गाय को माता मानते हैं, देशभक्ति और बुद्धि बढ़ाने वाली वंदेमातरम् और सरस्वती वन्दना नहीं कही जा सकती तथा स्कूलों में यद्यपि कुरान और बाइबिल पढ़ाई जा सकती है पर नैतिकता तथा विश्व शान्ति का उपदेश देने वाली गीता और रामायण नहीं पढ़ायी जा सकती क्योंकि वे हिन्दुओं के ग्रंथ हैं।**

हानि पहुँचाना और उन्हें सताना ही सेक्युलरिज्म माना जा रहा है। अपने नेताओं से ८० करोड़ हिन्दुओं को ऐसे विश्वासघात की उम्मीद नहीं थी।

हिन्दुओं के ३००० मंदिर मुसलमानों के कब्जे में हैं उनके बदले वे हिन्दुओं को १ रामजन्मभूमि भी नहीं देना चाहते, केवल इसीलिए कि हिन्दू इसे परम पवित्र मानते हैं। अयोध्या में अहिंसक रामभक्तों को गोली से भून दिया गया तथा पाकिस्तान, बांग्लादेश व कश्मीर के शान्तिप्रिय लाखों हिन्दुओं पर आतंकवादियों द्वारा भयंकर अत्याचार किया गया; पर उसके विरोध में कोई नहीं बोला मात्र इसीलिए कि ये सब हिन्दू थे। गोहत्या से देश का आर्थिक विनाश हो रहा है, पर उसे नहीं रोका जाता; क्योंकि हिन्दू गाय को माता मानते हैं, देशभक्ति और बुद्धि बढ़ाने वाली वंदेमातरम् और सरस्वती वन्दना नहीं कही जा सकती तथा स्कूलों में यद्यपि कुरान और बाइबिल पढ़ाई जा सकती है; पर नैतिकता तथा विश्व शान्ति का उपदेश देने वाली गीता और रामायण नहीं पढ़ायी जा सकती; क्योंकि वे हिन्दुओं के ग्रंथ हैं।

हिन्दू धर्म व हिन्दू देवताओं का मीडिया द्वारा अपमान करना सेक्युलर तथा सर्वश्रेष्ठ भगवान् राम के गुणगान साम्प्रदायिक माना जाता है, केवल इसलिए कि ये हिन्दुओं के देवता है। डांग में धर्मपरिवर्त्तन द्वारा ५०० ईसाइयों से ४० हजार ईसाई बनाने का कार्य भी सेक्युलर माना जाता है; क्योंकि जिनका धर्मपरिवर्तन किया गया, वे हिन्दू थे।

दुनिया की सभी जातियाँ अपनी संस्कृति व धर्म पर गर्व करती हैं; क्योंकि इससे उनमें नैतिकता व एकता बनी रहती है। पर कोई हिन्दू यदि अपने महापुरुषों अपने धर्म तथा अपनी महान् संस्कृति पर गर्व करता है, तो उस पर विपदा आ जाती है। इससे हिन्दुओं का ५० वर्ष में इतना नैतिक पतन हुआ, जितना पराधीनता के ५०० वर्षों में भी नहीं हुआ था।

ये सेक्युलरवादी नेता अहिंसक गरीब हिन्दुओं की विशेष मदद करना साम्प्रदायिक और उन्हें घृणा करना सेक्युलर मानते हैं; क्योंकि वे हिन्दू है। इससे हिन्दुओं की गरीबी दूर नहीं हो पाती। इन नेताओं ने बँटवारे के समय १६ प्रतिशत मुसलमानों को ३१ प्रतिशत जमीन पाकिस्तान बनाने को दे दी और ५५ प्रतिशत मुसलमानों को ६६ प्रतिशत जमीन बांग्लादेश बनाने को दे दी। इससे भारत गरीब हो गया।

हिन्दुओं की अतिसहनशीलता के कारण सारी दुनिया यह मानती है कि वे अन्याय सहन करने को ही पैदा हुए हैं। इससे उन पर अधिकाधिक अन्याय हो रहे हैं। हिन्दुओं के प्रति सब लोग दुहरा मापदंड रखते हैं। जैसे सेक्युलर कहलाने वाले इंग्लैंड में पार्लमेंट का सत्र शुरू होने के पहले सब सदस्य गिरजाघर में जाकर ईश्वर से देश की सुरक्षा और सुख–समृद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। ईसाई धर्म की रक्षा करना इंग्लैंड के सम्राट् का कर्तव्य माना जाता है। अन्य सेक्युलर युरोपियन देशों तथा अमेरिका में भी ईसाई धर्म को राज्य धर्म मानकर उसकी रक्षा हेतु उसे धन की सहायता राज्य द्वारा की जाती है, ताकि समाज में नैतिकता बनी रहे। पर अभागे हिन्दू समाज का कोई राज्य धर्म नहीं है, जिससे वे नैतिकता व सच्चरित्रता की शिक्षा ले सकें। यह उनके मानवाधिकारों का हनन है।

हिन्दुओं की अतिसहनशीलता के कारण सारी दुनिया यह मानती है कि वे अन्याय सहन करने को ही पैदा हुए हैं। इससे उन पर अधिकाधिक अन्याय हो रहे हैं। हिन्दुओं के प्रति सब लोग दुहरा मापदंड रखते हैं। जैसे सेक्युलर कहलाने वाले इंग्लैंड में पार्लमेंट का सत्र शुरू होने के पहले सब सदस्य गिरजाघर में जाकर ईश्वर से देश की सुरक्षा और सुख–समृद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। ईसाई धर्म की रक्षा करना इंग्लैंड के सम्राट् का कर्तव्य माना जाता है। अन्य सेक्युलर युरोपियन देशों तथा अमेरिका में भी ईसाई धर्म को राज्य धर्म मानकर उसकी रक्षा हेतु उसे धन की सहायता राज्य द्वारा की जाती है, ताकि समाज में नैतिकता बनी रहे। पर अभागे हिन्दू समाज का कोई राज्य धर्म नहीं है, जिससे वे नैतिकता व सच्चरित्रता की शिक्षा ले सकें। यह उनके मानवाधिकारों का हनन है।

मिशनरियों ने नागालैंड, मिजोरम व मेघालय के ६० प्रतिशत लोगों को ईसाई बना लिया है और उन्हें भारत से युद्ध करने के लिए विदेशी शस्त्र दिये जा रहे हैं। धर्म–परिवर्त्तन के बाद मिशनरियों द्वारा सारे देश में भारत विरोधी विद्रोह फैलाया जाता है। अतः नागालैण्ड के लोग भारत से अलग होने की माँग कर रहे हैं। इस षड्यन्त्र के पीछे विश्व की बड़ी–बड़ी ताकतें हैं, जो भारत के टुकड़े कर देना चाहती हैं; पर कोई सेक्युलरवादी उन मिशनरियों के विरुद्ध नहीं बोलता। क्या धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ है

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

अलगाववाद के बढ़ते चरण से धूमिल होती राष्ट्रीयता

– निरंजन वर्मा

इस समय भारत में अलगाववाद की प्रवृत्ति बहुतायत से पनप रही है। राजनीतिज्ञों के अनुसार इस प्रवृत्ति के मूल कारण आठ हैं–

(१) कम्युनिस्टों और सेकुलरवादियों का भ्रमपूर्ण प्रचार (२) मजहबी या धार्मिक विश्वासों का अति सृजन (३) अलगाववाद की मूल प्रवृत्ति (४) समान नागरिक संहिता की कमी (५) बाहरी देशों से प्रोत्साहन (६) राष्ट्रीयता का अभाव (७) अल्पसंख्यकों में जनसंख्या की अभिवृद्धि (८) हिन्दुओं में इस समस्या से जूझने की नैतिक शक्ति का अभाव। इन कारणों पर क्रमबद्ध विचार किया जाना सर्वथा उचित होगा। कुछ विद्वानों की राय में जिहाद द्वारा मजहब विस्तार की आकांक्षा भी एक अन्य कारण है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बहुत पहले से ही इस अलगाववादी प्रक्रिया का जन्म हो चुका था; परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में इस समस्या का प्रसार बहुत तेजी से बढ़ गया। यह चर्चा चल पड़ी थी कि स्वाधीनता के बाद इस देश में बहुसंख्यक हिन्दुओं का राज स्थापित हो जायेगा और इस दशा में मुस्लिमों को उनके आश्रित रहने पर बाध्य किया जायेगा।

कम्युनिस्ट और उनके अलम–बरदार, जनवादी, प्रगतिशीलवादी, एवं जनवादी मोर्चों (जो किसी प्रकार से शासकीय अनुबन्धों से जुड़े रहने के कारण खुलेआम मैदान में नहीं आना चाहता था) ने इस मिथ्या प्रचार को खूब हवा दी। उन्होंने प्रचार किया कि स्वतन्त्र भारत में मुस्लिम समुदाय को भय और कुशंकाओं से ग्रस्त होकर अपना जीवन बिताना पड़ेगा। साहित्यकारों का एक वामपक्षी दल भी इस कुप्रचार में भागीदार बन गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व वर्षों में जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने सन् १९४० में लाहौर अधिवेशन में इस समस्या को बहुत अधिक स्पष्ट कर दिया तथा मुसलमानों के लिए अलग होमलैंड के रूप में पाकिस्तान की माँग कर डाली। इस समस्या का निराकरण करने के लिए कांग्रेस ने गान्धी जी के नेतृत्व में भरसक प्रयत्न किया। सन् १९४४ में तो यह प्रयत्न लगातार १८ दिनों तक चलता रहा। इस समस्या पर इन दोनों में खुलकर विचार–विमर्श हुआ। अन्त में बातचीत का समापन करते हुए जिन्ना ने १५ सितम्बर १९४४ को दो टूक शब्दों में गान्धी जी को पत्र दिया, इसके अनुसार :–

१. मुसलमानों की अलग जाति है। ब्रिटिश राज के समाप्त होने के बाद निश्चय ही भारत में हिन्दू राज कायम हो जायेगा। मुसलमानों को आत्म–निर्णय का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

२. चूँकि मुसलमान एक अलग जाति है, उसकी संख्या भारत में १० करोड़ है, हमारी जाति की एक अलग सभ्यता, एक अलग संस्कृति है। हमारी अपनी भाषा है, साहित्य है, कला और स्थापत्य है। नाम रखने का हमारा अलग ढंग है। हमारी अपनी मान्यताएँ और वस्तुओं को मापने के लिए विशेष मापदण्ड हैं। विशेष प्रकार के नैतिक नियम और कानून हैं। हमारा अलग चिन्तन है। हमारा अलग इतिहास और परम्पराएँ हैं। जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण अलग है। अन्तर्राष्ट्रीय विधान के सब नियमों के अनुसार हमारी एक अलग जाति है।

३. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मुसलमानों का एक अलग देश पाकिस्तान होगा, जहाँ वे अपनी सुविधानुसार नियम–कानून और विधान बना सकेंगे।

बस; यहीं से अलगाववाद का बीजारोपण प्रारम्भ हो गया। कांग्रेस से अलग हुए कम्युनिस्ट इन सिद्धान्तों को हवा देने में सबसे आगे आये। वे मुस्लिम लीग की सराहना करने में दो कदम ओर आगे थे। उन्होंने खुलेआम दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का जोर–जोर से प्रचार करना आरम्भ कर दिया। इस समय कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव ने एक पुस्तक प्रकाशित की। उसका शीर्षक था **"गांधी जिन्ना फिर मिले"** उन्होंने लिखा "गांधी जी जानते हैं कि जिन्ना साहब जो कुछ कहते हैं, सच्चे दिल से कहते हैं। लाहौर प्रस्ताव स्वतन्त्रता का प्रस्ताव है। यदि स्वतन्त्र होने का अधिकार न्याय–संगत है तो लाहौर प्रस्ताव भी न्याय–संगत है। गांधी जी की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं "वे यह नहीं देखते कि लीग का आन्दोलन मुसलमानों का राष्ट्रीय आन्दोलन है। हमारी आँखों के

सामने देश के कुछ भागों में ऐसे लोग रहते हैं, जिनका धर्म इस्लाम है और उनमें जातीयता (Nation) के गुण मौजूद हैं। उनकी अपनी एक जन–संस्कृति है, जो एकता के सूत्र में बँधी हुई है। मुस्लिमों का पाकिस्तानी आंदोलन इन्हीं जातियों का राष्ट्रीय आन्दोलन है।"

इस पर गांधी जी ने कम्युनिस्ट और लीग का विरोध करते हुए एक सभा में कहा "मुस्लिम तो उन हिन्दुओं के वंशज हैं, जिन्होंने अपना धर्म बदल लिया था। इस वक्तव्य पर उर्दू समाचार पत्रों ने बहुत हो–हल्ला मचाया।

यहाँ यह उल्लेख करना भी अप्रासंगिक न होगा कि युद्धकाल में रूस द्वारा मित्र राष्ट्रों के साथ आ जाने से कम्युनिस्टों ने भी पैंतरा बदल कर मित्र राष्ट्रों को सहायता देने में कोई कोर–कसर नहीं रखी थी। उन्होंने कम्युनिस्टों की वही पुरानी नीति जारी रखी, जिसका आरम्भ लेनिन ने एक डिक्री जारी करते हुए किया था। "धर्मावलंबियों" को सेना में छूट धार्मिक (मुस्लिमों) विरोधियों की सहानुभूति बटोरने के लिए उन्हें अपेक्षाकृत अधिक अग्र मान्यता देते हुए कहा था कि यह पार्टी का दृष्टिकोण है। उन्होंने सन् १९०६ के उस मार्क्सवादी वाक्य को भी तिलांजलि दे डाली, जिसके अनुसार धर्म मानव जाति का शत्रु है तथा वह बुर्जआई संघ का पोषक है।" लेनिन के समय से लेकर आज तक कम्युनिस्टों का यह नीति–घोष उनका मार्गदर्शक रहा है। जब पूरा भारत इस समय देश–विभाजन का विरोध कर रहा था तब कम्युनिस्ट नेता पी.सी. जोशी ने एक वक्तव्य में फिर दोहराया– "मुस्लिम लीग मुसलमानों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधिव करती है, लीग की पाकिस्तान की माँग निश्चय ही आत्मनिर्णय की माँग है। सन् १९४४ में कम्युनिस्टों ने एक पग और बढ़ाते हुए कहा– "नौ अगस्त का आन्दोलन आजादी का नहीं, राष्ट्रीय विनाश का मार्ग था।"

अतः कृत्रिम विभाजन से मुस्लिम समुदाय को अपनी धार्मिक मान्यताओं और विश्वास में अधिक राजनैतिक बल प्राप्त हो गया; पर विभाजन के बाद यह स्थिति थी कि पाक का समर्थन करनेवालों के साथ भारतीय राज्यों के बड़े–बड़े नेता भी चुपचाप भारत से भाग गये। भारत f'Hkkt u dsrhu&pkj o"kksतक देश में साम्प्रदायिक शान्ति बनी रही। उनके बड़े नेता जैसे उत्तरप्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष चौ० खलीकुज्जमाँ, भोपाल रियासत के नवाब की पुत्री बड़ी बिया, नवाब के सलाहकार महमूद मियाँ, जूनागढ़ का भुट्टो परिवार, हैदराबाद रियासत के दीवान मीर लायक अली तथा अन्यान्य नेताओं के भाग जाने पर सामान्य मुस्लिम जन हतोत्साहित हो गया। अतः अब वे राजनैतिक आकांक्षाओं की अपेक्षा धार्मिक कट्टरता और विश्वास की ओर मुड़ गये।

इन दिनों भारत में प्रथम निर्वाचन का दौर चालू हो गया। कम्युनिस्टों और कांग्रेस ने मुसलमानों को बहुसंख्यकों से भय बतला कर उनके सामूहिक वोट प्राप्त करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। उस समय नेहरू जी का यह प्रयत्न भी काम आया, जिसके अनुसार उन्होंने कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं की सलाह को त्यागकर मुस्लिमों को भारत न छोड़ने के लिए प्रेरित किया था। अतः ये सब कांग्रेस के वोट–बैंक बन गये।

फलस्वरूप उन्होंने अपने मजहबी विश्वासों की ओर बढ़कर नई–नई सुविधाओं की माँग प्रारम्भ कर दी। बादशाह जहाँगीर के समय के अंग्रेज डाक्टर की भाँति, जिसने शाह–पुत्री की सफल चिकित्सा के बाद व्यक्तिगत पुरस्कार न लेते हुए अंग्रेज जाति को व्यापार की सुविधाएँ ले ली थीं, मुस्लिमों ने भी व्यक्तिगत लालसा छोड़कर समाज को सुविधाएँ देने की माँग प्रारम्भ कर दी। शासन उदारवादी रुख अपना कर उनकी हर उचित–अनुचित माँग को स्वीकार करता चला गया। निष्क्रान्ति संपत्ति के मामले में शासन खुले तौर पर मुस्लिम पक्षपाती बन गया। परिणाम में जस्टिस छज्जूराम ने निष्क्रान्ति कमीशन से इस्तीफा दे दिया।

बस यहीं से अलगाववाद की प्रक्रिया बढ़ती गयी; यद्यपि तत्कालीन शासन ने बिना माँगे हुए ही सब नागरिकों को समानता के आधार पर एक–सी स्थिति बनाये रखी, मुस्लिमों की राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायालय के सर्वोच्च पदों, सेना, पुलिस और कमीशनों में हिन्दुओं के समान ही नियुक्तियाँ कीं। पर वे इससे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने देश भर में पुरातत्त्वीय कानून होने के बावजूद न केवल पुरातत्व स्थलों पर अपना आधिपत्य बनाए रखा, अपितु नये–नये निर्माण और संशोधन भी कर दिये, जबकि हिन्दुओं को पुरातत्त्वीय स्थलों और पूजागृहों पर आधिपत्य करने से रोक दिया गया।

हिन्दुओं को यह सुखद कल्पना थी कि स्वाधीनता के पश्चात गत पाँच सौ–छह सौ वर्षों से उनके पूजा स्थलों और मंदिरों को जो भूमिसात् किया गया था, अब वे पुनः अपने धर्मस्थलों को निर्मित कर पूजा–पाठ कर सकेंगे। उनकी इस दुराशा में एक और करुण पाठ जुड़ गया जब राजीव गांधी ने लोकसभा द्वारा एक कानून

बनवा कर सन् १९४७ में भारत के प्राचीन स्थलों की जो स्थिति थी उसमें किसी प्रकार के फेर–बदल की सम्भावना समाप्त कर दी।

यही नहीं उन्होंने अब मजहबी मान्यताओं को कानूनी स्वरूप दिये जाने हेतु आन्दोन जारी कर दिया।

अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों की भाँति भारत में भी एक सामान्य सिविल संहिता लागू करना आवश्यक था। परन्तु संसद में घोषणा के बाद भी इसे लागू नहीं किया गया। परिणामस्वरूप मुसलमानों में उत्तराधिकार, विवाह, तलाक, महिलाओं को अधिकार और सामाजिक कानून अलग हैं, उनकी भाषा अलग है। वे भारत के राष्ट्रीय गीतों, गानों और दीवाली, होली आदि राष्ट्रीय पर्वों पर रुचि नहीं लेते। उनके तीज, त्यौहार सब अलग हैं।

बाहरी मुस्लिम देशों की राजनीतिक प्रवृत्ति और वहाँ कट्टरवादी साम्प्रदायिकता का भी यहाँ की अलगाववादी नीति पर भारी प्रभाव पड़ा है। चीन के पश्चिमी प्रान्त सिंगियांग, फिलीपीन के मिंडनाओं प्रान्त, इंडोनेशिया के टिमूर, यूगोस्लाविया के कोसोवो और अलवानिया के कुछ क्षेत्रों की अलगाववादी नीतियों ने उन्हें अलगाववाद के लिए प्रोत्साहित किया है। पाकिस्तान, ईरान, सऊदी तथा अफगानिस्तान आदि देशों से उन्हें सांप्रदायिक सोच बनाये रखने की भारी सहायता मिल रही है। अब वे पुलिस में भी २५ प्रतिशत नौकरी की माँग करने लगे है।

यद्यपि पश्चिमी देशों तथा अमेरिका आदि में जाति पर आधारित राजनीति को अच्छा नहीं माना जाता। पर मुस्लिम समुदाय इस आधार को छोड़ने को तत्पर नहीं है। इस विषय में अमेरिकी राजनीति के विद्वान हेराल्ड एम पामपर (Herold M Pomper) ने अपनी पुस्तक वोटर्स च्वाइस (Voters Choice) में लिखा है "जाति और वर्ग" (Race and class) राजनीतिक सिस्टम और संगठन के विभिन्न आधार हैं। जाति की उत्सृजन पीढ़ियों के संस्कार और वर्ग का निर्माण जीवन के अनुभवों पर होता है। पर सामाजिक तथ्यों की अपेक्षा ठोस स्थायित्व के लिए आर्थिक आधार ही श्रेष्ठ माने जाते हैं।

अलगाववाद में जनसंख्या की भी बड़ी भूमिका रहती है। सन् १९४७ के विभाजन के समय असम प्रान्त के सिलहट की मुस्लिम संख्या ६०.७, उत्तर पश्चिमी सीमान्त से ६१.७६, पंजाब में ५३ तथा सिन्ध में ७० प्रतिशत की जनसंख्या ने ही पाकिस्तान का निर्माण कराया था। वर्तमान में बंगाल, बिहार, असम, आदि में मुस्लिम घुसपैठियों की जो बाढ़ आई है उससे मुस्लिम अनुपात में भारी

"'काटे जिन्होंने अंग, उन्हें बन्दी बनाओ'"

जो रक्त बटालिक में बहा, उसकी आन रखना,
जो शीश चढ़े कारगिल में, उनका ध्यान रखना।
दुश्मन के कुटनीतिक फन्दे में नहीं फँसना,
अब भूलकर भी उससे समझौता नहीं करना।।१

दो–दो हुए संग्राम लेकिन हाथ क्या आया ?
सिर दे के जो जीता, वो सब व्यर्थ गँवाया।
'दिल्ली–फतेह' का अहद करके आये थे मियाँ,
भारत ने बढ़के जीत ली; बर्की–सी चौकियाँ।।२

पहले जवाहरलाल भी खेले थे यही खेल,
"आगे बढ़ो", सेना से कह रहे थे जब पटेल।
लाहौर था करीब, मगर सेना रुक गयी,
बेमौके सन्धि–वार्त्ता की खिचड़ी पक गयी।।३

फिर सन्धि की सुरसा ने तभी मुँह जो फैलाया,
सब क्षेत्र विजित उसकी दाढ़ों में समाया।
अब कारगिल के पार भी जाने से क्यों परहेज ?
सेना के 'रेखा' लाँघने में क्यों तुम्हें गुरेज ?४

जो है 'गुलाम', उसको आजाद बनाओ,
खण्डित अभी कश्मीर उसे एक बनाओ।
काटे जिन्होंने अंग, उन्हें बन्दी बनाओ,
दिल्ली में लाके, बोटियाँ कुत्तों को खिलाओ।।५

लाहौर-कराची में बैठे हैं उनके यार

गद्दारी को उन्होंने मजहब समझ लिया है;
भारत को अपनी खाला का घर समझ लिया है।
'इकबाल' और जिन्ना के जिन्न जागते हैं;
मुल्ले वतनपरस्ती से दूर भागते हैं।।

चीनो–अरब से जंगी हथियार माँगते हैं;
दुश्मन से दोस्ती की वे भीख माँगते हैं।
लाहौर–कराची में बैठे हैं उनके यार;
हिन्दोस्ताँ से उनको कुछ भी नहीं है प्यार।।

मन्दिर को हैं बताते मस्जिद, मियाँ मदार;
मजहब के नाम पर वे चमका रहे तलवार।
वे क्यों पढ़ें 'दुआ' यह कि भारत की जीत हो;
लाहौर का 'नवाज' ही, जब इनका मीत हो।।

–वचनेश त्रिपाठी

बढ़ोत्तरी हो गई है। अतः ये भावी अलगाववाद के द्योतक बन रहे है।

अलगाववाद की भूमिका में इन दिनों जो प्रवृत्तियाँ तेजी से बढ़ रही हैं, उन पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। मुस्लिमों में "अलग पहचान" बनाये रखने की इच्छा ने उन्हें आक्रान्त कर रखा है। वे १५–२० व्यक्तियों की टोली में कंधों पर बिस्तर लादे हुए भारत के गाँव–गाँव तक में भ्रमण करने लगे हैं। नाम तो मजहब का है; पर अलगाववाद का भयानक बीज बोया जा रहा है। इन टोलियों को 'तबलीगी जमात' कहा जाता है। वे मुस्लिमों से इकट्ठी नमाज पढ़ने, युवकों से मुस्लिम फैशन की दाढ़ी मूँछ रखने, लहँगा ओढ़नी छोड़ने उन्हें बुर्का पहिनने, बालकों को उर्दू मदरसों से उर्दू और मजहब की तालीम लेने तथा मोहल्लों में संगठित रहने को प्रेरित करते रहते हैं।

जब देश में सामान्यतः मानवधिकार आयोग कार्यरत है, तो फिर अलग से अल्पसंख्यक आयोग बनाना अलगाववाद की ही प्रक्रिया है। इन दिनों अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष मियाँ ताहिर महमूद भी अल्पसंख्यकता का राग अलाप रहे हैं। इन्होंने गत अक्टूबर मास में एक शिक्षा सम्मेलन में भाषण करते हुए "संस्कृत कोड" और "सरस्वती वन्दना" के विषय में काफी विष–वमन किया था। अभी इस वर्ष के मार्च महीने में ढाका के एक आठ देशीय मुस्लिम सम्मेलन में मुस्लिम समाज की प्रगति के लिए नये–नये प्रस्ताव पास हुए हैं। वे भी अलगाववाद की भूमिकाएँ ही हैं।

अब राष्ट्रचिंतकों को सोचना होगा कि इस समुदाय को राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में लाने के लिए कौन सा उपाय स्वीकार करना चाहिए। उपर्युक्त सब तथ्यों पर विचार करने पर यह निश्चित धारणा बन जाती है कि एक बार अपने देश को खंडित होते देखकर भी दूसरी बार पुनः वही परिस्थिति हावी न हो जाये, इस का भय बहुसंख्यक हिन्दू समाज को सताने लगा है। जबकि अल्पसंख्यक पूर्ण रूप से भयमुक्त हो गये है। (लेखक भूतपूर्व सांसद् हैं)।

(मी० फो०)

❐

(पृष्ठ ६० का शेष) **भारतीय लोकतन्त्र में सत्य और न्याय....**

कि कोई जाति अपना अस्तित्व ही नष्ट हो जाने दे और अपनी आत्मरक्षा के लिए कुछ न करे।

भारत के संविधान में जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता देकर व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता बढ़ाने का २६ नवम्बर १९४९ ई० को संकल्प लिया है और वर्तमान विकृत सेक्युलरिज्म के कारण सब परिणाम उलटे ही निकल रहे हैं।

इस तरह ५० वर्ष से धर्मनिरपेक्षता के नाम पर ८० करोड़ हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को इतनी ठोकर मारी गई है, उन्हें इतनी भयंकर मानसिक यातना दी जा रही है और उनका इतना गला घोंटा जा रहा है कि हिन्दू जाति विश्व की सबसे अधिक सतायी, शोषित व घायल जाति हो रही है। उसके राजनैतिक धार्मिक व लोकतांत्रिक अधिकार धर्मनिरपेक्षता के नाम पर नष्ट किये जा रहे हैं। क्या दुनिया के किसी भी देश में बहुसंख्यकों के साथ इतना अन्याय व जुल्म होता है? इन षड़यन्त्रों व अन्यायों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही कुछ अत्यन्त सहनशील हिन्दू भी आत्मरक्षा के लिए कट्टर बन रहे हैं और सम्भवतः भविष्य में हिंसक भी बन जायेंगे। इस तरह क्या ये सेक्युलर फासिस्ट नेता व बुद्धिजीवी कट्टर सम्प्रदायवादी लोगों से भी अधिक खतरनाक नहीं हैं? क्या इन 'गरीबी हटाओं' का नारा देने वाले नेताओं का सत्य, समाज, देश और गरीबों से तनिक भी वास्ता है या वास्ता सिर्फ कुर्सी से है?

इस तरह ऐसा लगता है कि **आज सेक्युलरिज्म का अर्थ है सत्य द्रोह, धर्म द्रोह, मानवता द्रोह, हिन्दू द्रोह, गोमाता द्रोह, राष्ट्रद्रोह और आत्मघात। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि सेक्युलरवादी खेमे में अधिकतर जेल जाने योग्य भ्रष्टाचारी अपराधी, देशविरोधी, आतंकवादी तथा घुसपैठियों के मित्र भरे हुए हैं, जिन्होंने स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को कुचल दिया है।**

इस सब दुर्दशा का जिम्मेदार कौन है? निश्चित ही जनता है जो झूठे वायदों, झूठे नाटकों व झूठे प्रचार से भ्रमित होकर जेल जाने योग्य भ्रष्ट व नकली सेक्युलर लोगों को ५० वर्ष से वोट देकर देश को बर्बाद कर रही है। यदि देश का दुबारा बँटवारा हुआ या हिन्दू समाज में हिंसा भड़की, तो उसका कारण ये विकृत सेक्युलरिज्म ही होगा जो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई तथा देश सबको बर्बाद कर देगा। वोट के लिए ऐसी गद्दारी दुनिया में कहीं नहीं है। क्या इस समय असत्य व अन्याय की नींव पर एक शक्तिशाली लोकतांत्रिक व धर्मनिरपेक्ष भारत का निर्माण हो सकता है? ❐

व्यंग्य

हम देखते हैं – देख लेंगे

– सुधीर ओखदे

रामखिलावन ने उस दिन एकाएक मुझसे प्रश्न किया– तुमने कभी किसी मंत्री को बाढ़ पीड़ित क्षेत्र का हवाई सर्वेक्षण करते हुए देखा है?

मैंने कहा– हाँ। यह दृश्य तो लगभग रोज ही टी०वी० पर दिखाया जाता है। इसमें क्या विशेष बात है।

रामखिलावन ने पुनः प्रश्न किया– तुम हवाई सर्वेक्षण को किन अर्थों में लेते हो?

मैंने कहा, यह तो स्पष्ट है। क्षेत्र में बाढ़ आयी है। और काफी जानमाल का नुकसान हुआ है। अतः अपनी जनता के कष्टों का मंत्री जी स्वयं मुआयना कर रहे हैं। इसमें अर्थ खोजने की गुंजाइश ही कहाँ है!

रामखिलावन ने अगला प्रश्न किया– यदि तुम्हारे दो पड़ोसियों में हाथापाई की नौबत आ जाए और संघर्ष उग्र रूप धारण कर ले, तो ऐसी स्थिति में तुम्हारी भूमिका क्या रहती है?

मैंने गर्दन नीची करते हुए कहा– ऐसी स्थिति आने पर मैं वहाँ से लुप्त हो जाता हूँ। मैं ही क्या, मेरा पूरा परिवार घटना–स्थल से एकदम अदृश्य हो जाता है। कौन दूसरों के झंझट में फँसे। यदि कोई लम्बा हो गया, तो दुनिया भर के झमेले। ना बाबा ना, हम तो घर के अंदर ही अच्छे हैं।

रामखिलावन ने फिर पूछा– तुम सिर्फ घर के अन्दर हो जाते हो या उस घटना का खिड़की से नजारा भी करते हो?

मैंने पुनः गर्दन नीची कर उत्तर दिया– भाई, उत्सुकता तो होती है न?

रामखिलावन ने वितृष्णा भरी नजरों से मुझे देखते हुए कहा– अर्थात् तुम भी तमाशबीन की तरह व्यवहार करते हो। दूसरों के अति गंभीर मसले को मनोरंजन की तरह लेते हो।

यही कार्य हमारे मंत्री भी करते हैं। बाढ़ में डूबे घर, अपने आप से संघर्ष करते स्त्री, बच्चे और बूढ़ों को यह महारथी आकाश से देखते हैं। उनकी गरीबी, विषमता, असमर्थता का नजारा ये हवा में बैठकर करते हैं।

अरे! यदि इतने ही प्रजा–प्रेमी हो, तो आओ मैदान में, पहुँचो उस घटना– स्थल पर, जहाँ बाढ़ आयी है। उतरो उस उफनती नदी में और करो राहत कार्य, जिसकी पैरवी और घोषणाएँ आये दिन करते रहते हो।

पर नहीं; तुम तो समर्थ हो, ऊँचाई पर हो। खिड़की से नजारा कर रहे हो। कभी आकाश–पाताल भी एक हुआ है।

तुम भोजन के पैकेट ऊपर से गिराते हो, ठीक उसी तरह, जैसे पर्यटन स्थलों पर कबूतरों को दाना डाला जाता है। ढेर सारे कबूतर उड़कर आते हैं और दाने चुगते हैं। यहाँ पैकटों के लिए आदमी, जानवरों की तरह झपट–झपट कर लड़ते हैं और तुम दूर ऊँचाई से यह दृश्य देख आनंदित होते हो।

विभाजन के बाद से लगातार हम अपने पड़ोसी राष्ट्र को देख रहे हैं। वह, यह करता है– हम देखते हैं। वह, वो करता है हम देखते हैं। कभी–कभी हम गुर्राते भी हैं कि अब हम ज्यादा नहीं देखेंगे। सचमुच देख लेंगे तुम्हें। हमारी जगह वही हमें देख लेता है।

पर तुम भी क्या करोगे। यह तो पुराणों से चला आ रहा है। आखिर भगवान् भी तो अपने भक्तों की परीक्षा लिया करते थे। लेकिन उन्हें तरह–तरह के कष्टों में देख वे स्वयं गरुड़ पर बैठकर या नंगे पाँव दौड़ कर उनकी रक्षा को आ जाते थे।

कम से कम देवताओं के वाहन तो ऐसे थे, जिनसे सरकारी पेट्रोल का दुरुपयोग नहीं होता था। तुम तो जनता के कष्टों को जनता की गाढ़ी मेहनत की कमाई का दुरुपयोग करके देखते हो।

पर यह जो नयी रीति है, उसे तो तुम अवश्य निभाओगे, आखिर तुम अपने को भगवान् जो मानने लग

गये हो।

तमाशा देखने की परम्परा तो इस दुनिया में प्राचीन काल से चली आ रही है। तुम तो सिर्फ उसका निर्वाह कर रहे हो।

किसी अबला को सरे आम गुंडे छेड़ते हैं।

– तुम देखते हो।

किसी गरीब का हक कोई समर्थ मारता है।

– तुम देखते हो।

पड़ोसी को सरे–आम कुछ गुंडे पीट जाते है।

– तुम देखते हो।

किसी सहकर्मी पर कार्यालय में अत्याचार होता है।

– तुम देखते हो।

तुम इसलिए देखते हो; क्योंकि दुर्घटना तुम्हारे साथ नहीं हुई है। घटना में तुम शामिल नहीं हो। यदि तुम हादसे में शामिल होते, तो कोई दूसरा देखता। देखना हमारी नियति है।

विभाजन के बाद से लगातार हम अपने पड़ोसी राष्ट्र को देख रहे हैं। वह, यह करता है– हम देखते हैं। वह, वो करता है हम देखते हैं। कभी–कभी हम गुर्राते भी हैं कि अब हम ज्यादा नहीं देखेंगे। सचमुच देख लेंगे तुम्हें। हमारी जगह वही हमें देख लेता है।

देश में सांप्रदायिक आग फैल रही है, हम देख रहे हैं। देश आतंकवाद की गिरफ्त में है, हम देख रहे हैं। महँगाई अपनी चरम सीमा पर है, हम देख रहे हैं। देश में भ्रष्टाचार का नंगा नाच हो रहा है, हम देख रहे हैं। महिलाओं को प्रकृति के समीप लाया जा रहा है, हम देख रहे हैं। देश विघटन के कगार पर पहुँच रहा है, हम देख रहे हैं।

लेकिन हम देखते रहेंगे नहीं। एक दिन सचमुच देख लेंगे। सीमा पर खड़े होकर दूरबीन से देखेंगे, हवाई जहाज में बैठकर सर्वेक्षण करते हुए देखेंगे, भारत की राजधानी दिल्ली से देखेंगे, और ज्यादा हो हल्ला हुआ, तो कभी–कभी लाल किले से भी देख लेंगे।

रामखिलावन का कहना है कि अब जरूरत इस बात की है कि हमें तमाशाई अंदाज छोड़ देना चाहिए। यदि हमें देश को सुरक्षित और समृद्ध बनाना है, तो हमें सचमुच देखना होगा, नहीं तो...।

❐

III/२, आकाशवाणी कालोनी, जलगाँव– ४२५००१

करबद्ध नमस्कार इस संविधान से

– डॉ० राजेन्द्रप्रसाद मिश्र

आस्तीनों में पले साँप इस संविधान से,
अपने हुए पराये इस संविधान से;
सत्ता के लिए नफरत नेता की 'पालिसी',
जलने लगे हैं गाँव इस संविधान से।

कुछ हो गये हैं लाल इस संविधान से,
बाकी पड़े बेहाल इस संविधान से;
चौसर पर है लगी शकुनियों की भीड़,
पांचाली हुआ देश, इस संविधान से।

हिन्दी है मिट चली, भूगोल मिट रहा,
पहचान मिट चली, इतिहास मिट रहा;
यह देश मिट रहा है मगर होश किसे है ?
हम हो गये बेहोश, इस संविधान से।

घर–घर में प्रेम ज्योति जगाने की बात थी,
हर भेद–भाव को मिटाने की बात थी;
दुनिया को नई राह दिखाने का था वादा,
हम खुद गये भटक इस संविधान से।

भाषा के नाम पर टुकड़ों में हुआ देश,
मजहब बिरादरी की नित नयी माँग पेश;
संकीर्णता आराध्य वोट बैंक के लिए,
कैसे बचेगा देश, इस संविधान से।

पथभ्रष्ट हुए लोग तरक्की के नाम पर,
शिक्षा के नाम पर चलने लगे उद्योग;
पढ़ लिखकर भी बेकार चमत्कार देखिए,
योग्यता का बहिष्कार इस संविधान से।

वैसे तो संविधान ने समता को दिखाया,
व्यवहार में दिन–रात विषमता को बढ़ाया;
राष्ट्रीय संहिता का भी बना कहाँ भविष्य ?
पन्थों में घमासान इस संविधान से।

सत्ता के लिए बनता साँप–नेवले का संग
सदनों में माफियाओं का बढ़ने लगा है रंग;
बहुमत में सौदेबाजी या चुनाव बार–बार
भटका हुआ है तंत्र इस संविधान से।
करबद्ध नमस्कार इस संविधान से।।

–चूड़ामणिपुर (तेलीतारा), वक्शा, जौनपुर (उ०प्र०)

चिट्ठी आयी पेरिस से-

और पुस्तकालय तक पहुँचने के लिए बनायी गयी एक नयी रेल

– डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय

पेरिस के उपवनों और उद्यानों में निसर्ग की उन्मादिनी और आह्लादिनी सुषमा फिर लौट रही है धीरे-धीरे द्विरागमन के अवसर पर पीहर से पिया के घर में प्रवेश करती हुई नई नवेली वधू-सी। लाख छिपाने पर भी उसके अधरों पर दबी मुस्कान और मुख पर सलज्ज कौतूहल-सी गुनगुनी धूप कुसुमों की क्यारियों से आँख-मिचौनी खेल रही है। इधर एक मास से यहाँ इतने रंगों और रूपों के फूल खिल रहे हैं कि उनके कारण लगता है जैसे भगवान् कुसुमायुध ने अपने तरकस के सारे तीर एक साथ ही चला दिये हों। हर फूल में खुशबू भले ही न हो, लेकिन रंगों का जादू तो है ही। कुछ पौधे ऐसे भी होते हैं, जिनमें केवल एक ही फूल वर्ष भर में खिलता है, लेकिन उस एक फूल के लिए वर्ष भर पौधे की देखभाल कितने मनोयोग से की जाती है। ट्यूलिप तो पूरे यूरोप का ही विशिष्ट पुष्प है– उसकी तो जैसे यहाँ खेती-सी की जाती है, कुछ-कुछ वैसे ही जैसे भारत में गेंदा और गुलाब की खेती कहीं-कहीं की जाती है। मालवा के अंचल में उज्जैन के आस-पास फूलों के उन खेतों की देखभाल करती हुई और उनमें यथासमय फूल चुनती हुई कृषक-रमणियों के माथे पर तीखी धूप में छलछलाती हुई पसीने की बूँदें तो महाकवि कालिदास भी नहीं ओझल कर सके। इसीलिए यक्ष का सन्देश ले जाने की प्रार्थना करते हुए वे मेघ से उन फूल चुननेवाली स्त्रियों पर भी क्षण भर के लिए छाया बिखेरने का आग्रह करना नहीं भूलते– 'छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम्' हर छज्जे पर, चौराहे-चौराहे पर वसन्त यहाँ फिर बगर उठा है। फूलों के सौन्दर्य से भरपूर उद्यानों की सुकोमल घास पर सारा बदन उघाड़कर धूप की गुनगुनाहट का आनन्द लेती हुई किशोरियाँ भी वातावरण में उन्माद का संचार करने में प्रकृति से बराबर की टक्कर ले रही हैं। घड़ी में एक घंटा बढ़ा दिया गया है मार्च के अन्तिम रविवार को, इसलिए रात के नौ बजे तक अब अँधेरा नहीं होता। रेस्तराँओं के बाहर पड़ी कुर्सियों पर बैठे युवजन पेरिस के आँगन में किलकती साँझ की भरपूर अगवानी करते हैं।

बिना चालक की रेलगाड़ी

हाँगकाँग में जन्मी चीनी मूल की एक हिन्दी छात्रा यूँग यींग यी के घर इस बार जब आमन्त्रित होकर भोजन पर जाना हुआ, तो एक निराला अनुभव हुआ। अब तक मेट्रो की यहाँ तेरह लाइनें थीं। नवम्बर ९८ में एक १४वीं लाइन भी बढ़ गयी। इस लाइन को बढ़ाने का विशेष प्रयोजन है यहाँ के राष्ट्रीय पुस्तकालय के नवनिर्मित विशाल भवन तक लोगों को पहुँचने की सुविधा प्रदान करना। इस लाइन पर लगभग ७-८ स्टेशन पड़ते हैं। इस लाइन पर चलनेवाली मेट्रो रेल में कोई भी कर्मचारी नहीं होता। चालक तक नहीं। पूरी रेल कम्प्यूटर-प्रणाली से चलती है– रिमोट-कन्ट्रोल व्यवस्था के अनुरूप। इस रेल लाइन पर जितने भी स्टेशन पड़ते हैं, उनके प्लेटफार्म भी पूरी तरह बन्द हैं। रेल की पटरी की ओर शीशे के बड़े-बड़े दरवाजे जड़े हैं। ये तभी खुलते हैं, जब मेट्रोरेल प्लेटफार्म पर आती है। रेल के दरवाजे और प्लेटफार्म के दरवाजे एक साथ खुलते हैं बिल्कुल आमने-सामने। इस प्रकार यात्री को प्लेटफार्म पर पहुँचने के लिए अब दो दरवाजे एक साथ पार करने पड़ते हैं। अब कोई यात्री चाहकर भी रेल की पटरी पर नहीं पहुँच सकता। पूरा प्लेटफार्म पूर्णतया सुरक्षित है। दुर्घटना की कोई संभावना नहीं। अन्य मेट्रो-लाइनों पर, मुझे लगता है, कभी-कभी हुई आत्महत्या की कुछ घटनाओं के कारण संभवतः अब यह व्यवस्था की गयी है। बिना चालक की ट्रेन में बैठते हुए पहले तो हमें डर लगा था, लेकिन प्रति तीसरे मिनट हजारों अन्य यात्रियों को यात्रा करते देख हमारे मन से भी भय की भावना निकल गयी। ट्रेन की भीतरी भव्यता की तो बात ही अलग है। सब कुछ स्वतः चालित प्रणाली के अनुरूप। यन्त्रीकरण कितनी तेजी से बढ़ रहा है।

पेरिस में होली और रामनवमी

यों तो परदेश में कैसी होली और क्या दीवाली!

झिलमिलाती रोशनियों में नहाते इस रमणीय नगर में मन को सबसे ज्यादा उदासी घेरती है त्यौहारों के अवसर पर। लेकिन वैश्वीकरण की इस भाग–दौड़ में हर भारतीय तो न बरसाने की होली का आनन्द ले सकता है और न मुम्बई की दिवाली का। दीवाली पर हमने अपनी मित्र और संस्कृत–विदुषी प्रो० नलिनी बलवीर को आमन्त्रित कर रखा था। विदेशी परिवेश में पली–ढली होने पर भी उन्होंने मेरी पत्नी के साथ लक्ष्मी–पूजा में पूरे मन से भाग लिया और हम लोगों के साथ दिये और मोमबत्तियाँ जलाईं। होली में सम्मिलित रंगारंग कार्यक्रम का आयोजन किया फ्रेंड्स आफ इण्डिया सोसायटी इण्टरनेशनल की नवस्थापित पेरिस–शाखा ने एक विशाल भवन में। सभी प्रदेशों से सम्बन्धित भारतीयों ने वहाँ धूमधाम से होली के अवसर पर अपनी खुशियाँ एक–दूसरे को अबीर–गुलाल लगाकर व्यक्त कीं। संगीत और नृत्य–कार्यक्रमों के साथ व्याख्यानों में होली के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया। इस अवसर पर मैंने संस्कृत श्लोकों के साथ वैदिक मन्त्रों के पाठपूर्वक मंगलाचरण किया और व्रजभाषा के कुछ वे छन्द सुनाए, जिनमें राधा कृष्ण से होली खेलती हैं। संस्था ने निःशुल्क रात्रि–भोजन का भी प्रबन्ध किया था। भारतीयों के साथ, बहुसंख्यक फ्रांसीसी नर–नारियों ने भी इस कार्यक्रम में पूरा–पूरा आनन्द लिया। कार्यक्रम का समापन वैदिक शान्तिपाठ से हुआ।

इस बार रामनवमी का आयोजन भी पेरिस में बेहद धूमधाम से हुआ। दोनों ही कार्यक्रम यहाँ के गुजराती हिन्दू समाज की ओर से आयोजित थे। दूसरे कार्यक्रम में स्वामिनारायण सम्प्रदाय के मित्रों की विशेष भागीदारी थी। भगवान् राम के जीवनचरित से सम्बन्धित मेरे व्याख्यान दोनों ही कार्यक्रमों में हुए। दूसरे कार्यक्रम में पेरिस में एक विशाल हिन्दू मन्दिर के निर्माण तथा विश्व हिन्दू परिषद् की पेरिस–शाखा की स्थापना का संकल्प भी लिया गया। इन कार्यक्रमों में भी निःशुल्क भोजन–व्यवस्था रही। इनके आयोजन का विशेष श्रेय बन्धुवर पिनाकिन देसाई, ईश्वरभाई पटेल, शम्भू भाई, रोहित व्यास और अनिल सोनी को है। देर रात तक कीर्तन–भजन और सत्संग की सुधा से सहृदय भक्तों को आप्लावित कर देने वाले इन सरस कार्यक्रमों की अनुगूँज अन्तःकरण में अब भी हो रही है। व्यक्तिगत रूप से सबसे परिचित न होने पर भी, केवल संस्कृत–प्राध्यापक और हिन्दी–लेखक के रूप में जो आत्मीयता, आदर और स्नेह मुझे इन कार्यक्रमों में मिला, उसमें प्रभु की कृपा ही माननी चाहिए। ❐

– अतिथि आचार्य, सारबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस

कारगिल के बलिदानी जवानों की पुण्य स्मृति में -

तुम्हें नमन !

–महाराजकृष्ण भरत

(कारगिल के युद्ध–क्षेत्र से भेजी गयी है यह कविता–सम्पादक)

तुमने स्वीकारा
पत्नी का पति–शोक
माँ का पुत्र–शोक
पुत्रों का पिता–शोक
और आसमान की ऊँचाइयों से
नापी
अपने वतन की सीमा।

मेरे देश के प्रहरी!
मैं तुम्हें किस नाम से पुकारूँ–
बलिदानी, त्यागी, तपस्वी, योद्धा
निष्काम कर्मयोगी,
तुमने पीठ पर नहीं
सीने पर झेले है दुश्मनों के प्रहार
तुम महान् हो! महान्!
मेरी कल्पना से परे है
तुम्हारा–पराक्रम
तुम्हारी–निष्ठा।

मैंने नहीं देखी है
कारगिल की चोटियों की ऊँचाइयाँ
न सीने में चुभती हुई गोली की
झेली है पीड़ा
पर आज तुम्हारी ऊँचाई से
मैं महसूस कर सकता हूँ
पहाड़ कितने ऊँचे होंगे
आसमान कितना ऊँचा होगा
और ऊँचाई की ऊँचाई भी
कितनी ऊँची होगी।
सागरमाथा भी नहीं है तुम्हारी ऊँचाई
तुम्हारी ऊँचाई–
अछूती है। एक आदर्श है
इतिहास की गौरवमयी वीरगाथा है
वीर, तुम्हें कोटिशः नमन!

–विस्थापित कैम्प नगरोटा–२८४, जम्मू–१८१२२१

जब संविधान में ही दूषण हो तो...

- अन्नाभाऊ कोटवाले

इन दिनों एक अजीबोगरीब मानसिकता से देश पीड़ित है। भाजपा शासन जो भी कहे, करे, सोचे, तर्क रखे, दर्शन दे, उसे गलत होना ही चाहिए, उसे गलत सिद्ध करना होगा। यदि भाजपा शासन में सूर्य पूर्व से उगता है, तो वह गलत है, वह संघ परिवार का हिन्दुत्ववादी घृणित षड्यंत्र का परिणाम है, धर्म निरपेक्ष सूरज पश्चिम से उगना चाहिए, ऐसी बीमार सान्निपातिक–व्यवस्था संविधान में परिवर्तन या नये संविधान की आवश्यकता को काल, परिस्थिति, व्यक्ति, समाज, राष्ट्रहित, इतिहास, राजनीति, संस्कृति एवं आर्थिक सन्दर्भों में देश कैसे पढ़ेगा? यह सम्भव नहीं– इसलिए जिस दिन से केन्द्र में शासन ने संविधान परिवर्त्तन की मंशा जाहिर की, उसने चाय की प्याली में तूफान ला दिया। वह प्रजातन्त्र की हत्या की योजना हो गयी। वह देश पर संघ अनुशासन लादने का षड्यन्त्र बन गयी। वह दलितों के खिलाफ एक बगावत का घोषणा–पत्र हो गयी।

हमारा आज का संविधान वह नहीं है जो २६ जनवरी ५० को लागू किया गया था। उसमें लगभग ८६ थेगले लग गये हैं, विश्व का सर्वश्रेष्ठ दस्तावेज अपने जीवन काल के पालने में ही संशोधन का– जमींदारी के प्रश्न पर शिकार हुआ, संविधान हमारी तुच्छ पतित, भ्रष्ट, राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं पर सशक्त प्रतिबन्ध है, संविधान के माध्यम से हम अपने आप पर किन्हीं मान्य आदर्शों के तहत शासन करने की विधियाँ तलाशते हैं एवं उसके प्रति पूर्ण निष्ठा से प्रतिबद्ध हो जाते हैं, देश का शासन इन पवित्र शपथों के अनुकूल हो, ये शपथ हमारे हथियार बन दैनन्दिन की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन बन जायें, हम संविधान की पवित्र आत्मा के अनुसार शासन–प्रशासन चलायें न कि संविधान हमारी पतित महत्त्वाकांक्षाओं का चाकर बने, संविधान हमारी राष्ट्रीय ऐतिहासिक चेतना की अध्यक्षता करे; न कि वह दल, सत्ता एवं उसके नेता का आज्ञाकारी सेवक हो। पिछले ४८ वर्षों का इतिहास अगर कुछ दर्शाता है, तो केवल इतना कि जो कुछ व्यक्ति या परिवार या एक दल के विपरीत गया, सत्ता प्राप्ति में एवं उसे अपनी दासी बनाने में जो कुछ प्रतिरोध जैसा लगा, उसे बदलो, बिना विचार बदलो। देश के दीर्घकालीन इतिहास पर इसका कैसा असर होगा, चिंता मत करो। आज का क्षण आज लाभ निर्णायक है। इसी कारण हम इतने परिवर्त्तन इतनी आसानी से कर सके कि मूल संविधान की आत्मा का ही प्रश्न पैदा हो गया था।

इन्दिरा–काल में न्यायमूर्त्ति ग्रेवाल, खन्ना एवं हेगड़े ने उन संवैधानिक परिवर्त्तनों पर सदा के लिए रोक लगा दी, जो हमारी आधारभूत मूल कल्पना को ही बदल रहे थे। इन्दिरा–काल के खुशामदी दौर में संविधान में ऐसा परिवर्त्तन भी सम्भावना की सीमा में था, जिसमें नेहरू–गान्धी परिवार को सदा के लिए सत्ता सौंप दी जाती। पिछले १२५ सालों में आस्ट्रेलियन संविधान में एक भी संशोधन नहीं हुआ। अमेरिकन संविधान में मात्र १६ या १८ संशोधन हुए हैं। दरअसल इतिहास की धारा के साथ संवैधानिक विकास भी साथ–साथ चलता है, उसमें नये अर्थ पढ़े जा सकते हैं। न्यायालय, विधान–मण्डल ऐसा करते हैं। इन्दिरा–काल में हमने प्रतिबद्ध न्यायपालिका की खतरनाक आवाज बुलन्द की थी तथा देश का तथाकथित प्रबुद्ध–वर्ग बृहन्नलाओं के समान तालियाँ बजा उनका उत्साह–वर्द्धन कर रहा था।

यदि संविधान के प्रति भक्तिभाव वाला समर्पण नहीं है तथा वह परिस्थितियों के मनोरंजन का हास्य अभिनेता भर बन गया, तो उसके हर शब्द की हत्या हो चुकी है, वह एक रद्दी कागज के पुलिन्दे के अलावा क्या है? शाह बानो मामले में संविधान में संशोधन उसे सिर्फ यही घोषित करता है। यह संविधान राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को कभी परिभाषित नहीं करता था। इसने कांग्रेस के आदर्शों को राष्ट्रीय आदर्श माना, गान्धी–नेहरू की इच्छा को संविधान की अनिवार्यता माना। उसमें वे सब व्यवस्थाएँ रखी गयीं तथा संशोधन–दर–संशोधन उनकी रक्षा की गयी, जो एक दल, उसके सिद्धांत, उसका दर्शन ही अंगीकार करे, अन्य उसमें प्रवेश ही नहीं कर पायें। स्पष्ट शब्दों में कांग्रेस चुनाव–दर–चुनाव सत्तासीन होती रहे, अगर वह हटे, तो वही विचार–धारा दूसरा लेबल लगाकर आ जाए। इन्दिरा–राजीव–काल में संवैधानिक निष्ठाएँ व्यक्तिवादी होकर पूज्य बन गयीं। आखिर किसी दल विशेष को संवैधानिक सार्वभौमिकता क्योंकर दी गयी? राष्ट्रीय ध्येय दलीय हित के पर्यायवाची कैसे हो गये?

उदाहरण के लिए मार्क्सवादी कल्पना के अधीन पंडित नेहरू उस स्वतंत्रता को स्वीकार ही नहीं करते थे, जो एकात्मक हो, भारत की असली स्वतन्त्रता संघात्मक होना चाहिए, जिसमें अनेकानेक उपराष्ट्रवाद की स्वतन्त्र धाराएँ बहती नजर आयें। सुभाष बाबू ने इसी मुद्दे पर पंडित जी की कटु आलोचना करते हुए पूछा कि मूल प्रश्न भारतीय स्वतन्त्रता का है या संघ–व्यवस्था का है?

जिस संविधान को हम आज पूजते हैं, वह ८० प्रतिशत से भी ज्यादा सन् १६३५ का ऐक्ट ही है। इस ऐक्ट की निन्दा में उस समय गान्धी–नेहरू सहित किसने क्या–क्या नहीं कहा? वही अचानक इतना अच्छा हो गया कि स्वतन्त्र भारत का संविधान बन गया? अनुच्छेद ३५६ को अम्बेदकर ने केवल संवैधानिक आवश्यकता बतलाते हुए कहा था कि इसका उपयोग शायद ही कभी होगा, वह विरोधी सरकारों को गिराने का घृणित माध्यम हो गया। राज्यपाल केन्द्रीय सत्ता की राजनीति का संवैधानिक दलाल हो गया। देश में एक कानून बने, यह संघ–परिवार का मुद्दा नहीं है, संवैधानिक प्रतिबद्धता है। गोहत्या बन्द हो, यह तथाकथित 'साम्प्रदायिक माँग' भी नीति निर्देशक सिद्धान्तों में है। हम अपनी मर्जी के अनुसार संवैधानिक प्रतिबद्धताओं का चुनाव करने लगे। जो हमारे मुआफिक नहीं थे, उनकी हम प्रतिपक्ष राजनीति के बहाने निन्दा करने लगे। कितनों को यह होश है कि जो समान आचार–संहिता का विरोध करते हैं, वे वास्तव में भारतीय संविधान का ही विरोध कर रहे हैं, जिसे संघ परिवार ने नहीं बनाया।

यह 'महान्' संविधान पवित्र विशुद्ध राष्ट्रीय आकांक्षाओं के आधार पर रचा ही नहीं गया, इसलिए इसमें राष्ट्रीयता जैसी चीज कभी पनप नहीं सकती। इसमें मण्डल, कमण्डल सहित भाषा, प्रान्त, संस्कृति के नाम पर उप राष्ट्रवादों का लम्बा खण्डनवादी ताण्डव लगातार उग्र से उग्रतर रूप में चलता ही रहेगा। "अनेकता में एकता" वाला दर्शन इसका दुर्भाग्य है, क्योंकि जिसने भी एकता की बात कही, सोची, वह तत्काल 'साम्प्रदायिक' हो जायेगा; 'विघटनवादी' हो जायेगा। जिसने भी राष्ट्र शब्द लाया, वह दलित अल्पसंख्यक एवं संघवाद का दुश्मन हो जायेगा। इस संविधान ने हमें २० हजार टुकड़ों में बाँट दिया। लगभग १६ संवैधानिक अल्पसंख्यकों के बाड़ खड़े कर दिये। सारा संविधान प्रारम्भ में, मध्य में, अन्त में केवल अल्पसंख्यकवाद का अखण्ड–पाठ करने के अलावा और कुछ नहीं करता। यह हमारे विकास पर, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना पर एक मुर्दा भार है, जिसे ढोने का सामर्थ्य हम पूरी तरह खो चुके हैं। यह हमारे राष्ट्रीय हितों का रक्षक कभी नहीं था; अहितों का जरूर संवैधानिक पालक बन गया है, इसके अंग–अंग का इतना दुरुपयोग किया गया है कि इसमें सड़ाँध आ गयी है। चुनावों से लेकर शासन–प्रशासन तक सब जगह धारा से हटकर भारी भटकाव है। जो हो गया है, उससे भी अधिक और खराबियों की समस्त सम्भावनाएँ उसके गर्भ में निहित हैं। अतएव इस पर विचार करने में खराबी क्या है? हम गम्भीर मंत्रणा के बाद यह कहें कि नहीं, यही संविधान उचित है तो बात समझ में आती है। बिना विचार ही परिवर्त्तन की माँग ठुकराना कौन सी अक्ल की बात है।□

— ६३, सन्तनगर, उज्जैन।

प्रेरक–प्रसंग

'विदेशी' का स्थान

प्रस्तुति - संजीव कुमार 'आलोक'

एक बार स्वामी विवेकानंद बगीचे में टहल रहे थे। तभी उन पर किसी अंग्रेज महिला की नजर गयी। उसने स्वामी जी को गौर से देखा और फिर इठलाती हुई– स्वामी जी से बोली, "स्वामी जी, अगर आप बुरा न मानें, तो एक सवाल पूछूँ?" "हाँ–हाँ, क्यों नहीं," स्वामी जी ने सहज–भाव से कहा। इस पर उस महिला ने पूछा, "स्वामी जी, आपने सारी पोशाक तो भारतीय पहनी है, पर ये कपड़े के जूते, जो भारतीय नहीं हैं, क्यों पहन रखे हैं? कृपया इसका रहस्य समझाएँ।" "इस रहस्य को यदि रहस्य ही रहने दिया जाये, तो अच्छा है," –स्वामी जी ने बात टालनी चाही, लेकिन वह महिला तो स्वामी जी को भारतीयता का पाठ सिखाने आयी थी। वह पीछे ही पड़ गयी, "नहीं–नहीं, स्वामी जी। आप वचन दे चुके हैं। मेरे प्रश्न का उत्तर देना ही पड़ेगा।" "अगर आप जानना ही चाहती हैं, तो अवश्य बताऊँगा। ये जूते जिनकी देन हैं, मैं उन्हें यहीं तक रखना चाहता हूँ; इसलिए इन्हें पहनता हूँ। उत्तर सुनकर वह महिला बहुत लज्जित हुई। चाहती थी– भारतीयता का पाठ सिखाना; पर जानकर यह गयी कि स्वामी जी उसकी जाति को क्या महत्त्व देते हैं। □

— विनीता भवन, सवेरा सिनेमा चौक, काजी चक, बाढ़– ८०३२१३ (बिहार)

जय अधिनायक की और तलाश लोकनायक की !

– राजीव चतुर्वेदी

'वन्दे मातरम्' राष्ट्र की आत्मा भले ही हो; पर आवाज नहीं बन सका। हम गाते रहे 'जन–गण–मन अधिनायक जय हो....।' "जन–गण–मन" के साथ अधिनायक की जय करना अब केवल राष्ट्रगान नहीं, हमारी नियति बन चुका है। भारतीय लोकतन्त्र की यही विडम्बना है, यही आर्त्तनाद है कि 'जन–गण–मन' से किसी लोकनायक या जननायक की नहीं 'अधिनायक' की जय करवाई जाती रही और अब अधिनायक की जय करना जैसे जनता की नियति बन चुका है। ऐसे में स्वतन्त्रता श्रीहीन है। जब लोकतन्त्र के वेष में अधिनायकवाद या तानाशाही पैर जमा ले, तो संवैधानिक वादे केवल किताबों में ही कैद रह जाते हैं। भारत के संविधान के हर उस प्रावधान का मुस्तैदी से पालन हो रहा है, जो निकम्मे नेताओं को; भ्रष्ट नौकरशाही को; अन्यायी जजों को; काला बाजारियों, सटोरियों, तस्करों को; देशद्रोहियों को सुविधा या विशेषाधिकार देता है। देश की जनता लगातार गरीब हो रही है और इसके प्रतिनिधि यानी कि जन–प्रतिनिधि लगातार सम्पन्न कैसे हो रहे हैं? इसके नौकर यानी कि नौकरशाही लगातार सम्पन्न कैसे हो रही है? उपभोग की सारी सुविधाएँ गैर उत्पादक वर्ग ने कैसे समेट रखी हैं? क्यों है मुट्ठी भर लोगों की मुट्ठी में कैद भारत? गरीब "लोक" का "तन्त्र" इतना अमीर और खर्चीला क्यों है?

गान्धी जी ने नमक कानून तोड़ने की नोटिस देते हुए २ मार्च १६३० को तत्कालीन अंग्रेज वायसराय को एक लम्बा पत्र लिखा था, जिसमें ब्रिटिश शासन को सबसे महँगी व्यवस्था बताते हुए उन्होंने जन–विरोधी, किसान–विरोधी करार दिया था और इस कारण उसे 'अन्यायी' बताया था। ब्रिटिश शासन को "अन्यायी" कहने का तर्क देते हुए गांधी जी ने अंग्रेज वायसराय को लिखा था– "....जिस अन्याय का उल्लेख किया गया है, वह उस विदेशी शासन को चलाने के लिए किया जाता है, जो स्पष्टतः संसार का सबसे महँगा शासन है। अपने वेतन को ही लीजिए– यह प्रतिमाह २१००० रुपये से ऊपर पड़ता है– अप्रत्यक्ष भत्ते आदि अलग। आपको ७०० रुपए प्रतिदिन से अधिक मिलता है, जबकि भारत की औसत आमदनी, २ आने प्रतिदिन से भी कम है। इस प्रकार आप भारत की औसत आमदनी से ५ हजार गुने से भी कहीं अधिक ले रहे हैं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ब्रिटेन की औसत आमदनी का सिर्फ ६० गुना लेते हैं।" सदी के पूर्वार्द्ध में उठाया गया गान्धी का यह सवाल सदी के उत्तरार्द्ध में

चालू बजट में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यसभा, लोकसभा, संसद–भवन, प्रधानमन्त्री कार्यालय आदि पर होने वाले खर्च का लेखा–जोखा दिया गया है। इस बजट के आईने में राष्ट्र की तस्वीर कुछ यों उभरती है– औसत भारतीय नागरिक की रोजाना की आमदनी २६ रुपये ५० पैसे के लगभग है, जबकि राष्ट्रपति पर रोज ४ लाख १४ हजार से ज्यादा खर्च होता है, जो औसत भारतीय की तुलना में १४०३३ गुना अधिक है। इसी प्रकार 'प्रधानमन्त्री कार्यालय' का खर्च देखिये, जिसका कोई संवैधानिक दर्जा नहीं है। प्रधानमन्त्री–कार्यालय पर रोज लगभग २ लाख ३८ हजार रुपए खर्च आता है, जो भारत की औसत रोजाना आमदनी का ७६६४ गुना है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का खर्चा लगभग १५ लाख रुपये है, जो औसत नागरिक की प्रतिदिन की आमदनी का ४७७३६ गुना है। इस प्रकार राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और उनका मन्त्रिमण्डल मिलाकर देश की जनता की औसत आमदनी का लगभग ७० हजार गुना खर्च करने के बाद यह देश को क्या दे रहे हैं? कौन–सी और क्या सेवा कर रहे हैं? इस खर्चे में सांसदों, विधायकों और नौकरशाहों के खर्चे और जोड़ दें, तो भारतीय लोकतन्त्र की बीभत्स तस्वीर बनती है। देश की आजादी के लिए गान्धी का तर्क तो यह था कि भारत का "जन–गण–मन" अपनी औसत आमदनी का ५ हजार गुना खर्च करनेवाली सरकार नहीं चाहता; क्योंकि वह 'शासन' नहीं 'शोषण' है। लेकिन स्वतन्त्र भारत में तो यह खर्चा ५ हजार गुना से बढ़कर अब ६५ हजार गुना तक पहुँच गया है।

भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और संसदीय शासन–व्यवस्था के संदर्भ में प्रासंगिक है। यह संसदीय शासन प्रणाली तो अंग्रेज वायसराय के शासन से भी कुछ हजार गुना अधिक महँगी है।

चालू बजट में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यसभा, लोकसभा, संसद्–भवन, प्रधानमन्त्री कार्यालय आदि पर होने वाले खर्च का लेखा–जोखा दिया गया है। इस बजट के आईने में राष्ट्र की तस्वीर कुछ यों उभरती है– औसत भारतीय नागरिक की रोजाना की आमदनी २९ रुपये ५० पैसे के लगभग है, जबकि राष्ट्रपति पर रोज ४ लाख १४ हजार से ज्यादा खर्च होता है, जो औसत भारतीय की तुलना में १४०३३ गुना अधिक है। इसी प्रकार "प्रधानमन्त्री कार्यालय" का खर्च देखिये, जिसका कोई संवैधानिक दर्जा नहीं है। प्रधानमन्त्री– कार्यालय पर रोज लगभग २ लाख ३८ हज़ार रुपए खर्च आता है, जो भारत की औसत रोजाना आमदनी का ७९६९४ गुना है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का खर्चा लगभग १५ लाख रुपये है, जो औसत नागरिक की प्रतिदिन की आमदनी का ४७७३६ गुना है।

ससद् की एक घण्टे कार्यवाही चलने पर लगभग १६ लाख रुपये खर्च आता है। राज्य विधान सभाओं के संचालन का खर्चा भी कम नहीं है। उत्तर प्रदेश विधान सभा के संचालन पर प्रति घण्टे लगभग १४ लाख, राजस्थान विधान सभा पर ११ लाख, बिहार विधान सभा पर १२ लाख ५० हजार और मध्य प्रदेश विधान सभा पर प्रति घण्टे लगभग १३ लाख का खर्चा आता है। विधायिका पर देश की गरीब जनता की यह गाढ़ी कमाई क्यों खर्च की जाती है? यह सवाल आज पहले से भी अधिक प्रासंगिक है।

इस प्रकार राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और उनका मन्त्रिमण्डल मिलाकर देश की जनता की औसत आमदनी का लगभग ७० हजार गुना खर्च करने के बाद इस देश को क्या दे रहे हैं? कौन–सी और क्या सेवा कर रहे हैं? इस खर्चे में सांसदों, विधायकों और नौकरशाहों के खर्चे और जोड़ दें, तो भारतीय लोकतन्त्र की बीभत्स तस्वीर बनती है। देश की आजादी के लिए गान्धी का तर्क तो यह था कि भारत का "जन–गण–मन" अपनी औसत आमदनी का ५ हजार गुना खर्च करनेवाली सरकार नहीं चाहता; क्योंकि वह 'शासन' नहीं 'शोषण' है। लेकिन स्वतन्त्र भारत में तो यह खर्चा ५ हजार गुना से बढ़कर अब ६५ हजार गुना तक पहुँच गया है।

इसके अतिरिक्त संसद् की एक घण्टे कार्यवाही चलने पर लगभग १६ लाख रुपये खर्च आता है। राज्य विधान सभाओं के संचालन का खर्चा भी कम नहीं है। उत्तर प्रदेश विधान सभा के संचालन पर प्रति घण्टे लगभग १४ लाख, राजस्थान विधान सभा पर ११ लाख, बिहार विधान सभा पर १२ लाख ५० हजार और मध्यप्रदेश विधान सभा पर प्रति घण्टे लगभग १३ लाख का खर्चा आता है। विधायिका पर देश की गरीब जनता की यह गाढ़ी कमाई क्यों खर्च की जाती है? यह सवाल आज पहले से भी अधिक प्रासंगिक है। देश की जनता विधायिका के इस कमरतोड़ खर्चे को इसलिए ढोती है कि 'स्व' का 'राज्य' स्थापित रहे, 'स्व' का 'तन्त्र' रहे। विधायिका यानी कि संसद् और राज्य विधान सभाएँ भारत देश को, देश की जनता को नियम, संयम और अनुशासन में रखने के लिए ऐसा कानून, विधि–विधान का निर्माण करें, जो स्वतन्त्र भारत की जनता का हो। लेकिन संसदीय लोकतन्त्र के पचास वर्ष के कार्यकाल में भी हमारी विलासी विधायिका ने स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र नागरिक के लिए मूलभूत कानून भी नहीं बनाये हैं। देश के देसी कानूनों के अभाव में भारत के "जन–गण–मन" को आज भी अंग्रेजों के बनाए कानूनों से हाँका जा रहा है। यह वही काले कानून हैं, जिन्हें अंग्रेजों ने गुलाम भारत के गुलाम नागरिकों का शोषण करने के लिए बनाया था और जो भारत की जनता को दूसरे दर्जे या तीसरे दर्जे का नागरिक मानते हैं। हम अंग्रेजों के बनाए उन्हीं कानूनों से शासित हो रहे हैं, जो हमें नागरिक नहीं गुलाम समझते हैं। भारतीय दण्ड संहिता– १८६० जिसे भारतीय 'जन–गण–मन' की निर्वाचित विधायिका ने नहीं, मेकाले ने बनाया था, आज भी भारतीय नागरिकों को दण्डित करने का उपकरण है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम– १८७२ आज भी लागू है। दण्ड प्रक्रिया संहिता– १८८९ को १९७३ में कुछ हेर–फेर करके जारी रखा गया है। कुल मिलाकर इस देश में लगभग ९ हजार छोटे–बड़े कानून लागू हैं, जिनमें से आठ हजार से अधिक कानून अंग्रेजों के बनाए हुए हैं। जो विधायिका (संसद्/विधानसभा) देश को देश का देशी कानून भी बनाकर पचास सालों में नहीं दे सकी, उस गैर–उत्पादक बाँझ विधायिका पर देश की जनता इतना खर्च क्यों करे?

देश की आजादी से अब तक यह तेरहवाँ अवसर है कि जब लोकसभा के पुनर्गठन की जिम्मेदारी देश की

जनता को निभानी है, जनादेश देना है। जनादेश केवल एक ही प्रकार का होता है,– "सकारात्मक" कि अमुक राजनीतिक दल को बहुमत ने सरकार बनाने और चलाने की जिम्मेदारी ५ वर्ष की अवधि के लिए सौंपी। इसी जनादेश के साथ अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय दलों को विपक्ष की जिम्मेदारी निभाने का जनादेश शामिल होता है कि वह ५ वर्ष तक विपक्ष की भूमिका अदा करें। दरअसल, किसी राजनीतिक दल के साथ ही उसका पक्षधर मतदाता भी जीतता या हारता है। फिर पूरे पाँच साल विधायिका में या यों कहें कि संसद/विधानसभाओं में पक्ष–विपक्ष का इम्तहान चलता है और इस अवधि में परीक्षक बनी जनता अपने प्रतिनिधियों का, सरकार का और विपक्ष का मूल्यांकन करती है। समझा तो यह भी जाता है कि जनता नीतियों का भी मूल्यांकन करती है। जनता हर बार जनादेश देकर अपनी जनतांत्रिक जिम्मेदारी निभाती है; फिर विधायिका में वह कौन से रोगाणु हैं कि वह प्रायः अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा नहीं कर पाती है। पिछले चार वर्षों में यह तीसरा मौका है कि जब फिर से चुनाव हो रहे हैं। इन चुनावों का कुल खर्चा १६०० करोड़ रुपये आयेगा, जिसमें से सरकार ६०० करोड़ रुपये और जनता सीधे–सीधे १००० करोड़ रुपये का खर्चा झेलेगी। बाद में विभिन्न करों के माध्यम से सरकार अपने द्वारा खर्च किये ६०० करोड़ रुपये भी जनता से ही वसूलेगी। अनुमान के अनुसार पिछले मध्यावधि चुनावों में १८०० करोड़ रुपये का चुनावी खर्चा जनता झेल चुकी है। अगर इस टाले जा सकनेवाले खर्चे को जोड़ लें, तो ३७०० करोड़ रुपये का निरर्थक खर्चा देश की विधायिका (संसद) ने अपनी असफलता के कारण जनता पर थोपा है, जिससे राष्ट्र का विकास लकवाग्रस्त हो गया है, क्योंकि राष्ट्र के पोषण में, राष्ट्र के निर्माण में खर्च किया जाने वाला यह धन अब चुनाव व्यवस्था में लगाया जाएगा, जबकि इस धन से १००० मेगावाट की विद्युत्–ऊर्जा इकाई की स्थापना हो सकती थी कि जिससे ग्रामीण भारत के १० लाख घरों में रोशनी हो जाती या ८००० अस्पतालों की स्थापना हो सकती थी या अल्प–आय–वर्ग के लोगों के लिए १२ लाख ३३ हजार ३३३ मकानों का निर्माण कराया जा सकता था या भारतीय वायुसेना के लिए २४" सुखोई – ३०" विमान खरीदे जा सकते थे या गंगा–यमुना की सफाई कराई जा सकती थी, जिसके बाद भी २००० करोड़े रुपये बचे रहते।

आप अपने क्षेत्र के या आसपास के किसी भी सांसद/विधायक को देखिये। पड़ताल कीजिए कि उसकी आय का ज्ञात स्रोत क्या है? वह उत्पादक है या उपभोक्ता? वह श्रमजीवी है या बुद्धिजीवी या शतप्रतिशत परजीवी है। गैर उत्पादक इन नेताओं पर बँगले, वैभव, गाड़ियाँ कहाँ से आयीं और कैसे वह इनके खर्चे उठाते हैं और चुनाव के लिए उन पर धन कहाँ से आता है? जब देश आजाद हुआ था, तब कुल ६ प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे थे, आज ४० प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं। भारत पर जितना विदेशी ऋण है, उससे कहीं अधिक भारत का धन विभिन्न नेताओं के नाम से विदेशी बैंकों में जमा है। देश के नेता लगातार मालदार और जनता लगातार गरीब हो रही है। भ्रष्टाचार पर अब कांग्रेस का एकाधिकार नहीं रहा। कई गैरकांग्रेसी समाजवादी जातिवादी पार्टियाँ भी इसमें शामिल हैं।

पिछले चार वर्षों में यह तीसरा मौका है कि जब फिर से चुनाव हो रहे हैं। इन चुनावों का कुल खर्चा १६०० करोड़ रुपये आयेगा, जिसमें से सरकार ६०० करोड़ रुपये और जनता सीधे–सीधे १००० करोड़ रुपये का खर्चा झेलेगी। बाद में विभिन्न करों के माध्यम से सरकार अपने द्वारा खर्च किये ६०० करोड़ रुपये भी जनता से ही वसूलेगी। अनुमान के अनुसार पिछले मध्यावधि चुनावों में १८०० करोड़ रुपये का चुनावी खर्चा जनता झेल चुकी है। अगर इस टाले जा सकने वाले खर्चे को जोड़ लें, तो ३७०० करोड़ रुपये का निरर्थक खर्चा देश की विधायिका (संसद) ने अपनी असफलता के कारण जनता पर थोपा है, जिससे राष्ट्र का विकास लकवाग्रस्त हो गया है, क्योंकि राष्ट्र के पोषण में, राष्ट्र के निर्माण में खर्च किया जाने वाला यह धन अब चुनाव व्यवस्था में लगाया जाएगा, जबकि इस धन से १००० मेगावाट की विद्युत्–ऊर्जा इकाई की स्थापना हो सकती थी कि जिससे ग्रामीण भारत के १० लाख घरों में रोशनी हो जाती या ८००० अस्पतालों की स्थापना हो सकती थी या अल्प–आय–वर्ग के लोगों के लिए १२ लाख ३३ हजार ३३३ मकानों का निर्माण कराया जा सकता था या भारतीय वायुसेना के लिए २४" सुखाई – ३०" विमान खरीदे जा सकते थे या गंगा–यमुना की सफाई कराई जा सकती थी, जिसके बाद भी २००० करोड़ रुपये बचे रहते।

देश फिर से गुलामी की ओर है। कुछ घुसपैठिए कारगिल की सीमाओं से युद्ध करके भारत में घुस आये हैं, तो कुछ घुसपैठिये विदेशी व्यापार के बहाने देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के रूप में घुस रहे हैं। इटली के कुख्यात अधिनायक मुसोलिनी के ड्राइवर की लड़की सोनिया माइनो रोम से आकर भारत पर राज्य करने का षड्यन्त्र कर रही है। क्या देश फिर से गुलाम होगा? फर्क क्या पड़ता है रानी इंग्लैण्ड की हो या रोम की? भारत की सम्प्रभुता का संचालक भारत के जन–गण–मन का बेटा/बेटी होगा; भारत का जननायक होगा, भारतीय लोकतंत्र का लोकनायक होगा। भारत माँ और केवल भारत माँ की ही संतान होगा भारत की सत्ता का सारथी। सम्पूर्ण राष्ट्र से गूँजना चाहिए समवेत स्वर– वन्दे मातरम्। "जन–गण–मन" नहीं करेगा अब अधिनायक की जय। ❒

– एम० १५०७, सेक्टर आई, एल०डी०ए० कालोनी, कानपुर मार्ग, लखनऊ– २२६०१२

...तेरे बस की बात नहीं

–डॉ० सुनील जोगी

भारत–वीरों से टकराना, तेरे बस की बात नहीं;
करगिल से जिन्दा जा पाना, तेरे बस की बात नहीं।
शिमला का समझौता तोड़ा, बस भी रास नहीं आई,
वादा करना और निभाना, तेरे बस की बात नहीं।
पाँच धमाकों के बदले में, भले पटाखे दागे हों,
एटम रखना और चलाना, तेरे बस की बात नहीं।
तेरे सब हथियार कर्ज के, भाड़े के घुसपैठी हैं;
कर्जा लेकर उसे चुकाना, तेरे बस की बात नहीं।
रगड़ो नाक चीन के आगे, अमरीका के पाँव पड़ो;
अब सीमा पर जान बचाना, तेरे बस की बात नहीं।
तू हत्यारा विश्वासों का, दगाबाज, कायर निकला;
दुनिया भर से आँख मिलाना, तेरे बस की बात नहीं।

– बी–१/६, मालवीय नगर, नई दिल्ली–१७

हम रोज खा रहे हैं थोड़ा-थोड़ा जहर

रासायनिक खादों के इस्तेमाल से पैदा अनाज एवं सब्जियों के सेवन से प्रतिदिन ०.२७ मिलीग्राम विष मनुष्य के शरीर में पहुँच रहा है।

एक अनुसन्धान रिपोर्ट के अनुसार सब्जियाँ उगाने में रासायनिक खादों का इस्तेमाल और बाद में उन्हें सड़ने से बचाने के लिए उन पर किया जाने वाला रासायनिक लेप आम जनजीवन के लिए भारी खतरा पैदा कर रहा है।

अधिक पैदावार के लिए रासायनिक खादों के अधिकाधिक प्रयोग से उपजाऊ भूमि में पाये जाने वाले पोषक तत्त्वों का सन्तुलन बड़ी तेजी से बिगड़ रहा है। इससे पैदा होनेवाले अनाज एवं सब्जियों से कई गम्भीर बीमारियाँ पैदा हो रही हैं। उपज बढ़ाने के लिए पहले किसानों ने यूरिया का प्रयोग शुरू किया, तो कुछ वर्षों तक इससे पैदावार बढ़ी; परन्तु बाद में यह घटने लगी। इसके बाद फास्फोरस, पोटाश, जिंक, सल्फर एवं अन्य खादों का प्रयोग किया गया, परन्तु अब स्थिति यह है कि रासायनिक खादों से पैदावार बढ़ने के बजाय घटने लगी है।

रासायनिक खादों के इस्तेमाल से पैदा अनाज एवं सब्जियाँ इन रसायनों को अपने भीतर सोख लेती हैं, जो आम आदमी के शरीर में धीमे जहर के रूप में घुलते जा रहे हैं तथा एक सीमा के बाद गम्भीर बीमारियाँ पैदा कर रहे हैं।

गोभी के फूलों को सड़ने से बचाने के लिए मैलाथियान नामक रसायन में डुबोकर उसे बाजार में बेचा जाता है। इसी तरह परवल व अन्य सब्जियाँ भी रसायनों में डुबोकर बेची जा रही हैं। ऐसी सब्जियों के इस्तेमाल से कम उम्र में बाल सफेद होने, आँखों की रोशनी कम होने, पथरी तथा गुर्दे से सम्बन्धित विभिन्न बीमारियाँ सामने आ रही हैं। अब यह स्थिति बहुत गम्भीर हो चुकी है और रासायनिक खादों का प्रयोग ऐसी स्थिति में पहुँच चुका है कि यदि इनका प्रयोग ज़ल्दी न रोका गया, तो उपजाऊ भूमि बंजर हो जायेगी और जन–स्वास्थ्य भी चौपट होता चला जायेगा। ❒

बर्फ का बना हुआ है हमारा प्रजातन्त्र

– डॉ० किशोरी लाल व्यास

'ज्यादा मेहमान, पतली दाल'– एक कहावत है। दाल में पानी डालते जाओ, उसे पतली बनाते जाओ, ताकि सभी मेहमानों को कम से कम दाल के नाम पर कुछ तो मिले। दाल की गुणवत्ता भले ही समाप्त हो जाय, उसका स्वाद भले ही समाप्त हो जाय; सब को मिले– बस यही एक ध्येय होता है मेजबान का। हमारा देश भी बहुत अच्छा मेजबान रहा है। मेहमाननवाजी में हमने अपने बच्चों को भूखा रखा, बाहरवालों का पेट भरा। गुजराती में एक कहावत है– 'घर ना घंटी चाटे, बाहर वारा लोट खाय।' घर के चक्की चाटते हैं, बाहर वाले आटा खाते हैं। हमारे देश में सदियों से यही हुआ है, आज भी यही हो रहा है। सन् १९७१ में हमारे रणबाँकुरों ने पाकिस्तानी सेना को घुटने टेकने पर मजबूर किया– पाक सेनापति जनरल नियाजी ने तिरानवे हजार पाक सैनिकों के साथ आत्म–समर्पण किया। हमने उन्हें साल भर, अपनी भूखी जनता का पेट काटकर अच्छे से अच्छा खाना खिलाया और बिना कुछ बदले में पाये, बिना कश्मीर की समस्या हल किये, उन्हें अच्छे पड़ोसी की तरह गले मिलकर उनके घर सकुशल भेज दिया। वे ही खूँखार लोग आई.एस.आई. के जरिये हमारे भीतरी और बाहरी सुरक्षा–चक्र को तहस–नहस कर रहे हैं। जनरल राय चौधरी का कहना है कि हमारी उदारवादी नीतियों, ढुलमुल निर्णयों तथा तुष्टीकरण की नीतियों ने देश को कमजोर और खोखला बना डाला है। हमारे प्रजातन्त्र का ढाँचा ही बर्फ का बना हुआ है, लोहे का नहीं। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का आधार प्रशासनिक दृढ़ता और कठोर दण्ड–विधान होना चाहिए। हमारे संविधान निर्माताओं ने विश्वभर के संविधानों से अच्छी–अच्छी आदर्श की बातें तो ग्रहण कीं, पर उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान न कर सके। ऐसा करना सम्भव भी नहीं था; क्योंकि इतने बड़े और वैविध्यपूर्ण राष्ट्र में यदि समुचित प्रशासनिक दृढ़ता, कठोर दण्ड–विधान तथा दायित्वपूर्ण नागरिक संहिता का अभाव हुआ, तो क्रमशः शासन की पकड़ जनता पर ढीली होती जायेगी। लोगों का कानून और व्यवस्था में विश्वास स्खलित होता जाएगा और लोग समस्याओं के समाधान के लिए अराजक तत्त्वों की सहायता लेने को बाध्य हो जाएँगे, जिसके कारण धीरे–धीरे अराजक तत्त्वों का अपराधी तत्त्वों में बदलाव होता जाएगा, जो धीरे–धीरे राजनैतिक ताकत अपने हाथों में समेट लेंगे और निरीह जनता देखती रह जाएगी। समाचार पत्रों पर पूँजीपतियों का अधिकार होगा, जो पुनः आपराधिक तत्त्वों द्वारा संचालित होंगे। सामान्य जनता नितान्त असुरक्षित होती जाएगी– और सारी सत्ता अवाञ्छित तत्त्वों के हाथों में केन्द्रित होती जाएगी। जन समान्य लुटा–पिटा मूकदर्शक बना रह जाएगा; क्योंकि नीति–निर्धारण में जनता के धन के व्यय–अपव्यय में, आवंटन में (नक्सलियों, अपराधियों को बड़ी मात्रा में धन देना, सांसद–निधि निर्धारित करना अवांछित कार्यों पर जन–धन का अपव्यय करना आदि) राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के निर्माण–निर्वाह में कहीं भी जनता की राय नहीं ली जाएगी। बुद्धिजीवी किनारे कर दिये जायेंगे। राष्ट्र को भीतर से खोखला करनेवाले तत्त्व सक्रिय हो जाएँगे। विदेशी धन–बल का वैभव; देशी कठोर परिश्रम करनेवाले विधिसम्मत जीवन बितानेवाले नागरिक को मुँह चिढ़ाएगा। अच्छा खाना, अच्छी शिक्षा और सारी सुविधाएँ देखते–देखते कर्मठ हाथों से छिनकर तिकड़मी लोगों के हाथों में चली जाएँगी। गरीब बच्चों की तरह हमारे ईमानदार मेहनती देशवासी दूरदर्शन पर चटकीले आइसक्रीम–बिस्कुट–केक के विज्ञापन देखता रह जाएगा– सुविधाभोगी वर्ग सारी सुविधाओं को हथियाता चला जायेगा ऐसे में आगामी पीढ़ियों के मन मस्तिष्कों से परिश्रम, ईमानदारी, सादगी, देशप्रेम, भाईचारा जैसे मानवीय मूल्यों पर से विश्वास उठता चला जाएगा और येन–केन–प्रकारेण धन और सत्ता के माध्यम से अधिकार और सुविधा हासिल करना– एकमात्र ध्येय रह जाएगा।

सामाजिक अवमूल्यन एक ठण्डे निष्क्रियतावाद और किनाराकशी को जन्म देता है– कि हमें क्या करना है– जो होता है, होता रहे।' यह निरपेक्षता, तटस्थता और गैरजिम्मेदारी की भावना देश की जनता के एक बहुत बड़े हिस्से को पूरी तरह अलगाव की मानसिकता में ले जाने की भयंकर स्थिति है, जो प्रजातन्त्र के लिए खतरनाक बात है।

प्रजातन्त्र का मूलमंत्र है– जनता की सक्रिय सजग, सचेत, सतत भागीदारी। जो जाति जागरूक नहीं है, उसकी स्वाधीनता शीघ्र ही कतिपय निहित स्वार्थी तत्त्वों के हाथों में सिमट जाती है। निरपेक्ष नागरिक को पहले तो गैर–जिम्मेदारी अच्छी लग सकती है; पर जब उसके

हाथों से, उसके ही श्रम अर्जित फल छीन लिये जाते हैं, तब उसे अपनी भूल का अहसास होता हैं; पर तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

प्रजातन्त्र का स्खलन एक अप्रतिगामी प्रक्रिया है जिसका पुनर्निर्माण बिना रक्त-क्रान्ति के सम्भव नहीं। आज पाकिस्तान इस स्थिति की चरम अवस्था पर पहुँच गया है जहाँ राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी, सैनिक अधिकारी, गुप्तचर संस्थाएँ तथा आतंकवादी समूह स्वतन्त्र रूप से कार्यरत हैं। एक दूसरे से अलग-थलग ये समूह स्वयं अपने निर्णय लेते हैं, जिसकी परिणति हम आज कारगिल में देख रहे हैं। धर्मांध पाकिस्तान का टूटा हुआ लोकतन्त्र आज अव्यवस्था के बोझ से छिन्न-भिन्न है- फिर भी यदि जीवित है तो केवल विदेशी धन से। इस देश के टुकड़े कभी भी हो सकते हैं। भारत की ऐसी स्थिति सम्भवतः न हो, पर दूसरे ढंग से विच्छृंखलता की व्याप्ति हमारे आन्तरिक व बाहरी संकटों में वृद्धि कर सकती है। देश में जगह-जगह बम विस्फोट, जान-माल के नुकसान, गहन विनाशकारी षड्यन्त्र और बाहरी आक्रमण इसके आरम्भिक संकेत हैं। हमारी राष्ट्रीय अस्मिता (हिन्दू अस्मिता) को कुचलने के लिए भयंकर रूप से अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र कार्यरत हैं, जिसमें सारे इस्लामी देशों की भागीदारी है। मोरक्को, सूडान, सऊदी अरब, ईरान, इराक, अफगानिस्तान आदि इस्लामी देशों के प्रशिक्षित गुरिल्ला आतंकवादी इस्लाम का कफन पहने कश्मीर को मुक्त कराने तथा भारत को इस्लामी बनाने के लिए कूच कर चुके हैं। इनमें इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरीका तक के इस्लामी गुरिल्ले शामिल हैं। उन्हें अरब ईरान के पेट्रो-डालर से प्राप्त होते हैं। अमरीका के स्टिंगर मिसाइल और फ्रांस के विमान। चीन तो पाकिस्तान को अस्त्र-शस्त्र, विमान और टेक्नालॉजी देता ही रहा है। ऐसी विकट परिस्थिति में ढीलें-ढाले जनतन्त्र की नींवें हिल जाएँ, सारी अर्थ-व्यवस्था चौपट हो जाये- इसकी पूरी सम्भावना विद्यमान है। ऐसी विकट परिस्थिति का सामना करने के निम्न उपाय हो सकते हैं :

१. शिक्षा का सैन्यीकरण

हमारी शिक्षा बड़ी ही आरामदेही वाली हो गयी है। हमारे छात्र शारीरिक श्रम का महत्त्व नहीं जानते। इंजीनियरिंग तथा विज्ञान जैसे विषय भी केवल थ्योरिटिकल पढ़ाये जाते हैं। प्रैक्टिकल बहुत कम होता है। हमारे छात्र न तो जंगलों में जाते हैं, न पर्वतों में। उनमें जोखिम उठाने का माद्दा नहीं है। वे रट्टू तोते होते जा रहे हैं। जो जितना याद रख सके, वह उतना बड़ा अधिकारी बनेगा। शिक्षा का अर्थ स्मृति हो गया है। सुविधा प्राप्ति उसका लक्ष्य हो गया है। कौन-सी पढ़ाई से कितना वेतन और कितना 'मामूल' मिलेगा- शिक्षा का बस यही उद्देश्य रह गया है। अतः शिक्षा को अधिकाधिक सर्जनात्मक, व्यावहारिक श्रम-आधारित, कठोर अनुशासनयुक्त तथा अनिवार्य सैनिक शिक्षा से आपूरित होना चाहिए। देश का हर नौजवान सैनिक हो- तभी उसमें देशभक्ति, अनुशासन और स्वाभिमान का भाव उत्पन्न होगा। अमरीका जैसे देश तक में सैनिक शिक्षा पूर्णतः अनिवार्य है। फिर भारत में क्यों नहीं ? प्लेटो ने कहा था- "शरीर के लिए व्यायाम, बुद्धि के लिए तर्क और आत्मा के लिए संगीत-पूर्ण शिक्षा के लिए ये तीनों अनिवार्य है। हमारी शिक्षा-प्रणाली ने शरीर को भुला दिया। व्यायाम, खेल-कूद और कवायद- अस्त्र-शस्त्र-सञ्चालन तथा शरीर श्रम के महत्त्व को भुला दिया। इसका दुष्परिणाम हम देख रहे हैं- एक दुर्बल, स्वार्थी, हतप्रभ, निर्वीर्य, स्वाभिमानरहित, परमुखापेक्षी सुविधाभोगी, पलायनवादी पीढ़ी। ऐसे नौजवानों को लेकर हम इतने बड़े देश का निर्माण व सुरक्षा कैसे करेंगे ?

२. कठोर दण्ड-विधान तथा विधि-विधान का कठोर अनुपालन

हमारे देश में आजादी के नाम पर जो उच्छृंखलता, स्वार्थ-वृत्ति, भ्रष्टाचार और मनमानी व्याप्त होती जा रही है, उसका कारण है- कमजोर कानून और व्यवस्था तथा कठोर दण्डविधान का अभाव। अभी हाल के वर्षों में इस देश ने करोड़ों रुपयों के घोटाले देखे- बोफोर्स तोप काण्ड, हर्षद मेहता काण्ड, चारा घोटाला, यूरिया घोटाला और न जाने कितने-कितने प्रकरण- जिनमें जनता की गाढ़ी कमाई लूटनेवालों ने चालाकी से लूट ली। इतने करोड़ों रुपये लूटे गये कि उस धन से कई बाँधों का निर्माण हो सकता है, हजारों स्कूल खुल सकते हैं, हजारों गाँवों में पीने के पानी की व्यवस्था हो सकती है। ये भ्रष्टाचारी दीमक देश का पैसा चट कर गये और आज तक किसी को सजा नहीं हुई। यह कैसी व्यवस्था है? कैसा न्याय विधान है ? करोड़ों रुपया स्विस बैंक में रखनेवाले नेताओं का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। अपराधी बेदाग छूट जाते हैं। भ्रष्ट नेता, अफसर मुक्त हो जाते हैं। फिर जनता का विश्वास कैसे बना रहेगा इस व्यवस्था पर ? ऐसे में कठोरतम दण्ड विधान की तथा न्याय-विधान याने कानून व व्यवस्था को सुदृढ़ करने की व्यवस्था होनी चाहिए। देश के जानमाल की हानि करनेवाले- चाहे वे देशी हों या विदेशी- आतंकवादी हों या नक्सली, षड्यन्त्रकारी हों या एजेण्ट- उसे मृत्युदण्ड

दे दिया जाना चाहिए। राष्ट्रहित के विरुद्ध जो भी कार्य करे, उसे इस देश में जीने का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस देश में छिपे गद्दारों, आई.एस.आई. के एजेन्टों तथा आतंकवादियों का निर्दयतापूर्वक सफाया कर देना चाहिए।। जनसामान्य का जीवन निष्कण्टक, सुरक्षित व सुख-शान्तिपूर्ण हो इसकी गारण्टी राष्ट्र को देनी चाहिए।

सरकारी कर्मचारी

हमारे देश में सरकारी नौकरी मिल जाने के बाद उस कर्मचारी की समाज, राष्ट्र या अपने कार्य के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती। वह करोड़ों का गबन, नुकसान आदि करके चुपचाप खिसक जाता है। फिर पेंशन, ग्रेच्युटी, एल.टीसी. मेडिकल आदि के नाम पर सारी सुविधाएँ पाता है। लाखों के फर्जी बिल बनाता है। परिवार के बीस-बाईस सदस्यों तक का यात्रा-व्यय सरकार से वसूल करता है। अस्पतालों में मुफ्त सेवा पाता है, फिर सामान्य जनता से ऐसा व्यवहार करता है मानो वह मालिक हो और जनता उसकी नौकर। इसी कारण सरकारी नौकरी के लिए समाज में इतनी मारामारी है। इस प्रवृत्ति को समाप्त किया जाना चाहिए। सरकारी अधिकारी को उसके प्रत्येक कृत्य के लिए उत्तरदायी ठहराना चाहिए।

धार्मिक कार्यों के लिए सरकारी धन का अपव्यय

अत्यन्त खेद की बात है कि हमारी सरकार हज की यात्रा, मस्जिद निर्माण व मरम्मत, हज भवन निर्माण तथा ऐसे ही धार्मिक कार्यों के लिए जनता की गाढ़ी कमाई खर्च करती है। देश को जन्मतः धर्मनिरपेक्ष स्वीकार कर लिया गया है तब धार्मिक कार्यों के लिए जनता के धन का अपव्यय नहीं होना चाहिए। उदारता और सहिष्णुता अच्छी बातें है, किन्तु तुष्टीकरण के नाम पर किसी एक मतावलम्बियों को सुविधाएँ देते जाना भी घोर अन्याय है। तुष्टीकरण हमारे दश का ऐसा महारोग है, जिसने सारे देश और सारी राजनैतिक पार्टियों को ग्रसित कर लिया है।

हमारा प्रजातन्त्र शिथिल, कमजोर और बूढ़ा लगने लगा है। उसमें स्वयं को सम्भाल रखने की ताब नहीं है, न चुस्ती है, न स्फूर्ति, न उत्साह। हमारा प्रजातन्त्र एक 'डायनासोर' की तरह है, जिसके मुँह को पता नहीं कि दुंम के पास क्या हो रहा है। यह बड़ी खतरनाक स्थिति है। राष्ट्र को यदि इस राक्षसों से घिरे वातावरण में प्रजातान्त्रिक देश बनकर जीना है, तो यह ढिलाई काम नहीं आएगी, थोड़ी कठोरता और दृढ़ता अनिवार्य होगी ही। ❒

–फ्लैट नं. ११२, प्लाट नं. ५, सौम्या अपार्टमेण्ट, हुडा काम्प्लेक्स, कोत्तापेट, हैदराबाद

लेखनी स्वतः अंगार उगलने लगती है

–रामकृष्ण पाण्डेय 'संजय'

जब राजनीति के पलने में अपराधी पलने लगते हैं,
जब लोकतन्त्र के मर्यादित सिद्धान्त बदलने लगते हैं;
जब अनाचार के सघन मेघ भू-मण्डल पर छा जाते हैं,
दानवी-कर्म मानवता की पावनता को खा जाते हैं;
जब सहन-शक्ति के हिमगिरि की हिमराशि पिघलने लगती है।
तब कविता में लेखनी स्वतः अंगार उगलने लगती है।।

जब मातृशक्ति कामुकता के दर्पण में देखी जाती है,
वासना-पूर्त्ति हित रिश्तों की जब अनदेखी की जाती है;
जब विश्व पूज्य भारतभू की शुचिता अपमानित होती है,
अनगिनत अभावों में उलझी 'धनिया' भूखी ही सोती है;
जब आर्यभूमि के गौरव की नीलामी होने लगती है।
तब कविता में लेखनी स्वतः अंगार उगलने लगती है।।

जब महापुरुष भी सरेआम सड़कों पर गाली खाते हैं,
'आजाद' सरीखे बलिदानी आतंकी बतलाये जाते हैं;
जब चोर-उचक्के तक भारत की संसद् में घुस जाते हैं,
गोविन्द-शिवा की धरती पर जब कायर पूजे जाते हैं;
जब अवसरवादी राजनीति मनमानी करने लगती है।
तब कविता में लेखनी स्वतः अंगार उगलने लगती है।।

जब सत्ता लोलुप जाति-पन्थ के बीज उगाने लगते हैं,
अनपढ़ अपराधी-चाटुकार जब देश चलाने लगते हैं;
जब बगुले-कौवों के आगे अपने को बौने पाते हैं,
जब भरी विधानसभाओं में जूते-चप्पल चल जाते हैं;
जब स्वार्थ-पूर्ति हित संविधान की हत्या होने लगती है।
तब कविता में लेखनी स्वतः अंगार उगलने लगती है।।

– झज्झर, बिसवाँ, सीतापुर– २६१२०१

पुस्तक परिचय

– डॉ० दुर्गा शंकर मिश्र

(१) दिल्ली की गद्दी सावधान

श्री दामोदर स्वरूप 'विद्रोही' की १८ कविताओं का संकलन 'दिल्ली की गद्दी सावधान' स्वतन्त्र–भारत के कांग्रेसी कर्णधारों के काले–कारनामों को उजागर करने वाली कृति है। इन कविताओं का सृजन सन् १९५६ ई० से सन् १९८० ई० के अन्तराल में हुआ है। स्वतन्त्रता–संग्राम के समय क्या सपने राष्ट्र ने सँजोये थे और स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् उन सपनों को चकनाचूर करके स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित राजनीतिज्ञों ने हमें क्या दिया, इसका लेखा–जोखा एक जागरूक राष्ट्र–प्रहरी के रूप में कविवर 'विद्रोही' की लेखनी के माध्यम से इन लम्बी कविताओं में मुखरित हुआ है।

'विद्रोही' जी की क्रान्तिकारी भावनाओं में उद्दामता का रक्त दौड़ता रहता है। इसीलिए स्वतन्त्रता–पूर्व के जनमानस के विश्वास को चकनाचूर होता हुआ देखकर उनका हृदय अपने उद्गार नहीं रोक पाया और वह गा उठा–

लेखनी से और वाणी से सदा ही,
बन सका इस देश को मैंने जगाया।
झूठ से पोषित हुए वातावरण में,
सत्य कहने का कसैला मूल्य पाया।।
किन्तु मैंने कुछ न की परवाह इसकी,
शुद्ध कवि के धर्म का पालन किया है।
रोशनी को रोशनी, तम को कहा तम,
चेतना की ज्योति का वन्दन किया है।।

कवि ने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि अपने ही प्रतिनिधियों द्वारा देश की अस्मिता, उच्चादर्श, नैतिक आचरण, संस्कृति और इतिहास का इस प्रकार उपहास किया जायेगा। जनतन्त्र में भी एक परिवार का शासन इतना लम्बा चलता रहेगा–

कब तलक इस देश का बहुमत नपुंसक,
एक घर की मान्यता ढोता रहेगा?
जल रहे हों देश के दोनों सिरे जब
मौन शासक–तन्त्र तब सोता रहेगा?

राष्ट्रभाषा की उपेक्षा और विदेशी भाषा के वर्चस्व पर तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

आजाद वतन की नई तामीर देखिये
जलते हुए भारत की ये तस्वीर देखिये।
इसको स्वतन्त्रता कहें, अभिशाप कहें हम
भाषा स्वदेश की जहाँ हतभागिनी रही।।

देश–प्रेम तथा राष्ट्रीय भावनाओं से सराबोर यह काव्य–संकलन क्रान्तिकारियों के भीष्म पितामह स्वातन्त्र्य–वीर विनायक दामोदर सावरकर की पावन–स्मृति को समर्पित है।

भाषा सरल हिन्दी है। उर्दू के शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है। प्रत्येक कविता वीर–रस से पूर्ण उत्साहवर्द्धक एवं प्रेरणादायक है। पुस्तक का मुद्रण शुद्ध साफ–सुथरा, कागज अच्छा है। आवरण पृष्ठ बड़ा ही आकर्षक है। पुस्तक संग्रहणीय, विचारोत्प्रेरक तथा उपादेय है। हिन्दी भाषी जनता में इसका सम्मान होगा, ऐसी आशा है। ▭

नाम पुस्तक : दिल्ली की गद्दी सावधान, **विधा :** कविता
रचयिता : श्री दामोदर स्वरूप 'विद्रोही'
प्रथम संस्करण : सन् १९९८ (सन् १९७१ में जब्त हो चुकी है)
प्रकाशक : मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली–३२
मूल्य : १०० (सौ रुपये), **पृष्ठ संख्या :** १२०

(२) गुलाम शैशव

आलोच्य पुस्तक 'गुलाम शैशव' कविवर श्री दामोदर स्वरूप 'विद्रोही' की १५ प्रारम्भिक रचनाओं का संकलन है। इन रचनाओं का लेखन सन् ४३ से लेकर ४७ ई० सन् के अन्तराल में हुआ है, जब देश पराधीनता की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ था तथा दासता की उन जंजीरों को काटने के लिए बेचैन था। इन कविताओं के शीर्षक ही उनके कथ्य के उद्देश्य को उद्घाटित करते हैं– नाम परिचय, नौकरशाही, आजादी का तराना, कर्त्तव्य देश के वीरों का, चाह एक साथी की, स्वराज्य कैसे पायें, बलिया की चिता, नहीं पहले–सा आज वसन्त, दिल्ली मेरी बने अयोध्या, देश के तरुण चलो बंगाल, उठ–उठ भारत के

(शेष पृष्ठ ८२ पर)

आखिर विकल्प क्या है वर्तमान संसदीय प्रणाली का

– डॉ० गौरीनाथ रस्तोगी

आज से ५२ वर्ष पूर्व स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् भारत ने ब्रिटेन में प्रचलित संसदीय शासन–प्रणाली को स्वाभाविक रूप से इसलिए अपना कण्ठहार बना लिया था, क्योंकि तत्कालीन भारतीय राजनीतिक नेतृत्व की दृष्टि में संसार के ज्ञात इतिहास में ब्रिटेन, अत्यन्त विशालकाय साम्राज्य इसी शासन–प्रणाली के अन्तर्गत रहते हुए प्रस्थापित कर सका था। इस विषय में भी कोई दो मत नहीं हैं कि १९४७ में भारत को स्वातन्त्र्य प्राप्त होने के समय का कांग्रेसी नेतृत्व ब्रिटेन सहित पश्चिम की समृद्धि और विकास तथा उसकी गति से अत्यन्त अभिभूत था। स्वदेशी राजनीतिक चिन्तन की बात राजनेता इस व्यवस्था से भलीभाँति परिचित हैं; क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने उसका क्रमिक विकास इस देश में सन् १८५३ से ही करना शुरू कर दिया था। इसी आधार पर स्वाधीन भारत का संविधान बनाते समय संविधान निर्माताओं ने ब्रिटेन की वेस्टमिन्स्टर प्रणाली या संसदीय शासन–व्यवस्था को बिना किसी विरोध के एकमत से सरलता के साथ स्वीकार कर लिया।

इस संसदीय प्रणाली पर आधारित भारतीय संविधान जब अपनी रचना की अन्तिम मंजिल पर पहुँच रहा था, तब संविधान सभा के एक प्रमुख सदस्य के० संथानम् के मस्तिष्क में यह विचार कौंधने लगा कि संविधान के इस

किसी भी देश की शासन–व्यवस्था उसकी राष्ट्रीय अस्मिता एवं राजनीतिक विरासत के अनुरूप ही होनी चाहिए अन्यथा वह कभी भी सफल नहीं हो सकती। अनेक विचारक और बुद्धिजीवी अब इस सच्चाई को स्वीकार करने लगे हैं कि स्वाधीन भारत के ५२ वर्षों के उपरान्त भी आज जो दिशाहीनता, राजनीतिक अवसरवादिता एवं सार्वजनिक जीवन में अराजकता की गम्भीर समस्या सुरसा के मुख की भाँति मुँह बाए खड़ी है, वह इस आयातित शासन–व्यवस्था का ही दुष्परिणाम है। वैसे भी ब्रिटेन की संसदीय शासन–प्रणाली कभी भी निर्विवाद नहीं रही है। फ्रांस में वह पूर्णतया विफल सिद्ध हो चुकी है; क्योंकि दूसरे विश्व–युद्ध के उपरान्त उसने वहाँ पर ऐसी विकट राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न कर दी कि फ्रांस ने उस संसदीय शासन–प्रणाली को 'नमस्कार' कर देना ही उचित समझा। आज से दो सौ वर्ष से अधिक समय पहले अमेरिका के राजनेताओं एवं शासनकर्त्ताओं के बड़े बहुमत के ब्रिटिश मूल के होने के बाद भी उन्हें वेस्ट मिन्स्टर नमूने की संसदीय शासन–प्रणाली को अपनाना गवारा न हो सका; क्योंकि वह अमेरिकी परिवेश के अनुकूल नहीं थी। कार्लाइल जैसे श्रेष्ठ पश्चिमी विद्वान् ने तो संसदीय शासन–प्रणाली की ब्रिटिश संसद् को 'बकवास करने का अड्डा' बताकर उसकी कड़े शब्दों में भर्त्सना की है।

तो उसकी कल्पना–शक्ति को भी अग्राह्य थी। मात्र गांधी जी और उनके कुछ रचनात्मक सहयोगियों के अतिरिक्त भारत के राजनीतिक जीवन–मूल्यों एवं शासन–पद्धतियों का ज्ञान किसी को भी नहीं था। अतः वे अपवाद थे। फिर गांधी जी तो उस समय औपचारिक रूप में कांग्रेस के सदस्य तक नहीं थे। अतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्थाओं से पूरी तरह अपरिचित एवं ब्रिटिश शासन–प्रणाली से अभिभूत तत्कालीन भारतीय राजनीतिक नेतृत्व ने भारतीय परिवेश से सन्दर्भहीन संसदीय शासन–प्रणाली के पक्ष में अपना 'फतवा' देते हुए यह तर्क गढ़ लिया कि भारतीय प्रस्तावित प्रारूप में स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले गांधीजी के राजनीतिक विचारों की पूर्णतया उपेक्षा कर दी गयी है। अतः उन्होंने कांग्रेस के तत्कालीन नेतृ–वर्ग तक गुहार लगायी। नेतृत्व ने संवैधानिक प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ० भीमराव राम जी अम्बेडकर और संवैधानिक परामर्शदाता बी०एन० राऊ से परामर्श किया। उन्होंने एक स्वर से आपत्ति के औचित्य को स्वीकार किया; परन्तु साथ में यह भी कहा कि यदि गांधीवादी सिद्धान्तों के आधार पर संविधान का प्रारूप तैयार किया जाये, तब नये सिरे से संविधान–रचना का कार्य आरम्भ करना होगा

तथा उसमें कई वर्षों का समय लगेगा। पर नेतृ–वर्ग का कहना था कि यदि गांधीवादी दर्शन एवं सिद्धान्तों की इस तरह खुली अवज्ञा और अवहेलना की गयी, तब वे देश की जनता को कैसे सन्तुष्ट कर सकेंगे? ऊहापोह की इस विचित्र स्थिति में एक मार्ग खोजा गया और हिन्दू अथवा भारतीय राजनीतिक जीवन–दर्शन पर आधारित गांधी जी के ग्राम स्वराज्य के सिद्धान्तों को, पंचायतीराज–व्यवस्था, गोवंश के पालन, संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा मद्यनिषेध आदि व्यवस्थाओं को राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत संविधान के चौथे अध्याय में शामिल करके अपने कर्तव्य को पूरा हुआ मान लिया गया।

आयातित संवैधानिक व्यवस्था के दुष्परिणाम

इस प्रकार संविधान निर्माताओं ने तात्कालिक रूप से भले ही समस्या का हल ढूँढ़ लेने का भ्रम पाल लिया हो; लेकिन उससे भारत के सर्वतोमुखी नव–निर्माण की प्रक्रिया को आज तक शुरू नहीं किया जा सका है। इसका कारण यह है कि किसी भी देश की शासन–व्यवस्था उसकी राष्ट्रीय अस्मिता एवं राजनीतिक विरासत के अनुरूप ही होनी चाहिए अन्यथा वह कभी भी सफल नहीं हो सकती। अनेक विचारक और बुद्धिजीवी अब इस सच्चाई को स्वीकार करने लगे हैं कि स्वाधीन भारत के ५२ वर्षों के उपरान्त भी आज जो दिशाहीनता, राजनीतिक अवसरवादिता एवं सार्वजनिक जीवन में अराजकता की गम्भीर समस्या सुरसा की भाँति मुँह बाए खड़ी है, वह इस आयातित शासन–व्यवस्था का ही दुष्परिणाम है। वैसे भी ब्रिटेन की संसदीय शासन–प्रणाली कभी भी निर्विवाद नहीं रही है। फ्रांस में वह पूर्णतया विफल सिद्ध हो चुकी है; क्योंकि दूसरे विश्व युद्ध के उपरान्त उसने वहाँ पर ऐसी विकट राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न कर दी कि फ्रांस ने उस संसदीय शासन–प्रणाली को 'नमस्कार' कर देना ही उचित समझा। आज से दो सौ वर्ष से अधिक समय पहले अमेरिका के राजनेताओं एवं शासनकर्त्ताओं के बड़े बहुमत के ब्रिटिश मूल के होने के बाद भी उन्हें वेस्ट मिन्स्टर नमूने की संसदीय शासन–प्रणाली को अपनाना गवारा न हो सका; क्योंकि वह अमेरिकी परिवेश के अनुकूल नहीं थी। कार्लाइल जैसे श्रेष्ठ पश्चिमी विद्वान् ने तो संसदीय शासन–प्रणाली की ब्रिटिश संसद् को 'बकवास करने का अड्डा' बताकर उसकी कड़े शब्दों में भर्त्सना की है।

लेकिन भारत के सन्दर्भ में अमेरिका की राष्ट्रपति शासन–प्रणाली, फ्रांस की मिश्रित शासन–व्यवस्था अथवा संसार के कुछ अन्य देशों में प्रचलित अधिनायकवादी शासन–व्यवस्थाएँ भी उसका विकल्प नहीं हो सकतीं, क्योंकि वे सब भी भारत की सनातन और युगयुगीन राष्ट्रीय संस्कृति की मूल प्रवृत्ति के पूरी तरह विरुद्ध हैं। इसके साथ ही इन शासन–प्रणालियों ने विश्व का अत्यधिक अकल्याण भी किया है। अपने आपको आज विश्व का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र होने का दावा करनेवाले अमेरिका ने वहाँ के मूल निवासियों का पूरी तरह उच्छेदन एवं उन्मूलन कर डाला है। इसी तरह कीनिया के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता जोमो केन्याटा का कहना था कि जब यूरोपीय जातियाँ अफ्रीकी महाद्वीप में आयीं, तब हम अपने आप में मस्त रहते हुए शान्ति के साथ अपना जीवन–यापन कर रहे थे। अफ्रीका की समस्त भूमि के हम स्वामी थे। इन यूरोपीय आगन्तुकों के हाथ में तो केवल बाइबिल थी। लेकिन उनके द्वारा सभ्य बनाये जाने के मोहजाल में हम अफ्रीकी ऐसे फँसे कि जब हमारी तन्द्रा टूटी, तो देखा कि बाइबिल तो हम अफ्रीकियों के हाथ में आ गयी थी और समस्त अफ्रीकी भूमि इन यूरोपीय आगन्तुकों के कब्जे में चली गयी थी।

पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति का यही क्रम रहा है। उसने आज तक संसार के मानवीय जीवन को सही अर्थों में मानवीय बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया है। कल्पनातीत भौतिक एवं तकनीकी प्रगति करने के बावजूद उसने पारिवारिक संस्था तक को विनष्ट कर दिया है। पश्चिमी जगत् का पूँजीपति मानवीय संवेदनाओं को दफनाकर अपने बीवी–बच्चों के कल्याण और हित–चिन्ता के स्थान पर (अन्धा होकर) अधिकाधिक धन जुटाने के पीछे पड़ा है। उसे नैतिकता, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक तथा आत्मिक विकास की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। धन कमाने के पीछे अँधरियाये होकर वह विनाशकारी आणविक, रासायनिक एवं जैविक हथियारों

अधिनायकवादी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन आदि ने मानव जाति पर जिस तरह कहर बरपा है, उसे हम सभी जानते हैं। इसी अधिनायकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत रूस में सोवियत क्रान्ति का अग्रदूत लेनिन तड़प–तड़प कर मरा था। कहा जाता है कि उसे स्टालिन द्वारा विष दिया गया था। लेनिन की पत्नी क्रुप्सकाया की तो मान्यता यही थी।

को बेचता हुआ मौत का सौदागर बन गया है। दूसरी ओर वहाँ का साधारण व्यक्ति भौतिक सुखोपभोग एवं जीवन की दैनन्दिन वस्तुओं को जुटाने में इतना अधिक बेचैन है कि बच्चों की अपने माता–पिता से तथा पति–पत्नी की एक–दूसरे से भेंट सप्ताहान्त या अवकाश के दिन ही हो पाती है। पश्चिमी जगत् में अस्तित्ववाद का राजनीतिक दर्शन विकसित होने की यही पृष्ठभूमि है, जिसका विशद विश्लेषण ज्याँ पाल सार्त्र नामक दार्शनिक विद्वान् ने किया है। अतः इस सामाजिक–राजनीतिक परिवेश में यदि वहाँ कुण्ठा, सन्त्रास, अव्यवस्था, विघटन, पतन, चरित्रहीनता, असुरक्षा, विश्रृंखलता और अस्थायित्व जीवन का नियम बनकर युवा पीढ़ी को हेरोइन, मारीजुआना और एल०एस०डी० का शिकार बनाकर समलैंगिक, उभयलैंगिक और वैलैंगिक कामुकता के स्वैराचारी जीवन की ओर धकेल रहे हैं, तो क्या आश्चर्य ?

अधिनायकवादी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन आदि ने मानव जाति पर जिस तरह कहर बरपा है, उसे हम सभी जानते हैं। इसी अधिनायकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत रूस में सोवियत क्रान्ति का अग्रदूत लेनिन तड़प–तड़प कर मरा था। कहा जाता है कि उसे स्टालिन द्वारा विष दिया गया था। लेनिन की पत्नी क्रुप्सकाया की तो मान्यता यही थी। स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना अपने पिता से बात करते हुए खौफ खाया करती थी। पिछले कुछ वर्षों में अधिनायकवादी व्यवस्था के सोवियत संघ के बिखरने और पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों में हुए व्यापक राजनीतिक परिवर्तनों ने इस 'जनवादी अधिनायकवाद' का खोखलापन पूरी तरह उघाड़ कर रख दिया है।

इसी अधिनायकवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अपने राष्ट्र का जीवन संचालित करते हुए चीन ने तीव्र–गति से आर्थिक विकास करने की दृष्टि से पश्चिम की पूँजीवादी व्यवस्था को अपनाकर प्रारम्भ में अपनी अर्थव्यवस्था को सुधारने में कुछ सफलता तो अवश्य प्राप्त की; परन्तु इस अर्थव्यवस्था के साथ आ रही पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति ने सामाजिक, राजनीतिक जीवन में चल रहे अधिनायकवाद को चुनौती देना शुरू कर दिया। फलस्वरूप जून, १९९० का तियेनमान चौक का वह नृशंस मानवीय हत्याकाण्ड घटित हुआ, जिसकी दूसरी मिसाल आधुनिक समय में ढूँढ़ पाना कठिन है।

इस उपभोक्तावादी एवं भोगवादी संस्कृति के दुष्परिणामों से लियो टाल्स्टॉय, एडवर्ड कारपेण्टर, टेलर, थोरो, रस्किन, केन, अल्फर्ड वेब, जे० सीमोर, विक्टर कार्निज, मैक्समूलर, फ्रेडरिक वॉन श्लेगल, जे०ए० दुबोई, जे० यंग, सर विलियम वर्ड्सवर्थ, कॉन बैंडिट, एरिक फ्रोम आदि न जाने कितने ही विद्वानों ने मानवता को आगाह करने का कार्य पिछले डेढ़ सौ वर्षों में किया है। लेकिन दुर्भाग्यवश स्वाधीन भारत में इस देश की राष्ट्रीय अस्मिता की उपेक्षा करते हुए पश्चिम के भौतिकवादी विकास को हमने प्रगति का मानदण्ड मानकर नेहरूवादी मिश्रित अर्थ–व्यवस्था या विकास का नेहरूवादी प्रतिमान घोषित कर उसी विनाशकारी मार्ग पर कदम आगे बढ़ा दिये, जिससे आज सम्पूर्ण यूरोप, अमेरिका एवं संसार का अधिकांश भाग दुःखित और पीड़ित है। अतः जब तक उसे गले से लगाये रखकर हम आगे बढ़ते रहने का प्रयास करते रहेंगे, तब तक भारत को दुर्दिन, दुर्भाग्य और दुरवस्था से मुक्ति नहीं मिल सकेगी। फिर उसमें समायोजन करने के लिए हम भले ही संसदीय शासन–प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रपति शासन–प्रणाली, उनके मिश्रित रूप या अधिनायकवादी व्यवस्था से सम्बन्धित राजनीतिक विकल्पों को गले लगा लें। इसका कारण यह है कि ये सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ पश्चिमी जगत् की उपभोक्तावादी संस्कृति से निःसृत हुई हैं। अतः उनसे समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा और हालात दिन–ब–दिन बदतर होते जायेंगे, जैसाकि १९४७ से आज तक होते गये हैं।

संस्कृति के अनुकूल शासन–व्यवस्था

अब प्रश्न यह है कि इस चक्रव्यूह से मुक्ति का उपाय क्या है ? इस सम्बन्ध में आधुनिक युग के अन्दर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, योगिराज अरविन्द, विपिन चन्द्र पाल, श्री गुरुजी, दीनदयाल उपाध्याय आदि ने इस देश की राष्ट्रीय संस्कृति एवं विरासत के अनुकूल शासन–व्यवस्था विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। वर्त्तमान समय में सुप्रसिद्ध विचारक दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने अपने आपको दीनदयाल उपाध्याय प्रणीत एकात्म–मानववाद की व्याख्या करने में संलग्न कर रखा है। इन सभी प्रबुद्ध जनों का यह सुनिश्चित मत रहा है कि भारत में उसकी संस्कृति के अनुरूप राजनीतिक व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए। उनका यह भी कहना है कि भारत में राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर आधारित जनपदीय व्यवस्था सदैव विद्यमान रही है। इसके अन्तर्गत शीर्ष–स्तर पर राष्ट्रीय सरकार रहती है और जनपदीय इकाइयाँ

शासन का आधार हुआ करती हैं। इस एकात्मवादी शासन–व्यवस्था में जनपद और केन्द्र सरकार एक दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी नहीं होते, क्योंकि जनपद अपनी शक्तियाँ संविधान से प्राप्त करने के साथ–साथ स्वावलम्बी होंगे, जैसा कि वे अतीत में थे। गांधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में इसे 'ग्राम–स्वराज्य' या 'राम–राज्य' कहकर पुकारा है। पुनः इस भारतीय व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति और आर्थिक शक्ति को संयुक्त नहीं होने दिया जाता तथा अबाधित आर्थिक आय मुट्ठी भर लोगों के हाथों में केन्द्रित नहीं होने दी जाती। इसके लिए उत्पादन सम्बन्धी व्यवस्थाओं में प्रबन्ध और लाभ के अन्दर श्रमिक वर्ग को बराबर का भागीदार बनाया जाता है। राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिनिधित्व भौगोलिक इकाई को आधार न मानकर आजीविका को केन्द्र–बिन्दु बनाकर दिया जाता है। फलस्वरूप ज़ातियों की कुटिल राजनीति के विकसित होने की आशंकाएँ शून्य हो जाती हैं। इस एकात्मवादी मानववाद के राजनीतिक दर्शन की उपयोगिता को स्वीकार करके सुप्रसिद्ध अमेरिकी राजनीति–शास्त्री नार्मन डी० पामर ने दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक दर्शन पर गहन अध्ययन किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है। लेकिन आजादी के गत ५२ वर्षों में भौतिकतावादी एवं उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति हमारे ऊपर इतनी अधिक हावी हो गयी है कि दीनदयाल उपाध्याय के अनुयायियों ने भी एक तरह से उनके श्रेष्ठ राजनीतिक दर्शन को भुला दिया है। यही कारण है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से लेकर १९४७ तक इस देश में प्राचीन हिन्दू राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल, दीक्षितार, भण्डारकर, अल्तेकर, डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० भगवानदास, बद्रीप्रसाद ढुलवालिया आदि विद्वानों ने जितना कार्य किया है, उसका शतांश भी पिछले ५२ वर्षों में आज तक नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मानवेन्द्र नाथ राय और जयप्रकाश नारायण जैसे मनीषियों ने अपना राजनीतिक जीवन इस देश में प्रखर मार्क्सवादी नेता एवं विचारक के रूप में शुरू किया था; किन्तु अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव पर वे भारतीय या हिन्दू जीवन दर्शन पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था कायम करने पर बल देने लगे थे। जयप्रकाश नारायण की दलविहीन लोकतन्त्र की अवधारणा गांधी जी के ग्राम स्वराज्य पर ही आधारित थी। इसी तरह अपने नव मानवतावाद के राजनीतिक दर्शन द्वारा मानवेन्द्र नाथ राय पश्चिमी राजनीतिक दर्शन एवं व्यवस्था के जुए को उतार फेंक कर भारतीय मान्यताओं से जुड़ने लगे थे। यदि वे पाँच–सात वर्ष और जीवित रहते, तो अपने नव मानवताताद को निश्चय ही पूर्ण रूप से भारतीय परिवेश के अनुकूल ढाल लेते। अतः पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था के मोहपाश से मुक्ति पाकर विशुद्ध भारतीयता पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया जाना ही अपने राष्ट्र के लिए कल्याणकारी होगा। नान्यः पन्थः। ◻

– 'कामधेनु', ४१७/२६८ क, टेढ़ी खजूर, निवाजगंज, लखनऊ–२२६००३

(पृष्ठ ७८ का शेष) **पुस्तक समीक्षा**

नौजवान, जयहिन्द, नेताजी के प्रति, एक सैनिक की भावना तथा भारतीय नारियों के नाम।

सभी रचनाएँ सरल भाषा में ओजस्वी स्वर को मुखरित करती हैं। पराधीन भारत की दयनीय दशा का जीवन्त चित्र इन कविताओं के पठन अथवा श्रवण से हमारे नेत्रों के समक्ष उभरकर आ जाता है। 'विद्रोही' जी की कविता की प्रत्येक पंक्ति विद्रोही स्वरों की हुँकार भर रही है। कवि मञ्चों से उनकी वाणी को सुनकर जनता उत्साहित होती है; प्रेरणा ग्रहण करती है तथा कुछ करके दिखाने का संकल्प लेती है।

कवि 'विद्रोही' का विश्वास है कि स्वतन्त्रता भीख माँगने से नहीं मिलती है, उसके लिए प्राण–न्यौछावर करने पड़ते हैं। उसका यह विश्वास निम्न पंक्तियों में बोल रहा है–

माँगे राज्य नहीं मिलता है, मिलता नहीं पुकारों से।
मिलता है लड़ने–भिड़ने से, मिलता है तलवारों से।।
कुरुक्षेत्र कहता, लंका कहती, हम कैसे समझाएँ।
क्रान्ति न करते भारतवासी फिर स्वराज्य कैसे पाएँ।।

संकलन की सभी रचनाएँ पठनीय, संग्रहणीय एवं प्रेरणाप्रद हैं। इनमें अतीत के वीर योद्धाओं का पुण्य स्मरण है। सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण तथा शासकों के क्रूर आचरण की यथार्थ छवि देखकर, सुनकर एक आक्रोश उत्पन्न होता है। ◻

पुस्तक का नाम : गुलाम शैशव, **विधा :** कविता,
रचयिता : श्री दामोदर स्वरूप 'विद्रोही'
प्रथम संस्करण : १९९८
प्रकाशक : मेधा बुक्स, एक्स–११, नवीन शाहदरा, दिल्ली–३२, **मूल्य :** ६० रु०

– सद्भावना नगर, बिरहाना, लखनऊ।

हमारा लँगड़ाता लोकतन्त्र

– डा० रति सक्सेना

कुछ दिनों पहले का ही किस्सा है, पत्रकारिता की एक छात्रा ने प्रश्नोत्तरी तैयारी की, जिसमें देश की तत्कालीन समस्या पर कुछ प्रश्न थे, जिनके जवाब "हाँ या "नहीं" में देने थे। ज्यादातर सवाल धर्म–परिवर्त्तन के मुद्दों को लेकर उठाए गये थे मसलन– क्या आप धर्म–परिवर्त्तन में विश्वास करते हैं? ....आदि आदि... वह छात्रा ऐसी सौ प्रश्नोत्तरियाँ लेकर करीब चार सौ महिलाओं के पास गयी, पर आश्चर्य की बात यह है कि अधिकतर महिलाओं ने प्रश्नोत्तरी पढ़ने से पहले ही लौटा दिया। कारण जानना चाहेंगे? ... "हम लोग राजनीतिक मुद्दों पर बहस कर किसी मुसीबत में पड़ना नहीं चाहते हैं।' ...जी हाँ, यही कारण था। यानी धर्म–परिवर्त्तन, धर्म के कारण नर–संहार आदि सारे मुद्दे राजनीतिक हो गये। वे महिलाएँ किसी देहात की अनपढ़ महिलाएँ नहीं थीं; अपितु देश के पूर्ण साक्षर प्रान्त की पढ़ी–लिखी नौकरीशुदा महिलाएँ थीं, जिनमें से कुछ शिक्षिकाएँ और कुछ सरकारी कर्मचारी थीं।

कई घटनाएँ हम रोज अखबार में पढ़ते हैं। टी०वी० में देखते हैं। ब्रेड–आमलेट खाते वक्त दूरदर्शन बिहार के किसी कत्लेआम का दृश्य दिखाता है, तो भी ब्रेड का स्वाद फीका नहीं पड़ता है। अखबार में छपी दुर्दान्त दुर्घटना की खबर भी हमारा दिन खराब नहीं करती है। दुर्घटना से पड़ी दम तोड़ती लाशें पुलिस के आने का इन्तजार करती रहती हैं। आखिर क्या हो गया है हमें? क्या हम वापिस आदिम युग में चले गये? क्या हमारी संवेदनाएँ सो गयीं? क्या कारण है कि पढ़े–लिखों की मनोवृत्ति भी "कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।।" का अनुकरण करने लगी है? इन सभी सवालों का जवाब हमें न तो किसी प्रश्नोत्तरी में मिलेगा और न ही किसी शास्त्र या पुस्तक में। खोजना चाहेंगे, तो अपने आप में ही मिलेगा।

आज जिस दौर से हमारा देश, हमारी संस्कृति, हमारी आदमियत गुजर रही है, वह बड़े–बड़े विरोधाभासों से लबालब है। एक ओर हमारी शिक्षा में उन्नति आयी है, तो दूसरी ओर हम स्वार्थी होते जा रहे हैं। एक ओर हमारी व्ययशक्ति में बढ़ोत्तरी हुई है, तो दूसरी ओर हम उदारीकरण के जाल में फँसते जा रहे हैं। एक ओर हमें सामाजिक स्वतन्त्रता मिली है, तो दूसरी ओर हम सन्नाटों में घिरकर मानसिक सन्तुलन खोते जा रहे हैं। एक ओर हममें राजनीतिक चालें समझने की शक्ति आयी है, तो दूसरी ओर हम उन्हीं चालों के शिकार बनते जा रहे हैं।

कहाँ गलती है? हमारी लोकतन्त्र की अवधारणा में? हमारी मानसिकता में? हमारे राजनीतिक दलों में? हमारी अपनी लोक–शक्ति में?

शायद सभी क्षेत्र में हम गलतियाँ करते जा रहे

राजनीतिक पार्टियों का सबसे बड़ा दोष यही है कि उन्होंने अपने और जनता के बीच के फासले को बहुत ज्यादा चौड़ा कर दिया है। उनकी दृष्टि संकुचित होती जा रही है और स्वार्थ विकसित। नहीं तो क्या कारण है कि देश को चलाने वाली मजबूत राजनीतिक पार्टी को एक अधकचरी मानसिकता वाली, अधकचरी राजनीति की जानकारी रखने वाली किसी विदेशी दिलो–दिमाग और खूनवाली ताकत के चरण चूमने पड़ें। ... या फिर घोटालों में घिरी किसी जयललिता की बेवकूफियों को बर्दाश्त करना पड़े। मजे की बात है, यह सब खुले में घट रहा है; सब की आँखों के सामने घट रहा है। सब समझ रहे हैं कि क्या सही है और क्या गलत...फिर भी कोई रोकथाम नहीं कर रहा है; वे भी नहीं, जिन्हें करनी चाहिए। वे बुद्धिजीवी भी नहीं, जो इस घटना–क्रम को समझते हैं और वे शिक्षित भी नहीं, जो हालात के सामने घुटने टेक रहे हैं।

हैं। जानते–बूझते भी गलतियाँ करते हैं। मजे की बात है कि हर पीढ़ी अपनी गलतियों का दायित्व अगली पीढ़ी पर डाल देती है। आने वाली पीढ़ी को कोसती है, उसकी निश्चलता को झिंझोड़ देती है।

सोच कर देखिए कि पढ़ी–लिखी महिला भी अपने विचार प्रकट करने में झिझकती है, तो दोष किसका? देश की ज्वलन्त समस्या में हिस्सा लेना नहीं चाहती, तो कसूरवार कौन है? उसकी शिक्षा? उसका परिवेश? या फिर उसकी मानसिकता? शायद सभी कुछ। हमारी शिक्षा एकांगी है, हमारा परिवेश दूषित है, हमारी मानसिकता आदिम है। पढ़ी–लिखी महिला जानती है कि पुलिस किस तरह परेशान करती है, वह जानती है कि राजनीतिक दलों में कितनी हैवानियत होती है, वह समझती है कि समाज किसी को माफ नहीं करता। शायद यही कारण है कि वह शुतुर्मुर्गी चलन में भलाई समझती है। कम से कम अपना आँचल तो सुरक्षित रहेगा, घर–आँगन में तो आँच नहीं आएगी। ... यह मनोवृत्ति हमारी रग–रग में घर कर गयी है। हमारी दृष्टि इतनी संकुचित हो गयी है कि देश हमारे सामने बड़ा तुच्छ है। हमारे सामने तो बस एक लक्ष्य है आत्मतृप्ति ...आत्मतृप्ति ...बस आत्मतृप्ति... !

अब देखें लोकतन्त्र क्या? पुरानी परिभाषा को न दुहराएँ, तो भी इतना तो कह सकते हैं कि इसमें किसी देश के जन की सोच, समझ और अपनापन निहित होता है। यानी कि किसी देश को आगे बढ़ने में किसी एक समूह की अपेक्षा समूचे देश के नागरिकों को कदम, ताल और लय में एक साथ आगे बढ़ना होता है। लोकतन्त्र का तात्पर्य भेड़चाल नहीं है। लोकतन्त्र का अर्थ देश का अमीबा सा विकास भी नहीं है। लोकतन्त्र का अर्थ देश को खण्ड–खण्ड करना भी नहीं है। इतना तो हम सभी समझते हैं, जानते–बूझते हैं। लेकिन हो क्या रहा है? देश में राजनीतिक दलों का नंगा नाच चल रहा है। धार्मिकता को बदनाम किया जा रहा है। मनोवृत्ति संकुचित होती जा रही है। कारण क्या है? दोषी कौन है?

निःसन्देह हम सभी लोग ...जो इस लोकतंत्र का हिस्सा हैं, हम में मजदूर भी हैं, अफसर भी हैं; श्रमिक भी हैं, पूँजीपति भी हैं; अनपढ़ भी हैं, पढ़े–लिखे भी हैं, राजनीतिक दल भी हैं, धार्मिक दल भी हैं। हम सभी दोषी

(शेष पृष्ठ ९० पर)

कैसा हो मन्त्री

– रघोत्तम शुक्ल

भारतीय लोकतन्त्र का इतिहास मानव सभ्यता के आदि ग्रन्थ वेदों से ही प्रारम्भ हो जाता है। प्राचीन काल से ही जन–आकाक्षाओं का अनुगमन और पोषण भारतीय शासकों की मौलिक राजनीति का अभिन्न और अनिवार्य सिद्धान्त रहा है, शासनांगों और कर्मियों में धर्म, शुचिता, न्याय और नैतिकता की परिपूर्णता 'प्राण' तुल्य अभिरक्षित थी। राज्य के सनातन षडंगों (राजा, मन्त्री, मित्र, निधि, दुर्ग, सैन्य) के लिए ये गुण अभीप्सित थे।

अपने वर्तमान रूप में हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुए बावन वर्ष हो रहे हैं। इस अवधि के अधिकांश काल में कांग्रेस का ही शासन देश में रहा। सत्ता पाकर मदान्ध हुए कांग्रेसियों के शासन में भौतिक वस्तुओं के मूल्य तो बढ़ते गये; किन्तु नैतिक मूल्य लगातार गिरते गये। उनके मन्त्री और पदाधिकारी भोग विलास में लिप्त होकर कोठी, बँगले, कार, बैंक–बैलेन्स बनाने पर ही गृध्र–दृष्टि रखने लगे। कवि रामधारीसिंह 'दिनकर' ने सचेत करते हुए लिखा "कुर्ता कहता मैं बोरिया भी बन सकता हूँ, टोपी कहती मैं थैली भी बन सकती हूँ।" कवि–वाणी का अनादर हुआ और प्रतिशोध रूप उनका काव्य–संग्रह 'परशुराम की प्रतीक्षा', जो आगरा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्वीकृत हो चुका था, हटा दिया गया। इस संग्रह की 'अनार्की' (अराजकता) शीर्षक कविता में कांग्रेसी शासन के भ्रष्टाचार को खूब उजागर किया गया है। यह स्थिति तो कई दशक पुरानी है। शनैः शनैः स्थिति बद से बदतर होती गयी। इन्दिरा गांधी के प्रधान मन्त्रित्व काल में कांग्रेस शासित प्रान्तों में मुख्यमन्त्री 'नामांकित' होने लगे। अपने चाटुकारों को प्रान्तों में 'निर्यात' किया गया, उनके नाम की स्वीकृति देना विधानमण्डल दल की मजबूरी थी। लोकतन्त्र दम तोड़ने लगा। अपने बेटे सञ्जय को प्रधानमन्त्री के रूप में भविष्य में प्रस्थापित करने का कुचक्र चलने लगा; किन्तु 'काल' ने उन्हें विस्थापित कर दिया। इसके अनन्तर मन्त्रि–परिषद् 'लुटेरों का संघ' होता गया। स्वयं प्रधानमन्त्री राजीव गान्धी पर स्विट्जरलैण्ड के बैंक में 'लोटस' कोड नाम से अकूत धनराशि जमा होने का आरोप लगा। रक्षा सौदों में दलाली खायी गयी। विश्वनाथ प्रताप सिंह इसी सबको मुद्दा बनाकर प्रधानमन्त्री की कुर्सी तक सरककर पहुँच गये, किन्तु रीढ़विहीन होने के कारण सत्ता पाने के बाद कोई कार्यवाही नहीं कर सके। नरसिंहराव ने अपनी अल्पमत सरकार को बहुमत में बदलने के लिए घूस का सहारा लिया। करोड़ों रुपये का यूरिया घोटाला किया। अदालतों में जमानत कराते घूमते रहे। कहाँ से कहाँ पहुँच गये हम। दधीचि, दिलीप और रन्तिदेव की सन्तानों ने किस कदर निर्लज्जता का जामा पहन लिया।

याद करें एक ऐतिहासिक वृत्त! चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में 'मेगस्थनीज' भारत आया। उसे यह उत्कण्ठा हुई कि भारत सोने की चिड़िया कैसे हुई? ज्ञात हुआ कि शासन 'प्रधानमन्त्री' चाणक्य के परामर्श पर चलता है। उसकी इच्छा इनसे मिलने की हुई। पता पूछते–पूछते वह आगे बढ़ा। कोई भव्य भवन नहीं दिखाई दे रहा था। सोचा गलत आ गये हैं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि निकट ही 'चाणक्य' की कुटिया है। शाम हो गई थी। कुटिया के द्वार पर मेगस्थनीज पहुँचा। देखा कि कोपीन धारण किये, एक दीपक के प्रकाश में महामन्त्री कुछ लिख रहे हैं। पास ही दूसरा दीपक रखा है, जो जल नहीं रहा है। द्वार पर अतिथि देखकर चाणक्य ने जलता हुआ दीपक बुझाया और दूसरा दीपक प्रज्वलित किया। फिर अभ्यागत से उसके आने का कारण पूछा। अभ्यागत ने कहा, 'महोदय! पहले यह बतलायें कि जब एक दीपक जल ही रहा था, तो उसे बुझाकर दूसरा जलाने की क्या आवश्यकता थी? चाणक्य ने कहा, 'पहले दीपक में राज्य का तेल है, जिससे मैं राज–कार्य कर रहा था। दूसरे दीपक में मेरे वेतन से क्रीत तेल है, जो मेरा व्यक्तिगत है, इसके प्रकाश में मैं अपना व्यक्तिगत कार्य करता हूँ। आप अपने आने का प्रयोजन बतायें। मेगस्थनीज़ ईमानदारी चरित्र और नैतिकता के इस मापदण्ड को देखकर चकित रह गया और कहा कि 'महोदय! मेरी जिज्ञासा शान्त हुई। मैं इस दीपक के प्रकाश में भव्य भारत का मानचित्र देख रहा हूँ।' यात्री ने अपने यात्रा वृत्तान्त 'इण्डिका' में इस घटना का उल्लेख किया है। अब के मन्त्रियों के लिए तब के मन्त्रियों के ऐसे कथानक एक प्रकार से निरर्थक ही हैं।

आज के मन्त्रियों के चयन में सद्गुणों का स्थान गौण है। उनमें दबंगई, दादागिरी, सांसदों, विधायकों को

मिलाये, दबाये रखने की क्षमता आवश्यक है। सम्प्रदाय, जाति, किसी विशिष्ट का बेटा, भतीजा होना भी काफी महत्त्व रखता है। नकली बहुमत निर्मित करने हेतु जितनी कारगर घूस है, उससे कहीं अधिक है मन्त्री पद प्रदान करना। इन आधारों और सिद्धान्तों पर चयनित मन्त्री किस चारित्रिक स्तर के होंगे और उनका कृतित्व किस कोटि का होगा; इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। प्राचीनकाल में ऐसे चयन के मापदण्ड धवल और सतोगुणी थे, जो आज भी ज्यों के त्यों प्रासंगिक हैं। वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, अध्याय १०० में राम ने कुशल–क्षेम पूछने के व्याज, भरत को एक सम्पूर्ण राजनीति का उपदेश दिया है। श्लोक २६ में अमात्यों की नियुक्ति के विषय में भी नीति निर्धारित की है–

"अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसिकर्मसु।।"

(अर्थात् हे भरत! जो घूस न लेते हों, अथवा निश्छल हों, बाप दादों के समय से ही काम करते आ रहे हों तथा बाहर–भीतर से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त करते हो न?)

रग–रग में निश्छलता, शुचिता और श्रेष्ठता ही अमात्य बनने का आधार होना चाहिए।

पञ्चम वेद की मान्यता प्राप्त महाभारत के 'शान्तिपर्व' में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को राजधर्म और राज्यानुशासन के विस्तृत उपदेश दिये गये हैं। वहाँ मन्त्रिमण्डल के गठन का भी उल्लेख है। विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व और गुणों के समावेश का सुन्दर समन्वय अभीष्ट बताया गया है। अध्याय ८३ में लिखा है–

"विद्वांसः क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः।
दण्डनीतौ तु निष्पन्ना मन्त्रिणः पृथिवीपते।।
प्रष्टव्यो ब्राह्मणः पूर्वं नीति शास्त्रस्य तत्त्ववित्
पश्चात् पृच्छेत भूपालः क्षत्रियं नीतिकोविदम्।।
वैश्यशूद्रौ तथा भूयः शास्त्रज्ञौ हितकारिणौ।

(भीष्म कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! विद्वान् क्षत्रिय, वैश्य तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण यदि दण्डनीति के ज्ञान में निपुण हों, तो इन्हें मन्त्री बनाना चाहिए। पहले नीतिशास्त्र का तत्त्व जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण से किसी कार्य के लिए सलाह पूछनी चाहिए। इसके बाद पृथ्वीपालक नरेश को चाहिए कि वह नीतिज्ञ क्षत्रिय से अभीष्ट कार्य के लिए पूछे। तदनन्तर अपने हित में लगे रहने वाले शास्त्रज्ञ वैश्य और शूद्र से सलाह ले।)

मन्त्रिमण्डल के संघटन में वर्णानुसार संख्यानुपात भी निश्चित किया गया है। शान्ति पर्व, अध्याय ८५ में उल्लेख है–

"चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन्।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणिनः।।
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेकविंशति संख्यया।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके।।
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।।

(अर्थात् राजा को चाहिए कि जो वेद–विद्या के विद्वान्, निर्भीक, बाहर–भीतर से शुद्ध एवं स्नातक हों, ऐसे चार ब्राह्मण; शरीर से बलवान् तथा शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धनधान्य से सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचार–विचार वाले तीन विनयशील शूद्र तथा आठ गुणों से युक्त एवं पुराण–विद्या का ज्ञाता एक सूत जाति का व्यक्ति इन सब लोगों का एक मन्त्रिमण्डल बनायें।

आज राष्ट्रीय चरित्र पतनोन्मुख है। लोक–रुचि का परिष्कार करना होगा ताकि लोक सभा में 'डाकू' निर्वाचित होकर न पहुँच सकें। मन्त्रियों की नियुक्ति में उनकी शिक्षा, दीक्षा, संस्कार, चरित्र और नैतिक स्तर को देखना होगा। विविध वर्गों, सम्प्रदायों का ध्यान रखना और सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व भी आवश्यक होता है। सद्गुणवन्त व्यक्ति कम अवश्य हैं; किन्तु उनका भारतभूमि से लोप नहीं हुआ है, न होगा। वे हर वर्ग और क्षेत्र में विद्यमान हैं। चाहिए बस उनका योजक। अपने सनातन और शाश्वत सिद्धान्तों पर चलना सर्वोपरि अभीष्ट होना अपेक्षित है। ❐

– 'शाम्भवी', सी–२१ सेक्टर एम०, अलीगंज हाउसिंग स्कीम, लखनऊ

अतीत

गोलियों और गालियों से
सम्बन्धित रहा है जिनका अतीत,
वे नेता बन कर रहे हैं,
सुरक्षित और ऐश्वर्यपूर्ण
जीवन व्यतीत।

– आशीष कुमार 'अनमोल'
२६३/, सी०वी०डी० कालोनी, सदर बाजार, नई दिल्ली–११००१०

नारी की पूजा

हमारे यहाँ
अभी भी
नारी की पूजा होती है,
इसका ज्वलन्त प्रमाण है
सोनिया जी का उदाहरण है।

– विनोद गाबा
मोहल्ला मसीता हाऊस, ४६/१, थानसेर, कुरुक्षेत्र

हिन्दुस्थान का अधूरा लोकतन्त्र

– ब० ना० जोग

'लोकतन्त्र की सुरक्षा' अर्थात् जन–अधिकारों की सुरक्षा के लिए सैंकड़ों सालों से संघर्ष जारी है। ढाई सौ साल पहले वैज्ञानिक अन्वेषणों का सिलसिला शुरू हुआ, जिसके फलस्वरूप लोग एक–दूसरे के करीब आने लगे। देश की आम स्थिति पर चर्चा शुरू हुई। लोगों को अपनी दुःस्थिति का एहसास होने लगा और साथ ही साथ अपनी शक्ति का भी। इसी एहसास से अभिभूत हो अमेरिका ने १७७५ में इंग्लैंड के खिलाफ स्वतन्त्रता–युद्ध छेड़ा, फ्रांस के लोगों ने स्वतन्त्रता, समता तथा बंधुता का जयघोष कर सामंतशाही खत्म कर दी। इंग्लैण्ड में आद्यौगिक क्रान्ति के पूर्व ही लोग सजग हुए थे। उन्हें अपने अधिकारों का एहसास हुआ था। उन्होंने राजा जॉन से मैग्ना चार्टा अर्थात् अपने अधिकारों का घोषणापत्र मंजूर करवा लिया था। इंग्लैण्ड के लोग इतना ही करके नहीं रुके, उन्होंने उस राजा चार्ल्स को सूली पर चढ़ाया, जो स्वयं को ईश्वर का अवतार मानकर जनता पर जुल्म ढा रहा था।

रूस में जुल्मी राजा (जार) के खिलाफ जनता ने बगावत की। चीन के लोगों ने भ्रष्ट कुओमितांग शासन (विदेशियों के इशारों पर चल रहा था,) के खिलाफ संघर्ष किया। रूस और चीन में क्रान्ति इसी शताब्दी में हुई। इस क्रान्ति के नेताओं ने मार्क्स की साम्यवादी विचार–प्रणाली को शिरोधार्य माना। इन दोनों ही देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने जुल्मी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए मार्क्स की विचार–प्रणाली के तहत राज्यक्रान्ति की; लेकिन क्रान्ति के पश्चात् जो जनता–राज स्थापित हुआ, वह जनता का न रहकर कम्युनिस्ट पार्टी का राज हुआ, जिस में पार्टी की तानाशाही शुरू हुई। इस तानशाही से मुक्ति पाने के लिए दस साल पूर्व कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ लोग बगावत कर उठे और रूस के कम्युनिस्ट तानाशाह बने गोर्बाचेव ने ही सोवियत यूनियन के बिखराव का मार्ग प्रशस्त किया। चीन में वहाँ की कम्युनिस्ट तानाशाही से मुक्ति दिलाने के लिए छात्रों ने बगावत की। सरकार ने इस विद्रोह को कुचल डाला। छात्रों का कत्ले–आम हुआ। इसे तिएनमान विद्रोह के नाम से जाना जाता है। राजधानी पेइचिंग के तिएनमान चौराहे पर छात्रों ने बगावत का झंडा फहराया था।

यह उस संघर्ष का इतिहास है, जो जनता ने लोकतन्त्र की रक्षा के लिए गत दो सौ वर्ष छेड़ा था। अमेरिका के ऐसे संघर्ष को भी स्वाधीनता संग्राम कहा गया; क्योंकि उनकी लड़ाई विदेशी ब्रिटिश शासन के खिलाफ थी। शेष सभी संघर्ष स्थानीय जनता ने स्वदेश की जुल्मी सत्ता के खिलाफ किये थे। यद्यपि अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम ब्रिटिशों के खिलाफ था, तथापि इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वह ईसाई स्वधर्मियों के खिलाफ था।

हमारे देश का 'लोकतन्त्र बचाओ' संघर्ष बिल्कुल भिन्न था। वह विदेशी शासन के खिलाफ था। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दुस्थान पर मुसलमानों का आक्रमण शुरू हुआ और ग्यारहवीं सदी के पूर्व ही यहाँ इस्लामी राजसत्ता ने डेरा जमाना शुरू किया। इस्लामी राजसत्ता यहाँ की जनता के खिलाफ तो थी ही, साथ ही वह इस देश के धर्म के खिलाफ भी थी। यह सत्ता केवल जुल्म ढानेवाली ही न थी, अपितु धार्मिक अत्याचारों से उत्प्रेरित थी। हमारा समाज हजारों वर्ष जिस धर्म और संस्कृति का परिपालन करता रहा था, उस धर्म और संस्कृति को ही नष्ट करने के लिए मुस्लिम–आक्रमण होते रहे। लोकतन्त्र का तो यहाँ नाम भी न था।

लोकतन्त्र के माने हैं लोगों की इच्छा के अनुरूप चलनेवाला शासन। जनता का, जनता के लिए और जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित राज्य अथवा शासन ही लोकतन्त्र है; किन्तु हमारे देश में स्थिति ठीक इसके विपरीत थी। लोकतांत्रिक शासन के निर्माण के लिए आम जनता का स्वाधीन देश का नागरिक होना जरूरी होता है। हमारा देश स्वाधीनं नहीं था। इसलिए स्वाधीनता–प्राप्ति हमारा पहला लक्ष्य था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए लोगों ने याने हिन्दू लोगों ने सात सौ वर्ष विदेशी सत्ता से अर्थात् इस्लामी सत्ता से प्रखर संघर्ष किया। यही इस देश का स्वाधीनता संग्राम था और यही इस देश का लोकतन्त्र संग्राम भी था। इसका स्वरूप प्रदेशवार अलग–अलग

था। दक्षिण में यह संघर्ष मलिक काफूर, निजामशाह, कुतुबशाह, अली आदिलशाह, हैदर, टीपू इनके खिलाफ था। राजस्थान, मालवा, बुंदेलखण्ड में महमूद गजनवी, गोरी, खिलजी, तुगलक, मुगल इनके खिलाफ लड़ाई हुई। पंजाब, कश्मीर, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम इन प्रदेशों में महमूद गजनवी, बखत्यार खिलजी, मोहम्मद तुगलक, तैमूरलंग, बाबर से औरंगजब तक सभी मुगल सुल्तानों के खिलाफ जंग हुई। सिन्ध में मुहम्मद बिन कासिम के साथ लड़ाई हुई। पृथ्वीराज चौहान, कृष्णदेवराय, राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, प्रतापादित्य, लचित बड़फुकन जैसे सैकडों हिन्दू वीरों ने अपने-अपने प्रदेश में इस संघर्ष का नेतृत्व किया। यह संघर्ष रणांगण पर शस्त्रों के जरिए हुआ और साथ ही मठ-मंदिरों में तीर्थ-स्थानों पर तथा गंगा से कावेरी आदि नदियों के तट पर भी, जिसका नेतृत्व तुलसीदास से तुकाराम तक, ज्ञानेश्वर से नानक तक, चैतन्य महाप्रभु से लेकर नरसी मेहता तक सैकड़ों सन्तों ने किया। मुगल सेना निरन्तर खेती तहस-नहस करती थी; फिर भी हिन्दू किसान वापिस खेतों में जाकर हल चलाने और भूमि को सुफला बनाकर लोगों के भरण-पोषण का अपना दायित्व निभाते थे। हिन्दू माता एवं बहनें, संक्रान्ति से दीपावली तक अनेकानेक त्यौहार मनाकर और व्रत-वैकल्य का अनुष्ठान कर हिन्दू संस्कृति को जीवन्त रखने का महान् कार्य भी निरन्तर करती थीं, जबकि मुसलमानों ने संस्कृति को ही नष्ट-भ्रष्ट करने का बीड़ा उठाया था।

ऐसी कई बातें है। यहाँ के लोगों को, लोगों के धर्म को, लोगों की पवित्रता को पैरों तले कुचलने का यह भीषण सत्र लगभग एक हजार साल जारी था। एक हजार साल की अँधियारी रात १७वीं शताब्दी में तब समाप्त हुई, जब हिन्दु सत्ता का उषःकाल हुआ। स्वतन्त्रता के लिए, लोकतन्त्र की पुनर्स्थापना के लिए हिन्दुओं ने जो संघर्ष किया, वह समूचे विश्व के इतिहास में बेमिसाल है, उसका कोई सानी नहीं। १७वीं सदी के पश्चात् सौ साल पूरे देश में, कुछ अपवाद छोड़, हिन्दुओं का राज था। इसी दौरान हम स्वाधीन हुए; लेकिन वह लोकतन्त्र नहीं अवतरित हुआ, जो आधुनिक परिभाषा में अभिप्रेत है। इसका मुख्य कारण यह कि हिन्दुओं के राज में लोगो पर जोर-जबरदस्ती नहीं होती थी। जुल्म नहीं होते थे- भले ही हिन्दू हो या मुसलमान। मुसलमानों के राज में हिन्दुओं पर 'जजिया' कर लगाया जाता था। लेकिन किसी भी हिन्दू राजा ने

मुसलमानों पर ऐसा कर नहीं लगाया। हिन्दू राज्य में न केवल हिन्दू माता–बहनें सुरक्षित थीं, अपितु मुसलमान परिवार भी उतने ही सुरक्षित थे। हिंदू राज्य में खेती नष्ट नहीं की जाती थी। दुधारू जानवरों की हत्या नहीं की जाती थी। लेकिन हिंदू राज्य में चूँकि आधुनिक विज्ञान और शस्त्र सामर्थ्य जुटाने की ओर ध्यान नहीं दिया गया, व्यापार के बहाने आये अंग्रेजों ने हिन्दू राजाओं को पराजित किया और देश पुनः गुलामी की खाई में गिर गया।

अंग्रेज का राज, इस्लामी राज के जितना बर्बर या क्रूर नहीं था लेकिन था तो विदेशी। इस विदेशी राज ने देश का इतना शोषण किया कि लोग सत्त्वहीन हो गये। अंग्रेजी राज के साथ ईसाई धर्म–प्रसारक आए और साथ ही हिन्दुओं का तेजोभंग करनेवाली मेकाले की शिक्षा प्रणाली। लोगों में एक ऐसा हीनभाव पैदा हुआ कि जो पश्चिम से आया, वह श्रेष्ठ और जो हमारा है, वह कनिष्ठ। पराधीनता स्वाधीनता जैसी लगने लगी। स्वत्व का लोप हुआ। लोकतन्त्र अर्थहीन हो गया। इस्लाम तो खुल्लम–खुल्ला शत्रु था लेकिन अंग्रेज छिपा शत्रु था।

फिर एक बार लोकतन्त्र का लोप हुआ। लेकिन यह स्थिति अल्पकालिक रही। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, बिपिनचन्द्र पाल जैसे नेताओं ने जनता को स्वराज्य का पन्थ दिया। परतन्त्र हुए देश को लोकतान्त्रिक बनाने के लिए कांग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता संग्राम शुरू हुआ। साथ ही बंकिमचन्द्र के 'वन्दे मातरम्' राष्ट्रगीत ने समूचे राष्ट्र को पुलकित किया। लोकमान्य तिलक ने घोषणा की कि 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह मैं प्राप्त करूँगा ही।' रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों ने अपने जीवन से तथा वाणी से हिंदू धर्म की श्रेष्ठता प्रस्थापित की। इससे हिन्दुओं को अपनी एक नयी पहचान मिली। यह है हमारे लोकतन्त्र का गत हजार वर्ष का इतिहास।

किन्तु इससे क्या हुआ? अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते समय हमने मुसलमानी सत्ता का तथा इस्लामी क्रूरता का इतिहास भुला दिया और इस देश के लोगों में मुसलमानों को शामिल कर दिया। इस विपरीत अवधारणा से हिन्दुओं को बचाने के लिए स्वातंत्र्यवीर सावरकर एवं डॉ० हेडगेवार ने पुनः 'हिन्दू' शब्द की परिभाषा कर निःसंदिग्ध रूप से घोषित किया कि हिन्दू ही इस देश के लोक हैं और देश का लोक–तन्त्र हिन्दूतन्त्र ही है। किन्तु जाति–जाति में विभाजित एवं प्रान्त–प्रान्त में अलग–थलग पड़े हिन्दुओं ने कांग्रेस के गलत प्रादेशिक राष्ट्रवाद को अपनाया और अपनी आँखों के सामने देश का विभाजन देखा। नतीजा यह हुआ कि देश के तीन–चौथाई प्रदेश में लोकतन्त्र अवतरित हुआ और पाकिस्तान कहलाने वाला शेष एक चौथाई प्रदेश परतन्त्र ही रहा। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान सर्वार्थ से, सर्व दृष्टि से लोकतान्त्रिक हिन्दुस्थान बना। इस लोकतान्त्रिक हिन्दुस्थान पर अपनी तानाशाही हुकूमत लादनेवाली कांग्रेस अध्यक्षा एवं देश की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी को जनता ने सबक सिखाया और उनकी सत्ता समाप्त कर दी। इस 'लोकतन्त्र बचाओ' आन्दोलन में हिन्दू राष्ट्र की घोषणा करनेवाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बहुत बड़ा योगदान रहा।

पाकिस्तान में इस्लाम की हुकूमत है और पाकिस्तान ने जेहाद का नारा देते हुए हमारे लोकतान्त्रिक हिन्दुस्तान पर चार बार आक्रमण किया, जो बुरी तरह विफल रहा। बांग्लादेश– जो पच्चीस वर्ष पूर्व पाकिस्तान का ही एक प्रान्त था– में भी इस्लाम की ही हुकूमत है। बांग्ला देश आज भले ही हिन्दुस्थान का लोहा मानता हो, फिर भी वहाँ के हिन्दुओं को इस्लामी आतंक की छाया में गुजर बसर करना पड़ता है। पाकिस्तान की जनता को लोकतान्त्रिक अधिकार प्राप्त नहीं, बांग्लादेश की जनता के सिर पर भी फौज के काले बादल मँडराते रहते हैं। इन दोनों ही देशों को विभाजन–पूर्व स्थिति में लाना अर्थात् खंडित भारत पुनः अखण्ड बनाकर समूचे भारत में लोकतन्त्र का निर्माण करना यही हमारा कर्तव्य है। ❐

– १, पूर्वाञ्चल, नवघर मार्ग,
मुलुंड पूर्व, मुम्बई–४०००८१

मार्क्सवादियों की दृष्टि में

(पंजाब केसरी से साभार)

(पृष्ठ ८४ का शेष) **हमारा लँगड़ाता लोकतन्त्र**

हैं; पर अपने दोषों को दूसरों पर लादने की कोशिश कर रहे हैं। निजी स्वार्थों के लिए देश को कुरेद-कुरेद कर खा रहे हैं।

राजनीतिक पार्टियों का सबसे बड़ा दोष यही है कि उन्होंने अपने और जनता के बीच के फासले को बहुत ज्यादा चौड़ा कर दिया है। उनकी दृष्टि संकुचित होती जा रही है और स्वार्थ विकसित। नहीं तो क्या कारण है कि देश को चलाने वाली मजबूत राजनीतिक पार्टी को एक अधकचरी मानसिकता वाली, अधकचरी राजनीति की जानकारी रखने वाली किसी विदेशी दिलो-दिमाग और खूनवाली ताकत के चरण चूमने पड़ें। ... या फिर घोटालों में घिरी किसी जयललिता की बेवकूफियों को बर्दाश्त करना पड़े। मजे की बात है, यह सब खुले में घट रहा है; सब की आँखों के सामने घट रहा है। सब समझ रहे हैं कि क्या सही है और क्या गलत...फिर भी कोई रोकथाम नहीं कर रहा है; वे भी नहीं, जिन्हें करनी चाहिए। वे बुद्धिजीवी भी नहीं, जो इस घटना-क्रम को समझते हैं और वे शिक्षित भी नहीं, जो हालात के सामने घुटने टेक रहे हैं।

सच तो यह है कि लोकतन्त्र पर बहस कर हम सच्चाई से बच नहीं सकते, हम अपने दोषों को ढाँप नहीं सकते। विशेष रूप से अपने को बुद्धिजीवी कहनेवाले लोगों को अपने को बचाने का कोई कारण ही नहीं है। शिक्षा कायरता की जन्मदात्री नहीं है। कमी तो हम में है; हमारे एकांगी परिवेश में है। अब उपाय ? तो हर समस्या का उपाय भी होता है। लेकिन उपाय यदि एकांगी होगा, तो परिणाम भी सुखद नहीं होगा। शुरुआत सभी को करनी है- एक युद्ध-स्तर की शुरुआत। आखिरकार क्रिकेट या युद्ध में हमारी एकजुटता नजर आती है कि नहीं। इसका मतलब हमारी आत्मा अभी मरी नहीं। हम जिन्दा हैं- तन से ही नहीं मन से भी। तो फिर क्यों नहीं सींच सकते हैं लोकतन्त्र के मुरझाये हुए पौधे को ? क्यों नहीं सुधार सकते हैं लोकतन्त्र की लँगड़ी चाल को ?

जरा-सा आत्म विश्वास, जरा-सी ईमानदारी और जरा-सी आदमीयत की दरकार है, बस जरा-सी। फिर मजाल कि देश राजनीति के खेल में कठपुतली बने या फिर किसी देश की हम पर उँगली भी उठे। आइये, लोकतन्त्र को समझें। उसे अपनी जिन्दगी का हिस्सा बनाएँ। उसे महसूस करें।

ज्यादा कुछ नहीं करना है, बस ईमानदारी से अपनी संवेदना शक्ति जगानी है, खुद को देश का हिस्सा समझना है। संवेदना में इतनी शक्ति होती है कि हर तरह की जड़ता दूर हो सकती है। अपने को एक-सूत्र में बाँधने की कोशिश करनी है। फिर समग्र कोशिश से हम लोकतन्त्र के लक्ष्य को पा ही लेंगे। यह कोशिश उतनी साधारण-सी भी हो सकती है जैसी इस कविता में है-

आज मैंने फ्रिज से बर्फ निकाल कर
थोड़ी देर तक अपनी हथेली पर रखी
कोशिश करती रही कारगिल के तापमान को
महसूसने की
पसीने से भीगी दुपहरी में पंखा बन्द कर दिया
तोप-गोलों की गर्मी महसूसने के लिए
गोलियों से छिदी अपनी लाश को
पहाड़ी से लुढ़कते देखा
अचम्भित बच्चियों को लाश के पास खड़े देखा
यूँ तो कई बार पुकारा है मैंने मौत को
पर पहली बार है कि रीढ़ से ठण्ढी लहर गुजर
गई
अपने आप पूछ कर देखा
कैसा लगता होगा जब इकलौता बेटा गोलियाँ
झेल रहा होता है
किसको गोलियाँ लगतीं हैं मैदान में ?
माँ, बहन, बीबी को ?
या फिर पूरी आदमीयत को ?
उधर सैनिक की गर्भवती सद्यःविधवा सिसक कर
कह रही है
भेज दूँगी अपने बेटे को भी मैदान में
मेरी रीढ़ में फिर से गुजर गई ठण्ढी लहर
हर बार की गई कोशिश मुझे पीछे ढकेलती है
फिर भी मेरे अनजान भाइयो, अनदेखे बेटो
मैं कोशिश कर रही हूँ तुम्हारे करीब आने की..
शायद ऐसी ही कोई साधारण-सी कोशिश हमें
लोकतन्त्र के करीब ले जाये....

❒

-के०पी० ६/६२४ वैजयन्त चेट्टिकुन्नु मेडिकल कालेज पो०आ० तिरुवनन्पुरम्- ६६५०११ (केरल)।

लोकतन्त्र के नये माडल की तलाश आवश्यक क्यों है?

-डा० महीप सिंह

राष्ट्रीयता, लोकतन्त्र, वयस्क मताधिकार आदि अवधारणाएँ पश्चिमी समाज में सदियों तक अनुभव और प्रयोग के दायरे से गुजरती हुई विकसित हुईं और धीरे-धीरे सारे संसार में मान्य हो गयीं। प्राचीन भारत में इन अवधारणाओं के जो भी रूप रहे हों, उन्नीसवीं शती में पुनरुत्थान की लहर के साथ ये हमारे देश में भी प्रबुद्ध वर्ग के बीच समादृत होने लगीं।

सामन्तीय युग से निकल कर लोकतन्त्र को राज्य-शासन का नियामक तत्त्व बनने में कई सदियाँ लग गयीं। इस दृष्टि से पश्चिमी देशों ने अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने देश में लोकतन्त्र के स्वरूप का निर्धारण किया और जब भी आवश्यक हुआ, उसमें परिवर्त्तन किया। प्राचीन भारत में गणतन्त्रों की अपनी एक परम्परा थी; किन्तु उनमें कुलीन वंशों का ही वर्चस्व होता था, सामान्य जनता की भागीदारी अधिक नहीं होती थी। यूरोप में भी जब लोकतन्त्र की कल्पना उभरने लगी, तो वह भी कुलीन वंशों की सहभागिता तक ही सीमित थी।

सम्पूर्ण संसार में लोकतन्त्र अनेक पड़ावों से गुजरा; किन्तु हमारे देश में १६४७ में वह एक साथ पूरे धमाके से आ गया। ब्रिटेन को लोकतन्त्र की माँ कहा जाता है। वहाँ लोकतन्त्र पहले कुछ कुलीन परिवारों तक ही सीमित था। उन्नीसवीं शती में इसके घेरे में मध्यम श्रेणी के लोग शामिल किये गये। प्रथम विश्व युद्ध (१६१४-१८) तक वहाँ महिलाओं को मताधिकार प्राप्त नहीं था। यह अधिकार उन्हें बाद में प्राप्त हुआ।

किन्तु अपने देश ने स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही न केवल लोकतन्त्र की अवधारणा को स्वीकार किया, अपितु सभी वयस्क नागरिकों-स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन, कुलीन-अकुलीन, साक्षर-निरक्षर, द्विज-अद्विज (सवर्ण तो सभी हैं) सभी को मताधिकार दिया।

यह एक बहुत बड़ा साहसिक कदम था। लोकतन्त्र ने आज जो सर्वमान्य परिभाषा स्वीकार कर ली है, वह अमरीकी चिन्तक अब्राहम लिंकन की परिभाषा है कि लोकतन्त्र लोगों का शासन, लोगों के लिए और लोगों द्वारा होता है।

एक ओर जहाँ ऐसा साहसिक कदम उठाया गया, उस समय के नेताओं और संविधान निर्माताओं ने इस बात पर गंभीर चिन्तन नहीं किया कि लोकतन्त्र का कौन-सा माडल (न्यादर्श) इस देश के लिए उपयोगी रहेगा। हमारे देश पर अंग्रेजों का शासन था। आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक अवधारणाओं की प्रेरणा हमारे चिन्तकों को उन्हीं के माध्यम से प्राप्त हो रही थी। वहाँ का शासन लोकतन्त्र की संसदीय-प्रणाली द्वारा चलाया जा रहा था। हमारे नेताओं ने आँख मूँद कर उसी माडल को अपने देश के लिए स्वीकार कर लिया।

लगता है गलती इस बिन्दु पर हुई। इस देश के राजनेताओं ने गंभीरता से इस बात पर विचार नहीं किया कि क्या लोकतन्त्र की यह प्रणाली इस देश के लिए उपयुक्त है अथवा इस देश को अपनी परिस्थितियों, समस्याओं और अवश्यकता के अनुसार लोकतन्त्र के किसी अन्य माडल की तलाश करनी चाहिए।

इस दृष्टि से एक उदाहरण अत्यन्त ज्वलन्त है। आज के संसार के सर्वाधिक सम्पन्न और शक्तिशाली देश संयुक्त राज्य अमेरिका को संसार के मानचित्र पर उभरे तो अभी दो सौ वर्ष ही हुए हैं। संसार के अनेक देशों के लोगों (विशेष रूप से यूरोपीय) ने वहाँ जाकर अपनी बस्तियाँ बनायीं और वहाँ के मूल निवासियों का संहार कर डाला या उनको घने जंगलों में खदेड़ दिया। इनमें अधिसंख्य ब्रिटिश थे, इसलिए ब्रिटेन का शासन वहाँ स्थापित हो गया। धीरे-धीरे अमरीकियों की अपनी पहचान बनने लगी और वे ब्रिटिश शासन से मुक्त होने के लिए संघर्ष करने लगे। कड़े संघर्ष के बाद वे सफल हुए और उन्होंने १७७६ ई० में अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

सांस्कृतिक, भाषाई और जातीय, अनेक दृष्टियों से अमरीकी लोग ब्रिटेन के बहुत निकट थे। ब्रिटेन से लड़कर उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की थी; किन्तु

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने ब्रिटिश शासन पद्धति संसदीय लोकतन्त्र को स्वीकार नहीं किया। अपने नवनिर्मित राष्ट्र की विशालता और विविधता को देखते हुए उन्हें ब्रिटिश-प्रणाली उपयुक्त नहीं लगी। उन्होंने अपने देश के लिए एक अलग शासन प्रणाली की संरचना की, जिसे लोकतन्त्र की अध्यक्षीय प्रणाली कहा जाता है।

संसदीय प्रणाली छोटे देशों में, जहाँ एकात्मक शासन प्रणाली होती है, सफल होती है। यूरोप के सभी देश लगभग इसी प्रकार के हैं; किन्तु विशाल क्षेत्रफल वाले देश, जिनमें जातीय और भाषाई विविधता हो और जिसे एक सुगठित राष्ट्र के रूप में संसार में अपनी पहचान बनानी हो, अपने देश में संघात्मक प्रणालीअपनाते हैं। अमेरिका ने उस समय अपने आपको ब्रिटेन जैसा एकात्मक-शासन-प्रणाली का राज्य न बनाकर संघात्मक-प्रणाली का राज्य घोषित किया।

भारत की स्थिति भी लगभग वैसी ही थी। एक राष्ट्र होते हुए भी यह देश विभिन्न प्रकार की विविधताओं को जिस प्रकार अपने आप में सँजोये हुए है, वैसा दूसरा उदाहरण संसार में नहीं है। इसलिए इस देश में स्वतन्त्रता का अर्थ था कि यह अनुभूति देश के कोने-कोने और जन-जन तक उनकी भाषा और सांस्कृतिक विशेषता के साथ पहुँचे। इसलिए इस देश के संविधान निर्माताओं ने भारत को विभिन्न राज्यों के एक संघ के रूप में स्वीकार किया।

यह विचित्र प्रकार का विरोधाभास है कि जिन संविधान निर्माताओं ने इसे ब्रिटेन की तरह एकात्मक-राज्य-प्रणाली न देकर अमेरिका की तरह की संघात्मक राज्य प्रणाली दी, उन्हीं ने लोकतन्त्र की ब्रिटेन वाली पद्धति संसदीय-लोकतन्त्र को स्वीकार कर लिया।

गत ५२ वर्ष से इस देश में दो प्रकार की सरकारें चल रही हैं- केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें। प्रारम्भ में कांग्रेस का सारे देश पर प्रभाव था, इसलिए केन्द्र में भी कांग्रेस की सरकार थी और देश के लगभग सभी राज्यों में कांग्रेस सरकारें थीं। कुछ वर्षों बाद ही राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें अस्तित्व में आने लगीं। केरल और पंजाब में विलय के पूर्व के पेप्सू (पटियाला एंड ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन) राज्य में ऐसी सरकारें उभरीं।

ऐसी स्थिति की आशंका संविधान निर्माताओं ने की थी कि इस प्रणाली में केन्द्र और किसी राज्य सरकार में टकराव उत्पन्न हो सकता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए संविधान में अनुच्छेद ३५६ का प्रावधान कर लिया गया था, जिसके अन्तर्गत केन्द्र कभी भी राज्य सरकार को भंग करके वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है; किन्तु केन्द्र सरकार द्वारा इस अनुच्छेद का निरन्तर दुरुपयोग किया जाता रहा और राज्य सरकारों की स्थिति नगरपालिकाओं से भी बदतर बना दी गयी। इस बात का परिणाम यह हुआ कि अनेक राजनीतिक दलों और राज्य सरकारों द्वारा यह माँग उठने लगी कि इस अनुच्छेद को संविधान से निकाल दिया जाय। १९९२ में जब केन्द्र की कांग्रेस सरकार ने देश के चार राज्यों की भाजपा सरकारों को इस अनुच्छेद के अन्तर्गत भंग कर दिया, तो एस०आर० बोम्मई केस का निर्णय सुनाते हुए देश के सर्वोच्च न्यायालय ने इस अनुच्छेद के कार्यान्वन पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये।

देश का राजनीतिक परिदृश्य आज पूरी तरह बदला हुआ है। अपराधीकरण, अस्थिरता, भयंकर सौदेबाजी,

कश्मीर में एक दशक तक चले परोक्ष युद्ध के दौरान जितने सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए हैं, उतने सभी युद्धों में मिलाकर भी नहीं हुए थे। प्रस्तुत है उनकी सूची-

सन्	वीरगति प्राप्त	घायल	लापता
१९४७ (भारत-पाक युद्ध) (कश्मीर आपरेशन)	११०३	३१५२	---
१९६२ (भारत-चीन युद्ध)	१५२१	५४८	१७३०
१९६५ (भारत-पाक युद्ध)	२९०२	८६२२	३१६
इसी वर्ष (१९९९) (विजय अभियान में)	लगभग ५००	६००	६
१९७१ (भारत-पाक युद्ध)	३६३०	९८५६	२१३
सियाचिन युद्ध में १९८४ से अब तक	६५०	१०५००	---
अब तक लड़े गये सभी युद्धों में कुल हताहत एवं लापता सैनिक	११३७०	३४७४७	२३०३

अवसरवादिता आदि व्याधियों ने इस परिदृश्य को पूरी तरह जकड़ लिया है। केन्द्र में किसी एक राजनीतिक दल के स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने की सम्भावना समाप्त हो गयी है, इसलिए दलों के मध्य होने वाले गठबन्धनों की सरकारें बनना, सम्प्रति तो इस देश की नियति बन गयी है। ऐसे गठबन्धनों में दस से लेकर बीस पार्टियाँ तक शामिल हो रही हैं और एकल सांसद का महत्त्व भी उस सीमा तक चला गया है, जहाँ वह अपने समर्थन की कुछ भी कीमत माँग सकता है। पिछले दिनों श्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार केवल एक मत से लोक सभा में पराजित हो गयी और आर्थिक संकट में बुरी तरह घिरे हुए देश को लोकसभा के मध्यावधि चुनाव का लगभग अठारह सौ करोड़ का अतिरिक्त व्यय वहन करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। अब विभिन्न राज्यों में भी अलग–अलग दलों की सरकारें बनना, उनमें भी अनेक दलों का गठजोड़ होना और अस्थिरता की मानसिकता का निरन्तर बने रहना प्रायः अनिवार्य हो गया है।

देश में ऐसी राजनीतिक अव्यवस्था पैदा हो जाएगी, इसका अनुमान पचास वर्ष पूर्व लगाया जा सकता था। भारत जैसे विशाल और विविधता से भरे हुए देश के लिए ब्रिटिश माडल की संसदीय प्रणाली अपनाये जाने का यह स्वाभाविक दुष्परिणाम है।

इस स्थिति की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि देश के अनेक भाग आन्तरिक अलगाववादी शक्तियों से तो निरन्तर जूझ ही रहे हैं, उसे अपने पड़ोसी देश की शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयों को भी झेलना पड़ रहा है, जो इस देश में अस्थिरता उत्पन्न करने, इसकी सुरक्षा नष्ट करने और इसे अनेक टुकड़ों में बाँटने के किसी भी मौके से चूकनेवाला नहीं है।

आज हम सभी के सम्मुख यह प्रश्न मुँह बाये खड़ा है कि क्या संसदीय–प्रणाली की शासन–व्यवस्था इस देश की एकता को बचाये रखने में समर्थ होगी? क्या यह प्रणाली देश को आन्तरिक और बाह्य संकटों से सुरक्षित रख सकेगी? क्या इस देश के विचारकों, चिन्तकों और जागरूक व्यक्तियों को इस प्रणाली का कोई और विकल्प नहीं तलाश करना चाहिए, जो इस देश के मानस का सही प्रतिबिम्ब सिद्ध हो सके?. ❐

– एच–१०८, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली–११००२६
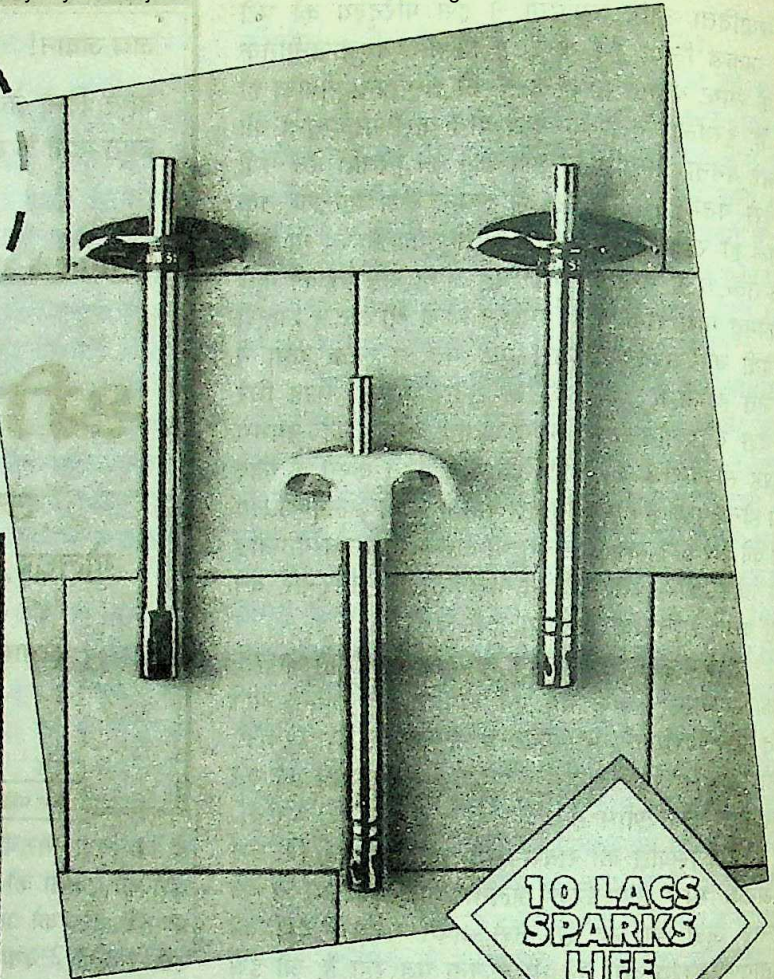
A ♥ CLASS ♥ ABOVE ♥ OTHERS

CLASSIC

ELECTRONIC GAS LIGHTER WITH GERMAN PIEZO

उत्तर प्रदेश के वितरक :

दीप एजेन्सीज

मोतीलाल भवन, प्रताप मार्केट, अमीनाबाद, लखनऊ-226 018

फोन : 226767, 214542

'राष्ट्रधर्म' का 'होली अंक' हस्तगत हुआ। मुखपृष्ठ पर भावपूर्ण चित्ताकर्षक सांस्कृतिक चित्र पाकर मन प्रमुदित हुआ। सम्पादकीय विचार—नवनीत से मानसिक क्षुधा शान्त हुई। पूर्व अंकों में भी चुटीले, शोधपूर्ण एवं तथ्यात्मक सम्पादकीय पढ़ने को मिलते रहे हैं।

पत्रिका में समाहित सम्पूर्ण सामग्री उत्कृष्ट, गवेषणात्मक एवं प्रेरक है; किन्तु समालोचना दृष्टि से देखें, तो श्याम नारायण कपूर, शंकरलाल नामदेव, डॉ० गुगालिया, वचनेश त्रिपाठी के लेख नवीन दृष्टि का उन्मेष करानेवाले सिद्ध हुए। कविताओं में राममोहन शर्मा, महेश शुक्ल, दिनेश 'दर्पण' की भावाभिव्यक्तियाँ हृदयन्तर के तार छेड़ गयी। 'बाल—वाटिका' सदा की तरह फूलों से सजी—सँवरी लगी। मधुरेण समापयेत् सामान्य रहा। एक सुझाव है कि प्रत्येक अंक में हिन्दी एवं हिन्दुत्व की विदेशों में स्थिति एवं कार्यक्रमों पर लघु रपट दें, तो पत्रिका का अन्तःकलेवर और समृद्ध होगा।

— प्रमोद दीक्षित 'मलय'
भवानीगंज, अतर्रा, बाँदा

आपने 'राष्ट्रधर्म' के जून १९९९ अंक में डॉ० कपूर का लेख "ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर" छपा है, जिसमें वराहमिहिर के काल को ५०५ ई० बताया है, जो बिल्कुल गलत है। सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्न थे वराहमिहिर, जो ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे। इस पर काफी शोध हो चुका है। कदाचित डॉ० कपूर अभी तक अनजान हैं।

मुसलमानों ने भारतीय ज्योतिष से प्रभावित होकर भारत आकर संस्कृत सीखी व ज्योतिष शास्त्र का अनुवाद किया। सन् ७७८ ई० में सर्वप्रथम इब्राहिम अल—फराजी भारत आया था। वह अपने साथ कुछ ज्योतिषियों को अरब के खलीफा के पास भी ले गया था। सन् ८१५ ई० में बगदाद से उसका पौत्र तारिक भारत आया व अंक (हिन्दसे) सीखे।

वराहमिहिर की भाँति आर्यभट भी प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में थे। बंगलौर से प्रकाशित "एस्ट्रोलाजीकल मैगजीन" ऐसे शोधों से भरे पड़े हैं।

डॉ० कपूर से कहें कि विश्वविद्यालयों की पुरानी अंग्रेजों द्वारा लिखित पुस्तकें सब कूड़ेदान में फेंक दें और सम्पादक जी, आप भी सोच—विचार कर प्राचीन कालक्रम के लेख प्रकाशित किया करें।

— रामअवतार सिंह
काला ढूँगी—मार्ग, हल्द्वानी—२६३१३९

श्रीमान् सम्पादक साहब जी,

सत्यश्री अकाल गुरु नानक का आशीर्वाद।

वाहगुरु जी का खालसा वाहगुरु जी की फतहि।।

खालसा वर्ष बैसाखी के उपलक्ष्य पर विशेषांक अप्रैल एवं मई माह का 'खालसा—पन्थ' का आपका संग्रह एक अद्वितीय था। विश्व हिन्दू परिषद् कार्यालय से कई पत्र लेकर देश ही नहीं, विदेशों में सिख संगत को पढ़ाया, पढ़कर लोगों ने काफी प्रशंसा की।

समाचार पत्रिका 'राष्ट्रधर्म' की लम्बी आयु की कामना करता हूँ। आपका प्रेम राशि १०१/— रु० स्वीकार करता हूँ तथा यहाँ चल रहे इमारत कार्य में भेंट कर सेवा का भागी बनाता हूँ।

— ज्ञानी गुरजीत सिंह 'खालसा'
ऐतिहासिक गुरुद्वारा ब्रह्मकुण्ड साहब, अयोध्या।

आप द्वारा प्रेषित 'राष्ट्रधर्म' समय पर मिल जाते हैं। अभी जल्दी ही खालसा पन्थ विशेषांक' एवं 'छत्रपति विशेषांक' मिले। सामग्री ज्ञान—वृद्धि में अत्यन्त उपयोगी हो रही है। आप द्वारा प्रेषित पत्र यहाँ के लोग भी पसन्द करने लगे हैं।

— अशोक भट्ट
हि०स्व० संघ कार्यालय, अनारमनी—४, विरतामोड़, झापा—नेपाल (पूर्व)

जनवरी का प्रथम अंक मिला। पढ़ने पर कुछ निराशा हाथ लगी। कारण पिछले दो—तीन अंकों में आपने कुछ देशी जड़ी—बूटियों के गुण बताये थे, जो कि दैनिक प्रयोग की चीजों में गुण होते हैं, किन्तु हम नहीं जानते हैं।

अगले अंकों से इस लेख—स्तम्भ को पुनः प्रकाशित करने का कष्ट करें, जिसमें कि अभी जैसे (हल्दी, बहेड़ा, हर्र आदि के गुणों को प्रकाशित करें।

— राजकुमार सिंह तोमर
—ग्रा.—ररौख, पो.—खानपुर, कानपुर (देहात)

'राष्ट्रधर्म' फरवरी ९९ का सम्पादकीय ईसाई मिशनरियों की करतूतों का भण्डा फोड़ने वाला है! साथ ही अंग्रेजी समाचार पत्रों के दुराग्रही मनोवृत्ति का दिग्दर्शन भी कराता है। अन्य लेख भी ईसाई मिशनरियों तथा इस्लामी आतंकवाद द्वारा राष्ट्र पर आये संकट को रेखांकित करने में समर्थ हैं। आपके सम्पादकत्व में जिस तीखे स्वर को 'राष्ट्रधर्म' ने अपनाया है, वह समय की आवश्यकता है। स्पष्ट ऐतिहासिक और प्रामाणिक सामग्री छापकर 'राष्ट्रधर्म' ने हिन्दू संगठनों को बल प्रदान किया है। अभियोग लगाकर भाग जाने वालों को आपने पत्रिका के द्वारा सटीक उत्तर दिया है।

— जगदम्बा प्रसाद त्रिपाठी
गाँव व पोस्ट—बाँसगाँव, गोण्डा

मैं 'राष्ट्रधर्म' का जनवरी ९९ से नया पाठक हूँ। 'राष्ट्रधर्म' के सारे अंक अच्छे लगते हैं। 'राष्ट्रधर्म' फरवरी ९९ अंक में प्रकाशित डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल की कहानी "भोलेपन की सजा" पसन्द आयी। साथ ही कहानी से बहुत ही गहराई तक सोचने को विवश होना पड़ा। आज हमारे देश में गोमाता पर जिस प्रकार अपमान तथा उन पर अत्याचार हो रहा है, उसके बाद भी गोमाता सब सहती हुई शान्त हैं। गोमाता पर अत्याचार करने वाले आततायियों को डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल की कहानी से सबक लेना चाहिए तथा गोमाता को अपनी माता के बराबर सम्मान देना चाहिए।

— सन्तोष देव 'भारती'
जौनपुर—२२२१४२ (उ०प्र०)

'राष्ट्रधर्म' का मार्च अंक पढ़ा। श्रेष्ठ लगा। सम्पादकीय विचारणीय लगा। सचमुच ही हम सबका हित चाहते हैं; पर हमारी अस्मिता का अहित न हो, यह भी अपेक्षा रखते हैं। हाल ही में माननीय ज्योति बसु की गन्दी शब्दबाजी कि 'हमारा लक्ष्य है जंगली, असभ्य, साम्प्रदायिक सरकार को हटाना, पर भी क्षोभ हुआ। अभिव्यक्ति की आजादी का दुरुपयोग कितना गलत है; पर जनता को ऐसी भाषा बोलकर भरमाया नहीं जा सकता। कपूर साहब का कौटिल्य पर लेख श्रेष्ठ लगा। डॉ० त्रिपाठी का बच्चों पर लेख प्रेरक है। दूरदर्शन के गलत असर से बचाया जावे।

– नारायण मघवानी
उज्जैन

आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ मार्च १९९९ होली अंक मिला। अंक एक ही बैठक में पढ़ गया एवं अपने लिए धर्मयुग पत्रिका की याद आ गयी। सभी रचनाएँ स्तरीय व ज्ञानबोधक हैं। 'राष्ट्रधर्म' सब अर्थों में राष्ट्रधर्म का युगीन कार्य कर रहा है।

– मुकेश रावल
आनन्द (गुजरात)

'राष्ट्रधर्म' मासिक में संस्कृत पाठमाला का क्रमशः प्रकाशन होता है। आपसे 'संस्कृत पाठमाला' पुस्तक को प्राप्त करने का पता चाहा था। पता लिखते हुए आपने लिखा था कि यह पुस्तक शायद अब उपलब्ध नहीं होगी। आपके दिये पते 'स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी, जनपद बलसाड़ (गुजरात) पिन कोड ३९६१२५' से पत्र व्यवहार करने पर उनसे संस्कृत पाठमाला के २४ भाग (जिनका मूल्य २४ × ८ = १९२ – ५७ कमीशन ३० प्रतिशत = १३५ तथा वी०पी० डाकखर्च, मनीआर्डर शुल्क २८ रु० कुल मूल्य १६३ रु० में प्राप्त हुए।

पुस्तक सुन्दर है विशेष रूप से घर पर संस्कृत सीखने वालों के लिए। यदि आप उचित समझें; तो 'राष्ट्रधर्म' के (देववाणी शिक्षण) संस्कृत पाठमाला स्तम्भ में पता तथा मूल्य प्रकाशित कर दें उससे राष्ट्रधर्म का कोई पाठक शायद लाभ ही उठा लें।

– श्रीनन्दन
ग्राम व पोस्ट–फत्तेपुर, मैगलगंज, खीरी

['राष्ट्रधर्म' के जो सुधी पाठक घर बैठे संस्कृत पढ़ना चाहते हैं, वे (स्व०) वेदमूर्ति पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी लिखित 'संस्कृत पाठमाला' (२४ भाग) 'स्वाध्याय मण्डल, किला पारडी, जनपद बलसाड़ (गुजरात) से उक्त पाठमाला मँगा सकते हैं। – सम्पादक]

आज पाठकों के भी खेमे बन गये हैं और उन्हें प्रायः पाठ्य सामग्री से सरोकार कम और प्रकाशकों की राजनीतिक मान्यता से अधिक रहता है, अन्यथा सामग्री की दृष्टि से तो 'राष्ट्रधर्म' हिन्दी की श्रेष्ठतम पत्रिकाओं में गिना जाना चाहिए।

यों तो 'राष्ट्रधर्म' के सभी अंक निजी विशिष्टता रखते हैं। सामग्री सदा ही मौलिक और गम्भीर अध्ययन प्रसूत रहती है फिर भी खालसा पन्थ स्थापना विशेषांक की बात निराली है। मैंने आज तक इतनी व्यापक और प्रामाणिक सामग्री इतने विपुल परिमाण में कभी किसी हिन्दी पत्रिका में नहीं देखी। आर्यधर्म एक वट वृक्ष है। इसके सभी अंग हमारे हैं। विशाल हृदयता के बिना यह तत्त्व हृदयंगम नहीं किया जा सकता। यह अंक निकाल कर आपने भारतीयता की अच्छी सेवा की है। सभी साथियों को मेरी ओर से बधाई दें।

–डॉ० प्रभु दयाल अग्निहोत्री
ई–२/७३, महावीर नगर, भोपाल

आषाढ़ २०५६ के 'राष्ट्रधर्म' को हृदयंगम करने का अवसर मिला। राष्ट्र की सौ करोड़ आबादी को सही 'राष्ट्रधर्म' सिखाने हेतु हम सम्पादक मण्डल के आभारी हैं। मगर "इन्हें फाँसी क्यों न दी जाय" 'सम्पादक की कलम से' स्तम्भ पढ़कर लगा कि भारतीय दुश्मनों के लिए उचित सजा फाँसी नहीं, वरन् करगिल घुसपैठियों को भारत से भगाकर भारतीय दुश्मनों को नेस्तनाबूद करना ही उचित होगा। शान्ति–शान्ति के नारों ने बहुत अशान्ति की है। अब युद्ध के बाद ही शान्ति होनी चाहिए।

– शिव सागर शाह 'घायल'
ग्राम–जैतपुर, सिंगरौली,
म०प्र०–४८६८८०

आप द्वारा प्रेषित 'खालसा-पन्थ–स्थापना विशेषांक भाग–२' (मई अंक) प्राप्त हुआ। मैं आपका आभारी हूँ जो आपने मुझे पत्रिका भेजकर सम्मान दिया। पत्रिका अंकों में आपने दुर्लभ सामग्री जो पूजा–भाव से समाहित की, उसकी पूजा और प्रशंसा शब्दों में मैं व्यक्त नहीं कर सकता हूँ। मैं सिख हूँ और इतनी सामग्री एक जगह पाना मेरे लिए सम्भव नहीं था– पढ़ने और विचारने से मैंने सिख का एक सही अर्थ जाना। काश ऐसे सात्विक विचार जन–जन तक पहुँच पाते, तो हमारा देश आज कहीं और होता। मुझे पूरा विश्वास है कि पत्रिका अवश्य ही सिख–हिन्दू की आपस की दूरी समाप्त करेगी और गुरुओं द्वारा दर्शाये पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देगी।

चलो लाहौर... आपका सम्पादकीय भी विचारोत्तेजक पाया। ईश्वर से प्रार्थना है कि पत्रिका अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करे और जन–जन इसके विचारों से लाभान्वित हों।

– डॉ० अवतार सिंह
डी–७, सीरी कालोनी, पिलानी,
(राजस्थान)

'राष्ट्रधर्म' का जुलाई अंक पढ़ा। राष्ट्रप्रेम युक्त 'सम्पादक की कलम से' पढ़ा। विचारणीय सटीक लगा। सचमुच अकारण घृणा के काम्प्लेक्स का पाकिस्तान शिकार है, जो भारत के खिलाफ उसे निरन्तर नापाक हरकतें करने को उकसाता है। पाक के हुक्मरान, भारत जैसे हजारों सालों से सांस्कृतिक जड़ें रखने वाले देश से शान्ति व नेक–नीयती रखकर ही सुखी रह पायेंगे। अन्यथा भारत जैसे श्रेष्ठ देश से दुश्मनी बहुत महँगी पड़ेगी। यह हर युद्ध में व कारगिल के युद्ध में भारत ने उसे बता दिया। शक्ति का भी देश है भारत, यह वह जान ले।

– नारायण मघवानी
उज्जैन

मधुरेण समापयेत्

ग्रास टाइम्स

– शंकर पुणतांबेकर

मेरा एक दोस्त 'बिजनेस' में पड़कर (वास्तव में गिरकर) बहुत ऊँचा उठ गया था। एक दिन उसने गाड़ी भेजकर मुझे अपने यहाँ बुलाया और बोला, मैं एक अखबार शुरू करना चाहता हूँ, काफी कुछ कमा लिया है, सो अब थोड़ी शख्सियत कमा लूँ। चाहता हूँ, इसमें तुम मेरी मदद करो, मेरी पत्रिका के सम्पादक बन जाओ।

यह सुन मैंने कहा, यह गवर्नरी नहीं है महोदय कि जिसके लिए किसी योग्यता–वोग्यता की जरूरत नहीं पड़ती।

उसने मेरी एक नहीं सुनी और कहा, मेरी पत्रिका के एकमात्र तुम योग्य सम्पादक हो। बोला, अब तक कलम घिसते रहे क्या हासिल कर पाये हो? कोई शख्सियत बनी है? शख्सियत तब बनेगी, जब संपादक बनोगे। अच्छे–अच्छे लेखक तुम्हारी देहरी चढ़ेंगे, समीक्षक तुम्हारे हाल पूछेंगे। तुम्हारी मामूली बात भी तुम्हारा वक्तव्य बनेगी।

मैं सम्पादक बनने के मोह को टाल नहीं सका। इसमें मेरी कलम की मौत का काफी खतरा था, तब भी नहीं टाल सका। कैसे टालता, कलम की किसानी से सम्पादक की जमींदारी किसे भली नहीं लगी है, जो मुझे न लगती।

लेकिन दोस्त के अखबार का नाम सुनकर मैं चौंक पड़ा। उसने बताया, नाम रहेगा– 'ग्रास टाइम्स'।

मैंने कहा, ग्रास टाइम्स भी कोई नाम है। क्या लोगों को हम अपने अखबार से घास परोसेंगे?

दोस्त बोला, बिलकुल घास ही परोसेंगे जनाब। मेरा बाजार का जो तजुर्बा है और आज जो अखबार निकल रहे हैं, उन्हें देखते हुए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि लोगों को घास अधिक प्यारी है। यदि ऐसा न होता तो साहित्य–पत्रिकाओं के मुकाबले फिल्मी पत्रिकाएँ ऐसे धड़ल्ले से न बिकतीं। तुम्हारी कितनी ही साहित्य–पत्रिकाओं का तो देहावसान हो गया है।

इसका मतलब तो यह हुआ, तुम्हारे 'ग्रास टाइम्स' के लिए मुझे 'ग्रास' यानी घास ही लिखना होगा।

इस पर दोस्त ने कुछ मुस्कराते हुए कहा, तो क्या तुम समझते हो, अब तक तुमने जो लिखा है वह 'ग्रास' नहीं 'ग्लास' है? साहित्य समाज का दर्पण है ऐसा ग्लास? बच्चू, तुमने मान लो दर्पण लिखा भी हो, तो वह भी 'ग्रास' का ही दर्पण है।

खैर, मैंने दोस्त से ज्यादा बहस नहीं की। मैं इस मुगालते में दरार नहीं पड़ने देना चाहता था कि मैंने अपने में प्रेमचंद न हो; पर यशपाल जरूर पोसा है।

ऐसा मुगालता अपने आपमें एक बड़ी चीज है। एक नशा है, जो हताशा–निराशा को कुंठित करता है, जिंदगी को जीने लायक बनाये रखता है।

अज्ञानी भाग्य में जीते हैं, ज्ञानी मुगालते में।

दोस्त ने मुझे बताया, 'ग्रास टाइम्स' वास्तव में 'ग्रास टाइम्स' क्यों है?

पत्रिका में पुण्य–स्मरण जायेंगे, फोटो–सहित। इसके तो पैसे भी मिलेंगे। ठीक है, श्रद्धा की चीज है; पर लोगों के लिए तो यह घास ही है।

बर्थ–डे आते हैं बच्चों के, फोटो–सहित। ठीक है कि ये बड़ों के बच्चे होते हैं; पर यह क्या कोई समाचार है? यह भी घास है।

टेंडर नोटिस, तलाक–नोटिस, खो गया है– फोटो सहित, यह सब घास के सिवा क्या है?

विज्ञापन तो किसी अखबार की बहुत ऊँची घास है। यह अखबार को दूध देती हो, पर पाठक को यह न खाने के काम की न पैकिंग के काम की।

स्वयं अखबार अपने आपमें जितना ज्यादा घास, उतना अधिक विज्ञापन का घास उसे प्राप्त होता है। अखबार और विज्ञापन के घास के इस अन्योन्याश्रित सम्बन्ध से और–और घास पैदा होती है।

अमुक क्लब में अमुक–अमुक की उपस्थिति घास।

अमुक–अमुक सेठ के यहाँ बड़े ठाट से विवाह सम्पन्न हुआ, समाचार फोटो–सहित; अमुक–अमुक मंत्री भी शादी में उपस्थित थे, तथापि समाचार घास।

मंत्री ने शिलान्यास किया, मंत्री ने उद्घाटन किया, मंत्री ने विमोचन किया, घास।

मंत्री ने घटना स्थल–यानी दुर्घटना स्थल को भेंट दी, घास।

मंत्री सात दिन के विदेश दौरे पर, घास।

मंत्री का आज शहर में आगमन, कॉर्पोरेशन की ओर से नागरिक अभिनंदन, घास।

मंत्री का कॉटन–मार्केट मैदान में भाषण, भारी संख्या में लोग उपस्थित, घास।

मंत्री ने अपने भाषण में लोगों को साम्प्रदायिक एकता, सद्भाव और भाईचारा बनाये रखने की अपील की, घास।

मंत्री ने बीस–सूत्री कार्यक्रम के अपने निश्चय को दुहराते हुए कहा, देश की काया पलट केवल इस बीस–सूत्री कार्यक्रम से ही सम्भव है, घास।

मंत्री ने गरीबी हटाओ का नारा दिया, घास।

भ्रष्टाचार को हम मिटाकर रहेंगे, घास। यह घास इसलिए भी कि मंत्री ही इससे मिट जायेगा।

कालाबाजारियों के साथ हम सख्ती से पेश आयेंगे, घास।

हमारा देश कृषि प्रधान है, हम गाँवों की उन्नति के लिए प्रतिबद्ध हैं, घास।

मंत्री–सम्बन्धी और ऐसी कितनी ही बातें।

सेठ पुन्नालाल आज साठ वर्ष के हो गये, घास।

सेठ पुन्नालाल–सम्बन्धी एक विस्तृत लेख फोटो–सहित, ये कभी इस नगर में केवल एक लुटिया–डोर लेकर आये थे और आज करोड़पति हैं, घास।

नेता महोदय की मृत्यु, घास। शोक संदेश, घास। शोकसभाएँ, घास।

कलेक्टर महोदय के हाथों बकरी–वितरण फोटो–सहित, घास।

कलेक्टर द्वारा किरासिन तेल उपलब्ध करा देने का आश्वासन, घास।

दोस्त ने मुझे बताया कि 'ग्रास टाइम्स' में मुझे इस बात का ख्याल रखना होगा कि कोई शुद्ध सांस्कृतिक समाचार न चला जाये। इससे उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा।

साहित्यिक गोष्ठी की अपेक्षा 'डांस कंसर्ट' अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए डांस कंसर्ट तो ग्रास टाइम्स की चीज है, साहित्यिक गोष्ठी नहीं।

नगर में किसी विद्वान् के आगमन की अपेक्षा किसी फिल्मी विदूषक का आगमन अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए फिल्मी विदूषक 'ग्रास टाइम्स' की चीज है, विद्वान का आगमन नहीं।

नेता की छींक तो 'ग्रास टाइम्स' है, विद्वान् की मौत नहीं।

फिल्मों के रिव्यू 'ग्रास टाइम्स' है, किताबों के 'रिव्यू' नहीं।

अफसर की जीप का पंक्चर 'ग्रास टाइम्स' है, अध्यापक की साइकिल की चोरी नहीं।

दोस्त ने बताया अखबार में वही जाये, जो दूसरे दिन फिंक जाये।

वह अखबार जिसमें आज सूँघा और कल फेंका की अपेक्षा कटिंग करके रखनेवाला मैटर डाला नहीं कि समझो, तुम अपने लिए आप कब्र खोद रहे हो।

इसीलिए कविता, कहानी, हास्य–व्यंग्य भी इसमें उन्हीं के जायें, जो स्वयं घास हैं।

नित्य इस बात का ख्याल रखो कि बाजार में तीखी प्रतिस्पर्द्धा है और जो अपने पेपर में ज्यादा–से–ज्यादा घास दे सकता है वही जिंदा रह सकता है।

मैंने दोस्त की बातों का ख्याल रखा।

'ग्रास टाइम्स' धड़ल्ले से चल पड़ा है। मेरे दोस्त के साथ–साथ मेरी भी शख्सियत बन गयी है।

❐

–२, मायादेवी नगर, जलगाँव – ४२५००२।

कविवर राम कुमार चतुर्वेदी जब अपने पावस गीत की इस प्रथम पंक्ति का सस्वर–पाठ करते थे, तो पण्डाल या कक्ष में लगता था मानो आकाश में काले–काले मेघ उमड़ते–घुमड़ते चले आ रहे हैं। 'ध्वनि' अलंकार साक्षात् मूर्तिमन्त हो उठता था। आज भी आसमान में 'धूम धुँआरे काजर कारे' मेघ लगातार उमड़ते–घुमड़ते आ रहे हैं, छा रहे हैं; 'घन–गर्जन' हो रहा है; 'बिजलियाँ' चमक रही हैं; कड़क रही हैं; 'शम्पा–पात' हो रहे हैं। ये काले–काले मेघ वे नहीं हैं, जो बरस कर धरती को हरा–भरा करते हैं; धन–धान्य उपजाते हैं; श्री–समृद्धि प्रदान करते हैं। ये तो वे 'घन' हैं, जिनके बरसते ही हरी–भरी धरती बंजर हो जाती है; गाँव–घर उजड़ जाते हैं; लोग अपने प्राण लेकर भागते हैं; विस्थापित होकर सुरक्षित स्थानों में शरण लेने के लिए बाध्य होते हैं। ये 'धूम धुँआरे' तो होते ही हैं, 'काजर कारे' भी होते हैं। खण्ड–प्रलय के द्योतक ये 'काले मेघ' हैं इस्लामी आतंकवाद के, जो इस देश को तो त्रस्त किये ही हैं, विश्व के अन्य अनेक देशों को भी संत्रस्त किये हैं। आज का रूस चेचेन्या और दागेस्तान में; चीन सिंक्यांग में; फिलीपीन्स अपने दक्षिणी द्वीपों में; इण्डोनेशिया बाली में; थाई देश मलेयेशिया की सीमा से लगे क्षेत्र में; म्यांमार (बर्मा) अराकान में, श्रीलंका पूर्वोत्तर–प्रान्तों में; यहाँ तक कि सर्वशक्तिशाली अमेरिका भी अपने घर में ही नहीं, बाहर भी इस आतंकवाद से पीड़ित है। ऐसे में भारत की तो बात ही क्या? आये दिन के बम–विस्फोटों, सुरक्षा शिविरों पर आक्रमणों, रेलों की दुर्घटनाओं, हत्याकाण्डों, जन–संहारों का एक अटूट सिलसिला न जाने विगत कितने वर्षों से चल रहा है। तात्कालिक घटनाओं पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है; सरकारी वक्तव्य आते हैं; शोक–संवेदना–सन्देश राष्ट्रपति–भवन तक से भुक्तभोगी परिवारों को प्राप्त होते हैं; आश्रितों को अनुदान–राशि दी जाती है; परन्तु रोग है कि दिनानुदिन बढ़ता ही जाता है। सही निदान की ओर किसी की दृष्टि आखिर क्यों नहीं जाती?

और 'बादल' ! और 'बादल'!! और 'बादल' आ रहे हैं !!!

थोड़ा इतिहास के दरवाजे में झाँककर देखें, तो बीमारी की जड़ कहाँ है, इसका पता चल जायेगा। जो इस्लामी–आतंकवाद आज पूरे विश्व को त्रस्त किये है, उसका जन्म तो उसी दिन हो गया था, जब इस्लाम के प्रवर्तक को मक्का से मदीना पलायन करते समय यहूदी कबीले के जिस छोटे से गाँव के निवासियों ने पनाह दी थी, मक्का पर आधिपत्य प्राप्त करने के पश्चात् उसी गाँव के निवासियों को इस्लाम ग्रहण करने से इनकार करने पर खुद अपने हाथों अपनी कब्रें खोदकर जिन्दा दफन होना पड़ा था। बची थी मात्र एक वृद्धा, उसका क्या हुआ, इतिहास इस पर मौन है। केरल में जिस दिन पहली मस्जिद बनी थी, उसी दिन भारत में इस्लामी आतंकवाद का प्रवेश हो गया था और बकौल मोहम्मद अली जिन्ना, जिस दिन पहला हिन्दू मुसलमान बना था, उसी दिन 'पाकिस्तान' की नींव पड़ गयी थी। पाकिस्तान–निर्माण की जड़ में भी इस्लामी आतंकवाद से प्रकम्पित गान्धी–नेहरू का कांग्रेसी–नेतृत्व था, जो मुस्लिम लीग के डाइरेक्ट–ऐक्शन–डे (१६ अगस्त, १९४६) के दिन नोआखाली, खुलना, बारीसाल, कलकत्ता आदि में भयंकर हिन्दू–संहार देखकर भयातुर हो गया था। इस संहार का महानायक था हसन शहीद सुहरावर्दी, तत्कालीन बंगाल का 'प्रधानमन्त्री' और उसका दाहिना हाथ था वह शेख मुजीबुर्रहमान, जिसे 'बंगबन्धु' कहकर इन्दिरा गान्धी ने बांग्लादेश का प्रथम राष्ट्रपति बनवाया था। इसके पहले मलाबार में ऐसे ही हिन्दू–संहार के हीरो 'अली भाईयों' (मौलाना मोहम्मद अली, शौकत अली) को गान्धीजी अन्त तक अपना कण्ठहार बनाये रहे थे। सिन्ध पर मोहम्मद–बिन–कासिम के आक्रमण से लेकर आज तक भारत (विभाजन हो जाने पर भी) इस इस्लामी आतंकवाद से लगातार आक्रान्त है। बीच–बीच में इसकी धार कुण्ठित भले ही कर दी गयी हो; परन्तु इसकी गति पूर्णतः रुकी नहीं है। १५ अगस्त, १९४७ को मजहब के आधार पर किये गये देश–विभाजन से गत ९०० वर्षों से सतत चले आ रहे इसके आक्रमण को जो विजय अनायास मिल गयी, उसने

नव–निर्मित देश पाकिस्तान को अपनी आधारभूमि बनाकर अपने प्रहार और तेज कर देने के लिए जैसा 'टानिक' पिला दिया है, वह भारत के लिए कितना घातक सिद्ध हुआ, हो रहा है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'कारगिल' है। इस्लाम के प्रचार–प्रसार का पहला मन्त्र है आतंकवाद और यह इस मजहब का मूलभूत सिद्धान्त है, इस तथ्य को जितनी जल्दी हम समझ लेंगे, उतनी जल्दी ही इस बीमारी का 'सही इलाज' करके इसका समूलोच्छेदन करना सम्भव होगा। इतिहास साक्षी है कि इस्लाम अपने प्रवर्त्तन के दिन से ही जिधर–जिधर और जहाँ–जहाँ गया, विध्वंस, जन–संहार, बलात्कार, आगजनी, लूट तथा क्रूरतम अत्याचारों की आँधी चलाता गया। ईरान जैसा पूरा का पूरा देश इसी आतंक के कारण बिना लड़े ही इस्लाम कबूल करने को बाध्य हुआ था। 'दाँयें हाथ में तलवार और बाँयें हाथ में कुरान' को लेकर ही इस्लाम का प्रसार हुआ है, और आज भी यही उसका आधारभूत प्रचार– प्रसार का माध्यम है।

विश्व के जिस–जिस देश में 'इस्लाम' पहुँचा, वहाँ का इतिहास इसका प्रत्यक्ष गवाह है। मिस्र में अलेग्जैण्ड्रिया (वर्त्तमान सिकन्दरिया) का विशाल पुस्तकालय जलाकर वहाँ इसका 'बिस्मिल्लाह' (श्रीगणेश नहीं) हुआ और फिर तो इसने मोरक्को तक पूरा उत्तरी अफ्रीका ही नहीं, जिब्राल्टर पार कर पूरा स्पेन और दक्षिणी फ्रांस तथा यूनान एवम् अन्य बाल्कन प्रदेशों को रौंद डाला। स्पेन ने ही इसे बाद में यूरोप से उखाड़ फेंका। बोस्निया हर्जेगोविना और कोसोवो जैसे यूगोस्लाविया के प्रान्त बाल्कन–क्षेत्रों के बलात् इस्लामीकरण के अवशेष के रूप में आज भी सर्बों का जीना दूभर किये हैं, उनके अपने ही घर में। अल्बानिया का तो तब पूरा इस्लामीकरण हो जाने के कारण ही आज वह यूगोस्लाविया और ग्रीस के मूल निवासियों को आतंकवाद का शिकार बनाने का आधार–शिबिर बन गया है। भारत से इसे मराठों, बुन्देलों, जाटों, सिखों ने भी लगभग उखाड़ ही दिया था कि योरोपियन आ धमके। उन्हें भगाया, तो यहाँ के नेतृत्व की कायरता ने इसे नया आधार दे दिया। गत बावन वर्षों से 'सेक्यूलरिज्म' के नाम पर इस विष–वृक्ष को जिस प्रकार सींचा गया है, उसी का कुफल है कि जम्मू–कश्मीर ही नहीं; पूरा देश यत्र–तत्र 'लहूलुहान' हो रहा है। विजय–पथ पर सतत बढ़ती सेना के पैरों में बार–बार 'आँदू' डालने और प्राप्त विजय को वार्त्ता की मेज पर बार–बार गँवा बैठने का ही नतीजा हुआ कि पहले पूर्वोत्तर भारत, फिर पंजाब और फिर जम्मू–कश्मीर रक्तरंजित हुए, देश के हर कोने को आई.एस.आई. के एजेण्टों और उनके संरक्षकों ने छाप लिया। मुस्लिमपरस्ती पराकाष्ठा को पहुँचा दी जाने के कारण कोई भी राजनीतिक दल या नेता इस 'सत्य का साक्षात्कार' करने को तैयार नहीं है। मुस्लिम वोट बैंक को पटाने के लिए परस्पर गला–काट होड़ चल रही है, ऐसे में न देश सुरक्षित है, न कोई देशवासी। जब तक 'अली मियाँओं', 'बुखारियों' या 'दिलीप कुमारों' को देशभक्ति के प्रमाण–पत्र जारी करनेवालों, उनका चरण–चुम्बन करनेवालों को ठीक से पहचाना नहीं जायेगा, उनकी 'दिमाग दुरुस्ती' का पुख्ता इन्तजाम नहीं किया जायेगा; आस्तीन में पाले गये, पाले जा रहे विषधरों का फन नहीं कुचला जायेगा, रहे–बचे भारत के प्राण लगातार साँसत में पड़े रहेंगे। पाकिस्तान का वर्त्तमान–रूप में अस्तित्व बना रहना न केवल भारत, अपितु पूरे विश्व की शान्ति के लिए भी सदा घोर संकट का कारण रहेगा।

यह तो है आतंकवाद के सिक्के का मुख–भाग। इसके पृष्ठ–भाग पर भी विशेष ध्यान देना अपरिहार्य हो गया है। 'पोप–तन्त्र', 'इस्लामी–तन्त्र' से कम खतरनाक नहीं है और यह तन्त्र यदि कहीं एक विदेशी गौरांगना के माध्यम से सफल हो गया, तो ७१२ से लेकर अब तक लड़ी जा रही स्वतन्त्रता और उसकी रक्षा की सारी लड़ाई अपनी सार्थकता से ही हाथ धो बैठेगी। इस सम्भावना को दृष्टि से ओझल करना भारत की अस्मिता के लिए कितना घातक सिद्ध होगा, इसका आकलन सहज सम्भव नहीं है। इस्लामी–तन्त्र और पोप–तन्त्र भारत में हाथ मिलाये हुए हैं, परस्पर पूरक हैं, यह भी भूलने की बात नहीं है।

अणु–शक्ति–सम्पन्न भारत, उसकी अजेय सेना और उसके राष्ट्रभक्त संगठन ही वह गारण्टी हैं, जिन्हें एक पूर्ण बहुमत–प्राप्त राष्ट्रवादी सुदृढ़ सरकार का दीर्घकालिक संरक्षण प्राप्त होना अपरिहार्यतः अपेक्षित है। इस शर्त को पूरा करने के दायित्व का सम्यक्–बोध और उसके निर्वाह का अवसर सामने खड़ा है। बस, इस अवसर को पहचानने और उसका भरपूर उपयोग करने की बात है। अन्यथा–

'फिर पछताये होत का, जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत।'

– आनन्द मिश्र 'अभय'

एकता का आधार हमारी सांस्कृतिक सजगता

– राजशेखर व्यास

किसी भी राष्ट्र में एकता का महत्व सर्वाधिक है; किन्तु गणतन्त्रीय शासन में तो एकता की सर्वप्रथम और सर्वाधिक आवश्यकता होती है।

आन्तरिक भेद गणतन्त्र के लिए जितना बाधक है, उतना बाहरी आक्रमण नहीं। महाभारत में भी स्पष्ट कहा है– 'भेद गणा विमश्त्र्येषु' हमारा देश शताब्दियों की दासता के पश्चात् 'गणतन्त्र' बना है, इसलिए उसकी रक्षा में बुद्धिभेद को अवसर नहीं मिलना चाहिए।

किन्तु हमारा गणतन्त्र जिस सरलता से संघर्ष की कसौटी पर कसे बिना निर्मित हुआ, इस कारण हमने एकता के महत्त्व को ठीक तरह अनुभव नहीं किया, परिणाम यह हुआ कि अनेक मतभेदों ने स्वार्थ–भावना–विभूत होकर जन्म ले लिया, फलतः आत्मरक्षा की चिन्ता उपेक्षित होती गयी और आन्तरिक संघर्षों में हमारी शक्ति क्षीण होने लगी।

इसी के साथ–साथ हमारे नेताओं ने कुछेक ऐसी शर्तों की शुरुआत भी कर दी, जो धीरे–धीरे की जाती हैं। एक प्रयोग की सफलता के बाद ही दूसरा प्रयोग किया जाता, तो हमारी कमजोरियाँ और उनकी अभिव्यक्ति भी सीमा में ही रहती।

असन्तोष की जो चिनगारियाँ अफगानों में, उपजीं और अमानउल्ला की प्रगति की द्रुतगामिता ने जो परिणाम प्रस्तुत किया था, वह आज इतिहास बन चुका है तथापि हमने उसकी उपेक्षा ही की है, सबक नहीं लिया। हमने स्वयं अनेक असन्तोषों को प्रेरित व प्रोत्साहित किया और उनके बढ़ने पर हम उसी में घिरते चले गये। इसी तरह के आन्तरिक असन्तोषों का विघटनकारी और अराष्ट्रीय तत्त्वों ने नाजायज फायदा उठाया और राष्ट्रीय हितों को पीछे रखकर अपने स्वार्थों को प्राथमिकता दी। असन्तोष की चिनगारी को हवा देकर दावानल बनाया गया और जनतन्त्र का यह अभिशाप कि वाणी और लेखनी की स्वाधीनता के नाम पर हम उन लपटों को दावानल बनने से रोकने में भी असमर्थता अनुभव करते रहे। यह कैसी विवश आत्मवंचना रही; परन्तु जो काम शासन और प्रभावशाली नेतृत्व कभी–कभी नहीं कर सकता, युद्ध कर देता है। सन् १९६५ व १९७१ के भारत–पाक युद्ध को स्मरण करें। शत्रुओं ने क्षण भर में इस महान् राष्ट्र की सीमा पर आक्रमण कर जनभावनाओं को उद्वेलित कर दिया था। कारगिल–युद्ध तो अभी ताजा ही है।

निश्चय ही कुछ समय के लिए जनता में एकता की भावना जाग्रत् और जीवित हो गयी है, जिसे देखे अर्सा हो चुका था। हमें यह स्वीकारना होगा कि देश की जनता ने संकट को सामने आया देख समस्त भेदभावों को भुलाकर राष्ट्रीय एकता को पूरे बल और भव्य–भावना के साथ प्रकट किया है तो क्या हम सदैव युद्ध या संकट की ही कामना करते रहें ?

एकता के सही सूत्र

आज एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न राष्ट्र भाषा हिन्दी को इसका उचित स्थान देने, भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने तथा राष्ट्रीय भावनाओं को स्थायित्व प्रदान करने का भी है। हमें भाषायी विवादों को समाप्त करना होगा। यह कैसी प्रवंचना है कि जिस संस्कृति और संस्कृत ने सदियों से इस देश को एकता के सूत्र में ग्रन्थित कर रखा, उसी संस्कृत की समाधि पर राष्ट्रीय एकता की स्वप्न–सृष्टि सोची जाती है।

इसे आत्मवंचना ही कहना होगा कि जिस कालिदास और व्यास को समझने के लिए दुनिया के किसी भी संस्कारी व्यक्ति को उसके मौलिक रूप संस्कृत में देखने की जिज्ञासा जाग्रत् होती है और संस्कृत न जानने की विवशता अनुभव होती है, चाहे वह रूसी हो, अमेरिकी हो या फ्रांसीसी– वह संस्कृत का महत्त्व समझ उसे जानने को प्रयत्नशील होता है और अपने देश में उसके अध्ययन की योजना करता है; किन्तु हम स्वतन्त्र होकर भी अपनी उस निधि की समाधि पर अंग्रेजी का वर्चस्व प्रतिष्ठापित करने और इसे राष्ट्रभाषा के पवित्र सिंहासन पर बैठाने के लिए बेचैन हैं।

जो संस्कृत भाषा समुद्र पार के सुदूर देशों को हमारे निकट आकर्षित करती है, उसे हम अपने राष्ट्र में प्रताड़ित कर अपनी उस संस्कृति को समाप्त करना चाहते हैं, जो अपनों को ही नहीं, परायों को भी निकट लाकर एकता के सूत्र में पिरोये रखने की क्षमता रखती है।

यदि राजनीतिक एकता के आधार पर राष्ट्रीय एकता की नींव रखी जाये, तो कदापि उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं रह सकता; क्योंकि परिवर्तनशील राजनीति की एकता भी "क्षण–जीवी" ही रहेगी। वास्तविक एकता संस्कृति के सुदृढ़ आधार पर ही स्थापित हो सकती है; पर जहाँ संस्कृति संहार की प्रवृत्तियाँ पनप रही हों, वहाँ यह कल्पना भी कितनी कठिन हो सकती है।

काश ! कभी काल की कठिन कसौटी पर हमारे संस्कारों का उज्ज्वल आलोक प्रकाशित हो। ▭

– ई–६०७, कर्जन रोड अपार्टमेण्ट्स, नई दिल्ली–११०००१

देश, मेरे देश !

– डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री

देश, मेरे देश !
लो करो स्वीकार ये मेरे प्रणाम अशेष।
हे परम आराध्य,
मेरी जननि के भी जनक,
मेरे पूर्वजों के पुण्य के अवशेष !
देव–वन्दित श्रेष्ठ,
मेरी साधना के देश, मेरी अर्चना के देश !
विश्व ने पायी तुम्हीं से प्रथम जीवन–दृष्टि,
की तुम्हीं ने प्रथम मानव सभ्यता की सृष्टि,
कौन–सा विज्ञान है जिसका किया न विकास
नाप डाला प्रथम तुमने ही अगम आकाश।
थे दधीचि कि अस्थियाँ भी दान कर दीं,
वज्र बनकर करें दानव–सैन्य का संहार।
थे भगीरथ काट हिमगिरि
उतारी इस भूमि पर थी जाह्नवी धारा।
भरत जिनके तेज से दीपित स्वदेश विदेश,
आलोकित सकल परिवेश।
देश, मेरे देश !

और कल की बात
तुमने प्राण की बाजी लगाकर
बन्धनों के साथ तोड़ा था विदेशी शक्ति का अभिमान।

और तोड़ा है अभी तो
धूर्त्त शात्रव–सैन्य का दर्पित कुटिल अभियान।
रुक गया क्यों रथ ?
कौन करता जा रहा अवरुद्ध शाश्वत कर्म का पथ ?
टूटती–सी जा रही क्यों आस्था की रज्जु ?
और बुझता जा रहा विश्वास का दीपक,
सूखने–सी लगी निश्छल स्नेह की धारा,
आ रहे क्यों कान में बस चीख, हाहाकार के, ललकार के स्वर
और छाता जा रहा आकाश में काला धुआँ।
बन्द के आह्वान, ये हड़ताल के, अधिकार के नारे
और फिर आरोप–प्रत्यारोप।

खो गया श्रम,
दीन, आश्रयहीन–सा कर्त्तव्य
कुण्ठित बुद्धि,
कौन जाने राम ! क्या होगा
किस पिशाची ने किया है यह
नयन उन्मेष।
देश, मेरे देश !

✿ ✿ ✿

किन्तु हे मेरे पुरातन देश !
झेलते आये युगों से तुम प्रभञ्जन और झंझावात।
और टूटे नहीं,
तोड़ पाया नहीं तुमको कभी कोई।
हम तुम्हारे केतुवाहक,
है प्रवाहित इन शिराओं में रुधिर जब तक
कभी होने न देंगे हम विखण्डन।
ज्योति जलती ही रहेगी त्याग की बलिदान की,
हो भले संघर्ष लम्बा और भीषण
किन्तु होगी सत्य, समता, न्याय की ही जीत
है मुझे विश्वास यदि बलि के लिए आह्वान दूँगा,
सिर हथेली पर लिये फिर चल पड़ेगी
साथ पूरी एक पीढ़ी स्वाभिमानी
जो तुम्हारी जीर्ण जर्जर देह में भी
करेगी नव रक्त का संचार।
थके प्राणों में भरेगी शक्ति,
नयनों में उषा की ज्योति,
मन में कर्म का संकल्प, चरणों में प्रगति की स्फूर्ति,
क्या हुआ यदि समय गति ने
अर्थ शब्दों के बदल डाले।
और गढ़ ली नयी परिभाषा
सभ्यता की।
अर्थ केवल, साधना का सार–केवल, अर्थ कर डाला।
हम बदल देंगे तुम्हारे ये फटे परिधान
दे देंगे नया परिवेश, उज्ज्वल वेष
मेरे देश !

– *ई० २/७३, महावीर नगर, भोपाल–४६२०१६*

राजनीति

आचारहीन राजनीति से ऊब चुका है देश

– हृदय नारायण दीक्षित
(भू.पू. संसदीय कार्य–मन्त्री, उ.प्र.)

(कांग्रेस की पुरानी आदत रही है दल–बदल कराने की; समाजवादियों की आदत रही है स्वयं टूटने, जुड़ने और फिर टूटने की। थाली के बैंगनों की बढ़ती भीड़ ने आसन्न लोकसभा चुनाव के पहले पुनः अपनी कलाबाजियाँ दिखाना प्रारम्भ कर दिया है। – सम्पादक)

भारत की सम्पूर्ण राजनीति का कोई केन्द्रीय अधिष्ठान नहीं है। बेशक सभी दलों के अपने-अपने भिन्न विचार होने चाहिए। राष्ट्र–निर्माण और सत्ता-सञ्चालन की अपनी वरीयताएँ भी होनी चाहिए; मगर कुछ सामान्य आदर्शों और लक्ष्यों पर सभी दलों को एक-स्वर से ही बोलना चाहिए। जैसे (१) भारत सनातन राष्ट्र है, (२) इस देश की धरती हमारी माता 'भारतमाता' है। हम जिएँगे इसी के लिए; हम मरेंगे भी इसी के लिए। (३) भारत की राष्ट्रीयता सनातन है और उसका केन्द्रीय अधिष्ठान हिन्दुत्व है। (४) हिन्दुत्व कोई 'वाद' या 'इज्म' नहीं है। वह पन्थ, मजहब या 'रिलिजन' नहीं है– वह इस देश की धरती की गति, प्रकृति और संस्कृति है। वह भारत के राष्ट्रजीवन का चिरन्तन प्रवाह है। (५) इसलिए देश के सभी राजनीतिक दल इस देश को एक राष्ट्र, एक जन और संस्कृति के रूप में समग्रता के साथ स्वीकार करें। इस सूची में इन आधारभूत तत्त्वों के साथ कतिपय और बिन्दु भी सबकी सहमति से जोड़े जा सकते हैं; किन्तु स्मरण रहे कि भारत की आस्था के ये बिन्दु सभी दलों के घोषित कार्यक्रम जैसे नहीं होंगे। ये बिन्दु हिन्दुस्थान के सम्पूर्ण राजनीतिक अधिष्ठान की आस्था होंगे। संसदीय व्यवस्था की जननी कहे जाने वाले इंग्लैण्ड में परम्पराओं पर कोई बहस नहीं होती। भारत के सभी राजनीतिक दलों को भी ऋग्वेद, उपनिषद्, विश्वामित्र, वसिष्ठ, राम, कृष्ण और शिव पर कोई बहस नहीं चलानी चाहिए। इसी परम्परा को प्रखरता देनेवाले बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द, विवेकानन्द, गान्धी और डा० केशवराव बलिराम हेडगेवार पर भी नहीं और भारत की एकात्मकता के स्वप्नदर्शी डा० अम्बेदकर पर भी नहीं।

हमारी सम्पूर्ण राजनीति का अधिष्ठान राष्ट्र हो। यह हमारी आस्था हो; वही हमारी श्रद्धा भी हो। हमारी सभी गतिविधियों का कारण और कर्म राष्ट्र–मंगल से जुड़ा होना चाहिए। फिर राष्ट्र को सर्वशक्ति–सम्पन्न और सामर्थ्यवान् बनाने की दिशा में अपनी–अपनी विचार–सरणी लेकर सभी दल काम करते, तो देश का इतना अनिष्ट न होता।

परन्तु हिन्दुस्थान सिद्धान्तनिष्ठ राजनीति की राह से भटक गया है। अब राजनीति का उद्देश्य सत्ता है। राष्ट्र हित और लोकहित के उदात्त लक्ष्य पृष्ठभूमि में चले गये हैं। तीव्र सत्ता–पिपासा ने समाज को कई तरह के खण्डों में तोड़ा है। जातियों का उन्माद बढ़ाकर आपस में ही एक दूसरे के खून की प्यास बढ़ायी गयी है। अब जातियों की पार्टियाँ हैं; पार्टियों की जातियाँ हैं। क्षेत्र आधारित पार्टियों की ताकत बढ़ रही है। देश की सम्पूर्ण राजनीति का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र गड़बड़ा गया है। यह राजनीति सत्तालोलुप है। सो यह कलह–प्रिय और झगड़ालू है। इसीलिए प्रत्येक राजनीतिक दल में लगातार टूटते रहने की प्रवृत्ति है। विचार आधारित राजनीति के अभाव में समाज दरक गया है।

दुष्परिणाम हमारे सामने है। अब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता। देश के अनेक राज्यों की विधान सभाओं में भी एक दल के स्पष्ट बहुमत अब नहीं आ रहे हैं। इसका लाभ अवसरवादी राजनीतिक दल और नेता उठाते हैं। वे सत्ता के लोभ में इस या उस दल में बैठकर राजनीतिक अस्थिरता पैदा करते हैं। अपना मोल–भाव बढ़वाते हैं। सरकारों की अकाल मृत्यु हो जाती है। विधायी संस्थाएँ अपना काम और कार्यकाल अधूरा छोड़कर भंग हो जाती हैं।

राजनीतिक चरित्रहीनता की कोख से ही अवसरवादी गठबन्धनी राजनीति का जन्म हुआ। बीता दशक ऐसे गठबन्धनों के बनने और बिगड़ने का दुर्भाग्यपूर्ण काल–खण्ड रहा है। अवसरवादी राजनीति को मालपुआ

खिलाने और देश को लूटने-लुटवाने का काम कांग्रेस पूरी चतुराई से करती रही है। नरसिंह राव की सरकार अल्पमत में थी। देखते ही देखते कांग्रेस को बहुमत मिल गया। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के सांसद् ने स्वयं रिश्वत प्राप्त करने की स्वीकारोक्ति की। कांग्रेस ने ब्रीफकेस देकर पाँच साल सरकार चलायी। भारत का लोकजीवन बेहद आहत था। उसे कांग्रेसी राजनीति से जुगुप्सा हो गयी। चुनाव हुए। भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। राष्ट्रपति के न्योते पर १९९६ में अटल बिहारी वाजपेयी की पहली सरकार बनी। सरकार लोकसभा में बहुमत न सिद्ध कर पाने के कारण गिर गयी। इसी बीच अवसरवादी संगठित हो गये। कांग्रेस के समर्थन से एच०डी० देवेगौड़ा प्रधानमन्त्री बने। देवेगौड़ा कांग्रेस के दबाव में अपनी सत्तालिप्सा पूरी नहीं कर पाये। कांग्रेस उनका पर्याप्त शोषण कर चुकी थी। कांग्रेस ने पूरी सरकार पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया; मगर देवेगौड़ा की जगह गुजराल को लाकर सत्ता का घिनौना खेल आगे भी चलाया गया। कांग्रेस ने देवेगौड़ा की तरह ही गुजराल की सरकार भी गिरा दी।

फिर चुनाव आ गये। भाजपा ने अपनी सहयोगी दलों के साथ सरकार बना ली। मुलायम सिंह कांग्रेस को सरकार बनाने की खातिर प्रोत्साहित करते रहे। सोनिया गान्धी ने कांग्रेस के संविधान को लतियाकर राष्ट्रीय अध्यक्ष सीताराम केसरी की कुर्सी हथिया ली। बिहार की राबड़ी सरकार से सारा देश क्षुब्ध था और है। कांग्रेस के समर्थन से बिहार में गरीबों का कत्लेआम आज भी जारी है। बिहार सरकार की बर्खास्तगी पर सारा देश खुश था; किन्तु कांग्रेस अड़ गयी। राज्यसभा में विपक्ष का बहुमत था। राबड़ी सरकार बहाल हो गयी। १३ माह की अटल सरकार में अनेक गठबन्धन बने। मुलायम-लालू का जातीय मोर्चा रालोमो बना और टूट भी गया। राबड़ी की बहाली के जवाब में लालू कांग्रेसी खेमे में चले गये।

विपक्ष, खास तौर से सोनिया की सत्तालोलुपता के चलते अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार गिरा दी गयी। श्री वाजपेयी बहुमत जुटाने की कांग्रेसी शैली से सहमत नहीं थे। भाजपा ने सांसद् खरीदने के बजाय आम जनता के बीच जाना ज्यादा मुनासिब समझा। अब आगे का फैसला देश की सुधी जनता करने जा रही है।

सिद्धान्तहीन गठबन्धन जारी हैं। गठबन्धनों का टूटना भी जारी है। दलों में सिद्धांतहीनता है ही। सिद्धान्तहीन दल रोजाना सिद्धान्तहीन गठबन्धन भी बना रहे हैं। पं० दीनदयाल उपाध्याय सिद्धान्तहीन गठबन्धनों को देश के खिलाफ मानते थे। वे लिखते हैं, "चुनाव गठबन्धन से जनता में नकारात्मकता की भावना पैदा होती है। गठबन्धनों का निश्चित अर्थ है सिद्धान्तों से समझौता। गठबन्धनों से देश के अवसरवादी तत्त्वों को सहायता मिलती है। इनसे बचना चाहिए। सारी राजनीतिक गतिविधियों की अन्तिम परिणति-सत्ताप्राप्ति- की दिशा में भी जनतन्त्र में कुछ सीमाएँ होती हैं। यह गोली के प्रयोग को परित्याज्य बताता है; परन्तु मतपेटी के संघर्ष में भी सब कुछ उचित नहीं माना जा सकता"। (पं० दीनदयाल उपाध्याय : पोलिटिकल डायरी ११-१२-१९६१ पृ० १५५)

दरअसल विचार आधारित लोकमत का निर्माण बड़ा समय और कठोर श्रम लेता है। भाजपा ने जनसंघ काल से ही विचार आधारित कार्यकर्त्ताओं की टोलियाँ तैयार की हैं। भाजपा किसी जाति, पन्थ, सम्प्रदाय के कारण नहीं बढ़ी। भाजपा की पूँजी उसके सिद्धान्तनिष्ठ कार्यकर्त्ता हैं। भारतीय जनसंघ पर शोध करने वाले प्रख्यात विद्वान डब्ल्यू० के० एण्डर्सन अपने शोधग्रन्थ "जनसंघ आइडियालोजी एण्ड आरगनाइजेशन इन पार्टी बिहेवियर" में लिखते हैं 'मेरा मुख्य प्रतिपादन यह है कि निष्ठावान् कार्यकर्त्ताओं की टीम को बनाए रखने की जनसंघ की क्षमता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ निकट सम्बन्धों के कारण सम्भव हो पायी है।'

भाजपा पथ-च्युत नहीं हो सकती। उसका मनोनिर्माण एक खास प्रकार की संगठन शैली से हुआ है। वह गठजोड़ों में जाकर भी अपनी पहचान बनाये रखती है। इसका कारण उसकी वैचारिक निष्ठा और कार्यकर्त्ता आधारित सांगठनिक संरचना है। 'पालिटिकल पार्टीज' के लेखक राबर्ट माइकेल कहते हैं, "राजनीतिक दलों में विषम राजनीतिक घटकों का समर्थन प्राप्त करने के लिए राजनीतिक लक्ष्य शिथिल करने की प्रवृत्ति होती है। मगर वैचारिक दृष्टि से प्रबुद्ध चुनिन्दा कार्यकर्त्ताओं के कारण वैचारिक प्रतिबद्धता शिथिल होने की सम्भावना कम रहती है।" भाजपा की वैचारिक प्रतिबद्धता लगातार प्रखर होती रही है।

गठबन्धन भाजपा ने भी बनाया है। मगर भाजपा गठबन्धन का निर्माण पार्टी की सफलता है। पहले भाजपा अछूत थी। अब जनता दल का एक मजबूत घटक भाजपा के गठबन्धन में शामिल होने को आतुर है। भाजपा का विचार अधिकांश राजनीतिक दलों के सिर पर सवार होकर बोल रहा है। देश चरित्रहीन राजनीति से थक चुका है, इसे सभी राजनीतिक दलों (भाजपा सहित) को समझ लेना चाहिए। ❑

-'अक्षर-वर्चस्', एल-१५६२, सेक्टर आई, ल०वि०प्रा०कालोनी, कानपुर मार्ग, लखनऊ

सीख- कारगिल की

- रामगोपाल

जम्मू-कश्मीर के कारगिल क्षेत्र में लगभग दो महीने तक चले (अघोषित) भारत-पाक-युद्ध के दौरान भारत के कोने-कोने से आवाजें आ रही थीं कि अब की बार तो पाकिस्तान को पक्का सबक सिखा दो। अपनी कर्तव्य-निष्ठा के साथ-साथ, इन आवाजों ने भारतीय सेना के उन वीर जवानों का उत्साह दुगुना कर दिया, जो विश्व के सबसे ऊँचे १५००० से १८००० फुट की ऊँची बर्फीली पर्वतमालाओं से घिरी, नियन्त्रण-रेखा के साथ-साथ, लगभग ८०० वर्ग किलोमीटर फैली रणभूमि में अत्यन्त वीरतापूर्वक पाकिस्तानी छद्मवेशी आक्रमणकारियों को पीछे धकेलते हुए, मौत की छाया में आगे बढ़े और अन्ततः उन्हें पीठ दिखाकर भागने पर मजबूर किया। सैनिक सफलता हासिल तो हुई; किन्तु लगभग ५०० वीर जवानों का बलिदान और १००० वीरों के अपंग होने के बाद। शत्रु को सबक मिला; लेकिन हमें भी बहुत कुछ सीखना है। पहला पाठ है, बलिदानी वीरों के आश्रितों और अपंग सैनिकों का उचित सम्मान और देखभाल करना। यही भाव अर्द्धसैनिक बलों, पुलिसकर्मियों और असैनिक बलिदानियों के प्रति भी होना चाहिए।

याद रहे कि उपर्युक्त इलाका उसी भारतीय भू-भाग का हिस्सा है, जिसे सन् १९४७ में पाकिस्तान ने इसी प्रकार छद्म-रूप में आक्रमण करके हथिया लिया था और जिसे भारतीय फौजों ने सैकड़ों बलिदान देकर छुड़ा लिया था। इससे पहले कि वे शेष भाग को भी पाकिस्तानी कब्जे से छुड़ा पातीं कि संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव पर १ जनवरी १९४९ से युद्ध-विराम लागू हो गया। यह भी याद रहे कि भारतीय फौजों की सफलतापूर्वक चल रही कार्रवाई के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ में गुहार लगाने का काम तत्कालीन भारत-सरकार ने किया था, न कि पाकिस्तान ने। सभी निष्पक्ष रक्षा विशेषज्ञों और राजनीति विशारदों का मानना है कि यदि उस समय भारतीय सेना को समस्त जम्मू-कश्मीर क्षेत्र को पाकिस्तानी कब्जे से मुक्त कर लेने दिया गया होता, तो आज कश्मीर-समस्या होती ही नहीं।

उन सभी सेवा निवृत्त अधिकारियों की, जिन्होंने सन् १९४७, १९६५ तथा १९७१ के भारत-पाक युद्ध में सक्रिय भाग लिया था, यह समान राय है कि "भारत के राजनैतिक नेतृत्व की प्रवृत्ति यह रही है कि सेना को युद्ध में झोंक दो और जब लड़ाई जीती जा रही हो या जीत ली गयी हो, तो संसार में अपनी शान्तिप्रियता और उदारता की छवि बनाने के प्रयास में जो कुछ युद्ध में प्राप्त किया, उसे वापिस कर दो। सन् १९६५ में भारतीय सेना ने,

---

उन सभी सेवा निवृत्त अधिकारियों की, जिन्होंने सन् १९४७, १९६५ तथा १९७१ के भारत-पाक युद्ध में सक्रिय भाग लिया था, यह समान राय है कि "भारत के राजनैतिक नेतृत्व की प्रवृत्ति यह रही है कि सेना को युद्ध में झोंक दो और जब लड़ाई जीती जा रही हो या जीत ली गयी हो, तो संसार में अपनी शान्तिप्रियता और उदारता की छवि बनाने के प्रयास में जो कुछ युद्ध में प्राप्त किया, उसे वापिस कर दो। सन् १९६५ में भारतीय सेना ने, युद्ध-विराम-रेखा के उस पार कई महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर कब्जा कर लिया था, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण था हाजीपीर का दर्रा। पर हुआ यह कि सोवियत रूस की मध्यस्थता में हुई ताशकन्द समझौता वार्ता के दौरान हाजीपीर तथा अन्य इलाके, जो हमारे अपने ही जम्मू-कश्मीर के भाग थे, वापिस कर दिये गये।"

☆ ☆ ☆

वास्तविकता यह है कि भारतीय (और सच कहें तो हिन्दू) नेतृत्व ही इस्लामी छुरे के आगे नतमस्तक हो गया और पाकिस्तान बन गया। लेकिन तुर्रा यह है कि पाकिस्तान बनने के बाद भी हिन्दू नेतृत्व विभाजित भारत को हिन्दू राष्ट्र मानने से इनकार करता रहा है। जहाँ पाकिस्तान ने अनुसूचित जातियों को छोड़कर, सारे हिन्दुओं और सिखों को या तो मार दिया या मुसलमान बना लिया, या उन्हें भारत की ओर खदेड़ दिया, वहाँ भारत ने 'सेक्यूलरिज्म' के नाम पर इस्लामी कट्टरवाद को ही सुरक्षा प्रदान की।

युद्ध–विराम–रेखा के उस पार कई महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर कब्जा कर लिया था, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण था हाजीपीर का दर्रा। पर हुआ यह कि सोवियत रूस की मध्यस्थता में हुई ताशकन्द समझौता वार्ता के दौरान हाजीपीर तथा अन्य इलाके, जो हमारे अपने ही जम्मू–कश्मीर के भाग थे, वापिस कर दिये गये।"

तो, दूसरों को सबक सिखाने की बात करनेवाले हम भारतीयों को ही अभी और बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। और, उसके लिए जानना जरूरी है कि वास्तव में भारत–पाक–युद्ध मार्च १९४० से ही चल रहा है, जब मुस्लिम लीग ने अविभाजित भारतभूमि पर एक अलग स्वतन्त्र इस्लामी राज्य बनाने का प्रस्ताव पास किया था। मुस्लिम लीग की मान्यता थी कि भारतवासी मुसलमान बहुसंख्यक हिन्दुओं और अन्य भारतीयों से बिल्कुल अलग है और स्वयं में एक राष्ट्र है। गैर मुस्लिम भारतीयों में ९७ प्रतिशत हिन्दू होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने एकल राष्ट्रवादी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को हिन्दू संस्था ही माना और गांधी जी को एक हिन्दू प्रतिनिधि। अन्तिम ब्रिटिश वायसराय, लार्ड माउण्टबैटन के भारत आगमन के दो सप्ताह पहले ही कांग्रेस की कार्यकारिणी ने पंजाब के विभाजन का प्रस्ताव पास कर दिया था; क्योंकि वह मुस्लिम लीग की हिंसात्मक कार्रवाई का सामना करने में असमर्थ थी। साथ में यह कहा कि यही सिद्धान्त बंगाल पर भी लागू होगा। वास्तविकता यह है कि भारतीय (और सच कहें तो हिन्दू) नेतृत्व ही इस्लामी छुरे के आगे नतमस्तक हो गया और पाकिस्तान बन गया। लेकिन तुर्रा यह है कि पाकिस्तान बनने के बाद भी हिन्दू नेतृत्व विभाजित भारत को हिन्दू राष्ट्र मानने से इनकार करता रहा है। जहाँ पाकिस्तान ने अनुसूचित जातियों को छोड़कर, सारे हिन्दुओं और सिखों को या तो मार दिया या मुसलमान बना लिया, या उन्हें भारत की ओर खदेड़ दिया, वहाँ भारत ने "सेक्युलरिज्म" के नाम पर इस्लामी कट्टरवाद को ही सुरक्षा प्रदान की। मुस्लिम लीग फिर खड़ी हो गयी। इस समय भारत में ६००० "मदरसे" चल रहे हैं, जिन्हें सरकारी मान्यता प्राप्त है, जिनमें मुसलमान बच्चों को हिन्दुओं से और हिन्दू संस्कृति से घृणा करने और राष्ट्र की मुख्य धारा से हटकर चलने की शिक्षा दी जाती है।

भारतीय की सामूहिक बुद्धि या कुबुद्धि की बलिहारी। आज भी सुसज्जित सुप्रशिक्षित, सुनियोजित पाकिस्तानी हमलावरों को घुसपैठिये ही कहा जा रहा है। उन्हें आज भी यह समझ नहीं आयी है कि इस भारतीय महादेश की सारी बीमारियों की जड़ इस्लामिक कट्टरवाद है। इस इस्लामी कट्टरवाद ने पाकिस्तान को जन्म ही नहीं दिया; वरन् आज तक यह पाकिस्तान की जीवन घुट्टी है।

'जिस दिन यह जीवन–घुट्टी यानी इस्लामी कट्टरवाद समाप्त हो जायेगा और उससे पैदा हुआ हिन्दू के प्रति घृणा का बुखार उतर जायेगा, उस दिन पाकिस्तान यानि भारत का अप्राकृतिक विभाजन भी समाप्त हो जायेगा। इस्लामी कट्टरवाद के चलते भारत की आन्तरिक और

पिछले दस वर्षों से कभी यहाँ, कभी वहाँ, इस्लामी कट्टरवादियों व आतंकवादियों द्वारा किये जा रहे सैकड़ों बम विस्फोटों, सामूहिक हत्याओं ने भी सेक्युलरवादियों, गांधीवादियों की आँखें नहीं खोलीं। उल्टा उन्होंने इस सबकी भी जिम्मेदारी हिन्दू–राष्ट्रवादियों पर ही डाल दी। भारत के मुस्लिम संगठनों और पाकिस्तान ने इसका भरपूर लाभ उठाया। विश्व में भारत की छवि यह बना दी कि यहाँ तो मुस्लिम और ईसाई समुदायों का हिन्दुओं द्वारा नर–संहार हो रहा है। सेक्युलरवादी हिन्दुओं ने ही यह तर्क दिया कि इस्लामी और ईसाई साम्प्रदायिकता तो जायज है; क्योंकि वह अल्पसंख्यकों की आत्म–रक्षा के लिए जरूरी है; किन्तु हिन्दू साम्प्रदायिकता भयावह है और भारत की धर्म–निरपेक्षता के लिए खतरा है। निष्पक्षता का ढोल पीटते हुए कुछ नेहरूवादियों ने कहना शुरू किया कि हिन्दू कट्टरवाद और इस्लामी कट्टरवाद दोनों ही समान रूप से दोषी हैं। वे आराम से यह भूल जाते हैं कि जिस हिन्दू धर्म में विभिन्न धर्म पुस्तकें हैं, जिसमें अनेक अवतार हैं तथा जिसमें अनेक देवी–देवता हैं, जिसमें ईश्वर प्राप्ति के अनेक साधन हैं, उस हिन्दू धर्म में कट्टरवाद के लिए कोई जगह हो ही नहीं सकती। वे यह भी भूल जाते हैं कि यह इस्लाम ही है, जो सारे संसार को दारुल हर्ब (जहाँ इस्लामी राज्य नहीं है) और दारुल–इस्लाम (जहाँ इस्लामी राज्य है) नामक दो परस्पर विरोधी वर्गों में बाँटता है और मुसलमानों को आदेश देता है कि वे छल से या बल से या दोनों से दारुल–हर्ब को दारुल इस्लाम में परिवर्त्तित कर ले, जबकि हिन्दू–धर्म शास्त्रों में ऐसा कोई हिंसात्मक आदेश नहीं है।

बाह्य सुरक्षा, दोनों को ही गम्भीर खतरा है। पिछले ५० वर्षों से यह निरन्तर बढ़ रहा है। इसने भारत के आर्थिक और सामाजिक ढाँचे तक को चरमरा दिया है। हर मामले को इस्लामी चश्मे से ही देखा जाता है। इस्लामी कट्टरवाद का प्रसार दक्षिण–पूर्वी देशों यथा– मलेशिया, फिलीपीन, इण्डोनेशिया, थाईदेश आदि में भी हो रहा है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह भी है कि भारत में जिस किसी ने इस खतरे को उजागर किया, उसके पीछे सभी सैक्युलरवादी लट्ठ लेकर पड़ गये, उसकी खिल्ली उड़ायी, उसे मूर्ख, हिन्दू अतिवादी, प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिक, अन्धविश्वासी, मनुवादी, फासीवादी और यहाँ तक कि देशद्रोही तक कह डाला। पिछले दस वर्षों से कभी यहाँ, कभी वहाँ, इस्लामी कट्टरवादियों व आतंकवादियों द्वारा किये जा रहे सैकड़ों बम विस्फोटों, सामूहिक हत्याओं ने भी सेक्युलरवादियों, गांधीवादियों की आँखें नहीं खोलीं। उल्टा उन्होंने इस सबकी भी जिम्मेदारी हिन्दू–राष्ट्रवादियों पर ही डाल दी। भारत के मुस्लिम संगठनों और पाकिस्तान ने इसका भरपूर लाभ उठाया। विश्व में भारत की छवि यह बना दी कि यहाँ तो मुस्लिम और ईसाई समुदायों का हिन्दुओं द्वारा नर–संहार हो रहा है। सेक्युलरवादी हिन्दुओं ने ही यह तर्क दिया कि इस्लामी और ईसाई साम्प्रदायिकता तो जायज है; क्योंकि वह अल्पसंख्यकों की आत्म–रक्षा के लिए जरूरी है; किन्तु हिन्दू साम्प्रदायिकता भयावह है और भारत की धर्म–निरपेक्षता के लिए खतरा है। निष्पक्षता का ढोल पीटते हुए कुछ नेहरूवादियों ने कहना शुरू किया कि हिन्दू कट्टरवाद और इस्लामी कट्टरवाद दोनों ही समान रूप से दोषी हैं। वे आराम से यह भूल जाते हैं कि जिस हिन्दू धर्म में विभिन्न धर्म पुस्तकें हैं, जिसमें अनेक अवतार हैं तथा जिसमें अनेक देवी–देवता हैं, जिसमें ईश्वर प्राप्ति के अनेक साधन हैं, उस हिन्दू धर्म में कट्टरवाद के लिए कोई जगह हो ही नहीं सकती। वे यह भी भूल जाते हैं कि यह इस्लाम ही है, जो सारे संसार को दारुल हर्ब (जहाँ इस्लामी राज्य नहीं है) और दारुल–इस्लाम (जहाँ इस्लामी राज्य है) नामक दो परस्पर विरोधी वर्गों में बाँटता है और मुसलमानों को आदेश देता है कि वे छल से या बल से या दोनों से दारुल–हर्ब को दारुल इस्लाम में परिवर्तित कर ले, जबकि हिन्दू–धर्म शास्त्रों में ऐसा कोई हिंसात्मक आदेश नहीं है।

मजे की बात यह है कि अंग्रेजी शासन को समाप्त हुए ५२ वर्ष हो गये हैं; किन्तु आज भी भारतवासी इस भूलभुलैया में ठोकरें खा रहे हैं कि भारत एक राष्ट्र है अथवा बीसियों राष्ट्रीयताओं का समूह मात्र है। उधर पाकिस्तान है कि जन्मकाल से ही "हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान" के नारे को साकार करने में जुटा है। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ५० वर्ष की अल्प आयु में ही पाकिस्तान इस्लामी कट्टरवाद व आतंकवाद का विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक बन गया है और भारत ही उन उत्पादों का सबसे बड़ा ग्राहक है, जहाँ हर रंग के इस्लामी कट्टरवादी व आतंकी पल रहे हैं और बढ़ रहे हैं। पाकिस्तान द्वारा ही खड़ी की गयी तालिबान नामक अनियमित सेना ने अफगानिस्तान को दो साल पहले विजित कर वहाँ की वैधानिक सरकार की जगह अपनी इस्लामी कट्टरपन्थी सरकार स्थापित कर दी और दुनिया देखती ही रह गयी। सदा की भाँति भारतीय नेतृत्व यह सीधी–सपाट बात नहीं समझ पाया कि अफगानिस्तान विजय के बाद तालिबान का लक्ष्य भारत का जम्मू–कश्मीर क्षेत्र होगा और वही हुआ। इस समय पाकिस्तान अपना "कुरानिक कॉन्सेप्ट ऑफ वार" (युद्ध की कुरानी अवधारणा) की राह पर चल रहा है। इस

पग पीछे हटायें क्यों ?

– राजनारायण चौधरी

देश के हित सिर कटायें– हिचकिचायें क्यों ?
शत्रु सम्मुख भीख की झोली बिछायें क्यों ?
जानता है विश्व यह– हम आन वाले हैं,
कहेंगे सच, झूठ का बाना बनायें क्यों ?
हमें प्रिय सबसे अधिक सम्मान का धन है,
पी जहर अपमान का गर्दन झुकायें क्यों ?
शान्ति का सन्देश है हमने दिया जग को,
चाहता जो हित, अहित उसका मनायें क्यों ?
है चमन अति भव्य अपना बृहत् भारत का,
दूसरों की भूमि पर नजरें गड़ायें क्यों ?
हम बदलते हैं सदा तकदीर औरों की,
बैठकर निज भाग्य पर आँसू बहायें क्यों ?
नित हमारी साँस में तूफान पलता है,
हिला सकते व्योम को, हम मुँह छिपायें क्यों ?
हम बढ़े हैं और बढ़ते रहेंगे पथ पर,
लाख आयें विघ्न, पग पीछे हटायें क्यों ?

–प्रोफेसर कॉलोनी हाजीपुर (बिहार)– ८४४१०१

नाम की एक पुस्तक पाकिस्तान के ब्रिगेडियर एस०के० मलिक ने सन् १९७९ में लिखी थी, जिसका प्राक्कथन पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति जियाउल्हक ने लिखा था। इसमें घोषणा की गयी है कि पृथ्वी पर एक इस्लाम ही सत्य धर्म है, बाकी सब झूठे हैं। साथ ही कहा गया कि विश्व में न्याय और शान्ति का राज्य स्थापित करने के तीन चरण हैं– (१) गैर–मुस्लिमों को समझाना और लालच देना कि वे मुसलमान हो जायें, (२) गैर–मुसलमानों के मन–मस्तिष्क में मनोवैज्ञानिक रूप से आतंक, हताशा और व्यापक भ्रम फैलाना, (३) गैर–मुस्लिमों पर सशस्त्र आक्रमण करना। आतंकवाद और धोखाधड़ी मलिक के मनोवैज्ञानिक युद्ध के आवश्यक अंग हैं। मुसलमानों के लिए उसका कहना है, "हमारे पैगम्बर (हजरत मोहम्मद) ने हमें सिखाया है कि मुसलमानों का हित साधन करने के लिए गैर–मुस्लिमों के साथ किये गये किसी भी समझौते को कभी भी भंग किया जा सकता है। वह साफ कहता है– "आप ऐसा क्यों सोचते हो कि पाकिस्तान शिमला–समझौते की अवमानना कर रहा है।" एक जगह वह कहता है, "मुसलमान की राष्ट्रीयता और पहचान इस्लाम और इस्लामी कौम है।" यदि जेनेवा समझौता अथवा कोई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून मुसलमानों को रास नहीं आता, तो मलिक के अनुसार, मुसलमानों को चाहिए कि वे इस्लामी कानून, यानि शरीयत, को उद्धृत करें जो स्वयं अल्लाह से उतरा है और कहें कि गैर–मुस्लिमों द्वारा बनाया गया कोई कानून मुसलमानों को बाधित नहीं कर सकता है। यही तर्क कट्टरवादी मुस्लिम नेता भारत में समान नागरिक संहिता के विरोध में देते हैं। उपर्युक्त पुस्तक मुसलमानों का आह्वान करती है कि, "बिना रुके निरंकुश रूप से तब तक बढ़े चलो, जब तक पृथ्वी पर प्रत्येक गैर–मुसलमान समाप्त नहीं हो जाता है; जब तक सम्पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हो जाती है और जब तक प्रत्येक इस्लामी कानून, अर्थात् शरीयत का पालन नहीं करता" यह पुस्तक पाकिस्तान ही नहीं; बल्कि अन्य कट्टरवादी इस्लामी देशों के सैनिकों और असैनिकों के लिए बाइबिल के समान है। पिछले कुछ वर्षों में इस इस्लामी युद्ध, यानि जिहाद के सिद्धान्तों की जानकारी अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों को हो गयी है; किन्तु भारतीयों को अभी जानना बाकी है।

पिछले तीन युद्धों के समान, आमने–सामने का वर्त्तमान युद्ध तो शायद कुछ दिनों में समाप्त हो जायेगा; किन्तु इससे भी भयानक दस साल पुराना परोक्ष युद्ध तो पाकिस्तान लड़ता ही रहेगा। इस परोक्ष–युद्ध में ५००० भारतीय सैनिक और ३०,००० असैनिक मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। असली जीत तो उसकी होगी, जिसकी जीत इस परोक्ष–युद्ध में होगी।

– ए– बी/ ६४ए, एकता अपार्टमेण्ट, पश्चिम विहार, नई दिल्ली–११००६३

श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर मिले प्राचीन मन्दिर के अवशेष

श्रीकृष्ण जन्मस्थान (मथुरा) परिसर के उत्तरी भाग में स्थित विशाल भूखण्ड पर पुलिस-कन्ट्रोल रूम के निर्माण हेतु जारी खुदाई में निकली दीवार ने इस क्षेत्र के पुरातात्विक महत्त्व एवं श्रीकृष्ण जन्मस्थान की तुलना में ईदगाह-मस्जिद आदि के बाद में बने होने के संकेत दिये हैं।

राष्ट्रीय संग्रहालय के महानिदेशक डॉ० आर०डी० चौधरी, संस्थान में म्यूजियोलॉजी के प्रो० डॉ० जवाहरलाल भान, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के अधीक्षण-पुरातत्त्वविद् धर्मवीर शर्मा एवं मथुरा स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय के निदेशक जितेन्द्र कुमार के अनुसार खुदाई में निकली दीवार का निचला भाग कुषाणकालीन तथा ऊपरी भाग मुगलकालीन है।

खुदाई स्थल से प्राप्त पत्थर की मूसली, एक शिलालेख, मिट्टी का लोटा आदि तमाम पुरातात्त्विक अवशेषों के गहन अवलोकन के उपरान्त राष्ट्रीय संग्रहालय के महानिदेशक डॉ० आर०डी० चौधरी ने इसे मथुरा स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय को सौंप दिया। शिलालेख की लिपि साफ न होने के कारण उसे अभी पढ़ा नहीं जा सका है।

ध्यान रहे कि राजकीय संग्रहालय के निदेशक जितेन्द्र कुमार ने राज्य पुरातत्त्व विभाग द्वारा १९०४ में संरक्षित, इस स्थल की खुदाई के प्रति एक पत्र-भेजकर लगभग एक पखवाड़े पूर्व भी जिला प्रशासन से इस "अवैध उत्खनन" पर रोक लगाने की माँग की थी; किन्तु जिलाधिकारी शशि प्रकाश गोयल ने खुदाई में निकल रहे अवशेषों की देखभाल हेतु एक कर्मचारी नियुक्त करने एवं पुरातात्त्विक अवशेषों को संग्रहालयों में सुरक्षित रखने के निर्देश दिये थे।

जब 'सतरिख' [सप्तर्षि] मसूद [गाजी मियां] की छावनी बना

– वचनेश त्रिपाठी

बहुत वर्षों पूर्व का प्रसंग स्मरण आता है, जब 'राष्ट्रधर्म' के वर्तमान सम्पादक श्री 'अभय' मिश्र एक बार मुझे अपने आवासीय जनपद बाराबंकी के प्राचीन, पौराणिक और पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थल 'सतरिख' (सप्तर्षि) तथा जहाँ "कुन्तेश्वर महादेव" प्रतिष्ठित हैं, के निकटस्थ अर्जुन द्वारा आरोपित 'पारिजात' वृक्ष–अवलोकनार्थ ले गये। महमूद गजनवी के आक्रमण के ६ वर्ष बाद उसके भांजे मसूद ने सन् १०३१ में भारत पर आक्रमण किया, यद्यपि यह अपने मामू महमूद गजनवी के साथ भी सन् १०२६ में गजनी की सेना के साथ आया था, जब कि वह १२ साल का एक लड़का था।

शेख अब्दुर्रहमान चिश्ती ने एक पुस्तक लिखी है, नाम है- "मीर–अल–ई–मसूदी", जिसे प्रायः लेखकों ने "मीरात–ए–मसूदी" के नाम से उद्धृत किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार मसूद ने मुलतान, सहूर, दिल्ली, मीरात, उज्जैन, काशी महूना (महोना), कड़ा–मानिकपुर आदि हिन्दू राज्यों से कहीं युद्ध तो कहीं सन्धि करते हुए आगे अपनी छावनी 'सतराख' में बनायी। जिसे हिन्दी पुस्तकों में 'साकेत' रूप में उद्धृत किया गया है, परन्तु मेरा विचार है कि यह 'सतराख' बाराबंकी जनपद के ही प्राचीन ऐतिहासिक स्थल 'सप्तर्षि' का ही विकृत रूप है, जिसे आम बोल–चाल में आज 'सतरिख' कहा लिखा जाता है। अब यह शोध का विषय है कि "मीरात–ए–मसूदी" में जिस "सतराख" का उल्लेख आया है, वह 'सतरिख' ही है या साकेत? "मीरात–ए–मसूदी" में शेख अब्दुर्रहमान चिश्ती ने लिखा है कि मसूद की फौजें उन दिनों 'सतराख' ('सतरिख') फतेह कर उसे बतौर छावनी (सैनिक–केन्द्र) इस्तेमाल कर रही थीं। फिर जब मसूद ने बहराइच पर कब्जा करना चाहा तो हिन्दू सन्त–महात्माओं ने देशभर में यात्राएँ करके हिन्दू समाज के राजाओं, रियासतदारों–सरदारों और नवजवानों को यह सन्देश और प्रेरणा दी कि "बहराइच चलो! विदेशी हमलावर से मोर्चा लेकर देश और धर्म की रक्षा करो। माँ काली तुम्हें पुकार रही है।" इन यात्राओं और सन्देशों ने चमत्कार किया– अनेक राजागण अपनी–अपनी सेनाएँ लेकर बहराइच कूच कर चले। "मीरात–ए–मसूदी" में ऐसे डेढ़ दर्जन राजाओं की सूची दर्ज हैं, जो सेना सहित मसूद को सबक सिखाने दौड़े आये थे, उनके नाम थे– राय कल्याण, राय करन, राय कनक, राय अर्जुन, राय भीखन, राय बीरबल, राय प्रभु, राय नरसिंह, राय देव नारायण, राय श्रीपाल, राय जयपाल, राय हरपाल, राय हबरू, राय सबरू, राय मकरू, राय रईब, राय सईब, राय हरदेव और सहार देव। सम्भव है–इनमें जो विचित्र उच्चारण वाले कुछ नाम हैं, वे शेख अब्दुर्रहमान चिश्ती ने भाषा और उच्चारण–भेद से, न जानने से विकृत लिख दिये हों या कि यह भी शक्य है कि इनमें आधा दर्जन सरदार या राय–राजा पिछड़े वर्ग के योद्धा रहे हों।

इस विदेशी आक्रमण और फिर उसके राष्ट्रीय स्तर पर सबल–सक्षम, प्रतिरोध का प्रसंग आज इसलिए भी अपनी सामयिक प्रासंगिकता प्रकट करता है, क्योंकि मसूद और आज के इस्लामी मुजाहिदीन घुसपैठियों याकि हमलावरों की अन्तरंग विचारधारा और उद्देश्य समानता रखते हैं। कारण, मसूद ने जो कारण भारत पर आक्रमण करने के "मीरात–ए–मसूदी" में बताये हैं, वही मकसद या ध्येय इन इस्लामी हमलावर घुसपैठियों (मुजाहिदीनों और पाकिस्तानी सेना) का भी रहा है और कारगिल, द्रास तथा बटालिक के मोर्चों पर इन इस्लामी दरिन्दों का वही हश्र हुआ जो आज से ९६८ वर्ष पहले मसूद और उसकी सेनाओं का हुआ था। मसूद को भले आज कट्टरपन्थी मुल्लाओं और धर्मान्ध मुसलमानों ने 'गाजी मियाँ' और कथित 'पीर' मानकर उसकी 'मजार' पर अपनी सियासती और तिजारती दुकानें चला रखी हैं पर वस्तुतः मसूद, हमलावर दरिन्दे महमूद गजनवी का वह भांजा "गाजी मियाँ" के बजाय एक निहायत "पाजी मियाँ" की ही औकात रखता था और देश–भक्ति, वतन–परस्ती याकि हुब्बे वतनी (देश–प्रेम) का यही तकाजा है कि हिन्दुस्तान का हर वतन–परस्त मुसलमान उस विदेशी कातिल और हमलावर की उस घिनौनी कब्र से न केवल नफरत करे वरन् उसे जमीदोज कर देना जरूरी समझे। सत्तावनी क्रान्ति के सेनानी और नाना साहब के परम विश्वस्त

सचिव अजीमुल्ला खाँ, फैजाबाद और लखनऊ (घसियारी मण्डी) के मौलवी अहमद अली शाह, कानपुर की अजीजन, क्रान्ति–सेनानी शम्सुद्दीन, पटने के पीर अली, सफदर अली और दूर क्यों जायें, 'काकोरी–केस' के शहीद क्रान्तिकारी मोहम्मद अश्फाक उल्ला खाँ वारसी 'हसरत' जैसे वतन–परस्त क्या कभी हमलावर मसूद की कब्र पर जियारत करना तथा चादर चढ़ाना गवारा करते! अजीमुल्ला खाँ ने १८५७ में जो 'राष्ट्र–गीत' लिखा और अश्फाक ने जो "अशआरे–अश्फाक" लिखे, उन्हें पढ़ो तो समझ सकोगे कि वे क्या चाहते थे, कैसे मुसलमान थे वे? फाँसी की कोठरी में अश्फाक का यह स्व–रचित हिन्दी गान क्या कहता है? कि,

"फाँसी मिले भले या जन्म–कैद मुझको,
बेड़ी बजा–बजाकर तेरा भजन करूँगा?"

किसका भजन? तो कहा 'मातृभूमि का' अश्फाक के ही शब्द हैं–

"हे मातृभूमि, तेरी सेवा किया करूँगा।"

शायद पहले यहाँ 'सेवा' की जगह पूर्व प्रकाशित पुस्तक में 'पूजा' शब्द था। ये शहीद क्रान्ति–वीर क्या कभी हिन्दुस्तान का खून करने वाले हमलावर की क़ब्र पर मनौतियाँ मानते? वह हमलावर (मसूद), जिसने हिन्दुस्तान में घुसकर यह प्रचार किया था कि–

'हमारे बुजुर्गों के वक्त से ही यह उसूल रहा है कि इस्लाम पर ईमान न लाने वालों को इस्लाम में लाओ और अगर वे इस्लाम न कबूल करें– मुसलमान न बनें तो उन्हें कत्ल कर दो। हम इस मुल्क (हिन्दोस्तान) में इसलिए आये हैं कि इस्लाम में यकीन न करनेवालों को मिटा दें– बरबाद, तबाह कर दें।' इसी विचारधारा का नाम "जिहादी जुनून" और कारगिल में आकर खून बहाने वाले पाकिस्तानी या अन्य इस्लामी देशों के हमलावर इसी "जिहादी जुनून" के भाव से 'मुजाहिदीन' कहते हैं स्वयं को। खुद "मीरात–ए–मसूदी" के लेखक शेख अब्दुर्रहमान चिश्ती ने ही मुस्लिम समाज को यह नसीहत की है इस ग्रन्थ में कि "मुसलमान अपनी रूहानी तरक्की के लिए इस किताब (मीरात–ए–मसूदी) को पाक किताब की मानिन्द अपनायें और पढ़ा करें। अब्दुर्रहमान चिश्ती ने ही बहराइच–युद्ध में पराजित और मारे गये मसूद को 'आला पीर' का रुतबा देकर अपनी किताब को 'मजहबी' स्तर दे दिया था। उसी विचार ने मसूद को 'गाजी मियाँ' की मान्यता दे दी और उसकी मजार पूजी जाने लगी। दिल्ली के राजा महिपाल के किशोरवयी लड़के ने युद्ध में 'मसूद की नाक–कान और चेहरा क्षत–विक्षत कर सोमनाथ की शिवजी की मूर्ति की नाक–कान तोड़ने का बदला चुका लिया था, भले वह उस युद्ध में लड़ते–लड़ते शहीद हो गया। उस वीर किशोर का मसूद तक आँधी के वेग से आना और प्रहार करना अब्दुर्रहमान चिश्ती ने भी 'मीरात–ए–मसूदी' में स्वीकार किया है और यह भी लिखा है कि अपने बेटे मसूद पर भारत में मार पड़ने तथा उसकी सेना के संहार की ख़बर पाकर मसूद की माँ मौला बीबी मर गयीं। गजनी का एक अमीर मीर बख्तियार दक्षिणस्थ कन्नूर में मार डाला गया और खुद मसूद को बहराइच के राजा सुहेलदेव ने परास्त कर रविवार के दिन, १४ जून (सन् १०३३) को काटकर ढेर कर दिया। उसकी लाश उस रोज बहराइच के सूर्य–मन्दिर (बालार्क) के पास स्थित 'सूर्य–कुण्ड' के सामने गिरी थी। मसूद की सेनाओं का भी बड़े पैमाने पर संहार हुआ और फिर यह सबक इस युद्ध और हिन्दुओं की विजय ने विदेशी आक्रमणकारियों को दिया कि आगे २०० वर्षों तक किसी इस्लामी जुनूनी ने भारत पर हमला करने की हिम्मत नहीं की। इस पराजय की पाँच पीढ़ियाँ गुजर जाने के बाद सन् ११९२ में मोहम्मद गोरी भारत की तरफ मुँह कर सका था। देश को जरूरत है अब्दुर्रहमान खानखाना जैसे जागरूक और भारत–प्रेमी मुसलमानों की, जो मुगलों के दरबार में रहते हुए भी यह लिख–कह सके कि,

"राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा विवाद।
कह 'रहीम' तिन्ह आपनो, जनम गँवायो बाद।।"

अर्थात् "कवि रहीम कहते हैं कि, "जिन आदमियों ने राम नाम से प्रेम या भक्ति नहीं की वरन् सदा सर्वदा, विवाद, बहस–मुबाहिसे में पड़े रहे कि किसको पूजें, किसकी इबादत करें? मेरा (रहीम का) कहना है कि उन लोगों ने अपनी जिन्दगी बेकार गँवा दी।" □

हार के हीरो!

– मिश्रीलाल जायसवाल

उन्हें
बार बार
हार की पीड़ा
घनघोर है
जोर
बिलकुल नहीं है
फिर भी
काश्मीर पर
जोर है।

– सुभाष चौक, कटनी (म०प्र०)

वाजपेयी सरकार की अन्तरिक्ष कार्यक्रम में अप्रैल-मई, ९९ में शानदार उपलब्धियाँ

श्री अटल बिहारी वाजपेयी की भाजपा–नीत गठबन्धन सरकार ने जहाँ देश में सुरक्षा, एकता और विकास के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ की हैं, वहीं अन्तरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्र में भी उसने बुलन्दियों को छू लिया है।

सन् १६६६ इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी वर्ष अप्रैल मई १६६६ में ही फ्रेंच गुयाना के कोरु से एरियन राकेट से तीन अप्रैल को २५५० किग्रा के इनसेट २ई उपग्रह को कक्षा में स्थापित किया गया।

श्री हरिकोटा केन्द्र से २६ मई को पीएसएलवी–२सी से आईआरएसपी–४ और दो अन्य विदेशी उपग्रह किटसेट और टबसेट को प्रक्षेपित किया गया।

इसी क्रम में सामान्य जानकारी के लिए अन्तरिक्ष कार्यक्रम की पुरानी असफलताओं/सफलताओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है–

१६६२ भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान समिति गठित हुई। थुंबा में भूमध्य राकेट प्रक्षेपण केन्द्र का काम शुरू।

१६६३ २१ नवम्बर को पहला साउण्डिंग राकेट प्रक्षेपित किया गया।

१६६५ थुंबा में अन्तरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिक केन्द्र स्थापित हुआ।

१६६७ अहमदाबाद में उपग्रह–संचार–पृथ्वी केन्द्र स्थापित हुआ।

१६६८ दो फरवरी को थुंबा केन्द्र संयुक्त राष्ट्र को समर्पित किया गया।

१६६६ १५ अगस्त को भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन (इसरो) गठित किया गया।

१६७२ एक जून को अन्तरिक्ष आयोग एवं अन्तरिक्ष विभाग स्थापित किया गया। सुदूरसंवेदी प्रयोग शुरू हुए।

१६७५ प्रथम भारतीय उपग्रह आर्य भट्ट को १६ अप्रैल को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया। उसे बैकानूर में रूसी केन्द्र से कास्मोस राकेट से प्रक्षेपित किया गया। उपग्रह शैक्षणिक टेलीविजन प्रयोग शुरू हुए।

१६७७ उपग्रह दूरसंचार प्रयोग परियोजना शुरू हुई।

१६७६ रूसी अन्तरिक्ष केन्द्र से सात जून को कास्मोस राकेट से प्रायोगिक पृथ्वी पर्यवेक्षण उपग्रह भास्कर–१ को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया।

..... श्री हरिकोटा केन्द्र से १० अगस्त को एल०एल०वी०–३ के दूसरे प्रायोगिक प्रक्षेपण से आर०एस०डी०–१ रोहिणी उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया।

१६८१ श्री हरिकोटा केन्द्र से एल०एल०वी०–३ की प्रथम विकासात्मक उड़ान से आर०एस०डी०–१ उपग्रह को १६ जून को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया।

..... प्रायोगिक भूस्थैतिकी संचार उपग्रह एपल फ्रेंच गुयाना के कोरू से १६ जून को एरियन राकेट द्वारा प्रक्षेपित किया गया।

..... रूसी अन्तरिक्ष केन्द्र से २० नवम्बर को कास्मोस राकेट से भास्कर–२ को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया।

१६८२ अमेरिका के डेल्टा राकेट ने १० अप्रैल को इनसैट–१ को कक्षा में स्थापित किया। पाँच महीने बाद यह निष्क्रिय हो गया।

१६८३ श्री हरिकोटा केन्द्र से एस०एल०वी०–३ के दूसरे विकासात्मक प्रक्षेपण से आर०एस–डी०–२ उपग्रह को १७ अप्रैल को पृथ्वी कक्षा में स्थापित किया गया।

..... अमेरिका के अन्तरिक्ष शटल से ३० अगस्त को इनसैट–२बी को कक्षा में स्थापित किया गया जो १० वर्षों तक सक्रिय रहा।

१६८४ अप्रैल में भारत सोवियत संयुक्त अन्तरिक्ष अभियान।

१६८७ श्री हरिकोटा केन्द्र से २४ मार्च को एएलएलवी की प्रथम विकासात्मक उड़ान विफल रही।

१६८८ रूसी अन्तरिक्ष केन्द्र वोस्तोक से १७ मार्च को प्रथम कार्यात्मक भारतीय सुदूर संवेदी उपग्रह आई०आर०एस०–१ए को कक्षा में स्थापित किया गया।

..... कोरू से एरिफन राकेट से २१ जुलाई को इनसेट–१सी कक्षा में स्थापित किया गया। कुछ गड़बड़ी के कारण १५ महीने बाद यह बेकार हो गया।

..... श्री हरिकोटा केन्द्र से एएसएलवी का दूसरा विकासात्मक प्रक्षेपण विफल रहा।

१६६० अमेरिका के डेल्टा राकेट से १२ जून को इनसेट–१ डी को प्रक्षेपित किया गया।

१६६१ रूसी अन्तरिक्ष केन्द्र से वोस्तोक राकेट से २६ अगस्त को आईआरएस–१ बी को प्रक्षेपित किया गया।

१९९२ श्री हरिकोटा केन्द्र से २० मई को एएसएलवी की तीसरी विकासात्मक उड़ान से स्रोस सी उपग्रह को पृथ्वी की निचली कक्षा में स्थापित किया गया।

..... कोरू से एरियन राकेट से इनसेट–२सी उपग्रह १० जुलाई को प्रक्षेपित।

१९९३ कोरू से २३ जुलाई को एरियन राकेट से इनसेट–२बी उपग्रह प्रक्षेपित।

१९९४ एएसएलवी की चौथी विकासात्मक उड़ान से स्रोससी–२ उपग्रह को चार मई को पृथ्वी की निचली कक्षा में स्थापित किया गया।

..... श्री हरिकोटा केन्द्र से पीएसएलवी डी–२ की दूसरी विकासात्मक उड़ान से आईआरएसपी–२ को ध्रुवीय सौर समस्थानिक कक्षा में सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया गया।

१९९५ कोरू से सात दिसम्बर को एरियन राकेट से इनसेट–२ सी उपग्रह को सात दिसम्बर को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया।

..... रूस के बैकानूर अन्तरिक्ष केन्द्र से २८ दिसम्बर को मोलनिया राकेट से आईआरएस–१सी को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया।

१९९६ श्री हरिकोटा केन्द्र से पीएसएलवी डी–३ यान से आईआरएसपी–३ यान से आईआरएसपी–३ उपग्रह को निर्धारित कक्षा में छोड़ा गया।

१९९७ कोरू से एरियन राकेट से चार जून को इनसेट–२डी को कक्षा में स्थापित किया गया। कुछ गड़बड़ी के कारण यह नवम्बर में बेकार हो गया।

..... श्री हरिकोटा केन्द्र से पीएसएलवी सी–२ की प्रथम कार्यात्मक उड़ान से पहली बार १२०० किलोग्राम श्रेणी के आईआरएस १–डी उपग्रह को निर्धारित कक्षा में स्थापित किया गया। ◘

– *(स०वि०सेवा–वि०सं०स०, चण्डीगढ़)*

विजय की कामना हो

– रामशंकर अग्निहोत्री

घना अन्धकार है, धुआँसा है, धूमिल है नभ सारा
ज्योतिपिण्ड ? उल्का बन टूट रहे भूतल विदीर्ण सारा
भास्कर ? दिनेश ? रवि ? अंशुमाली ? सब समर्थ कहाँ
गगन शून्य, क्षितिज रिक्त, वायु मौन, ठौर कहाँ
ऐसे में साथी क्या आस छोड़ दोगे ?
शपथ है, गुहारूँ, जब प्रहरी बन प्रतिध्वनि दो
विजय की कामना हो........... ।।१।।

सज्जन सब भीष्म पुरुष, मौन साधे, घर बैठे,
ध्येयवादी डोल रहे, पाण्डव सम छले गये माँ बेटे
प्रशासन ? दुःशासन बना इठलाता हो जाँघ दिखा
धर्मचक्र ? मठाधिष्ठित, शकुनि की मखौल बना
ऐसे में साथी क्या आस छोड़ दोगे ?
शपथ है, गुहारूँ जब, प्रहरी बन प्रतिध्वनि दो
विजय की कामना हो........... ।।२।।

प्रलय के महोदधि से नौका खींच लाये जब
जीवन के ज्वारों में श्रद्धा–जल, कूल तक
मत्स्य बन रचना के बीच रखे संरक्षित
शीर्ष उपलब्धि से संसृति–द्युति मूल तक
आज फिर साथी क्या आस छोड़ दोगे ?
शपथ है, गुहारूँ जब, प्रहरी बन प्रतिध्वनि दो
विजय की कामना हो........... ।।३।।

तो, साथी ओ साथी ! अब पाल सब बाँध दो,
प्रलय की ताकत को, अपनी छाती पर झेलना है
जो जहाँ भी है, उफनाते ज्वार से बस खेलना है
इसलिए साथी, सखा, मीत, प्यारे, बन्धु भाई
आह्वान दो, आह्वान लो, हाँक दो, गुहार लो
(कि) शपथ है गुहारूँ जब, प्रहरी बन प्रतिध्वनि दो
विजय की कामना हो........... ।।४।।

चिट्ठी आयी पेरिस से–

पेरिस की सड़कों पर हिन्दू धर्म का शंखनाद

– डॉ० ओम प्रकाश पाण्डेय

सूर्य की रश्मियों में बढ़ती ऊष्मा, रात्रि में साढ़े दस तक अन्धेरे का न उतरना, नगर के जलाशयों और फौव्वारों में बच्चों के साथ बूढ़ों की भी जलक्रीड़ा और सायंकाल की रमणीयता से निदाघ के साम्राज्य की अनुभूति पेरिस में अब सभी को होने लगी है, जैसाकि कालिदास ने ऋतुसंहार में पहले ही घोषित कर रखा है–

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः।।

पुराने फूल मुरझाने लगे हैं, लेकिन नये फूल खिलने भी लगे हैं; क्योंकि पेरिस में पौधे लगाये ही इस क्रम से जाते हैं कि यहाँ पूरी तरह फूलों का कभी अभाव नहीं हो पाता। बस कालिदास की एक ही बात यहाँ कभी नहीं घटती दिखती। वह है 'अभ्युपशान्तमन्मथः'। मन्मथ अनंग कभी अपनी अनुपस्थिति का आभास नहीं देता। पश्चिम में पुरुषार्थ ही मात्र दो रहे हैं– अर्थ और काम। जीवन का सारा ताना–बाना इन्हीं दोनों के इर्द–गिर्द घूमता रहता है। मोक्ष की तो यहाँ कल्पना भी नहीं हो सकती। धर्म का भी बस आभास भर है। इसलिए कि यहाँ से कोई धर्म कभी प्रवर्त्तित नहीं हुआ, इन देशों के लोग तो सारी दुनिया में घूम–घूमकर बस लूट–मार करते रहे हैं, औपनिवेशिक शासन स्थापित करते रहे हैं तथा दुनियाभर की लूट में मिली चीजों से अपने संग्रहालयों को सजाते रहे हैं। पेरिस के सबसे भव्य संग्रहालय लुव्र में भरमार है उन चीजों की, जो नेपोलियन मिश्र से लूटकर लाया था। कोंकोर्ड नामक भव्य चतुष्पथ पर स्थापित हैं वहीं से लाया गया विशाल स्तम्भ। धर्म अब नहीं है– ईसाईयत, इस्लाम, हिन्दुत्व (बौद्ध धर्म को मिलाकर) सभी बाहर से यहाँ आये हैं।

सम्प्रति पेरिस भर के शिक्षण संस्थानों में ग्रीष्मजन्य अवकाश चल रहा है। अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों में पर्यटन– हेतु बाहर जाने की होड़–सी लगी है। बारह मंजिली इस, इमारत में, जिसमें पाँचवीं मजिल पर मेरा अपार्टमेण्ट है, बेहद सन्नाटा पसरा है। इस मंजिल के छह परिवारों में, एक मैं हूँ और दूसरी है एक वृद्धा संगीत शिक्षिका जिसके पियानो–वादन की ध्वनि ही कभी–कभी सन्नाटे को भंग करती है। मुझे बाँध रखा है पैत्रीशिया के गीता–प्रेम ने और मुर्तजा चोपड़ा के संस्कृत–अध्ययन–क्रम ने। मुर्तजा चोपड़ा का परिवार गुजराती मूल का है, बोहरा (इस्लाम मत की एक शाखा) है, और यहाँ मेडागास्कर से आया है तीन दशक पहले। मुर्तजा और उसके पिता को

मुझे बाँध रखा है पैत्रीशिया के गीता–प्रेम ने और मुर्तजा चोपड़ा के संस्कृत–अध्ययन–क्रम ने। मुर्तजा चोपड़ा का परिवार गुजराती मूल का है, बोहरा (इस्लाम मत की एक शाखा) है, और यहाँ मेडागास्कर से आया है तीन दशक पहले। मुर्तजा और उसके पिता को अपने 'चोपड़ा' होने पर गर्व है। इस छात्र को आँखों से अधिक दिखायी नहीं देता, लेकिन संस्कृत सीखने का उत्साह प्रबल है। वह श्रुति–परम्परा से ही संस्कृत सीख रहा है। मेधावी इतना कि इसी श्रुति–क्रम से उसने लैटिन, ग्रीक, हिब्रू, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी भाषाएँ सीखी हैं। एक बार सुनकर संस्कृत के श्लोक को कण्ठस्थ कर लेता है। मुझे अपने २८ वर्षों के अध्यापक–जीवन में कभी इतनी जल्दी संस्कृत सीख लेने वाला छात्र दूसरा नहीं मिला। अपनी भारतीयता का बोध बनाये रखने के लिए ही वह संस्कृत सीख रहा है। ऐसे छात्र को मना भी कैसे किया जाये? पेरिस में पैदा हुआ यह युवक संस्कृत के साथ ही हिन्दू धर्म और दर्शन को भी निष्ठा से समझने में लगा है। आजकल उसके सिर पर तीन गाँठों वाली चोटी भी दिखने लगी है।

अपने 'चोपड़ा' होने पर गर्व है। इस छात्र को आँखों से अधिक दिखायी नहीं देता, लेकिन संस्कृत सीखने का उत्साह प्रबल है। वह श्रुति–परम्परा से ही संस्कृत सीख रहा है। मेधावी इतना कि इसी श्रुति–क्रम से उसने लैटिन, ग्रीक, हिब्रू, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी भाषाएँ सीखी हैं। एक बार सुनकर संस्कृत के श्लोक को कण्ठस्थ कर लेता है। मुझे अपने २८ वर्षों के अध्यापक–जीवन में कभी इतनी जल्दी संस्कृत सीख लेने वाला छात्र दूसरा नहीं मिला। अपनी भारतीयता का बोध बनाये रखने के लिए ही वह संस्कृत सीख रहा है। ऐसे छात्र को मना भी कैसे किया जाये? पेरिस में पैदा हुआ यह युवक संस्कृत के साथ ही हिन्दू धर्म और दर्शन को भी निष्ठा से समझने में लगा है। आजकल उसके सिर पर तीन गाँठों वाली चोटी भी दिखने लगी है।

मेरे सामने पेंगुइन से छपी जॉन अर्दाघ की किताब 'फ्रान्स टुडे' का अद्यतन संस्करण (१९९८) है। इसके एक अध्याय का शीर्षक है– The Church declines, but religion revives अभिप्राय है कि फ्रान्स में चर्च का पतन हो रहा है, लेकिन धर्म बढ़ रहा है। गिरजाघरों में तो मैं स्वयं देख रहा हूँ कि केवल कुछ बूढ़े कभी–कभी चले जाते हैं, युवा पीढ़ी का उनमें कोई आकर्षण नहीं है। ईसाई पादरी समुदाय इस पतन से बेहद चिन्तित है। वहाँ की प्रार्थनाओं में भाग लेने वाले लोगों की अधिकतम संख्या मात्र चौदह प्रतिशत रह गयी है। रोम से आये पोप के फरमानों को यहाँ कोई महत्त्व नहीं मिलता। उन्हें कूड़े की ढेरी में फेंक रहे हैं लोग। युवा पीढ़ी को आकर्षित करने के लिए मदारी की तरह यहाँ पादरी निरन्तर नये–नये हथकण्डे अपना रहे हैं। पिछले पाँच दशकों से। बौखलाहट में कभी वे मार्क्सवाद के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने लगते हैं और कभी सेक्स के मामलों में छूट देने की घोषणा करते हैं। जॉन अर्दाघ के ही शब्दों में– 'While some priests flirt with marxism, while some preach and even practice sexual freedom (पृ० ४३०) यहाँ तक कि गर्भपात तक को जायज ठहराने लगे हैं कुछ पादरी। लेकिन युवा पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित करने की उन्हें सफलता नहीं मिल रही है। लोग गिरजाघरों में केवल ब्याह–शादी और गमी–जनाजे के मौकों पर ही जाते हैं। पचास प्रतिशत लोग तो बपतिस्मा भी नहीं लेते। लेकिन युवकों के ये समूह धर्म के अन्य प्रकारों की ओर मुड़ रहे हैं। इस बात को जॉन अर्दाघ भी स्वीकार करते हैं– 'I know many young christians here who hardly ever go to Mass and care little for the sacrements, but they seek to practise their faith in their daily lives, through private prayer and through social work' (पृ० ४३५)। यहाँ के ब्रितानी प्रदेश में एक पादरी रहा है। अबे बर्नार्ड

फ्रान्स की युवा पीढ़ी ईसाइयत के पाप–दर्शन में अब तनिक भी आकर्षण अनुभव नहीं करती। ईसाई पादरियों के प्रवचनों में युवक–युवतियों को न तो कोई बौद्धिक आयाम दिखायी देते हैं और न उन्हें अन्तःकरण की प्रेरणा मिलती है। बौद्धिक वर्ग में ईसाई धर्मप्रचारकों की प्रतिष्ठा धीरे–धीरे छीजती जा रही है। चर्च–तन्त्र से ऊब गये है यहाँ के युवक। वे तेजी से एशियायी धर्मों की ओर मुड़ रहे हैं। पेरिस के हिन्दू–मन्दिरों में उनकी उपस्थिति बढ़ती जा रही है। यहाँ के रामकृष्ण मिशन, शिवानन्द वेदान्त सेण्टर और हरे राम, हरे कृष्ण–मन्दिर में वे आस्थापूर्वक आने–जाने लगे हैं। एक फ्रान्सीसी युवक से मैंने जब पूछा कि वह हरे राम, हरे कृष्ण–मन्दिर में क्यों जाता है, तो उसका उत्तर था– अब उसे ईसा की सलीब पर टँगी, कील जड़ी, खून बहती हुई और दीन–हीन मुद्रा नहीं भाती। इसके विपरीत, भगवान् कृष्ण की पीताम्बर–धारी, मुस्कराती और बाँसुरी बजाती हुई मुद्रा अपनी ओर आधिक आकृष्ट करती है। धनुर्धर राम का शौर्य सम्पन्न तेजस्वी स्वरूप अधिक प्रीतिकर लगता है उसे। पादरियों के वही शताब्दियों पुराने, घिसे–पिटे और बोझिल पाप–दर्शनपरक सरमन (प्रवचन) उसे नीरस लगते हैं– इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द और प्रभुपाद भक्ति वेदान्त के विचारों में उसे ऊष्मा, उत्साह और ताजगी मिलती है और इसी गत चार जुलाई को हमें उसका प्रमाण भी मिल गया। जब लगा कि हम किसी पश्चिमी देश की भोगनिष्ठ राजधानी में न होकर जैसे अयोध्या, मथुरा, जगन्नाथपुरी या वाराणसी में हों। उस दिन पेरिस की सड़कों पर 'हरे राम! हरे कृष्ण!' का सुमधुर कीर्त्तन करते हुए, भव्य रथ–यात्रा के रूप में हजारों नर–नारी पाँच–छह घण्टों तक जिस तरह निरन्तर संचलन करते रहे, वह दृश्य सच ही अद्भुत था। वह मात्र रथ–यात्रा नहीं थी, वास्तव में सनातन हिन्दू धर्म की दिग्विजय–यात्रा थी। शंख का वह तुमुल निनाद बार–बार सुनकर लग रहा था, जैसे पार्थ सारथि स्वयं शंखनाद कर रहे हों।

बरते (Abbe Bernard Beseret) जिसने युवकों को आकर्षित करने के लिए समलैंगिक सम्बन्धों की भी वकालत की थी– वह स्वयं भी समलैंगिक था– 'This was true notably of the notorious Boquen community in Brittany, led by a homosexual priest, Abbe Bernard Beseret, who encouraged a high degree of sexual liberty for himself and others, at his monastic centre' (पृ० ४३६) बाद में यह पादरी अमेरिका चला गया; क्योंकि ऐसे लोगों की सही जगह वहीं है। वास्तविकता यह है कि फ्रान्स की युवा पीढ़ी ईसाइयत के पाप–दर्शन में अब तनिक भी आकर्षण अनुभव नहीं करती। ईसाई पादरियों के प्रवचनों में युवक–युवतियों को न तो कोई बौद्धिक आयाम दिखायी देते हैं और न उन्हें अन्तःकरण की प्रेरणा मिलती है। बौद्धिक वर्ग में ईसाई धर्मप्रचारकों की प्रतिष्ठा धीरे–धीरे छीजती जा रही है। चर्च–तन्त्र से ऊब गये है यहाँ के युवक। वे तेजी से एशियायी धर्मों की ओर मुड़ रहे हैं। पेरिस के हिन्दू–मन्दिरों में उनकी उपस्थिति बढ़ती जा रही है। यहाँ के रामकृष्ण मिशन, शिवानन्द वेदान्त सेण्टर और हरे राम, हरे कृष्ण–मन्दिर में वे आस्थापूर्वक आने–जाने लगे हैं। एक फ्रान्सीसी युवक से मैंने जब पूछा कि वह हरे राम, हरे कृष्ण–मन्दिर में क्यों जाता है, तो उसका उत्तर था– अब उसे ईसा की सलीब पर टँगी, कील जड़ी, खून बहती हुई और दीन–हीन मुद्रा नहीं भाती। इसके विपरीत, भगवान् कृष्ण की पीताम्बर-धारी, मुस्कुराती और बाँसुरी बजाती हुई मुद्रा अपनी ओर आधिक आकृष्ट करती है। धनुर्धर राम का शौर्य सम्पन्न तेजस्वी स्वरूप अधिक प्रीतिकर लगता है उसे। पादरियों के वही शताब्दियों पुराने, घिसे–पिटे और बोझिल पाप–दर्शनपरक सरमन (प्रवचन) उसे नीरस लगते हैं– इसके विपरीत स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द और प्रभुपाद भक्ति वेदान्त के विचारों में उसे ऊष्मा, उत्साह और ताजगी मिलती है और इसी गत चार जुलाई को हमें उसका प्रमाण भी मिल गया। जब लगा कि हम किसी पश्चिमी देश की भोगनिष्ठ राजधानी में न होकर जैसे अयोध्या, मथुरा, जगन्नाथपुरी, वाराणसी में हों। उस दिन पेरिस की सड़कों पर 'हरे राम! हरे कृष्ण!' का सुमधुर कीर्तन करते हुए, भव्य रथ–यात्रा के रूप में हजारों नर–नारी पाँच–छह घण्टों तक जिस तरह निरन्तर संकीर्तन करते रहे, वह दृश्य सच ही अद्भुत था। वह मात्र रथ–यात्रा नहीं थी। शंख का वह तुमुल निनाद बार–बार गुंजायमान लग रहा था, जैसे पार्थ सारथि स्वयं शंखनाद कर रहे हों।

पदचिह्न खो न जाएँ

– रामानुज त्रिपाठी

ठीक है, मरुस्थल में मेघों को बो देना,
किन्तु आँधियों के पदचिह्न खो न जाएँ।

सागर–मन्थन के
बाद जिसे पाया है,
बूढ़ा दिन धूप की
तस्वीर साथ लाया है।

जड़ देना कील से नंगी दीवार पर
जीवित हैं इसमें अमृत की कथाएँ।

रह गये अधूरे
जिनके अकथ किस्से,
लेकर पंखों में
दुःख–दर्द के हिस्से

लौटेंगे नीड़ पर भूले–भटके पंछी
लेकर नूतन उड़ान की प्रथाएँ।

महाकाल ने सौंपी
विभ्रम की सत्ताएँ,
मरघट पर जुट आयीं
किन्तु अर्थवत्ताएँ

पढ़ कर मौत का भूगोल खोल कर पन्ने
हँस–हँस कर मानचित्र रच रहीं चिताएँ।

– ग्राम/डाकघर–गरयें २२७३०४, सुल्तानपुर (उ०प्र०)

प्राचीन भारतीय रथ की तरह, लकड़ी से बना विशाल रथ उस पर रखी श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा की बड़ी–बड़ी प्रतिमाएँ, फूल–मालाओं से सबकी साज–सज्जा, रथ पर बैठे तिलकांकित वैष्णव जन–सब कुछ अत्यन्त नयनाभिराम प्रतीत हो रहा था। नीचे भी अक्रूर, वसुदेव, ग्वालबालों और गोपियों की साजसज्जा में सजे–सँवरे वैष्णव भक्त और भक्तिनें। रथ को रस्सों से खींचा जा रहा था। रथ में कन्धा लगाने के लिए लोगों में होड़ लगी थी। भक्तगणों ने इतनी फल, मिठाइयाँ समर्पित की थीं, कि उनसे भरा एक पूरा ट्रक ही पीछे–पीछे चल

रहा था। रथ से और ट्रक से फलों की अजस्र वर्षा हो रही थी, लेकिन ट्रक में फल ज्यों–के–त्यों रखे लग रहे थे। जहाँ प्रभु जगन्नाथ स्वयं विराजमान हों, वहाँ अभाव फ़टक भी कैसे सकता था। गेंदा के पीले और लाल फूलों की इतनी मालाएँ चढ़ीं थीं कि मैं सोच भी नहीं सकता था कि पेरिस में गेंदे के इतने फूल मिल सकते हैं। लेकिन रथ–यात्रा में इतने वैष्णवजन होंगे– इसका आकलन भी मैं पहले कहाँ कर पाया था। अपार भक्तगण। जहाँ तक नजर जाती थी, वहाँ तक वैष्णव–ही–वैष्णव। देशी–विदेशी दोनों ही। ज्यादातर लोग धोती–कुर्ते में, गले में पड़ी तुलसी की माला, पाँवों में चप्पल और माथे पर तिलक। हाथों में शंख, करताल, खँजड़ी और मँजीरे। हर उम्र के पुरुष और हर उम्र की नारियाँ। कुछ पश्चिमी नवदीक्षित युवक जीन्स पहनकर भी नाच रहे थे। इसी तरह कुछ नवदीक्षित पश्चिमी युवतियाँ भगवा रंग के स्कर्टों में भी थिरकती हुई हरिनाम कीर्त्तन कर रही थीं। कुछ गुजराती बन्धु अपने छोटे–छोटे बच्चों को भी धोती–कुर्ते पहनाकर लाये थे। इस रथयात्रा में सम्प्रदायों की कट्टरताएँ समरसता से भाव–विभोर हो रही थीं। राम–कृष्ण की भक्ति के प्रचण्ड ज्वार ने देश, पन्थ, जाति और भाषागत भेदभावों को बहा दिया था। प्रान्तीयता की सीमाएँ टूट रही थीं। इसमें शैव थे, लेकिन कृष्ण के रंग में रँगे हुए; शाक्त थे, लेकिन राम के अनुयायी के रूप में। तमिल, गुजराती, पंजाबी और बंगाली क्षेत्रों से आये समस्त प्रवासी भारतीयों को और अभारतीयों को भी कृष्ण के पीताम्बर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिख रहा था। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा मूलतः पुरोवर्त्तित इस कृष्णभक्ति–मार्ग ने उस दिन ससीम को वस्तुतः असीम बना दिया था। उन्मुक्त धूम्रपान करने वाली कुछ परिचित फ्रान्सीसी बालाओं को, उस दिन मैंने अपने साथियों को धूम्रपान से वर्जित विरत करते देखा।

पश्चिमी देशों के युवक–युवतियों में हिन्दू धर्म के बढ़ते हुए बहुविध प्रभाव को यहाँ के ईसाई पादरी सहन नहीं कर पा रहे हैं। इसके कारण वे विक्षिप्त–से हो गये हैं। वे नहीं चाहते, कि यहाँ पूर्वी धर्मों की रहस्यमयी दार्शनिकता और वैष्णवभक्ति का प्रचार–प्रसार हो। जो पादरी भारत में धर्मान्तरण की खुली छूट चाहते हैं, वे पश्चिमी देशों में हिन्दू धर्म की गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए प्रयत्नशील हैं। उन्हें लगता है कि हिन्दू धर्म की तर्क संगति उन्हें निरुत्तर कर देगी। इसीलिए फ्रान्स में भी वे यहाँ के राजनेताओं से दुरभिसन्धि कर 'हरे राम! हरे कृष्ण!' आन्दोलन को प्रतिबन्धित कराने का षड़्यन्त्र रच रहे हैं। इन विदेशी वैष्णवों को यहाँ की सरकार निरन्तर उत्पीड़न और दमन की धमकियाँ दे रही है– क्योंकि पादरियों के पाँवों के नीचे की जमीन खिसकती जा रही है। यहाँ के कृष्ण मन्दिर के फ्रान्सीसी अध्यक्ष, जिन्होंने दीक्षा के बाद अपने फ्रान्सीसी नाम को छोड़कर अपना नया नामकरण 'निताई गौर सुन्दरदास' कर लिया है, को भी इस प्रकार की धमकियाँ मिल रही हैं कि क्यों न उन्हें 'सेक्ट' के रूप में प्रतिबन्धित कर दिया जाये? निताई ने इसकी चर्चा कुछ भारत भक्तों से की और उनके सुझाव पर इस बार उन्होंने उन्मुक्त रूप से भारतवंशियों को रथयात्रा में आमन्त्रित किया। प्रवासी भारतीयों ने भी, खुले तन–मन से उनका निमन्त्रण स्वीकार कर रथयात्रा में मनोयोग से भाग लिया। उस दिन रथयात्रा में सम्मिलित 'हरि' जनों की सही संख्या का आकलन तो पत्रकारों को ही होगा, लेकिन मोटे अनुमान से, न्यूनतम छह–सात हजार लोग तो होंगे ही। सड़कों के दोनों ओर की बहुमंजिली इमारतों के छज्जों पर खड़े अनन्त नर–नारी भी इस अद्‌भुत यात्रा से भावविभोर होते दिख रहे थे। निताई गौर सुन्दरदास ने जब दूरदर्शन के पत्रकारों के सामने कुछ कहने के लिए मुझे बुलाया, तो अधिकतर लोगों ने यही कहा– हम तो चैतन्य महाप्रभु और सनातन हिन्दूधर्म के अनुयायी हैं। वास्तव में, सुख तो वही है, जहाँ सीमाएँ टूटती हैं– 'यो वै भूमा, तत्सुखम्, नाल्पे सुखम्।' बरगद की तरह सबको समेट लेनेवाले विराट् हिन्दू धर्म से जिसने भी थोड़ा–सा कटने या अलग–थलग दिखने का प्रयत्न किया, मारा गया। क्योंकि वृक्ष कट जाने पर किसी का भी नीड़ कहाँ बच पाता है। अमेरिका में, आचार्य रजनीश की भी जो दुर्दशा हुई, वह शायद न होती, यदि वे अनावश्यक रूप से अपने को हिन्दू–धर्म से पृथक् दिखाने का प्रयत्न न करते। 'हरे राम! हरे कृष्ण!' के अनुयायियों की समझ में समय से यह बात आ गयी है। निताई उस दिन इससे पूरी तरह सहमत और सन्तुष्ट थे। अपना विशाल स्वरूप देखकर किसको अपने गौरव की अनुभूति नहीं होती? यदि ऐसा न होता, तो अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए भगवान् कृष्ण भला अपना विश्व रूप क्यों दिखलाते? और मेरी तरह, उस दिन प्रत्येक पेरिस–प्रवासी भारतीय, जो विदेश में रहते हुए भी अपनी पुण्य–भूमि के लिए निरन्तर उत्कण्ठित रहता है, अपने विश्वरूप को देखकर 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत!' की प्रत्यक्ष अनुभूति कर रहा था।...

▫

– अतिथि आचार्य, सोरबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस, फ्रान्स

ज्योतिष के दर्पण में—

क्या पाकिस्तान विखण्डित होगा ?

— आचार्य डॉ० श्रीपति नारायण अवस्थी

[यह लेख कतिपय अपरिहार्य कारणों से पहले प्रकाशित नहीं किया जा सका। तथापि इसका महत्त्व कम नहीं है। —सम्पादक]

इस्लामी कट्टरवाद के गर्भ से उत्पन्न पाकिस्तान अपनी राष्ट्रीय अवधारणा खोकर विघटित होने की तैयारी कर रहा है। अगस्त १९४७ को जन्मा पाकिस्तान १९७१ में दो टुकड़ों में बँट गया तथा पूर्वी पाकिस्तान बांगलादेश के नाम से एक नये राष्ट्र के रूप में पृथ्वी के मानचित्र पर उदित हो चुका है। सम्प्रति शेष पाकिस्तान भी तेजी से टूटने के कगार पर पहुँच रहा है। ज्ञातव्य है कि अगस्त १९९८ में भारत तथा पाकिस्तान दोनों ही स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती का महोत्सव मना चुके हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पाकिस्तान के निर्माण के समय ३० लाख हिन्दुओं को अपनी मातृभूमि छोड़कर भारत में शरण लेनी पड़ी तथा ६ लाख से अधिक हिन्दुओं की जानें इस्लामी कट्टरता की वेदी पर न्यौछावर हो गईं। इतनी भयंकर त्रासदी के बाद भी इस्लाम के नाम पर पाकिस्तान अपनी एकता बनाये न रख सका।

क्या पाकिस्तान पुनः टूटेगा ? यदि हाँ, तो कितने खण्डों में इसका विभाजन होगा तथा कब तक ? इस विषय पर अनेक राजनीतिक पण्डित चिन्तन कर ही रहे हैं। किन्तु विषय पर ज्योतिष—शास्त्र की दृष्टि से भी विचार उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

पाकिस्तान का जन्म १४/१५ अगस्त १९४७ मध्य रात्रि, कराची।

जन्म चक्र लग्न ०/२१/९/३७
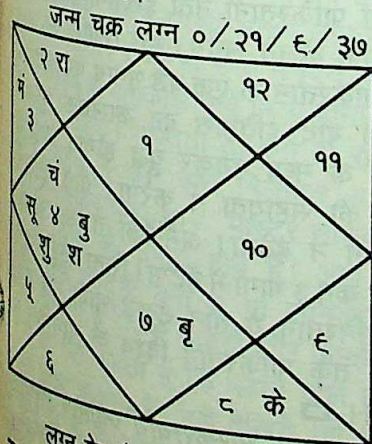
लग्न मेष है तथा लग्नेश मंगल सहज भाव में है। लग्नेश पाप कर्त्तरी योग से ग्रस्त है। चतुर्थ भाव में सू० चं०, बु०, शु० तथा शनि ग्रह स्थित हैं। पाकिस्तान के जन्म के समय शनि की महादशा का भोग १५ वर्ष ६ मास तथा १४ दिन था। लग्नेश मंगल, अपने शत्रु बुध की मिथुन राशि में होने से निष्प्रभावी हो गया है।

ग्रह स्थिति से स्पष्ट है कि पाकिस्तान का जन्म घृणा, रक्तपात एवं धार्मिक उन्माद की पृष्ठभूमि पर हुआ। अतः प्रारम्भ में ही पाकिस्तान ने कश्मीर में अपने सैनिक, घुसपैठियों के रूप में भेजकर भारत पर अप्रत्यक्ष आक्रमण कर दिया। इंग्लैण्ड का मौन समर्थन एवं संरक्षण प्राप्त होने के कारण पाकिस्तान की उद्दण्डता बढ़ गयी थी। राज्य पद का स्वामी शनि दशम दृष्टि से लग्न को देख रहा था, साथ ही लग्नेश तथा दशेश में द्विर्द्वादश (२/१२) योग होने के कारण पाकिस्तान राजनीतिक अस्थिरता के दुश्चक्र में फँस गया परिणामतः पाकिस्तान के प्रथम प्रधानमन्त्री लियाकत अली खाँ, पेशावर की एक जनसभा में गोलियों से भून डाले गये। जिन्ना भी थोड़े समय में चल बसे। मात्र १० वर्षों के अल्प अन्तराल में ही फीरोज खाँ नून, निजामुद्दीन, मोहम्मद अली, चौधरी मोहम्मद अली आदि प्रधानमन्त्री मर गये।

१९६२ में चीन द्वारा भारत पर किये गये हमले का लाभ उठाकर पाकिस्तान ने चीन को भारत का जम्मू—कश्मीर क्षेत्र का कुछ भू—भाग दे दिया। वस्तुतः पाकिस्तान भारत को अपना शत्रु तथा चीन को मित्र समझता है। पाकिस्तान के जन्म चक्र में सप्तम भाव में तुला राशि है। यह राशि चीन का प्रतिनिधित्व करती है; किन्तु पाकिस्तान चीन को न समझ पाया है और न ही समझ सकेगा। संकटकाल में चीन ने पाकिस्तान की सहायता न की है और न ही भविष्य में कर सकेगा।

पाकिस्तान का विखण्डन बुध की महादशा में प्रारम्भ हुआ। २८—२—१९६३ से २९—२—१९८० तक बुध की महादशा चली। बुध मंगल का शत्रुग्रह है तथा मेष लग्न के लिए अनिष्टकर है। इस दशाकाल में पाकिस्तान में भारी उथल—पुथल रही है। सितम्बर १९६५ में पाकिस्तान

ने भारत की पश्चिमी सीमा पर आक्रमण कर दिया। अमेरिका से प्राप्त तथा अजेय कहे जाने वाले पैटन टैंकों से भारत विजय का स्वप्न संजोये पाकिस्तान की करारी हार हुई तथा खेमकरण क्षेत्र में पैटन टैंकों का कब्रिस्तान बन गया। इस लज्जास्पद हार से पाकिस्तान ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। २९–८–७१ से बुध की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा प्रारम्भ होकर २६–८–७२ को समाप्त हुई। इस काल में पाकिस्तानी तानाशाह जनरल याहिया खाँ ने भारत पर आक्रमण कर दिया। फलतः बुध महादशा की मंगल अन्तर्भुक्ति में पाकिस्तान ने अपना पूर्वी भाग खो दिया। भारत के हाथों पाकिस्तान की करारी पराजय तथा जनरल नियाजी के नेतृत्व में एक लाख पाकिस्तानी सैनिकों को आत्म–समर्पण करना पड़ा। ज्योतिष सम्बन्धी इस घटना के सम्बन्ध में बृहत् पाराशर होरा शास्त्र में वर्णित अन्तर्दशादि फलाध्याय के निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं–

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वापापसंयुते
तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशं भ्रातृवर्गेमहद्भयम्
नृपाग्निचौरभीतिश्च पुत्रमित्रविरोधनम्
स्थान भ्रशं महद्वैरम्.....

श्लोक–४१, ४२, ४३

अर्थात् बुध की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा प्रारम्भ होने पर तथा दशाधिप और अन्तर्दशाधिप में ६, ८, १२ सम्बन्ध श्री योग बनने की स्थिति में महाक्लेश, बन्धुओं को कष्ट, भय, राजा, चोर, अग्नि का संकट तथा मित्रों का असहयोग होता है। इसमें स्थान की भ्रष्टता भी हो जाती है। यह लक्षण पाकिस्तान पर पूरा–पूरा घटित होता है। भारत से उसका युद्ध हुआ। हजारों सैनिक मारे गये एवं गिरफ्तार हुए। देश विखण्डित हो गया तथा किसी मित्र राष्ट्र– चीन, अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा मुस्लिम राष्ट्रों ने पाकिस्तान को सहयोग नहीं दिया। उल्टे इन्हीं राष्ट्रों ने विखण्डित पाकिस्तान के बांग्लादेश को मान्यता देकर पाकिस्तान को अँगूठा दिखा दिया। इस प्रकार २४ वर्षों की अल्पावधि में पाकिस्तान टूट गया।

बुध की महादशा में बृहस्पति तथा शनि की अन्तर्दशाओं में पाकिस्तान की हालत और अधिक खराब हो गयी। बुध की शनि अन्तर्दशा में राष्ट्रपति जियाउल हक ने जुल्फिकार अली भुट्टो को फाँसी पर चढ़ा दिया तथा स्वयं भी एक विमान दुर्घटना में मारे गये।

२९–२–८० से २८–२–८७ तक पाकिस्तान केतु की महादशा में चला। इस कालखण्ड में उसने कश्मीर तथा पंजाब में उग्रवाद को बढ़ावा दिया। भारत ने यद्यपि पंजाब के उग्रवाद पर काबू पा लिया; किन्तु अभी कश्मीर का उग्रवाद शेष है। इस अवधि में पाकिस्तान ने चोरी–छिपे परमाणु बम भी बना लिया; किन्तु वह उसकी सार्वजनिक घोषणा न कर सका।

ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से पाकिस्तान के पुनः विखण्डित होने तथा विश्व–मानचित्र से लुप्त होने की चर्चा से पूर्व एक अन्य अत्यावश्यक घटना का उल्लेख आवश्यक है। वह है भारत द्वारा किया गया परमाणु बम–विस्फोट। ११–५–१९९८ को अपराह्न ३.४५ पर पोखरण में बम–विस्फोट किया गया। इससे पूर्व इसी तिथि पर १९७४ में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रथम परमाणु बम–विस्फोट किया था। इस द्वितीय बम विस्फोट से संसार भौचक्का रह गया विशेषकर अमेरिका। उसकी खुफिया एजेन्सी भारत की इस योजना का पूर्वानुमान तक न लगा सकी। भारत विरोध के फलस्वरूप पाकिस्तान ने भी परमाणु बम विस्फोट किये। भारत द्वारा किया गया बम विस्फोट बहुत ही शुभ मुहूर्त्त एवं लग्न में किया गया। तत्कालीन ग्रह–स्थिति से भारत की प्रतिष्ठा अनुदिन बढ़ेगी तथा भारत के विरुद्ध लगाये गये सभी प्रतिबन्ध स्वतः निरस्त हो जायेंगे (हो भी चुके हैं) जबकि पाकिस्तान, परमाणु विस्फोटों के कारण दिवालिया होकर अपना सचिवालय तक बेंचने को विवश हो रहा है।

२८–२–१९८७ से पाकिस्तान, शुक्र की महादशा में २८–२–२००७ तक चलेगा। पाकिस्तान की लग्न मेष है। शुक्र मेष लग्न के लिए पापग्रही है तथा सप्तमाधीश होने के कारण मारकेश भी है। फलतः पाकिस्तान का भविष्य अन्धकारमय है। इस अवधि में मुजाहिदीन समस्या खड़ी करेंगे। उग्र इस्लामी कट्टरवाद पाकिस्तान की मृत्यु का कारण बनेगा। २८–१२–९६ से शुक्र में शनि की अन्तर्दशा २८–२–२००३ तक चलेगी। इसके बाद २८–१२–२००५ तक बुध की अन्तर्दशा चलेगी। उपरिनिर्दिष्ट कालखण्ड पाकिस्तान के लिए जीवन–मरण का प्रश्न खड़ा करेगा। ९९ के अन्त तक पाकिस्तान, चीन की गोद में जा बैठेगा तथा पाकिस्तानी नेता इस्लामी जिहाद एवं 'युद्ध देहि' की भाषा बोलने लगेंगे। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए चीन पाकिस्तान के एक बड़े भूभाग पर अधिकार कर लेगा। इसके बाद इतिहास का कालचक्र घूमेगा। भारत पाकिस्तान के मध्य भयंकर युद्ध होगा। कोई भी राष्ट्र पाकिस्तान की सहायता न करेगा। चीन मौखिक सहानुभूति से आगे न बढ़ेगा। अमेरिका तटस्थ रहेगा। पाकिस्तान कम से कम ३ भागों में बँटेगा। सिन्ध बलूचिस्तान, पंजाब तथा पख्तूनिस्तान ये तीन टुकड़े भावी नये राष्ट्र बनेंगे और २००५ तक पाकिस्तान विश्व के मानचित्र से गायब हो जायेगा। ▭

– अध्यक्ष, भास्कराचार्य ज्योतिष संस्थान,
५५१झ/१०८, रामनगर, आलमबाग, लखनऊ-५

कहानी

भाभी

– मदन मोहन पाण्डेय

महेश को भला लगा पहले दिन ट्यूशन पढ़ाकर। ऐसे सम्पन्न लोगों में इतनी इन्सानियत भी हो सकती है, उसने सोचा तक नहीं था। उसने मन ही मन प्रिन्सिपल साहब को धन्यवाद दिया, जिनके प्रयास से यह ट्यूशन मिला था। दरअसल वह माण्टेसरी स्कूल में पढ़ाकर जैसे–तैसे गुजर–बसर कर रहा था। थोड़े वेतन के साथ दो–एक ट्यूशन मिलने से काम चल जाता है। गाँव में बूढ़े माँ–बाप और छोटे भाई को चार पैसे भेजे जा सकते हैं। इसीलिए उसने अपने प्रिन्सिपल रह चुके गुप्ता जी से यह बात कही भी थी। कभी वह उनका प्रिय छात्र रहा था। उनके कहने से ही इस दूर के शहर में कैरियर के लिहाज से रुका भी था।

डॉक्टर मंगलसेन के घर उनकी बेटी को पढ़ाना कोई ऐसा काम नहीं था, जिसके लिए महेश को पाँच सौ रुपये दिये जाते, पर डॉक्टर साहब के पूछने पर जब उसने ट्यूशन की फीस बतायी नहीं, तो चाय पीते–पीते वह स्वयं बोले थे– "मास्टर साहब को पाँच सौ रुपये मम्मी से दिला देना।"

पाँच सौ रुपये पाकर महेश को कुछ सुखद आश्चर्य–सा हुआ था। इतने रुपये तो उसे विद्यालय से मुश्किल से मिल पाते हैं, जिसमें ६ घण्टे की ड्यूटी देनी पड़ती है। ऐसी ही दो चार ट्यूशनें मिल जायें, तो आनन्द आ जाये। फिर कैसी अच्छी कम्पटीशन की तैयारी हो सकती है। वह आगे सोच ही न सका। तब तक पिंकी ने 'टाटा मास्साब' कहकर खुद अन्दर जाकर जैसे जाने का संकेत कर दिया। रुपये भी उसी ने दिये थे। उसकी मम्मी को गृह–कार्य से अवकाश नहीं मिला होगा। बड़े आदमियों का मामला ठहरा। व्यस्तता तो बनी ही रहती है। लेकिन डॉक्टर साहब ने उसे हाथ मिलाकर अपने साथ चाय नाश्ता करवाकर कहा था– "मास्टर साहब ये बच्चे गीली मिट्टी के लोंदे के समान होते हैं। आप लोग ही इन्हें गढ़कर चाहे आदमी बना दें या जानवर। विद्या से ही आदमी आदमी है, वरना आदमी और जानवर में फर्क क्या है? मैं तो यह कहता हूँ कि पढ़ाने वाले का कोई बदला ही नहीं चुका सकता है। मुझे देखिये, जो कुछ हूँ गुरुजनों की कृपा से ही हूँ; वरना मेरे साथ पढ़नेवाले बीसों लड़के चौराहों पर पान लगाते हैं।"

डॉक्टर साहब की यह बात उसे उनके हृदय में झाँकते एक कृतज्ञ और भले इन्सान की झलक दे गयी थी। वह अपने कमरे की ओर चलता हुआ डॉक्टर साहब के बारे में सोचते–सोचते अपने भाई के बारे में सोचने लगा। उसे लगा भाई साहब अगर जिन्दा होते, तो वह भी इसी तरह डॉक्टर होते और शायद उनके भी पिंकी की तरह ही खूबसूरत बेटी–बेटे होते और आज उसे भी इस तरह फटर–फटर नहीं करना पड़ता। वे कितना तो उसे मानते थे। "मेरी नौकरी लग जाये या कहीं दवाखाना खुल जाये, फिर महेश को इस तरह रखूँगा कि यह भी याद करेगा कि कोई मेरा बड़ा भाई था।"

अपने कपड़े तो वह यों भी जिद करके महेश को पहनाते और दुबारा उन कपड़ों को वापस करने की तो बात ही बेमानी थी। खाने–पीने की चीजें तो अपने हिस्से की भी भाइयों को खिलाने में चरम तृप्ति मिलती थी। अम्मा, बाबू कितने खुश होते थे। बड़े भाई साहब की छत्रछाया छोटे भाइयों पर देखकर बाबू अम्मा से कहते– "अब सारा खटराग बन्द। एक लड़का डॉक्टरी पास हो गया है। दूसरों की फिकर अब खुद करेगा।"

अम्मा एक बार धरती माता के पैर छूतीं और दूसरी बार ऊपर को हाथ जोड़ देतीं। भाई साहब के लिए एक से एक अच्छे लोग शादी करने आते और वे बात टाल जाते– "अरे! अभी क्या जल्दी है।"

पर क्या ये स्वप्न पूरे हो सके?

अम्मा को बहू लाने की जल्दी पड़ी थी। बड़े भइया के डॉक्टर हो जाने पर भी अपने दिमाग में बहू का वही ग्रामीण प्रतिबिम्ब सँजोये थीं। लाज से दुहरी बटुआ जैसी गोरी–गदबदी बहू, जो सास की आँख की पुतली के इशारे पर काम करती है।

भाई साहब का ब्याह आखिर बड़े धूमधाम से हुआ था। भाभी के पिता बड़े अफसर थे। जिन्होंने भाई साहब की डॉक्टरी की बदौलत उनका दरवाजा देखा था, वरना शायद ऐसे लोगों से वे बात करना भी पसन्द नहीं करते। बाबू के सामने कैसे बिछ–बिछ जाते थे और बाबू भी उनकी कण्टेसा कार देखकर ही उनकी चकाचौंध के कायल हो गये थे। वे तो हाथ जोड़कर कहने लगे– "आप हमारे दरवाजे आये हैं, दरवाजे आनेवाले की बात न

मानना, भगवान् की बात न मानना होता है। फिर आप तो हमारे गाँव में आये, यह गाँव का भाग्य है।"

वे और जाने क्या-क्या कह जाते कि भाई साहब ने उन्हें इशारे से मना कर दिया।

अफसर बाप ने बेटी के लिए कुछ उठा नहीं रखा और उनकी महिमा में पूरा घर गड़ गया। भाभी भाई साहब के साथ ही बी०एस-सी० पास थीं। इसलिए भाई साहब ने भी कोई एतराज नहीं किया।

लेकिन दस दिन गाँव में रहकर जब भाभी मायके वापस हुईं, तो उन्हें क्या पता था कि ससुराल का सुख दस दिन का ही है। भाई साहब को उसके आठ दिन बाद ही तो टिटनेस हो जाने से आँखे मूँद लेनी पड़ी थीं। लेकिन यह आँख मूँदना क्या साधारण आँख मूँदना था? भाभी के पापा ने पैसा पानी की तरह बहाया था। पर भाई साहब का दुःखद अन्त पैसे के बूते पर रोका नहीं जा सका था। वे जिस त्रासद मौत के शिकार हुए, ऐसी मौत भगवान् दुश्मन को भी न दे। भाभी का रोते-रोते हाल बेहाल था। अम्मा की तो जैसे जन्मभर की कमाई कोई एक बारगी झपट्टा मारकर छीन ले गया और ठगी रह गयी थीं। उनका ममता और विश्वास से भरा मातृहृदय काफी देर तक तो इस नंगे सत्य का विश्वास ही नहीं कर सका; किन्तु जब यथार्थ के धरातल पर उतरीं, तो उनका क्रन्दन एक माँ का जैसा ही क्रन्दन था। जैसे किसी नवल-वत्सा गाय का बछड़ा उससे छीन कर उसके सामने ही जिबह कर दिया गया हो, और वह रँभा-रँभा कर हृदय हिला रही हो। बाबू तो जैसे उसी दिन मर गये थे और तब से जैसे मौत के निर्देशन में वे अपनी लाश ढो रहे हैं। महेश और छोटू की तो जैसे दुनिया बसने से पहले ही उजड़ गयी।

मरनेवाले के परिवार के आँसू दुनिया की गति बाधित तो नहीं कर पाते हैं। इसका पहला प्रमाण तब मिला, जब भाई साहब की तेरहवीं के दिन ही भाभी के पापा जी ने कहा- "आप लोग धीरज रखिये। मुझे ही देखो, लड़की को दाग लगकर रह गया। अब इसका जीवन बर्बाद कर दूँ, यह क्या मुझसे हो सकेगा? मैं अंजू की दूसरी शादी क्या खुशी से करूँगा? दिल पर पत्थर रखकर ही करनी है। अपने लिए नहीं, इस लड़की की पहाड़ जैसी जिन्दगी के लिए। आप लोग भी धैर्य से काम लीजिये।"

बाबू पर यह दूसरा बज्रपात था। उन्होंने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि बेटे के हाथ से निकल जाने के बाद बहू भी परायी हो जायेगी। गाँव-घर की मर्यादा ने उन्हें यह बात कभी सोचने भी न दी थी। बस उनकी पनीली आँखें और पनीली हो गयीं। महेश ने भी इस बात की कल्पना नहीं की थी। उस पर स्नेह लुटाने वाली भाभी परायी हो जायेंगी। इस पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था; मगर उसे भी विश्वास करना पड़ा।

जब कार में बैठकर **भाभी** रवाना हुईं, तो उन्होंने झुक कर अम्मा के पैर छुए थे और उनकी वेदना विह्वल गुड़हल जैसी लाल आँखें पता नहीं क्या-क्या कह जातीं कि क्षमा और आत्मीयता के सारे बोल उनके पापाजी की "जल्दी चलो" की आवाज में दबकर रह गये। उनके पापा जी की दृष्टि में महेश का घर जैसे अभिशप्त भूतों का डेरा हो गया था, जिसे वे जल्दी-जल्दी छोड़ना चाहते थे। भाभी ने चलते-चलते दोनों हाथों से महेश के गाल सहलाये थे और कहा था- "तुम्हारे लिए कुछ न कर सकी लाला। कभी-कभी इस दुखियारी को भी याद कर लिया करना।"

भाभी के हृदय में ससुराल का दुःख और पापा का सख्त स्वर जैसे रस्साकशी कर रहे थे। जिसमें विजय तो पापा की हुई; मगर भाभी का कार में बैठते-बैठते बार-बार पीछे मुड़कर हिचकियाँ लेना जैसे कुछ और ही संकेत कर रहा था।

कार की धूल भी जहाँ तक दिखायी पड़ी, महेश उधर टकटकी ही बाँधे रहा था। उसके किशोर मन में यह बात बड़ी देर से पैठ पायी कि इस हादसे में वह केवल भाई साहब को ही नहीं, भाभी को भी खो बैठा है। वही भाभी, जिनके लिए उसके हृदय में अपार सम्मान था; जिनके लिए वह जाने क्या-क्या करना चाहता था, अब उससे बहुत दूर हो गयी थी।

मन में घिरे विगत के इन्हीं विचारों में महेश कब अपने कमरे पर आ गया, पता ही न चला। अवसाद ने मानो चेतना ही हर ली और वह निद्रा-गमन में जैसा चलता आया। उसकी चेतना ने झटका तो कमरे के पास आकर खाया। जहाँ रोटी का यथार्थ मुँह बाये खड़ा था। जहाँ अभी स्टोव जलाकर उसे खाना बनाना था। कपड़े भी साफ करने थे और सबेरे घर को पैसे भेजने की भी चिन्ता थी।

महेश की चेतना ने इस बार दूसरी करवट ली। उसे लगा जैसे डॉक्टर मंगलसेन के रूप में उसे अपने डॉक्टर भाई की ही ममता का एक अंश मिल गया हो, जो तपन से जलते रास्ते में शीतल मेघ-खण्ड की तरह उसे कुछ राहत पहुँचाने के प्रयास में है। पिंकी के रूप में मानों उसकी सगी भतीजी का साहचर्य रोज के लिए उपलब्ध

(शेष पृष्ठ ६७ पर)

दृष्टि

□ नरेन्द्र कोहली

कृष्ण का रथ रुका तो उनके पीछे आते हुए पांडवों के रथ भी रुक गये। हस्तिनापुर से चलते हुए ही युधिष्ठिर ने सैनिकों को साथ ले जाने से मना कर दिया था। वे पितामह के पास राजा के रूप में नहीं, मात्र उनके पौत्र के रूप में ही जाना चाहते थे। तो फिर सैनिकों का क्या काम।

"कहाँ है पितामह?" भीम ने धीरे से कृष्ण से पूछा, "तुमने रथ से उतार भी लिया और वे कहीं दिखायी भी नहीं पड़ रहे।"

"उनके पास पैदल ही जायेंगे।" कृष्ण बोले, "इसे युद्धक्षेत्र मत समझो मध्यम! कि रथ से उतरते ही व्यक्ति असुरक्षित हो जाता हो। अब यह धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र है। अतः यहाँ ऋषि आश्रम की मर्यादा का पालन होना चाहिए।"

वे लोग अत्यन्त विनीत भाव से भीष्म के निकट पहुँचे। वहाँ न कोई सैनिक था, न राजकर्मचारी। पता नहीं दुर्योधन ने ही वहाँ किसी को नियुक्त नहीं किया था या युद्ध की अवधि में वे सब लोग भाग गये थे। पितामह के निकट आरण्यकों का पूरा समुदाय उपस्थित था, जो उनको घेर कर बैठे, वैदिक मन्त्रों का उच्चार कर रहे थे। उनका नेतृत्व स्वयं महर्षि वेदव्यास कर रहे थे। इन लोगों को आते देखकर आरण्यकजन मौन हो गये। उन्होंने पितामह तक इनके पहुँचने का मार्ग भी बना दिया।

युधिष्ठिर ने आरण्यक समुदाय को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वेदव्यास के चरण छुए और फिर उन्होंने कृष्ण को आगे कर दिया। वे स्वयं पितामह के निकट जाने का साहस नहीं कर पाये। पितामह को देख कर यह कहना कठिन था कि वे शैया पर लेटे थे या शरशैया पर। वे शैया पर लेटाये अवश्य गये थे; किन्तु उनके शरीर से सारे बाण निकाले नहीं गये थे। उनके बाण उनके शरीर में चुभे हुए थे; और कुछ तो शरीर के आर-पार भी हो गये थे। उन बाणों को स्थान देने के लिए शैया की रस्सियों में आवश्यक व्यवस्था कर दी गयी थी। पितामह के शरीर का बोझ तो शैया पर था किन्तु उनके शरीर में चुभे कुछ बाण धरती को भी छू रहे थे।

"ये बाण?" युधिष्ठिर ने ऋषि समुदाय की ओर देखा।

"विशल्यकारिणी बूटी असफल हो गयी है। शल्य चिकित्सकों ने इन बाणों को निकालने में अपनी असमर्थता जता दी है पुत्र!" वेदव्यास बोले, "उनका कहना है कि इन बाणों को निकालने का प्रयत्न किया जायेगा तो देवव्रत भीष्म की तत्काल मृत्यु हो जायेगी।"

कृष्ण ने पितामह के ललाट पर अपना हाथ रखा। पितामह ने आँखें खोल दीं। मुँह ऊपर उठाया और कृष्ण को पहचानते हुए, हाथ जोड़कर कहा, "मधुसूदन!..."

"आप मुझे इस नाम से क्यों पुकार रहे हैं?" कृष्ण कुछ लीलामय हो गये।

भीष्म ने मुस्कराने का प्रयत्न किया, "तुम में साक्षात् विष्णु का रूप देखता हूँ वासुदेव! अतः विष्णु के सारे नाम तुम्हारे ही नाम लगते हैं। तुम ही हरि हो, तुम ही मुरारि हो, तुम ही कैटभारि हो।" उनकी पुतलियाँ घूमीं, "ओह मेरे पौत्र आये हैं।"

सहसा उनकी दृष्टि कृपाचार्य पर थम गयी, "यह अच्छा किया कृप! कि तुमने फिर से इनके सिर पर हाथ रख दिया। इनको तुम्हारी आवश्यकता है।"

"मेरी तो इनसे कभी कोई शत्रुता थी ही नहीं।" कृपाचार्य बोले, "युद्ध में युधिष्ठिर के विपक्ष की ओर से लड़ा अवश्य; किन्तु मैं पांडवों का विरोधी तो कभी नहीं था गंगानन्दन!"

"ठीक कहते हो।" भीष्म बोले, "किन्तु यही निर्णय कहीं हमने कुछ पहले कर लिया होता तो कदाचित् मानवता का कुछ हित ही होता।" उनकी दृष्टि फिर से आकर कृष्ण पर टिक गयी, "आपने बहुत कृपा की श्रीकृष्ण! कि इस अन्त समय में मुझे दर्शन देने चले आये।"

कृष्ण मुस्कराये, "आपकी इन्द्रियाँ तो प्रसन्न हैं पितामह? बुद्धि व्याकुल तो नहीं है?"

"इन बाणों के गड़ने से जो जलन हो रही है, उसके कारण बड़ी व्यथा है गोविन्द! सारा शरीर पीड़ा के मारे शिथिल हो गया है; और बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही। मेरा बल शरीर का त्याग सा करता मालूम पड़ता है। प्राण निकलने को उतावले हो रहे हैं। मर्मस्थल में बड़ी पीड़ा है। दुर्बलता के कारण जिह्वा तालू से लग गयी है।"

"ये कष्ट तो शरीर का धर्म हैं। आत्मा को उसका अनुभव भी नहीं होता।" कृष्ण बोले, "आप जानते हैं कि आपका शरीर इन सब से मुक्त होने वाला है।"

"आपकी कृपा बनी रहे तो शरीर के रहते भी ये कष्ट मुझे विचलित नहीं करेंगे।" भीष्म बोले, "यह युधिष्ठिर मुझसे इतनी दूर रूठा सा क्यों खड़ा है?"

"धर्मराज मानते हैं कि राज्य के लोभ के कारण वे अपने भाई–बन्धुओं के नाश के निमित्त बने। वे बहुत लज्जित हैं। वे आप से भी डरते हैं और शाप से भी। इसी से आप के निकट नहीं आ रहे।"

भीष्म ने युधिष्ठिर की ओर देखा और संकेत से निकट आने के लिए कहा। युधिष्ठिर हाथ जोड़ कर उनकी ओर बढ़े।

"जैसे दान, अध्ययन और तप ब्राह्मण का धर्म है, उसी प्रकार समरभूमि में शत्रुओं के शरीर को मार गिराना, क्षत्रिय का धर्म है। जो असत्य के मार्ग पर चलने वाले पिता, दादा, भाई, गुरुजन, सम्बन्धी तथा बन्धु–बान्धवों को संग्राम में मार डालता है, वह धर्म का ही प्रतिपादन करता है। जो क्षत्रिय, धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले पापाचारी गुरुजनों का युद्ध में वध करता है, वही धर्म को जानता है। लोभवश सनातन धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले स्वजनों को जो क्षत्रिय युद्ध में मार गिराता है, वही निश्चित् रूप से धर्म को जानता है। संग्राम में शत्रु के ललकारने पर क्षत्रिय को सदा ही युद्ध के लिए उद्यत रहना चाहिए। मनु ने कहा है कि युद्ध क्षत्रिय के लिए धर्म का पोषक, स्वर्ग प्राप्ति का साधन और लोक में यश फैलाने का माध्यम है।"

युधिष्ठिर की आँखों में अश्रु आ गये। उन्होंने पितामह के दोनों चरण पकड़ लिये, "मेरी बुद्धि यह सब स्वीकार करती है। मैंने अपना कर्तव्य मानकर युद्ध किया भी है; किन्तु मेरे मन की खिन्नता नहीं जाती।"

"बैठ जाओ, पुत्र!" पितामह ने कहा।

युधिष्ठिर भूमि पर बैठ गये। अन्य पाण्डवों और युयुत्सु ने भी अपने लिए वहीं स्थान बना लिया।

"जैसे गर्भवती स्त्री अपने प्रिय भोजन का परित्याग कर, केवल गर्भस्थ बालक के हित का ध्यान रखती है, उसी प्रकार धर्मात्मा राजा को भी प्रजा का ही ध्यान रखना चाहिए। उसे चाहिए कि वह अपने प्रिय बन्धुओं के हित में नहीं, जनहित में कार्य करे।" भीष्म बोले, "जो अपराधियों को दण्ड देने में संकोच नहीं करता और सदा धैर्य रखता है, उस राजा को कभी कोई भय नहीं होता।"

"आप ठीक कहते हैं पितामह!" युधिष्ठिर बोले, "किन्तु मेरे मन में अनेक शंकाएँ हैं। मैंने अपने लोभ में अपने भाई–बन्धुओं को नष्ट करवा दिया। आप सोचिए, मैंने छल से आपका वध किया, अपने सहोदर महावीर कर्ण को भी मरवा दिया।..."

"कर्ण तुम्हारा सहोदर कैसे था?" भीष्म ने कुछ चौंक कर पूछा।

"वे माता कुन्ती के ही कानीन पुत्र थे।" युधिष्ठिर ने धीरे से बताया।

"किन्तु कुन्ती ने तो यह कभी नहीं बताया।"

"माता सत्यवती ने भी तो कभी नहीं बताया था कि मैं उनका पुत्र हूँ।" वेदव्यास ने कहा।

"तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ युधिष्ठिर?" भीष्म ने पूछा।

"माता ने ही बताया।" युधिष्ठिर बोले, "जब हम स्वजनों और आर्य वीरों को जलांजलि दे रहे थे तो माता कुन्ती शोक से कातर हो, रोती हुई मन्द वाणी में बोली "पाण्डवो! कर्ण को भी जलांजलि दो। वह तुम्हारा बड़ा भाई था। वह सूर्य का अंश था और मेरी कन्यावस्था में मेरे ही गर्भ से उत्पन्न हुआ था।" युधिष्ठिर रो पड़े, "द्यूतसभा में मैं कर्ण के पैरों की ओर देखता था तो उनके प्रति मेरा रोष शान्त हो जाता था। कर्ण के दोनों पैर एकदम माता कुन्ती के चरणों के सदृश्य थे। मैं प्रायः सोचता था कि माता के चरणों और कर्ण के पैरों में इतनी समानता क्यों है? मैं क्या जानता था कि वे माता की ही सन्तान हैं।..."

"यदि कुन्ती कहती है तो वह तुम्हारा सहोदर ही था; किन्तु तुम भूलते हो कि बाल्यावस्था से ही भीम का बल, अर्जुन की स्फूर्ति, तुम्हारी बुद्धि, नकुल और सहदेव की विनय, अर्जुन और कृष्ण की मैत्री और पाण्डवों के प्रति प्रजा का अनुराग देख कर ईर्ष्या से जल उठता था। इसीलिए उसने बाल्यावस्था में ही दुर्योधन के साथ मित्रता कर ली थी।..."

'तब वे नहीं जानते थे कि हम उनके भाई हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

'और मरते समय वह यह जानता था या नहीं ?"

'जानते थे।"

'फिर भी वह तुम्हारा शत्रु बना रहा।" भीष्म बोले, 'क्यों द्वेष करता रहा वह तुम लोगों से अन्त तक ?"

"दैववश...।" युधिष्ठिर बोले।

'और स्वभाववश भी। वह अपने स्वभाव से बाध्य था।' भीष्म बोले, "तुमने कभी पूछा कुन्ती से कि अन्त तक उसने तुम से यह रहस्य क्यों छुपाये रखा ? माँ होकर भी अपने एक पुत्र को दूसरे पुत्र के हाथों मरने क्यों दिया?"

'पूछा था।" युधिष्ठिर बोले, "मैंने कहा था, "यह क्या किया माँ ! यदि कहीं तुमने पहले ही बता दिया होता तो यह युद्ध ही क्यों होता ?" उन्होंने कहा, "इसीलिए तो तुम्हें बताया नहीं पुत्र !" मैंने पूछा, "आप चाहतीं थीं कि वे मारे जाएँ ?"

'तो क्या कहा कुन्ती ने ?" भीष्म ने पूछा।

'उन्होंने कहा, नहीं ! पर मैं चाहती थी कि कौरव दण्डित हों। कर्ण को बचाने के प्रपंच में मुझे दुर्योधन बचता दिखायी देता था।" धर्मराज बोले, "और माँ ने कहा कि 'पांचाली का अपमान कर कर्ण भी वध्य हो गया था। मेरा पुत्र था तो क्या। एक पापी पुत्र की रक्षा करना मेरा दायित्व था या न्याय और धर्म की स्थापना के लिए, उसे और उसके मित्रों को यमराज की भेंट करना ?"

'तो पुत्र ! अब इससे अधिक कोई और तुम्हें समझा भी क्या सकता है।" भीष्म मौन हो गये, "सहसा उन्होंने आँखें खोलीं और बोले, "इस द्वन्द्व में तुम अकेले ही तो नहीं हो। मुझे लगता है कि मैंने भी आजीवन इसी द्वन्द्व को झेला है और श्रीकृष्ण भी आज तक उसी द्वन्द्व को जी रहे हैं।'

'केशव ?" सारे पाण्डव चकित थे।

'आश्चर्य हुआ।" कृष्ण मुस्कराये, "यह आज से नहीं है, उसी दिन से है, जिस दिन मैं मथुरा आया था। मैं अपनी प्रभुता प्रकाशित करके अपने सजातियों और कुटुम्बियों को अपना दास बनाना नहीं चाहता। मुझे जो भोग प्राप्त होते हैं, उनका आधा ही भाग अपने उपभोग में लाता हूँ। शेष कुटुम्ब के लिए छोड़ देता हूँ; और उनकी कड़वी बातें सुनकर भी उनको क्षमा कर देता हूँ। इन कुटुम्बीजनों के कटु वचन मेरे हृदय को सदा मथते और जलाते रहते हैं।"

'केशव ! आपको भी कोई कटुवचन कह सकता

दुर्व्यवस्था बदल दो

– डॉ० विन्ध्याचल पाण्डेय 'सुमन'

नौजवानों होश में आओ, अभी से दखल दो।
नूतन व्यवस्था दो, न दो, तुम दुर्व्यवस्था बदल दो।।

शिव–शक्ति युक्त, समर्थ तुम–
संसार में सबसे प्रबल।
तुम सच्चरित्र, पवित्र बन,
सद्भावनाएँ दो नवल।
पथभ्रष्ट जो तुमको करे, उन दुर्गुणों को मसल दो।

तुम आत्मबल सम्पन्न हो–
मिथ्या सहारे त्याग दो।
मानक झुकें कदमों तले–
वह साधना की आग दो।
आदर्श प्रति उत्पन्न हो, आवाज इतनी प्रबल दो।
नूतन व्यवस्था दो, न दो, तुम दुर्व्यवस्था बदल दो।। २।।

हों बाह्य अथवा आन्तरिक–
वैरी सदा हैं राष्ट्र के।
षड्यन्त्र में शामिल हुए–
युवराज फिर धृतराष्ट्र के।
पाण्डव बनो, तुम शकुनि के टुच्चे इरादे कुचल दो।
नूतन व्यवस्था दो, न दो, तुम दुर्व्यवस्था बदल दो।। ३।।

असहाय अबला जानकर,
बोली न इज्जत की लगे
इन्सानियत के शीर्ष पर–
कालिख न रिश्वत की लगे।
रुक जायें उठती अँगुलियाँ, तस्वीर इतनी धवल दो।
नूतन व्यवस्था दो, न दो, तुम दुर्व्यवस्था बदल दो।। ४।।

है आचरण विद्वान् का, आदर्श–
बन जाता स्वतः।
नवमूल्य की संस्थापना–
संघर्ष के परिणामतः।
चिन्तन करो, मन्थन करो, नव भावना के कमल दो।
नूतन व्यवस्था दो, न दो, तुम दुर्व्यवस्था बदल दो।। ५।।

– *(द्वारा) हिन्दू सेवा सदन चिकित्सालय,*
बाँस फाटक, वाराणसी

है ?" सहदेव ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

"क्यों ? शिशुपाल को भूल गये तुम ? दुर्योधन को मेरे विरुद्ध बोलते नहीं सुना ? बलराम भैया को मेरा विरोध करते नहीं देखा ?" कृष्ण अब भी मुस्करा रहे थे।

"वह तो है किन्तु आप असहाय तो नहीं हैं न !" अर्जुन ने कहा।

"अन्धक और वृष्णि वंश में बहुत से वीर हैं, वे अत्यन्त सौभाग्यशाली, महा बलवान और दुःसह पराक्रमी हैं। वे सबके सब सदा उद्योगशील भी बने रहते हैं। ये वीर जिसके विरोधी हों, उसका जीना कठिन है। जिसके पक्षधर हो जाएँ, उसका पराजित होना असम्भव है। किन्तु उन योद्धाओं का क्या उपयोग है मेरे लिए। अक्रूर और उग्रसेन ने आपस में वैमनस्य रखकर, मुझे इस प्रकार अवरुद्ध कर दिया है कि मैं इनमें से किसी एक का पक्ष नहीं ले सकता। यह जानते हुए भी कि आर्य सत्राजित के वध में अक्रूर का हाथ है और वही स्यमंतक मणि लेकर भाग गया है, मुझे उसे निमन्त्रित कर सादर द्वारका में बुलाना पड़ा। यह जानते हुए भी कि स्यमंतक मणि उसकी सम्पत्ति नहीं है, वह मणि उसे सौंपनी पड़ी और उग्रसेन को तो मैं त्याग ही नहीं सकता। आपस में लड़ने वाले उग्रसेन और अक्रूर, सात्यकि और कृतवर्मा– दोनों ही जिसके स्वजन हों, वह अपने द्वन्द्व का क्या समाधान करे ? मेरे सबसे बड़े सहायक मेरे अपने भाई बलराम मेरे विरोधी हो जायें तो... मेरी स्थिति तो दो जुआरियों की एक ही माता के समान है, जो एक की विजय चाहती है किन्तु दूसरे की पराजय नहीं चाहती। मैं दोनों सुहृदों में से एक की विजय की कामना करता हूँ तो दूसरे की पराजय नहीं चाहता।..."

"पर केशव ! आपके तो अपने ही परिवार में आपके इतने सहायक हैं।..." नकुल ने कहा।

"बलराम भैया में सदा से ही असीम बल रहा है। वे उसमें व्यस्त रहते हैं। जो उनकी इच्छा के विरुद्ध जाता है, उस पर उस बल का प्रयोग करने की बात सोचते हैं। यह आप सबने देख लिया है।" कृष्ण बोले, "गद में सुकुमारता है, अतः वह श्रम नहीं करता। प्रद्युम्न अपने रूप पर मुग्ध रहता है। इन सब बन्धुओं के होते हुए भी मैं एकाकी ही हूँ। न मैं उनकी सहायता ले सकता हूँ, न कर सकता हूँ।..."

"युधिष्ठिर ! सोचो मेरे पुत्र !" भीष्म बोले, "इसी प्रकार मैं सदा दोनों पक्षों का हित चाहने के कारण, दोनों ही ओर से कष्ट पाता रहा हूँ। दोनों की रक्षा करने का प्रयत्न करता रहा हूँ। परिणाम तुम्हारे सामने है।"

"पर मैंने तो आपका भी छल से वध कर दिया।" युधिष्ठिर की आँखों में पुनः अश्रु आ गये।

"तुमने क्या छल किया पुत्र ! छल तो मैंने अपने साथ किया। अपने प्राण तुम्हें सौंप दिये और दुर्योधन के पक्ष से युद्ध करने लगा।" भीष्म ने मुस्कराने का प्रयत्न किया, किन्तु शारीरिक पीड़ा ने उन्हें मुस्कराने नहीं दिया, "युद्ध के पहले ही दिन से तुम भी जानते थे और अर्जुन भी कि शिखण्डी के सामने आने पर मैं बाण नहीं चलाऊँगा, फिर भी तुम लोग दस दिनों तक शिखण्डी से मेरी रक्षा करते रहे। तुम्हारे स्थान पर दुर्योधन होता तो मैं पहले ही दिन इस स्थिति में पहुँच गया होता।" उन्होंने युधिष्ठिर की ओर देखा, "इसे छल कहते हो तुम ?" वे रुके, "यदि मैंने पाण्डवों और धार्तराष्ट्रों– दोनों को ही अपना स्वजन न माना होता, केवल धर्म का पक्ष लिया होता, तो कदाचित् इतना बड़ा नरसंहार न होता।"

"पितामह ! युद्ध करना आवश्यक नहीं था, आप वैसे भी तो दुर्योधन से उसका राज्य वापस ले सकते थे" सहदेव ने कहा।

"नहीं ले सकता था पुत्र !" भीष्म बोले, "तुम लोग नहीं जानते कि यादवों के इस संघ की कठिनाइयों की चर्चा जब श्रीकृष्ण ने नारद से की थी तो नारद ने समाधान के रूप में क्या कहा था।"

"क्या कहा था ?" युधिष्ठिर ने आतुर स्वर में पूछा।

"बताओ केशव ! क्या कहा था नारद ने ?"

"देवर्षि ने कहा था, 'अक्रूर और उग्रसेन से उत्पन्न हुई यह कष्टदायिनी आपत्ति, जो आपको प्राप्त हुई है, यादवों के अपने ही कृत्यों का परिणाम है। आपने जिनके नाम गिनाये हैं, वे सब आपके ही वंश के हैं। आपने स्वयं जिस ऐश्वर्य को प्राप्त किया था, उसे किसी प्रयोजनवश, स्वेच्छा से अथवा

कटुवचनों के भय से दूसरे को दे दिया। इस समय उग्रसेन को दिया गया वह ऐश्वर्य दृढ़मूल हो चुका है। अन्य लोग भी उनके सहायक हैं। आप उस दिये हुए ऐश्वर्य को उगले हुए अन्न की भाँति वापस नहीं ले सकते। अक्रूर और उग्रसेन के अधिकार में गये हुए राज्य को वापस लेने का प्रयत्न किया जायेगा तो यादवों में विकट फूट पड़ सकती है।... बड़े प्रयत्न से, अत्यन्त दुष्कर कर्म अर्थात् महान् संहार रूपी युद्ध करने पर राज्य वापस लिया जा सकता है, परन्तु उसमें धन का बहुत व्यय और असंख्य मनुष्यों का विनाश होगा। यदि यादव संघ में फूट पड़ गयी, तो समूचे संघ का विनाश हो जायेगा। इसलिए आप वैसा ही करें, जिससे यादव गणतन्त्र राज्य का मूलोच्छेद न हो जाये।"

'मेरी तो समझ में नहीं आता कि लोग कृष्ण की बातों का तिरस्कार कैसे कर सकते हैं।" भीम ने कहा।

'बुद्धि, क्षमा और इन्द्रियनिग्रह के बिना तथा धन वैभव के त्याग के अभाव में, कोई गणराज्य किसी बुद्धिमान व्यक्ति की आज्ञा के अधीन नहीं रहता है।" भीष्म बोले, 'पर क्या यादव आज अपने वैभव के त्याग और इन्द्रियनिग्रह के लिए सहमत हैं " नहीं। एक दम नहीं। श्रीकृष्ण कितना भी टाल लें किन्तु अन्त में उन्हें भी यादवों के प्रति कठोर होना ही पड़ेगा, जैसे कि तुम हुए। मैं नहीं हो पाया तो मैंने अपने प्राण दिये।" पितामह ने रुक कर युधिष्ठिर की ओर देखा, "मैंने प्राण इसलिए नहीं दिये कि तुम हठपूर्वक शोक को पकड़ कर बैठे रहो और हस्तिनापुर बिना राजा के रहे।'

"मैं राज्य कैसे करूँ।" युधिष्ठिर फिर विह्वल हो उठे, "मैं नगर में प्रवेश कर रहा था। भीम मेरा रथ हाँक रहा था। अर्जुन ने छत्र उठा रखा था। नकुल ने चंवर और सहदेव ने व्यजन। महाराज धृतराष्ट्र और माता गांधारी अपनी पालकी में मेरे आगे चल रहे थे। माता कुन्ती, द्रौपदी और कुरुकुल की अन्य स्त्रियाँ पीछे आ रही थीं। नगर के द्वार पर मेरे हितैषियों ने जलपूरित कलश और श्वेत पुष्प सजा रखे थे। हमारे पुरोहित धौम्य मुनि के नेतृत्व में ब्राह्मण समुदाय आगे चल रहा था। तब भी एक ब्राह्मण आया। उसके हाथ में अक्ष माला थी, मस्तक पर शिखा और त्रिपुण्ड। वह आकर निर्भय मेरे रथ के सामने खड़ा हो गया। बोला, "राजन्! नगर के सारे ब्राह्मणों के प्रतिनिधि के रूप में मैं तुम से कह रहा हूँ कि तुम अपने भाई बन्धुओं का वध करने वाले एक दुष्ट राजा हो। तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। तुम्हारे जैसे पुरुष के जीने का क्या लाभ? बन्धु–बान्धुवों का नाश कर, गुरुजनों की हत्या कर तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है, राज्य करना नहीं।"

"पितामह! वह चार्वाक था।" कृष्ण ने कहा।

किधर जा रहे...

– कृ० व० पौराणिक

किधर जा रहे कहाँ जा रहे? नहीं जानते चले जा रहे;
एक लक्ष्य सत्ता पर रहना, परम्परा को डुबो जा रहे।

(१)

वोटों खातिर हमने छोड़ा, वन्देमातरम् से मुँह मोड़ा,
जिसने प्रेरित किया युद्ध में, उसी मन्त्र से नाता तोड़ा,
साम्प्रदायिक हुआ आज है, क्यों हम भटके चले जा रहे?
किधर जा रहे कहाँ जा रहे।।

(२)

सरस्वती विद्या की माता, उसके वन्दन में बू आती;
धर्म निरपेक्ष बताते खुद को, बायकाट की नौबत आती;
विद्या से नाता तोड़ा है, बाढ़ कुविद्या बहे जा रहे;
किधर जा रहे कहाँ जा रहे।।

(३)

हिन्दू कहने में शरमाते, जड़ें सींचने से घबराते;
वृक्ष गिरेगा फल तुम जिसके, चेतो! क्यों अस्तित्व मिटाते?
हिन्दू एक मान्य संस्कृति है, उससे हम क्यों कटे जा रहे?
किधर जा रहे कहाँ जा रहे।।

(४)

हिन्दू तो जीवन शैली है, यह तो न्यायालय कहता है;
फिर भी राजनीति में दुर्जन, हिन्दू का शोषण करता है;
दुर्जन तो दुर्जन होते हैं, फिर न भला क्यों समझ पा रहे?
किधर जा रहे कहाँ जा रहे।।

(५)

सभी उतारू हमें काटने, हमला कई दिशा से चालू;
पहचानें हम खुद अपने को, बने हुए हैं हम क्यों भालू?
सिंह समान हमें रहना है, तभी लगे हम बढ़े जा रहे।
किधर जा रहे कहाँ जा रहे।।

(६)

यह मत भूलो देश हमारा, चाहे खण्डित भाग मिला है;
अपनी संख्या संस्कृति के बल, इसको हिन्दुस्थान कहा है।
शरणागत के हम रक्षक हैं, सदियों से हम किये जा रहे,
किधर जा रहे कहाँ जा रहे।।

– २०, नजर बाग, रतलाम–४५७००१

"तो अपनी मृत्यु के पश्चात् भी दुर्योधन अपना युद्ध लड़ रहा है।" भीष्म बोले, "चार्वाक राक्षस है जो ब्राह्मण के वेश में विचरण करता है।"

"आपने ठीक पहचाना आर्यश्रेष्ठ !" कृपाचार्य बोले, "दुर्योधन ने अन्तिम समय में हमें यह कहा भी था कि चार्वाक को सूचना दे देना कि मुझे किस प्रकार मारा गया है। वह मेरा प्रतिशोध लेगा।"

"तो अन्य ब्राह्मणों ने कुछ नहीं कहा क्या ?" पितामह ने पूछा।

"कहा क्यों नहीं।" कृष्ण बोले, "अन्य ब्राह्मणों ने स्पष्ट विरोध किया। वे बोले, "महाराज ! यह न हमारा प्रतिनिधि है और न ही यह हमारी बात कह रहा है। हम तो आपको यह आशीर्वाद देते हैं कि आपकी राजलक्ष्मी सदा बनी रहे।"

"अच्छा किया, उन ब्राह्मणों ने इतनी बात तो कह दी, अन्यथा होता यह है कि चार्वाक के मित्र तो बोलते हैं और बहुत ऊँचे स्वर में बोलते हैं, किन्तु धर्म के पक्षधर अपनी गम्भीरता, शालीनता अथवा भीरुता के कारण मौन रह जाते हैं।" पितामह बोले, "युधिष्ठिर ! तुम एक चार्वाक की आलोचना से इतने पीड़ित हो नगर के जो सारे ब्राह्मण तुम्हारे पक्ष में हैं, उनकी बात पर कान भी नहीं दे रहे हो। ऐसा मत करो पुत्र ! मन में ग्लानि मत रखो। दुर्योधन चला गया है; किन्तु उसकी परम्परा अभी शेष है और सदा रहेगी, इसलिए धर्म को भी अपना युद्ध निरन्तर चलाये रखना पड़ेगा। जाओ पुत्र ! शत्रु को मारो क्योंकि उसी से प्रजा सुरक्षित होगी।" उन्होंने कृष्ण की ओर देखा, "वासुदेव !"

"पितामह !" कृष्ण अपना कान उनके मुख के निकट ले आये।

"युधिष्ठिर का राज्याभिषेक कर दिया ?"

"हाँ पितामह !"

"युवराज किसे बनाया ?"

"मध्यम पाण्डव भीम युवराज हैं। आय-व्यय का दायित्व संजय को दिया है। वे ही देखेंगे कि कौन-सा कार्य पूर्ण हुआ है और कौन-सा अभी शेष है। नकुल सेना की गणना और पंजीकरण इत्यादि देखेंगे। उसके भोजन और वेतन का दायित्व सम्भालेंगे। शत्रुओं पर आक्रमण और दुष्टदलन का कार्य अर्जुन करेंगे। सहदेव सदा राजा के साथ रहेंगे और उनकी रक्षा के दायित्व का वहन करेंगे। महाराज धृतराष्ट्र और माता गांधारी की सेवा और देखभाल का दायित्व महात्मा विदुर, युयुत्सु तथा संजय को दिया गया है। दीन दुखियों और अपंगों के लिए आवास, भोजन तथा वस्त्र आदि की देखभाल महाराज युधिष्ठिर स्वयं कर रहे हैं।

"उचित ही किया वासुदेव !" भीष्म बोले, "आवास के लिए पाण्डवों ने कौन-सा स्थान चुना है ?"

"धर्मराज तो राजप्रासाद में रहेंगे। मध्यम पाण्डव भीम को दुर्योधन का राजमहल दिया गया है। अर्जुन, दुःशासन के भवन में निवास करेंगे। मैं और सात्यकि आजकल वहीं हैं। दुर्मर्षण के महल में नकुल हैं और सहदेव को दुर्मुख वाला महल दिया गया है।"

"आचार्य ! तुम को तो धर्मराज के व्यवहार से कोई कष्ट नहीं है ?"

"नहीं शान्तनुनन्दन !" कृपाचार्य बोले, "युद्ध में किया गया आचरण तो जैसे युधिष्ठिर को स्मरण ही नहीं है। वे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसे वे राजा और मैं राजकर्मचारी न होकर, वे गुरुकुल के ब्रह्मचारी हों और मैं गुरुकुल का आचार्य हूँ।"

"तुम प्रसन्न हो युयुत्सु ?"

"पितामह ! मेरा और महाराज धृतराष्ट्र का तो असाधारण सम्मान हो रहा है।"

"युधिष्ठिर ! सजातीय बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियों के समुदाय को स्पर्द्धा और ईर्ष्या के कारण, वश में करना असम्भव हो जाये, मित्र ही शत्रु हो जाये तो राजा को कठोर होना ही पड़ता है। तुमने कुछ भी अनुचित नहीं किया है। तुम सदा धर्म पर चलते रहे हो।" भीष्म बोले, "और एक बात सदा स्मरण रखो, जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है, और जहाँ धर्म है, वहीं जय है। अपनी ग्लानि से मुक्त होकर उत्साह को धारण करो पुत्र !"

"गंगानन्दन !" वेदव्यास आगे बढ़ आये।

भीष्म ने सिर उठाकर उनकी ओर देखा।

"मेरा विचार है कि युधिष्ठिर अब प्रकृतस्थ हो चुके हैं। श्रीकृष्ण आपकी सेवा में काफी बैठ चुके। अब

इन लोगों को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दीजिये।"

भीष्म सहमत लगे। बोले, "राजन्! अब तुम नगर में प्रवेश करो। चिन्ता का त्याग करो। अपने कर्तव्यों को राजकर्म मानकर उनको पूरा करो। क्षत्रिय धर्म में स्थित रह कर देवताओं और पितरों को तृप्त करो। तुम अवश्य कल्याण के भागी होगे। प्रजा को प्रसन्न रखो, मन्त्रियों को सान्त्वना दो। सुहृदों का सत्कारपूर्वक सम्मान करो। मन्दिर के आसपास के फले हुए वृक्ष पर, बहुत से पक्षी आकर आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे मित्र और हितैषी, तुम्हारे आश्रय में रह कर जीवन निर्वाह करें। यही मेरी कामना है।" वे रुके, "जब सूर्यनारायण दक्षिणायन से निवृत्त होकर, उत्तरायण पर आ जायें, तब मेरे पास आना।"

"तब?" युधिष्ठिर आगे कुछ बोल नहीं सके।

"मुझे संसार से विदा करने आना। मेरा प्रेतकर्म भी तुम्हें ही करना है।" भीष्म बोले, "मैं उस समय संसार से विदा होना नहीं चाहता, जब सूर्यास्त हो चुका हो, अन्दर बाहर अँधेरा हो, तेजोमयी प्रज्वलित अग्नि अपना तेज खोकर धुँधुआ रही हो, प्रसन्न और उल्लसित चन्द्रमा के स्थान पर कृष्ण पक्ष का क्षीण चन्द्रमा हो। मैं संसार से उस समय विदा होना चाहता हूँ, जब अग्नि अपने पूरे तेज से प्रज्वलित हो, सूर्य चमक रहा हो, शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा बढ़ रहा हो। आकाश निरभ्र और सुन्दर हो।"

"आप उत्तरायण में प्राण त्यागना चाहते हैं?" कृपाचार्य ने पूछा।

"हाँ! उत्तरायण में।" भीष्म बोले, "मैं उस समय विदा चाहता हूँ, जब मेरा मन प्रसन्न हो, निर्मल हो। मैं उस समय विदा होना चाहता हूँ, जब मेरी बुद्धि प्रकाशित हो रही हो। मैं अवसाद में, रोते हुए, आसक्ति के मेघों के अज्ञान में लिपटा हुआ, इस संसार से विदा होना नहीं चाहता। मैं मुक्त होकर यहाँ से जाना चाहता हूँ, ताकि लौट कर फिर न आना पड़े। आजीवन स्वयं को बाँधे रखा है, अब निर्बंध होकर जाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं प्रकृति के उत्तरायण की भी प्रतीक्षा करूँगा और अपने शरीर के उत्तरायण की भी।" वे रुके, "अब तुम जाओ पुत्र! बहुत सारे लोग तुम्हारी प्रतीक्षा में होंगे।"

वेदव्यास ने युधिष्ठिर को उठाया, कृपाचार्य ने उन्हें चलने का संकेत किया और कृष्ण ने भीष्म को प्रणाम कर, सबके लिए विदा की प्रक्रिया आरम्भ कर दी।

रथ में बैठने से पहले कृष्ण ने धर्मराज को भुजा से थाम लिया, "पितामह की बात पर विचार करें, धर्मराज!

गीत

- अशोक अंजुम

पल भर की मौज के लिए,
पाप हमने अनगिनत किये।
जाना था जहाँ नहीं
गये हम वहाँ,
मौन जहाँ रहना था
खोल दी जुबाँ;
बोझ क्यों न रहता सदा
शर्तों पर प्यार को जिये!
रचना था जिसे नहीं
कलम रच गयी,
नदिया में रहकर भी
प्यास बच गयी;
सुख से आकर खुद ही मिल गये
दुःख के, हाँ जी दुःख के हाशिये।
शुभ–लाभ कितने ही
द्वार पर जड़े,
काँच के महल अनगिन
कर लिए खडे,
मन–कुम्भ जितना भी भरा
बोला– "और, और, और चाहिए!"

– एफ–२३, नई कालोनी, कासिमपुर, अलीगढ़–२०२१२७

अग्नि यज्ञ की प्रतीक है और यज्ञ कर्म का। पितामह अन्त समय तक कर्म करते हुए जाना चाहते हैं। सूर्य बुद्धि का प्रतिनिधि है। जीवन के अन्तिम क्षण तक कर्म यज्ञ की ज्वाला जलती रहनी चाहिए। सतत कर्तव्य करते हुए मृत्यु आ जाये तो मनुष्य धन्य होता है। मन में ग्लानि रखने का कोई अर्थ नहीं है। पितामह ने अपने हाथों से इतने लोगों का वध किया है। वे भी तो सोच सकते हैं कि उनकी असमर्थता के कारण ही कौरवों का विनाश हुआ है। यदि वे धृतराष्ट्र अथवा दुर्योधन को नियन्त्रित कर पाते तो यह युद्ध होता ही क्यों। फिर भी वे मन में ग्लानि नहीं रखना चाहते, पूरे चन्द्रमा को देख कर जाना चाहते हैं। चन्द्रमा मन का, मन की भावना का प्रतिनिधि है। प्रसन्न मन से जाना चाहते हैं, क्योंकि वे अपना कर्म कर रहे थे। समरभूमि में गिरने के क्षण तक उनके हाथ में धनुष था,

फिर भी वे प्रसन्न हैं। अन्तिम समय तक हाथ से कोई कार्य होता रहे, भावना की पूर्णिमा चमकती रहे, हृदयाकाश में आसक्ति के मेघ न हों, बुद्धि सतेज रहे। ऐसा परम कल्याणकारी अन्त पाने के लिए, निरन्तर दक्ष रह कर अन्त समय तक लड़ते रहना होता है। एक क्षण के लिए भी मन में अशुभ भाव नहीं आने देना चाहिए।"

"मैं समझता हूँ केशव। पर मैं पितामह जैसा समर्थ नहीं हूँ।"

"पितामह समर्थ हैं। आपको उन पर विश्वास है?"

"क्यों नहीं।"

"तो फिर उनकी ही बात मानें, हम धर्म की ओर थे। पितामह अधर्म के पक्ष से लड़े, तो भी उनके मन में ग्लानि नहीं है, क्योंकि उन्होंने जिसे अपना धर्म माना, वही किया, जब स्वयं को असमर्थ अथवा अनावश्यक पाया, स्वयं को समरभूमि से हटा लेने का प्रबन्ध कर लिया। आजीवन स्वयं को बाँधे रखने वाले उस महापुरुष ने इस समय स्वेच्छा से स्वयं को मुक्त कर लिया। यही इच्छामुक्ति है। आप उनके ही आदर्श पर चलें। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बस इस बात को स्वीकार कर लें कि आपने केवल अपना कर्म किया। आपने कोई अपराध नहीं किया।"

"आप ठीक कह रहे हैं केशव!"

"तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का त्याग कीजिए।" कृष्ण बोले, "आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए नाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसलिए इस हताशा से स्वयं को बन्धनमुक्त कीजिये। धर्म किसी को बाँधता नहीं, वह मुक्त करता है। वह जीवन में अवसाद नहीं उत्सव लाता है। पितामह प्राण त्यागने के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, किन्तु उत्तरायण केवल मृत्यु के लिए ही नहीं होता, वह जीने के लिए भी परम उपयोगी है। आप जीवन के लिए अपने मन में उत्तरायण अवतरित करें।"

"आप सत्य कह रहे हैं केशव! पितामह और आपकी कृपा से मेरी दृष्टि निर्मल हो रही है।"

कृष्ण ने उनकी भुजा छोड़ दी और अपने रथ की ओर बढ़ गये। □

— १७५, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली–११००३४

बड़ी साँसति में पड़ी नागरी है–

बोडो भाषा की लिपि बदलने का ईसाई–षड्यन्त्र

असम की प्रमुख जनजाति बोडो भाषा की लिपि बदलकर ईसाई मिशनरी रोमन किये जाने का एक अर्से से षड्यन्त्र रचते आ रहे हैं।

यह षड्यन्त्र काफी पुराना है। सन् १९७४ में ईसाईयों की शह पर रोमन लिपि के समर्थकों ने जोरदार आन्दोलन चलाया, जिसमें १५ व्यक्ति मारे गये। इस आन्दोलन से केन्द्र सरकार की आँखें खुलीं, तो उसने १९७५–७६० ... में बोडो भाषा के लिए देवनागरी लिपि को मान्यता दी। उसके बाद से बोडो साहित्य सभा ने इसको स्वीकार किया और विद्यालयों में देवनागरी लिपि में बोडो भाषा पढ़ायी जाने लगी।

लेकिन हाल में फिर से देवनागरी–रोमन लिपि का विवाद खड़ा किया गया है। बोडो साहित्य सभा का तीन दिवसीय २४वाँ अधिवेशन गत फरवरी में बंगाई गाँव जिले के बंगाल डोबा में सम्पन्न हुआ था। इस अधिवेशन में देवनागरी के बदले रोमनलिपि अपनाने के लिए एक समिति बनायी गयी, जिसे इस पर अपना फैसला देने को कहा गया। ... बोडो भाषा की देवनागरी लिपि को बदलकर रोमन किये जाने का अधिवेशन के बीच में ही जबरदस्त विरोध भी हुआ है। देवनागरी लिपि के समर्थन में कराझार के एक विद्वान् प्रतिनिधि ने ईसाई मिशनरियों पर गम्भीर आरोप लगाते हुए कहा है कि रोमन लिपि की वकालत करनेवालों के पीछे ईसाई मिशनरी का हाथ है।

बोडो भाषा के विद्वान् अजित बासुमातारी ने बोडो भाषा पर रोमन लिपि थोंपने के प्रयास पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा है कि यह बोडो लोगों को भारतीय संस्कृति से अलग–थलग करने का षड्यन्त्र है। रोमन लिपि ग्रहण करने के पश्चात् मूल भारतीय साहित्य के पुराण, रामायण, महाभारत जैसे ग्रन्थों रवीन्द्रनाथ, लक्ष्मीनाथ, बेजबरुआ, विष्णु राभा, रदुमा राजीव जैसे साहित्यकारों की रचना से बोडो छात्र वंचित हो जायेंगे। □

यह विजय है नहीं, तो और क्या है?

– अजय मित्तल

दुविधाग्रस्त राजनीति का उदाहरण देखना हो, तो कांग्रेस की ओर नजर डालना लाभप्रद होगा। कारगिल में सैन्य–गुप्तचर–तन्त्र की विफलता के लिए वह देश के राजनीतिक नेतृत्व को दोषी ठहरा रही है; पर वहाँ हासिल की गयी विजय का श्रेय या उसका कुछ हिस्सा वह उसे देने को तैयार नहीं है; बल्कि अब तो कांग्रेसी नेता कुछ हफ्ते पहले की अपनी भुनभुनाहट त्यागकर साफ शब्दों में यह कहने लगे हैं कि अपनी ही जमीन को लड़ाई द्वारा हासिल करना कोई विजय नहीं है। इस अभियान के नामकरण "ऑपरेशन विजय" को वे भ्रमित करनेवाला बता रहे हैं। वैसे इस बिन्दु पर मुलायम सिंह यादव भी कांग्रेस से सहमत लगते हैं। रक्षामन्त्री के रूप में भारत के प्रतिरक्षा–सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अग्नि मिसाइल कार्यक्रम को अपनी पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार के 'नक्शे–कदम' पर चलकर फाइलों के नीचे दबा देने वाले इस बड़बोले राजनेता ने "ऑपरेशन विजय" नाम की सबसे पहले खिल्ली उड़ायी थी।

इन लोगों से यदि पूछा जाये कि कारगिल में भारतीय सेना ने विजय नहीं तो क्या पराजय हासिल की है, तब शायद वे बगलें झाँकने लगेंगे। विडम्बना यह है कि कारगिल की विजय को खारिज करनेवाले ये नेता उस पार्टी के हैं, जो १९४८ और १९६२ दोनों बार कश्मीर को विदेशी हमले से मुक्त नहीं करा सकी और जिसके तत्कालीन 'महानतम' नेता ने सवा लाख वर्ग किलोमीटर भारतीय जमीन पाकिस्तान तथा चीन के कब्जे में छोड़ दी। इन नेताओं की 'विजय' शब्द की जो समझ है, उसके हिसाब से केवल सिकन्दर, जूलियस सीजर और नेपोलियन जैसे आक्रमणकारी ही विजेता कहलाये जा सकते हैं, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त या शिवाजी नहीं, क्योंकि इन्होंने दूसरे देशों की जमीन सैनिक अभियान द्वारा नहीं कब्जायी, केवल अपनी जमीन ही विदेशियों से छीनी।

किन्तु भारतीय मनीषा और चिन्तन ने इन्हीं लोगों को विजेता मानकर इनकी विजय के प्रशस्तिगान गाये हैं। भारत के दो सर्वप्रमुख सम्वत् चलानेवाले महान् सेनानायक विक्रमादित्य ने अवन्ती (मध्य प्रदेश) को शकों से मुक्त कराया और उसके बाद उन्हें पूरी तरह पराजित कर भारत से खदेड़ दिया। उनकी वह महान् विजय ही विक्रमी सम्वत् के रूप में भारतीयों की स्मृति का दो हजार साल से स्थायी हिस्सा बनी हुई है। शालिवाहन ने विक्रमादित्य के १३५ साल बाद शकों की दूसरी लहर का सामना किया। उन्होंने महाराष्ट्र पर कब्जा जमाये बैठे शक क्षत्रप की दुर्गति बनाकर उसे भारत से बाहर कर डाला और इस विजय की स्मृति में शालिवाहन सम्वत् (शाके) का प्रवर्त्तन किया। विक्रमादित्य और शालिवाहन, दोनों ही शकों का पीछा करते हुए मध्य एशिया में उनके घर तक नहीं गये; पर भारतीय इतिहास में दो श्रेष्ठतम विजेताओं के रूप में उनका नाम दर्ज है।

भारत का चिन्तन दूसरे देशों पर बलात् कब्जा कर उन्हें गुलाम बनानेवाले "विजेताओं" को सदा हिकारत से देखता आया है। सिकन्दर, चंगेज या नेपोलियन उसके सोच के ढाँचे में फिट नहीं बैठते, न तो एक विजेता के रूप में, न ही अन्य किसी प्रकार से अनुकरणीय व्यक्तित्त्व के रूप में। पड़ोसी को जीने का मुक्त अधिकार देना, पर साथ–साथ अपने इसी अधिकार की प्राणपण से रक्षा करना, यही विचार भारत में प्रबल रहा है। इसलिए दूसरे की जमीन कब्जाना नहीं, पर अपनी जमीन छोड़ना नहीं, इस सोच ने हमारे इतिहास में विजय गाथाएँ अंकित कराने वाले सैकड़ों महापुरुष पैदा किये हैं। कांग्रेस के "विजय" शब्द सम्बन्धी विचार को यदि मान लिया जाये, तो राणा कुम्भा द्वारा गुजरात–विजय के उपलक्ष्य में चित्तौढ़गढ़ में बनाये गये "विजय स्तम्भ" का नाम बदल देना पड़ेगा। क्या यह देश इसके लिए तैयार होगा?

चन्द्रगुप्त मौर्य, पुष्यमित्र शुंग, खारवेल, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, स्कन्दगुप्त, हर्षवर्धन, यशोधर्मन्, बाप्पारावल, ललितादित्य मुक्तापीड, कृष्णदेवराय, राणा साँगा, राणा प्रताप, शिवाजी, लाचित बड़फूकन, मुसुनूरि नायक और रणजीत सिंह हमारे इन विजयवन्त पुरखों में से कौन है, जो विदेशी धरती पर विजय के झण्डे गाड़ने गया?

और ऐसा कौन भारतीय है, जो इनकी विजयों के वर्णन से गर्वोन्नत महसूस नहीं करता ? क्या इनकी ये सारी विजय गाथाएँ हिन्दुस्थान की ही जमीन पर नहीं लिखी गयीं ? और क्या कांग्रेस अंग्रेजों के कब्जे में गये भारत को पुनः प्राप्त करने के सफल प्रयत्नों को विजय मानने से इसलिए इंकार कर सकती है कि ये प्रयत्न, ये आन्दोलन, ये संघर्ष और ये जद्दोजहद इंग्लैण्ड में न होकर भारत की पवित्र भूमि पर हुए ?

कारगिल में हुई भारत की विजय न सिर्फ भारतीय सेना की दिलेरी, जो वस्तुतः दुनिया में अब एक किंवदन्ती ही बन चुकी है, की विजय है (यह इसलिए और ज्यादा प्रशंसनीय बन जाती है कि हिन्दुस्तानी फौज हथियारों तथा अन्य सैन्य उपकरणों के मामले में हमलावरों के मुकाबले उन्नीस थी। पिछले एक दशक में भारतीय सेना को उसकी ज्वलन्त आवश्यकताओं की पूर्ति से न सिर्फ वंचित रखा गया; वरन् उसके रोजमर्रा के रख–रखाव खर्च तक में कटौतियाँ की गयीं। फिर भी भौतिक संसाधनों के अभाव के कारण भारतीय सैनिक का मनोबल नहीं गिरता, एक बार पुनः सिद्ध हुआ है।), बल्कि यह भारतीय राजनय की भी अभूतपूर्व विजय है। इस प्रकार यह एक दोहरी विजय है, जिस पर भारतवासी शान से गर्व कर सकते हैं।

१९४८ में भारतीय सेना को पूर्ण विजय से वंचित रखने की दोषी भारतीय सरकार स्वयं थी। यह साल भारतीय राजनय की पराजय का शुरुआती साल भी माना जायेगा, जब भारत यू०एन०ओ० में कश्मीर मामला ले जाकर वहाँ अपना पक्ष ठीक तरह प्रस्तुत नहीं कर सका। १९६२ में सैन्य तथा राजनय दोनों पराजयों का कलंक भारत के माथे पर लगा। १९६५ में हमने युद्ध जीत लिया, पर शान्ति हार गये। ताशकन्द में हमने समझौते की मेज पर गुलाम कश्मीर के वे हिस्से पाकिस्तान को लौटा दिये, जिन्हें हम भारत का अभिन्न अंग कहते आ रहे थे, जिन्हें वापस लेने की सर्वसम्मत शपथ संसद् ने १९६३ में ली थी और जिन्हें जीतने के लिए सेना ने अगणित बलिदान किये थे। १९७१ में भी युद्ध जीता, पर शान्ति पुनः हारे और राजनय के मामले में तो लुटिया ही डुबो दी, जब संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने लगभग सर्वसम्मति से हमें प्रताड़ित किया। शिमला–समझौता इस प्रताड़ना तथा पृष्ठभूमि में राष्ट्रपति निक्सन के भारत–विरोधी तेवरों का नतीजा था, जिसमें भारत के हाथ कुछ नहीं लगा। कश्मीर में पाकिस्तानी हस्तक्षेप (लोकस स्टैंडाई) के किसी हक को मान्यता न देनेवाले भारत ने पश्चिमी दबाव में आकर अचानक कश्मीर को भारत–पाक के बीच द्विपक्षीय मसला स्वीकार कर लिया। यह पाकिस्तान की बेहतरीन कूटनीतिक विजय थी।

१९९९ में ऐसा पहली बार हो रहा है कि भारत सैन्य व राजनय दोनों क्षेत्रों की विजय का आनन्द ले रहा है। २६ मई को जब "ऑपरेशन विजय" शुरू हुआ था, अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य विशेषज्ञों ने आशंका जतायी थी कि भारत इसमें वैसा ही फँस जायेगा, जैसा रूस अफगानिस्तान में फँसा था; परन्तु पाँच हफ्तों में ही महत्त्वपूर्ण टाइगर हिल पर कब्जा स्थापित कर भारतीय रणबाँकुरों ने युद्ध में निर्णायक मोड़ ला दिया और दुनिया के सैन्य विद्वानों को गलत साबित कर दिखाया। इसी के साथ इस बार भारतीय राजनय की पराजय का पाँच दशक पुराना सिलसिला भी टूटा है। हालाँकि इसे कोई चमत्कार मान लेना अतिरंजना तथा वैश्विक स्थितियों का अति सरलीकरण होगा। लेकिन इस दोहरी विजय पर गर्व न कर उसे विजय मानने से ही इंकार कर देना, स्वतः स्फूर्त राष्ट्रीय संगीत में न सिर्फ विसंवादी कर्कशता प्रविष्ट कराना है, बल्कि अपने जाँबाज जवानों की वीरता का सीधे–सीधे अपमान करना भी है। कांग्रेस इस बारे में अपना मुँह बन्द रख देश की शायद कुछ सेवा ही करेगी। ☐

— ६७, खन्दक, मेरठ

अराल सागर सूख जाने के कगार पर

उजबेकिस्तान में कैस्पियन सागर के पूर्व में स्थित अराल झील, जो एक समय बहुत बड़ी होने के कारण आज इस ग्रह पर पर्यावरण असन्तुलन की विशाल समस्या का सामना कर रही है। करीब ४० वर्ष पहले मछलियों और जल के अन्य जीवों से भरपूर यह दुनिया की चौथी सबसे बड़ी झील थी। इसके चारों ओर पेड़ लगे हुए थे। स्परदर्य और अमुदर्य नाम की दो नदियाँ इसमें आकर गिरती थीं। दुर्भाग्य से जो नदियाँ इसमें जलापूर्ति करती थीं, उन्होंने अपना मार्ग बदलकर पूर्वी भूमि की ओर कर लिया। झील का पानी अब तट से सैकड़ों किलोमीटर दूरी तक चला गया है, जिससे जमीन बंजर हो गयी है। अब वहाँ पर घास का एक तिनका भी नहीं उग सकता। झील के सारे जन्तु तो मर गये और झील के चारों ओर के पेड़ भी सूख गये। यह अनुमान लगाया गया है कि २०१० ई० तक झील का अस्तित्व पूरी तरह समाप्त हो जायेगा। ☐

जीवन की साँझ में ...

- डॉ० (श्रीमती) जगन सिंह

[विदुषी लेखिका ने गत पचास वर्षों में पाश्चात्य–संस्कृति के बढ़ते प्रदूषित प्रभाव से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं का गम्भीर चिन्तन–परक जो विश्लेषण प्रस्तुत किया, है, वह हम सभी की चिन्ता का विषय होना अपेक्षित है। – सम्पादक]

मनुष्य मिलकर समाज बनाते हैं, फिर समाज के भीतर एक और समाज की तलाश क्यों? क्या इसलिए कि समाज उन उद्देश्यों की पूर्त्ति नहीं कर रहा, जिनके लिए उसका गठन किया गया था? अथवा परिस्थितियाँ इतनी बदल गयी हैं कि आदमी समाज के बने-बनाये ढाँचे में ठीक से बैठ नहीं पा रहा, इसलिए एक अलग और नया समाज बनाना चाहता है?

समाज के परम्परागत कार्यों में प्रमुख है मनुष्य को सामूहिक रूप से संरक्षण और सुरक्षा प्रदान करना। समाज के भीतर मनुष्य सम्बन्धों के सहारे रहता आया है। ये सम्बन्ध परिवार के भीतर भी होते हैं, बाहर भी। नाते-रिश्तेदारों के अलावा मैत्री और बन्धुत्व का भी एक रिश्ता होता है, जो किसी प्रकार के लेन–देन पर नहीं टिका होता। इसलिए इसके स्नेह–सूत्र कई बार इतने मजबूत होते हैं कि आजीवन नहीं टूटते। सम्बन्धों का अपनापन हमारी भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता है। मनुष्य अपने चारों ओर सम्बन्धों का इन्द्रजाल बुनता चला जाता है और इसके सम्मोहन में पड़कर पैसा कमाने के लिए कष्ट सहता है। स्वयं को सुविधाओं से वञ्चित रखकर परिवारजनों के लिए सुविधाएँ जुटाने में दिन–रात एक कर देता है। यह सिलसिला तब तक चलता रहता है, जब तक उनसे उसका मोह–भंग नहीं हो जाता। मोह–भंग की प्रक्रिया बड़ी धीमी होती है। आरम्भ में मनुष्य दूसरों की स्वार्थपरता को समझकर भी उसे अपनी गलतफ़हमी कह कर खुद को बहलाता है। इसी में कई साल निकल जाते हैं और एक दिन ऐसा आता है, जब यथार्थ के धरातल पर उतरकर यह जानना जरूरी हो जाता है कि उसके साथ चलनेवालों ने अपनी अलग दुनिया बसा ली है, जिसकी परिधि पर भी उसके लिए स्थान नहीं है। जिनके लिए वह त्याग करता आया था, उनके लिए अब वह अनचाहा व्यक्ति है, जिसे वे ढो रहे हैं, क्योंकि सच बताने का नैतिक साहस उनमें नहीं है।

मोहभंग परिवार के बाहर भी होता है। वे सब जिनकी सहायता करने में उसने स्वयं हानि उठायी थी,

---

भारत में मानव–मूल्यों की गिरावट में तेजी लाने का कारण भारत–विभाजन (१५ अगस्त, १९४७) की घटना को माना जाता है। भारत का विभाजन हुए बावन वर्ष पूरे हो गये हैं। उस समय मनुष्य के सामने अस्तित्व–रक्षा की चिन्ता मुख्य थी, इसलिए उच्चतर मानव–मूल्यों को भुला दिया गया। आज स्वतन्त्र भारत की तीसरी, कहीं–कही चौथी पीढ़ी तेजी से उम्र की सीढ़ियाँ चढ़ रही हैं; परन्तु मूल्यों में गिरावट उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी है। देश में समृद्धि आयी है; परन्तु एक विशेष वर्ग के लिए। दूसरा वर्ग गरीबी के गर्त में गिरता चला जा रहा है। नगरों में धन का केन्द्रीकरण हो गया है। पहले के वर्ग–विभाजन के कोष्ठक यदि वही रखे जायें तो आज पहले का निम्न वर्ग मध्य वर्ग के और पहले का मध्य वर्ग उच्च वर्ग के स्थान पर आयेगा। उच्च–मध्य वर्ग पिछले दो दशकों में पनपा है। पहले का उच्च वर्ग अब भी उच्च वर्ग है- अत्यन्त धनी और सुविधा सम्पन्न। यह वही वर्ग है, जो सरकार की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत बड़े व्यवसायी या फिर ऐसे उच्च पदासीन व्यक्ति आते हैं, जिनकी आय के कई स्रोत हैं। यही वह वर्ग है, जो बड़े पैमाने पर पाश्चात्य संस्कृति का आयात कर रहा है। शेष सब उसकी नकल करने में लगे हैं।

अपने हितों की अनदेखी की थी, वे अब उससे मिलने नहीं आते। कहीं मिल जाते हैं, तो औपचारिक–सा प्रणाम करके निकल भागने का रास्ता तलाशने लगते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो उसकी सन्तान से हाथ मिला लेते हैं क्योंकि वह बूढ़ा हो गया है और सत्ता का मजबूत सिरा लड़कों के हाथों में आ गया है।

मोहभंग कोई नई बात नहीं है। परम्परागत समाज में भी स्वार्थी और कृतघ्न मनुष्यों की कोई कमी नहीं थी; परन्तु सामाजिक ढाँचा इतना सुसंगठित था कि कोई भी व्यक्ति इस तरह अकेला नहीं था, जिस तरह आज है। अपनी सारी कमियों के होते हुए भी समाज मनुष्य पर चँदोवे की तरह तना रहता था। सामाजिक दबाव के चलते युवा–वर्ग बड़े–बूढ़ों की अवहेलना एक हद से बाहर नहीं कर पाता था। आज कोई किसी के सुख–दुःख में रुचि नहीं लेता। सब पैसा कमाने की चूहा–दौड़ में लगे हैं।

भारत मे मानव–मूल्यों की गिरावट में तेजी लाने का कारण भारत–विभाजन (१५ अगस्त, १६४७) की घटना को माना जाता है। भारत का विभाजन हुए बावन वर्ष पूरे हो गये हैं। उस समय मनुष्य के सामने अस्तित्व–रक्षा की चिन्ता मुख्य थी, इसलिए उच्चतर मानव–मूल्यों को भुला दिया गया। आज स्वतन्त्र भारत की तीसरी, कहीं–कही चौथी पीढ़ी तेजी से उम्र की सीढ़ियाँ चढ़ रही हैं; परन्तु मूल्यों में गिरावट उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी है। देश में समृद्धि आयी है; परन्तु एक विशेष वर्ग के लिए। दूसरा वर्ग गरीबी के गर्त में गिरता चला जा रहा है। नगरों में धन का केन्द्रीकरण हो गया है। पहले के वर्ग–विभाजन के कोष्ठक यदि वही रखे जायें तो आज पहले का निम्न वर्ग मध्य वर्ग के और पहले का मध्य वर्ग उच्च वर्ग के स्थान पर आयेगा। उच्च–मध्य वर्ग पिछले दो दशकों में पनपा है। पहले का उच्च वर्ग अब भी उच्च वर्ग है– अत्यन्त धनी और सुविधा सम्पन्न। यह वही वर्ग है, जो सरकार की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत बड़े व्यवसायी या फिर ऐसे उच्च पदासीन व्यक्ति आते हैं, जिनकी आय के कई स्रोत हैं। यही वह वर्ग है, जो बड़े पैमाने पर पाश्चात्य संस्कृति का आयात कर रहा है। शेष सब उसकी नकल करने में लगे हैं।

सामाजिक अवमूल्यन की प्रक्रिया में प्रचार–माध्यम विशेषकर दूरदर्शन (और दूरदर्शन के बहाने सरकार) की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार का अश्लील और हिंसक मनोरंजन हमारी फिल्में प्रस्तुत कर रही हैं, वह चिन्ता का विषय है। टेलीविजन भी मनोरंजन के नाम पर सेक्स, हिंसा और अपराध से भरपूर धारावाहिक दर्शकों के सामने परोस रहा है। दूरदर्शन के पचास प्रतिशत कार्यक्रम फिल्मों पर आधारित होते हैं और गीत–संगीत के बहाने दर्शकों तक पहुँचाये जाते हैं। आखिर किस प्रकार का समाज चाहती है हमारी सरकार? दूरदर्शन के प्रभाव से हमारी किशोर और युवा पीढ़ी की मानसिकता किस प्रकार प्रभावित हो रही है, यह सरकार में बैठे हुए लोग जानते हैं; परन्तु उनकी निगाह पैसे पर है, जो दूरदर्शन पर दिखाये जाने वाले विज्ञापनों से आता है। आरम्भ में रेडियो और दूरदर्शन "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" का उद्देश्य लेकर चले थे; परन्तु आज बड़े औद्योगिक घराने इसका प्रयोग "उपभोक्ता–संस्कृति" फैलाने के लिए कर रहे हैं। दर्शकों के मन में अनावश्यक जरूरतें जगाकर अपना माल बेचना और फिर नयी जरूरतें पैदा करना इसका उद्देश्य है। समाचार पत्र (मुख्य रूप से अंग्रेजी के) सौन्दर्य– प्रसाधनों, आभूषणों, घड़ियों, महँगे जूतों, परिधानों, होटलों, सैरगाहों और कारों पर विशेष सामग्री हर सप्ताह छापते हैं। कारों की चमकदार तस्वीरें देखिये, उनके गुणों का अध्ययन कीजिये और महँगी से महँगी कार खरीदने का सपना देखिये। सपने को सच में बदलने के लिए बैंक ऑफ अमेरिका, सिटी बैंक, कारों के व्यापारी और फाइनेंस कम्पनियाँ हाजिर हैं। बैंक में जाइये, उधार लीजिये और नयी कार में बैठकर घर जाइये। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि भारत जैसे गरीब देश में कारों की इतनी बड़ी मण्डी है।

सञ्चार माध्यमों द्वारा प्रचारित, प्रसारित विज्ञापनों के प्रभाव से हर व्यक्ति के सपने बहुत विस्तार पा गये हैं। सपनों को पूरा न कर पाने का असन्तोष और पूरा करने की होड़ मनुष्य को ईमानदार नहीं रहने देती। वैसे इस दौर में ईमानदारी की बात करना बेमानी लगता है, जब हमारे देश के पूर्व प्रधानमन्त्री से लेकर मुख्यमन्त्री, नेता और अनेक प्रशासनिक अधिकारी विभिन्न प्रकार के घोटालों और घूस काण्डों में लिप्त हैं। फिर भी ईमानदारी एक शाश्वत मूल्य है, इसलिए ईमानदारी के परिप्रेक्ष्य में बेईमानी की निन्दा की जाती है।

सञ्चार माध्यमों द्वारा प्रचारित, प्रसारित विज्ञापनों

के प्रभाव से हर व्यक्ति के सपने बहुत विस्तार पा गये हैं। सपनों को पूरा न कर पाने का असन्तोष और पूरा करने की होड़ मनुष्य को ईमानदार नहीं रहने देती। वैसे इस दौर में ईमानदारी की बात करना बेमानी लगता है, जब हमारे देश के पूर्व प्रधानमन्त्री से लेकर मुख्यमन्त्री, नेता और अनेक प्रशासनिक अधिकारी विभिन्न प्रकार के घोटालों और घूसकाण्डों में लिप्त हैं। फिर भी ईमानदारी एक शाश्वत मूल्य है, इसलिए ईमानदारी के परिप्रेक्ष्य में बेईमानी की निन्दा की जाती है।

दूरदर्शन के प्रसारण आम आदमी की बौद्धिक क्षमता को छीन कर उसके विवेक को भोथरा बना देते हैं। हर समय दूरदर्शन देखने–सुनने वाला व्यक्ति वही देखता है, जो उसे दिखाया जाता है, वही सुनता है, जो उसे सुनाया जाता है। इसमें सरकार का भी फायदा है। जनता को दिमागी तौर पर बौना करके एक दिशा में चलाते रहो ताकि वह सरकार की कारगुजारियों के बारे में सोचे ही नहीं।

आर्थिक उदारीकरण के कारण पाश्चात्य संस्कृति के आयात में भी हमारा देश बहुत उदारता से काम ले रहा है। जनता को योजनाबद्ध तरीके से अन्धी गली में ढकेला जा रहा है। आर्थिक उदारता की नीति के चलते बड़े व्यावसायिक घरानों और विदेशी कम्पनियों को बेलगाम–सा कर दिया गया है। विदेशी कम्पनियाँ भारतीय उद्योग–धन्धों को चौपट करके अपना व्यापार बढ़ायेंगी। यहाँ से पैसा बटोरकर अपने देशों को भेजेंगी। रोजगार बढ़ाने और समृद्धि के सपने पूरे नहीं होंगे; पर सपने लगातार दिखाये जायेंगे। विकसित देश हमारी पीठ ठोंक रहे हैं और बकौल कवि धूमिल **'वे जिसकी पीठ ठोंकते हैं, उसकी रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है।'**

तकनीक विकास और भारी पैमाने पर औद्योगीकरण ने एक ओर पर्यावरण को दूषित किया है, दूसरी ओर औद्योगिक महानगरों में निरन्तर बढ़ती आबादी ने आवास और दूसरी मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्त्ति की विकट समस्या को जन्म दिया है। उद्योग शहरों में केन्द्रित हैं, इसलिए गाँवों के लोग शहरों में आकर बस रहे हैं। कुटीर उद्योगों का विकास देहातों में हो सकता था; परन्तु आजादी के बाद के पचास वर्षों में किसी सरकार की इसमें रुचि नहीं रही। केन्द्र और राज्य सरकारों ने किसानों की जमीनें, खरीद कर विशाल पैमाने पर कालोनियाँ बसायी हैं। इन कालोनियों में जरूरतमन्द लोगों ने मकान बनवाये और फ्लैट खरीदे हैं; परन्तु जिन्हें जरूरत नहीं थी, उन्होंने भी खरीद लिये हैं। उपभोक्ता–संस्कृति के प्रभाव से मनुष्य ने सन्तोष धन खो दिया है, इसलिए उसकी भूख बहुत बढ़ गयी है। संयुक्त–परिवार टूटने के बाद से परिवार की हर इकाई को अलग मकान चाहिए। जिन्हें नहीं चाहिए, वे सस्ते में फ्लैट खरीद कर महँगे दामों में बेच कर पैसा कमा रहे हैं। अचल–सम्पत्ति का क्रय–विक्रय करानेवाले दलालों की एक बहुत बड़ी जमात इस बीच खड़ी हो गयी है। बड़े–बड़े भवन निर्माता भी कालोनियाँ बना रहे हैं। उधर किसानों की मानसिकता में अभूतपूर्व बदलाव आया है। जमीनों के एवज में उन्हें बहुत अधिक पैसा मिला है। इसलिए गाँवों में कारें, कीमती घड़ियाँ, महँगे परिधान, बिजली के महँगे घरेलू उपकरण और शान–शौकत की दूसरी वस्तुएँ आ गयी हैं। महानगरों के समीप के देहातों में घरों में छोटे–मोटे कारखाने खुल गये हैं। किराये की आमदनी और जमीन के मुआवजे का

हिन्दी साहित्यकारों द्वारा कारगिल के बलिदानी वीरों को श्रद्धांजलि

अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, दिल्ली प्रदेश के तत्त्वावधान में गत १६ जुलाई, १६६६ को दिल्ली के हिन्दी साहित्यकारों ने इण्डिया गेट स्थित 'अमर जवान ज्योति' के सम्मुख कारगिल युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए भारतीय सैनिकों एवं सेनानायकों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, दिल्ली प्रदेश के अध्यक्ष डॉ० कमल किशोर गोयनका ने इस अवसर पर 'श्रद्धाञ्जलि प्रस्ताव' का वाचन किया और सभी साहित्यकारों ने 'कारगिल के हुतात्मा वीरों को शत शत नमन' का उद्घोष किया। इस कार्यक्रम में डॉ० कमल किशोर गोयनका के साथ डॉ० नरेन्द्र कोहली, जीतसिंह 'जीत', डॉ० देवेन्द्र आर्य, योगेन्द्र अग्रवाल, धर्मप्रकाश गुप्त, अनिल जोशी, नरेश शाण्डिल्य, कवि कमल, राजेन्द्र जैन आदि अनेक साहित्यकार उपस्थित थे। बाद में वहीं लॉन पर बैठकर कवियों ने हुतात्मा शूरवीरों की स्मृति में देश–प्रेम एवं वीर–रस की कविताओं का पाठ किया। ◘

पैसा घर में आ जाने के कारण देहात के युवक काम-धंधे में रुचि नहीं लेते। बहुत से युवक नशे की चपेट में आ गये हैं। असामाजिक तत्त्वों ने गाँवों में जाल फैलाना शुरू कर दिया है। महानगरों के आसपास के गाँव औद्योगिक मलिन–बस्तियों में तब्दील हो गये हैं। गाँव का भाईचारा नष्ट हो रहा है। आबादी कई गुना बढ़ गयी है। मलिन–बस्तियों में शहरों के शेष भागों से अधिक गन्दगी और प्रदूषण है।

दूरदर्शन के कारण परिवार के सदस्यों के बीच संवाद कम हो गया है। दूरदर्शन का परिवार निम्न और मध्यवर्ग के परिवार पर हावी हो गया है। परिवार के भीतर भी हँसी–खुशी, गीत–संगीत, प्यार का गुनगुनापन जैसे सब कुछ किसी ने हर लिया है। परिवार के सदस्य आपस में बात करते हैं, तो दूरदर्शन की भ्रष्ट भाषा बोलते हैं। दूरदर्शन के प्रभाव से बच्चे आक्रामक हो गये हैं, किशोर जिद्दी और युवा उद्दण्ड। वे सिर्फ अपने लिए सब कुछ चाहते हैं। कर्त्तव्य की भावना से शून्य युवा केवल अधिकार चाहते हैं। अधिकारों का अर्थ उनके लिए माता–पिता से पैसा ऐंठना, महँगे वस्त्र और जूते पहनना और अपने लिए तगड़े जेब खर्च की माँग करना है, भले ही परिवार की हैसियत इसके अनुकूल न हो। पढ़ाई–लिखाई की उन्हें चिन्ता नहीं है। उनके शौक हैं– लड़कियों से दोस्ती करना, उन्हें घुमाना–फिराना, खिलाना–पिलाना और भेंट देना वगैरह। घर में अगर कार है, तो लड़का लड़–झगड़ कर उसे हथिया लेता है। माता–पिता चाहे बस की सवारी करके दफ्तर जायें। उच्च–वर्ग के युवक कमर में सेलुलर फोन और पेजर लटका कर लड़कियों पर रौब गालिब करते हैं। मध्यवर्ग के लड़के भी वैसा ही करना चाहते हैं, इसलिए माता–पिता पर इसके दबाव बनाये रखते हैं। लड़कियाँ सिनेमा की अभिनेत्रियों अथवा दूरदर्शन सीरियलों की नायिकाओं जैसी दिखना चाहती हैं, इसलिए उनके खर्चे हैं– ब्यूटी सैलून जाकर अपना व्यक्तित्व निखारना, ऐसे वस्त्र पहनना, जो शरीर को ढकें कम दिखायें ज्यादा। विभिन्न प्रकार की पोशाकें, जूते, आभूषण, घड़ियाँ और परफ्यूम (सुगन्ध) खरीदना। सहेलियों के सामने वे डंके की चोट पर अपने पुरुष–मित्रों का बखान करती हैं। तन कर चलती हैं और जिन्होंने उनके जैसी उपलब्धियाँ हासिल नहीं कीं, उन्हें मूर्ख और पिछड़ा हुआ समझती हैं।

महिला मित्रों और पुरुष मित्रों के मामले में आधुनिक बहन–भाई आपस में उदारता से पेश आते हैं। माता–पिता को एक दूसरे का राज नहीं बताते और यदि उन्हें किसी प्रकार पता चल जाये, तो दोनों मिलकर उन्हें नीचा दिखाने का पूरा प्रयत्न करते हैं। माता–पिता पर दोहरी मार पड़ती है। पुराने विचारों के हों, तो घर में तनाव और कलह निरन्तर बनी रहती है। आधुनिक होने का ढोंग करें, तो लड़के–लड़कियों के मित्र घर पर धावा मारने लगते हैं और घर हुड़दंग का अड्डा बन जाता है। घर के साथ–साथ उनकी बाहरी जिन्दगी उसी तरह चलती रहती है। माता–पिता निरन्तर अकेला और असहाय अनुभव करते रहते हैं।

युवकों की तुलना में युवतियों के माता–पिता अधिक चिन्ताग्रस्त रहते हैं कि कहीं पैर ऊँचा–नीचा पड़ गया, तो क्या होगा; परन्तु लड़कियों को इसकी चिन्ता नहीं है। गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम १९७१ उनकी सहायता करता है। उक्त अधिनियम की कानूनी व्याख्या जो कुछ भी हो, निजी क्लीनिक और अस्पताल पैसा लेकर उनकी समस्या का समाधान कर देते हैं।

घर के बुजुर्गों की स्थिति माता–पिता से भी बदतर है। अति आधुनिकता उनसे देखी नहीं जाती और बोलने पर बेटा–बहू मना करते हैं कि ये जिम्मेदारियाँ उनकी हैं। दादा–दादी की जिम्मेदारियाँ बेटों–बहुओं तक थीं। अब बेटे अपने बेटों को देखेंगे। वे क्यों चिन्ता करते हैं? अपने ही घर में मुसाफिर बने हुए माता–पिता अपमानित और अकेला अनुभव करते हैं।

बेटा–बहू अकेलापन अनुभव न करते हों, ऐसा नहीं है। विवाह के पश्चात् सन्तान माता–पिता के साथ नहीं रहना चाहती, चाहे उनका व्यवहार बहू के प्रति कितना ही उदार और स्नेहपूर्ण क्यों न हो। अकेले, आजाद और अपनी मर्जी के मालिक होने की चाहत उन्हें माता–पिता से दूर ले जाती है। आर्थिक आधार सुदृढ़ न होने पर वे पैतृक घर में भी अलग चूल्हा जलाने की इच्छा रखते हैं। अलग रहते हुए वे ऐसी विषम स्थितियाँ पैदा करते हैं, जिससे माता–पिता के मर्म पर चोट लगे। उदाहरण के लिए बच्चों को दादा–दादी के पास न जाने देना। सामने पड़ जाने पर मुँह दूसरी ओर करके निकल जाना, पिता के मित्रों को न पहचानना। पता भी चल जाये कि दोनों में से कोई एक अथवा दोनों ही बीमार हैं, तो भी हालचाल पूछने न आना आदि। साथ ही बेटा–बहू निरन्तर इस प्रयास में रहते हैं कि किसी दूसरे शहर में नौकरी मिल जाये तो प्रस्थान कर जायें अथवा विदेश चले जायें।

मकान पिता ने बनवाया है, गाड़ी और रख–रखाव भी उनका है, फिल्मी बेटा–बहू की नाराजगी का हिसाब नहीं मिलता। साथ रहें तो बहुएँ मनहूसियत बिखेरती रहती हैं और बेटे मौनी बाबा का स्वाँग धारण किये रहते हैं। अलग रहें तो भी मुक्ति नहीं। अपने ही घर में प्रतिद्वन्द्विता झेलते मध्य और उच्च मध्य वर्ग के माता–पिता हर दिन पहले से ज्यादा अकेले होते जाते हैं। सन्तान मन में निश्चिन्त रहती है कि माता–पिता के बाद सम्पत्ति उन्हीं को मिलेगी, चाहे वे उनसे कैसा भी व्यवहार क्यों न करें। भारतीय माता–पिता की मानसिकता भी उन्हीं के अनुकूल बैठती है। कपूत हैं तो क्या हुआ, पूत तो है। मृत्यु के बाद तो इसी को सब कुछ करना है। परलोक की चिन्ता में वे इस लोक को स्वाहा किये रहते हैं।

एक वर्ग उन अधेड़ अथवा वृद्ध माता–पिता का है, जिनकी सन्तानें विदेशों में जाकर बस गयी हैं और जिनकी देश–वापसी की कोई सम्भावना नहीं है। वहाँ पैसा कमाकर वे माता–पिता के लिए बँगला बनवा देते हैं। दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई अथवा कलकत्ता जैसा महानगर हुआ, तो किसी बहुत अच्छी कालोनी में फ्लैट खरीद देते हैं और सुख–सुविधा के साधन एकत्रित कर देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से पैसा भेज देते हैं। साल–दो साल में एक बार आकर मिल जाते हैं। कभी-कभार उन्हें भी बुला लेते हैं। धीरे–धीरे यह सिलसिला कमजोर पड़ जाता है। पत्रों और तस्वीरों के सहारे जीने वाले ये वृद्ध बाहर अपनी सन्तान की प्रशंसा करते हैं; परन्तु मन के भीतर बहुत अकेले और भयभीत होते हैं। वे अपने नौकरों तक से डरते हैं कि पैसे के लालच में उन्हें कहीं मार न डालें अथवा कहीं चोरों को न न्योत आयें।

अविवाहित, विधुर अथवा परित्यक्त पुरुष और महिलाएँ परिवार न होने अथवा परिवार टूट जाने की खिन्नता मन में लिए हुए अकेलापन अनुभव करते हैं। मध्यवर्ग और उच्च–मध्य वर्ग में एक पीढ़ी ऐसी भी है, जिसने छुटपन में अपने माता–पिता से मार खायी थी और आज अपने पुत्रों से मात खा रही है। इनके अनकहे दुःख का ओर–छोर नहीं है। इनमें से अधिकांश उच्च पदों पर आसीन हैं और उनके पुत्रों की हैसियत उनके सामने कुछ भी नहीं है।

अकेले रहने वाले वृद्ध धीरे–धीरे स्थायी रूप से उदास रहने लगते हैं। तीज–त्यौहारों पर अकेलापन उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। उनकी अपनी सन्तान और रिश्तेदार उनका भावनात्मक शोषण करते हैं। कभी–कभार बुजुर्गों से मिलने आने के पीछे उनका उद्देश्य होता है– खाना–पीना, समय–समय पर आशीर्वाद के बहाने उपहार अथवा पैसे लेते रहना, उधार के बहाने रुपया माँगना अथवा आर्थिक कठिनाइयों का ब्यौरा बिना पूछे पेश करते रहना, ताकि वे स्वयं ही कुछ दे दें। वृद्ध भी उनकी मंशा को समझ रहे होते हैं। फिर भी उनके साथ की कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। बीमार होने पर वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। बड़े नगरों में कई दिन तक किसी को पता नहीं चलता। पता चलने पर रिश्तेदार एकाध चक्कर लगाने के बाद व्यस्तता का बहाना ढूँढ़ लेते हैं। नौकर (यदि हों तो) अलग से उनका शोषण करने लगते हैं। वे अपनी मर्जी के मालिक बन जाते हैं। पड़ोसी नर्स और डॉक्टर की व्यवस्था कर सकते हैं; परन्तु पड़ोसियों से अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। फिर पड़ोसी भी तो आधुनिकता के मारे हुए हैं। चूहा–दौड़ में पिछड़ना कौन चाहता है ? किसी परिचित अथवा मित्र ने नर्सिंग होम अथवा अस्पताल पहुँचा भी दिया तो इलाज कैसा हो रहा है इस पर निगाह कौन रखेगा ? बाहर से दवाइयाँ तथा जरूरत की अन्य सामग्री समय पर कौन पहुँचायेगा ? बीमार की असहाय अवस्था और उसके अकेलेपन को कौन बाँटेगा ? बीमारी साधारण हो और जल्दी ठीक हो जाये तो कई बार धाकड़ किस्म के वृद्ध अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा बेचकर आराम से रहने की बात सोचने लगते हैं और अपने इरादे को कार्यान्वित भी करते हैं; परन्तु तब तक उनके लड़के आविर्भूत हो जाते हैं और उनके इरादों पर पानी फेर देते हैं। माता–पिता में से यदि माँ का देहान्त हो जाये तो वे पिता को घर–द्वार बेचकर अपने साथ रहने के लिए आमन्त्रित करते हैं। पिता का देहान्त हो जाये तो माँ चाहे अथवा न चाहे, वे मकान, जमीन आदि बेचकर माँ के चरणों की सेवा करने के लिए उसे अपने घर ले आते हैं। इसके बाद के हालात तो माँ ही बता सकती है। यदि वह अनपढ़ अथवा अर्द्ध–शिक्षित हुई तब तो दूसरों को बताकर मन हल्का कर लेगी; परन्तु

यदि पढ़ी–लिखी हुई तो बाहर लड़कों के गुण गायेगी; परन्तु एकान्त में दिवंगत पति की तस्वीर अथवा देव–प्रतिमा के सामने बैठकर आँसू बहायेगी।

भरपूर जीवन जीने की ललक का आयु से कोई सम्बन्ध नहीं है। हर व्यक्ति चाहता है कि हँसी–खुशी के माहौल में रहे। उसकी शामें दोस्तों की बतकही से गूँजती रहें, सैर–सपाटे और यात्राएँ हों, हँसी–ठहाके हों। अधिक नहीं तो कोई एक घर ऐसा हो जहाँ बैठकर अपनेपन के बीच बेतकल्लुफी से बातें की जा सकें। सांस्कृतिक उत्सव और त्यौहार मिल–जुल कर मना सकें। अगर कभी बीमार पड़ें तो कोई यह विश्वास मन में जगाये कि "जल्दी से अच्छे हो जाओ। तुम्हारे बिना गप्प–गोष्ठी सूनी पड़ी है।" कोई इतना अकेला और ऐसा न हो कि उसे मनोचिकित्सक के पास जाना पड़े अथवा घबराकर आत्महत्या की बात सोचनी पड़े।

अकेलेपन और वार्द्धक्य की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर कई प्रकार के क्लब और सांस्कृतिक संगठन बनाये गये हैं। प्रौढ़ लोगों ने मिलकर 'सीनियर सिटीजन्स सोसाइटियाँ' भी बनायी हैं; परन्तु ये सब प्रयास अधूरे हैं। केवल सांस्कृतिक उत्सव मना लेना अथवा मौजमस्ती के लिए कभी–कभार एक जगह इकट्ठे हो लेना ही पर्याप्त नहीं है, जिन्दगी के कुछ दूसरे पहलू भी हैं। उन्हें भी दृष्टि में रखकर नये प्रयास करने की आवश्यकता है। महानगरों के आपाधापी से भरे हुए जीवन में जरूरत है समाज के भीतर अपने एक समाज की, जो दोस्ती की आधारभूमि पर टिका हुआ पूर्वग्रहों से मुक्त समाज हो। ऐसा समाज जो राष्ट्र के विकास में योगदान दे सके। □

– सी–४/८६/२, सफदरजंग, विकास क्षेत्र, हौजखास, नई दिल्ली–११००१६

जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध

आज दिल्ली के ईदगाह, कलकत्ता के टेंगरा, मुम्बई के देवनार, आन्ध्र के अल्‌कबीर, राजस्थान के मोरीग्राम जैसे भीमकाय राक्षसी कत्लखानों सहित छोटे–बड़े, वैध–अवैध ३६,००० कत्लखानों से पटी यह देवभूमि मरघट बन चुकी है। पशु–पक्षियों का भीषण संहार आज जिस गति से जारी है, उस हिसाब से १०–१५ वर्ष के अन्दर यह देश पशु–पक्षी विहीन हो जायेगा। पशुधन की प्रतीक गऊ यदि न रही, तो भारत की पहचान ही नहीं, वरन् उसका अस्तित्व ही मिट जायेगा।

आज ३,५०,००० पशु–पक्षी (जिसमें ५०,००० के लगभग गोवंश सम्मिलित है) प्रतिदिन मारे जा रहे हैं। पिछली शताब्दी में ८० प्रतिशत जंगल समाप्त हो जाने से अधिकांश वन्य–पशु–पक्षी नष्ट हो गये। भारी मात्रा में प्राकृतिक सम्पदा विनष्ट होने के कारण केवल भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण की चपेट में आ गया है।

धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष प्रदाता गोवंश हमारी संस्कृति का स्रोत एवं सुख–शान्ति का आधार है। आयुर्वेद गऊ पर ही आधारित है "गोभक्ति रहित राष्ट्र–भक्ति" निरर्थक है, इसीलिए पशु मात्र का प्रतीक गऊ बिना कोई शुभ कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। राजा दिलीप की अद्वितीय गोसेवा प्रताप से भगवान् राम को भी अवतार लेना पड़ा।

अरबों–खरबों की संख्या–बल वाला ऐसा सर्वश्रेष्ठ प्राणी गाय (बैल) आज नष्ट होते–होते कुछ करोड़ बचा है। वर्तमान समय में गाय आदि पशु–पक्षियों की रक्षा का दायित्व केवल कुछ एक संस्थाओं के कन्धों पर ही नहीं; वरन् सम्पूर्ण समाज का है। गोरक्षा को किसी कोने का विषय न समझकर अब शेष बचे गोवंश (पशुधन) को बचाना ही हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

आज पुनः गऊ माता गम्भीर संकट में है। यदि माँ कष्ट में रहेगी तो बेटे कभी सुखी नहीं हो सकते। गोभक्तों, महात्माओं, शिक्षाविदों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, राजनीतिज्ञों, विद्यार्थियों आदि से सुसज्जित यह १०० करोड़ पुत्रों वाली धरती स्वरूपा गोमाता अपने संकटमय प्राणों की रक्षा के लिए गुहार करते हुए आह्वान कर रही है कि समर्पित भाव से सक्रिय सहयोगी बनकर स्वरक्षा, देश रक्षा, गोहत्या बन्दी हेतु दृढ़प्रतिज्ञ होकर गोरक्षा का व्रत अपनाएँ–

"यह मत समझो क्रूर कृत्य का भागी केवल व्याध, जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध।"

निम्नलिखित गुरुवाणी से प्रेरणा लें–

"यहि आज्ञा देहु मोहि तुर्कन गहि खपाऊँ, गोघात का दुःख जग से मिटाऊँ।
एहि आस तुम पूर्ण करो हमारी, मिटे कष्ट गउअन, छुटे खेद भारी।।"

– दिनेश चन्द्र

भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिक भाषाएँ

- डॉ० शिव कुमार ओझा

[विद्वान् लेखक एयरोस्पेस इञ्जीनियरिंग विभाग, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालोजी, (आई०आई०टी०), पवई, मुम्बई के सेवा–निवृत्त प्रोफेसर हैं। – **सम्पादक**]

इस शीर्षक को देखकर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि हमने अपनी भाषाओं को वैज्ञानिक कैसे कह दिया जबकि साधारणतया यह ज्ञात है कि भाषाएँ विज्ञान नहीं हैं, परन्तु सन्देह हमें भी है कि हमने पाश्चात्य सभ्यता के दुष्प्रभाव में आकर कहीं अपने विवेक या विवेचन की क्षमताओं को इतना दुर्बल तो नहीं बना लिया, जिसके फलस्वरूप अपनी मातृभाषाओं को हम अवैज्ञानिक मान बैठे। हम यह भी सोचने लगते हैं कि इस अर्थवादी युग में जहाँ दुष्प्रचारों के भी सशक्त माध्यम हों, वहाँ हमारे संशयों के निवारण की चिन्ता किसे होगी ! कोई आशंका उचित है या अनुचित, इसका निर्णय तो अधिक बुद्धिमान् तथा अनुभवी जन ही कर पायेंगे, परन्तु हमें अपने सन्देहों या शंकाओं के निराकरण हेतु प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान हमें अपनी शंकाओं को निःसंकोच एवं स्पष्ट रूप से प्रकट करने को बाध्य करता है, इसलिए हम आरम्भ करते हैं यहाँ तीन शंकाओं से जो तीन प्रश्नों के रूप में नीचे के तीन अनुच्छेदों में व्यक्त की गयी है :–

किसी भी भाषा के अन्तर्गत आते हैं उसके अक्षर, शब्द, उच्चारण तथा वाक्य या पद। इस संसार में भिन्न-भिन्न अनेक भाषाएँ हैं और प्रत्येक में अनेकानेक अक्षर एवं शब्द हैं। हम कह सकते हैं कि यह संसार अक्षरों और शब्दों के जंगल से भरा पड़ा है और अभी भी यहाँ नये अक्षरों व शब्दों के आविर्भाव की सम्भावनाएँ निहित हैं। इस जंगल में से अक्षरों की खोज और शब्दों का निर्माण विश्व के प्रत्येक क्षेत्र या समुदाय के व्यक्तियों ने अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार ही किया है। अब प्रश्न उठता है कि किस क्षेत्र या समुदाय के मनुष्यों ने वैज्ञानिक रीति से इन अक्षरों को चुना और शब्दों का निर्माण किया, जिसके कारण एक समृद्ध, सुसंस्कृत एवं वैज्ञानिक भाषा का प्रादुर्भाव हुआ ? भाषा ही किसी संस्कृति का आधार, केन्द्र–बिन्दु अथवा आत्मा होती है।

अंग्रेजी पढ़े–लिखे पाश्चात्य सभ्यता में पले हुए व्यक्ति तर्क एवं साइंस (विज्ञान) में अधिक ही विश्वास करते हैं तथा उससे प्रोत्साहित होते रहते हैं। यह सर्वविदित है कि तर्क किसी न किसी भाषा में ही होता है तथा साइंस भी भाषा द्वारा ही व्यक्त की जाती है। अब प्रश्न उठता है कि जिस भाषा में वे तर्क करते हैं, वह भाषा ही स्वयं जब तर्क–संगत एवं वैज्ञानिक नहीं है, तब फिर उनके तर्कों एवं विज्ञान की प्रामाणिकता को कैसे उचित एवं समीचीन माना जाय ? जब आधार स्वयं ही अस्थिर हो, तब इस आधार पर बैठा हुआ कोई भी मनुष्य अपनी स्थिरता की बात करे, तो वह हास्यास्पद ही कहलायेगा। बात सरल है; परन्तु कभी–कभी यदि किसी सत्य को सरलता से व्यक्त कर दिया जाय, तो उसको शीघ्र समझ पाने में हमें कठिनाई हो जाती है; क्योंकि इसका अभ्यास नहीं है।

यह सच है कि भाषाएँ विज्ञान की श्रेणी में नहीं आती हैं; परन्तु क्या कारण है कि फिर भी "भाषा–विज्ञान" की पुस्तकों को पुस्तकालयों में देखा जा सकता है ? इस पहेली को बुझा पाने के पश्चात् यह सरलता से समझा जा सकता है कि देवनागरी लिपि की भाषाओं को हमने क्यों वैज्ञानिक कहा है, जबकि अन्य सभी भाषाएँ वास्तविक रूप से अवैज्ञानिक है।

ऊपर प्रतिपादित प्रश्नों का उत्तर देना ही इस लेख का तात्पर्य नहीं है; बल्कि साथ में मातृभाषा के प्रति अपने अन्य सहज विचारों को भी प्रकट करना है, जो कि हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान से जुड़े हैं। अपनी मातृभाषा को बचपन से ही जानने व बोलने के कारण उसके प्रति मोह होना स्वाभाविक है; परन्तु इस मोह की वास्तविक श्रद्धा एवं प्रेम में परिणति के लिए उसके लक्षणों (यानी अन्तर्निहित विशेष गुणों) का ज्ञान होना भी आवश्यक है। हिन्दी के प्रौढ़ विद्यार्थियों से हिन्दी के विषय में वार्तालाप करते ही मालूम हो जाता है कि अधिकतर वे हिन्दी के लक्षणों व विशेषताओं से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। उनके द्वारा केवल यह कह देना ही पर्याप्त नहीं है कि हमारी मातृभाषा बहुत अच्छी है तथा समर्थ है। इसके लिए प्रमाण भी प्रस्तुत

करने होंगे। यह हास्यास्पद ही होगा कि हम मातृभाषा के प्रचार की प्रगाढ़ इच्छा तो मन में सँजोएँ; परन्तु उसके महत्त्व एवं लक्षणों से हम स्वयं ही अपरिचित रहें। हमारे इस लेखन कार्य का एक आशय इन्हीं लक्षणों को उजागर करना है।

देवनागरी लिपि के अक्षर एवं शब्द क्यों अत्यन्त वैज्ञानिक और तर्कसंगत हैं, इस विचार को भी स्पष्ट किया गया है कि किसी भी भाषा की रचनाएँ लेखन कार्य की उपयोगिता या उपभोगिता की श्रेणी में आती हैं, यद्यपि कुछ रचनाएँ सारगर्भित एवं सात्त्विक प्रवृत्ति प्रदान करने वाली होती हैं। यदि दुर्भाग्यवश हम उपभोग की ओर ही आकर्षित होते रहे, तो इसके दुष्परिणामों का भी विवेचन करना आवश्यक है। हमारे पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित भाषा के प्रति अपने कर्त्तव्यों का भान भी हमें होना चाहिए। भारतीय भाषाओं में समाहित हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान के कुछ विशेष बिन्दुओं की चर्चा भी यहाँ करना अपेक्षित है।

इस लेख में देवनागरी लिपि के अक्षरों, शब्दों एवं भाषाओं पर विशेष रूप से विचार हुआ है। परन्तु लिपि के विषय में कोई विशेष चर्चा न होने के कारण इस लेख के तथ्य "सम्भवतः" अन्य सभी भारतीय भाषाओं के लिए भी चरितार्थ हो सकते हैं; इस "सम्भवतः" शब्द का प्रयोग अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति अपने अज्ञान के ही कारण हुआ है। अंग्रेजी व उर्दू को इस लेख के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं में गणना नहीं की है। प्रस्तुत लेख में कुछ स्थानों पर देवनागरी लिपि के अक्षरों व शब्दों की अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के अक्षरों व शब्दों से तुलना हुई है जो कि केवल तर्कों एवं प्रमाणों में प्रखरता लाने के लिए है। इसका उद्देश्य अन्य भाषाओं के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना या पूर्वाग्रह से नहीं है। हमने स्वयं कई दशकों तक अंग्रेजी की सेवा की है, कुछ वर्षों तक उर्दू व जर्मन भाषाओं को पढ़ा है तथा कई अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषा–भाषी हमारे परम मित्र हैं। भारतीय संस्कृति में किसी भी प्रकार के अहंकार को निकृष्ट घोषित किया गया है। यहाँ हमारी मान्यता है कि भारतीय, राष्ट्रीय, स्वदेशी एवं हिन्दू शब्द परस्पर पर्यायवाची हैं।

हमारा अक्षर विज्ञान

यहाँ पहले साइंस (विज्ञान) को परिभाषित करना उचित होगा। जनसाधारण से यदि पूछा जाये कि विज्ञान क्या है तो सम्भवतः उनका उत्तर होगा कि रेल, वायुयान, टेलीफोन, कम्प्यूटर, टेलीविजन इत्यादि वस्तुएँ विज्ञान की देन हैं। परन्तु इन्हीं को विज्ञान मान बैठना उचित नहीं है क्योंकि यह सभी वस्तुएँ स्वयं में विज्ञान नहीं हैं। यह सभी वस्तुएँ विज्ञान द्वारा प्रतिपादित नियमों या सिद्धान्तों को विविध उपायों या तकनीकों द्वारा प्राणियों के लिए उपयोगी बनाने के प्रयत्नों के प्रतिफल हैं। आधुनिक विज्ञान तो केवल नियम या सिद्धान्त बनाने की प्रक्रिया है। वस्तुओं को क्रमबद्ध करके उनका विश्लेषण या संश्लेषण करना तथा नियम बनाना आधुनिक विज्ञान को परिभाषित करता है। यही प्रक्रिया हमारे अक्षरों एवं शब्दों के निर्माण में चरितार्थ होती है, इसलिए ये वैज्ञानिक हैं जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा अधिक स्पष्ट किया गया है–

१. देवनागरी लिपि के अक्षर क्रमबद्ध ढंग से लिखे गये हैं, जिनका सुनिश्चित वर्गीकरण हुआ है। सबसे पहले अक्षरों को दो भागों में विभक्त किया गया है जो स्वर और व्यंजन वर्णों के अक्षर कहलाते हैं। तत्पश्चात् इन्हें वर्गों या पंक्तियों में क्रमबद्ध किया गया है। प्रथम पंक्ति या वर्ग में केवल स्वर वर्ण के अक्षरों का ही समावेश है। व्याकरण में स्वर वह ध्वनि है, जिसका उच्चारण आप ही आप स्वतन्त्रतापूर्वक होता है। कुछ लोगों का मत है कि बच्चे जन्म लेते ही स्वाभाविक रूप से प्रारम्भिक काल में केवल देवनागरी लिपि के स्वर वर्णों को ही मुखरित करते हैं।

   अंग्रेजी में स्वर वर्ण के अक्षर (Vowels) क्रमबद्ध ढंग से नहीं रखे गये हैं, वह अंग्रेजी अक्षरों के समूह में इधर–उधर अनियमित ढंग से रखे हुए हैं। अंग्रेजी के स्वर वर्ण अक्षरों की संख्या देवनागरी के स्वर वर्णों की अपेक्षा आधी से भी कम है। स्वर वर्णों के इस अभाव के कारण अंग्रेजी शब्दों के उच्चारणों में प्रखरता का लोप है, जिसे इस लेख के अन्तर्गत बाद में अधिक स्पष्ट किया गया है।

२. देवनागरी लिपि के व्यंजन वर्ण के अक्षरों को तत्पश्चात विभिन्न वर्गों में विभक्त किया गया है और प्रत्येक वर्ग के अक्षर पृथक् पंक्ति में लिखे गये हैं। द्वितीय पंक्ति से लेकर अन्तिम पंक्ति तक के अक्षरों को व्यंजन वर्ण के अक्षर कहते हैं। द्वितीय पंक्ति में कवर्ग के अक्षर हैं, इसी प्रकार तृतीय पंक्ति में चवर्ग, चतुर्थ पंक्ति में टवर्ग के अक्षर हैं इत्यादि। उदाहरणार्थ, टवर्ग के अक्षर हैं– ट, ठ, ड, ढ, ण। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ग के अक्षरों के उच्चारण में भी एक प्रकार का सामंजस्य है। उदाहरण के लिए कवर्ग अक्षरों के

उच्चारण में कण्ठ मुख्य हैं। इसी प्रकार तवर्ग में तालु मुख्य है, और टवर्ग में मूर्द्धा मुख्य है। इत्यादि।

अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं में ऐसे क्रमबद्ध ढंग से अक्षर नहीं रखे गये हैं। अंग्रेजी में व्यंजन अक्षरों (Consonants) का भी पृथक् समूह नहीं बन पाया है; क्योंकि उनके बीच–बीच में स्वर अक्षर पड़े हुए हैं। अंग्रेजी में व्यंजन अक्षरों का वर्गीकरण सम्भव प्रतीत नहीं होता। इन अक्षरों के उच्चारणों में भी किसी प्रकार का सामंजस्य नहीं है; क्योंकि उसके प्रत्येक अक्षर के उच्चारण में उसके पास के दूसरे अक्षरों से भिन्नता है। उदाहरण के लिए J, K, L अक्षरों के उच्चारण एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। अंग्रेजी में व्यंजन अक्षरों की संख्या भी देवनागरी अक्षरों की अपेक्षा कम है। अक्षरों की कमी का अर्थ होता है शब्दों में कमी, जिससे कि भावों को प्रकट करने में कठिनाई होती है।

३. देवनागरी लिपि के अक्षर, संस्कृत भाषा के 'अक्षर' शब्द को भी सार्थक बनाते हैं अर्थात् यह नामकरण भी वैज्ञानिक एवं तर्क–संगत है; क्योंकि अक्षर का शाब्दिक अर्थ होता है कि जिसका क्षरण (खण्डन) न किया जा सके। वास्तविकता भी यही है कि देवनागरी लिपि के अक्षर (अ से लेकर ह पर्यन्त) अपने उच्चारण में खण्डित नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिए "क" अक्षर को ले लीजिये, उसका उच्चारण किन्हीं अन्य अक्षरों के उच्चारणों के संयोग से नहीं हुआ है। अतः देवनागरी लिपि के अक्षर भौतिक विज्ञान के अनुसार वाणी के तत्त्व हैं। भौतिक विज्ञान में तत्त्व वह पदार्थ है, जो दो या उससे अधिक पदार्थों के संयोग से बना हो अर्थात् जो अन्य पदार्थों में खण्डित नहीं किया जा सके। उदाहरण के लिए सोना धातु और ऑक्सीजन गैस दोनों ही तत्त्व हैं, परन्तु पीतल और हवा तत्त्व नहीं हैं; क्योंकि पीतल को ताँबा व जस्ता धातुओं में खण्डित किया जा सकता है और हवा को ऑक्सीजन व नाईट्रोजन गैसों में खण्डित किया जा सकता है। भौतिक विज्ञान में इन भौतिक तत्त्वों की खोज को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है; परन्तु हमारे पूर्वजों ने तो सहस्रों वर्ष पूर्व वाणी के तत्त्वों का आविष्कार किया, जिसे अन्य कोई समुदाय आज तक नहीं कर पाया है।

अंग्रेजी का "लेटर" शब्द अपने अक्षरों के लिए किसी प्रकार का सार्थक नाम प्रमाणित नहीं करता, इसलिए यह नामकरण तर्कसंगत नहीं है। अंग्रेजी अक्षरों के उच्चारण भी वाणी के तत्त्व नहीं बन पाते, इसलिए वह अवैज्ञानिक हैं।

४. देवनागरी लिपि की भाषाएँ सिखाते समय विद्यार्थियों को अक्षरों का ज्ञान कराने के पश्चात् व्यंजन अक्षरों की मात्राओं का ज्ञान कराया जाता है। प्रत्येक व्यंजन अक्षर के बारह मात्राएँ होती हैं। उदाहरण के

'भेड़ियों का घेरा है'

– डॉ० शिवनन्दन कपूर

जलतीं जिन्दा मशालें, फिर भी अँधेरा है।
बहरा ऊपर वाला, किस्मत का फेरा है।।

सूरत और सीरत का टूटा विश्वास है,
चाँदी के रस्सों से लटक रही लाश है,
भूख से तड़पतों को रोटियाँ ही खा रहीं–
राह भूला सूरज, सब कहते सबेरा है।।
जलतीं जिन्दा मशालें, फिर भी अँधेरा है।।

अपराधी ऊँचे हैं, छोटी हैं सभी जेल,
कैसे उजाला हो, तिलों में नहीं तेल,
राह कहाँ ? चारों ओर खाई है, खन्दक है,
फिसलन हर ओर, और भेड़ियों का डेरा है।।
जलतीं जिन्दा मशालें, फिर भी अँधेरा है।।

जिनके लिए देश महज माटी है, पत्थर है,
जिनकी निगाहों में पैसा ही ईश्वर है,
वे ही बने प्रहरी, हाय! नींद सबकी गहरी–
खुली है गठरिया, बटमारों का डेरा है।
जलतीं जिन्दा मशालें, गहरा अँधेरा है।।

– विट्ठलनगर, खण्डवा (म०प्र०)–४५०००१

लिए "क" अक्षर को लीजिये जिसे मात्राओं सहित बारह रूपों में लिखा जा सकता है– क, का, किं, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः और इनका उच्चारण भी पृथक्–पृथक् ढंग से होता है। चूँकि कोई भी मात्रा किसी भी अक्षर पर लगायी जा सकती है, इसलिए मात्राओं की अपनी अलग सत्ता है, जो अक्षरों की सत्ता से भिन्न है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार पृथक् स्वतन्त्र सत्ताओं को दर्शाने के चिह्न भी अलग–अलग होने चाहिए। यही हमारी देवनागरी लिपि के अक्षरों की मात्राओं के साथ हुआ है; क्योंकि मात्राओं को व्यक्त करने के चिह्न अक्षरों को व्यक्त करने के चिह्न (लिपि) से अलग हैं। बारह मात्राएँ होने के कारण बारह चिह्न भी हैं। उदाहरण के लिए "ऊ" की मात्रा का चिह्न ू है जो कि प्रायः अक्षर के नीचे के भाग में लगाया जाता है।

अंग्रेजी में अक्षरों के ज्ञान के पश्चात् विद्यार्थियों को मात्राओं का ज्ञान नहीं कराया जाता; क्योंकि उनके लिए यह सम्भव ही नहीं है। किसी अंग्रेजी पढ़े–लिखे व्यक्ति से यदि पूछा जाय कि उनकी भाषा के किसी अक्षर के कितने झुकाव यानि मात्राएँ (Declinations) हो सकते हैं, तो उसे यह प्रश्न बड़ा अटपटा लगेगा, सम्भवतः वह प्रश्न ही न समझ पाये तथा उत्तर देने में असफल रहेगा। अंग्रेजी में स्वर अक्षरों को ही मात्राओं के लिए उपयोग कर लिया जाता है, जिसके कारण किसी शब्द को केवल देखकर ही यह कह पाना सम्भव नहीं है कि उसके अन्दर किसी स्वर का प्रयोग मात्रा के लिए हुआ है या वह अपने स्वतन्त्र रूप में विद्यमान है। यह व्यवस्था अपूर्ण है तथा तर्कसंगत नहीं है। अंग्रेजी भाषा बोलनेवालों को जब वाणी के शुद्ध स्वरूपों यानि उनके तत्त्वों का ही बोध नहीं, तब उन्हें यह बता पाना अत्यन्त कठिन होगा कि उनके किसी अक्षर के उच्चारण में झुकावों (मात्राओं) का क्या अर्थ है, किसी अक्षर का उच्चारण अन्य दो अक्षरों से हुआ है कि नहीं या कोई अक्षर किसी मात्रा के साथ मिलकर अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। अतः मात्राओं के विषय में उनका अज्ञान स्वाभाविक है अर्थात् उनका यह ज्ञान अपूर्ण व अवैज्ञानिक है।

५. देवनागरी लिपि के अक्षरों का नामकरण सरलतम विधि से हुआ है। जिस अक्षर के उच्चारण से जो ध्वनि निकलती है, वही उसका नाम है अर्थात् अक्षर की ध्वनि और उसके नाम में कोई अन्तर नहीं है। यह पद्धति तर्कपूर्ण है तथा इससे अक्षरों के नामों को याद रखना भी अत्यन्त सरल हो जाता है।

अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं में अक्षरों के नामकरण की विधि तर्कपूर्ण नहीं है तथा कठिन भी है। अंग्रेजी अक्षरों के नाम उनको उच्चारण करनेवाली ध्वनि से बिल्कुल अलग होते हैं, जिसके कारण अक्षरों के नाम तथा उसके उच्चारण की ध्वनियाँ दोनों ही पृथक्–पृथक् याद करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए I (आई) अक्षर को ले लीजिये, इससे प्रायः "इ" की ध्वनि निकलने का विधान है; परन्तु इसका नाम "आई" है। एक दूसरा उदाहरण W (डब्लू) अक्षर का ले लीजिये, उससे प्रायः "व" की ध्वनि निकलने का विधान है; परन्तु उसका नाम "डब्लू" रखा गया है।

६. देवनागरी लिपि के अक्षरों के उच्चारण में एक अक्षर से एक ही प्रकार का उच्चारण निकलने का प्रावधान है चाहे वह अक्षर किसी भी शब्द में उपस्थित है। इससे "एक के लिए एक व्यवहार" (One to One correspondence) का सिद्धान्त चरितार्थ होता है जो कि तर्कपूर्ण है। देवनागरी लिपि के अक्षरों के इसी गुण के कारण अक्षरों के उच्चारण के ज्ञान के पश्चात् शब्दों के उच्चारण का ज्ञान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है, इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अतः देवनागरी लिपि की भाषा जैसी लिखी जाती है, उसी के अनुरूप वह बोली भी जाती है।

अंग्रेजी में बहुत से अक्षर ऐसे होते हैं कि जब उनका प्रयोग शब्दों में होता है, तो उन अक्षरों के उच्चारण का ढंग ही बदल जाता है अर्थात् अक्षरों का उच्चारण शब्दों पर आश्रित एवं अवलम्बित है। अंग्रेजी में किसी–किसी एक ही अक्षर से तीन या चार प्रकार के उच्चारण निकलते हैं। उदाहरण के लिए 'U' (यू) अक्षर को ले लीजिये, उससे put (पुट) शब्द में "उ" की ध्वनि होती है, Rural (रूरल) शब्द में "ऊ" की ध्वनि निकलती है, Hour (आवर) शब्द में "व" की ध्वनि निकलती है तथा But (बट) शब्द में उसकी कोई ध्वनि नहीं है। इस प्रकार की अनियमित अवस्थाएँ वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत नहीं कही जा सकतीं।

७. देवनागरी लिपि की भाषाओं में एक ध्वनि के उच्चारण के लिए एक ही अक्षर का प्रावधान है जो कि

मुहरों के दाँव

– सुरेश चन्द्र वर्मा 'विनीत'

मंजिल की राहों पर फिसल रहे पाँव।
रातों की स्याही में डूब रहे गाँव।।
वादों की घाटी में बहकी आबादी,
सोने के पिंजरों में बन्दी आजादी;
भ्रमित कदम, कौन डगर, ठहरें किस ठाँव।
सतरंगी किरनों के सात सुरे बोल,
राग अलग पीट रहे अपने सब ढोल;
ठूँठों पर कौओं का काँव काँव काँव।
फूलों का शूलों से अनचाहा मेल,
बाजीगर दिखा रहे अचरज के खेल;
छलते नित शतरंजी मुहरों के दाँव।
अनुशासन, मर्यादा लाँघ रही धूप,
तोड़ रहे दर्पण को मौसम के रूप;
खोज रहे नयन सघन तरुवर की छाँव।

– भजन का पुरा, निकट राजकीय इण्टर कालेज,
महुआरिया, मीरजापुर–२३१००१

तर्कसंगत है। इसीलिए देवनागरी लिपि की भाषा जैसी बोली जाती है, उसी के अनुरूप लिखी भी जाती है।

अंग्रेजी भाषा में कहीं–कहीं एक ही ध्वनि के उच्चारण के लिए तीन पृथक् अक्षर हैं। उदाहरण के लिए "क" के उच्चारण के लिए तीन अक्षर हैं– K, C और Q। इसके अतिरिक्त भी अंग्रेजी में एक ही ध्वनि के लिए पृथक् शब्दों के प्रयोग में कहीं एक ही अक्षर है या फिर दो अक्षरों का समूह है। उदाहरण के लिए F (एफ) अक्षर को ले लीजिये जिससे "फ" की ध्वनि मानी गयी है। यह ध्वनि Fair (फेयर) शब्द में F अक्षर से बनी हुई है, Philosophy (फिलोसफी) शब्द में PH अक्षरों के समूह से बनी है, Rough (रफ) शब्द में GH अक्षरों के समूह से बनी है। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि अंग्रेजी में ध्वनि के लिए प्रायः किसी निश्चित अक्षर का प्रावधान नहीं है। ऐसी व्यवस्थाएँ वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत नहीं मानी जा सकतीं।

८ देवनागरी लिपि के शब्द में उसके प्रत्येक अक्षर की ध्वनि स्पष्ट रूप से विद्यमान है। इसके विपरीत कुछ अंग्रेजी शब्दों में उसके किसी अक्षर की ध्वनि बिल्कुल लुप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए Doubt (डाउट) शब्द के उच्चारण में "B" (बी) अक्षर की ध्वनि पूर्णतः लुप्त या अनुपस्थित है। ऐसा किस नियम के अनुसार होता है, यह बता पाना अंग्रेजी भाषा जाननेवालों को भी कठिन होगा।

९ देवनागरी लिपि के अक्षरों के उच्चारण का उद्गम कब और कैसे हुआ, इस विषय पर वैज्ञानिक ढंग से शास्त्रीय विचार हुआ है। हमारी संस्कृति अत्यन्त प्राचीन होने के कारण बहुत से निष्कर्षों को पूर्ण प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत कर पाना कठिन हो जाता है। हमारी संस्कृति में किसी भी वस्तु का अधिक से अधिक मूल प्रारम्भिक कारण इस सृष्टिकर्ता की लीला ही कही गयी है।

१०. देवनागरी लिपि के प्रत्येक अक्षर से क्या सम्बोधन होता है या उसका क्या अर्थ होता है, इसका विज्ञान हमारे यहाँ मिलता है। देवनागरी लिपि के अक्षरों के लिखने के ढंग यानि लिपि का विज्ञान भी कहीं–कहीं दर्शाया गया है।

हमारा शब्द विज्ञान

१. देवनागरी लिपि की भाषा के शब्दों के उच्चारण का अर्थ है उसमें प्रयोग होने वाले अक्षरों का उच्चारण। इन अक्षरों का उच्चारण शब्दों की भिन्नता के कारण नहीं बदलता है। इससे उच्चारण में सरलता, शुद्धता एवं स्पष्टता आती है।

अंग्रेजी के अक्षर जब शब्दों में प्रयोग होते हैं, तब अक्षरों के उच्चारण की ध्वनि बदल जाती है तथा यह बदलाव भी शब्दों के बदलने से बदल जाता है जैसा कि पिछले शीर्षक "हमारा अक्षर विज्ञान" के अन्तर्गत संख्या ६ और ७ वाले बिन्दुओं में दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त बहुत से शब्द ऐसे हैं, जिनकी ध्वनियाँ अस्पष्ट होती हैं जैसे कि World

शब्द को ही ले लीजिये। इन्हीं सब विकट अस्पष्टताओं का फल यह होता है कि एम०ए० की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् भी अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण (Pronunciation) तथा अक्षर–विन्यास या वर्तनी (Spelling) को जानने के लिए प्रायः शब्दकोश देखना पड़ता है। यद्यपि देवनागरी लिपि के अक्षरों की संख्या अंग्रेजी अक्षरों की अपेक्षा अधिक है; परन्तु इन सभी कठिनाइयों से निराकरण मिल जाता है।

२. भारतीय मूल की भाषाओं का संस्कृत भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसमें प्रत्येक शब्द के निर्माण के कारण का भी ज्ञान प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा में प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति है अर्थात् शब्द के भाव उस शब्द के बनने के कारण में सन्निहित हैं। अतः किसी शब्द के भाव को उसके शब्दांशों के अर्थों द्वारा समझाया जा सकता है जो कि तर्कसंगत है। उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा का शब्द इतिहासम् (इतिहास) को ले लीजिये। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है– इतिहासम् = इति + ह + असम् जिसका अर्थ हुआ कि "वह + वास्तविक रूप से + हुआ" यानि "सच्ची पुरानी घटनाएँ"। यही कारण है कि संस्कृत भाषा के विद्यार्थी को "इतिहास" शब्द का अर्थ जानने के लिए इतिहास पुस्तक को पढ़ना अनिवार्य नहीं है, वह तो केवल इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति से ही उसका अर्थ समझ जायेगा।

अंग्रेजी भाषा के अधिकतर शब्दों की व्युत्पत्ति नहीं है। व्युत्पत्ति के लिए केवल यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि वह शब्द–विशेष लैटिन या फ्रेंच भाषा से लिया गया है, उसके लिए तो शब्द को शब्दांशों में विभक्त करना पड़ता है तथा प्रत्येक शब्दांशों के अर्थों की समीक्षा करके अर्थ बताना पड़ता है। अंग्रेजी भाषा के विद्यार्थी History (इतिहास) शब्द के अर्थ को बिना उस किताब के विषयों को पढ़कर नहीं बता पायेगा। अंग्रेजी शब्दों के भाव शब्दों में प्रायः बाहर से डाले जाते हैं, जिन्हें विद्यार्थी को याद करना पड़ता है इसलिए अंग्रेजी के विद्यार्थी को रटने का कार्य कहीं अधिक करना पड़ता है, जिसे कोई भी विद्यार्थी पसन्द नहीं करेगा।

३. शब्दों में बड़ी सामर्थ्य होती है, वह अपने भीतर एक पूरा भाव–संसार समेटे रहते हैं। शब्द के उच्चारण मात्र से ही एक समर्थ भाव उभरता है। संस्कृत भाषा के शब्दों में यह भाव सामर्थ्य शब्दों के अन्दर है, इसलिए वे अधिक तेजस्वी हैं तथा स्वयं ही भासित होते हैं। इसके विपरीत अंग्रेजी भाषा के शब्दों में भाव ऊपर से डाले जाते हैं।

कश्मीर पर किये गये आक्रमण को यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखें, तो पता चलेगा कि यह कोई आकस्मिक दुर्घटना नहीं, यह तो एक हजार वर्ष से चलनेवाले आक्रमण का एक अध्याय मात्र है। आखिर क्या देश का विभाजन भी उसी पुराने आक्रमण की एक कड़ी नहीं ? इस भारतभूमि से हिन्दुत्व का समूलोच्चाटन कर यहाँ इस्लाम की पताका फहराने का ही स्वप्न क्या विभाजन की माँग करनेवाले नहीं देखते थे ? कश्मीर भी उनको किसलिए चाहिए ? क्या इसलिए कि कश्मीर की भूमि से उन्हें बड़ा प्यार है, आत्मीयता है ? हिन्दू के अन्तःकरण में कश्मीर के कण-कण के प्रति जो श्रद्धा है, आत्मीयता है, क्या उसका लेशमात्र भी उनके मन में है? उन्हें कश्मीर इसलिए नहीं चाहिए कि उसके बिना उनका जीवन उन्हें सूना लगता है। उन्हें कश्मीर इसलिए चाहिए कि बचे-खुचे भारत के उत्तरी सीमान्त पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके वे भारत के इन हिस्सों को भी हरे झण्डे के नीचे ला सकें। जब तक आक्रमणकारियों का मन्तव्य और उनके स्वभाव को ठीक प्रकार से हम नहीं समझेंगे, तब तक न हम कश्मीर की रक्षा कर सकेंगे, न शेष भारत की।

- माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर
(अक्तूबर १९६२)

४. देवनागरी लिपि की शब्दावली में प्रायः किसी भी भाव के लिए एक ही शब्द नहीं है; बल्कि उसके लिए अनेक पर्यायवाची शब्द हैं। इन परस्पर पर्यायवाची शब्दों की उत्पत्ति का कारण यह है कि किसी एक भाव या रूप को अन्तःकरण में विचार कर उसे कई अन्तरभावों या रूपों में देखा गया है तथा प्रत्येक भाव या रूप के लिए एक पृथक् अनुकूल शब्द रचना की गयी है; यह कार्य विज्ञान की विश्लेषण प्रक्रिया का ही अंग है। बहुत से शब्द तो ऐसे हैं जिनके अनेकानेक (दो या तीन शतक से भी अधिक) पर्यायवाची शब्द हैं, उदाहरण के लिए "यमुना" शब्द, जोकि एक नदी है, उसके एक हजार पर्यायवाची शब्द मिल जायेंगे।

भारत एक धर्म प्रधान राष्ट्र है, जहाँ धर्म–विज्ञान विशेष रूप से पल्लवित हुआ है। अतः यहाँ धार्मिक शब्दों व भावों का अधिक गम्भीरता से विवेचन हुआ है तथा उनका बहुत अधिक भावात्मक एवं बौद्धिक विश्लेषण हुआ है। इसीलिए यहाँ भगवान विष्णु सहस्रनाम, देवी ललिता सहस्रनाम इत्यादि मिल जायेंगे तथा इन नामों की बहुत सुन्दर व्याख्या भी धार्मिक साहित्य में उपलब्ध है। अंग्रेजी भाषा में किसी शब्द के पर्यायवाची शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत ही कम है।

५. देवनागरी लिपि की भाषाओं में पर्यायवाची शब्दों का बाहुल्य हमारी भावों के प्रति सजगता एवं प्रखरता दर्शाता है। यदि भावों के लिए हमारे पास शब्द हैं, तो भावों के जीवित रहने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है, अन्यथा भाव शीघ्र नष्ट हो सकते हैं। भावों एवं विचारों की कमी होने का अर्थ होगा कि हम मन्दबुद्धि होते जा रहे हैं और मूर्खता की ओर बढ़ रहे हैं।

एक बहरा व्यक्ति गूँगा हो जाता है। इसी प्रकार यदि शब्द नहीं हैं, तो उन भावों का उत्पन्न होना कठिन हो जाता है। अंग्रेजी भाषा में मौसी, बुआ, समधी इत्यादि के लिए उपयुक्त शब्द नहीं हैं, अतः अंग्रेजी मातृभाषा वालों में यह भाव ही जाग्रत् नहीं होते। वस्तु को देखकर ही उपयुक्त भावों एवं शब्दों का मन में उदित न होना बुद्धिहीनता का ही द्योतक है।

६. मानव अन्तःकरण की साधारण भूमिका के लिए या भौतिक यथार्थवाद के लिए तो हर भाषा में बहुत से शब्द हैं। परन्तु अन्तःकरण की असाधारण भूमिका

भाद्रपद-२०५६

संकल्प शीघ्र पूरित हो

– दामोदर दत्त मिश्र 'प्रसून'

काश्मीर से भारतमाता तुम्हें पुकार रही है,
जलधि तीर तक दक्षिण पूरब ओर निहार रही है।
कभी–कभी आता है वीरो, मर मिटने का पर्व–
हर शहीद की आज स्वयं आरती उतार रही है।।

दुश्मन के नापाक पाँव सीमा में बढ़ आये हैं,
केसर–क्यारी के ऊपर, विष–बादल चढ़ आये हैं।
काँप रही 'डलझील' वहाँ के तड़प रहे हैं हंस–
वही सामने हैं जो दानवता ही पढ़ पाये हैं।।

कल्हण विल्हण की धरती पर बही खून की धारा–
सावधान सब–मन्दिर, मस्जिद, गिरिजा औ' गुरुद्वारा।
नहीं देखते कभी दरिन्दे न्याय और अन्याय–
क्या उलूक को नहीं भासता सूरज में अँधियारा।।

हर हर महादेव सब बोलें, दुष्ट–दमन करना है,
जागें महाकाल, सबको सतश्री अकाल कहना है।
राष्ट्र–धर्म है पहले, पीछे चलते हैं सब धर्म–
'भारतमाता की जय' कह भारत के हित मरना है।।

एक ध्वजा के तले देश का बल–पौरुष सञ्चित हो,
शालीमार, निशातबाग फिर से आतंक रहित हो।
बने दरिन्दों का श्मशान वैष्णो देवी की भूमि–
देशवासियों का सुखकर संकल्प शीघ्र पूरित हो।।

– ललिता निकेतन, कोरान सराय, बक्सर–८०२१२६

को (जब मन, बुद्धि एवं चित्त अत्यन्त शान्त हो) या आध्यात्मिक यथार्थ के अनुभवों को प्रकट करने के लिए देवनागरी लिपि की भाषाओं में अनेक शब्द हैं, उदाहरण के लिए कुछ शब्द यहाँ दिये गये हैं– ऋतम्भरा प्रज्ञा, निर्विकल्प समाधि, आत्मदर्शन, तुरीयावस्था, त्रिगुणातीत, स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मवित् इत्यादि।

७. किसी भी चर्चा, प्रार्थना या व्याख्यान में शब्दों को शुद्ध एवं स्पष्ट बोलने का अपना ही महत्त्व व प्रभाव होता है। संस्कृत भाषा के शब्दों का शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण करना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। यहाँ तक बतलाया गया है कि वैदिक मन्त्रों का शुद्ध

उच्चारण उसके अर्थ जानने से अधिक महत्त्व रखता है। इसीलिए यह सम्भव है कि साँप या बिच्छू के काटने का मन्त्रोच्चारण द्वारा सफलतापूर्वक उपचार करनेवाला व्यक्ति उन मन्त्रों के अर्थ ही न जानता हो। अशुद्ध उच्चारणों से मन्त्र के अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। इसलिए अक्षरों और शब्दों के उच्चारण में शुद्धता बनाये रखने के लिए हमारे यहाँ एक विशिष्ट शास्त्र का निर्माण किया गया है, जिसको "शिक्षा" शास्त्र कहते हैं।

किसी भी वृक्ष का अस्तित्व उसकी जड़ों के कारण है। जड़ों के ह्रास होते ही वह वृक्ष हमेशा के लिए विनष्ट हो जाता है। इसलिए यदि जड़ों को ही वृक्ष की संज्ञा दे दी जाये, तो यह अतिशयोक्ति न होगी। किसी भी शिक्षा रूपी वृक्ष की जड़ें अक्षर, शब्द और उनके उच्चारण हैं। ऐसे ही विचार को ध्यान में रखकर तैत्तिरीय उपनिषद्कार ने अक्षर और शब्दों के ज्ञान एवं उनके शुद्ध उच्चारण को ही "शिक्षा" की संज्ञा दी है, क्योंकि बिना इसके केवल वेदों की ही नहीं; बल्कि अन्य किसी शास्त्र की विद्या भी प्रतिपादित नहीं की जा सकती। इस "शिक्षा" शास्त्र के अन्तर्गत ६ विषय आते हैं, जिनके नाम हैं वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान। इनकी बहुत संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है, "अ" से लेकर "ह" पर्यन्त अक्षर "वर्ण" कहलाते हैं। उच्चारण विधि "स्वर" कहलाती है जो कि तीन प्रकार की बतायी गयी है– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। उच्चारण काल को "मात्रा" कहते हैं, जिसे तीन कालों में विभक्त किया गया है– ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। बाह्य और आभ्यंतर प्रयत्नों को "बल" कहा गया है। समता से उच्चारण करने को "साम" कहते हैं। वर्णों के शब्दों एवं वाक्यों में विस्तार या वृद्धि को "सन्तान" बताया गया है, वर्णों के इस मेल–जोल को "संहिता" भी कहा जाता है। यह "शिक्षा" शास्त्र किसी भी अन्य ज्ञान को प्रतिपादित करने के लिए एक सुदृढ़ आधार स्थापित करता है।

८. एक ही शब्द का कई प्रकार से उच्चारण हो सकता है। पृथक्–पृथक् प्रान्तों के व्यक्ति एक ही शब्द को भिन्न–भिन्न प्रकार से बोलते हैं। उदाहरण के लिए "निकट" शब्द को ही ले लीजिये। बंगाल प्रान्त का निवासी इसे "निकोट" सम्बोधित करेगा और उसके उच्चारण का ढंग भी कुछ इस प्रकार से होगा कि हिन्दी प्रान्त के व्यक्ति के लिए तुरन्त ही समझ पाना कठिन हो सकता है। यदि किंचित् सूक्ष्मता से देखा जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति के उच्चारण का ढंग भिन्न होता है जो कि समय–समय पर बदलता भी रहता है। अब प्रश्न उठता है कि कौन–सा उच्चारण यथार्थ या प्रामाणिक माना जाय। इस प्रश्न का उत्तर भारतीय "शिक्षा" शास्त्र देता है। जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं के ठीक निर्माण की मानक या "यथार्थ विधि" (Standard Method) आधुनिक विज्ञान बताता है, उसी प्रकार वाणी के उच्चारण की "यथार्थ विधि" बताने के लिए हमारे पूर्वजों ने "शिक्षा" शास्त्र का प्रतिपादन किया था, जिसका उपयोग आज भी होता है। केवल शब्दों या वाणी के गुण ही नहीं देखने होते, प्रत्युत गुणों को बनाये रखने के लिए भी नियम निर्धारित करने पड़ते हैं जिससे कि काल के प्रवाह में वह विकृत न हो जायें। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान भौतिक वस्तुओं के निर्माण को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए "गुणवत्ता नियन्त्रण" (Quality Control) के नियम बनाता है, उसी प्रकार वाणी के "गुण नियन्त्रण" के लिए भारतीय "शिक्षा" शास्त्र ने नियम बनाये तथा बतलाये हैं।

९. शब्दों के पश्चात् कुछ शब्दों को जोड़ने (सन्धि) के नियम बनाये जाते हैं, जो कि "व्याकरण" विषय के अन्तर्गत आते हैं। "व्याकरण" भाषा के लक्षणों को प्रकट करता है। संस्कृत भाषा का व्याकरण बहुत ही विस्तृत एवं वैज्ञानिक है। व्याकरण का विषय लेकर विद्यार्थी व्याकरणाचार्य की उपाधि प्राप्त कर सकता है, जो कि एम०ए० की डिग्री के समान होती है। अंग्रेजी भाषा में व्याकरण केवल कक्षा १० तक ही प्रायः पढ़ायी जाती है, जिससे कि व्याकरण में विशेष योग्यता प्राप्त करना सम्भव ही नहीं है।

१०. कम्प्यूटर के लिए देवनागरी लिपि सारे संसार में सर्वाधिक वैज्ञानिक और अनुकूल सिद्ध हुई है। कुछ विशेषज्ञों ने अनुसार ध्वनि डाक (Voice Mail) और पाठ अभिज्ञान क्रम (Speech Recognition System) के लिए देवनागरी भाषा अंग्रेजी की अपेक्षा बहुत अग्रगण्य है। ▭

(क्रमशः)

– ओझा हाउस, १४१, करोल मोहल्ला, स्टेशन मार्ग, इटावा–२०६००१

बालवाटिका

कहानी

गुरुमन्त्र

☐ नीलम राकेश

उदयपुर से थोड़ा आगे एक गाँव था सोनपुर। इस गाँव में कोई भी कुँआ नहीं था। किसी ज़माने में सरकार की ओर से एक हैण्डपम्प लगा था, जिसकी हालत अब खस्ता थी। गर्मी आने पर पानी का स्तर नीचे चला जाता और हैण्डपम्प पानी देना बिल्कुल बन्द कर देता। अतः पानी की बहुत दिक्कत होती। पीने का पानी लाने के लिए गाँव की महिलाओं को तीन मील दूर दूसरे गाँव जाना पड़ता।

गर्मियाँ आने से पूर्व इस समस्या पर विचार करने के लिए गाँव में पंचायत बैठी। मुखिया हीरामल गला साफ करते हुए बोले–

'साथियों! पानी हमारी मूल समस्या है। हम सबको, खास कर महिलाओं को इसके कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इसलिए इसका कोई हल निकालना ज़रूरी है।'

'आप मुखिया हैं। आप सरकार से दूसरा हैण्डपम्प लगवाने की माँग कीजिये।'

'अरे नया न लगे, तो इस पुराने को ही ठीक कराये सरकार" दूसरा स्वर उभरा।

'हाँ! इस साल पानी की कुछ व्यवस्था कीजिये प्रधान जी' घूँघट की ओट से एक नारी स्वर निकला।

प्रधान जी ने हाथ के इशारे से सबको शान्त कराया और बोले–

"देखिये, यह सब तो मैं कर ही रहा हूँ; परन्तु सरकारी काम तो धीरे–धीरे होगा। समस्या तो हमारी और आपकी है। हमारी माता–बहनों को कष्ट होता है। मेरा सुझाव है कि यदि आप सब श्रमदान करें, तो हम मिलकर ग्रामसभा की जमीन पर एक कुँआ खोद लें।"

"सुझाव तो अच्छा है" एक स्वर उभरा साथ ही खुसुर–पुसुर शुरू हो गयी।

"आप लोगों को जो भी कहना है, खुलकर सबके सामने कहिये" प्रधान जी पुनः बोले।

"ठीक है प्रधान जी! आप काम शुरू कराइये। हम सब श्रमदान करेंगे" कई स्वर एक साथ सुनाई पड़े।

झटपट अगले दिन से ही काम शुरू हो गया। एक–एक कर कई जगह खोदा गया; किन्तु पानी नहीं निकला। गाँव के चारों ओर की जमीन छोटे–छोटे गड्ढ़ों में बदल गयी। धीरे–धीरे गर्मी आ गयी। पानी की समस्या अपनी जगह बनी रही।

एक दिन अचानक एक महात्मा का उस गाँव में आगमन हुआ। पूरा गाँव हाथ जोड़कर उनकी सेवा में हाजिर हो गया। सब एक–स्वर से उनसे पानी के लिए पूजा या यज्ञ करने की प्रार्थना करने लगे। महात्मा ने एक नजर गाँववालों पर डाली, फिर गम्भीर स्वर में बोले–

"तुम्हारे गाँव में पानी न होने का कारण तुम लोगों में आत्मविश्वास और लगन की कमी है।"

"महाराज! हम समझे नहीं" हाथ जोड़कर ग्राम प्रधान ने पूछा।

"बेटा! पानी के लिए तुम लोगों को किसी पूजा की नहीं, धीरज और लगन की जरूरत है।"

गाँववालों को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वे एक दूसरे की ओर देखने लगे।

"महाराज! आप हमें राह दिखायें" ग्राम प्रधान पुनः हाथ जोड़कर बोले।

"बेटा! मैंने आते समय देखा। तुम्हारे गाँव के चारों ओर खुदे गड्ढ़े स्पष्ट बता रहे हैं कि तुम लोगों ने पानी के लिए प्रयास किया है; परन्तु तुम लोगों में धीरज नहीं था। थोड़ा-सा खोदकर तुम निराश हो जाते थे और दूसरी जगह खोदने लगते थे। यदि थोंड़ा-सा धीरज रखकर अपनी मेहनत पर भरोसा कर तुम लोगों ने एक ही स्थान पर यह सारी मेहनत की होती, तो इस समय तुम्हारे गाँव में मीठा पानी होता।"

अब गाँववालों को महात्मा की बात समझ में आ रही थी।

"महाराज! हमसे गलती हो गयी" प्रधान सहित कई लोग बोले।

"कोई बात नहीं बेटा! गाँव तुम्हारा है, मेहनत तुम्हारी है। फिर से जुट जाओ और देखो तुम्हारा कष्ट कैसे दूर होता है।"

महात्मा की देखरेख में गाँववाले नये सिरे से, नये उत्साह के साथ खुदाई में जुट गये। देखते ही देखते धरती माँ की गोद से मीठे जल का स्रोत फूट निकला।

"साधु बाबा की जय" के नारों से आकाश गूँज उठा।

"मेरी जय नहीं बेटा! यह तो तुम्हारी मेहनत रंग लायी है।" महात्मा उन्हें टोकते हुए बोले।

"महाराज! आपका बताया धीरज और लगन का गुरुमंत्र अब हम कभी नहीं भूलेंगे।" प्रधान जी ने हाथ जोड़कर शीष झुका दिया।

वातावरण पुनः साधू महात्मा की जय के घोष से गूँज उठा। ❑

– (द्वारा) श्री राकेश चन्द्रा, अपर जिलाधिकारी (वि/रा) गाजीपुर-२३३००१ (उ०प्र०)

इसको दुनिया करेगी नमन

– संजय कुमार रैकवार 'सागर'

"सबसे न्यारा सलोना चमन,
सबसे प्यारा हमारा वतन।

तीर्थ ही तीर्थ नदियों के तीर,
स्वर्ग जैसा लगे काश्मीर
प्यार इसको लुटाये गगन

सबसे न्यारा सलोना चमन।

सबसे पहले मनुजता पली
ज्ञान धारा यहीं से चली
प्रेम का शान्ति का शुभ सपन

सबसे न्यारा सलोना चमन।

पहरेदारी हिमालय करे
सिन्धु चरणों में मोती धरे
वक्ष में सोहे गंगा-रतन।

सबसे न्यारा सलोना चमन।

सह रहा भ्रष्टता के कहर
आज युग की लगी है नजर
दुष्ट बेटों का कैसा पतन!

सबसे न्यारा सलोना चमन।

कर्ज माँ का चुकायेंगे हम
घोर संकट मिटायेंगे हम
इसको दुनिया करेगी नमन

सबसे न्यारा सलोना चमन।

– शास्त्री नगर, सीधी (म०प्र०)

जन्मतिथि (११ सितम्बर) पर -

छुआछूत के सदैव विरोधी रहे थे, बाला साहब देवरस

- राजेन्द्र सक्सेना

अपने हिन्दू समाज का इतिहास बड़ा है जिसमें छोटे-बड़े अनेक कालखण्ड आये। उन्हीं कालखण्डों में २०वीं सदी के द्वितीय दशक में ११ सितम्बर, १९१५ को महाराष्ट्र प्रान्त के नागपुर शहर के इतवारी मुहल्ले में निवास करने वाले दत्तात्रेय देवरस जी के आंगन में एक बालक ने जन्म लिया। बालक अपने माता-पिता की आठवीं सन्तान थे। उन्हें प्यार से लोग 'बालू' कहते थे। उनका पूरा नाम मधुकर दत्तात्रेय बाला साहब देवरस था। उनके एक छोटे भाई थे, जिनको लोग भाऊ कहते थे। जो उत्तर प्रदेश के प्रान्त प्रचारक भी रहे।

बाला साहब जी बाल्यावस्था में अत्यन्त चपल एवं बुद्धिमान विद्यार्थी के रूप में पहचाने जाते थे। बचपन में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई करने वाले "बाल" ने अपने आपको अभी अंग्रेजियत में नहीं बदला। एक दिन बाला साहब जी अपने घर में खेल रहे थे, तभी इनके पिता जी की निगाहें उनकी भौहों पर पड़ी उन्होंने देखा कि बाला की भौहें रंग बदलकर अचानक श्वेत हो गयीं। यह देख पिता जी बाला को अपने गुरु जी के पास ले गये। गुरु जी ने बाला को देखते ही कहा कि तुम्हारा बेटा भविष्य में देश का एक महापुरुष बनेगा। तुम्हारे पूरे परिवार का नाम अमर करेगा। गुरु जी की भविष्यवाणी को सुनकर बाला साहब के पिता जी के मन में तरह-तरह के प्रश्न आने लगे। मन में अनेकों प्रकार की आशाएँ छिप कर रह गयीं। लेकिन भाग्य ने कोई दूसरी महानता देवरस जी के लिए छोड़ रखी थी।

अभी कुछ ही दिन संघ स्थापना के व्यतीत हुए थे कि अचानक बाला साहब देवरस पूज्य डाक्टर हेडगेवार जी को मिल गये। उस समय उनकी आयु मात्र दस-ग्यारह वर्ष की ही थी। तभी वह शाखा जाने लगे। नागपुर के इंगलिश स्कूल से हाई स्कूल की परीक्षा सर्वश्रेष्ठ अंकों से पास करने के पश्चात् वहीं के मौरिस कालेज में प्रवेश लेकर १९३५ में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तीन वर्ष बाद कानून की डिग्री प्राप्त कर एक अनाथ शिक्षार्थी स्कूल में २५ रुपया वेतन पर अध्यापन कार्य करने लगे। साथ ही संघ कार्य में पूरे मन से लग गये। जिसके कारण वे पूज्यनीय डाक्टर हेडगेवार जी के अधिक निकट थे। उनके आग्रह पर वे सन् १९३९ में अध्यापन कार्य छोड़कर प्रचारक होकर बंगाल चले गये।

१९४० में पूज्य डाक्टर हेडगेवार जी की अस्वस्थता के कारण वे नागपुर लौट आये और वहीं डाक्टर साहब की सेवा में लगे रहे तथा नागपुर का कार्य सम्हाल लिया। जून १९४० में ही पूज्य डाक्टर हेडगेवार जी के निधन के बाद जब द्वितीय सरसंघचालक का दायित्व परमपूजनीय गुरु जी के हाथों आया चार वर्ष बाद बाला साहब देवरस १९४६ में अखिल भारतीय सह सरकार्यवाह के रूप में हमारे सामने आये। १९४८ में गान्धी हत्याकाण्ड में वे पहली बार बन्दी हुए और चार माह का कठोर कारावास भोगा। सन् १९६५ में वे संघ के अखिल भारतीय सर कार्यवाह हो गये और देश का सघन प्रवास कर कार्यकर्ताओं का संघ खड़ा किया। एक बार संघ के एक सार्वजनिक कार्यक्रम में पूज्य गुरुजी एवं पूज्य बालासाहब देवरस एक साथ मंच पर उपस्थित थे।

गुरुजी बोलने को खड़े हुए और बोलते-बोलते उन्होंने कहा कि आज इस कार्यक्रम में दो सरसंघ चालक उपस्थित हैं। सभी यह सुन कर दंग रह गये। फिर उन्होंने आगे कहा कि जिन्होंने परमपूज्य डाक्टर हेडगेवार जी को नहीं देखा, वह श्री बाला साहब देवरस को देखें। देवरस जी के हृदय में पूज्य डाक्टर साहब का निवास है। कौन जानता था कि पूज्य गुरुजी यह बात सही कह रहे थे और ५ जून १९७३ को वे हमारे बीच से चले गये। जिनके बाद पूज्य बाला साहब के कन्धों पर सर संघचालक का भार आया और उन्होंने लगातार २२ वर्षों तक सर संघचालक के रूप में सम्पूर्ण देश में अनेक बार प्रवास किया। वे सदैव अपने बौद्धिक में कहा करते थे "छुआछूत मिटाओ, अश्पृश्यता समाज का दुश्मन है"। उन्होंने कहा था कि छुआछूत यदि पाप नहीं तो दुनिया में कुछ पाप नहीं। सेवा वसति में जाने का आग्रह कर वे स्वयंसेवकों से यही कहते रहे कि अस्पृश्ता समाप्त कर रोटी-बेटी का सम्बन्ध बनाओ, सेवा बस्ती में जाओ।

सन् १९७८ में देश में जब जनता पार्टी की सरकार बनी तो उस समय अल्पसंख्यक आयोग का गठन हुआ। देवरस जी उस समय जम्मू के प्रवास पर थे। उन्होंने वहीं से अपना वक्तव्य भेजकर जनता पार्टी सरकार को चेताया कि हिन्दुस्थान में अल्पसंख्यक आयोग की जगह मानवाधिकार आयोग का गठन होना चाहिए। इस प्रकार २२ वर्षों तक वे सरसंघचालक के रूप में वे हम सभी का मार्ग दर्शन करते रहे। अपने शरीर के खून को पानी में बदलकर शरीर को जर्जर कर दिया। १९९२ को जब उन्हें पहली बार पक्षाघात हुआ, तब से उनका स्वास्थ्य नित्य प्रति गिरता गया। अपने आपको जब उन्हें लगा कि मैं प्रवास नहीं कर सकता, तो उन्होंने पुरानी-परम्परा को ठुकराकर अपने सामने ही ११ मार्च १९९४ को उस समय के सह-सर कार्यवाह परम पूज्य श्री रज्जू भइया के हाथों सर संघचालक का दायित्व सौंपा। अन्तिम समय पर उन्होंने अपनी आँखों से एवं कानों से प्रत्यक्ष देखा और सुना कि संघ का एक स्वयंसेवक देश का प्रधानमन्त्री हो गया। उस समय वे कितने प्रसन्न हुए होंगे। लेकिन ईश्वर की महिमा के सामने किसी की नहीं चलती। १७ जून की वह रात्रि परमपूज्य बाला साहब देवरस जी के लिए काल बन कर आई और वे देश के लाखों स्वयंसेवकों को बिलखता हुआ छोड़ गये। ❑

देश पुकार रहा है

—डा० गणेशदत्त सारस्वत

माँ, बन्दूक दिला दो मुझको।
वर्दी हरी सिला दो मुझको।
लोहा लेना है दुश्मन से-
जल्दी दूध पिला दो मुझको।

सोनू मोनू अप्पू राकी।
लिए हाथ में अपने हाकी।
हैं तैयार खड़े बिलकुल वे-
पहने नेकर मोजे खाकी।

थापी लिए हुए गुड्डू जी।
राकेट थामे हैं बड्डू जी।
धनुष-बाण ले चिंटू-पिंटू-
टेर लगाते हैं लड्डू जी।

पिंकी ने हैं किए इकट्ठे।
कंकड़-पत्थर सेंठे लट्ठे।
मीरा दीदी के संग मिलकर-
मिक्की ने झोले में रक्खे।

फुर्ती भरी सभी के तन में।
जाने को उद्यत हैं रण में।
चाहे जैसा भी हो दुश्मन-
मार भगाएँगे हम क्षण में।

सीखा नहीं किसी से डरना।
आगे बढ़कर पीछे हटना।
यह तो खेल रोज का ही है-
शेरों के दाँतों को गिनना।

सीमा पर ललकार रहा है।
अन्यायी कर वार रहा है।
आज्ञा दे दो माँ! जाने की-
अपना देश पुकार रहा है।

सारस्वत-सदन, सिविल लाइन्स,
सीतापुर-२६१००१ (उ०प्र०)

देववाणी शिक्षण (२/३)

पाठ—३

निम्नलिखित शब्द ध्यान में रखिये –

शब्द

वा	=	अथवा	व्यर्थं	=	व्यर्थ
अथवा	=	अथवा	हि	=	क्योंकि
किंवा	=	अथवा	चेत्	=	यदि
प्रभूतं	=	बहुत	न्यूनं	=	थोड़ा

इन शब्दों का उपयोग करके वाक्य बनाइये –

१. किं त्वं पुस्तकं पठिष्यसि अथवा स पठिष्यति ? २. यदि सः अद्य अत्र आगमिष्यति तर्हि त्वं तत्र न गच्छ, नो चेत् श्वः प्रातः एव गच्छ। ३. सः सदा प्रभूतं वदति। ४. तव गृहे सः उदकं पास्यति वा न वा ? ५. सत्यं अपि अयुक्तं न वद।

इन वाक्यों के हिन्दी वाक्य देखिये –

१. क्या तू पुस्तक पढ़ेगा अथवा वह पढ़ेगा ? २. यदि वह आज यहाँ आयेगा तो तू वहाँ मत जा, नहीं तो कल सेबेरे ही जा। ३. वह हमेशा अधिक बोलता है। ४. तेरे घर वह पानी पीयेगा या नहीं ? ५. सत्य किन्तु अयुक्त मत बोल।

अब आपको निम्नलिखित वाक्य जल्दी समझ में आ जायेंगे –

यदि सः अद्य इदानीं फलं न खादति, तर्हि त्वं इदानीं एव खाद। त्वं श्वः कुत्र गमिष्यसि ? यदि सः अद्य न आगमिष्यति, तर्हि अहं तस्य गृहं श्वः सायं गमिष्यामि। कः तत्र इदानीं एवं वदति ? तत्र रामचन्द्रः अस्ति सः एवं वदति। नहि नहि, तत्र रामचन्द्रः नास्ति। तर्हि कः सः ? सः हरिश्चन्द्रः अस्ति। सः कः हरिश्चन्द्रः ? स नागपूरदेशीयः विष्णुमित्रस्यः पुत्रः हरिश्चन्द्रः इदानीमेव नागपूरात् अत्र आगतः। स शोभनः पुरुषः अस्ति। स नागपूरं कदा पुनः गमिष्यति ? स परश्वः सायं नागपूरं प्रति गमिष्यति अथवा श्वः एव गमिष्यति। स केन सह आगतः ? सः देवदत्तेन सह आगतः। देवदत्तः अपि तेन सह गमिष्यति किं ? नहि, देवदत्तः अत्र एव स्थास्यति। स एव गमिष्यति। त्वं इदानीं किं करिष्यसि ? अहं इदानीं न किमपि करिष्यामि।

अब निम्नलिखित शब्द ध्यान में रखिये –

शब्द

उद्यानं	=	बगीचा	चन्दनं	=	चंदन
तोयं	=	पानी	काष्ठं	=	लकड़ी
नीरं	=	पानी	अन्नं	=	अन्न
उदकं	=	पानी	दुग्धं	=	दूध
नामकं	=	नामका	पीतं	=	पिया हुआ, पीला

इन शब्दों का उपयोग करके बने हुए वाक्य देखिये–

श्रीरामचंद्रस्य नगरं अयोध्यानामकं अस्ति। श्रीकृष्णस्य नगरं द्वारकानामकं अस्ति। त्वया दुग्धं किं न पीतम् ? मया दुग्धं न पीतम्। तत्र दुग्धं नास्ति। तत्र नीरं अस्ति। मम वस्त्रं तेन इदानीं नीतम् तत्र त्वं उपविश। अहं इदानीं मध्याह्नसमये सूर्यस्य किरणे सूर्यस्य प्रकाशे वा उपविशामि। तव नखं कथं न रक्तं अस्ति ? कथं पीतं एवं दृश्यते ? तस्मिन कूपे उदकं नास्ति। तस्मिन जले कमलस्य पुष्पं न भवति।

निम्नलिखित हिन्दी वाक्यों के संस्कृत वाक्य बनाइये –

मैं अब घर जाता हूँ। दूध कहाँ है ? वह कहाँ गया है ? मैं अभी घर से आया। वह धूप में क्यों नहीं बैठता है ? उसका घर कहाँ है ? उसका बगीचा कहाँ है ? बलराम कहाँ गया ? तू वहाँ क्यों नहीं जाता है ?

निम्नलिखित संस्कृत वाक्यों के हिन्दी वाक्य बनाइये –

अहं इदानीं गृहात् अत्र आगतः ? फलं कुत्र अस्ति ? त्वया जलं किं न आनीतं ? स इदानीं जलं न आनेष्यति किम् ? स किं पश्यति ? स तत्र पत्रं नेष्यति। अहं एव मम पुस्तकं तव गृहं प्रति प्रापयिष्यामि। □

बालसाहित्य-पुरस्कार

डॉ० रतनलाल शर्मा स्मृति न्यास के अध्यक्ष श्री शलभ शर्मा ने पाँचवे श्रीमती रतन शर्मा स्मृति बालसाहित्य-पुरस्कार की घोषणा कर दी है। वर्ष १९९९ के लिए यह प्रतिष्ठित पुरस्कार बिजनौर (उ०प्र०) निवासी **श्री गिरिराज शरण अग्रवाल** को उनकी बालोपयोगी कृति **'आओ अतीत में चलें'** के लिए प्रदान किया जायेगा।

पुरस्कार स्वरूप १५,०००/रु० (केवल पन्द्रह हजार रुपये) का चैक, प्रतीक चिह्न एवं प्रशस्ति पत्र भेंट किया जायेगा। पुरस्कार समारोह का भव्य आयोजन २५ अक्तूबर १९९९ को शाम ५ बजे त्रिवेणी कला संगम, मण्डी हाउस, दिल्ली में आयोजित किया जायेगा।

अमृतवाणी

– डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्।।

(पञ्चतन्त्र, १/४२०)

मूर्ख व्यक्तियों को उपदेश देने से उनमें कोई सुधार नहीं होता, उल्टे वे (मूर्ख व्यक्ति) उपदेश देनेवाले व्यक्ति से रुष्ट अवश्य हो जाते हैं। सर्पों को दूध पिलाने से केवल उनका विष ही बढ़ता है।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।।

(हितोपदेश, १/४४)

बुद्धिमान व्यक्ति को परमार्थ के लिए अपने धन और जीवन का परित्याग कर देना चाहिए। जब एक दिन इनका (धन और जीवन का) विनाश निश्चित ही है, तो फिर मनुष्य की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह अच्छे उद्देश्य के लिए इनका परित्याग करके दीर्घकालीन यश प्राप्त कर ले।

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतो सुखम्।
सुखार्थी चेत् त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम्।।

(विदुरनीति, ८/६)

सुख चाहने वाले व्यक्ति को विद्या कैसे मिल सकती है? इसी प्रकार विद्या चाहने वाले व्यक्ति को सुख कैसे मिल सकता है? जो व्यक्ति सुख चाहता है, उसे विद्या पाने की आशा छोड़ देनी चाहिए तथा जो व्यक्ति विद्या चाहता है, उसे सुख पाने की आशा छोड़ देनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि विद्यारूपी श्रेष्ठ धन कठोर तपस्या से ही प्राप्त होता है।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्।।

(नीतिशतक, ६४)

गुप्त रूप से दान देना, घर आये हुए व्यक्ति का आदर–सत्कार करना, किसी व्यक्ति के प्रति उपकार करने के पश्चात् उस उपकार की कहीं चर्चा न करना, दूसरे व्यक्ति के द्वारा अपने प्रति किये गये उपकार को भरी सभा में कहना, सम्पत्ति के समय गर्व न करना, दूसरों की चर्चा करते समय किसी की निन्दा न करना– तलवार की धार पर चलने का यह कठिन कार्य सज्जनों को किसने सिखाया है? तात्पर्य यह है कि सज्जनों में ये सब बातें जन्मजात ही होती हैं।

आपन्नार्तिप्रशमनफलाः
सम्पदो ह्युत्तमानाम्

(मेघदूत, पूर्वमेघ, ५६)

उच्चकोटि के व्यक्तियों की सम्पत्तियाँ कष्टग्रस्त व्यक्तियों के कष्टों का निवारण करने के लिए ही होती हैं।

प्रस्तुति – डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

उद्बोधन

– शेफाली बाजपेयी

तुम छलावे में रहो मत देश के युवजन,
मैं तुम्हारे साथ हूँ हिन्दी कहे प्रतिक्षण

दासता की चाहना में, आंग्ल के तुम दास हो,
दूर अमृत कर रहे हो, मृत्यु के तुम पास हो,
दासता का त्याग कर, ऊँचा करो निजमन,
तुम छलावे में रहो मत देश के युवजन,
मैं तुम्हारे साथ हूँ हिन्दी कहे प्रतिक्षण

मत्स्य का जीवन नहीं है जलरहित सम्भव
सम्पर्क में हिन्दी रहेगी यह सदा सम्भव
सोच हिन्दी का रहा है देश का सर्जन
तुम छलावे में रहो मत देश के युवजन,
मैं तुम्हारे साथ हूँ हिन्दी कहे प्रतिक्षण

आदिशिव की पालिता है यह सुघड़ हिन्दी
माँ शिवानी ने सजाया है सुघड़ हिन्दी
कोटि चौरासी सहेजे हैं नहीं निर्जन
तुम छलावे में रहो मत देश के युवजन,
मैं तुम्हारे साथ हूँ हिन्दी कहे प्रतिक्षण

राष्ट्र प्रगति के कारक बनते शोधकार्य मौलिकता
अपनी भाषा से झरती है सुविचार मौलिकता
देश की भाषा है हिन्दी कुरु इसे नमन
तुम छलावे में रहो मत देश के युवजन,
मैं तुम्हारे साथ हूँ हिन्दी कहे प्रतिक्षण

– एम–१/७४, सेक्टर बी, अलीगंज, लखनऊ

कारगिल युद्ध-कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

- भारतीय सैनिक शून्य से नीचे चालीस डिग्री तापमान में समुद्र सतह से अठारह हजार फुट की ऊँचाई पर लड़े।
- पाकिस्तान के साथ १९४७ के बाद हुए विभिन्न युद्धों में १०,६३६ भारतीय सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए और २५,३६२ घायल हुए।
- कारगिल युद्ध ७४ दिन चला, जिसमें ४०७ भारतीय जवान वीरगति पाये और ५८४ घायल हुए तथा अभी आठ लापता हैं।
- इस युद्ध में लगभग पाँच हजार करोड़ रुपया व्यय हुआ।
- इस युद्ध में प्रतिदिन तीन सौ तोपों से पाँच हजार गोले दागे जाते थे।
- युद्ध १५० किलोमीटर लम्बी नियन्त्रण-रेखा पर लड़ा गया।

वीरगति प्राप्त सैनिकों का पुनर्वास

- कारगिल में हताहत परिवारों के पुनर्वास पर अनुमानतः २००-३०० करोड़ की आवश्यकता पर आर्मी सेण्ट्रल वेलफेयर फण्ड में कुल जमा एक सौ करोड़ रुपये है।

सरकार की घोषणा

१. वीरगति प्राप्त सैनिकों के परिजनों को साढ़े सात लाख रुपये की अनुग्रह राशि दी जायेगी।
२. बलिदानी और विकलांग सैनिक परिवारों को घर बनाने के लिए पाँच लाख रुपये दिये जायेंगे।
३. बच्चों की शिक्षा के लिए परिवारों को दो लाख रुपये की सहायता।
४. विकलांग जवानों को व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था।
५. विधवाओं को दस लाख रुपये की सहायता की अधिकतम सीमा हटी।
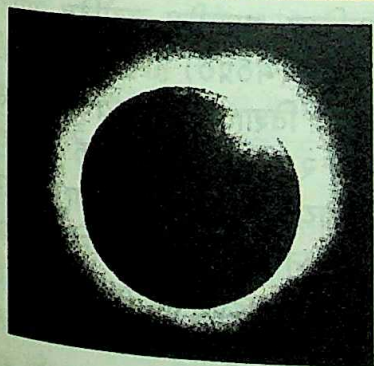
बीसवीं शती (ईसवी) का अन्तिम पूर्ण (खग्रास) सूर्यग्रहण - (११-८-१९९९)

सेना की आवश्यकता

- रात में देखने वाले उपकरण।
- ठण्ड में बचने के रक्षात्मक कपड़े।
- बर्फीले पहाड़ों पर चढ़ने के लिए विशेष प्रकार के जूते।
- स्वचालित तोप।
- रणभूमि पर निगरानी के लिए परिष्कृत राडार।
- विमान वाहक युद्धपोत/पनडुब्बी/फ्रिगेट/डिस्ट्रायर।
- एडवांस जेट ट्रेनर विमान/मानव रहित विमान।
- युद्धक टैंक।
- मिराज २०००/हवा में ईंधन भरने वाले विमान।
- परिष्कृत ग्रेनेड लांचर/परिष्कृत हल्के हेलीकॉप्टर।
- आधुनिक संचार उपकरण।
- सेना के वर्तमान बजट में कम से कम दस प्रतिशत की वृद्धि।

गीत

– वीरेन्द्र खरे 'अकेला'

शान्ति हो, सद्भावना हो, भाईचारा हो।
हे प्रभो, मेरे वतन में यह दुबारा हो।।

द्वेष के दलदल से बाहर कर हमें भगवन्,
हर कलह की कालिमा निर्मल हों सबके मन।
फिर धरा पर वो सुधामय प्रेमधारा हो।
हे प्रभो, मेरे वतन में यह दुबारा हो।।

दूध की नदियाँ भले ही न बहें फिर से।
स्वर्ण महलों में भले हम न रहें फिर से।।
पर कोई भूखा न हो, न ही उघारा हो।
हे प्रभो, मेरे वतन में यह दुबारा हो।।

बुद्धि दे इतनी, असत्–सत् जान जायें हम।
और बल इतना कि शोषित हो न पायें हम।।
प्राण से बढ़कर हमें कर्तव्य प्यारा हो।
हे प्रभो, मेरे वतन में यह दुबारा हो।।

नाइस च्वाइस कलेक्शन, कलेक्टर बंगला के सामने छतरपुर (म०प्र०)

आठवाँ दक्षिण एशियाई खेलकूद समारोह – काठमाँडू में

आगामी २५ सितम्बर से ४ अक्टूबर तक दक्षिण एशियाई क्षेत्र का विशाल खेल मेला भगवान् पशुपतिनाथ की नगरी नेपाल की राजधानी काठमाँडू में होगा। इस भव्य खेल मेले को अविस्मरणीय बनाने के लिए नेपाल सरकार युवराजाधिराज श्री ५ दीपेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव के संरक्षकत्व और प्रधानमन्त्री श्री कृष्ण प्रसाद भट्टराई की अध्यक्षता में गठित खेल आयोजना समिति पूर्ण मनोयोग से जुटी है।

8th SAF GAMES
25th Sept. - 4th Oct. 1999
KATHMANDU

ज्ञातव्य है कि सन् १६८१ में नई दिल्ली में दक्षिण एशियाई खेलकूद महासंघ के गठन के पश्चात् इस खेल प्रतियोगिता का श्री गणेश नेपाल से ही सन् १६८४ में हुआ था, १६ वर्ष बाद फिर से नेपाल को इस गरिमामय खेल का आयोजन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

इस गरिमामय खेल प्रतियोगिता का महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि प्रथम दक्षिण एशियाई खेलों का उद्घाटन नेपाल नरेश ने किया था और इस आठवें दक्षिण एशियाई खेलकूद का उद्घाटन भी २५ सितम्बर १६६६ को काठमाण्डू स्थित आधुनिक सभी प्रविधियों से युक्त 'दशरथ रंगशाला' में आयोजित भव्य समाराह के बीच १८००० दर्शकों की उपस्थिति में नेपाल नरेश श्री ५ वीरेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव करेंगे। इस रंगारंग समारोह का काठमाण्डू से दूरदर्शन द्वारा सीधे प्रसारण किये जाने की योजना है, जिससे इस क्षेत्र के करोड़ों खेल प्रेमी उद्घाटन समारोह देखने का आनन्द ले पायेंगे।

इस उद्घाटन समारोह को अविस्मरणीय बनाने के लिए नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में जोर–शोर से तैयारियाँ चल रही हैं। विभिन्न कार्यक्रमों के लिए १०,००० छात्र–छात्राओं को सघन प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इसके साथ ही नेपाल के सर्वश्रेष्ठ नर्तक एवं नर्तकियाँ अपनी कला का प्रदर्शन करेंगे, सर्वश्रेष्ठ गायक एवं गायिकाएँ अपने गीतों से दर्शकों का मन मोहेंगे। इसके अलावा नेपाल की शाही सेना द्वारा खुकुरी–नृत्य और ४०० जवानों द्वारा बैण्ड का सुमधुर कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाएगा। नेपाल की विभिन्न जन–जातियों की वेष–भूषा को प्रदर्शित करने वाले कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये जाएँगे।

इन स्पर्द्धाओं को व्यवस्थित रूप से कराने के लिए नेपाल सरकार ने तैराकी एवं निशानेबाजी के लिए करोड़ों रुपये की लागत से दो नये स्पोर्ट्स काम्प्लेक्सों का निर्माण कराया है और दशरथ रंगशाला स्टेडियम का पुनर्निर्माण कर सेन्थेटिक ट्रैक और रात्रि में खेल संचालन के लिए शक्तिशाली विद्युत–व्यवस्था की गई है। ❒

प्रस्तुति– रमेश घिमिरे,
जी.पी.ओ., पोस्ट बॉक्स नं०– १५७६, काठमाँडू

गणेशोत्सव का आयोजन

अखिल भारतीय नवोदित साहित्यकार परिषद् सीधी (म०प्र०) द्वारा गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी विशाल एवं भव्य गणेशोत्सव १३ सितम्बर से २३ सितम्बर ९९ तक स्थानीय मानस भवन में आयोजित किया जायेगा; जिसमें प्रथम दिवस भगवान् श्रीगणेश की प्रतिमा स्थापना से लेकर संगोष्ठी, नाटक, विभिन्न विद्यालयों के छात्र/छात्राओं के तीन दिवसीय अनेक प्रतियोगिताएँ तथा श्री विश्वकर्मा जयन्ती पर भव्य कवि सम्मेलन, विचार गोष्ठी एवं विविध कलाओं को समर्पित अनेक कार्यक्रम होंगे।

अस्थिर सरकार तथा नातियथार्थवादी नेतृत्व के कारण देश के भीतर राष्ट्र-विरोधी तथा पृथकतावादी तत्त्व अधिक सक्रिय हो गये हैं और बाहर से पाकिस्तान और चीन का दबाव बढ़ रहा है, फलस्वरूप देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा खतरे में पड़ गयी है। पाकिस्तान द्वारा नियन्त्रण-रेखा का उल्लंघन करते हुए कारगिल-क्षेत्र में युद्ध जैसे हालात पैदा करने से स्थिति और भी चिन्ताजनक हो गयी है।

पाकिस्तान का उद्देश्य किसी भी प्रकार से काश्मीर घाटी को हथियाना है। साथ ही वह लद्दाख को काश्मीर तथा शेष भारत से काटना चाहता है। इसमें उसे चीन से भी प्रश्रय प्राप्त है। पाक अतिक्रमण कारगिल-क्षेत्र में श्रीनगर-लेह मार्ग के काटने और काश्मीर घाटी के पूर्व से भी पाकिस्तान-अधिकृत-क्षेत्र से घिर जाने का खतरा पैदा हो गया है।

द्वारा स्थायी बनाने और अपने विदेशी अभिभावकों को यह बताना था कि वह तो शान्ति और समझौता चाहता है; परन्तु भारत ऐसा नहीं करता। इसलिए भारत सरकार का यह आग्रह कि बातचीत केवल सीमा के अतिक्रमण के मुद्दे पर ही होगी, उचित था।

भारत के शासक और राजनेता ५० वर्षों के कटु अनुभव के बाद भी यह नहीं सीखे कि पाकिस्तान का अस्तित्व हिन्दुस्तान और हिन्दुओं के विरुद्ध शत्रुता और जिहाद की भावना बनाये रखने पर कायम है। काश्मीर एक बहाना है। यदि काश्मीर उसे दे भी दिया जाये, तो भी वह कोई और बहाना ढूँढ़कर हिन्दुस्तान के विरुद्ध जिहाद की भावना बनाये रखेगा। यह स्थिति तब तक कायम रहेगी, जब तक पाकिस्तान कायम है। इसलिए पाकिस्तान के साथ एक निर्णायक-युद्ध अनिवार्य है। वह युद्ध हिन्दुस्तान को सिन्ध और पंजाब में लड़ना होगा,

क्या यह निर्णायक युद्ध की शुरुआत है ?

– प्रो० बलराज मधोक
(भूतपूर्व सांसद)

पाक अधिकृत गिलगित और बलतिस्तान क्षेत्र में पाकिस्तान की लाजिस्टिक और सामरिक स्थिति भारत से बहुत बेहतर है। वहाँ उसने सड़कों, हवाई अड्डों और सैनिक अड्डों का जाल बिछा रखा है। स्थानीय लोग उसके साथ हैं। वहाँ से सभी हिन्दू या तो मार दिये गये हैं या खदेड़ दिये गये हैं। इसलिए भारत को उस क्षेत्र में उलझाना उसके हित में है। वह अतिक्रमण करने और नियन्त्रण-रेखा के इस पार अपनी चौकियाँ और बंकर बनाने का काम कई महीनों से कर रहा था। प्राप्त जानकारी के अनुसार जब भारत के प्रधानमन्त्री लाहौर जा रहे थे, उस समय पाकिस्तान कारगिल क्षेत्र में अपने पाँव जमा रहा था। इस प्रकार एक ओर पाकिस्तान ने भारत के राजनैतिक नेतृत्व को 'बुद्धू' बनाया और दूसरी ओर भारत के नेताओं के 'हिन्दी-पाकी भाई-भाई' के नारों ने भारतीय सेना की सतर्कता और मनोबल पर विपरीत प्रभाव डाला। उनकी भूल की क़ीमत अब समस्त भारत और विशेष रूप से उसके बहादुर सैनिक जवान और अफसर चुका रहे हैं।

पाकिस्तान द्वारा अपने विदेश मन्त्री सरताज अजीज को भारत भेजने का उद्देश्य अपने सैनिक लाभ को कूटनीति

जहाँ सामरिक और लाजिस्टिक स्थिति भारत के अनुकूल है। सन् १९६५ और १९७१ के युद्धों का भी यही अनुभव और सीख है।

पाकिस्तान ने अप्रत्यक्ष युद्ध तो छेड़ ही रखा है, इसमें भारत की सैनिक और आर्थिक शक्ति आहत हुई है, इसलिए इसको जारी रखना पाकिस्तान के हित में है। अणु बमों के इस्तेमाल का डर दिखाकर पाकिस्तान भारत का भयादोहन (ब्लैकमेल) कर रहा है। उसे आवश्यकता महसूस हुई, तो वह भारत के विरुद्ध अणुबम का उपयोग करने में नहीं हिचकेगा। इसलिए भारत को पाकिस्तान से निर्णायक-युद्ध देर-सबेर लड़ना ही पड़ेगा। यह भी स्पष्ट है कि अब की बार पाकिस्तान के भारत के अन्दर के एजेण्ट भी खुलकर सामने आयेंगे और गृहयुद्ध की स्थिति पैदा करेंगे। आई०एस०आई० इसी हेतु अपना जाल सारे हिन्दुस्तान में फैला रही है।

हिन्दुस्थान को इस सम्भावित निर्णायक-युद्ध, जो वास्तव में शुरू हो ही चुका है, जीतने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा। इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता देश में प्रखर राष्ट्रवाद की भावना जगाना है।

दूसरी आवश्यकता देश में फैले पाकिस्तान-परस्तों पर कड़ी नजर रखने की है। यह काम देश की साधारण

राष्ट्रवादी जनता को करना होगा। पाकिस्तान का प्रयास होगा कि भारत के अन्दर गृहयुद्ध की स्थिति पैदा करके सेना को देश के अन्दर उलझाया जाये। उसकी इस चाल को असफल करने के लिए राष्ट्रवादी तत्त्वों की सतर्कता अति आवश्यक है।

तीसरी आवश्यकता कूटनीति को सुरक्षानीति के अनुरूप बनाना और भारत का पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर ठीक ढंग से पेश करना है। अभी तक भारत, पाकिस्तान के साथ हुए युद्धों में भारत के जवानों द्वारा जीती हुई बाजियों को कूटनीति की मेज पर हारता रहा है, यह गलती फिर नहीं होनी चाहिए।

चौथी आवश्यकता जम्मू–काश्मीर में अपने घर को ठीक करने की है। इसके लिए पहली आवश्यकता अन्दर चलनेवाले आतंकवाद को सख्ती से दबाना है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि भारत सरकार पर्यटकों के काश्मीर जाने को काश्मीर की स्थिति में सुधार की कसौटी मानकर अपने आपको एक प्रकार से धोखा दे रही है और देश को भी। काश्मीर में पर्यटक इसलिए जा रहे हैं, क्योंकि इस्लामवादी संगठन हुर्रियत कान्फ्रेंस और उसके इशारे पर चलनेवाले आतंकवादियों ने सोची–समझी रणनीति के अनुसार पर्यटकों को तंग न करने की नीति बनायी है। इसके दो उद्देश्य हैं; एक है काश्मीरियों को पर्यटकों से धन कमाने का अवसर देना तथा दूसरा है अन्तर्राष्ट्रीय जनमत को अपने पक्ष में प्रभावित करना। अब उनका प्रमुख निशाना भारतीय सैनिक और जम्मू क्षेत्र के हिन्दू हैं, उनकी हत्याएँ लगातार हो रही हैं। इसलिए काश्मीर की स्थिति में सुधार की बात सरासर मिथ्या है।

जम्मू–काश्मीर के प्रशासन में पाकिस्तानी एजेण्ट बड़ी संख्या में घुसे हैं। इस कारण वह प्रशासन आतंकवादियों का सहायक सिद्ध हो रहा है और वे अपनी गतिविधियाँ जम्मू और लद्दाख क्षेत्र में भी फैला रहे हैं। इसलिए आवश्यक है कि लद्दाख और जम्मू को प्रशासनिक दृष्टि से अविलम्ब काश्मीर–घाटी से अलग किया जाय और उनके प्रशासन को पाक एजेण्टों से मुक्त करके चुस्त–दुरुस्त किया जाय। इसके बिना जम्मू और लद्दाख को भी बचाना कठिन हो जायेगा। यह सारे देश की एकता और सुरक्षा से जुड़ा मामला है। इसलिए इसमें किसी प्रकार का विलम्ब करना राष्ट्रघाती सिद्ध होगा।

काश्मीर–घाटी को अधिक स्वायत्तता दी जा सकती है; किन्तु ऐसा करने से पूर्व वहाँ से निकाले गये पाँच लाख के लगभग काश्मीरी हिन्दुओं को पुनः बसाने के लिए घाटी के दक्षिणी भाग में सुरक्षित क्षेत्र देने की माँग माननी होगी और इसे कार्य–रूप देने के लिए उचित पग शीघ्र उठाने होंगे। उनका भी काश्मीर घाटी पर अधिकार है। वे सारी घाटी में बिखरे हुए अपने पुराने घरों में वापिस नहीं जा सकते। बोस्निया के मुसलमानों की तरह, जिन्हें बोस्निया के एक भाग में बसा दिया गया है, उन्हें भी घाटी के अन्तर्गत एक स्वायत्त–क्षेत्र देना होगा।

देश की सुरक्षा का प्रश्न सारे राष्ट्र का मामला है, किसी एक दल का नहीं। अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पाकिस्तान के विरुद्ध हर मोर्चे पर पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए सभी दलों, वर्गों, संगठनों को अपने निजी एवं दलीय स्वार्थों को सम्प्रति तिलाञ्जलि देकर समवेत स्वर तथा समन्वित प्रयत्नों की आधारभूमि पर खड़ा होना होगा और पाकिस्तान रूपी इस 'पाप–ग्रह' से भारतवर्ष ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को मुक्ति दिलाने की आर–पार की लड़ाई लड़ी जाने के लिए कटिबद्ध होना होगा; क्योंकि इस्लामी आतंकवाद के सम्पोषक एवं निर्यातक कृत्रिम–रूप से निर्मित इस देश का बना रहना विश्व–शान्ति के लिए भी सबसे बड़ा खतरा है। □

— जे ३६४, शंकर मार्ग, नई दिल्ली–११००६०

हम वचनबद्ध थे...

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र'

हम सदा सन्धि की बात करते रहे,
जिनको करना था, उत्पात करते रहे।
आदि मानव–प्रकृति तो गयी ही नहीं;
इसलिए छिपके आघात करते रहे।
जल–धरा बँट गये; धर्म में, जाति में,
भूख का एक अनुपात करते रहे।
देवता–रूप में दैत्य पुजने लगे;
अर्चना उर के जलजात करते रहे।
हम बचनबद्ध थे, अस्त्र छूना न था;
इष्ट का जाप दिन–रात करते रहे।
खेत से एक दाना भी आया न घर,
ऐसा मिलकर उपल पात करते रहे।
सीख का एक अक्षर भी माना नहीं;
देवगुरुओं से अपघात करते रहे।

— ए–१४८५/७, इन्दिरानगर, लखनऊ–२२६०१६

व्यंग्य

सड़क संवाद

– सुधीर ओखदे

चलती सड़क पर एक युवक अचानक चलते–चलते बेहोश हो गया। पता ही न चला, एकाएक वह लहराया और चक्कर खा कर नीचे गिर पड़ा।

भारतवर्ष की परम्परा रही है, यहाँ लोग गिरने वाले के इर्द–गिर्द हमेशा जमावड़ा लगा लेते हैं। सो उस लहरा कर गिरे युवक के इर्द–गिर्द भी भीड़ जमा हो गयी।

भीड़ हमेशा विद्वानों से भरी होती है। जितने मुँह, उतनी बातें। और हर मुँह दुर्गन्ध छोड़ने के मामले में एक से आगे। भीड़ सर्वथा अनजान लोगों के समूह को कहा जाता है। एक–दूसरे से सर्वथा अपरिचित लोग पता नहीं किसे प्रभावित करने के उद्देश्य से विद्वत्ता प्रदर्शित करते रहते हैं।

एक बोला, बेकारी भी देखो, व्यक्ति को कहाँ–कहाँ गिराती है। चेहरे से पढ़ा–लिखा लगता है। स्वतन्त्रता के इतने वर्षों उपरान्त भी इसका इस प्रकार त्योंरा कर गिरना हमारे देश की अधोगति का सूचक है। जिस देश के युवा इस तरह चलती सड़क पर लहराकर गिरते रहेंगे, वह देश क्यों कर प्रगति कर सकेगा ? इसी तरह लहराकर गिर नहीं पड़ेगा।

एक बूढ़ा बोल उठा, इसे अस्पताल पहुँचाओ। यह मर जाएगा। उसकी बात की तरफ कतई ध्यान न देते हुए दूसरा बोला, यह सरकार तो नहीं चलने वाली। गरीबी की बात तो सुनी थी भैया, पर उसका साक्षात्कार इतना विकट होगा, यह न सोचा था। गरीबी भी देखो, आदमी को कहाँ से कहाँ पर लाकर पटकती है। चलती सड़क पर एक गरीब का लहराकर गिरना किसी राष्ट्रीय अखबार की सुर्खी चाहे न बन सके; पर हर संवेदनशील दिल की सुर्खी बनने से उसे कोई नहीं रोक सकता।

इसे अस्पताल पहुँचाओ, वह बूढ़ा फिर बोल उठा।

आप सरकार को क्यों दोष देते हैं जी ! आप लोग भी अजीब हैं। हर किसी बात का दोष सरकार पर मढ़ने में माहिर हैं। असम में बाढ़ आये, तो सरकार दोषी, पश्चिम बंगाल में तूफानी हवा चले, तो सरकार दोषी; किसी प्रान्त में भूकम्प आये, तो भी सरकार दोषी। यार ! सरकार को हर छोटी–मोटी समस्या में घसीटोगे, तो सरकार कमजोर नहीं होगी तो क्या होगी ?

इसे अस्पताल पहुँचाओ, नहीं तो यह मर जाएगा– बूढ़ा फिर बोला।

समस्या अस्पताल पहुँचाने की नहीं है बूढ़े बाबा। समस्या है इसकी हालत की। क्या पता बचे, क्या पता न बचे। बच गया तब भी मुसीबत और न बचा तो भी मुसीबत। भैया ! पुलिस तो ऐसे मामले में सरकार की मदद करनेवाले से भी दुश्मनों–सा व्यवहार करती है।

हाँ भैया ! ठीक कहा तुमने। मैंने भुगता है कहर पुलिस का। एक सज्जन का स्वर गम्भीर होता चला गया। पुलिस से हुई मुलाकात का केवल जिक्र ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को एक बार पुनः हिला देने के लिए काफी था। उसे याद आया, एक दिन उसके पड़ोस में चोरी हुई थी। पुलिस जब मोहल्ले में आयी, तो मोहल्ले का वातावरण 'वन–डे क्रिकेट मैच' की तरह हो गया। सबकी खिड़की दरवाजे बन्द। एक वह ही मूरख दतून करते बाहर बैठा था। तो सरकारी गाज तो गिरनी ही थी, सो गिरी। उसे बाहर बैठें देखते ही पुलिस का प्रेम संवाद उससे आरम्भ हो गया।

क्या करता है बे ?

दतून कर रहा हूँ।

बाहर दतून क्यों कर रहा है ?

रोज बाहर ही दतून करता हूँ।

कितने वर्षों से दतून कर रहा है ?

जब से दाँत आये।

इतने वर्षों से यहीं बैठ कर दतून कर रहा है ?

नहीं। कभी–कभी घर के भीतर भी दतून करता हूँ ?

किस मानसिक स्थिति में घर के भीतर दतून करता है ?

जब तबियत ठीक नहीं होती।

दतून करते समय यहाँ–वहाँ देखता है या सिर्फ दतून ही करता है ?

देखता भी हूँ।

क्या देखता है ?

लोगों का आना–जाना, भाग–दौड़, सब कुछ।

तेरे पड़ोस में चोरी हुई। तूने कुछ देखा ?

नहीं।
नहीं ?
नहीं।
अबे ! वर्षों से दतून कर रहा है और कहता है कुछ नहीं देखा।
मेरा विश्वास करो सरकार। मैंने कुछ नहीं देखा।
पर सरकार ने कहाँ विश्वास किया था उस पर। उन यंत्रणाओं को स्मरण कर आज भी उसका परिवार पुलिस को देखते ही विपरीत दिशाओं में भागने लगता है। अचानक उसे भीड़ में सरकारी कपड़े की झलक मिली और वह नेताओं के चरित्र की तरह वहाँ से एकाएक गायब हो गया।
खाकी कपड़े की ताकत का ही परिणाम कहिये। भीड़ तेजी से छटने लगी और खुली हवा उस नौजवान तक पहुँचने लगी। बूढ़े बाबा ने न जाने कहाँ से पानी का प्रबन्ध कर लिया था। नौजवान पर पानी के छींटे पड़ते ही उसमें हरकत आरम्भ हो गयी और वह उठ खड़ा हुआ।
बूढ़े ने राहत की साँस ली और नौजवान के कंधे को थपथपाकर वह आगे निकल गया। उधर सरकारी वर्दी और उस नौजवान के मध्य चल रहे संवादों को कई भुक्त–भोगी दूर से ही महसूस कर रहे थे।
नाटक के अन्तिम दृश्य में युवक का हाथ अपनी जेब में गया और बाहर निकलने के बाद पुलिस वाले के हाथों सें मिला। एक बार फिर ऐसा लगा कि वह युवक लहराकर गिरने वाला है।
चिलचिलाती धूप में सड़क पर निकलने का टैक्स वह भर चुका था। वह त्योंरा कर क्यों गिरा था, इसका कारण अब भी अज्ञात है। ❐

– III/२ आकाशवाणी कालोनी, जलगाँव –४२५००१ (महा०)

घुल गया कैसा जहर वातावरण में

– कमल किशोर तिवारी 'भावुक'

दिख रहे कुछ लोग उजले आवरण में।
कालिमा जिनके भरी अन्तःकरण में।

पुल भले हों नित्य बातों के बनाते,
है बड़ा ही भेद लेकिन आभरण में।

भावनाएँ तो नहीं समझें तनिक भी,
दोष लेकिन ढूँढ़ते हैं व्याकरण में।

दोस्ती की जगह ले ली दुश्मनी ने,
आपसी सौहार्द नफरत की शरण में।

आदमी सन्त्रास जीने को विवश है,
घुल गया कैसा जहर वातातरण में।

रोशनी की तस्करी भी रोज होती,
नित्य ही जलतीं मशालें जागरण में।

वास्तव में उन्हें ही ब्याही अमरता,
जिन्दगी जो खोज लेते विजय–रण में।

– 'कान्ति–कुञ्ज', ११, बुद्ध विहार, आलमनगर (रेलवे स्टेशन के सामने, हनुमान– मन्दिर के पीछे), लखनऊ– २२६०१७

शिक्षक दिवस ५ सितम्बर (डॉ. राधाकृष्णन् का जन्म दिन) पर विशेष

प्रेरक प्रसंग

डॉ. राधाकृष्णन् हाजिर-जवाबी में मशहूर थे। एक बार वे इंग्लैण्ड गये। विश्व में उन्हें हिन्दू-दर्शन के परम विद्वान् के रूप में जाना जाता था। तब देश परतंत्र था। बड़ी संख्या में लोग उनका भाषण सुनने के लिए आये थे। भोजन के दौरान एक अंग्रेज ने डॉ. राधाकृष्णन् जी से पूछा– 'क्या हिन्दू नाम का कोई समाज है ? कोई संस्कृति है ? तुम कितने बिखरे हुए हो ? तुम्हारा एक-सा रंग नहीं है– कोई गोरा है, कोई काला, कोई बौना, कोई धोती पहनता है– कोई लुंगी; कोई कुर्ता, तो कोई कमीज। देखो, हम अंग्रेज सब एक जैसे हैं। सब गोरे-गोरे, लाल-लाल'। इस पर डॉ. राधाकृष्णन् ने तपाक से उत्तर दिया, 'घोड़े अलग-अलग रंग के होते हैं, पर गधे एक जैसे होते हैं। अलग-अलग रंग और विविधता विकास के लक्षण होते हैं।'

– गोविन्द शर्मा 'भारद्वाज', प्रवक्ता, इतिहास
के.डी. जैन. महिला महाविद्यालय, मदनगंज-किशनगढ़ - ३०५८०१ (राजस्थान)

राष्ट्रभाषा हिन्दी क्यों ?

- आनन्द शंकर पंड्या

आज भारत में अलगाववाद, प्रान्तवाद, भाषावाद इत्यादि सिर उठा रहे हैं और देश की एकता व स्वतन्त्रता खतरे में है, उसका मूल कारण यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ विश्वासघात किया गया। यह विश्वासघात ५० वर्ष से भारत की भाषा, संस्कृति, धर्म और जनता के साथ किया जा रहा है।

यद्यपि सारे देश में हिन्दी समझी जाती है। अफ्रीका, मारीशस, सूरीनाम, दुबई, अरब देश, पाकिस्तान, बांग्ला देश, नेपाल, सिक्किम, श्रीलंका, थाइलैण्ड तथा अन्य कई देशों में हिन्दी समझी जाती है, वहाँ हिन्दी फिल्में देखी जाती हैं। सैकड़ों वर्ष से भारत देश के कोने-कोने में घूमनेवाले यात्रियों का काम हिन्दी में ही चलता रहा है। १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर तथा भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का संचालन गांधी, नेहरू, तिलक, लाला लाजपतराय और राजगोपालाचारी इत्यादि ने हिन्दी में ही किया था। जिसमें प्रत्येक नेता के भाषण हिन्दी में ही हुआ करते थे। इस तरह हिन्दी आजादी के संघर्ष की भी भाषा है। अंग्रेजी ने स्वतन्त्रता के संग्राम में कोई भाग नहीं लिया; क्योंकि यह दासता की भाषा है और दासता की निशानी है।

आजाद भारत में दूरदर्शन पर हिन्दी में ही प्रसारण होता है। हिन्दी सिनेमा सारे भारत के लोग देखते और समझते हैं; परन्तु आज हिन्दी एक नौकरानी और अंग्रेजी उसकी मालकिन बनी हुई है। यह राजनैतिक षड्यन्त्र का परिणाम है।

आज अंग्रेजी सीखने के लिए लोग अपने बच्चों को कान्वेण्ट स्कूलों में पढ़ाते हैं, जहाँ तुलसीदास, सूरदास, कबीर, रसखान, मलिक मुहम्मद जायसी इत्यादि की चरित्र निर्माणकारी कविताएँ व दोहे नहीं पढ़ाये जाते। अंग्रेजी लेखकों के ग्रंथ पढ़ाये जाते हैं। अंग्रेजी सीखने के लिए लोग अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते हैं, अंग्रेजी सिनेमा देखते हैं, अंग्रेजी क्लबों में जाते हैं, जहाँ वे पाश्चात्य संस्कृति की बुराइयों की नकल करना सीखते हैं और अपनी संस्कृति, नैतिक मूल्य व भाषा को हीन समझकर अपनी बहुमूल्य धरोहर से दूर होते जा रहे हैं। इससे देश में अनेकता और भ्रष्टाचार बढ़ रहे हैं।

हिन्दी हृदय की भाषा है। जिन परिवारों में माँ बाप अपने बच्चों से अंग्रेजी में बातें करते हैं, वहाँ अपनेपन, विश्वास और आदर का अभाव रहता है। ये परिवार रामायण, सूरदास और मीरा के भजन से दूर ही रहते हैं।

ये लोग कहते हैं कि अंग्रेजी भाषा भारत में एकता स्थापित करेगी, उसके वैज्ञानिक तथा व्यापारिक विकास में मदद देगी पर सच्चाई बिलकुल उल्टी है।

इतिहास का अनुभव है कि विदेशी भाषा से जनता में दासता, हीनता की भावना तथा नकल करने की आदत पड़ जाती है। जनता में मौलिकता, आत्मसम्मान तथा राष्ट्रीयता की भावना नष्ट हो जाती है। भारत में ५० वर्ष से यही हो रहा है। अंग्रेजी भाषा में भारत के गौरव और देश-भक्ति की कोई कविताएँ नहीं हैं जबकि हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थी हिन्दी में इस तरह की कविताएँ पढ़ते हैं। इससे उनमें अपने देश के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। "जय जवान, जय किसान" जैसे उत्साहवर्द्धक नारे हिन्दी में ही हैं। अंग्रेजी में नहीं। एक हिन्दी का गीत है "यह देश मेरा, धरा मेरी, गगन मेरा, इसके लिए बलिदान हो प्रत्येक कण मेरा"। अंग्रेजी में ऐसा कोई गीत भारत देश के लिए नहीं है। अंग्रेजी का उपनिवेशवादी स्वभाव "फूट डालो और राज्य करो" (डिवाइड एण्ड रूल) का है। इससे देश का प्रत्येक प्रान्त यूरोप की तरह अलग-अलग देशों में बँट जायेगा। लार्ड बेण्टिक अंग्रेजी को देश में मतभेद पैदा करके राज्य करने का एक अच्छा साधन मानते थे। अंग्रेजी भाषा राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के बीच फूट डालती है। यदि अंग्रेजी की प्रधानता न होती तो हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में सद्भावना होती तथा उन सबकी बहुत उन्नति होती। अंग्रेजी जनता के विभिन्न वर्गों के बीच खाई बढ़ाती है, ऊँचनीच की भावना पैदा करती है और सामन्तशाही, लालफीताशाही को बढ़ाकर लोकतन्त्र को कमजोर करती है। क्योंकि वह सुविधा प्राप्त वर्ग की भाषा है।

अंग्रेजी समर्थकों में अपने देश की भूखी-नंगी प्रजा के प्रति कोई सहानुभूति तथा अपनेपन की भावना नहीं है। वे विदेश में रहने वाले लोगों को अपने अधिक नजदीक समझते हैं। इसी से अंग्रेजी पढ़े-लिखे अफसर इन ५० वर्षों में इस देश की समस्याओं का कोई हल नहीं निकाल सके हैं, उनमें व्यावहारिकता नहीं है और न देश का कल्याण करने की लगन है। अंग्रेजी शिक्षा, झूठा

दिखावा, नकल और फिज़ूलखर्ची बढ़ाकर अवश्य जैसे गरीब देश में भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन दे रही है।

लाल बहादुर शास्त्री में हिन्दी भाषा के प्रति बहुत प्रेम था, इससे वे इस देश की मिट्टी से जुड़े हुए थे और उन्होंने १८ महीने में वह काम करके दिखा दिया जो विदेशों में शिक्षा प्राप्त अंग्रेजी प्रेमी नेहरू १८ साल में भी नहीं कर सके थे। गांधीजी भी अंग्रेजी से दूर रहकर जनता को जाग्रत कर सके। वे कहते थे कि "जो हिन्दी का विरोध करता है, वह या तो अज्ञानी है या फिर कुटिल है।"

अंग्रेजी भाषा जब आम जनता पर लादी जाती है, तो गाँव तथा छोटे शहरों के गरीबों का बहुत शोषण होता है क्योंकि वे अंग्रेजी की शिक्षा पर उतना धन नहीं खर्च कर सकते और अपने बच्चों को कान्वेण्ट स्कूलों में नहीं भेज सकते इससे उन्हें उन्नति का समान अवसर नहीं मिलता।

विद्यार्थियों की दूसरी हानि यह है कि उन्हें जो समय विज्ञान टेक्नालोजी व गणित सीखने में खर्च करना चाहिए वह सब समय व बुद्धि अंग्रेजी सीखने में ही खर्च हो जाती है और साधारण बुद्धि के विद्यार्थियों पर बहुत बोझ पड़ जाता है, जिससे उनकी मौलिकता व प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है। अपनी मातृभाषा में प्राप्त ज्ञान ही स्थायी होता है। अंग्रेजी भाषा के द्वारा भारत हमेशा के लिए विदेशों की नकल करनेवाला राष्ट्र बनकर रह जायेगा। फ्रांस, जर्मनी, जापान देश अपनी ही भाषा में विज्ञान और व्यापार की जबरदस्त उन्नति कर रहे हैं। वे जहाँ बहुत आवश्यकता पड़ती है सिर्फ वहीं विदेशी सम्बन्धों में अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं, अपने देश के अन्दर नहीं। इससे उनमें आत्मसम्मान व आत्मगौरव की भावना बढ़ी है।

पर हजार वर्ष की गुलामी के कारण भारत में आजादी के ५० वर्ष बाद भी अंग्रेजी चल रही है, बल्कि दौड़ रही है। यह हमारे शासकों में दासता की निशानी है। स्वाधीनता के बाद हम गांधी विचारधारा से कोई लाभ नहीं उठा सके; क्योंकि अंग्रेजों द्वारा पाश्चात्य विचारधारा भारत पर छा गयी।

अंग्रेजी उद्योग, व्यापार, कृषि उत्पादन से दूर

लार्ड मैकाले ने १८३५ में कहा था कि "**पहले भारत में एक ऐसा वर्ग बनाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए, जो हमारे देश की शासित जनता के बीच दुभाषिये का काम कर सके। उस वर्ग का रंग और खून तो भारतीय हो; पर रुचि, मनोवृत्ति, विचार और चरित्र अंग्रेजी परम्परा का हो।**" (पृष्ठ १४ दी वेस्टर्न एजूकेटेड मेन इन इण्डिया) पर इन अंग्रेजी समर्थकों ने देश के औद्योगिक उत्पादन व्यापार, कृषि इत्यादि उन्नति में ५० वर्ष में कोई भाग नहीं लिया।

देश के व्यापारी वर्ग ने अपनी परम्परागत सूझ-बूझ के कारण ही आजादी के बाद भारत में बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे शुरू किये, वे अंग्रेजी मदद से नहीं किये। अंग्रेजी पढ़ने वालों ने तो सिर्फ नौकरियाँ ही कीं। बिरला-परिवार में २ पीढ़ी तक कोई कालेज में पढ़ने नहीं गया था, फिर भी उन्होंने देश में खूब व्यापार बढ़ाया।

अंग्रेजी का थोड़ा महत्त्व

इसका अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेजी का उपयोग नहीं है। आज अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है और विदेशों का व्यापार, विदेशों की राजनीति, साहित्य, विज्ञान इत्यादि में अंग्रेजी की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, पर उसके लिए भारत के ६० करोड़ मजदूरों व किसानों को अंग्रेजी सिखाने की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी को रानी और हिन्दी को उसकी दासी बनाने की आवश्यकता नहीं है। दुनिया के किसी भी देश में विदेशी भाषा की ऐसी गुलामी नहीं है।

हिन्दी विरोध से दक्षिण की उन्नति रुकी

दक्षिण भारत के लोग बहुत बुद्धिमान हैं, परन्तु हिन्दी भाषा न जानने के कारण वे सिर्फ अपने ही प्रान्त में नौकरी करते हैं। वहाँ के गरीब लोग भारत में कहीं भी जाकर नौकरी नहीं कर पाते और उन्हें कम तनख्वाह में ही अपने प्रान्त में गुजारा करना पड़ता है। दक्षिण के लोग सारे भारत में व्यापार में भी आगे नहीं बढ़ पाते। राष्ट्रीय नेता भी नहीं बन पाते। दक्षिणवालों को अब अपनी यह भूल महसूस हो रही है और वे हिन्दी सीखने लगे हैं।

आज हमें निरन्तर यह प्रचार करना है कि अंग्रेजी से लाभ थोड़ा है, पर हानि बहुत अधिक है। हिन्दी देश का हृदय है। इतिहास बतलाता है कि किसी भी देश के केन्द्र में जो भाषा बोली जाती है, वही सारे राष्ट्र की भाषा हो सकती है अन्य कोई नहीं। इस तरह हिन्दी स्वाभाविक रूप से राष्ट्रभाषा है। जब हिन्दी सारे देश में स्थापित होगी सिर्फ, २-३ प्रान्तों में ही नहीं, तभी देश में एकता होगी, राष्ट्रीय भावनात्मक एकीकरण होगा। प्रान्तवाद और अलगाववाद खत्म होगा तथा भारत का कल्याण होगा। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। ■

— १४०१, प्लेसेन्ट पैलेस, १६ एन०डी० रोड, मुम्बई-६

पठनीय पुस्तकें

– मीनाक्षी दीक्षित

"महामुनि अगस्त्य"

लेखक– रामनाथ नीखरा, **प्रकाशक** – राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली–११०००२, **पृष्ठ संख्या**– २१६, **मूल्य**– १५० रुपये

अगस्त्य अयोनिज हैं। अगस्त्य घटज हैं, कुंभज हैं। अगस्त्य के आदेश से विन्ध्याचल आज तक झुका खड़ा है। अगस्त्य ने मात्र अञ्जलियों में भरकर समुद्र को पी लिया था। अगस्त्य के पास अक्षय तूणीर था, जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते थे। ऐसी न जाने कितनी चामत्कारिक कथाएँ अगस्त्य के सम्बन्ध में प्रचलित हैं, जो उन्हें ऋषित्व से परे ले जाकर रहस्यों के अवगुण्ठन में छिपा देती हैं। रहस्य अधिक हों, तो आत्मीयता और भक्ति का स्थान कम हो जाता है। अप्राप्यता उपेक्षा को जन्म दे देती है।

संभवतः यही कारण रहा होगा कि अगस्त्य जैसे महर्षि पर, जिसने श्रीराम से भी पूर्व आर्य संस्कृति के उत्थान का कार्य प्रारम्भ किया था, अभी तक कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया। अगस्त्य का उल्लेख ऋग्वेद, सामवेद वाल्मीकि रामायण में यत्र–तत्र मिलता है। ऋषि पत्नी 'लोपामुद्रा' पर तो कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी का उपन्यास "लोपामुद्रा" उपलब्ध है, किन्तु ऋषि पर इस प्रकार के उपन्यास की आवश्यकता थी।

लेखक ने अगस्त्य को अपने उपन्यास का विषय बनाकर निश्चय ही सराहनीय कार्य किया है। अगस्त्य के चतुर्दिक घिरे रहस्यों को वैज्ञानिक विवेचना के द्वारा स्पष्ट करते हुए लेखक ने अगस्त्य को मानवीय संवदेना से जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। मित्रावरुण और उर्वशी के पुत्र घटज हैं, यह एक वैज्ञानिक विधि है, जिसके प्रयोग से जन्म लेनेवाले परखनली शिशु आज सामान्य हैं।

इसी प्रकार तीन अञ्जलि में समुद्र पी जाने की घटना और अक्षय तूणीर का भी सम्यक् वैज्ञानिक विवेचन है, जो आज के तर्कशील युवा पाठक को भी आकर्षित करने में सक्षम है। ऋषि पत्नी लोपामुद्रा के रूप में शस्त्र और शास्त्र गर्विता नारी; वैदिक संस्कृति में नारी की स्थिति को स्पष्ट करती है।

विन्ध्य पर्वत को पार कर दक्षिण भारत में प्रवेश कर राष्ट्रीय अखण्डता के हित में अगस्त्य ने जो महान् कार्य किये यथा कालकेयों की शक्ति का अन्त; शम्बर तथा इल्वल–बिल्वल जैसे दुष्टों का समापन, साथ ही "सर्वे भवन्तु सुखिनः" के आर्य संस्कारों की प्रतिष्ठा, उसमें कई प्रसंग वर्तमान को दिशा देने में सक्षम हैं। पौराणिक तथ्यों और वैज्ञानिक विवेचना के बीच मनन–चिन्तन, दर्शन और मानसिक द्वन्द्व के भी लम्बे प्रसंग हैं लेकिन यह लेखक की श्रेष्ठता ही कही जायेगी कि उसने इन सभी प्रसंगों को नीरस होने से बचाने का प्रयत्न किया है और सफल भी रहा है।

भाषा विशुद्ध, परिमार्जित संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है, जो यद्यपि प्रसंग और विषय के अनुकूल है, तथापि कुछ शब्द इतने अपरिचित और अप्रचलित हैं कि वे रसभंग का कारण बन जाते हैं। भाषा का स्तरीयता के साथ–साथ सुगम्यता का ध्यान भी रखा गया होता, तो न केवल पाठकों को रस अधिक मिलता; वरन् उनकी संख्या भी बढ़ती। उदाहरण स्वरूप, "ऋषि को गलदश्रु हो आया" यहाँ गलदश्रु शब्द न केवल कठोर लगता है, वरन् अप्रचलित होने के कारण पाठक को वह जुड़ाव भी नहीं देता, जो अपेक्षित है। यदि इस एक कमी को छोड़ दिया जाये, तो पुस्तक निःसन्देह पठनीय और संग्रहणीय है।

श्रीमान् योगी - खण्ड - १

लेखक– रणजीत देसाई (मूल–मराठी), **अनुवाद** – प्रो० वेद कुमार वेदालंकार, **प्रकाशक**– राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली–११०००२, **पृष्ठ संख्या**– ४४५, **मूल्य**– ३०० रु०।

मुगलिया सल्तनत हिन्दुस्थान के अधिकांश हिस्सों पर अपना अधिकार जमा चुकी थी। तात्कालिक लाभ और स्वार्थ के चलते राजा–महाराजा मुगलों की बंदगी करने की होड़ में लगे थे। आम जनता भय की मारी थी। इन स्थितियों में एक महानायक का जन्म हुआ। वस्तुतः इसे जन्म नहीं वरन् निर्माण कहना चाहिए। माँ जीजाबाई और गुरु के मार्गदर्शन में एक किशोर ने हिन्दू–राष्ट्र के निर्माण का बीड़ा उठा लिया। औसत कद–काठी का सामान्य–सा दिखनेवाला किशोर शिव अपनी तेजस्विता, वीरता, दृढ़–संकल्प, श्रेष्ठ युद्धनीति और कुशल राजनीति से युवा होते–होते कैसे नायक और कालान्तर में सम्पूर्ण

राष्ट्र का महानायक छत्रपति शिवाजी बन गया। इसी की गाथा है श्रीमान् योगी। उपन्यास दो खण्डों में है और प्रथम खण्ड में बालक शिव के जन्म से लेकर शिवाजी महाराज के औरंगजेब की कैद से वापस अपने राजगढ़ पहुँचने तक की कथा है। यह एक मानव के महामानव बनने की प्रक्रिया का चित्रण है, इसलिए इसमें मानवीय मृदुलता भी है और महामानवीय दृढ़ता भी।

बाल्यावस्था से ही तेजस्वी और नेतृत्व के गुणों से परिपूर्ण शिवाजी आम जन में राष्ट्रभक्ति का भाव भरते हैं और व्यक्ति–व्यक्ति को योद्धा बनाते हैं। उनके लिए सभी सम्माननीय हैं– जाति भेद नहीं है। वे स्वार्थियों को बार–बार क्षमा करके उदारता का परिचय देते हैं; किन्तु षड्यन्त्रों से असावधान नहीं रहते। समय विपरीत देखकर वे पीछे हटना भी जानते हैं और बघनखे से अफजल खाँ को यमलोक पहुँचाना भी। राष्ट्रहित में सन्धि का अपमान भी स्वीकारते हैं और औरंगजेब की कैद भी। और तो और अपने प्रिय पुत्र को भी शत्रुओं को सौंपने में संकोच नहीं करते शिवाजी।

राष्ट्रीय गौरव से हीन इतिहासकारों ने जिसे पहाड़ी चूहा और लुटेरा जैसी औरंगजेबी पदवियों से विभूषित किया है, उस महानायक शिवाजी के जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र इस उपन्यास में खींचा गया है।

दैनिक जीवन के छोटे–छोटे प्रसंगों को भी लेखक ने जिस सुन्दरता और भावनात्मकता से प्रस्तुत किया है, सराहनीय है। मूल मराठी में होने के कारण एक–आध स्थान पर कुछ अस्पष्टता–सी है; लेकिन इतने लम्बे अनुवाद में यह एक सामान्य–सी बात है।

यद्यपि घटनाओं की निरन्तरता तथा उपन्यास का प्रवाह बनाये रखने पर विशेष ध्यान दिया गया है, तथापि कुछ स्थानों पर वास्तविक होते हुए भी पात्रों की अधिकता और प्रसंग के लम्बा होने के कारण नीरसता उत्पन्न हो जाती है। शिकार आदि के प्रसंग भी कुछ लम्बे लगते हैं।

भाषा सामान्य बोलचाल की हिन्दी है, जिसमें कई मराठी शब्दों का भी समावेश है। संक्रमण काल से गुजर रहे हिन्दु–समाज के लिए पुस्तक लाभकारी सिद्ध हो सकती है; किन्तु मूल्य अधिक होने के कारण इसका जन-सामान्य की पहुँच से बाहर रहना लगभग निश्चित है।□

– १२३, फतेहगंज, गल्ला मण्डी लखनऊ–२२६००४

कैसा है भारत का मुसलमान

"भारत में इस्लाम मौलवी या फकीरों के प्रचार द्वारा नहीं आया, अपितु यह आक्रमणकारियों द्वारा आया। हिन्दुस्थान में वह अपने आपको विजेता समझने लगे। जो व्यक्ति हिन्दुस्थान में मुसलमान बना, वह भी अपने को विजेता मानने लगा। बाबर भारत में विजेता के रूप में आया। इसी कारण यहाँ का मुसलमान भी अपने आपको बाबर की श्रेणी में रखने लगा। हम उससे कहें कि इस भूमि को तो 'भारत माता' कह, तो वह मानता नहीं, उसे माता न मानने के कारण ही पाकिस्तान बना। हमने कहा 'राम और कृष्ण अपने पूर्वज हैं', परन्तु वह उन्हें अपना पूर्वज न मानकर अलग से दूसरे पूर्वजों को मानता है। इस दृष्टि से मुसलमानों की राजनीतिक पराजय के अतिरिक्त दूसरा वैकल्पिक मार्ग है ही कहाँ ?"

पराजय के बाद वही मुसलमान आत्मालोचन करेगा, तब सही बातें सामने आयेंगी। फिर वह सोचेगा कि हिन्दुओं से अलग रहने में फायदा नहीं है। इस प्रकार वह वरिष्ठता का भाव त्यागकर यहाँ के समाज से, जो हिन्दुओं का समाज है, समरस होगा। इस तरह सांस्कृतिक मिलन की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। तब वह अखण्ड भारत में विश्वास करेगा।"

- पं० दीनदयाल उपाध्याय

भाभी

(पृष्ठ २६ का शेष)

हो गया। पर भाभी के रूप में तो किसी औरत की वह कल्पना ही नहीं कर सकता है। कुछ नाते ऐसे होते हैं, जिनका विकल्प नहीं होता है।

इसी तरह से कई महीने बीत गये। उसके पढ़ाने से डॉक्टर साहब सन्तुष्ट थे और पिंकी तो उसे अंकल ही कहने लगी थी।

दरअसल हुआ यह कि एक दिन अंकल शब्द का अर्थ बताते समय महेश ने कहा था– "मान लो मैं डॉक्टर साहब का भाई हूँ, तो तुम्हारा अंकल हुआ।"

पिंकी ने खुशी से ताली बजाते हुए कहा था– "अब मैं आपको अंकल ही कहा करूँगी, मेरे अच्छे अंकल।"

उस दिन महेश को लगा, जैसे उसके हृदय के रीते पड़ गये सरोवर में जहाँ सूखी मिट्टी चिटक कर दरारें ही दरारें रह गयी हैं, मनचीती कोमल भावनाओं का जल चारों ओर से आकर भरने लगा हो।

उसे सिर्फ एक बात अटपटी लगती थी कि पिंकी की मम्मी अभी तक दिखायी नहीं पड़ी थीं। उनके बारे में पूछने पर पता चलता– वे सो रही हैं। महेश को जब–तब कोफ्त होती, यह औरत है या कुम्भकरन। किसी भी रोज तो जगती मिली होती। पता नहीं इतनी चपल पिंकी की माँ इतनी सुस्त क्यों है।

एक दिन डॉक्टर साहब ने महेश के आगे मिठाई की प्लेट रखते हुए कहा– "लो मुँह मीठा करो। मास्टर साहब आज एक खुशखबरी है।"

मिठाई का टुकड़ा उठाते हुए उसने कहा– "वह क्या?"

"दरअसल मिसेज आपके आने के समय से ही कह रही थीं कि इनके लिए कहीं कोई नौकरी तलाश दीजिये। आज मैं बात करके आया हूँ। मेरे अस्पताल में एक क्लर्क की जगह खाली है, कल से आप वहाँ ज्वाइन करेंगे।" डॉक्टर साहब ने कहा, जैसे मिसेज की मजबूरी न होती, तो वे इस काम में हाथ न लगाते।

महेश नौकरी पाने के सुखद आश्चर्य में तन–मन की सुध खो बैठा।

इसी बीच खिड़की का परदा हिला और पिंकी की मम्मी ने हौले से झाँका। वे शायद महेश के चेहरे पर खुशी के फूल देखकर चुपचाप तृप्त होना चाहती थीं; पर तभी पिंकी का हाथ लगने से फूलदान लुढ़क गया। फूलदान की ओर निगाह जाते ही पास की खिड़की में एक चेहरा दिख गया। ऐसा चेहरा, जिसे वह अब भी यादों की तह में सँजोये है। तो यह भाभी का चेहरा था। इस अन्तराल में चेहरे पर कहीं चर्बी की कोई अतिरिक्त पर्त नहीं चढ़ी, वैसा ही दमकता हुआ रूप और वात्सल्यमयी आँखें। गोरे चिबुक पर वही तिल।

महेश को लगा जैसे एक भूचाल आकर भेद–भाव के सारे तटबन्ध ढहा देना चाहता है और महेश के हृदय को संचित अपनत्व वेगवती धारा का रूप लेकर भाभी के चरणों को धो डालने को व्याकुल हो रहा है। इतने दिन बाद दिखीं भाभी अपने ममत्व के अनुरूप ही उसके लिए कितनी बड़ी नेकी करके दिखी थीं।

लेकिन भाभी तुरन्त ओट में क्यों हो गयीं? क्या यह छिपकर उपकार करने की भावना है। अगर ऐसा है, तो भाभी के अपनेपन में कहीं न कहीं परायेपन की गन्ध है जो भाभी अपनेपन के बाँध को इतने दिन तक रोके रख सकीं, उनमें कहीं न कहीं कुछ न कुछ दूरी है। बिना दूरी के यह दुराव सम्भव नहीं है। उसकी भाभी तो ऐसी नहीं थीं।

अगले दिन महेश सबेरे अस्पताल नहीं पहुँच सका। उसे लगा, यह उपकार उसे नौकरी तो दिला देगा, मगर भाभी का वह निश्छल अपनत्व भरा बिम्ब पराया–सा करके। उसके मरु जैसे हृदय ने पूरे आकाश को आच्छादित करनेवाली आषाढ़ की जिस शीतल मेघ घटा का समूचा बिम्ब सँजो रखा है, वह उस बिम्ब को केवल एक अंश के रूप में भी नहीं देख सकेगा। □

– ग्राम–मसीत, पोस्ट–साण्डला, हरदोई (उ०प्र०)

अब्बा ! आप धोती क्यों पहनते हैं ?

– पुरुषोत्तम नागेश ओक

यह घटना अमेरिका की है। वहाँ भारतीयों द्वारा चलाया हुआ India Times नाम का एक अंग्रेजी साप्ताहिक है। शायद सन् १९९२ से १९९३ के मई ३१ के उस India Times के अंक में किसी नजीर अली का सम्पादक के नाम लिखा पत्र छपा था। इस पत्र में नजीर अली ने एक घटना लिखी थी। तब उसे भारत छोड़ कर अमेरिका में बसे कई वर्ष बीत चुके थे।

इस कारण उसके मन में विचार आया कि क्यों न पिताजी को अमेरिका बुलवाकर उनसे अपनी पुत्र–पुत्रियों का परिचय करवा दिया जाये।

उसके पिता दिल्ली के समीप मेहरौली में बसे हुए थे। मेहरौली यह प्राचीन मिहिरावली संस्कृत नाम वाली नगरी है। विक्रमादित्य के समकालीन खगोल ज्योतिष के प्रवीण ज्ञाता मिहिर, वहीं अपने अन्य शास्त्रियों सहित पञ्चांग आदि तैयार करने के उद्देश्य से आकाशस्थ ग्रहतारों का निरीक्षण करते रहते। कुतुबमीनार कहलाने वाला स्तम्भ वराहमिहिर के समय 'विष्णु स्तम्भ' कहलाता था; क्योंकि वहाँ एक सरोवर के बीचोंबीच शेषशायी भगवान् विष्णु की एक मूर्त्ति बनी हुई थी। उनकी नाभि से जुड़े हुए उस स्तम्भ के शीर्ष पर चतुर्भुज ब्रह्मा जी की मूर्त्ति बनी हुई थी। स्तम्भ के आगे–पीछे २७ नक्षत्रों के मन्दिर थे। कुतुबुद्दीन ऐबक ने उन सारे मन्दिरों और मूर्त्तियों को तुड़वाकर उस स्तम्भ को 'कुतुबमीनार' नाम दे डाला।

उस प्राचीन समय से इस ज्योतिषीय केन्द्र से सम्बन्धित कार्य करने वाले जो शास्त्री, पण्डित तथा उनके अन्य सहायक वहाँ बसे थे, उनमें से बार–बार ८०० वर्ष तक होते रहे इस्लामी हमलों में या तो कत्ल होते गये या छल–बल से मुसलमान बनाये जाते रहे। उनमें नजीर अली के पिता, दादा, पड़दादा भी थे। किन्तु नजीर अली के कई वर्षों से निजी पुरखों से बिछुड़कर अमेरिका में जा बसने से उसे अपने पूर्वजों का इतिहास अज्ञात था।

अपनी तीव्र इच्छानुसार नजीर अली ने पिताजी को पत्र द्वारा राजी कर अमेरिका आने के लिए विमान का टिकट भेजा। तदनुसार नजीर अली के पिता अमेरिका पहुँच गये। नजीर अली ने अपने पुत्र, पुत्रियों तथा उनके दादा जी का परिचय करा दिया।

नजीर अली दिन भर के लिए अपने घर से दूर निजी नौकरी पर जाया करता था। शाम को घर लौटने पर भोजन आदि के पश्चात् दिल्ली से आये पिताजी के साथ नजीर अली तथा उसके पुत्र–पुत्रियों की गपशप होती थी।

ऐसे ही एक रात जब आपस की बातें हो रही थीं, तो नजीर अली ने यकायक पिताजी से पूछा, "पिताजी, यह कैसी बात है कि हम सभी मुसलमान होते हुए भी आप और सभी चाचाजी तथा दादाजी हिन्दुओं वाली धोती क्यों पहनते हैं ?"

यह प्रश्न सुनते ही नजीर अली के पिताजी यकायक रो पड़े; उनका गला रुँध गया। उस व्यथित अवस्था में वे बोल पड़े, "बेटा नजीर ? तुझे कैसे बताऊँ ? अरे ४०० वर्ष पूर्व की बात है। उस समय हम हिन्दू थे, ब्राह्मण थे। मुसलमान आक्रामकों के हमले तो सन् ७१२ से लगातार होते रहे। चार सौ वर्ष पूर्व मेहरौली आदि बस्तियों पर जो हमला हुआ, उसमें हमारे कई रिश्तेदार मारे गये। कइयों के सीने पर मुसलमान हमलावरों ने पैर रखकर तथा गर्दनों पर तलवारों की नोक रखकर डरा–धमकाकर मुसलमान बनने पर मजबूर किया। तब से हमारे कुटुम्ब वाले बलात् मुसलमान बना दिये गये। तथापि उस समय के हमारे पुरखों ने यह प्रथा चलायी कि कम से कम सारे पुरुष धोती ही पहना करें ताकि हमारे कुनबे की तथा ब्राह्मण की स्मृति एवं परम्परा जाग्रत् रहे।"

अतः उस पत्र के अन्त में नजीर अली ने लिखा था कि "पिताजी की यह बात सुनकर मेरा मन इस प्रश्न से बेचैन हो उठा कि "मैं स्वयं अब कौन हूँ ? हिन्दू या मुसलमान ?"

क्या ऐसा ही प्रश्न भारत के प्रत्येक मुसलमान कहलाने वाले व्यक्ति के मन में नहीं उठना चाहिए ? □

– प्लाट नं०–१०, गुडविल सोसायटी, औंध, पुणे–४११००७

जब 'हाजीपीर' जीता गया

– विप्लवी

विगत भारत–पाकिस्तान–युद्ध के पूर्व सन् १९६५ के १३ अगस्त के दिन तत्कालीन प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री ने देश को चेतावनी दी कि "जम्मू–कश्मीर में बहुत बड़ी तादाद में सशस्त्र पाकिस्तानी घुसपैठिये प्रवेश कर चुके हैं। फलतः जम्मू–कश्मीर की सुरक्षा संकट–ग्रस्त हो गयी है।" ये घुसपैठिये जो कि सहस्रों की संख्या में थे। कश्मीरी लोगों का वेष बनाये हुए थे। वैसा ही लिबास धोखा देने के लिए पहन रखा था तथा अनेकों ने बुरके पहन कर जनाना वेष बना लिया था। सन् १९६५ के ५ अगस्त को इन लोगों ने कश्मीर की ४७० मील तक फैली सरहद पार कर ली। अधिकाश यह घुसपैठ रात के अँधेरे में होती रही और भारतीय सेना को भ्रम में डालने के लिए एक तरफ पाकिस्तान फ़ौज जो वहाँ भारतीय चौकियाँ थीं। उन पर गोलाबारी भी करती रही, जिससे भारतीय सैनिकों का ध्यान घुसपैठियों की ओर न जाये। इन घुसपैठियों में पाकिस्तानी फौजी तो थे ही, अनेक 'मुजाहिद' भी थे। ११० सैनिकों वाली इनकी ६ कम्पनी सेना थी और इन्हें पाकिस्तान की सख्त हिदायत थी कि 'अगर तुम लोग बिना जंग किये और हिन्दुस्तान की चौकियों पर कब्जा किये बिना वापस लौटे, तो यहाँ बतौर सजा तुम्हें गोली से उड़ा दिया जायेगा।" इनमें बलोच फौजी भी शामिल थे। जो घुसपैठिये कश्मीर के कारगिल, लद्दाख इलाके में पहुँचे– उनसे कहा गया था कि "तुम श्रीनगर–लेह वाला मार्ग ध्वस्त कर देना।" यही मार्ग लद्दाख और भारत को जोड़ता है। पाकिस्तान का लक्ष्य श्रीनगर के हवाई अड्डे पर हमला करना भी रहा था। जो भी कश्मीरी इन हमलावरों की सूचना कहीं प्रकट करते थे, उन्हें घुसपैठिये उनके घरों में घुसकर गोलियों से भून देते थे। कश्मीर घाटी में एक गाँव है– 'नौगाम', इस गाँव की कुछ लड़कियाँ जब जंगल में लकड़ियाँ बीन रही थीं तो वहाँ देखा, कोई बाहरी लोग हथियार लिये भारी संख्या में आ छिपे हैं। यह बात लड़कियों ने घर आकर बतायी तो उन्होंने यह खबर सरकारी अफसर तक पहुँचा दी। फलतः भारतीय सैनिक उस जंगल में जा धमके; परन्तु तब तक घुसपैठिये अपना सामान वहीं छोड़कर रफू–चक्कर हो चुके थे। अगले रोज वही घुसपैठिये 'नौगाम' पर चढ़ आये और उस गाँव के २१ आदमी मार दिये। इनमें ४ बूढ़े कश्मीरियों के पेट में संगीन भोंक कर आँतें बाहर निकाल ली थीं। साथ ही गाँव भर को लूटा–जलाया। जलते गाँव की ज्वालाएँ दूर से देखकर भारतीय सैनिकों ने घुसपैठियों को आ घेरा और ३६ घुसपैठियों की लाशें गिरा दीं। अनेकों को घायल किया तब शेष घुसपैठिये अपने शस्त्र, गोला–बारूद और लूटा सामान वहीं छोड़कर भाग गये। इस तरह गाँव वालों को अपना लुटा सामान वापस मिल गया। आगे जो मुठभेड़ हुई। उसमें पाकिस्तान की ८वीं बलोच रेजीमेण्ट का ३८ वर्षीय कैप्टन मोहम्मद सज्जाद, जो मुलतान जिले का था कैद किया गया। दूसरा पाकिस्तानी घुसपैठिया जो कैद किया गया, उसका नाम था कैप्टन गुलाम हुसैन २८ वर्ष का था और लाहौर के क्रिश्चियन कालेज में पढ़ा था। इनमें एक सैनिक कैद हुआ– मोहम्मद अफजल। इसी तरह कैप्टन मसूद ने हाजीपीर दर्रे के युद्ध में हथियार डालकर आत्मसमर्पण किया था। वस्तुतः पाकिस्तान ने कश्मीर को हथियाने के लिए १६ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक के मुस्लिम छात्रों को अनिवार्य फौजी तालीम देकर उन्हें घुसपैठिया बनाया था। उसने सन् १९६५ की ८ जून को एक "मुजाहिद फौज" कायम की थी, जिसकी तादाद १ लाख ५० हजार मुजाहिदों की थी। इनके अलावा घुसपैठियों में कबाइली भी रहे थे। अयूब खाँ को भरोसा था कि कश्मीरी मुस्लिम उसके घुसपैठियों के लिए अपने घरों में दस्तरखान बिछायेंगे और उन्हें हर तरह की मदद देंगे। अयूब ने उनसे कहा भी था कि "कश्मीर में तुम्हें बिस्तर और रसद ले जाने की जरूरत नहीं। वहाँ तुम्हें घरों में दस्तरखान बिछे मिलेंगे।" परन्तु हकीकत यह थी कि जिसने सर्वप्रथम घुसपैठियों की खबर भारतीय सेनाधिकारी को दी, वह कश्मीरी मुसलमान ही था और जो घुसपैठियों के हाथों पहले शहीद हुआ, वह भी मुसलमान था। इनमें वजीर मोहम्मद था पुंछ के गाँव का। जब घुसपैठियों ने इसे धन देकर अपनी मुहिम में मिलाना चाहा तो इसने उस लोभ से बचकर भारतीय सैनिक चौकी पहुँच कर सूचना कर दी। फलतः १० घुसपैठिये मार गिराये गये। शेष भाग गये। फिर तो जम्मू–कश्मीर में बीन–बीन कर लगभग हजारों घुसपैठिये खत्म किये गये और घायल किये गये। दूसरा एक कश्मीरी मुसलमान था, उड़ी का रहनेवाला, मोहम्मद बशीर, यह २३ वर्ष का युवक था, जो वहाँ पुलिस का सिपाही था। श्रीनगर में तैनात था। गंगाबल गाँव में, जो कि श्रीनगर से ४ मील के फासले पर है– वहाँ एक बड़ी मस्जिद में तमाम सशस्त्र घुसपैठिये अड्डा बनाकर छिपे थे। ६ अगस्त (सन् १९६५) का दिन था। इसी गाँव के एक मुसलमान ने पुलिस को खबर की कि उसके गाँव में पाकिस्तानी घुसपैठिये

मस्जिद में मय हथियारों के छिपे हैं। डी०आई०जी० गुलाम रस सदल बल गंगाबल गाँव पहुँचे। इसी दस्ते में सिपाही मोहम्मद बशीर भी गया और एक हिन्दू निरीक्षक ओ०एन० धर भी। वहाँ घुसपैठियों से संघर्ष करते हुए ये दोनों शहीद हो गये। घुसपैठिये मार भगाये गये। इन्हें मशीनगन की गोलियाँ लगी थीं। इसी तरह एक दिन कश्मीर के जोगीवान गाँव में घुसपैठिये स्टेनगन, मशीनगन लेकर एक पहाड़ी पर छिपे थे जिन पर स्वयं गाँव वालों ने ही संगठित होकर धावा बोल दिया और इसका नेतृत्व किया एक २० वर्षीय कश्मीरी तरुण ने। घुसपैठियों को खदेड़ भगाया।

सन् १९६५ के युद्ध में पाकिस्तान के पास ५०० पैटन टैंकों के अलावा अन्य टैंक भी थे। भारत ने पाकिस्तान के ८८ विमान मार गिराये। भारत के भी ३५ विमान नष्ट हुए। कश्मीर के छम्ब पर पाकिस्तान ने ७० अमरीकी पैटन टैंकों से हमला किया था, १ सितम्बर से २३ सितम्बर तक युद्ध चला, जिसमें भारत के २८ जेट विमानों ने बम बरसाकर पाकिस्तान के ११ पैटन टैंक ध्वस्त कर दिये। फ्लाइंग लेफ्टिनेण्ट पठानिया ने अखनूर में पाकिस्तानी सैबर जेट मार गिराया, तो इससे पूर्व एक दूसरा सैबर जेट भारतीय स्क्वेड्रन लीडर ट्रेवर कीलर ने ध्वस्त कर दिया। कसूर इलाके में भी एक पाकिस्तानी सैबर जेट भारतीय हण्टर विमान ने गिरा दिया। छंब जौरिया जाने वाली पाकिस्तानी मालगाड़ी जो कि सैनिक सामग्री से भरी थी। फ्लाइंग लेफ्टिनेण्ट सी०के० मेनन ने गोले बरसाकर नष्ट कर दी। फ्लाइंग लेफ्टिनेण्ट राठौर और फ्लाइंग आफिसर नैव ने पाकिस्तान के ४ सैबर जैट विमान नष्ट कर दिये। फ्लाइंग अफसर राय, फ्लाइंग लेफ्टिनेण्ट कपिला, फ्लाइंग अफसर मायादेव के सिवा ट्रेवर कीलर ने दो और पाकिस्तानी सैबर जैट खत्म कर दिये। घुसपैठियों की तरह जमीनी युद्ध की ही भाँति हवाई युद्ध में भी पाकिस्तान छल करने से बाज न आया। उसने अपने कई युद्धक विमानों पर "आई०ए०एफ०" (इण्डिया एयर फोर्स) लिखा दिया और उन्हें लाहौर से उड़ाया भारतीय विमान चालक इस भ्रम के शिकार बन भी गये, पर फिर उसे 'जेट' समझ कर ऐसा एक विमान नष्ट भी किया। भारतीय विमान चक, चकलाला, रैसलवार, कोहाट, अकबल, झुमरा तक काफी दूरस्थ क्षेत्रों तक गये और इन सब पाकिस्तानी हवाई अड्डों पर बम बरसाये। लाहौर के पास पाकिस्तानी मालगाड़ी, जो टैंकों के लिए पेंट्रोल भरकर ले जा रही थी तथा दूसरी मालगाड़ी २३ पैटन टैंक लादकर ले जा रही थी। भारतीय विमानों ने बम बरसा कर ध्वस्त कर दी। अकेले भारतीय तोपची राजू ने अमृतसर पर बम वर्षा करने आये १३ पाकिस्तानी विमान मार गिराये। जिससे पाकिस्तानी उड़ाकों में आतंक छा गया। बहादुर राजू आन्ध्र का था और उसे जब अमृतसर निवासी सम्मान में एक मोटी धनराशि देने लगे तो उसने उसे लेने से साफ इनकार कर दिया– कहा, "मैं देश–रक्षा करते हुए अपना सैनिक कर्तव्य निभा रहा था, उसके लिए पुरस्कार कैसा ?" यही नहीं, उसने पत्रकारों द्वारा भेजे गये फोटोग्राफरों को अपना फोटो भी खींचने नहीं दिया कि वे अखबारों में छपें। बोला– "मुझे फोटो नहीं छपाने– अपना विज्ञापन नहीं करना।" ऐसा विलक्षण तोपची रहा था राजू उस युद्ध में।

"महावीर चक्र" विजेता रणजीत सिंह दयाल

और फिर एक ऐतिहासिक सैनिक अभियान हुआ 'हाजीपीर दर्रे' पर अधिकार करने का। मेजर रणजीत सिंह दयाल को एक सैन्य दल के साथ यह दायित्व सौंपा गया। पाकिस्तान ८५०० फीट की ऊँचाई पर इस दर्रे पर पूरे रास्ते अपनी चौकियाँ बनाकर जमा बैठा था। इसी दर्रे में घुसपैठिये कश्मीर में घुसते थे। २६ अगस्त को मेजर दयाल ने धावा बोला। ३ घण्टे संग्राम करके पहले भोर वेला में ही 'संख' चौकी पर भारतीय ध्वज फहराया। फिर ५ घण्टे लड़कर हाजीपीर क्षेत्र की 'सार' चौकी कब्जे में की। अनन्तर और २ घण्टे लड़ कर "लुदवाली गली" चौकी पर अधिकार कर लिया। फिर ४ हजार फीट की सीधी चढ़ाई चढ़कर २८ अगस्त को यह दल हाजीपीर दर्रे पर जा चमका। ६ बजे प्रातः के अभियान से लेकर अब दिन के साढ़े १० बज रहे थे और हाजीपीर दर्रा मेजर दयाल जीत चुके थे। पाकिस्तानी सेना हथियार वहीं छोड़कर भाग खड़ी हुई। भयंकर शीत और वैसी ही भूख भी बढ़ी हुई– पर विजयोल्लास में भारतीय सैनिक भूख–प्यास, थकान, नींद और जाड़ा भूले हुए थे। आनन्दमग्न होकर नृत्य कर रहे थे। ४ दिन बाद ही भारतीय हेलीकाप्टर उस विजेता दस्ते को भोजन प्राप्त करा सके। इस दर्रे के नाम में 'पीर' शब्द संयुक्त होने का कारण था, वहाँ बनी एक 'मजार' और 'दरगाह' जिसे पाकिस्तान ने अपने फौजी मनसूबों के तहत तबाह, बरबाद कर अपनी छावनी बना ली। हाजीपीर जीत कर भारतीय सेना ने ही उस 'दरगाह' को फिर से बनवा कर उसे रोशन किया। उसे 'विजय–स्मारक' का रूप दिया। यही विजय उड़ी और पुंछ को अधिकृत करने की कड़ी बनी, जब उड़ी, पुंछ की १५० वर्ग मील जमीन पर भारत का अधिकार हो गया, एतदर्थ २५ पाकिस्तानी चौकियों को भारतीय सेना ने विजित किया। इनमें ३ चौकियों से १५ ट्रकों में समाने लायक गोला, बारूद, शस्त्र आदि और खाद्य सामग्री भारतीय सेना के हाथ लगी। हाजीपीर दर्रे की विजय के उपलक्ष्य में मेजर दयाल को "महावीर–चक्र" प्रदान कर उन्हें लेफ्टिनेण्ट कर्नल बनाया गया। पाकिस्तान अपने मनसूबे में सफल न होकर हर मोर्चे पर भारतीय सेना के हाथों धूल चाटता रहा। ☐

स्मृति-शेष

● 'पद्म विभूषण' अलंकरण से विभूषित अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मनीषी आचार्य–प्रवर पं० बलदेव उपाध्याय का गत दिनों काशी में अकस्मात् देहावसान हो जाने से संस्कृत ही नहीं, भारतीय मनीषा के क्षेत्र में जो रिक्ति आयी है, उसकी पूर्ति सम्प्रति सम्भव नहीं है। स्मरण रहे, आपातकाल में इन्दिरा सरकार ने इस मनीषी तक को पुलिस हवालात दिखा देने का 'महापाप' किया था। पण्डित जी की आयु के सौ वर्ष पूर्ण होने में मात्र २५ दिन शेष रह गये थे।

● सन् १९४२ से तमिलनाडु में संघ–कार्य के लिए अहर्निश समर्पित रहे वरिष्ठ प्रचारक श्री शिवराम पन्त जोगलेकर, जो सबके श्रद्धेय 'शिवराम जी' के नामाभिधान से ख्यात रहे, का ८२ वर्ष की आयु में पिछले दिनों स्वर्गवास हो जाने से अपूरणीय रिक्तता की अनुभूति राष्ट्र–सेवा के क्षेत्र में हम सभी को हो रही है। चरम–कोटि के आशावादी रहे शिवराम जी चेन्नई के शंकर नेत्र चिकित्सालय को अपने नेत्र तथा मेडिकल कालेज को अपनी देह तक दान कर गये।

● दैनिक 'युगधर्म' रायपुर के सम्पादक रहे श्री पद्माकर भाटे का गत १७ जुलाई को मस्तिष्क के रक्त–स्राव से निधन हो गया। भाटे जी की पत्रकारिता तथा सामाजिक क्षेत्र में समर्पित भाव से की गयी सेवाएँ चिर–स्मरणीय रहेंगी।

● 'नवभारत टाइम्स' (दैनिक) के लखनऊ–संस्करण के सम्पादक रह चुके श्री रामपाल सिंह का गत दिनों कर्क–रोग से देहावसान हो गया। पत्रकारिता की शुचिता एवम् विश्वसनीयता को सर्वोच्च वरीयता देनेवाले पत्रकार के रूप में ख्यात रहे रामपाल सिंह ने ही सर्वप्रथम यह रहस्योद्घाटन सार्वजनिक–मंच से किया था कि तथाकथित 'नरायनपुर–काण्ड' कभी घटित ही नहीं हुआ था और यह कांग्रेस द्वारा इन्दिराजी के संकेत पर रचित एक समाचारीय–घोटाला मात्र था

● 'राष्ट्रधर्म' के सुपरिचित कवि डॉ० ल० ज० हर्षे, (मूलतः चिकित्सक) का भी गत १७ जुलाई को जबलपुर में हृदयाघात से अकस्मात् निधन हो गया। उनकी क़विताओं में सदैव राष्ट्रीयता के प्रखर–स्वर मुखरित होते रहे थे।

● गत दिनों इंग्लैण्ड में स्थायी रूप से बसे प्रसिद्ध चिन्तक तथा अंग्रेजी साहित्यकार श्री नीरद सी० चौधरी का देहान्त हो गया। भारतीयता–विरोधी के रूप में जिनकी छवि बहुप्रचारित रही, ऐसे नीरद चौधरी ने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के तत्कालीन सम्पादक दिलीप पाडगाँवकर को दिये एक साक्षात्कार में डंके की चोट पर कहा था कि मुसलमानों को तथाकथित 'बाबरी मस्जिद' के विध्वंस पर हाय–तोबा मचाने का कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि उन्होंने भारत में हजारों हिन्दू–मन्दिरों का विध्वंस किया है। मृत्यु से पूर्व वह अपने ऋक्थ–पत्र (वसीयत) में लिख गये थे कि उनकी अन्त्येष्टि परम्परागत बंगाली वेष–भूषा (धोती–कुर्ता) में वैदिक–रीति के अनुसार की जाय और ऐसा ही उनके पुत्र ने भारत से वहाँ जाकर मुखाग्नि देकर किया।

उक्त सभी विभूतियों की पुण्य–स्मृति को 'राष्ट्रधर्म' का शतशः प्रणाम।

चुनाव में हम किस-किस विदेशी से लड़ रहे हैं

– दीनानाथ मिश्र

एक दिन मेरे मोहल्ले के डॉ० सुब्रमण्यम स्वामी मुझे प्रातः भ्रमणकाल में मिल गये। मन में आया कि अपने बाल नोच लूँ। फिर सोचा अपने क्यों नोचूँ? नोचना है तो उनके ही नोचूँ। लेकिन मैंने नियन्त्रण रेखा का उल्लंघन न करने का निर्णय किया। अभी तो उनसे दुआ सलाम भी नहीं हुई थी और मेरा पारा उनके दर्शन मात्र से ही सातवें आसमान से कुछ नीचे तक पहुँच गया था। अब वह करीब आ गये थे। दुआ सलाम हो चुकी थी। हम दोनों साथ–साथ बराबर कदमों से टहलने लग गये थे। मैं कोई चर्चा शुरू करना नहीं चाहता था। मुझे क्या जरूरत थी? 'आ बैल मुझे मार' की मेरी नीति नहीं रही है। मगर वह कहाँ मानने वाले थे। पहले मैं यह बता दूँ कि वह बीस–पच्चीस वर्षों से एक प्राइमरी स्कूल चलाते हैं। यही उनकी जीविका है। वह अपने को मैट्रिक फेल बताते हैं। मानो वह भी कोई डिग्री है। उन्होंने बात चालू की– देश कारगिल युद्ध के संकट से गुजर रहा है। लोकसभा भंग है। सरकार कामचलाऊ है। ऐसे में लोकतन्त्र का यह तकाजा है कि राज्यसभा का सत्र होना चाहिए। मैंने कहा– सत्र बुला लिया गया तो क्या होगा? जाहिर है कारगिल युद्ध के सम्बन्ध में चर्चा होगी। सदस्यगण अपनी–अपनी पार्टी के हिसाब से बहस करेंगे। सवाल उठायेंगे। सोनिया गांधी उठा ही रही हैं, कम्युनिस्ट पार्टियाँ उठा ही रही हैं। बहस तो हो ही रही है। जवान उधर जान दे रहे हैं, खून बहा रहे हैं ताकि घुसपैठियों को देश की सीमाओं से बाहर निकाला जा सके और कुछ पार्टियों ने चुनाव लड़ना प्रारम्भ कर दिया। बार–बार सैनिक गुप्तचरी की विफलता की तरफ इशारा किया जा रहा है। इससे जवानों का मनोबल 'जितना ऊँचा उठ रहा है' उतना तो उठ ही रहा है, राज्यसभा में बहस से इससे ज्यादा ऊँचा नहीं उठाया जा सकता। सरकार युद्ध के समय इस मामले में मुँह खोल नहीं सकती। खोलेगी तो राजनैतिक जवाब तो पूरा पड़ जायेगा मगर लड़ते हुए सैनिकों के मनोबल पर इसका विपरीत असर पड़ेगा। अब सवाल खड़ा करने की बारी मेरी थी। मैंने कहा– जवान अपनी जान ५ रहे हैं, खून दे रहे हैं, लड़ रहे हैं और हम उन्हें वोट का अधिकार नहीं दे रहे। पिछले तमाम चुनावों में ६५ प्रतिशत से भी ज्यादा सैनिकों के मताधिकार का इस्तेमाल नहीं हुआ है। सरकार चाहती थी कि उन्हें प्रॉक्सी वोट का अधिकार दिया जाये। मगर वे सभी दल जो राज्य सभा का सत्र बुलाना चाहते हैं, उन्होंने प्रॉक्सी वोट का विरोध किया। वह जान दें और हम उन्हें वोट भी न देने दें, यह कहाँ का लोकतन्त्र है? इधर सेना ने घुसपैठियों के हाथ से करीब ८० प्रतिशत भारतीय जमीन वापस छीन ली है। ऐसे में पाकिस्तान ने अपनी सेना और घुसपैठियों की वापसी शुरू कर दी। ठीक उसी दिन प्रधानमन्त्री ने सर्वदलीय बैठक बुलायी। सभी दल जानते थे कि कारगिल की लड़ाई हद से हद एक हफ्ते में खत्म हो जायेगी। मगर उनका याद किया हुआ पाठ तैयार था। उन्होंने राज्यसभा सत्र वाली माँग फिर रख दी। एक होता है बाल हठ। हमारे मोहल्ले के बच्चे की एक खास खूबी है। वह शाम को भी गुडमार्निंग बोलता है। सुबह बिस्तर के पिच पर क्रिकेट खेलता है। एक दिन वह टेलीविजन की खबर सुनने के बाद जिद करने लग गया– पापा हम राज्य सभा सत्र में जायेंगे। अभी ले चलो। पापा ने कहा कि राज्यसभा सत्र अभी नहीं चल रहा है। बच्चे ने कहा कि चल रहा है। आप झूठ बोल रहे हैं। वहाँ हम जायेंगे, जरूर जायेंगे। वहाँ कारगिल की लड़ाई देखेंगे। पापा ने कहा कारगिल की लड़ाई खत्म हो रही है। विदेशियों को हमने भगा दिया है। अब चुनाव की लड़ाई चल रही है। बच्चे ने पूछा– चुनाव में हम किस–किस विदेशी से लड़ रहे हैं? □

महान् नेता बनने के लिए इतना ही काफी है...

– कन्हैयालाल मंगलानी

आप मानें या न मानें, यह महान् शब्द इतना व्यापक होता जा रहा है कि सब पुछल्ले की तरह इसको अपने से चिपकाना चाहते हैं। जहाँ इसको लगना चाहिए, वहाँ भी लगता है, जहाँ नहीं लगना चाहिए, वहाँ भी लग जाता है। जब साहित्यकार महान् हो सकता है, कलाकार महान् हो सकता है और राजनेता महान् हो सकता है, तो चोर को महान् चोर तथा डाकू को महान् डाकू और तस्कर को महान् तस्कर बनने से कौन रोक सकता है। महान् हर स्थिति में महान् हो सकता है। महान् शब्द की इतनी महत्ता है कि वह जिसके साथ लग जाये, उसको उच्च शिखर पर पहुँचाकर ही दम लेगा। इसलिए आज हर व्यक्ति महान् बनना चाहता है। उसकी उत्कृष्ट इच्छा होती है कि यदि वह संसद् में आया है, तो वह महान् अवश्य बने। चाहे किसी भी क्षेत्र में महान् क्यों न बने उसे महान् बनना चाहिए? आज के इस धक्कापेल युग में महान् बनना उसका मात्र धर्म ही नहीं; वरन् जन्मसिद्ध अधिकार भी है।

नेता भी महान् बनने के लिए न जाने कैसे–कैसे जतन करते हैं, तभी उन्हें महानता हासिल होती है, शिक्षा छोड़ने के उपरान्त कई नेताओं ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त किया– कुछ दिनों चोरी की कला सीखी, डाकुओं के साथ रहकर उनके रहस्यों को जाना। तस्करी को व्यवसाय के रूप में नेताओं ने अब भी अपने साथ जोड़ा हुआ है। किसी के भी हस्ताक्षरों की हूबहू नकल कर लेना इनका बायें हाथ का खेल है। कुछ नेता पंचायत के सरपंच भी रहे हैं। उस समय उनकी एक जेब में उनके पद की मोहर तथा दूसरे में इंकपैड रहता था। लोग जब भी और जहाँ भी चाहते, उन्हें रोककर किसी भी प्रमाण–पत्र पर हस्ताक्षर करवा लेते थे। झूठे–सच्चे की उन्हें चिन्ता नहीं थी। उनका कार्य तो केवल जनसेवा था। शेष कार्य जनता का था। वह चाहे जिस कार्य में इनकी सेवा ले और न चाहे जिसमें, न ले। इस प्रकार उन्होंने अच्छी महान् लोकप्रियता प्राप्त कर ली।

खादी समाजवाद की खाल है और इस पर देशभर में छूट उपलब्ध है। छूट देना गांधीजी को सरकार की ओर से श्रद्धांजलि देना है। सरकार अभी भी चालीस प्रतिशत श्रद्धांजलि अकेले गांधीजी को दे देती है, शेष साठ प्रतिशत में चादरें चढ़ाकर, फूल मालाएँ डालकर या मौन–वौन रखकर और लोगों को निबटाती है। खैर, छूट लेकन खादी पहनना सरकार को महान् समर्थन देना है। गांधीजी और खादी, दो ऐसी चीजें हैं, जो सत्ता के कैरियर में अनिवार्य समझी जाती रही हैं। खादीधारी जनसामान्य से ऊपर उठ जाता है और अपने को जनसेवक कहना और महान् समझना उसका अधिकार हो जाता है। सरकार उसके साथ होती है या यों कहें कि खादी पहनकर वह सरकार के साथ हो जाता है। बारहवें खिलाड़ी की तरह वह भी अपने को ग्रुप फोटो में शामिल समझता है। जहाँ तक उनका सवाल है, धन्धे के हिसाब से तो वे पूरी कीमत देकर भी खादी पहनते हैं, तो घाटा नहीं था, लेकिन छूट, छूट उनके लिए कमाई है, ठीक उसी तरह जिस तरह बिजली की बचत, बिजली का उत्पादन है। इसके अलावा सरकारी महकमों में मिलों से सम्बन्धित उनके सैकड़ों अच्छे–बुरे काम पड़ते रहते हैं खादी देख कर दफ्तरी भी उन्हें काफी छूट दे देता है। उनके लिए खादी मात्र कुर्ता पाजामा नहीं, मुनाफा देनेवाली, महान् बनाने वाली एक पोशाकी इकाई है।

पुराने नेताओं का अंग्रेजी से बैर था, इसलिए उन्होंने अंग्रेजी को भारत से खदेड़ने का बीड़ा उठाया और महानता भी हासिल की। अनगिनत लोगों ने अंग्रेजी को निकालने के लिए अपना बलिदान दिया। अंग्रेज चले गये; परन्तु अपनी पूँछ अर्थात् अंग्रेजी को यहीं छोड़ गये। आज के नेता इसी पूँछ को पकड़कर राजनीति कर रहे हैं। कभी वे अंग्रेजी की पूँछ को मरोड़ देते हैं, कभी झाड़–पोंछकर चमकाने का प्रयास करते हैं। इसी दूकानदारी के चलते अंग्रेजी समाप्त नहीं हो पा रही है। इस देश में जब तक हिन्दी को उठाने का अभियान चलता रहेगा, तब तक अंग्रेजी अपने आप उठती चली जायेगी। हिन्दी का भार थोड़ा अधिक है, इसलिए लोग अधिक भार उठाने की अपेक्षा कम भार वाली अंग्रेजी उठा लेते हैं। यहाँ तक कि उनके सिर पर चढ़ने के बाद अंग्रेजी नीचे उतरने का नाम ही नहीं लेती। कश्मीर से कन्याकुमारी तक नेताओं की प्रकृति एक ही होती है। यही बात हमारे देश की महानता को सिद्ध कर देती है?

अब यह तो स्वयंसिद्ध तथ्य है कि राजनीति भी

एक उच्चकोटि का धन्धा, पेशा या व्यवसाय है। अंग्रेजी में जिन्हें "कैरियरिस्ट" कहते हैं, वे महत्त्वाकांक्षी अब राजनीति में आते हैं। एक घड़ी सफल नहीं भी हों, तो कम से कम नुकसान में भी नहीं रहते। यही वजह है कि किसी भी धन्धे में सफल रहनेवाले लोग भी राजनीति में सफल हो जाते हैं; क्योंकि यहाँ "अन्धे के हाथ बटेर" लगती है और सुझते के हाथों से तोते उड़ जाते हैं। नतीजा यह है कि नौकरियों तथा अन्य धन्धों से सेवानिवृत्त होकर तो लोग राजनीति के व्यवसाय में महान् बनने आते ही हैं, अच्छी-भली नौकरी छोड़कर अथवा कारोबार को तिलाञ्जलि देकर भी महान् बनने के चक्कर में लोग राजनीति में ही किसी पोल में प्रवेश के लिए लालायित रहते हैं। कोई भी नया आदमी राजनीति में आता है, तो उससे पहला सवाल यह किया जाता है कि आप राजनीति में क्यों आये? उसका मासूम-सा जवाब होता है- जनता की सेवा करने के लिए।

यह कैसा संयोग है कि देश में महँगाई बढ़ाने की महान् जिम्मेदारी लेने के लिए कोई तैयार नहीं। गरीबी और अमीरी दोनों के ही अन्धाधुन्ध बढ़ने की महान् जिम्मेदारी लेने को कोई तैयार नहीं। यह जिम्मेदारी लेने के लिए भी कोई तैयार नहीं कि विकास की गंगा बह रही है, तो आम आदमी की कठिनाइयाँ कम क्यों नहीं हो रहीं? राजनीति ही एक ऐसा अस्त्र है, जिसमें घुसपैठ कर महानता हासिल की जा सकती है। महान् राजनेता बनकर ही देश को महानतम ऊँचाईयों पर ले जा सकते हैं। राजनीति ही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें सभी लोग आसानी से घुसपैठ कर सकते हैं; क्योंकि राजनीति में कोई विशेष शैक्षणिक योग्यता की आवश्यकता नहीं होती; पर हाँ; थोड़ी-सी दादागीरी और नेतृत्व करने की क्षमता होना जरूरी है। बस, महान् नेता बनने के लिए इतना ही काफी है।

अगर आप अभी तक महान् नहीं बने हैं, तो आप महान् बनने के लिए प्रयास करना प्रारम्भ कर दीजिये। आपको जो भी क्षेत्र रुचिकर लगे, उसको अपना लीजिये और महानता का स्वर्ण-पदक हासिल कर लीजिये। अब निर्णय आपको करना है कि आप किस क्षेत्र में महानता हासिल करना चाहते हैं। आजकल जब प्रत्येक व्यक्ति को महान् बनने का शौक लग रहा है, तो आप भी इससे अछूते क्यों रहें, इस 'महान् देश' के 'महान् सपूत' बनने का गौरव क्यों न प्राप्त करें? ◘

— गुरुकृपा, ३०१/ए, कस्तूरबा नगर,
रतलाम-४५७००१, (म०प्र०)

तुलसी ने देश बचा लिया

– वचनेश

अ०भा० नवोदित साहित्यकार परिषद द्वारा राष्ट्रधर्म के प्रांगण में आयोजित तुलसी जयन्ती के अवसर पर बोलते हुए वरिष्ठ साहित्यकार एवं 'राष्ट्रधर्म' के पूर्व सम्पादक वचनेश त्रिपाठी ने कहा कि जिस समय देश में 'दिल्लीश्वरे वा जगदीश्वरो वा' का गान हो रहा था, तथा हिन्दुओं का बलात् धर्मान्तरण कराया जा रहा था उस समय तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना कर देश और धर्म की रक्षा की। उन्होंने कहा कि तुलसीदास का ही प्रभाव था कि अकबर के सेनापति अब्दुर्रहीम खानखाना को भी- **राम नाम जान्यो नहीं, जान्यों सदा विवाद। कह रहीम तिन्ह आपनो, जनम गँवायो बाद।।** लिखना पड़ा। श्री त्रिपाठी ने कहा कि तुलसीदास सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे तभी तो उन्होंने कहा- **सियाराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।** किन्तु आज के तथाकथित प्रगतिशील राजनेता उन्हें साम्प्रदायिक एवं वर्ग-विरोधी कहने से बाज नहीं आते। श्री त्रिपाठी ने विनोबा जी की एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा कि जब उन्होंने दिल्ली के निकट के मुसलमानों से अकबर और तुलसी के विषय में पूछा तो उनमें से सभी ने अकबर के प्रति अनभिज्ञता प्रकट की किन्तु तुलसी के लिए कहा कि उनकी रामायण तो हमारे गाँव में होती है। इस पर विनोबा जी ने कहा था- 'यह कहना कि अकबर के समय में तुलसीदास हुए थे, गलत है; कहना तो यह चाहिए कि तुलसी के समय में अकबर हुआ था।' ◘

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' के अंक सराहनीय आ रहे हैं। हरदोई जिले के मदनमोहन पाण्डेय जी की कहानियाँ अब पढ़ने को नहीं मिल रही है। श्री पाण्डेय की 'साधु पार्टी' कहानी प्रसन्द आयी। उस तरह की कहानियाँ अन्य लेखकों की भी आयें, तो अच्छा होगा।

— विकास गुप्ता, हरदोई

'राष्ट्रधर्म' का जुलाई अंक पढ़ा। सम्पादकीय 'इन्हें फांसी क्यों न दी जाय' शीर्षक चिन्तन विचारणीय लगा। सचमुच ही पाक हुक्मरानों व सेना को, मानवता के अपराधी कहा जायेगा। अपनी जनता की गरीबी दूर करने की कोई कोशिश नहीं करते। पर चले हैं भारत पर हमला करने, घुसपैठ करने। भारत एक अमोघ ज्योतित ताकत है। राजीव चतुर्वेदी दीक्षित जी, उत्प्रेरक हैं। सुरेश गिरि की रचना आशावादी भारत का सुखद रूप देखती है। डा. पाण्डेय का 'वीणा पाणि' विदेश में' प्रेरक व्यंग्य लगा।

— नारायण मघवानी, उज्जैन

'लाल किले से पालम तक' की कहावत बहुतों ने सुनी होगी; किन्तु शायद ही किसी ने इस कहावत की पृष्ठभूमि जानने की चेष्टा करना मुनासिब समझा होगा। तो आइए चलें इतिहास के उन पन्नों के पलटने की ओर, जब मुगल बादशाहत अपनी अन्तिम साँसें गिन रही थी। बादशाह की लाल किले से बाहर पालम (तब गाँव) तक भी कोई नहीं सुनता था। शासन की बागडोर अंग्रेजों की 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के हाथ में जा पहुँची थी। तब किसी भी सरकारी घोषणा को प्रचारित, प्रसारित करने के लिए 'मुनादी' पीटी जाती थी– '**खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, हुक्म कम्पनी साहब बहादुर का....।**' तो 'मुल्क बादशाह का' बस कहने भर को रह गया था, असली मालिक 'कम्पनी साहब बहादुर' हो गयी थी। जरा सोचें, गत १७ अप्रैल को भाजपा–गठबन्धन की सरकार मात्र एक वोट से गिरा देने के पश्चात् यदि '२७२ लोकसभा सदस्यों का समर्थन प्राप्त' जैसे नंगे झूठ के झाँसे में आकर कहीं राष्ट्रपति ने श्रीमती सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री पद की शपथ दिला दी होती, तो क्या होता?

होता क्या? तब क्या 'मुनादी' कुछ यों नहीं पिटती– '**खल्क खुदा का, मुल्क सोनिया गांधी का, हुक्म पोप साहब बहादुर का।**' जी हाँ; मुनादी के बोल कुछ इसी तरह के होते। विश्वास न हो, तो डॉ० धर्मवीर भारती तब 'धर्मयुग' के सम्पादक, (कुछ वर्ष पूर्व दिवंगत) की 'इमर्जेन्सी' पर करारा व्यंग्य कसती कविता 'मुनादी' पढ़ लें। बात कुछ न कुछ समझ में आ जायेगी।

जरा ध्यान दें बिना पिटी रह गयी 'मुनादी' के इन स्वरों पर–

१. सोनिया गांधी की भाजपा विरोधी किसी भी दल को अपनी (भावी) सरकार में सम्मिलित न करने की

बाअदब बामुलाहजा होशियार...

हठवादिता का कारण क्या था? मात्र बाहर से बिना शर्त समर्थन की जिद क्यों थी?

उस समय के तेवरों और चुनाव–प्रचार के समय अपनी सास श्रीमती इन्दिरा गांधी की हूबहू नकल करने के तेवरों को मिलाकर देखने से क्या यह स्पष्ट भासित नहीं होता कि सोनिया गांधी की 'शुद्ध कांग्रेसी सरकार' तब शायद लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त किये बिना ही १९७५ जैसी 'इमर्जेन्सी' 'कारगिल में युद्ध जैसी स्थिति' के बहाने घोषित करा देने का सर्वसम्मत प्रस्ताव अपने मन्त्रिमण्डल से पारित कराने से नहीं चूकती। सर्वसम्मत प्रस्ताव पर स्वीकृति के हस्ताक्षर करने से राष्ट्रपति इनकार भी नहीं कर सकते थे। स्मरण रहे, कारगिल में उसी समय पाकिस्तानी सेना ने घुसपैठ की थी, जिसकी पुष्टि स्वयं हरकतुल् अंसार के एक शीर्ष नेता ने पेरिस से प्रसारित अपने एक 'इण्टरव्यू' में की है।

२. पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ अपनी घुसपैठी सेना की भारतीय सेना के हाथों धुनाई होती देखकर भागे–भागे अमरीका जाते हैं और वहाँ के राष्ट्रपति बिल क्लिण्टन से अनुमति लेकर अपने घुसपैठियों की वापसी की घोषणा करते हैं। अमरीका से वापसी में वह लन्दन जाकर ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री टोनी ब्लेयर से भी सहमति लेते दीखते हैं। इससे क्या यह स्पष्ट प्रकट नहीं होता कि कारगिल में अपनी सैनिक घुसपैठ से पहले उन्होंने अमरीका और ब्रिटेन से अनुमति ले ली थी? अब तक उदघाटित तथ्यों से यह भी क्या स्पष्ट नहीं हो जाता कि इस सैनिक घुसपैठ की योजना अटल जी की लाहौर यात्रा के समय ही अत्यन्त गुप्त ढंग से बनायी जा रही थी?

३. सोनिया गांधी के एकदम चील की तरह अकस्मात् झपट्टा मारकर कांग्रेस–अध्यक्ष की कुर्सी हथिया लेने का उपक्रम क्या एक सुनियोजित षड्यन्त्र नहीं था? उसके बाद से ही तेजी से उनकी राजनीति में सक्रियता

बढ़ने का कारण भी क्या स्पष्ट नहीं हो जाता?

४. 'विदेशी मूल' की बात कार्यकारिणी में उठायी जाने से पहले ही सर्वश्री शरद पवार, पूर्णो ए० संगमा और तारिक अनवर को पार्टी से निकाल देने से भी क्या स्पष्ट नहीं हो जाता कि 'तानाशाही दिमाग' किस तरह सोचता है और किस तरह काम करता है?

५. कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्याग–पत्र और उसकी वापसी के लिए कांग्रेसियों का हुड़दंगी नाटक क्या प्रायोजित नहीं था? पार्टी पर एकाधिपत्य का यह सफल प्रयत्न क्या किसी मुश्किल से हाईस्कूल की योग्यता रखनेवाली महिला के दिमाग की उपज हो सकता है?

६. दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश के विधानसभा चुनावों के ठीक पहले सरसों के तेल में 'आर्जीमोन' (विषाक्त पदार्थ) और प्याज–टमाटर के ऊँची फर्जी भावों का प्रचार भी क्या किसी सोची–समझी साजिश का अंग नहीं था? विधानसभा चुनाव खत्म होते ही प्याज का मुद्दा एकदम गायब कैसे हो गया?

७. डांग (गुजरात), झाबुआ (मध्य प्रदेश), क्योंझार (उड़ीसा) में ईसाइयों पर अत्याचार की मनगढ़न्त कहानियों का देश– विदेश में जोर–शोर से हंगामा खड़ा करने के पीछे की साजिश की कहानी क्या यह नहीं सिद्ध करती कि इसके पीछे सोनिया गान्धी को भारत की प्रधानमन्त्री बनाने की तैयारी ही थी?

८. पोप का पूरा तन्त्र–मन्त्र जिस प्रकार भारत को २००१ ई० तक एक ईसाई देश बनाने में दत्तचित्त होकर जुटा है, कैथोलिक सोनिया गांधी को भारत के प्रधानमन्त्री पद पर स्थापित किया जाना उसका एक अभिन्न अंग है। क्या इस पोप–तन्त्र की पहले सबसे बड़ी एजेण्ट तथाकथित 'मदर' टेरेसा नहीं रही थीं और अब सोनिया गांधी नहीं हैं?

९. वनवासी क्षेत्रों में अनेकानेक सेवा–प्रकल्प चलानेवाले हिन्दू संगठनों को ईसाइयों के विरुद्ध अत्याचार करनेवालों के रूप में विश्व भर में बदनाम करने के पीछे भी क्या भाजपा–गठबन्धन सरकार को धराशायी कर पोप–तन्त्र समर्थक सरकार बनाने का उद्देश्य नहीं था, नहीं है?

१०. मिजोरम से लगभग ५० हजार रियाङ् हिन्दुओं का वहाँ की ईसाई सरकार ने क्या इसीलिए उच्छेदन नहीं करा दिया कि उन्होंने ईसाई बनने से इनकार कर दिया था?

११. अभी गत ६ अगस्त को त्रिपुरा में वन्य–क्षेत्र में स्थित **वनवासी कल्याण आश्रम** के रतनमनि आश्रम के छात्रावास से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चार वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं के अपहरण और उनकी मुक्ति के लिए २ करोड़ रुपयों की फिरौती की माँग क्या पोप–तन्त्र की ही काली करतूत नहीं है?

सोनिया गांधी को भारत की 'राजगद्दी' पर बिठाने के इस पोप–तन्त्र और अमरीकी–षड्यन्त्र की जड़ें बहुत गहरी और दूर–दूर तक फैली हुई हैं। बोडो, उल्फा तथा सभी नक्सली ग्रुपों का आतंकवाद भी इसी का अभिन्न अंग है। आई०एस०आई० तो है ही। एक अति लम्बी षड्यन्त्र–कथा का उक्त सार–संक्षेप मात्र यह इंगित करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए कि इस सनातन हिन्दू राष्ट्र के समक्ष कितना और कैसा भयंकर संकट मुँह बाये खड़ा है!

उपर्युक्त सन्दर्भ में एक बात और– आगामी ७ नवम्बर को पोप का भारत–आगमन। उसी पोप का, जिसके 'सत्कर्मों' के कारण उस पर एक बार जानलेवा हमला हो चुका है। स्मरण रहे, पिछली बार जब सोनिया–राजीव का सरकारी मेहमान बनकर यही पोप भारत आया था, तो राँची में तीन लाख वनवासी हिन्दुओं को ईसाई बनाने की योजना के तहत आया था। नेपोलियन बोनापार्ट ही एकमात्र ऐसा इतिहास–पुरुष रहा है, जिसने पोप की स्टेट (पपल स्टेट) जो 'वैटिकन सिटी' के रूप में आज भी बची हुई है, समाप्त कर दी थी। जब तक यह 'पपल स्टेट' रहेगी, विश्व की शान्ति भी भंग होती रहेगी। समय आ गया है कि इस षड्यन्त्री–तन्त्र को भारत से उखाड़ फेंकने का। अभी तो बस मुगल बादशाह के लाल किले के गलियारों से आते–जाते समय लगायी जानेवाली हाँक को जरा गौर से इस तरह सुनें–

बाअदब बामुलाहजा होशियार– पोप साहब बहादुर की सवारी आ रही है ऽऽऽ! □

– आनन्द मिश्र 'अभय'

राजनीति

भारत ने बतायी अमरीकी दादागिरी को उसकी औकात

– हृदयनारायण दीक्षित

कांग्रेस ईसाई साम्राज्यवादी प्रचार का हस्तक बन रही है। हालाँकि सोनिया गांधी के अध्यक्ष बनते ही कांग्रेस की रही–सही राष्ट्रवादी भावभूमि का स्खलन शुरू हो गया था; परन्तु भारत के अल्पसंख्यकों के बारे में हाल में जारी अमरीकी रिपोर्ट को आधार बनाकर कांग्रेस ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा पर अपने हमले तेज कर दिये हैं। भारत सरकार ने अमरीकी रिपोर्ट को देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की संज्ञा दी है, मगर कांग्रेस अमरीकी सुर में सुर मिलाकर बोल रही है। उसे देश की सम्प्रभुता की कोई परवाह नहीं है। भारत की सम्प्रभुता पर टिप्पणी करनेवाले किसी भी देश को आड़े हाथों लेने के काम में सभी सेक्युलर दल अपने राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह न कर सके और कांग्रेस अमरीकी दुष्प्रचार की एजेण्ट बन गयी है।

आम चुनाव के अवसर पर अमरीका की टिप्पणी और कांग्रेस की सहमति से देश चौकन्ना और हतप्रभ है। अमरीका सहित दुनिया का कोई भी ईसाई–साम्राज्यवादी और इस्लामिक विस्तारवादी देश भारत में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार नहीं चाहता। अमरीका दुनिया का स्वयम्भू दरोगा है। वह भारत के चुनावों में सीधी दिलचस्पी ले रहा है। इसीलिए उसने अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर भारत में अपना दूत भेजने का प्रस्ताव भी चुनाव के समय ही किया है। अटल जी की सरकार ने ऐसे किसी दूत के आने और उससे वार्त्ता करने के प्रस्ताव को एकदम ठुकरा दिया है।

ईसाई साम्राज्यवाद भारत में ताकतवर सरकार का विरोधी है। भारत के लोकजीवन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बढ़ते प्रभाव से अमरीका और इंग्लैण्ड को बहुत बेचैनी है। संघ के सघन संस्कारक्षम कार्य के चलते देश में राष्ट्रीयता का ज्वार बढ़ा है। भारतभूमि के लिए प्राणों की बाजी लगाने का सम्मोहन जन–मानस में पैदा करने में संघ सफल हुआ है। ईसाई मिशनरियों के सपने टूट रहे हैं। कमजोरों और वंचितों के बीच संघ द्वारा विभिन्न प्रकार के सेवा–प्रकल्प चलाये जाने से ईसाई मिशनरियों की "निहित–स्वार्थी घटिया सेवा" की दुकानें बन्द होने की नौबत आ गयी है। संघ द्वारा प्रवर्त्तित अस्पताल, विद्यालय, छात्रावास आदि के सेवा प्रकल्प निःस्वार्थ भाव से चालित हैं और हिन्दु भूमि मातृ भूमि के प्रति आराधक भाव के संस्कार दे रहे हैं। ईसाई मिशनरी शिक्षा और दवाई के साथ भय, प्रलोभन और षड्यन्त्र मिलाकर गरीबों का धर्मान्तरण करवा रहे हैं। हिन्दू जाग गया है। इस जागरण में संघ के जीवनव्रती कार्यकर्त्ताओं की महती भूमिका है। इसी जागरण ने भारत का मन राष्ट्रवादी भी बनाया है। अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार और नेतृत्व की सर्वस्वीकार्यता भारत के राष्ट्रवादी मन की राजनीतिक अभिव्यक्ति ही है। इसीलिए ईसाई साम्राज्यवादी ताकतें सीधे संघ से ही निबटना चाहती हैं।

बीते ६ अगस्त ९९ को संघ के चार जीवनव्रती वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं सर्वश्री– श्यामल कान्ति सेन गुप्त पूर्वाञ्चल क्षेत्रीय कार्यवाह, सुधामय दत्त, विभाग प्रचारक; दीनेन्द्र दे शारीरिक शिक्षा प्रमुख और शुभंकर चक्रवर्त्ती उत्तर त्रिपुरा जिला प्रचारक का अपहरण ईसाइयों द्वारा पोषित नेशनल लिबरेशन फ्रण्ट आफ त्रिपुरा ने किया। संघ के उक्त अधिकारी वनवासी आश्रम से बलात् ले जाये गये। अपहरण के बदले दो करोड़ की फिरोती माँगी गयी है। साथ ही उक्त राज्य की 'पैरा मिलिट्री फोर्स' को भंग करने की माँग भी की गयी है। सनद रहे कि ईसाईयों के प्रायोजित आतंकवादी ग्रुप स्थानीय कांसटिबिलरी को अपनी हिंसात्मक गतिविधियों में बाधक मान रहे हैं। ईसाई मिशनरियों की सभी प्रकार की गतिविधियों को विदेशी पैसा और बुद्धि आखिर देता कौन है ?

ईसाईयत के बादशाह हिन्दुत्व से भिड़ रहे हैं, क्योंकि भारत को ईसाई बनाने का उनका सपना टूट रहा है। उनके इस ईसाईकरण षड्यन्त्र में संघ ही सबसे बड़ी बाधा है। ईसाई सपने की वास्तविकता में जाने के लिए हमें अमरीका में १९०८ में गठित फेडरल कौंसिल ऑफ

चर्चेज के एक आयोग की ओर ध्यान देना होगा। आयोग द्वारा १९४३ में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था और ईसाईयत के विश्वव्यापी प्रचार का निश्चय किया गया था। इस सम्मेलन में अनेक राजनीतिक प्रस्तावों को विश्वशान्ति का स्तम्भ माना गया। सन् १९४५ में "ब्रिटिश कौंसिल ऑफ चर्चेज" ने भी अपनी सरकार से ऐसी ही सिफारिश की। अमरीकी कौंसिल के उक्त शान्ति आयोग की अगली बैठक भी १९४५ में ही हुई। इसमें समूचे विश्व में एक सार्वभौम ईसाई संगठन बनाने पर बल दिया गया। कमीशन ने कहा "ईसाई संगठन के जरिये अनेक देशों में ईसाईयत का प्रचार संगठित रूप से किया जाये। ईसाई शक्तियाँ विश्व में अल्प संख्या में हैं, फिर भी वे थोड़े समय में ही एक सुसंगठित और प्रबल अल्पसंख्यक समूह का रूप ले सकती हैं।" भारत में सन् १९५१ में अमरीकी प्रचारकों और अन्य विदेशी मिशनरियों की संख्या में ५०० की वृद्धि हुई इसके पूर्व १९४८ के जून में "फेलोशिप ऑफ इण्टरनेशनल मिशनरी सोसाइटी कान्फ्रेंस" में भारत के ६ लाख गाँवों को लक्ष्य बनाया गया। अमरीका के टेलीविजन और अन्य प्रसार माध्यमों में देशवासियों से ईसाई मिशनरी बनने की अपीलें होती ही रहती हैं।

ईसाईयत में आस्था जगाकर अमरीका और इंग्लैण्ड जैसी ताकतें राष्ट्रीय आस्था को तोड़ना चाहती हैं। वे समझाते हैं कि ईसा का चर्च जाति और राष्ट्र के ऊपर है। ईसाई मत की निष्ठा राष्ट्र की निष्ठा को तोड़ती है। भारत के संविधान में धर्म–प्रचार की स्वतन्त्रता है। संविधान सभा में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, दादा धर्माधिकारी, अनन्त शयनम् आयंगर, कन्हैयालाल माणिक लाल, मुंशी और डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने धर्म प्रचार की छूट का तीव्र विरोध किया था, मगर भारत की आजादी के समय पं० नेहरू ने अंग्रेजों से ईसाई धर्म प्रचार की छूट का गुप्त समझौता कर रखा था। पं० नेहरू ने संविधान सभा में इस समझौते की ओर दशारा किया और उनके दबाव में ही धर्म प्रचार का प्रावधान पारित हुआ। ईसाई मिशनरी धर्म–प्रचार के बजाय धर्मान्तरण करवाते हैं। धर्मान्तरण राष्ट्रान्तरण बन जाता है। गांधी जी इसीलिए ईसाई मिशनरियों के खिलाफ थे। हिन्दू समाज व्यवस्था से आहत डॉ० अम्बेडकर भी ईसाइयत के खिलाफ थे। पोप द्वारा अनेक प्रलोभन दिये जाने पर भी उन्होंने ईसाई मत नहीं स्वीकारा; क्योंकि ईसाई मत ग्रहण करना वास्तव में राष्ट्रान्तरण होता। भारत की संसद् में धर्मान्तरण के विरोध में अनेक बार तीखी बहसें हुई हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने ईसाई गतिविधियों से तंग होकर सन् १९५६ में न्यायमूर्ति भवानी शंकर नियोगी की अध्यक्षता में एक जाँच समिति बनायी। समिति ने अपनी गहन जाँच में धर्मान्तरण को राष्ट्रान्तरण ही बताया। ईसाइयों के अस्पताल और शिक्षा जैसे सेवा कार्यों के उद्देश्य समिति की निगाह में राष्ट्र विरोधी पाये गये। समिति ने कहा कि मिशनरी पाकिस्तान की तरह एक पृथक् 'ईसाई होमलैण्ड' बनाना चाहते हैं। समिति की रिपोर्ट के छपते ही ईसाइयों में थरथराहट थी। सो छपी रिपोर्ट की सारी प्रतियाँ बाजार में पहले ही दिन खरीद कर ईसाई मिशनरियों ने तथ्य बाहर जाने से रोकने का कुत्सित प्रयत्न किया।

संघ की गतिविधियाँ राष्ट्रान्तरण की इस ईसाई साजिश में अड़ंगा है। अटल बिहारी वाजपेयी ने पोखरण परमाणु विस्फोट के जरिये भारत को समृद्ध पश्चिमी देशों की कतार में खड़ा कर दिया है। कारगिल युद्ध के दौरान अमरीकी राष्ट्रपति का निमन्त्रण ठुकराकर अटल जी ने अमरीका की इस ईसाई दरोगागीरी को उसकी 'औकात' बता दी है। स्वाभाविक ही पश्चिम के राष्ट्र भारत के राष्ट्रवादी आरोहण से चिढ़ गये हैं।

कांग्रेस को इसका स्वागत करना चाहिए। सम्पूर्ण देश आज अटल की राष्ट्रीय निष्ठा की प्रशंसा कर रहा है। भाजपा का अधिष्ठान राष्ट्रवादी है। सो विदेशी हमलों का निशाना संघ के साथ–साथ भाजपा भी है; मगर देशभक्ति का यह ज्वार अब रुकनेवाला नहीं है। एक अमरीका क्या हजार अमरीका भी भारत के १०० करोड़ अमृतपुत्रों की स्वाभिमानी जिजीविषा नहीं रोक सकते। ◻

– 'अक्षर वर्चस्', एल–१५६२, सेक्टर–आई, ल०वि०प्रा० कॉलोनी, कानपुर–मार्ग, लखनऊ

लखनऊ विश्वविद्यालय ने सबसे पहले उठाया था यह प्रश्न -

सोनिया गांधी और प्रधानमन्त्री पद

-डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

(प्रो०, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि एक यक्ष ने कुछ कठिन प्रश्न पूछ कर पाण्डवों की सामान्य सुबुद्धि की परीक्षा ली थी। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल लोकसभा के वर्तमान निर्वाचन ने भारत की जनता की राजनीतिक सुबुद्धि की परीक्षा लेने के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसके सामने खड़ा कर दिया है कि क्या विदेशी मूल का एक व्यक्ति भारत का प्रधान मंत्री हो सकता है?

यह प्रश्न कांग्रेस पार्टी के वर्तमान अध्यक्ष– श्रीमती सोनिया गांधी के बारे में है। केन्द्र में अटल जी की सरकार के विश्वास मत खोने के साथ ही यह प्रश्न साकार हो उठा था। जिस तरह सोनिया जी ने कांग्रेस पार्टी के निर्वाचित अध्यक्ष, सीताराम केसरी से पार्टी का अध्यक्ष-पद झटक लिया, उसी तरह वे तब अटल सरकार को गिराकर भारत का प्रधान मंत्री पद भी झटक लेने की फिराक में थीं; परन्तु खिचड़ी पक नहीं पायी। अटल सरकार के स्थान पर कोई सरकार नहीं बन पाई, तो निर्वाचन आवश्यक हो गया।

निर्वाचन की घोषणा होने पर कांग्रेस जनों को उपर्युक्त यह प्रश्न सालने लगा। उनमें विचार–मन्थन हुआ, जिसका फल यह हुआ कि कांग्रेस में विभाजन हो गया। शरद पवार, संगमा और तारिक अनवर ने विद्रोह किया और पृथक् राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी की रचना कर ली। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वे विदेशी व्यक्ति को भारत का शासक बनाने के विरुद्ध हैं। लेकिन कांग्रेस पार्टी का एक बहुत बड़ा भाग सोनिया जी के साथ है। वह बहुत स्पष्ट एवं प्रखर रूप से इस मत का है कि विदेशी मूल होने पर भी वे सोनिया को प्रधान मंत्री बनाने के पक्ष में है।

भाजपा तथा अन्य साथी दलों ने तो अपने संयुक्त निर्वाचन घोषणा पत्र में ही उल्लेख कर दिया है वे विदेशी मूल के किसी व्यक्ति को कोई भी शीर्ष–पद देने के विरुद्ध हैं तथा जनता से बहुमत प्राप्त करने पर इस सम्बन्ध में कानून बनायेंगे।

आज यह जो यक्ष प्रश्न भारत की जनता की राजनीतिक सुबुद्धि की परीक्षा लेने आ गया है, उसका पूर्वाभास लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि विभाग, ने एक वर्ष पहले ही देश को दे दिया था। आश्चर्य है कि इस विश्वविद्यालय की छोटी–छोटी त्रुटियों को बढ़ा–चढ़ाकर प्रकाशित करने वाले समाचार पत्रों का ध्यान उस अच्छी बात की ओर क्यों नहीं गया!

गत वर्ष सितम्बर १९९८ में इस विश्वविद्यालय की विधि प्रथम वर्ष की परीक्षा में भारतीय संविधान के प्रश्न पत्र में एक प्रश्न पूछा गया था–

"क्या कोई देशीकृत नागरिक प्रधानमंत्री हो सकता है?"

प्रश्न पत्र कोड एल– १६०५, प्रश्न संख्या ७ (iii)

इस परीक्षा में लगभग तीन हजार से अधिक छात्र बैठे थे। इतने अधिक लोगों के सामने अत्यन्त गम्भीर रूप में प्रश्न रखकर आज की समस्या को मुखरित करा दिया गया था। छात्रों के अतिरिक्त उनके अनेक मित्रों एवं सम्बन्धियों के संज्ञान में यह प्रश्न आ गया होगा; परन्तु आश्चर्य है कि यह प्रश्न उतना गुंजायमान क्यों नहीं हुआ, जितना होना चाहिए था? कदाचित् इसलिए कि किसी परिस्थिति को हम तब तक देखने की इच्छा ही नहीं रखते, जब तक वह आकर हमारे सिर पर बैठ ही न जाय।

देशीकृत नागरिक से तात्पर्य है वह व्यक्ति, जो जन्म से किसी एक राज्य (देश) का नागरिक है; परन्तु बाद में किसी अन्य राज्य का नागरिक बन जाता है। श्रीमती सोनिया गांधी जन्म से इटली की नागरिक हैं। राजीव गांधी से विवाहोपरान्त भारत में करीब १५ वर्ष रहने के पश्चात् उन्होंने भारत की नागरिकता ली। वह भारत की देशीकृत नागरिक हैं, जन्मना नहीं।

इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में स्पष्ट तौर पर उल्लिखित है कि कोई व्यक्ति, जो वहाँ का जन्मना नागरिक नहीं है (यानी देशीकृत नागरिक है) वहाँ का राष्ट्रपति नहीं हो सकता (संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान अनुच्छेद (२) धारा (१) खण्ड (४) यह बहुत ही तर्क–संगत प्रावधान है।

किसी भी राज्य के शासनाध्यक्ष की आस्था अखण्ड

L-1605

LL.B. (First Year) Examination, 1998

CONSTITUTIONAL LAW OF INDIA

Paper V

Time Allowed : Three Hours

Maximum Marks : 100

Note : Answer Five questions. Question No. 1 is compulsory. All questions carry equal marks.

पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिये। प्रश्न संख्या १ अनिवार्य है। सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

(3)

7. Answer with reasons any two of the following :

(i) Can a person who is not a Member of any House, be the Prime Minister ?

(ii) Can a Member of the Council of States be the Prime Minister ?

(iii) Can a naturalized citizen be the Prime Minister ?

निम्नलिखित में से किन्हीं दो का तर्क सहित उत्तर दीजिये :

(i) क्या वह व्यक्ति जो किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, प्रधानमन्त्री हो सकता है ?

(ii) क्या वह व्यक्ति, जो राज्यसभा का सदस्य है, प्रधानमन्त्री हो सकता है ?

(iii) क्या कोई देशीकृत नागरिक प्रधानमन्त्री हो सकता है ?

रूप से उसी राज्य के प्रति होनी चाहिए, जिसका वह शासनाध्यक्ष है। देशीकृत नागरिक की राष्ट्रीय आस्था विभाजित होती है। वह अपनी मातृभूमि के प्रति भी आस्थावान् होता है। यह स्वाभाविक भी है और नैतिक भी कि वह अपनी मातृभूमि से आजीवन प्रेम करता रहे। उसकी आस्था का दूसरा केन्द्र वह राज्य बन जाता है, जहाँ की नागरिकता उसके द्वारा स्वीकार की गयी है।

राज्य के शासन–प्रमुख होने पर यह उसके लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह अपने ही राज्य के हित को सर्वोपरि महत्त्व दे। किसी अन्य राज्य के हित के समक्ष अपने राज्य के हित को द्वितीय स्थान न दे। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो अपने राज्य के साथ 'द्रोह' या 'गद्दारी' का दोषी हो जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संचालन में सम्भव है कि ऐसा मोड़ आ जाए कि देशीकृत नागरिक के सामने अपने जन्म के राज्य तथा देशीकृत नागरिकता के राज्य के हितों में टकराव हो जाए। यह एक अत्यन्त विकट परिस्थिति होगी। जिस किसी राज्य के हित को वह गौण स्थान देकर उसकी हानि करेगा, वहाँ के लिए वह 'गद्दार' हो जायेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि मातृभूमि के साथ गद्दारी करना बहुत हेय होता है, इसलिए अत्यन्त कठिन भी; परन्तु अपने दूसरे देश के साथ गद्दारी करना भी कम अनैतिक और हेय नहीं माना जा सकता। एक साधारण व्यक्ति के लिए तो यह सम्भव है कि वह ऐसी कठिन परिस्थिति से बाहर आने के लिए अपने दूसरे राज्य की नागरिकता का त्याग कर दे। ऐसा वह इस आधार पर कर सकता है कि उसने दूसरे राज्य की नागरिकता अपनी इच्छा से ग्रहण की थी और अपनी इच्छा से छोड़ भी दी। लेकिन मातृभूमि से तो उसका सम्बन्ध अटूट है। वह तो चाहने पर भी नहीं छूट सकता।

लेकिन एक शासनाध्यक्ष के लिए इस परिस्थिति से बाहर निकलना सम्भव ही नहीं। वह अपनी मातृभूमि के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता और साथ ही साथ अपनी देशीकृत नागरिकता के राज्य के शासनाध्यक्ष पद को भी नहीं छोड़ सकता। उसके संज्ञान में राज्य के असंख्य गोपनीय तथ्य रहते हैं। शासनाध्यक्ष का पद–त्याग कर देने पर भी उसकी स्थिति ऐसी है कि देश के हित में उसे फिर स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता। उसे निरुद्ध करना पड़ सकता है।

यह संकट देशीकृत नागरिक शासनाध्यक्ष का केवल व्यक्तिगत संकट ही नहीं कहा जा सकता। यह सारे राष्ट्र के लिए भी संकट हो जाता है।

ऐसी संकट की स्थिति उत्पन्न ही न हो, इसको ध्यान में रखकर संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में उपर्युक्त स्पष्ट प्रावधान कर दिया गया है।

भारत के संविधान में इस प्रकार का प्रावधान न होने के कारण बड़े–बड़े विधिज्ञाता भी यह कहते हैं कि जब संविधान में बाधा नहीं है, तो सोनिया गान्धी के प्रधान मंत्री बनने का विरोध नहीं किया जाना चाहिए।

ये विधि–ज्ञाता एक बहुत बड़ी भूल करते हैं। वे यह तथ्य नजरन्दाज कर देते हैं कि कभी भी कोई भी विधि पूर्ण नहीं हो सकती। अतः सम्भव है कि किसी सामाजिक प्रश्न का हल तत्कालीन विधि में न हो। विधि उस पर मौन हो। ऐसी स्थिति में प्रश्न का उत्तर औचित्य के आधार पर किया जाता है।

अतः हमें विधि नहीं, बल्कि इस दृष्टि से इस समस्या को देखना है कि क्या यह भारत के हित में होगा।

(शेष पृष्ठ ७४ पर)

ये लोकतंत्र पर दाग लगाने वाले

आजादी आये ५ वर्ष भी पूरे नहीं हो पाये थे और स्वदेशी शासन–व्यवस्था को लोकतन्त्री जामा ही पहनाया गया था किन्तु उस पर दाग लगाते जा रहे थे प्रथम प्रधानमन्त्री स्वयं जवाहरलाल नेहरू। उदाहरणार्थ उन दिनों 'भारतीय जनसंघ' विपक्षी दल था और कांग्रेसी गद्दी पर शासन में थे, प्रथम निर्वाचन आया तो जवाहरलाल नेहरू का क्या अजीब बयान था, विपक्षी दल जनसंघ के विरुद्ध। दिल्ली–शहादरा में चुनावी जन–सभा में नेहरू जी ने जनसंघ के खिलाफ किसी पक्के कठमुल्ले इमाम की तरह फतवा जारी करते हुए कहा कि,

"यह जो 'जनसंघ' नाम की नई पार्टी पैदा हुई है, यह दरअसल पाकिस्तान की औलाद है।" जाहिर था कि नेहरू जी किसी भी तरह उस जमाने में जबकि वह प्रथम चुनाव होने जा रहा था– अपने दल के विरुद्ध विपक्ष में खड़े 'जनसंघ' को नजरअन्दाज नहीं कर पा रहे थे और इसी से उसको "पाकिस्तान की औलाद" बताने जैसा सफेद झूठ उगलकर भारतीय लोकतन्त्र पर बदनुमा दाग लगा रहे थे। प्रश्न है कि क्या लोकतन्त्री व्यवस्था, उसका स्वस्थ स्वरूप इसकी अनुमति प्रदान करता है? क्या तानाशाही इसी का पर्याय नहीं है? दूसरी ओर उन्हीं दिनों जनसंघ के एक मान्य नेता पं० दीनदयाल उपाध्याय थे, लोकसभा के उपचुनाव में वे हार गये, लड़े थे जौनपुर (उत्तर प्रदेश) से। पत्रकारों ने उनसे पूछा– "पंडित जी! आप कैसे हार गये?" तो दीनदयाल जी का वही लहजा, सदा की वही विनम्रता, वही निर्वैर भाव, वही निर्लिप्तता पुनः मुखर हो उठी। मुस्कराते हुए बड़े तटस्थ भाव से बोले, "भाई! सच बात तो यह है कि जो कांग्रेसी प्रत्याशी मेरे मुकाबले चुनाव लड़ रहे थे, वे कांग्रेस के एक बड़े अच्छे कार्यकर्त्ता होने के साथ–साथ उन्होंने इन इलाकों में अच्छा काम किया था, इसलिए जनता ने उन्हें ज्यादा पसन्द किया– उन्हें वोट दिये, जिताया।" ऐसा उत्तर चुनाव–परिणामों पर अपने स्वयं के प्रतियोगी के प्रति कांग्रेस के कब कितने राजनीतिज्ञ दे सके हैं? दीनदयाल जी ने ऐसा उत्तर देकर जैसे स्वतः के आचरण से **लोकतन्त्री आस्था** को एक व्याख्या प्रदान की। अपने चुनाव में दीनदयाल जी ने जनसंघ–कार्यकर्त्ताओं को सख्ती से आगाह कर रखा था, कहा था कि,

"खबरदार! जातिवाद के आधार पर अगर आप मेरे लिए वोट माँगेंगे, तो याद रखिये, मैं चुनाव से हट जाऊँगा, लड़ूँगा ही नहीं।" उधर कांग्रेस का रवैया इसके सर्वथा विपरीत, भिन्न रहा था। चुनाव–परिणाम आये, अपनी हार सुन लेने के बाद दीनदयाल जी खिलखिला कर हँस पड़े थे, वही नित्य की निश्छल, उन्मुक्त फिलासफाना हँसी। फिर बोले– "कांग्रेस के विजयी प्रत्याशी को सर्वप्रथम मेरी ओर से बधाई मिलनी ठीक है।" और विजयी प्रत्याशी को लिखित बधाई–पत्र भेजा दीनदयाल जी ने।

जब कालीकट में जनसंघ का अखिल भारतीय अधिवेशन हो रहा था, उस समय उस अधिवेशन में बड़ों–बड़ों को चौंकाने वाला यह वक्तव्य दिया था दीनदयाल जी ने कि, "कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध लगाना लोकतन्त्र की दृष्टि से गलत होगा, प्रतिबन्ध नही लगाना चाहिए। वरन् वैचारिक स्तर पर ही कम्युनिस्ट पार्टी का सामना करना उचित होगा।" जबकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी आये दिन जनसंघ पर कीचड़ उछालती रही थी। अमरीका सरीखे साम्राज्यवादी देश दीनदयाल जी के इस बयान पर क्षुब्ध–क्रुद्ध हो उठे हों, तो क्या आश्चर्य। दीनदयाल जी के इस बयान में भी क्या हमें लोकतन्त्री परम्परा और उसकी स्वस्थ आख्या का ही प्रतिबिम्ब नहीं मिलता? परन्तु वही दीनदयाल जी तत्कालीन जनसंघ–मंच से यह कहते कभी नहीं हिचके कि,

"पाकिस्तान केवल कश्मीर ही नहीं हड़पना चाहता, वरन् पाकिस्तान की साजिश है और वह चाहता है, भारत में कट्टर इस्लामिया हुकूमत कायम करना।"

आज दीनदयाल जी नहीं हैं, जनसंघ भी नहीं है किन्तु कारगिल–द्रास और बटालिक सहित कश्मीर में जो बारूद और बम बरसा रहा है पाकिस्तान, युद्ध जारी है और वहाँ हमारे जवान अपना रक्त–दान, शीश–दान कर रहे हैं, वह दीनदयाल जी की भविष्यवाणी का क्या ज्वलन्त साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करता? आजादी आने के १५ वर्ष बाद जब पाकिस्तान के तमाम घुसपैठिये और एजेन्ट पश्चिमी बंगाल आदि में घुस आये, तो उस समय दीनदयाल जी ने चेतावनी दी थी कि "देश में घुसे बैठे इन २० लाख

वचनेश त्रिपाठी

पाकिस्तानियों को सरकार भारत से निकाल बाहर करे। वे तुष्टीकरण–दुर्नीति को देश–घाती मानते थे। ऐसे नाजुक और अनपेक्षित सन्दर्भों पर उनके कोश में 'लिहाज' नाम का शब्द नहीं था। लोकतन्त्र की रक्षार्थ यह दृष्टिकोण और रीति–नीति अपरिहार्य होती है। कांग्रेस हो शासन में या अन्य दल, उसकी नीतिगत आलोचना लोकतन्त्र को पुष्ट करती है। यथा, गांधीजी की जानी–मानी यूरोपियन शिष्या सरला बेन ने भी ठीक उन्हीं दिनों जब दीनदयाल जी सन् १६५१ के मार्च महीने में 'जनसंघ–स्थापना की भूमिका बना रहे थे– कहा था कि, "गांधी जी की नैतिक मृत्यु तो १५ अगस्त, सन् १६४७ को, जब भारत का विभाजन (पाकिस्तान) कांग्रेस ने स्वीकार किया, तभी हो गयी थी। विभाजन के बाद गांधी जी पूर्णतः खिन्न और निराश हो गये थे। विभाजन के समय ही असत् शक्तियों की निस्संदेह विजय हुई।" वे ही "असत् शक्तियाँ" क्या आजादी के बाद भी दीर्घ काल तक भारतीय लोकतन्त्र का गला नहीं दबाये रहीं? और उस पर दाग नहीं लगाती रहीं? कांग्रेसी शासन में देश में कैसा लोकतंत्र उतरा, इसकी एक ज्वलन्त मिसाल। सन् १८५७ की क्रान्ति भारत में १० मई से शुरू हुई थी, इसलिए पं० दीनदयाल उपाध्याय की मौजूदगी तथा डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में सन् १६५१ के जनवरी महीने में दिल्ली की एक बैठक में यह निर्णय हुआ कि "१० मई के ही दिन हम पंजाब में जनसंघ की स्थापना करेंगे।" तद्नुसार अनेक बन्धु जब अपने नगर जालंधर में उस निर्धारित तिथि (१० मई) पर जनसंघ की स्थापना करने चले, तो कांग्रेस सरकार की छाती पर साँप लोट गया और सरकार ने अपने नौकरशाहों को वहाँ दौड़ाया कि खबरदार! जनसंघ का यह समारोह, स्थापना–कार्यक्रम जालन्धर शहर में हरगिज़ न होने पाये। फलतः शासन ने रोक लगा दी, या कहिये कि सरकार ने उसकी अनुमति ही नहीं दी। फलतः वह तिथि आई और चली गई– टल गई। फिर विवशतः निश्चित तिथि (१० मई) के १७ दिन बाद २७ मई को जालन्धर शहर में नहीं, वरन् नगर के बाहर एक पण्डाल लगाकर वहाँ 'जनसंघ' की स्थापना की जा सकी। अनन्तर बंगाल में भी डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में जनसंघ की स्थापना सम्पन्न हुई।

प्रश्न है कि जालन्धर नगर के भीतर जनसंघ की स्थापना पर रोक लगाना या उस पर सरकारी रोक लगाना क्या लोकतन्त्री परम्परा पर दाग नहीं लगाता? क्या लोकतन्त्र की दृष्टि से यह शासक दल की एकतन्त्री तानाशाही का ही सबूत नहीं था? दूसरी उन्हीं दिनों केन्द्रीय सरकार के तत्कालीन किंवा प्रथम शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजाद सरकारी खर्चे किंवा सरकारी यात्रा के बहाने ईरान देश गये, तो ईरान की यात्रा करके जब मौलाना आजाद भारत लौटे, तो उसी समय उन्होंने अपनी एक ताजी तकरीर में इस बात के लिए फख्र जाहिर किया, कहा कि,

"गुजिश्ता (अतीत) जमाने में ईरानी लोग ही हिन्दोस्तान पर पूरे सात सौ बरस तक हुकूमत करते रहे हैं।" गोया वे ईरानी हमलावर हिन्दुस्तान की आजादी के अपहर्त्ता या लुटेरे नहीं थे और वह काल–खण्ड विदेशियों की गुलामी का न था। शासक दल के किसी भी नेता ने मौलाना आजाद के इस गर्वीले किंवा दम्भ भरे बयान पर टिप्पणी नहीं की। प्रश्न था कि मौलाना आजाद ऐसा बयान देकर देश की बहुसंख्यक आबादी के दिल का घाव कुरेदना चाहते थे, उसे वे दुर्दिन याद दिलाना चाहते थे या कि खुद ईरानी शासकों को खुश करना चाहते थे। क्या राष्ट्रीयता की यही कसौटी है? आजादी आने के बाद उन्हीं प्रारम्भिक वर्षों का एक और प्रसंग याद आता है। "इंडियन मुस्लिम लीग" तमिलनाडु में प्रस्ताव पर प्रस्ताव पारित करके विभाजन–पूर्व की जहरीली नीयत का इजहार कर रही थी। लीग की कौंसिल ने मद्रास (चेन्नई) में सन् १६५१ के १ सितम्बर को यह एक प्रस्ताव पारित किया कि,

"सार्वजनिक शिक्षण–संस्थाओं ('इस्लामी मदरसों') में मजहबी तालीम देने पर भारतीय संविधान द्वारा जो रोक लगाई गई है, मुस्लिम लीग उसकी निन्दा करती है। वह रोक हटायी जाय और उसके लिए संविधान में संशोधन किया जाय– जब तक यह संशोधन न हो, तब तक मुसलमान या गैर हिन्दू छात्रों को मजहबी तालीम देने का आदेश जारी किया जाय। यह तालीम स्कूलों की चहारदीवारी में हो, लेकिन स्कूल–टाइम के बाहर होगी। इस तालीम से सूबों के सेक्यूलरिज्म पर कोई असर नहीं होगा।

'लीग' की कौंसिल ने यह फतवा भी दिया कि "मुल्क के हर चुनावी इलाके में मुसलमान चुनावों में जरूर हिस्सा लें। साथ ही भारत–पाकिस्तान के बीच तनाव की निन्दा की गई। इसके अलावा एक प्रस्ताव बड़ा अजीब पारित किया गया, जो यह था कि, "बिहार और उत्तर प्रदेश से खबरें मिली हैं कि वह दहशत और दबाव की वजह से इन सूबों के तमाम मुसलमान **हिन्दू मजहब** अख्त्यार करने पर मजबूर हो रहे है; लीग इससे फिक्रमन्द है। इन सूत्रों का सरकारों से लीग माँग करती है कि उत्तर प्रदेश और बिहार में ऐसी फिजा पैदा करने की सख्त जरूरत है, जिससे वहाँ के मुसलमान अपना मजहब बदलने को मजबूर न किये जा सकें और बाअमन और बेखौफ अपने मजहब पर पाबन्द रह सकें, वर्ना उन सूबों की सरकार वह दावा करे कि इस किस्म की जो खबरें हमें मिली हैं, वे सच नहीं हैं।" परन्तु इन विषाक्त प्रस्तावों के पारित होने तथा प्रचारित–प्रसारित होने में कांग्रेस सरकार को कोई आपत्ति नहीं हुई–न ही इन हरकतों से उसे लोकतन्त्र के लिए कोई खतरा नजर आया जबकि उन्हीं दिनों जालन्धर शहर में जनसंघ की स्थापना उसे गवारा न हुई– उसमें उसे आफत दिखी और जवाहरलाल नेहरू ने "जनसंघ को पाकिस्तान की औलाद" बताने में ही अपना धन्यता समझी। भारतीय लोकतन्त्र पर कांग्रेस सरकार की यही रीति–नीति बदनुमा दाग लगाती रही है और लोकतन्त्र की आड़ में ही यहाँ आज भी ऐसे नये नेता नमूदार हुए, कि रक्षामन्त्री– पद पर रहे मुलायम सिंह यादव ने बयान दिया कि **"भारत को खतरा पाकिस्तान से नहीं है, चाहे पाकिस्तान अपनी सब मिसायलें भारत की सीमा पर लगा दे– भारत को खतरा सरस्वती शिशु–मन्दिरों से है।"** गनीमत हुई कि इन खलील मियाँ के हाथों से सुरक्षा की बुलबुल कभी की उड़ गई– अब जनाब फाख्ता उड़ा रहे हैं और यही लोकतन्त्री मसीहा थे कि मुख्यमंत्री रहते इन्होंने अयोध्या में गोलीबारी कराकर तमाम हिन्दू परिवारों के दीपक बुझा दिये। ऐसे जघन्य हत्यारे ही उक्त बयानबाजी करके मुसलिम मतों की खरीदारी करने का लोभ पाल रहे हैं– लोकतन्त्र इनसे कभी सुरक्षा नहीं प्राप्त कर सकता। □

...तो भला हो

–राजबहादुर 'विकल'

(१)

बाढ़ में कच्चे घरों से काम कैसे चल सकेगा;
घोर तम, अन्धे स्वरों से काम कैसे चल सकेगा।
जिन्दगी तो रोज तुमसे प्रश्न नूतन कर रही है;
अब पुराने उत्तरों से काम कैसे चल सकेगा।।

(२)

पास जो कुछ है वही अनजान–सा लगने लगा है;
आज अभिनय प्यार की पहचान–सा लगने लगा है।
रिक्तता कितनी मनुज के प्राण, मन में भर गई है;
अब भरा घर भी उसे वीरान–सा लगने लगा है।।

(३)

रूप की उलझी हुई अलकें सँवारो, तो भला हो;
भूख की ज्वाला बुझा छप्पर सुधारो, तो भला हो।
कैद करते रोशनी कुछ मुट्ठियों में क्या बनेगा;
हर अँधेरी रात में सूरज उतारो, तो भला हो।।

– विकल निवास, मोहमदजयी,
शाहजहाँपुर–२४२००१
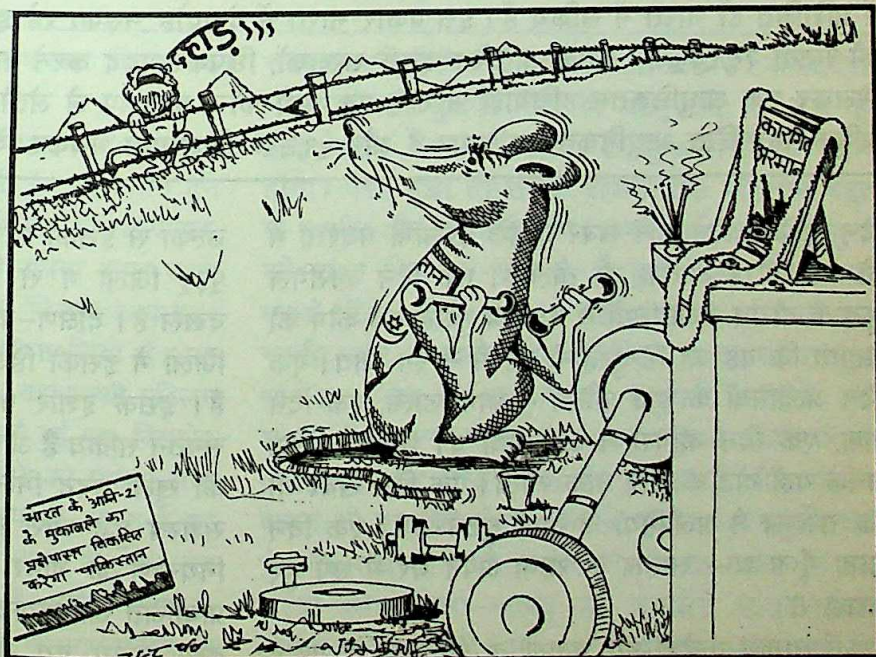
सम्भल के रहना अपने घर में छुपे हुए गद्दारों से

- राजीव चतुर्वेदी

एक दिन खबर मिली कि कारगिल में घुसपैठ हो गयी। एक दिन पता चला कि एक विदेशी जहाज देश में घुसा; दिल्ली, वाराणसी होता हुआ पुरुलिया में उग्रवादियों के लिए हथियार गिराकर चम्पत हो गया। एक दिन संसद् में सरकार ने सूचना दी कि अरुणाचल प्रदेश और हिमांचल प्रदेश में चीन ने वर्षों पहले से बना रखी हैं हवाई पट्टियाँ। एक दिन एक सरकार ने हजरत बल में विदेशी घुसपैठियों को खिलायी थी बिरियानी। एक दिन खुफिया विभाग ने खबर दी कि इस्लामी मदरसों में दी जा रही है आतंक की तालीम। एक दिन कारगिल युद्ध के दौरान अली मियाँ ने देश की मुसलमान कौम को चेताया कि वह वह हिन्दुस्तानी रंग में न रंग जायें। एक दिन अलीमियाँ के यहाँ पुलिस ने छापा डाला, एक दिन सपा, एक दिन कांग्रेस ने अलीमियाँ को सिजदा किया उनके यहाँ वोट के लिए नाक रगड़ी। एक दिन खबर थी कि सरकार ने अलीमियाँ के आगे घुटने टेके। एक दिन गाना गूँजा था– सम्हल के रहना अपने घर में छुपे हुए गद्दारों से।

तमाम सन्देहों और सवालों के बीच सच तो यह है कि हम आज तक घर में छिपे हुए गद्दारों से नहीं सम्हल सके हैं। भारत के गृह मन्त्रालय की संसदीय समिति को गृह सचिव ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की है, वह चौंकाती है। इस रिपोर्ट के अनुसार– "पाकिस्तान की आई०एस०आई० नाम खुफिया एजेन्सी के लोगों को नेपाल और बांग्लादेश में प्रशिक्षण मिल रहा है। भारत में आई०एस०आई० ने बड़ा जाल फैला लिया है। क्षेत्रीय इस्लामी संगठनों में इसके लोग स्थापित हो चुके हैं। उत्तर–पूर्वी राज्यों में उल्फा से इसका परस्पर सहयोग का रिश्ता है। भारत के ५३५ जिलों में से २१० जिलों में आई०एस०आई० का दखल है। दक्षिण–पश्चिमी राज्यों के ६६ जिलों में से ४८ जिलों में इसकी हिंसक भारत–विरोधी गतिविधियाँ जारी हैं। इसके इशारे पर जम्मू–कश्मीर में १० आतंकवादी संगठन सक्रिय हैं और असम में उल्फा को आई०एस०आई० की खुली मदद मिल रही है, जहाँ २३ जिलों में निरन्तर सशस्त्र युद्ध जारी है। नागालैण्ड और त्रिपुरा में स्थिति नियन्त्रण के बाहर हो रही है। आई०एस०आई० द्वारा प्रायोजित आतंकवाद को लेकर भारत के गृह मन्त्रालय द्वारा कराये गये अध्ययन से पता चला कि भारत में

जम्मू–कश्मीर में १० आतंकवादी संगठन सक्रिय हैं और असम में उल्फा को आई०एस०आई० की खुली मदद मिल रही है, जहाँ २३ जिलों में निरन्तर सशस्त्र युद्ध जारी है। नागालैण्ड और त्रिपुरा में स्थिति नियन्त्रण के बाहर हो रही है। आई०एस०आई० द्वारा प्रायोजित आतंकवाद को लेकर भारत के गृह मन्त्रालय द्वारा कराये गये अध्ययन से पता चला कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग १००० भारतीय सुरक्षा बलों के जवान और अधिकारी मारे जा रहे हैं। कारगिल के अनुपात में यह चिन्ताजनक है। कारगिल में लगभग ५०० भारतीय सैनिक/अधिकारी मारे गये। गृह मन्त्रालय के इस अध्ययन के अनुसार आई०एस०आई० की आतंकवादी गतिविधियों से अब तक भारतीय सुरक्षा बलों के ५१०१ जवान और अधिकारी मारे गये हैं। आई०एस०आई० ने देश में ७१२५ पाकिस्तानी और विदेशी आतंकवादियों को सक्रिय कर रखा है और १६,८०० भारतीय मुसलमान पाकिस्तानी और अफगानी प्रशिक्षण कैम्पों में प्रशिक्षित हो भारत में सक्रिय हैं। इस प्रकार भारत में देशद्रोह भड़का रहे इन प्रशिक्षित इस्लामी आतंकवादियों की संख्या २६,६२५ है। इसके अतिरिक्त इनके संरक्षकों, छिपकर मदद करने वालों व उल्फा उग्रवादियों की संख्या मिलकर एक आधुनिकतम हथियारों से लैस एक बड़ी फौज का रूप ले लेती है। इन पर लगभग एक लाख से अधिक स्वचालित आधुनिकतम हथियार हैं और ५१,८१० किलोग्राम भयंकर विस्फोटक आर०डी०एक्स० है।"

प्रतिवर्ष लगभग १००० भारतीय सुरक्षा बलों के जवान और अधिकारी मारे जा रहे हैं। कारगिल के अनुपात में यह चिंताजनक है। कारगिल में लगभग ५०० भारतीय सैनिक/अधिकारी मारे गये। गृह मन्त्रालय के इस अध्ययन के अनुसार आई०एस०आई० की आतंकवादी गतिविधियों से अब तक भारतीय सुरक्षा बलों के ५१०१ जवान और अधिकारी मारे गये हैं। आई०एस०आई० ने देश में ७१२५ पाकिस्तानी और विदेशी आतंकवादियों को सक्रिय कर रखा है और १६८०० भारतीय मुसलमान पाकिस्तानी और अफगानी प्रशिक्षण कैम्पों में प्रशिक्षित हो भारत में सक्रिय हैं। इस प्रकार भारत में देशद्रोह भड़का रहे इन प्रशिक्षित इस्लामी आतंकवादियों की संख्या २६,६२५ है। इसके अतिरिक्त इनके संरक्षकों, छिपकर मदद करने वालों व उल्फा उग्रवादियों की संख्या मिलकर एक आधुनिकतम हथियारों से लैस एक बड़ी फौज का रूप ले लेती है। इन पर लगभग एक लाख से अधिक स्वचालित आधुनिकतम

अधिक बांग्लादेशी अवैध रूप से बसे हुए हैं। क्या भारत कोई धर्मशाला है, जो कोई भी आये कभी भी रहे? कुछ ही दिन पूर्व जम्मू-कश्मीर के मुख्यमन्त्री फारूक अब्दुल्ला ने खुलेआम यह कहा था कि बहुत बड़ी संख्या में बांग्लादेशी कश्मीर में आते हैं, सीमापार कर पाकिस्तान जाते हैं और प्रशिक्षण प्राप्त कर लौट आते हैं।

सीमा सुरक्षा बल के दक्षिण बंगाल के डायरेक्टर जनरल आर०एन० भट्टाचार्य ने एक भेंटवार्त्ता में यह कहा है कि अब पश्चिम बंगाल के हर १५ व्यक्तियों में एक बांग्लादेशी है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष २ लाख विदेशी नागरिक भारत में अवैध रूप से घुस आते हैं और यहीं बस जाते हैं। श्री भट्टाचार्य कहते हैं कि बंगाल के दूसरे बँटवारे की शुरूआत अब हो चुकी है। इस क्षेत्र में काम किये हुए एक सेवा निवृत्त वरिष्ठ सेना अधिकारी ने कहा है कि वर्त्तमान में जम्मू-कश्मीर, पंजाब और दक्षिण-पश्चिम के पाँच राज्यों समेत कुल

उत्तर प्रदेश में गुमराह मुसलमान युवकों को आतंकवादी बनाने के कारखाने चल रहे हैं। आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए प्रशिक्षित करनेवाले ये कारखाने और कोई नहीं इस्लामी तालीम के मदरसे हैं। इन मदरसों में लश्कर-ए-तोइबा, हरकत-उल-अन्सार, अल् बर्क तंजीम, तन्जीम-उल्-जेहाद, जम्मू-कश्मीर लिबरेशन, फ्रण्ट और हिजबुल मुजाहिदीन जैसे खूँखार और बदनाम आतंकवादी संगठनों के सदस्यों को प्रशिक्षित किया जा रहा है। पाकितान का "हबीब बैंक" भारत में उग्रवादियों को प्रशिक्षित करने के लिए ऐसे इस्लामी मदरसों को बड़ी रकम दे रहा है। यह खुफिया सूचना बांग्लादेश के गृह-विभाग ने भारत को, प्रधानमन्त्री अटल बिहारी बाजपेयी की सुरक्षा के मद्देनजर कलकत्ता-ढाका बस यात्रा के पहले एहतियाती तौर पर दी थी। इस सूचना का मुख्य आधार बांग्लादेश में पकड़े गये खूंखार आतंकवादी मनीरूल् एहसान का वहाँ के खुफिया विभाग को दिया गया बयान माना जा रहा है।

हथियार हैं और ५१,८१० किलोग्राम भयंकर विस्फोटक आर०डी०एक्स० है।"

एक खबर के मुताबिक आई०एस०आई० ने अब करीब सारे भारत की घेराबन्दी कर ली है। यह ध्यान देने की बात है कि प्रारम्भ में यह एजेन्सी केवल पंजाब, कश्मीर में ही सक्रिय थी। अब उसने अपना जाल उत्तर प्रदेश के तराई कलकत्ता, चेन्नई, मुम्बई, दिल्ली कोयम्बटूर में और दक्षिण-पश्चिम के राज्यों में फैला लिया है। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि उन्हें स्थानीय कट्टरपन्थी मुस्लिम संगठन सहायता कर रहे हैं। कोयम्बटूर में हुई बम-विस्फोट की घटना के बाद कुछ स्थानीय लोगों को पकड़ा गया और तमिलनाडु के दो मुस्लिम कट्टरपन्थी संगठनों पर पाबन्दी लगायी गयी है। बांग्लादेश से भारत में अवैध रूप से आनेवाले लोगों का प्रवाह रुका नहीं है। भूतपूर्व गृहमन्त्री इन्द्रजीत गुप्त ने माना था कि भारत में एक करोड़ से

सात राज्य ऐसे हैं जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। बांग्लादेशी नागरिकों की घुसपैठ ऐसी ही चालू रही, तो दस वर्ष बाद 'असम' देश का आठवाँ हिन्दू अल्पसंख्यक राज्य होगा। वैसा हुआ तो उसके राजनीतिक परिणाम बहुत ही गम्भीर और दूरगामी होंगे। कश्मीर में लाखों हिन्दुओं को बाहर निकाला गया है, वे बुरी हालत में हैं, पर उनके लिए कोई बोलता नहीं। इसके भी परिणाम गम्भीर और दूरगामी होंगे। पुरुलिया में जो घटित हुआ था, वह अजब है। एक विदेशी वायुयान आता है और शस्त्र और गोला-बारूद उतारकर, सुरक्षा-व्यवस्था की कलई खोलकर चला जाता है। शस्त्रास्त्रों और गोला-बारूद की तस्करी, कोंकण किनारे, गुजरात के समुद्री-तट से और राजस्थान की सरहद से निरन्तर चालू है। इन शस्त्रों और गोला-बारूद का उपयोग पहले केवल आतंकवादी करते थे, पर अब तो इनका प्रयोग माफिया

गिरोह भी करते हैं। कहते हैं कि मुस्लिम कट्टरपन्थी शक्तियों को भरपूर आर्थिक सहायता देनेवाला सऊदी अरब का ओसमा बिन लादेन भारत आया था, पर हमारे सुरक्षा प्रबन्धकों को उसका पता ही नहीं चला। लन्दन के 'संडे टाइम्स' ने यह समाचार दिया है कि ओसमा बिन लादेन ने आतंकवादियों को आदेश दिया है कि कश्मीर में जाकर आतंक और दहशत का वातावरण बनाओ। किराये के सैनिकों को वह अफगानिस्तान में प्रशिक्षण देकर कश्मीर में भेजता है। गुलाम नामक एक किराये के सैनिक को ६० दिन का प्रशिक्षण दिया गया। उसे सम्पर्क बनाने के लिए रेडियो सेट और पचास हजार रुपये भी दिये गये। बिन लादेन किराये के हर सैनिक से दो वर्ष का इकरारनामा करता है और उसे दो लाख रुपये देता है। तमिलनाडु की भूतपूर्व मुख्यमन्त्री ने अपने साक्षात्कार में यह कहा है कि कोयम्बटूर बम धमाकों में ओसमा बिन लादेन का हाथ था और इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी उनके पास है।

२८ सितम्बर १९९८ को हैदराबाद में तमिलनाडु पुलिस ने मीर सबीर नामक एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया। उसने अपने बयान में कहा कि बिन लादेन फरवरी माह में हिन्दुस्तान आया था। कोयम्बटूर बमकाण्ड का एक आरोपी केरल के पी०डी०पी० का नेता अब्दुल मदनी से बिन लादेन मिला था। सबीर अहमद तमिलनाडु के सत्यमंगलम् गाँव का निवासी है। उसने बिन लादेन के अफगानिस्तान स्थित प्रशिक्षण केन्द्र में छह माह का प्रशिक्षण लिया था। कोयम्बटूर बम–काण्ड के दूसरे आरोपी कुटटी और बशीर भी उसके साथ थे। जयललिता के मुताबिक ऐसे प्रशिक्षण प्राप्त २०० आतंकवादी आज भारत में हैं। देश के पूर्वी–क्षेत्र में पदस्थ, फौजी अधिकारियों के हवाले से एक अखबार ने लिखा है कि बांग्लादेशी अब भारतीय सेना में भर्ती होने का प्रयास कर रहे हैं। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने समाचार दिया है कि पश्चिम उत्तर प्रदेश के मेरठ जैसे मुस्लिम बहुल विभाग में पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी आई०एस०आई० ने अपना जाल फैलाना प्रारम्भ कर दिया है। मेरठ और आसपास के क्षेत्रों से आई०एस०आई० के जो एजेण्ट पकड़े गये हैं, उन्हीं से यह बात प्रकट हुई है। आई०एस०आई० के साथ ही दाऊद इब्राहिम के एजेण्टों ने भी पश्चिम उत्तर प्रदेश को छिपने के लिए उत्तम स्थान माना है। कुछ दिनों पूर्व ही पकड़े गये आई०एस०आई० के एक एजेण्ट ने यह रहस्योद्‌घाटन किया है कि उत्तर भारत का प्रमुख आई०एस०आई० एजेण्ट मेजर फिदा हुसैन और आई०एस०आई० का एक अन्य अधिकारी नगर के एक प्रमुख व्यापारी 'इस्लाम' के घर दो माह रहा था। उसने एक राष्ट्रीय बैंक में खाता भी खोला। आई०एस०आई० के पकड़े गये एजेण्टों के अनुसार उनका काम आतंक और दहशत फैलाने का है। जाति और धर्म के आधार पर लोगों में फूट डालने का काम भी

بسم اللہ الرحمن الرحیم

توحید کی امانت ہمارے سینوں میں ہے

... آپ اپنی حقیقی عظمت کے راز کو سمجھئے کہ دنیا میں اب تک ہزاروں طوفان، آندھی اور سیلاب کے باوجود آپ اب تک کیوں باقی ہیں؟ ایک ہندوستان ہی کی تاریخ کو دیکھ لیجئے۔ یہ زمین جس کو حالی نے اَکّالُ الْاَرَاضِ اور ہندوستانی تہذیب و مزاج کو اَکّالُ الْاُمَم سے تعبیر کیا ہے۔ یعنی جو قوم یہاں آئی وہ تحلیل ہو گئی اور اس نے اپنی قومی خصوصیات و امتیازات کو کھو دیا — اور "ہر کہ در کانِ نمک رفت نمک شد" کا منظر سامنے آتا رہا۔ اس میں نہ تو آریائی نسلیں باقی رہیں، نہ دوسری قومیں۔ جو بھی یہاں آیا وہ اس کے رنگ میں رنگ گیا۔ لیکن وہ کیا چیز تھی جس نے اپنے آپ کو اپنے تشخص کے ساتھ باقی رکھا ہے؟ — وہ ہے عقیدہ 'توحید' اور رسول اللہ صلی اللہ علیہ والہٖ وسلم کے دامن سے وابستگی — اللہ تعالیٰ کی عظمت کا اقرار اور اس کے سامنے ساری طاقتوں کا انکار — اور رسول اکرم صلی اللہ علیہ والہٖ وسلم کی ذاتِ گرامی کی محبت کا طوق اپنے گلے میں ڈالنا۔

میں آپ سے یہ کہنا چاہتا ہوں کہ آپ اپنی عظمت اور تشخصات کے ساتھ اس ملک میں باقی رہیے۔ ہم مسلمان ہیں، ہم کو اس کا اقرار ہے۔ ہم اس ملک میں پورے اسلامی امتیازات اور مکمل اسلامی تشخصات کے ساتھ باقی رہیں گے۔ یہ ہمارا فیصلہ ہے۔

... ہم اس ملک میں اس حالت میں نہیں رہ سکتے کہ ہم اپنے تمام تشخصات و امتیازات سے دست بردار ہو جائیں اور اپنے مابہ الامتیاز عقائد کو چھوڑ دیں، اپنے عقیدۂ توحید و رسالت، ایمان بالآخرۃ سے دست کش ہو جائیں اور رسول اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کی محبت، عقیدت اور آپ کی سنت پر چلنے کے جذبہ سے ہم خالی اور عاری ہو جائیں۔

... ہم صاف اعلان کرتے ہیں، اور ہم چاہتے ہیں کہ آپ بھی اعلان کریں کہ ہم ایسے جانوروں کی زندگی گزارنے پر ہرگز راضی نہیں جن کو صرف دانہ چاہیئے اور ان کو SELF SECURITY چاہیئے کہ ان کو کوئی مارے نہیں۔ ہم ہزار بار ایسی زندگی گزارنے اور ایسی حیثیت قبول کرنے سے انکار کرتے ہیں۔

ہم اس سرزمین پر اپنی اذانوں اور نمازوں کے ساتھ رہیں گے بلکہ ہم تراویح اور اشراق و تہجد تک چھوڑنے کے لئے تیار نہیں ہوں گے ہم ایک ایک سنت کو سینے سے لگا کر رہیں گے اور رسولِ اکرم کی سیرت کو سامنے رکھ کر کسی ایک نقش بلکہ کسی نقطہ سے بھی دست بردار ہونے کے لئے تیار نہیں۔

مفکرِ اسلام حضرت مولانا سید ابوالحسن علی ندوی مدظلہ العالی

تقریب جشن صد سالہ دارالعلوم دیوبند

वे करते हैं। १६ अप्रैल, ९७ को मेरठ पुलिस ने जिस जकीर नामक आई०एस०आई० एजेण्ट को पकड़ा, उसी ने अपने बयान में कहा कि महत्त्वपूर्ण पुल, रास्ते, हरिद्वार क्षेत्र की नहरें, मेरठ और रुड़की के छावनी के कामकाज की वीडियो और कैमरा फोटो लेने का काम उसे सौंपा

गया था। मेरठ पुलिस ने एक महिला आई०एस०आई० एजेण्ट, जिसका नाम सुरैय्या बताया जा रहा है पकड़ा। वह भारतीय सेना के कुछ गुप्त कागज–पत्र अपने एक दूसरे आई०एस०आई० एजेण्ट साथी को सौंप रही थी।

उत्तर प्रदेश में गुमराह मुसलमान युवकों को आतंकवादी बनाने के कारखाने चल रहे हैं। आतंकवादी

बिस्मिलाह रहमानुर्-रहीम (पोस्टर का हिन्दी अनुवाद)

तौहीद की अमानत (अल्लाह व रसूल का बताया रास्ता) सीनों में है हमारे

❑ मो० अली मियां

आप अपने असली ताकत के राज को समझिये कि दुनियाँ में अब तक हजारों तूफान, आँधी और सैलाब के बावजूद हम और आप अब तक क्यों बाकी है ? एक हिन्दुस्तान के इतिहास को देख लीजिये यह धरती जिसको हिन्दुस्तानी संस्कृति से निर्माण किया है यानी जो कौम यहाँ आयी, वह खतम हो गयी, उसने अपनी कौमी पहचान व ताकत खो दिया। जो भी यहाँ आया हिन्दुस्तानी रंग में रंग गया, लेकिन वह क्या चीज थी, जिसने आपको और हमको अपनी पहचान के साथ बाकी रखा ? वह है अकीदा तौहीद (इस्लामी कलमा) व हजरत मोहम्मद साहब व अल्लाह को मानना, बाकी सारी ताकतों से इन्कार करना।

मैं आप से कहना चाहता हूँ कि आप अपनी ताकत व पहचान के साथ इस मुल्क में रहिए। हम मुसलमान हैं हमको इसका इकरार है कि हम इस मुल्क में पूरे इस्लामी तौर-तरीके के साथ रहेंगे यह हमारा फैसला है।

हम इस मुल्क में इस हालत में नहीं रह सकते कि हम अपनी इस्लामी पहचान व तौर–तरीके से अलग हो जायें और अपने अकीदे (इस्लामी तौर तरीके) को छोड़ दें। अतः हम साफ एलान करते हैं और आपसे भी चाहते हैं कि आप भी एलान करें कि हम ऐसे जानवरों की जिन्दगी गुजारने पर हरगिज राजी नहीं। जिनको सिर्फ रातिब चाहिए और उनको सेल्फ सिक्युरिटी चाहिए। उनको कोई मारे नहीं। हम हजार बार ऐसी जिन्दगी गुजारने और ऐसी हैसियत कुबूल करने से इन्कार करते हैं। हम इस सरजमीन पर अपनी अजानों, नमाजों के साथ रहेंगे और हजरत मोहम्मद साहब की जीवन चरित्र को सामने रख कर चलेंगे, इससे एक इंच भी अलग होने को तैयार नहीं होंगे। ❑

गतिविधियों को अंजाम देने के लिए प्रशिक्षित करनेवाले ये कारखाने और कोई नहीं इस्लामी तालीम के मदरसे हैं। इन मदरसों में लश्कर–ए–तोइबा, हरकत–उल–अन्सार, अल् बर्क तंजीम, तन्जीम–उल्–जेहाद, जम्मू–कश्मीर लिबरेशन, फ्रण्ट और हिजबुल मुजाहिदीन जैसे खूँखार और बदनाम आतंकवादी संगठनों के सदस्यों को प्रशिक्षित किया जा रहा है। पाकितान का "हबीब बैंक" भारत में उग्रवादियों को प्रशिक्षित करने के लिए ऐसे इस्लामी मदरसों को बड़ी रकम दे रहा है। यह खुफिया सूचना बांग्लादेश के गृह–विभाग ने भारत को, प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी की सुरक्षा के मद्देनजर कलकत्ता–ढाका बस यात्रा के पहले एहतियाती तौर पर दी थी। इस सूचना का मुख्य आधार बांग्लादेश में पकड़े गये खूंखार आतंकवादी मनीरूल् एहसान का वहाँ के खुफिया विभाग को दिया गया बयान माना जा रहा है। भारत–बांग्लादेश के सम्बन्धों में कड़ुवाहट घोलने और कलकत्ता–ढाका बस सेवा को नाकाम करने के उद्देश्य से जैसोर (बांग्लादेश) में किये गये बम–विस्फोट के मामले में मनीरूल एहसान मुख्य अभियुक्त है। भारतीय कलाकारों को निशाना बनाकर किये गये इस बम–विस्फोट के मामले में भी मनीरूल एहसान मुख्य अभियुक्त है। भारतीय कलाकारों को निशाना बनाकर किये गये इस बम–विस्फोट में एक दर्जन लोगों की मौत हो गयी थी। मनीरूल् एहसान ने अपने बयान में बांग्लादेश के आतंकवादी संगठन हरकत–उल्–जेहाद–अल्–बांग्लादेश और जागो मुजाहिद के लश्कर–ए–तोइबा से एकसूत्र में बँधे होने की पुष्टि की है। बांग्लादेश के खुफिया विभाग द्वारा भेजी गयी इस सनसनी खेज सूचना का शेष बचा सच भारतीय खुफिया विभागों की फाइलों में पहले से ही दर्ज है।

पश्चिम बंगाल के देगंगा इलाके के मंजिदहाटी गाँव में भारतीय खुफिया अधिकारियों ने पिछले दिनों छापामारी की थी। इस दबिश में मनीरूल अहसान की पत्नी सरीना बीवी, माँ सोफिया बीबी और भाई अब्दुल् कलाम को दबोच लिया गया। मनीरूल की शिक्षा और प्रशिक्षण "अशर्फुल् उलेमा दारुल् उलूम देवबन्द में हुई और फिर वह बांग्लादेश की सीमा से जुड़े देगंगा इलाके में आकर रहने लगा। उसने वहीं सरीना से शादी की। सरीना बताती है कि उत्तर प्रदेश के कई इलाकों से लश्कर–ए–तोइबा से जुड़े लोग उसके पास आते थे। मनीरूल हमेशा बांग्लादेश आया–जाया करता था और भारत के इस्लामी आतंकवादियों और बांग्लादेश में ठिकाना बनाये आतंकवादियों के बीच महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करता था। देवबन्द दारुल्–उलूम में कई आतंकवादियों को प्रशिक्षण "उ०प्र० में लश्कर–ए–तोइबा की जड़ें गहरी" शीर्षक से एक हिन्दी दैनिक में प्रकाशित प्रभात रंजन दीन की रिपोर्ट ने राज्य गृह विभाग की वर्षों से दफन उन

फाइलों की धूल झाड़ने को मजबूर कर दिया है, जिनमें दारुल्–उलूम देवबन्द, लखनऊ के नदवा सहित तमाम इस्लामी मदरसों की हरकतें दर्ज हैं। इस बीच कानपुर में पिछले महीने गिरफ्तार हुए आई०एस०आई० एजेण्ट जफर ने भी इन मदरसों से मदद मिलने की बात स्वीकार की है।

लखनऊ में दरुल्–उलूम नदवा और लखनऊ विश्वविद्यालय के नरेन्द्रदेव छात्रावास का पिछला हिस्सा लगा हुआ है। बीच में बस एक दीवार है। गत ४ जुलाई को दोपहर नरेन्द्रदेव छात्रावास के छात्रों ने टी०वी० पर खबर सुनी कि कारगिल मोर्चे पर टाइगर हिल पर भारत की सेनाओं ने पाकिस्तानी फौजों को खदेड़कर फिर से कब्जा कर लिया। स्वतः स्फूर्त्त चेतना से छात्र खुशियाँ मनाने लगे; नारा लगा– "जिनको प्यारा पाकिस्तान, उसको दे दो कब्रिस्तान।" इसी बीच नदवा से भी कुछ उत्तेजक नारे लगने लगे। नारे धार्मिक उन्माद और उन्माद युद्ध में बदल गया। यह कौमी जंग लगभग २ घण्टे जारी रही। पुलिस के आला अफसर मौके पर पहुँच गये। पुलिस को छह राउण्ड फायर हवा में करने पड़े, तब जाकर स्थिति पर काबू पाया जा सका। दरअसल यह घटना बहुसंख्यक समुदाय की अलीमियाँ के प्रति घृणा और आक्रोश की अभिव्यक्ति है। बहुसंख्यक समुदाय के लोग कारगिल के भारत–पाक युद्ध के समय अलीमियाँ के कौम के नाम जारी पत्र से गुस्साया हुआ है।

मौलाना अलीमियाँ नदवी इस देश के मुसलमानों के सर्वोच्च धर्मगुरु हैं। वह मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के अध्यक्ष और नदवतुल्–उलमा (इस्लामिक विश्वविद्यालय) के प्रमुख हैं। पिछले दिनों लखनऊ के दारुल् उलूम नदवा में तालिबी जमात का जलसा हुआ, जिसमें प्रशिक्षित किये गये करीब एक लाख लोग छोटे–छोटे समूहों में कथित रूप से इस्लाम के भारत में प्रचार के लिए गाँव–गाँव भेजे गये। इस तालिबी जमात के जलसे के दौरान सीमा पर लड़ रहे देश की सेना के जवानों और देश की सलामती का प्रस्ताव अलीमियाँ के पास भेजा गया; लेकिन अलीमियाँ ने ऐसा करने से इंकार तो किया ही, साथ ही साथ अपना उर्दू में लिखा एक पत्र भी जारी किया। यह पत्र प्रदेश के खुफिया विभाग के पास भी पहुँच गया। जब इस पत्र का हिन्दी अनुवाद कराया गया, तो खुफिया विभाग के आला अफसरों में हड़कम्प मच गया। 'रेड एलर्ट' की सूचना प्रदेश व केन्द्र सरकार को दे दी गयी है; लेकिन अलीमियाँ पर चुनाव के ठीक पहले हाथ डालने का निर्णय सरकार सम्हल कर लेना चाहती है। गुजरे साल सीरिया और जम्मू–कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट के उग्रवादियों के छिपे होने की खबर पाकर पुलिस और खुफिया विभाग ने नदवा और अलीमियाँ के रायबरेली निवास पर छापे मारे थे; पर राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण अलीमियाँ पर आँच नहीं आ सकी। □

– एम–१५०७, सेक्टर आई, ल०वि०प्रा० कॉलोनी, कानपुर–मार्ग, लखनऊ

षष्ठ विश्व हिन्दी सम्मेलन लन्दन में

षष्ठ विश्व हिन्दी सम्मेलन १४ सितम्बर को लन्दन में आयोजित किया जा रहा है, उक्त सम्मेलन ५ दिन चलेगा। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी करेंगे तथा सन्त कबीर की ६००वीं जयन्ती के उक्त शुभावसर पर प्रधानमन्त्री महोदय कबीर की चित्रयुक्त रजत मुद्रा (चांदी का सिक्का) भी प्रचलित करेंगे। कबीर दास जी की षष्ठ–शताब्दी राजकीय–स्तर पर मनायी जायेगी।

किन्तु प्रश्न उठता है कि हिन्दी की सेवा करने में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान विश्व में अग्रगण्य है, जिनके रामचरित मानस का विश्व की प्रमुख भाषाओं तक में अनुवाद हो चुका है। जिन्होंने हिन्दी के अनेक ग्रन्थ लिख कर हिन्दी की महान सेवा की है। ५०२ वर्ष तुलसीदास के जन्म को हो चुके हैं; किन्तु आज तक किसी भी सरकार का ध्यान उक्त महापुरुष की ओर नहीं गया, जबकि इन्दिरा शासन काल सं० २०३१ वि० में रामचरित मानस की चतुःशती राजकीय स्तर पर मनायी गयी। सं० २०३३ वि० में हल्दीघाटी–युद्ध–दिवस तथा १९८३ में वीर सावरकर जन्मशती भी राजकीय स्तर पर मनायी गयी। कांग्रेस की तो कोई गणना ही नहीं, वहाँ तो गांधी, नेहरू, अम्बेडकर, राजगोपालाचार्य आदि सभी की मनायी गयी, किन्तु तुलसीदास जी ने ही ऐसा कौन–सा अपराध किया जिनकी पंचशती को सरकार ने तिलांजलि दे दी। स्मरण रहे कि एक बार हिन्दी प्रेमी सेठ गोविन्ददास सांसद् जब हिन्दी पर बोल रहे थे, तो आपने गोस्वामी तुलसीदास के नाम का स्मरण किया, तो एक सांसद् बोले– गोस्वामी जी कौन थे, वे किसके समय में हुए? तो दूसरे महोदय ने कहा कि अकबर के समय में। तो सेठ जी ने उत्तर दिया, नहीं तुलसीदास जी तो अकबर के समय में नहीं हुए थे, तुलसीदास जी के समय में अकबर हुआ था; क्योंकि तुलसीदास के समय में सिकन्दर लोदी, इब्राहीम लोदी, बाबर, हुमायूँ, शेरशाह सूरी, हेमचन्द्र विक्रमादित्य, अकबर व सलीम जैसे राजाओं ने शासन किया था। तुलसीदास को किसी प्रकार का राजाश्रय भी प्राप्त नहीं था। □

भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिक भाषाएँ (२)

- डॉ० शिव कुमार ओझा

भोगवाद और उसके प्रतिफल

हम आम के फल का तो बहुत सहजता से रसास्वादन करते रहते हैं; किन्तु यह बिल्कुल भूल जाते हैं कि आम के पेड़ की जड़ें भी होती हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए इन जड़ों को सींचने या उनकी सेवा करने का विचार ही मन में नहीं आता। यही भोगवादी प्रवृत्ति के लक्षण हैं जो कि आधुनिक काल में अधिक विद्यमान हैं। मूल का विचार न करना, नित्य और अनित्य वस्तुओं में अन्तर न कर पाना, अपने अज्ञान को ही ज्ञान समझ लेना, दृश्यमान को ही सर्वोपरि मान लेना इत्यादि कारणों से भोगवादी प्रवृत्ति जन्म लेती है और पल्लवित होकर विकराल रूप धारण कर लेती है जो कि विविध प्रकार के दुष्परिणामों का कारण बनती है। यह प्रवृत्ति लेखकों, कवियों, साहित्यकारों एवं पाठकों में भी देखी जा सकती है। वर्तमान युग का अधिकतर साहित्य राजसी एवं तामसी प्रवृत्ति का होता जा रहा है, जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि वासनाओं को उत्तेजित करता है, जिसके फलस्वरूप भोगवादी सभ्यता को प्रोत्साहन मिलता है। यही कारण है कि हम अच्छे साहित्यकारों को तो भलीभाँति स्मरण करते हैं, उन्हें माल्यार्पण करते हैं तथा उनका जन्म-दिवस मनाते हैं, जिसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों द्वारा प्रसारित भी किया जाता है। यह सब इस भोगवादी युग में स्वाभाविक भी लगता है या लगने लगा है। परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि किसी भी लेख या साहित्य के मूलभूत एवं सशक्त अंग या अन्तरंग होते हैं अक्षर, शब्द और व्याकरण, जिसके बिना एक पद या वाक्य लिखना असम्भव है।

थोड़ा-सा भी हम विचार करें, तो पायेंगे कि प्रत्येक साहित्यकार को "अक्षर" पहले से ही प्राप्त हैं, वह उनका सृजन नहीं करता है; परन्तु हम उन्हें भूल जाते हैं, जिन्होंने इन अक्षरों को जन्म दिया। अक्षरों से आगे शब्दों की ओर बढ़ें, तो पायेंगे कि प्रत्येक रचनाकार को शब्दों का भी भण्डार पहले से उपलब्ध है, वह उनका आविष्कार नहीं करता। परन्तु उन महापुरुषों का हमारे मन में कभी भी विचार नहीं आता, जिन्होंने इन तर्कपूर्ण एवं सुन्दर शब्दों का आविष्कार किया; इनमें कुछ शब्द तो इतने तेजस्वी हैं कि उनके श्रवण अथवा उच्चारण मात्र से अनेक भारतीयों में सात्त्विक भाव प्रस्फुटित होते हैं। शब्दों से भी आगे बढ़ें, तो हम पायेंगे कि एक साहित्यकार को शब्दों को व्यवस्थित रूप से लगाकर वाक्य बनाने के नियम (व्याकरण) भी पहले से उपलब्ध हैं, जिनका पालन करना उसकी बाध्यता होती है। हम उन महानुभावों का भी स्मरण नहीं करते जिन्होंने अपनी तीक्ष्ण-बुद्धि द्वारा शब्दों को वाक्यों एवं पदों में परिणति के लिए तर्कसंगत व्याकरण बनाया। अतः साहित्यकार तो इन दिये हुए उपकरणों का, जो उसे पहले से ही प्राप्त हैं- अक्षर, शब्द और व्याकरण- इनका केवल अपनी इच्छानुसार उपयोग करता है। यह उपयोग ही साहित्यकार का उपभोग है, जिसके द्वारा वह अपनी श्रेष्ठता अर्जित करता है। प्रायः यह कहा जाता है कि साहित्यकार भाषा की सेवा करता है, जिसके लिए वह पुरस्कृत भी किया जाता है। परन्तु यदि भाषा स्वयं बोलना जानती, तो वह बड़े गर्व से कहती कि "आप" (साहित्यकार) मिथ्या वचन कर रहे हैं; क्योंकि वास्तविकता इसके विपरीत है और वह है कि "मैं" (भाषा) साहित्यकार की सेवा करती हूँ।

किसी वस्तु का निर्माण यदि वैज्ञानिक रीति से हुआ है; परन्तु उसका उपयोग या उपभोग अवैज्ञानिक है, तो वह वस्तु वैज्ञानिक ही कहलाती है। उदाहरण के लिए आजकल बहुत-सी भौतिक सुविधाजनक वस्तुएँ और बच्चों के खिलौने वैज्ञानिक रीति से बनने के कारण वैज्ञानिक कहलाती हैं, यद्यपि उनका उपयोग या उपभोग अधिकतर अवैज्ञानिक कार्यों के लिए होता है। हमारी देवनागरी लिपि की भाषाएँ वैज्ञानिक रीति से निर्मित होने के कारण वैज्ञानिक है, यद्यपि साहित्यकारों द्वारा उनका उपयोग उनकी स्वतन्त्र इच्छाओं द्वारा होता है, जो कि अवैज्ञानिक है। अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं का निर्माण वैज्ञानिक रीति से न होने के कारण वह सभी भाषाएँ अवैज्ञानिक हैं और इससे उनके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता, जब यदा-कदा उनका उपयोग विज्ञान या वैज्ञानिक कार्यों के लिए समझा जाता है। हम भारतीयों के लिए यह गौरव और सौभाग्य की बात है कि हमारी भाषाएँ वैज्ञानिक हैं, इसलिए विज्ञान की चर्चा एवं उसका विस्तार करने का अधिकार हमें जन्म से ही प्राप्त है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हम वस्तुओं का उपयोग करते-करते इतने मोहग्रस्त तथा भ्रमित हो जाते हैं कि उनके वास्तविक स्वरूप का भान ही नहीं रहता। यह भोगवादिता का ही प्रतिफल है कि सत्य ढक जाता है और हम तत्त्व के दर्शन से विमुख

हो जाते हैं।

भोगवादी मनुष्य का अपना कोई स्वाभिमान नहीं होता, वह धनवानों एवं प्रभावी व्यक्तियों की इच्छाओं के अनुरूप विचार एवं कार्य करता है तथा अपने अन्तर्मन को हीन भावना से ग्रसित रखता है। उसके स्वयं का अज्ञान भी इस प्रक्रिया को और प्रगाढ़ बनाता है तथा भ्रममूलक एवं मिथ्या धारणाओं को जन्म देता है। इस तथ्य के लिए हम एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं– अंग्रेजी या कुछ पश्चिमी सभ्यता वाले मनुष्य अपने को "विकसित देश" कहते हैं, परन्तु हम भारतीयों को "विकासशील देश" कहते हैं, जिसे हमारे अधिकतर बुद्धिजीवियों ने सहर्ष स्वीकारा है। "विकासशील देश" का अर्थ होता है "अविकसित देश" अर्थात् जो अभी विकसित नहीं है; किन्तु विकास के लिए प्रयत्नशील है। अब हम जानना चाहेंगे कि हमारा देश किन बातों में विकसित नहीं है। क्या हमारी भाषाएँ विकसित नहीं हैं ? क्या हमारी संस्कृति विकसित नहीं है? क्या हमारा धर्म विकसित नहीं है ? यह सभी वस्तुएँ हमारे यहाँ भारत भूमि पर शाश्वत रूप से विकसित हैं तथा जो अपने को "विकसित देश" समझते हैं उनसे कहीं अधिक हम इन क्षेत्रों में समृद्ध हैं, इतने समृद्ध हैं कि उनसे तुलना करना भी हमारे लिए अपमानजनक होगा; परन्तु हमारी विवेकहीनता, हीनभावना और विदेशी दुष्प्रभाव के फलस्वरूप हमने अपने को "विकासशील देश" कहलवाना अपमानजनक नहीं समझा। अधिक से अधिक हमको आधुनिक काल में "आर्थिक विकासशील देश" (Financially Developing Country) की संज्ञा दी जा सकती थी, यद्यपि पुरातन काल में हमारे पूर्वजों के पास अर्थ की कोई कमी न थी; अर्थ की इस न्यूनता के ही कारण आधुनिक युग में हमारे पास योग्य वैज्ञानिकों की कमी न होते हुए भी, भारत में तकनीकी विकास सन्तोषजनक न हो पाया। अतः इस प्रकार के अपमानों को सहर्ष स्वीकारना हमारी भोगवादिता का ही दुष्परिणाम है।

अक्षर, शब्द और व्याकरण किसी भी साहित्य के प्राण हैं, जिन्हें प्रत्येक साहित्यकार को शुद्ध, पवित्र एवं तेजस्वी रखना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इस भोगवादी युग में वह साहित्यकार भी विस्मृत होकर इन अमूल्य निधियों का तिरस्कार करने लगता है। अन्यथा क्या कारण है कि हमारे उन शब्दों को जो हमारी धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत हैं, उन्हें तामसी विचारों की पृष्ठभूमि में प्रविष्ट करा दिया जाता है। जिस प्रकार चरित्रवान् पुरुष चरित्रहीन व्यक्तियों की संगति में आकर अपने मूल्य को गिराता है, इसी प्रकार हम सात्विक पृष्ठभूमि के शब्दों को तामसी पृष्ठभूमि की भावनाओं एवं शब्दों के समूह में रखकर उसके मूल्य को गिराते हैं, जिससे कि हमारी संस्कृति मलिन होती है। उदाहरण के लिए "माला", "सत्य" और "कथा" शब्दों को ले लीजिये। "माला" शब्द को सुनकर तुरन्त ही भगवद् जप करनेवाली माला का भाव या अपने श्रद्धा–सुमन की माला का भाव अन्तर्मन में प्रकट होता है; परन्तु आजकल इस शब्द का प्रयोग "सन्तति निरोध" के विज्ञापनों में दवाई की गोलियों के लिए किया जाता है, जिसके कारण अब बालकों एवं युवकों में 'माला' शब्द को सुनकर सात्विक भावों के जाग्रत् होने की सम्भावना क्षीण हो गयी है। इसी प्रकार "सत्य" और "कथा" शब्द भी सात्विक भावनाओं वाले हैं; परन्तु एक मासिक पत्रिका "सत्यकथा" ने इन दोनों ही शब्दों को अत्यन्त अश्लील एवं तामसी मनोवृत्ति वाली कहानियों के लिए प्रयोग किया है। इस पत्रिका का नाम "सच्ची तामसिक कहानियाँ" या अधिक से अधिक "सच्ची कहानियाँ" भी रखा जा सकता था; परन्तु मलिन 'माल' को अधिकाधिक बेचकर मालामाल होने की तीव्र लालसा के वशीभूत होकर मनुष्य कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। हमारे मूल्यवान् एवं आस्थावान् शब्दों का दुरुपयोग हमारी संस्कृति को ही विकृत करता है; परन्तु जब यह कार्य किसी साहित्यकार द्वारा हो, तो अधिक दुःख होता है। भौतिक भूमिका से ऊपर उठकर तथा हृदय में अपनी संस्कृति व शब्दों के प्रति प्रेम जगाकर ही हम शब्दों की दुर्दशा को जान पायेंगे तथा उसे रोक पायेंगे।

भोगवादिता अवैज्ञानिक है; क्योंकि उसकी पुष्टि वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं तार्किक निष्कर्षों द्वारा नहीं होती, बल्कि स्वेच्छाचारी मनोभावों द्वारा होती है। भोगवादी लेखकों के लिए कई बार किसी बात की गहरायी पर पहुँचना कठिन हो जाता है; क्योंकि उनके स्वयं के स्वार्थ उससे जुड़े हुए होते हैं। उन्हें सत्य कथन में कठिनाई होती है। बहुत से भोगवादी लेखकों में इतनी योग्यता भी नहीं होती कि वह किसी वस्तु के सत्य स्वरूप का दिग्दर्शन करा सकें। भोगवादी को निःस्वार्थ होना कठिन हो जाता है; क्योंकि उसे सदा अपने स्वार्थ–सिद्धि की चिन्ता रहती है। भोगवादी संस्कृति प्रगति के नाम पर विनाश की ओर अग्रसर रहती है। यदि भारतीय मूल की भाषाओं के लेखकों ने अपनी भोगवादी प्रवृत्ति को बनाये रखा, तो अंग्रेजी व विदेशी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभावों को रोक पाना अत्यन्त कठिन हो जायेगा।

मातृभाषा के प्रति कर्तव्यबोध

हमें चाहिए कि जिन पूर्वजों ने साहित्य की जड़ों एवं उसके मूलभूत अंगों (अक्षर, शब्द और व्याकरण) का

आविष्कार किया तथा उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है उनको हम वर्ष में कम से कम एक बार तो सामूहिक रूप से याद करें तथा अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करें। इसका अर्थ होगा कि हम अपनी जड़ों के प्रति सजग हैं और उन्हें समयानुकूल अधिक सशक्त बनाने के इच्छुक हैं; यह वही जड़ें हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को हजारों वर्षों से प्रभावी ढंग से सींचा है तथा जीवित रखा है।

मातृभाषा या भारतीय मूल की अन्य भाषाएँ यदि अपने मूलभूत आधार संस्कृत भाषा से ही अधिक सम्बन्ध रखें तो भारत या विश्व में हमारे प्रति अधिक प्रीति व श्रद्धा बढ़ेगी। भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए भी यह आवश्यक है कि हम भारतीय भाषाओं में विदेशी शब्दों का अधिक समावेश न होने दें। कोई भी विदेशी अपनी ज्ञान वृद्धि के लिए भारत में भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति के मौलिक रूप को देखना तथा समझना चाहता है। उदाहरण के लिए हम एक दृष्टान्त देते हैं– भारत में आधुनिक विज्ञान एवं इंजीनियरिंग का अध्ययन एवं अनुसंधान कुछ पश्चिमी 'विकसित देशों' से लगभग १५० वर्ष पूर्व ही आया है। इतने वर्षों में भारत में बहुत से इस विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के प्रोफेसर्स एवं वैज्ञानिक हुए जिनमें कुछ ने तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी अर्जित की। बहुत–सी राष्ट्रीय अनुसन्धान संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय विकसित किये गये जिन पर अरबों रुपया भारत में व्यय हुआ। परन्तु फिर भी हम 'विकसित देश' के एक भी मूल निवासी को आकर्षित नहीं कर पाये जो अपने स्वयं के धन से (सरकारी छात्रवृत्ति से नहीं) भारत में यह विज्ञान या इंजीनियरिंग पढ़ने या अनुसंधान करने आया हो। इसके विपरीत, भारतीय भाषा एवं संस्कृति को समझने के लिए अनेक विदेशी व्यक्ति अपने स्वयं के धन से भारत आते हैं, यहाँ के आश्रमों एवं मन्दिरों में निवास करते हैं तथा भारतीय गुरुओं से दीक्षा ग्रहण करते हैं। इनमें से कुछ तो भारत में ही बस जाने का प्रयत्न करते हैं तथा भारतीय संस्कृति की तन, मन, धन से सेवा करके अपने को धन्य मानते हैं। यदि भारत सरकार ने थोड़ा–सा भी हमारी संस्कृति को प्रोत्साहन दिया होता तो भारत के पर्यटन विभाग ने प्रतिवर्ष पर्याप्त धनोपार्जन किया होता।

अंग्रेजी भाषा–भाषियों के कारण अनेक भारतीय जनपदों के नाम विकृत हुए थे जैसे कि वाराणसी, मुम्बई, बड़ोदरा इत्यादि। इनके विकृत होने का एक कारण यह भी था कि अंग्रेजी मातृभाषा वालों को इनका ठीक–ठीक उच्चारण कर पाना कठिन था। अंग्रेजी भाषा वालों के लिए ख, ठ, ढ, ण इत्यादि अक्षरों का उच्चारण सहजता से कर पाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि वे अक्षर अंग्रेजी भाषा में नहीं हैं। इसी प्रकार से उनको कुछ अक्षरों के झुकावों का उच्चारण कर पाना कठिन है। ऐसे सभी जनपदों के नामों का शुद्धीकरण होना चाहिए जो विकृत हुए हैं, इस दिशा में कुछ कार्य हुआ भी है परन्तु और होना अभी शेष है। अनेक जनपदों के नाम का परिवर्तन मुगल एवं अन्य विदेशी शासकों ने अपना प्रभुत्व दर्शाने के कारण किया था। अब ऐसे सभी परिवर्तित नामों को अपने मूल नामों में आ जाना चाहिए। हमारी संस्कृति में जो विकृति आयी है इससे कुछ समाधान मिलेगा।

भारतीय मूल की भाषाएँ स्वदेशी विचारों की मूलधारा, भारत के आध्यात्मिक चिन्तन एवं भारत के स्वभाव से

कमाल 'धर्म-निरपेक्षता' का

– डॉ. देवेन्द्र दीपक

वह कहते हैं यह आपका नहीं भारत।
यह सोनिया और कांग्रेस का भारत है।
यह लालू, मुलायम, कांशीराम का भारत है।
यह शहाबुद्दीन और सुलेमान सेठ का भारत है।
यह ज्योति वसु और इन्द्रजीत गुप्त का भारत है।

इस भारत में,
धर्म–निरपेक्षता एक करिश्माई ताबीज है।
धर्म–निरपेक्षता का ताबीज बाँधकर भारत में
बेखौफ कोई, कहीं भी कुछ भी कर सकता है।

इस ताबीज को आजमाकर देखिए/इसे बाँधकर–
आप बड़े से बड़ा घोटाला कर सकते हैं।
आप कहीं भी किसी भी औरत की अस्मत लूट सकते हैं।
आतंकवादियों और अपराधियों को आप दे सकते हैं पनाह।
तस्करों के लिए देश को बना सकते हैं चरागाह।

आप आई.एस.आई. के एजेण्ट बन सकते हैं।
आप सी.आई.ए. के पेटेण्ट बन सकते हैं।
जगह–जगह फैले दो करोड़ घुसपैठियों को
आप भारत का मतदाता बना सकते है।

आप शिक्षा–सम्मेलन में सरस्वती का अपमान कर सकते हैं।
आप स्कूल में वन्देमातरम् के खिलाफ दे सकते है फतवा।
जातीय द्वेष फैलाने वाले का आप बढ़ा सकते है रुतवा।

इन दिनों भारत में देशभक्त होना नहीं जरूरी।
आपका धर्मनिरपेक्ष होना ही काफी है,
धर्मनिरपेक्ष के सब गुनाहों की माफी है।

– ए–२३१, शाहपुरा, भोपाल–३६

जुड़ी हैं और भारतीय समाज के [illegible] का निर्माण करती हैं। इसके लिए उसके पास प्रचुर मात्रा में अपना विशिष्ट शब्द भण्डार है। इन शब्दों एवं उनके उच्चारणों को शुद्ध रखना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। शब्दों के उच्चारण में ह्रास की परिणति होती है उन शब्दों के शनैः-शनैः विकृत होने में, जो कि काल के प्रवाह में एक शुद्ध शब्द बिल्कुल दूसरे अशुद्ध या विकृत शब्द में परिवर्तित हो जाता है जिसके अर्थ भी भिन्न हो जाते हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप पुरानी मूल्यवान् एवं आस्थावान् पुस्तकों में निहित शब्दों के अर्थों को अनर्थ करने की प्रक्रिया सुलभ हो जाती है; कुछ अज्ञानी एवं स्वार्थी व्यक्तियों को यह सुलभता भाती भी है। यदि ये शब्द विकृत या विनष्ट होते हैं तो अपनी संस्कृति विलुप्त होने की अवस्था के लिए चल पड़ती है। अपनी संस्कृति का ह्रास तो बहुत मौलिक ह्रास है। हमारी मातृभाषा में मोक्षदायिनी शक्ति का प्रवास है जिसकी उपलब्धि हमारे विवेक एवं सामर्थ्य पर निर्भर है।

प्राचीन भारत में ज्ञान के विशिष्ट बिन्दुओं पर शास्त्रार्थ हुआ करते थे परन्तु अब उनका अभाव है। उनका स्थान अब आधुनिक साइंस एवं इंजीनियरिंग ने ले लिया है जहाँ उसके सूक्ष्म विषयों पर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिचर्चाएँ होती हैं। स्वतन्त्र भारत में अपनी वैज्ञानिक भाषा के विभिन्न सूक्ष्म बिन्दुओं पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिचर्चाएँ होनी चाहिएं। इससे भाषा में प्रखरता आयेगी एवं उसका प्रचार होगा। मातृभाषा की विशारद, साहित्यरत्न, बी०ए०, एम०ए० इत्यादि की शिक्षाओं में मातृभाषा से सम्बन्धित सूक्ष्म विषयों पर योजनाओं (Projects) का क्रियान्वयन होना चाहिए जिससे कि भाषा की उन्नति में योगदान हो। ऐसे रचनाकारों को अधिक प्रोत्साहित करना चाहिए तथा उनको आदर देना चाहिए जो भाषा के मूल (अक्षर, शब्द और व्याकरण) के विषय में मौलिक लेख प्रस्तुत करते हैं जिसके फलस्वरूप भाषा अधिक बलवती होती है और यही भाषा की वास्तविक सेवा कहलायेगी। आजकल भी साइंस एवं इंजीनियरिंग के युग में केवल मौलिक साइंस (Basic Science) के विषयों पर ही आविष्कार करने वालों को "नोबेल पुरस्कार" (Nobel Prize) प्रदान किया जाता है जो कि विश्व का उच्चतम पुरस्कार है।

हम निःसन्देह कह सकते हैं कि अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के आगमन ने हमारी मातृभाषा के बहुत से महत्त्वपूर्ण शब्दों के अर्थों को विकृत एवं संकीर्ण किया है। उदाहरण के लिए हमारी मातृभाषा के 'विज्ञान' शब्द को ले लीजिए जो कि सहस्रों वर्ष पुराना है, यह शब्द भगवद्गीता में आया है और उससे भी अति प्राचीन वेदों में भी प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी भाषा का "साइंस" (Science) शब्द अपेक्षाकृत बिल्कुल नया है, सम्भवतः लगभग षट् शताब्दी पुरातन होगा। यदि हम प्रामाणिक संस्कृत शब्दकोश में "विज्ञान" शब्द का अर्थ देखें और अंग्रेजी शब्दकोश में "Science" शब्द के अर्थ को देखें तो पायेंगे कि 'साइंस' शब्द के अर्थ 'विज्ञान' शब्द के अर्थ में समाहित हैं। "विज्ञान" शब्द 'साइंस' की अपेक्षा अपने अर्थों में कहीं अधिक प्रखर, व्यापक एवं विस्तृत हैं। परन्तु हमने फिर भी 'विज्ञान' शब्द के अर्थ को अंग्रेजी भाषा के 'साइंस' शब्द के अर्थ के समान मान लिया। अर्थात् जिन व्यक्तियों ने अंग्रेजी के प्रभाव में आकर 'विज्ञान' शब्द को "साइंस" शब्द के माध्यम से जाना है उन्होंने इस "विज्ञान" शब्द के अर्थ के लिए अपनी बुद्धि संकुचित कर ली। इसी प्रकार हमने पदार्थ, संज्ञा, धर्म, माँ इत्यादि अनेकानेक शब्दों को उनके अंग्रेजी माध्यमों द्वारा समझने के कारण उनके अर्थों को संकीर्ण एवं संकुचित कर लिया। अतः जब भारतीय विद्यार्थी पहले अंग्रेजी माध्यम से पढ़ते हैं तो अपनी मातृभाषा के बहुत से शब्दों को संकुचित अर्थों में समझने लगते हैं या मातृभाषा के शब्दों के मूलभावों को विकृत करके समझते हैं, इसका दुष्प्रभाव हमारी संस्कृति पर भी पड़ता है। बड़े दुःख की बात यह है कि हमारी मातृभाषा के शब्दकोशों में भी "विज्ञान" शब्द के अर्थ में अंग्रेजी के "साइंस" शब्द के अर्थ को बड़ी सुगमता से बिना कुछ बताये जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार मातृभाषा के अन्य शब्दों के साथ हुआ है। अतः हम तो कहेंगे कि विदेशी शब्दों की दीमक हमारे शब्दों को खा रही है या विकृत कर रही है। इससे त्राण पाने का एक प्रभावकारी मार्ग यह है कि जब भी समानार्थ समझे जाने वाले अंग्रेजी या अन्य विदेशी शब्दों के अर्थ हमारी मातृभाषा के शब्दकोशों में प्रवेश कराये जायें तो उन्हें स्पष्ट रूप से शब्दकोश में दर्शाया जाना चाहिए कि यह अर्थ अंग्रेजी या अन्य विदेशी शब्दार्थ के माध्यम से आया है। इससे हमारे शब्दार्थों की मौलिकता एवं शुद्धता बनी रहेगी।

हमारी मातृभाषा में पर्यायवाची शब्दों की बहुतायत है। प्रत्येक पर्यायवाची शब्द परस्पर समान भाव का होते हुए भी एक पृथक विशिष्ट भाव प्रकट करता है। अंग्रेजी भाषा में पर्यायवाची शब्दों की बहुत कमी होने के कारण अंग्रेजी मातृभाषा वाले व्यक्ति बहुत-सी भावनाओं एवं शब्दों से वंचित रहते हैं। अर्थात् ज्ञान की प्रखरता से हाथ धो बैठते हैं। हमारी मातृभाषा के शब्दकोशों में शब्द के आगे उसके पर्यायवाची शब्दों की संख्या प्रस्तुत की जानी चाहिए जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी के पर्यायवाची शब्दों की संख्या से उनकी तुलना की जा सके तथा अपनी

मातृभाषा की प्रखरता का एक और प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त होता रहे। हमारे पर्यायवाची शब्दों के एक पृथक शब्दकोश का निर्माण होना चाहिए।

देवनागरी लिपि की मातृभाषा वालों को जिन्हें साथ-साथ अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान है उन्हें प्रायः अंग्रेजी भाषा की 'रेलवे समय सारिणी' या 'टेलीफोन डाइरेक्टरी' देखना सुविधाजनक लगता है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि उन्हें अंग्रेजी की आदत है, प्रत्युत कुछ और भी कारण होते हैं। अनेक व्यक्ति व्यंजन अक्षरों के वर्गों के क्रम को भूल जाते हैं तथा इस प्रकार की शंकाएँ होने लगती हैं कि टवर्ग और चवर्ग में से कौन क्रम पहले आता है। इसका पता नहीं होता कि अं, अः, ऋ की मात्रा वाले अक्षर, आधे अक्षर तथा क्ष, त्र, ज्ञ अक्षरों का समावेश शब्दकोश के क्रमों में किधर प्राप्त होगा। इस प्रकार की दुविधाओं के निराकरण हेतु देवनागरी भाषा के शब्दकोशों के आरम्भ में ही इन्हें तथा अन्य आवश्यक जानने योग्य असुविधाजनक बातों को दर्शाया जाना चाहिए। मातृभाषा के शब्दकोश को उपयोग करने की विधि सरल होनी चाहिए जिसके कारण अधिक से अधिक व्यक्ति उसके उपयोग के लिए आकर्षित हों। इसके फलस्वरूप अक्षरों के क्रम से सम्बन्धित मातृभाषा की अन्य पुस्तकें देखने में सुविधा होगी।

अज्ञान की एक बहुत दृढ़ पर्त माया कहलाती है जो कि हमें जन्म से ही प्राप्त है। इसके अतिरिक्त अज्ञान की एक दूसरी पर्त हमारे ऊपर चतुर विदेशी तथा कुछ स्वजन बन्धु लादने का प्रयत्न करते हैं। यदि हमने स्वयं का विवेक खो दिया तो हम अज्ञानी ही बने रहेंगे, अपनी भाषा एवं संस्कृति को दुर्बल करते रहेंगे तथा साथ में अपने को मूर्खतावश बुद्धिमान भी समझते रहेंगे। यह मातृभाषा के प्रति अज्ञान ही है तथा साथ में कुछ मनुष्यों को वोट-बैंक प्राप्त करने की लालसा भी, जो यह कहने को बाध्य करता है कि "सब भाषाएँ एक जैसी होती हैं"। ऐसे कथनों के प्रचार से अशिक्षित जन-मानस भ्रमित होता है तथा हमारी सांस्कृतिक आस्थाएँ दुर्बल तथा मलिन होती हैं।

भारत का शताब्दियों तक पराधीन रहने के कारण विदेशी भाषाओं जैसे अंग्रेजी, फारसी और अरबी का प्रभाव भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति पर पड़ा है। परतन्त्रता की मनोवृत्ति इतनी बढ़ी कि हम इन विदेशी शब्दों के प्रयोग में अपने को गौरवान्वित समझने लगे और हमारी यह दशा अभी भी समाप्त नहीं हुई है। अंग्रेजी शिक्षा ने कुछ विशेषकर अधिक ही हमारी शिक्षा एवं मनोभावों को प्रभावित

कौन कहता है, राणा साँगा ने बाबर को आमन्त्रित किया था ?

१. अब बाबर घर की कठिनाइयों से मुक्त हो और भारत पर आक्रमण करने के कार्यक्रम में उसने अपने को पीछे की ओर से सुरक्षित अनुभव किया; क्योंकि कन्धार का अभेद्य-दुर्ग अब उसके अधिकार में था। इसी समय उसे पंजाब के गवर्नर दौलतखाँ लोदी का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी और दौलतखाँ में तनातनी हो गयी थी। अतः पंजाब का स्वतन्त्र शासक बनने की आशा से उसने बाबर को अपना सम्राट् मानने का वायदा किया था। १५२४ ई० में बाबर ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक शक्तिशाली सेना लेकर लाहौर की ओर चल दिया।

– डॉ० आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव (*मुगलकालीन भारत, पृष्ठ १७*)

२. यह अवसर बाबर को तब मिला, जब एक असन्तुष्ट दल ने उसे भारत आने को निमन्त्रित किया। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार उस समय भारत सरदारों की महत्त्वाकांक्षाओं, मनमुटाव एवं प्रतिस्पर्द्धा के कारण अस्त-व्यस्त था। इसके कुछ सरदारों की महत्त्वाकांक्षा एवं प्रतिशोध की भावना ने इसकी मृत्यु को शीघ्र बुला लिया। इनमें दो सरदारों ने तो बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण तक दे डाला। एक था पंजाब का सबसे अधिक शक्तिशाली सरदार दौलतखाँ, जो इब्राहीम से असन्तुष्ट था; क्योंकि उसने (इब्राहीम लोदी ने) उसके पुत्र दिलावर खाँ के साथ निष्ठुर व्यवहार किया था। दूसरा था इब्राहीम लोदी का चाचा आलम खाँ, जो दिल्ली की गद्दी पर अपना हक बताता था।

– रमेश चन्द्र मजूमदार, हेमचन्द्र रायचौधुरी, कालीकिंकर दत्त (*भारत का बृहत् इतिहास-२, पृष्ठ १४६*)

किया है। जिसके कारण हममें जाने–अनजाने अनेक परिवर्तन आये हैं जिन्हें स्पष्ट देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कुछ व्यक्तियों एवं विद्यार्थियों के वार्तालाप करने की प्रणाली में, खेलने–कूदने के ढंग में, कपड़े पहनने में, पढ़ाई–लिखायी के विषयों एवं पाठ्यक्रमों में, तर्क करने की शैली में, खान–पान में, हाव–भाव प्रगट करने में, अश्लीलता की वृद्धि में इत्यादि। यहाँ तक कि विदेशी प्रभावों के कारण हमारी आस्थाओं को, धार्मिक एवं पुरातन ऐतिहासिक तथ्यों तथा उनके कालों की गणनाओं को भ्रममूलक एवं मिथ्या बताया गया है। अन्ततोगत्वा हम कह सकते हैं कि इससे हम मानसिक रूप से दुर्बल, पराधीन, चरित्रहीन एवं क्षुब्ध हुए हैं, हमारा राष्ट्रीय गौरव गिरा है और हम अपना स्वाभिमान खो बैठे हैं। इन सभी दुर्दशाओं का अन्त तभी होगा जबकि हम विदेशी भाषा एवं संस्कृति के प्रवेश एवं प्रभाव पर नियन्त्रण रख सकें तथा अपनी इच्छाओं को संयमित कर सकें। बिना साधना के साध्य की प्राप्ति नहीं होती।

राष्ट्रीय स्वाभिमान

हमारी भाषाओं एवं संस्कृति का वैज्ञानिक स्वरूप भारत राष्ट्र के लिए उत्कर्ष एवं स्वाभिमान की बात है। किसी भी भाषा की श्रेष्ठता एवं वर्चस्व इस पर निर्भर नहीं करता कि कितने व्यक्ति उसे जानते हैं या उस भाषा के लोग राजनीतिक व आर्थिक रूप से कितने समृद्ध हैं। भाषा की श्रेष्ठता इस पर निर्भर करेगी कि उसके अक्षरों एवं शब्दों का विज्ञान कितने अच्छे स्तर का है। उसमें मानव चरित्र निर्माण एवं अच्छे संस्कार प्रदान करने की कितनी क्षमता है, सात्विक भावों एवं संस्कारों को कितने स्वरूपों में देखा गया है तथा उसके लिए कितना शब्द भण्डार है। जीवन के उच्चतम शिखर को उस भाषा के मनीषियों द्वारा उद्घोषित एवं अंगीकृत किया गया है कि नहीं तथा वहाँ तक पहुँचाने के लिए प्रचुर मात्रा में उपयुक्त शब्द भण्डार एवं भाव हैं कि नहीं। भाषा की श्रेष्ठता इस पर भी निर्भर करेगी कि उसके पास केवल भौतिक विकास या अपरा विद्या के लिए ही नहीं प्रत्युत आध्यात्मिक विकास एवं परा विद्या के लिए भी किस स्तर के और कितने भाव एवं शब्द भण्डार हैं।

हमारी मातृभाषा में अक्षरों का विज्ञान है, शब्दों का विज्ञान है, व्याकरण का विज्ञान है तथा वाणी के उच्चारण का विज्ञान है। इन सुदृढ़ मूल आधारों का आश्रय पाकर यहाँ विकसित हुए हैं हमारे कर्मों का विज्ञान, इन्द्रियों का विज्ञान और अन्तःकरण का विज्ञान। इस अन्तःकरण के विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के विज्ञान। हमारे यहाँ है सुख और आनन्द के विज्ञान, दुःख एवं बन्धन के विज्ञान तथा आत्मा और परमात्मा के विज्ञान। हमारे पूर्वजों ने आविष्कार किया है पदार्थों का विज्ञान, तर्कों का विज्ञान, "योग" का विज्ञान इत्यादि। भारतीय संस्कृति में नाच–गाने व अन्य कलाएँ केवल कामनाओं की तृप्ति के साधन मात्र ही न थे बल्कि इनका भी सूक्ष्म दर्शन एवं विज्ञान विकसित हुआ था। धर्म हमारे चिन्तन का सनातन स्रोत रहा है जो कि तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक विचार है क्योंकि धर्म का अर्थ है धारण करना, अर्थात् जिसके द्वारा वस्तु का, व्यक्ति का, समाज आदि का धारण होता है उसे धर्म कहते हैं। हमारे अस्तित्व का मूल कारण तथा उसके लक्षण व स्वभाव के ज्ञान धर्म के अन्तरंग हैं। प्राणियों के जीवन को सुखमय बनाना, उनका पालन–पोषण करना, जीवन के लक्ष्य को स्पष्टतः बताना तथा वहाँ तक पहुँचाना आदि धर्म के ही विषय हैं। अतः धर्म का विज्ञान भारत में विशेष रूप से विकसित हुआ है जिसके अन्तर्गत आते हैं मानव धर्म, विज्ञान, सामाजिक धर्म विज्ञान, राष्ट्रधर्म विज्ञान, गुरु एवं शिष्य धर्म विज्ञान इत्यादि। इन विज्ञानों से परिचय और सम्बन्ध तभी स्थापित हो पायेगा जबकि हम इसके लिए तीव्र इच्छा रखें और प्रयत्न करें तथा पाश्चात्य दुष्प्रभावों का तिरस्कार करें। इसके फलस्वरूप ही हमें इन विज्ञानों से सम्बन्धित पुस्तकों की प्राप्ति एवं उनका अध्ययन हो पायेगा तथा उनके आचार्यों का साक्षात्कार एवं सत्संग करके हम लाभान्वित हो सकेंगे। हम धार्मिक या आध्यात्मिक रूप से लाभान्वित या अग्रसर हो रहे हैं या नहीं, इन अनुभूतियों के विभिन्न चरणों का विज्ञान भी हमारे यहाँ उपलब्ध है।

ऊपर के अनुच्छेद में चर्चित विज्ञानों से भी आगे बढ़ें तो हम पाते हैं कि हमारे यहाँ उन विज्ञानों का भी अत्यन्त विशिष्ट ज्ञान है, अर्थात् भारत में उन विज्ञानों का भी विज्ञान है या कहिये कि ज्ञान की पराकाष्ठा है। मानव शरीर की इन्द्रियों एवं अन्तःकरण के जिन ग्रन्थियों द्वारा विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ है उससे भी सूक्ष्म ग्रन्थियों का साक्षात्कार हमारे ऋषियों ने किया है। हमारी सांस्कृतिक अवधारणा वैज्ञानिक चिन्तन से भी ऊपर पहुँचती है क्योंकि बिना इसके विज्ञान का भी पूर्ण निरूपण कर पाना सम्भव नहीं है; एक एम०ए० की उपाधि प्राप्त विद्यार्थी ही कक्षा १० के ज्ञान की समीक्षा कर पाने का अधिकारी होता है। भारतीय संस्कृति "विज्ञानमय कोश" को भी शरीर का आवरण बतलाकर इससे भी सूक्ष्म एवं उच्चतर "आनन्दमय कोश" पर पहुँचती है और बहुत स्पष्ट शब्दों में इस यथार्थ को पूर्ण विश्वास के साथ उद्घोषित करती है कि यह भी अन्तिम सत्य नहीं है।

वह समय क्षीण या समाप्तप्राय हो रहा है जब परमाणु बमों एवं अन्य विनाशशील अस्त्रों के बनाने के अहंकारमय स्वर विश्व में गूँजा करते थे। अब विवेक जागा है जिससे कि उन अस्त्रों पर नियन्त्रण एवं अवरोध की प्रक्रिया विश्व स्तर पर चल पड़ी है। परन्तु मानवीय विचारों की प्रतिद्वन्द्विता सहज में कम नहीं होगी, इसका स्वरूप बदल सकता है। आवागमन तथा दूरसंचार की आधुनिक सुविधाओं के कारण देश–विदेश के सद्जनों, समुदायों एवं सभ्यताओं के आपस में समीप आने के फलस्वरूप मानवीय विचारों का सागर विचलित हो चला है। इसकी परिणति होगी विवेचनों की इन तीन धाराओं में– भाषा, संस्कृति और धर्म– और प्रश्न उठेंगे कि कौन सी भाषा सर्वश्रेष्ठ है, कहाँ की संस्कृति परिष्कृत एवं सुसंस्कृत है तथा किसका धर्म सर्वोपरि है। हम गौरव के साथ कह सकते हैं कि इन तीनों धाराओं में हमारा राष्ट्र अपनी कान्तिमयी अद्वितीय आभा के साथ प्रकाशित होगा; परन्तु इसके लिए हम भारतीयों को पहले से ही तत्पर रहना होगा तथा प्रयास करने होंगे कि इन तीनों धाराओं को उज्ज्वल किया जा सके। इन तीनों धाराओं का सूक्ष्म आविर्भाव विश्व में हो चुका है, केवल इनके प्रवाहों को गतिशील, उत्कट एवं तीक्ष्ण होना शेष है।

हमने देखा कि भारत भूमि पर हिन्दुओं ने सहस्रों वर्ष पूर्व तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक पद्धति से अक्षरों एवं शब्दों का आविष्कार किया। इन शब्दों से पद या वाक्य बनाने के लिए व्याकरण के व्यावहारिक नियम बनाये। वाक्यों का पाठों एवं ग्रन्थों में बृहद् विस्तार किया। यह विस्तार भी निरुद्देश्य न था प्रत्युत इसमें मनुष्य एवं समाज के जीवनों के उद्देश्य अत्यन्त तार्किक एवं वैज्ञानिक रीति से बतलाकर मनुष्य एवं समाज को वहाँ तक पहुँचाने के लिए वास्तविक प्रावधान प्रतिपादित किये। इन ग्रन्थों में समाहित सात्विक विचारों की शृंखला बहुत ही सुदृढ़, तेजस, ओजपूर्ण और मानवीय हृदयों एवं अन्तःकरणों को रूपान्तरित करने वाली है। भारतीय वेदान्तिक विचारों की ऊर्जा और आधुनिक परमाणु बमों की ऊर्जा में एक समानता है– वह दोनों ही विस्फोटक हैं। वेदान्तिक विचारों की ऊर्जा विशुद्ध अन्तःकरण में विस्फोट कर मानव को उच्चतम अवस्था तक पहुँचाते हैं; परन्तु परमाणु बम भूमि पर विस्फोट कर मानव को निम्नतम अवस्था में डाल देते हैं।

प्रत्येक भारतीय दृढ़तापूर्वक, पूरी आस्था एवं स्वाभिमान के साथ यह कह सकता है कि हमारा मूल चिन्तन तथा कार्य पद्धति प्रत्येक विषय या क्षेत्र में वैज्ञानिक रही है। पाश्चात्य भाषाओं एवं सभ्यताओं के बुद्धिजीवियों के चिन्तन केवल आधुनिक विज्ञान ही बनकर रह गये जिसने भौतिक सुविधाओं के लिए अनेक साधन दिये परन्तु साथ ही साथ मानव एवं विश्व विनाश के साधन भी एकत्रित कर दिये। अब प्रश्न उठता है कि इस प्रकार की दिशाहीनता उनसे क्यों कर हुई तथा वह भौतिक पृष्ठभूमि से ऊपर उठकर अन्य किसी प्रकार का वैज्ञानिक चिन्तन क्यों न कर पाये? इसक एक उत्कृष्ट उत्तर यह भी होगा कि उनके पास अक्षरों एवं शब्दों जैसे मूल आधारों का विज्ञान न था जो शुद्ध अन्तःकरण में अंकुरित होकर भिन्न–भिन्न श्रेष्ठ विज्ञानों को पल्लवित करते तथा शुद्ध अन्तःकरणों को भी परिभाषित करते; जिस वृक्ष की जड़ें सुदृढ़ हों वह अच्छा वातावरण पाकर सुदृढ़ शाखाओं का निर्माण करेगा। इसी को यदि तैत्तिरीय उपनिषद् की भाषा में कहें तो उनके पास 'शिक्षा' शास्त्र के समान ज्ञान न था। इसी कारण उनके विचारों एवं शब्दों की धाराएँ अवैज्ञानिक रूप से प्रवाहित होती चली गयीं जिनका उन्हें कोई अन्त अभी भी नहीं दिखायी देता; इस पर भी यदि उनकी कोई धारा वैज्ञानिक रीति की हो गयी तो वह आकस्मिक ही माना जायेगा। अतः हम भारतीयों को शताब्दियों की परतन्त्रता से उत्पन्न मानसिक एवं बौद्धिक दासता का त्याग शीघ्र करना चाहिए। अपने पूर्वजों और उनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान–विज्ञान पर श्रद्धा रखनी चाहिए। इसी सशक्त पथ पर चलकर हम अपने जीवन को सार्थक बना सकेंगे। हमारे अक्षर, शब्द भण्डार एवं 'शिक्षा' शास्त्र के विज्ञान हमारी प्रत्येक ज्ञान धारा एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान को आलोकित करते रहेंगे। ☐

– ओझा हाउस, १४१, करोल मोहल्ला,
स्टेशन मार्ग, इटावा–२०६००१

व्यंग्य-

जूता ऊँचा रहे हमारा...

- सर्वेशचन्द्र शर्मा

"पं. गिरधारी लाल! जिस लड़के के लिए मैं तुमको दस लाख नकद दे रहा था और फिर जब वह अमेरिका–रिटर्न्ड बना, तो लखनऊ के डाक्टर साहब बीस लाख नकद दे रहे थे, उस लड़के को तुमने कुएँ में फेंक दिया। वर के बाजार में इस लड़के की कीमत एक करोड़ के लगभग पहुँच रही थी और तुम केवल एक–एक रुपये के नेग पर दहेज–विहीन शादी रचा बैठे! गिरधारी लाल, नाक कट गई तुम्हारी बिरादरी में" प्रसिद्ध व्यापारी मन्नूलाल पंडित तैश में आ गए।

"अच्छी–खासी रीति–रिवाज के अनुसार और सात फेरे डलवाकर धूमधाम से शादी की थी। आवश्यकता की सभी वस्तुएँ भी मिली थीं। तुम्हें भी निमंत्रण दिया था, लेकिन तुम आए नहीं" अवकाशप्राप्त प्राचार्य पं० गिरधारी लाल ने उत्तर दिया।

"मैं ऐसे टटपूँजिया समारोह में नहीं जाता। लाखों रुपये तो हम लोग सजावट में खर्च कर देते हैं" मन्नू पंडित अकड़ कर बोले।

"वह बात ठीक है लेकिन तुम मेरे मित्र रहे हो, साथ खेले–पढ़े हो, कुछ खा–पीकर फिर लौट जाते।"

"क्या खिलाते–पिलाते तुम! काकटेल से कम तो मुझे कुछ पसंद नहीं है। पिछली बार जब मैं इटली घूमने गया था, तो...।"

"इटली! वहाँ की ऐतिहासिक इमारतें दुनिया में मशहूर हैं। उनका सौन्दर्य तो देखा होगा" पं. गिरधारी लाल ने पूछा।

"सौन्दर्य वहाँ जरूर देखा और चखा भी" मन्नू पंडित की आँखें चमकीं।

"क्या मतलब! क्या वहाँ और भी कोई आकर्षण था?"

"एक तो शराब। वहाँ की शराब दुनिया में मशहूर है। इंडिया में तो ऐसी शराब मिल ही नहीं सकती; और दूसरा जूता...!"

"जूता? अरे जूतों की तो इण्डिया में भरमार है। बाजारों, संग्रहालयों में तो उसका प्रदर्शन और विक्रय होता ही है, जब भी हम तैश में आते हैं, एक–दूसरे को जूता–प्रदर्शन कर अपना उच्च–स्तर दिखाते हैं। चौराहे से लेकर विधानसभा और संसद् तक में जूता चलता रहा है, और यदा–कदा लोगों का जूते से स्वागत भी हो जाता है और आप जूता लेने इटली जाते हैं?

"देखो भाई। समाज में स्तर चलता है। जूते से ही आदमी की पहचान होती है। जितना मँहगा जूता आप पहने होंगे, उतना ही आपका जूता ऊँचा रहेगा।

"वाह! जूता ऊँचा रहे हमारा, जब भी हो जूतम पैजारा। हम जूते के नीचे निर्भय...।"

"बस–बस। कविता सुनकर तो मुझे बुखार आने लगता है। मैं कवियों की जनसंख्या से तंग हूँ। मच्छरों की तरह जिधर देखो भनभनाते रहते हैं।"

"ऐसा न कहो मित्र, कवि तो मैं भी हूँ।"

"तुम्हें क्या कहूँ, कई वर्ष पहले तुम्हारी एक दहेज–विरोधी कविता सुनी थी और तुमने उसे स्वयं चरितार्थ भी कर दिया, यह आधुनिक परम्परा के खिलाफ है।

तभी बाहर कार रुकने की आवाज आयी। कुछ ही देर बाद पं० गिरधारी लाल का पुत्र जयकिशन यूरोपियन वेष–भूषा में कीमती चश्मा लगाए अन्दर आया। पीछे–पीछे ड्राइवर कुछ सामान के पैकेट उठाकर ला रहा था।

"ओह! बधाई हो" मन्नू पंडित खड़े हो कर बोले। जयकिशन बिना कुछ बोले हाथ हिलाते हुए अन्दर चला गया। मन्नू पंडित बोले, "गिरधारी! मैं अपनी बेटी का विवाह जल्दी ही किसी विदेशी लड़के से करनेवाला हूँ। ऐसी धूमधाम होगी कि लोग याद करेंगे। तुम जरूर आना गिरधारी लाल!"

"जरूर आऊँगा"।

अगले महीने ही मन्नू पंडित ने अपनी लड़की का विवाह धूमधाम से रचाया। कौतूहलवश पं० गिरधारी लाल भी वर को देखने चले गए। वर को देखते ही वे चौंक पड़े। बोले, "मन्नू पंडित! यह क्या गजब कर रहे हो, एक तो यह वृद्ध, दूसरे अपंग; बिटिया को क्या नरक में धकेल

(शेष पृष्ठ ६७ पर)

कहानी

यशोदा अम्मा

- डॉ० अमिता दुबे

"वह" नहीं रहीं! वह यानी यशोदा अम्मा। मेरी कुछ नहीं और मेरी सब कुछ। उन्होंने मुझे पलकों की छाँव में पाला। मैं भरे-पुरे घर का बड़ा लड़का छोटे भाई-बहनों की रेल-पेल में अनायास ही माँ-बाप से छिटककर यशोदा अम्मा की गोद में जा गिरा। अम्मा की सूनी गोद मुझे पाकर हरी हो गयी, ममता का सोता उनकी छाती से फूट पड़ा। मुझे याद नहीं है; लेकिन माँ-दादी बताया करती थीं कि तीन बरस की उमर में जब मियादी बुखार ने मुझे महीने-डेढ़ महीने तक नहीं छोड़ा और मैं हड्डी का ढाँचा भर रह गया, तो अम्मा किसी सिद्ध-योगी के पास जाकर मनौती कर मेरी सेहत के लिए रामबाण उपाय पूछ आयीं थीं। जीरे की फंकी और पिसी पीपर की पुड़िया चाटकर छह महीने पहले मरे अपने बेटे और तीन महीने बाद आने वाली सन्तान के दूध का बँटवारा उन्होंने मेरे साथ कर दिया था। उनके अमृततुल्य दूध का ही कमाल था कि मैं पन्द्रह दिन में ही ठीक-ठाक दिखने लगा।

अम्मा हमारे घर में तब से थीं जब उनकी उमर मात्र ११ वर्ष थी। मेरे पिता तब पढ़ते थे और अम्मा के साथ खेला-कूदा भी करते थे। मेरे बाबा की गिनती रईसों में होती थी। पिता जी को कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा। जमा-जमाया धन्धा छोटी उमर में ब्याह-शादी और फिर मेरा आना। मुझमें और अम्मा में कुल २० वर्षों का अन्तर था। यह अन्तर हमारे बीच कितनी बार पसरा, याद करना कठिन है; क्योंकि अम्मा मेरी सखी भी थीं, अभिभावक भी और राजदार भी। पिताजी अम्मा को "यशो" कहकर बुलाते थे और वह भी सखा भाव से उन्हें "बाबू" कहती थीं। मेरी माँ उनकी भाभी थीं और दादी उनकी माँ जी! कुल मिलाकर परिवार की सदस्या-सी ही हैसियत थी उनकी।

दादी के मुँह से सुनता आया हूँ यशोदा अम्मा के घर में सब लोग थे। गाँव का गरीब परिवार अपनी लड़की जमींदारों के यहाँ देकर निश्चिन्त हो गया था। उनकी शादी-ब्याह की चिन्ता भी दादी ने ही की थी। लड़का ऐसा ढूँढ़ा था कि कोठी में आना-जाना बदस्तूर जारी था। अम्मा का परिवार पीछे नौकरों के लिए बनाये गये कमरे में रहता था। मेरा तो घर ही वही था। बान की ढीली खाट मुझे हिण्डोला लगती थी और चूल्हे पर फदकती दाल की महक स्वादिष्ट खाने को भी मात देती थी। हल्की आँच पर भुने आलू, मटर और कभी-कभी टमाटर भी... वाह, क्या कहना आज भी मुँह में पानी आ जाता है। अम्मा अपने आँचल से जमीन साफकर मुझे निःसंकोच बैठातीं और बड़े यत्न से एक-एक कौर खिलातीं। मैं बारह बरस की उमर तक अपने हाथ से खाना खाना नहीं जानता था। घर में कोई टोकता-डाँटता, तो वह पाषाण-सी सामने आ डटतीं और तीखी आवाज में कहतीं- "देखो जी, मेरे "कृष्ण कन्हैया" को कोसो नहीं। तुमसे कोई नहीं कहता है उसे खिलाने-पिलाने को। जब मैं मर जाऊँ, तब कोसना। माँ कहती- "देखो यशोदा रानी, तुम लाड़-प्यार करती हो, तो करो; लेकिन उसे बिगाड़ो तो मत। इसकी देखा-देखी ये छह प्राणी मेरी जान खाये रहते हैं और वे हैं भी इससे छोटे, उन्हें कैसे रोकूँ।" वह तमककर बोलतीं- "उस दिन तुम कहाँ थीं" भाभी, जब हमारे कन्हैया को व्याधि ने घेर रखा था। उस दिन से यह हमारा सपूत हो गया। अब तुम अपने छह को सम्हालो, इसे भूल जाओ। भगवान् ने हमसे हमारी चार औलादें छीन ली हैं, हमारे लिए तो यह भगवान् का प्रसाद है। तुम अपनी ममता अपने लाड़लों पर उँड़ेलो, इसे हमारे लिए छोड़ दो देवकी महारानी" और मुँह बिचकाकार चल देतीं। माँ और दादी दोनों मुस्करा देतीं। अम्मा जब ज्यादा चिढ़ जातीं, तो माँ को "देवकी महारानी" कहकर ही बुलाया करतीं और ऐसे मौके गाहे-बगाहे आते ही रहते।

यशोदा अम्मा के प्यार-दुलार और घर की सम्पत्ति ने मुझे कुछ उद्दण्ड बना दिया था। मित्रों की टोली हरदम घेरे रहती। घर में यदि बाबू जी होते तो मजमा यशोदा अम्मा के कमरे के आगे फैले घास के मैदान में लगता। अम्मा दौड़-दौड़कर सबको चाय-शरबत पिलातीं, कोठी से मिठाई-नमकीन भी ले आतीं। भला उनको रोकने की हिम्मत किसमें थी। धीरे-धीरे मेरी दोस्ती आसपास के ऐसे लड़कों से बढ़ती ही गयी, जिन्हें पढ़ाई-लिखाई से

कुछ लेना-देना नहीं था। बस कंचे खेलना, पतंग उड़ाना, गुल्ली-डण्डा खेलना और कभी-कभी टी०वी० की नकल कर कपड़ा कूटने वाली थापी को "बैट" बनाकर व ईटों का "स्टैम्प" लगाकर हो-हल्ला मचाते हुए "किरकेट" खेलना। नतीजा यह हुआ कि मैं जबर्दस्ती ठेल-ठालकर स्कूल तो भेज दिया जाता; परन्तु स्कूल से लौटते ही बस्ता पटक छत पर चढ़ जाता, एक सीटी मारता और मेरे दोस्त चुपके-चुपके छत पर पहुँच जाते। हम खुले आसमान पर पतंगों के सपने तैराते कभी डोर खींचकर उन्हें नीचे लाते और कभी ढीली छोड़कर और ऊपर और ऊपर पहुँचा देते। दूसरे की पतंग कटती, तो हमारी टोली खुशी से उछल पड़ती। जब अपनी बारी आती, तो मायूस हो जाती। ऐसे ही अँधेरा होने तक पतंगें उड़ती रहतीं, पेंच लड़ते रहते और हँसी-कहकहे होते रहते।

जितनी देर मैं छत पर होता यशोदा अम्मा मेरे आसपास मँडराती रहतीं। मुझे अपने खाने-पीने का भी होश नहीं रहता। अम्मा नीचे से थाली परोस कर लातीं और अपने हाथों से कौर तोड़-तोड़कर खिलातीं। मेरे हाथो में चरखी और डोर रहती आँखें आसमान में; पतंग उड़ाने में इतना तल्लीन होता कि मुझे पता ही नहीं चलता कि कब अम्मा नीचे जाकर और खाना ले आयीं और मैं अपनी खुराक से दो रोटी ज्यादा खा गया। इसका पता शाम को चलता जब मेरे न-न करने पर अम्मा लाड़ से टोकतीं- "अरे वाह बेटा राजा, दिन में तो छह-छह रोटी खा गये अब दो में ही बस-बस करते हो। चुपचाप खा लो नहीं तो भगवान् के नियम को बदलकर रात में सूरज देवता को बुलाना पड़ेगा। मरता क्या न करता मुझे सारा खाना खाना पड़ता। अगले दिन मैं सचेत रहने की कोशिश करता लेकिन फिर चूक जाता। एक दिन घर में कोहराम मच गया। मेरी एक बुआ थीं। मैं उनको बहुत प्यार करता था और मन ही मन उनकी इज्जत भी करता था। उम्र में वह मुझसे तीन गुनीं थीं लेकिन उन्होंने मुझे कभी नाम लेकर नहीं बुलाया। हमेशा "भइया" कहा करती थीं। एक उन्हीं के आगे अम्मा की तानाशाही नहीं चल पाती थी। बुआ विधवा हो गयीं उनके पति यानि मेरे फूफा जी हल्की-सी बीमारी में ही चल बसे। बुआ निःसन्तान थीं। अभी तक उन्होंने कभी नहीं सोचा बच्चे के बारे में लेकिन फूफा के बाद अचानक बहुत अकेली हो गयीं। बाबू जी गये और उन्हें कुछ दिनों के लिए लिवा लाये। उनके आने पर कुछ दिन तो माहौल दुःख में डूबा रहा। मैं भी ज्यादातर उनके पास रहता लेकिन पन्द्रह-सोलह बरस का मैं जल्दी ही इस माहौल में ऊबने लगा। मेरी पतंग और दोस्त मुझे बुलाते। मैं फिर सारा-सारा दिन छत पर बिताने लगा। बुआ ने खोजबीन की। माँ-पिताजी ने उन्हें मेरी आवारागर्दी के किस्से कुछ बढ़ा-चढ़ाकर ही सुनाये। बुआ भरी दोपहरी में दबे पाँव ऊपर आयीं और वहाँ का दृश्य अपनी आँखों से देखकर चुपचाप नीचे चली गयीं। मैं अपने दोस्तों के साथ अबे-तबे करता हुआ पतंग उड़ाते हुए गाली बक रहा था। बुआ की आहट मुझे नहीं मिली। उसी रात मेरी पेशी हुई।

अम्मा ने आकर बताया "बुआ तुम्हें बुला रही है कन्हैया! तुम्हें मालूम नहीं है दोपहर में वह छत पर भी गयीं थीं हम तो नीचे थीं लेकिन रामकली बता रही थी, माँ जी से कुछ खुसर-पुसर चल रही थी। देखो क्या होता है। तुम डरना नहीं तुम हमारे बेटा हो कोई क्या कर लेगा तुम्हारा। मैं सहमा सा बुआ के पास गया। उन्होंने बड़े प्यार से मुझे अपने पास बैठाया पढ़ाई-लिखाई की बातें पूछीं दिन भर का कार्यक्रम पूछा। मैं बड़ी सफाई से बात बना गया। बुआ ने सीधे ही पूछा- "भइया, तुम दोपहर में छत पर क्या कर रहे थे?" अब झूठ बोलने की गुंजाइश नहीं थी। मैंने डरते-डरते किंचित निर्भीकता से कहा, मैं दोस्तों के साथ पतंग उड़ा रहा था बुआ! बुआ ने फिर पूछा तुम्हारे दोस्त तो आसपास वाले होंगे। मैंने नीची निगाह कर कहा, "हाँ।" बुआ बड़ी संजीदगी से बोलीं, "देखो भइया, तुम अपना जीवन बर्बाद कर रहे हो, यह मुझे साफ दिख रहा है। तुम खेलो-कूदो कुछ भी करो पर आवारा लड़कों के साथ पतंग नहीं उड़ाओ। मुझे तुम्हारा इस तरह पतंग उड़ाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। तुम जानते हो न मेरी कोई आस औलाद नहीं है। अब तुम्हारे फूफा भी नहीं रहे। कहते-कहते उनकी आँखें झरने लगीं।"

मैंने साहस कर कहा- "बुआ, तुम्हें पतंग उड़ाना अच्छा नहीं लगता तो अब हम कभी पतंग नहीं उड़ायेंगे।" बुआ ने सजल नेत्रों से मुझे देखा भर। सम्भवतः उनकी आँखें मुझे तौल रहीं थीं। उसके बाद से फिर मैंने पतंग नहीं उड़ायी। बुआ एक महीना रहीं और तसल्ली कर चली गयीं। मेरे पतंग न उड़ाने से सब खुश थे। बस दुःखी थीं तो मेरी यशोदा अम्मा। बार-बार बड़बड़ाती थीं- "लड़का दो चार रोटी ज्यादा खा लेता था वह भी किसी से देखा नहीं गया। बड़ी आयीं बुआ रानी पतंग पर रोक लगाने। लड़के हँसे-खेलेंगे नहीं तो क्या हम बूढ़े भाग-दौड़ करेंगे आदि-आदि।"

पूरा वर्ष बीत गया। मैंने पतंग को हाथ नहीं लगाया। दीवाली आयी आकर चली गयी मैंने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। घर वालों से सारी खबर बुआ को मिलती रहती थी। उनके पत्र आते; मेरे लिए लाखों आशीष होते। तमाम बातें होतीं दुनिया जहान की, पर पतंग के विषय में एक भी पंक्ति नहीं। मैं जैसे पतंग को भूल-सा गया। दोस्त लोग दूर होते गये। मैं पढ़ायी में दुगनी मेहनत से लग गया। नतीजा भी जल्दी ही सामने आ गया। साधारण द्वितीय श्रेणी में हाईस्कूल पास करने वाला मैं इण्टर में प्रथम आया और जिले में मेरा पहला स्थान था। मेरी प्रशंसा होने लगी। घर वाले सभी बुआ को दुआ दे रहे थे।

घर में दीवाली की रौनक थी। लिपायी-पुताई का काम चल रहा था दरवाजे पर मोटर आकर रुकी। बुआ को देखकर कुछ-कुछ आश्चर्य हुआ। उनके आने का रंग-ढंग ही कुछ निराला था। आगे-आगे बुआ और पीछे-पीछे नौकर उनका सामान उठाये हुए था। सामान के नाम पर एक बड़ी पोटली थी जिसको देखकर कुछ अन्दाज नहीं लगाया जा पा रहा था। चाय-प्रानी के बाद बुआ ने मुझे बुलाया और सीधे ही प्रश्न किया, "भइया, हमने तुमको बहुत दुःखी किया है न। तुमने हमारे कहने पर पतंग उड़ाना छोड़ दिया। गर्व से हमारा माथा हिमालय जितना ऊँचा हो गया। लेकिन भइया, पतंग की याद तो आती होगी। तुम दीवाली पर भी उदास हो जाते होगे। मैंने तुरन्त कहा, "अरे नहीं बुआ, ऐसा कुछ भी नहीं है। मुझे कोई दुःख नहीं है। सच में मैं पतंग को बिल्कुल भी याद नहीं करता और देखो अबकी मेरा नतीजा भी बहुत अच्छा रहा है।"

बुआ भावुक होकर बोलीं, "भइया, वह तो ठीक है लेकिन हमारे कहने से पतंग उड़ाना छोड़ दिया था आज हम ही कह रहे हैं तुम पतंग उड़ाओ।" दीवाली के तीन दिन तुम्हें पूरी छूट है खूब जी भरकर उड़ाओ। साल भर फिर नहीं। कहते-कहते उन्होंने बड़ी-सी पोटली खोल दी। उसमें कई तरह की पतंगें, सद्दी, डोर, चरखी, रील थी। मैं प्रसन्न था क्योंकि बुआ प्रसन्न थीं आज मैं गर्व से पतंग उड़ाने जा रहा था। अम्मा भी खुश थीं इस आस में कि अब फिर कन्हैया को वह ज्यादा खाना अपने हाथ से खिला सकेंगी, भले ही साल में तीन दिन ही सही।

वर्ष बीतते गये। मेरा पतंग उड़ाने का क्रम इसी तरह चलता रहा। मैं कोई बीस वर्ष का रहा होऊँगा। दीवाली से पहले ही मेरी पतंग उड़ाने की तैयारी हर साल की तरह पूरी हो गयी थी। मैं बेसब्री से छोटी दीवाली का इन्तजार कर रहा था। धनतेरस की रात हल्की बूँदीबाँदी शुरू हुई और आधी रात तक झमाझम पानी बरसने लगा। बरसात का मौसम तो था नहीं उम्मीद थी पानी रुक जायेगा और सुबह आसमान साफ होगा। सूरज निकलते ही मैं छत पर अपने साज-सामान के साथ पहुँच गया। बादल तो थे लेकिन पानी थमा था। हवा ठण्डी और तेज थी पतंग उड़ाने में मजा आ रहा था कि नौ बजते-बजते फिर बूँदें पड़ने लगीं। मैं मायूस हो छत पर बने छोटे कमरे में खिड़की के पास बैठ गया। मेरी निगाहें आकाश पर लगीं थीं। अम्मा मेरी उदासी भाँप गयीं, बोलीं "कन्हैया, बहुत दुःखी हो।" मैंने कहा, "हाँ, अम्मा, साल में तीन दिन मिलते हैं पतंग उड़ाने को यदि ऐसी ही घटा छायी रही तो पतंग क्या उड़ा पाऊँगा। पूरा साल ऐसे ही बीत जायेगा।"

अम्मा मेरे नजदीक आ गयीं। प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरकर बोलीं, तुम परेशान न हो बच्चा, हम अभी पानी बन्द करा देंगे। हमें उपाय आता है इसका।" मैंने कहा, "अरे अम्मा, तुम न हुई भगवान् हो गयीं। देख नहीं रही हो कितनी जोरों की बारिश हो रही है।" अम्मा बोली, "अरे नहीं रे, तुम नहीं जानते, हमारे गाँव में टोटका होता है। पानी बरस ही नहीं सकता उसके बाद। तुम निश्चिन्त रहो हम तुम्हें दुःखी नहीं देख सकते बेटा। बस ऐसा करो कि तुम ऊपर चले जाओ अगर कोई आँगन की तरफ आने लगे तो चिल्ला देना यह टोटका किसी के सामने करने वाला नहीं है न।"

मैं अम्मा की जिद से ऊपर गया और बीस वर्ष के युवा की एक छोटी-सी ख्वाहिश के लिए मेरी चालीस वर्षीय यशोदा अम्मा, जो मेरी कोई नहीं थीं और सब कुछ थीं, आँगन में निर्वस्त्र होकर बादल को मूसल दिखाकर भगा रहीं थीं। यह थी उनके ममत्व की पराकाष्ठा। संयोग की बात, पानी बन्द हो गया; लेकिन मेरे और अम्मा के बीच बहता यह ममता का झरना जीवन भर बना रहा और आजीवन बना रहेगा। आज मैं तीन बड़े-बड़े बच्चों का बाप हूँ। दादा-नाना कहलाता हूँ लेकिन फिर भी अपनी यशोदा अम्मा का लाड़ला कन्हैया उनकी आँचल की छाँव के बिना कैसे जी सकेगा भला कैसे... ?

□

– सम्पादकीय प्रभाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन,
६ महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

हाँ, हम मनुवादी हैं

- परशुराम गोस्वामी

वास्तव में, 'मनुवादी' होने का अर्थ है— समाज के किसी भी व्यक्ति को जन्म के आधार पर नीच या अछूत न मानना, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति स्नेह और आदर का भाव रखना, आचरण को शुद्ध रखने पर जोर देना। इसके साथ ही, मनुवादी होने का अर्थ है माता-पिता तथा आचार्यों के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखना, महिलाओं को परिवार तथा समाज में सम्मान देना तथा प्राणिमात्र के प्रति दया और करुणा का भाव रखना। यदि सब लोग मनु के आदेशों का पालन करें तो परिवार तथा समाज के विभिन्न घटकों के बीच मधुर और आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध बने रहेंगे और सबको उचित सम्मान मिलेगा। किसी का अनादर नहीं होगा।

मनुस्मृति एक अनुपम ग्रन्थ है। लोग इसको हिन्दुओं का धर्मशास्त्र कहते हैं, परन्तु यह मानव धर्मशास्त्र है; क्योंकि इसको संसार भर के मनुष्यों के लिए लिखा गया था।

गत अनेक वर्षों से देश के कुछ राजनीतिक लोग महाराज मनु और उनके ग्रन्थ मनुस्मृति के विरुद्ध अपप्रचार कर रहे हैं। ये लोग स्वयं को डॉ० भीमराव अम्बेडकर का अनुयायी कहते हैं। डॉ० अम्बेडकर ने भी इस ग्रन्थ की आलोचना की है।

डॉ० अम्बेडकर वकील (बैरिस्टर) थे। उनके समय में हिन्दू परिवारों के वैवाहिक तथा सम्पत्ति-सम्बन्धी विवादों में न्यायालयों में मनुस्मृति के उद्धरण बड़ा महत्त्व रखते थे। इसलिए वकील लोग इस ग्रन्थ का अध्ययन करते थे। डॉ० अम्बेडकर ने भी एक वकील के नाते मनुस्मृति का अध्ययन किया था; परन्तु उन्होंने गहराई से तथा समीक्षात्मक दृष्टि से इस महान् ग्रन्थ का अध्ययन नहीं किया, न उनके अनुयायियों ने किया। इसलिए वे इस महान् ग्रन्थ का सही मूल्यांकन नहीं कर सके।

वेद-विरुद्ध प्रक्षिप्त अंश

वर्त्तमान काल में पहले-पहल जिस व्यक्ति ने मनुस्मृति का गहराई से तथा समीक्षात्मक दृष्टि से अध्ययन किया, वह थे आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती। एक स्थान पर वे उन ग्रन्थों का नाम गिनाते हैं जिन्हें वे मानते हैं। वे लिखते हैं— मैं चारों वेदों को मानता हूँ। वेद-विरुद्ध प्रक्षिप्त अंशों को छोड़कर मैं शेष मनुस्मृति को मानता हूँ, तथा....।

वेदों में स्वामी जी की आस्था सर्वविदित है। उनके लिए जो कुछ वेदानुकूल था, वही मान्य था, जो कुछ वेद-विरुद्ध था, वह त्याज्य था। उन्हें मनुस्मृति में अनेक अंश वेद-विरुद्ध और प्रक्षिप्त लगे। स्वामीजी के मनुस्मृति-सम्बन्धी विचारों को पढ़कर मनुस्मृति का पुनः ध्यान से अध्ययन किया जाये तो किसी को भी उनके कथन का पुष्ट प्रमाण मिल जायेगा।

महाराज मनु ने मनुस्मृति में वेदों की सर्वोच्चता का उल्लेख किया है। दूसरे अध्याय के तेरहवें श्लोक में वे कहते हैं— **'प्रमाणं परमं श्रुतिः'** अर्थात् वेद ही परम प्रमाण हैं। इसी अध्याय के श्लोक क्रमांक ७ तथा ८ में पुनः वेद को प्रमाण बताया है तथा कहा है कि विद्वान् लोग वेद को प्रमाण मानते हुए अपने धर्म में निरत रहें।

एक ही बात को तीन बार जोर देकर कहने का उद्देश्य यह है कि जब कभी मनुस्मृति या किसी अन्य ग्रन्थ की या किसी व्यक्ति की किसी बात के विषय में मन में संशय उत्पन्न हो, तो वेद को प्रमाण माने अर्थात् यदि वह बात वेदानुकूल हो, तो मानें, अन्यथा नहीं। महाराज मनु के लिए (और स्वामी दयानन्द के लिए भी) सत्यासत्य या धर्माधर्म की कसौटी वेद ही हैं।

अब मनुस्मृति के वेद-विरुद्ध प्रक्षित अंशों की बात करें। ध्यान से पढ़ने पर कोई भी व्यक्ति यह समझ जाता है कि आज मनुस्मृति का जो रूप उपलब्ध है, उसके कई अंश मनु महाराज के लिखे हुए नहीं हैं, स्वार्थी लोगों द्वारा बाद में जोड़े गये हैं।

उदाहरण के लिए अध्याय ५ के आठ श्लोकों में मनु महाराज माँस भक्षण को अनुचित बताते हैं। श्लोक क्रमांक ३७, ४८, ४६, ५०, ५१, ५३, ५४ तथा ५५ में वे अनेक प्रकार से मांसाहार तथा पशु-वध को अनुचित बताते हैं। इसी अध्याय के ४८वें श्लोक में वे कहते हैं—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।।

अर्थात् प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस प्राप्त

नहीं हो सकता। प्राणियों का वध सर्वथा अनुचित है, पाप है क्योंकि ऐसा करने वाला स्वर्ग को प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिए मासांहार कभी नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार इसी अध्याय के अन्य श्लोकों में बताया है कि मांसाहार के लिए पशु की हत्या करने वाला, उसका मांस पकाने और परोसने वाला तथा मांस खानेवाला, ये सब लोग पापी हैं। मनु ने मांसाहार की ऐसे कड़े शब्दों में निन्दा की है।

परन्तु, इसी ग्रन्थ में जहाँ पितरों का श्राद्ध करने का वर्णन है, वहाँ तीसरे अध्याय के पाँच श्लोकों क्रमांक २६८ से २६२ तक श्राद्धभोज में मांस परोसना अच्छा बताया गया है। लिखा है कि मछलियों का मांस श्राद्ध में खिलाने से दो महीने, हरिण के मांस से तीन मास, भेड़ के मांस से चार मास और खाद्य पक्षी के मांस से पितरों की तृप्ति पाँच महीने तक होती है।

मनु से मुख्य शिकायत यह है कि उन्होंने मनुस्मृति में शूद्रों के विरुद्ध बहुत लिखा है। मनु ऊँच–नीच तथा छुआछूत के समर्थक हैं तथा शूद्र–विरोधी हैं ऐसा उनका आरोप है। यदि इन लोगों ने मनुस्मृति को सावधानी से पढ़ा होता, तो ऐसे आरोप न लगाते। आइये देखें, कि मनु शूद्रों के विषय में क्या लिखते हैं–

पहले अध्याय के चार श्लोकों क्रमांक– ८८, ८९,९० तथा ९१ में मनु ने चारों वर्णों के स्वाभाविक कर्म गिनाये हैं। हर एक को अपने स्वाभाविक गुण और क्षमता के अनुसार सामाजिक काम करना चाहिए। उन्होंने लिखा है कि शूद्रों को अन्य वर्णों की शुश्रूषा करना चाहिए। यही उनका कर्म है।

यह सामाजिक कार्यों का योग्यता और प्रवृत्ति के अनुसार श्रम–विभाजन है। इसमें ऊँच–नीच का कोई भाव नहीं है। मनु ने ब्राह्मण को हर दशा में पूज्य नहीं

शूद्रों के विषय में इस ग्रन्थ में एक और महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है। दण्ड–विधान का उल्लेख करते हुए समय मनु लिखते हैं कि यदि एक ही अपराध चारों वर्णों के व्यक्ति करें, तो उन्हें एक जैसा दण्ड नहीं देना चाहिए। वे लिखते हैं कि एक जैसा अपराध करने पर (चोरी करने पर) शूद्र को चुराये गये माल का आठ गुना, वैश्य को सोलह गुना, क्षत्रिय को बत्तीस गुना तथा ब्राह्मण को चौंसठ गुना या सौ गुना या एक सौ अट्ठाइस गुना दण्ड देना चाहिए।

क्या इस दण्डविधान से मनु शूद्र–विरोधी प्रतीत होते हैं? वे तो शूद्रों के समर्थक तथा रक्षक प्रतीत होते हैं तभी तो वे उन्हें सबसे कम दण्ड देना उचित समझते हैं। इस प्रावधान से यदि किसी को शिकायत हो सकती है तो ब्राह्मण को, जिसको वे सबसे कठोर दण्ड देना चाहते हैं; परन्तु ब्राह्मण की भी शिकायत उचित नहीं होगी। शूद्र तो नासमझ या अज्ञानी है। उसका अपराध उतना गम्भीर नहीं है, जितना ज्ञानी ब्राह्मण का। इसलिए ब्राह्मण को अधिक दण्ड देना सर्वथा उचित है।

प्रश्न यह है कि जिन मनु महाराज ने मांस–भक्षण की निन्दा करनेवाले कई श्लोक लिखे, क्या मांस–भक्षण समर्थक ये श्लोक उन्हीं के लिखे हो सकते हैं? ये परस्पर विरोधी भाव वाले श्लोक एक ही व्यक्ति के नहीं हो सकते, विशेषकर एक ही ग्रन्थ में। निश्चय ही, मांस–भक्षण समर्थक श्लोक बाद में जोड़े गये हैं, प्रक्षिप्त हैं, इसलिए मानने योग्य नहीं हैं।

केवल मांस–भक्षण के सम्बन्ध में ही नही दो–तीन अन्य विषयों में भी मनुस्मृति में कई प्रक्षिप्त वेद–विरोधी श्लोक हैं, जिन्हें सरलता से पहिचाना जा सकता है। इन्हें महाराज मनु के वचन नहीं माना जा सकता। इसी कारण मनुस्मृति को गहराई से तथा समीक्षात्मक दृष्टि से पढ़ना आवश्यक है।

क्या मनु शूद्र–विरोधी हैं?

डॉ० अम्बेडकर तथा उनके अनुयायियों को महाराज

बताया है। आचार पर उन्होंने बड़ा जोर दिया है। यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ आचरण करता है, तभी तक वह आदणीय है अन्यथा नहीं। इसी अध्याय के १०९वें श्लोक में वे लिखते हैं–

"आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।"

अर्थात् वित्र (वेदपाठी ब्राह्मण) यदि अपने आचरण से गिर जाये, तो उसको वेद का फल नहीं मिलता।

शूद्रों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में मनु लिखते हैं–

"वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथि धर्मिणो।
भोजयेत् सह भृत्यैस्तावा नृशंस्यं प्रयोजयन्।। ३–११२।।"

यदि वैश्य या शूद्र अतिथि रूप से ब्राह्मण के घर आ जायें तो, उन्हें धर्मपूर्वक भृत्यों के साथ भोजन कराना चाहिए।

परिवार के भृत्यों (सेवकों) के साथ कैसा व्यवहार हो, इस विषय में अध्याय ३ के ११६वें श्लोक में मनु कहते

है–

भुभवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैवहि।
भुंजीयातां ततःपश्चाद् गृहस्थः शेषभुग्भवेत्।।

(गृहस्थ–जन पहले ब्राह्मणों और भृत्यों को भोजन कराकर पीछे जो अन्न बचे, वह पति–पत्नी भोजन करें।)

ध्यान देने की बात यह है कि गृहस्वामी पहिले सबको को भोजन कराये, बाद में स्वयं भोजन करे। कैसा सुन्दर आदर्श है!

क्या मनु शूद्रों को नीच या अछूत मानते हैं? इसका उत्तर अध्याय ३ के तेरहवें श्लोक में देखें–

शूद्रैवभार्या शूद्रस्य स च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञस्य ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः।। ३–१३।।

शूद्र की भार्या शूद्रा ही, वैश्य की वैश्या और शूद्रा, क्षत्रिय की क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा और ब्राह्मण को चारों वर्णों की कन्या से विवाह करने का अधिकार है।

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को शूद्र की कन्या से विवाह करने का अधिकार है। यदि मनु शूद्र को अछूत या नीच मानते होते तो क्या वे ब्राह्मण का विवाह शूद्र की कन्या से करने का अधिकार देते?

मनुस्मृति मे इसके बाद के ५–६ श्लोक इसके विपरीत बात कहते हैं, इसलिए स्पष्टतः वे मनु के लिखे नही है, प्रक्षिप्त हैं। कोई विद्वान् लेखक एक ही साँस में दो परस्पर विरोधी बातें कैसे कह सकता है?

शूद्रों के विषय में इस ग्रन्थ में एक और महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है। दण्ड–विधान का उल्लेख करते समय मनु लिखते हैं कि यदि एक ही अपराध चारों वर्णो के व्यक्ति करें, तो उन्हें एक जैसा दण्ड नहीं देना चाहिए। व लिखते हैं कि एक जैसा अपराध करने पर (चोरी करने पर) शूद्र को चुराये गये माल का आठ गुना, वैश्य को सोलह गुना, क्षत्रिय को बत्तीस गुना तथा ब्राह्मण को चौंसठ गुना या सौ गुना या एक सौ अट्ठाइस गुना दण्ड देना चाहिए।

क्या इस दण्डविधान से मनु शूद्र–विरोधी प्रतीत होते हैं? वे तो शूद्रों के समर्थक तथा रक्षक प्रतीत होते हैं। तभी तो वे उन्हें सबसे कम दण्ड देना उचित समझते हैं। इस प्रावधान से यदि किसी को शिकायत हो सकती है, तो ब्राह्मण को, जिसको वे सबसे कठोर दण्ड देना चाहते हैं; परन्तु ब्राह्मण की भी शिकायत उचित नहीं होगी। शूद्र तो नासमझ या अज्ञानी है। उसका अपराध उतना गम्भीर नहीं है, जितना ज्ञानी ब्राह्मण का। इसलिए ब्राह्मण को अधिक दण्ड देना सर्वथा उचित है। समाज आशा करता है कि अपने श्रेष्ठ आचरण से ब्राह्मण समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करेंगे। यदि वे ही अपराध करने लगे, तो फिर समाज का मार्गदर्शन कौन करेगा? ब्राह्मण का आचरण श्रेष्ठ बना रहना बहुत आवश्यक है। इसलिए उन्हें अपराध से दूर रखने के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था सर्वथा उचित और आवश्यक है।

ऐसे हैं मनु के विचार। जो मनु कहते हैं कि ब्राह्मण के घर शूद्र अतिथि आये, तो भोजनादि से उसका सत्कार करना चाहिए, जो मनु ब्राह्मण का विवाह एक शूद्र कन्या से उचित बताते हैं और जो एक ही अपराध करने पर शूद्र को हल्का तथा ब्राह्मण को कठोर दण्ड देना उचित मानते हैं, उन्हें जो व्यक्ति शूद्र–विरोधी या दलित–विरोधी कहता है, उसकी बुद्धि पर हँसी तो आती ही है तरस भी आता है।

यह सत्य है कि मनुस्मृति में ऊपर लिखे विचारों के विपरीत विचारोंवाले कुछ श्लोक पाये जाते हैं। लेकिन ये श्लोक निश्चित रूप से प्रक्षिप्त हैं, वेद–विरुद्ध हैं, इसलिए मानने योग्य नहीं हैं। ये मनु के लिखे श्लोक नहीं हैं।

अज्ञानवश या द्वेषवश डॉ० अम्बेडकर के अनुयायी 'मनुवादी' शब्द का प्रयोग अपशब्द के रूप में उस व्यक्ति के लिए करते हैं, जो ऊँच–नीच और छुआछूत को मानता है या दलितों का कथित विरोधी है।

वास्तव में, 'मनुवादी' होने का अर्थ है– समाज के किसी भी व्यक्ति को जन्म के आधार पर नीच या अछूत न मानना, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति स्नेह और आदर का भाव रखना, आचरण को शुद्ध रखने पर जोर देना। इसके साथ ही, मनुवादी होने का अर्थ है माता–पिता तथा आचार्यों के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखना, महिलाओं को परिवार तथा समाज में सम्मान देना तथा प्राणिमात्र के प्रति दया और करुणा का भाव रखना। यदि सब लोग मनु के आदेशों का पालन करें तो परिवार तथा समाज के विभिन्न घटकों के बीच मधुर और आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध बने रहेंगे और सबको उचित सम्मान मिलेगा। किसी का अनादर नहीं होगा। इसमें आपत्तिजनक क्या है, बिना लाग–लपेट के कोई कहे–

"हाँ, हम मनुवादी हैं।"

□

–डिकरूज का हाता, मसीहागंज, सीपरी बाजार, झाँसी–२८४००३ (उ०प्र०)

लोकतन्त्र के तीन पाद–संविधान, सुशासन और सुरक्षा

– आचार्य डा० प्रभु दयालु अग्निहोत्री

जब किसी देश के कर्णधारों के द्वारा वहाँ की जनता पर कोई ऐसा संविधान बिना उसकी साक्षात् स्वीकृति के लाद दिया जाता है, जिसकी जड़ें उस देश की मिट्टी में न होकर विदेश में होती हैं, तो उसकी परिणति ऐसे ही मकड़जाल में होती है, जिसमें आज हम सब फँस गये हैं। लोकतन्त्र, जनतन्त्र, स्वतन्त्र, प्रजातन्त्र आदि शब्द सुनने में जितने मधुर और मोहक हैं, कार्यान्विति में उतने ही कटु। संविधान की संरचना के समय ही मेरे जैसे उन लोगों को, जो सन् १६३० से ही सीधे–सीधे स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े रहे थे इस बात की आशंका प्रकट थी। यों भारत ईसा से लगभग छः सौ वर्ष पहले ही लोकतन्त्र की दिशा में प्रयोग कर चुका था। मगध में लिच्छिवि, बज्जि, मल्ल और साकिय आदि अठारह गणराज्य थे। इनमें ...नों के दो संघ थे। इन संघों का प्रशासन उन दो संस्थाओं के द्वारा संचालित होता था, जिन्हें वेदों ने सभा और समिति नाम दिया था। सभा में कुलवृद्ध अर्थात् हर घर का ज्येष्ठ व्यक्ति सदस्य होता था। मगध की राज्यसभा में लगभग तीन हजार सदस्य थे। विशेष अवसरों पर ये आहूत होते थे। समिति में भिन्न–भिन्न विषयों के विशेषज्ञ और ग्रामणी होते थे। समिति के अधिवेशन लगभग इसी प्रकार चलते थे, जैसे आज विधानसभा सत्र चलते हैं। प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते थे। हर प्रस्ताव के तीन वाचन होते थे। मतदान खुला होता था और आवश्यकता होने पर गुप्त भी। मत को 'छन्द' कहते थे और मतपत्र को 'शलाका' मत "ओम या आम्" की ध्वनि के द्वारा दिया जाता था और अस्वीकृति "नो" के द्वारा। ये तीनों संस्कृत शब्द आज भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। स्वीकृति की ध्वनि तीन बार दोहरायी जाती थी। बौद्धों ने जो तीन घोष वाक्य चुने हैं, वे इसी तीन संख्या के आधार पर हैं। तीन संख्या भारत में सदा से ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है। भारत में प्रजातन्त्रीय शासन–पद्धति का यह पहला प्रयोग था, जो जनता के अशिक्षित होने के कारण अधिक सफल नहीं हुआ। अतः बाद में चाणक्य के परामर्श से चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसे भिन्न स्वरूप दे दिया। ग्रामवृद्धों के स्थान पर

कई छोटे राज्यों में आधे से अधिक सदस्य मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित रहते हैं। बड़े राज्यों में यह संख्या ६० से ७० के बीच रही है और निगमों की चालीस से पचास तक। निगम खुले चरागाह होते हैं। हर मन्त्री के साथ पाँच-सात सदस्य रहते हैं। अतः इन सब को प्रसन्न रखना आवश्यक होता है। इन सबको वेतन और भत्तों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। एक–एक मन्त्री के बँगले की मरम्मत और सजावट पर कई–कई लाख रुपये तक व्यय किये जाते हैं। बिजली, टेलीफोन और वाहनों पर अमर्यादित व्यय। मुख्यमन्त्री की हवाई यात्राओं पर एक वर्ष में एक करोड़ और उसी से थोड़ा–थोड़ा कम अन्य मन्त्रियों पर। जो दो कमरों से छोटे से घर में रहते और साइकिल या स्कूटर पर चलते थे, उन्हें 'सी' वर्ग के बँगले छोटे पड़ने लगते हैं और उनके सन्यासियों तक के पाँवों में भूमि का स्पर्श करते ही छाले पड़ने लगते हैं। यह स्थिति उन राज्यों की है जिसके पास राज्य के कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसे नहीं रहते और महँगाई भत्ते की आधी राशि भविष्य–निधि खाते में जमा करा ली जाती है। मन्त्रियों और सदस्यों का पेट तब भी नहीं भरता। फिर अन्य उपायों से धन कमाने की जुगतें निकाली जाती हैं। बड़ों को देखकर दूसरे अफसर बेईमानी और रिश्वत से धन इकट्ठा करते हैं। आज हर छोटा–बड़ा ठेका, हर योजना और निर्माण खुले आम कमाई के साधन बन गये हैं। नयी नियुक्तियों, पदोन्नतियों और स्थानान्तरणों ने नियमित उद्योगों का रूप ग्रहण कर लिया है। यह तर्क खुलेआम दिया जाता है कि हम चुनाव में लाखों रुपये फूँक कर यहाँ तक पहुँचे हैं और फिर अगला चुनाव भी लड़ना है, इस सब के लिए तो किसी तरह पैसा इकट्ठा करना ही है। सच पूछा जाय, तो सारे भ्रष्टाचार के मूल में हमारी निर्वाचन–पद्धति ही है। इसी के कारण राज्यों की योजनाओं का सारा धन रचनात्मक कार्यों पर खर्च होने के बदले नेताओं के उदर में चला जाता है।

व्यवस्था के अधिकार राजकीय कर्मचारियों को सौंप दिये। इतनी चर्चा इसलिए कि जनतन्त्र पद्धति भारत के स्वभाव में नहीं रही। उदार केन्द्रशासित जनोन्मुख शासन पद्धति के स्थान पर पाश्चात्य, विशेषतः ब्रिटिश शासन प्रणाली को योरोप में शिक्षा प्राप्त विधिवेत्ताओं ने संविधान का आधार बनाया। यह पद्धति वहीं सफल हो सकती है जहाँ के मतदाता अच्छे पढ़े-लिखे और राष्ट्र की छोटी-बड़ी समस्याओं को समझ सकते हों। यों तो लगभग तीन सौ सदस्यों की संविधान सभा में चालीस-पैंतालीस सदस्यों ने ही बहस में भाग लिया था। निर्वाचन काल में संविधान की दुर्बलता स्पष्ट हो गयी। जिन वयस्कों को मत का अधिकार दिया गया था, उनके लिए मत सर्वथा अजनबी वस्तु थी। तब भी केवल बारह प्रतिशत मतों के आधार पर प्रतिनिधियों का निर्वाचन हुआ था। लगभग एक तिहाई जनसंख्या अवयस्कों की थी, शेष में लगभग आधी स्त्रियाँ, जिनका मत पति या घर के प्रमुख से भिन्न हो ही नहीं सकता था। गाँव के लोगों के मत वहाँ के जमींदार या शक्तिशाली लोगों के इशारे पर पड़े थे। उस समय रुपए, पैसे, साड़ियाँ और कम्बल बाँटना प्रारम्भ नहीं हुआ था और न हर पार्टी के अपने-अपने वोट बैंक बन पाये थे। अब आप हिसाब लगाकर देखें, तो कुल जनसंख्या में पैंसठ प्रतिशत मतदाता, जिनमें स्त्रियों के कोई स्वतन्त्र मत नहीं, होंगे भी तो पाँच प्रतिशत, शेष पैंतीस प्रतिशत में पचास प्रतिशत से अधिक मतदान ही नहीं हुआ। फिर एक सीट के लिए मान लीजिए औसतन चार व्यक्ति खड़े हुए तो वे मत चार भागों में बँट गए। विजेता के पक्ष में डाले गये मतों की संख्या दस प्रतिशत से अधिक नहीं हुई। मान लीजिए इस प्रकार चुने गये संसद् के पाँच सौ सदस्य हैं, तो उनमें सौ से अधिक लोगों ने संसद् या विधानसभा की कार्यवाही में सक्रिय भाग नहीं लिया। क्या आप इसे बहुमत का शासन कहेंगे? इनमें विजेता शासक दल को आज तक कभी समग्र मतों के पचास प्रतिशत नहीं मिले हैं, फिर जो शेष बचा हुआ बहुमत है, भले ही वह संगठित न हो; किन्तु क्या उसे सर्वथा नकार देना उचित कहा जायेगा? क्या बारह प्रतिशत जनता के स्वविवेक से दिये मत के आधार पर किसी एक दल के हाथ में शासन की पूरी बागडोर सौंप कर शेष जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं का सर्वथा निरादर कर देना उचित है?

देश के सर्वोच्च पदों पर प्रतिष्ठित राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री क्या सचमुच राष्ट्र के प्रतिनिधि होते हैं? राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से चुना जाता है। सामान्य जनता तो कई बार निर्वाचित राष्ट्रपति के नाम और काम से तभी अवगत होती है, जब वह पद की शपथ ले चुकता है। प्रधानमन्त्री भी केवल एक दल का प्रतिनिधित्व करता है। विरोधी दलों से अपना बचाव करने और उन्हें कमजोर बनाने में उसकी सारी शक्ति लगी रहती है। अपनी पार्टी के भीतर भी उसे येन-केन-प्रकारेण बहुमत को साथ बनाये रखने के लिए नाना प्रकार के हथकण्डों का प्रयोग करना पड़ता है। पहले तो मुख्य या प्रधानमन्त्री अधिक से अधिक सभासदों को मन्त्रिपद देकर अपने साथ बाँधने का प्रयत्न करता है। फिर भी यदि कुछ लोग बच गये, तो उनके लिए नाना निगमों की सृष्टि करता है। कई छोटे राज्यों में आधे से अधिक सदस्य मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित रहते हैं। बड़े राज्यों में यह संख्या ६० से ८० के बीच रही है और निगमों की चालीस से पचास तक। निगम खुले चरागाह होते हैं। हर मन्त्री के साथ पाँच-सात सदस्य रहते है। अतः इन सब को प्रसन्न रखना आवश्यक

जो पद और अवसर जनसेवा के माध्यम थे, वे अब शक्ति, धन और प्रभाव अर्जित करने के माध्यम बन गये हैं। संसद् और विधानसभाओं की सदस्यता, जैसा कि उनके नाम से ही स्पष्ट है, विधि-निर्माण और आवश्यकतानुसार उनके संशोधन के लिए थी। प्रशासन का सामान्य कार्य प्रशासनिक अफसरों और मन्त्रालयों के सुपुर्द था। अपने क्षेत्र की समस्याओं को विधानसभाओं के माध्यम से प्रशासन तक पहुँचाना भी उनका दायित्व था; किन्तु उस कार्य को न करके विभिन्न विभागों में नियुक्तियों और स्थानान्तरणों का काम मन्त्रियों ने अपने हाथ में ले लिया। हरिजनों, आदिवासियों के उत्थान, साक्षरता अभियान, जवाहर रोजगार योजना आदि पर अब तक जो अरबों रुपये व्यय किये गये हैं, वे तत्कालीन शासकदल के कार्यकर्त्ताओं की झोली में चले गये। सारा समाज इस पापाचार से त्रस्त है और शासन के चपरासी से लेकर मन्त्री तक इससे ग्रस्त। संसार के भ्रष्टतम देशों में भारत का स्थान है। अल्पमत को कूड़ेदान में फेंक कर बहुमत वाली पार्टी का शासन और चुनाव पद्धति, ये दो इस संविधान की बड़ी कमजोरियाँ हैं। उस संविधान का क्या किया जाय, जिसमें जोड़-तोड़ करके केवल एक के बहुमत से अच्छी से अच्छी ईमानदार सरकार गिरायी जा सकती हो और जहाँ कुछ राजनीतिक दलों का काम सिर्फ सरकार गिराना ही हो।

होता है। इन सबको वेतन और भत्तों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। एक–एक मन्त्री के बँगले की मरम्मत और सजावट पर कई–कई लाख रुपये तक व्यय किये जाते हैं। बिजली, टेलीफोन और वाहनों पर अमर्यादित व्यय। मुख्यमन्त्री की हवाई यात्राओं पर एक वर्ष में एक करोड़ और उसी से थोड़ा–थोड़ा कम अन्य मन्त्रियों पर। जो दो कमरों से छोटे से घर में रहते और साइकिल या स्कूटर पर चलते थे, उन्हें 'सी' वर्ग के बँगले छोटे पड़ने लगते हैं और उनके चपरासियों तक के पाँवों में भूमि का स्पर्श करते ही छाले पड़ने लगते हैं। यह स्थिति उन राज्यों की है जिनके पास के राज्य के कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसे नहीं रहते और महँगाई भत्ते की आधी राशि भविष्य–निधि खाते में जमा करा ली जाती है। मन्त्रियों और सदस्यों का पेट तब भी नहीं भरता। फिर अन्य उपायों से धन कमाने की जुगतें निकाली जाती हैं। बड़ों को देखकर दूसरे अफसर बेईमानी और रिश्वत से धन इकट्ठा करते हैं। आज हर छोटा–बड़ा ठेका, हर योजना और निर्माण खुले आम कमाई के साधन बन गये हैं। नयी नियुक्तियों, पदोन्नतियों और स्थानान्तरणों ने नियमित उद्योगों का रूप ग्रहण कर लिया है। यह तर्क खुलेआम दिया जाता है कि हम चुनाव में लाखों रुपये फूंक कर यहाँ तक पहुँचे हैं और फिर अगला चुनाव भी लड़ना है, इस सब के लिए तो किसी तरह रुपया इकट्ठा करना ही है। सच पूछा जाय, तो सारे भ्रष्टाचार के मूल में हमारी निर्वाचन–पद्धति ही है। इसी के कारण राज्यों की योजनाओं का सारा धन रचनात्मक कार्यों पर खर्च होने के बदले नेताओं के उदर में चला जाता है। यह व्यवस्था इतनी सड़ चुकी है कि जहाँ भी उँगली रख दीजिए, वहीं से मवाद निकलने लगता है। जो पद और अवसर जनसेवा के माध्यम थे, वे अब शक्ति, धन और प्रभाव अर्जित करने के माध्यम बन गये हैं। संसद और विधानसभाओं की सदस्यता, जैसा कि उनके नाम से ही स्पष्ट है, विधि–निर्माण और आवश्यकतानुसार उनके संशोधन के लिए थी। प्रशासन का सामान्य कार्य प्रशासनिक अफसरों और मन्त्रालयों के सुपुर्द था। अपने क्षेत्र की समस्याओं को विधानसभाओं के माध्यम से प्रशासन तक पहुँचाना भी उनका दायित्व था; किन्तु उस कार्य को न करके विभिन्न विभागों में नियुक्तियों और स्थानान्तरणों का काम मन्त्रियों ने अपने हाथ में ले लिया। हरिजनों, आदिवासियों के उत्थान, साक्षरता अभियान, जवाहर रोजगार योजना आदि पर अब तक जो अरबों रुपये व्यय किये गये

वह फिर आ रहा है

– हरिश्चन्द्र तिवारी

वह फिर आ रहा है
तुमसे पाँच वर्ष तक
तुम्हारी सुख, शान्ति को छीनने
तुमसे पुनः करने झूठा वादा
पाँच वर्षों तक आशा के पुल बाँधने
ताकि उसके मानवीय नैतिक मूल्यों
को रौंदने वाले बुलडोज़र चल सकें
अपने वेतन, भत्ते और भ्रष्ट कमायी से
अपने चुनाव की
तैयारियाँ करता
धन पर दूर दृष्टि
कुर्सी हेतु पक्के इरादेवाला
वह तुम्हारे दरवाजे पर
आ रहा है माँगने भीख तुम्हारे मत की
इसे मत दान दो
चाहता है जो समाज को बाँट
सत्ता की प्राप्ति। ◻

– ५६, कृष्णनगर, कीडगंज, इलाहाबाद (उ०प्र०)

हैं, वे तत्कालीन शासकदल के कार्यकर्त्ताओं की झोली में चले गये। सारा समाज इस पापाचार से त्रस्त है और शासन के चपरासी से लेकर मन्त्री तक इससे ग्रस्त। संसार के भ्रष्टतम देशों में भारत का स्थान है। अल्पमत को कूड़ेदान में फेंक कर बहुमत वाली पार्टी का शासन और चुनाव पद्धति, ये दो इस संविधान की बडी कमजोरियाँ हैं। उस संविधान का क्या किया जाय, जिसमें जोड़–तोड़ करके केवल एक के बहुमत से अच्छी से अच्छी ईमानदार सरकार गिरायी जा सकती हो और जहाँ कुछ राजनीतिक दलों का काम सिर्फ सरकार गिराना ही हो। निरक्षर–अधनंगी जनता को बहकाने में समय ही कितना लगता है। इसके लिए राजनीतिक दल क्या–क्या हथकण्डे नहीं अपनाते। भोपाल गैस त्रासदी से पीड़ितजनों के लिए विदेशों से काफी बड़े परिमाण में सहायता आयी थी; किन्तु ठण्ड के मौसम में आये हुए हजारों कम्बल शासक दल ने ठण्ड से मरते लोगों में न बँटवाकर उन्हें इसलिए दबाकर रखवा दिया कि महीने डेढ़–महीने बाद ही जो चुनाव होने वाला

था, उस समय उन्हें बाँटकर मतदाओं को उपकृत किया जा सके और उनके वोट प्राप्त किये जा सकें। इस पुराण का बखान कहाँ तक किया जाय? "नाना रूपधराः कौलाः प्रचरन्ति कलौयुगे" के अनुसार लोकतन्त्र के नाम पर उपजे अनाचार ने बरसाती घासफूस की तरह हर घर–आँगन को ढँक लिया है। एक बड़ी बिडम्बना यह भी है कि जो पार्टियाँ स्वयं को धर्मनिरपेक्ष कहती हैं और अन्यों को साम्प्रदायिक होने का फतवा देती हैं, वे ही सर्वाधिक जातिवाद, सम्प्रदायवाद और क्षेत्रीयतावाद फैलाती हैं और एक ही देश के अन्तर्गत देशरक्षक और देश सेवक होने का दावा करनेवाली पार्टियाँ दूसरी पार्टियों के साथ ऐसा व्यवहार करती हैं, जैसे वे किसी शत्रु देश की पार्टियाँ हों, जिनका समूलोच्छेदन उनका नैतिक दायित्व

साहस शासक दल ने कभी नहीं किया। एक ओर तो शासन के सर्वेसर्वा लोग सरकारी साधन और तामझाम के साथ तिरुपति, अजमेर और अमृतसर अर्चना और अरदास करने तथा चादर चढ़ाने जाते हैं; अल्पसंख्यक समुदायों के वोट इकट्ठे करने के लिए भाँति–भाँति की चालें चलते हैं तो दूसरी ओर स्वयं को सेकुलेरिज्म का मुख्य ध्वजवाहक बताकर शुद्ध, निष्पक्ष लोगों को साम्प्रदायिक बतलाते हैं। जो दल कभी संविधान को ध्वस्त करने के उद्देश्य से विधानसभाओं में प्रविष्ट हुआ था और आमूल क्रान्ति का उद्घोष करते नहीं थकता था, वह लगातार बीस वर्षों से भी अधिक काल तक एक राज्य का एकच्छत्र शासन करने के उपरान्त वहाँ की स्थिति में कहीं कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं कर सका। हाँ, केवल दूसरों को

हमारे प्रजातन्त्र की समन्विति मेढकों को तौलने के समान कठिन हो गयी है। हाँ, यदि कहीं ऐकमत्य है जहाँ सब सदस्य औरस भ्राता के समान व्यवहार करते हैं, वह बिन्दु है स्वयं के वेतन–भत्तों और सुविधाओं का विस्तार। ऐसे राष्ट्र के संचालक हैं वे, जो सदस्यता समाप्त होने के वर्षों बाद तक न सरकारी बंगले खाली करते हैं और न उनका किराया ही चुकाते हैं। अनेक राज्यों और केन्द्र तक में सदस्यों ने अपने लिए आजीवन भत्ते की व्यवस्था कर ली है। यद्यपि इन सदस्यों के लिए न कोई शैक्षणिक योग्यता नियत है, न उपस्थिति और न कार्यकलापों में भाग लेने का कोई बन्धन। उन्हें सदन के भीतर सरकारी कामकाजी कागजों को फाड़ने, निर्मर्याद बोलने, गाली–गलौज करने, शोरगुल मचाने, लगातार कई–कई दिनों तक सदन की कार्यवाही न चलने देने और सदन के बाहर सरकारी अफसरों पर दबाव डालने, उन्हें धमकाने आदि की पूरी छूट है। आपराधिक चरित्रवाले प्रत्याशी लठैत गुण्डे पालते हैं। मतदान केन्द्रों पर लूटमार करते हैं। मतदाता सब कुछ असहाय होकर देखता है। राष्ट्र और समाज की सेवा में जीवन बिताने वाले शिष्ट नागरिक अपनी आँखों बेईमानी और गुण्डागीरी का यह ताण्डव देखते हैं। रेलमन्त्री उनकी आँखों के सामने अपने हजारों चहेतों को मुफ्त रेल पास बाँटता है। पेट्रोल मन्त्री मनमाने पेट्रोल पम्प बाँटकर, रसायन मन्त्री गैस के कोटे देकर और इसी प्रकार हर विभाग के मन्त्री और उसके मन्त्रालय के अफसर स्वल्पकाल में ही रौब–दाब वाले धनाढ्य बन जाते हैं। हम सब यह सब देखते हैं। व्यवस्था को कोसते हैं और वह जनता, जिसे स्वामी कहा जाता है बेवस आह भरकर रह जाती है।

हो। वे वामपन्थी दल, जो कल तक अपनी आस्था भारत से भिन्न देशों के प्रति प्रकट करते रहे, जिन्होंने न केवल गान्धी जी और जवाहरलाल नेहरू के प्रति क्षुद्र से क्षुद्र विशेषणों का प्रयोग किया, सुभाषचन्द्र बोस तक पर मन चाहे लाञ्छन लगाते रहे– यहाँ तक कि सन् १९४२ के आन्दोलन में भारत के विरुद्ध विदेशों का साथ देकर स्वतन्त्रता-सैनिकों के विरुद्ध पुलिस को गुप्त सूचनाएँ देते रहे, वे भी आज निःस्पृह राष्ट्रसेवक राजनीतिज्ञों की अपेक्षा अधिक राष्ट्रीय होने का दम भरते हैं।

गत बावन वर्षों में देश में पचासों मुस्लिम दंगे हुए। उनकी जाँच के लिए कमेटियाँ और कमीशन बनाये गये; किन्तु उनके प्रतिवेदनों को सार्वजनिक करने का

कोस–कोसकर आत्मसन्तोष प्राप्त करता रहा है। इस तरह हमारे प्रजातन्त्र की समन्विति मेढ़कों को तौलने के समान कठिन हो गयी है। हाँ, यदि कहीं ऐकमत्य है जहाँ सब सदस्य औरस भ्राता के समान व्यवहार करते हैं, वह बिन्दु है स्वय के वेतन–भत्तों और सुविधाओं का विस्तार। ऐसे राष्ट्र के संचालक हैं वे, जो सदस्यता समाप्त होने के वर्षों बाद तक न सरकारी बंगले खाली करते हैं और न उनका किराया ही चुकाते हैं। अनेक राज्यों और केन्द्र तक में सदस्यों ने अपने लिए आजीवन भत्ते की व्यवस्था कर ली है। यद्यपि इन सदस्यों के लिए न कोई शैक्षणिक योग्यता नियत है, न उपस्थिति और न कार्यकलापों में भाग लेने का कोई बन्धन। उन्हें सदन के भीतर सरकारी

सरकारी कागजों को फाड़ने, निर्मर्याद बोलने, गाली–गलौज करने, शोरगुल मचाने, लगातार कई–कई दिनों तक सदन की कार्यवाही न चलने देने और सदन के बाहर सरकारी अफसरों पर दबाव डालने, उन्हें धमकाने आदि की पूरी छूट है। आपराधिक चरित्रवाले प्रत्याशी गुण्डे पालते हैं। मतदान केन्द्रों पर लूटमार करते हैं, मतदाता सब कुछ असहाय होकर देखता है। राष्ट्र और समाज की सेवा में जीवन बिताने वाले शिष्ट नागरिक अपनी आँखों बेईमानी और गुण्डागीरी का यह ताण्डव देखते हैं। रेलमन्त्री उनकी आँखों के सामने अपने हजारों चहेतों को मुफ्त रेल पास बाँटता है। पेट्रोल मन्त्री मनमाने पेट्रोल पम्प बाँटकर, रसायन मन्त्री गैस के कोटे देकर और इसी प्रकार हर विभाग के मन्त्री और उसके मन्त्रालय के अफसर स्वल्पकाल में ही रौब–दाब वाले धनाढ्य बन जाते हैं। हम सब यह सब देखते हैं। व्यवस्था को कोसते हैं और वह जनता, जिसे स्वामी कहा जाता है बेवस आह

किया जाय?

इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। वर्षों से देश के प्रबुद्ध इस पर विचार करने के बावजूद किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहे हैं। हमारे संविधान का निर्माण देश की समग्र एकीभूत प्रतिभा और प्रज्ञान ने विश्व भर के संविधानों का अध्ययन करने और कुछ का व्यावहारिक रूप देख लेने के पश्चात् की थी। तब भी यह प्रश्न उठा था कि पूर्ण वयस्क मताधिकार भारत जैसे हर प्रकार से पिछड़े देश में नहीं चल सकेगा। उत्तर में कहा गया था कि धीरे–धीरे गाँवों के प्रशिक्षित लोग भी इस प्रक्रिया को समझने लगेंगे; किन्तु ऐसा हुआ नहीं। इसका बड़ा कारण शिक्षा के प्रसार की गति का बहुत धीमा होना है। दूसरे हमारी सामान्य जनता को राजाओं, जमींदारों और नवाबों के दबाव में रहने का अभ्यास है। धौंस और दबाव के नीचे काम करने में उन्हें विशेष कष्ट नहीं होता। इसलिए हमारे चुनाव "जिसकी लाठी उसकी भैंस" से ऊपर नहीं उठ

ऐसा कैसे होता है कि बड़े से बड़े भ्रष्टाचारी भी बिना शरमाये सकुचाये डंके की चोट राजनीतिक पार्टियों के नेता बने घूमते रहते हैं। किसी बड़े नेता को भ्रष्टाचार में सजा नहीं मिली। वे साँड़ों की तरह छुट्टे घूमते रहते हैं और उस पर आश्चर्य यह कि हमारे देश के चौथे स्तम्भ समाचारपत्र विजेता हीरो की तरह उन्हीं का बखान करते हैं, जबकि सच्चे जननायकों के लिए उनके पास स्थान ही नहीं होता। लोकतन्त्र को विद्रूपता प्रदान करने में भाषाई समाचारपत्रों का बड़ा हाथ है। यह आवश्यक है कि निर्वाचित जनसेवकों को निश्चित आचार संहिता में आबद्ध किया जाय। उनकी सम्पत्ति और क्रियाकलापों की उचित निगरानी और संसद् तथा विधानसभाओं में उनके आचरण की सीमा कठोरता के साथ नियत और पालित हो, कैसा मजाक है, इन सभाओं के सदस्य अपना वेतन भत्ता स्वयं ही निश्चित कर लेते हैं। इन सब प्रश्नों पर किसी अधिकार–सम्पन्न आयोग को पुनर्विचार करना उचित होगा।

भरकर रह जाती है। कहने को हम सब सरकार के मालिक हैं पर उफ करने पर हममें से किसी को भी सामान्य पुलिस काँस्टेबुल के द्वारा पकड़वाकर थाने में बन्द कराया जा सकता है और अगर कोई दफा लगाकर झूठा ही मुकदमा चला दिया गया, तो फिर भगवान् ही मालिक है। तो यह है हमारा प्रजातन्त्र, जिसमें किसी ऐसे व्यक्ति का जिसके पूर्वजों ने अकूत धन कमाकर उसके लिए न छोड़ दिया हो या उसने स्वयं जैसे–तैसे विपुल सम्पत्ति न अर्जित कर ली हो, केवल विद्या, चरित्र और समाज सेवा के सहारे विधानसभा में पहुँच पाना सम्भव नहीं। जो राज्यसभा देश के ऐसे प्रबुद्ध, वरिष्ठ लोगों के लिए रखी गयी थी, जिनकी प्रकृति चुनाव लड़ने के अनुकूल नहीं है, उसमें कितने ऐसे व्यक्ति आज हैं, जो अपेक्षित योग्यता के आधार पर वहाँ पहुँचे हों। तब क्या

पाये। अ०भा० राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष और फिर म०प्र० के राज्यपाल डा० पट्टाभि सीता रामैय्या ने लेखक को एक बार अपने पर गुजरा हादसा बतलाया था। वह एक राजपरिवार के डाक्टर थे। राजा साहब से उनका घरौवा था, सो वह जब चुनाव में खड़े हुए, तो राजा साहब ने जन–धन से उनकी पूरी सहायता की। चुनाव के ठीक एक दिन पहले उन्हें खयाल आया कि मैं घर–घर तो घूमा, किन्तु राजासाहब से तो मतदान के लिए प्रार्थना ही नहीं की। ये लोग तुनकमिजाज होते हैं। कहीं बुरा न मान जायँ। यह सोचकर मैं उनके पास गया। वह नाई से बाल बनवा रहे थे। मैंने उनसे निवेदन किया कि वोटिंग है। आप पधारें। आप के मत का मेरे लिए बड़ा मूल्य है। उन्होंने आने का वादा कर दिया। चलते–चलते मैंने सोचा, क्यों न इस नाई से भी कह दूँ। मैंने कहा– नाऊ

बाबा, तुम भी अपना वोट देने आना। जैसे राजा साहब का वोट है, वैसे ही तुम्हारा भी है। मैं आश्वस्त होकर चला आया। वोटों की गिनती हुई, तो मैं एक वोट से हार गया। मालूम हुआ कि राजा साहब वोट डालने ही नहीं गये। मैंने उनसे पूछा, तो बोले–भला मैं वोट डालने जाता? मेरा और नउआ का वोट बराबर? राज गया, तो क्या नउआ के बराबर हो गये?

दूसरा किस्सा कांग्रेस नेता श्री जितेन्द्र प्रसाद के पिता कुँवर ज्योति प्रसाद का है। वह यू०पी० में लेखक के पैतृक गाँव से विधानसभा के लिए खड़े थे। समाजवादी कम्युनिस्ट, हिन्दू सभा और कांग्रेस में टक्कर थी। सबसे पहले कम्युनिस्ट आये। उन्होंने सवर्णों के खिलाफ नीची जातियों को भड़काया। जाकर चमारों के घर पर भोजन किया। कहा, हम तुम्हें बराबर का मानते हैं। अगर और कोई पार्टी तुम्हारे बर्तनों में पानी ही पीकर दिखादे, तो तुम उसे वोट दे सकते हो, वर्ना हमें देना। जब अन्य पार्टियों के समर्थकों को यह बात मालूम हुई, तो वे भी चमारों, कोरियों, धानुकों और धुना (मुसलमानों) के घर जा–जाकर चाय पी आये। अब जब सभी ने अछूतों को सिर पर उठा लिया, तो वे किसे वोट दें? लेखक के कट्टर कान्यकुब्ज भाई कांग्रेसी थे। वे भी इनके सबके बर्तनों में खा पी आये, यद्यपि सारे रिश्तेदारों ने और गैर कांग्रेसी ब्राह्मणों ने उनका जाति–बहिष्कार कर दिया। तब गाँव के एक बूढ़े खुर्राट किसान को एक तरकीब सूझी। उनकी सलाह पर एक ही दिन सारी पार्टियों के नेताओं को बुलाया गया और उनसे अपनी–अपनी पार्टी के विषय में बतलाने को कहा गया। जब सब लोग अपनी–अपनी योजनाओं और अतीत–गौरव का बखान कर चुके, तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा– बाबू जी, वोट तो सारे गाँव के एक ही उम्मीदवार को पड़ने हैं। मगर आप सभी महान् हैं। इसलिए हम यह निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि किस पर ज्यादा विश्वास किया जाय। अच्छा, ऐसा करें, आप एक–एक कर पार्टी के सबसे बड़े नेता का नाम बतायें। पहले समाजवादी पार्टी का उत्तर आया, राममनोहर लोहिया। उनके पिता का नाम? मालूम नहीं। अच्छा, कम्युनिस्ट पार्टी? नम्बूद्रिपाद। उनके पिता? पता नहीं। जनसंघ? श्यामा प्रसाद मुखर्जी। उनके पिता? सर आशुतोष मुखर्जी और उनके पिता? मालूम नहीं। अच्छा कांग्रेस पार्टी? इन्दिरा गान्धी। उनके पिता? जवाहरलाल नेहरू। और उनके पिता? मोतीलाल नेहरू। कम्युनिस्ट चिढ़कर बोले– आप लोगों को तो पार्टी को वोट देना है। बाप–दादों से क्या मतलब? तब एक साथ कई बोल फूट पड़े– वाह! लेना–देना क्यों नहीं? जो अपनी पार्टी के बाप–दादा तक को नहीं जानते, उनके हाथ में गाँव कैसे सौंप दें। कांग्रेस नेता की तो तीन पीढ़ियों को हम जानते हैं। सो वोट कांग्रेस को देंगे। और गाँव के सारे वोट बाबा साहब (जितेन्द्र प्रसाद) के पिता कुँवर ज्योति प्रसाद की झोली में जा गिरे। तो ऐसे होते हैं अत्यन्त सभ्यतापूर्ण भी चुनाव। फिर 'धन और बल' के बल पर होने वाले चुनावों का तो कहना ही क्या, अब तो ग्राम सभाओं के चुनाव भी बिना लट्ठमारी और छीना–झपटी के सम्पन्न नहीं हो पाते।

निर्वाचन पद्धति के स्वरूप में आमूल–चूल परिवर्तन आवश्यक है। इसी ने जातिवाद, क्षेत्रवाद और सम्प्रदायवाद को भड़काया है। विश्वभर की निर्वाचन पद्धतियों का अध्ययन कर उनमें श्रेष्ठतम को भारत की वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल ढालना जरूरी है। जैसे भी हो, पैसों और बल के प्रभाव को समाप्त करना चाहिए। क्या कारण है कि प्रजातन्त्रीय शान के प्रारम्भ काल में ही जिन राजाओं और जमींदारों के अधिकारों को सामान्य मतदाताओं के समकक्ष ला दिया गया था, वे आज भी शासन पर शिकंजा कसे हुए हैं और उनसे भी अधिक वे, जिन्हें सारा क्षेत्र गुण्डे या खतरनाक के रूप में पहचानता है। मतदाता और प्रत्याशी ऐसे ही लोग बन सकें, जिनकी छवि साफ सुथरी हो और प्रत्याशी वे, जिनकी कुछ जनसेवा का रेकार्ड है। ऐसा कैसे होता है कि बड़े से बड़े भ्रष्टाचारी भी बिना शरमाये सकुचाये डंके की चोट राजनीतिक पार्टियों के नेता बने घूमते रहते हैं। किसी बड़े नेता को भ्रष्टाचार में सजा नहीं मिली। वे साँड़ों की तरह छुट्टे घूमते रहते हैं और उस पर आश्चर्य यह कि हमारे देश के चौथे स्तम्भ समाचारपत्र विजेता हीरो की तरह उन्हीं का बखान करते हैं, जबकि सच्चे जननायकों के लिए उनके पास स्थान ही नहीं होता। लोकतन्त्र को विद्रूपता प्रदान करने में भाषाई समाचारपत्रों का बड़ा हाथ है। यह आवश्यक है कि निर्वाचित जनसेवकों को निश्चित आचार संहिता से आबद्ध किया जाय। उनकी सम्पत्ति और क्रियाकलापों की उचित निगरानी और संसद् तथा विधानसभाओं में उनके आचरण की सीमा कठोरता के साथ नियत और पालित हो। कैसा मजाक है, इन सभाओं के सदस्य अपना वेतन भत्ता स्वयं ही निश्चित कर लेते हैं। इन सब प्रश्नों पर किसी अधिकार–सम्पन्न आयोग को पुनर्विचार करना उचित होगा।

संविधान बनने के समय यह कल्पना नहीं की गयी थी कि कभी कोई विदेशी मूल का व्यक्ति भी भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, सेनाध्यक्ष या उच्चतम न्यायालय (शेष पृष्ठ ५० पर)

चिट्ठी आई पेरिस से-

ल्वार नदी की घाटी जहाँ फ्रान्स का इतिहास जीवन्त है

– डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय

मेरी संस्कृत-प्रिया पैत्रीशिया का बहुत दिनों से आग्रह था पेरिस के बाहर घूमने-फिरने के किसी कार्यक्रम में सम्मिलित होने का। पैत्रीशिया मूलतः अर्जेण्टाइना की है, मनोविज्ञान में डाक्टरेट कर रखी है उसने, स्पेनिश में कविताएँ लिखती है, लेकिन अब सब कुछ भूलकर संस्कृत के अध्ययन में जुट गयी है। मनोविज्ञान बहुत पीछे चला गया है, उसकी बहुत-सी स्थापनाओं से उसकी असहमति भी बढ़ती जा रही है। विवाह किया है एक फ्रांसीसी पुरुष से, लेकिन पूरे परिवार को पूर्णतया शाकाहारी बना दिया है उसने। जन्मना ईसाई है, परन्तु अब उसका पूरा परिवार अपने को बौद्ध मानता है। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के प्रति विशेष आदरभाव है। आजकल व्यक्तिगत रूप से मुझसे वाल्मीकीय रामायण का अध्ययन कर रही है और एक दक्षिण भारतीय महिला कमला जी से भारतीय शास्त्रीय संगीत सीख रही है। पैत्रीशिया के बड़े बेटे को विद्यालय से काम मिला फ्रांस के कुछ ऐतिहासिक स्मारकों को देखकर उनकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का। फ्रान्स के माध्यमिक विद्यालय इन गतिविधियों के माध्यम से छात्रों में राष्ट्र के ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों, भवनों एवं स्मारकों के प्रति छात्र-छात्राओं में आकर्षण उत्पन्न करने के कारण प्रशंसनीय हैं। पैत्रीशिया के बच्चों ने सर्वेक्षण के लिए इस बार चुना ल्वार नदी की घाटी में बने विशाल प्राचीन राजमहलों को। पैत्रीशिया और उसके पति श्रीयुत वोवी के आग्रह से हम दोनों भी इस भ्रमण-कार्यक्रम में सम्मिलित हो गये।

ल्वार नदी फ्रान्स की बहुत बड़ी और सबसे ज्यादा लम्बी नदी तो है ही, विकराल भी कम नहीं है। पेरिस से तीन-चार सौ कि.मी. दूर पर विद्यमान इसकी घाटी कई कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ल्वार की तुलना अपनी सरयू (घाघरा) से की जा सकती है। ल्वार का विशाल जलप्रवाह देखकर एक बार तो मन में सिहरन-सी पैदा होती है, लेकिन अपनी समृद्धि के कारण यह अंचल फ्रांसीसियों के लिए विशेष लगाव भी रखता है। कुछ सौ वर्ष पहले ल्वार नदी का तटवर्ती यह सम्पूर्ण क्षेत्र बेहद समृद्धि-सम्पन्न था और जहाँ समृद्धि होती है, वहाँ मानव की प्रतिभा अपना चमत्कार दिखाती ही है। इसलिए कला और स्थापत्य के क्षेत्र में भी यह अंचल विशेष स्थान रखता है। इस नदी के किनारे-किनारे, दूर-दूर तक फैले हुए अनेक भव्य एवं प्राचीन राजमहल बने हुए हैं, जो पर्यटकों के विशेष आकर्षण के केन्द्र हैं। इनमें से अनेक राजप्रासादों का निर्माण फ्रान्स के राजाओं ने स्वयं कराया था और कुछ का उनके सामन्तों और बड़े अधिकारियों ने। कुछ राजभवन क्षेत्रीय सामन्तों के द्वारा निर्मित भी हैं। इन राजमहलों के कारण इस नदी की घाटी को 'राजघाटी' भी कहा जाता है। बताया जाता है कि ल्वार की इस घाटी को पुराने राजा-गण अपनी प्रेयसी या रानी की तरह प्यार करते थे। लगभग पन्द्रह-बीस राजमहलों के अतिरिक्त इस नदी के तटों पर अन्य बहुत-से ऐतिहासिक पुरावशेष भी स्थित हैं।

उस दिन पेरिस से सवेरे नौ बजे के आस-पास ही हम निकल पाये। फ्रान्स के हाईवे (राजपथ) बड़े विशाल और भव्य हैं, लेकिन उन सभी पर अनिवार्यतः पथ-कर देना पड़ता है। मध्याह्न भोजन से पूर्व हम लगभग सौ किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से मोटर दौड़ाकर, शाम्बोर (Chambord) के महल में पहुँच पाये। इस अत्यन्त विशाल राजमहल का निर्माण राजा फ्रांस्वा प्रथम ने कराया था। इस भव्य भवन में एक कक्ष का नामकरण 'भारतीय कक्ष' के रूप में भी है। ऐसा लगता है कि इसकी योजना किसी भारतीय राजप्रासाद के अनुकरण पर ही की गयी है। फ्रान्स के भवनों में सामान्यतः छतें नहीं होती थीं पहले- लेकिन इस महल में धूप का आनन्द लेने के लिए बढ़िया छतें बनी हुई हैं। दर्शक भी छतों पर बैठे देखे जा सकते हैं। इस महल में राजाओं के काम में प्रतिदिन आनेवाली सभी वस्तुएँ सुरक्षित हैं। उनके विलासपूर्ण जीवन, प्रेम-प्रसंगों, विभिन्न पारिवारिक घटनाओं के चित्र,

टेपेस्ट्री और प्रतिमाएँ आदि सुरक्षित हैं। फर्नीचर के उपकरण भी यथावत् और पूर्ववत् सुरक्षित रखे गये हैं। हरी घास से आच्छन्न और दूर–दूर तक फैले हुए विशाल मैदान पर्यटक का मन मोह लेते हैं। पास में ही बहती हुई ल्वार नदी की एक उपधारा को महल तक ले आया गया है। उस दिन मध्याह्न भोजन वहीं बनी एक झोपड़ी में हुआ। पर्यटकों के भोजन–हेतु फ्रान्स की सरकार ने पास में ही कुछ झोपड़ियाँ बनवा रखी हैं। उनमें मेजें और बेंचें भी हैं– सभी कुछ साफ–सुथरा।

पैत्रीशिया वोवी के परिवार के साथ सम्पन्न उस दिन के मध्याह्न भोजन में यूरोपीय और भारतीय भोजन का अद्भुत सम्मिश्रण था। बागेट (डंडे जैसी ब्रेड), सलाद के साथ पूड़ी–सब्जी और तहरी के समावेश ने बच्चों से लेकर बड़ों तक सभी को आकण्ठ तृप्त कर दिया।

अपराह्न ब्ल्वा (Blois) नगर में स्थित शेवरनी (Cheverney) का राजमहल देखा। इसका स्वामित्व आज भी उसी यूराल परिवार (Hurault) के पास है, जिसके पूर्वजों ने ५–६ सौ वर्ष पहले इसका निर्माण कराया था। इस परिवार के लोग फ्रान्स के पाँच राजाओं के कार्यकाल में ऊँचे और अधिकारपूर्ण पदों पर रहे, जिनमें लुई १२वें के कोषाध्यक्ष जैक तथा तीसरे और चौथे हेनरियों के चान्सलर रहे फिलिप प्रमुख हैं। इसका निर्माण फ्रान्स के राजाओं की आज्ञा से हुआ। प्रासाद बहुत विशाल है, जिसमें आयुध–कक्ष, शयन–कक्ष, कला–कक्ष, भोजन–कक्ष और चित्रदीर्घाएँ वास्तव में ही बहुत भव्य हैं। फ्रान्स का प्राचीन वैभव इसमें सजीव रूप में सुरक्षित है। महल के बाहर एक छोटे से भवन में ५०–६० शिकारी कुत्ते या भेड़िए भी पाल रखे गये हैं, जो पहले शायद शिकार में सहायता करते रहे हैं। एक बड़े कक्ष में बारहसिंघे की इतनी सींगें साज–सज्जा के लिए दीवारों पर जड़ी हैं, जिससे इसका अनुमान सरलता से किया जा सकता है कि कितने बड़े परिमाण में हरिणों का सामूहिक संहार किया गया होगा।

रात बितायी गयी दूबिस होटल में, जिसके चारों ओर दूर–दूर तक खुला वातावरण अत्यन्त प्रीतिकर लगता है। सवेरे हम लोग, मात्र प्रातराश भर लेकर प्रविष्ट हुए अम्ब्वास नगर में, जो ल्वार की घाटी में स्थित शायद सर्वाधिक चर्चित स्थान है। मध्यकाल में यह नगर कदाचित् बहुत धनधान्यपूर्ण था। अम्ब्वास का राजप्रासाद भी इसके वंशधरों के अधिकार में ही है। इसी प्रकार के स्थानों में आकर पता लगता है कि आज भी यूरोप में राजवंशों की शान–शौकत में कोई कमी नहीं आयी है। ये लोग आज भी आपस में ही ब्याह–शादियाँ करना पसन्द करते हैं और अपने पुराने मान–सम्मान की परम्परा को बनाये रखने में शान समझते हैं। लोकतन्त्र इन्हें फूटी आँख भी अच्छा नहीं लगता और भीतर–ही–भीतर ये राजवंशों की पुनः वापसी के सपने भी देखा करते हैं। अम्ब्वास का यह राजमहल नाम के लिए सें लुई फाउण्डेशन की देखरेख में है। सातवें लुई से लेकर फ्रॉस्वा प्रथम तक का सम्बन्ध इस राजमहल से रहा है। इसी राजमहल में बने एक लघु गिरजाघर में ल्योनार्द विंची नामक वह महान् इतालवी कलाकार वहाँ बनी अपनी समाधि में सो रहा है, जिसे फ्रान्स में आकर पूर्ण राज–सम्मान ही नहीं मिला, बल्कि अपनी कला का सम्पूर्ण विस्तार करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। 'मोनालिसा की मुस्कान' नामक विश्वविख्यात चित्र के चितेरे इस महान् कलाकार के नाम पर अम्ब्वास नगर में ही एक विशाल संग्रहालय भी है, जो कभी उसके निवास के लिए राज–परिवार की ओर से प्रदत्त लघु राजभवन ही था– लेकिन उसकी चर्चा फिर कभी की जाएगी। अम्ब्वास के राजमहल के बाद हमने विंची का वह महलनुमा आवास भी देखा और तत्पश्चात् शेननसो की ओर मुड़े। शेननसो का राजमहल पूरा का पूरा ल्वार नदी के प्रवाह पर ही निर्मित है। नीचे पुल और ऊपर अनेक मंजिला विशाल प्रासाद। प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के समय इस महल की विशाल गैलरी आहतों की सेवा और उपचार के लिए एक अस्पताल में ही परिणत हो गयी थी। □

– अतिथि आचार्य, सोरबोन नूविल विश्वविद्यालय, पैरिस

देखा तो बहुत मगर...

– डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध'

पहले जो जैसा था
वैसा अब रहा नहीं,
पगडंडी से लेकर पथरीली सतहों तक।
अंधी आँखों वाले सब चमकदार चश्मे,
युगद्रष्टा बन बैठे कुर्सी के सर्कस में।
देखा तो बहुत मगर मन ने कुछ कहा नहीं,
उन लँगड़ी बातों से इन गूँगी नजरों तक।
चर्चाएँ चलती हैं शहरी आबादी से,
आवाजें दबती हैं गाँवों में खादी से।
सहते ही आये हैं, बोलो क्या सहा नहीं ?
मटमैली रातों से धुँधलायी सुबहों तक।
संख्या में लिखे हुए अपने निर्माणों के,
शब्दों में बने हुए नक्शे खलिहानों के।
धारा तो एक मगर हर कोई बहा नहीं,
खेतों की मेड़ों से दफ्तर की जगहों तक।

– २५४, पद्मावती कालोनी 'ए', अजमेर मार्ग,
जयपुर– ३०२०१६ (राजस्थान)

भारतीय धर्म-निरपेक्षता

– आनन्द शंकर पंडया

भारत व हिन्दू समाज को जड़ से उखाड़ने का भीषण षड्यन्त्र

धर्मनिरपेक्षता (सेक्युलरिज्म) का अर्थ है धर्म के आधार पर किसी सम्प्रदाय के साथ भेदभाव न किया जाय; पर आजादी के बाद भारत पर ५० वर्ष तक शासन करनेवाले कांग्रेस जैसे कई राजनैतिक दलों ने अपने वोट बैंक बनाने के लिए धर्म निरपेक्षता के नाम पर सौतेली माँ की तरह जो कुटिल नीति अख्तियार की, उससे हिन्दू–मुस्लिम मनमुटाव बहुत बढ़ता जा रहा है और पाकिस्तान भारत पर बार–बार आक्रमण कर रहा है।

इतिहास गंवाह है कि विश्व बन्धुत्व से उत्पन्न अति सहनशीलता पर चलनेवाले हिन्दू कभी खतरा नहीं देखते इससे उनमें एकता का अभाव है। परिणामस्वरूप हजार वर्ष से उन पर भयकर विदेशी आक्रमण हो रहे हैं। विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा देश का लाखों मन सोना, चाँदी, जवाहरात और सम्पत्ति लूट ली गई, जिसकी कीमत लगभग ७० लाख करोड़ रुपया से कम नहीं है। इसी से भारत गरीब हो गया तथा ईरान, टर्की व यूरोपीय देश अमीर हो गये।

आजादी के बाद भी हिन्दुओं को साम्प्रदायिक कहकर उनके राजनैतिक अधिकारों, भाषा, वेशभूषा, संस्कृति इत्यादि पर सेक्युलरवादी नेताओं एवं प्रचार माध्यमों द्वारा लगातार आक्रमण हो रहे हैं। हजारों वर्ष से हिन्दू समाज को सुख समृद्धि देनेवाले जीवन मूल्य और विचार धारा को सत्ताधारी नेताओं ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और हिन्दू शब्द अपने में एक निन्दावाचक शब्द बना दिया गया, जिससे भारत में राष्ट्रद्रोही व धर्मद्रोही लोगों की शक्ति बढ़ती जा रही है। भारत पर आने वाली ८० प्रतिशत मुसीबतें– जैसे अपराध, आतंकवाद, तस्करी, नशीली दवाएँ, अलगाववाद जैसी तथा कश्मीर, पंजाब और असम जैसी समस्याएँ इसी पाखंडी, देश विरोधी, धर्मनिरपेक्षता की देन हैं। यह धर्म–निरपेक्षता गीता के विरुद्ध है जिसमें भगवान कृष्ण कहते हैं कि वे धर्म की स्थापना के लिए बारबार इस संसार में अवतार लेंगे।

उदारता के बदले क्या मिला ?

भारत के इतिहास में कभी भी अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय नहीं हुआ। भूतकाल में हिन्दू राजाओं ने गिरजाघर और मसजिद बनवाये, वे सचाई से 'हिन्दू मुस्लिम भाई–भाई' और 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम' गाते रहे। आजादी के बाद हिन्दुओं ने इतिहास के पुराने अत्याचारों को भुलाकर मुसलमानों को राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमन्त्री इत्यादि बनाया और उनकी सब माँगें पूरी कीं; पर हिन्दुओं ने जितनी अधिक उदारता दिखलायी, उन्हें उतना ही अधिक कायर समझकर उन पर पाकिस्तान, बांग्ला देश और देश के अन्दर ही कश्मीर में भयंकर अत्याचार किये गये।

आतंकवाद क्यों बढ़ा ?

नेहरू, इन्दिरा, राजीव तथा जनतादल के नेताओं ने मुसलमानों का जितना तुष्टीकरण किया, उतना ही देश में मजहबी उन्माद दंगे और साम्प्रदायिकता बढ़ी। आज भारत में यदि कोई आतंकवाद को कड़ाई से दबाने का सुझाव देता है, तो उसे 'फासिस्ट' और 'साम्प्रदायिक' कहा जाता है, यदि कोई भारत को अपनी पुण्यभूमि कहता है व हिन्दुओं के जीवन, धन, धर्म और चरित्र की रक्षा तथा स्वदेश, स्वधर्म, सुराज, भारतीयता, आध्यात्मिकता या हिन्दू एकता की बात कहता है, तो 'सेक्युलरवादी' नेता तथा उनके हाथ बिकी हुई कलमें समाचार पत्रों में उसे 'साम्प्रदायवादी' कहकर उसका मुँह बन्द कर देते हैं। **हिन्दू एकता के अभाव में ही भारत में इस्लामिक आतंकवाद व साम्प्रदायिक वैमनस्य निरन्तर बढ़ता जा रहा है।**

परन्तु सिर्फ सत्ता पर अपनी आँख रखनेवाली कांग्रेस जैसी सेक्युलर कहलाने वाली पार्टियों ने कश्मीर में दो मजारों हजरतबल व चरारेशरीफ में घुसे हुए आतंकवादियों की चापलूसी करके और उन्हें बिरयानी खिलाकर छोड़ दिया तथा कश्मीर के गवर्नर जगमोहन को उनके पद से हटा दिया; क्योंकि वे आतंकवादियों को कड़ाई से दबा रहे थे। इससे आतंकवादियों तथा आई.

एस.आई. की हिम्मत इतनी बढ़ गयी कि वे कश्मीर पर कब्जा करने व देश में भयंकर बम–विस्फोट व गृहयुद्ध की और अधिक व्यापक योजनाएँ बनाते रहे।

कश्मीर व कारगिल की सारी मुसीबतें नेहरू, इन्दिरा गान्धी परिवार के कायरतापूर्ण तथा कपटी धर्मनिरपेक्षता के तुष्टीकरण के कारण हैं। सेक्युलर कहलानेवाले नेता अपना वोट बैंक बनाने के लिए बांग्ला देश से आनेवाले लगभग ढाई करोड़ मुसलिम घुसपैठियों को भारत में नौकरियाँ और नागरिकता दिलवा रहे हैं। (सेक्यूलरवादी मुलायम सिंह कहते है कि उन घुसपैठियों को भारत में आने दो वे हमारे भाई हैं। इन सब बातों से देश में बेकारी, हिंसा व साम्प्रदायिकता बढ़ रही है।

साम्प्रदायिकता और दंगे क्यों बढ़े ?

जो ईमानदार पुलिस अफसर दंगा करनेवाले मुसलिम नेताओं के विरुद्ध कड़ाई बरतकर अपने कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं उनका तबादला कर या करवा दिया जाता है ताकि मुसलमान खुश हो। इसके परिणामस्वरूप पुलिस के जवानों, सरकारी अफसरों व जनता में आदर्शहीनता, आत्महीनता व अकर्मण्यता उत्पन्न हो रही है।

सेक्युलरवादी नेता ५० वर्षों से राष्ट्रवादी मुसलमानों को दबाकर कट्टरवादी मुसलमानों को आगे बढ़ा रहे हैं। जो मुसलमानों को अन्धविश्वास के द्वारा ४ शादी व अपनी आबादी बढ़ाने को प्रेरित कर रहे हैं। उन्हें आबादी कम करने को कहने की कोई हिम्मत नहीं करता। इससे मुसलमानों में अपराध, कट्टरता, उनकी आबादी व हिन्दू–मुस्लिम नफरत बढ़ रही है। इन सब बातों से ५० साल में पाकिस्तान आक्रामक और भारत दब्बू बनता गया।

८० करोड़ हिन्दुओं के साथ अन्याय और विश्वासघात

मुसलमानों का वोट बैंक बनाना तथा उनकी एकता की बात करना धर्मनिरपेक्षता का परिचायक माना जाता है और हिन्दुओं का वोट बैंक बनाना व उनकी एकता की बात करना साम्प्रदायिक।

सेक्युलर कहलानेवाले ये वे ही लोग हैं, जो भारतमाता को 'डाइन' जैसे अपशब्द कहकर उसका अपमान करने वालों को प्रेम से गले लगाते हैं। वे वन्देमातरम् का विरोध करते हैं, पर दंगा करनेवाले की पीठ ठोकते हैं इससे ५० वर्ष में देश में लगभग २००० दंगे हुए। हिन्दुओं को कहा जाता है कि धर्मनिरपेक्षता के नाम पर वे अपने धर्म संस्कृति, तीर्थ, महापुरुष सबको भूल जायें। उनका कत्लेआम हो और उनकी नारियों पर अत्याचार हो, तो उसे भी क्षमा करते रहें; पर आतंकवादियों के हितों की रक्षा करते रहें इसलिए जब मुसलिम आतंकवादियों ने मुम्बई में १३ बम विस्फोट किये, जिसमें ३०० हिन्दू मारे गये और उनकी कई अरब की सम्पत्ति नष्ट हो गयी, तब किसी सेक्युलरवादी ने उसकी निन्दा करने की हिम्मत नहीं की।

आज असत्य का प्रचार करना, देश विरोधी ताकतों व भ्रष्ट नेताओं को मदद देना तथा ८० करोड़ हिन्दुओं को अपमानित करना, सताना व उनके चरित्रवान्, धर्मवान् व देशभक्त नेताओं को दबाना ही धर्मनिरपेक्षता या सेक्युलरिज्म माना जा रहा है। हजार वर्ष की गुलामी के बाद मिली आजादी में भी हिन्दुओं को अपना सर उठाने का मौका नहीं दिया जा रहा है। अपने नेताओं से हिन्दुओं को ऐसे विश्वासघात की उम्मीद नहीं थी। आश्चर्य तो यह है कि आज जो जितना अधिक मजहबी है, वह उतने ही जोर से धर्मनिरपेक्षता के नारे लगा रहा है।

हिन्दुओं के ३००० से अधिक मन्दिर व धर्मस्थल मुसलमानों के कब्जे में हैं, उनके बदले वे हिन्दुओं को एक राम जन्मभूमि भी नहीं देना चाहते। पाकिस्तान, बांग्लादेश व कश्मीर के शान्तिप्रिय लाखों हिन्दुओं पर आतंकवादियों द्वारा भयंकर अत्याचार किया गया; पर उसके विरोध में कोई सिर्फ इसीलिए नहीं बोला कि ये सब हिन्दू थे, जिनकी जान की कोई कीमत नहीं है। इन कश्मीरी हिन्दुओं को बचाने के लिए सेक्युलरवादी सरकारों द्वारा कोई सेना नहीं भेजी गयी। हाँ; अयोध्या में निहत्थे, अहिंसक सहनशील, रामभक्त निहत्थे हिन्दुओं पर गोली चलाने के लिए अर्द्धसैनिक–बल जरूर भेजे गये। वोट के लिए मूल बहुसंख्यक समाज तथा देश के साथ इतनी बड़ी द्रोहिता दुनिया में कहीं भी नहीं है।

गोहत्या से देश का आर्थिक विनाश हो रहा है, परन्तु उसे नहीं रोका जाता; क्योंकि हिन्दू गाय को माता मानते हैं, देशभक्ति और बुद्धि बढ़ाने वाली वन्देमातरम् और सरस्वती वन्दना नहीं कही जा सकती तथा स्कूलों में यद्यपि कुरान और बाइबिल पढ़ाई जा सकती है; पर नैतिकता तथा विश्व शान्ति का उपदेश देनेवाली गीता और रामायण नहीं पढ़ाई जा सकती; क्योंकि वे हिन्दुओं के ग्रन्थ हैं।

अमेरिका व यूरोप के सभी सेक्युलर कहलाने वाले देशों में बहुसंख्यकों का ईसाई धर्म ही राज्य धर्म है, जिसे वहाँ की सरकारें आर्थिक सहायता व सम्मान देती हैं। इंग्लैंड की पार्लियामेंन्ट में तीन आर्चिबिशपों को स्थान दिया जाता है तथा पार्लिमेन्ट का सत्र शुरु होने के पहले सब सदस्यों को गिरजाघर में जाकर देश की समृद्धि के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है; फिर भी विश्व में इंग्लैंड, पूर्णतः सेक्यूलर देश माना जाता है; **क्योंकि विश्व के सभी देशों में बहुससंख्यकों का हित प्रथम देखना यही लोकतन्त्र का नियम है; किन्तु भारत में ऐसा करना साम्प्रदायिक माना जाता है।**

सेक्यूलर (धर्मनिरपेक्ष) कहलानेवाले राजीव गान्धी व सोनिया गान्धी ने पोप के स्वागत में गरीब भारत का पचीसों करोड़ खर्च कर दिया इस षड्यन्त्र के कारण अधिक हिन्दू ईसाई बनने लगे; परन्तु जगद्गुरु शंकराचार्य जी को जेल में डाल दिया गया।

सैंक्युलरवादी सरकारों ने दक्षिण भारत के २६०० मन्दिर व धार्मिक संस्थाओं की १३२८५ एकड़ जमीन जिसकी कीमत सैकड़ों करोड रुपया है उनसे छीन ली। क्या मसजिद व गिरजाघरों के साथ इस तरह का व्यवहार करने का कभी सरकार सोच भी सकती है?

प्रतिवर्ष ८ लाख हिन्दू ईसाई और मुसलमान बनाये जाते हैं; पर इसका विरोध करना साम्प्रदायिक माना जाता है। अतः धर्म परिवर्तन पर रोक नहीं लगाई जाती। अभागे हिन्दू हजार वर्ष की गुलामी के प्रभाव के कारण सब तरह का अन्याय सहन कर रहे हैं। **जो समाज अन्याय सहन करता जाता है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।**

मिशनरियों ने नागालैंड, मिजोरम व मेघालय के ६० प्रतिशत लोगों को ईसाई बना दिया है और उन्हें भारत से युद्ध करने के लिए विदेशी शस्त्र दिये जा रहे हैं। फलतः वर्षों से वे भारत से अलग होने की माँग कर रहे हैं, पर इसके विरोध में समाचार–पत्र नहीं बोलते। इस तरह यह नकली सेक्यूलरिज्म, हिन्दू, मुसलमान और देश तीनों के साथ धोखा कर रहा है। भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक अवनति का मूल एवं एकमात्र कारण यह विकृत धर्मनिरपेक्षता ही है।

हिन्दुओं की भावनाओं को ठोकर

इस तरह ५० वर्ष से इन सेक्युलरफासिस्ट नेताओं द्वारा धर्मनिरपेक्षता के नाम पर ८० करोड़ हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को इतनी ठोकरें मारी गयी हैं, उन्हें इतनी जबरदस्त मानसिक यातनाएँ दी जा रही हैं **कि हिन्दू जाति विश्व की सबसे अधिक सताई व शोषित जाति हो रही है। उसका ५० वर्ष में इतना नैतिक पतन हुआ है, जितना गुलामी के ६०० वर्षों में भी नहीं हुआ था।** इन सबके परिणामस्वरूप देश में भयंकर उथल–पुथल, भ्रष्टाचार और देश की सम्पत्ति की लूट मची हुई है। रुपये की कीमत ४ पैसा रह गई, महँगाई ५० गुनी बढ़ रही है। विदेशी कर्ज ४ लाख करोड़ हो गया है।

नकली धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप क्या है?

ऐसा लगता है कि आज सेक्यूलरिज्म (धर्मनिरपेक्षता) का अर्थ है सत्यद्रोह, धर्मद्रोह, मानवता द्रोह, गोमाता–द्रोह, राष्ट्रद्रोह और आत्मघात। ये राष्ट्र विरोधी कार्य पाखंडी धर्मनिरपेक्षता के अभिन्न अंग हैं, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि **सत्ता के भूखे सेक्यूलरवादी खेमे में अधिकतर जेल जाने योग्य भ्रष्टाचारी, अपराधी, देशविरोधी, आतंकवादी तथा घुसपैठियों के मित्र भरे हुए हैं।**

इस सब दुर्दशा का जिम्मेदार कौन है? निश्चित ही हिन्दू जनता है जो झूठे वायदे, झूठे नाटक व झूठे प्रचार से भ्रमित होकर, जेल जाने योग्य भ्रष्ट व नकली सेक्यूलर लोगों को ५० वर्ष से वोट देकर देश को बर्बाद कर रही है। वह हमेशा शान्ति की भीख माँगती रहती है तथा अपने चरित्रवान्, धर्मवान् सच्चे शुभचिन्तकों को साम्प्रदायिक कहकर उनसे दूर रहती है ऐसी जनता की बर्बादी कौन रोक सकता है। **क्या इस असत्य व अन्याय की नींव पर एक शक्तिशाली लोकतान्त्रिक व धर्मनिरपेक्ष भारत का निर्माण हो सकता है?**

इस बनावटी सेक्यूलरिज्म का जब भी कोई हिन्दू संघटन विरोध करता है, तब सेक्यूलर नेता और प्रेस साम्प्रदायिक कहकर उनका मुँह बन्द करने का प्रयत्न करते हैं। सर्वात्म पर चलने वाला हिन्दू धर्म सब धर्मों (मजहबों नहीं) का जनक है। हिन्दुत्व ही अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की गारन्टी है क्योंकि हिन्दुत्व ही राम और रहीम दोनों को एक मानता है। इसलिए हिन्दुत्व के अभाव में भारत में साम्प्रदायिकता, धार्मिक घृणा, असत्य, भ्रष्टाचार, अपराध और दुराचार बढ़ेगा। जब हिन्दू समाज इस विकृत सेक्यूलरिज्म (धर्मनिरपेक्षता) के देशद्रोही षड्यन्त्र के विरुद्ध कमर कसकर उठ खड़ा होगा, तभी विनाश से बच पायेगा अन्यथा उसके अस्तित्व पर आये दिन मँडराते संकट कभी समाप्त नहीं होंगे। ❐

– १४०१, प्लीजैण्ट पैलेस, १६ नारायण देभोलकर रोड, मुम्बई– ४००००६

मन्त्रिमण्डल कैसा हो ?

शुक्रनीति के प्रणेता ने यह सर्वथा उचित ही कहा है कि कोई भी मनुष्य छोटे से छोटा कार्य बिना सहायता के कठिनाई से कर पाता है। राज्य का अति महान् कार्य बिना सहायकों के संचालन करना अति दुष्कर है। वस्तुतः शासन का सुचारु संचालन उंचित परामर्श एवं मन्त्रणा के बिना सम्भव नहीं है। महाभारत के शान्तिपर्व में श्रेष्ठ मन्त्रणा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है--

- डॉ० नरेश चन्द्र त्रिपाठी

सचिवं यः प्रकुरुते न चैनमवमन्यते।
तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योत्स्ना ग्रहपतेरिव।।

– ११८/१५

जो राजा ऐसे योग्य पुरुष को मन्त्री बनाता है और उसका कभी अनादर नहीं करता, उसका राज्य चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान चारों ओर फैलता है। महाभारत में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है– 'मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्र विवर्द्धते' अर्थात् मन्त्रियों की मन्त्रणा ही राजा के राष्ट्र का आधार है। उसी पर राज्य की उन्नति निर्भर करती है।

महात्मा तुलसीदास ने भी कहा है कि राज्य की उन्नति निर्भीक एवं उचित परामर्श पर निर्भर है। भय एवं चाटुकारिता से युक्त मन्त्रणा राज्य को नष्ट कर देती है।

सचिव, बैद्य, गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास।

कहने का आशय यह है कि शासन सञ्चालन के लिए उचित मन्त्रणा का विशेष महत्त्व है। इसीलिए प्राचीनकाल से ही भारतीय चिन्तन में राज्य के एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में मन्त्रिपरिषद् को स्वीकार किया गया है। कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धान्त में 'अमात्य' को स्वामी के पश्चात् दूसरा स्थान दिया है। शुक्र ने जहाँ युवराज को राजा की वामभुजा कहा है, वहाँ मन्त्रियों के समूह को राजा की आँख और कान माना है। आज जब शासन का स्वरूप और प्रणाली काफी बदल चुकी है, तब भी एक अच्छे मन्त्रिमण्डल की प्राप्ति पर ही शासन की सफलता निर्भर है। लोकतान्त्रिक प्रणाली में वास्तविक सत्ता ही प्रधानमन्त्री तथा उसके मन्त्रिमण्डल पर निर्भर करती है। इसलिए मन्त्रियों का चयन पूर्ण सतर्कता एवं सोच–विचार के पश्चात् करना अत्यावश्यक है।

मन्त्रिमण्डल के गठन के समय प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसके आकार का है अर्थात् मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या कितनी हो ? प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मन्त्रियों की संख्या तीन से दस के बीच बतायी गयी है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रीराम भरत से प्रश्न करते हैं कि क्या तुम नीतिशास्त्र की आज्ञा के अनुसार चार या तीन मन्त्रियों के साथ सबको एकत्र करके अथवा सबसे अलग–अलग मिलकर सलाह करते हो ?

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेववा।
कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसे बुधः।।

– १००/७१

वैसे वाल्मीकि रामायण में ही राजा दशरथ के राज्य का जो वर्णन किया गया है, उसमें ८ मन्त्रियों का उल्लेख है।

अष्टौबभूववीरस्य तस्यामात्मा यशस्विनः।
शुचयाश्चानुक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः।।

– ७/२

(उनके (राजा दशरथ) मन्त्रिमण्डल में उपयुक्त गुणों से युक्त आठ मन्त्री थे। वे सभी आचार–विचार से शुद्ध एवं राज्य–कार्य में सन्नद्ध रहते थे। इसीलिए उनका यश फैला हुआ था।)

महाभारत में भी मन्त्रियों की आदर्श संख्या पाँच मानी गयी है। राजनीति शास्त्र के मनीषी कौटिल्य ने मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की है। उनका मानना है कि यह समय, परिस्थिति और आवश्यकता पर निर्भर होना चाहिए। उनके अनुसार राजा को किसी विषय पर तीन या चार मन्त्रियों से सलाह लेनी चाहिए। मनु और बृहस्पति ने मन्त्रियों की संख्या ८ से १२ के बीच रखना उचित माना है।

वर्तमान समय में संसदीय शासन प्रणाली है। इसलिए आठ या दस मन्त्रियों की संख्या उपयुक्त नहीं कही जा सकती; किन्तु इन प्रसंगों से यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि मन्त्रिमण्डल का आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए।

मन्त्रिमण्डल के गठन में सर्वाधिक विचारणीय विषय मन्त्रियों की योग्यता का है। इस सम्बन्ध में सभी प्राचीन

भारतीय चिन्तकों ने मन्त्रि–पद के लिए उच्चतम योग्यताएँ एवं उच्चस्तर निर्धारित किये हैं। वाल्मीकि रामायण, महाभारत में मन्त्रियों की योग्यताओं के सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है; किन्तु सभी ने वैयक्तिक गुणों की श्रेष्ठता, आचरण और राज्यनिष्ठा पर पर्याप्त बल दिया है। वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ के मन्त्रिमण्डलीय सहयोगियों के गुणों का वर्णन करते हुए रचनाकार कहता है–

एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्वि जस्त्तस्थ पौर्वकाः।
विद्याविनीता व्हीमन्तः कुशलानियतेन्द्रियाः।।
– ७/६

श्रीमन्तश्च महात्मानः शस्त्रज्ञा दृढ़विक्रमः।
कीर्तिमन्तः प्रणिहिता यथावचन कारिणः।।
– ७/७

तेजक्षमायशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिण।
क्रोधात् कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः।।
– ७/८

इन ब्रह्म ऋषियों के साथ राजा के पूर्व परम्परागत, ऋत्विज भी सदा मन्त्री का कार्य करते थे। वे सबके सब विद्वान् होने के कारण विनयशील, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय श्रीसम्पन्न, महात्मा, शस्त्र–विद्या के ज्ञाता, सुदृढ़, पराक्रमी, यशस्वी, समस्त राज कार्यों में सावधान, राजा की आज्ञानुसार कार्य करनेवाले, तेजस्वी क्षमाशील, कीर्त्तिवान् तथा मुस्कराकर बात करनेवाले थे। वे कभी काम, क्रोध या स्वार्थ के वशीभूत होकर झूठ नहीं बोलते थे।

महाभारत में भी ऐसे ही अनेक गुणों को आवश्यक बताया गया है। भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं–

कुलीनं शिक्षितं प्राज्ञं ज्ञानविज्ञान पारगम्।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं सहिष्णुं देशजं तथा।। ७/११८
कृतज्ञं बलवन्तं च क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम्।
अलुब्ध लब्धसन्तुष्टं स्वामिमित्रबुभूषकम्।। ८/११८
सचिवं देशकालज्ञं सप्तसंग्रहणे रतम्।
सततं युक्तमनसं हितैषिणमतन्द्रितम्।। ९/११८
युक्तचारं स्वविषये सन्धिविग्रहकोविदम्।
राजस्त्रिवर्गवेत्तारं पौरजानपदप्रियम्।। १०/११८
खातकव्यूहतत्त्वज्ञं बलहर्षणकोविदम्।
इंगिताकारतत्त्वज्ञं यात्राज्ञानविशारदम्।। ११/११८
हस्तिशिक्षासुतत्त्वज्ञमहंकारविवर्जितम्।
प्रगल्भं दक्षिणं दान्तं बलिनं युक्तकारिणम्।। १२/११८
चौक्षं चौक्षजनाकीर्णं सुमुखं सुखदर्शनम्।
नायकं नीतिकुशलं गुणचेष्टासमन्वितम्।। १३/११८
अस्तब्धं प्रश्रितं श्लक्ष्णं मृदुवादिनमेव च।
धीरं शूरं महर्द्धिं च देशकालोपपादकम्।। १४/११८

राजा उसी को मन्त्री बनाये जो कुलीन, सुशिक्षित, विद्वान्, ज्ञान–विज्ञान का ज्ञाता, सब शास्त्रों का तत्त्व जानने वाला, सहनशील, अपने देश में उत्पन्न, कृतज्ञ, बलवान्, क्षमाशील, मन का दमन करने वाला, जितेन्द्रिय निर्लोभ, जो मिले उसी से सन्तुष्ट रहनेवाला, स्वामी और उसके मित्र की उन्नति चाहनेवाला, देश एवं समय का ज्ञाता, आवश्यक वस्तुओं के संग्रह में तत्पर, जितेन्द्रिय, स्वामी का हितैषी, आलस्य रहित, अपने कार्य में गुप्तचर लगाये रखनेवाला, सन्धि और विग्रह के अवसर को समझनेवाला, नागरिकों का प्रिय, खाई और सुरंग खुदवाने तथा व्यूह निर्माणकला में कुशल, अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने में कुशल, शकल, सूरत और चेष्टा देखकर ही मन की बात समझ लेनेवाला, शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करने के अवसर की विशेष परख, हाथी की शिक्षा के यथार्थ तत्त्व को जानने वाला, अहंकार रहित, निर्भीक, उदार, संयमी, बलवान्, उचित कार्य करनेवाला, शुद्ध, शुद्ध पुरुषों से युक्त, प्रसन्न मुख, प्रियदर्शन, नेता, नीति कुशल, श्रेष्ठ गुण और उत्तम चेष्टाओं से युक्त, उद्दण्डता रहित विनयशील, स्नेही, मृदुभाषी, धीर, शूरवीर, महान्, ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा देशकाल के अनुसार कार्य करनेवाला हो।

इसी प्रकार अन्य अनेक प्रसंगों एवं प्रकरणों में महाभारत में मन्त्री पद के लिए अपेक्षित गुणों का वर्णन मिलता है। इन सामान्य गुणों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट गुणों पर बल दिया गया है, जो आज भी पूर्णतया प्रासंगिक हैं।

मन्त्रणा की गोपनीयता

मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में गोपनीयता का सिद्धान्त प्राचीनकाल से ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। आज भी विश्व के सभी शासनों में मन्त्रिमण्डल के सदस्य को गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम गोपनीयता की महत्ता प्रतिपादित करते हुए भरत जी से कहते हैं; रघुनन्दन ! (भरत) अच्छी मन्त्रणा ही राजाओं के विजय का मूल कारण है। वह तभी सफल होती है, जब नीति शास्त्र निपुण मन्त्री उसे सर्वथा गुप्त रखें।

मन्त्रोविजय मूलं हि राज्ञां भवति राघव।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदै।।
– १६/१०० अयोध्याकाण्ड

अयोध्याकाण्ड में जहाँ राजा दशरथ के आदर्श मन्त्रिमण्डल का वर्णन है, गोपनीयता का उल्लेख आता है। सप्तम सर्ग में महर्षि वाल्मीकि कहते हैं– उनके सभी मन्त्री मन्त्रणा को गुप्त रखते थे तथा राज्य के हित साधन

में संलग्न रहते थे। (तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहिते निविष्टे वृन्तौ अनुरक्तः कुशले समर्थैः।)

महाभारत में भी मन्त्रिमण्डलीय निर्णयों एवं विचार–विमर्श को गुप्त रखने पर बल दिया गया है।

मन्त्रगूढ़ा हि राज्यस्य मन्त्रिणो ये मनीषिणः।
मन्त्रसंहननो राजा मन्त्रांगानीतरे जनाः।।

– ८३/५०

(जो बुद्धिमान् मन्त्री हैं वे राज्य के गुप्त मन्त्र (रहस्य) को छिपाये रखते हैं, क्योंकि मन्त्रणा ही राजा का कवच है और मन्त्रिमण्डल के सदस्य मन्त्रणा के अंग हैं।)

कौटिल्य ने भी मन्त्रणा को गुप्त रखने को आवश्यक माना है। मन्त्रणा को गुप्त रखने के लिए उन्होंने मन्त्रणा स्थान को एकान्त और सुरक्षित रखने की बात कही है, जहाँ अनपेक्षित व्यक्ति क्या पक्षी भी न पहुँच सके।

अर्थ शुचिता, निष्पक्षता एवं पवित्रता

सभी प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने यह आवश्यक माना है कि मन्त्री तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन व्यक्ति का आचरण पवित्र, व्यवहार निष्पक्ष एवं कार्यशैली शुचितापूर्ण होनी चाहिए। आज सार्वजनिक जीवन में इन गुणों का क्षरण चिन्ताजनक है।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम भरत जी से राजकाज में शुचिता का पालन करने हेतु मन्त्रियों के विषय में प्रश्न करते हैं– "जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, पैतृक रूप से पवित्र कार्य करते आ रहे हों तथा जो स्वयं बाहर भीतर से पवित्र हों, ऐसे अमात्यों को उत्तम कार्य में नियुक्त करते हो न?"

वाल्मीकि रामायण के सप्तम सर्ग में भी राजा दशरथ के मन्त्रियों के विषय में उल्लेख आता है– वे (राजा दशरथ के मन्त्री) सभी व्यवहार कुशल थे, उनके सौहार्द की अनेक अवसरों पर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे अवसर आने पर पुत्र को भी दण्ड देने में नहीं हिचकते थे। अर्थात् वे भाई–भतीजावाद से परे व्यवहार करते थे। (७/१०/अयोध्याकाण्ड)

महाभारत में भी कहा गया है–

लुब्धेदोषाः सम्भवन्तीह सर्वे।
तस्माद् राजा न प्रगृहीतम् लुब्धम्।। १२०/१४८– शान्तिपर्व

(लोभी मनुष्य में सभी प्रकार के दोष प्रकट होते हैं, वह दूसरों के धन, भोग सामग्री और समृद्धि सबको प्राप्त करना चाहता है। अतः राजा ऐसे व्यक्ति को किसी महत्त्वपूर्ण पद पर न रखे।)

शासक के प्रति निष्ठा एवं लोकहित

प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने मन्त्रिपरिषद के सदस्यों के लिए यह आवश्यक माना है कि वे राजा (शासक) के प्रति निष्ठावान, अनुरक्त एवं प्रजा के हितचिन्तक हों। राजा के प्रति निष्ठा का सिद्धान्त आवश्यक माना गया था क्योंकि वह मन्त्रणा का अंग होता है, अतः अनिष्ठ व्यक्ति गुप्त रहस्यों को प्रकट कर शासक को क्षति पहुँचा सकता था।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम भरत से प्रश्न करते हैं– "क्या उत्तम कुल में उत्पन्न मन्त्री आदि समस्त प्रधान व्यक्ति तुमसे प्रेम रखते हैं, क्या वे तुम्हारे लिए एकचित्त होकर अपने प्राणों का त्याग करने के लिए उत्सुक रहते हैं?"

महभारत में मन्त्रियों के इस गुण का वर्णन करते हुए कहा गया है–

मन्त्रिष्यनुरक्तो तु विश्वासो नोपपद्यते।
तस्मादननुक्ताय नैव मन्त्र प्रकाशयेत्।। ३०/८३ शान्तिपर्व

(अर्थात् जिस मन्त्री का राजा के प्रति अनुराग न हो, उसका विश्वास करना उचित नहीं है। अतः अनुराग रहित व्यक्ति के समक्ष राजा अपने गुप्त विचार प्रकट न करे।)

इसी प्रकार राजा को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके मन्त्रियों में प्रजा का विश्वास बना रहे। प्रजा का हित चिन्तन मन्त्री का प्रमुख गुण होना चाहिए। इसी आशय का उल्लेख अयोध्याकाण्ड के श्लोक २७/१०० में मिलता है–

अर्थात् "भरत! तुम्हारे राज्य की प्रजा कठोर दण्ड से उद्विग्न होकर (उत्पीड़ित) तुम्हारे मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती? इसी प्रकार महाभारत में जहाँ मन्त्रियों के गुणों का उल्लेख है, मन्त्रियों को नगर और ग्रामवासियों का प्रिय (पौरजानपद प्रियम्) होना आवश्यक माना गया है।"

महाभारत और रामायण दोनों ग्रन्थों में मन्त्री, सेनापति एवं राजदूत के आवश्यक गुणों में उसे स्वदेशी मूल का होना आवश्यक माना गया है। शान्तिपर्व (८३/१९) में भीष्म पितामह कहते हैं– कुलीन, विश्वसनीय, स्वदेश में उत्पन्न, घूस न खाने वाला तथा व्यभिचार दोष से रहित, हर प्रकार परीक्षा ले ली गयी हो। ऐसे व्यक्ति को ही मन्त्री बनाना चाहिए। (८३/१९– शान्तिपर्व)

(शेष पृष्ठ ६७ पर)

तरह-तरह की रोटियाँ

– डॉ० शिवनन्दन कपूर

रोटी के भी क्या नक्शे हैं। विश्व–व्याप्त है, पर अनगढ़ हाथ उसे अलग–अलग देश के नक्शे का आकार दे देते हैं। रोटी क्रान्ति की प्रेरक रही। यह धर्म तथा संस्कृति से जुड़ी रही। इसीलिए रोटी के भी विभिन्न रूप रहे। रोटी–बेटी का सम्बन्ध इसकी पुष्टि करता है। दाँत– काटी रोटी मित्रता की, एकता की उदाहरण है।

रोटी के लिए मनुष्य देश के एक भाग से दूसरे भाग की यात्रा करता है। जिस देश में राणा प्रताप ने घास की रोटी खाईं, वहाँ आज भी कितने लोग आम की गुठलियों की रोटी खा रहे हैं। प्राचीन मिस्र में मजदूरों को वेतन नहीं, रोटियाँ ही दी जाती थीं। रोटी के लिए आदिवासी "लमसेना" घर–जमाई बनते हैं। दूसरी ओर इसके लिए बिहार में कितनी ही सेनाएँ बनती जा रही हैं।

रोटी तथा धर्म

देवता को मिष्ठान्न या फल ही नहीं अर्पित होते, रोटियाँ भी अर्पित की जाती हैं। मिस्रवासी देवताओं के नाम पर नील नदी में रोटियाँ चढ़ाते थे। भारत के गाँवों में ही नहीं, अनेक मन्दिरों में 'रोट' चढ़ते तथा प्रसाद रूप में बँटते हैं। विशेष अवसरों पर गुड़ मिला कर मीठे 'रोट' बनाकर गाँवों में आज भी पूजा होती है। रोटी न मिले, तो ऊपर वाला याद आने लगता है। कहा है, अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ"। अनेक सन्तों की समाधि पर भी 'रोट' चढ़ते हैं।

रोटी तथा क्रान्ति

सन् सत्तावन की क्रान्ति में रोटी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। क्रान्तिवीर रोटी तथा सांस्कृतिक प्रतीक कमल लेकर एक गाँव से दूसरे गाँव में जाते थे। वह जागरण का सन्देश था। कटिबद्धता का संकेत था। रोम के सम्राट् मानते थे, अगर जनता को खाने के लिए रोटी तथा देखने को सर्कस मिलता रहे, तो वह कभी सर–कश न होगी। वहाँ की संस्कृति में सर्कस मुख्य था। फ्रान्सीसी क्रान्ति के समय जनता ने रोटियों के लिए आवाज लगायी, तो शासक का उत्तर था, "रोटी न मिले, तो केक खा लो।" १७८६ में रोटियों के लिए वहाँ की महिलाओं ने ऐसी क्रान्ति की, ऐसा प्रदर्शन किया कि राजा पेरिस लौटने के लिए विवश हो गया। रोटी के लिए क्या नहीं हुआ? डॉ० रामजीत ने लिखा था–

चूल्हे जले नहीं, मगर रोटी के नाम पर।
चूल्हे की तरह रोज जलाये गये हैं लोग।।

श्री नजीर ने रोटियों की सर्व–व्यापकता का उल्लेख किया था–

"जितने हैं रूप सब ये दिखाती हैं रोटियाँ।
सौ–सौ तरह के नाच नचाती हैं रोटियाँ।।"

विकास

प्रस्तर युग की जौ तथा गेहूँ की रोटियाँ मिली हैं। आदिकाल में बाँज तथा बीच के फल से रोटियाँ बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। आज भी इराक में किसान जौ की चपटी रोटी तिल तथा प्याज से खाते हैं। रोटी एवं प्याज के सहारे ही शिवा जी के छापामार घुड़सवारों ने मुगल सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। मिस्र–वासी पहले पैरों से आटा–गूँधा करते थे। बाद में रोटी पत्थर से रगड़ कर बनने लगी।

नानबाई या शैतान

रोम में पहले पाकशालाओं पर मजिस्ट्रेट का नियन्त्रण रहता था। गुलाम तथा कैदी अनाज पीसते थे। उस जमाने में नानबाइयों या रोटी बनाने वालों की कोई प्रतिष्ठा न थी। बस, भारत में ही उन्हें सम्मान से 'महाराज' पुकारा जाता था। रोम के स्थानीय अधिकारी नान–बाइयों पर कड़ी दृष्टि रखते थे। शैतान के रूप माने जानेवाले वे नानबाई क्या पता आटे में कब क्या मिला दें? मिलावट पर कठोर दण्ड दिया जाता था। १७वीं शताब्दी तक उनसे दुर्व्यवहार ही किया जाता था। एक बार, रोटी के दाम बढ़ाने पर कुछ नान–बाइयों को फाँसी दे दी गयी थी। यदि किसी ने लोभवश रोटी का आकार छोटा कर दिया, उसे उसकी दूकान के आगे ही दरवाजे पर कील ठोंक कर खड़ा कर दिया जाता था। कील कान में ठोंकी जाती थी। अतः बैठ पाना तो दूर, हिलने पर भी कान में खिंचाव होने से वह दर्द से तड़पता था। अपराध होने पर कान खींचने का यह निराला ढंग था। आज भारत में बड़ा ग्रास खाना असभ्यता मानी जाती है। १८वीं सदी में अमेरिका में, छोटा कौर खाना गँवारपन समझा जाता था।

एक बार में कम से कम डेढ़ इंच मोटा टुकड़ा तो खाना ही चाहिए। देश तथा काल के अनुसार सभ्यता के रूप कैसे बदलते हैं।

अन्ध–विश्वास

रोटी से सम्बद्ध अनेक लोक–विश्वास विश्व में व्याप्त हैं। तवे से रोटी गिर गयी– निश्चय ही कोई मेहमान आनेवाला है। अपनी भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत तीन रोटियाँ एक साथ नहीं परोसी जातीं। तीन, दस, तेरह या सत्रह रोटियाँ देना अपशकुन माना जाता है। विदेशों में नयी 'ब्रेड' खाने से पैर भारी होने का विश्वास महिलाओं में रहा। रोटियाँ बासी भले हो जायें, पर उन्हें फेंका न जाता था। उसे दुर्भाग्य–सूचक माना जाता था। हो सकता है, यह विश्वास मँहगाई से उत्पन्न हुआ हो। अक्सर रोटी बीच में नहीं फूलती। इसका कारण यूरोपीय महिलाएँ रोटी में शैतान का प्रवेश मानती थीं। शैतान रोटी में न घुसे या घर में आ गया हो, तो निकल जाये, इसलिए यूरोप की महिलाएँ रोटी सेंकने के पूर्व क्रास का निशान बनाती थीं। रोटी चूल्हे से न फूले, तो शैतान ही उसका हेतु माना जाता था। यदि वह आँच से फूल गयी, तो समझा जाता था कि वह निकल भागा। उसे घर से बाहर ही रखने के लिए प्रायः रोटी के किनारे काट दिये जाते थे।

ईरान में नये साल के उत्सव नौरोज पर घर की मेज के ऊपर, एक शीशा, अण्डा तथा रोटी रखते थे। यह प्रथा अब भी है। स्काटलैण्ड में नये साल पर रोटी, मक्खन तथा चाय लेकर लोग मित्रों के घर जाते हैं। वैसे ही, जैसे हम दीपावली पर मिष्ठान्न लेकर जाया करते हैं। मिठाई मन में मिठास लाने का प्रतीक है। मीठा बोलिये (गोड गोड बोले)। विश्व की यह अद्भुत सांस्कृतिक एकता है। प्राचीन यूनान में अण्डाकार रोटी प्रेम की प्रतीक मानी जाती थी। वहाँ के अभिनेता रंगीन रोटी खाना शुभ मानते थे।

रोटी, प्रेम तथा विवाह

भारत में जब नव–वधू से प्रथम बार रोटी बनवाते हैं, तो उसे अनेक उपहार तथा 'नेग' दिये जाते हैं। रोटी पूर्ण भोजन की पाक–कला की प्रतीक है। वह नेग पाक–कला में निपुणता का पुरस्कार रहता है। हंगरी में कन्याएँ रोटी पकाकर पास के खेत में जाती हैं। मन चाहे मीत को रोटी खिलाती हैं। अगर मितवा को रोटी तथा रोटीवाली भा गयी, तो वह उसे मीठी रोटी का एक टुकड़ा खिलाती है। उसे प्रेम–नगर का पार–पत्र, सफलता का प्रमाण–पत्र समझिये। भारत में भी पहले किसान की घरैतिन रोटी एवं छाछ लेकर खेत पर जाती थी। रूस में लड़की वाले बारात लेकर वर के घर जाया करते हैं। समधी–समधिन उनका स्वागत ट्रे में नमक–रोटी रख कर करते हैं। खास मेहमानों को रोटी–नमक अपने हाथ से खिलाकर दोनों परिवारों की मंगल–कामना की जाती है।

'पाउ'–रोटी से डबल रोटी तक

आज पाउ–भाजी का महाराष्ट्र में विशेष चलन है। 'पाउ' पुर्तगाली शब्द था। अर्थ वही 'रोटी' है। लोग स्पष्टीकरण के लिए 'पाउ' के आगे रोटी भी लगाने लगे। कारण 'पाउ' या पाव यहाँ चौथाई के अर्थ में ग्रहण किया जाता था। यह पाउ रोटी जरा मोटी होती थी। फर्क करने के लिए तथा 'पाउ' को उसके आकार के उपयुक्त नाम न समझ कर किसी ने उसे डबल रोटी कहना प्रारम्भ किया और वही नाम चल पड़ा।

'नान' भी फारसी में रोटी का अर्थ लिये है। नानक ने भागो जमींदार की घी चुपड़ी रोटी ठुकराकर लाला की सूखी रोटियाँ खायीं। वैसे ही, जैसे कृष्ण ने दुर्योधन की चुपड़ी रोटियों की अपेक्षा विदुर के यहाँ सादे साग का भोजन किया। रोटी सादगी तथा संयम का प्रतिनिधित्व भी करती है। कबीर ने कहा था– **"देख पराई चूपड़ी मत ललचावै जीव।"**

रोटी, रोट तथा रोटा

देश–देश में लोग अपने स्वाद के अनुसार रोटी बनवाते तथा खाते हैं। बाबर जब भारत आया, उसे शिकायत रही, "यहाँ न अच्छे फल हैं, न बाजारों में अच्छा खाना और रोटी।" उसका दुर्भाग्य कहें। फलों का राजा आम यहीं का है। ईस्वी पूर्व दूसरी शती में यूनानी रोटी बनाने में माहिर थे। वे पनीर तथा अन्य पचासों प्रकार की रोटियाँ बनाते थे। आकार, ईंधन, अन्न, मिश्रण आदि के अनुसार भारत में भी पचासों प्रकार की रोटियाँ बनती रहीं। प्रायः पुरुष अच्छे पाचक हुआ करते थे। भीम खाने में ही नहीं, खाना बनाने में भी कुशल थे। राजा नल बिना अग्नि, सम्भवतः सूर्य–ताप से सुस्वादु भोजन बना लेते थे। प्राचीन तीर्थ–यात्री गर्म जल के स्रोतों में आटा डाल कर पका लेते थे।

कुछ चूल्हे की रोटी पसन्द करते हैं। पंजाब के लोग तन्दूर की रोटी खाना चाहेंगे। गाँवों में उपले पर 'बाटी' सेंकते हैं। उसे 'अंगाकड़ी', 'भौरी' तथा 'लिट्टी' भी कहते हैं। इसका आटा भी कड़ा माड़ा जाता है। कण्डे भी

बिनौआ' होते हैं। मालवा में "डग-डग रोटी, पग-पग नीर' कहा गया है। यहाँ 'बाफले' का चलन है। इसे पानी में उबाल कर तब सेंकते हैं। इससे कचाई नहीं रह जाती (जनक कचाई देत दुख)। 'रोट' विशेषकर देवार्पण के लिए होता है। निमाड़ में ज्वार-बाजरे की मोटी रोटी को 'रोटा' कहा जाता है।

रोटी चकले पर बेल कर भी बनती है। गदेलियों में दबाकर भी बनायी जाती है। उसे लोग "ताता थैया" कहते हैं। हथेलियों पर पानी का पुचारा लगाइये तथा उंगलियों से नर्म-नर्म दबाते जाइये। लीजिये 'पनपथी' बन गयी। वेदान्ती या बिना दाँत वाले, दाल में पका 'दल फरा' या 'दाल का दूल्हा' पसन्द करते हैं। इसमें दाल में ही नन्ही लोइयाँ दंबाकर पका दी जाती हैं। वैसे कमजोर दाँत वालों के लिए जरा गीला आटा तवे पर फैला कर 'चीला' भी बनाते हैं। मूँग के आटे का हो, तो और भी स्वादिष्ट। आन्ध्र में इसे 'अट्टु' कहते हैं। हरियाणा की 'छाक' तथा पर्वतीय क्षेत्र की 'पस्तुड़या' भी अपनी पसन्द है।

प्राचीन काल में रोटी का पुरातन रूप 'अपूप' था। यही थोड़ा बदल कर 'पूआ' बन गया। क्लश-अपूप' घड़े में थोड़ा पानी डालकर, उस पर सरकण्डे रखकर, भाप में पकाते थे। "भ्राष्ट अपूप" को आजकल 'खोरिया' कहते हैं। इसमें आटे की लोई खाँचे में रख कर भाड़ में भूनते थे। 'पुरोडाश' जौ के आटे का बनता था। कुछ लोग उसे ही रोटी का लकड़दादा मानते हैं।

समय-समय पर परिवर्त्तन के साथ सांस्कृतिक परिवर्तन में रोटी के रूप में भी बदलाव आया। मुस्लिम काल में 'काक' छोटी रोटी होती थी। नाज़ुक फूल जैसे 'फुलके' सभी की पसन्द थे। पन्द्रह प्रतिशत घी वाली 'रोगनी' रोटी गन्दुमी याने गेहूँ की बनती थी। वह महज दौलतमन्दों के दस्तानखान की रौनक-अफंजाई करती थी। रईसों के लिए बढ़िया "बाकर-खानी" थी। अण्डों से बनी रोटी "खागीना" कहलाती थी। गोश्त के प्याले पर उसे गरम रखने के लिए रखी जानेवाली रोटी को "पुरतारी" का नाम दिया गया था। 'शीरमाल' मैदे की खमीरी रोटी थी। इनके अलावा 'ताफतान', 'गावदीदा', 'गाजेबान', 'खमीरी', वगैरह तमाम किस्में थीं। 'नाले जबी' जौ की रोटी थी। शीरमाल में दही भी डालते थे। 'रूमाली' रोटी और बड़ी होती थी। इसके बनाने का कमाल अनोखा था।

भारत में टिक्कड़, मलीदा, उलटा, पिठारा, दुग्ध-पिट्टक, ठेकुआ, राधावल्लभी (दलभरी), दोहत्थी का प्रचलन है। तले जाने पर यह पूड़ी बन जाती है। सोहारी पूरी से बड़ी तथा दूध में घुली रहती थीं। लोचदार, मोयन वाली लुचुई आकार में उससे बड़ी रहती थी। राजस्थानी 'तुनकी' पापड़ से भी महीन तथा नाजुक होती है।

अन्न तथा भराव से भेद

राजस्थानी तो बाजरे की 'वाट' पसन्द करते ही हैं, महाराष्ट्र में भी 'भाखरी' ज्वार-बाजरा या मक्का की बनती है। वहाँ सस्ते 'भाखर' की घोषणा ने सरकार बदल दी थी। गुजराती 'पूरण-पोली' का घी से आनन्द महाराष्ट्र से बाहर भी लिया जाता है। बेसन की 'बेसनी' या गेहूँ-चने के मिश्रण वाली 'मिस्सी' (मिस्सी) पहले बारातों में भी चलती थी। मिर्जा गालिब चने की रोटी के शैदाई थे। शाहजहाँ को भी वह पसन्द थी। जौ, चना, मटर वगैरह के मेल से बनी रोटी 'बिर्रा' या 'जोकेराई' कहलाती है। गेहूँ तथा जौ के मेल की रोटी को 'गोजई' कहते हैं। गेहूँ में मटर के आटे के मेल से 'बेझर' बनाते थे। 'बिर्रा' एवं 'बेझर' रंग में सुनहली होती थी। उड़द, गेहूँ, मूँग अथवा सात अनाजों के मेल से 'मिश्रान्न' बनता था। मूँग, उड़द आदि के चून से बनी 'चूनी' या चून की रोटियों का स्वाद अलग है। टमाटर, गाजर, पालक आदि का रस निकाल कर तिरंगी रोटी-पूड़ी बनायी जाती है। 'भरवाँ रोटी' में आलू, मूली, बथुआ आदि का भराव करते हैं।

'अछूती' रोटी

पुराने समय में यात्रा करने वाले, छुआछूत के नाम पर 'अछूती' रोटी बनाकर ले जाते थे। वस्तुतः इस प्रकार की रोटी प्रदूषित वातावरण में शीघ्र विकृत नहीं होने पाती थी। इसे इसी रूप से ग्रहण करना चाहिए। इसके लिए दक्षिण भारत के लोग केले के गाभ के रस में आटा मलते थे। यदि केले के तने का रस न मिला, तो दूध अथवा मूली के रस में आटा मल कर तैयार कर लेते थे। वह भी न प्राप्त हो, तो बैंगन, तोरई, लौकी, आदि उबालकर उसमें आटा गूँथ कर भी 'अछूती' बनाते थे। इससे सब्जी की जरूरत भी पूरी हो जाती थी। उपवास में मखाने, सिंघाड़े, रामदाना (राजगिरा), कूटू मगर आदि की रोटी बना ली जाती हैं। अब कच्चे केले का भी आटा बना लिया गया है। यह पौष्टिक भी है।

उत्तर हो या दक्षिण, रोटी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। कहा गया है 'बिस्कुट से है मुलायम, पूरी हो या चपाती' रोटियों का चमत्कार यह है कि शहडोल (मध्य प्रदेश) के श्री जमुना प्रसाद मात्र रोटी को मन्त्र-युक्त कर उससे ही हर प्रकार का उपचार करते हैं। □

— विट्ठलनगर, खण्डवा (म०प्र०)

(पृष्ठ ३८ का शेष)

लोकतंत्र के तीन पाद...

के प्रधान न्यायाधीश पद का प्रत्याशी होगा। इस विषय में तुरन्त संशोधन जरूरी है। फ्रान्स से आज हमारे सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं। मान लीजिये, वहाँ का कोई व्यक्ति भारत का नागरिक बन भारत–प्रेम के विषय में जनता को प्रभावित कर प्रधानमन्त्री बन गया और कल उससे हमारे सम्बन्ध बिगड़कर युद्ध की नौबत आ गयी या किसी ऐसे राष्ट्र के विरुद्ध भारत का युद्ध छिड़ गया, जो उसका सहयोगी है, तो क्या उसके मन में अपने राष्ट्र की भक्ति की उमंगें जोर नहीं मारेंगी और हमें हर समय अपने सामरिक रहस्यों और राष्ट्र नीति के गोपनीय तथ्यों को शत्रु के हाथ पड़ जाने का भय नहीं बना रहेगा। क्वात्रोची प्रकरण तो अभी ताजा ही है।

लोकतन्त्र की सुरक्षा के हित में देश की न्याय प्रक्रिया में सुधार तात्कालिक आवश्यकता है। "चाहे अपराधी भले ही बच जाय; किन्तु निरपराध दण्डित न हो" यह सिद्धान्त औचित्यपरक तो है; किन्तु भारत की वर्तमान परिस्थिति के कहाँ तक अनुकूल है? अपराधी जमानत लेकर खुले घूमते रहते हैं और उलटे पीड़ित को ही संत्रासित करते घूमते हैं। मामलों का फैसला पचास साल तक नहीं होता और होता है तो धनी, ताकतवर के पक्ष में। इससे वकीलों का ही लाभ होता है। आज तो हर छोटी–बड़ी अदालत में वकीलों की फौज ही खड़ी हो गयी है। जनता का विश्वास न्याय–व्यवस्था के केन्द्रों–खासकर छोटी अदालतों से उठ रहा है। जरूरत है दण्ड–व्यवस्था, ईरान या पुराने नेपाल के समान नहीं, तो भी भयोत्पादक हो। दण्ड के प्रति भय न रहने से जनता सुरक्षित नहीं रह सकती। राजकीय या सार्वजनिक सम्पत्ति को हड़पने, रिश्वत लेने, भ्रष्टाचार, बलात्कार, खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण और अप्रामाणिक समाचारों और किसी की छवि को धूमिल करनेवाले लेखों के दण्ड को कठोर बनाने की जरूरत है।

कमजोर, निर्धन और दलित वर्ग को जातीय आधार पर नहीं; किन्तु परिवार की स्थिति के अनुसार विकास के विशिष्ट साधन, शिक्षा सुविधा, आर्थिक सहायता, प्रोत्साहन, राजकीय सेवाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण एवं विशिष्ट शिक्षा केन्द्रों की व्यवस्था जरूरी है; क्योंकि बिना बौद्धिक विकास और राष्ट्रीय चेतना के स्वस्थ लोकतन्त्र की कल्पना नहीं की जा सकती; किन्तु शिक्षा संस्थाओं में (मेडिकल, इन्जि. और विज्ञान–प्रौद्योगिकी) नियम शैथिल्य यथा, अंक प्रतिशत के विषय में ढील हानिकारक होगी। शासकीय या अन्य सेवाओं में या अन्यत्र जहाँ कही भी आरक्षण की व्यवस्था हो, उसे तुरन्त बन्द करना होगा। यह इन वर्गों के हित में है। आरक्षण तो पिछड़े वर्गों को अपाहिज बनाने में ही सहायक सिद्ध हो रहा है।

संविधान सद्भावनापूर्वक जनकल्याण को ही दृष्टि में रखकर बनाये जाते हैं। उनकी अच्छाई–बुराई उसे व्यवहार में लानेवालों पर निर्भर होती है। अतः राज्यों और केन्द्र में सत्ता के प्रमुख जनता की श्रद्धा के भाजन बने रहें, यह जरूरी है। इसके लिए केन्द्र में राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री, राज्यों में राज्यपाल और मुख्यमन्त्री का जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुना हुआ होना श्रेयस्कर है। न केवल केन्द्र और राज्यों में, अपितु नगरीय निकायों में भी नगराध्यक्ष और नगर–प्रशासक सीधे जनमत संग्रह द्वारा चुने जाने चाहिए और ये चुनाव एक साथ प्रति चार या पाँच वर्ष बाद होने चाहिए और एक बार चुने जाने पर उन्हें पूरी अवधि तक काम करने का अधिकार मिलना चाहिए। सदस्यों का चुनाव यथावत् रहे, केवल यह आवश्यक होगा कि विध्वंसक प्रकृति के ऐसे व्यक्ति न चुने जा सकें, जो अपनी कार्य–सीमा के अनुकूल शैक्षिक प्रबुद्धता न रखते हों। फिर भी रहेगा तो सब कुछ सम्पूर्ण राष्ट्र के नैतिक स्तर के ही अनुकूल।

लोकतन्त्र की सुरक्षा के लिए आन्तरिक शान्ति पहली शर्त है। सरदार पटेल ने कहा था-- हमारे प्रधानमन्त्री का सम्मान विदेशों में इसलिए होता है कि देश के भीतर पूरी शान्ति है। इस शान्ति के विधाता सरदार स्वयं थे। सौभाग्य से आज भी देश के पास वैसा ही नेतृ–युग्म है। देश की प्रतिरक्षा के लिए शक्तिशाली सैन्यबल आवश्यक है। राष्ट्र के शरीर में लगे हुए दो गहरे व्रणों में यदि प्रथम का कारण तत्कालीन प्रधानमन्त्री का अतिशय आदर्शवाद और संयुक्त राष्ट्र संघ की निष्पक्षता पर विश्वास, तो दूसरे का कारण समाजवाद पर आस्था और सेना की उपेक्षा रहा है।

प्राचीन काल में सामान्य राजा वाला देश राजवान्, किन्तु उत्तम राजा और श्रेष्ठ प्रशासन वाला फलता–फूलता सुखी देश राजन्वान् कहलाता था। आइये, हम सब मिलकर इस राजवान् हिन्दुस्तान (या इण्डिया) को राजन्वान् भारतवर्ष बनायें। ❐

– ई–२/७३, महावीर नगर, भोपाल–४६२०१६

बालवाटिका

रहें एकजुट बन फौलादी

— रामवचन सिंह आनन्द

लोभ दिखाते
औं बहकाते
शान्ति—कुञ्ज में
आग लगाते
वैरी बड़े पृथकतावादी।

कर मनमानी
कर शैतानी
खून बहाते
जैसे पानी
गन—गोले के हैं ये आदी।

बड़े लबाड़ी
बड़े कबाड़ी
नित विकास की
रोकें गाड़ी
हैं आतंकी और फसादी।

साहस लायें
हम भिड़ जायें
जड़ से इनका
नाम मिटायें
जितनी हो इनकी आबादी।

संगी संगी
जंगी जंगी
लोहा ले जो
मारे लंगी
रहें एकजुट बन फौलादी।

— थाना रोड, चक्रधरपुर—८३३१०२

गीजी

○ साहू

अमूल्य निधि

आम सभा में एक नेता जी ने एक मनचले श्रोता से प्रश्न किया— बताओ इन ऐतिहासिक इमारतों में देश की अमूल्य निधि कौन है, ताजमहल, लाल किला या इण्डिया गेट?

श्रोता ने भौंहे घुमाकर रुँधे गले से कहा— 'जी आपका पेट।'

कथा

स्थान का प्रभाव

- गोस्वामी राम बालक

श्रवण कुमार अपने अच्छे और बूढ़े माता–पिता को तीर्थ–यात्रा के लिए काँवर में लेकर जा रहे थे। जाते–जाते रास्ते में एक जगह उनका विचार एकाएक बदल गया।

अपने वृद्ध और अन्धे माता–पिता के काँवर को एक वृक्ष के नीचे पटक कर श्रवण कुमार ने कहा– "ओह! मैं अब आप लोगों को और आगे नहीं ले जाऊँगा। मैं अपने घर जाता हूँ। आप लोग अब यहीं पर रहिये।"

उनके माता–पिता ने प्रकंपित स्वर में पूछा– "ऐसा क्यों श्रवण? क्या हुआ तुमको?"

श्रवण कुमार ने रूखे स्वर से जवाब दिया– "कुछ नहीं। बस यों ही। मैं अब और आगे नहीं ले जा सकता हूँ।"

उनकी माता ने रोते हुए विनती की– "कोई बात नहीं बेटे। जैसी तुम्हारी इच्छा।..."

बीच में उनके पिताजी बोल उठे...

"तो अब तुम हम दोनों को भी अपने घर लौटा कर ले चलो।"

श्रवण कुमार ने मुँह फेरकर कहा– "नहीं–नहीं। अब मुझे आप दोनों का भार उठाना नहीं है।"

हताश होकर उनके अन्धे माता–पिता भगवान् का नाम ले–ले कर रोने लगे। वे ईश्वर से प्रार्थना करने लगे– "हे प्रभु! हम लोगों का अब क्या होगा? हम निःसहायों की सहायता कीजिये भगवन्!"

उसी समय वहाँ पर एक महात्माजी आ पहुँचे। वह कहीं जा रहे थे। ऐसे निर्जन एकान्त वन में अन्धे–अन्धी को रोते देखकर वह वहाँ रुक गये। बात समझने के लिए उन्होंने श्रवण कुमार से पूछा– "बच्चा! इन दोनों से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?"

श्रवण कुमार ने दो टूक जवाब दिया– "ये मेरे माता–पिता हैं।"

"फिर इन दोनों वृद्धों को तुम कहाँ ले जा रहे हो?" महात्मा जी पूछा।

श्रवण कुमार ने रुखे स्वर से उत्तर दिया– "लाया तो था मैं इनको तीर्थयात्रा के लिए, पर..."

बीच में ही बात काटकर महात्माजी ने साश्चर्य पूछा– "फिर क्या हुआ?"

"इन दोनां का भार अब मुझसे वहन नहीं होता है। इसलिए इनको यहीं पर छोड़कर मैं अपने घर जा रहा हूँ।"

वह महात्मा दिव्यदर्शी थे। उन्होंने मन–ही–मन सोचा कि जो अपने अन्धे और बूढ़े माता–पिता को अपने घर से कन्धे पर रखकर तीर्थयात्रा जैसे पवित्र कार्य के लिए ले जायेगा, तो वह धर्मात्मा इस निर्जन वन में इन निःसहायों को छोड़कर आखिर अपने घर भागने पर क्यों तुला है? ध्यान लगाने से उनको सब कुछ स्पष्ट हो गया।

दरअसल वहाँ पर किसी प्रेत का वास था। उस प्रेत के हिंसक और दूषित पाप के कारण वह पूरा स्थान अपवित्र हो गया था। उस प्रेत के निवास–स्थान की सीमा में पैर रखते ही पितृ भक्त श्रवण कुमार के विचार में सहसा परिवर्त्तन आ गया। उसकी मति भ्रष्ट हो गयी। वह पाप वृत्ति से पूर्णतः आविष्ट हो गया। देखते–देखते उसका आचरण भी अपवित्र हो गया। किसी स्थान विशेष की शुद्धता और अशुद्धता का प्रभाव भी वहाँ के निवासियों पर पड़ता है।

वस्तुस्थिति से अवगत होने पर उस महात्मा ने श्रवण कुमार से साग्रह कहा– "बच्चा! मेरी बात मानो। तुम अपने इन अन्धे माता–पिता को इस निर्जन वन में कृपया छोड़कर न जाओ। कम–से–कम तुम इन निःसहायों को मेरे निकटवर्त्ती कुटिया पर पहुँचा दो। फिर वहाँ से तुमको जहाँ जाना हो चले जाना।"

श्रवण कुमार ने उसकी बात मानकर पूछा– "अच्छा, बताइये। आपकी कुटिया यहाँ से किधर और कितनी दूर है?"

महात्मा जी ने विनम्र स्वर में कहा– "घबराओ

नहीं। बहुत ही नजदीक है। इसी रास्ते पर सामने की ओर है। चलो। रास्ते में मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगा।"

श्रवण कुमार ने सोचा कि जब इतनी दूर तक ते ही आया हूँ तो कुछ दूर और सही।

रास्ते में श्रवण कुमार के माता–पिता अपने पुत्र की ऐसी कुबुद्धि पर आँसू बहा रहे थे। उनसे कुछ बोला नहीं जाता था। उनके प्राण नहों में समा रहे थे। उनकी आँखों से झड़–झड़ आँसू बहते थे।

अभी कुछ ही दूर जा सके थे कि श्रवण कुमार की आँखें खुलीं। उनकी बुद्धि बदल गयी। वह एक अदृश्य पाप के भय से काँप उठा।

उस जगह के प्रेत के पाप से आवेशित दुर्भावना समाप्त हो गयी थी। अब वह सन्त–महात्मा के पवित्र स्थान की परिसीमा में प्रवेश कर रहे थे।

अपने माता–पिता और उस महात्मा के श्रीचरणों में नत मस्तक होकर श्रवण कुमार ने बारम्बार क्षमा प्रार्थना की।

"महात्मन्! आज आप न होते तो मुझसे महापाप हो जाता। इतने दिनों के मेरे धर्म–कर्म को नष्ट–भ्रष्ट होने से आपने बचाया। हाय! आज मुझे यह क्या हो गया था?"

तब महात्मा जी ने श्रवण कुमार को समझाया– "बच्चा! श्रवण!! सुनो। इसमें तुम्हारा अपराध कुछ नहीं है। वस्तुतः उस अपवित्र स्थान के प्रभाव से ही तुम्हारी मति मारी गयी थी। जिस प्रकार अपवित्र अन्न, जल आदि त्याज्य होता है, उसी प्रकार याद रखो, अपवित्र स्थान से भी सदा बचना चाहिए।" □

– ज्ञानकुंज, दूधपूरा, समस्तीपुर–८४८१०१ (बिहार)

तितली

– सन्त कुमार वाजपेयी 'सन्त'

फूलों पर इठलाती तितली।
सबके मन को भाती तितली।।
लाल, गुलाबी, नीली, पीली।
कभी बैंगनी, भूरी, काली।
सुमन–सुमन का रस ले लेकर,
झूम रही कैसी मतवाली।।
उद्यम करते रहो हमेशा,
सुन्दर पाठ पढ़ाती तितली।
सबके मन को भाती तितली।।१।।

आगे आगे तितली भागे,
पीछे दौड़ रहे हैं बच्चे।
लेकिन पकड़ न पाते, हैं जो
अभी दौड़ में बिलकुल कच्चे।।
लगता कभी पकड़ में आयी
और तभी उड़ जाती तितली।
सबके मन को भाती तितली।।२।।

यह नन्हाँ प्राणी कोमल तन
इसको कभी न हाथ लगाओ।
यह अपने मन की रानी है
इसे पकड़ मत दुखी बनाओ।।
आती–जाती मौज मनाती
बच्चो! खेल खिलाती तितली!
सबके मन को भाती तितली।।३।।

– भारत भूषण कालोनी, गोला गोकर्णनाथ, खीरी (उ०प्र०)

मैं शुद्ध बनिया हूँ

गांधीजी को फिजूलखर्ची से बड़ी चिढ़ थी। वे अपने लेखों को छोटे–छोटे कागजों पर लिखते थे। जब गांधीजी अंग्रेजों व कांग्रेस के समझौते पर कांग्रेस के विशेष प्रतिनिधि बनकर गोलमेज कांफ्रेंस (इंग्लैण्ड) जा रहे थे तब उनके एक भक्त ने उन्हें कीमती शाल भेंट किया। उन्होंने उसे अपने पास नहीं रखा, बल्कि उसे बेचकर सात हजार रुपये हरिजन कोष में जमा कर दिये। गांधीजी चन्दे से प्राप्त धन का एक–एक पैसे का हिसाब रखते थे। वे प्रायः रेल के तीसरे दर्जे में ही यात्रा करते थे, क्योंकि भारत गरीब देश है। गरीब जनता तीसरे दर्जे में ही यात्रा कर सकती है। वे अपने को गरीब जनता का प्रतिनिधि मानते थे, उनकी पत्नी गहने नहीं पहनती थीं। उन्होंने अपने लड़कों को खर्चीले विद्यालय में नहीं पढ़ाया, वे सिर्फ खादी के वस्त्र ही पहनते थे। गांधीजी कभी–कभी हँसी में कहते थे–'मैं शुद्ध बनिया हूँ', इसलिए एक–एक पैसा बचाता हूँ। □

– महात्मा गांधी

बाल कथा

भय का भूत

— अशोक वशिष्ठ

राजस्थान के बाडमेर जिले में स्थित चौहटन कस्बे में राजू कक्षा सातवीं का छात्र था। छात्रावास में रहते उसे कई वर्ष बीत गये थे। उसका गाँव स्कूल से कई–सौ किलोमीटर दूर था। राजू सुबह स्कूल जा रहा था। डाकिया मिला। उसने कहा– 'राजू तुम्हारा तार है, क्या तार– तुम्हारे पिताजी ने भेजा है। माँ की हालत गम्भीर है। 'जल्दी चले आओ', वह सुनकर घबरा गया।

अब उसे घर जाने की चिन्ता सताने लगी। वह सहमा–सा प्राध्यापक जी के कमरे में पहुँचा। क्या बात है राजू– प्राध्यापक महोदय ने कहा। मेरी माँ की तबियत खराब है– "मैं घर जाना चाहता हूँ।" प्राध्यापक बहुत भले आदमी थे। घंबराओ नहीं तुम घर जा सकते हो।

उसे झट से थैला उठाया और चल पड़ा गाँव की ओर। जैसे ही बस–स्टाप पर पहुँचा पहली गाड़ी निकल चुकी थी।

उसने ताँगे वाले से आवाज लगायी।

"रेलवे स्टेशन चलोगे ?"– राजू ने कहा–

"हाँ साहब" लेकिन जल्दी चलो ! जैसे ही राजू स्टेशन पहुँचा। उद्‌घोषणा हुई कि अमुक गाड़ी तीन घण्टे देरी से आ रही है।

ठीक दो बजे गाड़ी अपने निर्धारित प्लेटफार्म पर पहुँची। राजू ने अब राहत की साँस ली। इधर–उधर झाँकने के बाद उसे थोड़ी–सी जगह मिली। छह बजे गाड़ी झाँसी स्टेशन पर रुकी।

साँझ हो चुकी थी। पक्षियों की चहचहाहट दूर तक सुनायी पड़ रही थी। राजू ने सोचा कि आसपास के गाँव के कुछ लोग जरूर शहर आये होंगे। स्टेशन से बल्लर गाँव ठीक सात किलोमीटर था। लेकिन उसे गाँव का कोई आदमी नहीं मिला।

एक ओर उसे डर लग रहा था दूसरी ओर माँ से मिलने की बैचेनी। रात हो चुकी थी। अब राजू गाँव की ओर तेजी से चल पड़ा। उसके पाँव कहीं के कहीं टिक रहे थे। वह जल्दी से जल्दी घर पहुँचना चाहता था। कभी–कभार किसी पक्षी की आवाज से रात की खामोशी टूट जाती थी।

रास्ते के दोनों ओर खेतों में पानी भरा था। मेढ़कों की टर्र–टर्र की आवाज उसे बार–बार परेशान कर रही थी। उसने अपनी चाल तेज कर दी।

थोड़ी दूर चला था। रास्ते में सूखे पत्ते गिरे पड़े थे। राजू को ऐसा लगा मानो कोई उसका पीछा कर रहा है। उसकी पीछे देखने की हिम्मत नहीं हुई। उसने अपने दादा–दादी से प्रेतात्मा के किस्से सुने हुए थे। साहस करके उसने पीछे देखा लेकिन कुछ नहीं था ? उसने सोचा– शायद उसका भ्रम है। वह तेजी से आगे बढ़ा।

रास्ते में पीपल का बहुत बड़ा पेड़ था। उसकी डालियाँ दूर–दूर तक फैली हुई थीं। उसने सुना था कि प्रेतात्मा इस पेड़ पर रहती हैं और आने–जाने वालों को परेशान करती है। अचानक एक अजीबोगरीब आवाज से राजू डर गया। उसे लगा उसके ऊपर कुछ गिरा है। सहमा हुआ– "प्रेतात्मा देखने का प्रयत्न करने लगा। उसने अपनी जेब से टार्च निकाली और उसकी रोशनी पेड़ की चोटी पर डाली। उसे कुछ दिखायी नहीं दिया।"

थोड़ी देर खड़ा रहा फिर उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा कि दो पक्षी फल खाकर नीचे जमीन पर डाल रहे हैं। उसे हँसी आ गयी। अब बिना डरे वह घर की ओर चल दिया।

राजू ने घर पहुँचते ही अपने पिताजी को सारी घटना बतायी। "सबसे बड़ा मन का भय होता है" पिताजी ने कहा। मनुष्य भूतों से नहीं भय से मारा जाता है। राजू के मन से भय का भूत निकल गया था। □

– मकान नं० ५४७, पूठकलां,
दिल्ली–११००४१

कथा

और सर्प बच गये

— डॉ० परशुराम शुक्ल

महाराज परीक्षित की मृत्यु के बाद उनके पुत्र जनमेजय राजगद्दी पर बैठे। जनमेजय बड़े बुद्धिमान, पराक्रमी तथा धार्मिक विचारों के राजा थे, किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके पिता की मृत्यु तक्षक नाम के नाग के काटने से हुई है तो वह क्रोध से भर उठे और उन्होंने विश्व के सभी सर्पों को भस्म करने के सर्प यज्ञ का निश्चय किया।

महाराज जनमेजय के राज्य में एक से बढ़कर एक प्रकाण्ड पण्डित और मन्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण थे, अतः शीघ्र ही एक विशाल हवन कुण्ड का निर्माण कर सर्पयज्ञ आरम्भ कर दिया गया।

यज्ञकुण्ड के चारों ओर काले कपड़े पहने ब्राह्मण जैसे ही मन्त्र पढ़कर आहुति देते, एक विचित्र प्रकाश होता और सैकड़ों की संख्या में चीखते–चिल्लाते विकराल सर्प हवन कुण्ड में जीवित आ गिरते। मन्त्रों के प्रभाव से छोटे–बड़े, युवा–वृद्ध, विषधर एवं विषहीन; सभी प्रकार के सर्प हवन कुण्ड में गिर रहे थे।

आकाश में दूर–दूर तक सर्पों की चीखें गूँज रही थीं और सम्पूर्ण वातावरण उनके जलने से दुर्गन्धमय हो रहा था।

जनमेजय के सर्पयज्ञ का समाचार जब तक्षक को मिला तो वह भय से सिहर उठा और भगवान इन्द्र के पास जाकर उनसे प्राण रक्षा की प्रार्थना की। भगवान् इन्द्र प्रसन्न हो गये और उन्होंने तक्षक को अभयदान दे दिया एवं अपने पास ही रहने की अनुमति दे दी।

नागराज वासुकि को इस अनहोनी के विषय में पहले से ही मालूम था, इसीलिए उन्होंने अपनी बहन का विवाह काफी समय पूर्व जरत्कारु ऋषि से कर दिया था। जरत्कारु का बेटा आस्तीक अपने पिता के समान अत्यन्त विनम्र, तेजस्वी और मन्त्रों का ज्ञाता था।

सर्प यज्ञ का प्रभाव नागराज वासुकि पर भी पड़ने लगा। उनके साथ हजारों सर्प भी अपनी रक्षा के लिए फड़फड़ा रहे थे।

नागराज वासुकि से जब सर्पों की पीड़ा देखी नहीं गयी तो उन्होंने अपनी बहन को बुलाया और कहा– "बहन ! अब तुम्हारा पुत्र आस्तीक ही हमारे कुल की रक्षा कर सकता है। हमें बचा लो। इसी दिन के लिए हमने जरत्कारु से तुम्हारा विवाह किया था।"

आस्तीक निकट खड़ा बड़े धैर्य से सब सुन रहा था।

"बहन ! जल्दी करो ! मेरा अंग–अंग जल रहा है। कोई रास्ता दिखायी नहीं देता। अब तो लगता है कि मन्त्र शक्ति से विवश होकर मैं भी धधकते अग्नि कुण्ड में पहुँच जाऊँगा।" नागराज वासुकि पीड़ा से छटपटाते हुए बोले।

"मामाश्री ! आप थोड़ा धैर्य रखें। मैं आपकी और सभी सर्पों की रक्षा का वचन देता हूँ।" बालक आस्तीक ने विनम्रतापूर्वक नागराज को सान्त्वना दी और यज्ञ स्थल की ओर चल पड़ा।

महाराज जनमेजय ने यज्ञ स्थल के चारों ओर कड़ी सुरक्षा व्यवस्था की थी। कोई भी व्यक्ति बिना अनुमति के प्रवेश नहीं पा सकता था।

आस्तीक को भी यज्ञशाला के द्वार पर रोक दिया गया।

बालक आस्तीक बड़ा धैर्यवान था। उसने द्वार पर खड़े–खड़े ही यज्ञ की स्तुति आरम्भ कर दी। उसकी आवाज में इतनी मधुरता थी कि यज्ञ कुंड के चारों ओर बैठे ब्राह्मण तथा स्वयं महाराज जनमेजय तक उसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रह सके।

महाराज ने सभी की अनुमति लेकर आस्तीक को भीतर बुला लिया।

इसी समय एक तेजस्वी ब्राह्मण ने मन्त्र पढ़ा कि तक्षक और इन्द्र दोनों ही हवन कुण्ड में गिरने के लिए विवश हो गये। इन्द्र तो किसी तरह अपने प्राण बचा

कर भाग निकले, किन्तु तक्षक अपने को न रोक सका।

तभी ब्राह्मण बालक आस्तीक ने ऊपर की ओर हाथ करके तीन बार ठहर जा! ठहर जा! ठहर जा! का उच्चारण किया तथा यज्ञ कुण्ड के साथ ही उपस्थित ब्राह्मण समुदाय की स्तुति करने लगा। आस्तीक के तपोबल से तक्षक आकाश मार्ग में ठहर गया।

महाराज जनमेजय तथा उपस्थित लोग आस्तीक की चालाकी को न समझ सके। वे तो उसकी विनम्रता और ज्ञान से बड़े प्रभावित हो चुके थे।

"ब्राह्मण कुमार! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। हम तुम्हें वरदान देना चाहते हैं। जो चाहो माँग सकते हो।" महाराज जनमेजय ने प्रसन्न होकर कहा।

"महाराज! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो सर्प यज्ञ तुरन्त बन्द कर दीजिये। मैंने अपने मातृकुल की रक्षा का वचन दिया है।" आस्तीक ने बड़ी विनम्रता से आग्रह किया।

"नहीं, हम यह नहीं कर सकते। तुम कुछ और माँगो ब्राह्मण कुमार।" जनमेजय गम्भीर हो उठे।

आस्तीक विनम्रतापूर्वक अभी भी शान्त खड़ा था।

"महाराज! इस ब्राह्मण कुमार को आप वर देने का वचन दे चुके हैं, अतः आपको इसे इसका इच्छित वर देना ही होगा।" सभी ब्राह्मण एक साथ बोल उठे।

महाराज जनमेजय आस्तीक की विनम्रता, बुद्धि तथा ज्ञान से पहले ही प्रभावित हो चुके थे, अतः जब यज्ञ करनेवाले सभी ब्राह्मणों ने आस्तीक को वर देने के लिए कहा तो उन्होंने तुरन्त यज्ञ बन्द करा दिया।

सर्पयज्ञ बन्द होते ही झुण्ड के झुण्ड सर्पों का हवन कुण्ड में गिरना बन्द हो गया।

महाराज जनमेजय ने सर्पों को अभयदान देते हुए आस्तीक को सम्मान सहित विदा किया ओर उसे अपने अश्वमेघ यज्ञ में आने का निमन्त्रण भी दिया।

इस प्रकार एक बुद्धिमान, धैर्यवान और ज्ञानी बालक ने सर्पों को विनाश से बचा लिया। □

— ३, गोविन्दगंज, दतिया (म०प्र०)–४७५६६१

नाम बड़ा होगा

– डॉ० गणेशदत्त सारस्वत

माँ बतलाओ राम किसलिए पूजे जाते हैं?
ऐसा क्या कुछ किया कि जो भगवान् कहाते हैं?

माँ बोली– 'बेटा!' दुनिया में धर्म बड़ा होता।
जो इसका पालन करता वह 'पुरुषोत्तम' होता।

राम सदा मर्यादाओं की रक्षा किया किये।
अपने लिए नहीं केवल औरों के लिए जिये।

माता और पिता की आज्ञा कभी नहीं टाली।
कर्त्तव्यों की दी बिखेर जगती तल में लाली।

गले लगाया दीन–हीन लोगों को नित अपने।
सारी शक्ति लगाकर उनके पूर्ण किये सपने।

किया संगठित कोल, भील, वनवासी लोगों को।
चौदह वर्ष रहे वन में तज सारे भोगों को।

सम्बन्धों को सदा निभाया मान दिया सबको।
कमल–सरीखा जल में रहना सिखा दिया जग को।

हैं पहचान राम भारत के गौरव–फूल खिले।
ऊँच–नीच का भेद भुलाकर सबसे गले मिले।

मातृभूमि की सेवा में वे रहे सदैव लगे।
उनके आह्वान पर सोये सारे लोग जगे।

रावण जैसे अन्यायी से बिल्कुल नहीं डरे।
प्राण हर लिये पल में उसके मान–गुमान हरे।

फल करनी का मिलता है इसमें सन्देह नहीं।
पेड़ लगाने से बबूल के मिलते आम कहीं?

अच्छे काम करोगे तो सम्मान बड़ा होगा।
पूजे जाओगे धरती पर नाम बड़ा होगा।

— सारस्वत–सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर

देववाणी शिक्षण (२/४)

निम्नलिखित वाक्य पढ़िये –

तव गृहं कुत्र अस्ति ? स कथं न आगच्छति ? यदि स इदानीं न आगतः तर्हि श्वः प्रातःकाले आगमिष्यति। तस्मिन् कूपे प्रभूतं जलं अस्ति। तत् त्वं पश्यसि किम् ? अत्र इदानीं स न भवति।

शब्द

जानामि =	(मैं) जानता हूँ।	पातुं =	पीने के लिए।
जानासि =	(तू) जानता है।	इति =	ऐसा।
जानाति =	(वह) जानता है।	ज्ञातं =	जान लिया।
ज्ञातुं =	जानने के लिए	पानं =	पीना।
आज्ञातुं =	आज्ञा करने के लिए	कति =	कितना

संस्कृत–वाक्यानि

१. त्वं जानासि किं कः अहं अस्मि इति ? २. अहं न जानामि त्वं कः असि इति। ३. अहं विष्णुमित्रस्य पुत्रः कृष्णशर्मा अस्मि। ४. त्वं पुस्तकं इदानीं कुत्र नयसि ? ५. स पुरुषः पठितुं इच्छति। ६. मया ज्ञातं तव हस्ते किं अस्ति इति। ७. हे मनुष्य ! तव नाम किं अस्ति ? ८. मम नाम यज्ञसेनः इति अस्ति

भाषा–वाक्य

१. क्या तू जानता है कि मैं कौन हूँ। २. मैं नहीं जानता कि तू कौन है। ३. मैं विष्णुमित्र का पुत्र कृष्णशर्मा हूँ। ४. तू पुस्तक अब कहाँ ले जाता है ? ५. वह पुरुष पढ़ना चाहता है। ६. मैंने जान लिया कि तेरे हाथ में क्या है। ७. हे मनुष्य ! तेरा नाम क्या है ? ८. मेरा नाम यज्ञसेन है।

अब निम्नलिखित शब्द कण्ठस्थ कीजिये –

शब्द

आनन्दः =	आनंद	भक्तः =	भात, भक्त
मणिकारः =	जौहरी	आमोदः =	सुगन्ध, आनन्द
सुवर्णकारः =	सुनार	धृतः =	धारण किया हुआ
लोहकारः =	लुहार	आघ्रातः =	सूँघा हुआ
वस्त्रकारः =	जुलाहा	भुक्तः =	भोजन किया हुआ
ओदनः =	चावल	अर्थः =	पैसा, धन

संस्कृत–वाक्यानि

१. स बालः आनन्देन मोदकं खादति। २. पश्य, कथं स खादति। ३. हे सुवर्णकार ! मम बालकाय एकं भूषणं देहि। ४. वस्त्रकारः तस्मै पुरुषाय वस्त्रं करोति। ५. कः पुरुषः अर्थस्य दासः ? ६. कः नरः ईशस्य भक्तः ? ७. अहं अर्थस्य दासः न अस्मि, परन्तु ईश्वरस्य भक्तः अस्मि।

भाषा–वाक्य

१. वह बालक आनन्द से लड्डू खाता है। २. देख, वह कैसे खाता है ? ३. हे सुनार ! मेरे बालक के लिए एक आभूषण दे। ४. जुलाहा उस मनुष्य के लिए वस्त्र बनाता है। ५. कौन मनुष्य धन का दास है ? ६. कौन मनुष्य ईश्वर का भक्त है ? ७. मैं धन का दास नहीं हूँ, परन्तु ईश्वर का भक्त हूँ।

अब निम्नलिखित वाक्य पढ़िये–

संस्कृत–वाचन–पाठः।

तस्मै पुरुषाय मोदकं देहि। यदि स मनुष्यः इदानीं एव खादितुं न इच्छति तर्हि तस्मै न देहि। कः इदानीं मोदकं खादितुं इच्छति ? अहं मोदकं न खादितुं इच्छामि, परन्तु फलं भक्षयितुं इच्छामि। यथा त्वं इच्छसि तथा कुरु। यदि दुग्धं पातुं इच्छसि तर्हि गोदुग्धं एव पिब। यदि जलं पातुं इच्छसि तर्हि मम कूपस्य एव जलं पिब।

यदा स मनुष्यः कूपस्य समीपं गच्छति तदा त्वमपि तेन सह तत्र गच्छ। स तत्र कूपस्य समीपं गच्छति, परन्तु जलं न आनयति।

हे नर ! त्वं इदानीं वेदस्य पुस्तकं अत्र आनय। त्वं अपि मंत्रं पठ। त्वं वेदस्य मंत्रं जानासि किम् ? वेदस्य मंत्रः त्वया कदा पठितः ? केन सह पठितः ? कस्य पुत्रः त्वं असि ? कुत्र इदानीं पठसि ? किं पठसि। स उत्तमः मनुष्यः अस्ति। इदानीं उद्यानं प्रति गतः। मम गृहस्य समीपे एव उद्यानं अस्ति, तत्र एव सः गतः। पुष्पं आनेतुं स इच्छति। तत्र वृक्षे शोभनं पुष्पं भवति। कथं स पुष्पं आनयति ? तत्र वृक्षे शोभनं एकं अपि पुष्पं नास्ति।

सत्यस्य वचनं श्रेयः। धर्मस्य वचनं श्रेयः अस्ति वा न ? धर्मस्य वचनात् धर्मस्य आचरणं एव श्रेयः। सदा हितं वचनं एव वदेत्। एतत् मम सत्यं युक्तं च मतं अस्ति। यत् अत्यन्तं भूतहितं तत् एव सत्यं। इति सः वदति। सत्यं एव धर्मः। धर्मं एव सत्यम्।

अहं मरणात् भीतः नास्मि ? मम यशः न दूषितं भवति ? सत्येन मम यशः शोभनं भवति।

तव पिता कुत्र अस्ति ? मम पिता अत्र नास्ति। किं करोमि ? कुत्र गच्छामि ? कुत्र गमनं इदानीं श्रेयः अस्ति ? वद, शीघ्रं वद। ◻

हिन्दू धर्म-रक्षक सात "वैरागी अखाड़े"

- श्वेतकेशी

विगत अतीत में अयोध्या में जो वैरागियों के सात अखाड़े चलते थे, वे हिन्दू धर्म-रक्षक रहे थे। धर्मार्थ लड़ने-मरने को तत्पर रहते थे। इन्हें परिवारों का बन्धन नहीं था। भोजन-वस्त्र इन्हें सहज प्राप्त था। पूजा-पाठ के सिवा अन्य कार्य नहीं था इनके पास। इन वैरागियों के सात अखाड़ों के नियमित क्रम इस प्रकार थे और जो मेले, जुलूस और स्नान-पर्वादि में इसी क्रम से चला करते थे-

ऐसे (मेला-स्नानपर्व आदि के समय) अवसर पर सबसे आगे सर्वप्रथम रहते हैं "दिगम्बरी वैरागी अखाड़े" वाले- उसके पश्चात् दाहिनी ओर रहते हैं "निर्वाणी अखाड़े" के वैरागी- उनके बाईं ओर "निर्मोही अखाड़े" के वैरागी चलते हैं। तीसरी पंक्ति में "निर्वाणी अखाड़े वालों के पीछे रहते हैं "खाकी अखाड़े" के वैरागी और ये दाहिनी ओर चलते हैं- बाईं ओर "निरालम्बी अखाड़े" वाले रहते हैं। फिर "निर्मोही अखाड़े" के पीछे चलते हैं "सन्तोषी अखाड़े" के वैरागी। प्रत्येक अखाड़े के जत्थे के वैरागियों के आगे-पीछे कुछ स्थान खाली रहता है। ये वैरागी अखाड़े एक जमाने में अपनी राम-भक्ति, त्याग-तप तथा संयमी होने के लिए प्रसिद्ध रहे थे। ये (१) दिगम्बरी, (२) निर्वाणी, (३) निर्मोही, (४) खाकी, (५) निरालम्बी, (६) संतोषी और (७) महानिर्वाणी वैरागियों के अखाड़े अयोध्या में आज भी हैं। वहाँ संत-महात्माओं की प्राचीन परम्परागत "छोटी छावनी" और "बड़ी छावनी" भी विख्यात रही हैं। इन्हीं छावनियों के वर्तमान संत नृत्य गोपालदास और "दिगम्बर अखाड़े" के महन्त रामचन्द्र दास विगत दिनों "श्रीराम-जन्म-भूमि" को मुक्त कराने सम्बन्धी आन्दोलन में सक्रिय रहकर बहुचर्चित रहे। अतीत-काल में भी अयोध्या के वैरागी अखाड़ों के वैरागियों ने धर्म-रक्षार्थ मुस्लिम आक्रमणकारियों तथा मन्दिर-विध्वंसकों से संग्राम करते हुए मन्दिरों की रक्षा की है। उदाहरणार्थ, "लखनऊ-अभिलेखागार" (राज्य-संग्रहालय) में एक ऐसा चित्र रखा था, जिसमें हरद्वार में वैरागी अखाड़ों द्वारा मुगल बादशाह अकबर से न केवल विरोध प्रदर्शन, वरन् विद्रोह (संघर्ष) करते चित्रित किया गया था।

एक बार सन् १८५५ में अर्थात् सत्तावनी क्रान्ति के दो वर्ष पहले अयोध्या की "हनुमान गढ़ी" पर दंगाई मुसलमानों के सशस्त्र गिरोहों ने आक्रमण कर दिया- उस अवसर पर अयोध्या के वैरागी अखाड़ों ने उन आक्रमणकारियों से युद्ध किया, 'हनुमान गढ़ी' की रक्षा की तथा आक्रामक मुसलिम गिरोहों को मार भगाया। आक्रमणकारी "हनुमान गढ़ी" को ढहाना चाहते थे। वैरागियों ने उस संकट-काल में शौर्य का परिचय दिया। इस आक्रमण के कुछ दिनों पश्चात् अमेठी-निवासी एक मौलवी अमीर अली ने भी अयोध्या-स्थित 'हनुमान गढ़ी' पर धावा बोला परन्तु वैरागी अखाड़े के वीर वैरागियों के सम्मुख उसकी भी नहीं चली। वैरागियों से पराजित वह भी पलायन कर गया।

इन वैरागियों में कई अवकाश-प्राप्त उच्चाधिकारी भी वैराग्य लेने के बाद सम्मिलित हो जाते थे। उनमें कई अवकाश प्राप्त डिप्टीकलेक्टर, संबार्डिनेट जज भी रहे थे। एक अवकाश प्राप्त डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स थे सीताराम शरण भगवान प्रसाद, जो सन् १६३२ में वैराग्य लेकर अयोध्या आ रमे। इसी प्रकार पन्ना रियासत के दीवान जानकी प्रसाद भी वैराग्य लेकर अयोध्या में "रसिक विहारी" नाम से रहते रहे। ये वैरागी होकर "कनक भवन" (अयोध्या) के महन्त रहे। वैरागियों में एक थे बाबा रघुनाथ दास, जिनके लाखों भक्त रहे थे। इन वैरागियों में बाबा युगलानन्य शरण तथा उनके शिष्य बाबा जानकी शरण संस्कृत-फारसी के विद्वान् रहे थे। अयोध्या वस्तुतः इन वैरागियों का घर रही है और "हनुमान गढ़ी" उनका दृढ़ दुर्ग। इस गढ़ी के वैरागी निर्वाणी अखाड़े के ही रहते हैं। ये ४ पट्टियों में विभक्त हैं। वैरागी जीवन में इन्हें १६ वर्ष की आयु ४ में प्रवेश करना पड़ता है। इन्हें शुरू से ही कठिन तप और सेवाव्रत निभाना होता है। ब्राह्मणों-क्षत्रियों के लिए आयु का यह बन्धन नहीं है। प्रथम अवस्था में शिष्य को **'छोरा'** कहते हैं। ३ वर्ष तक वह मन्दिर के और भोजन आदि के छोटे बर्तन साफ करता, धोता है, लकड़ी लाता है और पूजा-पाठ करता है। पश्चात् आगे जो ३ वर्ष का इनका काल-खण्ड रहता है, उसमें इन्हें (शिष्यों को) "बन्दगीदार" कहते हैं। तब से भोजन बनाते, कुएँ से पानी लाते और बड़े-बड़े बर्तन धोते-माँजते हैं। पूजा-अर्चा भी करते हैं। फिर इसके बाद ३ वर्ष की इनकी तीसरी जो अवस्था प्रारम्भ होती है, जिसे "हुड़दंगा" कहा जाता है। इसमें इन्हें मूर्त्तियों को भोग लगाना, भोजन-वितरण करने तथा पूजा आदि काम करने होते हैं। "निशान" या मन्दिर की ध्वजा-पताका ले जानी होती है। फिर १०वें वर्ष में शिष्य उस अवस्था में प्रवेश करता है, जिसे **'नागा'** कहते हैं- तब वह अयोध्या से चलकर देश के सब तीर्थों की यात्रा करता है, उदर-पोषण मात्र वह भिक्षाटन द्वारा ही करता है और तीर्थाटन करके वापस अयोध्या आने पर वह पूर्वावस्था में प्रवेश करता है और तब वह **"अतीत"** स्तर या अवस्था में मान्य होता है। इस "अतीत" अवस्था में ही वह मृत्यु पर्यन्त रहता है- पूजा, पाठ, भजन के अतिरिक्त उसे अब अन्य कोई काम नहीं रहता। भोजन-वस्त्र सुलभ रहता है। वैरागी-जीवन की यही प्राचीन परम्परा किंवा परिपाटी रही है। वैरागी अखाड़ों ने देश तथा समाज की महती सेवा की है। ❑

१९४७ से १९७१ तक

युद्धों में सिक्ख वीरों की उच्च-शौर्य परम्परा

□ डॉ० सीताराम शुक्ल

सिक्खों ने भारत राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति को संजोते हुए उसके भौगोलिक आकार को सुरक्षित रखने में सर्वदा सतत सन्नद्धता का अनुपम कीर्तिमान स्थापित किया है। भारतीय स्वातन्त्र्य समर में मनसा, वाचा, कर्मणा समर्पित महान् आत्माओं की विदित संख्या और नाम अत्यल्प हैं। वास्तव में स्वतन्त्र भारत की नींव असंख्य, अज्ञात और अनाम बलिदानियों द्वारा सनातन काल से दृढ़ है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में ज्ञात कुल [illegible] भारतीय बलिदान हुए, जिनमें १५५७ अर्थात् ७३.२७ प्रतिशत सिक्ख थे। आजीवन–कारावास–दण्ड प्राप्त और अण्डमान भेजे गये २६६४ राजबन्दियों में से २१४७ सिक्ख थे जो कि कुल राजबन्दियों के ८०.५९ प्रतिशत होते हैं। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता संग्राम के आजाद हिन्द फौज में सम्मिलित होने वाले २०,००० सैनिकों में १२,००० अर्थात् ६० प्रतिशत सिक्ख थे। इसी क्रम में फाँसी पर चढ़नेवाले बलिदानियों में ७३ प्रतिशत सिक्ख ही थे।

१५ अगस्त १९४७ को भारत राष्ट्र परतन्त्रता की पर्त दर पर्त चीर कर अन्ततः स्वतन्त्र हो गया। राष्ट्र के स्वतंत्र भारत सरकार ने सभी धर्म, जाति, वर्ग तथा क्षेत्र के नागरिकों का चयन करके अपनी सेना का गठन किया। सैनिकों में अधिक राष्ट्र प्रेम, जुझारूपन तथा स्वाभिमान जगाने ही नहीं, अपितु अतिगुणित तथा शौर्य एवं उत्सर्ग को सतत स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा बनाये रखने के उद्देश्य से कतिपय सैन्य दलों को जाति, धर्म तथा क्षेत्र के आधार पर नाम दिया। इनका विवरण निम्नवत् है–

धर्म और जाति पर आधारित भारतीय सेना

१. सिक्ख रेजीमेण्ट
२. सिक्ख लाइट इन्फैंट्री
३. डोगरा रेजीमेण्ट
४. राजपूत रेजीमेण्ट
५. महार रेजीमेण्ट
६. राजपूताना राइफल्स
७. जाट रेजीमेण्ट
८. गोरखा रेजीमेण्ट
९. गोरखा राइफल्स
१०. मराठा लाइट इन्फैंट्री
११. नागा रेजीमेण्ट

....

क्षेत्र पर आधारित भारतीय सेना

१. पंजाब रेजीमेण्ट
२. मद्रास रेजीमेण्ट
३. बिहार रेजीमेण्ट
४. कुमायूँ रेजीमेण्ट
५. महार रेजीमेण्ट
६. राजपूताना राइफल्स
७. जे. एण्ड जे. मिलिशिया
८. लद्दाख स्काउट्स
९. असम रेजीमेण्ट
१०. गढवाल राइफल्स
११. नागा रेजीमेण्ट

....

समन्वित भारतीय सेना

१. गार्ड्स
२. ग्रेनेडियर्स
३. पैराशूट रेजीमेण्ट
४. आर्टिलरी
५. आर्मर्ड रेजीमेण्ट

....

पंजाब तथा सिक्खों के नाम पर पंजाब रेजीमेण्ट, सिक्ख रेजीमेण्ट, सिक्ख लाइट इन्फैन्ट्री आदि नाम दिये गये।

सिक्खों की सैन्य–परम्परा सदैव से उत्सर्गमयी रही है। कहना न होगा कि १९४७ में सिक्खों ने अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं किया होता, तो सम्भवतः पाकिस्तान की सीमा दिल्ली के निकट होती और जम्मू भी उसी का अंश होता।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद भारत को १९४७–४८ में गोवा आपरेशन, १९६२ में चीन तथा १९६५ और १९७१ में पाकिस्तान से लड़ाई लड़नी पड़ी। इन संघर्षों में पंजाब रेजीमेण्ट, सिक्ख रेजीमेण्ट, सिक्ख लाइट इन्फैन्ट्री तथा पंजाबवासियों एवं सिक्खों ने अपना उत्सर्ग करके परमवीर–चक्र, महावीर–चक्र तथा वीर–चक्र प्राप्त करके भारतीय सेना में अपनी उच्च शौर्य और उत्सर्ग की परम्परा के कीर्तिमान को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया। इस उच्च शौर्य परम्परा के चक्रधारियों को केन्द्र तथा राज्य सरकार की ओर से शौर्यांजलि स्वरूप धन, भूमि तथा अन्य सुविधाएँ अर्पित की जाती हैं। भारत राष्ट्र के सर्वोच्च शौर्य के प्रतीक इन तीनों पदकों का विवरण अग्रवत् है–

परमवीर चक्र

वीरता के लिए पुरस्कार या सम्मान–स्वरूप प्रदान

सारिणी संख्या—१

भारतीय उच्च शौर्य पदक विजेताओं की प्रान्तगत स्थिति (१९४७—१९७१)

प्रान्त नाम	जीवितावस्था				मरणोपरान्त				सम्पूर्ण योग
	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग	
पजाब	१	२३	१३९	१६३	३	१७	५०	७०	२३३
उत्तर प्रदेश	—	१२	१२२	१३४	२	९	५१	६२	१९६
महाराष्ट्र	१	१३	७६	९०	१	१	१६	१८	१०८
हरियाणा	१	९	६२	७२	—	३	३१	३४	१०६
दिल्ली	—	१८	५९	७७	१	८	१५	२४	१०१
राजस्थान	—	७	५३	६०	२	२	१९	२३	८३
हिमाचल प्रदेश	१	१२	४१	५४	१	३	१५	१९	७३
जम्मू और कश्मीर	—	५	३७	४२	—	३	१९	२२	६४
पश्चिम बगाल	—	४	३०	३४	—	१	०४	०५	३९
तमिलनाडु	—	६	२१	२७	—	१	०८	०९	३६
केरल	—	२	२५	२७	—	१	०८	०९	३६
कर्नाटक	—	५	२३	२८	—	१	०१	०२	३०
आन्ध्र प्रदेश	—	१	१८	१९	—	—	०३	०३	२२
मध्य प्रदेश	—	३	१२	१५	—	—	०३	०३	१८
चण्डीगढ़	—	२	११	१३	—	—	०३	०३	१६
बिहार	—	—	१०	१०	१	—	०१	०२	१२
मेघालय	—	—	५	५	—	—	०१	०१	०६
असम	—	—	४	४	—	—	०१	०१	०५
गुजरात	—	—	३	३	—	—	—	—	०३
अरुणांचल प्रदेश	—	—	१	१	—	—	—	—	०१
गोवा	—	—	—	—	—	—	०१	०१	०१
उड़ीसा	—	—	१	१	—	—	—	—	०१
नागालैण्ड	—	—	१	१	—	—	—	—	०१
प्रदेश अज्ञात	—	७	४४	५१	—	५	१३	१८	६९
नेपालवासी	६	३२	३८	—	५	१८	२३	६१	
सम्पूर्ण प्रदत्त पदक	४	१३५	८३०	९६९	११	६०	२८१	३५२	१२२१

किया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ पदक 'परमवीर–चक्र' है। यह थल पर, जल में या आकाश में शत्रु का सामना करते हुए, सर्वोत्कृष्ट वीरता का प्रदर्शन करने या आत्म बलिदान करने पर प्रदान किया जाता है। यह सर्वश्रेष्ठ पदक काँसे द्वारा निर्मित गोल आकार का होता है। इसके मुख भाग पर 'इन्द्र बज्र' की चार प्रतिमूर्त्तियाँ बनी होती हैं। मध्य में राष्ट्रीय चिह्न अंकित होता है। पृष्ठ भाग में हिन्दी व अंग्रेजी में 'परम वीर चक्र' अंकित होता है, जिसके मध्य में कमल के दो फूल बने रहते हैं। इस पदक को सीने की बाँयी ओर एक जामुनी रंग के फीते के साथ लटकाकर पहनते हैं। जिसकी चौड़ाई सवा इंच होती है।

महावीर चक्र

वीरों के सम्मान के लिए यह दूसरी श्रेणी का पदक है। थल, जल अथवा आकाश में शत्रु की उपस्थिति में, उत्कृष्ट शौर्य–प्रदर्शन करने पर यह पदक प्रदान किया जाता है। इस पदक का आकार गोल होता है। मुख्य भाग पर एक पंचकोण तारा होता है, जिसके मध्य एक वृत में राष्ट्रीय चिह्न (अशोक मूर्त्ति) रहता है। पृष्ठभाग पर 'महावीर चक्र' हिन्दी और अंग्रेजी में अंकित होता है। जिसके बीच में कमल के दो फूल बने होते हैं।

इस पदक को सीने के बाँयीं ओर एक ऐसे फीते से लटका कर पहनते हैं, जिसका आधा हिस्सा सफेद और आधा नारंगी रंग का होता है तथा यह सवा इंच चौड़ा होता है। नारंगी रंग का हिस्सा बायें कन्धे की ओर रखा जाता है।

वीर चक्र

यह भारत में तीसरी श्रेणी का वीरता पदक है। थल पर, जल अथवा आकाश में, शत्रु से लड़ते हुए वीरता का काम करनेवाले को इस पदक से सम्मानित किया जाता है। यह पदक भी रूपा (कांसे) का बना होता है और गोलाकार होता है। इसके मुख भाग पर एक पंचकोण तारा और उसके मध्य में राष्ट्रीय चिह्न होता है। पृष्ठ भाग पर– "वीर चक्र" शब्द हिन्दी और अंग्रेजी में अंकित होता है, जिनके मध्य में दो कमल के पुष्प होंते हैं। इस चक्र का फीता आधा नीला और आधा नारंगी रंग का होता है, जिसकी चौड़ाई सवा इंच होती हैं। सीने के बाँयी ओर पदक को लटकाकर पहनते हैं। इसे धारण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि फीते का नारंगी रंगवाला भाग कन्धे के निकट हो।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक चक्र और सेवा पदक भारतीय सेना में उत्सर्ग, दायित्व निर्वाह के लिए प्रदान
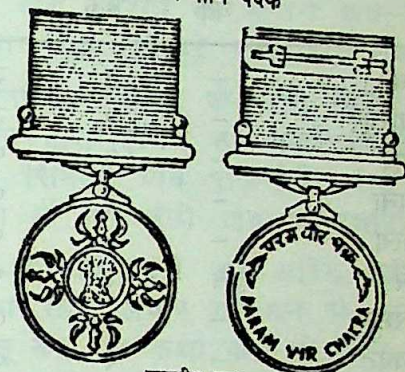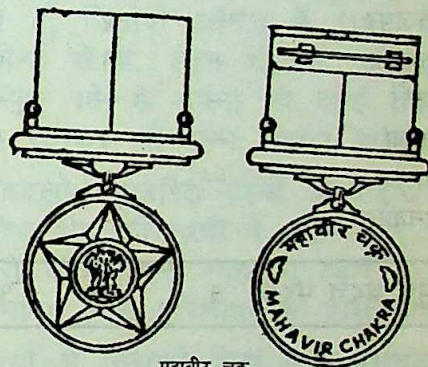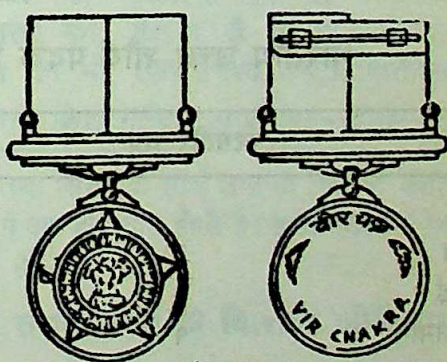
परमवीर चक्र

महावीर चक्र

वीर चक्र

सारिणी संख्या–२

पंजाब प्रान्त में जनपद गत उच्च शौर्य पदक विजेता (१९४७–१९७१)

जनपद का नाम	जीवितावस्था				मरणोपरान्त				सम्पूर्ण योग
	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग	
जालन्धर	–	३	२१	२४	–	३	१२	१५	३९
होशियारपुर	–	२	२३	२५	–	–	०५	०५	३०
अमृतसर	–	२	१७	१९	–	३	०४	०७	२६
लुधियाना	–	३	१५	१८	१	२	०३	०६	२४
पटियाला	–	४	१३	१७	–	२	०५	०७	२४
संगरूर	१	२	१३	१६	–	१	०४	०५	२१
गुरुदासपुर	–	–	०९	०९	१	१	०५	०७	१६
फरीदकोट	–	२	०७	०९	१	२	०२	०५	१४
भटिण्डा	–	१	०२	०३	–	२	०५	०७	१०
फिरोजपुर	–	२	०३	०५	–	१	०३	०४	०९
कपूरथला	–	१	०५	०६	–	–	०२	०२	०८
रोपड़	–	–	०५	०५	–	–	–	–	०५
बरनाला	–	–	०३	०३	–	–	–	–	०३
मोगा	–	१	०१	०२	–	–	–	–	०२
पठानकोट	–	–	०२	०२	–	–	–	–	०२
सम्पूर्ण प्रदत्त पदक	१	२३	१३९	१६३	३	१७	५०	७०	२३३

सारिणी संख्या–३

भारतीय उच्च शौर्य पदक विजेताओं की धर्मगत स्थिति (१९४७–१९७१)

नाम	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग
हिन्दू	९	१२०	८००	९२९
सिख	३	५२	१९६	२५१
ईसाई	१	६	६३	७३
मुसलमान	१	२	२०	२३
बौद्ध	–	५	११	१६
फारसी	१	२	१०	१३
अन्य	–	५	–	५
अज्ञात	–	–	११	११
सम्पूर्ण योग	१५	१९५	११११	१३२१

किये जाते हैं, परन्तु उच्च शौर्य के प्रतीक सर्व प्रमुख ये तीन चक्र– (परमवीर चक्र, महावीर चक्र तथा वीर चक्र) ही हैं।

भारतीय सेना के द्वारा १९४७ से १९७१ तक लड़े गये विभिन्न युद्धों में पंजाब तथा सिक्ख नामधारी सैन्य दलों के उच्च शौर्य पदक विजेताओं की स्थिति को विभिन्न सारिणियों में अग्रवत् प्रदर्शित किया गया है–

राष्ट्रीय स्तर पर अब तक कुल १३२१ (उच्च शौर्य पदक) परमवीर, महावीर तथा वीर चक्र प्रदान किये गये जिनमें ३५२ पदक मरणोपरान्त दिये गये, प्रान्तगत आधार पर सर्वाधिक पदक, पंजाब प्रान्त ने प्राप्त किये, जो सारिणी संख्या १ में प्रदर्शित किया गया है। पंजाब प्रान्त के उच्च शौर्य पदक विजेताओं की जनपदीय स्थिति को सारिणी नं० २ में प्रदर्शित किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर धर्मगत आधार पर हिन्दू, सिख, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध तथा अन्यों में सिखों का स्थान दूसरा है। जैसा कि सारिणी नं० ३ से स्पष्ट होता है। उच्च शौर्य पदक विजेता भारतीय सैन्य दलों की क्रमिक स्थिति को सारिणी नं० ४ में दर्शाया गया है।

फिर विश्व करेगा शत वन्दन

– महेश शुक्ल

जब सुप्त पड़ी झंझावातों में, सामाजिक मर्यादा हो,
पथ हों सारे कंटकाकीर्ण, शिखरों की धूमिल आशा हो
हों पीड़ा के अम्बार खड़े, रिश्तों के बन्धन क्षत–विक्षत
लौ काँप रही हो बार–बार, बिखरे सारे रोली–अक्षत।

जब लगे हुए हों प्रश्नचिह्न, चिन्तन के सभी विरामों पर,
उँगली उठती हो बार–बार, इंगित हों चारों धामों पर,
छल–छद्म प्रपंचों में सिमटी, जब राजनीति बेचारी हो
लोलुप आँखें आतुरता में, बन बैठी जब व्यभिचारी हों।

हों विवश जहाँ पर सीताएँ, देने को अग्नि परीक्षाएँ,
लक्ष्मण रेखा हैं लाँघ रही, लेकर के मन में शंकाएँ।
आँखों के अविरल आँसू की, यह कथा कहे तो कौन कहे?
खण्डित भूगोल लिये कर में, जब व्यथा देश की मौन रहे।

घण्टे घड़ियाल गूँजते हैं, जिसके आँगन में सुबह–शाम
उसके ही अनगिन कोनों से हैं, लोग चीखते त्राहिमाम्।
जो विवश नियति से पूछ रहे, है अपना भी कोई विधान,
उनके क्रन्दन के स्वर सुनकर भी मौन हमारा संविधान।

तुम उठो! व्यवस्थाएँ बदलो! मुखरित प्रश्नों के उत्तर दो,
फिर साम–दाम औ' दण्ड–भेद की भाषा में प्रति–उत्तर दो।
चिन्तन के सभी विचारों की जीवन्त व्यवस्था व्यर्थ न हो,
बदलो उठकर वह परिभाषा, जिस परिभाषा का अर्थ न हो।

पीड़ा को बदलो खुशियों में, उसको देना तुम अभयदान,
गूँगों को उनकी बोली दो, असहायों को दो स्वाभिमान।
जनमानस की चेतनता का, करना है नूतन अभिनन्दन,
इस देवतुल्य पद–रज का भी, फिर विश्व करेगा शतवन्दन।

– सनातन धर्म, सरस्वती शिशु मन्दिर, लखीमपुर–खीरी–२६२७०१

इनके अतिरिक्त पंजाब तथा सिखों के कतिपय विशिष्ट सैन्य कीर्तिमान और भी उल्लेखनीय हैं– भारतीय सेना के भूतपूर्व राष्ट्रपति एवं सेनापति ज्ञानी जैल सिंह, शत्रु देश के छक्के छुड़ाने वाले भूतपूर्व वायुसेनाध्यक्ष अर्जुन सिंह (वर्ष १९६४–१९६९) लेफ्टिनेण्ट–जनरल–हरबख्श सिंह व विक्रम सिंह (१९६५ व १९६२) और दिलबाग सिंह (वर्ष १९८१–८३), लेफ्टीनेन्ट जनरल जे. एस. अरोड़ा (१९७१) तथा स्वर्ण मन्दिर के रक्षक आपरेशन 'ब्लू स्टार' के चमकते सितारों में मेजर जनरल के०एस० बरार, मेजर जनरल रणजीत सिंह दयाल आदि राष्ट्रीय स्तर के ख्याति प्राप्त सिख सैन्य व्यक्तित्व हैं।

यद्यपि शौर्य किसी की बपौती नहीं होती। यह तो एक यौद्धिक, जुझारू भावना है, परन्तु उपर्युक्त का अर्थ पंजाब तथा सिखों के शौर्य सम्बन्धी विशिष्ट कीर्तिमानों के सन्दर्भ में एक ही प्रतीत होती है। इनके विवरण उदाहरणार्थ अग्रवत् हैं–

पंजाब तथा सिखों के विशिष्ट कीर्तिमान

परमवीर चक्र

१. भारतीय वायु सेना में अब तक मरणोपरान्त प्राप्त परमवीर चक्र विजेताओं में फ्लाइंग आफीसर निर्मल जीत सिंह मान प्रतिनिधि सिक्ख रहे हैं। इन्हें १४ दिसम्बर १९७१ को मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्रदान किया गया।

सारिणी संख्या–४

उच्च शौर्य पदक विजेता भारतीय सैन्य दलों की क्रमिक स्थिति (१९४७–१९७१)

दल का नाम	जीवितावस्था				मरणोपरान्त			
	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग	परमवीर चक्र	महावीर चक्र	वीर चक्र	योग
सिंख रेजीमेण्ट	१	३	३५	३९	१	९	२१	३१
पंजाब रेजीमेण्ट	–	१२	३०	४२	–	५	१४	१९
पैराशूट रेजीमेण्ट	–	६	३८	४४	–	४	१०	१४
कुमायूँ रेजीमेण्ट	–	१	३७	३८	२	२	१५	१९
राजपूत रेजीमेण्ट	–	२	२६	२८	१	३	१८	२२
राजपूताना राइफल्स	–	२	१८	२०	–	३	१५	१८
डोगरा रेजीमेण्ट	–	२	२१	२३	–	४	१२	१६
गढ़वाल राइफल्स	–	२	२३	२५	–	२	१३	१५
जाट रेजीमेण्ट	–	३	२०	२३	–	३	११	१४
ग्रेनेडियर्स	१	३	१८	२२	१	१	१२	१४
ब्रिगेड गार्ड्स	–	४	२०	२४	१	२	७	१०
जम्मू और कश्मीर राइफल्स	–	३	२०	२३	–	–	११	११
मद्रास रेजीमेण्ट	–	२	१४	१६	–	३	१०	१३
महार रेजीमेण्ट	–	२	१६	१८	–	१	८	९
मराठा एल०आई०	–	–	१५	१५	–	१	७	८
५ गोरखा राइफल्स	–	४	१२	१६	–	–	६	६
८ गोरखा राइफल्स	१	३	१३	१७	–	१	३	४
सिख एल०आई०	–	३	११	१४	–	१	५	६
९ गोरखा राइफल्स	–	३	११	१४	–	–	६	६
१ गोरखा राइफल्स	–	२	७	९	१	४	५	१०
लद्दाख स्काउंट्स	–	१	१०	११	–	४	४	८
जम्मू और कश्मीर एल०आई०	–	३	८	११	–	–	६	६
४ गोरखा राइफल्स	–	–	९	९	–	–	१	१
११ गोरखा राइफल्स	–	–	८	८	–	–	१	१
बिहार रेजीमेण्ट	–	–	५	५	–	–	१	१
३ गोरखा राइफल्स	–	–	२	२	–	–	३	३
अज्ञात गोरखा राइफल्स	–	–	–	–	–	–	५	५
असम राइफल्स	–	–	५	५	–	–	–	–
असम रेजीमेण्ट	–	–	१	१	–	–	–	–
नागा रेजीमेण्ट	–	–	१	१	–	–	–	–

सिख रेजीमेण्ट के सूबेदार जोगिन्दर सिंह, जे०सी०ओ० कोर के अधिकारियों में मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्राप्त करने वाले मात्र सिक्ख प्रतिनिधि रहे हैं। इन्हें २३ अक्तूबर १९६२ को मरणोपरान्त परमवीर चक्र प्राप्त हुआ था।

महावीर चक्र

सर्वप्रथम महावीर चक्र सिक्ख रेजीमेण्ट के लेफ्टीनेण्ट कर्नल दीवान रणजीत राय को २७ अक्तूबर १९४७ को मरणोपरान्त प्राप्त हुआ था।

जे०सी०ओ० रैंक में सर्वप्रथम महावीर चक्र सिख रेजीमेण्ट के सूबेदार बिशन सिंह और नायक सूबेदार नन्द सिंह को साथ-साथ (मरणोपरान्त) १२ दिसम्बर १९४७ का प्राप्त हुआ था।

नायक और सिपाहियों की श्रेणी में सर्वप्रथम महावीर चक्र पंजाब रेजीमेण्ट के नायक चैन सिंह और सिपाही काशीराम को एक साथ १० अक्तूबर १९६२ को प्राप्त हुआ।

लांस नायक रैंक में सर्वप्रथम मरणोपरान्त वीर चक्र प्राप्त करने वाले सिख रेजीमेण्ट के लांस नायक राम सिंह एकमात्र प्रतिनिधि रहे हैं। इन्हें ७ नवम्बर १९४७ को मरणोपरान्त वीर चक्र प्रदान किया गया।

विक्टोरिया क्रास और महावीर चक्र

जमादार नन्द सिंह विक्टोरिया क्रास तथा महावीर चक्र (दोनों पदक) प्राप्त करने वाले एक मात्र सिख प्रतिनिधि रहे हैं।

यह पदक अंग्रेजों के शासनकाल में वीरता प्रदर्शित करने पर अंग्रेजों द्वारा प्रदान किया जाता था।

कुछ सिक्ख परिवारों में पिता-पुत्र, भाई-भाई को भी उच्च शौर्य पदक प्राप्त करने का गौरव प्राप्त हुआ है, उनका वर्णन अग्रवत् है-

पिता-पुत्र

क. मेजर जनरल राजिन्दर सिंह, महावीर चक्र दो बार प्राप्त ७ लाइट कैबेलरी, १९४८ (पिता)।

ख. लेफ्टीनेण्ट कर्नल मलविन्दर शर्मिल, वीर चक्र प्राप्त ७ लाइट कैबेलरी, १९७१ (पुत्र)।

क. ब्रिगेडियर सुखदेव सिंह, वीर चक्र, महावीर चक्र प्राप्त, १ पटियाला आर०एस० इन्फैन्ट्री, १९४८ (पिता)।

ख. मेजर रनवीर सिंह, वीर चक्र प्राप्त, ४ राजपूत, १९७५ (पुत्र)।

भाई-भाई

क. विंग कमाण्डर मनवीर सिंह, वीर चक्र प्राप्त बी०एस०एम० इन्फैन्ट्री, १९७१।

ख. स्क्वाड्रन लीडर परमजीत सिंह वीर चक्र प्राप्त आई०ए०एफ० १९७१।

एक ही सिख परिवार के

१. ग्रुप कैप्टन चरनजीत सिंह, वीर चक्र प्राप्त आई०ए०एफ०, १९७१।
२. ग्रुप कैप्टन जगजीत सिंह, वीर चक्र प्राप्त आई०ए०एफ०, १९७१।
३. मेजर कुलदीप सिंह चाँदपुरी, महावीर चक्र प्राप्त २३ पंजाब।
४. मेजर हरपाल सिंह ग्रेवाल, वीर चक्र (मरणोपरान्त) प्राप्त ८ बिहार, १९७१।

इस प्रकार प्रस्तुत लेख सारिणी से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर अब तक के राष्ट्रीय संघर्षों में सिक्खों ने अनुपम उच्च शौर्य-परम्परा की ज्योति को अपने शोणित और उत्सर्ग से सदा जाज्वल्यमान रखा है। ☐

- २१ ए, उजियारी पुरवा, खेवरा बाँगर
नवाबगंज, कानपुर-२०८००२

पाकिस्तान में मन्दिरों को नीलाम किया जा रहा है

पाकिस्तानी पंजाब में हिन्दुओं के मन्दिरों को नीलाम किया जा रहा है। अब तक ८०० मन्दिर जिनमें सनातन धर्म, आर्य समाज आदि के मन्दिर शामिल हैं नीलाम किये जा चुके हैं। रावलपिंडी में दो के सिवाय सभी मन्दिर बेच दिये गये हैं। लाहौर में कृष्ण नगर के एक मन्दिर की इमारत में एक बूचड़ की दुकान खुली हुई है। झंग में बावा लाल जी के मन्दिर को, जो किले के रूप में है, नीलाम कर दिया गया है। यह मन्दिर रेल बाजार में है। सरकारी तौर पर इस मन्दिर की कीमत सवा लाख रुपया प्रति मरला तय की गयी थी; परन्तु यह कई गुना अधिक पर बेच दिया गया। नगर के बाकी के मन्दिर पहले ही बेचे जा चुके हैं। कहा जाता है कि बावा लाल जी का मन्दिर गुरु नानक देव जी के कुछ समय बाद निर्मित किया गया है।

बोलो ओ मानवाधिकारवादियो! क्यों चुप हो? ☐

तीन मुलाकातें

– डा० रमेशचन्द्र नागपाल

(प्रोफेसर, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)

(१)

मेरा एक मित्र बहुत बड़े विश्वविद्यालय में अध्यापक है। एक दिन मैं जब उसके नगर गया, तो अचानक उससे भेंट हो गयी। वह मुझे अपने घर ले गया।

उसका घर विश्वविद्यालय परिसर में ही था। हाल ही में उसे विश्वविद्यालय का एक मकान आवंटित हुआ था। मकान बहुत अच्छा था तीन कमरे, रसोई, दो शौचालय तथा मकान के चारों ओर काफी खुला। कई फलदार वृक्ष लगे हुए थे। बहुत बड़ा लॉन था।

मैंने अपने मित्र से कहा, "मकान तो तुम्हारा, बहुत अच्छा है। शहर में ऐसा मकान मिलना तो बड़े सौभाग्य की बात है।"

मेरे मित्र की पत्नी ने बड़ी प्रसन्नता से मेरी हाँमी भरी; "भाई साहब यहाँ बहुत आराम है। इसके पहले तो बाहर एक कमरे का मकान था। न ढंग की रसोई। शौचालय की तकलीफ की तो कोई बात ही नहीं। सफाई करने वाला कई-कई दिन गोल हो जाता था। कितना कष्ट था। यह तो कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है। चारों ओर मकान ही मकान, न पेड़, न पौधा।"

(२)

दो महीने बाद मुझे अपने मित्र के घर जाने का पुनः अवसर मिला। बातचीत के दौरान मेरे मुँह से निकल गया, "विश्वविद्यालय परिसर में ही मकान का मिलना बहुत अच्छा है। बाहर इतना अच्छा मकान कहाँ मिल सकता है ?"

मेरे मित्र की पत्नी ने कहा, "भाई साहब ! आप का यह सोचना गलत है। विश्वविद्यालय परिसर शरीफ आदमियों के रहने लायक नहीं।"

यह सुनकर मैं उनकी ओर आश्चर्य से देखने लगा। मैंने पूछा "भाभी जी ! आप यह क्या कह रही है ?"

"हाँ, मैं बिल्कुल सही कह रही हूँ। जब कभी बिजली चली जाती है, छात्रावास से लड़के गालियाँ बकने लगते हैं। एक छात्रावास से गालियाँ देते हुए दूसरे छात्रावास जाएँगे वहाँ इकट्ठे होकर तीसरे। कुलपति, कुलानुशासक, निर्माण विभाग के अधीक्षक और इंजीनियर तथा अन्य कर्मचारियों को माँ-बहन की गन्दी-गन्दी गालियाँ देंगे। जरा-सा नहीं सोचते कि उनके गुरुजन यही रहते है। उनकी पत्नियाँ उनके बाल-बच्चे यहीं रहते हैं। मैं तो "इनसे" कहती हूँ कि वापस पुराने मकान में चले चलो। वहाँ पर यह गन्दगी तो नही।"

(३)

मई या जून के माह में मैं फिर अपने मित्र के घर गया। विश्वविद्यालय में गर्मियों की छुट्टियाँ चल रही थीं। मित्र ने रात्रि को अपने साथ ही भोजन करने का आग्रह किया। मेरे पास समय था। मैं खाने के लिए रुक गया।

खाना बन गया लेकिन जब परोसा जाने लगा तो अचानक बिजली उड़ गयी। मेरे मित्र ने हिदायत दी कि अभी खाना न लगाया जाए। पाँच-दस मिनट में बिजली आ जाएगी, तब खा लेंगे। एक मोमबत्ती जला ली गयी। पंखे भी बन्द हो गये थे। सड़ी गर्मी पड़ रही थी। थोड़ी देर में माथे से पसीना चूने लग गया था। भाभी जी रसोई से बिलबिलाती हुई ऐसे बाहर निकलीं, जैसे वहाँ झुलस रही हों। हम लोगों ने हाथ के पंखे ले लिये।

बिजली पन्द्रह मिनट तक नहीं आयी। मुझे गाड़ी पकड़नी थी। अतः मैंने भोजन शुरू कर देने के लिए कहा। हम लोग पन्द्रह-बीस मिनट तक भोजन करते रहे। भोजन के पश्चात मैं जाने लगा, तो मेरे मित्र ने औपचारिकता बरती, "क्षमा करना, भाई, अंधेरे के कारण भोजन का आनन्द फीका हो गया।"

तभी भाभी जी बोल पड़ीं, "क्या ही अच्छा होता कि छात्र घर न गये होते। बिजली जाते ही वे कुछ अधिकारियों की माँ बहन का पुनते (गालियाँ देते) एक मिनट में बिजली आ जाती। अब पता नहीं कि सारी रात न आए।"

भाभी जी की यह बात सुनकर तो मैं हैरान ही रह गया। मनुष्य की प्रकृति भी अजीब चीज है। ☐

– लखनऊ विश्वविद्यालय परिसर, लखनऊ – २२६००७

मन्त्रिमण्डल कैसा...

(पृष्ठ ४६ का शेष)

इसी प्रकार ११८वें अध्याय के श्लोक सात में देशज व्यक्ति को मन्त्री बनाने का परामर्श है। वर्त्तमान भारतीय राजनीति में चर्चित स्वदेशी विदेशी मूल और शिखर पदों के विवाद में इस गुण का विशेष महत्त्व है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय चिन्तन राज्य के महत्त्वपूर्ण अंग मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में एक स्पष्ट एवं कालजयी धारणा का प्रतिपादन करता है। उसमें प्रतिपादित गुण हजारों वर्षों के उपरान्त भी पूर्णतया समीचीन एवं उपयोगी हैं। □

– रीडर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,
रामनगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर, बाराबंकी

जूता ऊँचा रहे हमारा...

(पृष्ठ २६ का शेष)

रहे हो!"

मन्नू पंडित ने पं० गिरधारी लाल की बाँह पकड़ी और एक ओर एकांत में ले जाकर कहा, "गिरधारी लाल, इसका बड़ा भाई इससे भी वृद्ध और आजकल में मरने ही वाला है। उसके कोई सन्तान नहीं है, अतः उसकी सारी चल-अचल सम्पत्ति का वारिस यह बुड्ढा और अपंग व्यक्ति है। इसके मरने के बाद आपकी भतीजी बहुत बड़ी सम्पत्ति की स्वामिनी बन जाएगी।"

पं० गिरधारी लाल अपनी खोपड़ी पकड़कर बैठ गए। सोचने लगे, क्या जमाना है? लड़की के विधवा होने को भी सुनहरा मौका समझ रहे हैं।

"क्या सोचने लगे पं० गिरधारी लाल। यह लो लड्डू खाओ। ईट, ड्रिंक एण्ड बी मेरी।" खाओ, पियो, मौज करो।

"ये लड्डू तुम्हें मुबारक रहें मन्नू पंडित। मेरी दृष्टि में यह शादी नहीं, बिटिया की बरबादी है।"

इसी बीच एक युवक नशे में झूमता आया– "अंकल! जैक्सन दिखाई नहीं दे रहा?" इतना कह बिना उत्तर की परवाह किए वह आगे बढ़ गया। गिरधारी लाल भी यह सोचते हुए घर की ओर बढ़ने लगे कि मेरा जयकिशन जैक्सन कैसे हो गया? □

श्रद्धांजलि

जिन्होंने प्रार्थना करते हुए शरीर छोड़ा

□ विदर्भ प्रान्त के सहप्रान्त संघचालक श्री विनायक राव फाटकजी का देहावसान गत ८ अगस्त को नागपुर में उस समय हो गया, जब वे संघ के गुरुदक्षिणा कार्यक्रम में अपना २५ मिनट का भाषण समाप्त कर संघ की प्रार्थना बोल रहे थे। बचपन से ही संघकार्य में कार्यरत विनायक राव रसायनशास्त्र के प्राध्यापक एवं नागपुर स्थित धर्मपेठ महाविद्यालय के अनेक वर्षों तक प्राचार्य रहे।

जनवरी १९९८ में नागपुर में सम्पन्न २९००० संख्या के महाशिविर की योजना एवं व्यवस्था में भी उनका योगदान अविस्मरणीय था। ४ वर्ष पूर्व हृदय की शल्यक्रिया होने के पश्चात् भी उनका संघकार्य के लिए पूरे प्रान्त में नियमित प्रवास सभी कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान करता था। 'राष्ट्रधर्म' उनकी पवित्र स्मृति को शतशः नमन करता है। □

□ गत १२ सितम्बर को माधव सभागार, निरालानगर, लखनऊ में प०पू० सरसंघचालक प्रो० राजेन्द्र सिंह (उपाख्य रज्जू भइया) जी के लखनऊ जनपद के सभी गुरुद्वारों और सामाजिक एवं पन्थिक संस्थाओं द्वारा किये गये अभिनन्दन समारोह से वापस लौटते हुए रायबरेली-इलाहाबाद के बीच ऊँचाहार के निकट सर्वश्री राधेश्याम पाण्डेय, दिनेश चन्द्र द्विवेदी तथा कु० माधुरी गुप्ता की उनके टाटा सूमो वाहन की सामने से आ रहे ट्रक से टक्कर हो जाने के कारण अकाल मृत्यु हो गयी। इन अत्यन्त निष्ठावान् संघ-कार्यकर्त्ताओं के प्रति 'राष्ट्रधर्म' अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

□ 'उत्तराखण्ड के गान्धी' के नाम से विख्यात अट्हत्तर वर्षीय इन्द्रमोहन बडोनी का पिछले दिनों निधन हो गया। उनकी पुण्य-स्मृति को 'राष्ट्रधर्म' का नमन! □

कहानी

कफन की लाज

- मदन मोहन पाण्डेय

मुहल्ले में बड़ा शोर है। ऊपर को मुँह उठाये कुत्ते भौंक रहे हैं, भौं–भौं...। उन्होंने दूर से जैसे कुछ सूँघ लिया है। बसन्ती का कलुआ आज फिर पीकर आया है। पान की पीक कपड़ों पर बहाये एक पैर घुटनों तक कीचड़ से लपेटे वह बमक रहा है। "कहाँ है मेरी अम्मा बसन्ती? इतनी देर हो गयी रोटी–पानी की कोई फिकर ही नहीं है"।

बसन्ती चिढ़ी बैठी थी। दो–तीन बार इसी तरह कलुआ के चिल्लाने पर बसन्ती ने झनझनाते हुए दरवाजा खोला और तीखे स्वर में बोली– "बोल मेरे बाप! कौन कमाई कर लाया है? जो मेरी सात साख के नाम जपने पर आमादा है।"

सब कुछ देगा। रही शरीर सुख की बात, तो यह सुख क्या बेटे की ममता से बड़ा है। यही वजह है कि उसने दिन को दिन और रात–को रात नहीं समझा और हाड़–तोड़ मेहनत करके कलुआ को ज़वान कर दिया। क्या उसने इसी दिन के लिए इसे सींच कर पेड़ किया था कि छाया की जगह इससे अँगारे झरें? वह अपने भाग्य पर आँसू बहाने लगी। नारी हृदय की वेदना आज पहली बार टीस बनकर गले से उभर आयी। राह चलते लोग इकट्ठे हो गये और नशे में चूर कलुआ को यह बात अपनी शान की खिलाफ लगी। नशे में वह खुद को शाहनशाह समझ रहा था। उसे लगा, शाहनशाहों के मामले में दखलंदाजी करने वाले मुहल्लेवालों को ठीक करना बेहद जरूरी है।

दरअसल कलुआ ने और लोगों को ताँगे के लिए कर्ज निकालते देखकर खुद भी आधी छूट की लालच पर कर्जा निकाला था। दलालों के मुताबिक आधा छूट वाला पैसा हाकिम हुक्काम खा गये। आधा जमा कर दिया गया और शेष पैसा दलाल लें, चाहें कोई। इसे पाँच सौ मिले थे और कोई देनदारी उसके सिर बचेगी नहीं। इसी सोच में दलालों को अपना सबसे हितैषी समझे बैठा था। जिन्होंने बिना कुछ करे–धरे उसे पाँच सौ रुपये दिलवाये थे; जिनसे कपड़े लत्ते बनवाकर वह पार्टी नेता के यहाँ जाया करेगा, जो उसे मनिन्दर की तरह कहीं चपरासी–अपरासी बनवा देंगे। नौकर नहीं हुआ, तो भी चलतापुर्जा बन जायेगा। उसे क्या पता था कि दलालों ने ऐसे जाने कितने लोगों का सारा का सारा रुपया हड़प लिया है और बैंक की पास बुक पर जाली ढंग से रुपये जमा लिख रखे हैं। उसे तो दो–चार दिन से लगने वाला दारू का स्वाद दलालों को देवता समझाने भर को काफी था। अतः उनके लिए कड़ुवी बात उसे सहन न हो सकी। बोला– "खबरदार! अगर फाइल पास कराने वालों को कुछ कहा, तो तुझे और तेरे पैरोकार सूरज बाबा को ठीक करके मानूँगा।"

"यह जो औरत है ना। यह बगैर लाठी–डण्डे के मानती थोड़े ही है। अब सा... बाप ही मर गया, तो इसकी खुराक कट गयी। लगता है, इसके हाड़ मुझे ही तोड़ने पड़ेंगे।" कलुआ बड़बड़ाया।

"तू मेरा हाड़–गोड़ तोड़ेगा मुँह झौंसे। तब हाड़–गोड़ नहीं तोड़े थे, जब बाप तुझे छह महीने का छोड़कर मरा था।" बसन्ती का हृदय क्षुब्ध हो गया। बस बीस–बाइस साल की ही तो रही होगी, जब उसका धनी लखपत मरा था। तब उसके साथ नाते को कितने लोग मुँह फैलाये नहीं थे? उनके यहाँ ऐसा रिवाज भी था; पर कलुआ के भोले–भाले चेहरे को देखकर उसने अपने सुख को लात मार दी। भगवान् देना चाहेगा, तो कलुआ की कमाई में

लेकिन इसके पहले उपद्रव की जड़ को थोड़ा सबक सिखाना चाहिए। इसी गरज से उसने बसन्ती को झोंटा पकड़कर कई बार हिलाया। यह अपमान और पीड़ा झेलने की वह आदी नहीं थी। वह हतप्रभ–सी हो गयी और इसी बीच एक हाथ लगाकर कलुआ ने उसे दीवार की ओर धक्का दे दिया।

यह हो–हल्ला सुनकर सरजू बाबा उधर आ गये। सरजू बाबा के अपना परिवार तो नहीं है; लेकिन वे गाँव भर के बाबा हैं। गाँव भर उनका अदब करता है। सबके सुख–दुःख में काम आने वाले हैं। इसलिए उनकी लगती बात भी लोग आशीर्वाद समझते हैं। सरजू बाबा के आने पर लोग इधर–उधर हट गये। उन्होंने कलुआ से कहा–

'क्यों बे, जिस माँ ने तेरे लिए अपनी जिन्दगी ख्वार कर दी, उसे झोंटा पकड़कर खींचते तेरी नाक बहुत ऊँची हो गयी होगी ?"

और दिन की बात होती, तो कलुआ ऐसी बात से शरम से गड़ जाता, मगर इस समय उसके पेट में पड़ी हुई लाल परी उसकी चेतना की स्वामिनी थी। वह उन्हें घूर कर देखने के बाद बोला– "बुढ़ऊ ! मुझे अबे–तबे कहनेवाले तुम कौन होते हो ? अभी तक लोगों ने तुम्हारी बात सुन–सुनकर तुम्हारा हौसला बढ़ा रखा है। मेरे मुँह लगोगे, तो औकात पता चल जायेगी।"

उसकी बात का रुख देखकर सरजू बाबा तो एक बारगी भौचक्क रह गये; पर बसन्ती अपना दर्द भूलकर तड़पकर बोली– "बाबा कौन है ? यह सवाल तब पूछा होता, जब बाप के मरने पर उनकी लाश छूनें को कोई नहीं गया था। थाना पुलिस के डर से सगे–सगे दुम दबाकर बैठे थे। चोरी के इल्जाम में चौधरी ने इतना पीटा था कि थाने ले जाने पर दो चार साँसों का ही मेहमान रह गया था। पुलिस की टेंट गरम हुई थी और थाना पुलिस ने लफड़े के डर से अफवाह फैला रखी थी तेरे बाप की लाश लेनेवाले की अँगूठा छाप ले ली जायेगी और बाद में पुलिस उसे देखेगी। इस डर से कोई लाश देखने तक नहीं गया। तब सरजू बाबा ही थे, जो लाश लाये थे और अपने पास से कफन और लकड़ी का खर्चा देकर मिट्टी ठिकाने लगायी थी। कम से कम इन्हें तो छोड़े रहता।"

कलुआ पर इस बात का कोई खास असर नहीं हुआ। वह एक हाथ कमर पर रखकर दूसरा हाथ नचाते हुए बोला– "तो क्या पैसे छोड़ दिये होंगे ? तू इन ऊँची जात वालो की माया क्या जाने ? ये उसी काम में हाथ लगायेंगे, जिससे उनका भला होगा।"

बसन्ती ने कहा– "रुपया तो तेरा बाप दे गया होगा इन्हें। हाँ; मैं यह जरूर जानती हूँ कि कई बार भूखे रहने की नौबत आने पर पता चलने पर बाबा ने अपनी थाली का आटा भी दे दिया था और आज जो तू कचर–कचर बोल रहा है, चार अक्षर पढ़कर, तो भी इन्हीं की बदौलत। इन्होंने पता नहीं कहाँ–कहाँ से लाकर तुझे किताबें दीं और इनके कहने से ही मैंने तुझे स्कूल भेजा। बाबा कहा करते थे– "आदमी के बच्चे को छोटा नहीं समझना चाहिए। क्या पता, वह कब क्या बन जाये ? हो सकता है, यह पढ़–लिखकर अफसर हो जाये और माँ का दर्द समझकर बुढ़ापे में मदद दे और अब तू यह सुख दे रहा है। जिन दलालों के कहने पर कर्जे की दस हजार की फाइल पास कराकर पाँच सौ पाकर तू बौरा गया है, वे तुझे कहीं का नहीं छोड़ेंगे।"

दरअसल कलुआ ने और लोगों को ताँगे के लिए कर्ज निकालते देखकर खुद भी आधी छूट की लालच पर कर्जा निकाला था। दलालों के मुताबिक आधा छूट वाला पैसा हाकिम हुक्काम खा गये। आधा जमा कर दिया गया और शेष पैसा दलाल लें, चाहें कोई। इसे पाँच सौ मिले थे और कोई देनदारी उसके सिर बचेगी नहीं। इसी सोच में दलालों को अपना सबसे हितैषी समझे बैठा था। जिन्होंने बिना कुछ करे–धरे उसे पाँच सौ रुपये दिलवाये थे; जिनसे कपड़े–लत्ते बनवाकर वह पार्टी नेता के यहाँ जाया करेगा, जो उसे मनिन्दर की तरह कहीं चपरासी–अपरासी बनवा देंगे। नौकर नहीं हुआ, तो भी चलतापुर्जा बन जायेगा। उसे क्या पता था कि दलालों ने ऐसे जाने कितने लोगों का सारा का सारा रुपया हड़प

उनकी ऐसी बात को लोग प्रेम की बौछार समझते थे। यद्यपि उनका परिवार नहीं था, लेकिन गाँव के गरीब–गुर्बा लोग उनसे बहुत हिले–मिले थे। उनके बाग और खेत को यह लोग अपना समझते थे। और बाबा किसी को अपने खेत में मटर या भुट्टे तोड़ते पा जाते, तो कहते– "थोड़े और तोड़ा, मैं भी तो खाऊँगा। बेईमान, अकेले ही खा जाना चाहता है।"

सुननेवाला निहाल हो जाता। उसे लगता, उसके सगे बाबा प्रेम के साथ उसे अपने पंखों की छाया में छिपाकर सारी धूप खुद झेल गये हों।

उनके इस तरह गरीब तबके से सहानुभूति रखने पर बिरादरी के लोग उनसे नाराज होकर कहते थे– 'इनकी लाश नीच जाति के लोग ही उठायेंगे। वही इनकी गया करेंगे और पिण्ड पारेंगे।"

वे इस बात पर मुस्कराकर कह देते थे– "आप लोग इस चिन्ता में दुबले न होइए। अगर मेरी लाश यह उठायेंगे, तो यह मेरे लिए सुख की बात होगी। मुझे लगेगा कि मेरा किया धरा बेकार नहीं गया। किसी को तो मैं अपना बना सका। जानते हो महात्मा गाधी को ? वे हरिजन बस्ती में ही रुकते थे।"

कहनेवाला कुढ़कर रह जाता और बाबा गुन–गुनाते हुऐ चले जाते– "ईश्वर के सब पुत्र बराबर, कौन ऊँच को नीचा।"

लिया है और बैंक की पास बुक पर जाली ढंग से रुपये जमा लिख रखे हैं। उसे तो दो–चार दिन से लगने वाला दारू का स्वाद दलालों को देवता समझाने भर को काफी था। अतः उनके लिए कड़ुवी बात उसे सहन न हो सकी। बोला– "खबरदार! अगर फाइल पास कराने वालों को कुछ कहा, तो तुझे और तेरे पैरोकार सूरज बाबा को ठीक करके मानूँगा।"

सूरज बाबा से इस तरह गाँव में कोई नहीं बोला था। वह आहत स्वर से बोले– "तेरी आँखों पर चर्बी चढ़ गयी है। खैर, मुझे कहा सो कहा, मगर बसन्ती को आइन्दा मारा–पीटा, तो तेरी हड्डी–पसली इकट्ठी कर दूँगा" अपना डण्डा फटकारकर सरजू बाबा ने कहा।

सरजू बाबा जब इस तरह डण्डा फटकारते थे, तो गाँव के झगड़ते लोग अक्सर हँसकर भाग जाते थे। मगर कलुआ पर इस बात का कोई असर नहीं हुआ। वह गरज कर बोला– "क्या मुझे मारने–पीटने की धमकी दे रहे हो! यह धमकी औरों को देना। मैं तुम्हें जेल में सड़वा दूँगा।"

"बड़ा आया जेल में सड़ानेवाला। तेरे बाप ने तो कभी यह बात कही होती। बस, गरीब माँ पर हाथ चला सकता है। बाकी कुछ तेरे बस का नहीं है। अगर अपने बाप का बेटा है, तो मुझे जेल करा देना" सरजू बाबा ने कहा।

उनकी ऐसी बात को लोग प्रेम की बौछार समझते थे। यद्यपि उनका परिवार नहीं था, लेकिन गाँव के गरीब–गुर्बा लोग उनसे बहुत हिले–मिले थे। उनके बाग और खेत को यह लोग अपना समझते थे, और बाबा किसी को अपने खेत में मटर या भुट्टे तोड़ते पा जाते, तो कहते– "थोड़े और तोड़ो, मैं भी तो खाऊँगा। बेईमान, अकेले ही खा जाना चाहता है।"

सुननेवाला निहाल हो जाता। उसे लगता, उसके सगे बाबा प्रेम के साथ उसे अपने पंखों की छाया में छिपाकर सारी धूप खुद झेल गये हों।

उनके इस तरह गरीब तबके से सहानुभूति रखने पर बिरादरी के लोग उनसे नाराज होकर कहते थे– "इनकी लाश नीच जाति के लोग ही उठायेंगे। वही इनकी गया करेंगे और पिण्ड पारेंगे।"

वे इस बात पर मुस्कराकर कह देते थे– "आप लोग इस चिन्ता में दुबले न होइए। अगर मेरी लाश यह उठायेंगे, तो यह मेरे लिए सुख की बात होगी। मुझे लगेगा कि मेरा किया धरा बेकार नहीं गया। किसी को तो मैं अपना बना सका। जानते हो महात्मा गांधी को? वे हरिजन बस्ती में ही रुकते थे।"

कहनेवाला कुढ़कर रह जाता और बाबा गुन–गुनाते हुऐ चले जाते– "ईश्वर के सब पुत्र बराबर, कौन ऊँच को नीचा।"

कलुआ के झगड़े में उनके इसी प्रिय तबके को लग रहा था कि कलुआ बाबा की बिरादरी को हँसने का मौका दे रहा है। बूढ़ा केदारी इसी हालत में दुखी होकर बोला– "तू इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हम सब लोग इनकी तरफ होंगे। मगर तू जो कर रहा है, उससे गाँव के बीच एक खाई जरूर बन जायेगी। तू हमारे जीते जी ऐसा नहीं कर पायेगा।"

"तो इसी बात पर मैं इन्हें इनकी औकात बताकर रहूँगा। मुझे असल कमनसल बताते हैं। जानमाल की धमकी देते हैं" कहकर वह दनदनाता हुआ चला गया।

वह थाने तक जायेगा, इसका भरोसा लोगों को अभी भी नहीं था और सरजू बाबा कतई यह उम्मीद भी नहीं करते थे। वे दिल के साफ आदमी थे। उन्हें न मन में गाँठ बाँधनी आती थी और न दूसरे व्यक्ति के विषय में ही वे ऐसा सोच पाते थे।

कलुआ थाने गया और पार्टी नेताओं का हवाला देकर हरिजन एक्ट के तहत रपट लिखाने को कहा। थानेदार ने जब हीला–हवाला किया, तो उसने कहा– "अगर आप नहीं लिखते हैं, तो मजबूरन मुझे विधायक जी को लेकर कप्तान साहब से मिलना होगा। फिर मेरा दोष न दीजियेगा।"

केदारी ने बसन्ती की ओर देखा और बसन्ती ने कलुआ की ओर। जैसे कहना चाह रही हो कि अब भी सरजू बाबा को समझ पाया है या नहीं। कलुआ का मन अकस्मात् ग्लानि से भर गया। उसका नशा उतर चुका था। जो व्यक्ति खुद जेल जाकर भी उसे जेल जाने से बचाना चाहता है, उसके प्रति अपने द्वारा लगाये गये झूठे आरोप का प्रतिफल क्या वह भुगत सकेगा? नहीं, इस काम के लिए उसकी आत्मा भी उसे माफ नहीं कर सकती है। दूसरे ही क्षण उसका सिर सरजू बाबा के कदमों पर था और वह हिचकियाँ भर–भर कर रो रहा था। सरजू बाबा उसे उठाकर उसकी पीठ ठोंकते हुए कह रहे थे– "अबे, रोता क्यों है? इतनी जल्दी होश में आ जाना तो खुशी की बात है।"

बसन्ती को लगा जैसे बेटे ने बाप के कफन की लाज रख ली है।

बात कलुआ ने इस झटके के साथ कही कि दरोगा जी को दीवान जी से कहना पड़ा– "लिख लो भाई इनकी रपट। नेतागीरी का जमाना है। आज ही सरजू को पकड़ने के लिए फोर्स भेज दीजिये।"

सरजू बाबा अपने घर में खाने बैठे ही थे कि गड़-गड़ करती मोटर साइकिल दरवाजे पर रुकी और पुलिस के जवान रायफलें ताने हुए इस तरह घर में घुसे, जैसे किसी खूंखार डाकू को पकड़ने आये हों। दरोगा ने अपना पिस्तौल सम्हालते हुए कहा– "हम तुम्हें गिरफ्तार करने आये हैं।"

'लेकिन क्यों?" रोटी का कौर थाली में रखकर खड़े होते हुए बाबा ने कहा।

'तुम कलुआ को गाली देते हो। जान से मारने की धमकी देते हो।' दरोगा जी दहाड़े।

'क्या गाँव घर भी कोई चीज है या कलुआ का कहा ही पत्थर की लकीर हो जायेगा" सरजू बाबा ने ठहर-ठहर का कहा।

इतनी देर में सारे गाँव के लोग सरजू बाबा के दरवाजे पर इकट्ठे थे और बसन्ती कलुआ की ओर हाथ उठाकर स्यापा जैसा करती हुई बोली– "तू इसी दिन के लिए जिन्दा है। बाप के ऊपर कफन डालनेवाले को यह बदला चुकाकर तूने सात पीढ़ियाँ तार दीं।"

दरोगा जी ने कलुआ की तरफ प्रश्न–सूचक दृष्टि डाली, तो कलुआ बोला– "इसकी बात पर न जाइये साहब। इसका दिमाग खराब है। इस बुढ्ढ़े ने मुझे जाति सूचक अपमान भरे मुहावरे का प्रयोग करते हुए माँ की गाली दी और जान से मार डालने की धमकी दी है।"

अब दरोगा जी सरजू बाबा की ओर घूम गये; लेकिन उत्तर बसन्ती ने दिया– "तुझे माँ की झूठी गाली से दुख लगता है और माँ का झोंटा पकड़कर मारने में तेरी शान बढ़ती है। यदि यही जान से मारनेवाले होते, तो आज तू जिन्दा नहीं होता।"

बसन्ती की बात की ताईद गाँव वालों ने भी की। दरोगा जी ने एक बार सोचा कि इस मामले को यहीं रफा-दफा कर दिया जाये। मगर जब कलुआ ने मामला आगे बढ़ाने की धमकी दी, तब दरोगा जी ने कहा– "बाबा! यह एक्ट ऐसा है कि मुकदमे की कार्यवाही तो मुझे करनी ही होगी। आप जमानत करवा लीजियेगा। वैसे आपके खिलाफ कोई बनता नहीं है। बाद में मैं इस हरामजादे पर चार सौ बीसी का केस चलाये बिना नहीं रहूँगा।'

'नहीं–नहीं, मैं निर्दोष साबित हो जाने के बाद भी यह नहीं चाहूँगा कि इस बेवकूफ पर कोई मुकदमा चले। इसके फाइल वाले रुपये तो उड़ जायेंगे और मुकदमा लड़ना पड़ेगा बेचारी बसन्ती को, जिसके पास अपना और इसका गढ़ा भरने के बाद पैसे बचेंगे नहीं और मजबूरन केस का खर्चा मुझे ही देना पड़ेगा। मैं बसन्ती के बेटे को जेल में देख सकता, इतना बज्जुर–करेजी मैं नहीं बन पाऊँगा। कलुआ भले ही बन जाये। इसका कलेजा अभी मजबूत है" सरजू बाबा ऊपर की ओर देखते हुए बोले।

केदारी ने बसन्ती की ओर देखा और बसन्ती ने कलुआ की ओर। जैसे कहना चाह रही हो कि अब भी सरजू बाबा को समझ पाया है या नहीं। कलुआ का मन अकस्मात् ग्लानि से भर गया। उसका नशा उतर चुका था। जो व्यक्ति खुद जेल जाकर भी उसे जेल जाने से बचाना चाहता है, उसके प्रति अपने द्वारा लगाये गये झूठे आरोप का प्रतिफल क्या वह भुगत सकेगा? नहीं, इस काम के लिए उसकी आत्मा भी उसे माफ नहीं कर सकती है। दूसरे ही क्षण उसका सिर सरजू बाबा के कदमों पर था और वह हिचकियाँ भर–भर कर रो रहा था। सरजू बाबा उसे उठाकर उसकी पीठ ठोंकते हुए कह रहे थे– "अबे, रोता क्यों है? इतनी जल्दी होश में आ जाना तो खुशी की बात है।"

बसन्ती को लगा जैसे बेटे ने बाप के कफन की लाज रख ली है। □

– ग्राम–मसीत, पोस्ट–साण्डला, हरदोई (उ०प्र०)

धन्य–धन्य बलिदान तुम्हारा

– डॉ० हरिवंश प्रसाद शुक्ल

वीर भूमि के अमर सपूतो, धन्य–धन्य बलिदान तुम्हारा।।
कोटि–कोटि कण्ठों से गूँजा, वीरव्रती जयगान तुम्हारा।।

खिले पुष्प–सा सुरभित यौवन, माँ के चरणों में कर अर्पण।
लिखा स्वर्ण इतिहास शौर्य का, धन्य–धन्य प्रतिदान तुम्हारा।।

आतंकी असुरों से जब–जब, हुआ क्षुब्ध नन्दन कानन यह।
महाकाल से गरज उठे तुम, धन्य–धन्य सन्धान तुम्हारा।।

ज्योति जगा दी राष्ट्रभक्ति की, प्राणों के नवदीप जलाकर।
हुआ निनादित अग जग सारा, धन्य धन्य जयनाद तुम्हारा।।

विश्व गगन में शौर्य तुम्हारा, उदित हुआ द्युतिमान सूर्य–सा।
भग्न तमस आतंक असुर का, धन्य धन्य अभियान तुम्हारा।।

– १२६/६४, जे ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–२०८००६

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' का भाद्रपद–२०५६ अंक मिला। सम्पादकीय में व्यक्त विचार मनन करने योग्य हैं। आज इस्लामिक आतंकवाद से भारत ही नहीं, अन्यान्य विकसित राष्ट्र भी चिन्तित हैं। 'अभय' जी ने जिस बेबाकी से इसकी चीरफाड़ की है, वह उनके तद्‌विषयक पकड़ की परिचायक है। एतदर्थ वे प्रशंसा के पात्र हैं।

लेखों में अजय मित्तल, डॉ० शिव कुमार एवं आनन्द शंकर ठीक लगे। वास्तव में इससे छद्‌म सेक्युलर नेताओं का चश्मा हटे और वे राष्ट्रीय गौरव, गर्व और गरिमा को पहचानें और तद्‌नुसार आचरण करें, तो बात बने। वचनेश जी एवं विप्लवी जी अपनी शोधपूर्ण पैनी दृष्टि के कारण प्रणम्य हैं।

कविताओं में राजनारायण चौधरी, सुमन पौराणिक, प्रसून एवं भावुक सहज भाव– सम्प्रेषणीयता एवं काव्यगत सौन्दर्य के कारण कुछ अधिक ही मनोहारी लगे। बालवाटिका सदैव की तरह महमहाती–लहलहाती रही। क्या कारण रहा भैया की चिट्ठी नहीं मिली। एक सुझाव है बाल कहानियों में वैज्ञानिक सोच वाली कहानियों को प्रमुखता दें।

– प्रमोद दीक्षित 'मलय'
भवानीगंज, अतर्रा, बाँदा

मैंने कहीं पर आपकी पत्रिका पढ़ी, पढ़कर अति प्रसन्नता हुई एवं आपके द्वारा प्रकाशित करायी गयी पत्रिका का हर लेख, कहानियाँ, कविताएँ एवं सम्पादकीय को पढ़कर मुझे अनुभव हुआ कि 'राष्ट्रधर्म' नामक पत्रिका कोई मामूली पत्रिका नहीं है। यह गुरु के समान सभी को शिक्षा देने वाली है। इस पुस्तक के माध्यम से हम विश्वव्यापी हिन्दुत्व की भावना तथा राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं, यह पत्रिका बिखरे हुए समाज को संगठित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

– अनमोल जिन्दल, नगर महासचिव
लक्ष्मीनगर, मुजफ्फरनगर

'राष्ट्रधर्म' पत्रिका अगस्त ९९ का अंके देखा। अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में 'इससे अच्छा मुहूर्त्त भला कब आयेगा' आपने द्वितीय विश्व युद्ध की ओर ध्यान आकृष्ट कर, उसके परिणामों का दिग्दर्शन कराकर, आजादी के बाद भारत–पाकिस्तान का विभाजन, बोफोर्स प्रकरण, देश की सुरक्षा में की जा रही असावधानियों और ..४७ से लेकर १९९९ तक घटी घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में कारगिल युद्ध की परिणति आदि का चित्रण इतने विद्वत्तापूर्वक, तथ्यात्मक और तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है कि राजनीतिज्ञों की आँखें खुल जानी चाहिए। ऐसे प्रेरणादायक सुन्दर लेख के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि भारत के हर जागरूक नागरिक को इस लेख को अवश्य पढ़ना चाहिए। यह लेख मेरे हृदय को इतना छू गया कि मैंने स्वयं दो बार पढ़ा। इस प्रसंग में मेरा सुझाव है कि भारत सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पाकिस्तान सरकार के विरुद्ध युद्ध–अपराध के आरोप में मुकदमा दायर करना चाहिए; क्योंकि उसने नियन्त्रण–रेखा पारकर हमारी भूमि पर जबरन कब्जा किया, हम अपनी ही भूमि पर अपनी भूमि बचाने के लिए लड़ें, उसने युद्धबन्दियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया। अपनी भूमि बचाने के प्रयास में हमारे ४००–५०० सैनिक शहीद हो गये, करोड़ों रुपयों की युद्ध सामग्री बर्बाद हुई, जन–धन की हानि हुई। अतः इन सबकी भरपाई मुकदमा दायर कर वसूल की जानी चाहिए। कृपया इस बारे में प्रधानमन्त्री, रक्षामन्त्री, विदेशी मन्त्री को सलाह दें।

– आर०जे० मौर्य
संयुक्त निदेशक, कृषि (से०नि०)
एच–१०४ हर्ष, चिनार रिट्रीट अपोजिट
मैदा मिल, भोपाल–११

'राष्ट्रधर्म' का 'लोकतन्त्र सुरक्षा अंक' मिला। इस विशेषांक में आपने भारतीय लोकतन्त्र के मूल चरित्र और उसकी समस्याओं को उद्‌घाटित कर दिया है तथा अपने सम्पादकीय में देशद्रोही एवं गद्दार शक्तियों को निराकृत कर दिया है। आपके सम्पादकीय में जिन तर्कों और दृढ़ शब्दावली से पाकिस्तान की बर्बरता, विश्वासघात एवं शत्रुता की आलोचना की गयी है, मैं उससे पूर्णतः सहमत हूँ तथा आशा करता हूँ कि भारत की जनता और देश की आने वाली सरकारें इस सत्य को पहचानेंगी और शत्रु को स्थायी सबक सिखायेंगी। कारगिल ने हमें कई सबक दिये हैं, शहाबुद्दीन गोरी ने भी हमें सबक दिये थे, परन्तु क्या हम अब भी इन सबकों से कुछ सीखना नहीं चाहेंगे? इक्कीसवीं शताब्दी इतिहास को स्मृति में जीवित रखने की शताब्दी तो हो ही, साथ ही भारत को एक सशक्त लोकतन्त्र बनाने के लिए हमारा संकल्प भी हो। आज हमें आपके सम्पादकीय विचारों जैसी दृढ़ता, स्पष्टता और विश्वास की आवश्यकता है जो स्वयं सक्रिय होकर देशहित में निर्णय और संकल्प ले सके। भारत के लोकतन्त्र की रक्षा और सुरक्षा इसी प्रकार हो सकती है।

– डॉ० कमल किशोर गोयनका
ए–९८, अशोक विहार, दिल्ली

'राष्ट्रधर्म' पत्रिका का दिनों दिन निखार आता जा रहा है। इसकी सम्पादकीय पत्रिका की जान होती है। डॉ० ओमप्रकाश जी पाण्डेय की 'चिट्ठी आयी पेरिस से', वहाँ की हिन्दू धर्म के रीति–रिवाजों की इसमें जानकारी मिलती है। कहानी 'भाभी' लेखक मदन मोहन पाण्डेय की अच्छी लगी। नरेन्द्र जी कोहली का लेख "दृष्टि" अति उत्तम लेख रहा। लेख के अन्तिम पैराग्राफ के वाक्य पितामह प्राण त्यागने के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, किन्तु उत्तरायण केवल मृत्यु के लिए नहीं होता है, वह जीने के लिए भी परम उपयोगी है।

– श्रीनाथ गुप्त
–चिनहट बाजार, लखनऊ

अलादीन का नाकारा जिन्न

- सुधीर ओखदे

चिराग घिसते ही पूरा कमरा धुएँ से भर गया। धीरे-धीरे एक विशालकाय मूरत उस छोटे से चिराग से निकलकर मेरे सम्मुख दाँत निपोरती खड़ी थी।

चिराग से निकला जिन्न आका! आका! की गुहार लगा रहा था और मैं डर के मारे थरथर काँपता किसी गली की तलाश में था, जहाँ से भाग निकलकर मुझे इस भीमकाय से छुटकारा मिलता।

जिन्न ने फिर गुहार लगायी, बोल मेरे आका! क्या आदेश है? अब तक मैं भी सम्हल चुका था और उस पुराने चिराग को पहचान चुका था, जिसे न जाने किस जमाने में कबाड़ी की दूकान से उठा लाया था।

मैंने उससे प्रश्न किया, तू कौन-सा कार्य कर सकता है? तो उलटे वह मुझसे ही पूछने लगा, आपने मेरी कहानियाँ नहीं पढ़ीं?

मैं मिठाई ला सकता हूँ, घर को महल बना सकता हूँ; आपका घर हीरे-जवाहरातों से भर सकता हूँ; अच्छे परिधान ला सकता हूँ; दूर देश की राजकुमारी ला सकता हूँ। मैं यह कर सकता हूँ, मैं वह कर सकता हूँ। क्या है जो मैं नहीं कर सकता?

मैंने सोचा, यह तो प्राचीन काल की बातें कर रहा

मैंने सोचा, यह तो प्राचीन काल की बातें कर रहा है। जब यह किसी मैदान में एकाएक महल खड़ा कर देता था और वह भी दास-दासियों एवं प्रजा के साथ और उस काल में कोई यह पूछता भी नहीं था कि इस महल का निर्माण किस नियम के अन्तर्गत किया गया है।
अब तो निर्माण करने की देर भर है। अतिक्रमण विभाग वाले उसे पलक झपकते ही मिट्टी कर देंगे और खाकी वर्दी वाले परेशान करेंगे सो अलग। हो सकता है, काले कोटवाले भी मामले को गंभीरता से लें। नहीं बाबा नहीं, मुझे महल-वहल नहीं चाहिए।
और यदि इसने मेरा घर हीरे-जवाहरातों से भर दिया तो?
मुझ फटीचर के पास हीरे जवाहरात देखने भर की देर है कि कानून, पुलिस एवं आयकर विभाग वाले पीछे पड़ जायेंगे। नहीं तो धरती के जिन्नों के चंगुल से तो मेरा पीछा कोई नहीं छुड़ा सकता।
एक राजकुमारी माँगने भर की देर है कि महल के सामने मजनुओं की लाइन लग जाएगी।

है। जब यह किसी मैदान में एकाएक महल खड़ा कर देता था और वह भी दास-दासियों एवं प्रजा के साथ और उस काल में कोई यह पूछता भी नहीं था कि इस महल का निर्माण किस नियम के अन्तर्गत किया गया है।

अब तो निर्माण करने की देर भर है। अतिक्रमण विभाग वाले उसे पलक झपकते ही मिट्टी कर देंगे और खाकी वर्दी वाले परेशान करेंगे सो अलग। हो सकता है, काले कोटवाले भी मामले को गंभीरता से लें। नहीं बाबा नहीं, मुझे महल-वहल नहीं चाहिए।

और यदि इसने मेरा घर हीरे-जवाहरातों से भर दिया तो?

मुझ फटीचर के पास हीरे जवाहरात देखने भर

तो यह वही अलादीन का जिन्न है। पता नहीं कितने वर्षों से यों ही कबाड़ी की दूकान पर पड़ा होगा। क्या यह अब भी उसी तत्परता से सारे कार्य करता होगा, जैसा किताबों में वर्णित है अथवा सरकारी कार्यालय में वर्षों से कार्य न करने वाले कर्मचारी की तरह अकर्मण्य हो गया होगा?

पर यह तो अब भी निजी संस्थान में कार्यरत कर्मचारी की तरह व्यवहार कर रहा है, जो इसकी कार्य-तत्परता का परिचायक है।

मैंने देखा वह अभी भी दाँत निपोरता खड़ा था और बोल मेरे आका! बोल मेरे आका! की गुहार लगा रहा था।

की देर है कि कानून, पुलिस एवं आयकर विभाग वाले पीछे पड़ जायेंगे। नहीं तो धरती के जिन्नों के चंगुल से तो मेरा पीछा कोई नहीं छुड़ा सकता।

एक राजकुमारी माँगने भर की देर है कि महल के सामने मजनुओं की लाइन लग जाएगी।

नहीं! नहीं। यह सब प्राचीन काल में ही उचित था। तब किसी से संपत्ति का ब्योरा नहीं लिया जाता था। अतः रातोंरात बने राजा और महल दोनों को मान्यता प्राप्त थी।

मैंने देखा, जिन्न अभी भी धुएँ के बीच हवा में लहराता "बोल मेरे आका" की रट लगा रहा था।

मैंने सोचा, इससे व्यक्तिगत कार्य करवाने की अपेक्षा देश के हित में कार्य करवाए जायें, ताकि देश का कल्याण हो सके।

भारत में घोटालों की एक शृंखला-सी चल रही है। एक घोटाला समझ में आता नहीं कि दूसरा घोटाला मुँह फाड़े सामने घूमने लगता है। हमारा गुप्तचर विभाग भी अब तक इस सम्बन्ध में उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर सका है।

क्यों न यह कार्य इस जिन्न को सौंपा जाए, जो सूटकेस के रहस्य को सुलझाए, हवाला का पता लगाए, ठंडे बस्ते में पड़े बोफोर्स को खुली हवा दे; सरकारी मकानों के आवंटन सम्बन्धी घोटाले का पता लगाए, यूरिया के अदृश्य होने के रहस्य को सुलझाए; रामजन्म भूमि- बाबरी मस्जिद मसले को सुलझाए, कश्मीर, असम, झारखंड और उत्तराखंड की समस्याओं का निदान करे। वह यह करे, वह करे।

मैंने उस समय जिन्न से मात्र एक पान मँगवा कर छुटकारा पाया और दूसरे सभी प्रतिष्ठित अखबारों में उस चमत्कारी जिन्न के बारे में छपवाया कि मेरा जिन्न कल सभी घोटालों का पर्दाफाश करेगा; भारत में व्याप्त सभी समस्याओं को सुलझाएगा।

दूसरे दिन सार्वजनिक रूप से मुझे मुँह की खानी पड़ी। चिराग घिसते-घिसते मेरे हाथों में गठानें आ गयी हैं, पर जिन्न प्रकट होने का नाम ही नहीं ले रहा है।

क्या इन घोटालों को कोई चमत्कारी शक्ति भी हल नहीं कर सकती? क्या [illegible]नी के जिन्न उस आसमानी जिन्न से ज्यादा ताकतवर है? क्या घोटाले इसी प्रकार प्रकट होते रहेंगे और हमारे प्रशासनिक जिन्न भेस बदल-बदल कर केवल "बोल मेरे आका" की गुहार लगा कर लुप्त होते रहेंगे? □

-III/2, आकाशवाणी कालोनी, जलगाँव- ४२५००१ (महाराष्ट्र)

(पृष्ठ १० का शेष) **सोनिया गांधी और...**

कि विदेशी मूल होने पर भी सोनिया गांधी को भारत का प्रधान मंत्री बनाया जाए? इतने बड़े देश में क्या कोई व्यक्ति इतना योग्य नहीं, जो इसकी बागडोर सम्भाल सके? क्या यह सोचना भी बहुत शर्म की बात नहीं है कि भारत में ऐसा व्यक्ति नहीं है!

श्रीमती सोनिया गांधी को प्रधानमंत्री बनाने की वकालत करनेवालों को ज्ञात होना चाहिए कि उनसे भारत की जनता यह प्रश्न अवश्य करेगी कि मान लीजिये कि भारत के हितों में और इटली के हितों में ऐसा टकराव होता है कि उनमें सामञ्जस्य असम्भव हो जाता है, तो प्रधानमंत्री के रूप में वे किसका साथ देंगी? कांग्रेस जन इस प्रश्न का उत्तर सोनिया जी से प्राप्त कर लें। □

बाअदब बामुलाहजा होशियार...(2)

क्या किसी को फिजो की याद है? फिजो कौन था; उसका 'उद्भव और विकास' कैसे हुआ था? पादरी स्कॉट कौन था? उसे संरक्षण क्यों और कैसे तथा किसका प्राप्त हुआ था? उसे देश से निकालने में कौन-कौन तत्त्व बाधक बने रहे थे? लालडेंगा कौन था? उसकी विद्रोही हरकतें लगातार बीस-बाइस साल तक कैसे चलती रही थीं? उसके आगे सरकार के एकदम झुक जाने के पीछे कारण क्या था? असम के लगातार खण्ड पर खण्ड किये जाने के पीछे किसका दबाव रहा था? नागालैण्ड, (नाग प्रदेश नहीं) मेघालय, मिजोरम जैसे राज्य बनाये जाने के पीछे का रहस्य क्या था? उल्फा और बोडो विद्रोहियों के पीछे कौन है? 'गोरखालैण्ड' और 'बोडोलैण्ड' (इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, आइसलैण्ड, पोलैण्ड, फिनलैण्ड, ग्रीनलैण्ड जैसे नामों की तर्ज पर) की माँग क्यों उठायी गयी? इन विद्रोहों की अनकही कहानी क्या है? ऐसे अनेक प्रश्न अब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गये हैं।

गोपनीयता, आतंक और झूठे प्रचार को सिद्धान्त माननेवाले तथा इन्हें पूरी निष्ठा से क्रियान्वित करने में मनोयोग से जुटे ईसाई माफिया गिरोह 'ओपस डेई' का सरगना पोप पाल (द्वितीय)।
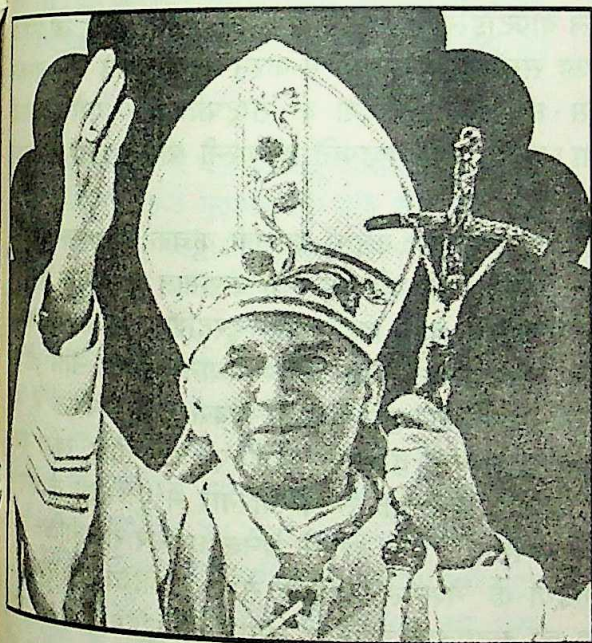
१९६२ में हुए चीन के आक्रमण को अभी देश भूला नहीं है। उस समय अपने चहेते रक्षामन्त्री वी०के० कृष्णमेनन के माध्यम से कम्युनिस्टों के वैचारिक इन्द्रजाल में फँसकर अपने ही कल्पना-लोक में विहार करने वाले प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू को 'मरता क्या न करता' के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका की शरण में जाना पड़ा था शस्त्रास्त्र एवं अन्य सैन्य सहायता के लिए। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जॉन एफ० कैनेडी ने तत्काल सैन्य-सहायता तो दी; परन्तु एक गुप्त शर्त के साथ। यह शर्त थी असम के ईसाई-बहुल क्षेत्रों के पृथक्-पृथक् राज्य बनाये जाने की। फलतः सबसे पहले बना नागालैण्ड-जी हाँ; नागालैण्ड, जिसे सुनकर आज भी बहुतेरे लोग उसे कोई योरुपीय देश समझ बैठने की भूल करते मिल जायेंगे। विद्रोही फिजो भले ही इंग्लैण्ड में मरा हो; पर उसका चहेता 'नागालैण्ड' तो बन ही गया। इसी नागा क्षेत्र में विदेशी मिशनरी पादरी स्कॉट की भारत-विरोधी गतिविधियाँ खुल्लमखुल्ला चलती रही थीं और जब उसके निष्कासन का आदेश हुआ, तो जय प्रकाश नारायण जैसे देशभक्त स्वतन्त्रता-सेनानी उक्त निष्कासन के विरोध में स्कॉट का समर्थन करने नागालैण्ड उसी तरह जा पहुँचे, जिस तरह आजकल मानवाधिकारवादी हर देशद्रोही, विद्रोही, आतंकवादी के समर्थन में सामने आ खड़े होते हैं।

देश की स्वतन्त्रता के गत ५२ वर्षों में जिस प्रकार देश क्रमशः ईसाई आतंकवाद (और इस्लामी आतंकवाद) में जकड़ता चला गया, उसकी पूरी गाथा लिखी जाने पर एक महाग्रन्थ बन जायेगा; किन्तु वर्त्तमान

में जो प्रत्यक्ष संकट सुरसा के मुंह की तरह निरन्तर बढ़ती जा रहा है, वह है अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई–षड्यन्त्र के कर्त्ता–धर्त्ता पोप–तन्त्र का, जिसका केन्द्र है इटली की राजधानी रोम के 'नगर के अन्दर नगर राज्य' वैटिकन सिटी। यह वैटिकन सिटी केन्द्रित पोप–तन्त्र गत अनेक वर्षों से ईसाई माफिया संगठन 'ओपस डेई' के हाथों सञ्चालित हो रहा है। 'ओपस डेई' का अर्थ है 'ईश्वर का कार्य' और 'ईश्वर का यह कार्य' सृष्टि के आदि से लेकर अब तक, जितने प्रकार के घृणित से घृणित और जघन्य से जघन्य अपराध एवम् पाप हो सकते हैं, उन सबको ईसाइयत के लिए एकदम जायज मानता है। वैटिकन की पोल खोलनेवाले पिको मिनोरली जैसे खोजी पत्रकार की हत्या इस 'ओपस डेई' ने इटली के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मारिओ अण्ड्रियोट्री के माध्यम से करायी थी। दिल्ली के कतिपय पत्रकारों की हत्या में भी इसी ईसाई माफिया संगठन का हाथ होने का सन्देह किया जाता है।

इसी ५ नवम्बर को जो पोप पाल (द्वितीय) भारत सरकार का अतिथि बनकर नयी दिल्ली आ रहा है, उसके पोप बनने की कहानी भी कुछ इस प्रकार है– पोप पाल (प्रथम) के पोप पद पर अधिष्ठित होने के एक महीने के अन्दर ही उनकी हत्या इस कारण कर दी गयी कि वह चर्च को परिवार–नियोजन हेतु निरोधक उपाय किये जाने जैसे कुछ सुधारात्मक कार्यों की अनुमति देने के लिए प्रस्तुत हो गये थे। 'ओपस डेई' के षड्यन्त्र का शिकार बना दिये गये पोप पाल (प्रथम) के स्थान पर जिस व्यक्ति को पोप 'निर्वाचित' किया गया, उसका नाम था कारोल वोज्टाइला। वही व्यक्ति कारोल वोज्टाइला आज का पोप पाल (द्वितीय) है, जो एशिया भर के बिशपों का सम्मेलन करने भारत आ रहा है। यह सम्मेलन हांगकांग में करने की अनुमति चीन सरकार ने नहीं दी; पर भारत ठहरा 'धर्म–निरपेक्ष' ! तो इस 'धर्म–निरपेक्ष' देश के राष्ट्रपति द्वारा ऐसे 'अपराधी' कैथोलिक सर्वेसर्वा को राजकीय भोज भी दिया जायेगा। स्मरण रहे, राष्ट्रपति की पत्नी श्रीमती उषा नारायणन् बर्मी मूल की कैथोलिक ईसाई हैं।

तो सोनिया गांधी को भारत के प्रधानमन्त्री पद पर अधिष्ठित कराने का जो कुचक्र गत एक–डेढ़ वर्ष से जिस प्रकार तूफानी गति से चलाया गया, वह इसी 'ओपस डेई' की षड्यन्त्री करामात का नमूना है। भले ही सोनिया गांधी प्रधानमन्त्री नहीं बन पायीं (कुछ 'मुलायम–कृपा' कुछ 'आडवाणी–दूरदर्शिता' – २७२ की फूँद); किन्तु अमेठी और बेल्लारी वालों की करोड़ों रुपयों वाली नासमझी से विपक्ष की संविधान–सम्मत 'नेता' तो बन ही गयीं। 'मदर' टेरेसा के बाद सोनिया गांधी ही 'पोप–तन्त्र' की इस देश में सबसे बड़ी 'एजेण्ट' हैं, यह परिस्थिति–जन्य साक्ष्यों से स्वतः स्पष्ट हो जाता है। इन्दिरा गांधी द्वारा सी०आई०ए० का 'हौवा' खड़ा करने की खिल्ली उड़ानेवालों की समझ में अब तो आ ही जाना चाहिए कि उनके परिवार में पुत्र–वधू के रूप में सोनिया माइनो का प्रवेश कराने के पीछे किसका हाथ रहा होगा ? इस देश के अनेक धुरन्धर राजनीतिक लोग इस पोप–तन्त्र के 'पे–रोल' पर हैं, यह बात तो ईसाइयों के 'नेशनल मीडिया सेण्टर, कोच्चि' के एक अति गोपनीय परिपत्र में स्पष्ट उल्लिखित है। भारत में 'पोप की कठपुतली सरकार' बनाने की मुहिम लगातार जारी है। जिस प्रकार पूरे योरुप को आतंकवादी उपायों से ईसाई बनाने वाले पादरी पाल को और गोआ को ईसाई–बहुल बनानेवाले पादरी जेवियर को चर्च द्वारा भूतकाल में 'सेण्ट' की उपाधि से विभूषित किया गया था, उसी प्रकार तथाकथित 'मदर' टेरेसा को भी इसी अवसर पर इस पोप द्वारा 'सेण्ट' घोषित कर दिया जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

पहले सी०आई०ए० और अब आई०एस०आई० के खतरे से जूझ रहे इस सनातन राष्ट्र को 'ओपस डेई' और उसके सरगना पोप पाल (द्वितीय) के षड्यन्त्रपूर्ण कुचक्रों से सतत सतर्क रहना होगा। अतएव–

बाअदब बामुलाहजा होशियार ! पोप की सवारी फिर आ रही है !!!

□

– आनन्द मिश्र 'अभय'

नागपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विजयादशमी उत्सव-

गुणों की पूजा करें, धन या सत्ता की नहीं

इस वर्ष संघ अपनी स्थापना के ७५वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। अस्वस्थता के कारण पूज्य रज्जू भैया संक्षिप्त उद्‌बोधन ही दे पाये। अतः संघ के सरकार्यवाह श्री हो०वे० शेषाद्रि जी ने स्वयंसेवकों को विस्तार से सम्बोधित किया। प्रस्तुत हैं उद्‌बोधन के सम्पादित अंश–

संघ के कार्य के गत ७५ वर्ष के इतिहास को यदि हम देखें तो एक विशेष बात ध्यान में आती है, वह है– उसकी निरन्तर प्रगति। लगातार कई दलों और प्रचार माध्यमों के द्वारा संघ की उपेक्षा, उपहास और विरोध होता रहा। उस पर ३–३ बार सरकारी प्रतिबन्ध भी लगाये गये। इन सबके बावजूद संघ आगे ही बढ़ता जा रहा है।

कार्य प्रगति के त्रि–सूत्र

इसी कालावधि में चल पड़े कई लोकप्रिय आन्दोलन, संस्थाएँ, घोषणाएँ आज मृतप्राय हो गयी हैं। जैसे एक जमाने में भारत में ही नहीं, अपितु विश्व भर में बहुप्रचारित साम्यवाद, समाजवाद आदि 'वाद' आज नाममात्र के लिए ही शेष रह गये हैं। भूदान, ग्रामदान, गरीबी हटाओ, समग्र क्रान्ति, सम्पूर्ण क्रान्ति जैसे आन्दोलन भी कुछ दिन तक चमक कर समाप्त हो गये। सर्वोदय जैसे उदात्त संगठन भी दुर्भाग्य से आज काफी दुर्बल बन चुके हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की इस गतिशीलता के बुनियादी तीन सूत्र हैं। हिन्दू राष्ट्रीयता का सत्य सिद्धान्त, अपने राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों में उसकी अभिव्यक्ति के लिए कटिबद्ध, ध्येयनिष्ठ, निःस्वार्थी कार्यकर्त्ताओं की शृंखला तथा ऐसे कार्यकर्त्ताओं के निरन्तर निर्माण की प्रक्रिया यानी कार्यपद्धति।

राजनीतिक परिवर्त्तन के संकेत

भाजपा की स्थापना और प्रगति के मूल में संघ द्वारा प्रतिपादित हिन्दू राष्ट्रीयता का ही सिद्धान्त रहा है, यह बात सर्वविदित है और आज अपने देश के राजनीतिक रंगमंच पर सबसे प्रमुख पार्टी के नाते भाजपा उभर कर आयी है। साथ ही भाजपा के साथ कई प्रकार के दल जैसे- द्रमुक, तेदेपा, शिवसेना, अकाली दल, भारतीय राष्ट्रीय लोकदल, जनता दल (संयुक्त), तृणमूल कांग्रेस आदि ऐसे विभिन्न विचार और प्रकृति के दलों ही नहीं, अपितु अन्य छोटे–मोटे दलों और व्यक्तियों ने भी हाथ मिलाया है। भले ही इन सबको हिन्दू राष्ट्रीयता का विचार स्वीकार नहीं होगा, फिर भी भाजपा के साथ हाथ मिलाने में उनको कोई संकोच नहीं लगा यानी राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू–हिन्दुत्व के उच्चारण से पहले परहेज रखा जाता था, उस प्रकार की राजनीतिक अस्पृश्यता अब लगभग समाप्त हो गयी है।

लोगों को यह लगना भी स्वाभाविक है कि आज के सत्ताधारी राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन का शासन ५ साल तक अच्छी–स्थिर सरकार प्रदान कर सकता है। इस प्रकार के जन–विश्वास के पीछे प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के सर्व–समन्वयकारी कुशल नेतृत्व का भी बड़ा योगदान रहा है, इसमें सन्देह नहीं।

केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु जीवन के सभी क्षेत्रों में जैसे– शिक्षण, विद्यार्थी, मजदूर, कृषक, वनवासी, धार्मिक, स्वदेशी आदि में भी हिन्दुत्व की इसी राष्ट्रीय अस्मिता से प्रेरित संगठन अपने–अपने क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभावी बने हुए हैं। गत कई दशकों से और विशेष रूप से देश स्वतन्त्र होने के पश्चात् अपने देश में हिन्दुत्व विरोधी विचारों का ही सर्वत्र प्रभुत्व बना रहा। अब इस परिवर्त्तन का संकेत यही है कि अपना देश फिर से अपनी प्राचीन सच्ची राष्ट्रीय अस्मिता के बारे में जाग्रत् हो रहा है। भारत के स्वातन्त्र्य–संघर्ष के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक प्रेरणादाताओं में से महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, योगी अरविन्द से लेकर प्रत्यक्ष राजनीतिक संघर्ष में नेतृत्व करने वाले 'लाल–बाल–पाल', सावरकर और गांधीजी तक सभी ने इस सिद्धान्त को विभिन्न परिभाषाओं में जैसा प्रतिपादित किया था, उसी धारा को आज का यह परिवर्त्तन आगे बढ़ा रहा है।

आर्थिक क्षेत्र के बारे में चेतावनी

अपने सामने आर्थिक–समस्या दिन–प्रतिदिन अधिक विकट होने की सम्भावना है। प्रधानमन्त्री ने कह दिया है कि इस दृष्टि से कठोर निर्णय लेने पड़ेंगे, क्योंकि देश की सुरक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिये बिना अपने देश की अखण्डता भी खतरे में पड़ सकती है। यह कटु पाठ कारगिल ने देश को सिखाया है। समाज के विभिन्न वर्गों में विषमता भी बढ़ती जा रही है। गतः कुछ वर्षों से अमीर वर्ग अधिक अमीर होता हुआ और गरीब और अधिक गरीब होता हुआ दिखायी पड़ता है। बेरोजगारी के साथ–साथ विदेशी कर्ज का बोझ भी अपने देश पर बढ़ता जा रहा है। इसका मूल कारण बताते हुए अपने देश के निष्पक्ष अर्थचिन्तक चेतावनी दे रहे हैं कि पाश्चात्य आर्थिक–सिद्धान्तों को ही अपने देश में आधार माना गया। अब तो सर्वत्र 'ग्लोबल विलेज' (वैश्विक ग्राम) का आकर्षक नारा सुनाई दे रहा है। किन्तु 'ग्लोबल विलेज' का असली स्वरूप बन गया है– 'ग्लोबल मार्केट' (वैश्विक बाजार), जिसमें बाजार के जैसी ही सारी नीतियाँ चलती हैं। विश्व व्यापार संगठन का भी उद्देश्य यही है। इसमें व्यापार, उद्योग और प्रौद्योगिकी में जो पहले से अगुआ होकर सम्पन्न और सबल राष्ट्र बनें हुए हैं, उनका ही वर्चस्व बना हुआ है। इन सभी के परिणामस्वरूप अविकसित और विकासशील देशों के लिए ऐसे प्रबल राष्ट्रों के सामने स्पर्द्धा में खड़ा होना भी असम्भव–सा हो गया है। ऐसे देशों की आर्थिक स्थिति किस तरह बिगड़ती जा रही है, इसका विवरण स्वयं संयुक्त–राष्ट्र–संघ की व्यापार और विकास समिति तथा मानव विकास समिति दोनों ने अपनी–अपनी वर्ष १९९९ की रपट में स्पष्ट करते हुए कहा कि विश्व के प्रबल राष्ट्रों और भारत जैसे अन्य विकासशील राष्ट्रों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। इतना ही नहीं, सभी देशों में अमीर और अन्य वर्गों के बीच का अन्तर भी बढ़ रहा है।

अपने देश में छोटे और कुटीर उद्योग–प्रधान ग्राम विकास, परम्परागत भारतीय प्रौद्योगिकी प्रतिभा को मुक्त अवसर आदि पहलुओं को प्राथमिकता देने के अलावा और कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखता।

कारगिल का सन्देश

कारगिल युद्ध के पश्चात् देशभर में देशभक्ति का जो ज्वार उमड़ पड़ा है, उसको बनाये रखते हुए राष्ट्र–विकास के प्रत्येक क्षेत्र में उसको प्रभावी करने की आवश्यकता है। 'इण्डिया टुडे' पत्रिका में हाल में प्रकाशित १८ से २१ साल के युवक और युवतियों से विभिन्न मुद्दों पर जो अभिमत संग्रह किया गया है, उसके अनुसार 'स्वदेशी का ही प्रयोग करें', ऐसा कहने वाले ७० प्रतिशत, भारत में ही रहकर भारत के विकास में अपना सहयोग देने की इच्छा रखने वाले ७५ से ८० प्रतिशत और शत्रु के आक्रमण से देश को सुरक्षित रखने के लिए सेना में भर्ती होने की तैयारी रखने वाले ६० प्रतिशत हैं। इसको ध्यान में रखकर अपने बड़े–बड़े उद्योगपतियों द्वारा आगे बढ़कर उनकी प्रतिभा के लिए मुक्त अवसर देने की दृष्टि से प्रौद्योगिकी के शोध एवं विकास के कार्य को अग्र मान्यता दी जानी आवश्यक है।

भारत की नैतिक जिम्मेदारी

आज प्रतिभाशाली नवयुवक चिकित्सा, अभियान्त्रिकी अथा अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा, व्यापार और औद्योगिक उपयोग के प्रबन्धक आदि अधिक धन और प्रतिष्ठा कमाने के रास्ते पर चल रहे हैं। यह भी आवश्यक है कि वे सेना के विभिन्न विभागों में प्रवेश करते हुए बुद्धिमत्ता और शौर्य प्रकट करें, ऐसी प्रेरणा जगायी जाये। केवल वीरगति प्राप्त करने वाले सेनाधिकारियों के प्रति ही नहीं, अपितु सामान्य दिनों में भी सेना में भर्ती होकर अपनी सेवा प्रदान करने वाले लोगों के प्रति भी समाज में सम्मान बढ़े, यह भी अति आवश्यक है।

अब इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी हम सभी के ऊपर है। अपनी समाज–रचना की सबसे बड़ी विशेषता तो यही है कि यहाँ पर गुणों की पूजा होती रही है, धन अथवा सत्ता की कभी नहीं।

पोप से अनुरोध

चीन, ताइवान, श्रीलंका जैसे देशों में रोमन कैथोलिक पन्थ के प्रमुख पोप को अपने यहाँ प्रवेश के लिए अनुमति नहीं दी, क्योंकि उसके परिणामतः ईसाई मत के प्रचार को ही बल मिलता है; परन्तु भारत ने अपनी उदार परम्परा के अनुसार पोप को उन्हीं की विनती पर स्वीकृति दी है। इस दृष्टि से उनसे यही अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि एक राजकीय प्रतिनिधि के रूप में आने के बाद वे उसी के विधि–निषेधों का पालन करें और भारत की परम्परागत सर्व–पन्थ समादर नीति के अनुसार अपने भाषण और आचरण करें। □

पूज्य रज्जू भैया जी का उद्‌बोधन

तेजी से राष्ट्र-निर्माण के कार्य में जुटें

नागपुर के संघ प्रेमी बन्धुओ, माता–बहनो और प्रिय स्वयंसेवक बन्धुगण!

कुछ मास पूर्व अस्थिभंग और अस्वस्थता के कारण मेरा प्रवास लगभग नहीं हुआ। केवल कुछ व्यक्तियों और कार्यकर्त्ताओं से ही मिलना हो सका। इसलिए मैंने सोचा कि इस बार विजयदशमी उत्सव पर मा० सरकार्यवाह जी अपने अनुभव के आधार पर मार्गदर्शन करें। यद्यपि मैं अधिक देर नहीं बोल सकता, फिर भी मुझे उनका यह आग्रह स्वीकार करना पड़ा कि उनके उद्‌बोधन से पूर्व मैं भी अवश्य कुछ बोलूँ।

स्वतन्त्रता प्राप्त के ५० वर्ष पूर्ण होने पर लोकसभा में तीन दिन तक अनेक विषयों पर खुली चर्चा करायी गयी, जिसके लिए तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री पी०ए० संगमा बधाई के पात्र हैं। सांसदों ने पं० जवाहरलाल जी और श्रीमती इन्दिरा गांधी जैसे प्रभावी व्यक्तियों के न रहने पर खुलकर चर्चा की और देश के लिए हानिकारक उनकी कई नीतियों पर कड़ी टीका की। प्रजातन्त्र में बोलने की स्वतन्त्रता होती है; पर नेहरू–इन्दिरा काल में लोग डरते थे तथा सत्य कहने में संकोच करते थे। आज वे नहीं हैं और उनकी पार्टी सिकुड़ते–सिकुड़ते अपनी सबसे निचली स्थिति में पहुँच गयी है। आज उनकी कुछ नीतियों का डटकर विरोध कांग्रेसी और विरोधी दोनों पक्ष कर रहे हैं।

देश के स्वतन्त्र होने के कुछ ही दिन बाद नेहरू जी देश में कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति रह गये तथा महात्मा गांधी और सरदार पटेल का अंकुश भी उठ गया। विदेश में पढ़ने, भारत की संस्कृति का गहरा ज्ञान और स्वाभिमान न होने के कारण नेहरू जी बाहर हुई घटनाओं से प्रभावित हो गये। रूस में प्रचलित समाजवाद से प्रभावित होकर उन्होंने भारत में भी उसे लागू कर दिया और इसे आधार नहीं बनाया कि भारत का भी कोई चिन्तन है। समाजवाद की नीतियों पर चलकर ग्रामों के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया। गांधीजी ने उस समय इस नीति का विरोध किया था। फलस्वरूप भारत की प्रगति भी अवरुद्ध हो गयी। स्वयं रूस में भी जब समाजवाद छोड़ दिया गया और संसार भर में यह एक गन्दा शब्द बन गया तब भारत ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया। **आज अपने देश की पुलिस और प्रशासन में अंग्रेजों का १०० साल पुराना कानून चल रहा है, उसमें नये चिन्तन के आधार पर परिवर्त्तन नहीं किया गया। जो बातें अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए बनायी थीं उनसे स्वतन्त्र भारत की उन्नति कैसे हो सकती है?**

इस समय देश में सेकुलर व गैर–सेकुलर की जोर–शोर से चर्चा हो रही है। यूरोप में जब ईसाइयत का प्रभाव बढ़ा, तो तत्कालीन राजाओं ने अनुभव किया कि पोप महोदय शासन में बहुत हस्तक्षेप करते हैं। तब उन लोगों ने तंग आकर उनका यह हस्तक्षेप हटाने के लिए सेकुलरिज्म का नारा बुलन्द किया और कहा कि सरकार के कामकाज में किसी पन्थ और सम्प्रदाय का हस्तक्षेप नहीं रहेगा। पर उसका अर्थ लोगों को धर्मनिरपेक्ष बनाना नहीं था। हमारे यहाँ तो प्रशासन में पन्थनिरपेक्षता हजारों वर्ष पुरानी है; पर वह सकारात्मक रूप में है। हमारा देश कहता है 'सर्वपन्थ समादर'; परन्तु धर्मनिरपेक्षता नहीं। सारा सम्भ्रम इसलिए पैदा हुआ कि अंग्रेजी के 'रिलीजन' के लिए हमारे यहाँ धर्म शब्द का प्रयोग किया गया। 'रिलीजन' का सही पर्याय है 'पन्थ' या 'सम्प्रदाय'। धर्म अधिक व्यापक शब्द है जिसमें उन सारी रचनाओं, व्यवस्थाओं एवं गुणों का समावेश है जो समाज की धारणा हेतु आवश्यक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि जब–जब धर्म की ग्लानि होती है तब–तब मैं धर्म की स्थापना के लिए जन्म लेता हूँ। 'धारणात् धर्ममित्याहुः' धर्म तो समाज की धारणा करता है। वह गुणों का समुच्चय है– ऐसे गुण जो समाज को सच्चाई की ओर ले जाते हैं और भ्रष्टाचार से बचाते हैं; परन्तु उसी धर्म को भुलाने के लिए कई नेता प्रयत्नशील हैं। देश को अभी समझना पड़ेगा कि बाहर की कल्पनाएँ ज्यों की त्यों भारत में लागू नहीं की जा सकती हैं। **यह हमारी मानसिक दासता का परिणाम है कि हमें विदेशी वस्तुएँ अच्छी लगती हैं– चाहे सिद्धान्त हों या व्यक्ति।** राष्ट्र की स्वतन्त्रता केवल राजनीतिक नहीं है। उसके चिन्तन में भी अपने स्वाभिमान की आवश्यकता होती है।

संघ अपने ७५ वर्ष की तपस्या में इन्हीं विचारों को सारे समाज में प्रसारित करने के लिए प्रयत्नशील रहा है और हमें प्रसन्नता है कि धीरे–धीरे सारे समाज के प्रत्येक वर्ग तक यह विचार पहुँचा है; **साथ ही संघ ने बहुत श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता तैयार किये हैं, जो प्रत्येक क्षेत्र में जाकर ऐसे राष्ट्रीय स्वाभिमान से युक्त स्वावलम्बी और समर्थ भारत खड़ा करने में लगे हैं, जो विश्व को शान्ति और मैत्री का सन्देश दे सके। इस कार्य में अब तेजी लाने की आवश्यकता है, क्योंकि परिस्थितियाँ अनुकूल होती जा रही हैं। इसका लाभ उठाकर सभी लोग विजय के इस पर्व पर संकल्प करें कि हम और अधिक शक्ति के साथ इस राष्ट्र निर्माण के कार्य में लगेंगे।**

☆

राजनीति

एक जायेगा, तो सैकड़ों आयेंगे

– हृदयनारायण दीक्षित

भारतीय प्रेस सरकार से ज्यादा ताकतवर है; मगर राष्ट्र निर्माण की अपनी भूमिका के निर्वहन में उसकी भूमिका प्रायः शंकाओं और आलोचनाओं के घेरे में रही है। भारत के राष्ट्रजीवन में गंगा का प्रवाह भी है, गन्दी नाली की मानसिकता भी है; फूलों की महक भी है, काँटों की भी कमी नहीं है। शास्त्रीय संगीत के आकाश छूते सनातन आयाम आज भी मौजूद हैं, तो पेल्विक (कमर की हड्डियों) हलचल वाली तेज अराजक धुनें भी हैं। शुभ भी है, अशुभ भी। सत्य, शिव और सुन्दर एक साथ आज भी देखे जा सकते हैं। असत्य, अशुभ और कुरूपता की भी कमी नहीं है; किन्तु प्रेस अशुभ को ज्यादा महत्व दे रहा है।

हमारी राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा भारत को सत्य, शिव और सुन्दरतम परम वैभवशाली राष्ट्र देखने की है। परम वैभवशाली राष्ट्र की हमारी अभीप्सा सनातन है। ऐसा नहीं कि आज का भारत ही तमाम अशुभ, असत्य और विपदाओं का शिकार है। प्राचीनकाल में भी अपराध थे, अपराधी थे, समाजविरोधी भी थे; परन्तु तब पत्रकारिता इतनी ताकतवर नहीं थी। शास्त्रों में अशुभ की कम, शुभ की ज्यादा चर्चा की गयी। सन्तों पर ज्यादा, असन्तों पर कम लिखा गया। हमारी 'आधुनिक' पत्रकारिता ने भारत को महान् बनाने के सपने शायद देखे ही नहीं। सो समाज को सूचना देते वक्त वह व्यावसायिक हो गयी।

पत्रकार मौलिक रूप से धंधेबाज नहीं होना चाहिए। दरअसल एक क्रान्तिकारी चित्त लेकर ही लिखने का काम करना चाहिए। उसे अपने सपनों का भारत बनाने के लिए समाज को "बार–बार किये जाने योग्य शुभ" की सूचना देनी चाहिए। राष्ट्र के लिए अनिष्टकारी "न किये जाने योग्य अशुभ" के बारे में उसे सावधान भी करते रहना चाहिए। बाल्मीकि रामायण भी पत्रकारिता के एक अनूठे आयाम का प्रतिफल है; किन्तु वह सदा नयी और अनूठी है। आज का अखबार सवेरे सात बजे ही बासी हो जाता है। उसमें सँजोकर रखने लायक कुछ होता ही नहीं।

शरीर पोषण की खातिर जैसे अन्न का परिशुद्ध होना जरूरी है, ठीक वैसे ही चित्त–पोषण की खातिर सूचनाओं का मानवीय और सात्विक–होना भी। सूचनाएँ मस्तिष्क का आहार हैं। अशुद्ध अन्न से जहाँ शरीर लकवा–ग्रस्त हो सकता है वहीं अशुद्ध खबर से मस्तिष्क भी हो सकता है। पत्रकार पर मानवीय मस्तिष्क–आहार को परिशुद्ध करने की जिम्मेदारी है। मगर आज की हमारी पत्रकारिता पश्चिम की अंग्रेजी पत्रकारिता की जूठन बन गयी है। वह भारत की चिरंतन साधना और आकांक्षा से कोई सरोकार नहीं रखती। अंग्रेजी किताबों से पाए ज्ञान से उसने हिन्दू और हिन्दुत्व को भी 'रिलीजन' या 'मजहब' ही जाना है। उसने हिन्दू–जीवन–रचना को भारत की उदात्त जीवन–सरणि के रूप में समझा ही नहीं।

भारतीय प्रेस की भूमिका को लेकर हिन्दूराष्ट्र प्रेमी आहत हैं। पादरी स्टेन्स के प्रकरण को भारतीय प्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय खबर बनाया था। ननों के साथ हुए कथित बलात्कार की झूठी खबर हमारे समाचार–पत्रों की दृष्टि में प्रथम पृष्ठ की महत्त्वपूर्ण सूचना थी; मगर त्रिपुरा राज्य में आदिवासियों को सेवा में संलग्न राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चार जीवन–व्रती जीवनदानियों के अपहरण को भारतीय प्रेस ने कोई महत्ता नहीं दी। अपहर्त्ता उग्रवादी नेशनल लिबरेशन फ्रंट आफ त्रिपुरा ने २ करोड़ की फिरोती रकम माँगी है। उग्रवादियों ने इस मोटी रकम के साथ–साथ स्थानीय आर्म्ड पुलिस बल (त्रिपुरा राईफिल्स) को भंग किये जाने की भी शर्त रखी है। उक्त उग्रवादी संगठन बैपटिस्ट चर्च से सीधे सम्बन्धित बताया गया है।

हिन्दुस्थान का प्रेस भारत के संविधान में दिये गये विचार अभिव्यक्ति की आजादी के हथियार से लैस है। राष्ट्रजीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना को देश को बताना भारतीय प्रेस का कर्त्तव्य हैं। भारत में खुला लोकतन्त्र है। देश की प्रत्येक गतिविधि पर जनता की जानने की इच्छा के अधिकार हैं; जहाँ भारत का प्रेस मुसलमानों और ईसाइयों से जुड़ी हर घटना को तिल का ताड़ बनाकर पेश करता है वहीं किसी भी हिन्दू के साथ घटित कोई घटना भारतीय प्रेस की निगाह में महत्त्वपूर्ण खबर तो दूर,

खबर ही नहीं होती।

स्टेन्स मसले पर भारत के महामहिम राष्ट्रपति की प्रतिक्रिया आने में कोई देर नहीं लगी; परन्तु जम्मू–कश्मीर के डोडा क्षेत्र में हुए हिन्दू नरसंहार पर राष्ट्रपति मौन रहे। ईसाई मसलों को अंग्रेजी अखबारों ने भारत की भयानक त्रासदी के रूप में चित्रित करने की रणनीति बनायी। भाषायी अखबार अंग्रेजी अखबारों के सामने हीनभावना के शिकार बने। दारासिंह को भारत का नम्बर एक का खलनायक बताया गया। दारा सिंह बेशक हत्या जैसे जघन्य जुर्म का अभियुक्त है; मगर 'हिन्दू हत्याओं को अन्जाम देनेवाले उग्रवादी' भारतीय प्रेस की दृष्टि में साधारण इन्सान ही क्यों हैं? यह प्रश्न पूरे राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय है।

हत्या, अपहरण, डकैती और आगजनी जैसे अपराधों को भोगनेवाले निर्दोष नागरिकों की जाति जानकर ही खबरों का ताना–बाना बुनने की हमारे मीडिया की लत ने भारत की जिज्ञासा को क्षति पहुँचाई है। हत्या सिर्फ हत्या है, इसीलिए वह जघन्य है। अपहरण बेहद जघन्य अपराध है, इसीलिए वह दण्डनीय है और निन्दनीय है। परन्तु भारतीय प्रेस की दृष्टि में हिन्दू की हत्या, हिन्दुओं का अपहरण और हिन्दुओं के साथ अत्याचार साधारण मसले हैं। किसी भी अल्पसंख्यक के साथ घटित छोटी से छोटी घटना भी भारतीय प्रेस की दृष्टि में अति–महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सूचना है।

प्रेस समाज को सुचालक बना सकता है। राष्ट्र के जन–जन की संवेदनशीलता को गति दे सकता है। देश के किसी कोने में किसी भी व्यक्ति के साथ हुए अत्याचार की खबर समूचे राष्ट्र को दुखी करती है। अच्छा मनुष्य दूसरे का दुःख सुन–देखकर दुःखी हुए बिना नहीं रह सकता। प्रेस रचनात्मक भूमिका के जरिए समाज को संवेदनशील बना सकता है। मगर हत्याओं और अपहरणों के समाचार लिखते समय भी जाति, मजहब और ओहदे देखने की शैली ने समाज की संवेदनाओं पर ही डाकाजनी की है।

अभिनेता दिलीप कुमार (असली नाम यूसुफ खाँ) और चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन के विरोध पर देश के मानवाधिकारवादी बड़ी हायतौबा मचा रहे थे। मानवाधिकार संगठन टाडा जैसे अभियोगों में बन्दी तमाम खतरनाक अपराधियों के मानव–अधिकारों की पैरवी करते रहते हैं; मगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ध्येय सेवी कार्य–कर्त्ताओं के अपहरण के प्रश्न पर मानवाधिकारवादी एकदम चुप हैं। प्रेस की दृष्टि में यह घटना महत्त्वपूर्ण है ही नहीं। अपहर्त्ता राष्ट्रद्रोही हैं। वे केवल अपहर्त्ता ही नहीं हैं। उनके तार विदेशी दिमागों से जुड़े हैं; उन्हीं से संचालित हैं। वे राज्य सरकार की सशस्त्र पुलिस बल को भंग कराने का दबाव बना रहे हैं। ऐसी माँग पूरे देश के लिए खतरनाक चुनौती है। राष्ट्रीय स्वयंसवेक संघ अपने जन्म काल से ही भारत भूमि का आराधक है। वह भारत के जन–जन को हिन्दू राष्ट्रीयता के संस्कार देने के काम में संलग्न है। संघ की गतिविधियाँ सार्वजनिक हैं। संघ "ओपेन एयर यूनीवर्सिटी" की भूमिका में संस्कारवान् चरित्रवान् राष्ट्र भक्त नागरिक तैयार करता है। दुनिया का कोई भी देश भारत को शक्तिशाली नहीं देखना चाहता। ईसाई और इस्लामी ताकतें भारत में धर्मांतरण के जरिए राष्ट्रीय निष्ठाएँ समाप्त कराने पर उतारू हैं। उनकी निगाह में ईसाई और इस्लामिक आस्थाएँ भारतीय राष्ट्रीय आस्था से बड़ी होती हैं। संघ ऐसे कुचक्रों के खिलाफ लोकमत बना चुका है। बैपटिस्ट चर्च के इशारे पर इसीलिए संघ के कार्यकर्त्ताओं को अपहृत किया गया है। चर्च समझता है कि इस अपहरण से संघ के लोग भयभीत हो जाएँगे। उसे संघ की बलिदानी भावभूमि का पता ही नही है। एक जाएगा, सैकड़ों आएँगे, यही संघ की दीक्षा है।

संघ ने प्रतीक धरना देकर अपना क्षोभ व्यक्त कर दिया है। त्रिपुरा की मार्क्सवादी सरकार हिन्दू विरोधी है ही। उसे संघ के कार्यकर्त्ताओं को छुड़ाने में कोई दिलचस्पी नहीं है। हिन्दुस्थान में हिन्दू तत्त्व–दर्शन का प्रचार करना असम्भव बनाया जा रहा है। धर्मान्तरण की छूट दी जा रही है। हिन्दू लोकमत के सामने जीवन मरण का प्रश्न है। हिन्दू अस्मिता ही इस देश के अस्तित्व की गारन्टी है; वरना देश बचेगा ही नहीं। हिन्दुओं के संयम, शील और धीरज को कमजोरी माना जा रहा है। यह देश हिन्दुओं का है और हिन्दू किसी भी सूरत में कमजोर नहीं हैं यही प्रदर्शित करने की चुनौती हमारे सामने है और इस चुनौती का सटीक उत्तर दिया जायेगा, इसे बैप्टिस्ट चर्च ही नहीं, पूरा पोप–तन्त्र ठीक से सुन ले, समझ ले अन्यथा परिणाम भुगतने के लिए भी तैयार रहना होगा। हिन्दू को भी गुस्सा आता है और जब उसे गुस्सा आता है, तो क्या हो सकता है, इसे पूरा विश्व देख चुका है। चर्च ने अपनी करतूतें बन्द न कीं, तो इतिहास भी अपने को दोहराने से चूकेगा नहीं; क्योंकि अपनी इस आदत पर उसका कोई वश न कभी रहा है और न रहेगा। ❑

– 'अक्षर–वर्चस, एल–१५६२, सेक्टर आई, कानपुर मार्ग, लखनऊ

भयंकर षड्यन्त्र : चर्च और विदेशी धन का

– राजेन्द्र चड्ढा

भारत सरकार के गृह–मन्त्रालय की "स्वैच्छिक संगठनों द्वारा विदेशी सहायता प्राप्ति" सम्बन्धी वार्षिक रपट और देश में उपलब्ध चर्च साहित्य से इस विचार को बल मिलता है कि विदेशी सहायता और चर्च एवं चर्च के आनुषांगिक संगठनों के बीच गठबन्धन है।

एक हजार से अधिक पृष्ठों वाली सरकारी रपट से यह स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी सहायता प्राप्त करने वाले स्वैच्छिक संगठनों में अस्सी प्रतिशत से अधिक संगठन ईसाई संगठन हैं जो या तो सीधे–सीधे धर्म–परिवर्तन कराते हैं या समाज–सेवा की आड़ में यह कार्य कर रहे हैं।

प्रमुख दान देने वाली संस्थाओं में ईसाई संगठन ही हैं। यदि दान देने वाले का उद्देश्य समझ में नहीं आता है तो उस संस्था के नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है। किसी को उन २५ प्रमुख दानदाता संस्थाओं के उद्देश्य पर शक नहीं करना चाहिए जिनके नाम रपट में लिखे गये हैं। वर्ष १९९७–९८ के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की क्रिश्चियन चिल्ड्रन फण्ड का नाम सूची में सबसे ऊपर है जिसने ६४.७८ करोड़ रुपये दान दिये। बाद में नाम आते हैं– जर्मनी की इवेन्जेलिस्क जेन्ट्रेस्टेल (ई०जेड०ई०) ने ५९ करोड़ रुपये यू०एस० की फास्टर पेरेन्ट्स प्लान इण्टरनेशनल में ५५.४५ करोड़ रुपये, जर्मनी की मिसियो (इण्टरनेशनल कैथोलिक मिशनरी वर्क) ने ४८.९ करोड़ रुपये और काउण्टर नाट हिल्फ (के०एन०एच०) जर्मनी ने ४६ करोड़ रुपये का दान भेजा।

सूची में अन्य दानदाताओं के नाम इस प्रकार हैं–

वर्ल्ड विसन इण्टरनेशनल, यू०एस० ३७.५४ करोड़ रुपये, एज ऑफ इन लाइटमेण्ट ट्रस्ट ब्रिटेन २७ करोड़ रुपये इन्टरचर्च को–आर्ड कमेटी, नीदरलैण्ड २३ करोड़ रुपये इन्टरनेशनल प्लान्ड पेरेन्ट हुड फेडरेशन, ब्रिटेन २१.४५ करोड़ रुपये, क्रिस्टोफेल ब्लाइन्डेन मिशन, जर्मनी २० करोड़ रुपये।

आपेरा डान बोस्को, इटली १९.९० करोड़ रुपये क्रिश्चियन एड, ब्रिटेन १९.४० करोड़ रुपये जेन्ट्रलस्टेल फर इन्टविकशिल्फ, जर्मनी १९.१ करोड़ रुपये ब्रेड फार द वर्ल्ड, जर्मनी १६ करोड़ रुपये और मिशन प्रोक्यूर, जर्मनी १५ करोड़ रुपये।

पूर्व वर्षों की वार्षिक रपटों में भी ऊपर लिखित संगठनों के नाम प्रमुख पाँच या २५ दानदाताओं की सूची में शामिल हैं। केवल एक हिन्दू और एक बौद्ध संगठन का नाम इस सूची में है। वह है– महर्षि आयुर्वेदिक ट्रस्ट, ब्रिटेन और सोग गक्काई भिन्जुक्कू, जापान।

प्रमुख पाँच दानदाताओं की सूची से स्पष्ट है कि वे ईसाइयत के प्रचार–प्रसार हेतु दान देते हैं। उदाहरण के लिए फास्टर पेटेण्ट्स प्लान इण्टरनेशनल और क्रिश्चियन चिल्ड्रन्स फण्ड, यू०एस०, ई०जेड०ई० मिसियों, मिसरियोर (केथोलिक बिशप्स फण्ड फार ओवरसीज डेवलपमेण्ट) और के०एन०एच० जर्मनी। इन प्रमुख पाँच दानदाता संस्थाओं ने दस वर्ष में १,३४४ करोड़ रुपये का दान किया।

उल्लेखनीय है कि १९९५–९६ की रपट में प्रथम चार श्रेष्ठ दानादाता संस्थाएँ जर्मनी की थीं जबकि अन्य वर्षों में जर्मनी की कम से कम तीन संस्थाएँ हैं। १९९१ से १९९८ के बीच की अवधि में जर्मनी ने ३०९१ करोड़ रुपये का दान भारतीय संगठनों को दिया है; जिसमें से लगभग एक चौथाई ई०जेड०ई० मिसियों और मिसरीओ ने ही जुटाया है। ये तीनों संगठन ईसाई संगठनों को ही संरक्षण प्रदान करते हैं। यू०एस०के० फास्टर पेरेन्ट्स इन्टरनेशनल और क्रिश्चियन चिल्ड्रन फण्ड ने इस दशक में ६१२ करोड़ रुपये से अधिक दान दिया है। कुछ संगठनों की वार्षिक दान राशि कई गुना बढ़ गयी है। इसका उपयोग भारत के कोने–कोने में ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार में किया जाता है। उदाहरण के लिए ई०जेड०ई० का वार्षिक दान जहाँ १९९१–९२ में २१.४६ करोड़ रुपये था, वहीं १९९७–९८ में बढ़कर ५९.०३ करोड़ रुपये हो गयी। यह बढ़त २७५ प्रतिशत है। क्रिश्चियन चिल्ड्रेन फण्ड यू०एस० ने अपने दान में लगभग ४२० प्रतिशत वृद्धि की। उसने १५.४४ करोड़ रुपये की दान राशि बढ़ाकर ६४.७८ करोड़ रुपये कर दी।

ये आँकड़े स्वयं अपनी कहानी कहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली और नीदरलैण्ड वे पाँच देश हैं जिन्होंने इस दशक में भारत के ईसाई संगठनों की आर्थिक मदद कर यहाँ ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दिया। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार इन पाँच देशों के स्वैच्छिक संगठनों को दस हजार करोड़ रुपये से अधिक का दान दिया।

भारत को भेजे जाने वाले धन के उद्देश्य पर ध्यान

देने से यह तथ्य उजागर होता है कि भारत में, जहाँ ८० प्रतिशत जनता हिन्दू है– इस धन का उपयोग ईसाई धर्म का प्रभाव बढ़ाने के लिए किया जाता है। गृह–मन्त्रालय की रपट में इस धन के उपयोग के बारे में पाँच बातों का उल्लेख किया गया है– ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य रक्षा और परिवार कल्याण, गरीबों की सहायता, अनाथों की देख–रेख और पाठशाला और महाविद्यालयों का निर्माण और विस्तार। भारतीय क्रिश्चियन संगठन ऊपर लिखित कार्यों में संलग्न है। गत कुछ वर्षों से कुछ नये स्वैच्छिक संगठन भी इन कार्यों को करने लगे हैं।

भारत में गत दस, वर्षों में चर्च और पैरा–चर्च सगठन ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की सेवा में लगे हैं। गरीबों की सेवा करने के लिए दान राशि जहाँ १९९१–९२ में ५८.७४ करोड़ रुपये थी वह १९९७–९८ में बढ़कर २१०.०६ करोड़ रुपये हो गयी। इसी प्रकार स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के क्षेत्र में भेजी गयी यह राशि ११२.१ करोड़ रुपये से बढ़ाकर ३०६.४३ करोड़ रुपये कर दी गयी। ग्रामीण विकास के लिए पहले जहाँ १३२.३ करोड़ रुपये दिये जाते थे, उसे बढ़ाकर २७९.९१ करोड़ रुपये कर दिया गया। अनाथ बच्चों की सहायता के लिए ईसाई संगठनों के एकाधिकार पर किसी को शंका नहीं है। इस क्षेत्र के लिए भेजी गयी दान की राशि १२०.५८ करोड़ से बढ़ाकर १९१.२६ करोड़ रुपये कर दी गयी।

दानदाताओं द्वारा प्रेषित दान राशि से दान प्राप्त करने वाली संस्थाओं और संगठनों की गतिविधियों पर ध्यान केन्द्रित करने से इस तर्क को बल मिलता है कि यह राशि भारत में ईसाईयों का वर्चस्व बढ़ाने के लिए ही है। जो लोग भारत की वर्तमान स्थिति से परिचित हैं। वे बड़ी कठिनाई से अनुमान लगा पाते हैं कि देश में अन्य स्रोतो से वास्तव में कितनी राशि बाहर से आ रही है। जबकि अधिकारियों के पास यह बताने के लिए बहुत कुछ है।

हालाँकि विगत दो वर्षों में हिन्दुओं के कुछ संगठनों को विदेशी सहायता प्राप्त होने लगी है। परन्तु उनमें भी ईसाई संगठनों की बहुतायत है और उनमें से कुछ तो ईसामसीह के सन्देशों का खुलकर प्रचार–प्रसार करते हैं।

प्रमुख पच्चीस दानदाताओं की सूची के समान भारत में दान प्राप्त करने वाली संस्थाओं में प्रमुख ईसाई संगठनों का ही वर्चस्व है। उदाहरणार्थ १९९१ से १९९८ के बीच फास्टर पेरेन्ट्स प्लान इन्टरनेशनल ने २१०.७९ करोड़ रुपये, वर्ल्ड विजन इन्टरनेशनल ने १९५.२४ करोड़ रुपये और सी०एस०आई० कौन्सिल फार चाइल्ड ने १५८.४६ करोड़ रुपये प्राप्त किये। वार्षिक दान प्राप्त करने वाले कुछ प्रमुख ईसाई संगठनों की सूची इस प्रकार है–

- क्रिश्चियन चिल्ड्रन फण्ड, कर्नाटक।
- फेमिली प्लानिंग एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, दिल्ली।
- चर्चेज आक्जीलियरी फार सोशल एक्शन दिल्ली।
- मिशनरीज ऑफ चेरिटी, पश्चिम बंगाल।
- वाच टावर बाइबल ट्रेक्ट सोसायटी ऑफ इण्डिया, इन महाराष्ट्र।
- गास्पेल फार एशिया इन केरल।
- इण्डियन सोसायटी ऑफ चर्चेज ऑफ जेसस, क्राइस्ट इन दिल्ली।
- इण्डिया केम्पस क्रूसेड फार क्राइस्ट इन कर्नाटक।

इन सबने प्रतिवर्ष १२ करोड़ रुपये प्राप्त किये।

दान प्राप्त करने वाली इस प्रकार की १२,१९८ संस्थाओं ने वर्ष १९९७–९८ में २,८६४.५१ करोड़ रुपये प्राप्त किये। इनमें बहुसंख्य ईसाई संस्थाएँ हैं, जो खुले आम धर्म–परिवर्तन के काम में लगी हुई हैं। उदाहरण के लिए विदेशी दान प्राप्त करने वाली संस्थाओं की सूची में वर्णित दिल्ली स्थित इण्डियन इवेन्जोलिकल टीम गर्व से घोषणा करती है कि वह प्रतिवर्ष दो हजार लोगों का धर्म–परिवर्तन करती है। इस संस्था के ४० लाख रुपये के वार्षिक बजट के अनुसार ६० प्रतिशत राशि स्थानीय तथा ४० प्रतिशत राशि विदेशी दान से प्राप्त होती है। इसी प्रकार लिविंग होप, मिशनरीज ने गत पाँच वर्षों में दो हजार लोगों को ईसाई बनाया तथा भारत में एक सौ चर्च बनाने की उनकी योजना है। तमिलनाडु में फ्रेण्ड्स मिशनरी प्रेयर बैण्ड, जिसे विदेशी सहायता मिलती है, का दावा है कि वह प्रतिवर्ष ३४०० लोगों का धर्म परिवर्तन कराती है।

यहाँ प्राप्त धन का अधिकांश भाग दक्षिण भारत के राज्यों– तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल और आन्ध्रप्रदेश में भेजा जाता है। दिल्ली और महाराष्ट्र के अतिरिक्त दक्षिण के चार राज्य विदेशी दान प्राप्त करने में प्रमुख हैं। स्वैच्छिक दान प्राप्त करने वाले प्रमुख पाँच राज्य हैं–

तमिलनाडु– २,३९५ करोड रुपये, दिल्ली– २,०८६ करोड़ रुपये, आन्ध्रप्रदेश– १, ६९१ करोड़ रुपये, महाराष्ट्र– १,५१८ करोड़ रुपये और कर्नाटक– १,४८६ करोड़ रुपये।

जबकि विगत चार वर्षों में दान प्राप्त करने वाले प्रमुख पाँच राज्य तमिलनाडु, दिल्ली, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र और केरल हैं।

यदि हम दक्षिण और पूर्व के राज्यों में भेजे जाने वाले दान को ध्यान में रखें तो पायेंगे कि दान का सर्वाधिक धन यहीं भेजा जाता है।

दान की राशि प्राप्त करने के आँकड़े देखने से स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि दान प्राप्त करने वाले संगठनों, जिनमें सर्वाधिक संख्या ईसाई संगठनों की

है का लक्ष्य यदि सचमुच में गरीबों की सेवा करना है, तो यह धन उन राज्यों को क्यों भेजा जा रहा है, जहाँ मानव विकास की गति अधिक है, जहाँ अधिक शिक्षा है, अधिक सम्पन्नता है और उन बीमार पिछड़े राज्यों यथा मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार को क्यों नहीं? भारत में क्रिश्चियन संस्थाओं के सर्वेक्षक का उत्तर यह है कि इन राज्यों में लक्ष्य सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु हिन्दी भाषी प्रदेशों में ईसा मसीह के उपदेशों का प्रचार करना सरल काम नहीं है। उसके लिए शताब्दियाँ लग जायेंगी।

फ्रेण्ड्स मिशनरी प्रेयर बेण्ड के श्री एम० पेट्रिक जोशुआ ने मिशन मेन्डेट नाम पुस्तक में विदेशी धन से प्राप्त राशि के क्षेत्रीय वितरण का इस प्रकार वर्णन किया है- "भारत में चर्च ६५.५ प्रतिशत दक्षिण भारत में हैं, १०.६ प्रतिशत ईसाई उत्तर-पूर्व भारत में रहते हैं, २४ प्रतिशत भारतीय ईसाई उत्तर भारत के विशाल भाग में फैले हैं।"

पुस्तक में स्वीकार किया है कि गरीबों की सहायता, आर्थिक मदद के माध्यम से या अनाथालय शिक्षा या अस्पतालों के माध्यम से की जाती है तथा कुछ परोपकारी संगठन केवल धर्म परिवर्तन के लिए हैं। पुस्तक में गर्व से इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जहाँ अज्ञानी गरीब भारतीयों का धर्मान्तरण इस प्रकार की मानवीय जालसाजी या षड्यन्त्रपूर्वक किया गया है। बाजार में उपलब्ध ईसाई साहित्य से ऊपरलिखित बातों की पुष्टि होती है।

"हाउ टू कम्यूनिकेट गुड न्यूज" नामक पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के पृष्ठ ३८ पर लिखा है- "ईसा मसीह के अन्तिम सन्देशों में न केवल मुक्ति का सन्देश है। वरन धर्म परिवर्तन कराने का भी सन्देश है। जाओ उनका बपतिस्मा कर उनको पढ़ाओ। उसने अपने छात्रों से कहा कि वहाँ बड़ी संख्या में बनी बनायी फसल है। इस प्रकार भूमि के मालिक से प्रार्थना करो कि वह अतिशीघ्र अधिक संख्या में श्रमिक भेज दे क्योंकि खड़ी फसल कहीं सूख नहीं जाये या कोई अन्य नहीं काट ले।" इस प्रकार के सन्देश व उपदेश कोई भी बड़ी सरलता से अन्य ईसाई साहित्य से प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिए निष्कलंक पत्रिका के सितम्बर १९९८ के अंक में केथोलिक आश्रम मन्दिर हजारी बाग ने एक विज्ञापन प्रकाशित करवाया कि उन्हें क्षेत्र में खड़ी फसल काटने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता है। विज्ञापन में ईसा का वही बयान लिखा था जो बाइबल में है।

समाज कल्याण और राहत कार्यों का उपयोग किस प्रकार धर्म परिवर्तन कराने में होता है इसका उदाहरण "मिशन मेन्डेट" पुस्तक के पृष्ठ २५१ पर है- उसमें लिखा है कि इवेन्जेलिकल चर्च ऑफ इण्डिया के पास राहत और विकास मन्त्रालय के लिये अलग विभाग है। वर्ल्ड विजन ऑफ इण्डिया नामक अभिकरण ने उनको राहत कार्य में सहायता दी। हम राहत और विकास कार्य स्थानीय चर्चों के माध्यम से उन गरीब जवान धर्मान्तरित लोगों के लिए कराते हैं जिन्हें सरकारी काम नहीं मिलता।" १९८४ के अक्टूबर माह में चेन्नई में आये तूफान और बाढ़ का उदाहरण देते हुए पुस्तक में लिखा है- "हमने कुछ झोपड़ियाँ बनायी, उनके लिए कुँआ खुदवाया उनको मुफ्त कपड़े और अनाज दिया। एक गिरजाघर प्रार्थना के लिए बनाया और वहाँ एक पादरी की नियुक्ति की जो उनकी देखरेख करेगा। अनेक परिवारों ने इसके बाद ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। बीस से अधिक परिवारों का धर्म परिवर्तन कराया गया।...जिस दिन यह बपतिस्मा हुआ उसी दिन उस जगह का नामकरण "फ्रेंकलिन नगर" किया गया। यह नामकरण समरीतन के पर्स के अध्यक्ष के नाम पर किया गया।" (पृष्ठ २५२)

इस पुस्तक से एक के बाद एक ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो यह सिद्ध कर दें कि विदेशी धन और भारत में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के विस्तार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। फिर भी ईसाई संगठनों में सभी कुछ ठीक नहीं है। बाहर वालों के लिए इन संगठनों के भीतर चल रहे भ्रष्टाचार और प्राप्त धन राशि के दुरुपयोग की जानकारी प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य है। परन्तु कुछ ईसाई साहित्य में इसका स्पष्टीकरण होता है। ईसाई शैक्षणिक संगठनों का सर्वेक्षण रीनिवल २००० ए सर्वे ऑफ द आर्च डीओसेज ऑफ दिल्ली, १९९७ की रपट में दिया है। सर्वे का परिणाम स्वय स्पष्ट करता है कि कैथोलिक शिक्षण संस्थाओं की वर्तमान स्थिति के बारे में लगभग पचास प्रतिशत लोगों का कहना है कि अधिकांश शिक्षण संस्थाएँ व्यवसायिक संगठन बन गये हैं।

"गरीब ईसाईयों के बालकों को प्रवेश देने के सम्बन्ध में इन कैथोलिक शिक्षण संस्थाओं की मनोवृत्ति क्या है? प्रश्न के उत्तर में लगभग ३५ प्रतिशत का मत है कि बड़ी संख्या में कैथोलिक शिक्षण संस्थाएँ गरीब ईसाइयों के बच्चों को प्रवेश नहीं देती।"

गृह मन्त्रालय की वार्षिक रपट स्पष्ट करती है कि बड़ी संख्या में चर्च और पैरा-चर्च संगठनों को प्राप्त विदेशी धन और प्राप्त साहित्य से प्राप्त सूचना यह कहती है कि समाज सेवा के आवरण में इन ईसाई संगठनों का वास्तविक उद्देश्य धर्मान्तरण और ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करना है। □

- (संवाद मन्थन)

उद्भावना– 'दीपशिखा की'

– चन्द्रशेखर शुक्ल

"दीपशिखा" के कवि के रूप में कालिदास की ही प्रसिद्धि रही है। अपने स्वयंवर में चलती–फिरती दीपशिखा की तरह इन्दुमती जिस नरेश के सामने से होकर जाती है, उस क्षण, वहाँ प्रकाश फैल जाता है और जब वह आगे बढ़ जाती है, तो वही स्थान प्रकाशहीन, मलिन दिखने लगता है :

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा
नरेन्द्र मार्गाट्टइव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः"

कालिदास की "दीपशिखा" सौन्दर्य का महत्तम प्रतिमान है। यह जब सम्मुख उपस्थित होती है, तो वहीं सद्यः प्रकाश प्रतिभासित हो उठता है और जब वह पराङ्मुख होती है, तो तमिस्रा छा जाती है। तात्पर्य है कि यह दीपशिखा प्रकाश और अंधकार दोनों प्रकार की वृत्तियों का सृजन करती है। किन्तु तुलसी की "दीपशिखा" अनूठी है। यह अकूत, अभेद्य अंधकार के बीच निरन्तर प्रकाश का ही सर्जन करती है। तुलसी के अपने प्रतीकों का यह श्रेष्ठ रूप है। यह अनिंद्य सौन्दर्य के प्रतीक के साथ ही ज्ञान की अक्षय मंजूषा के रूप में वर्णित है।

"दीपशिखा" से सम्बद्ध तुलसी की पहली उक्ति है :–

"दीपशिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग"। युवती स्त्री का शरीर दीपक की लौ के समान है, पुरुष मन पतिंगा बनकर इस पर टूट न पड़े। इस उक्ति से सम्बद्ध सामान्य धारणा यह है, सौन्दर्यमयी युवती के देही धरातल से दीपशिखा की तुलना करके तुलसी ने नारी–सौन्दर्य को हेठा माना है, उसे काम–वासना का केन्द्र कहा है; किन्तु तुलसी का संकेत है कि नारी का सौन्दर्य सृष्टि की अनुपम निधि है। कामासक्त मन से उसका क्षय करना उचित नहीं है। ऐसा करने से एक ओर मन मलिन और क्षीण होता है और दूसरी ओर यह अभिशप्त मन उस सौन्दर्य प्रतिमा का भी सद्यः क्षरण कर डालता है। इससे मन भी हारता है और सुन्दरता की कमनीय देह भी गलती है। उत्फुल्ल यौवना होना शरीर का धर्म है, यह प्रेयस है, इसलिए वरेण्य भी है। मन का काम गरल है, यह अश्रेयस् है, इसलिए त्याज्य है, उन्नयन करने योग्य है।

सीता के हाथों के कड़े, करधनी और पायजेब के शब्द मात्र से ही राम सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। शब्द के माध्यम से बिना रूप देखे रूप की अरूपता का वह सहजता से अनुभावन करने लगते हैं। तभी सीता का देही रूप दिख पड़ता है। राम के नयन उस सौन्दर्य प्रतिमा पर बिलम जाते हैं। उस सौन्दर्य के लिए किसी समानधर्मी उपमान की वह खोज करने लगते हैं। किन्तु कवियों ने किसी ऐसे उपमान को अभुक्त नहीं छोड़ रखा है। अस्तु, बिना जूठा किये हुए जिस उपमान से वह सीता की सुन्दरता की तुलना करते हैं, वह है– "दीपशिखा"।

महल कैसा भी भव्य हो, प्रतिभासित करने वाला यदि उसमें कोई दीप न जलता हो तो वह व्यर्थ है। उसी प्रकार युवती को सवाक् कुसुम के रूप में संज्ञायित करने का कार्य उसका सौन्दर्य ही करता है। नारी की सुन्दरता अनिंद्य, पाप–रहित, दोषमुक्त कही गयी है। ऐसे उपमेय का उपमान भी निर्विकल्प और निष्कलुष होता है। वह है– "दीपशिखा"। यह कभी जूठी नहीं होती ? वही स्नेह, वही बाती, वही दियटी सब कुछ ज्यों की त्यों है। बस, अनवरत दिया जलता रहता है। स्नेह यदि चुका नहीं, बाती यदि घटी नहीं, तो ये समवेत अवशिष्ट जलकर न जाने कितनी रातों का अंधकार पीते रहते हैं। यही वह दीपशिखा है :–

"सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई, छबि गृह दीपसिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरौं विदेह कुमारी।।"

'दीपशिखा' युवती के तन की प्रकाशिका है। यह केवल प्रकाश करती है, अंधकार का कभी सर्जन नहीं करती। जनक–तनया की दीपशिखा का यह प्रकाश कण–कण के लिए है, तरु–तरु के लिए है, प्रत्येक फूल के गुच्छे के लिए है।

"तात जनक तनया यह सोई, धनुष यज्ञ जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखी ले आई, करत प्रकास फिरइ फुलवाई।।"

ज्ञान की "दीपशिखा" जलाने के लिए तुलसी ने निर्धारित परम्परा प्रक्रिया का आश्रय लिया है। "सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई" से आरम्भ करके "दृढ़ ममता दिअटि बनाई" तक उन्होंने एक "सांग रूपक" की नियोजना की

है। इस प्रकार, इस दिअटी में तेजोमय, विज्ञान शरविद्ध यह दीप जल उठता है। वह ब्रह्म मैं ही हूँ, (सोहमस्मि) यह जो अखण्ड स्नेह–धारावत् कभी न टूटने वाली वृत्ति है, वही उस ज्ञान दीपक की परम प्रचण्ड "दीपशिखा" है। इस दीपशिखा के प्रकाश में सयानी बुद्धि आत्मानुभव से विषयों के प्रति शर–संधाान करके शरीर को नीरोग बनाने की दिशा में ज्यों ही कुछ पहल करती है, प्रलोभन और वासना का विकराल प्रभंजन उसे झट से बुझा देता है। फिर बाहर–भीतर पूर्ववत् अंधकार छा जाता है।

वास्तव में, किसी उपादान के सहारे प्रकाशित होने वाली 'दीपशिखा' की आयु की वर्द्धमान स्थिति निश्चित नहीं हो पाती। अतएव तुलसी ने एक ऐसी "दीपशिखा" की उद्भावना की है, जो दिन–रात प्रकाशित रहती है। दिया, घी, बत्ती आदि उसके लिए कुछ भी आवश्यक नहीं है। यह "दीप–शिखा" आत्म–चिन्तन की मणि से प्रज्वलित होती है। मणि स्वतः प्रकाशमान है। उसमें माणिक्य मूल्य की सार्थकता होने से मोह की दरिद्रता उसके सम्मुख टिक नहीं सकती। लोभ का प्रभंजन उसे बुझा नहीं पाता। अविद्या के प्रबल अंधकार की उसके सामने कुछ भी बिसात नहीं होती बस, उसे अपने अन्तस् में सदा धारण करना होता है : "बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर"।

सृष्टि के उपक्रम काल में स्पर्श से भिन्न सब कुछ अंधकार ही तो था। फिर प्राण, स्वाद, रूप और शब्द के संसार बने थे। इन सबके भोग के निमित्त मनुष्य ने सर्वप्रथम प्रकाश की अवधारणा की, अंधकार से जूझने का संकल्प लिया। तब से अंधकार से जूझने की मनुष्य की नियति बन गयी। जीवन में अंधकार की दुर्वार सघनता इतनी है कि वह प्रकाश को प्रायः मात दे देता है। "दीपशिखा" की बिसात उसके सामने बहुत कम प्रभावकारी होती है। यों जागतिक धरातल पर अंधकार की ही प्रभुसत्ता होती है। दुःख, क्लेश की ही प्रभुता बनी रहती है। जीवन में प्रकाश की रश्मि कभी–कभी ही दिखायी पड़ती है। चैन, सुख और शान्ति तो किसी विरले तपःपूत के हृदय को ही भिगोकर रह जाती है।

ऐसा होता क्यों है? इसलिए कि आदमी अपने द्वारा निर्मित (बनावटी) रोशनी से बाहर की तमिस्रा को भगाने का मात्र स्वाँग करता है। जब तक यह रोशनी काबिज रहती है, अंधकार कुछ क्षण के लिए दुबक जाता है और जब इसकी "स्विच" निष्प्राण हो जाती है, तो अंधकार अपनी दूनी ताकत से फिर हावी हो जाता है। पूरे तौर से अंधकार भी मिटाया नहीं जा सका है। उसे सहला करके, उसका शमन करके उसकी तीव्रता कम की जा सकती है, उसे अपने अनुकूल किया जा सकता है। माह के दो पक्षों में एक पक्ष चन्द्रमा के वैभव का उत्कर्षण करता है और दूसरा उसे उत्तरोत्तर क्षीण करता है; किन्तु चन्द्रमा का आत्म–संयम इतना प्रबल है कि इस विभेद का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। शिवत्व के परिवृत्त में वक्रचन्द्र भी वंदनीय बन जाता है। अतः जीवन में "आत्म दीपशिखा" का जलाना अनिवार्य है। आत्म–चिन्तन ही वरेण्य है। "आत्मदान" ही, अंधकार से निपटने का सहज मार्ग है।

जड़ता, विपन्नता, खिन्नता, उदासीनता मन की तामसिक वृत्तियाँ हैं। इनके प्रति निरन्तर सजगता ही मन के अंधकार की सही खोज होती है। हर मन यदि अपने भीतर के अंधकार की सही पहचान कर लेता है, तो उसे बाहर के अकूत अंधकार से व्याकुल होने का कभी दुर्दिन नहीं देखना पड़ता। मानवीय संवेदना से इस भरे–पूरे मन को तुलसी ने "स्वान्तस्तमः शान्तये" की संज्ञा दी है। "मानस" रचना के आरम्भ में "स्वान्तः सुखाय" तथा अन्त में "स्वान्तस्तमः शान्तये" कहकर तुलसी ने निज के सुख, स्वयं की शान्ति के लिए कोई उपक्रम नहीं किया; अपितु "समष्टि" की परिश्रान्ति के लिए सबसे पहले अपने भीतर के अंधकार को उद्वेग–रहित होने के लिए, उसकी शमन–शान्ति के लिए, उन्होंने अभीष्ट मार्ग प्रशस्त किया। पिण्ड को तमिस्रा का बोध जब "आत्मानुभव" से हो जाता है, तब तमसावृत्त ब्रह्माण्ड के अंधकार को समझने का सलीका भी आ जाता है। "व्यष्टि" का "समष्टि" में यही उन्मीलित भाव है, जहाँ परस्पर टकराव की कोई गुंजाइश नहीं होती।

अपने भीतर के तम की शान्ति में लवलीन मनुष्य के इन दृश्यमान नयनों में समवेदना की दिव्य–दृष्टि उजागर होती है। वास्तव में ये ही ज्ञान–दीपक बन जाते हैं। इनमें करुणा–स्नेह की ही अँजोर परिलक्षित होती है। ये नेत्रगोलक समष्टि की सम्वेदना के सूक्ष्म तन्तुओं से निर्मित होते हैं। अस्तु, भीतर के तम की शान्ति की प्रक्रिया से निःसृत निसर्ग रस से ये अभिसिंचित रहें, इनकी यही सार्थकता है।

यदि समष्टि की संवेदना में जीने की लालसा हो, तो अपनी देह में ही "दीपशिखा" की ज्योति जलानी होगी। तप और त्याग से अपने मन को ही निर्मल दर्पण बनाना होगा। ❑

–सी १७/२०५/एम. १०, अशोक बिहार कालोनी (प्रथम चरण), पहाड़िया, वाराणसी– २२१००२

कहानी

मिठाई दीपावली की

– डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

दीवाली आने से पहले गिरीश ने सोच रखा था कि अबकी बार वह अच्छी मिठाई लायेगा और किसी अच्छी दुकान से ही खरीदेगा। अब तक मध्यम स्तर की दुकानों से मिठाई लेता रहा था। उसमें कोई विशेष स्वाद नहीं आता था।

कभी किसी मित्र के यहाँ किसी अच्छी मिठाई खाने पर उसको उसका स्वाद बड़ा अच्छा लगता था। इच्छा होती थी कि अब उसी दूकान से मिठाई लिया करें; परन्तु वहाँ के दाम देखकर हिम्मत पस्त हो जाती थी। वैसे ही मिठाई लेने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। जितने में आधा किलो मिठाई लेंगे, जो आधे घण्टे में ही चट जायेगी, उतने में कम से कम चार–पाँच समय की सब्जी आ जायेगी, या दो किलो सेब या तीन–चार दर्जन केले आ जायेंगे। उनमें पौष्टिकता भी अधिक होती है; सन्तोष भी अधिक होता है। लेकिन मिठाई का भी अपना माहात्म्य है। अच्छा–सा एक टुकड़ा खाने पर जो स्वाद आता है, वह सब्जी और फलों में कहाँ? गरीब अपनी आर्थिक दुर्बलता के कारण ही उसकी उपयोगिता की तुलना अन्य चीजों से करता है।

लेकिन दीवाली तो त्योहार ही मिठाई का है। इस अवसर पर यह तुलना अप्रासंगिक ही होती है। मिठाई तो लानी ही है। तब यह मन में आता भी नहीं कि इसके बदले में दूसरी कौन–कौन–सी उपयोगी चीज कितनी–कितनी आ सकती है। इसलिए गिरीश को मिठाई तो लानी ही थी। कुछ हिम्मत करके उसने तय किया हुआ था कि महँगी ही सही, मिठाई अच्छी लानी है, अच्छी दुकान से लानी है। बीस–पच्चीस रुपये जो अधिक लग जायेंगे, त्योहार के आगे उसके दंश को नजरन्दाज किया जा सकता है।

वह शहर की सबसे अच्छी दुकानों में एक पर गया। वहाँ का दृश्य देखकर उसे आश्चर्य और परेशानी दोनों हुए। बहुत भीड़ थी। लगता था जैसे मिठाई बिक न रही हो, मुफ्त में बँट रही हो। तौलने वाले को फुरसत नहीं मिल पा रही थी। एक आदमी की मिठाई तुल रही होती, तो चार–पाँच अपने लिए डिब्बा लगाने पर जोर दे रहे होते। जिसका नम्बर आ जाता, उसको बड़ी राहत मिलती, जैसे कि भाग्य ने साथ दे दिया हो।

गिरीश की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह भीड़ में घुसे। दूर से ही दृश्य देखता रहा। देखने में उसे आनन्द आ रहा था। तभी उसकी निगाह उस दूकान के दूसरे काउण्टर पर पड़ी। जहाँ लोग आते और दुकानदार को एक पर्ची दे देते वह डिब्बों को देखकर एक डिब्बा निकाल कर उनको पकड़ा देता। न तौलना, न पैसा लेना। उसने पास ही खड़े, एक व्यक्ति से पूछा, "यह कैसे दे रहा है?"

"यह अग्रिम बुकिंग की मिठाई दे रहा है। जो लोग पहले से पैसा जमा करके अपने पसन्द की मिठाई बता गये हैं, उनके डिब्बे बँधे पड़े हैं।"

"हद हो रही है, मिठाई की भी अग्रिम बुकिंग।"

"देश प्रगति कर रहा है बन्धु!"

"प्रगति की यदि यही रफ्तार रही, तो एक दिन चाय–नाश्ते की भी अग्रिम बुकिंग करानी पड़ेगी।"

तभी गिरीश का एक परिचित व्यक्ति मिठाई के तीन–चार डिब्बे लिए निकला। दोनों में नमस्कार हुआ। गिरीश को कौतूहल हुआ कि यह इतनी सारी मिठाई क्यों ले जा रहा है? कुल मिलाकर तीन–चार सदस्य ही तो हैं इसके परिवार में। पूछा, "इतनी सारी मिठाई का क्या करेंगे? दूसरी जगह जाकर बेचेंगे क्या?"

"नहीं यार। ऐसे ही... लाचारी में लेनी पड़ती है।"

"लाचारी में। हमने तो सुना था कि "डायबिटीज" हो जाये, तो लाचारी में मिठाई छोड़नी पड़ती है। क्या ऐसी भी कोई बीमारी निकल आयी है, जिसमें लाचारी में मिठाई खानी पड़ती है।"

"हाँ, हमारे देश में कुछ ऐसी बीमारी चल रही हैं।"

गिरीश ने समझा कि वास्तव में कोई ऐसी शारीरिक बीमारी चल पड़ी हो। समय–समय पर तरह–तरह के रोग फैल जाते हैं। वैसा ही कोई मामला हो। पूछा, "कौन–सी बीमारी है?"

"तुमको नहीं मालूम? सभी तो जानते हैं।"

"मुझे तो नहीं मालूम। इधर सौभाग्य से कई दिनों से किसी अस्पताल में जाने का मौका नहीं मिला।"

"अब हम नाम तो न बतायेंगे। यह बता देते हैं कि डिब्बे किस–किस के लिए हैं। बीमारी अपने आप जान जाओगे। यह डिब्बा है, इन्कम टैक्स ऑफिसर के लिए; यह डिब्बा है इन्जीनियर के लिए, यह डिब्बा है लड़के के ट्यूटोरियल टीचर के लिए और यह डिब्बा अपने घर के लिए।"

"अमा यार, घर के लिए तो आधा किलो का डिब्बा और दूसरों के लिए एक–एक किलो का?"

"अपनी औकात आधा किलो से ज्यादा नहीं है। जरूरत भी नहीं है। छोटा परिवार, सुखी परिवार।"

"और दूसरों को देने की औकात है?"

"यह तो 'इनवेस्टमेण्ट' है या कहो जबरदस्ती है।"

"यह तो बड़ा भारी प्रसंग है। आज इसे यहीं छोड़ दें। अब यह बताओ, मैं कैसे मिठाई लूँ? यहाँ तो इतनी भीड़ है।"

"यहाँ तो बहुत समय लगेगा और धक्का–धुक्की अलग से सहनी होगी। साहबों के चपरासी यहाँ पड़े हैं। उन्हें तो किसी को धक्का देने में संकोच है नहीं। पहले देखा होता, तो मैं ले आता तुम्हारे लिए भी। यहाँ आकर पैसे ले लेता।"

"बड़े भाई, इसी में से एक डिब्बा दे दो।"

"इनका तो संकल्प हो गया है। इनमें से न माँगो।"

"यह लोग भी कोई देवी–देवता है कि संकल्प हो गया है।"

"ये देवी–देवताओं से भी बड़े हैं।"

"फिर कभी दे आना।"

"नहीं भाई, लक्ष्मी–पूजन तो आज ही है। कहीं ऐसा न हो कि तालाब में सिर्फ पानी ही पड़े।"

"तालाब में पानी ही पड़े! समझा नहीं।"

"यह भी नहीं जानते। तुमने वह किस्सा नहीं सुना कि एक बार एक राजा ने एक तालाब खुदवाया। सोचा इसे दूध से भर दिया जाये। उसने अपनी सारी प्रजा को आदेश दिया कि हर कोई एक–एक घड़ा दूध इसमें डाल जाये। प्रत्येक ने यह सोचा और सभी तो दूध डाल हीं देंगे, मैंने अगर दूध नहीं पानी डाला, तो इतने सारे दूध में...।"

"अच्छा–अच्छा सुना हुआ है किस्सा।"

"इसलिए कह रहा हूँ कि यदि मेरी ही तरह 'फिर कभी' मिठाई ले जानेवाले सभी हो गये, तो शायद इन लोगों का मुँह फीका ही रह जाये।"

"त्योहार के दिन। बड़ा अशुभ होगा।"

"यह बताओ किसके लिए ले जानी है मिठाई।"

"अपनी बीबी–बच्चों के लिए ही।"

"तो क्यों इतनी बड़ी दूकान के चक्कर में पड़ते हो? किसी बीच की दूकान से ले लो। दीवाली में वे भी ठीक ही मिठाई बनाते हैं।"

यह कहकर वह व्यक्ति चलने को हुआ। गिरीश की इच्छा उसको रोकने की न हुई। उसको जाने दिया और स्वयं भी चल पड़ा।

वहाँ से वह एक मध्यम कोटि की दूकान पर आया। वहाँ पर भी काफी भीड़ तो थी; लेकिन उतनी अधिक नहीं। गिरीश से कुछ छोटे स्तर के लोग ही वहाँ पर अधिक संख्या में थे। उसके बराबर के स्तर के लोग कुछ ही होंगे। उनमें से कुछ तो दूकान से दूर ही खड़े हुए थे।

दूकानदार को अपनी फरमाइश बताकर अरुचिपूर्वक वहाँ खड़े थे। अधिकतर इधर–उधर ही देख रहे थे। बीच में दूकानदार को भी देख लेते कि वह उनकी मिठाई तौल रहा है या नहीं। दूकानदार उनके दूर और अरुचिपूर्वक खड़े होने पर भी पास खड़े और बार–बार माँगने वाले साधारण स्तर के ग्राहकों से अधिक रुचि उनमें दिखा रहा था। उनकी मिठाई एक–दो लोगों का नम्बर काट कर पहले तौल देता और दूसरे ग्राहकों के हाथ ही उन तक पहुँचवा देता। इनमें से वे ग्राहक भी होते, जिनका नम्बर वह काट कर "बड़े" आदमी को मिठाई देता था। एक ने तो झुँझलाकर कह भी दिया– "जो तुम्हारे पास है, उसकी तुम परवाह नहीं कर रहे और जो तुम्हारी दूकान में आने पर अपनी हेठी समझ रहा है, उसका ज्यादा ख्याल कर रहे हो।"

"अरे भाई, वे दफ्तर के बाबू हैं। हमें भी दफ्तरों में जाना पड़ता है।"

दूकान पर गिरीश के ही बराबर पद का एक कर्मचारी वहाँ खड़ा था। गिरीश से उसका थोड़ा–बहुत परिचय था। नमस्कार होती थी। कभी–कभार बातचीत हो भी जाती थी। घनिष्ठता न थी। गिरीश ने उसे देखकर नमस्कार किया, तो उसने कुछ ऐसा भाव दिखाया जैसे कि वह कोई ऐसा काम करते पकड़ा गया हो, जो उसे नहीं करना चाहिए था। गिरीश समझ गया कि उसे छोटी दूकान पर खड़े होने में शर्म महसूस हो रही है।

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

नेहरू की घोर अदूरदर्शिता का परिणाम है कश्मीर समस्या

- अजय मित्तल

१५ अगस्त के बाद पाँच रियासतों का भारत में विलय सम्पन्न हुआ। हैदराबाद, जूनागढ़ सहित जम्मू- कश्मीर इनमें से एक थी। कश्मीर को निजी जायदाद जैसा समझने वाले भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. नेहरू ने इस रियासत के सम्बन्ध में स्टेट्स-डिपार्टमेण्ट को, यानी सरदार पटेल के गृह मन्त्रालय को, कोई प्रभावी भूमिका नहीं निभाने दी। वे कश्मीर को सीधे अपने स्तर पर देखते रहे। उन्हीं के द्वारा बोये काँटे पिछले बावन सालों से भारत गणराज्य को उसके मस्तक पर लहूलुहान करते चले आ रहे हैं। भारत में मिलनेवाली ५६२ रियासतों में से सिर्फ एक ऐसी है, जो नासूर के समान आज तक रिस रही है।

२१ अक्तूबर १९४७ को पाकिस्तान की फौजों ने कश्मीर पर हमला कर दिया। २४ अक्तूबर को पाक फौज ने श्रीनगर के समीप माहुरा बिजलीघर पर कब्जा करके रियासत की राजधानी को अँधेरे में डूबो दिया। दो दिन बाद ही महाराजा ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर जम्मू-कश्मीर को भारत का अंग बना दिया।

एक सप्ताह से भी कम समय में भारतीय सेना ने युद्ध का पाँसा पलट दिया। सात नवम्बर १९४७ को श्रीनगर के नजदीक शालतंग में हुई मुठभेड़ में भारत की भारी विजय के बाद पाकिस्तानी फौजों का मनोबल टूट गया।

नेहरू की भूलों और गलतियों का क्रम तो वस्तुतः विलय के साथ ही शुरू हो जाता है। पहली गलती तो उन्होंने यह की कि शेख अब्दुल्ला को अपना निजी मित्र होने के कारण महाराज हरिसिंह पर थोप दिया। शेख सदा एक आजाद कश्मीर के सपने देखता रहा था। उसने ५ अक्तूबर १९४७ को अपने प्रतिनिधि सादिक को जिन्ना से सौदेबाजी करने लाहौर भेजा था कि यदि उसे कश्मीर का शासक बनाने को राजी हो, तो वह अपनी नेशनल कान्फ्रेंस के माध्यम से रियासत को पाकिस्तान से मिलवाने की चेष्टा करेगा। पर जिन्ना शेख को नापसन्द करता था। उसे यह भरोसा भी था कि येन-केन-प्रकारेण कश्मीर पाकिस्तान के कब्जे में आ ही जायेगा, इसीलिए सौदा पटा नहीं।

बाद में पाकिस्तानी हमले की आशंका से भयभीत शेख कश्मीर से इन्दौर भाग गया और २७ अक्तूबर को

जम्मू-कश्मीर का विलय भारत में सम्पूर्ण और बिना शर्त था। भारत स्वाधीनता अधिनियम १९४७ के तहत शेष ५६१ रियासतों के समान ही बिल्कुल एक-से विलय पत्र पर महाराज हरिसिंह ने हस्ताक्षर किये थे। इसके बावजूद नेहरू ने माउण्टबैटन की सलाह मानते हुए अक्तूबर के अन्त में और फिर २० नवम्बर १९४७ को स्वयं अपनी ओर से राज्य में युद्धोपरान्त जनमत संग्रह करवाने की घोषणा करके मामले को उलझा दिया। फिर वे १ जनवरी को यह समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गये और इसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर डाला। यह एक ऐसा मुद्दा बन गया, जिसकी बिसात पर विश्व की शक्तियाँ शतरंजी चालें चलने लगीं। इस बीच युद्ध के मोर्चों पर भारतीय फौज के हाथ-पाँव बाँधकर उन्होंने उनकी बढ़ती गति रोक दी। फिर १ जनवरी १९४७ को उन्होंने एकपक्षीय युद्धविराम की घोषणा करके ८३,२६४ वर्ग किलोमीटर भूमि हमलावर पाकिस्तान के हाथ में स्वेच्छा से छोड़ दी। इसमें से ५,१८० वर्ग किलोमीटर जमीन पाकिस्तान ने दोस्ती के तौर पर १९६३ में चीन को दे डाली। इसके पूर्व १९६२ में नेहरू के प्रधानमन्त्री रहते-रहते ३७,५५५ वर्ग किलोमीटर लद्दाखी क्षेत्र चीन भारत से छीन चुका था।

भारतीय सेना के वायुयान में कश्मीर के भावी प्रीमियर के रूप में श्रीनगर लौटा। उस शाम राजधानी के प्रसिद्ध प्रताप चौक, जिसका वर्तमान नाम लाल चौक है, में अपने समर्थकों के सामने बोलते हुए शेख ने अपनी गर्हित सोच का खुलासा कर दिया था। उसके शब्द थे– "हमने धूल में से कश्मीर का ताज उठाकर पहना है। हम भारत में शामिल होंगे या पाकिस्तान में, यह सवाल अभी इन्तजार कर सकता है। फिलहाल हमें अपनी आजादी हासिल करनी है।" स्वतन्त्र राज्य के शेख के इस सपने के चलते ही नेहरू को विवश होकर उसे १९५३ में गिरफ्तार कराना पड़ा; पर इस बीच अन्य कई गलतियाँ नेहरू कर चुके थे।

जम्मू–कश्मीर का विलय भारत में सम्पूर्ण और बिना शर्त था। भारत स्वाधीनता अधिनियम १९४७ के तहत शेष ५६१ रियासतों के समान ही बिल्कुल एक–से विलय पत्र पर महाराज हरिसिंह ने हस्ताक्षर किये थे। इसके बावजूद नेहरू ने माउण्टबैटन की सलाह मानते हुए अक्तूबर के अन्त में और फिर २० नवम्बर १९४७ को स्वयं अपनी ओर से राज्य में युद्धोपरान्त जनमत संग्रह करवाने की घोषणा करके मामले को उलझा दिया। फिर

वे १ जनवरी को यह समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गये और इसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर डाला। यह एक ऐसा मुद्दा बन गया, जिसकी बिसात पर विश्व की शक्तियाँ शतरंजी चालें चलने लगीं। इस बीच युद्ध के मोर्चों पर भारतीय फौज के हाथ–पाँव बाँधकर उन्होंने उनकी बढ़ती गति रोक दी। फिर १ जनवरी १९४७ को उन्होंने एकपक्षीय युद्धविराम की घोषणा करके ८३,२६४ वर्ग किलोमीटर भूमि हमलावर पाकिस्तान के हाथ में स्वेच्छा से छोड़ दी। इसमें से ५,१८० वर्ग किलोमीटर जमीन पाकिस्तान ने दोस्ती के तौर पर १९६३ में चीन को दे डाली। इसके पूर्व १९६२ में नेहरू के प्रधानमन्त्री रहते–रहते ३७,५५५ वर्ग किलोमीटर लद्दाखी क्षेत्र चीन भारत से छीन चुका था।

आज जिस कारगिल क्षेत्र को कब्जाने की पाकिस्तान की मंशा है, वह बाल्टिस्तान जिले का हिस्सा रहा है। नवम्बर, १९४८ में जबर्दस्त बलिदान देकर जोजीला, द्रास, कारगिल आदि को मेजर जनरल थिमैया (बाद में भारत के सेनाध्यक्ष) के नेतृत्व में हिन्दुस्तानी सेना ने पाकिस्तानी फौज से छीना था। उस वक्त भारत चाहता, तो पूरा बाल्टिस्तान मुक्त करा सकता था।

संयुक्त–राष्ट्र–संघ में कश्मीर मामला ले जाना नेहरू की भूल थी। इस भूल को हिमालयी गलती में उन्होंने बदल डाला, शेख अब्दुल्ला और गोपाल स्वामी आयंगार को भारत के प्रतिनिधि के रूप में यू०एन०ओ० भेजकर। महाराज हरिसिंह के सुयोग्य प्रधानमन्त्री और पंजाब हाईकोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री मेहरचन्द महाजन जिस समझदारी के साथ भारत का केस वहाँ रख सकते थे और पाकिस्तानी प्रतिनिधि जस्टिस जफरुल्ला खान का तुर्की–ब–तुर्की जवाब दे सकते थे, वैसी न तो योग्यता इन दोनों के पास थी, न निष्ठा। फलतः दुनिया के देशों के सामने भारत का पक्ष कमजोर पड़ गया।

नेहरू की कश्मीर सम्बन्धी भूलें यहीं समाप्त नहीं हुईं। उन्होंने शेख के कहने से (महाराज हरिसिंह, उनकी हिन्दू प्रजा व केन्द्रीय विधि मन्त्री डॉ० भीमराव अम्बेडकर की इच्छाओं के विरुद्ध) अनुच्छेद ३७० संविधान में डलवाया, जिसके कारण आज भी जम्मू–कश्मीर का अपना अलग संविधान है, अलग झण्डा है, अलग नागरिकता है। हम कितना ही चिल्लायें कि जम्मू–कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, अलगाव हमारे संविधान ने ही पैदा किया है। □

– ६७, खन्दक, मेरठ

चुनाव परिणामों से बनीं कुछ संसदीय परम्पराएँ

– डॉ० दिलीप अग्निहोत्री

देश के चुनावी इतिहास में यह पहला अवसर है, जब लोकसभा में गिरायी गयी सरकार को मतदाताओं ने पहले से ज्यादा समर्थन देकर सत्तारूढ़ किया है। इसी के साथ स्थायित्व का आधार भी व्यापक हुआ है। सबसे बड़ा दल होने के कारण सरकार चलाने की जवाबदेही सिर्फ भारतीय जनता पार्टी की नहीं होगी; बल्कि उसके सहयोगी तेलुगु देशम्, द्रमुक, तृणमूल कांग्रेस, जनता दल यूनाइटेड, हरियाणा लोकदल आदि को भी उनके मतदाताओं ने इस गैरकांग्रेसी सरकार को चलाते रहने के लिए जनादेश दिया है। इसमें तनिक भी लापरवाही भविष्य में इन दलों के लिए ही घातक होगी। यही जनादेश गठबन्धन में शामिल दलों को आपसी समझ बढ़ाने और उसे जारी रखने के लिए प्रेरित करता रहेगा।

दूसरी ओर सरकार गिराने वालों के पास पछतावे के अलावा कुछ नहीं है। कांग्रेस को अपने इतिहास में अब तक की सबसे कम सीटें मिली हैं, जयललिता की सीटें कम हुई हैं और महत्त्व तो बिल्कुल ही खत्म हो गया। सुब्रह्मण्यम स्वामी की जमानत जब्त हुई, पाँच मिनट में वैकल्पिक सरकार बनाने की घोषणा करने वाले पाँच सीटों पर सिमट गये, जबकि एक मिनट में सरकार पेश करने वाले लालू यादव पिछले दस वर्ष में इतने हताश–निराश पहले कभी नहीं हुए थे। मुलायम सिंह यादव की यह सीटें तो बढ़ीं, लेकिन जनाधार की ही तरह इनका महत्त्व भी कम हो गया है। अब किसी सरकार को गिराने अथवा वैकल्पिक सरकार बनाने या न बनाने में मुलायम सिंह की भूमिका समाप्त हुई है। पिछली लोकसभा में मुलायम सिंह और लालू यादव के सांसदों ने मिलकर कई बार सदन की कार्यवाही को बाधित किया था। इस बार इस बात की सम्भावना भी कम हुई है। यही दशा साम्यवादी दलों की हुई है। अब कोई, ज्योति बसु का मन बहलाने के लिए भी प्रधानमन्त्री पद हेतु उनका नाम नहीं लेगा। अब चन्द्रशेखर भी छींका टूटने की उम्मीद नहीं करेंगे। अब शायद कोई मुख्यमन्त्री केन्द्र सरकार गिराने के लिए लोकसभा में बैठने की हिमाकत नहीं करेगा। देवगौड़ा तो लोकसभा में पहुँच ही नहीं सके। तमिल मनीला कांग्रेस का सफाया हो गया। कांग्रेस अध्यक्षा के रूप में सोनिया के करिश्मे की परख हो चुकी, अब लोकसभा में नेता विरोधी दल के रूप में वहाँ कांग्रेस को क्या फायदा पहुँचायेंगी, यह भी देखना है। इसलिए सामान्य रूप से माना जा सकता है कि तेरह महीने में अटल बिहारी की सरकार को हटाने की विपक्षी दलों की कवायद एक राजनीतिक अपराध ही था। यद्यपि तेरह महीने में किसी सरकार के कार्यों का पर्याप्त मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है, तथापि यह कहने का पर्याप्त आधार है कि इस अवधि में ही सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था और सुरक्षा–व्यवस्था में सुधार की दिशा में ठोस प्रयास किये थे। अमेरिका द्वारा लगाये जानेवाले आर्थिक प्रतिबन्धों के इतिहास में भी यह पहला अवसर था, जब भारत का उदाहरण पेश कर इस नीति के औचित्य पर वहाँ बहस शुरू हुई। अमेरिकी सीनेट के अधिसंख्य सदस्यों ने प्रमाणों के साथ यह विचार रखा था कि जिस प्रकार भारत सरकार ने अमेरिका द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों को दरकिनार करते हुए आत्मनिर्भर होने के प्रयास किये हैं उससे भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ा। मुद्रास्फीति की दर दो दशकों में इतनी कम नहीं हुई थी। यही पहला अवसर था, जब अग्नि मिसाइल के परीक्षण रोकने के लिए पड़ रहे विदेशी दबाव को ठुकरा दिया गया। सोवियत संघ के पतन के बाद भारतीय विदेश नीति में आयी दिशाहीनता को दूर करने का इतना प्रयास पहले नहीं हुआ। व्यापक परमाणु परीक्षण सन्धि (सी०टी०बी०टी०) पर भारत का दृष्टिकोण इतना स्पष्ट पहले कभी नहीं था। जिसे 'साम्प्रदायिक' कहा गया, उस मामले में भी सरकार पर कोई आक्षेप नहीं था। फिर भी यह सरकार गिरायी गयी थी। निश्चित रूप से यह मानकर सरकार नहीं गिरायी गयी होगी कि वह ज्यादा मजबूत होकर लौट आयेगी। तब देश पर हजारों करोड़ का चुनावी खर्च लादने और कुछ महीने के लिए राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न करने का औचित्य क्या था?

पिछले दिनों सरकार गिराने के जो प्रयास हुए, उससे भारत के संसदीय प्रजातन्त्र की छवि विश्व में

धूमिल हुई थी; लेकिन चुनाव परिणामों ने न सिर्फ संसदीय प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठा बढ़ायी है; बल्कि कुछ ऐसी संसदीय परम्पराओं की स्थापना की है, जिनके अतिक्रमण की भविष्य में शायद कोई कोशिश नहीं करना चाहेगा। जन–आकांक्षाओं पर खरी न उतरने वाली सरकार के गिरने पर किसी की सहानुभूति नहीं होती; किन्तु ठीक काम करने वाली सरकार को गिराना गैर–प्रजातान्त्रिक होता है। भारतीय जनता पार्टी गठबन्धन सरकार को बिना किसी आधार के गिराया गया था। सुब्रह्मण्यम स्वामी द्वारा दी गयी चाय पार्टी में सरकार गिराने की योजना बनी थी। इसमें सोनिया, जयललिता के अलावा विदेशी राजनयिक भी मौजूद थे। परन्तु सरकार गिराने के आधारों पर गौर कीजिये, जयललिता अपने खिलाफ लगे भ्रष्टाचार के आरोपों को खारिज कराना चाहती थीं और सोनिया गांधी चुनाव का सामना किये बगैर प्रधानमन्त्री बनना चाहती थी। मुलायम और लालू भाजपा का विरोध करके ही अपने को धर्मनिरपेक्ष साबित करते रहे हैं। उनकी राजनीति का सिर्फ यही एक आधार है। इन्हीं सब आधारों पर ही अटल बिहारी की सरकार को गिराया गया था। लेकिन चुनाव परिणामों के मिलने के बाद यह सन्देश मिला है कि निजी कारणों से किसी निर्वाचित सरकार को गिराने की कोशिश बन्द होनी चाहिए।

स्वतन्त्रता के बाद इस चुनाव में यह पहला अवसर है, जब विदेशी मूल की महिला प्रधानमन्त्री पद की दावेदार बनी थी। चुनाव में इस बात का भी फैसला होना था। विश्व के अन्य देशों की इस मसले पर खासी दिलचस्पी थी। वर्त्तमान संविधान के द्वारा सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री बनने से नहीं रोका जा सकता था। इसलिए यह काम फिलहाल मतदाताओं को ही करना था और मतदाताओं के फैसले से देश का सम्मान बढ़ा है। देश की बहू होने के कारण सोनिया संसद् की सदस्य तो बन सकती हैं। लेकिन जनता ने प्रधानमन्त्री पद की दौड़ से उन्हें अलग कर दिया है। समय रहते सोनिया ने इस सच्चाई को स्वीकार नहीं किया, तो कांग्रेस की सीटें और भी कम होती जायेंगी। यह सोनिया का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था और इसमें वह पी०वी० नरसिम्हाराव से भी कमजोर साबित हुईं। इसी प्रकार संविधान किसी मुख्यमन्त्री को लोकसभा का सदस्य रहते समय सदन में मतदान से नहीं रोक सकता। लेकिन उड़ीसा के गिरधर गोमांग को मतदाताओं ने ही सजा दी है। इसके बाद उनकी पार्टी के विधायकों का ही उन पर विश्वास नहीं रह गया है। पाँच वर्ष सरकार चलने, विदेशी मूल के व्यक्ति को उच्च पदों से वंचित रखने, मुख्यमन्त्री के लोकसभा में बैठने और वैकल्पिक सरकार का स्वरूप बताये बिना किसी सरकार को गिराने से रोकने के लिए संविधान में संशोधन अपेक्षित है; लेकिन इसके लिए संसदीय औपचारिकता पूरी होनी चाहिए। फिलहाल यह काम मतदाताओं ने कर दिया है। □

धूम्रपान से बढ़ता खतरा

धूम्रपान करना और शराब पीना मौत को एक तरह से बुलावा देना है, लेकिन यह जानते हुए भी एशिया में अधिकतर लोग धूम्रपान की लत में अपना स्वास्थ्य और जीवन बर्बाद कर रहे हैं। पश्चिमी देशों में धूम्रपान करने और शराब पीने की प्रवृत्ति में गिरावट आयी है। इसके बाद अब एशियाई देश शराब और तम्बाकू के सबसे लाभप्रद बाजार बनते जा रहे हैं। कोलम्बो स्थित विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू०एच०ओ०) के क्षेत्रीय प्रमुख डॉ० उटोन के अनुसार एशियाई बाजार में तम्बाकू के अनेक हानिकारक उत्पाद पसर गये हैं। कुछ देशों में तो सिगरेट के १०० से भी अधिक ब्राण्ड उपलब्ध हैं। विश्व भर में हर साल धूम्रपान से ३० लाख लोग मौत के मुँह में चले जाते हैं। इनमें से एक–तिहाई लोग सिर्फ विकासशील देशों में हर धूम्रपान से मरते हैं। तम्बाकू के सेवन की यदि यही प्रवृत्ति जारी रही, तो अगले ३०–४० वर्षों में विश्व में धूम्रपान के कारण मौत के ग्रास बनने वाले करीब एक करोड़ लोगों में से ७० लाख लोग विकासशील देशों के होंगे। नये सर्वेक्षणों से पता चला है कि अधिक धूम्रपान असामयिक मृत्यु का कारण है। धूम्रपान करने वालों में महिलाएँ भी होती हैं। अनुमान लगाया गया है कि विश्व में २० करोड़ महिलाएँ धूम्रपान करती हैं। एशिया के वैसे बहुत से देशों में जहाँ व्यापार के लिए तम्बाकू की खेती होती है, धूम्रपान की समस्या अधिक है। १९९३ में इस क्षेत्र में तम्बाकू का अनुमानित उत्पादन १० लाख मीट्रिक टन से अधिक था। □

व्यंग्य

प्रतिष्ठित गिरफ्तारी

- सुधीर ओखदे

इसे मात्र गिरफ्तारी कैसे कह सकते हैं आप? वे क्या कोई उठाईगीर हैं; चोर हैं, डाकू हैं, बलात्कारी हैं जो मात्र गिरफ्तार कह दिया। गिरफ्तारी तो वह होती है जिसमें पुलिस सरेआम अपराधी को खदेड़ती हुई थाने ले जाती है। इन्हें तो पुलिस ने बाकायदा अपाइन्टमेण्ट लेकर अपराध भाव से गिरफ्तार किया है। ये हँस रहे हैं; पर पुलिस शर्मिन्दा है। ये पुलिस की पीठ पर धौल जमाते हुए उससे कानून व्यवस्था की चर्चा कर रहे हैं और पुलिस नम्रता से उनके जवाब दे रही है। लोगों को शक होने लगता है कहीं "ये नकली पुलिस तो नहीं।"

कोई गाली वाला पुलिसिया विशेषण नहीं, हरामजादा तक नहीं। सर, प्लीज, थैंक्यू कहीं थाने की डिक्शनरी के शब्द हैं! पुलिस वाले शिक्षक की भाँति व्यवहार करें, तो शक के घेरे में तो आ ही जाते हैं। आज की गिरफ्तारी अलग-सी है! नहीं तो पूरा मोहल्ला जान जाता है कि आज किसकी गिरफ्तारी हुई है।

मरदूद, दूकान से ब्रेड चुरा रहा था। दूसरे का हक मारता है। स्वतन्त्रता के पचास सालों बाद भी चोरी करता है ब्रेड की। अपना जीवन-स्तर उठाना ही नहीं चाहता। वही मध्यमवर्गीय मानसिकता! जहाँ पड़े हो, पड़े रहो। जो करते हो, करते रहो। पहले भी ब्रेड चुराते थे, अब भी ब्रेड चुराएँगे। ऐसों को पुलिस पकड़ती है, तो अकड़ती भी है। सारा शहर जान जाता है कि चोर पकड़ा गया।

बेहूदा, सिनेमा के टिकट ब्लैक में बेंच रहा था। दूसरे का हक मारता है। कालाबाजारी भी ऐसे करता है, जैसे भीख माँग रहा हो; शब्दों के वजन को ही कम कर देता है। अब पुलिस खदेड़ेगी नहीं, तो और क्या करेगी? कालाबाजारियों को पकड़ने का हुक्म है, तो तुझे नहीं तो क्या सेठ धनपत लाल को गिरफ्तार करेगी? समझता ही नहीं, हल्ला करता रहता है।

बदमाश, सरे बाजार अमीर घर की लड़की को देखकर सीटी मारता है। टपोरी। तेरी हिम्मत कैसे हुई अमेरिका को छेड़ने की। भारत होकर हर परमाणु बम को हाथ लगाना चाहता है। जानता नहीं, यह बड़ों की बपौती है। देखता नहीं, रोज नये-नये ब्वाय फ्रेण्ड के साथ अलग-अलग मॉडल की कारों में घूमती है। सजा नहीं मिलेगी तो और क्या होगा। अब गिरफ्तार होगा, तो होहल्ला करेगा। लानत भेजेगा पुलिस को।

इन तीनों गिरफ्तारियों से अलग गिरफ्तारी हुई थी आज। सनसनी फैल गयी थी शहर में। नगर के प्रतिष्ठित उद्योगपति जयशंकर जी की अपाइन्टमेण्ट लेकर गिरफ्तारी हुई थी। गत कई दिनों से उनकी गिरफ्तारी की चर्चा थी; पर जयशंकरजी की कुछ महत्त्वपूर्ण मीटिंगों, विदेश दौरे इत्यादि के चलते गिरफ्तारी टल रही थी।

उस दिन गिरफ्तारी तय हुई थी। पर जब पुलिस उनके बँगले पर पहुँची, तब वे सो रहे थे। रात पार्टी में कुछ अधिक हो जाने से ऐसा हुआ था। पुलिस को बडी शर्मिन्दगी हुई थी। सीनियर अधिकारी ने पुलिसियों को लथाड़ा था कि शरीफ आदमियों को गिरफ्तार करने के पूर्व उसकी सुविधा, असुविधा का तो ध्यान रखा करो। अधिकारी ने बताया, कल वह भी था पार्टी में उनके साथ। सचमुच कुछ ज्यादा ही हो गयी थी उन्हें। अगली बार फोन करने के बाद उनके घर पर जाना।

अगली बार जब पुलिस ने फोन किया, तो पता चला कि साहब ने आज आने से मना किया है। गत कई महीनों से ओवर टाइम को बेदर्दी से इनकार करनेवाली उनकी स्टेनो अचानक ओवर टाइम करने को राजी हो गयी थी। उसके बीमार पिता के आपरेशन के लिए पचास हजार की आवश्यकता थी और वह आज की रात ओवर टाइम करके उस रकम को प्राप्त करनेवाली थी अतः महीनों से रुके न जाने कितने डिक्टेशन आज टाइप होने वाले थे। पुलिस वाले भी मानवीय मन रखते हैं और सुविधाभोगियों के लिए तो रखते ही रहते हैं। अतः इस बार भी गिरफ्तारी टल गयी थी।

अब जयशंकर जी ने कोई ब्रेड तो चुराया नहीं था। उन पर सरकार ने आयकर की चोरी का प्रतिष्ठित मुकदमा दायर किया था।

आहा! कितनी भाग्यशाली चोरी है यह! सरकार से चोरी; चोरी होकर भी चोरी नहीं। वाह! वाह!

इस वर्ष आपका कितना टैक्स कटा? यह प्रश्न मार्च अप्रैल से आरम्भ हो जाता है। कितना कटा, कितना बचाया, कितना बताया। यह चर्चाएँ आरम्भ हो जाती हैं। जिनका कटता है, वह सीना तान कर घूमते हैं। जो इस सीमा में नहीं होते, वह शर्मिन्दा से मुँह छिपाते यहाँ–वहाँ घूमते हैं। आयकर, कर न होकर प्रतिष्ठा का मापदण्ड है। इस कर की फटकार मीठी लगती है। इस कर का तेवर सौम्य लगता है। यह कर नहीं, सौगात है।

आय के अज्ञात स्रोतों को सरकार से छिपा कर जयशंकर जी ने जो अपराध किया था, उसी की यह प्रतिक्रिया थी। शहर में चर्चाएँ तेज होनी लगीं।

एक– अबे! देता तो है सरकार को। क्या भिखमंगा हो जाये? जान निकाल कर दे दे? पिछले चुनावों में लाखों खर्च किये थे, वह भूल गयी सरकार। सज्जन आदमी की तो गति ही नहीं है।

दो– जयशंकर जी की गिरफ्तारी का तो विरोध होना चाहिए। पुलिस भी यार दो कौड़ी के चोरों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों में अन्तर ही नहीं करती। कर की चोरी, बिजली की चोरी, सरकारी टेलीफोन से कॉल की चोरी, ऑफिस स्टेशनरी की चोरी को ब्रेड की चोरी से तौलती है। यह भी नहीं समझती कि ब्रेड चुरानेवाला सचमुच चोर था। जयशंकर जी को क्या पड़ी है चोरी करने की। पैसा पानी की तरह बहाते हैं। शराब गन्दी नाली की तरह घर में बहती रहती है। कितने ही अधिकारी

प्रतिज्ञा

आओ सब मिल संकल्प करें,
हम स्वच्छ धरा को कर देंगे।
दूषित होती इस धरती को,
नव–जीवन से फिर भर देंगे।।

– डॉ० गिरीश चन्द्र पाठक 'आकाश'

उसमें रोज डुबकी लगाते हैं। लड़कियाँ महाविद्यालयों में मूर्ख प्राध्यापकों की तरह बहुतायत मात्रा में यहाँ–वहाँ डोलती रहती हैं। ऐसा आदमी भला ऐसा कृत्य कर सकता है।

तीन– आजकल तो सुना है जेल भी वातानुकूलित होते हैं। ऊँचे व्यक्तियों को ऐसी जेलों में ही रखा जाता है। फ्रिज, टी०वी०, ए०सी० दारू सब कुछ वहाँ उपलब्ध रहता है। वरना अपने जयशंकरजी का क्या हाल होता? आयकर चुराना भी कहीं चोरी की श्रेणी में आता है। भैया! तुम्हें पैसा चाहिए, तो अपनी बात करो, सरकार को बीच में क्यों लाते हो? वह कमा रहा है, तुम भी कमाओ। भाई, ऐसा जुल्म तो मत करो।

चार– तुम्हें क्या लगता है, पुलिस उसे पकड़ कर अन्दर रख पायेगी। यह सब नाटक है। सब मिले–जुले रहते हैं। एक दो दिन में मामला ठण्डा पड़ जायेगा।

पाँच– भाई, कुछ भी कहो। पता नहीं अपना वेतन कब उस सीमा तक पहुँचेगा, जब सरकार हमसे भी कर माँगेगी। सरकार नौकर से पैसे की माँग करे, कितना सुखद लगता होगा! भाई! मैं तो अध्यापक हूँ, किसी राष्ट्रीयकृत बैंक का भृत्य तो नहीं, जो इस गौरव को प्राप्त कर सकूँ। हे भगवान्! कब ऐसा मौका आयेगा, जब मेरे प्राइवेट ट्यूशनों पर भी सरकारी गाज गिरेगी।

शहर में जगह–जगह चर्चाएँ हो रही थीं। समाचार पत्रों के मुखपृष्ठ भरे पड़े थे। इधर जयशकर जी पूर्व ही अग्रिम जमानत से लैस अपने बँगले पर बैठे उच्च पुलिस अधिकारियों के साथ टी०वी० पर क्रिकेट मैच का आनन्द ले रहे थे। जयशंकर जी कोई ब्रेड चोर थोड़े ही थे। उन्होंने किसका हक मारा था। ◘

– III/२, आकाशवाणी कॉलोनी,
जलगाँव–४२५००१ (महाराष्ट्र)

बलिदान-दिवस (१० नवम्बर) पर विशेष-

वे अपनी रोशनी अपने धुएँ में छोड़ गये

❑ वचनेश त्रिपाठी

कलकत्ता के मोतीलाल राय बलिदानी क्रान्तिवीर कन्हाईलाल दत्त के लिए अति निकट सम्पर्क में रहे, जेल में भी उनसे तीन बार मिले, यही नहीं जब एक बार चन्द्रनगर में कन्हाईलाल दत्त ने एक स्वयंसेवक दल बनाया, तो उसमें कन्हाई के साथ मोतीलाल राय भी सक्रिय रहे थे, उस समय चन्द्रनगर के ही एक भीषण अग्निकाण्ड में ५-६ घण्टे लगातार अग्नि बुझाते रहने के परिश्रम से कन्हाई कमजोरी और थकान से बेहोश होकर गिर गये। उन्हें १०५ डिग्री ज्वर भी था; तो उस समय मोतीलाल राय ही अपने साथी के साथ कन्हाई को कन्धे पर उठाकर उनके घर तक लाये थे। अग्निकाण्ड होने के पूर्व भी मोतीलाल राय कन्हाई के साथ उनके मकान पर ही मौजूद थे। यह इस कारण लिखना आवश्यक है कि पाठक यह विश्वास कर सकें कि मोतीलाल राय के द्वारा जो ज्ञातव्य वृत्त बलिदानी कन्हाईलाल दत्त के विषय में जानकारी में आया, वह सर्वथा विश्वसनीय है। उसमें कल्पना या तथ्यहीनता की गुंजाइश नहीं। यद्यपि यह सही है कि मोतीलाल राय ने कलकत्ता में रहकर कन्हाई लाल के बारे में जो भी कुछ लिखा, वह बंगला भाषा में ही लिखा और फिर 'अनुशीलन समिति' के ही एक क्रान्तिकारी बन्धु नलिनीकिशोर गुह ने भी 'बांगलाय विप्लववाद' नाम का जो विप्लवी इतिहास लिखा, वह भी बंगला भाषा में ही है। उसमें भी शहीद कन्हाईलाल दत्त के विषय में पर्याप्त सही जानकारी दी गयी है। इन दोनों लेखकों के अलावा एक अन्य क्रान्तिवीर थे बंगाल के, नलिनीकान्त गुप्त, जो "अलीपुर-बमकेस" में कन्हाईलाल दत्त के साथ ही जेल में रहे थे। उन्होंने भी उस काल के इतिहास को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ किया था, पर वे उसे जहाँ तक लेखक की जानकारी है- पूर्ण नहीं कर सके। पाण्डिचेरी में रहकर वे यह इतिहास लिख रहे थे। उस महान् बलिदानी के ही जीवन की कुछ चर्चा मोतीलाल राय के सूत्रों के हवाले से। प्रसंग है, "स्वदेशी अपनाओ, विदेशी का बहिष्कार करो", लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया था, फलतः उन दिनों चारों ओर 'स्वदेशी आन्दोलन' तथा 'वन्देमातरम्'-उद्घोष की धूम मची हुई थी, 'वन्देमातरम्' गीत और उसका उद्घोष करना अंग्रेजों ने प्रतिबन्धित कर रखा था। सन् १९०७ चल रहा था। उन्हीं दिनों चन्द्रनगर में एक विदेशी सर्कस कम्पनी आयी, नाम था- "लारेन्स सर्कस कम्पनी"। स्वदेशी भावना से जुड़े युवकों को यह बात बुरी लगी कि एक विदेशी कम्पनी देश का धन लूटकर विदेश ले जाये। फलतः कन्हाईलाल दत्त और उनके दो साथियों ने उस कम्पनी के बहिष्कार की योजना बनायी। साथियों सहित वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर वह कम्पनी सर्कस के टिकटों की बिक्री कर रही थी- कन्हाईलाल वह बिक्री बन्द कराने में लग गये। जिससे "लारेन्स सर्कस कम्पनी" का अंग्रेज प्रबन्धक क्रुद्ध होकर कन्हाई को गालियाँ देने लगा। कन्हाईलाल के साथी अपने नेता का यह अपमान कैसे सहते! वे भी उस अंग्रेज के अपशब्दों का वैसा ही मुँहतोड़ उत्तर देने लगे, तो आगबबूला होकर एक अंग्रेज अपनी कनात से बाहर निकल आया और मैनेजर का पक्ष लेकर कन्हाई को मारने चला। उसने अपने हाथ के डण्डे को कन्हाई पर चलाया ही था कि कन्हाई ने उसका प्रहार फुर्ती से बचाकर एक जबर्दस्त घूँसा जो उस गोरे के मुँह पर, मारा तो वह खून उगलने लगा। अंग्रेज-बच्चे को ऐसा चक्कर आया कि गश खाकर वह कनात के खूँटे पर औंध मुँह जा गिरा। कन्हाई और उसके साथी तत्काल वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गये। पुलिस आयी और उसी ने उस घायल गोरे को अस्पताल में भर्ती कराया। पुलिस घूँसा मारनेवाले का पता नहीं कर सकी और वह विदेशी कम्पनी उस शहर में अपना खेल बिगड़ते देख अपना तम्बू-डेरा उखाड़कर वहाँ से चलती बनी। कन्हाई के युवक-संघ ने इसे अपनी विजय समझा।

इस घटना के पूर्व भी कन्हाईलाल ने दो अंग्रेजों

की पिटाई की थी। उन दिनों कन्हाई के युवक दल ने चन्द्रनगर के 'डूप्ले कालेज' के एक शिक्षक चारुचन्द्र राय को अपना अध्यक्ष मनोनीत कर संगठन–कार्य चलाया था। स्वदेशी आन्दोलन के साथ–साथ यह संघ व्यायाम, घूँसेबाजी, लाठी–गाठी चलाना, बन्दूक से निशानेबाज़ी आदि के प्रशिक्षण पर जोर देता था। फलतः कन्हाई घूँसेबाजी में निष्णात हो गये थे। कन्हाईलाल जिस कमरे में सोते थे, उसके दक्षिण की ओर कुछ वेश्याएँ रहती थीं। जहाँ अंग्रेज कर्मचारी रात को शराब में धुत होकर बड़ा कोलाहल मचाते थे। साथ ही पिशाचों की तरह नाचते–कूदते थे। उस शोर के कारण सोना कठिन था। किसी में हिम्मत न थी कि उस अनाचार और हुल्लड़बाज शराबी अंग्रेजों का प्रतिवाद करे। तब कन्हाईलाल ही आगे आये। उन्होंने उन गोरों का प्रतिवाद किया, जो संख्या में उस समय तीन थे। गोरों ने कन्हाई जैसे एक सामान्य से दिखने वाले युवक की परवाह न की, वरन् और भी अधिक चिल्ल–पों मचाने लगे, तब उन तीन गोरों में एक अंग्रेज जो सबसे अधिक मोटा–तगड़ा था, कन्हाई से दूना लगता था, उसकी नाक पर कन्हाई ने कसकर एक घूँसा जड़ दिया, जिससे वह गोरा चक्कर खाकर जमीन पर जा गिरा। यह कमाल था कन्हाई की घूँसेबाजी का। बाकी दोनों अंग्रेज अपने साथी की यह दुर्दशा देखकर खिसकने लगे, तो कन्हाई ने उनका पीछा करके एक दूसरे अंग्रेज के भी घूँसा जड़ दिया; घायल होकर वह भी धराशायी हो गया। दोनों गोरों की चोटें सांघातिक थीं। परन्तु तीसरा हाँफता–हाँफता किसी तरह भागने में सफल हो गया। इसके बाद किसी भी रात में उस स्थान पर कोई भी गोरा हुल्लड़ और नशेबाजी का रंग दिखाने नहीं आया। कन्हाई ने यह गोरों पर दूसरी विजय प्राप्त की थी। यह जमाना ब्रिटिश राज का ऐसा अपमानास्पद था कि जो लारेन्स कम्पनी वहाँ सर्कस दिखाकर धन लूटने आयी थी, उसने गोरे और देशी (भारतीय) दर्शकों के बीच ऐसा भेदभाव बरता था कि गोरों के लिए सीटें अलग सुरक्षित रहती थीं और भारतीय दर्शकों को उनसे अलग नीची जगह में बैठना पड़ता था। इस अपमान का प्रतिकार करना भी कन्हाई ने जरूरी समझा था। उनका मुख्य और प्रिय आहार लाई–चिउड़ा (मूड़ी) और दूध था। अपनी बाल्यावस्था में ही कन्हाईलाल हर रोज प्रातः से रात तक ढाई सेर दूध पीते थे। गरीब बालकों से उनकी घनिष्टता–मित्रता रहती थी। उनके बचपन का एक बाल–मित्र था, नाम था कुछ और पर सभी उसे 'टोबा' कहते थे। उसके माता–पिता प्लेग के शिकार होकर संसार छोड़ गये थे। कन्हाई उस अनाथ और गरीब 'टोबा' को अपने भाई की तरह अपने ही घर में रखने लगे। उसकी हर तरह से न केवल सहायता करते थे; वरन् भाई जैसा ही उससे स्नेह का नाता भी निभाते थे। वह एक महाराष्ट्रीय परिवार का था। वहाँ और भी कई महाराष्ट्रीय बालकों से कन्हाई की मित्रता रही थी और वे प्रायः सभी गरीब घरानों के ही थे।

फिर जब बड़े होकर बी०ए० करने के बाद कन्हाई विप्लवी समिति से जुड़े, तब की बात। एक दिन अखबार में खबर छपी कि ग्वालन्दी रेलवे स्टेशन पर एक अंग्रेज एलेन साहब को गोली मार दी गयी। वे स्वदेशी आन्दोलन के ही दिन थे। उसी दिन मोतीलाल राय ने कन्हाई से भेंट की, तो जरा गौर से उनकी तरफ देखने लगे। कन्हाई ने पूछ लिया– "ऐसे क्या देख रहे हो?" मोतीलाल राय ने कहा– "यह सब क्या हो रहा है?" उनका इशारा एलेन साहब को गोली मारी जाने के समाचार की ओर था– फिर पूछा, "ओह! यह कैसा स्वप्न देख रहा हूँ?" तो कन्हाई ने कहा– "अब ऐसा स्वप्न रोज देखोगे।" गोरों से जिनमें विदेशी पादरी भी थे– विप्लवी समिति प्रतिशोध चुका रही थी। चुनौती दे रही थी कि– "करो हमारी माता के अंग–भंग! बंग–भंग! हम तुम्हारे अंग काटेंगे, तुम्हें छोड़ेंगे नहीं....।" सन् १९०७ में चन्द्रनगर के 'हाट' नामक स्थान पर "स्वदेशी–सभा" का आयोजन किया गया। भारी जन–समूह वहाँ इकट्ठा था। तभी दो दर्जन बन्दूकधारी सैनिक वहाँ आ धमके। उस समय वहाँ का मेयर था, मंसियेतादिमल नाम का फ्रांसीसी तानाशाह। सैनिकों ने उस सभा की घेरेबन्दी कर ली। तभी इस दमन–चक्र के विरोध में ६०० युवक एक खण्डहर में इकट्ठे हो गये। वहाँ लाठियाँ व बन्दूकें भी आ गयीं। विचार बना कि अभी ही मेयर (बड़े साहब) के बँगले पर धावा बोलकर प्रतिशोध चुकाया जाय; पर तब कन्हाई लाल ने उन सबको रोका, शान्त किया। कहा, "आज नहीं; पर इसका बदला शीघ्र ही हम लेंगे। विश्वास रखो।" युवक–दल मान गया। पश्चात् सन् १९०८ के मार्च महीने में उसी मेयर के बँगले में, जो उसका सोने का कमरा था, वहाँ इसी दल ने बम फेंका। इस तरह स्वदेशी–आन्दोलन से ही विप्लव–यज्ञ प्रारम्भ हो गया था। एक पर एक प्रतिकारात्मक काण्ड होने लगे। एलेन साहब को गोली मारे जाने के बाद एक दिन कुष्टिया का जो विदेशी पादरी था, जो आये दिन हिन्दुओं का धर्मान्तरण करके उन्हें गिरजाघर (चर्च) ले जाकर, उन्हें गो–मांस खिलाकर ईसाई बना रहा था। उस

पादरी हिंकन बोथाम को भी कन्हाई लाल की ही समिति ने गोली मार दी। क्रान्तिकारियों की पवित्र भावना और लगन देखकर देशवासी उनकी ओर आकृष्ट हो रहे थे। नव जागरण करवटें ले रहा था।

कलकत्ता में "अनुशीलन समिति" का मुख–पत्र था– 'युगान्तर', जो उन दिनों कलकत्ता मेडिकल कालेज के दक्षिण चांपातल्ला गली में था, एक दिन कन्हाईलाल दत्त एक साथी के साथ बारूद इकट्ठी करके 'युगान्तर' के कार्यालय में आये, तो देखा कि एक ओर 'युगान्तर' पत्र की सामग्री तैयार हो रही है, दूसरी तरफ वहीं अरविन्द घोष के अनुज बारीन्द्र कुमार घोष सोडा वाली एक बोतल में बारूद ठूँस–ठूँस कर भरने में व्यस्त हैं। बम बनाने की तैयारी हो रही है। बाद में सन् १९०७ में बारीन्द्र ने 'युगान्तर' कार्यालय छोड़कर कलकत्ता के मानिक तल्ला वाले मकान में विप्लवी समिति का केन्द्र निश्चित किया। साथ ही कन्हाईलाल दत्त जैसे युवकों से, छात्रों से घरबार छोड़कर विप्लव–कार्य में ही सब शक्ति लगाने का आह्वान किया।

एक दिन फाल्गुन मास में जाड़े के दिनों में चाँदनी रात में कन्हाईलाल दत्त मोतीलाल राय के घर आये, तो दोनों घर के बाहर आकर बैठे। बातें करते–करते टहलते हुए भी वार्त्ता चलती रही। मोती बाबू को आज कन्हाई एक नूतन पुरुष के रूप में दिखाई दे रहे थे। अनुपम सौन्दर्य और तेज से उनका चेहरा उद्दीप्त हो रहा था। मोतीबाबू आज उनकी बातों पर मुग्ध हो रहे थे और वे उन्हें आज अत्यधिक आत्मीय बन्धु लग रहे थे। कन्हाई ने कहा– "यह हमारा देश है और हम उसकी स्वाधीनता चाहते हैं।" मोतीबाबू ने विस्मय–विमुग्ध आनन्दी–भाव से पूछा– "कहाँ कौन क्या कर रहा है ?" कन्हाई ने कहा, "यह सब तो इस समय न बताऊँगा। पर आज बंकिम चन्द्र का "आनन्दमठ" कोई स्वप्न या उपन्यास नहीं है, आज अनेक 'सन्तान' एकत्र होकर मातृ–मन्त्र (भारतमाता को स्वाधीन कराने) की दीक्षा ले रहे हैं। मैं अब जा रहा हूँ।" और वे चले गये। देश की स्वाधीनता का ध्येय ही कन्हाई का जीवन–मन्त्र बन चुका था। ब्रह्मबान्धव उपाध्याय ने सन् १९०६ में ही कण्टलपाड़ा में जो बंकिमचन्द्र का पुण्य–भवन था, उसी में महेन्द्र की दीक्षा अभिनय, प्रान्तीय समिति के कौतुक–युद्ध तथा स्वदेश–प्रेमादि–महोत्सव आयोजित हुए थे। मोतीलाल राय ने भी उस दिन कन्हाईलाल के साथ रहकर पूरे दिन उस उत्सव का आनन्द–लाभ प्राप्त किया था। मोतीबाबू कहते थे कि स्वामी विवेकानन्द के गुरु परमहंस रामकृष्ण देव के दैवी प्रभाव और उनकी वैखरी वाणी से हम लोगों में विलक्षण जागृति व्याप्त हो गयी थी। सेवा–धर्म हेतु युवकों ने "सत्य पथावलम्बी सम्प्रदाय" नाम्नी संस्था स्थापित की और सिर पर केसरिया (पीली) पगड़ी बाँधकर सन् १९०५ में ही ७ अगस्त को कलकत्ता की सड़कों से एक बृहत् जुलूस निकाला था। सबल नैतिक जीवन के आधार पर ही युवकों ने विप्लव के अग्नि–मन्त्र की दीक्षा ली। ऊर्ध्वमुखी जीवन ही उनका अवलम्ब रहा था। और स्वदेशी–साधना के पीछे भी उसी की प्रेरणा काम कर रही थी कि घर–परिवार त्याग कर तरुण वर्ग कर्म–क्षेत्र में आ डटा था।

बारीसाल में पियर्सन नामक अंग्रेज ने "प्रादेशिक सभा" को दमन–चक्र चलाकर भंग कर दिया। नेताओं पर पुलिस ने लाठियाँ वरसायीं। सुरेन्द्रनाथ जैसे नेता मजिस्ट्रेट के सामने घंटों अपराधी की तरह खड़े रहने को विवश किये गये। उधर फ्रांसीसी सरकार ने भी चन्द्रनगर में 'वन्देमातरम्' शब्द पर प्रतिबन्ध लगा दिया। एक बार कन्हाई लाल की परीक्षा ली गयी। हुआ यह कि चन्द्रनगर में एक होटल के पास एक गोरे ने एक हिन्दू महिला का अपमान किया, वह उस समय नदी–तट पर खड़ी हुई थी। इस कारण उस अंग्रेज को युवकों ने खूब पीटा। इस पर फ्रांसीसी सरकार ने उस महिला के परिवार के मुखिया को गिरफ्तार कर लिया। मोतीलाल राय और उनके साथियों ने तय किया कि हम इस गिरफ्तारी का प्रतिकार करेंगे। इस समय इसके लिए कन्हाईलाल दत्त को भी याद किया गया। उनकी परीक्षा लेना निश्चित हुआ। एक मित्र को उन्हें यह लिखकर भेजा गया कि "देश के लिए बलिदान देने की घड़ी आ गयी। अतः यदि तुम इस बलिदानी परम्परा की होड़ में शामिल होना चाहो, तो आगामी अमावस्या की अर्द्ध–रात्रि बीतने पर श्मशान में वट वृक्ष के नीचे मिलना। वहीं कुछ योजना बनेगी।" खूब सर्दी पड़ रही थी। तेज उत्तरी पवन भी हड्डी में प्रवेश कर रहा था। दो साथी जाड़े में ठिठुरते हुए श्मशान में निश्चित वट वृक्ष के नीचे अंधेरी महानिशा में कन्हाईलाल की प्रतीक्षा करते खड़े थे। सर्वत्र शून्य व्याप्त था। समय बीत गया। कन्हाई नहीं आये। दोनों साथी लौटने ही वाले थे कि क्या देखा, तभी अपने को एकदम काले वस्त्रों से ढके हुए कन्हाई सामने आ खड़े हुए हैं। वहाँ मौजूद दो साथियों में एक मोतीलाल राय भी थे। उन्हें देखते ही कन्हाई हँसे और कहा कि– "तुम्हारे सिवा यह काम (मेरी परीक्षा लेने का) अन्य कौन करता।" तभी कन्हाई की कटि से हवा के तेज झोके से वस्त्र उड़ा, तो उनकी कमर

से लटकता एक पैना लम्बा छुरा (कटार) दिखाई दे गया। पुण्य–सलिला नदी–तट पर खडे वट वृक्ष के नीचे उस अमावस्या की महानिशा में मोतीलाल ने कन्हाई से आलिंगन–बद्ध होकर हृदय से हृदय मिलाया था और मन में बड़े–बड़े सपने सँजोये वे घर की ओर लौटे थे– तभी आगे चलते–चलते उन्हें कुछ गुनगुनाहट सुनाई दी, तो ये लोग उस स्वर–लहरी का अनुगमन करके जब एक भग्न प्राय मन्दिर पर पहुँचे, तो क्या देखा कि वहाँ कन्हाई लाल ही दो साथियों के साथ 'वन्देमातरम्'– गाने में तन्मय हैं।

उन दिनों ढाका का नवाब समीमुल्ला बड़ा ही हिन्दू–द्वेषी था। उसके हिन्दू–द्वेषी दुष्प्रचार के कारण कुमिल्ला, मेमनसिंह और जमालपुर के हिन्दुओं पर दंगाई मुसलिमों ने हमले करके बड़े अत्याचार किये– उन दिनों वहाँ हिन्दू जनता वसन्त पर सरस्वती–प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर उनका शोभा–यात्रा के साथ विसर्जन करती है। परन्तु मुसलिमों ने जमालपुर में वे प्रतिमाएँ तोड़ डालीं– दुःखी होकर हिन्दू स्त्रियाँ रास्तों और घाटों पर सब कुछ फेंककर धूल में लोटने लगीं। इस अपमान का प्रतिकार क्रान्तिकारियों ने, बारीन्द्र के दल ने, मेमनसिंह में कई मुसलिम गाँवों पर बम फेंककर किया। तब तक कन्हाई पक्के तौर से विप्लवी न बने थे; पर इस घटना से विप्लव–मन्त्र की दीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उन दिनों जो भी विप्लवी जमालपुर गये– उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इन्हीं दिनों छोटे लाट (अंग्रेज गवर्नर) की ट्रेन जब नारायण गढ़ से गुजर रही थी– उस ट्रेन को क्रान्तिकारियों ने बम से उड़ाने की प्रचेष्टा की। कन्हाई अपनी माता से कलकत्ता में नौकरी करने का बहाना बनाकर आये, किन्तु व्यस्त हो गये, क्रान्ति के कार्यों में। सन् १९०८ की ३० अप्रैल को खुदीराम बोस ने मुजफ्फरपुर (बिहार) में जज किंग्सफोर्ड को बम से मारने के उद्देश्य से ठीक उसी की रंगवाली गाड़ी पर बम फेंका, जिसमें किंग्सफोर्ड तो नहीं था– एक अमेरिकन केनेडी–परिवार की दो जानें उस बम–काण्ड में गयीं, जिसका खुदीराम को क्षोभ रहा। अन्ततः 'अलीपुर–बम केस' ('मानिकतल्ला–षड़यन्त्र–केस') में ही एक दिन ६ मई १९०८ को कन्हाई गिरफ्तार कर लिये गये। इस केस में बारीन्द्र, उपेन्द्रनाथ, उल्लासकर दत्त, हेमचन्द्रदास, सत्येन्द्र बोस आदि अनेक क्रान्तिकारी कैद हुए। इन्हीं में एक नरेन्द्रनाथ गोसाईं भी था, जो पुलिस के दबाव पर दल के भेद उगल बैठा, मुखबिर बन गया। कन्हाई के अग्रज आशुतोष ने कन्हाई की जमानत करानी चाही; पर कन्हाई ने जमानत देकर रिहा होने से इन्कार कर दिया। इस केस में अरविन्द घोष भी गिरफ्तार करके जेल में रखे गये; पर वे बारीन्द्र आदि के आत्म–स्वीकृति वाले बयानों से लम्बी सजा या फाँसी पाने से बच गये। सत्येन्द्र बोस ने तय किया कि जेल के अस्पताल में जाकर; जहाँ पुलिस ने नरेन्द्रनाथ को रखा था– बम मार कर समाप्त कर दें। कन्हाईलाल उनकी सुरक्षा में रहें। सत्येन्द्र अस्पताल गये और नरेन्द्र पर गोली चलाई भी, पर निशाना खाली गया– तभी कन्हाईलाल ने अपने तकिये के नीचे से रिवाल्वर निकालकर नरेन्द्र का पीछा किया और उसे गोली मारकर खत्म कर दिया। क्रान्तिकारियों ने ही ये रिवाल्वर जेल में पहुँचाये थे। अन्ततः कन्हाई और सत्येन्द्र बोस को फाँसी की सजा सुनायी गयी। अलीपुर केन्द्रीय जेल में १० नवम्बर (सन् १९०८) को कन्हाईलाल दत्त को तथा २३ नवम्बर (१९०८) को सत्येन्द्रनाथ बोस को फाँसी दे दी गयी। फाँसी दिये जाने के दिन भी मोतीलाल राय जेल में उनसे मिले थे, तो उस समय कन्हाई ने उनसे पूछा था– "मैं इस समय तुम्हें कैसा लग रहा हूँ?" कहते हुए वे मुस्करा रहे थे। फाँसी के बाद, कन्हाई के अग्रज आशुतोष तथा मोतीलाल राय उनका शव श्मशान ले गये। लाखों की भीड़ थी। 'वन्देमातरम्' के नारे लग रहे थे। कन्हाई ने भी तो फाँसी की कोठरी को 'वन्देमातरम्' के जय–घोष से गुंजित किया था और उनके मित्र मोतीलाल राय ने भी बलिदानी वीर की अन्त्येष्टि के बाद उनकी शोकाकुल जननी की चरण–रज जब अपने माथे से लगायी, तो उस क्षण उनके मुख से जो एक करुण ध्वनि निकली, वह शब्द था– "वन्देमातरम्"। चले गये दो तरुण विप्लवी भारतमाता के चरणों पर अपने जीवन–पुष्प चढ़ाकर। शहीद कन्हाई लाल दत्त सितम्बर में कृष्ण जन्माष्टमी पर सन् १८८७ में जन्मे थे, उनका नाम रखा गया था, 'सर्व्वतोष', जो आगे कन्हाईलाल दत्त के रूप में प्रचलित और प्रसिद्ध हो गया। उनके बड़े भाई का नाम था, आशुतोष। कन्हाई की शिक्षा मुम्बई और चन्द्रनगर के डूप्ले कालेज में हुई। उनका जन्म–स्थान चन्द्रनगर (जिला हुगली) पश्चिमी बंगाल में पड़ता है। इन शहीदों ने यह उक्ति चरितार्थ कर दी क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों के दमन–दर्प को अपने साहसिक कृत्यों से चूर–चूर कर दिया–

'चिराग बुझ–बुझ के, गरूरे–हवा को तोड़ गये।
वे अपनी रोशनी अपने धुएँ में छोड़ गये।।'

वह आलोक देश को सदैव त्याग–बलिदान की प्रेरणा देता रहेगा। ❑

कारगिल
एक असफल अपूर्ण आन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र

– श्रीकान्त जोशी

७ मई १९९९ से कारगिल की लड़ाई प्रारम्भ हुई तथा ५ जुलाई १९९९ को पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाजशरीफ ने घुसपैठियों को वापस लेना स्वीकार कर लिया और ११/१२ जुलाई तक बहुत सारे घुसपैठिये तथा घुसपैठियों के रूप में आए हुए पाकिस्तानी सेना के सैनिक भी युद्धबंदी रेखा की दूसरी ओर, पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में लौट गये। इसके पूर्व पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने दि. २८, २९ व ३० जून को चीन की यात्रा की थी और ४ जुलाई, जो अमेरिका का स्वाधीनता दिवस है, के दिन वाशिंगटन की भी यात्रा की। अमेरिका के राष्ट्राध्यक्ष बिल क्लिंटन से तीन दौर में बातचीत करके घुसपैठियों को कारगिल तथा भारत के अन्य क्षेत्रों से वापस बुलाना भी स्वीकार कर लिया। वहाँ से वे इंग्लैंड भी गये और प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर से भी मिले। बाद में १४ जुलाई १९९९ को भारत सरकार ने कारगिल क्षेत्र से सभी घुसपैठियों को खदेड़ देने की घोषणा की और देश के निर्वाचन आयोग ने भी 'बड़ी तत्परता से' (!) चुनावों की तिथियाँ भी घोषित कीं। सर्वत्र खुशी की लहर फैल गयी; क्योंकि लड़ाई खत्म हुई थी। कारगिल की लड़ाई में भारतीय सैनिकों के अपनी वीरता का, साहस का तथा मातृभूमि की रक्षा के लिए किए गये सर्वोच्च बलिदान का एक अनूठा चरमोत्कर्ष प्रदर्शित करने से ही भारत को यह विजय प्राप्त हो सकी। इस बार विश्व के विभिन्न राष्ट्रों का भारत के न्यायपूर्ण पक्ष में अभिमत व समर्थन प्राप्त करने में एक महत्त्वपूर्ण कूटनीतिक विजय भी प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने हासिल करके विश्व राजनीति में भारत का सम्मान बढ़ाया। भारत के प्रधानमन्त्री के नाते श्री वाजपेयी पहले ऐसे राजनेता हैं, जो प्रत्यक्ष युद्धकाल में रणभूमि में उपस्थित होकर सैनिकों का जोश बढ़ाने, हिम्मत अफजाई करने कारगिल के मोर्चे पर प्रत्यक्ष उपस्थित हुए थे।

भारत ने कारगिल की लड़ाई में तथा विश्व राजनीति में कूटनीतिक विजय तो प्राप्त की, लेकिन क्या यह लड़ाई केवल कारगिल या कश्मीर तक के लिए ही सीमित थी? या उसके पीछे और कोई गहरा षड्यंत्र था। यह एक विशेष रूप से विचार करने की बात है।

क्या अमेरिका को पाकिस्तानी सैनिकों की कारगिल में घुसपैठ मालूम नहीं थी?

क्या ४ जुलाई को नवाज शरीफ को बिल क्लिंटन ने लड़ाई बंद करके घुसपैठिये वापस बुलाने के लिए कहा और उसने उसकी वह बात बिना कोई प्रतिवाद किए शब्दशः मान ली होगी? घुसपैठिए वापस बुलाने का क्लिंटन का परामर्श मानने वाले पाकिस्तान ने कारगिल में जब घुसपैठिये भेजने की योजना बनायी तो वह भी क्लिंटन के परामर्श से अथवा सूचना से की थी क्या? यह भी एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय बात है। जैसी कि पाकिस्तान की आंतरिक, आर्थिक, सामाजिक, सैनिकी तथा राजनैतिक स्थिति है उसको ध्यान में लेने पर यह समझना सहज है कि अमेरिका के सहमति के बिना अथवा अमेरिका को जानकारी दिये बिना पाकिस्तान ने इतना बड़ा दुस्साहसी कदम कैसे उठाया होगा। तो क्या जो स्वयं को दुनिया का दरोगा के रूप में, विश्व शांति का, मानवता का रक्षक के नाते घोषित करनेवाले अमेरिका के अध्यक्ष को कश्मीर की युद्धबंदी रेखा को पार करके होने वाली इतनी बड़ी कार्रवाई की जरा भी गन्ध तक नहीं लग सकी उसकी विश्व श्रेष्ठ गुप्तचर यंत्रणा सी.आई.ए. क्या इस बार भी, जैसी कि 'पोखरण' परीक्षण के समय विफल हुई थी– वैसी ही वह नाकाम रही? यह असम्भव है, क्योंकि 'पोखरण' केवल एक जगह पर हुआ था, लेकिन कारगिल की घुसपैठ १५० किलोमीटर की युद्धबंदी रेखा को पार करके हुई थी। उसकी तैयारी भी कम से कम २/३ वर्षों से, कोई कहते हैं १९९५ से ही शुरू हुई थी। तो क्या ये बातें अमेरिका की गुप्तचर यंत्रणा को ज्ञात नहीं थीं? यह एक अतिमहत्त्वपूर्ण प्रश्न है। उसके उत्तर में अनेक बातों का पर्दाफाश हो सकता है। जरा सोचिये तो!

सोनियाजी का राजनीति में पदक्षेप के पीछे कौन सी शक्तियाँ?

यह तो सभी लोग जानते हैं कि १९९८ में चुनावों

में भाजपा जैसे राष्ट्रवादी दल को बहुमत न मिले इसलिए देश के भाजपा विरोधी सभी दल व तत्व एकजुट हुए थे। कांग्रेस ने तो एड़ी–चोटी एक करके अपनी आखिरी मोहरा श्रीमती सोनिया गांधी को चुनाव प्रचार में उतारा था। १९९८ की जनवरी में जब सोनियाजी अमेरिका में थीं तब यह निर्णय उनके सचिव वी. जॉर्ज ने भारत में घोषित किया था। क्योंकि उस समय विभिन्न राजनैतिक विश्लेषकों ने चुनाव के बारे में हुए सर्वेक्षणों के परिणामों के बारे में एकमत से कहना शुरू किया था कि भाजपा व उसके साथी दलों को बहुमत मिलने वाला है और ऐसे समय में अचानक श्रीमती सोनिया गांधी को राजनीति में सक्रियता से भाग लेने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हो गयी होगी, जबकि वह उस समय अमेरिका में अपने बेटे को मिलने गयी हुई थीं। यह बात ध्यान में रखने लायक ही कहनी होगी।

सब प्रकार से एड़ी–चोटी का पसीना एक करने पर भी भाजपा व उसके मित्र दलों की सरकार को शासन सम्भालने में अवरोध करने में विपक्ष व सभी प्रकार की आंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ तथा उनके देश में घुसपैठ करके बसे हस्तक असफल हुए। तब कांग्रेस, कम्युनिस्ट तथा जनतादल जैसे दलों के सर्वश्री सीताराम केसरी, सीताराम येचुरी, वर्धन, देवगौड़ा, मुलायम, अर्जुन सिंह, लालू प्रसाद जैसे विदूषकों को भ्रमित करने वाले तथा स्वयं को आधुनिक चाणक्य के नाते कहलाने वाले हरकिशन सिंह सुरजीत जैसे नेता प्रथम तो यही कहते रहे कि वाजपेयी जी की गठबंधन सरकार विश्वास मत ही प्राप्त नहीं कर सकेगी और १९९६ में १३ दिन में जैसी गिर गयी वैसी इस बार भी गिर जायेगी। लेकिन सरकार विश्वासमत हासिल कर सकी। तब ये सारे लोग कहने लगे कि यह सरकार तीन महीने भी नहीं चलेगी। आर्थिक मंदी व कश्मीर में बढ़ते आतंकवादी अत्याचार व हत्याकांड तथा गठबंधन में सम्मिलित, समता, ममता व जयललिता की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में असफल होकर यह सरकार गिरेगी। लेकिन 'पोखरण' का विस्फोट करके वाजपेयी जी ने जो सार्वजनिक समर्थन व वाहवाही प्राप्त की उससे इन सभी को बहुत बड़ा धक्का लगा। इतना ही नहीं तो विश्व के दरोगा अमेरिका को तो बड़ा आघात लगा। उसकी विश्व विख्यात गुप्तचर यंत्रणा पोखरण जैसी घटना का अंदाजा भी नहीं लगा सकी थी और अब वाजपेयी सरकार का जनसमर्थन भी बढ़ गया था। उससे अमेरिका की सरकार बौखला गयी और अध्यक्ष क्लिंटन ने आर्थिक प्रतिबंधों की घोषणा की। अमेरिका के मुँह पर लगे इस तमाचे को सहना अध्यक्ष क्लिंटन को असम्भव ही था।

इसके बाद घटनाक्रम में बड़ी गति आयी। सोनियाजी को कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर स्थापित करने की जल्दबाजी हुई। सीताराम केसरी को उस पद से षड्यंत्रपूर्वक अपमानित करके हटाया गया और वहाँ पर सोनिया को बिठाया गया। इस वर्ष का गठबंधन सरकार का प्रथम आर्थिक संकल्प भी बड़ा संतुलित रहा। उसके बाद ४ राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव के पूर्व 'प्याज' के दामों की किल्लत करके सामान्य जनता के मन में भाजपा नेतृत्ववाली गठबंधन सरकार के बारे में अविश्वास निर्माण करने में सभी लोग जुट गये। 'प्याज' की कृत्रिम टंचाई निर्माण करने में तथा 'प्याज' की बढ़ती कीमतों के बारे में अवास्तविक, भ्रामक प्रचार करने में, सभी दल व देश के प्रचार माध्यमों में मीडिया का एक अनियंत्रित तथा विदेश नियन्त्रित तबका भी जुट गया। ऐसे ही संभ्रम व अंधाधुंदी के वातावरण में कश्मीर में जब नयी सरकार ने अपनी सक्रिय प्रतिरक्षा नीति का प्रयोग करके आतंकवाद को नियंत्रित करने में सफलता अर्जित करना प्रारम्भ ही किया था तब लोगों को विभ्रमित करने के लिए अगस्त में 'झाबुआ' काण्ड की आड़ में भाजपा नेतृत्व वाली सरकार पर 'वह अल्पसंख्यक विरोधी है' ऐसे बेबुनियादी आरोप लगाने शुरू किए। झाबुआ काण्ड के पहले राजकोट में लड़कियों के कान्वेन्ट स्कूल में बाईबिल जलाने के झूठे आरोप लगाये गये। देश भर में ईसाई संगठनों द्वारा संचालित विद्यालय व विभिन्न चर्च के पादरियों द्वारा अल्पसंख्यकों पर हो रहे अत्याचार के विरोध में मोर्चे निकाले, प्रदर्शन किए व बन्द का आह्वान किया गया। अल्पसंख्यक विरोधी होने के झूठे आरोप लगाकर देश की राष्ट्रवादी, हिन्दुत्ववादी शक्तियों को व संगठनों को और भाजपा तथा उसके नेतृत्व में चलनेवाली गठबंधन सरकार को बदनाम करने में ये सारी शक्तियाँ एकजुट हो गयीं। इतना ही नहीं तो विदेशों में भी इस सरकार के खिलाफ झूठी खबर देने में यहाँ के विशेषतः दिल्ली के पादरी जॉन दयाल, जो ऑल इण्डिया कैथोलिक यूनियन का जनरल सेक्रेटरी है तथा सोनियाजी के साथ निकट सम्बन्ध रखता है तथा अहमदाबाद चर्च के सेण्ड्रीक प्रकाश जैसे क्रिश्चियन पादरी जुट गये। इससे यहाँ के अल्पसंख्यकों के अधिकाधिक मत तथा महँगाई से त्रस्त मध्यमवर्गीयों व तथाकथित बुद्धिजीवियों के मत प्राप्त करके इन चार राज्यों में भाजपा को पराजित करने में ये सारे राष्ट्रविरोधी देशी व आंतर्राष्ट्रीय तत्त्व सफल हो सके। इन चुनावों में अपने देश के, चर्च और उनसे सम्बन्धित विद्यालय तथा सेवाकार्यों में जुटे हुए

...प्रचारक पादरी और अनेक क्रिश्चियन तथा स्वयं को प्रगतिशील, सेक्यूलर व मानवतावादी कहनेवाली अनेकों स्वयंसेवी संगठनों (N.G.O.s) ने भाजपा को पराजित करने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। क्रिश्चियन धर्मगुरुओं ने गिरजाघरों में तथा अनेक सभा सम्मेलनों में भाजपा सरकार को पराजित करने के लिए प्रकट आह्वान किए, पत्रक भी बाँटे।

नवम्बर, १९९८ के चुनावों में प्राप्त सफलता के बाद सोनियाजी ने तेवर बदले :

जो कांग्रेस दल की इस सरकार का दायित्वपूर्ण विरोध करने वाला विरोधी पक्ष के नाते अपनी भूमिका है, ऐसी बातें करता था, उसकी नेता सोनियाजी को चुनावों के इन परिणामों से ऐसा लगने लगा कि अब यह सरकार जनसमर्थन खो चुकी है तथा ममता और जयललिता आदि के अन्तःकलह से यह कभी भी टूट सकती है। तो फिर, अर्धसंकल्प के अधिवेशन के समय ही क्यों न हम शासन की बागडोर अपने हाथ में लें। अब तक तो सोनिया जी कांग्रेस की एकमेव विजयदायिनी नेता के रूप में उभर कर आयी थीं। कांग्रेस संगठन में अब उसका कोई प्रतिस्पर्द्धी रहा नहीं था। अब वह प्रधानमन्त्री भी बन सकती हैं। उसको कोई रोक नहीं सकेगा। एक विदेशी होते हुए भी प्रधानमन्त्री पद प्राप्त कर सकती हैं ऐसा उसको स्वयं को तथा उसको राजनीति में उतारने वाली शक्तियों को लगने लगा। यहीं पर कारगिल की घुसपैठ शुरू हो गयी। एक विदेशी महिला ने नेहरू–गांधी परिवार में घुसपैठ करके कांग्रेस संगठन पर अपने शिकंजे कसने में सफलता पायी है। अब सारे देश पर फिर से 'विदेशी' शासक बैठाने के लिए कारगिल के षड्यन्त्र की शुरुआत की गयी होगी ऐसा लगता है।

कारगिल षड्यन्त्र की शुरुआत

नवम्बर में चार राज्यों के चुनावों में सोनियाजी को मिले यश से हिन्दुत्व विरोधी, राष्ट्रविरोधी सभी शक्तियाँ अब भाजपा गठबन्धन सरकार के दिन गिनने लगीं। यहाँ पर यह बात भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि नवम्बर–दिसम्बर में हुए जनमत सर्वेक्षणों में यदि उस समय चुनाव होते हैं तो सोनिया कांग्रेस को ३०० से अधिक सीटें मिल सकती हैं ऐसे अंदाज घोषित व प्रसारित किये गये थे। दिसम्बर व जनवरी में गुजरात के 'डांग' में क्रिश्चियन वनवासियों पर कथित अत्याचारों की खबरें

जहाँ कहीं संकल्प के डिग जाते हैं पाँव...

– कमल किशोर 'भावुक'

आखिर कोई कर सके, किस पर क्या विश्वास।
नीलामी नक्षत्र की, करता जब आकाश।।

सुखदायी सबके लिए, तभी धूप का गाँव।
सबके बच्चों को मिले, यदि कुछ शीतल छाँव।।

क्या उत्तर होगा यही, सोच दुखी है प्रश्न।
नागफनी के गाँव में, गुब्बारों के जश्न।।

करुणा या संवेदना, क्या जाने धनवान।
बंजारों के देश में, गीतों का सम्मान।।

यही सोचकर नदी के, ढुलके दृग से बिन्दु।
सौंप दिया सब कुछ– मगर प्यासा मेरा सिन्धु।।

यादों की बारात जब, पहुँची मन के द्वार।
भावुक पीड़ा ने किया, तब सोलह श्रृंगार।।

जीवन भर जिसने लिखा, आँसू का इतिहास।
पग–पग पर होने लगा, उसका ही उपहास।।

उम्मीदों को क्या हुआ, क्यों हैं इतनी ढीठ।
बात–बात पर आजकल, दिखलाती हैं पीठ।।

आज व्यवस्था ने रची, कुछ ऐसी पहचान।
गन्धर्वों के देश में, सर्प बने उपमान।।

जहाँ कहीं संकल्प के, डिग जाते हैं पाँव।
वहीं लुटा करते सदा, आशाओं के गाँव।।

–'कान्ति–कुञ्ज', ११ बुद्ध विहार, आलमनगर, लखनऊ–२२६०१७

बढ़ा चढ़ाकर प्रसृत करके देश के चर्च के पादरी व क्रिश्चियन संस्थाओं ने भाजपा सरकार को बदनाम करने के जोरदार प्रयास किये। अहमदाबाद के सेंड्रीक प्रकाश नाम के पादरी ने तथा दिल्ली स्थित चर्च संगठनों के प्रवक्ता कहलाने वाले तथा अपने आपको पत्रकार के रूप में प्रस्तुत करने वाले दिल्ली के पादरी जॉन दयाल ने तो इण्टरनेट से अमेरिका के अध्यक्ष तथा यू.एन.ओ. के महासचिव तक सम्पर्क करके हिन्दू संगठनों के तथा भाजपा के विरोध में वक्तव्य प्रसारित किये। इसलिए जनवरी में तो सोनियाजी ने अपनी भूमिका बदलनी शुरू की। दूसरी ओर सुब्रह्मण्यम स्वामी जैसे विदेश प्रेरित लोग विभिन्न विरोधी नेताओं से गुफ्तगू करने लगे। उन्होंने एकतरफ जयललिता को, तो दूसरी तरफ सोनिया को सब्जबाग दिखाने शुरू किये। स्वयं को चाणक्य समझने वाले लेकिन 'चाणक्य' की शिखा के एक बाल की भी योग्यता जिनमें नहीं है ऐसे हरकिशनसिंह सुरजीत, मुल्ला मुलायम सिंह, विदूषक लालू प्रसाद, जनतादल के देवगौड़ा तथा सी.पी.एम. के ज्योति बसु आदि नेताओं पर भी सुब्रह्मण्यम स्वामी ने अनेक बार डोरे डालकर लोकसभा के बजट सत्र में बढ़ती हुई आर्थिक समस्याओं के कारण भाजपा गठबंधन जब सन्तुलित अर्थसंकल्प देने में विफल होगा तब उसके साथी दल भी सरकार गिराने में विरोधी पक्ष का साथ दे देंगे और अपने आन्तरिक विवादों के कारण ही यह सरकार गिर जाएगी, उस समय श्रीमती सोनिया गांधी के नेतृत्व में सेक्युलर दलों की मिली–जुली सरकार बनाना सम्भव हो सकेगा, उस समय जयललिता भी वाजपेयी सरकार का साथ छोड़ देगी ऐसी योजना सबको समझाने में लगे रहे।

जब फरवरी ९९ में वाजपेयी जी की लाहौर बस यात्रा, जिसका स्वागत करने पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ तो 'बाघा' सीमा तक आये थे और पाकिस्तान व भारत में भी जनता द्वारा जोरदार स्वागत हुआ था। उस बस यात्रा के अवसर पर भारत के प्रधानमन्त्री ने पाकिस्तान की तरफ खुले मन से दोस्ती का हाथ बढ़ाया था। लेकिन पाकिस्तानी सेना के तीनों अंगों के प्रमुख इस कार्यक्रम से दूर ही रहे थे। उन्होंने वाजपेयीजी से हाथ मिलाने से इन्कार करके अपनी दुष्ट भावनाओं का परिचय दिया। ऐसा उन्होंने क्यों किया? शायद उसके पूर्व ही उन्होंने कारगिल में घुसपैठ करके अपनी योजना पर अमल करने का निश्चय कर लिया होगा।

लोकसभा में भी भाजपा नेतृत्ववाली सरकार ने अपना १९९९–२००० वर्ष के लिए जो देश के विकासक्रम को बढ़ावा देनेवाला तथा आर्थिक स्थिति को मजबूत करनेवाला अतीव सन्तुलित व अप्रतिम अर्थसंकल्प प्रस्तुत किया उसके कारण सारा विपक्ष स्तंभित व हतबल रह गया। रेलवे अर्थसंकल्प भी उसी तरह बड़ा संतुलित तथा रेलकिरायों में विशेष वृद्धि के बिना ही प्रस्तुत किया गया था। इन दोनों अर्थसंकल्पों के कारण तथा लाहौर बस यात्रा के कारण भाजपा नेतृत्व वाली सरकार की लोकप्रियता में नित्य हो रही वृद्धि तथा देश की आर्थिक स्थिति में तीव्र गति से हो रहे सुधार से और मुद्रास्फीति की दर में हो रही घटी और महँगाई पर नियन्त्रण करने में सरकार को मिली सफलता से सारा विपक्षी दल हतप्रभ हो गया। अतः इस तरह यह सरकार मजबूत होने से सोनिया को सत्ता में लाना कठिन होगा ऐसा राष्ट्रविरोधी तत्त्वों को लगना स्वाभाविक ही था।

वाजपेयी सरकार गिराने की योजना–जयललिता को अमेरिकी पुरस्कार

अतः अपने पूर्व निर्धारित षड्यन्त्र को विफल होने से बचाने के लिए देशविरोधी आंतर्राष्ट्रीय शक्तियों ने अपने हस्तकों द्वारा देश में दृढ़ होती जा रही इस सरकार को बदनाम करने के लिए फरवरी में आस्ट्रेलियन पादरी स्टेन्स की उड़ीसा में हुई हत्या का बड़े जोरशोर से प्रचार करना शुरू किया। दूसरी ओर सुब्रह्मण्यम स्वामी ने जयललिता को इस सरकार से समर्थन वापस लेने के लिए उकसाया तो सोनियाजी ने भी घोषणा कर डाली कि यदि अपने अन्तर्गत विरोधों के कारण भाजपा गठबन्धन वाली सरकार गिरती है तो वह अपना संवैधानिक दायित्व निभाने के लिए तैयार हैं। सुब्रह्मण्यम स्वामी ने मुलायम, लालू, सुरजीत, देवगौड़ा, शरद यादव तथा हरिकिशनसिंह सुरजीत इतना ही नहीं तो ज्योति बसु से भेंट करके वाजपेयी सरकार गिराने की तथा उसके स्थान पर सोनियाजी के नेतृत्व में विरोधी दलों की साझी सरकार प्रस्थापित करने की योजना समझायी। ये सभी नेता व दल भाजपा द्वेष से इतने अंधे हुए थे कि वे अब 'अर्थसंकल्प' पारित करने के पूर्व ही सरकार को गिराने में जुट गये क्योंकि अर्थसंकल्प पारित होने से सरकार की लोकप्रियता और बढ़ेगी। फिर जयललिता की चाय पार्टी की राजनीति हुई और उसने वाजपेयी सरकार से अपना समर्थन वापिस लेने की सूचना स्वयं जाकर राष्ट्रपति को दी। यहाँ पर एक बात ध्यान में लेना आवश्यक है कि इसी समय जयललिता को अमेरिका की एक अभी तक अज्ञात, गुमनाम

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

कथा

देवास्त्र

– नरेन्द्र कोहली

"इन लोगों की यह बात मेरी समझ में नहीं आती।" सहसा बलन्धरा बोली।

दूत के आख्यान का प्रवाह सहसा टूट गया। सब की दृष्टि आ कर बलंधरा पर टिक गई। पर किसी ने कुछ कहा नहीं।

"कोई और महत्त्वपूर्ण सूचना तो शेष नहीं है दूत ?" कुछ क्षणों के असुविधाजनक सन्नाटे के पश्चात् द्रौपदी ने दूत को सम्बोधित किया।

"नहीं महारानी !" वह बोला।

"तो तुम जाओ। विश्राम करो।"

दूत चला गया। सब उसे जाते हुए चुपचाप देखती रहीं। जब वह द्वार से बाहर निकल गया, तो बलंधरा ने कुछ आक्रामक स्वर में कहा, "आप ने उसे भेज क्यों दिया?"

"तुमने सुना नहीं, उसने कहा कि और कोई महत्त्वपूर्ण सूचना नहीं है।" द्रौपदी का स्वर कुछ अतिरिक्त रूप से कोमल था।

"पर मैं कह रही थी कि मुझे इन लोगों की ये बातें समझ में नहीं आतीं।" बलंधरा बोली, "मुझे उस दूत से बहुत सारे प्रश्न पूछने थे और आप ने उसे भगा दिया।"

द्रौपदी ने उन सब पर दृष्टि डाली : देविका, सुभद्रा, करेणुमती और विजया– सब ही तो बलंधरा का व्यवहार देखकर कुछ झेंप का अनुभव कर रही थीं। ... यह कोई पहली बार तो नहीं हो रहा था।

"मैं ने भी तो उसे इसीलिए विदा कर दिया ताकि तुम्हें जो प्रश्न करने हैं, या हम लोगों को जो प्रश्न करने हैं, वे हम पहले परस्पर एक–दूसरी से कह सुन लें। पूछ लें और बता लें। यह आवश्यक तो नहीं है कि युद्धक्षेत्र से आनेवाला दूत भी यह जाने कि पांडवों की रानियाँ क्या समझती हैं और क्या नहीं समझतीं। किस बात पर से सहमत हैं और किस बात पर उन में असहमति है।"

"पर मेरे प्रश्नों के उत्तर तो युद्धभूमि से आया दूत ही दे सकता है, क्योंकि वे प्रश्न युद्ध से ही सम्बद्ध हैं। उस विषय में आपस में क्या कह सुन लेंगी हम।" बलंधरा के स्वर में आग्रह था।

"तुम प्रश्न तो पूछो।" द्रौपदी ने कहा।

बलंधरा ने अपनी आँखें द्रौपदी पर टिका दीं। उन में चुनौती भी थी और चेतावनी भी।

"अश्वत्थामा युद्ध में एक बार नारायणास्त्र का प्रयोग करता है और दूसरी बार उसी अस्त्र का प्रयोग वह नहीं कर सकता। क्यों भई, क्यों नहीं कर सकता ?" बलंधरा बोली, "यह तो वैसा ही है कि मध्यम पांडव एक बार तो गदा का प्रहार करें और दूसरी बार कह दें कि मैं गदा का प्रहार नहीं कर सकता। ऐसा भी कभी सम्भव है क्या ? एक व्यक्ति जो काम एक बार कर सकता है, उसे वह बार–बार भी कर सकता है। मैं जीवन में एक बार एक काम करने में समर्थ हूँ और फिर उसके तत्काल पश्चात् ही समर्थ नहीं हूँ– इस में तो कोई तर्क नहीं है। कोई दस बीस वर्ष बीत गये हों, व्यक्ति वृद्ध हो गया हो, तो भी कोई बात है।"

बलंधरा अपनी बात समाप्त कर हँस पड़ी।

द्रौपदी उसकी हँसी का अर्थ समझ नहीं पायी– वह अपनी झेंप मिटा रही थी या फिर वह अपने प्रश्न को अजेय मान बैठी थी।

"मेरे मन में भी ऐसे ही प्रश्न आते हैं।" देविका ने कहा, "यदि अश्वत्थामा के पास नारायणास्त्र जैसा कोई अस्त्र था, तो उसने उसका प्रयोग पहले ही क्यों नहीं किया ?"

"और नहीं तो क्या ?" करेणुमती ने भी उसके साथ अपना स्वर मिला दिया, "जो अस्त्र कहीं दिखायी नहीं देता, जिसकी कहीं कोई चर्चा ही नहीं है, वह अकस्मात् ही प्रकट हो जाता है। मेरी बुद्धि तो इन बातों को तर्कसम्मत नहीं मानती।"

द्रौपदी हँस पड़ी, "इसीलिए मैंने दूत को विदा कर दिया था। अब ऐसे प्रश्न उस दूत के सामने तो नहीं रखे जाने चाहिए।"

"क्यों ? क्यों नहीं रखे जाने चाहिए ?" बलंधरा कुछ चिढ़कर बोली, "वह युद्धक्षेत्र से आया है। उसने वहाँ वे शस्त्र चलते देखे हैं। योद्धाओं द्वारा उनका प्रयोग देखा है। प्रश्न तो उसी से पूछे जाने चाहिए।"

"ठीक कहती हो।" लगा द्रौपदी उन सबके प्रश्नों का उत्तर देने को तैयार में है; किन्तु सहसा ही उसका स्वर कुछ बदल गया, "पर इस विषय में हमारी बुद्धिमती सखी विजया क्या कहती है?"

विजया के अधरों पर एक अनमनी–सी मुस्कान आयी "मुझे क्या कहना हैं मैं तो इतना ही जानती हूँ कि व्यक्ति का ज्ञान उतने तक ही सीमित होता है, जितना उसने देखा है, अथवा जितने के होने का उसके पास प्रमाण है। हमारी शिक्षा की अवधि में हमारे गुरुओं ने हमें बताया कि ऐसे शस्त्रास्त्र होते हैं, तो हमने मान लिया कि होते होंगे। हमें कौन से वे शस्त्र चलाने हैं। हमारे योद्धा पति हमें बता देते हैं कि संसार में ऐसे–ऐसे शस्त्रास्त्र हैं और हम मान लेती हैं कि वैसे शस्त्र हैं। पर हमने न वे शस्त्र देखे हैं न उनका प्रयोग देखा है। अनेक बार तो जो योद्धा उन शस्त्रों का प्रयोग कर रहा होता है, वह भी नहीं जानता कि वह शस्त्र वैसा क्यों है। वह उसका प्रयोग तो जानता है, किन्तु न उसकी निर्मिति जानता है, न उसका निर्माण कर सकता है।"

"ऐसा कैसे सम्भव है?" बलंधरा ने निमिष भर भी नहीं सोचा और अपना विचार प्रकट कर दिया, "मैं इसे नहीं मानती।"

"किसी छोटे बालक को वटवृक्ष का एक बीज दिखा कर कहा जाए कि इसमें से वट जैसा विराट वृक्ष उत्पन्न होता है, तो क्या वह उसका विश्वास कर लेगा।" विजया ने कहा, "और जब वह उस बीज को अंकुरित होते देखेगा, उसमें पौधा निकलते और पौधे को वृक्ष बनते देखेगा तो उसका विश्वास तो कर लेगा; किन्तु क्या वह जान पाएगा कि यह कैसे सम्भव है?"

"ठीक कह रही है विजया।" देविका ने तत्काल उसका समर्थन कर दिया, "प्रत्येक स्त्री संतान को जन्म दे सकती है किन्तु हममें से कितनी जानती हैं कि यह सम्भव कैसे हो पाता है। जो कुछ जानती भी हैं, वह भी तो सूचना मात्र ही है।..."

"विदुषियों में बैठने में यही कठिनाई है।" बलंधरा ने उसकी बात काट दी, "मैं पूछ रही हूँ कि अश्वत्थामा ने एक बार नारायणास्त्र का प्रयोग किया तो वह दूसरी बार क्यों नहीं कर सकता, और आप बता रही हैं कि स्त्रियाँ सन्तान को जन्म तो दे सकती हैं किन्तु उसका शास्त्र नहीं जानतीं। युद्धशास्त्र से सीधे प्रजनन शास्त्र पर ले आयीं।"

द्रौपदी हँस पड़ी, "बात को युद्ध तक ही सीमित रखो बहनो। नहीं तो बलंधरा की जिज्ञासा की संतुष्टि नहीं होगी।"

"और नहीं तो क्या।" बलंधरा ने कहा।

"तो ऐसा है कि पहले हम शस्त्रास्त्रों के विषय में थोड़ा जान लें।" द्रौपदी ने कहा, "मोटे तौर पर शस्त्रास्त्र तीन प्रकार के हैं– लौकिकशस्त्रास्त्र, दिव्यास्त्र, और देवास्त्र।"

"हम भी जानती हैं।" बलंधरा ने कहा।

"आरम्भ तो तुम्हारे ज्ञान से ही होगा, तुम्हारे अज्ञान से तो आरम्भ कर नहीं सकती।" द्रौपदी मुस्कराई, "लौकिक शस्त्रास्त्रों के विषय में कोई कठिनाई नहीं है। सब जानते हैं कि योद्धा उनको उठाकर अपने शरीर बल से प्रहार करता है। योद्धा के शरीर का बल उस को ले जाता है, प्रहार करता है और वापस ले आता है। पुनः प्रहार करता है और पुनः वापस ले आता है।"

"हाँ।" करेणुमती ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

"दिव्यास्त्र वे हैं, जिनमें साधारण शारीरिक बल का ही प्रयोग नहीं है, कुछ यन्त्र का भी कौशल है। धनुष कुछ ऐसा बनाया जाए जिसमें से एक से अधिक संख्या में बाण चल सकें। एक और प्रकार के दिव्यास्त्रों में, अपने बाण की नोक पर कोई अन्य प्रकार का शस्त्र लगा दिया जाता है, जो शत्रु पर गिर कर उसका अधिक विनाश करता है। इसे हम अपने बाण को दिव्यास्त्रों से अभिमन्त्रित करना कहते हैं। उन अस्त्रों में कुछ तो निर्माण का कौशल है और कुछ परिचालन का। उसका अभ्यास अधिक करना पड़ता है। योद्धा में अधिक बुद्धि, मेधा और प्रतिभा की अपेक्षा होती है।" द्रौपदी ने कहा, "बहुत सारे देश और राज्य शस्त्र निर्माण में विशेषज्ञता प्राप्त कर लेते हैं और उन्नत प्रकार के धनुष बाण और बाणों की नोक पर लगा कर चलाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के घातक अस्त्रों का उत्पादन करते हैं। उन शस्त्रों को धन से खरीदा जा सकता है। योग्य शिक्षकों के शिष्यत्व में उनके परिचालन का अभ्यास किया जा सकता है।..."

"और तीसरे हैं देवास्त्र।" बलंधरा ने अपने अधैर्य में उसकी बात काट दी, "जो हमें देवताओं से प्राप्त होते हैं।"

द्रौपदी हँस पड़ी, "बहुत व्यग्र है बलंधरा अपनी समस्या के समाधान के लिए। पर बलंधरा! नींव के बिना भवन नहीं हो सकता। वैसा भवन बनाने का प्रयत्न करेंगे तो वह धराशायी हो जाएगा, किसी के रहने के काम नहीं आएगा।"

"ठीक है। ठीक है। बन गई न नींव। अब भवन भी

...चाहिए।' बलंधरा ने कहा, "यह न हो कि सारा दिन व्यतीत हो जाए तो पता चले कि नींव बना कर श्रमिक कहीं चले गए हैं, भवन तो बना ही नहीं।"

'नींव तो बन गई, किन्तु अभी दीवारें भी बनेंगी, तब जाकर भवन का रूप कुछ स्पष्ट होगा।' द्रौपदी ने कहा, 'जो देवास्त्र हैं, वे ही कुछ प्रश्न उठाते हैं। क्यों उनके विषय में सब कुछ स्पष्ट नहीं है। नारायणास्त्र को एक बार अश्वत्थामा ने चलाया और दूसरी बार अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। तुम्हारे मन में यह प्रश्न भी तो उठ सकता है बलंधरा! कि यदि अश्वत्थामा नारायणास्त्र को दूसरी बार नहीं चला सकता था तो वह उसे दुर्योधन को दे तो सकता था। दुर्योधन उसे किसी और से चलवा लेता। या फिर दुर्योधन ने ही उसे आदेश क्यों नहीं दिया कि वह नारायणास्त्र दुर्योधन को दे दे। दुर्योधन उसे कर्ण को सौंप देता। कर्ण अपने आप उसको चला लेता। उन लोगों को नारायणास्त्र की आवश्यकता थी, अश्वत्थामा का उन्हें क्या करना था। पर उनमें से किसी ने ऐसा कोई आग्रह नहीं किया।"

"आप ठीक कह रही हैं दीदी!" सुभद्रा ने कहा।

"तो फिर प्रश्न यह है कि अश्वत्थामा उसे पुनः क्यों नहीं चला सकता था?"

"सम्भव है कि उसके पास एक ही नारायणास्त्र हो।' करेणुमती ने कहा।

"तो वह कह सकता था कि उसके पास एक ही नारायणास्त्र था, उसका प्रयोग वह कर चुका है। अब उसके पास और है ही नहीं, तो वह चलाए क्या।" द्रौपदी ने कहा।

"ऐसे में दुर्योधन को कहना चाहिए कि और नारायणास्त्र लाओ। माँगने से न मिलें तो उनका क्रय कर लाओ। कोई न बेचे तो उसे छीन कर लाओ।" देविका ने कहा।

"या फिर हस्तिनापुर में नारायणास्त्र के निर्माण का प्रबन्ध करो। यदि नारायणास्त्र को भी किसी लौकिक शस्त्र के समान ही मानें तो कहा जाएगा कि जाओं जहाँ नारायणास्त्र गिरा है, उसे वहाँ से उठा लाओ और फिर से चलाओ। या उसे उठा तो लाओ, ऐसा न हो कि पांडव उसे हम पर चला दें।" द्रौपदी ने कहा।

"यह तो बहुत ही जटिल बात हो गई।" बलंधरा ने जैसे अपने आप से कहा।

"नहीं, जटिल कुछ नहीं हुआ है।" द्रौपदी ने कहा, 'वस्तुतः हम जटिलता को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। देखो, अब एक बात पर ध्यान दो। खड्ग कैसे चलता है? योद्धा के शरीर के बल से। बाण कैसे चलता है? धनुष के बल से। धनुष में बल कहाँ से आता है? योद्धा की भुजाओं से। योद्धा जितनी जोर से प्रत्यंचा को खींचता है, उसमें उतना ही बल लगता है। वह बल व्यय नहीं हो जाता, वह एक प्रकार से धनुष में स्थानान्तरित हो जाता है। योद्धा द्वारा खिंची प्रत्यंचा छोड़ते ही, योद्धा का धनुष में स्थानांतरित अथवा संचरित बल बाण को दूर फेंक देता है।"

"यह सब तो हम जानती हैं।" बलंधरा ने द्रौपदी को टोका।

"ज्ञात तथ्यों के विश्लेषण से ही तो हम अज्ञात तथ्यों तक पहुँचेंगे रानी!" द्रौपदी मुस्कराई।

"ठीक है।" देविका ने कहा।

"इसका अर्थ हुआ कि किसी भी शस्त्र के चलने में कोई न कोई बल प्रयुक्त होता है। देखना यह है कि वह बल आता कहाँ से है।"

"शरीर से।" बलंधरा ने कहा।

"और शरीर में वह शक्ति अन्न से आती है। अन्न धरती से आता है। उसमें बल धरती के अतिरिक्त जल, वायु और सूर्य से आता है। अर्थात् सारा बल तो प्रकृति का है, जो अन्न इत्यादि के माध्यम से मनुष्य के शरीर में आता है। इस प्रकार शरीर भी एक अस्त्र है, जो प्रकृति की ऊर्जा से चल रहा है।..." "दीदी!" बलंधरा ने उपालम्भ दिया।

द्रौपदी हँस पड़ी, "थोड़ा धैर्य रखो और अपने शरीर को कुछ और सूक्ष्मता से देखो। मेरा हाथ आगे बढ़कर यह वस्तु उठा लेता है और उसे दूर फेंक देता है। पर हाथ को किसने आगे बढ़ाया? यदि हम कहें कि शरीर तो अपने आप ही यह सब करता है तो यह हमारी भूल होगी। कई बार किसी रोग के कारण हमारी भुजा हमारे शरीर के साथ होती हुई भी आगे नहीं बढ़ती, वस्तु को नहीं उठाती और न ही उसे दूर फेंकती है।"

"हाँ! अनेक ऐसे रोग हैं, जो अंगों को असमर्थ कर देते हैं।" विजया ने कहा।

"पर वह तो इसलिए कि उनमें रक्त संचार नहीं होता। जिस अंग में रक्त नहीं पहुँच पाता, उसमें शरीर का बल भी नहीं पहुँच पाता।" करेणुमती ने कहा।

"रक्त नहीं पहुँच पाएगा तो वह अंग सूख जाएगा।" द्रौपदी ने कहा, "पर यदि वह अंग सूखता नहीं है और फिर भी काम नहीं करता तो उसका अर्थ है कि शिराएँ

उस तक मस्तिष्क का संदेश नहीं ला रहीं, क्योंकि वस्तु को उठाने और फेंकने का निर्णय तो मस्तिष्क ही करता है। हाथ न सोचता है और न ही निर्णय करता है। वह केवल आदेश का पालन करता है।"

"शरीर विज्ञान छोड़ो महारानी! शस्त्रों की बात करो।" बलंधरा ने कहा।

"थोड़ा धैर्य और रखो बलंधरा!" द्रौपदी ने कहा, "शिराएँ हाथ को शरीर का संदेश देती हैं कि उस वस्तु को उठाओ और फेंक दो। और हाथ वह काम करता है। अब देखना है कि शिराओं को उपकरण बना कर संदेश लाने वाला वह माध्यम कौन है।"

"शिराएँ अपने आप माध्यम नहीं हो सकतीं क्या?" करेणुमती ने पूछा।

"देखो करेणु! जो बाहर से काम करता दिखाई देता है, वह अधिष्ठान हो सकता है, किन्तु न तो वह करण अथवा उपकरण है और न ही कर्ता।" द्रौपदी बोली, "मैं तुम लोगों का ध्यान केनोपनिषद की यक्ष वाली कक्षा की ओर आकर्षित करना चाहूँगी।"

"अब आप हमें उपनिषदों में भटकाएँगी?" बलंधरा के स्वर में शिकायत थी।

"थोड़ा। और यह तो कथा है। कहानी में तो सब की ही रुचि होती है।" द्रौपदी ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा, "देवताओं हने असुरों पर विजय पाई तो बहुत प्रसन्न थे और अपने अहंकार में फूले हुए थे। तभी उनके सम्मुख एक दिव्य यक्ष प्रकट हुआ। देवताओं ने जानना चाहा कि वह कौन है। उन्होंने यह जानने के लिए अग्नि को भेजा। अग्नि यक्ष के पास गए और खड़े हो गए। उस यक्ष से स्वयं बात आरम्भ करना उन्हें अपने लिए अपमानजनक लगा। वे उसके निकट जाकर चुपचाप खड़े हो गए। उनको कौन नहीं जानता। यह यक्ष भी जानता ही होगा। वह स्वयं ही उनका अभिवादन करेगा।

"यक्ष ने उनकी ओर देख कर पूछा, 'तुम कौन हो?' अग्नि को यह अच्छा नहीं लगा। कुछ रूठ कर बोले, 'तुम मुझे नहीं जानते। मैं जातवेद हूँ। अग्नि। इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है, मैं उस सबका स्वामी हूँ' यक्ष उनके उत्तर से प्रभावित नहीं हुआ। उसने अग्नि से पूछा, 'क्या कर सकते हो? क्या बल है तुम में?' अग्नि को क्रोध आ गया, 'सब कुछ जला सकता हूँ।' यक्ष ने एक तिनका उसके सम्मुख रख दिया, 'पहले इसे जला कर दिखाओ।'

"अग्नि ने अपना पूरा सामर्थ्य झोंक दिया किन्तु वह तिनका उनसे नही जला। उनकी समझ में कुछ नहीं आया। स्वयं अग्निदेव एक तिनका न जला सकें तो इस संसार में अब और क्या होगा। वे लौट आए। देवताओं ने वायु को भेजा। वायु से भी यक्ष ने पूछा, 'तुम कौन हो?' वायु ने बता दिया, 'मैं वायु हूँ। मातरिश्वा। बिना किसी आधार के अन्तरिक्ष में चलने वाला।' 'क्या कर सकते हो?' यक्ष ने पूछा। 'मैं सारी पृथ्वी को उड़ा सकता हूँ।' यक्ष ने वायु के सम्मुख भी वह तिनका डाल दिया, 'इसे उड़ा कर दिखाओ।' अपना पूरा बल लगा कर भी उड़ाना तो दूर, वायु उस तिनके को हिला भी नहीं पाए। हार कर लौट आए। इस बार देवराज इन्द्र स्वयं गये। किन्तु उनके निकट पहुँचने पर यक्ष वहाँ से अदृश्य हो गया। उसने उनसे बात भी नहीं की। देवता चकित खड़े थे कि आकाश पर ब्रह्म विद्या के रूप में उमा प्रकट हुइं। उन्होंने बताया कि वह यक्ष और कोई नहीं स्वयं ब्रह्म ही थे। वे देवताओं का अहंकार तोड़ने आये थे। वे उन्हें बताना चाहते थे कि देवगण ब्रह्म की शक्ति के प्रतिनिधि मात्र हैं। अग्नि किसी को जलाते नहीं, वह ब्रह्म की शक्ति है, जिससे पदार्थ जलते हैं। यह वैसे ही है कि हम आँख की शक्ति से नहीं देखते, ब्रह्म की शक्ति के माध्यम से आँख देखती है। तो असुरों पर विजय देवताओं ने प्राप्त नहीं की थी, वह स्वयं ब्रह्म की शक्ति थी, जिसने देवताओं के लिए असुरों पर विजय प्राप्त की थी। इसलिए उनके अहंकार का कोई कारण नहीं था।"

द्रौपदी के मौन होते ही बलंधरा ने अधैर्य से कहा, "ठीक है, ब्रह्म की शक्ति ही पांडवों के लिए कौरवों पर विजय प्राप्त करेगी, किन्तु इस कथा का हमारी समस्या से क्या सम्बन्ध? बहुश्रुत लोगों के साथ यह बड़ी कठिनाई है कि वे किसी बात को सीधे–सीधे चलने नहीं देना चाहते। जब तक वे उसे संसार के प्रत्येक कोने में घुमा–फिरा न लें, उसका समाधान नहीं करना चाहते।"

"नहीं! मैं दीदी की बात समझ रही हूँ।" विजया ने कहा, "प्रत्येक दृश्य वस्तु का एक अदृश्य ऊर्जास्रोत होता है। मन की ऊर्जा शरीर को चलाती है। शरीर की ऊर्जा धनुष को चलाती है और धनुष की ऊर्जा बाण को चलाती है।"

"सर्वथा सत्य है।" द्रौपदी ने कहा, "वास्तविक खेल तो इस ऊर्जा का ही है। इसीलिए तो हम माता जगदम्बा की शक्ति के रूप में पूजा करते हैं और उस शक्ति के स्वामी ही महादेव शिव हैं। अब देखो, यह शक्ति वायु में है, अग्नि में है, विद्युत में है, जल में है। धरती में

है। वस्तुतः ऊर्जा के उपकरण दिखायी देते हैं, ऊर्जा दिखाई नहीं देती। अग्नि दिखाई देती है, किन्तु ताप दिखाई नहीं देता। उसके प्रभाव को ही देखा जा सकता है। हिलती और उड़ती हुई चीजें दिखाई देती हैं किन्तु न पवन दिखाई देता है, न उसका वेग। धरती दिखाई देती है किन्तु गुरुत्वाकर्षण नहीं। पदार्थ के रूप में चुम्बक दिखाई देता है, किन्तु चुम्बकीय शक्ति नहीं।"

"ठीक है। ठीक है।" बलंधरा बोली, "आगे चलो दीदी! क्या कहना चाहती हो।"

"कहना यह चाहती हूँ कि प्रत्येक पिंड किसी न किसी ऊर्जा से ही चल रहा है। ऊर्जा के स्रोत जड़ भी हैं और चेतन भी। भौतिक आँखों से पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, ऊर्जा नहीं। न जड़ अपने आप में ऊर्जा है, न चेतन। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण ऊर्जा का वह चेतन स्रोत ही है, जो मनुष्य की आत्मा है। आत्मा के कारण ही प्राण हैं। उसके कारण ही मस्तिष्क है। मस्तिष्क इस शरीर की ऊर्जा है। अब यदि हम उस ऊर्जा को भौतिक ऊर्जा के रूप में प्रयोग में लाते हैं तो लौकिक शस्त्रास्त्र चलाते हैं। अपने बुद्धिबल से भौतिक पदार्थों को भौतिक ऊर्जा में परिणत कर उनसे शस्त्र चलाते हैं, तो वे दिव्यास्त्र हैं; किन्तु यदि हम अपनी आत्मा की शक्ति का प्रयोग सीधे स्थूल पदार्थों पर करते हैं और उनका परिचालन करना सीख जाते हैं, तो हम देवास्त्र चलाते हैं।"

"आप कह रही हैं महारानी! कि देवास्त्रों में भौतिक ऊर्जा का नहीं, आत्मिक ऊर्जा का प्रयोग होता है।" विजया ने कहा।

"हाँ।"

"किन्तु भौतिक ऊर्जा का संचरण सम्पर्क से होता है, इस आत्मिक ऊर्जा का संचरण कैसे होगा? कोई धनुष बिना छुए, हमारे मस्तिष्क का आदेश कैसे मानेगा? या हमारा मस्तिष्क किसी धनुष को छुएगा कैसे?" विजया ने कहा।

"देखो, चन्द्रमा जल को अपनी ओर खींचता है, किन्तु वह सूक्ष्म प्रक्रिया हमें दिखाई नहीं देती। पूर्णिमा की रात को समुद्र के जल को चन्द्रमा जब अपनी ओर आकृष्ट करता है तो वह एक विराट दृश्य होता है। समुद्र का पागल हो जाना हम सब देख सकते हैं। यह प्रक्रिया किन सूक्ष्म तरंगों से होती है, यह हम नहीं जानतीं।" द्रौपदी बोली, "चुम्बक लोहे को खींचता है, किन्तु हम उन दोनों के बीच बँधी हुई किसी रस्सी को तो नहीं देखते हैं। उन दोनों के बीच जो माध्यम है, वह तो सब स्थानों पर है। चुम्बक की ऊर्जा जिन सूक्ष्म विद्युत तरंगों में परिणत होकर यह काम करती है, उसे न हम देखते हैं और न ही उसका अनुभव करते हैं। ठीक वैसे ही जब हम अपनी आत्मिक ऊर्जा को विद्युत तरंगों में बदल लेते हैं और उसके माध्यम से संदेश भेजते हैं, तो प्रकृति का प्रत्येक कण उन आदेशों का पालन करता है। शरीर के भीतर होते हुए इस व्यापार को हम देखते नहीं, किन्तु जानते हैं कि हमारा मस्तिष्क अपनी उन विद्युत तरंगों से शरीर के प्रत्येक अंग को संदेश भेजता है। जब हमारी वही ऊर्जा अपनी विद्युत तरंगें शरीर के बाहर पहुँचाने लगती है, तो दिव्यास्त्रों जैसे अनेक चमत्कार होने लगते हैं। पर उसे देखे बिना, उसे अपने अनुभव क्षेत्र का अंग बनाये बिना, उसका विश्वास करना कठिन होता है। यदि हम उन लोगों के बीच चले जाएँ, जिन्होंने कभी धनुष भी नहीं देखा है, तो वे इस बात पर भी विश्वास नहीं करेंगे कि मनुष्य एक स्थान पर खड़ा होकर अपने बाण दूर-दूर तक पहुँचा सकता है।"

"यह तो आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र है महारानी।" सुभद्रा ने कहा।

"हाँ! ठीक कहती हो। आध्यात्मिक साधना क्या है? वह अपने शरीर के भीतर की सुप्त ऊर्जा को जगाना और उसका प्रबंधन ही तो है। उसका उपयोग किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है। अब इस साधना को युद्ध क्षेत्र में ले जाओ।" द्रौपदी ने कहा, "शायद तुम्हारा ध्यान कभी इस ओर भी गया हो कि सारे दिव्यास्त्र और देवास्त्र ऋषियों और देवताओं के पास ही क्यों होते हैं। हमारे योद्धा अपनी साधना से अथवा ऋषि या देवता की सेवा से ही उन्हें प्राप्त करते हैं।"

"ठीक कह रही हैं आप।" सुभद्रा बोली, "भैया ने अपना चक्र तो बनाया था, जिससे उन्होंने शतधन्वा का वध किया था; किन्तु सुदर्शन चक्र तो उन्हें देव अग्नि ने ही दिया था। धनञ्जय को भी अपना रथ और गांडीव धनुष देव अग्नि से ही मिला।"

"हमारे राजाओं अथवा धनाढ्य योद्धाओं ने क्यों ऐसे शस्त्रास्त्र नहीं बनाए?" द्रौपदी ने कहा, "एक ही कारण है कि वे लोग ऊर्जा को भौतिक जगत् में खोजते रहे। केवल साधकों ने ही उसे आत्मिक जगत् में खोजा। भौतिक ऊर्जा से परिचालित शस्त्र को कोई भी थोड़े प्रशिक्षण और अभ्यास से चला सकता है किन्तु आत्मिक ऊर्जा वाले शस्त्रास्त्रों को केवल वह साधक ही परिचालित कर सकता है, जिसने अपनी साधना से अपने भीतर उस

ऊर्जा का संचय किया है और वह उस ऊर्जा को विद्युत तरंगों के रूप में भौतिक पदार्थों तक भी पहुँचा कर उनको आदेश दे सकता है। हम एक उदाहरण लें," द्रौपदी ने रुककर अपनी श्रोताओं की ओर देखा, "महादेव शिव का धनुष अजगव, विदेहराज जनक के पास जाने कब से रखा हुआ था, किन्तु अपने शत्रुओं के साथ लड़ते हुए, किसी भी युद्ध में जनक ने उसका उपयोग नहीं किया। भगवान् राम के आने तक वह धनुष परिचालित नहीं होता था, मनुष्यों और पशुओं द्वारा खींचा जाता था। उसका उपयोग नहीं होता था, वह पूजा जाता था। राम आये। वे योद्धा भी थे और साधक भी। उनके पास शारीरिक बल भी था और आत्मिक शक्ति भी। उन्होंने गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र से पाए अपने प्रशिक्षण, अपने शारीरिक बल और आत्मिक ऊर्जा से उसको परिचालित किया। परशुराम को उसका विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि वे मानते थे कि वह ऊर्जा केवल उनके ही पास है। राम ने यदि अजगव को तोड़ा है तो केवल भौतिक बल से ही तोड़ डाला है। जब राम ने उनका वैष्णवी धनुष भी परिचालित कर दिया, तो उन्हें मानना पड़ा कि राम भी सघन और एकाग्र आत्मिक शक्ति के स्वामी हैं।"

"पर यदि बात साधना से अपने भीतर की आत्मिक ऊर्जा जगाने मात्र की है तो साधना तो रावण ने भी बहुत की थी।" विजया ने कहा, "वह शिव का भक्त भी था। उससे अजगव क्यों परिचालित नहीं हुआ?"

"उत्तम प्रश्न है।" द्रौपदी ने कुछ उत्साह में कहा, "रावण ने अपनी साधना से जो ऊर्जा जगाई थी, वह तो भौतिक शक्ति प्राप्त करने में ही समाप्त हो गई थी। वैसे भी एक बात और है।"

"क्या?" बलंधरा ने पूछा।

"तुम्हें स्मरण होगा कि धनंजय जब जयद्रथ के वध के लिए बढ़ रहे थे और दुर्योधन उन्हें रोक नहीं पाया था तो वह रोता हुआ द्रोणाचार्य के पास गया था। आचार्य ने उसे अभेद्य कवच बाँध दिया था और धनञ्जय के बाण उससे टकरा–टकरा कर लौट आये थे।..."

"स्मरण है मुझे।" सुभद्रा ने कहा।

"उसके पश्चात् क्या हुआ?" द्रौपदी ने उनकी ओर देखा, "कहाँ गया वह अभेद्य कवच? फिर कभी उसकी चर्चा क्यों नहीं हुई?"

"क्यों नहीं हुई?" करेणुमती ने पूछा।

"राक्षसी आचरण से आध्यात्मिक साधना नहीं होती। दुर्योधन वह आचरण नहीं कर पाया, जो उस कवच को अभेद्य बनाए रखने के लिए ऊर्जा प्रदान कर सकता। वह कवच व्यर्थ हो गया।" द्रौपदी ने कहा, "एक बात और ध्यान देने की है। जब हम अग्नि को किसी पत्थर से छुआते हैं तो पत्थर तप कर रह जाता है। किन्तु जब उसी अग्नि का स्पर्श किसी तैलाक्त वस्तु से होता है, तो वह वस्तु जल उठती है और अग्नि भी अपना इंधन पा कर धधक उठती है। चुम्बक का प्रभाव लोहे पर ही होता है, लकड़ी पर नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि साधक के द्वारा अपने मन से जिन विद्युत तरंगों को सम्प्रेषित किया जा रहा है, उनका अर्थ समझने वाला बोधक भी तो उसी कोटि का होना चाहिए। देवास्त्र में बोधक तो सात्विक ऊर्जा का निर्मित हो और तरंगे आ रही हों रावण या दुर्योधन जैसे किसी साधक की ओर से, तो वह बोधक सक्रिय नहीं हो पायेगा। यही कारण है कि जब कभी इन राक्षसों ने ऐसा कोई शस्त्र पा भी लिया, तो वे उसकी रक्षा नहीं कर पाए। तुम समझ सकती हो बलंधरा! कि दुर्योधन ने अश्वत्थामा से नारायणास्त्र क्यों नहीं माँगा।"

"तो दुर्योधन और कर्ण थोड़ी–सी साधना क्यों नहीं कर लेते?" करेणुमती ने प्रश्न उठाया, "इन शस्त्रों का महत्त्व तो वे भी समझते हैं।"

"उसके लिए संयम चाहिए। अपने अहंकार का विगलन करना होगा। दूसरे की संपत्ति और पत्नी पर कुदृष्टि नहीं डालनी होगी। तप, त्याग और दान का आश्रय लेना होगा।" द्रौपदी हँसी, "केनोपनिषद् का समापन प्रसंग देखो।"

"क्या है उसमें?" बलंधरा ने पूछा।

"उसमें भी यज्ञ, तप और दान की बात कहीं गई है।" देविका ने कहा।

"हाँ! पर मैं दूसरी ओर संकेत कर रही थी।" द्रौपदी ने कहा, "गुरु सारा उपनिषद् कह चुके तो शिष्य कहता है, 'गुरुवर! मुझसे उपनिषद् कहिए।' गुरु हँस कर कहते हैं, "वत्स! तुमसे उपनिषद् ही कहा है; किन्तु उसको समझने का आधार है– तप, दम और निष्काम कर्म। उसका आयतन हैं सत्य। यदि सत्य का ही पालन नहीं होगा तो वह ब्रह्मविद्या कैसे समझ में आएगी। सोचो! जब कर्ण भगवान् परशुराम के पास गया था, उनसे शस्त्र विद्या सीखने, क्या उसका व्यवहार सत्य पर आधृत था? वह तो आरम्भ ही झूठ से हुआ था। उसने जाकर बताया था कि वह ब्राह्मण है। ऐसे में उसकी तपस्या भी क्या कर सकती थी। उसने बहुत प्रयत्न कर इन्द्र से एक शक्ति प्राप्त की, किन्तु उसे भी तो वह एक ही बार चला पाया।

उसके पास देवास्त्रों को चलाने की उतनी ही ऊर्जा थी। वे राक्षस, शस्त्रों के लोभ में साधना कर सकते हैं; किन्तु लोभ से तो सात्विक ऊर्जा की प्राप्ति नहीं होती। इसी सन्दर्भ में मेरा ध्यान रावण के पुष्पक विमान की ओर भी जाता है।"

"हाँ! रावण के पास भी तो पुष्पक विमान था। वह भी तो उसी आत्मिक ऊर्जा से चलता था।" करेणुमती बोली, "यह कैसे सम्भव हुआ ?"

"मेरे मन में भी यह बात आयी थी।" द्रौपदी बोली, "किन्तु तब मेरा ध्यान इस ओर गया कि रामकथा में रावण के द्वारा कुबेर से पुष्पक विमान छीनने का वर्णन तो है किन्तु रावण द्वारा उसमें कोई यात्रा करने का नहीं। सीता का हरण करने भी वह अपने रथ पर आया था। इसका क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यही हो सकता है कि उसने कुबेर के पास पुष्पक विमान देखा और उसे बलात् छीन लिया, किन्तु उसका संचालन वह नहीं कर सका, क्योंकि उसके पास उसका संचालन करने वाली ऊर्जा नहीं थी। अतः वह उसके पास व्यर्थ ही पड़ा रहा। सम्भव है विभीषण ने कभी उस पर यात्रा की हो। अन्त में भगवान् राम की आत्मिक ऊर्जा ने ही उसको सक्रिय किया और उसमें वे अयोध्या तक आये।"

"आप ठीक कहती हैं दीदी! किन्तु साधना की दृष्टि से तो धर्मराज, धनंजय से कहीं अधिक बढ़े हुए हैं।" सुभद्रा बोली, "पर उन के पास तो कोई देवास्त्र नहीं है। उन्हें युद्ध में हर बार धनंजय का ही आश्रय लेना पड़ता है।"

द्रौपदी ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। वे जैसे किसी चिन्ता में लीन हो गयी थीं।

"क्या बात है दीदी ?"

"कुछ नहीं! वस्तुतः मुझे एक साधक की करुण कथा स्मरण हो आई।"

"क्या कथा है दीदी ?" विजया ने पूछा।

"एक साधक अपनी साधना के फलस्वरूप पायी ऊर्जा के आधार पर अनेक चमत्कार करता था। एक तपस्वी उस ग्राम में आए तो लोगों ने उनको भी उस साधक के चमत्कार दिखाए और पूछा कि यह क्या है ? तपस्वी ने बताया कि अपनी साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त मानसिक ऊर्जा से वह साधक अनुपलब्ध वस्तुओं को भी प्रस्तुत कर देता है। उसमें कोई विशेष चमत्कार नहीं है।"

"वर्षों पश्चात् वे तपस्वी पुनः उसी ग्राम में आए। वह साधक भी उनसे मिलने आया। तपस्वी ने उससे पूछा कि अपने उन चमत्कारों से उसको ईश्वर की प्राप्ति हो गयी क्या ? साधक ने बताया कि वह तो अब तक लोगों को चमत्कृत ही कर रहा है। उसे कोई दिव्य अनुभूति तो हुई ही नहीं। तपस्वी ने उसे अपने वक्ष से लगा लिया और थोड़ा दबा दिया। तुम लोग जानती हो इसे योग की भाषा में शक्ति संचरण कहते हैं। उस दिन से उस साधक का दृष्टिकोण ही बदल गया। उसने चमत्कार दिखाने बन्द कर दिये और ईश्वर की प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगा।" द्रौपदी ने रुक कर उनको देखा, "धर्मराज की तपस्या, न राज्य के लिए है, न शस्त्रों के लिए। उनका लक्ष्य तो धर्म है। वे ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं। उन्होंने संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनने की कामना कभी नहीं की। उन्होंने अपनी साधना को युद्धक्षेत्र की ओर कभी नहीं मोड़ा। दूसरी ओर वनवास काल में जब धनञ्जय साधना के लिए गये थे तो आगामी युद्ध के लिए देवास्त्र प्राप्त करना ही उनका मुख्य लक्ष्य था और वे उसी प्रकार के अस्त्र प्राप्त करके लौटे भी।"

"तो क्या इसीलिए धर्मराज को निरन्तर यह शिकायत रही कि धनञ्जय मन लगा कर युद्ध नहीं कर रहे हैं ? क्या इसीलिए कृष्ण रथ से उतर कर भीष्म पितामह को मारने के लिए उनकी ओर भागे कि अर्जुन गम्भीरता से उनके वध का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं ?" देविका ने पूछा।

"शायद यही कारण था।" द्रौपदी ने कहा, "उन्हीं अस्त्रों में यदि ऊर्जा का भेद, अथवा ऊर्जा की तीव्रता का भेद कर दिया जाए, तो उनके विनाशकारी प्रभाव में भी अन्तर आ जाता है।"

"पर वे देवास्त्र होते कहाँ हैं ? और प्रकट कहाँ से हो जाते हैं ?" बलंधरा ने कहा, "श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र लेकर तो नहीं चलते, किन्तु जब वे चाहते हैं, वह उनकी अंगुली पर नाच रहा होता है। अश्वत्थामा भी नारायणास्त्र लेकर नहीं आया था किन्तु वह प्रकट हो ही गया।"

"ठीक है कि इन देवास्त्रों को कोई कन्धे पर नहीं ढोता।" द्रौपदी ने कहा, "विश्राम के समय रथ और अश्व रथी के साथ नहीं होते। वे अपने स्थान पर होते हैं, रथशाला में अथवा अश्वशाला में। यात्रा के समय रथी आदेश देता है और सारथि रथ ले आता है। ठीक उसी प्रकार वे शस्त्र अपने–अपने आगार में सहेज कर रखे हुए होते हैं। योद्धा जब उनका चिंतन करता है अथवा अपने मस्तिष्क द्वारा विद्युत तरंगें या विद्युत संकेत भेजता है, तो वे अस्त्र सक्रिय हो जाते हैं। योद्धा के आदेश के अनुसार

वे विद्युत तरंगें, उस अस्त्र को योद्धा के इच्छित स्थान पर ले आती हैं और अपना कार्य आरम्भ कर देती हैं।"

"क्या इसी आत्मिक ऊर्जा से परिचालित होने के कारण नारायणास्त्र मन के क्षोभ तक पहुँच सकता है?"

"तुमने बहुत ही उपयुक्त प्रश्न पूछा है करेणु!" द्रौपदी प्रसन्न हो गई, "सोचो, यदि कोई भी भौतिक ऊर्जा कार्य करेगी तो वह भौतिक लक्ष्य पर ही कर पाएगी न। विस्फोटक को पाकर अग्नि अपना प्रभाव दिखाएगी। तेल अथवा घृत जैसे पदार्थों के सम्पर्क में आकर भी अग्नि अपना प्रभाव दिखा सकती है। किन्तु अग्नि को मन के क्षोभ का पता कैसे चलेगा? उसके लिए आवश्यक है कि जो विद्युत संकेत जाएँ, वे अत्यन्त मन्द क्षमता के हों, ताकि बोधक उसे समझ सके। अग्नि अथवा उल्कापात जैसी भौतिक शक्तियों की दाहकता, मन को जला देगी, वह उसका क्षोभ कैसे समझ पाएगी।"

"कोई उदाहरण?" विजया ने पूछा।

"जैसे प्रेमी के हाथ का कोमल स्पर्श प्रिया के मन की अग्नि को धधकाता है।" द्रौपदी ने कहा, "प्रेमी के मस्तिष्क से जो विद्युत संकेत उसकी भुजा से होते हुए उसकी अँगुलियों में आते हैं, उन संकेतों को ही प्रिया की शिराएँ उसकी त्वचा से उसके मस्तिष्क तक ले जाती हैं और वहाँ ताप उद्भूत होने लगता है। नारायणास्त्र उतनी ही मन्द और सूक्ष्म तरंगों को प्रभावशाली रूप से ग्रहण करता है। किसी के मन का क्रोध भी उसे उग्र कर देता है।"

"मैं आपकी सारी बातें मान लेती हूँ दीदी!" बलंधरा बोली, "किन्तु एक बात मुझे व्याकुल किए हुए है।"

"उस बात में बल होना ही चाहिए, जिसने बलंधरा जैसी धीर महिला को व्याकुल कर रखा है।" द्रौपदी ने हँस कर कहा।

"देखिए, बातें तो हम करें नारायणास्त्र जैसे देवास्त्रों की और युद्ध हो रहा हो एक मैदान में आमने–सामने खड़े होकर।" बलंधरा ने कहा, "चर्चा हो एक व्यक्ति की इच्छा मात्र से सहस्रों बाण चलने की अथवा अग्नि वर्षा की और समाचार आ रहे हों कि समरभूमि में लोग हाथ में शस्त्र लेकर दो हाथ की दूरी से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे हैं। यह मेरी समझ में नहीं आता।"

"ठीक कह रही हो सखि!" द्रौपदी ने कहा, "ऐसे युद्ध को देखे बिना उसको समझना सचमुच कठिन है। समरभूमि हमारी वाटिका के समान कोई छोटा सा क्षेत्र नहीं है। वह योजनों में फैला हुआ विशाल भूखंड है। उसके एक छोर से दूसरे छोर तक जाने के लिए पूरा दिन लग जाता है। कई बार किसी योद्धा का पूरा समाचार भी अन्य योद्धाओं को नहीं मिल पाता कि वह कहाँ है और किससे युद्ध कर रहा है। इसीलिए तो संशप्तक धनञ्जय को समरभूमि के किसी एकांत में ले जाते हैं और दूसरी ओर यह प्रतीक्षा ही होती रहती है कि धनञ्जय आएँगे। फिर सामान्य सैनिक तो खड्ग, भल्ल, गदा, तोमर इत्यादि लौकिक शस्त्रों से ही लड़ रहा है। कुछ महारथियों के पास कुछ दिव्यास्त्र भी हैं। ... किन्तु देवास्त्रों वाले योद्धा तो गिने चुने ही हैं।..."

"यही सही।" करेणुमती ने कहा, "तो फिर धनजय एक ही दिन में अपने देवास्त्रों से अपने शत्रुओं को समाप्त क्यों नहीं कर देते?"

"तुमने ध्यान नहीं दिया की धर्मराज और स्वयं गोविन्द को धनञ्जय से शिकायत है कि वे मन लगा कर युद्ध नहीं कर रहे।..."

"वह तो केवल भीष्म और द्रोण के सन्दर्भ में है।" करेणुमती ने कहा, "वह गुरुजनों के प्रति सम्मान के कारण है। किन्तु शेष योद्धा?"

"वस्तुतः युद्ध कई स्तरों पर होता है। राम–रावण युद्ध में भी वानर तो पत्थरों और लौकिक शस्त्रों से ही लड़ रहे थे; किन्तु दोनों पक्षों के नेताओं के पास दिव्यास्त्र और देवास्त्र थे। इस युद्ध में धनञ्जय हों या द्रोण– उन दोनों के ही मन में अपने देवास्त्रों से साधारण लौकिक अस्त्रों से लड़ने वाले सैनिकों का नाश करने के प्रति संकोच दिखाई देता है। किसी भी योद्धा के मन में बराबरी का युद्ध करने की इच्छा होती है। हाँ! भीष्म पितामह ने यह संकोच कुछ कम दिखाया है।" द्रौपदी ने रुकते–रुकते जोड़ा, "पांचाल सैनिकों के प्रति वे अत्यन्त निर्मम रहे हैं।"

"क्यों बलंधरा! तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान हुआ?" देविका ने पूछा।

"अभी ने हो गया है", बलंधरा बोली, "पर मैं जानती हूँ कि मेरे मन में फिर से प्रश्न उठेंगे। आखिर मध्यम पांडव के पास कोई देवास्त्र क्यों नहीं है?"

"क्योंकि वे महारानी को कभी अपनी आँखों से दूर नहीं कर सके। उनसे पृथक् नहीं रह सके। तपस्या के लिए किसी एकान्त स्थान पर नहीं जा सके।" सुभद्रा मुस्कराई।

द्रौपदी ने उसे सघन प्रेम से देखा, "बहुत दुष्ट हो सुभद्रा! तुम।"

(शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास महासमर–८ (निर्बन्ध) का एक अंश) □

– १७५, वैशाली, पीतमपुर, दिल्ली–११००३४

कारगिल : एक असफल अपूर्ण...

(पृष्ठ ३४ का शेष)

द्वारा ७ लाख डॉलर्स का पुरस्कार घोषित किया था। पुरस्कार का कारण यह बताया गया कि ललिता ने अपने देश का लोकतन्त्र मजबूत बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया है उसके लिए यह पुरस्कार, दिया जा रहा है। पुरस्कार देनेवाली इस संस्था संचालक एक बूढ़ा सेवानिवृत्त क्रिश्चियन पादरी है। बात भी ध्यान में लेना आवश्यक है। इतना ही नहीं, वाजपेयीजी की सरकार को गिराने के लिए विदेशों से करोड़ रुपये भी अपने देश के एक प्रमुख विरोधी के नेता को प्राप्त हुए हैं ऐसी बातें भी दिल्ली में आम में आयी थी। बसपा द्वारा लोकसभा में झूठ बोलना सरकार के विपक्ष में मतदान करना उसी का ही एक उदाहरण है।

प्रेसिडेन्ट क्लिंटन द्वारा पादरी जॉन दयाल को भोज पर बुलाना

यहाँ पर और एक महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख करना उचित होगा। दिल्ली के क्रिश्चियन पादरी जॉन दयाल जो अखिल भारतीय कौंसिल ऑफ क्रिश्चियन के प्रवक्ता के नाते सम्पर्क सूत्र सम्भाले हुए हैं, अमेरिका गये थे। विशेष महत्त्व की बात यह रही कि अमेरिका के अध्यक्ष श्री बिल क्लिंटन ने उनको दोपहर के भोज पर बुलाया था। भारत के किसी ऐसे सामान्य व्यक्ति को अमेरिका के अध्यक्ष द्वारा भोज पर बुलाना अपने में ही एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यहाँ पर यह बात ध्यान में लेना उचित होगा कि जब वाजपेयी जी पहली बार प्रधानमंत्री के नाते न्यूयॉर्क में राष्ट्रसंघ के अधिवेशन के लिए गये थे तब ये क्लिंटन महाशय मोनिका लेविंस्की के प्रकरण में व्यस्त थे और अटलजी से मिलने के लिए समय दे नहीं सके थे। जॉन दयाल के साथ भोज के बाद ही वाजपेयी सरकार गिराने की प्रक्रिया ने जोर पकड़ा था। प्रायः उसी अवधि में सुब्रह्मण्यम स्वामी भी अमेरिका में गये हुए थे। इसके बाद ही स्वामी के अमेरिका से लौटने पर जयललिता ने वाजपेयी सरकार से अपना समर्थन वापस लिया था। देश की आन्तरिक राजनीति में विदेशी शक्ति के प्रभाव का यह एक अप्रतिम उदाहरण ही कहना होगा।

कारगिल में घुसपैठ की शुरुआत और विश्वासमत में असफलता

बस उसी समय कारगिल में घुसपैठ शुरू हो गयी। क्योंकि वाजपेयी सरकार गिराने के बाद सोनिया गांधी को प्रधानमन्त्री बनाने में विदेशी शक्तियों को अधिक दिलचस्पी थी। 'पोखरन' से बौखलाये भारत विरोधी सारे तत्त्व इस प्रकार से वाजपेयी सरकार को पाठ पढ़ाने के लिए एकत्रित हुए थे। यहाँ पर एक बात का भी स्मरण करना होगा कि भारत सरकार को बिना सूचित किए कांग्रेस ने कुँवर नटवरसिंह को चीन के नेताओं से मिलने के लिए भेजा था। वहाँ पर उनकी चीनी नेताओं से क्या बात हुई यह अभी भी रहस्य बना हुआ है। दुर्दैव की बात यह कहनी होगी कि राष्ट्रविरोधी शक्तियों के इस षड्यन्त्र को प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से सफल बनाने में हमारे देश के विपक्षी नेता ही नहीं तो अन्य उच्चपदस्थ लोग भी समझते हुए अथवा अनजाने में ही सहायता करने में जुटे हुए दिखायी दिये। वास्तविक रूप से 'अर्थसंकल्प' के अधिवेशन के समय सरकार को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा अथवा कटौती प्रस्ताव (Cut motion) द्वारा भी पराभूत करके गिराया जा सकता था। लेकिन इन सभी दलों के नेताओं ने, विशेषतः कांग्रेस, जनतादल व वामपंथी नेताओं ने राष्ट्रपति पर दबाव डाला और कहा कि यदि आप वाजपेयी जी को सदन में विश्वासमत प्राप्त करने के लिए नहीं कहेंगे तो हम लोग लोकसभा में अर्थसंकल्प पारित होने नहीं देंगे। सदन में कोई भी कामकाज होने नहीं देंगे। विरोधी दलों के इस प्रकार के दबाव के सामने झुककर एक असंवैधानिक बात करने के लिए राष्ट्रपति भी तैयार हुए और उन्होंने अटलजी को सदन में विश्वासमत प्राप्त करने के लिए कहा। अतः सदन के पहले दिन ही अटलजी ने विश्वासमत के लिए प्रस्ताव रखा लेकिन विस्तार से चर्चा होने के बाद केवल एक मत से (वह भी एक प्रदेश के मुख्यमन्त्री द्वारा किए अनैतिक मतदान से) वाजपेयीजी की सरकार पराभूत हुई। इससे जनता में बड़ा क्षोभ हुआ। लेकिन सोनियाजी को लगा कि अब अपना राजतिलक कोई भी रोक नहीं सकेगा। उसने अपनी माँ, बहन तथा बेटा राहुल आदि रिश्तेदारों को दिल्ली बुला लिया। लालू ने लोकसभा में अटलजी के इस प्रश्न, कि "वैकल्पिक प्रधानमन्त्री कौन होगा ?" का उत्तर देते हुए कहा था कि 'हम एक मिनट में प्रधानमन्त्री तय करेंगे, आप पद से हट जाइए।'

जिस समय सदन में विश्वासमत पर चर्चा चल रही थी, उसी समय कारगिल में पाकिस्तानी घुसपैठिये मोर्चे सँभाल रहे थे। पोखरण से अपमानित हुए पश्चिमी

देश तथा भारत विरोधी विदेशी तत्वों का षड्यन्त्र कितना गहरा था कि उनके इन नापाक हाथों में बिना सोचे–समझे ही हमारे देश के वे विरोधी दलों के नेता अपनी नासमझी से तथा भाजपा द्वेष से अन्धे होकर, खेल रहे थे।

एक मत से हारने से जनता की सहानुभूति

वाजपेयी सरकार के केवल एक (अनैतिक) मत से पराभूत होने के कारण सारे देशवासियों की अभूतपूर्व सहानुभूति उसे प्राप्त हुई तो दूसरी ओर सोनियाजी ने अपना असली स्वरूप प्रकट किया। बिना अन्य किसी विरोधी नेता को विश्वास में लिए राष्ट्रपति से मिलीं तथा सरकार बनाने का अपना दावा प्रस्तुत किया। उसने राष्ट्रपति को झूठ बताया कि उसको २७२ सदस्यों का समर्थन प्राप्त है। लेकिन बाद के घटनाक्रम में कुछ इस प्रकार का बदल आया और मुलायमसिंह ने सोनिया को केवल कांग्रेस दल की सरकार बनाने में बाहर से समर्थन देना अस्वीकार करके उसके सारे स्वप्न तथा एक भयानक देशविरोधी षड्यन्त्र को विफल बनाया। तो फिर वह षड्यन्त्र क्या हो सकता था ?

षड्यन्त्र क्या हो सकता था ?

विदेशी शक्तियाँ चाहती थी कि सोनियाजी अकेले ही कांग्रेस की सरकार बनाकर सत्तासूत्र अपने हाथ में लें। उसी समय पाकिस्तान अपने आकाओं की सहमति से कारगिल में आक्रमण करे। तब सोनियाजी पाकिस्तान के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए युद्धबन्दी रेखा का उल्लंघन करके युद्ध को और विस्तारित (escalate) करें और अपनी बहादुर सास, इन्दिरा गांधी जैसी यह भी साहसी महिला है ऐसा जनता को विश्वास हो सके जिससे देश में फिर से एक आपात्काल (Emergency) की घोषणा की जा सके। आपात्काल की घोषणा करने के बाद संसद्‌ विसर्जित की जा सकती थी। उसके साथ ही अमेरिका को पाकिस्तान पर दबाव लाने के लिए कहकर अमेरिकी मध्यस्थता से युद्धबन्दी की घोषणा की जा सकती थी। जिससे अमेरिका को कश्मीर प्रश्न में मध्यस्थता करने का मौका उपलब्ध हो सकता था तथा कश्मीर समस्या का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो सकता था। तब उसका विरोध यदि इस देश की देशभक्त व राष्ट्रवादी शक्तियाँ व जनसंगठन करने का प्रयास करते तो 'आपातकाल' का फायदा उठाकर उनको देशद्रोही घोषित करके उनके विरोध को कुचला जा सकता था और फिर भारत का लोकतन्त्र संकटापन्न हो सकता था। फिर से इन्दिरा गांधी के समय जैसी आपातकालीन तानाशाही देश में प्रस्थापित हो सकती थी और उसका संचालन होता विदेशी शक्तियों से।

ऐसी स्थिति में वाजपेयी, आडवाणीजी तथा संघ के ज्येष्ठ कार्यकर्ताओं को जेल जाना पड़ता, इतना ही नहीं तो उनके साथ–साथ मुलायम, लालू, सुरजीत, ज्योतिबसु, वर्द्धन, हेगड़े, देवगौड़ा, फर्नांडीस, पासवान, शरद यादव इन सभी को फिर से जेल यात्रा करनी पड़ती, अनेक कम्युनिस्टों को भी जेल की हवा खानी पड़ती क्योंकि इस बार इन्दिराजी की जैसी 'स्वदेशी' नेतृत्व वाली सरकार न होती तो विदेशी लोगों की प्रेरणा से चलने वाली विदेशी नेतृत्वाधीन कांग्रेसी सरकार होती। संघ को भी प्रतिबन्धित किया जाता। इसलिए सोनियाजी केवल कांग्रेस की कामचलाऊ सरकार बनाकर सत्ता हथियाना चाहती थीं। लोग यह पूछना चाहेंगे कि क्या ऐसा कभी हो सकता है। लेकिन पूरा घटनाचक्र ध्यान में लेने से लगता है कि यह सब सम्भव था। क्योंकि क्या अमेरिका को पाकिस्तान द्वारा कारगिल में हो रही मोर्चेबन्दी की अग्रिम जानकारी नहीं थी ? थोड़ा सा विचार करने पर यह एकदम स्पष्ट है कि अमेरिका के सेनाधिकारियों को तथा राजकीय नेतृत्व को इन सब हलचलों की जानकारी होना स्वाभाविक ही था। अमेरिका को, अपने अन्तरिक्ष में छोड़े हुए गुप्तचरी करने वाले, देश–विदेश की लश्करी हलचलों पर नजर रखने वाले उपग्रहों द्वारा पाकिस्तानी सेना हिमालय के इतनी ऊँचाई वाले पहाड़ों पर स्थापित कर रही कैम्प्स व बंकर्स की जानकारी बहुत पहले ही प्राप्त हुई होगी। इतनी ऊँचाई पर प्रस्थापित लश्करी छावनियों को तथा मोर्चों को रसद पहुँचाने वाले वाहनों की लम्बी कतारें क्या गुप्तचरी करने वाले अमेरिकी उपग्रहों की पैनी नजरों में आयी नहीं होंगी। इसके सिवा अमेरिका के अनेक गुप्तचर तथा पाकिस्तान भर में फैले हुए हस्तक तथा गुप्तचरी स्रोतों द्वारा भी पाकिस्तानी सेना की इन हलचलों की जानकारी बहुत पहले ही प्राप्त होना क्या असम्भव था ? अमेरिकी संरक्षण विभाग का मुख्यालय–पेण्टागॉन के अनेक सेना विशेषज्ञ तथा सैनिक सम्पर्काधिकारी रावलपिण्डी में पहले से ही नियुक्त किए हुए हैं, तो इन सेना विशेषज्ञों को, पाकिस्तान के संरक्षण विभाग द्वारा दुनिया के विशेषतः यूरोप के विभिन्न बाजारों में जा रही विभिन्न प्रकार की लश्करी सामग्री, सैनिकों को लगनेवाली नित्यावश्यक वस्तुएँ, जैसे डिब्बाबन्द खाद्य

जूते, दूध, शीतकाल में उपयोग में आनेवाले गर्म, ऊनी वस्त्र, अत्युच्च पहाड़ियों पर लगने वाले विशेष प्रकार के जूते व कपड़े तथा अन्य कई प्रकार की सामग्री आदि की बड़े परिमाण में की गयी खरीद तथा उनको इकट्ठा करके सेना के अग्रिम मोर्चों तक पहुँचाने के लिए की गयी हलचलें, इन सभी की जानकारी अमेरिका को अपने इन अधिकारियों तथा गुप्तचर एजेंसियों द्वारा पहले ही होना असम्भव था। अमेरिका की सरकार ऐसे सभी बातों की जानकारी हर समय प्राप्त करती रहती है। अतः पाकिस्तान द्वारा कारगिल में की गयी सभी घुसपैठ की हलचलों की पूर्व जानकारी अमेरिका को होना सहज और स्वाभाविक ही है। अतः पाकिस्तान द्वारा कारगिल में हो रही सभी सैनिकी व मुजाहिदों की घुसपैठ के बारे में अमेरिका के इन गुप्तचर संस्थाओं द्वारा अमेरिका के अध्यक्ष श्री क्लिंटन को पहले ही अवगत कराया गया होगा ऐसा समझना गलत नहीं होगा।

अतः पाकिस्तान ने तो कारगिल में घुसपैठ की यह सारी योजना अमेरिका की जानकारी में कहें, या सहमति से कहें– बनायी थी ऐसा ही कहना होगा। उससे कश्मीर समस्या को पाकिस्तान के पक्ष में सुलझाने में अमेरिका की मदद पाकिस्तान को मिलती तथा भारत में एक कठपुतली विदेशी नेतृत्ववाली सरकार बिठाने में भी विदेशी शक्तियाँ सफल होती थीं।

भारत की सुरक्षा व्यवस्था पर अतिरिक्त दबाव

यह भी सर्वविदित है कि पाकिस्तानी गुप्तचर संस्था आई.एस.आई., अमेरिकी गुप्तचर संस्था सी.आई.ए. द्वारा ही प्रशिक्षित की गयी है। सामान्यतः जम्मू–कश्मीर व पूर्वोत्तर भारत तथा उर्वरित भारत में भी मुख्यतः आई. एस.आई. द्वारा चलायी जा रही आतंकवादी हिंसक गतिविधियों पर अमेरिका ने कभी भी उँगली उठायी नहीं। पूर्वांचल का आतंकवाद भी अमेरिका के भारत स्थित क्रिश्चियन मित्रों की ही देन है। पूर्वांचल में ईसाई मत का प्रभाव बढ़े तथा वहाँ के ईसाई बहुल राज्य मजबूत बनें तथा उनकी राह पर एन.एस.सी.एन., उल्फा, बोडो, त्रिपुरा लिबरेशन फ्रंट तथा मिजो नेशनल लिबरेशन फ्रंट जैसे अलगाववादी संगठनों के आन्तर्घाती कार्यकलापों को काबू करने में भारत की पूरी सुरक्षा व्यवस्था जम्मू–कश्मीर जैसे पश्चिमी तथा पूर्वांचल की सीमाओं पर फँसी रहे यह भी एक उद्देश्य विदेशी शक्तियों के इस षड्यन्त्र के पीछे होना स्वाभाविक ही है।

इस समस्या का और एक पक्ष यह भी है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तथा आसाम से गुजरात तक क्षेत्र में २०० से अधिक माफिया और आतंकवादी संगठन कार्यरत हैं। उनको आई.एस.आई. तथा सी.आई.ए. के साथ ही पड़ोस की वामपंथी चीनी सरकार भी धन, हथियार तथा प्रशिक्षण देती है। कश्मीर में तो आतंकवादियों में सैकड़ों भाड़े के विदेशी सैनिक पकड़े गये हैं देश के विविध भागों में हुए बम विस्फोटों में आई.एस.आई. की प्रत्यक्ष भागीदारी भी प्रमाणित हो चुकी है। अब तो केन्द्र सरकार यह स्वीकार कर चुकी है कि लोकसभा चुनावों में हिंसा का नंगा नाच विदेशी शह पर होने की सम्भावना है।

भाजपा के विरोध में सभी विरोधी दल व शक्तियों की एकजुटता

ऐसी सारी बातों के परिदृश्य में भाजपा को याने देशभक्त राष्ट्रवादी शक्तियों को पराभूत करने के लिए गैरभाजपा राजनैतिक दलों का एकत्रित होना यह तो विदेशी शक्तियों के साथ एक अलिखित समझौता ही है। कांग्रेसी मोर्चा, जनमोर्चा तथा तीसरा संयुक्त मोर्चा आदि में केवल दिखावे का राजनीतिक विरोध है। सेक्युलरिज्म के झूठे नारे पर उनकी नीतियाँ और कार्यक्रम गौण होकर केवल एक सिद्धान्त पर वे सब एकजुट हैं कि भाजपा को सत्ता में आने से रोकना। अतः इसमें भी किसी को आश्चर्य नहीं लगना चाहिए कि सोनिया के सक्रिय होने का अर्थ चुनावों के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में कम्युनिस्ट, समाजवादी तथा संयुक्त तीसरे मोर्चे के लोग आपस के सारे मतभेदों को भुलाकर एक हो जाएँ। यहाँ पर यह बात भी समझ में आती है कि वाजपेयी सरकार को एक मत से पराजित करने के बाद सोनियाजी अकेली कांग्रेस की सरकार बनाने में विफल होने के कारण अब अन्य दलों के साथ गठबन्धन करके सत्ता प्राप्ति के लिए भी तैयार हुई हैं।

कांग्रेस की कारगिल नीति से पाकिस्तान को फायदा

कारगिल के युद्ध शुरू होते ही कांग्रेस ने, विशेषतः सोनिया ने जो सवाल करने शुरू किए उससे भी यह बात स्पष्ट होती है कि ये सारे प्रश्न एक प्रकार से पाकिस्तान के पक्ष को पुष्ट करने वाले ही थे। कांग्रेस ने प्रारम्भ में ही प्रश्न उठाया कि सरकार की निष्क्रियता के कारण तथा गुप्तचर यंत्रणा की ढिलाई के कारण ही कारगिल में हुई

घुसपैठ का पता लगाने में देरी हुई। दूसरा प्रश्न यह उठाया गया कि कश्मीर प्रश्न का आन्तर्राष्ट्रीयकरण करा दिया है। फिर ये बातें कही गयीं कि यह सरकार कामचलाऊ सरकार है। अतः विपक्ष को विश्वास में लेकर ही नीति–निर्धारण करना चाहिए। फिर माँग उठी कि राज्यसभा का सत्र बुलाना चाहिए और सरकार को कारगिल के बारे में सही स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। बाद में भाजपा नेतृत्ववाली सरकार पर कारगिल समस्या का राजनीतिकरण करने का आरोप लगाया गया तथा जी–८ के राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त नहीं कर सकने का भी आरोप लगाया गया। कांग्रेस के प्रवक्ता श्री अजीत जोगी, नटवर सिंह व अर्जुन सिंह तथा प्रणव मुखर्जी की चौकड़ी ने यह कहकर एक प्रकार से कारगिल प्रश्न का अनजाने में ही राजनीतिकरण कर डाला। इससे कांग्रेस की देशहित विरोधी भूमिका सबके सामने प्रकट हुई। यही सारे मुद्दे पाकिस्तान के विदेश मंत्री तथा प्रवक्ता पाकिस्तान की ओर से बोल रहे थे। उसे कांग्रेस के इन गैरजिम्मेदाराना बातों से बल मिलता गया।

बाद में कारगिल में अधिक संख्या में शहीद हुए सैनिकों के बारे में सवाल उठाये गये। उसके लिए भाजपा सरकार को जिम्मेदार ठहराने की भी कोशिश की गयी। कारगिल के विजय को भी 'पराजय' में घोषित करने तक की नीचता कांग्रेसी नेताओं ने दिखाई।

यह ऐसा क्यों हुआ ? इसका एक ही कारण है कि इतनी बड़ी योजनापूर्वक बनाया हुआ षड्यन्त्र विफल हुआ और विदेशी शक्तियों द्वारा संचालित, विदेशी व्यक्ति के नेतृत्व वाली सरकार बनाने के षड्यन्त्र पूर्ण नहीं हो सके।

जनवरी-१९९९ से होनेवाली इन घटनाक्रमों के समय (Timing) की तरफ ध्यान देने से ही यह सारी बातें स्पष्ट होती हैं। नहीं तो अप्रिल के अन्त में सोनियाजी अपनी माँ, बहन, बेटा राहुल आदि को अपने राजतिलक के समय उपस्थित रहने के लिए क्यों बुलाती ? इंडिया–टुडे में सुप्रसिद्ध स्तम्भ लेखिका तवलीन सिंह ने लिखा है कि राष्ट्रपतिजी ने भी जो भूमिका इस सारे घटनाक्रम में निभायी वह उनके पद की गरिमा के अनुकूल नहीं थी। उसने तो यहाँ तक लिखा है कि राष्ट्रपति ने फरवरी में उनसे मिलने आए एक संसद सदस्य को तो, यहाँ तक कहा कि, आप लोग थोड़ा सब्र करिए क्योंकि अगले महीने में तो अपना ही राज होने वाला है। यह संसद सदस्य कांग्रेस का है, ऐसा समझकर ही यह बात हुई थी। वह सदस्य तो किसी एक कार्यक्रम के लिए राष्ट्रपति को निमंत्रित करने उनके पास गया था।

द० बिहार के अनेक क्रिश्चियन पादरियों ने भी जनवरी, फरवरी से ही अपने लोगों को यहाँ तक कहना शुरू किया था कि अप्रैल में सरकार बदलेगी और सोनियाजी के नेतृत्व में, अपनी सरकार बनने वाली है। लेकिन यह सब हुआ नहीं।

क्या जनता अपना कर्त्तव्य निभायेगी ?

किन्तु अब भी जनता को विशेषतः राष्ट्रवादी जनता को सावधान होने की आवश्यकता है। विदेशी शक्तियाँ व क्रिश्चियन चर्च तथा उनके हस्तक पादरी, देश में कार्यरत तथाकथित मानवतावादी, स्वयंसेवी संगठन और वामपंथी वा सेक्युलर कहलाने वाले नेता आदि सब अपने इस पराभव से बौखला उठे हैं। कौन्सिल ऑफ क्रिश्चियन चर्चेस ऑफ इण्डिया के सेक्रेटरी द्वारा दिनांक २४–०८–१९९९ के दक्षिण के 'द हिन्दू' जैसे विख्यात दैनिक में प्रकाशित किये, आह्वान से यह बात स्पष्ट होती है। कारगिल षड्यन्त्र की असफलता के बाद भी देशविरोधी शक्तियाँ चुप बैठने वाली नहीं हैं। हमें ऐसे सभी षड्यन्त्रों का पर्दाफाश करना ही पड़ेगा।

कारगिल की लड़ाई तो बन्द हो गयी है लेकिन, समाप्त नहीं हुई है। अब तो रूस के चेचन्या और डागेस्तान में तथा चीन के जींग जियांग प्रान्त में कट्टर मुस्लिम आतंकवादी सक्रिय हुए हैं। आतंकवाद का यह भस्मासुर उसके आकाओं के सिर पर ही अपना हाथ रखने जा रहा है। इस समय जम्मू–कश्मीर के राष्ट्रवादी शक्तियों को नई रणनीति अपनानी होगी। जिस तरह से पाकिस्तान से बंगलादेश अलग हुआ, उसी तरह अब सिंध, बलुचिस्तान, वायव्य सीमान्त प्रदेश के लोगों की अस्मिता जगाकर, उनका पौरुष व अभिमान जगाकर, पाकिस्तान का आज का स्वरूप बदलने के लिए तथा पाकिस्तान अधिकृत 'कश्मीर' को सही अर्थ में 'आजाद' करके सम्पूर्ण कश्मीर को अखण्ड बनाने के लिए 'कश्मीरियत' का नारा लगाने वालों को, कश्मीर की सम्पूर्ण भूमि फिर से अखण्डित करने, कश्मीर मुक्ति संग्राम जैसे आन्दोलन के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता महसूस होती है।

अतः इस समय हमें और अधिक सजग रहकर सीमाओं की अच्छी सुरक्षा करने तथा अन्तर्घाती तत्वों को खोज बाहर कर उनका पूर्णतः निपात करने की आवश्यकता है। ❐

पुष्कर- जहाँ ब्रह्माजी ने सृष्टि-रचना के पहले यज्ञ किया था

– पुष्पा गोस्वामी

पुष्कर की महत्ता के साथ–साथ पुष्कर के जन्म की बड़ी रोचक कथाएँ हमारे पुराणों और धर्मशास्त्रों में वर्णित हैं। पद्मपुराण के सृष्टि रचना खंड में वर्णित है कि जगत्पिता ब्रह्मा ने यहाँ सृष्टि–रचना–यज्ञ किया था। उन्होंने यज्ञ स्थल के चयन के लिए अपना कमल फेंका। भू–मण्डल में तीन स्थानों पर इसकी पंखुड़ियाँ बिखर गईं। इन तीनों स्थानों पर पवित्र जल का उद्भव हुआ। यह तीन स्थान ज्येष्ठ पुष्कर, मध्य पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर कहलाए। इन्हें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव पुष्कर के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान पुष्कर यानि ज्येष्ठ पुष्कर में ब्रह्माजी ने एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक यहाँ यज्ञ सम्पन्न किया था जिसकी स्मृति में आज भी यहाँ कार्तिक पूर्णिमा का मेला लगता है।

पुष्कर झील के चारों ओर बने घाटों के किनारे पर आध्यात्मिक आनन्द से रससिक्त होते श्रद्धालु सृष्टि के आदि रहस्यों और प्राकृतिक सुषमा के उर्स आदि रचनाकर्ता की महिमा में गुम हो जाते हैं। भौतिकता की जकड़न से मुक्त, शहरी जीवन की चकाचौंध से दूर और व्यस्तता की भूलभूलैया से परे व्यक्ति दिव्य आनन्द में डूब जीवन और मृत्यु की तृष्णा से हटकर मोक्ष कामना के लिए जुट जाए तो आश्चर्य क्या ? लोक मान्यता है कि सारे तीर्थ बार–बार पुष्कर तीर्थ एक बार, यानि पुष्कर तीर्थ की एक बार की यात्रा ही मोक्ष प्राप्ति के लिए काफी है। इसीलिए चारों धामों की यात्रा के बाद भक्तजन पुष्कर यात्रा पर अवश्य आते हैं क्योंकि लोक मान्यता है कि चारों तीर्थों का पुण्य तभी प्राप्त होता है जब पुष्कर की यात्रा और पुष्कर में स्नान कर लिया जाए। इसीलिए पुष्कर को तीर्थों का सम्राट् और तीर्थ गुरु भी माना जाता है। इसे पृथ्वी का तीसरा नेत्र भी माना गया है। महाभारत में लिखा गया है कि तीनों लोकों में मृत्यु लोक महान् है और मृत्यु लोक में पुष्कर देवताओं का सर्वाधिक प्रिय स्थान है पुष्कर की नाग पर्वतमाला अगत्स्य भर्तृहरि, विश्वामित्र, कपिल कण्व जैसे ऋषि मुनियों की चिंतनमनन स्थली रही है।

इतिहास और पुराणों में पुष्कर

सृष्टि के रचनाकर्ता ब्रह्मा का यज्ञ स्थान होने के कारण हिन्दू धर्मग्रन्थों में पुष्कर का उल्लेख अनेक बार आता है। पद्म पुराण में हुए एक उल्लेख से पुष्कर की महत्ता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

राजेन्द्र पुष्कर तीर्थ करोड़ों ऋषियों से भरा है। उसकी लम्बाई ढाई योजन (दस कोस) है और चढ़ाई आधा योजन (दो कोस)। वहाँ जाने से मनुष्य को राजसूय और अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जहाँ अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदी ज्येष्ठ पुष्कर में प्रवेश करती है वहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं ऋषियों, सिद्धों और साधकों का आगमन होता है। कार्तिक पूर्णिमा को जो पुष्कर तीर्थ की यात्रा करता है, जो यहाँ पितरों का पूजन कर स्नान करता है वह अभय पद को प्राप्त करता है साथ ही वह अपने कुल का भी उद्धार करता है।

अन्य सभी तीर्थों में स्नान और दान के द्वारा लोक पवित्र होते हैं इसमें संशय नहीं है किन्तु पुष्करराज के तो दर्शन मात्र से ही समस्त पापों से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। महाभारत के अनुसार पाण्डवों ने अज्ञातवास की अवधि में कुछ वर्ष पुष्कर में व्यतीत किए थे।

भगवान् राम ने अपने पिता राजा दशरथ का नागपर्वत के अंचल में पंचकुण्ड में पिण्ड–तर्पण किया था, वह यही पुष्कर–क्षेत्र ही था। दक्षिण दिशा में तप करते हुए असुरों के उत्पात से पीड़ित ऋषि विश्वामित्र ने पश्चिम दिशा में जिस स्थान पर दस हजार वर्ष तक तपस्या की थी, वह भी यही पुष्कर है। इसी पुष्कर के किनारे महर्षि कण्व का आश्रम था। कालिदास के महान् ग्रन्थ 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' में इसी पुष्कर की प्राकृतिक सुषमा का भव्य चित्रण है।

कहते हैं, कभी सरस्वती नदी पुष्कर से ही महासागर की ओर प्रस्थान करती थी। यह अलग बात है कि लोक–मान्यता के अनुसार बाद में किसी ऋषि के शाप से यह लुप्त हो गयी। महायोगी आदिदेव भी यहीं निवास

करते थे, जिनकी पूजा आदि वराह के नाम से आज भी की जाती है। मान्यता है कि आदि–वराह की पूजा–अर्चना समस्त देवता किया करते थे।

एक बार ब्रह्मा जी ने पुष्कर में यज्ञ किया। ब्रह्मा वेदी पर यज्ञ प्रारम्भ करने लगे; किन्तु ब्रह्मा की पत्नी सावित्री को लक्ष्मी, पार्वती और इन्द्राणी के साथ सजधज कर आने में देर हो गयी थी। मुहूर्त्त का समय बीतते देख एक गुर्जर कन्या को ब्रह्मा जी की पत्नी बना यज्ञ सम्पन्न किया गया। सावित्री जब यज्ञ–स्थल पर पहुँचीं, तो यह सब देखकर रुष्ट हो गयीं। सावित्री ने क्रोध में ब्रह्मा को पुष्कर के अलावा कहीं और पूजित न होने का शाप दिया और रूठकर निकट की पहाड़ी पर चली गयीं। सम्भवतः यही कारण है कि पुष्कर के अलावा ब्रह्मा का मंदिर अन्यत्र कहीं नहीं है।

मुगल बादशाह जहाँगीर करीब तीन वर्ष अजमेर में रहा। इस दौरान वह १५ बार पुष्कर गया। पुष्कर मे वह महल आज भी है, जिसमें जहाँगीर ठहरता था।

मंडोर जोधपुर के राजा नरहर का पुष्कर सरोवर में स्नान और उससे उनकी कुष्ठ रोग से मुक्ति भी इतिहास प्रसिद्ध है। इन्हीं नरहर ने पुष्कर सरोवर खुदवाकर उसे आज का स्वरूप दिया।

कर्नल टॉड ने 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' में पुष्कर सरोवर की तुलना तिब्बत के मानसरोवर से की है।

मेला

प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी एकादशी से पूर्णिमा तक चलने वाले मेले के श्रद्धालु पुष्करराज के पवित्र जल में डुबकी लगाकर परमानन्द प्राप्त करने के लिए यहाँ इकट्ठे होते हैं।

इन दिनों स्नान करने वाले लोग मोक्ष कामना से यहाँ पुण्य, दान और पूजा–अर्चना करते हैं। बदलते परिप्रेक्ष्य की आवश्यकताओं ने अब इस मेले को धार्मिक स्वरूप के साथ–साथ पशुहाट और पर्यटन से भी जोड़ दिया है। अब तो इसकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति बन गई है। मेले में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान के विभिन्न हिस्सों से पशुपालक पशुओं की खरीद–फरोख्त के लिए आते हैं। करीब दो–तीन करोड़ रुपए की पशुओं की खरीद–फरोख्त इस मेले में हो जाती है।

रंग–बिरंगी पोशाकों में ग्रामीण ५२ घाटों पर पूजा–अर्चना और मंत्रोच्चार करते पुरोहित, मन्दिर प्रदक्षिणा करते भक्त जन, मन्दिरों में श्रद्धावनत श्रद्धालु, ब्रह्मा मन्दिर से गूँजती घंटों की ध्वनियाँ और गऊ और बराह घाट पर स्नान करते तीर्थयात्री पुष्कर मेले का यह दृश्य सचमुच मनमोहक होता है। साँझ की लालिमा जैसे–जैसे धरा पर उतरती है, अँधेरे को चुनौती देते, आकांक्षाओं के हजारों दीप पुष्कर के हर घाट पर जगमगा उठते हैं।

मन्दिरों की नगरी

पुष्कर में छोटे बड़े करीब ४०० मन्दिर हैं। यहाँ हिन्दू धर्मावलम्बियों के प्रसिद्ध व प्रमुख ब्रह्मा सावित्री, वराह, आत्मेश्वर महादेव आदि मन्दिरों के अतिरिक्त बिहारी जी, बदरी नारायण, रंगनाथ, रणछोड़ राय मन्दिर और महाप्रभु वल्लभाचार्य पीठ, निम्बार्क सम्प्रदाय का परशुराम–द्वारा, तुलसी मानस का नवखंडीय मन्दिर, जैन

(शेष पृष्ठ ८३ पर)

याद दिलाने वाले हों यदि...

– अशोक 'अंजुम'

आज नहीं तो कल निकलेगा
कोशिश का कुछ हल निकलेगा

गिर–गिरकर फिर उठता है तो
ये बच्चा कल चल निकलेगा

मैं रोता हूँ, गर हँस दूँ तो
सारा आलम जल निकलेगा

याद दिलाने वाले हों यदि
मुझमें बेहद बल निकलेगा

तू किस भ्रम में दौड़ रहा है
रेत मिलेगी, थल निकलेगा

अँधियारे में मत मिल उससे
उसके मन में छल निकलेगा

पत्त्थर–दिल है पर इन्साँ है
प्यार मिला तो गल निकलेगा

– एफ–२३, नई कालोनी कासिमपुर,
अलीगढ़–२०२१२७

क्या ईसा की कब्र भारत में है ?

- डॉ० हिम्मत सिंह गुगालिया

एलिजाबेथ क्लेअर– एक अमरीकन अध्यात्मवादी ने अपनी समीक्षात्मक कृति 'दि लास्ट इयर्स आफ जेसस्' (ईसा के अन्तिम वर्ष) में यह वर्णन किया है– यीशु १४ वर्ष की उम्र में भारत आया था और यहाँ से २८ वर्ष की उम्र में वापस लौटा था। ऐसा कहा जाता है हिन्दू एवं बौद्ध धर्मों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त कर वह भारत का प्रस्तावक आध्यात्मिक प्रमुख बन गया था। जो लोग उसके आध्यात्मिक विकास की खोज में हों, उनके लिए यह समझना उपयोगी होगा कि वह अपने जीवन के विकासकाल में क्या कर रहा था ?' अपने ग्रन्थ में एलिजाबेथ क्लेअर ने निकोलाई नोतोविच नामक रशियन पत्रकार की इस धारणा की पुष्टि की है, जिसमें उसने ईसा के भारत आगमन के तथ्य को, एक पुस्तक सन् १८६४ में प्रकाशित कर सही बताया है। नोतोविच ने पुस्तक में वर्णन करते हुए बताया है कि जब वह लामाओं के प्राचीन एवं प्रसिद्ध हेमिस विहार में प्रवास के दौरान गया था, जो कश्मीर एवं छोटा तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्र में है, तो वहाँ के लामा विहार में प्राचीनतम पुस्तकों, स्क्रोल एवं आलेखों का उसने विशाल भण्डार देखा था। वहाँ एक विशाल पुस्तकालय था, जिसमें लगभग ८४,००० हस्तलिखित गोलाई में कुंडलीकृत ग्रन्थ थे। वह उस केन्द्र के बड़े लामा से मिला था और उनसे बातचीत के दौरान उसे बताया गया था कि लामा ईसा के नाम से खूब परिचित है और उनके रिकार्ड में उसके जीवन एवं कार्य का सविस्तार वर्णन भी मौजूद है। एक प्राचीन कुंडलीत ग्रन्थ में बताया गया था कि ईसा भारत एवं नेपाल की यात्रोपरान्त वहाँ तिब्बत आये थे। वह कुंडलीत मूल ग्रन्थ पाली भाषा में है और वह ल्हासा के बड़े लामा विहार में मौजूद है तथा उसका तिब्बती में अनुवाद उनके हेमिस विहार में उपलब्ध है।

नोतोविच के वर्णनानुसार हेमिस की हस्तलिखित पुस्तक में ईसा की प्रथम यात्रा का विस्तार से वर्णन है। पुस्तक के चतुर्थ खण्ड के पंचम श्लोक में ईसा का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है :

'इजराइल में एक सुन्दर शिशु पैदा हुआ। उसके माता–पिता गरीब थे, उन्होंने उसका नाम 'ईसा' रखा। बाल्यावस्था से ही उसने लोगों को बताना आरम्भ कर दिया था कि परमेश्वर एक और अविभाजित है। जब वह तेरह वर्ष का हुआ ही था कि तत्कालीन प्रथा के अनुसार कई लोग अपनी बेटी का विवाह उससे किये जाने का प्रस्ताव लेकर आने लगे। किन्तु अपने माता–पिता तथा यरूशलम का आवास छोड़कर सौदागरों के साथ आत्मोन्नति एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वह 'सिन्ध' आ पहुँचा। वहाँ से वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन करने सिन्ध पारकर एंजाब (पंजाब) आया और वहाँ से जगन्नाथधाम आ पहुँचा, वहाँ रहकर वेदाध्ययन उसने किया। फिर राजगृह एवं वाराणसी में भी रहा और उपनिषदों एवं अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन छह वर्षों तक किया। यहीं उसने शूद्रों को पवित्र ग्रन्थों को पढ़ाना, मूर्त्तिपूजा का विरोध एवं मानवों की समानता का प्रचार आरम्भ किया। ब्राह्मणों ने उसका विरोध किया और उसको समझाया, पर वह नहीं माना, तो उसको समाप्त करने का तय किया गया। सूचना पूर्व से ही मिल जाने पर वह वहाँ से पलायन कर भगवान् बुद्ध के जन्मस्थान रातोंरात आ पहुँचा। उसने पाली भाषा सीखकर सूत्र ग्रन्थों का अध्ययन किया और छह वर्षों तक वह वहाँ रहा। फिर राजपूताना होता हुआ उसने फारस की सीमा में प्रवेश किया। फारस में धार्मिक नेता सतर्क हो गये और उसे पकड़कर सीमा पार पहुँचा दिया गया फिर आगे का वर्णन बाइबिल से मिलता–जुलता है। इस प्रकार इस तिब्बती ग्रन्थ में ईसा को किशोर–अवस्था से तीस वर्ष की वय तक का पूरा वर्णन मिलता है। इसी काल की घटनाओं का वर्णन बाइबिल में नहीं है।

ईसाई पादरी बी. व्ही. जान ने इस सारे घटनाक्रम को 'Hemis Hoax'– 'हेमिस का कपट' निरूपित किया है। ईसाई धर्म की यह परम्परा रही है कि जिस तथ्य का किसी तर्क, प्रमाण या किसी साक्ष्य से खण्डन करने में वे असमर्थ रहें, उसे Hoax करार देते हैं और उस सिद्धान्त का अधिक प्रचार होने लगे तो उसके विरुद्ध धर्मगुरु पोप का फतवा जारी करवा लेते हैं। क्या इससे कोई भी प्रबुद्ध व्यक्ति चुप्पी साध सकता है ? कहावत है, 'या तो बाप बताओ या श्राद्ध करो।'

जोन कहते हैं कि ईसा के जन्म पर तीन पूर्वी

विद्वान् उसकी पूजा करने आये थे। जबकि सुसमाचार लेखकों में से किसी ने भी तीन पूर्वी विद्वानों द्वारा नवजात ईसा की पूजा का वर्णन नहीं किया है। मत्ती पूर्व देशों के ज्योतिषियों के आने का वर्णन करता है देखें २:१०; जबकि लूका उस इलाके के चरवाहों के आने का वर्णन करता है। देखें २:८ से १६, इस प्रकार जोन का प्रतिवाद बाइबिल को झुठलाता है। फिर जोन कहते हैं कि ईसा का जन्म एक विशेष कर्तव्य था और उसका जन्म, जीवन एवं मृत्यु पूर्व से ही बताई जा चुकी थी। उसका कार्य यहूदी रिवाज के अनुसार ३० वर्ष की उम्र के होने पर आरम्भ होना था, इस कारण उस बारे में कोई वर्णन सुसमाचारों में नहीं हुआ। हमने मान लिया, शायद ऐसा ही हुआ होगा, तो ऐसा वर्णन हमें बाइबिल में प्राप्त होना चाहिए तभी श्री जोन की बात में कोई सत्यांश है यह माना जावेगा। बाइबिल के बारे में किसी भी जिक्र में बाइबिल के सन्दर्भ होना चाहिए, वरना बाकी सब बकवास माना जावेगा। अतः बाइबिल में वर्णनाभाव से उनका स्पष्टीकरण तनिक भी ग्राह्य नहीं होगा। इसी प्रकार उनका यह कथन भी प्रमाणाभाव में कि ईसा तीस वर्ष की उम्र तक यरूशलम में रहे कैसे माना जा सकता है। ऐसा वर्णन बाइबिल में आना ही चाहिए। एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन के अट्ठारह वर्षों का लेखा–जोखा न किया जाना, जबकि बाइबिल के अनुसार ईसा की मृत्यु तैंतीस वर्ष की उम्र में हुई, तो उनके जीवनवृत्त का लगभग ६० प्रतिशत भाग बाइबिल में नहीं है और जन्म समय के बाद बारह वर्ष की उम्र का भी कोई परिकल्पन ढंग से नहीं है, मात्र तीन वर्षों का ही सम्यक् हिसाब है यानि बाइबिल में ईसा के जीवन के मात्र १० प्रतिशत भाग का ही वर्णन है। विद्वज्जनों का स्वाभाविक प्रश्न है आखिर क्यों? क्या बाइबिल में उनके यरूशलम में रहने का वर्णन (उस दरमियान) होता, तो उनकी महानता में अन्तर पड़ता या कुछ रहस्योद्घाटन हो जाता कि वे इस दौरान भारत में रहे थे? यदि ऐसा होता तो श्री जोन को उसका बचाव करने आने की तनिक भी आवश्यकता नहीं रहती। नोतोविच के प्रमाण सहित वर्णन को Hoax कहने वाले पादरी को सोचना होगा कि उनकी बयानबाजी क्या Hoax की श्रेणी से बाहर है?

श्री जोन का यह कहना कि जब बारह वर्ष की उम्र में ईसा माता–पिता से पीछे छूट गया था, तो वह ढूँढ़ते हुए वहाँ आये, तो उसे विद्वानों से वाद–विवाद करते पाया था और सुनने वाले उसके ज्ञान से अचम्भित थे। यह वर्णन मात्र लूका २:४१ से ४८ में आया है, अन्य सुसमाचार लेखकों ने इतने विद्वान् बालक के बारे में कुछ भी लिखना क्यों नहीं ठीक समझा, प्रश्न जेहन में उठता है? क्या उनकी निगाह से यह महत्वपूर्ण चर्चा छूट गई Fkh ; fn gk तो क्यों? यदि जोन यह कहते हैं कि यह महत्त्वहीन होने से उल्लेख नहीं आया, तो वे गलत ही कहते हैं। वर्णन तो अवश्य आया, संत लूका के सुसमाचारों में, अन्य किसी में नहीं। इस प्रकार एक दिन के ईसा के बाद बारह वर्ष के ईसा का जिक्र आया है यदि ईसा इतना ही प्रतिभावान् था तो इस अवधि के वर्णन की जनता अपेक्षा करती है कि उसके बचपन एवं बाल्यावस्था में उसने क्या करिश्में दिखाये थे यह भी कहीं ज्ञान नहीं होता है कि उसकी शिक्षा–दीक्षा कहाँ हुई थी, उसके कौन गुरु थे? यदि वह सर्व प्रतिभावान् थे तो उसने आरम्भ से ही धर्मोपदेश देना आरम्भ क्यों नहीं किया था?

यदि यीशु पूरे समय इसराइल में रहा (जोकि कभी सही नहीं हो सकता) तो फिर पाली भाषा की प्राचीनतम पुस्तक में ईसा का पूरा सही वर्णन किस पादरी ने लिखवाया था? पूर्व के देशों में कौन उसको जानता था? फाह्यिान चीनी यात्री के समान जोन का कहना है, यीशु का प्रामाणिक वर्णन क्यों नहीं है? तो फिर बाइबिल को संदर्भित कर इस ईसा के भारत आने के झूठ का पर्दाफाश जोन क्यों नहीं करते? प्रामाणिक अभिलेख है सूर्य की रोशनी के समान, किन्तु यदि वे आँखे बन्द करके कहें कि उनको सूर्य नहीं दीख पड़ रहा है, तो उनकी बुद्धि पर जमाना क्या कह सकेगा। जनता यह पूछती है यदि ईसा ने भारत आकर ज्ञान प्राप्त किया, तो कौन सी ईसा की महानता में कमी आजावेगी, जो इससे इन्कार किया जा रहा है? बाइबिल में है नहीं तथा अन्य कोई रिकार्ड नहीं, तो फिर तिब्बती ग्रन्थ को क्यों इन्कार किया जा रहा है?

फेबर केसर की पुस्तक 'Jesus Died In Kashmir' में उस जर्मन लेखक ने बड़े मनोयोग से खोज कर बताया है कि यीशु क्रूस पर नहीं मरा था और अपने दोस्तों की मदद से पलायन कर, कश्मीर में आया था और वहीं वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

यीशु ने अपनी मृत्यु और पुनरुत्थान के बारे में स्वयं अपने शिष्यों को कहा है। यदि यीशु की मृत्यु एवं पुनरुत्थान का वर्णन चारों प्रत्यक्षदर्शी शिष्यों का एक समान होता तो संदेह का कारण ही कहाँ रहता? चारों शिष्यों के इन वर्णनों में गम्भीर विरोधाभास है, जो यह संकेत देता है कि कहीं कोई गड़बड़ है। पादरी जोन का

(शेष पृष्ठ ७० पर)

बालवाटिका

मेहनत की कमाई

किसी गाँव में एक बुढ़िया रहती थी। एक दिन वह अपनी कुछ वस्तुएँ बेचकर घर लौट रही थी। उसने सारे पैसे जो सौ रुपये थे, सामान के साथ पोटली में बाँध रखे थे। उससे बुढ़ापे के कारण गठरी का बोझ उठ नहीं रहा था। अचानक पीछे से एक घुड़सवार आता दिखायी दिया। बुढ़िया ने उसे अपने गाँव का नाम बताकर वहाँ तक छोड़ देने की प्रार्थना की। घुड़सवार ने बुढ़िया को घोड़े पर आगे बिठा लिया और उसकी गठरी अपने हाथ में पकड़ ली। जब बुढ़िया का गाँव आया तो वह उतर गयी और अपनी गठरी माँगी। यह सुनते ही घुड़सवार जोर से बोला– "भलाई का यही फल है। इतनी दूर से बिठाकर लाया और अब मेरी गठरी को अपनी बताती है।" यह सुनते ही बुढ़िया के होश उड़ गये। उसने काफी मिन्नतें कीं, पर सवार अपनी बात पर अड़ा रहा। गाँव के कुछ लोग वहाँ जमा हो गये। वे दोनों को पकड़ कर कचहरी ले गये। वहाँ के हाकिम ने सब बातें सुनीं। पल भर के लिए वह भी चक्कर में आ गया, पर दूसरे क्षण उसकी आँखों में हल्की-सी चमक आ गयी। ऐसा लगा जैसे उसने इसका हल खोज लिया था। उसका चेहरा गम्भीर हो गया। कुछ सोचकर उसने खुली हुई गठरी में से एक रुपया निकाला और पास की बहती हुई नाली में फेंक दिया। घुड़सवार चुपचाप खड़ा था। उसके चेहरे पर उदासी नहीं थी। परन्तु बुढ़िया का चेहरा गुस्से से लाल हो गया था। लेकिन चुप रही। थोड़ी देर बाद हाकिम ने फिर एक रुपया उठाया और उसे भी नाली में फेंक दिया। घुड़सवार अब भी चुपचाप खड़ा था, लेकिन बुढ़िया गुस्से से लाल होकर जोर से चिल्लाकर बोली, "हजूर! जो भी फैसला करना हो कीजिये, परन्तु रुपयों को क्यों नाली में फेंक रहे हैं? पैसा बड़ी मेहनत से पैदा होता है।" हाकिम को उत्तर मिल गया। वह बोला– "यह धन बुढ़िया का है। वह इसे लेकर घर जा सकती है।" फिर घुड़सवार की ओर मुड़कर बोला– "मेहनत से पैदा किये धन को इस तरह नाली में फेंकते देखकर धन के मालिक को गुस्सा आ ही जाता है, लेकिन तुम चुपचाप खड़े रहे। इसलिए यह धन तुम्हारा नहीं है। अदालत को धोखा देने के जुर्म में सौ रुपये का जुर्माना करता हूँ। इस विषय में तुम्हें कुछ कहना है?" घुड़सवार चुप था। उसका सिर लज्जा से झुका था। □

जब दिये जले दीवाली के

– बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'

जगमग सारा संसार हुआ
जब दिये जले दीवाली के,
मन्दिर हर आँगन द्वार हुआ,
जब दिये जले दीवाली के।
मन में उमंग, तन में तरंग,
अधरों पर लेकर मुस्कानें,
बच्चे–बूढ़े सब मचा रहे हैं,
धूम–धड़ाके मनमाने।
फिर खुशियों का त्योहार हुआ,
जब दिये जले दीवाली के।
सज रहे खिलौने नये–नये
बाजारों में दूकानों में,
कोने में भी अब दिखे नहीं,
अँधियारा कहीं मकानों में।
हर गाँव–गली उजियार हुआ,
जब दिये जले दीवाली के।
फुलझड़ी पटाखे बम छूटे
मच रही धूम दीवाली की,
रोशनी गजब की फैल रही,
आतिशबाजी की लाली की।
सूना घर भी गुलजार हुआ,
जब दिये जले दीवाली के।

– इन्द्रपुरी, पोस्ट–मानसनगर,
लखनऊ–२३

कथा

तलाश

– रामयतन प्रसाद यादव

किसी राजा को एक चतुर और साहसी सलाहकार की तलाश थी। इसी उद्देश्य से उसने अपने राज्य में ऐलान करवाया कि उसके पिता के बारे में जो भी आदमी कोई ऐसी बात बतलायेगा जिसे उसने पहले कभी न सुना हो तो उस आदमी को इनाम के रूप में एक हजार सोने की मोहरें दी जायेंगी तथा उसे राजदरबार का खास सलाहकार भी बनाया जायेगा।

राजा के ऐलान को सुनकर निश्चित तिथि को देश के कोने–कोने से सैकड़ों लोग दरबार में हाजिर हुए।

फिर वे सब बारी–बारी से भरे दरबार में राजा के सामने लाये गये।

सबसे पहले हाजिर होने वाले ने कहा, "महाराज आपके पिता दुनिया के सबसे बड़े दानवीर और दयालु थे।"

राजा ने कहा, "मगर यह बात तो मैं पहले भी कई मर्तबा सुन चुका हूँ।" इतना कहकर उसने उस आदमी को कैदखाने में डलवा दिया।

दूसरे ने कहा, "महाराज, आपके पिता संसार के सबसे शक्तिशाली राजा थे। उनके नाम से देश–विदेश के राजा डर से काँप उठते थे।"

राजा मुस्कुराया। बोला, "यह बात भी मैं पहले सुन चुका हूँ।"

दूसरे को भी कैदखाने में डाल दिया गया।

तब तीसरा विदूषक हाजिर हुआ। बोला, "महाराज आपके पिता जैसा न्यायप्रिय, बुद्धिमान और धर्म परायण राजा इस संसार में दूसरा न पैदा हुआ है और न होगा।"

राजा हँसा। बोला, "मगर यह बात भी मैं सैकड़ों लोगों से पहले भी सुन चुका हूँ।"

तीसरे को भी कैद में डाल दिया गया।

इस तरह सैकड़ों लोगों को कैदखाने की हवा खानी पड़ी।

आखिर में एक बहुत ही दुबला–पतला, झुर्रीदार चेहरे वाला बूढ़ा राजा के सामने हाजिर हुआ।

राजा ने उत्सुक होकर कहा, "तुम तो बहुत बुजुर्ग और अनुभवी हो... जरूर ही मेरे पिता के बारे में

विज्ञान जगत

बिलगेट्स को भारत की चुनौती

सूचना–क्रान्ति के शक्तिशाली मसीहा बिलगेट्स को भी अब चुनौती मिल रही है। यह चुनौती भी उसको भारत से मिल रही है।

उसको यह चुनौती दी है हरियाणा प्रान्त के एक विद्यार्थी ने जिसका नाम रामलाल भगत है तथा हरियाणा के ही एक विद्यालय में १२वीं कक्षा का विद्यार्थी है। भगत ने ३२ लाइट के एक आपरेटिंग सिस्टम का विकास और प्रदर्शन किया है जो इस समय बाजार में उपलब्ध किसी भी डेस्कटॉप आपरेटिंग सिस्टम से बेहतर है। उसने अपने प्रोग्राम का नाम **'O-Yes'** रखा है। 'ओ–यस' प्रोवाइडर आपरेटिंग सिस्टम–पेंटियम पर आधारित पर्सनल कम्प्यूटर पर काम करता है और इसे बेस आपरेटिंग सिस्टम के रूप में एम०एस० गैस की आवश्यकता नहीं होती है। इस आपरेटिंग सिस्टम की क्षमताओं का प्रदर्शन एक विद्यार्थी समारोह में इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (IIT) नई दिल्ली में किया गया।

इस सिस्टम में कई हार्डवेयर डिवाइसेस जोड़े जा सकते हैं। साथ ही इसमें सुपीरियर मेमोरी मैनेजमेण्ट की क्षमता है। यह विण्डोज–६५ तथा विण्डोज NT4 के समतुल्य है। □

– मृत्युञ्जय दीक्षित *(साभार इण्टरनेट)*

कोई ऐसी बात बता सकते हो जिसे मैंने पहले कभी किसी के मुँह से नहीं सुना...।"

बूढ़ा बोला, "हाँ हुजूर मैं तो आपके पिता के शासनकाल में दरबार का मुलाजिम भी रह चुका हूँ।"

"तो ठीक है, बता सको तो शीघ्र ही मेरे पिता के बारे में....।" राजा ने आतुर स्वर में कहा।

बूढ़े ने एक बार सभी दरबारियों की तरफ देखा। फिर राजा की आँखों से छलक रही बेताबी को भाँपकर बोला, "हुजूर, सच कहूँ तो आपके पिता अव्वल दर्जे के बेवकूफ और निहायत आलसी थे। यही वजह है कि आज इस मुल्क में चाटुकारों की इतनी बड़ी फौज खड़ी हो गयी है...।"

बूढ़े की बात सुनकर एक बारगी तो राजा के साथ-साथ दरबार में मौजूद सभी दरबारियों और नागरिकों को साँप सूँघ गया।

सब के सब चुप लगा गये।

तब उस बूढ़े ने ही राजा को टोका, "हुजूर मुझे उम्मीद है कि इस हकीकत का बयान आपके सामने पहले किसी ने भी नहीं किया होगा।"

राजा उस बूढ़े के साहस और सच्चाई पर बहुत खुश हुआ और निर्धारित ईनाम देकर उसे अपना खास सलाहकार नियुक्त कर लिया।

साहस के साथ सच्चाई का बयान करने वाला आदमी उसे पहली बार मिला था।

□

– मकसूदपुर, पोस्ट–फतुहा (पटना)

मैं सेना में जाऊँगा

- महेश चन्द्र त्रिपाठी

भारत माता की खातिर मैं, अपना लहू बहाऊँगा।
माँ! मैंने संकल्प लिया है, मैं सेना में जाऊँगा।।

पापा हुए शहीद, मगर माँ! अश्रु तुम्हारे नहीं बहे,
मुझे गोद में लेकर तुमने जो वीरोचित शब्द कहे।
उन शब्दों को युद्धभूमि में देकर प्राण निभाऊँगा,
माँ! मैंने संकल्प लिया है, मैं सेना में जाऊँगा।।

माँ! दुश्मन तो दुश्मन है, वह भले पाक हो अथवा चीन,
कोई भी अब भूमि हमारी नहीं सकेगा हमसे छीन।
अपनी छीनी हुई भूमि मैं फिर वापस लौटाऊँगा,
माँ! मैंने संकल्प लिया है, मैं सेना में जाऊँगा।।

घुसपैठिये भेजने की यदि करता है कोई गुस्ताखी,
माँ! तेरी सौगन्ध मुझे, हैं शशि–रवि साक्षात् साखी।
मानचित्र से पाक मिटाकर भारत उसे बनाऊँगा,
माँ! मैंने संकल्प लिया है, मैं सेना में जाऊँगा।।

श्रीलंका, नेपाल आदि जो अपने मित्र–राष्ट्र कहलाते,
जरा–जरा सी बातों पर जो जब–तब हमको आँख दिखाते।
उन्हें मित्रता की पावन परिभाषा मैं सिखलाऊँगा,
माँ! मैंने संकल्प लिया है, मैं सेना में जाऊँगा।।

भारत को सिरमौर बनाने हेतु करूँगा अनथक श्रम,
अति मुश्किल से मुश्किल में भी मेरी आँख न होगी नम।
अपनी कठिन साधना से मैं सर्वोन्नत पद पाऊँगा,
माँ! मैंने संकल्प लिया है, मैं सेना में जाऊँगा।।

– खुशवक्तराय नगर, फतेहपुर–२१२६०१ (उ०प्र०)

'मूल्य नहीं मरता'

– संदीप सक्सेना

प्रतिदिन की तरह आज भी जब राजू अपने विद्यालय पहुँचा, तो उसकी दृष्टि अपने सहपाठियों पर पड़ी। राजू ने उनकी ओर मुस्करा कर देखा; परन्तु वे सब राजू की ओर बेहद उपेक्षा के भाव से देख रहे थे। वे सब राजू के पुराने तथा साधारण से कपड़ों को देखकर उसका मजाक उड़ा रहे थे। राजू ने दुःख के मारे चेहरा नीचे झुका लिया था तथा गीली आँखों से आगे बढ़ गया।

राजू शहर के एक बेहद प्रसिद्ध व प्रतिष्ठित विद्यालय की छठी कक्षा का होनहार छात्र था। उस विद्यालय में और विशेषकर राजू की कक्षा में अधिकांश छात्र बड़े, प्रतिष्ठित व आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न घरों के थे। राजू एक निर्धन परिवार से सम्बन्ध रखता था। उसके पिता एक सरकारी कार्यालय में एक साधारण से कर्मचारी थे। परन्तु उनके मन में एक सपना था कि राजू को अच्छी शिक्षा प्राप्त हो, उन्होंने उसके भविष्य को लेकर बहुत सुखद कल्पनाएँ सँजोकर रखी थीं। इसी कारण से वे तमाम तकलीफों के बावजूद उसकी शिक्षा में कोई कमी न होने देते थे। उसकी खर्चीली शिक्षा को यथासम्भव वहन करने की कोशिश करते थे और राजू अपनी कुशलता, बुद्धिमत्ता व प्रतिभा के द्वारा अपने पिता की आशाओं को पूरा करने की दिशा में बढ़ रहा था।

वह अपनी कक्षा में आया और चुपचाप सिर झुकाकर अपनी सीट पर बैठ गया। वह अपनी पुरानी पैंट तथा शर्ट को ध्यान से देखने लगा। वह सोचने लगा कि क्या इन कपड़ों का कोई भी मूल्य नहीं है, नये व मँहगे कपड़ों को पहन कर क्या मैं कुछ दूसरा व्यक्ति हो जाऊँगा। आखिर मेरे सहपाठी व मित्र मुझसे सम्बन्ध रखते हैं या कि मेरे कपड़ों से? मैं इन सबकी तरह साधन–सम्पन्न नहीं, पर जो भी कपड़े पहनता हूँ, वे साफ होते हैं और फटे हुए भी नहीं होते हैं। फिर मेरी इतनी उपेक्षा क्यों? प्रत्येक बेला में वह बैठा रहा, पर उसका मन पढ़ाई में आज नहीं लग रहा था। सहपाठियों का उपेक्षा भाव तथा उनका व्यवहार ही उसके मस्तिष्क में घूम रहा था। छुट्टी होने पर वह घर की ओर चल पड़ा था, बिना किसी से कुछ बोले। घर आया और बस्ता एक ओर रख बिस्तर पर लेट गया? राजू को गुम–सुम देख माँ ने पूछा "क्या बात है राजू, क्या हो गया है तुम्हें?" राजू कुछ न बोला और सिर झुकाकर एक तरफ बैठ गया। माँ के बार–बार पूछने पर राजू ने सारी बात माँ को विस्तार से बता दी। राजू के प्रति सहपाठियों के इस व्यवहार से उसकी माँ को भी बहुत दुःख हुआ। वह कुछ न बोली, राजू को प्यार से खाना खिलाया तथा काम में लग गयी। दिन भर राजू का मन काफी खराब रहा। शाम को जब राजू के पिताजी घर आये तो राजू की माँ ने सारी बात उनको बतायी। राजू को दुःखी जान उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे एकाएक गम्भीर हो गये, पर बोले कुछ भी नहीं।

अगले दिन भी राजू उन्हीं कपड़ों में स्कूल गया। उसे फिर वही उपेक्षा भरी तथा मजाक–सी उड़ाती निगाहों का सामना करना पड़ा। छुट्टी होने पर दुःखी मन से वह आज भी घर वापस लौट आया था। पर, शाम को देखता क्या है कि उसके पिता जी हाथों में एक बड़ा–सा पैकेट लेकर घर में आये। वे राजू के लिए दो जोड़ी पैंट–शर्ट खरीद कर लाये थे। नये कपड़ों को देख राजू का मन खिल उठा था। प्रसन्न राजू को देखकर उसके माता–पिता के चेहरे पर सन्तोष के भाव आ गये थे।

जब से राजू ने नये कपड़े पहन कर स्कूल जाना प्रारम्भ कर दिया, उसने देखा कि उसके सहपाठियों का रुख भी अब बदलने लगा था। वे अब उससे बात भी करने लगे थे। पहले की तरह ही सब कुछ चलना प्रारम्भ हो गया था। राजू को प्रसन्न देख उसके माता–पिता भी बड़े सन्तुष्ट थे। घर पर जब

जब भी उसकी नजर खूँटी पर टँगे उन पुराने साधारण से पैंट-शर्ट पर पड़ती थी, तो वह काफी सोच में डूब जाता था। वह सोचने लगता था कि उन कपड़ों ने मेरी इतनी सेवा की क्या उनका अब कोई भी मूल्य नहीं रह गया है, क्या ये अब मर से गये हैं? जितना सोचता उतना ही वह सोच के सागर में डूबता जाता था। खूँटी पर टँगे वे कपड़े जिन्हें वह अब नहीं पहनता था, उसको काफी कुछ सोचने को मजबूर कर देते थे। उन पुराने कपड़ों का ख्याल वह मस्तिष्क से निकाल नहीं पाता था। एक दिन जब वह विद्यालय से लौट रहा था, तो उसकी दृष्टि रास्ते में किनारे बैठे एक हम उम्र लड़के की ओर गयी। वह बिल्कुल नंगा-सा पड़ा था। एक बेहद पुराने व फटे हुए बोरे के टुकड़े से वह अपनी नग्नता को ढँकने का प्रयास कर रहा था; परन्तु उसका शरीर उससे ढँक नहीं पा रहा था। राजू को उसकी यह दशा देखकर बड़ा ही दुःख हुआ? तभी उसे अपने उन पुराने कपड़ों का ध्यान हो आया। उसके चेहरे पर चमक आ गयी। फौरन भागा-भागा घर आया, खूँटी पर से वे दोनों कपड़े उतारे, उनको समेटता हुआ बाहर आया तथा उस लड़के के पास पहुँच गया। राजू से कपड़े पाकर वह लड़का खुशी से फूल उठा। इन कपड़ों की उसे कोई आशा भी न थी। उसने फटाफट वे कपड़े पहन लिये। उसके चेहरे पर असीम खुशी के भाव थे, वह बेहद ही आनन्दित हो गया था। राजू के प्रति कृतज्ञता के भाव से वह भर उठा था, भावावेश में वह राजू के पैरों पर गिर पड़ा था। राजू ने उसको उठाया तथा उसका सिर थपथपाया और कुछ देर उससे बातचीत की। फिर उससे विदा लेकर वह घर की ओर चल पड़ा। राजू के मन में इस समय विचारों की आँधी थी। एक विजेता सी मुस्कान थी उसके चेहरे पर। उसने सोचा कि जो चीज दूसरों के लिए तथा स्वयं उसके लिए मूल्यहीन हो गयी थी, वह किसी और के लिए कितनी मूल्यवान साबित हुई। वास्तव में मैंने आज कितना बड़ा कार्य किया है, यह सोचकर उसके चेहरे पर भावपूर्ण मुस्कान तैर गयी कि उसके पुराने कपड़े फिर मूल्यवान साबित हो गये। □

– ७२, नारायण नगर, रामसागर मिश्र नगर,
लखनऊ–२२६०१६

भारतवर्ष

– प्रमोद दीक्षित 'मलय'

अपना भारत वर्ष महान।
माटी इसकी केशर जैसी,
पत्थर इसके देव समान।।

मस्तक इसका शुभ्र हिमालय,
चरण पखारे नित रत्नालय।
महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा–
प्यारा अपना राजस्थान,
अपना भारत वर्ष महान।।

गुरु गोविन्द, बन्दा वैरागी,
शिवि, दधीचि, भामा से त्यागी,
अश्फाक, भगत, आजाद सभी का
गाता है जग गान,
अपना भारत वर्ष महान।।

झरने कल–कल गीत सुनाते,
घन सनेह हैं जल बरसाते,
गंगा, यमुना, सतलज, गोदा–
सरयू का जल–क्षीर समान।
अपना भारत वर्ष महान।।

पन्ना, और अहिल्याबाई,
दुर्गा, घोषा, लक्ष्मीबाई,
कुन्ती, परिमल, लोपामुद्रा
पर हमको अभिमान–
अपना भारत वर्ष महान।।

सूर, कबीर, चन्दबरदाई,
तुलसी ने नव अलख जगाई
भूषण ने है किया जगत में,
वीर शिवा का गान।
अपना भारत वर्ष महान।।

– 'ईशान' भवानी गंज, अतर्रा–२१०२०१,
बाँदा (उ०प्र०)

गीत

– कुँ० शिवभूषण सिंह गौतम

हम भारत के वीर सिपाही, जीते अपनी शान में।
हँसते–हँसते, मरना सीखा, जन्मभूमि की आन में।।

मृत्यु चूमती चरण हमारे और विज़य है बाँह में।
श्वास-श्वास में सत्य समर्थक, नव निर्माण निगाह में।।

हमने देखा भारत माँ को गीता और पुराण में।
हम भारत के वीर सिपाही जीते अपनी शान में।।

जिसकी मिट्टी के कण–कण में, सोना और सुगन्ध है।
जिसकी नदियों के अमृत से, जीवन धन अनुबन्ध है।।

इतिहासों के पृष्ठ विनिर्मित हैं जिसके बलिदान में।
हम भारत के वीर सिपाही, जीते अपनी शान में।।

जिसकी सीमा का प्रहरी ही शीश मुकुट हिमवान् है।
जिसके चरण पखारे सागर, गा–गा कर गुणगान है।।

उस धरती के लिए प्यार है, सैनिक और किसान में।
हम भारत के वीर सिपाही, जीते अपनी शान में।।

– अन्तर्वेद, नया पन्ना नाका, छतरपुर (म०प्र०)–४७१००१

विश्व के बीस महानगर

क्रम	जनसंख्या	महानगर	देश
१.	२.०२ करोड़	मैक्सिको सिटी	मैक्सिको
२.	१.८१ करोड़	टोक्यो	जापान
३.	१.७४ करोड़	साओ पाओलो	ब्राजील
४.	१.६२ करोड़	न्यूयार्क	सं०रा० अमेरिका
५.	१.३४ करोड़	शंघाई	चीन
६.	१.१६ करोड़	लास एंजिल्स	सं०रा० अमेरिका
७.	१.१८ करोड़	कलकत्ता	भारत
८.	१.१५ करोड़	ब्यूनस आयर्स	अर्जेन्टीना
६.	१.१२ करोड़	मुम्बई	भारत
१०.	१.१० करोड़	सियोल	द० कोरिया
११.	१.०८ करोड़	बीजिंग	चीन
१२.	१.०७ करोड़	रियो डी जेनेरियो	ब्राजील
१३.	६४ लाख	वियानजिन	चीन
१४.	६३ लाख	जकार्ता	इण्डोनेशिया
१५.	६० लाख	काहिरा	मिस्र
१६.	८८ लाख	मास्को	रूस
१७.	८८ लाख	दिल्ली	भारत
१८.	८५ लाख	ओसाका	जापान
१६.	८५ लाख	पेरिस	फ्रांस
२०.	८५ लाख	मेट्रो मनीला	फिलीपींस

अभिनव दीप जलाना तुम

- महेन्द्र भट्ट

नूतन भाव जगाना तुम।
गीत प्यार के गाना तुम।
अभिनव दीप जलाना तुम।।
अन्तर्मन की पीड़ा हरने,
मिल जाये मजबूत सहारा।
जीवन की बहती धारा में,
निर्मित कर लें एक किनारा।।
सबका मन बहलाना तुम।
अभिनव दीप जलाना तुम।।
कोरा कागज, जैसा जीवन,
जो भी चाहो, लिख लो मन से।
निर्मल रूप मनुज का होता,
जैसा चाहो दिख लो तन से।।
अँधियारे उर के आँगन में,
आशा जागी, करे इशारा।
निर्मित कर लें एक किनारा।।
तेज नया दिखलाना तुम।
अभिनव दीप जलाना तुम।।
नये 'सोच' की ज्वाला भड़के,
मन में सूरज एक उगा दें।
जितने कलुषित भाव हृदय के,
मिलकर उनकी चिता जला दें।।
जगती तल में जन्म लिया तो,
परहित पी जाना जल खारा,
निर्मित कर लें एक किनारा।।
मधुर बोल सिखलाना तुम।
अभिनव दीप जलाना तुम।।

– जे/५४२, दर्पण कालोनी, ग्वालियर–४७४०११

देववाणी शिक्षण (२/५)

निम्नलिखित वाक्य पढ़िये –

तव गृहं कुत्र अस्ति ? स कथं न आगच्छति ? यदि स इदानीं न आगतः तर्हि श्वः प्रातःकाले आगमिष्यति। तस्मिन् कूपे प्रभूतं जलं अस्ति। तत् त्वं पश्यसि किम् ? तत्र इदानीं स न भवति।

शब्द

जानामि =	(मैं) जानता हूँ।	पातुं =	पीने के लिए।
जानासि =	(तू) जानता है।	इति =	ऐसा।
जानाति =	(वह) जानता है।	ज्ञातं =	जान लिया।
ज्ञातु =	जानने के लिए	पानं =	पीना।
आज्ञातुं =	आज्ञा करने के लिए	कति =	कितना

संस्कृत–वाक्यानि

१. त्वं जानासि किं कः अहं अस्मि इति ? २. अहं न जानामि त्वं कः असि इति। ३. अहं विष्णुमित्रस्य पुत्रः कृष्णशर्मा अस्मि। ४. त्वं पुस्तकं इदानीं कुत्र नयसि ? ५. स पुरुषः पठितुं इच्छति। ६. मया ज्ञातं तव हस्ते किं अस्ति इति। ७. हे मनुष्य ! तव नाम किं अस्ति ? ८. मम नाम यज्ञसेनः इति अस्ति

भाषा–वाक्य

१. क्या तू जानता है कि मैं कौन हूँ। २. मैं नहीं जानता कि तू कौन है। ३. मैं विष्णुमित्र का पुत्र कृष्णशर्मा हूँ। ४. तू पुस्तक अब कहाँ ले जाता है ? ५. वह पुरुष पढ़ना चाहता है। ६. मैंने जान लिया कि तेरे हाथ में क्या है। ७. हे मनुष्य ! तेरा नाम क्या है ? ८. मेरा नाम यज्ञसेन है।

अब निम्नलिखित शब्द कण्ठस्थ कीजिये –

शब्द

आनन्दः =	आनंद	भक्तः =	भात, भक्त
मणिकारः =	जौहरी	आमोदः =	सुगन्ध, आनन्द
सुवर्णकारः =	सुनार	धृतः =	धारण किया हुआ
लोहकारः =	लुहार	आघ्रातः =	सूँधा हुआ
वस्त्रकारः =	जुलाहा	भुक्तः =	भोजन किया हुआ
ओदनः =	चावल	अर्थः =	पैसा, धन

संस्कृत–वाक्यानि

१. स बालः आनन्देन मोदकं खादति। २. पश्य, कथं स खादति। ३. हे सुवर्णकार ! मम बालकाय एकं भूषणं देहि। ४. वस्त्रकारः तस्मै पुरुषाय वस्त्रं करोति। ५. कः पुरुषः अर्थस्य दासः ? ६. कः नरः ईशस्य भक्तः ? ७. अहं अर्थस्य दासः न अस्मि, परन्तु ईश्वरस्य भक्तः अस्मि।

भाषा–वाक्य

१. वह बालक आनन्द से लड्डू खाता है। २. देख, वह कैसे खाता है ? ३. हे सुनार ! मेरे बालक के लिए एक आभूषण दे। ४. जुलाहा उस मनुष्य के लिए वस्त्र बनाता है। ५. कौन मनुष्य धन का दास है ? ६. कौन मनुष्य ईश्वर का भक्त है ? ७. मैं धन का दास नहीं हूँ, परन्तु ईश्वर का भक्त हूँ।

अब निम्नलिखित वाक्य पढ़िये–

संस्कृत–वाचन–पाठः।

तस्मै पुरुषाय मोदकं देहि। यदि स मनुष्यः इदानीं एव खादितुं न इच्छति तर्हि तस्मै न देहि। कः इदानीं मोदकं खादितुं इच्छति ? अहं मोदकं न खादितुं इच्छामि, परन्तु फलं भक्षयितुं इच्छामि। यथा त्वं इच्छसि तथा कुरु। यदि दुग्धं पातुं इच्छसि तर्हि गोदुग्धं एव पिब। यदि जलं पातुं इच्छसि तर्हि मम कूपस्य एव जलं पिब।

यदा स मनुष्यः कूपस्य समीपं गच्छति तदा त्वमपि तेन सह तत्र गच्छ। स तत्र कूपस्य समीपं गच्छति, परन्तु जलं न आनयति।

हे नर ! त्वं इदानीं वेदस्य पुस्तकं अत्र आनय। त्वं अपि मंत्रं पठ। त्वं वेदस्य मंत्रं जानासि किम् ? वेदस्य मंत्रः त्वया कदा पठितः ? केन सह पठितः ? कस्य पुत्रः त्वं असि ? कुत्र इदानीं पठसि ? किं पठसि। स उत्तमः मनुष्यः अस्ति। इदानीं उद्यानं प्रति गतः। मम गृहस्य समीपे एव उद्यानं अस्ति, तत्र एव सः गतः। पुष्पं आनेतुं स इच्छति। तत्र वृक्षे शोभनं पुष्पं भवति। कथं स पुष्पं आनयति ? तत्र वृक्षे शोभनं एकं अपि पुष्पं नास्ति।

सत्यस्य वचनं श्रेयः। धर्मस्य वचनं श्रेयः अस्ति वा न ? धर्मस्य वचनात् धर्मस्य आचरणं एव श्रेयः। सदा हितं वचनं एव वदेत्। एतत् मम सत्यं युक्तं च मतं अस्ति। यत् अत्यन्तं भूतहितं तत् एव सत्यं। इति सः वदति। सत्यं एव धर्मः। धर्मं एवं सत्यम्।

अहं मरणात् भीतः नास्मि ? मम यशः न दूषितं भवति ? सत्येन मम यशः शोभनं भवति।

तव पिता कुत्र अस्ति ? मम पिता अत्र नास्ति। किं करोमि ? कुत्र गच्छामि ? कुत्र गमनं इदानीं श्रेयः अस्ति ? वद, शीघ्रं वद।

यदा रामः अन्नं भक्षयति तदा त्वं अन्नं खाद। यथा वानरः वृक्षं आरोहति तथा त्वं अपि करोषि किम् ? यः पुरुषः अद्य तत्र गच्छति सः अद्य एव अत्र कथं भविष्यति ? कदा त्वं तेन सह तत्र गमिष्यसि ? अहं त्वया सह अद्य तत्र नैव गमिष्यामि। स कुत्र भोजनं करोति ?

□

अमृतवाणी

प्रस्तुति – डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।।

(हितोपदेश, १/८६)

दुष्ट व्यक्ति यदि विद्या से अलंकृत हो, तो भी उसका त्याग कर देना चाहिए। मणि से युक्त सर्प क्या अधिक भयंकर नहीं होता?

उपस्थिते विप्लव एव पुंसां समस्तभावः परिमीयतेऽतः।
अवाति वायौ न हि तूलराशेः गिरेः च कश्चित् प्रतिभाति भेदः।।

(भोजप्रबन्ध, १५५)

किसी मनुष्य के सभी भावों का ज्ञान तभी हो पाता है, जब वह व्यक्ति विपत्ति से ग्रस्त होता है। जब तक हवा नहीं चलती, तब तक रुई के ढेर और पर्वत में कोई भेद नहीं प्रतीत होता?

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।।

(किरातार्जुनीय, १/३३)

सफल क्रोध वाले (शक्तिशाली) व्यक्ति के वश में सभी प्राणी स्वयं ही हो जाते हैं। इसके विपरीत, असफल क्रोध वाला (शक्तिविहीन) व्यक्ति यदि दूसरों से मित्रता करता है, तो वे लोग उसका सम्मान नहीं करते और यदि वह व्यक्ति दूसरों से शत्रुता करता है, तो वे लोग उससे डरते नहीं हैं (तात्पर्य यह है कि शक्तिविहीन व्यक्ति संसार में केवल अपमान सहन करके ही जीवित रह सकता है। ऐसा व्यक्ति यदि सम्मानपूर्वक जीना चाहता है, तो उसका जीवित रहना लगभग असम्भव हो जाता है।)

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपाद प्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्।।

(नीतिशतक, ६५)

हाथ में प्रशंसनीय त्याग, शिर में गुरुजनों के चरणों में प्रणाम करने की प्रवृत्ति, मुख में सत्य वाणी, भुजाओं में विजय प्रदान करने वाला अतुलनीय पराक्रम, हृदय में स्वच्छ मनोवृत्ति, कानों में शास्त्रों का ज्ञान– ये सभी स्वभाव से महान् व्यक्तियों के धन निरपेक्ष अलंकरण हैं।

न भयं विद्यते राजन् भीतस्यानागते भये।
अभीतस्य च विश्रम्भात् सुमहज्जायते भयम्।।

(महाभारत, शान्तिपर्व, १३८/२१०)

जो व्यक्ति सम्भावित संकट के प्रति सचेत रहता है, संकट के न उपस्थित होने पर उसकी कोई हानि नहीं होती; किन्तु जो व्यक्ति सम्भावित संकट के प्रति सचेत नहीं रहता, संकट के उपस्थित हो जाने पर वह भारी विपत्ति में फँस जाता है।

वर्द्धमानमृणं तिष्ठेत् परिभूताश्च शत्रवः।
जनयन्ति भयं तीव्रं व्याधयश्चाप्युपेक्षिताः।।

(वही, १४०/५६)

न चुकाया जाने वाला ऋण, पराजित किये गये किन्तु जीवित बचे हुए शत्रु तथा उपेक्षित रोग आगे चलकर महान् भय उत्पन्न करते हैं।

☆

युवा साहित्यकार सम्मानित

भाउराव देवरस सेवा न्यास के तत्त्वावधान में पं० प्रताप नारायण मिश्र की स्मृति में पञ्चम युवा-साहित्यकार सम्मान समारोह का आयोजन गत १५ अक्टूबर ९९ को सरस्वती कुञ्ज निरालानगर स्थित माधव सभागार में किया गया।

उ०प्र० विधानसभा के अध्यक्ष श्री केशरी नाथ त्रिपाठी की अध्यक्षता में सम्पन्न इस समारोह में उ०प्र० के महामहिम राज्यपाल मा० सूरजभान जी ने मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित होकर ७ युवा साहित्यकारों को सम्मानित किया।

विविध विधाओं के लिए दिया जाने वाला यह सम्मान डॉ० ब्रजभूषण चतुर्वेदी 'दीपक' (मथुरा) को काव्य, डॉ० श्रीमती रश्मि कुमार (मीरजापुर) को कथा साहित्य, श्री विनोद मिश्र (लखनऊ) को नाटक, श्री नागेश पाण्डेय 'संजय' (शाहजहाँपुर) को बाल-सात्हिय, श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह (इलाहाबाद) को पत्रकारिता, डॉ० इन्द्र नील चटर्जी (लखनऊ) को बंगला तथा श्रीमती कमलेश (रायबरेली) को संस्कृत विधा में कार्य करने के लिए प्रदान किया गया। □

विज्ञान और शिल्प के संवर्द्धन में भारतीय ऋषियों का योगदान

- श्याम नारायण कपूर

विज्ञान के विकास में भारतीय ऋषियों का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। उनकी साधना केवल अध्यात्म और आत्म–चिन्तन तक सीमित नहीं थी। वैदिक काल से ही विज्ञान के विकास का श्रीगणेश होना पाया जाता है। वेदों में गणित, ज्योतिष, खगोल, आयुर्वेद, भौतिकी, कृषि, प्रभृति अनेक व्यावहारिक विज्ञानों के विकसित होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। सृष्टि–विद्या के जिन रहस्यों को वैदिक ऋषि उद्‌घाटित कर गये हैं, उनसे आज के श्रेष्ठतम भौतिक विज्ञानी भी आश्चर्यचकित हैं। जिन निष्कर्षों पर अकूत साधनों से सम्पन्न होते हुए और लगातार सैकड़ों वर्षों के क्रमबद्ध अनवरत प्रयासों से आधुनिक विज्ञान अब पहुँच पाया है, उन्हें भारतीय ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व कैसे ज्ञात कर लिया था, वे इन ऋषियों की अलौकिक प्रतिभा, तत्त्वज्ञान और दूरदर्शिता से विस्मित हैं।

विश्व–ब्रह्माण्ड–रचना

'भारतीय ज्योतिष' के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् लेखक नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण प्रभृति वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अब से कम से कम २८००० वर्ष पूर्व भारतीयों ने खगोल और ज्योतिष शास्त्र का मन्थन किया था। वे प्रकाश में चमकते हुए नक्षत्र पुंज, राशि पुंज, देवता पुंज, आकाश–गंगा और नीहारिका आदि के नाम रूप, रंग आकृति से पूर्णतया परिचित थे।

ऋग्वेद के मन्त्रों से यह ज्ञात होता है कि उस काल में ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक और द्यौ लोक की मान्यता हो चुकी थी। तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक मन्त्र से विश्व–ब्रह्माण्ड रचना के विषय में स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है–

'लोक अनन्त और अपार है। पृथ्वी के ऊपर अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष के ऊपर द्यौ है। सूर्य इस द्यौ लोक में भ्रमण करता है। अन्तरिक्ष में केवल वायु गमन करता है। मेघ, वायु और विद्युत् ये तीनों भी अन्तरिक्ष और द्यौ लोक के मध्य में हैं। सूर्य के ऊपर चन्द्रमा स्थित है। चन्द्रमा नक्षत्रों के मध्य भ्रमण करता है। सूर्य चन्द्र और नक्षत्रों का स्थान भी द्यौ लोक है।'

वास्तव में विज्ञान साधना में भारतीय महर्षि तत्कालीन विश्व के अन्य देशों से बहुत आगे रहे हैं। गणित, ज्योतिष, खगोल प्रभृति के अध्ययन और अन्वेषण द्वारा उन्होंने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये, उन्हीं के आधार पर आधुनिक विज्ञान प्रगति के पथ पर अग्रसर है। यह बात कि विज्ञान पाश्चात्य देशों की देन है, सत्य से सर्वथा परे, भ्रामक और निर्मूल है।

महर्षि अथर्वण

प्रस्तुत लघु निबन्ध में कतिपय भारतीय ऋषियों के सर्वथा मौलिक और महत्त्वपूर्ण योगदान की संक्षेप में चर्चा की जा रही है। इस क्रम में महर्षि अथर्वण का योगदान उल्लेखनीय है। चारों वेदों में से अथर्ववेद उनके नाम से ही जाना जाता है। उनके योगदान की महत्ता और उपयोगिता का आकलन केवल इस तथ्य से किया जा सकता है कि वे अग्नि के आविष्कारक हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न ऋषि थे। अग्नि के आविष्कार के साथ ही उन्होंने मानव–समाज की सेवा के लिए सभी को निरोग और स्वस्थ रखने के लिए जड़ी–बूटियों के गुणधर्म परख कर विभिन्न रोगों के शमन में उनको व्यवहार में लाने की विधि बतलायी। वास्तव में आयुर्वेद का मूल स्रोत अथर्ववेद ही है और इसीलिए उसे अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है। निश्चय ही इस कार्य को उनके बहुआयामी वैज्ञानिक शोध ही का सुफल कहा जायेगा।

मातृभूमि के तो वे अनन्य पुजारी ही थे। उन्होंने ही अपने 'पृथ्वी–सूक्त' में सर्वप्रथम घोषणा की थी 'माताभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः।' उन्होंने मातृभूमि की सम्पन्नता के लिए 'पृथ्वी–सूक्त' के साथ ही कृषि–सूक्त, गो–सूक्त, गोष्ठ–सूक्त और वर्षा–सूक्त की भी रचना की। देश की सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र के विवरण दिये हैं। अन्य तीन वेदों में केवल निश्रेयस् पर बल दिया गया है। अथर्वण ऋषि ने निश्रेयस् के साथ ही अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया है। इस प्रकार धर्म की परिभाषा– 'यतो निःश्रेयस् अभ्युदय स सिद्धिः स धर्मः' की कसौटी पर उनके वेद में वर्णित विशेष ऋचाएँ पूर्णतया धर्म के पालन का मार्ग प्रशस्त करती हैं। संक्षेप में उन्होंने मानव–समाज

के कल्याणार्थ और भी अनेक विज्ञान–सम्मत कार्य–कलापों का वर्णन और समीक्षा की है।

अथर्वण द्वारा अग्नि के आविष्कार के साथ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि ऋषि विश्वामित्र ने घर्षण से अग्नि उत्पन्न करनेवाला उपकरण सर्वप्रथम बनाया और इस प्रकार सर्वसाधारण के लिए अग्नि प्रज्वलित करना सुगम एवं सुविधाजनक कर दिया।

ऋषि गृत्समद

गणित को विज्ञान की समस्त शाखाओं में सर्वोपरि माना गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष में लिखा है कि जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ तथा सर्पों की मणियाँ सर्वोपरि शीर्ष स्थान पर स्थित होती हैं, उसी प्रकार सभी शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्द्धनि स्थितम्।।

वेदाङ्ग ज्योतिष–४

वास्तव में ज्योतिष–शास्त्र में अर्थ, धर्म और काम, नृत्य, नाट्य, संगीत, चिकित्सा, पाक–शास्त्र, वास्तुकला अथवा विज्ञान की अन्य कोई भी शाखा हो, गणित के बिना किसी का काम नहीं चल सकता।

वैदिक काल में भारतीयों की विश्व को सबसे बड़ी देन गणित और उसकी संख्याओं का आविष्कार तथा दाशमिक प्रणाली है। दाशमिक प्रणाली में भी सबसे अधिक 'शून्य' का महत्त्व है। 'शून्य' के बिना विज्ञान की आज जो प्रगति हो रही है, उसकी कल्पना भी नितान्त असम्भव है। इस शून्य का आविष्कार भारतीय ऋषि गृत्समद ने किया। शून्य का आविष्कार इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसकी प्रशंसा में जितना भी कहा जाये, कम है।

ऋषि मेधातिथि

गणित में अंकगणित की दाशमिक स्थान मान अंक–पद्धति और दशमलव पद्धति का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक से लेकर शत, सहस्त्र, लक्ष और कोटि तक की संख्याओं के जो नाम वैदिक काल में प्रचलित थे, वही नाम आज तक चले आ रहे हैं। संख्याओं को दस के गुणकों में अंकित करने का श्रेय वैदिक ऋषि मेधातिथि को है। यजुर्वेद में मेधातिथि के नाम से एक मन्त्र में एक से लेकर परार्द्ध तक की संख्याएँ गिनायी गयी हैं।

यह संख्या $१०^{१२}$ के बराबर है। इन संख्याओं का क्रम इस प्रकार दिया हुआ है– एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त और परार्द्ध। सभी संख्याएँ दस के गुणकों से बढ़ती गयी हैं।

यजुर्वेद के एक मन्त्र में असंख्य सहस्र का भी उल्लेख है। इन बड़ी संख्याओं को सुव्यवस्थित करने का श्रेय मेधातिथि को दिया जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक मन्त्र मेधातिथि के नाम से दिये गये हैं। उनकी गणना वैदिक काल के प्रमुख ऋषियों में की जाती है।

ऋषि बोधायन

गिनती के समान ज्यामिति अर्थात् रेखागणित भी गणित का एक आधारभूत अंग है। ज्यामिति का आविष्कार भी भारत में यज्ञ–वेदियों के लिए वैदिक काल में ही हुआ था। ऋषि बोधायन ज्यामिति के आदि प्रवर्त्तक हैं। वैदिक काल में विविध प्रकार के अनेक यज्ञ सम्पन्न होते थे। इनके लिए वेदियाँ भी कई प्रकार की बनती थीं। वेदियाँ ज्यामितीय आकार की होती थीं। यज्ञों के अनुसार इन वेदियों को सानुपातिक रूप से छोटा–बड़ा भी बनाया जाता था। वेदियाँ बनाने की इस प्रक्रिया से ज्यामिति का विकास हुआ। रेखागणित की सही–सही जानकारी कराने के लिए शुल्व–सूत्रों की रचना की गयी। इन सूत्रों में वैदिक यज्ञों में बनायी जानेवाली विविध प्रकार की वेदियों की रचना–प्रक्रिया की विधिवत् समीक्षा की गयी है। शुल्व–सूत्रों की रचना के लिए सात सूत्रकारों के नाम प्रसिद्ध हैं– बोधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, मैत्रायण, वाराह और हिरण्यकेशी।

बोधायन प्राचीनतम सूत्रकार माने जाते हैं। उनके सूत्रों में यह कहीं उल्लेख नहीं है कि रेखागणित के सिद्धान्त और नियमों की रचना सर्वप्रथम बोधायन ने की। वास्तव में यज्ञ–वेदियों की रचना–प्रक्रिया में प्रचलित नियमों और सिद्धान्तों को बोधायन ने सर्वप्रथम अपने सूत्रों में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया।

रेखागणित की पाठ्यपुस्तकों में पाइथागोरस के नाम से जो प्रमेय प्रसिद्ध है– समकोण त्रिभुज के कर्ण पर निर्मित वर्ग, समकोण की दो भुजाओं पर निर्मित वर्गों के योग के बराबर होता है। पाइथागोरस के हजार–डेढ़ हजार वर्ष पूर्व ही यह प्रमेय बोधायन को ज्ञात था। शतपथ ब्राह्मण में भी इस प्रमेय के विषय में नियम दिया हुआ है। खेद है कि स्वतन्त्रता के पचास वर्ष बाद भी इस प्रमेय का पाठ पढ़ाते समय बोधायन का नाम तक नहीं लिया जाता। यह मानसिक दासता कब तक चलेगी!

बोधायन ने अपने शुल्व–सूत्रों में दो वर्गों के जोड़ या अन्तर के बराबर का वर्ग बनाने की भी विधि दी है। उन्होंने २ के वर्गमूल अर्थात् $\sqrt{2}$ का पाँच दशमलव स्थान तक मान भी ज्ञात किया था। एक आकृति के समान अन्य

आकृतियाँ बनाने की भी विधियाँ बतलायी हैं। दूसरे सूत्रकारों ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया।

गर्ग मुनि और लगध

भारत में गणित के समान ज्योतिष और खगोल विज्ञान का उद्भव और विकास वैदिक काल में ही हुआ। उस समय यज्ञों का विशेष महत्त्व और प्रचलन था। यज्ञों को सही समय पर सम्पन्न करने, खगोलीय नक्षत्रों की अनुकूलता के ज्ञान के लिए ज्योतिष का विकास हुआ। वैदिक वाङ्मय में ज्योतिष को विशेष महत्त्व दिया गया है। वेदों के ६ अंगों– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त और छन्द-शास्त्र के साथ ज्योतिष भी एक अंग है, जिसे वेदाङ्ग–ज्योतिष के नाम से जाना जाता है। ज्योतिष के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए उसे वेद–पुराण का नेत्र माना गया है। इस कारण वेद के अन्य पाँच अंगों की तुलना में ज्योतिष को श्रेष्ठ माना गया है।

ज्योतिष और खगोल के आधारभूत सिद्धान्त प्रतिपादित करने और गगन–मण्डल स्थित नक्षत्रों की विविध जानकारी प्राप्त कर उसे प्रस्तुत करने का श्रेय 'गर्गमुनि' और 'लगध' को दिया जाता है। अथर्ववेद के कुछ सूक्तों के अनुसार गगनमण्डल के नक्षत्र पुंजों की पहचान और गणना सर्वप्रथम गर्गमुनि ने की। सूर्य और चन्द्रमा के परिभ्रमण–मार्ग राशि–चक्र को नक्षत्रों की सहायता से २८ मार्गों में विभक्त किया। चन्द्रमा को आकाश मण्डल का एक चक्कर पूरा करने में २७ दिन ८ घण्टे और २१ मिनट लगते हैं। नक्षत्र पुंजों के आकार के अनुसार उनका नामकरण किया गया। ये २७ नक्षत्र हैं– अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती। अथर्ववेद के अतिरिक्त मैत्रायणी संहिता में भी २८ नक्षत्रों की गणना है। तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में २७ नक्षत्र बतलाये गये हैं। सम्भवतः राशिचक्र के विभाजन और गणना की सुविधा के लिए एक नक्षत्र अभिजित् को छोड़ दिया गया है। वैसे भी अभिजित् नक्षत्र अन्य नक्षत्रों की तुलना में बहुत दूरी पर स्थित है। वैदिक काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से होती थी। आजकल अश्विनी से आरम्भ होकर रेवती पर समाप्त होती है। समस्त नक्षत्र–मण्डल या राशिचक्र को १२ राशियों में विभक्त किया गया है। उनकी आकृति के अनुसार उनके नाम भी दिये गये– मेष (मेढ़ा–सा आकार), वृष (बैल की आकृति), मिथुन (स्त्री–पुरुष का जोड़ा), कर्क (केंकड़ा), सिंह, कन्यां, तुला (तराजू), वृश्चिक (बिच्छू), धनु (धनुष–बाण), मकर (घड़ियाल), कुम्भ (घड़ा) और मीन (मछली)। वेदों में राशियों के नाम तो नहीं मिलते; परन्तु राशि–चक्र के १२ भागों और नक्षत्रों की आकृतियों के वर्णन हैं।

गर्ग मुनि का निश्चित समय तो नहीं ज्ञात, परन्तु भागवत आदि ग्रन्थों में उल्लेख है कि उन्होंने श्रीकृष्ण के जन्म के समय नक्षत्रों की स्थिति बतलायी थी और अर्जुन के ज्योतिषी भी थे। गर्ग मुनि द्वारा रचित ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ–मूल 'गर्ग संहिता' अब अप्राप्य है। वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में इसका उल्लेख किया है।

...भूख उग आई है

–रामानुज त्रिपाठी

लेकर नई–नई स्फुरण की उम्मीदें,
बंजर खेतों में भूख उग आई है।
एक अकथ कथा हुई
रोटियों की खेती है,
प्रश्नचिह्नों से जो
पेट भर देती है;
गागर के हिस्से में तलछट का पानी है,
एक अदद प्यास हर कण्ठ में समाई है।
नियति में जब ऐसा है
फिर कैसा रोना है,
लाद कर गर्दन पर
अन्धकार ढोना है;
नैतिक–मूल्यों का सपना अधूरा है
संहिता में जब तक न आखर अढ़ाई है।
यों तो बहारों की
निकल पड़ी झाँकी है,
और अभी खुशबू की
अमर कथा बाकी है;
बच न सके वञ्चना से हँसते गुलाब किन्तु
लुट गई हरीतिमा, हर कली मुरझाई है।

–ग्राम/पोस्ट– गरयें, सुलतानपुर–२२७३०४(उ०प्र०)

लगध का 'वेदाङ्ग ज्योतिष' आज भी बहुत प्रसिद्ध है। 'वेदाङ्ग ज्योतिष' के रचयिता लगध पहले भारतीय थे, जिन्होंने अपने समय में उपलब्ध ज्योतिष और खगोल सम्बन्धी समस्त ज्ञान को सुव्यवस्थित रूप दिया और उसका संवर्द्धन भी किया। उस समय ज्योतिष का ज्ञान यज्ञों और अन्य धार्मिक कृत्यों को विधिपूर्वक उचित समय पर सम्पन्न करने के साथ ही वेदों के गूढ़ार्थ समझने के लिए भी उपयोगी माना जाता था। वैसे वेदाङ्ग ज्योतिष की रचना का मुख्य उद्देश्य यज्ञ–यागादि के लिए समय निर्धारित करना था। अतएव उसमें ज्योतिष सम्बन्धी तत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन नहीं है, जो बाद के ग्रन्थों में उपलब्ध है। एक प्रकार से इसे ज्योतिष का आरम्भिक ग्रन्थ भी कहा जा सकता है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। इसमें केवल ४४ श्लोक मिलते हैं। 'वेदाङ्ग–ज्योतिष' काल में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की गति के आधार पर तिथि, पक्ष, मास, अयन और वर्ष की जो व्यवस्था की गयी, उसके हजारों वर्ष के चलते रहने के बाद भी ऋतु परिवर्त्तन में कोई अन्तर नहीं पड़ा; जबकि मुस्लिम देशों और पाश्चात्य देशों में कालक्रम की कोई ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था नहीं है।

महर्षि अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य भी ऋषि भरद्वाज और भगवान् राम के ही समकालीन हैं। इनकी जन्म–कथा भी बड़ी अलौकिक और विस्मयपूर्ण है। पुराणों में उल्लेख है कि मित्र और वरुण इन दो देवताओं का अमोघ तेज एक यज्ञीय कलश में पुंजीभूत हुआ और उसके मध्य भाग से ऋषि अगस्त्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसी से वे 'मित्रावरुणनन्दन' और 'कुम्भज' के नाम से भी प्रख्यात हैं। वे बहुमुखी, प्रतिभा–सम्पन्न मनीषी थे। उनके शौर्य, समुद्र यात्राओं, राष्ट्रीय उदात्त भावनाओं, अप्रतिम ज्ञान गरिमा के विषय में वेदों और पुराणों में विशेष रूप से चर्चा की गयी है। उन्होंने कालेय दैत्यों का विनाश किया, समुद्रीय दस्युओं का दमन किया, भारत से दक्षिण ध्रुव तक की समुद्री यात्राओं को निरापद किया। उनकी यात्राओं के महत्त्व के कारण ही दक्षिणी ध्रुव 'अगस्त्य' के नाम से भी जाना जाने लगा था। विन्ध्य के दक्षिण में आसुरी शक्तियों का दमन कर उत्तर और दक्षिण भारत को एक राष्ट्र का स्वरूप प्रदान किया। उत्तर भारत से दक्षिण भारत में निवास कर उन्होंने समस्त देश में वैदिक साहित्य और संस्कृति का वर्चस्व स्थापित किया। वैदिक ऋचाओं के अतिरिक्त उनकी 'अगस्त्य गीता' और 'अगस्त्य–संहिता' विशेष उल्लेखनीय हैं। गीता नाम के अनुसार आध्यात्मिक ग्रन्थ है। 'अगस्त्य संहिता' अपने वर्ण्य–विषय के अनुसार उच्चकोटि का वैज्ञानिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें एक प्रयोग द्वारा विद्युत्–धारा द्वारा जल के दो अवयवों– प्राणवायु और अपान वायु (आधुनिक ऑक्सीजन और हाईड्रोजन) को स्वतन्त्र कर अपान वायु को आकाश–संचरित गुब्बारों में काम में लाये जाने का उल्लेख है। साथ ही यह भी रोचक तथ्य है कि दोनों विद्युत् धाराओं का नाम भी महर्षि के 'मित्रावरुणनन्दन' के नाम के अनुसार 'मित्र' और 'वरुण' ही किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि उस अति प्राचीन काल में जल की यौगिक प्रकृति की जानकारी थी और उसके अवयवों के गुण–धर्म भी ज्ञात थे अर्थात् रसायन विज्ञान भी विकसित हो चुका था।

भरद्वाज और आयुर्वेद

प्राचीन ऋषि जनकल्याण के कार्यों के लिए सतत सचेष्ट और सक्रिय रहते थे। उदाहरण स्वरूप उनके द्वारा आयुर्वेद का प्रवर्त्तन। आयुर्वेद का अर्थ है आयु–शास्त्र। इसके नाम से ही इसका वेदों के समान महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। भारतीय आयुर्वेद केवल चिकित्सा तक ही सीमित नहीं है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें स्वस्थ जीवन–यापन के लिए आवश्यक अध्यात्म और दर्शन के भी सिद्धान्त समाहित हैं। वैसे यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि आयुर्वेद–चिकित्सा–पद्धति भारत ही नहीं, विश्व में सबसे प्राचीन व साइड इफेक्ट रहित निर्दोष है। इसकी रोगशामक औषधियों से किसी प्रकार का दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट) नहीं होता, अतः वे पूर्णतया निर्दोष मानी जाती हैं। चिकित्सा–शास्त्र का मूल अथर्ववेद को माना जाता है। इसमें रोग–निवारण के लिए अनेक प्रकार के भेषजों के गुणों और उनकी उपयोगिता के वर्णन मिलते हैं। शरीर–विज्ञान और चिकित्सा विषयक महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त अश्विनीकुमारों और धन्वन्तरि के चिकित्सा–विज्ञान के उद्भव और विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान हैं।

महर्षि भारद्वाज के प्रयत्नों से यह चिकित्सा–पद्धति सर्वसाधारण के लिए सुलभ हुई। आयुर्वेद के उपलब्ध ग्रन्थों में 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' प्राचीनतम माने जाते हैं। 'चरक संहिता' के सूत्र स्थान में आयुर्वेद के प्रवर्त्तन के विषय में बतलाया गया है कि जिस समय संयम–नियम से रहते हुए तपस्या, उपवास, ब्रह्मचर्य–व्रत प्रभृति अच्छे–अच्छे कार्यों में जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियों को भी रोग उत्पन्न होने लगे, तब तत्कालीन ऋषि मुनि इस समस्या पर विचार करने के लिए हिमालय पर्वत के समीप एक सुरम्य स्थान पर एकत्र हुए। इसे इस

प्रकार समझिये कि मानव जीवन सम्बन्धी अति गम्भीर समस्या पर विचार करने के लिए विद्वत्–सम्मेलन आयोजित किया गया। इसमें अंगिरा, जमदग्नि, वसिष्ठ, भृगु, आत्रेय, गौतम, नारद, अगस्त्य मार्कण्डेय, विश्वामित्र, बादरायण, शौनक, हारीत, भरद्वाज तथा और भी अनेक ऋषियों ने विचार–विमर्श किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सभी पुरुषार्थों की साधना स्वस्थ और निरोग शरीर से ही हो सकती है और इसमें रोग बाधक है। रोगों का शमन करने के लिए क्या उपाय किया जाय, भरद्वाज ऋषि को यह कार्य सौंपा गया।

भरद्वाज ने इन्द्र से मिलकर रोगशमन के उपाय ज्ञात किये और उन्हें उपर्युक्त गोष्ठी में भाग लेने वाले कई ऋषियों को बतलाया। पुनर्वसु आत्रेय के ६ शिष्यों को विशेष रूप से शिक्षित किया। इन शिष्यों में अग्निवेश को अपनी प्रतिभा और कुशाग्र–बुद्धि से आयुर्वेद–शास्त्र की रचना में विशेष सफलता प्राप्त हुई। **अग्निवेश द्वारा प्रस्तुत शास्त्र को चरक ने पुनः सम्पादित कर 'चरक संहिता' की रचना की।** इसे सभी ऋषियों को पढ़कर सुनाया गया और उनकी स्वीकृति के बाद चिकित्सा के लिए इसे मान्यता प्राप्त हुई। इस प्रकार प्रमुख ऋषियों की प्रेरणा से रोगशमन के लिए भरद्वाज ऋषि द्वारा प्रस्तुत ज्ञान परम्परागत रूप से 'चरक संहिता' के माध्यम से आज भी प्रचलित और लोकप्रिय है।

भरद्वाज और विमान विद्या

भरद्वाज ऋषि द्वारा आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के प्रवर्तन के साथ ही विमान और वैमानिकी विज्ञान के संवर्द्धन में भी उनका योगदान बहुत विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने 'यन्त्र सर्वस्व' नामक ग्रन्थ की रचना की थी और 'वैमानिक प्रकरण' इसका एक भाग माना है। यह प्रकरण 'बृहत् विमान शास्त्र' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

इस ग्रन्थ में विमान निर्माण, संचालन और संचालन के लिए प्रयुक्त विभिन्न साधनों का विस्तार से वर्णन हैं। विमान निर्माण में काम आनेवाली सामग्री विशेष रूप से विभिन्न प्रकार की जिन मिश्रित धातुओं के वर्णन हैं, आधुनिक वैज्ञानिक भी उससे आश्चर्यचकित हैं। उनमें से अनेक तो अभी तक वैज्ञानिकों को अज्ञात ही थीं। विमान–शास्त्र में वर्णित मिश्रित धातुओं (Alloys) की अपनी–अपनी विशिष्टताएँ हैं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं– तमोगर्भ लौह, पंच लौह, चपलग्राहक लौह, क्षीर लौह, विद्युत् दर्पण आदि। एक ऐसी ही मिश्रित धातु का उल्लेख है, जिस पर नमक के घोल में पड़े रहने पर

तन पुलकित, मन ज्योतित होगा

–महेश शुक्ल

जग का अंधकार हरने को,
मन का कलुष भाव हरने को,
आओ! चल कर दीप जलायें।
अन्धकार डर कर भागेगा,
सोया भाग्य स्वयं जागेगा,
साहस लगन और श्रम बल से–
घर पुलकित, आँगन नाचेगा।
पूजा घर, घर के कोने में,
तुलसी चौरे के कोने में,
आओ! हँस कर दीप जलायें।
तन पुलकित, मन ज्योतित होगा,
पूजन में सब अर्पित होगा।
रोली, कुंकुम, अक्षत देखो–
श्रद्धा सहित समर्पित होगा।
जीवन के गत औ' आगत में,
दीपमालिका के स्वागत में।
आओ! मिलकर दीप जलायें।

– हरगाँव, सीतापुर (उ०प्र०)

भी जंग नहीं लगती। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सन्दर्भ से ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन काल में सोना–चाँदी के अतिरिक्त जिन अन्य धातुओं की जानकारी थी, उन सब का संज्ञान लौह रूप से किया जाता था और ताँबा, राँगा, सीसा, जस्ता तथा श्याम अयस्क आदि लौह के भेद माने जाते थे।

कई वर्ष पूर्व संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री सुब्रह्मण्य अय्यर को संस्कृत के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रान्त के ग्रामीण अंचल में भोजपत्रों पर लिखा एक ग्रन्थ प्राप्त हुआ था। ग्रन्थ का अध्ययन करके और उसमें वर्णित विषय को बड़े परिश्रम के बाद वे समझ पाये। उसमें कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनाने की विधियाँ बतलायी गयी थीं। विशेष खोजबीन के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्राप्त ग्रन्थ भरद्वाज ऋषि के 'विमान प्रकरण' का ही अंश है। भारत सरकार

के नेशनल इनफारमेशन विभाग के तकनीकी अधिकारी श्री सी०एस०आर० प्रभु को भोजपत्रों में वर्णित विधियों के आधार पर इनमें से कुछ को बनाने में सफलता भी प्राप्त हुई। इनको परीक्षण में विमान निर्माण के लिए उपयोगी पाया गया। इस प्रकार प्राचीन भारतीयों के उत्कृष्ट तकनीकी ज्ञान की पुष्टि होती है। इन विधियों पर भारत में ही नहीं, अब केलीफोर्निया के एक विश्वविद्यालय में भी परीक्षण कार्य चल रहा है।

महर्षि पतञ्जलि

खनिजों से धातु प्राप्त करना, उनका शोधन करना, विविध धातुओं की पहचान और उनकी उपयोगिता वैदिक काल में ही ज्ञात हो गयी थी। शुक्ल यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र से विभिन्न धातुओं की जानकारी होने की पुष्टि होती है–

हिरण्यंच मे, अयस्यं च मे, श्यामंच मे, लौहंच मे।
सीसंच मे, त्रपुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

महाभाष्यकार पतञ्जलि बहुमुखी प्रतिमा–सम्पन्न थे। वे प्रसिद्ध दार्शनिक और व्याकरणाचार्य होने के साथ ही उच्चकोटि के वैज्ञानिक भी थे। उन्हें शेष का अवतार माना जाता है।

धातुओं की तैयारी एवं शोधन की विधियाँ महर्षि पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ 'लौहशास्त्र' में विस्तार से बतायी हैं। इसके साथ ही इस ग्रन्थ में इन धातुओं के मिश्रण (Alloys), लवण और अम्ल बनाने की प्रक्रिया भी वर्णित है। यह लौहशास्त्र ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। प्राचीन चिकित्सा एवं रसायन सम्बन्धी ग्रन्थों में यत्र–तत्र इसके उद्धरण अवश्य मिलते हैं, जिनसे इस ग्रन्थ का महत्त्व उजागर होता है। पतञ्जलि के अतिरिक्त नागार्जुन के भी लौहशास्त्र का उल्लेख है। नागार्जुन का ग्रन्थ सम्भवतः पतञ्जलि के पूर्व का है। पतञ्जलि के लौहशास्त्र में लोहे की शुद्धता के लिए अधिक परिष्कृत विधि बतलायी गयी है। शरीर और आचरण की शुद्धता के समान ही ऋषि वर्ग धातुओं को भी पूर्णतया शुद्ध बनाने के लिए सचेष्ट थे। सोना–चाँदी के साथ ही वे शत–प्रतिशत शुद्ध ताम्र बनाने में भी सफल हुए थे। भारतीय लोहा विदेशों में भी प्रशंसित था। बतलाया जाता है कि दमिश्क की सुप्रसिद्ध तलवारें भारतीय इस्पात से ही बनायी जाती थीं। इस हेतु पतञ्जलि मुनि के लौह–शास्त्र के अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये थे, जैसे वसिष्ठ ऋषि के लौहशास्त्र, लौहकल्पतरु, नामार्थकल्प ग्रन्थ, परिभाषा चन्द्रिका, संस्कार–दर्पण ग्रन्थों में खनिज और लौह को शुद्ध करने की प्रक्रिया विस्तार से वर्णित है। भरद्वाज ऋषि के 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ के विमान–प्रकरण में लौहाधिकरण प्रसंग में विमान–निर्माण के लिए सोलह प्रकार के भारहीन हल्के लोहे बतलाये गये हैं– 'विमानार्हाणि लोहानि भारहीनानि षोडशः'। यह सभी ग्रन्थ दुर्लभ और अप्राप्य हैं। सभी संस्कृत में रचे गये हैं। सुलभ भी हो जायें, तो इनमें वर्णित विषय के जानकार और समझनेवाले संस्कृत विद्वान् तो निश्चय ही दुर्लभ और अलभ्य हैं और इस विषय के विशेषज्ञ संस्कृत भाषा के ज्ञान से वंचित होने के कारण इन उपयोगी तकनीकी सद्ग्रन्थों का लाभ उठाने में असमर्थ और अक्षम।

कपिल और कणाद

भारतीय मनीषियों ने भौतिक जगत् के समस्त पदार्थों में जड़ और चेतन में– ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया। उनके अनुसार चाहे पर्वत का शिलाखण्ड हो, खनिज या काष्ठ वनस्पति हो या जीव–जन्तु मानव हो या पशु–पक्षी सभी में ईश्वर की चेतन–शक्ति व्याप्त है, कुछ में सुषुप्त कुछ में आंशिक रूप से व्यक्त और कुछ में अधिक व्यक्त और जाग्रत्। इस मूल तत्त्व की समस्या पर चिन्तन–मनन करने वाले ऋषियों में महर्षि कपिल और कणाद ऋषि का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। कपिल मुनि का सांख्य दर्शन सबसे पुराना माना जाता है। इस दर्शन में भौतिक जगत् का मूल कारण प्रकृति को माना गया है। प्रकृति को ही मूल भौतिक–तत्त्व का नाम दिया गया है। इस मूल तत्त्व के तीन अंग व अवयव माने गये हैं। इन्हें गुण की संज्ञा दी गयी है। ये तीन गुण हैं– 'सत्व', 'रज', और 'तमस्'। 'सत्व' मूल तत्त्व का वह अवयव या गुण है जिसमें बुद्धि की क्षमता निहित है, रजस् में गति, ऊर्जा अथवा कर्म करने की शक्ति और तमस् में भार अथवा जड़ता की अभिव्यक्ति होती है। विश्व की सभी वस्तुएँ इन तीन गुणों से मिलकर बनी हैं। विभिन्न वस्तुओं में यह गुण विभिन्न अनुपातों में न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इन गुणों में अतिसूक्ष्म पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। ये तन्मात्राएँ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध हैं। इन पाँच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज अप् (जल) और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार संसार के सभी पदार्थों में एक ही सत्ता विभिन्न अनुपातों और रूपों में विद्यमान है। इसी सत्ता को ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है।

सृष्टि की उत्पत्ति और विकास की इस व्याख्या के साथ ही सांख्य दर्शन ऊर्जा–शक्ति (Energy) के स्थायित्व (Conservation) उसके रूपान्तरण (Transformation) और परिवर्तन की क्षमता तथा छितराव–अपव्यय अथवा

(शेष पृष्ठ ६६ पर)

हिन्दू होने का अर्थ यह भी है कि अन्याय को नहीं सहना

गत २५ सितम्बर को नई दिल्ली में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यालय केशव कुञ्ज में आयोजित एक भव्य कार्यक्रम में प० पूज्य श्री रज्जू भैया के करकमलों द्वारा अन्तरताने पर 'पाञ्चजन्य' के अन्तःक्षेत्र का उद्घाटन हुआ। इसी अवसर पर विश्व की प्रथम अन्तरिक्ष शाखा का श्रीगणेश करते हुए श्री रज्जू भैया ने विश्वभर में अन्तरताने पर उपस्थित स्वयंसेवकों को सन्देश दिया। यहाँ प्रस्तुत है उनका सन्देश–

स्वर्गीय पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के ८३वें जन्म दिवस (२५ सितम्बर, ९९) पर 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक के अन्तरताने से जुड़ जाने पर पाञ्चजन्य तथा उसके पाठकों को हार्दिक बधाई। अपने सुलझे हुए विचार और प्रखर राष्ट्रीयता के कारण आज पाञ्चजन्य भारत का प्रमुख साप्ताहिक बन गया है। देश में तो इसके पाठकों की संख्या एक लाख पार कर चुकी है, पर विदेश में इसके मिलने में विलम्ब और कठिनाई होती थी। अन्तरताने से जुड़ जाने के कारण भारतवर्ष के पाठकों के साथ-साथ ही अब विदेश के पाठकों को भी इसे शीघ्र पढ़ने का मौका मिल जायेगा।

आज सूचना प्रौद्योगिकी में इतने नवीन परिवर्तन आये हैं कि समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना बहुत सरल हो गया है। इसका लाभ उठाते हुए पाञ्चजन्य के सम्पादक और व्यवस्थापकों ने यह क़दम आगे बढ़ाया है। अद्यतन तकनीक का उपयोग करना किसी भी देश की उन्नति में प्रमुख स्थान रखता है। इस कार्य के लिए पाञ्चजन्य बधाई का पात्र है।

यह भी प्रसन्नता की बात है कि इस अवसर पर हिन्दुत्वनिष्ठ व्यक्तियों तथा स्वयंसेवकों द्वारा विश्वव्यापी सान्घिक एकत्रीकरण का आयोजन हो रहा है, जिसे नई सूचना प्रौद्योगिकी की शब्दावली के अनुसार 'साइबर शाखा' या अन्तरिक्ष शाखा का नाम दिया गया है। विश्व में नई प्रौद्योगिकी के विकास और नये–नये क्षेत्रों का अन्वेषण करने में युवा और प्रतिभाशाली हिन्दू वैज्ञानिकों ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। आज दुनिया में उनकी बहुत प्रतिष्ठा है। माइक्रोसोफ्ट, इंटेल जैसी बड़ी संगणक कम्पनियों में उनका योगदान सराहा जा रहा है। भारत के बंगलौर और दिल्ली जैसे क्षेत्र संगणक लघुवर और गुरुवर (कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा साफ्टवेयर) के क्षेत्र में अपनी उत्कृष्टता के कारण मान्यता प्राप्त कर रहे हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हिन्दू समाज अपनी प्रतिभा, योग्यता, निपुणता, वीरता और पराक्रम में विश्व में किसी से पीछे नहीं है। आज अन्तरिक्ष शाखा में सम्मिलित सभी स्वयंसेवकों को मैं बधाई देता हूँ कि न केवल उन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों में अपनी योग्यता का सिक्का जमाया है; बल्कि अपनी पुण्य–भूमि से हजारों मील दूर भौतिकवाद के वातावरण में रहते हुए भी उन्होंने अपने हिन्दू जीवन मूल्यों, धर्म, संस्कृति, भाषा और विचारों को सुरक्षित रखने में एकजुटता दिखायी है तथा नई सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग विश्व भर के हिन्दुओं को संगठित करने हेतु
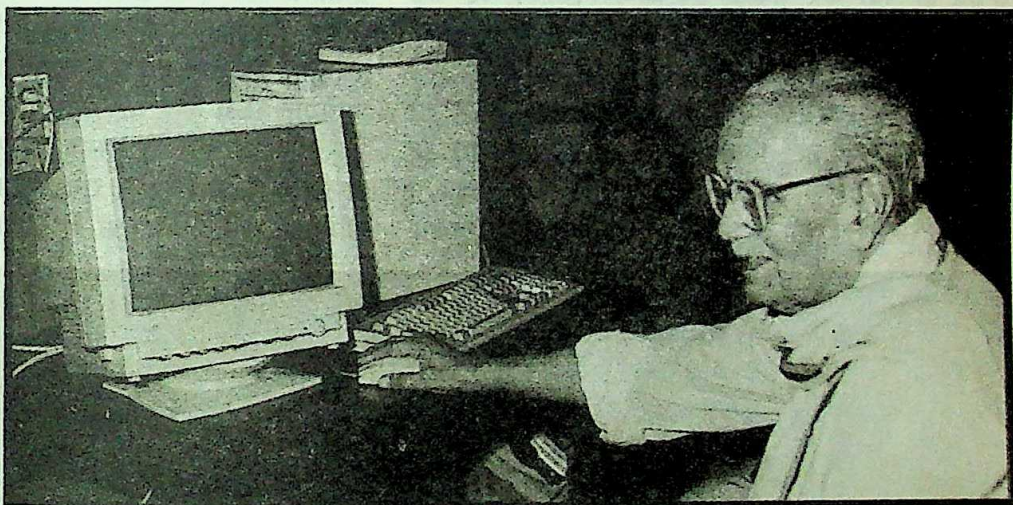
संगणक का बटन दबाकर अन्तरताने पर पाञ्चजन्य के अन्तःक्षेत्र का उद्घाटन करते हुए रज्जू भैया

किया है। यह बहुत बड़ा काम है। दुनिया में उस समाज का कोई सम्मान नहीं होता, जो जड़हीन और असंगठित होता है। उसी समाज की प्रतिष्ठा होती है, जिसकी अपनी एक विशिष्ट धार्मिक, सांस्कृतिक पहचान होती है और जो संगठित होता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक परम पूज्य डॉक्टर हेडगेवार ने भी यही मूल–मन्त्र हम सबको दिया है कि हिन्दू संगठन ही विश्व की समस्याओं का समाधान करने में सफल होगा। आज हम देख भी रहे हैं कि विश्व में इस्लामी कट्टरवाद, आतंकवाद, उपभोक्तावाद तथा प्रकृति के निर्मम विनाश की समस्याएँ गहराती जा रही हैं। इन समस्याओं की जड़ में संकीर्ण, स्वार्थी एवं अमानवीय विचारधाराएँ काम कर रही हैं। जो विचारधारा प्रकृति को निष्प्राण मानकर उसके संहार की अनुमति दे अथवा उस पर विजय प्राप्त करने का आह्वान करे अथवा जो विचारधारा यह कहे कि केवल और केवल उसी के मार्ग का अनुगामी होकर ईश्वर– प्राप्ति हो सकती है तथा शेष अन्य सभी नरक में जायेंगे, वह विश्व में शान्ति नहीं, तनाव ही पैदा कर सकती है। आज विश्व में यह बात समझायी जाने की आवश्यकता है कि चराचर जगत्, जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी और प्रकृति सभी शामिल हैं, की रक्षा हिंसा अथवा एक–दूसरे पर विजय प्राप्त करने की लालसा से नहीं हो सकती। इस मार्ग पर चलकर तो विश्व का सामूहिक संहार हो सकता है। हम विश्व में सुखी और सम्पन्न तभी रह सकते हैं, जब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वधर्म समभाव' वाली दृष्टि से विचार और कार्य किया जाये। यह हिन्दू–जीवन–दृष्टि है, जो यह मानती है कि कोई किसी भी मार्ग का अवलम्बन करे, उसे ईश्वर की प्राप्ति होगी। प्रकृति का संरक्षण, धरती को माँ के रूप में पूजना, उसका शोषण रोकना तथा अपनी बात प्रेम और शान्ति के साथ विश्व समुदाय में पहुँचाना, यह हिन्दू धर्म का वैशिष्ट्य है। यह हमारी पूँजी है और इसी के बल पर हमारी साख है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम विश्व–मैत्री, शान्ति, सद्भाव और सह–अस्तित्व की बात करते रहें और दूसरे हमारे इन गुणों का दुरुपयोग करते हुए हम पर प्रहार करें; आघात करें, तो भी हम चुपचाप सहते जाएँ। हिन्दू होने का अर्थ यह भी है कि अन्याय को कभी नहीं सहना, अत्याचार और बर्बरता को रोकना। वीरता और पराक्रम में भी हिन्दू समाज कभी किसी से पीछे नहीं रहा और सम्पूर्ण विश्व में उसके शौर्य का डंका बजा है। ग्लोबल हिन्दू इलेक्ट्रानिक नेटवर्क्स के कार्यकर्ताओं ने अन्तरताने पर अपनी एक प्रभावशाली और अच्छी छवि स्थापित की है तथा अन्तरताने के माध्यम से उन्होंने फिल्मों तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में हिन्दू जीवन मूल्यों और संस्कृति पर होने वाले आघातों के विरुद्ध सफलतापूर्वक अभियान छेड़ा और यह जता दिया कि दुनिया का हिन्दू किसी गलत बात के सामने न झुका है, न डरा है। इन सफलताओं के लिए मैं उन सबका अभिनन्दन करता हूँ और इस अन्तरिक्ष शाखा के माध्यम से सभी कार्यकर्ताओं का आह्वान करता हूँ कि वे विश्व में एक श्रेष्ठ, उदात्त एवं वीर हिन्दू समाज की रचना में सहायक हों। आप सब अपने–अपने देशों के विकास के लिए प्राणपण से सहयोग करें और सिद्ध करें कि आप अपने देश के श्रेष्ठ नागरिक हैं। परन्तु इसके साथ ही अपनी पुण्यभूमि, अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के साथ भी जुड़े रहें; क्योंकि इसी में आपका और विश्व का कल्याण है। □

दिल्ली स्थित संघ कार्यालय केशवकुञ्ज में लगी अन्तरिक्ष शाखा २५-९-९९ के समापन पर संघ-प्रार्थना करते हुए सरसंघचालक पू० रज्जू भैया, उनके दायें हैं- क्रमशः श्री तरुण विजय (सम्पादक, पाञ्चजन्य) और श्री अजय शाह (संयोजक, ग्लोबल हिन्दू इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्क)। श्री रज्जू भैया के पीछे दिख रहे हैं रा० स्व० संघ, दिल्ली प्रान्त के संघचालक व भारत प्रकाशन (दिल्ली) लि० के अध्यक्ष श्री सत्यनारायण बंसल व सबसे दायें हैं श्री रज्जू भैया के निजी सचिव श्री रवीन्द्र।

कहानी

श्रद्धा के दीप

- मदन मोहन पाण्डेय

गाँव में बिजली आ जाने से इस साल की दीवाली पहले से अलग लगती थी। घर-घर में बिजली की झालरें टँगी थीं और दरवाजों पर भी अपनी हैसियत के हिसाब से सजावट की गयी थी। गलियों में खड़ंजा भी लग गया था। पूरा गाँव गुलजार था, सिवाय त्रिलोचन बाबा के घर के। वे दरवाजे पर चारपाई डाले आँखें फाड़-फाड़ कर रास्ते की ओर पता नहीं क्या देखते हैं और फिर अपनी पनीली आँखों को पोंछते हुए चेहरे को यथासम्भव सामान्य बनाने की चेष्टा करते हैं। उन्हें लगता है, उनका इकलौता हवलदार बेटा रामेन्द्र कल ही ड्यूटी पर रवाना हुआ था और आ ही रहा होगा। वह भूल ही जाते हैं कि वे अपने हाथों अपने लाड़ले को चिता पर रखकर अग्नि को समर्पित कर चुके हैं। पूरा गाँव ही नहीं, जिले के जाने कितने नामी-गरामी लोग थे। रायफलें तानकर फौजी टुकड़ी ने सलामी दी थी और 'शहीद रामेन्द्र अमर रहें' अमर, शहीद रामेन्द्र जिन्दाबाद' के नारों से आकाश गूँज उठा था। जिलाधिकारी को मन्त्री जी निर्देश दे रहे थे- 'इस गाँव ने हमें एक शहीद दिया है, हम इसे कम से कम बिजली, खड़ंजा तो दे ही दें।'

गाँव वाले कुप्पा हो गये थे फूलकर। अब उन्हें अपने बीच जन्में पले-बढ़े रामेन्द्र पर गर्व हो रहा था। उन्हें लग रहा था जैसे वह गाँव की काया बदलने के लिए ही पैदा हुआ था। अभी जमा २३ साल की उम्र और यह करिश्मा। कारगिल की पहाड़ियों पर लड़ते चार घुसपैठिये मारकर चौकी पर कब्जा जमा लेना क्या दिल्लगी है! वह भी तब, जब सारा शरीर गोलियों से छलनी हो चुका हो। चोटी पर भारत का झण्डा फहराकर उसने शान्ति के साथ आँखें बन्द की थीं। थका सिपाही जैसे अगले जनम में जागने के लिए सो गया था।

अधिकारियों के मुँह से शहीद की यह गौरव-गाथा सुनकर जहाँ पूरा गाँव झूम उठा था, वहीं सबकी दृष्टि के केन्द्र त्रिलोचन बाबा का दिल भर-भर आता था; पर वीर शहीद के बाप होने का गौरव उन्हें रोने भी तो नहीं दे रहा था। एक साथ गर्व और वात्सल्य के पलड़ों पर तुल कर रह गये त्रिलोचन बाबा ने बहुत सन्तुलन साधा; पर बेटे को मुखाग्नि देने के समय उनके धीरज का बाँध टूट गया और वे रामेन्द्र की माँ का कन्धा पकड़ कर रोने लगे थे। तुरन्त ही मन्त्री जी ने उनका कन्धा पकड़ कर कहा था- "आप वीर बेटे के बाप हैं। इस तरह आपके रोने से शहीद बेटे की शहादत की तौहीन होगी।"

त्रिलोचन बाबा ने तुरन्त अपने आँसू पोंछकर कहा था- "मैं बेटे के लिए नहीं रोता हूँ, मेरा रोंना तो यही है कि भगवान् ने मुझे एक ही बेटा दिया। दूसरा बेटा होता, तो उसका हाथ आपको पकड़ाकर कहता- "देश की खातिर इसे भी लिये जाइये।"

फिर तो मन्त्री जी ने अपने भाषण में कहा था- "जिस देश में ऐसे हौसले वाले बाप हों, उसे कौन हरा सकता है? त्रिलोचन बाबा के बेटे ने दीपक की बाती की तरह खुद जलकर दूसरों के लिए आजादी की रोशनी बख्शी है। देश ऐसे शहीदों के लहू पर जिन्दा रहता है। अभी तक रामेन्द्र जी आपके गाँव के साधारण बाशिन्दे थे, अब वे देश की नींव की पुख्ता ईंट बन गये हैं। ऐसी ईंट, जो बाहर से दिखायी नहीं देती, मगर इमारत की मजबूती उसी पर मुनहसिर करती है। यह गाँव अब रामेन्द्र नगर कहा जायेगा और यहाँ शहीद की मूर्त्ति लगेगी, जो हमें आजादी की रक्षा की प्रेरणा देगी।"

तालियों की गड़गड़ाहट के स्वर में रामेन्द्र की माँ की सिसकियाँ डूब गयी थीं और थोड़ी देर बाद सारा मेला उजड़ गया था। गाँव के दो-चार सुख-दुःख के साथी ही दरवाजे पर बैठे थे। हृदय में सहसा खड़ी हो गयी गर्व की दीवार वात्सल्य के थपेड़ों से पिघलने लगी थी और वे- "उड़ गयो हंस अकेला" गाते-गाते फिर रोने लगे थे।

लोगों के चुप कराने पर फिर बोले थे- "यह मत

समझना कि मेरा हृदय कहीं से कमजोर पड़ रहा है। रामेन्द्र मेरा इकलौता बेटा था न। उसकी आत्मा को कहीं यह न लगे कि उसके लिए कोई रोने वाला भी नहीं है, इसलिए रो लेता हूँ। आखिर वह शहीद होने के साथ बेटा भी था और मैं भी बापू हूँ। दुनिया उसे शहीद का सम्मान दे रही है, मैं क्या उसे बेटे के हक से कतई महरूम कर दूँ।" पास बैठे सुखदेव, भगत और रोशन सिंह अपनी रुलाई रोक नहीं सके थे उनकी इस करुण बात पर। लेकिन इन्हें रोता देखकर त्रिलोचन बाबा ने आँसू पोंछते हुए हँस कर कहा था– "बस, इतने में रो दिये, मेरा एक मिनट का दुःख नहीं देख सके। मेरी नहीं, रामेन्द्र की माँ की सोचो, जिसे पूरी जिन्दगी गोद सूनी होने का मलाल सालेगा। तब मैं उसे समझाऊँगा, तेरी गोद सूनी कर जाने वाले ने भारतमाता की गोद की लाज रख ली।"

फिर तो उन्होंने खुद रामेन्द्र के फौजी जीवन और बचपन की शरारतें बखान करनी शुरू कीं, तो उस गमी में भी हँसी की चाँदनी खिल गयी और लोगों को त्रिलोचन बाबा की हिम्मत की दाद देनी पड़ी। ऐसा न हो, तो हर ऐरा–गैरा शहीद का बाप न बन जाये।

समय अपनी गति से खिसकता गया, पर गाँव के लिए कुछ विशेष बातें हुईं। गाँव के किनारे एक बोर्ड लग गया। जिस पर लिखा था– 'रामेन्द्र नगर'। गाँव की हर गली में खड़ंजा और बिजली चमकने लगी। त्रिलोचन बाबा के घर के सामने इण्डिया मार्का हैण्डपम्प लग गया और गाँव वाले जहाँ नाते–रिश्ते में जाते, शहीद रामेन्द्र की चर्चा उसी गर्व से करते, जैसे अपनी भरी–पूरी फसलों की करते थे।

इधर दीवाली की चहल–पहल शुरू होने पर लोग अपनी–अपनी तैयारियों में लगे थे। दीवाली सरदी के आरम्भ का त्योहार होता है, गाँव गिरवान के लोग जाड़े के कपड़ों का बन्दोबस्त भी पुताई और रोशनी से बचत करके करने की सोचते हैं। फुलझड़ियों पर पैसा खर्च करना यहाँ फिजूल समझा जाता है। अधिकतर बच्चों को मिठाइयों के नाम पर शक्कर के खिलौने या खील–बताशों पर सन्तोष करना पड़ जाता है। वहाँ जीवन संघर्ष की जटिलता में कइयों के घर–दुआर बिना पुते रह जायें, तो कोई आश्चर्य भी नहीं करता है। लक्ष्मी–पूजा की कोठरी या आँगन की दीवारें ही पुत जायें, यही काफी समझा जाता है। अतः जब इक्का–दुक्का लोगों ने त्रिलोचन बाबा का घर बिन पुता देखा, तो उन्हें विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। कई लोग यह भी सोच रहे थे; कुछ भी हो, जवान बेटा मरा है। लकालकी क्या ठीक रहेगी? देखने वाले क्या कहेंगे। यही सोच कर बाबा ने पुताई नहीं करायी होगी। या फिर दिन के दिन थोड़ा बहुत लीप–पोत लिया जायेगा। उनका घर ही कौन बहुत बड़ा या फिर पक्का है, जिसकी पुताई कठिन होगी। चार मजदूर एक दिन में पीली मिट्टी से पोत कर रख देंगे।

पर गाँव के लोगों को इस विषय में जब त्रिलोचन बाबा और उनकी पत्नी की इस बाबत बतकही सुनायी दी, तो वे दंग रह गये। उन्हें लगा, अब इस बाबत सोचना गाँव वालों की जिम्मेदारी है। सुखदेव, भगत गाँव के दस पाँच बड़े–बूढ़ों से त्रिलोचन सिंह की चौपाल पर चर्चा कर रहे थे।

हुआ यह कि सुखदेव सबेरे त्रिलोचन बाबा के घर दूध देने गये थे। अन्दर त्रिलोचन बाबा रामेन्द्र की माँ से कह रहे थे– "सोचो तो, क्या यह अच्छा लगेगा कि पूरे गाँव में उजाला हो और हमारे घर में अँधेरा रहे। शहीद बेटे की शहादत की तौहीन होगी।"

बहुत सुन चुकी हूँ, शहीदों के कशीदे। घर का दीपक बेटा होता है। जब वही नहीं रहा, तो मिट्टी के दिये जलाने से क्या भीतर का अँधेरा दूर हो जायेगा? मेरी आँखों के आगे अँधेरा भाँय–भाँय कर रहा है। मैंने उसे जन्म दिया है, पेट में रखा है। यह दर्द माँ के सिवा कौन समझेगा" रामेन्द्र की माँ सिसकने लगी थी।

त्रिलोचन बाबा के पास सान्त्वना देने को शब्द नहीं थे। वे भी अपनी बाँहों से आँसू पोंछने लगे। उन्हें लग रहा था बेटे पर माँ का हक उनसे बड़ा है।

यह बात सुनकर सुखदेव भगत का हृदय भी भीग उठा था। वे खाँस–खखार कर त्रिलोचन बाबा को सँभलने का मौका देकर दूध तो दे आये; मगर उनके हृदय में ऐसी फाँस लग गयी थी, जिसकी टीस की वजह से वह चार लोगों में इस बात की चर्चा करने पर विवश हो गये।

सारी बात सुनकर वहाँ बैठे लोग गमगीन हो गये। इतना दुःख तो उन्हें उस दिन भी नहीं हुआ था। मगर आज दुखी माँ–बाप के वात्सल्य की लहर उनके हृदयों को लोना खाई दीवारों की तरह ढहाये दे रही थी। सबकी राय हुई, ऐसा नहीं होने देंगे। रामेन्द्र हमारे गाँव की शान है। वह देश के त्यौहार में काम आया है, हम क्या उसके घर के त्यौहार में भी काम नहीं आयेंगे? त्रिलोचन बाबा के घर की पुताई होगी। सबके घरों से दीपक लाकर रोशनी की जायेगी। सजावट होगी। अब वह किसी एक घर या एक आदमी का बेटा थोड़े ही रह गया है।

तनिक देर बाद ही त्रिलोचन बाबा के दरवाजे की पुताई हो रही थी। रामेन्द्र की माँ के साथ ही त्रिलोचन बाबा ने कहा था– "इस बार आप लोग मान जायें। यह

रामेन्द्र की माँ की इच्छा है। उन्हें माँ के हक से महरूम कर देने की हिम्मत कम से कम मुझमें नहीं है।" कहते–कहते त्रिलोचन बाबा के नेत्र सजल हो गये। उनकी आँखों में पिछले साल दिये की कन्दील ऊँचे नीम पर बाँधते रामेन्द्र की छवि छलक आयी।

सुखदेव भगत उनके हमउम्र दोस्त थे। बोले– "भइया! आज आप कुछ भी कहो, मगर हम लोगों की भी थोड़ी सुन लो। रामेन्द्र क्या मुझे बेटे से कम प्यारा था?"

भगत के छलकते आँसू देखकर रामेन्द्र की माँ ने सिसकते हुए कहा– "कतई नहीं।"

भगत ने उनकी ओर देखते हुए कहा– "रामेन्द्र के अन्तिम संस्कार के दिन त्रिलोचन भइया ने कहा था– "ये आँसू इसलिए निकल आते हैं कि वह बाप पर बेटे के हक की बात है। बेटे को इस हक से वंचित नहीं किया जा सकता। आज आपके माँ के हक की बात कर रहे हैं। जैसे रामेन्द्र पर हमारा कोई हक ही नहीं है। आखिर वह हमारे गाँव में पैदा हुआ, पला–बढ़ा। बड़े–बड़े लोग कहते हैं कि उसने पूरे देश का नाम रोशन किया। हम बेपढ़े इतनी बड़ी बातें नहीं जानते, पर इतना जरूर मानते हैं कि उसने कम से कम हमारे गाँव का नाम जरूर रोशन कर दिया। अब दीवाली में उस शहीद का घर अँधेरा रहेगा, तो पूरे गाँव में दीवाली नहीं मनायी जायेगी। अब यह घर आपका घर नहीं, शहीद का मन्दिर है। क्या शहीद का इतना भी हक नहीं बनता कि त्यौहार पर उसके घर में रोशनी हो।"

त्रिलोचन बाबा की आँखें भर आयी थीं और रामेन्द्र की माँ के मुँह से यही निकला– "जब रोशनी जलानेवाला ही नहीं रहा, तो दिया जलाकर.....।"

माँ के आगे के शब्द गला भर आने से गले में ही रह गये और गाँव के कई लड़के एक साथ बोले– "तब आप एक बेटे की माँ थीं, अब हम सब आपके बेटे हैं। आप हमें आशीर्वाद दीजिये दीवाली पर। हम आपके घर में दिये जलायेंगे।"

रामेन्द्र के साथी पैर छू–छू कर माँ का आशीर्वाद ले रहे थे। क्षण भर को माँ को लग रहा था, उसका रामेन्द्र अनेक रूप धारण कर उसके सामने है।

पुताई वालों के हाथों की रफ्तार बढ़ गयी थी और रोशन सिंह का बेटा बिजली की झालर लिए आ रहा था। त्रिलोचन बाबा ठगे के ठगे देख रहे थे। एक अनोखे उजाले की किरणें अपनी शीतलता जैसे घर–आँगन में बिखेर रहीं थीं। आज के दिये सच्ची श्रद्धा के दिये होंगे।

□

– ग्राम–मसीत, पोस्ट–साण्डला, हरदोई (उ०प्र०)

बहुओं का आयात

– ओमप्रकाश बजाज

छोटे परिवार के इस युग में
सभी करते पुत्र की ही कामना।
परिणामस्वरूप शीघ्र ही
विकट स्थिति का करना होगा सामना।
आगामी कुछ ही दशकों में
कन्याओं की संख्या इतनी कम हो जाएगी।
कि वर्षों प्रतीक्षा करके भी
पुत्र विवाह की नौबत नहीं आएगी।
दहेज की बात छोड़िए
बहुएँ ब्लैक में मिलेंगी।
स्वस्थ सुंदर की कौन कहे
लँगड़ी कानी भी चलेंगी।।
बहुओं का रुतवा होगा
सासें– हाथ मलेंगी।
गृह–कलह की दशा में
बहुएँ नहीं सासें जलेंगी।
विवश होकर विदेशों से
जैसी तैसी बहुएँ मँगानी होंगी।
राशन कार्ड पर उनके वितरण में भी
धक्कमधक्का और मनमानी होगी।
पहुँच और मेलजोल वाले
वहाँ भी मामला पटा लेंगे।
दो नम्बर की काली कमाई वाले
थोक में बहुएँ जुटा लेंगे।
भारी कमी वाली वस्तुओं की सूची में
एक अदद और जुड़ जाएगा।
हमारे सामाजिक परिवेश का
समूचा संतुलन ही बिगड़ जाएगा।

– इन्द्राणी अपार्टमेंट्स, २१६१–एफ., मदन महल, जबलपुर–४८२००१ (म०प्र०)

कथन है कि क्रूस पर लटके यीशू के शव के पंजर को बरछी से छेद कर उसकी मृत्यु हो जाने की पुष्टि की गयी थी, यह मात्र यूहन्ना ने वर्णन किया है– देखें १९:३४। अन्य किसी प्रत्यक्षदर्शी सन्त का ऐसा वर्णन नहीं है, क्या यह संकेत नहीं देता है कि या तो यूहन्ना की बात सही है या अन्य तीन सन्तों की ? यदि यीशु की मृत्यु क्रूस पर हो गयी थी, जैसे पादरी जोन के कथन हैं, तो यहूदी या ईसाई परम्परा के अनुसार उसको दफनाया क्यों नहीं गया था ? मात्र एक चट्टानी गुफा में रखकर पत्थर कैसे रखा गया था ? यदि इसको सही माना जावे, तो तीसरे दिन तक मृत शरीर अपघटित क्यों नहीं हुआ और तीसरे दिन तक उस गुफा में से बदबू एवं सड़ाँध क्यों नहीं आयी ? यदि मृतक का जी उठना निश्चित था, तो वह कब्र में विधिवत् दफनाये जाने के उपरान्त भी परमात्मा की कृपा से बाहर आ सकता था। उसके लिए तो यह एक खेल मात्र ही होता। तब हमें फेबर केसर की पुस्तक में वर्णित सत्य को स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ेगा कि मृत्योपरान्त श्रीनगर में युज आसफ (कल्पित यीशु का नाम) को कब्र में दफनाया गया था, किसी अन्य को नहीं।

डाक्टर जी.एम. सूफी ने यह बताया है कि श्रीनगर में युज आसफ की कब्र यीशु की न होकर मिश्र के राजदूत की थी, जो जेनुलाबदीन के राज दरबार में था। जेनुलाबदीन कहाँ का राजा था ? उस समय कोई मुसलमानों का कहीं राज्य नहीं था, न मुहम्मद साहब का जन्म हुआ था, तो मुस्लिम की कब्र वह कैसे हो सकती है ? मेरी की मृत्यु कश्मीर पहुँचने के पूर्व ही हो गयी थी रास्ते में। 'मरी' नामक उसकी कब्र पर 'माई मेरी दा स्थान' का शिलालेख आज भी लगा हुआ है। यह उल्लेख करना समयोचित होगा कि यीशु की माँ मेरी और यीशु का शिष्य टामस भी कश्मीर पलायन करके उनके साथ आये थे। मरी से यीशु कश्मीर आये थे, जिस घाटी से कश्मीर में प्रवेश हुआ था, उसका नाम 'युजमर्ग' यानि 'ईसा का चरागाह' आज भी है। ऐसे ही रास्ते में 'ऐश मुकाम' स्थान है, 'नूरनामा' ग्रन्थ के अनुसार वहाँ ईसा ने कुछ दिन रुककर आराम किया था। भविष्य पुराण के अनुसार ईसा ने महाराज शालिवाहन से साक्षात्कार किया था। प्राचीन फारसी ग्रन्थ 'नेगारिस तान–ए–कश्मीर' में बताया गया है कि ईसा ने शादी की थी और उसके बच्चे हुए थे। उनके वंशज साहिबजादा बशारत सलीम का तो आज भी यही कहना है कि वे युज आसफ के वंशज हैं, जो पैगम्बर था। उनके पास वंश वृक्ष है, जो यह सिद्ध करता है कि वे युज आसफ के वंशज हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार शेख–अल–सईद उस् सादिक ने, जिसकी मृत्यु सन् ९६२ ईस्वी में खुरासान में हुई थी, ने बताया है कि श्रीनगर के 'रोजाबेल' स्थान पर युज आसफ की कब्र है। कब्र की खसूसियत यह है कि इसका सिर पूर्व की ओर तथा पैर पश्चिम की ओर हैं, जो किसी मुसलमान की किसी दशा में नहीं हो सकती, क्योंकि मुस्लिम मान्यता के अनुसार काबे की ओर पैर करके कोई मुस्लिम नहीं दफनाया जा सकता है। इस इतिहासकार के ग्रन्थ में युज आसफ की यात्राओं का पूरा वर्णन भी है। यदि युज आसफ ईसा नहीं था, तो फिर वह कौन था और उसका विवरण यीशु से कैसे मिलता है ? उसकी माँ का नाम मरियम– मेरी– कैसे रहा ? युज आसफ के साथ आनेवाला टामस कौन था ? यदि कब्रें २००० वर्ष की न होकर १३०० वर्ष पूर्व की भी होतीं और किसी मुसलमान की होतीं, तो उनके पैर पश्चिम दिशा की ओर होते ? इससे यही साबित हुआ कि कब्रें किसी मुसलमान की नहीं हैं और मुस्लिम धर्म की स्थापना के पूर्व की हैं, तब ही तो उनके पैर काबे की ओर हैं।

इन प्रमाणित प्रचुर सबूतों के आधार पर तो यही निष्कर्ष निकाला जा सकेगा कि व्याख्याकार पादरी जोन के तर्कों में कोई दम नहीं है। ❒

– ५७९, स्नेह नगर, इन्दौर– ४५२००१

नालडियार जैन आचार्यों के तमिल ग्रन्थ

– डॉ० जा० आशीर्वादम

तमिल साहित्य के विकास के क्षेत्र में जैन आचार्यों की सेवा महत्त्वपूर्ण रही है। पंचमहाकाव्य कहलाने वाले तमिल के पाँच महाकाव्यों में सबसे प्रथम महाकाव्य 'जीवक चिन्तामणि' के रचयिता जैन आचार्य ही थे। (तिरुत्तक्क तेवर) वैसे ही अठारह की संख्या में हिसाब करके रखे गये तमिल के 'पदिनेण् कीऴ्कणक्कु' नाम के लघु काव्य समूह में भी सबसे प्रथम काव्य जैन आचार्यों का ही था। वही नालडियार था। जब तमिल के राजाओं के शासन का पतन हुआ तथा गैर तमिल राजाओं का शासन पाँचवीं शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक तमिल के प्रान्त में कायम रहा, तब तमिल साहित्य का विकास बहुत मन्द पड़ गया था। साहित्य के इतिहासकारों ने इस अवधि को 'अँधेरा युग का नाम दिया।' तमिल साहित्य के उस अँधेरे युग में भी एकमात्र महाकाव्य का निर्माण हुआ। नाम था 'पेरुंगदै' (बृहत् कथा) उसके रचनाकार एक जैन आचार्य ही थे। इस प्रकार तमिल साहित्य के विकास में जैन आचार्यों का योगदान उल्लेखनीय रहा है।

नालडियार के ग्रन्थ का स्वरूप

नालडियार पूर्ण रूप से नीतिवाचक ग्रन्थ है। ग्रन्थ का रचनाकार भी अकेला एक व्यक्ति नहीं था। तृतीय शताब्दी के इर्द–गिर्द के कुछ जैन आचार्यों द्वारा समय–समय पर रचित पद्यों को 'पदुमन्तर' नामक विद्वान ने एकत्रित किया तथा नीतिपरक ग्रन्थ का रूप दिया तथा आप ही ने उसे 'नालडियार' का नाम भी दिया। ग्रन्थ का नाम उसके स्वरूप के अनुरूप ही नालडियार हुआ। ग्रन्थ में कुल चार सौ पद्य संग्रहित हैं। प्रत्येक पद्य में चार पंक्तियाँ होती हैं। ऐसे काव्य छन्द को तमिल के काव्य शास्त्र के अनुसार वेण्बा कहते हैं। वेण्बा हिन्दी के चौपाई जैसे काव्य छन्द हैं। चार की संख्या को तमिल की भाषा में 'नालु' कहते हैं और चार पंक्तिवाले (अडि) पद्यों से भरपूर यह ग्रन्थ इसीलिए पहले–पहल नालाडि कहलाने लगा था। 'आर्' का शब्दांश तमिल की भाषा में पवित्रता सूचक है अतः नालडि के साथ 'आर्' जोड़कर इस ग्रन्थ का नाम बाद में नालडियार कहलाने लगा। उन जैन आचार्यों के नामों का ज्ञान भी किसी को नहीं हुआ है जिन्होंने इन अमूल्य पद्यों की रचना को; पर पद्यों में निहित भावों का स्वरूप तथा पद्यों की विभिन्नता का लक्ष्य करके निश्चित रूप से बताया गया है कि यह अनेक जैन आचार्यों की रचनाओं का संग्रह है।

नालडियार तथा तिरुक्कुरळ्

नालडियार को तमिल के महान् नीतिग्रन्थ तिरुक्कुरळ् के समकक्ष माना जाता है। तिरुक्कुरळ् तो नालडियार से बढ़कर बहुत पूर्व काल की रचना थी। इसको लेकर विशेषज्ञ अनुमान लगाते हैं कि तिरुक्कुरळ् के अनुकरण पर ही नालडियार के पद्यों की रचना हुई है। इन दोनों ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होनेवाली कई समानताएँ इस बात की पुष्टि भी करती हैं। जब तिरुक्कुरळ् हिन्दी के दोहा जैसे दो पंक्तियों वाले पद्यों (कुरळ) से बना है, तब नालडियार का ग्रन्थ हिन्दी के चौपाई जैसे चार पंक्तियों वाले पद्यों से (वेण्बा) बना है। तिरुक्कुरळ् प्रमुख रूप से तीन भागों में विभक्त हुआ है। प्रथम भाग सत्भावना विषयक है द्वितीय भाग सांसारिक जीवन व्यापार का विषयक है तथा तृतीय भाग काम विषयक है। नालडियार वैसें ही इन तीन विषयों को लेकर तीन भागों में विभक्त हुआ है। तिरुक्कुरळ् के इन तीनों भागों के लिए क्रमशः अरत्तुप्पाल् (सत्भावना का अंक) पोरुट्पाल् (वैत्तिक का अंक) कामत्तुप्पाल् (काम का अंक) आदि के शीर्षक होते हैं। वैसे ही नालडियार के तीनों भाग भी क्रमशः अरत्तुप्पाल्, पोरुट्पाल्, कामत्तुप्पाल् कहलाते हैं। नालडियार के इन तीनों भागों के अन्तर्गत तिरुक्कुरळ् की ही भाँति शीर्षक

लेते हुए कई अध्याय भी हैं (कुल ४० अध्याय) और प्रत्येक अध्याय में तिरुक्कुरळ् की ही भाँति दस की संख्या में पद्य हैं। नालडियार की विषय तालिका भी तिरुक्कुरळ् के समान है। तिरुक्कुरळ् के कई अध्यायों के नाम यानी शीर्षक नालडियार में भी देखने को मिलते हैं तुखु (तपस्या) पोरैयुडैमै (सहनशीलता) अरिकुडैमै (बुद्धिमत्ता) ईगै (दान) कल्वि (शिक्षा) पेरुमै (घमण्ड) आदि तिरुक्कुरळ् के अध्यायों के शीर्षक तदैव नालडियार में देखने को मिलते हैं।

नालडियार की कलात्मक सुन्दरता

नालडियार पूर्ण रूप से नीति विषयक है फिर भी अपनी कलात्मक सुन्दरता के कारण एक महाकाव्य की तरह पाठकों को अभिरुचि प्रदान करता है। नीतिविषयक ग्रन्थ होकर विभिन्न प्रकार के उपदेश प्रदान करते हुए भी उपदेशों से ओतप्रोत पद्यों को जिस कलात्मक कारीगरी के साथ प्रस्तुत किया गया है वह उन उपदेशों को पाठकों के मन में पत्थर की लकीर की तरह बसा देने में कामयाब हुआ है। जनसाधारण के जीवन के दैनिक व्यापारों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों से निर्माणित उपमाओं के आधार पर नीति समझाना नालडियार की विशेषता है।

उपदेश कोई देता है तो उसे सुननेवाला जरूर कोई होता है। इस बात का लक्ष्य करके नालडियार के प्रत्येक पद्य में निहित विषय किसी को सम्बोधित करके ही बताया गया है। वैसे सम्बोधन करना भी बिना नाम बताये किसी राजनरेश की ओर होता है। जैसे कि, 'नल् नाड' (हे समृद्ध देश के नरेश) (पद्य संख्या ६६) 'तण् चेरप्प' (हे शीतल समुद्र तट के निवासी) (पद्य ६७,६६,१०७) 'पेरुवरैनाड' (हे ऊँचे पहाड़वाले देश के नरेश) (पद्य संख्या १६६) तथा कण् मलै नल् नाड (हे झरनों से भरे समृद्ध देश के नरेश) (पद्य संख्या २६५)। कभी–कभी सम्बोधन बिना नाम का जिक्र किये किसी सुन्दर कन्या (शायद राज नरेश की पत्नी यानी रानी) की ओर होता है जैसे कि 'नरुमलर तण् कोदाय' (सुगन्धित फूल समेत शिखावाली) (पद्य संख्या ३५४) 'तडंकण्णय' (मोटी–मोटी आँखों वाली) (पद्य संख्या ११६) तथा 'वाट्कण्णय' (तलवार जैसी तीखी नजर वाली) (पद्य संख्या २०६) इस प्रकार उपदेश प्रदान करने की नालड़ियार ने जो रीति अपनायी है वह तिरुक्कुरळ् में नहीं है। वहाँ दो पंक्तियों वाले कुरळ् (दोहा) के पद्यों में उपदेश निरन्तर दोहराये गये हैं।

उपदेशों की प्रस्तुति में जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण नालडियार में अपनाया गया है वह भी यहाँ उल्लेखनीय बात है–

लाभ मात्र का लक्ष्य करके किसी काम पर लगने से बढ़कर उसी काम को नहीं करने से जो हानि होती है उसके भय के कारण ही मण्डव्य इस काम को करने पर अधिक तीव्रता दिखाता है। मण्डव्य की इस प्रवृत्ति को ध्यान में लेकर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए नालडियार ने भी जिन–जिन विषयों के सम्बन्ध में उपदेश प्रदान किया है उनके अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों को सम्मुख लाकर ही उपदेश प्रदान किया है। उदाहरणार्थ जब एक ओर 'बुद्धिमत्ता का महत्त्व' (अध्याय २५) बताता है तो दूसरी ओर मूर्खता की हीनता (अध्याय २६) समझाता है। वैसे ही एक ओर ईगै (दान) का महत्त्व समझाता है तो (अध्याय २७) दूसरी ओर ईयामै (कृपणता) की बुराईयाँ बताता है। (अध्याय २८) एक ओर उच्चकोटि की दोस्ती (अध्याय २२) का बखान करता है तो दूसरी ओर निम्न कोटि की मित्रता का दोष बताता है (अध्याय २४) इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए नालडियार ने अपने उपदेशों को सशक्त तथा फलोत्पादक बनवाने का प्रयास किया है।

नालडियार के कुछ उत्कृष्ट उपदेश

अपने सत्‌भाव के अंक (अरत्तुप्पाल्) में प्रारम्भिक तीन अध्यायों में नालडियार श्रेष्ठ उपमाओं के जरिये संसार, सांसारिक जीवन तथा यौवन का लावण्य आदि की नश्वरता का बोध कराता है। जैसे कि गाड़ी का पहिया घूमता रहता है वैसे ही धन–दौलत आदि भी किसी के हाथ टिकती नहीं–

'...अगडु उरयार माट्टुम् निल्लदु, चेल्वम् सगडुक्काल पोल वरुम्' (अध्याय १ : पद्य २)

मानव जीवन के भी अल्पकालीन अस्तित्व का जिक्र करते हुए नालडियार का जो अति सुन्दर पद्य है वह इस प्रकार है–

'एनक्कुत्ताय् आगियाल् एन्नै इट्टु
तनक्कुत्ताय नाडिये चेन्राळ्– तनक्कुत्ताय
आगिय अवळुम् अदुवानाल् ताय् तायक्कोण्डु
एगुम् अनैत्तु इव्वुलगम्। (अध्याय ११ : पद्य ३)

इसका भावार्थ इस प्रकार है–

"मेरी माँ जिसके द्वारा मेरा जन्म हुआ वह अपनी माँ को ढूँढ़ती हुई चली गयी, मेरी माँ की माँ जिसे मेरी माँ ढूँढ़ती हुई चली गयी, वह उसके पहले चली गयी थी

अपनी माँ को ढूँढ़ती हुई। बस यही जीवन का लक्षण है। एक को दूसरे का पीछा करते जाना होता है।"

वैसे ही पौधे के पत्ते पर चन्द देर रुकनेवाली बरफ की बूँद (फलन्डनिमेल नीर पोल् ३ : ६) पहाड़ के ऊपर का मेघ (मलै आडुम् मञ्जु ३ : ६) बरसात के पानी से उत्पन्न बुलबुला (३ : ७) आदि उपमाओं द्वारा जीवन की नश्वरता पर अति सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है नालडियार ने। जैन आचार्यों के द्वारा ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही जीवन की नश्वरता की चर्चा करने से तात्पर्य यह था कि संसार तथा जीवन पर मनुष्य की आसक्ति के कारण ही मनुष्य लोभ, ईर्ष्या आदि कुकर्मों में लग जाता है। अतः सत्भाव पर प्रकाश डालकर उसके सम्बन्ध में सबक प्रदान करने के पहले जीवन के अल्पकालीन अस्तित्व का परिचय कराते हुए उसके जरिये आसक्ति को रोकना अनिवार्य माना है जैन आचार्यों ने।

आसक्ति को रोकना है तो उसके लिए एकमात्र उपाय जैन आचार्यों के अनुसार तपश्चर्य ही है। अगले ही अध्याय में तपश्चर्य का जिक्र होता है। तपस्या में लग जाने से तात्पर्य उनके अनुसार घरबार सर्वथा छोड़कर वनवासी बन जाने से नहीं आप लोगों ने साफ–साफ कहा है कि सन्तानहीन होने का कारण पत्नी ही होने पर भी पति को उसे छोड़ना नहीं चाहिए।

माण्ड गुणत्तोडु मक्कट् पेरू इल् एनिनुम्
पूण्डान् कलितरक्कु अरूमैयाल् (अध्याय : ७, पद्य ७)

तपश्चर्य से तात्पर्य मन को काबू में रखने से था तपस्या के फल जो हैं उसे एक अति सुन्दर उपमा द्वारा स्पष्ट किया है नालडियार ने–

विकक्कु पुग इरूळ् मायतांगु ओरूवन्
तवत्तिन् मुन् निल्लादाम् पावम्– विळक्कुनेय्
तेयविडत्तु इरूळ् पायतांगु निलविनै
तीरविडत्तु निरगुमाम् तीदू (अध्याय ६, पद्य १)

इसका भावार्थ इस प्रकार है–

"जिस प्रकार रोशनी के पड़ते ही अँधेरा गायब हो जाता है उसी प्रकार तपस्या के सामने पाप टिकता नहीं है। जैसे कि रोशनी के बन्द हो जाने पर अँधेरा आ जाता है वैसे ही अच्छे कर्मों का करना बन्द हो जाने पर कुकर्म करने की प्रवृत्ति तुरन्त घुस जाती है।"

सांसारिक जीवन के सभी व्यापार धन–दौलत पर ही निर्भर हैं। अतः शिक्षा, दान, मित्रता, मान, गरीबी आदि विषयक उपदेशों के नालडियार का तृतीय भाग वित्तीय अंक कहलाता है। इस अंक के पहले ही अध्याय में शिक्षा के चमत्कार की चर्चा होती है। इस प्रकार शिक्षा विषयक चर्चा को सभी अध्यायों के आगे स्थान प्रदान करके नालडियार ने इशारे से समझा दिया है कि शिक्षा कितनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है। नालडियार के अनुसार कीमती वस्त्र तथा आभूषणों से बढ़कर शिक्षा ही मनुष्य की शोभा बढ़ाने का वास्तविक साधन है। कल्वि अळगे अळगु अध्यायं २४, पद्य संख्या २) शिक्षा श्रेष्ठ औषधि है जो मन के मैल रूपी रोग को दूर करती है। (मम्मर् अरुक्कुम् मरून्दु) अध्याय २४, पद्य संख्या २ वह ऐसी बहुमूल्य सम्पत्ति भी है जो अन्य सम्पत्तियों की तरह आसानी से चोरी नहीं हो जाती है तथा किसी को देते–देते कम भी नहीं होती है। (वैप्पुली कोटपड़ा अध्याय २४, पद्य संख्या ३)

अर्थ पक्ष के इसी अंक में मित्रता के सम्बन्ध में लगातार तीन अध्यायों में 'दोस्ती' सम्बन्धित उपदेश दिये गये हैं। वे क्रमशः मित्र को परख लेना (२२वाँ अध्याय) मित्रता में एक के दूसरे का दोष सहन करना (२३वाँ

आँखों ही आँखों में...

– रघुवीर शरण 'पथिक'

आँखों ही आँखों में तिर आयी शाम।
कैसा कोहराम।।
खड़े हुए सहमे से आशंकित वृक्ष,
कहें व्यथा किससे न कोई समक्ष;
रीती है गागर और तृष्णा तमाम
आँखों ही आँखों में, तिर आयी शाम
सिमट रहा क्षितिजों पर किसका विस्तार
छिटक गया अम्बर में, किसका शृंगार
सुधियाँ तक माँग रहीं कर पसार दाम
आँखों ही आँखों में, तिर आयी शाम
सब कुछ है सम्मुख, किन्तु है अदृश्य
आशा से दूर बहुत दूर बहुत लक्ष्य
सभी ओर धुँधलाये सपनों के ग्राम
आँखों ही आँखों में, तिर आयी शाम
न्याय यहाँ बिकता है, होते व्यभिचार
इससे ही हो होकर मैंने लाचार।
शब्द किये भेंट नये अर्थों के नाम।
आँखों ही आँखों में, तिर आयी शाम।।

– मुख्य डाकघर, शाहजहाँपुर–२४२००१

अध्याय) अनुचित स्नेह (२४वाँ अध्याय) आदि हैं। किशोरों के लिए ये उपदेश बहुत ही उपयोगी हैं। अनुचित स्नेह के कारण ही लाखों किशोरों के भविष्य का जीवन बरबाद पड़ा हुआ है। अतः दोस्ती करने या प्रारम्भ करने के पूर्व में ही जिसके साथ दोस्ती बढ़ानी है, उसकी छान–बीन करना अनिवार्य है। नालडियार का सुझाव है कि हाथी जैसे लोगों के साथ दोस्ती नहीं करनी चाहिए। कुत्ते जैसे लोगों के साथ मित्रता करना उत्तम है क्योंकि हाथी का स्वभाव तो एक न एक दिन महावत को ही मार डालने का है; मगर कुत्ता अपने मालिक के खूब पीटने पर भी अपनी दुम हिलाता है जो अपनी वफादारी व्यक्त करने का उसका संकेत है। मूर्ख लोगों से मित्रता नहीं करनी चाहिए। वह शुद्ध घी को खाली करके उसी वर्तन पर नीम के तेल से उसे भरने के बराबर है–

आन पडु नेय् पेय् कलत्तुल् अदु कलैंतु
वेंपडु तेल पेय्तु अनैत्ते। (२४–१)

इसके बाद मूर्खता, बुद्धिमत्ता आदि के शीर्षक में जो उपदेश नालडियार द्वारा दिये जाते हैं, वे छोटे तथा बड़े सभी वर्ग के लोगों के लिए जीवन को सार्थक बनाने वाले उपयोगी उपदेश हैं।

नालडियार का तृतीय भाग काम का अंक (कामत्तुप्पाल) कहलाता है। यहाँ काम का तात्पर्य मैथुन या रति क्रिया से नहीं था; बल्कि स्त्री–पुरुष के प्रेम–व्यवहार से था। कामत्तुप्पाल के तीन अध्याय हैं– (तीस पद्य) प्रथम अध्याय में वेश्याओं की प्रवृत्ति का चित्रण है। द्वितीय अध्याय ठीक विपरीत सात्विक स्त्री का लक्षण बताता है। तृतीय अध्याय में नायक–नायिका का मिलन विरह ताप आदि का चित्रण है। दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनवाना ही यहाँ जैन आचार्यों का उद्देश्य था। नालडियार ने वेश्या की तुलना जहर से की है– 'कडु अनैयर' (अध्याय ३६ पद्य ४) इससे तात्पर्य यह हुआ कि सात्विक स्त्री अमृत समान है। इस प्रकार के उपदेशों द्वारा जैन आचार्यों ने मर्दों को संकेतात्मक रूप से सचेत किया है कि वे वेश्याओं से सतर्क रहें। काम के सम्बन्ध में नालडियार के सुझाव एक प्रकार से काम विषयक शिक्षा ही हैं। जिस पर आजकल के साक्षरता के क्षेत्र में जोर दिया जा रहा है। 'राइटस' आदि भयानक रोगों से पीड़ित आजकल के जनसमुदाय के लिए नालडियार के इस प्रकार के उपदेश बहुत उपयोगी साबित हो सकते हैं।

उपसंहार

मानव जीवन को सार्थक बनवाने के लिए उपयोगी तथा अमूल्य उपदेशों का भण्डार ही नालडियार का ग्रन्थ है। उपदेश प्रधान ग्रन्थ के होते हुए भी यह ग्रन्थ कलात्मक अभिरुचि के लिए प्रख्यात हुआ है। जैसे कि कटु दवा शक्कर मिलाकर पिलायी जाती है वैसे ही कठोर उपदेश भी कलात्मक अभिरुचि समेत प्रस्तुत किये गये हैं इस ग्रन्थ में। यही कारण है कि यह ग्रन्थ आज भी लोकप्रिय ग्रन्थ बनकर रहता है। बड़ी मात्रा में साहित्यकार अपनी रचनाओं में विचारों की पुष्टि के लिए नालडियार के पद्यों को दृष्टान्त के रूप में उद्धृत करते हैं। अंग्रेजी मे नालडियार ग्रन्थ का अनुवाद हुआ है। इस प्रकार विदेशों में भी इसका परिचय हुआ है। नालडियार का हिन्दी संस्करण भी उपलब्ध है। हिंसा तथा उग्रता से पीड़ित तत्कालीन समाज को अहिंसा, दान, अभिमान, मित्रता आदि सद्भावों को सबल सशक्त रूप से सिखाकर उसे उचित रास्ते पर ले चलने में नालडियार जैसे ग्रन्थ बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। □

– ८, कलैमगल नगर, पूंतमल्ली, चेन्नई–६०००५६

हिन्दी माध्यम से भारतीय प्रशासनिक सेवा-परीक्षा में सर्वोच्च स्थान

सरस्वती शिशु मन्दिर तराना (म०प्र०) से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने वाले श्री आनन्द कुमार सोमानी ने भारतीय प्रशासनिक सेवा परीक्षा–१९९८ में हिन्दी माध्यम से सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर जहाँ राष्ट्र भाषा हिन्दी को अभूतपूर्व गौरव प्रदान किया है, वहीं अंग्रेजी की ओर भागनेवालों के मुँह पर जोरदार तमाचा भी मारा है।

शिशु से लेकर परास्नातक तक की कक्षाओं में सदैव प्रथम श्रेणी और विशिष्ट स्थान प्राप्त करनेवाले आनन्द समय–समय पर आयोजित होने वाली विविध स्तरीय प्रतियोगिताओं में भी उच्च स्थान प्राप्त करते रहे हैं। वे इस सफलता को प्रथम सोपान की संज्ञा देते हैं। राष्ट्रभाषा के गौरव की अभिवृद्धि के लिए वे अपने मन में विशेष संकल्प संजोये हुए हैं।

राष्ट्रभाषा के प्रति अनन्य रूप से समर्पित 'राष्ट्रधर्म' को श्री आनन्द कुमार पर गर्व तो है ही, वह हार्दिक बधाई देने के साथ ही उनका शत–शत अभिनन्दन करता है। **– सम्पादक**

अद्भुत क्षमतावान् आयुर्विज्ञानवेत्ता सुश्रुत

- डॉ० शैलेन्द्रनाथ कपूर

आयुर्वेद शब्द दो शब्दों 'आयुष' तथा 'वेद' से मिलकर निर्मित है। आयु से तात्पर्य जीवन से है और वेद का तात्पर्य है जानना। इस प्रकार जीवन–सम्बन्धी ज्ञान अथवा दीर्घायु प्राप्त करने का ज्ञान आयुर्वेद है। प्राचीन भारत के अनेक आयुर्वेदाचार्यों के नाम अश्विनीकुमार, धन्वन्तरि, सुश्रुत, आत्रेय पुनर्वसु, कश्यप, जीवक, चरक, नागार्जुन, वाग्भट आदि मिलते हैं। इनमें आचार्य सुश्रुत शल्य-चिकित्सक (सर्जन) के रूप में न केवल भारत में, वरन् एशिया महाद्वीप के अनेक देशों में अत्यन्त श्रद्धा के साथ स्मरण किए जाते हैं।

सुश्रुत द्वारा वैद्यों को दिये गये निर्देशों में सर्वत्र मानवता की भावना परिलक्षित होती है। उनके अनुसार वैद्यों को रोगियों को अपने बन्धु–बान्धव जैसा मानकर चिकित्सा करनी चाहिए, चाहे वे संन्यासी, मित्र, पड़ोसी, विधवा, अनाथ, दीनहीन या पथिक क्यों न हों। जो लोग धन के लिए चिकित्सा करते हैं, वे स्वर्ण–राशि को छोड़कर धूलि के लिए श्रम कर रहे हैं। कुशल वैद्य वह है, जो सत्यनिष्ठ है और जिसके हृदय में उत्साह है। सभी प्राणियों के प्रति कल्याण की भावना, प्रतिदिन खड़े होकर या बैठकर रोगी का निदान तथा अपनी जीविका के लिए लोभरहित होकर उपयुक्त धन लेना चाहिए। वैद्य के वस्त्रों से शान्ति एवं आचरण से मानवता टपकनी चाहिए। वाणी में कोमलता, सत्य और विश्वसनीयता होनी चाहिए। वस्तुतः आचार्य वैद्य एवं आयुर्वेद के विद्यार्थी दोनों में धैर्य, तीक्ष्ण–बुद्धि, सत्वभाव तथा लोभरहित होने का गुण आवश्यक है।

सुश्रुत के जन्म एवं काल के सम्बन्ध में मतभेद है। कतिपय साहित्यिक उल्लेखों के आधार पर इस सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। उदाहरणतया महाभारत के वनपर्व में महाराज गाधि का उल्लेख मिलता है, जो अमरकीर्ति वंश में जन्मे एक धर्मात्मा एवं प्रजाप्रिय सम्राट् थे। वे कान्यकुब्ज के राजवंश के थे। उनके पुत्र महर्षि विश्वामित्र थे। उन्होंने क्षत्रिय पिता की सन्तान होकर भी अपने ज्ञान एवं तप के प्रभाव से ब्राह्मणत्व का वरण किया था। इन्हीं विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत थे (विश्वामित्र सुत : श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति– सुश्रुत संहिता, उत्तर० अ० ६६४)। महाभारत के अनुशासनपर्व (अध्याय ४) में विश्वामित्र के कई पुत्रों के नाम मिलते हैं। उनमें सुश्रुत का भी नाम है। यदि इस समीकरण को समीचीन माना जाय, तो स्पष्ट होता है कि आचार्य सुश्रुत पंचाल क्षेत्र के कान्यकुब्ज में उत्पन्न हुए थे।

आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि के प्रपौत्र का नाम दिवोदास था। दिवोदास काशी में आयुर्वेदाचार्य थे। सुश्रुत द्वारा लिखित ग्रन्थ 'सुश्रुत–संहिता' प्राप्य है। इसमें उल्लेख है कि सुश्रुत की शिक्षा काशी में आचार्य दिवोदास द्वारा हुई। सुश्रुत संहिता में १२० अध्याय हैं। इन्हें ५ भागों मे विभक्त किया गया है–

(१) सूत्र स्थान, (२) निदान स्थान, (३) शरीर स्थान, (४) चिकित्सा स्थान एवं (५) कल्प स्थान। इसमें परिशिष्ट में उत्तरतन्त्र जोड़ा गया, जिसमें ६६ अध्याय हैं। यह गद्य–पद्य में लिखी गयी है। सुश्रुत संहिता में आयुर्वेद के आठ अंग बताये गये हैं, किन्तु प्रधान रूप से शल्य–शास्त्र का विस्तृत विवेचन किया गया है। आयुर्वेद के आठ अग निम्न प्रकार हैं–

१. शल्य–तन्त्र :– 'शल्य का अर्थ है दुःख या पीड़ा, अतः जिन विधियों से शल्य को दूर किया जाय, उसका समावेश शल्यतन्त्र में होता है।

२. शालाक्य–तन्त्र :– किसी धातु या लकड़ी की

सलाई को 'शलाका' कहते हैं। गले के ऊपर के आँख, कान, नाक आदि अवयवों के रोगों की चिकित्सा को 'शालाक्यतन्त्र' कहा जाता है।

३. काय–चिकित्सा :– औषधियों द्वारा की जाने वाली शारीरिक चिकित्सा को 'काय चिकित्सा' कहते हैं।

४. भूत–विद्या :– उन्माद से सम्बन्धित रोगों के लिए भूत–विद्या का उल्लेख मिलता है।

५. कौमारभृत्य :– इसे प्रसूति–विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें गर्भिणी स्त्री, नवजात शिशु तथा बालकों के रोगों का निदान किया जाता था। बौद्ध साहित्य में वैद्य जीवक को कौमारभृत्य जीवक की संज्ञा दी गयी है।

६. अगद–तन्त्र :– इसे 'विषतन्त्र' भी कहा जा सकता है। विष दो प्रकार के होते थे (i) स्थावर (ii) जांगल।

वनस्पतियों एव बीजों के विष स्थावर विष कहलाते थे। साँप, बिच्छू आदि के विष को जगली विष कहते थे। कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए कि वह सदैव अपने पास ज़ंगली विष को पहचानने वाले वैद्यों को रखे। अर्थशास्त्र में विषकन्याओं से बचने के उपायों का भी उल्लेख मिलता है।

७. रसायन–तन्त्र :– बुढ़ापा तथा रोग दूर करने वाली औषधियों को 'रसायन' कहा गया है।

८. वाजीकरणतन्त्र :– वाजी शब्द के दो अर्थ लगाए जाते है– (i) घोड़ा (ii) वीर्य, जिन विधियों से वीर्य में वृद्धि होकर मनुष्य में घोड़े जैसी शक्ति आती है, उन्हें 'वाजीकरण' कहते हैं।

मूत्र मार्ग शोधक शलाका

एषणीशस्त्र

शर्पुखा मुरत यन्त्र

व्रण प्रक्षालन यंत्र

वडिश शस्त्र

शलाकायन्त्र

आचार्य सुश्रुत को आयुर्वेद के सभी अंगों तथा निदान का पर्याप्त ज्ञान रहा होगा; परन्तु शल्य चिकित्सा में उनका योगदान अद्भुत प्रतीत होता है। शल्य–क्रिया हेतु उन्होंने अनेक यन्त्रों, शस्त्रों तथा उपयन्त्रों का विवरण दिया है। 'सुश्रुत–संहिता' के सूत्रस्थान के सातवें एवं आठवें अध्यायों में इनका विस्तृत विवरण मिलता है। आकृतियों के आधार पर इनका नामकरण मिलता है। हड्डी निकालने के लिए सिंहमुख, व्याघ्रमुख, वृकमुख आदि चौबीस प्रकार के यन्त्र, चर्म, मांस, शिरा, स्नायु आदि निकालने हेतु 'सनिग्रह' एवं 'अनिग्रह' नामक सँडसी जैसे दो यन्त्र तथा अट्ठाइस प्रकार के शलाका यन्त्रों का प्रयोग होता था। शल्य–चिकित्सा के अन्तर्गत व्यवहृत होनेवाले कुछ शस्त्रों के नाम मण्डलाग्र, करपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, कुशपत्र, कुठारिका, वडिश, दन्तशकु, आरापत्र आदि मिलते हैं। कतिपय उपयन्त्रों के नाम रज्जु, वल्कल, लता, क्षार आदि थे। घावों को सीने के लिए वेल्लित, गोफणिका, तुन्नसेवनी एवं ऋजुग्रन्थि आदि विधियाँ थीं।

'सुश्रुत–संहिता' में यन्त्रों की संख्या १०१ तथा शस्त्रों की संख्या २० बतायी गयी है। नवागत विद्यार्थियों को विविध फलों एवं सब्जियों जैसे तरबूज, खीरे, लौकी आदि पर यन्त्रों द्वारा शल्य–कार्य का अभ्यास कराया जाता था। मृत पशुओं के शवों पर धमनियों का छेद करने की आचार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। युद्धों में बाण लग जाने पर शरीर से बाण को निकालने की विधि, सड़े हुए भाग को चाकू से
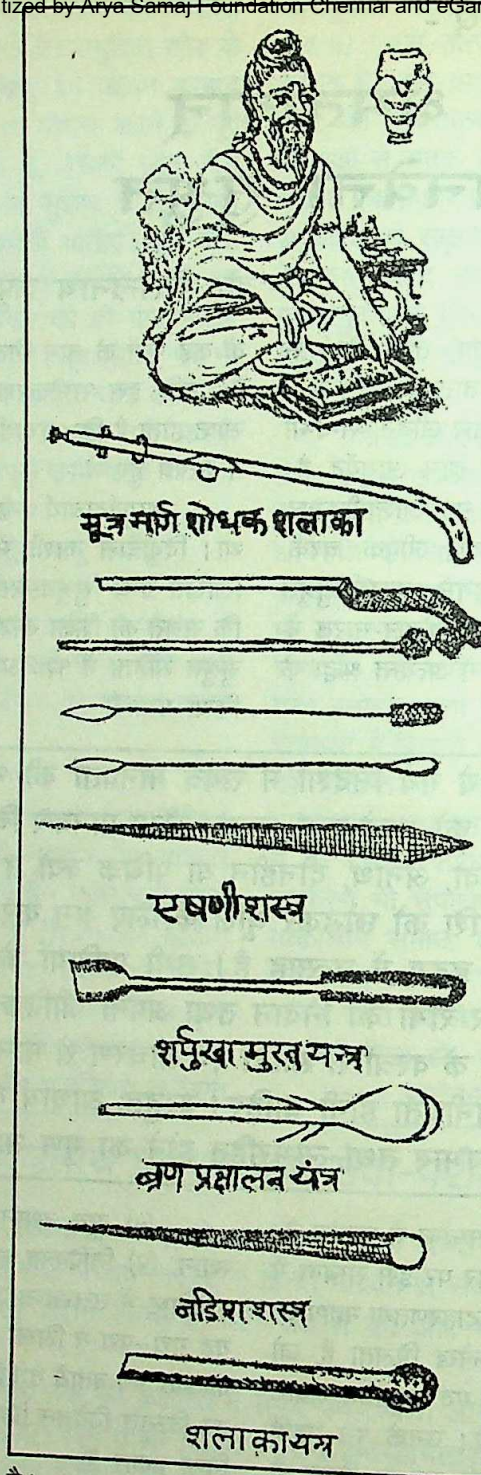
निकालने की क्रिया और फोड़े को धोकर साफ करने की क्रिया का प्रत्यक्ष अभ्यास कराया जाता था। घावों को सिलाने की रीति का प्रदर्शन किया जाता था। वमन (उल्टी) व शौच कराने की क्रिया बतायी जाती थी तथा करके दिखायी जाती थी। वस्तुतः व्यावहारिक दृष्टि से युद्धों की अधिकता तथा सामन्यरूप से आवश्यकता को देखते हुए सुश्रुत की शल्य चिकित्सा–पद्धति अपने युग की अमूल्य देन थी। युद्धभूमि में मरने वाले अनेक नीरोग सैनिकों के शरीर को शवच्छेद के द्वारा शल्य–क्रिया के लिए सर्वथा उपयुक्त माना जाता रहा होगा। सुश्रुत के अनुसार शव को पानी में सड़ाकर विद्यार्थियों को शवच्छेद करना पड़ता था। इससे वे मांसपेशियों, धमनियों, हड्डियों तथा भीतरी अंगों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते थे। शवच्छेद का उल्लेख महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में भी किया है। उदाहरणतः 'सीता को भय था कि रावण मुझे मारकर मेरे शव का भेदन उसी प्रकार करेगा, जैसे एक शल्यकृन्त गर्भस्थ जन्तु का करता है –

तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः
नूनं ममांगान्यचिरादनार्थः शस्त्रैः सितैश्छेत्स्यति राक्षसेः।

रामायण, ५.२८.६

सुश्रुत ने यद्यपि शवच्छेद का उल्लेख किया है; किन्तु कालान्तर में यह विधि बन्द हो गयी थी। सम्भवतः शल्य–क्रिया से पूर्व चेतनाशून्य करने की प्रक्रिया में सफलता नहीं मिली होगी। प्रतीत होता है कि विशिष्ट प्रकार की मदिरा द्वारा चेतनाशून्य किया जाता था, किन्तु मनुष्य के लिए इसकी उपयुक्त मात्रा के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता का अभाव रहा होगा। भोजप्रबन्ध में चेतनाशून्य करने हेतु एक प्रकार की औषधि 'मोहचूर्ण' का उल्लेख मिलता है; किन्तु इसके विषय में विस्तृत जानकारी का अभाव है।

शल्यागार में रोगी के मनोरंजन की व्यवस्था का विवरण 'सुश्रुत–संहिता' में मिलता है। उदाहरणतः रोगी का मनोरंजन करनेवालों, गाथा, आख्यायिका, इतिहास और पुराण के विद्वानों तथा गीत एवं वाद्य के आचार्यों की उपस्थिति आवश्यक थी। तीतर, बटेर, शशक, हरिण, गाय तथा हरिणियाँ आदि भी वहाँ उपस्थित रहती थीं। प्रस्तुत अंश से स्पष्ट है कि सुश्रुत का विश्वास था कि रोगी की मानसिक स्थिति को श्रेष्ठतर करने के लिए उपयुक्त वातावरण अभीष्ट है। उल्लासपूर्ण वातावरण रोगी के शीघ्र स्वास्थ्य–लाभ में सहायक होता है।

सुश्रुत मानते थे कि आयुर्वेद का ज्ञान केवल उसी विद्यार्थी को देना चाहिए, जो इसके सर्वथा उपयुक्त हो। वे

तन बहके तो मन ललकारे

– अवध नरेश तिवारी

मन को वैरागी रहने दो।
देहजनित सब सुख–दुख भोगे
मानस मन्थन विष–विषयों के,
तन की सुख–सुविधा का नायक
सहचर, सेवक, वक्ता लायक
तन का सेतु टूट जाता है
तन का हेतु छूट जाता है,
तन, मन का विश्राम नहीं है
तन, मन का चिरधाम नहीं है
मन को गृहत्यागी रहने दो।

कर्मयोग तन से सम्भव है
कर्मभोग तन का उद्भव है,
मन संयोजक कर्मयोग का
मन कारक है कर्मभोग का।

यहाँ किन्तु सहमति मुश्किल है
तन सचेष्ट तो मन काहिल है
मन तत्पर तो देह शिथिल है
सङ्गति का निर्वाह जटिल है
मन को सहभागी रहने दो।

मन विहीन तन निश्चेतन है
देहधरे का दण्ड शमन है
तनविहीन, पर, मन चेतन है
सहता सारा उत्पीड़न है

मन कर्मों का उत्तरदायी,
तन को साधे ही चतुराई
तन बहके तो मन ललकारे
निर्ममता से अड़े, सुधारे
मन को मत बागी रहने दो।

– पूरे सलई, कौडिया, गोण्डा–२७११२२ (उ.प्र.)

वैद्यों के लिए शास्त्रज्ञान एवं कार्य–कुशलता दोनों को समान रूप से आवश्यक मानते थे।

सुश्रुत के अनुसार, 'जो केवल शास्त्रों को जानता है; पर कार्य में कुशल नहीं है वह रोगों को देखकर उसी प्रकार विमूढ़ हो जाता है, जिस प्रकार भीरु व्यक्ति युद्धभूमि में पहुँचकर। जो वैद्य कर्मकुशल है; किन्तु शास्त्रज्ञान में शून्य है, वह सत्पुरुषों के बीच प्रतिष्ठा अर्जित करने में असमर्थ रहता है। आधे ज्ञान को धारण करने वाले ये लोग एक पंख वाले पक्षी के समान हैं'।

सुश्रुत ने रटने की निन्दा की है। उन्होंने रट्टू पण्डितों की तुलना गर्दभ से की है, जो माल तो ढोते हैं; पर यह नहीं जानते कि वे कौन–सी वस्तु ढो रहे हैं। सुश्रुत द्वारा वैद्यों को दिये गये निर्देशों में सर्वत्र मानवता की भावना परिलक्षित होती है। उनके अनुसार वैद्यों को रोगियों को अपने बन्धु–बान्धव जैसा मानकर चिकित्सा करनी चाहिए, चाहे वे संन्यासी, मित्र, पड़ोसी, विधवा, अनाथ, दीनहीन या पथिक क्यों न हों। जो लोग धन के लिए चिकित्सा करते हैं, वे स्वर्ण–राशि को छोड़कर धूलि के लिए श्रम कर रहे हैं। कुशल वैद्य वह है, जो सत्यनिष्ठ है और जिसके हृदय में उत्साह है। सभी प्राणियों के प्रति कल्याण की भावना, प्रतिदिन खड़े होकर या बैठकर रोगी का निदान तथा अपनी जीविका के लिए लोभरहित होकर उपयुक्त धन लेना चाहिए। वैद्य के वस्त्रों से शान्ति एवं आचरण से मानवता टपकनी चाहिए। वाणी में कोमलता, सत्य और विश्वसनीयता होनी चाहिए। वस्तुतः आचार्य वैद्य एवं आयुर्वेद के विद्यार्थी दोनों में धैर्य, तीक्ष्ण–बुद्धि, सत्वभाव तथा लोभरहित होने का गुण आवश्यक है।

आयुर्वेद के इस महान् शल्यचिकित्सक का नाम अग्निपुराण में मिलता है। इसमें उल्लेख है कि सुश्रुत को मनुष्य–आयुर्वेद के साथ–साथ अश्व एवं गवायुर्वेद (गायों के आयुर्वेद) का भी ज्ञान था। इस तथ्य की पुष्टि किसी भी अन्य स्रोत द्वारा न होने पर भी ऐसा लगता है कि अग्निपुराण में उल्लिखित सुश्रुत कोई अन्य आयुर्वेदाचार्य नहीं थे। कुछ विद्वानों ने हस्त्यायुर्वेद (हाथियों की चिकित्सा) के महान विद्वान् के रूप में सुश्रुत का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सुश्रुत के साथ ही इस ज्ञान का लोप हो गया।

सुश्रुत को हस्त्यायुर्वेद का ज्ञान था तो एक अद्भुत उपलब्धि थी; क्योंकि प्राचीन भारत में सेना के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में हाथियों की भूमिका होती थी। पोरस से हर्ष तक तथा पल्लवों के शासन काल में अनेक स्रोतों से इसकी पुष्टि होती है।

भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा–पद्धति का व्यापक प्रचार श्रीलंका, दक्षिण–पूर्व– एशिया, तिब्बत, मध्य एशिया, चीन तथा अरब देशों में हुआ। कम्बुज के संस्कृत भाषा के लेखों में सुश्रुत का उल्लेख मिलता है। सन् १८६० ई० में कर्नल बावेर को चीनी तुर्किस्तान (पूर्वी–मध्य–एशिया) से कुछ प्राचीन हस्तलिपियाँ खरीदने पर मिलीं, जो अब बावेर हस्तलिपियों के नाम से जानी जाती हैं। इनमें 'नावनीतकम्' नामक एक पुस्तक में सुश्रुत का नामोल्लेख है एवं लहसुन के गुणों का विस्तृत विवरण है। आठवीं शताब्दी ई० में बगदाद के खलीफाओं के काल में 'सुश्रुत–संहिता' का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। उन दिनों बगदाद के चिकित्सालयों में भारतीय चिकित्सकों की बड़ी माँग थी और उन्हें पूरा सम्मान दिया जाता था। खलीफा हारून–अल रशीद एक बार बीमार पड़े। बगदाद के चिकित्सक उन्हें स्वस्थ न कर सके। तब भारतीय आयुर्वेदाचार्य ने उन्हें स्वस्थ किया। सम्भव है मनका या माणिक्य नामक इस आयुर्वेदाचार्य ने 'सुश्रुत–संहिता' का सहारा लिया हो।

आयुर्वेद के दो ग्रन्थ 'अष्टांग–संग्रह' तथा 'अष्टाग–हृदय' की रचना वाग्भट ने की थी, जो क्रमशः 'चरकसंहिता' एवं 'सुश्रुतसंहिता' पर आधारित है। ग्यारवहीं शती ई० में डल्हणाचार्य नामक विद्वान् ने 'सुश्रुतसंहिता' पर टीका लिखी। उनके अनुसार नागार्जुन 'सुश्रुत–संहिता' के 'प्रतिसंस्कर्त्ता' थे। सम्भव है कि डल्हणाचार्य द्वारा उल्लिखित नागार्जुन कुषाणकालीन महान् दार्शनिक नागार्जुन हों; क्योंकि वे एक कुशल चिकित्सक भी थे।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत प्रमुखतः महान् शल्यचिकित्सक थे जिन्होंने 'अग्निकर्मविधि' नामक चिकित्सा–पद्धति का विकास किया। उनके अनुसार इस विधि से दग्ध किए गये रोग फिर नहीं उभड़ते। पुरान प्रतिश्याय (जुकाम), नेत्र रोग, हड्डियों से सम्बन्धित रोग, अर्श (बवासीर), भंगन्दर आदि में यह विधि अतिशय उपयोगी थी। वर्तमान समय में जब कैंसर के रोगियों के उपचार में आधुनिक विधि से स्थल विशेष दग्ध किये जाते हैं, तब सुश्रुत संहिता के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे हम सबके इस महान् पूर्वज आचार्य को हजारों वर्ष पूर्व काय–चिकित्सा का गहन ज्ञान था। मानवीय संवेदनाओं को समझने की अद्भुत क्षमतावाले आचार्य सुश्रुत के प्रति मानवता सदैव सिर नवायेगी। भारत को अपने इस ऋषि–कल्प आयुर्विज्ञान–वेत्ता पर गर्व होना स्वाभाविक ही है।

❑

– 'सुरेन्द्रालय', ए–३५४, इन्दिरा नगर, लखनऊ

चिट्ठी आई पेरिस से

रसप्रिया पेरिस राजधानी

- डॉ० ओम प्रकाश पाण्डेय

पेरिस प्रेम की नगरी है। लबालब प्यार से छलछलाती हुई। यदि मुझे इसे संस्कृत में रूपान्तरित करना हो, तो मैं इसे 'प्रियरसा' या 'रसप्रिया' कहूँगा। है भी यह रसप्रिया ही। वसन्त ऋतु में तो इस पर प्यार का रंग और भी चटकदार बन जाता है। उद्यानों में, हरी घास के मोटे-मोटे गद्दों पर धूप सेंकते हुए युवक-युवतियों के युग्म, बुढ़वों में भी कण्डी की राख में दबी आग की आँच की तरह, मन के अनजान गह्वरों में ढकी-ढकी प्रेम की ऊष्मा को यदा-कदा कुरेद ही देते हैं। ऐसे ही कितने वृद्धयुगलों को, जिनके शिर के सारे बाल या तो सन की तरह सफेद हो गये हैं या झड़ गये हैं, चेहरों पर जाने कितनी झुर्रियाँ उभर आयी हैं, उनके क्रियाकलापों में जब अनंग का रस उतरने लगता है, तो कभी-कभी मुझ जैसों का भी, जिसका मन वेद पढ़ते-पढ़ते कुछ ज्यादा ही जड़ या कठोर हो गया है, फिर से महाकवि विल्हण के 'विक्रमांकदेव चरित' या महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के पारायण की आवश्यकता अनुभव होने लगती है।

कभी-कभी सोचता हूँ कि जब भगवान् शिव ने अपने तृतीय नेत्र की वह्नि से सामने नृत्य की मुद्राएँ प्रदर्शित करते हुए कामदेव को भस्म कर दिया और वह बेचारा अनंग हो गया, तब भी शिव के आतंक से उसको छुटकारा नहीं मिला। अपनी पत्नी रति की तपस्या के बल पर पुनर्जन्म के लिए छटपटाते हुए मदन को खोजने पर भी भारत में शायद कहीं ऐसा ठौर-ठिकाना नहीं दिखा, जहाँ वह फिर से अवतरित हो पाता। क्योंकि हर नगर और ग्राम में, यहाँ तक कि छोटे-छोटे कोने-अँतरे में भी शिव के इतने चौरे वहाँ बने हुए हैं कि वह चाहकर भी त्र्यम्बकेश्वर से बच नहीं सकता था- इसलिए आज के प्रवासी भारतीयों की तरह बेचारे कामदेव को भी पेरिस नगरी ही अपने पुनर्जन्म के लिए सर्वथा उपयुक्त दिखायी पड़ी। अब इस नगरी में न शिव के रोष का भय था और न ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझाते हुए सन्त-महात्माओं के प्रवचन ही थे। इसलिए अनंग रूप में ही सही, उसे यहाँ खुलकर खेलने का अवसर अन्ततः मिल ही गया।

विधाता ने सम्भवतः प्यार करने के लिए ही इस नगरी की सृष्टि की है। किसी को यदि भगवान् से प्रेम करना हो, तो उसे भारत जाना पड़ता है; क्योंकि भारत मूलतः आध्यात्मिक देश है, लेकिन हाड़-माँस के मानव से प्रेम करने की लालसा यदि मन में उभर उठी है, तो शायद देवता भी एक बार पेरिस आने में ही कृतार्थता का अनुभव करेंगे।

घर से निकलते ही चहकते हुए किशोर-किशोरियों और युवक-युवतियों के युग्मों की युगनद्ध मुद्राएँ तो आपको यहाँ सर्वत्र दिखेंगी ही- सड़कों पर, फुटपाथों पर, चौराहों पर, बसों में, मेट्रो में और पार्कों में भी जोड़े मिलेंगे, लेकिन उनमें ओछापन या छिछोरापन कहीं नहीं दिखेगा। चुम्बन प्यार की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक स्वीकार्य रूप है, लेकिन इसके प्रकारों में बहुत अन्तर है। गाल पर अंकित चुम्बन प्रेमी या प्रेमिका के प्रेम का प्रतीक नहीं होता, वह केवल परिचय, आत्मीयता, स्नेह और सद्भाव का सूचक होता है। और यह चुम्बन हर उम्र के लोगों के मध्य प्रचलित है। सत्तर वर्षीया वृद्धा जब किसी बीस-पच्चीस वर्ष की युवती के कपोल को ललक कर चूमती है, तो वह उसके हृदय में निहित आत्मीयता के अनन्त आकर का द्योतक है। असंख्य आशीर्वाद उसमें निहित हैं। प्रेमियों के प्रेम के प्रतीक में भी कहीं हल्कापन नहीं दिखेगा। एक-दूसरे के प्रति अपार प्रेम का अनुभव करते हुए भी युवक-युवती सार्वजनिक स्थलों पर अश्लीलता का प्रदर्शन नहीं करते। **एक-दूसरे के सामीप्य सुख का कण-कण चुनते हुए भी वे ऐसी हरकतें नहीं करते, जिनमें अशालीनता या घटियापन हो। इसके विपरीत एक-दूसरे के मनोभावों को परखते हुए, अन्तरंग विश्वास के इन क्षणों को वे भावी जीवन के झिलमिल पट को बुनने में सार्थक करते हैं। आत्मीयता के बेहद अन्तरंग क्षणों में खोये हुए इन युग्मों को देखकर भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका या बांगलादेश से आये हुए बहुसंख्यक लोग प्रायः इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि महानगरी पेरिस की हर लड़की चरित्रहीन है या उनके सामने अवसर पाते ही बिछ जाने के लिए तैयार खड़ी है। उनका यह भ्रम बहुत बार तभी टूटता है, जब उनके गाल पर इस तरह के बेहूदे प्रस्ताव**

को सुनते ही लड़की के हाथ का झन्नाटेदार झापड़ पड़ता है। पेरिस की लड़कियाँ भी अपने शील की रक्षा उसी प्रकार तत्परता से करती हैं, जिस प्रकार से अन्य देशों की लड़कियाँ। यहाँ भी परिवारों में मर्यादा की परिपालना ही सिखायी जाती है, उच्छृंखलता नहीं। यह दूसरी बात है कि अपने जीवन साथी की खोज उन्हें स्वयं करनी पड़ती है, इसलिए लड़कों से बेझिझक मिलने-जुलने में उन्हें उस तरह का संकोच आड़े नहीं आता, जिस तरह भारतीय उप महाद्वीप की बालिकाओं के मन को वह आबद्ध किये रहता है। किशोर-किशोरियों के इस उन्मुक्त मिलन में भी शील की लक्ष्मण रेखाओं का प्रायः उल्लंघन नहीं ही होता है। युवजन परस्पर मिलते-जुलते हैं, वार्तालाप करते हैं, साथ-साथ खाते-पीते हैं, थोड़ा-बहुत स्पर्श आदि के क्षणों में भी गुजरते ही हैं, लेकिन सह-जीवन के निर्णय से पूर्व प्रायः इससे आगे नहीं बढ़ते हैं। उन्मुक्तता के इस वातावरण में भी नग्नता के दृश्य तो अपवाद रूप में भी कभी नहीं दिखायी पड़े और बलात्कार तथा बलात्कार पूर्वक कन्या-हत्या के अपराधों की संख्या तो नगण्य ही है।

विवाह किये बिना भी, अठारह साल से ऊपर के वयस्क युवक-युवतियों को यहाँ एक साथ रहने की सुविधा है, लेकिन उसके लिए उन्हें मेरी (नगरपालिका) में जाकर एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। इस व्यवस्था का नाम है 'कोंकू-बिनाज'। वास्तव में यह वैवाहिक बन्धन में बँधने से पूर्व जीवन-सहचर के परीक्षण की प्रक्रिया है। अविवाहित सहजीवन का आरम्भ किया ज्याँ पाल सार्त्र ने, जिनकी ख्याति अस्तित्ववादी लेखक तथा दार्शनिक के रूप में रही है। स्व० सार्त्र अपनी प्रिया और प्रख्यात लेखिका सिमान दि ब्वा के साथ जीवनकाल में विवाह किये बिना ही रहने लगे थे। सिमान दि ब्वा का नाम महिला-अधिकारों के लिए संघर्षशील लेखिका के रूप में बहु चर्चित है। उन्होंने 'द सेकेण्ड सेक्स' नामक अपनी भारी-भरकम पुस्तक के माध्यम से महिलाओं की अनेक समस्याओं को उभारने का प्रयत्न किया था। नारी-जागरण के इस क्रम का आरम्भ सन् १९४५ के बाद ही हुआ। १९४५ से पूर्व तो यहाँ स्त्रियों को मतदान करने का अधिकार भी नहीं था। लेकिन एक बार नारी जब घर की चहारदीवारी से निकल कर बाहर आ गयी, तो उसने फ्रान्स में फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा और आज फ्रान्स के सार्वजनिक जीवन में लगभग हर छोटे-बड़े पद पर नारी को काम करते हुए देखा जा सकता है। कार्य के क्षेत्र में पुरुष की समकक्षता पाने का अवसर तो नारी को मिल गया, लेकिन उससे अनेक समस्याओं को पनपने का अवसर भी मिला। अपने फ्रान्सीसी मित्रों से जब भी इस विषय में चर्चा करने के अवसर मिले, तो पता चला कि फ्रान्सीसी पुरुषों की मनःस्थिति में अब भी विशेष परिवर्तन नहीं आया है। यहाँ का पुरुष नारी को अपनी प्रेयसी, सन्तानों की माता और गृहिणी के रूप में ही अब भी देखना चाहता है। वह उसके प्रतिस्पर्द्धी रूप को तो अब भी अन्तःकरण से स्वीकार नहीं कर पाया है। पुरुष ही नहीं, वयोवृद्ध स्त्रियाँ भी आधुनिक नारी की उच्छृङ्खलता की शिकायत करती हुई मुझे मिलीं। अपने पुराने संस्कारों से जुड़ी होने का ढिंढोरा पीटती हुई भी वे मिलीं। गतवर्ष कुछ ऐसी ही वयोवृद्ध महिलाएँ, जिनकी उम्र साठ वर्ष से ऊपर थी, मुझसे कठोपनिषद् और नागानन्द नाटक पढ़ने आया करती थीं। पढ़ने का क्रम रुकने और वार्तालाप का अवसर मिलते ही वे दोनों अपनी मर्यादाप्रियता और प्राचीन संस्कारशीलता का उल्लेख करने लगती थीं। कपड़ों की दृष्टि से, शीत के प्रकोप से बचने के लिए भले ही पतलून पहनने लगी थीं। लेकिन मन से वे आज भी अपनी पुरानी विचारधारा से ही लगाव अनुभव करती थीं। पुरुष के साथ समकक्षता पाने की होड़ में, नारी के भीतर थोड़ी-बहुत अधिकार-लालसा और अहंकार की तरंगें भी प्रवाहित हुईं। परिणामतः सामंजस्य के स्थान पर संघर्ष की स्थितियाँ अधिक बढ़ गयीं। आज यूरोप भर में, विवाह-विच्छेद के बढ़ते हुए आँकड़ों के मूल में, ध्यान से देखने पर, दाम्पत्य-जीवन को कुतरते हुए अहंकार के ये कीटाणु सरलता से दिख जायेंगे। खैर, इसकी चर्चा आगे कभी की जायेगी। अभी तो बात चल रही है प्रेममय माधुर्य की और मात्र भौतिकता में अथवा केवल इहलोक के सुख में विश्वास करनेवाला पश्चिमी जगत् जीवन के कण-कण आनन्द को निचोड़ लेना चाहता है नग्न नृत्यों (स्ट्रिपटीज) कैबरे और कामुकतापूर्ण खेल-तमाशों के माध्यम से। पेरिस में ही एक इलाका है पिगाल नाम का। यह मोंमार्त क्षेत्र में (पहाड़ियों पर अवस्थित) है। यहाँ प्रथम राज्य-क्रान्ति के समय, सुनते हैं, क्रान्तिकारियों के केन्द्र थे। आज यह दो कारणों से विख्यात है- पहला यह कि यहाँ सेक्स-शाप नाम से बड़ी संख्या में कामकला के वे केन्द्र हैं। जहाँ नानाविध श्रव्य-दृश्य माध्यमों से कामकला का सशुल्क प्रदर्शन किया जाता है।

फ्रान्स के उन खोजी विद्वानों ने, जो भारत में आज भी सती-प्रथा, भ्रूण-हत्या, छुआछूत, जाति-पाँति

और नारी–उत्पीड़न इत्यादि के वास्तविक–अवास्तविक विवरणों को बटोरने के लिए एड़ी–से–चोटी का जोर लगाये हुए हैं, निश्चित ही पिगाल की सेक्स–शापों पर भी कुछ गवेषणा की होगी, लेकिन मैंने जब भी इनके विषय में उन महाविद्वानों से कुछ पूछा, वे कतराते ही रहे। इनके विषय में उन्होंने यदि कुछ लिखा भी होगा, तो वह फ्रान्सीसी भाषा में होगा– अपने घर की बात घर में ही रहे, यह सोचकर। लेकिन कुछ तटस्थ व्यक्तियों से यह जानकारी अवश्य मिली कि इन काम–कला केन्द्रों में काम करने वाली अधिकांश लड़कियाँ विदेशी हैं, फ्रान्सीसी नहीं। ये उन देशों से आयी हैं, जहाँ राजनीतिक स्थिरता का अभाव था। ये शरणार्थी लड़कियाँ फ्रान्स की इस गरीयसी नगरी में अपना पेट इसी वेश्यावृत्ति से भरने के लिए मजबूर हैं। काम–केन्द्रों का यह व्यवसाय विधिवत् कानून के संरक्षण में चलता है। इस प्रकार के व्यवसाय जर्मनी में भी उन्मुक्त रूप से चल रहे हैं। दुनिया भर में समता, स्वतन्त्रता और मानव–अधिकारों का ढिंढोरा पीटने वाले ये पश्चिमी देश नारी की अस्मिता, लज्जा, मर्यादा और विवशता की बिक्री किस बेशर्मी से कर रहे हैं, इसका पूरा ज्ञान तो इन केन्द्रों के सर्वेक्षण के बाद ही हो सकता है। फ्रान्स और जर्मनी के अनेक टी०वी० चैनलों पर काम–क्रीड़ाओं का उन्मुक्त प्रदर्शन रात्रि में ११ बजे के बाद प्रायः प्रतिदिन देखा जा सकता है। जर्मनी का एक चैनल तो ऐसा भी है, जो कला के हर पक्ष को, चाहे वह चित्रकला हो या मूर्त्तिकला या वस्त्र–विन्यास कला, उसे कामक्रीड़ा के साथ सम्बद्ध करके ही प्रदर्शित करता है। रति क्रीड़ा में भी अप्राकृतिक तरीकों का समावेश तेजी से बढ़ता जा रहा है। पेरिस में, कभी–कभी ऐसे पोस्टर भी दिखायी पड़ जाते हैं, जिनमें समलैंगिक सम्बन्धों के आग्रही युगल अपने अधिकारों के लिए संघर्षशील दिखायी देते हैं। वे भी, बिना विवाह किये, अपने ही वर्ग के सहचर के साथ सहजीवन बिताने का अधिकार पाने के लिए छटपटा रहे हैं– लेकिन संयोग से यहाँ के शासन ने उन्हें अभी यह अधिकार प्रदान नहीं किया है। स्त्री–वेश्याओं के साथ पुरुष–वेश्या का अस्तित्व भी यहाँ है। कभी–कभी गोसाईं बाबा की यह चौपाई इस भूमि पर पूरी तरह सार्थक लगती है– "मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं, मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।" बाबा की ये पंक्तियाँ भी शायद कुछ इसी तरह की स्थितियों की कल्पना करके लिखी गयी होंगी– "अबला बिलोकहिं पुरुषमय, जग पुरुष सब अबलामयम्।"

पश्चिम की इस दुनिया में, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के

शक्ति का अर्चन करेंगे, शक्ति का अर्जन

– डॉ० अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'

राम के वंशज न यदि रामत्व पायेंगे,
आज तो कैसे विजयदशमी मनायेंगे?

शूर्पणखा बनी अनर्गल घोर अपसंस्कृति,
आर्य संस्कारी अलख हम कब जगायेंगे?

शान्ति–सीता हर चुकी है वासना–लंका,
कब इसे हनुमान संयम के जलायेंगे?

हो रहा उद्दण्ड फिर अभिमान का सागर,
भय बिना इसको विनय कैसे सिखायेंगे?

कुम्भकर्णी नींद में सोया पड़ा सच है,
आपकी सौगन्ध, हम इसको उठायेंगे।

अजित भ्रष्टाचार के जो मेघनाद हुए,
नीति के लक्ष्मण उन्हें रण में हरायेंगे।

हम जलाते ही रहेंगे कागजी रावण,
या कभी मन के तिमिर को भी जलायेंगे?

राम! त्रेता में हुआ था एक ही दशशिर,
अब असंख्य बढ़े, न क्यों फिर आप आयेंगे?

शक्ति का अर्चन करेंगे शक्ति का अर्जन,
शक्ति से हम राक्षसी सत्ता मिटायेंगे।

– गोला गोकर्णनाथ–२६२८०२,
खीरी (उ०प्र०)

अतिरिक्त अन्य सब सम्बन्ध शायद बिल्कुल गौण हो गये हैं। अन्य देशों में, जहाँ भरी–पुरी जवानी में आदमी बूढ़ा दिखने लगता है, गृहस्थी के बोझ तले दबी युवती भी असमय में वृद्धा हो जाती है, वहीं इस महानगरी में वृद्धाएँ भी अनवद्य यौवन से भरपूर दिखने के लिए तरह–तरह के चोंचलों में उलझी नजर आती हैं। गोस्वामी जी की ही एक पंक्ति में थोड़ी फेर–बदल यदि कर दी जाये, तो वह कुछ इस तरह की हो सकती है– "बुढ़ियन के सिंगार नवीना।" मेट्रो या बस के डिब्बे में जब कोई गरिमामयी

(शेष पृष्ठ ८६ पर)

मेरे सिर पर ऋण कभी न रहे

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्
तृतीय लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणा अक्षियेम।।

अथर्व० ६/११७/३

अर्थ– (अस्मिन् अनृणाः) इस लोक में हम अनृण होयें, (परस्मिन् अनृणाः) पर लोक में अनृण हों और (तृतीये लोके अनृणाः स्याम) तीसरे लोक में भी अनृण होयें। (ये देवयाना पितृयाणाश्च लोकाः) जो देवयान या पितृयान मार्गों के लोक हैं उनमें (सर्वान् पथः) सब मार्ग चलते हुए हम (अनृणाः आ क्षियेम) ऋण मुक्त होकर रहें, बसें।

विनय– मनुष्य तो जन्म से ही कुछ ऊँचे ऋणों से बँधा हुआ है। मनुष्य उत्पन्न होते ही ऋणी हैं और उन वास्तविक ऋणों से मुक्त होना ही मनुष्य जीवन की इतिकर्तव्यता है। मनुष्य ने संसार के तीनों लोकों को भोगने के लिए जो तीन शरीर पाये हैं, उसी से वह तीन प्रकार से ऋणी है। हे प्रभो, हम चाहे पितृयाण मार्ग के यात्री हों या देवयान के, हम इन तीन लोकों की अनृणता करते हुए ही रहें। हम अपनी सब शक्ति और सब यत्न इन ऋणों को उतारने में ही व्यय करते हुए जीवन बितायें। इस स्थूल भूलोक का ऋण अन्यों को भौतिक सुख देने से, तथा समाज को कोई अपने से श्रेष्ठतर भौतिक सन्तान दे जाने से उतरता है। इसी तरह मनुष्यों को जगत् की प्राकृतिक अग्नि आदि शक्तियों से तथा साथी मनुष्यों की निःस्वार्थ सेवाओं से जो सुख निरन्तर मिल रहा है उसके ऋण को उतारने के लिए, इन यज्ञ–चक्रों को जारी रखने के निमित्त उसे यज्ञकर्म करना भी आवश्यक है और तीसरे ज्ञान के लोक से मनुष्य को जो ज्ञान का परम लाभ हो रहा है उसकी सन्तति भी जारी रखने के लिए स्वयं विद्या का स्वाध्याय और प्रवचन करके उससे उसे उऋण होना चाहिए। जो त्यागी लोग सांसारिक भोग की कामना नहीं करते अतएव जिन्हें ये तीन ऋण इस तरह नहीं बाँधते, उन ब्रह्मचर्य, तप, श्रद्धा के मार्ग से चलने वाले देवयान के यात्रियों को भी अपने तीनों शरीरों को उपयोग में लेने का ऋण चुकता करना चाहिए अर्थात् अपने भौतिक शरीर से वे बेशक सन्तान उत्पन्न करना आदि न करेंगे पर उस द्वारा सेवा के अन्य स्थूल कर्म उन्हें करने ही चाहिए और अपने प्राण व मन के दूसरे शरीर से प्रेम, दया आदि की धाराएँ बहानी चाहिए तथा द्युलोक सम्बन्धी तीसरे विज्ञानमय शरीर द्वारा ज्ञान–सूर्य बनकर ज्ञान की किरणें प्रसारित करते हुए तीसरे लोक में भी अनृण होना चाहिए।

ओह ! मनुष्य तो सर्वदा ऋणों से लदा हुआ है। जो जीव इस त्रिविध शरीर को पा कर भी अपने को ऋणबद्ध नहीं अनुभव करता, वह कितना अज्ञानी है ! हमें तो, हे स्वामी, ऐसी बुद्धि और शक्ति दो कि हम चाहे देवयानी हों या पितृयानी, हम सब लोकों में रहते हुए, सब मार्गों पर चलते हुए, लगातार अनृण होते जायें। अगले लोक में पहुँचने से पहले पूर्वलोक के ऋण हम अवश्य पूरे कर दें और अगले मार्ग पर जाते हुए पिछले मार्ग के ऋण उतार चुके हों। इस तरह लगातार घोर यत्न करते हुए हम सदा, सब लोकों में अनृण होकर ही रहें। □

(नाभाटा २८-१२-६७)

– आचार्य अभयदेव

गाय के पेट में लोहे की कीलें, गणेश की मूर्त्ति और प्लास्टिक-थैलियाँ

मुम्बई में इंसानों के लिए चिकित्सा शिविर आयोजित होते ही रहते हैं। यह चिकित्सा शिविर इस अर्थ में अनोखा था कि यह बेजुबान जीवों के लिए था। मुम्बई के जाने-माने पशु-रोग विशेषज्ञ आये और उन्होंने समुचित चिकित्सा कर इन पशुओं को यन्त्रणामुक्त किया।

मुम्बई जीवदया मण्डली की इस गाय की तकलीफ कई दिनों से देखी नहीं जाती थी। पेट की भयानक पीड़ा से यह गाय बुरी तरह तड़पती और उसकी अव्यक्त पीड़ा पनियाई आँखों से टपकती रहती। आपरेशन करके डॉक्टरों ने उसे इस पीड़ा से मुक्ति दिलायी।

जब आपरेशन के लिए इस गाय का पेट खोला गया तो देखने वालों की आँखें फटी की फटी गयीं। पेट के भीतर मौजूद थीं लोहे की कीलें, गणेशजी की मूर्त्ति, रबर के स्टैम्प, कोकाकोला के ढक्कन और हाँ, ढेर सारी प्लास्टिक की थैलियाँ। अकेले इन थैलियों का वजन ५५ किलो आँका गया।

ऐसे अन्य कई जानवरों का आपरेशन भी किया गया। इस गौशाला में मुख्यतः कत्लखाने से छुड़ाये गये और बीमार पशु ही रखे गये हैं।

इस प्रकरण ने मुम्बई व देश के अन्य हिस्सों में प्लास्टिक की थैलियों से होने वाले प्रदूषण के सिवा एक अन्य भारी खतरे की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। लोगों को चाहिए कि वे घर के अवशिष्ट खाद्य पदार्थों का कचरा फेंकने की जगह के पास साफ-सुथरे ढंग से डालें, प्लास्टिक की थैलियों में भरकर तो कतई नहीं। गाय, भैंस व अन्य जानवरों को जब कुछ खाने को नहीं मिलता, तो वे थैलियों सहित उन्हें खा लेते हैं।

प्लास्टिक का यह कचरा धीरे-धीरे उनके पेट में एकत्र होता रहता है और यदि समय से परिचर्या नहीं हुई जैसी इस मामले में इस गाय की हुई, तो वह उनकी जान भी ले लेता है। □

(पृष्ठ ४८ का शेष)

पुष्कर– जहाँ ब्रह्माजी ने ...

मन्दिर, गुरुद्वारा, शाही मस्जिद, दादू द्वारा, रामसनेही– रामद्वारा, पंचकुण्ड, नंदा, सरस्वती, जमदग्नि, नामदेव, भर्तृहरि, अगस्त्य और मुनि विश्वामित्र के आश्रम हैं। ये पर्यटकों और विभिन्न मतावलम्बियों की आस्था और रुचि के केन्द्र हैं।

ब्रह्मा व रमा वैकुण्ठ मन्दिर

ब्रह्मा मन्दिर में आदमकद ब्रह्मा जी की चतुर्भुजी प्रतिमा है। पालथी मारकर बैठे ब्रह्मा जी की यह प्रतिष्ठापित मूल मूर्त्ति नहीं है, क्योंकि इसकी स्थापना १७७९ में की गई थी। विश्व में ब्रह्मा के इस एकमात्र मन्दिर का जीर्णोद्धार सबसे पहली बार जगद्गुरु शंकराचार्य ने कराया, ऐसी भी मान्यता है। संगमरमर से निर्मित वर्तमान मन्दिर में पातालेश्वर, पंचमुखी और नंदेश्वर महादेव तथा नारद, लक्ष्मीनारायण, गौरीशंकर, सूर्यदेव दत्तात्रेय, सप्तऋषि और नवग्रहों के मन्दिर हैं।

सावित्री मन्दिर

ब्रह्मा मन्दिर के दक्षिण पश्चिम की ओर रत्नगिरि पर्वत पर सावित्री मन्दिर है। यहाँ पार्वती जी के चरण–चिह्न और सरस्वती जी की प्रतिमा स्थापित है।

रमावैकुण्ठ मन्दिर

पुष्कर झील के पूर्व में स्थित है रामानुज–सम्प्रदाय का दक्षिणी स्थापत्य शैली में निर्मित रमावैकुण्ठ मन्दिर। यहीं रंगजी के मन्दिर में स्वर्णजटित गरुड़–स्तम्भ है।

वराह मन्दिर

विष्णु के वराह अवतार का मन्दिर चौहान राजा अरणोराज (११२३–११५०) द्वारा बनवाया गया है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में यह मन्दिर १५० फीट ऊँचा था। अब केवल २० फीट ऊँची दीवारें शेष हैं। यही १८१६ ईस्वी में मराठा शासक द्वारा फिर बनवाया था। वर्तमान में बनवाया मन्दिर है। यहाँ का आत्मेश्वर मन्दिर भी काफी प्रसिद्ध है।

पुष्कर के घाट

पुष्कर के घाटों की महिमा प्रसिद्ध है, जिनमें इन्द्र, महादेव, राम, जनक, बद्री, चीर, नृसिंह, मुरली, वशी, विश्राम, गऊ, यज्ञ, ब्रह्म, परशुराम और सप्तऋषि प्रसिद्ध हैं। संगमरमर और लाल पत्थर से बने घाट पूजा–अर्चना, परिक्रमा और आरती के लिए प्रसिद्ध हैं।

गऊ घाट पर तो सभी विशिष्ट जन पूजा करते हैं। पुष्कर में आवास की दृष्टि से अनेक धर्मशालाएँ, होटल और राजकीय आवास उपलब्ध हैं। नमदा बनाने का काम यहाँ प्रचुरता से होता है। पुष्कर के गुलाब और शहतूत अब विश्व के कोने–कोने में निर्यात किये जाते हैं। पुष्कर के बाजार में आभूषण, पीतल, चन्दन और संगमरमर की मूर्तियाँ, खिलौने और अन्य कलात्मक वस्तुएँ पर्यटकों का ध्यान आकृष्ट करती हैं। पुष्कर के अंगूर तो प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं।

देश–विदेश से लोग तीर्थ राज पुष्कर के दर्शन के लिए आते हैं। सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के इस एक मात्र मन्दिर–स्थल पुष्कर के विकास के लिए राज्य सरकार ने अनेक प्रयास किये हैं। घाटों की मरम्मत, सरोवर की खुदाई, सड़कों की मरम्मत एवं विस्तार, वृक्षारोपण, जल स्तर की रोकथाम और सुनियोजित विस्तार का लाभ क्षेत्र में आने वाले पर्यटकों और श्रद्धालुओं को स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ❒

विश्वासों के दीप

–डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध'

घुप्प अंधेरों में जलते हैं जब भी विश्वासों के दीप,
पथ में साथ–साथ चलते हैं मन के अहसासों के दीप।

बिना बुलाए कभी जिन्दगी आती नहीं किसी के पास,
प्रेम–क्षितिज पर ही मिलते हैं भू से आकाशों के दीप।

रंग–रूप रस और रास के उजले–धुँधले कितने चित्र,
यौवन उपवन में खिलते हैं रोज अमलतासों के दीप।

एक अकेलापन जगता है जिसकी कभी न सोती आँख,
सूनी आँखों में ढलते हैं, मरुथल की प्यासों के दीप।

सिर्फ काठ के द्वार जड़े हैं, मन के द्वार न होते बंद,
भीतर किसी ओर खुलते हैं बुनी हुई साँसों के दीप।

–२५४, पद्मावती कालोनी 'ए', अजमेर रोड,
जयपुर–३०२०१६ (राजस्थान)

सत्ता हथियाने के लिए व्याकुल सोनिया गांधी

– डॉ० भवानीलाल भारतीय

भारत की सर्वोच्च सत्ता– प्रधानमन्त्री का पद प्राप्त करने के लिए इटली के एक कैथोलिक ईसाई परिवार में जन्मी ५२ वर्षीया, स्व० राजीव गांधी की विधवा पत्नी सोनिया माइनो (गांधी) आकुल–व्याकुल दिखायी देती हैं। एक बार धमकी भरे स्वर में उन्होंने अपने विरोधियों को ललकारते हुए कहा था– 'वे नहीं जानते, मैं किस मिट्टी की बनी हूँ।' इसके उत्तर में राजस्थान पत्रिका के एक पाठक जगदीशचन्द्र जवाहरनगर, जयपुर ने लिखा था (रा० प० १२ अगस्त १९९९) कि सोनिया के पिता सीन्योर माइनो फासिस्ट नेता मुसोलिनी के कट्टर अनुयायी थे तथा उस तानाशाह की फासीवादी पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। यदि इसमें कुछ असत्य है, तो कांग्रेस प्रवक्ता श्री कपिल सिब्बल को इसका सप्रमाण प्रतिवाद करना चाहिए। बंगाल की भारतीय जनता पार्टी द्वारा दी गयी जानकारी के अनुसार इटली की इस लड़की ने राजीव से विवाह करने से पूर्व उसे ईसाइयत कबूल करने के लिए विवश किया था। इस अवसर पर उसका परिवर्तित ईसाई नाम राबर्टो रखा गया। (इण्डियन एक्सप्रेस, चण्डीगढ़, संस्करण १७–९–९९)

गांधी–नेहरू परिवार की बहू?

श्रीमती सोनिया गांधी द्वारा यह प्रचारित किया जाना, कि वह गांधी नेहरू परिवार की बहू है, सदस्या है, अर्ध सत्य है। गांधी नेहरू परिवार कहने से आम भारतवासी महात्मा गांधी तथा पं० जवाहरलाल नेहरू के परिवार का अर्थ लेते हैं, जब कि सोनिया का इन परिवारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। महात्मा गांधी का कोई पारिवारिक सदस्य भारत की राजनीति में विशेष सिद्धि या सफलता प्राप्त नहीं कर सका। उनके पौत्र राजमोहन गांधी तथा तुषार गांधी ने राजनीति में पदक्षेप तो किया, किन्तु असफल रहे। अतः गांधी (मोहनदास कर्मचन्द) से सोनिया का कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध नहीं रहा।

जहाँ तक पं० जवाहरलाल नेहरू का सवाल है, उनका कोई पुत्र तो था ही नहीं। पुत्री इन्दिरा अवश्य राजनीति में आयीं, किन्तु उनका परिवार तो उनके पति स्व० फीरोज गांधी का परिवार है। आज तेजस्वी, दबंग तथा सत्ता विरोधी फीरोज को कोई कांग्रेसी बन्दा भूल कर भी याद नहीं करता। सोनिया की याददाश्त अपने पति और सास से आगे नहीं जाती।

गांधी नहीं गैंडी

यह भी स्पष्ट हुआ है कि फीरोज गांधी जिस पारसी परिवार में जन्मे थे, वह गांधी नहीं, अपितु गैण्डी था, जिसे जानबूझ कर गांधी का नाम दे दिया गया। फीरोज गांधी पारसी अवश्य थे, किन्तु उन्होंने हिन्दू जीवन मूल्यों को अपना लिया था, इसलिए उनका विवाह पं० नेहरू ने वैदिक विवाह विधि से करवाया तथा उनकी अन्त्येष्टि भी हिन्दू विधि से हुई। अन्यथा पारसी विधान में तो शव को पक्षियों का भोजन बनने के लिए मृत्यु की मीनार में छोड़ दिया जाता है। राजीव गांधी की अन्त्येष्टि हिन्दू पद्धति से ही हुई।

भारतीय नागरिकता संजय की मृत्यु के बाद

विवाह के बाद कई वर्षों तक सोनिया ने भारत की नागरिकता लेने की कोई चिन्ता नहीं की। यह विचार तो उसके मन में तब आया, जब संजय की मृत्यु के बाद यह लगा कि अब सत्ता की बागडोर माता के बाद बड़े पुत्र राजीव के हाथों में आने वाली है और यदि अब भी सोनिया इटली की नागरिकता लिए रहती है, तो प्रधानमन्त्री की पत्नी का विदेशी नागरिक होना एक समस्या ही होगी। तथापि अभी भी श्रीमती सोनिया इटली की नागरिक तो हैं ही। वह नागरिकता न समाप्त हुई है, न होगी। इससे भी जनमानस आशंकित है।

चर्च का समर्थन

अब ईसाइयत की प्रति सोनिया के पूर्वाग्रह की बात लें। पंजाब केसरी में प्रकाशित समाचार (नई दिल्ली १४ सितम्बर ९९) के अनुसार साप्ताहिक प्रार्थना सभाओं में 'फादर' (पादरी) लोग अनौपचारिक बातचीत में चर्च में आये ईसाई समुदाय से सोनिया की कांग्रेस को जिताने की अपीलें कर रहे हैं। उनका तर्क होता है कि सोनिया आयेंगी, तो ईसाइयों की हिफाजत होगी। 'फादर' लोग

यह भी समझते हैं कि सोनिया कट्टर कैथोलिक है (जिससे सर्वधर्म समभाव की आशा रखना मृगतृष्णा मात्र है– ले०) वह कैथोलिक मत की सारी परम्पराओं का निर्वाह करती है। यह भी प्रचार किया जाता है कि राजीव की मृत्यु के बाद जब वह पहली बार यूरोप गयी, तो सभी महत्त्वपूर्ण रोमन कैथोलिक धार्मिक स्थलों पर जाकर उसने ईसाई–विधि से पूजा–अर्चना की थी।

मिजोरम में ईसाइयों का वर्चस्व

ईसाइयों के प्रति सोनिया के स्नेह की चर्चा करते हुए मिजो समुदाय के लोगों को यह बताया जाता है कि राजीव के समय में मिजोरम विधानसभा में कांग्रेस को बहुमत मिलने पर इस पार्टी के घोषणा पत्र में यह वादा किया गया था कि उस स्थिति में वहाँ ईसाइयत तथा बाइबिल के अनुसार शासन चलाया जायेगा। ईसाई समुदाय में यह भी प्रचारित किया जाता है कि मिशनरियों पर हमले संघ परिवार के लोग करते हैं। गुजरात की घटनाओं के समय सोनिया कथित पीड़ित ईसाई परिवारों से तो मिलीं, किन्तु उन्होंने उन आदिवासी समुदाय के लोगों से मिलने की जरूरत नहीं समझी, जिनकी जानमाल को उग्र ईसाइयों ने क्षति पहुँचायी थी।

ईसाइयों की गुटबन्दी

'पंजाब केसरी' का संवाददाता आगे लिखता है– ईसाई प्रचार की धूम में यह भी शामिल है कि सोनिया ने ईसाई धर्म की मर्यादा रखते हुए अपनी बेटी प्रियंका की शादी एक ईसाई युवक राबर्ट वढ्रा (इसे पंजाबी में वढ़ेरा न समझें) से की। सोनिया के प्रमुख सलाहकारों में ईसाइयों का बाहुल्य है– निजी सचिव विंसेंट जार्ज, अन्य आस्कर फर्नाडीज़, ए० के० एन्टोनी, पी० जे० कुरियन, मार्गरेट अल्वा, अजीत जोगी ये सभी ईसाई हैं।

प्रशासन का अनुभव नहीं

भारत के इतिहास, भाषा, साहित्य, परम्परा तथा जीवनदर्शन से सर्वथा अपरिचित सोनिया गांधी को राजनीति तथा प्रशासन का स्वल्प अनुभव भी नहीं है। संसदीय परम्पराओं तथा तौर–तरीकों से सर्वथा अनभिज्ञ सोनिया दस मिनट के लिए पत्रकारों का सामना नहीं कर सकतीं। इसमें उनकी भाषा विषयक दरिद्रता तो आंड़े आती ही है, किसी राजनैतिक मुद्दे को सुव्यवस्थित रीति से पेश करना भी उन्हें नहीं आता। दस बारह मिनट के उनके अंग्रेजी–हिन्दी अनुवाद व्याख्यान मणिशंकर अय्यर, जयराम रमेश तथा सुमन दुबे आदि तैयार करते हैं।

पहरुए, सो नहीं जाना

– मधुर गंजमुरादाबादी

शत्रुओं से फिर घिरी हैं आज सीमाएँ तुम्हारी,
सो नहीं जाना पहरुए, सो नहीं जाना।

शत्रु की लोलुप निगाहों में बसा है,
यह धरा का स्वर्ग माँ का दिव्य गहना;
देश–रक्षा का अडिग संकल्प लेकर,
तुम सुरक्षा–चौकियों पर सजग रहना;
जग विदित है वीरता की कोटि गाथाएँ तुम्हारी,
आज फिर गौरव भरा इतिहास दुहराना।

खिलखिलाता निर्झरों में गीत गाता,
इन्द्रधनुषी प्रकृति का रंगीन सपना;
मुस्कराता नित्य केसर क्यारियों में,
जगमगाता मुकुट यह कश्मीर अपना;
छिन न जायें, वाटिकाएँ और सरिताएँ तुम्हारी,
खुशनुमा डलझील दुश्मन से बचाना।

एकता के सूत्र में हम सब बँधे हैं,
इस तरफ से तुम कभी चिन्तित न होना;
अनवरत साधन सभी तुमको मिलेंगे,
खेत में हम सब उगाते आज सोना;
भेजतीं सन्देश बहनें और माताएँ तुम्हारी,
शत्रुओं के दुर्ग पल भर में ढहाना।

– गंज मुरादाबाद, उन्नाव (उ०प्र०)–२४१५०२

परिवार की एकमात्र योग्यता

अपने पक्ष में वोट देने की उन्होंने बेल्लारी में अपील की, तो मुख्य जोर इसी बात पर था कि वह गांधी–नेहरू परिवार की बहू है, अतः शासन की सर्वोच्च गद्दी पर बैठना उसका पारिवारिक हक है। भारत का आम आदमी वीरपूजक है। वंशानुगत शासन का अभिशाप उसने शताब्दियों तक भोगा है और आज भी यही उसे रास आता है। दूसरी बात है इस देश के लोगों की तमाशबीन मनोवृत्ति। सोनिया की सभाओं की भीड़ के पीछे लोगों की यही मनोवृत्ति काम करती है। वे कोई वहाँ

गम्भीर राजनैतिक विचार सुनने नहीं आते। स्व० राजीव गांधी की गोरी मेम को देखने की इच्छा उनको सभा–स्थल तक खींच लाती है।

हिन्दी उच्चारण विदूषक बना देता है

श्रोता सोनिया के विचित्र हिन्दी उच्चारण पर अपना सिर पीट लेते हैं। 'जय हिन्द' को 'जा हिन्द' बोलने वाला व्यक्ति उन करोड़ों व्यक्तियों पर शासन करना चाहता है, जिनकी कोई भी भाषा वह नहीं जानता।

वंशवाद का अभिशाप

वंशवाद का विष–वृक्ष कितना घातक तथा कटीला होता है, यह भारतवासियों को शायद मालूम नहीं परिवार विशेष में जन्म लेने से हर कोई बालक–बालिका अशेष जनसमूह के प्रीति पात्र बन जाते हैं, यह देखना हो, तो राहुल तथा प्रियंका की एक छवि निहारने में अपने को धन्य माननेवाले हिन्दुस्तानियों को देखें। युवक–युवतियों को तो उनकी सुन्दर और आकर्षक मुखाकृति ही प्रभावित करती है, इसमें दो राय नहीं हो सकती। बेल्लारी में सोनिया के समर्थन में प्रियका ने लोगों को जो कुछ कहा उसका सारांश यह है– "मैं अपनी माँ को आपके भरोसे छोड कर जा रही हूँ। आप इसे अपना प्यार–दुलार दें तथा इसे जितायें।" भावुक भारतीयों के लिए तो यह भावुकतापूर्ण अपील ही काफी है; उन्हें किसी उम्मीदवार की प्रशासनिक समझ या योग्यता से क्या लेना–देना?

मानना पड़ेगा कि कांग्रेसियों की चापलूसी, दास–मनोवृत्ति तथा स्वाभिमान–शून्यता का भी कोई जवाब नहीं। सर्वश्री नारायण दत्त तिवारी, अर्जुन सिंह, प्रणव मुखर्जी जैसे बूढ़े–बुजुर्गों ने अपनी सारी जिन्दगी राजनीति करते बिता दी; किन्तु परिवार विशेष की 'नौसिखिया महारानी' के समक्ष ये खुर्राट नेता हाथ जोड़े 'योर मोस्ट ओबिडियेंट सर्वेंट' की मुद्रा में खड़े रहते हैं। इस सर्वोच्च नेता के फैसलों के आगे ये सभी नतमस्तक हैं। किसी की बोलने की हिम्मत नहीं। सीताराम केसरी जैसे कब्र में पाँव लटकाये बूढ़े अपनी टोपी (अब पगड़ी तो रही नहीं) उसके आगे रखकर गिड़गिड़ाते हैं। जब नेताओं का यह हाल है, तब सामान्य जनता यदि 'सोनिया महारानी' के क्षणिक दीदार के लिए घण्टों सड़क पर खड़ी रहे, तो आश्चर्य ही क्या?

जब सोनिया की प्रशासनिक अनुभवहीनता की बात होती है, तो कहा जाता है कि इन्होंने प्रधानमन्त्री निवास में इतने वर्ष व्यतीत किये हैं। उनसे कोई पूछे कि प्रधानमन्त्री निवास में रहने से ही क्या किसी को शासन की योग्यता प्राप्त हो जाती है? वहाँ तो क्लर्क, चपरासी तथा रसोइये भी रहते हैं। सोनिया ने अपनी सास से राजनीति या कूटनीति चाहे सीखी या नहीं, किन्तु उनकी भाँति तेज चाल से चल कर मंच पर जाना, हाथ हिला कर सब दिशाओं में खड़ी भीड़ का अभिनन्दन करना तथा चापलूस मण्डली के अभिवादन स्वीकार करना तो सीखा ही है। उनके द्वारा मातृत्व की दुहाई को लक्ष्य में रख कर ही जार्ज फर्नाण्डीज ने मात्र दो बच्चों को उसकी एकमात्र देन बताया था, तो इसमें अनुचित क्या था? □

— ८/४२३, नन्दन वन, जोधपुर

('आर्य–जगत्' से साभार)

(पृष्ठ ८१ का शेष)

रसप्रिया पेरिस...

फ्रान्सीसी वृद्धा मादाम प्रवेश करती हैं, तो खुशबू से पूरा डिब्बा महमहा उठता है। उनकी आँखों के ऊपर और भौंहों से नीचे समूचा इन्द्रधनुष थिरक उठता है। गालों की गुलाबी सज्जा को देखकर मन में यह विश्वास दृढ़ होने लगता है कि उम्र बढ़ जाने भर से कोई बूढ़ा नहीं होता। जब तक जीने का चाव है, तब तक यौवन को भी बनाये रखना होगा। किसी तरह, भले ही उम्र की पगडण्डी धीरे–धीरे कटती जा रही हो। इत्र भले ही कन्नौज से आया हो, लेकिन फ्रान्स में वही इत्र यहाँ कीमियागरों के कौशल से हजार किस्म का 'परफ्यूम' बन जाता है और तरह–तरह की गर्दनों वाली छोटी–बड़ी शीशियों में सजकर वही इन शालीन मादाम महिलाओं की शोखियों को बढ़ाने में भरपूर सहायता करता है। यहाँ तो बूढ़ी महिलाएँ भी इतने प्यार से वार्तालाप का रस उँड़ेलती हैं, कि उनके सामने किशोरियाँ शर्मा जायें। किसी भी कार्यालय या संस्थान में बैठी इन वृद्धा युवतियों को देखकर लगता है जैसे विधाता ने अपनी सृष्टि का क्रम ही बदल दिया हो। यहाँ अवकाश प्राप्ति की उम्र भी अलग–अलग है। विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर पद पर यहाँ की महिलाएँ सत्तर–बहत्तर वर्ष की उम्र तक बेझिझक काम करती रहती हैं।

वेदान्त के विद्वानों और सन्तों ने भले ही काया को माया बतलाया हो, लेकिन यहाँ आकर इस दूसरे प्रकार के सत्य का भी साक्षात्कार शीघ्र ही हो जाता है कि काया ही सच है और काया का सुख ही वास्तव में सुख है; क्योंकि शायद यह रसमयी नगरी प्रेम करने के लिए बनी है– "यह तो पुरी है प्रेम की।" □

— अतिथि आचार्य, सोरबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस

गुरु ग्रन्थ साहब सत, सन्तोष और विचार का ग्रन्थ

– डॉ० महीप सिंह

गुरु ग्रन्थ साहब के अन्त में ...वणी शीर्षक से इस ...थ के सम्पादक पाँचवे ...रु, गुरु अर्जुन देव का ...पद उपसंहार के रूप ...संग्रहीत है–

...ल विचि तिंनि वसतू
...इओ सत सन्तोख
...चारो।
...मृत नामु ठाकुर का
...इओ जिसका सभस
...धारो।
...जे को खावै जो को
...भुंचै तिसका होई
...धारो।
...ह वसतु तजी नह
...जाई, नित नित रखु उरि
...धारो।
...म संसार चरन लगि तरीऐ, सभ नानक ब्रह्म पसारो।

इस पद को इस ग्रन्थ के समूचे सन्देश का सार ...हा जा सकता है– "मनुष्य के मन रूपी थाल में तीन वस्तुएँ डालें– संत, सन्तोष और विचार। इन्हें एकरस करने के लिए परमात्मा के अमृत रूपी नाम रस को मिलायें, जो सभी जीवों का आधार है। थाल में बनी इस भोज्य सामग्री का जो सेवन करता है, उसका उद्धार होता है। यह सामग्री छोड़ी नहीं जा सकती, इसलिए इसे नित्य नियम से अपने हृदय में धारण करें। नानक कहते हैं– इस नाम पदार्थ के साथ जुड़कर ही संसार के अँधेरे से बाहर निकलकर ब्रह्म के व्यापक पसार को अनुभव किया जा सकता है।"

मानव जीवन के लिए गुरु ग्रन्थ साहब में एक दृष्टि है। एक ओर जीवन में, उसके दैहिक जीवन के लिए इतनी आसक्ति है कि मनुष्य जीवन के सभी महत्तर मूल्यों को भूल कर धन, सम्पत्ति, सत्ता और ऐश्वर्य की दौड़ में अन्धा होकर दौड़ता है। इस दौड़ में कामयाब होने के लिए वह अपना मान–सम्मान, प्रतिष्ठा, गौरव, दया–धर्म छोड़कर सभी प्रकार के नैतिक–अनैतिक काम करता है, किसी का शोषण करता है तो किसी की चाटुकारिता करता है; परन्तु किसी कारण जब उसे कोई चोट लगती है तो वह गहरी आसक्ति का उत्तर विरक्ति में ढूँढ़ता है और सभी प्रकार के दायित्वों से भागकर कहीं मुँह छिपाना चाहता है। इन दोनों प्रकार की अतिवादी दृष्टियों के बीच गुरुवाणी संसार से, समाज से सक्रिय होकर जुड़ने की बात कहती है। वह जीवन के कुछ मूल्यों का अहसास कराती है और चाहती है कि व्यक्ति समाज में सत् को अपना आधार बनाये, सन्तोष को सम्बल बनाये और विचार का दामन न छोड़े। धन–सम्पत्ति के पीछे अन्धे होकर दौड़ना या उसे एकदम त्याग कर बैरागी बन जाना इस मूल्य दृष्टि को स्वीकार नहीं, इसलिए मेहनत करना, उद्यम द्वारा जीविका कमाना, व्यापक मानवीय हितों के लिए अपनी कमाई को दूसरों के साथ बाँटना और सबके सुख में अपने सुख की तलाश करना, इस मूल्य दृष्टि के केन्द्रीय बिन्दु हैं–

घाल खाए किछु हत्थुँ देइ।
नानक राह पछानसि सेइ।।

(मेहनत करके जो कमाता–खाता है, उन्हीं हाथों से दूसरों के साथ बाँटता है, वही सही राह को पहचानता है।)

इस सही और सन्तुलित राह की खोज में गुरु नानक या परवर्त्ती गुरु अकेले नहीं चलना चाहते थे। गुरु नानक की दृष्टि अकेले व्यक्ति की दृष्टि नहीं थी। वह अपने साथ लोगों को लेकर चलने वाली दृष्टि थी। इसीलिए उनकी दृष्टि में अकेला साधनारत् व्यक्ति मोक्ष का इतना सहज अधिकारी नहीं है जितना वह व्यक्ति जो अपनी इस साधना में 'संगत' के साथ जुड़कर चलता है–

मिलि सत संगति हरि गुण गाये,
जगु भउ जलु दुतरु तरोए जीउ।

गुरु ग्रन्थ साहब के संकलन–सम्पादन में भी यही 'संगतवादी' दृष्टि काम करती दिखायी देती है। गुरु नानक अपने जीवन में पच्चीस वर्ष साथी मरदाना को लेकर और दूर–दूर जाकर साधु–सन्तों, सज्जनों–दुर्जनों,

अमीरों–गरीबों, हाकिमों–रैयतों की संगति करते रहे, उनके साथ गोष्ठियाँ करते रहे, विचारों का आदान–प्रदान करते रहे। जहाँ भी गये, वहाँ उन्होंने 'संगतें' बना दीं, जहाँ लोग उनके उपदेशों के प्रकाश में निरन्तर मिलते रहे। बनारस, पटना, कलकत्ता, ढाका (बांग्लादेश में) के गुरुद्वारे आज भी 'संगत' नाम से पुकारे जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि गुरु नानक जी कुछ स्वयं लिखते थे उसे तो साथ रखते ही थे, अपने विचारों और सिद्धान्तों के अनुरूप अन्य भक्तों, सन्तों, सूफियों की जो वाणी उन्हें मिलती थी, उसका संकलन भी साथ–साथ करते जाते थे। उनके बाद भी यही परम्परा बनी रही। पाँचवें गुरु अर्जुन ने इसे ऐसा स्थायी और व्यवस्थित रूप दिया, जो मध्ययुगीन भारतीय साहित्य और चिन्तन का एक अनोखा और अद्वितीय उदाहरण बन गया।

गुरु ग्रन्थ साहिब में संग्रहीत रचनाओं का कलेवर इस देश की सांस्कृतिक–साहित्यिक गतिविधियों के पाँच सौ वर्ष के इतिहास को अपने में समेटता है। इस इतिहास में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उथल–पुथल और उससे उपजी बहुमुखी समस्याओं का लेखा–जोखा है। इस ग्रन्थ में बंगाल के बहुचर्चित भक्त कवि और 'गीत गोविन्द' के रचयिता जयदेव (जन्म ११७० ई०) और मुलतान के सुप्रसिद्ध सूफी सन्त शेख फरीद (जन्म ११७३ ई०) से लेकर सत्रहवीं सदी के गुरु तेग बहादुर (जन्म १६२१ ई०) तक की रचनाएँ संग्रहीत हैं। इन पाँच सौ वर्षों की अवधि में फैले ३६ भक्त, सन्त, सूफी और भाट कवि इस ग्रन्थ में स्थान पाकर उस महान देशव्यापी प्रयास का अंग बन गये जिसे गुरु अर्जुन देव जी ने मूर्तरूप दिया था।

नानक-वाणी

कलि कती राजे कासाई,
धरमु पंख कर उडरिया।
कूडू अमावस. सचु चन्द्रमा,
दीसै नाही कह चडिया।।

– माझ की वार महला–१, गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० १४५

कलियुग छुरी की तरह भयानक है तथा राजा कसाइयों की तरह अत्याचारी है। सत्य अपने पंखों पर (न जाने कहाँ) उड़ गया है। असत्य अमावस्या की रात्रि के अन्धकार की तरह फैला हुआ है और चन्द्रमा के समान सत्य कहीं दिखायी नहीं देता।

– गुरु नानक देव जी महाराज

जिन सन्त कवियों की रचनाएँ इस ग्रन्थ में सम्मिलित हैं उन्हें सामान्यतः तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है– (१) सिख गुरु, (२) भारत के विभिन्न भागों के सन्त और सूफी कवि, (३) सिख गुरुओं के प्रभा मण्डल में जीने वाले भाट कवि। इन सभी ने अपनी रचनाओं में अनेक छन्दों– (पद, शब्द, सलोक, छन्त, पौड़ी, वार आदि) का प्रयोग किया, जिनकी संख्या इस प्रकार है– गुरु नानक (९४७), गुरु आनन्द (६३), गुरु अमर दास (८६६), गुरु रामदास (६३८), गुरु अर्जुन देव (२३१२), गुरु तेगबहादुर (११५)।

वर्ग दो में शेख फरीद (१२२), जयदेव (२), नामदेव (६०), त्रिलोचन (४), सधना (१), वेणी (३), रामानन्द (१), कबीर (५३४), रविदास (४०), पीपा (१), सेण (१), धन्ना (४), भीखन (२), परमानन्द (१), सूरदास (२)।

तीसरे वर्ग में सोलहवीं सदी के ११ भट्ट कवियों तथा गुरु नानक के जीवन साथी भाई मरदाना के अतिरिक्त बाबा सुन्दर और सत्ता बलवंड की रचनाएँ हैं। भट्टों में कलसहार (५३), जालप (४), कीरत (८), सल्ल (३), भल्ल (१), नल्ल (१६), मथुरा (१४), गयन्द (१३), भीखा (२), बल्ल (५), हरबंस (२), मरदाना (३), बाबा सुन्दर (६), सत्ता बलवंड (८)।

गुरु अर्जुन देव ने इस ग्रन्थ का सम्पादन सन् १६०४ में पूरा किया। नौंवे गुरु गुरु तेगबहादुर की रचना बाद में गोविन्द सिंह द्वारा सम्मिलित की गयी गुरु ग्रन्थ साहिब की सम्पादन शैली भी अपने ढंग की है। वर्गीकरण का आधार रागों को बनाया गया है। सम्पूर्ण वाणी ३३ रागों में विभाजित है, इनमें से ३१ भागों के नाम ३१ भारतीय रागों पर ही रखे गये हैं। प्रारम्भ के १३ पृष्ठों में जो वाणी अंकित है वह गुरवाणी प्रेमी परिवारों में नित्त नेम (नित्य नियम) की वाणी है जिसका रोज पाठ किया जाता है। ये हैं जपुजी (गुरु नानक) रहिरास (गुरु नानक, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव के शब्द) और सोहिला (गुरु नानक, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव के शब्द) ग्रन्थ साहिब के पृष्ठ १४ से लेकर १३५२ पृष्ठ तक की वाणी का विभाजन रागों के आधार पर है। अन्त के भाग में शेख फरीद, कबीर तथा गुरुओं के साथ ही ११ भट्टों के श्लोक हैं। यह क्रम पृष्ठ १४३० तक चलता है। इन रागों के आधार पर वाणी को नियोजित किया गया है। सिरी, माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, देव, गंधारी, बिहागड़ा, बडहंस, सोरठ, धनासरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौउ, करामकली, नट नारायण, माली गउड़ी, मारु, तुखारी,

...दारा, भैरउ, बसन्त, सारंग, मल्हार, कानड़ा, कल्याण, ...भाती और जयतयवन्ती। इन रागों में गुरु नानक ने १६ ...गों में, गुरु अमर दास ने १७ में, गुरु रामदास और गुरु ...र्जुन ने ३० में, सन्त कबीर, सन्त नामदेव ने १८ में, भक्त ...विदास ने १६ में, शेष सन्तों ने १ या २ रागों में रचना ...की। भट्टों की रचनाएँ राग में नहीं हैं।

प्रत्येक राग में संगृहीत सारी वाणी पदों, अष्टपदियों, ...न्दों और वारों में बँटी हुई है। सभी गुरुओं की वाणी में ...रचयिता का नाम 'नानक' आता है। सभी गुरुओं ने ...नानक नाम से ही रचना की। परन्तु कौन सी रचना किस ...नानक की है। इसका निर्णय शब्द के प्रारम्भ में महला १, ...२ या ३ से हो जाता है। उदाहरणस्वरूप यदि पद के ...ऊपर अंकित है– आसा महला ५ तो इसका अर्थ है, यह ...रचना पाँचवें गुरु की है, जो आसा राग में निबद्ध है।

गुरु ग्रन्थ साहब अपने समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक चेतना का प्रतीक है। मानव मात्र की ...समता, एक ईश्वर में विश्वास, पाखण्ड का खण्डन, श्रम की महत्ता, ऊँच–नीच की भावना का खण्डन, खुद की ...कमायी अन्य लोगों के साथ मिल बाँट कर खाने की ...भावना को प्रोत्साहन, अन्याय का विरोध, अत्याचार का ...मुकाबला और फिर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जूझने की ...तैयारी– ये सब बातें इस ग्रन्थ के सम्पूर्ण भाव जगत् का ...निर्माण करती है। गुरु अर्जुन देव कहते हैं–

उदम करेदीआं जोउ तू
कमावन्दिआं सुख भुंच
धिआदिआं तू प्रभु मिलि
नानक उतरी चिंत

(तुम उद्यम करते हुए जियो, कमाते हुए सुख प्राप्त ...करो, ध्यान करते हुए प्रभु से मिलो, तुम्हारी चिन्ता दूर हो ...जायेगी) ध्यान देने की बात है कि गुरु अर्जुन के प्राथमिकता ...क्रम में उद्यम करना और कमाना पहले आते हैं, और प्रभु ...का ध्यान बाद में आता है।

शेख फरीद पराधीनता और परावलम्बन से मुक्त ...होने की कामना करते हैं–

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा साई मुझै न देहि।
जे तूं एवै रखसी, जीउ सरीरहु लेहु।।

(हे ईश्वर, मुझे दूसरे के द्वार पर मोहताज बनाकर ...मत बैठाना। यदि तुम मुझे इस तरह रखना चाहो, तो मेरे ...प्राण ले लेना।)

कबीर की साफगोई और व्यंग्य तो बहुचर्चित है। ...श्राद्ध का मजाक उड़ाते हुए वही कह सकते हैं–

गाँव से मत शहर आइये

- हरि चन्दन

कह रहा हूँ ठहर जाइये।
गाँव से मत शहर आइये।।
पेट की रोटियाँ पीढ़ियाँ तोड़तीं,
चूड़ियाँ काँच की खिड़कियाँ तोड़तीं।
जा रहीं चीटियाँ यह शहर छोड़कर,
आँधियाँ भी नहीं चुप्पियाँ तोड़तीं।
और चाहे जिधर जाइये।
गाँव से मत शहर आइये।।
एक नाविक नहीं है किसी नाव में,
अस्मिता ही लगायी गयी दाँव में।
चाँद खुश है यहाँ चाँदनी बेचकर,
छाँह बाँधी गयी सूर्य के पाँव में।
बिन पते के किधर जाइये।
गाँव से मत शहर आइये।।
भोगवादी अमरबेलि की छतरियाँ,
मरुथलों सी सुलगती हुई पुतलियाँ।
बाँह जिसकी चले थे यहाँ थामकर,
क्या पता? कब? कहाँ? काट लीं अँगुलियाँ
कर इरादा मुकर जाइये।
गाँव से मत शहर आइये।।

–घ–३५३, रिजर्व बैंक कालोनी,
किदवई नगर, कानपुर (उ.प्र.)

जीवत पितर न मानै कोऊ मूए सिराध कराहीं।
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि, कउआ कूकर खाहीं।।

गुरु ग्रन्थ साहब में उच्च वर्ण वाले सन्त कवि हैं; परन्तु प्रमुखता उनकी है, जिन्हें सामाजिक दृष्टि से छोटा माना जाता है। नामदेव, रविदास, सधना, सैण, धन्ना, आदि सन्त इन्हीं श्रेणियों में से थे। शेख फरीद, कबीर और भीखन जैसे लोग मुसलमान थे। कबीर का दर्द इसलिए बहुत गहरा था कि वे जुलाहा थे और काशी में रहकर एक ओर मुल्लाओं का सामना करते थे दूसरी ओर पोंगा पण्डितों का। रविदास की मान्यता थी कि उनके स्वामी का सबसे बड़ा गुण यह है कि नीचों को ऊँचा बना देता है और इस काम में वह किसी से डरता नहीं–

नीचहु ऊँच करे मेरा गोविन्द
काहू ते न डरै।

एक बैंक ऐसा भी

'राम-नाम' रूपी धन जमा कीजिये, बदले में 'पुण्य' पाइये

वाराणसी के छोटे से मोहल्ले में एक ऐसा अनूठा बैंक है, जिसमें ईश्वर के प्रति अटूट आस्था रखने वाले लोग 'राम–नाम रूपी मुद्रा का विनिमय करते हैं और बदले में पुण्य का ब्याज' पाते हैं। पिछले ७० साल से कार्यरत यह बैंक रामनवमी के दिन अपनी वर्षगांठ मनाता है। इस अवसर पर नये खाते खोले जाते हैं और जमा रामधन का प्रदर्शन होता है। अब तक १० लाख खाताधारक हो चुके हैं। बदलते सामाजिक और आर्थिक परिवेश में भी खाताधारकों में कोई कमी नहीं आयी है।

विश्व का यह एकमात्र अनूठा संस्थान 'श्रीराम रमापति बैंक' वाराणसी के त्रिपुरा भैरवी मोहल्ले में स्थित है। देश और विदेश के ग्राहक यहाँ सादे कागज पर राम नाम लिख कर जमा करते और कर्ज लेते हैं। प्रत्येक रामनवमी को सारे ग्राहकों के खातों का पूजन व प्रदर्शन होता है और इसी दिन नये ग्राहकों का एकाउण्ट भी खोला जाता है। वर्ष १६२७ में स्थापित इस बैंक की कोई शाखा नहीं है। इस बैंक के संस्थापक दादा छन्नू लाल ने बाबा सतराम दास के साथ मिलकर इस बैंक की परिकल्पना की। कहते हैं कि एक बार सतराम दास ने छन्नू लाल को सवा लाख राम नाम का लिखित जाप करने को कहा। उन्होंने यह काम पूरा किया और बैंक के सबसे पहले ग्राहक बने।

बैंक की प्रक्रिया के अनुसार यहाँ राम नाम के ऋण के लिए आवेदन करने वाले २० से २५ हजार लोगों में सिर्फ डेढ़ से दो हजार को ही कर्ज दिया जाता है। जिस ग्राहक का इस अनुष्ठान के लिए खाता खुलता है, उसे सफेद कागज पर एक लाख ३५ हजार बार 'राम नाम' लिख कर बैंक में जमा कराना होता है। प्रत्येक खाता धारक को नाम लिखने के लिए २५० दिन (आठ महीने १० दिन) का समय दिया जाता है। प्रत्येक धारक को एक दिन में ५०० नाम लिखने होते हैं। यह छूट है कि वह घर जाकर भी यह अनुष्ठान कर सकता है। कुछ लोग बैंक में ही बने मन्दिर में इस अनुष्ठान को पूरा करते हैं। इस 'राम नाम' की प्रक्रिया में कठिन अनुशासन का पालन कराया जाता है। अनुष्ठान का शुभारम्भ ब्रह्म मुहुर्त्त में होता है। खाता धारक को हिदायत दी जाती है कि राम नाम लिखते समय मांस, मदिरा, और प्याज का सेवन नहीं किया जायेगा। कर्जधारक को निर्धारित समय पर नाम लिख कर वापस करने का सबसे ज्यादा ध्यान रखना पड़ता है। बैंक में १६६८ तक १६ अरब ८४ करोड़ 'राम नाम' हो चुके थे। □

सन्त नामदेव ने ऊँची जाति के ब्राह्मणों द्वारा अपने प्रति किये गये अन्याय को स्पष्ट शब्दों में लिखकर बड़ी करुण पुकार की है–

हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ।
भगति करत नामा फकरि उठाइआ।
हीनड़ी जाति मेरी जादिम राइआ।
छीपे के जनमि काहे कउ आइआ।

(हे यादव राव (कृष्ण), मैं हँसता–खेलता तुम्हारे द्वार पर आया किन्तु मन्दिर के पुजारियों ने भक्ति में लीन नामदेव को पकड़कर वहाँ से उठा दिया। हे प्रभु, मेरी हीन जाति है। तुमने मुझे छीपा का जन्म क्यों दिया)। गुरु नानक उस समय के समाज को अन्दर–बाहर से जगाते हैं। देश की आत्मा पर पड़े कायरता के कपड़े के टुकड़े–टुकड़े कर देना चाहते हैं और चाहते हैं कि हिन्दुस्तान अपनी आवाज को पूरी तरह पहचाने–

काया कपड़ टुक टुक होसी।
हिन्दुस्तान संभालसी बोला।

गुरु ग्रन्थ में जैसी व्यापक दृष्टि व्याप्त है, वैसी व्यापकता अन्यत्र ढूँढ़ पाना बहुत मुश्किल है। चार सौ वर्ष पहले किसी ऐसे धर्म ग्रन्थ की परिकल्पना करना जो एक ओर समय की धड़कनों को व्यक्त कर सके, दूसरी ओर अपनी परिधि में जाति, वर्ण, धर्म और प्रदेश की सीमाओं को पीछे छोड़कर एक साँझा मंच बना सके। बहुत अनहोनी–सी बात दिखती है; परन्तु गुरु अर्जुन देव ने इस अनहोनी को होनी कर दिया। □

– एच–१०८, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली–११००२६

विदेशी नेता विपक्ष

– राजीव चतुर्वेदी

सोनिया गांधी ने अपने आपको लोकसभा में नेता विरोधी दल नियुक्त कर लिया है। देश के लोकतान्त्रिक इतिहास में वह पहली विदेशी मूल की नागरिक हैं, जो इस संवैधानिक पद पर बैठ गयी हैं। आज अगर स्वयं जवाहरलाल नेहरू होते, तो क्या ऐसा हो सकता था? नेहरू जी, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार वल्लभ भाई पटेल किसी विदेशी मूल के व्यक्ति की भारतीय राजनीति में दखलन्दाजी के खिलाफ थे।

१९५० की बात है। तब इन्दौर के महाराजा यशवन्त राव होल्कर अपने बेटे रिचर्ड को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे। आजादी के पहले ही महाराजा ने एक अमेरिकन महिला से विवाह कर लिया था। उससे पैदा हुए पुत्र रिचर्ड को ही महाराजा अपना वारिस बनाना चाहते थे; लेकिन भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू और उप–प्रधानमंन्त्री गृहमन्त्री सरदार पटेल ने ऐसा नहीं होने दिया और विवश होकर इन्दौर के महाराजा को अपनी भारतीय मूल की पत्नी से पैदा हुई पुत्री उषा राजे होल्कर को अपना वारिस नियुक्त करना पड़ा। यह भारत के संविधान के लागू होने के बाद हुआ था। भारत की इस संवैधानिक परम्परा की जड़ें ३२४ ई०पू० चाणक्य ने डाली थीं। जब चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस को पराजित किया, तो सेल्यूकस की लड़की हेलेन की शादी चन्द्रगुप्त से करायी गयी। यद्यपि यह विवाह स्वयं आचार्य चाणक्य ने करवाया था; परन्तु विवाह की प्रथम शर्त थी कि हेलेन की कोई भी सन्तति न तो मगध राजसत्ता की किसी भी प्रकार से उत्तराधिकारी होगी और न ही चन्द्रगुप्त का वशज कहलाने की हकदार होगी। स्पष्ट है कि लगभग २३०० वर्षों के अन्तराल के बावजूद आचार्य चाणक्य और जवाहरलाल नेहरू एक ही दृष्टिकोण के थे कि विदेशी मूल के किसी व्यक्ति को भारत की सम्प्रभुता में हस्तक्षेप का कोई हक नहीं। तो क्या सोनिया के षड्यन्त्र से सहमी भारतीय सम्प्रभुता अब और खामोश रहेगी? □

(निधन-तिथि १४, अक्टूबर १९९९)

ऐसी क्रान्तिमूर्त्ति थीं दुर्गा भाभी

– वचनेश त्रिपाठी

मुलतान नगर से सटा एक सघन वीरान–सा जंगल, जहाँ एक कच्ची बनी कोठरी पर छप्पर पड़ा है और उसी छप्पर के तले २० वर्षीया एक युवती कल से आकर ठहरी है, ओढ़ने–बिछाने का कुछ भी सामान साथ नहीं। रात यहीं छप्पर तले ही गुजारी। अवश्य एक भारी गठरी खूब कसकर बँधी हुई नीचे कच्चे फर्श पर रखी है, जिसमें लम्बी किस्म की बहुत–सी सामग्री रहने का अनुमान होता है। शायद वे सब बम हैं। वजन अधिक होने से उसे वह गठरी उठाने और फिर उसे लेकर चलने में बड़ी कठिनाई हो रही है; परन्तु कठिनाई कितनी ही हो गठरी मे मजबूती से अन्दर बँधे बम उसे लाहौर पहुँचाने ही है। साथ कोई साथी या सहायक नही। खैर, वह गठरी लिए–दिये चली, रास्ते में एक ताँगा किया और किसी तरह पुलिस की निगाह से उस गठरी को बचाते हुए वह स्टेशन पहुँची; परन्तु उसे पुलिस की आशंका लगातार चिन्तित किये जा रही है। गठरी उठाने पर उसमें आवाज होती थी; पर ट्रेन आयी, तो उसे वह भरी गठरी उठाकर उसमें रखना ही पड़ा। कुली कर नहीं सकती, उससे पुलिस द्वारा पकड़े जाने की सम्भावना है। ट्रेन लाहौर पहुँची, तो स्टेशन से ताँगा करके वहाँ शहर में "अमृतधारा" नाम्नी जो प्रसिद्ध दवा कम्पनी की कोठी थी, वहीं ताँगा रुकवा दिया और फिर साथ की वह भारी गठरी वहीं उसी कम्पनी की कोठी में अन्दर रख दी। घर पहुँचकर अपनी एक सहेली लीला को 'अमृतधारा' वाली कोठी में रखे सामान (बमों) को यथास्थान पहुँचा देने के लिए भेजा। इस तरह वे सब बम सुरक्षित रूप से निश्चित ठिकाने पर पहुँच गये। मुलतान से इस तरह बमों को लाने वाली क्रान्तिकारिणी थीं दुर्गा देवी बोहरा, जिन्हें भगतसिंह और आजाद आदि सभी क्रान्तिकारी 'भाभी' या 'दुर्गा भाभी' कहते थे। मैंने एक दिन दुर्गा भाभी से पूछा था कि "उन बमों का उपयोग कहाँ किया गया?" वे बोलीं 'उनका प्रयोग असेम्बली में होना था।'

सन् १९२८ की एक और घटना, जो भाभी ने मुझे बतायी थी। 'साण्डर्स–वध–काण्ड' के पहले की बात। सरदार भगतसिंह अपने पूर्ववर्त्ती शहीद क्रान्तिवीर करतार सिंह सराबा के बड़े प्रेमी थे। उन्हें अपना आदर्श मानते थे। करतारसिंह के शहीद–दिवस पर उनके चित्र का अनावरण होना था। भाभी के पति भगवतीचरण बोहरा (बापू भाई) ने कहा– 'खद्दर खरीद लाओ'। खद्दर लाया गया, तो उन्होंने अपनी पत्नी दुर्गा जी से कहा– "इसे लाल रंग से रंग डालो।" परन्तु भाभी कह उठीं, 'नहीं रंग से नहीं, उसे खून से रंग देती हूँ।' तत्काल भाभी ने ब्लेड से अपनी अँगुलियाँ चीर डालीं। फिर वह खद्दर का कपड़ा

सन् १९६८ का एक दुर्लभ चित्र

बायें से (बैठे हुए जयदेव कपूर (लाहौर केस), पं० परमानन्द (गदर पार्टी), दुर्गा भाभी (गवर्नर शूटिंग केस), शिव वर्मा (लाहौर केस), शचीन्द्रनाथ बख्शी (काकोरी केस)

दायें से (खड़े हुए) उदय खत्री, रामकृष्ण खत्री (काकोरी केस), गंगाधर गुप्ता (तिरवा–पुलिस केस), वचनेश त्रिपाठी (शंभुवा–गोलीकाण्ड, गजानन पटेल (महाराष्ट्र के क्रान्तिवीर), गोविन्द बोस (बंगाल के क्रान्तिवीर), सपन खत्री।

...से सराबोर हो गया। भाभी कहती थीं, "सबसे अधिक खून ...देव ने छिड़का था।" भाभी उन्हें "बड़े सुखदेव" कहती थीं, ...में जो भगतसिंह के साथ ही फाँसी चढ़े।

एक रात क्या हुआ कि "बड़े सुखदेव" दूसरे एक अन्य ...न्तिकारी साथी थे सुखदेवराज; अपने साथ एक बड़ी अटैची ...भाभी के घर आये। अटैची बमों से भरी थी। बम निकाले ...और उन्हें अन्दर के कमरे में ले जाकर रख दिया गया। ...ने सोचा, सुखदेव कल इन्हें उठा ही ले जायेंगे, इसलिए ...ने उन्हें छिपाया नहीं। परन्तु पुलिस ने उसी रात भाभी के ...पर धावा बोल दिया। सुखदेव रात में वहीं सोये थे। जगे ...पुलिस आने की बात सुनकर बोले– 'तलाशी तो पुलिस ने ...स्टेशन पर ही ली थी, पर शेविंग (दाढ़ी बनाने) का सामान ...पेटी में ऊपर ही रखा था, उसी को दिखाकर पिण्ड छुड़ाया। ...पुलिस को सूचना यह थी मेरे बारे में कि कोकीन आदि के ...धन्धा करने वाले आदमी हैं।' भाभी कुछ उपाय सोच ही रही थीं ...कि पुलिस बाहर दरवाजा पीटने लगी। पुलिस अधिक थी। ...भाभी ने द्वार खोलने से इनकार करते हुए कह दिया– "घर में ...अकेली हूँ। कोई आदमी नहीं है।" साथ ही तुरन्त सब बम ...उठाकर पड़ोस में अपने जेठ के घर भूसे में दबा दिये। फिर ...उस कोठरी में बड़ा–सा ताला बन्द कर दिया। फिर दूसरी ...तरफ जो घर विलायती राम का था, उसके आँगन की ओर से ...द्वार खोलकर सुखदेव को निकाल दिया। वे छतों–छतों चलकर ...घुप अँधेरे में नौ–दौ ग्यारह हो गये। तब भाभी ने दरवाजा ...खोला। पुलिस ने खूब तलाशी ली। कहती थीं, "इतनी पुलिस ...पहले कभी नहीं आयी थी। पर अब वहाँ रखा क्या था? ...अपना–सा मुँह लेकर पुलिस–दल वापस गया।"

सन् १९३१ की २३ मार्च। आज के ही दिन ...सन्ध्याकाल में साढ़े सात बजे लाहौर में भगतसिंह, सुखदेव और ...राजगुरु को फाँसी दी जानी थी। यह सोचकर मुम्बई में दल के ...कार्य से ही प्रवास कर रही भाभी, साथी पृथ्वीसिंह और सुखदेवराज ...उत्तेजित हो उठे। जबकि आजाद ने इन तीनों को दक्षिण में ...भेजा था प्रसिद्ध विप्लवी सीताराम राजू (आन्ध्र) तथा वीर ...सावरकर से सम्पर्क साधकर दक्षिण में क्रान्ति की अलख ...जगाने के लिए। उन दिनों वीर सावरकर नजरबन्द थे। उनके ...बड़े भाई गणेश सावरकर (बाबाराव) जरूर गणेश रघुनाथ ...वैशम्पायन आदि के साथ बाहर थे। उनका वहाँ एक क्रान्तिकारी ...दल था। पर अपने ही तीन साथियों के फाँसी चढ़ने की खबर ...ने भाभी को उसी दिन कुछ कर गुजरने के प्रबल भाव से प्रेरित ...कर दिया। तब योजना बनी कि हम लोग आज मुम्बई के अंग्रेज ...गवर्नर हैली को गोली मारकर अपने तीनों साथियों के बलिदान ...का बदला चुकायेंगे। तय हुआ था कि भाभी किराये की टैक्सी ...करके दोनों साथियों सहित गर्वनर के बँगले पर पहुँचेंगी। हैली ...को विजिटिंग कार्ड भेजेंगी। तब वह भाभी को अन्दर बुलायेगा। ...जब वह उनसे बात कर रहा होगा, तभी उसे गोली मार दी ...जायेगी। इसमें पृथिवीसिंह को बाहर गेट पर रहना था, ताकि ...बाद में दोनों को कवर करके निकाल ले जा सकें। शिन्दे ...नाम के एक सज्जन ने अपनी कार भाभी को दे दी। बापट नाम के एक महाशय ड्राइवर बने, वे सेना में रहे थे। भाभी के साथ उनका ३ वर्षीय जो एकमात्र पुत्र था, शची, उसे भाभी ने वीर सावरकर के अग्रज बाबाराव के हवाले कर दिया, कहा– "इसे रख लें। मैं काम से जाती हूँ। लौट आयी, तो ठीक, वरना आप इसे धन्वन्तरि के पते पर लाहौर भेज दीजियेगा।" बाबाराव तब शान्ताक्रूज पर मिले थे। तुरन्त बाबाराव ने अपनी अण्टी से निकालकर १०० रुपये भाभी को दिये, कहा– "इन्हें रख लो। गाढ़े में काम आयेंगे।" शची को बाबाराव ने बड़े वैशंपायन के घर में भेज दिया। रात के ८ बजे तीनों लोग भरी पिस्तौलें जेब में रखे कार से गवर्नर हैली के बँगले पर पहुँचे, तो देखा, वहाँ पुलिस का सख्त पहरा है। कारों को रोक–रोक कर उनके नम्बर लिये जा रहे हैं। स्पष्ट था कि किसी तरह पुलिस को इनकी योजना की भनक लग गयी थी। भाभी ने कहा "यहाँ तो मामला गड़बड़ है। काम होगा नहीं।" पता चला, यह जाँच–पड़ताल गवर्नर के बँगले 'मलाबार हिल' पर गत १५ दिनों से हो रही है। इस सन्दर्भ में मेरे पूछने पर भाभी का कहना था कि, (सुखदेवराज तथा पृथ्वीसिंह) उल्टे–झाँकते होंगे, तो शक हो गया होगा। "अस्तु, ये लोग वहाँ से वापस लौटे। ४ घण्टे तक इनकी कार सड़कों पर इसलिए चक्कर लगाती रही कि कोई अंग्रेज दिखे, तो उसे गोली मार दें। पर कहीं कोई अंग्रेज नजर न आया। रात के १० बज गये। तभी ४ अंग्रेज सार्जेण्ट इन्हें दिखे, पास ही लेमिंगटन पुलिस स्टेशन था (जो अभी भी है), कार वहीं रुकवा दी और भाभी ने तत्क्षण ही उन अंग्रेज सार्जेण्टों पर सर्वप्रथम गोली चला दी। फिर साथियों ने भी फायर किये। चारों लोग वहीं भूमि पर गिर कर लेट गये। उसी समय एक पुलिस गाड़ी से दो अंग्रेज व एक मेम वहाँ बाहर उतरीं, तो वे भी गोलियों की चपेट में आ गये। उनमें टेलर नाम का सार्जेण्ट घायल होकर गिरा। मेम भी घायल हुई। वहाँ से लौटकर रात ११ बजे वह शान्ताक्रूज वाला मकान छोड़ दिया जो बाबाराव का था। पर भूल से जल्दी में भाभी की वह काली साड़ी वहीं रह गयी, जिसे पहनकर वे गवर्नर को मारने गयी थीं। बाद में वह साड़ी अदालत में पेश की थी पुलिस ने। उधर पुलिस ने रातोंरात इनका दादरवाला किराये का मकान घेर लिया। पर पंछी वहाँ से उड़ चुके थे। सवेरे अखबारों में मुख्य खबर "लेमिंगटन– गोलीकाण्ड" की ही छपी थी। बाबाराव सावरकर के हाथ में मराठी का एक दैनिक था, उसमें भी मोटे–मोटे अक्षरों में यही शीर्षक छपा था, बाबाराव ने उसकी ओर अँगुली से संकेत करके भाभी से पूछा– "ए काय झाला? ए काय झाला?" (यह क्या हुआ?)। क्योंकि ड्राइवर बापट के बयानों से पुलिस को पता चला था कि "एक लम्बे बाल वाला लड़का गोली चला रहा था।" भाभी के बाल लम्बे थे कद छोटा था। उस दिन कई लम्बे बाल वाले लड़के पुलिस ने पूछ–ताँछ के लिए पकड़े। अनन्तर दुर्गा भाभी, सुखदेवराज, विश्वनाथ वैशंपायन और पृथ्वीसिंह को फरार घोषित किया गया। पुलिस वारण्ट में भाभी का नाम दर्ज था– "शारदा बेन"। बाद में भाभी १ वर्ष जेल में तथा ३ वर्ष नजरबन्द रहीं।

□

"मिठाई ले रहे हैं ?" गिरीश ने पूछा।

"हाँ, त्योहार है, इसलिए लेनी पड़ रही है। मैं तो खाता नहीं। बच्चे तो जरूर खायेंगे। आगे जा रहा था 'सत्कार' की दूकान पर लेकिन सोचा कौन जाये इतनी दूर, यहीं रुक गया।"

उस व्यक्ति ने काफी समय से तैयार किया हुआ उत्तर उगल दिया।

'सत्कार' नगर में मिठाई की सर्वोत्तम दुकानों में मानी जाती है।

"बाबू जी ! 'सत्कार' का तो नाम है। हमारी मिठाई कुछ कम अच्छी नहीं है। अलबत्ता उससे दस रुपये सस्ती जरूर है।" हलवाई ने आत्म–प्रशंसा की।

"इसी "अलबत्ता" के लिए ही तो वहाँ के ग्राहक यहाँ रुक जाते हैं।" एक ग्राहक ने "बाबूजी" की ओर देखकर कहा।

"बाबूजी" ने उसकी ओर ऐसे देखा जैसे उससे कोई बैर हो।

"मैं तो वहीं से आ रहा हूँ। वहाँ तो इतनी भीड़ है कि कई घण्टे की फुरसत लेकर ही वहाँ जाये कोई" गिरीश ने कहा।

"इसीलिए मैं वहाँ नहीं गया। और अवसरों पर तो उसी से खरीदता हूँ। तब भीड़ नहीं होती। "बाबूजी" ने मौका पाकर अपना नक्शा जमाने वाली बात कह दी।"

"अरे यार ! आप क्या बेंच रहे हो, जो रोज–रोज "सत्कार" ज़ानेवाले आज तुम्हारे दर पर हाजिर हो रहे हैं" उस ग्राहक ने फिर चुस्की ली।

"बाबूजी" ने उसकी ओर क्रोध से घूर कर देखा। "अरे ! यह आदमी तो दफ्तर में एक–दो बार मिला था।" उसको ध्यान आया। इतने में उसकी मिठाई आ गयी। "बाबूजी" ने डिब्बा लिया और गिरीश को नमस्कार किया। इस बात का इन्तजार नहीं किया कि गिरीश अब उससे कोई बात कहना चाहता है या नहीं। वह कुछ आगे बढ़ा, तो उस ग्राहक ने कहा" बदमाश कहीं का। चोर ! कभी अपनी कुर्सी पर मिलेगा ही नहीं दफ्तर में। आयेगा तब, जब कि लंच होनेवाला होगा या छुट्टी होने वाली होगी हरामखोर, मुफ्त की तनख्वाह काटता है।

"बाबूजी" ने गाली सुन तो ली, लेकिन उलझना ठीक न समझा। उसने सोचा कि यह तो स्पष्ट था ही नहीं कि उसको गाली दी जा रही है या किसी और को। उलझेंगे, तो सबको मालूम हो जायेगा। तब अपमान अधिक होगा।

गिरीश को बुरा तो लगा कि उसके परिचित को किसी ने गाली दी, परन्तु तत्काल यह विचार आया, "जो अपना काम नहीं करेगा और लोगों को तकलीफ देगा, उसको तो गालियाँ पड़ेंगी ही। कामचोर आदमी धन्य है त्योहार के दिन भी गाली खाता है।" □

– ७–ए, विश्वविद्यालय परिसर, लखनऊ–२२६००७

दीप-दान

– गणेश 'चंचल'

मातृ–भूमि की वेदी पर जो न्योछावर कर गये प्राण हैं,
उनकी पुण्य–स्मृति को अर्पित, आज हमारा दीप–दान है।

मोह त्याग हँसते फूलों का, बलिवेदी की ओर चले थे,
जननी, जनक, सुता, सुत, नारी, से सब नाता तोड़ चले थे,
ठुकरा कर पीयूष–पात्र, हो मगन गरल की घूँट पिये थे,
मौत सामने आयी, भर बाँहों में छाती लगा लिये थे।
गंगा–यमुना की धाारा में, मुखरित जिनका कीर्त्ति–गान है।
उनकी पुण्य–स्मृति को अर्पित, आज हमारा दीप–दान है।।

डटे रहे सीमा पर हर क्षण शीत–घाम को झेल चले थे,
मुसीबतों में राह बनायी, चट्टानों को ठेल चले थे,
भारत की सन्तान, विपुल बाधााओं से भी खेल चले थे,
बढ़ते रहे कदम शूलों पर, विघ्नों से कर मेल चले थे।
जिनकी अमर–ज्योति से सारा देश आज देदीप्यमान है।
उनकी पुण्य–स्मृति को अर्पित, आज हमारा दीप–दान है।।

वीर शिवा, हम्मीर, महाराणा की थी वीरता निबाही,
कुँवर सिंह, जोरावर जैसे मातृ–भूमि के वीर सिपाही,
प्रलयंकर बन गये और फिर, दुश्मन की कर दिये तबाही,
दुनिया का इतिहास युगों तक देगा जिनकी सत्य गवाही।
धवस्त किये दुश्मन के सारे टैंक, मिसाइल वायुयान हैं।
उनकी पुण्य–स्मृति को अर्पित, आज हमारा दीप–दान है।।

खुदीराम, आजाद, भगतसिंह, सावरकर के अमर वंशधर,
बढ़े बचाने मुकुट देश का धरे ताण्डवी वेष भयंकर,
मिटे स्वयं मिटने न दिये पर, वीर पुत्र–गरिमा–परम्परा,
जिनके धवल, विमल यश से है गर्वित यह भारत वसुन्धरा।
जिनके बलिदानों से हमको मिला और गौरव महान है।
उनकी पुण्य–स्मृति को अर्पित, आज हमारा दीप–दान है।।

– ग्राम/पोस्ट– सोहा, जनपद– सहरसा–८५२१२९ (बिहार)

अभिमत

'लोकतन्त्र सुरक्षा अंक' [मिल]ने है, लोकतन्त्र के सत् स्वरूप के अर्चन को पुष्प–गुच्छ एवं स्वागत को सज्जित माला सौम्यभाव से भव्यमूर्ति [...]ती।

राष्ट्रधर्म निर्वहन हेतु कितने सुन्दर भाव पुष्प तपःपूत मनीषियों ने राष्ट्रदेव के पूजन हेतु सँजोकर रख दिये कि मातृभूमि की सेवा में समर्पित भाव से तन–मन–धन, अपने तप, शौर्य एवं निष्ठा को सर्वस्व इन भाव सुमनों को लेकर समर्पित हो जायें, फिर देखें कि उस तप और शौर्य की साक्षात् मूर्ति मेरी भारतमाता विश्व को सौहार्द, शान्ति का सन्देश देती ग्रीव ऊँची कर सुशोभित, दृष्टिगोचर हो रही है। लेख, कविता, कहानी सबमें लोकतन्त्र के आदर्श स्वरूप को अंकित किया है और काँटे बोये जाने वालों के कृत्यों को उजागर कर आदर्श–पथ को बुहारा है।

इतनी सुन्दर सामग्री के लिए शतशः बधाई! कामना करता हूँ 'राष्ट्रधर्म' स्वदेश में ही नहीं, समस्त जगती का पथ निर्देश करे।

– रूप सिंह, पूर्व प्रवक्ता
महरौली, ललितपुर (उ०प्र०)

'राष्ट्रधर्म' का 'लोकतन्त्र सुरक्षा विशेषांक' हर दृष्टिकोण से मूल्यवान् एवं संग्रहणीय है। राष्ट्रीय चिन्तन करने वाले परिश्रमी अध्येयताओं के पवित्र विचारों से पाठकों को अवगत कराने का प्रयास स्तुत्य है। परन्तु सम्पादक की कलम ने 'इससे अच्छा मुहूर्त कब आयेगा' शीर्षक के अन्तर्गत जिस निर्भीकता से अपने विचार को रखा है वह पाठक के अन्तर्मन को झिंझोड़ देने की सामर्थ्य रखता है। पीत–पत्रकारिता करने वाले सत्ता के दलाल, विज्ञापन के लोभी तथा स्वार्थी [...] ऐसा लिखने की हिम्मत नहीं कर सकते। कुलदीप नैयर, राजेन्द्र सच्चर, उदयन शर्मा तथा मणिशंकर अय्यर जैसे हिन्दू द्रोही लेखकों को आड़े हाथों लेकर आपने पाठकों के मूल विचारों को वाणी दी है। राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति लापरवाह व्यक्तियों को कटघरे में खड़ा करके आपने लोकतन्त्र के चतुर्थ स्तम्भ को दृढ़ता प्रदान की है।

– राघवेन्द्र त्रिपाठी
बिसवाँ, सीतापुर

'राष्ट्रधर्म' का 'लोकतन्त्र सुरक्षा अंक पढ़ा। अंक बहुत ही अच्छा लगा। सम्पादकीय पढ़ा, पढ़कर ज्ञात हुआ कि इस प्रकार हमारे देश में निवास करने वाले ख्याति प्राप्त पुरुष वर्ग विशेष का समर्थन पाने के लिए देश से गद्दारी कर रहे हैं। आपने सम्पादकीय में कुछ व्यक्तियों को जैसी उपमाएँ दी हैं वे व्यक्ति इससे आगे की उपमा के भी हकदार हैं। सम्पादक महोदय ज्ञानवर्धक तथा व्यक्तियों का असली मुखौटा समाज के सामने सम्पादकीय में रखने हेतु धन्यवाद स्वीकारें। अंक में श्री मदन मोहन पाण्डेय द्वारा लिखित कहानी 'बूढ़ी माँ' पसन्द आयी।

– राजीव नयन पाण्डेय
बी०ए० (द्वितीय वर्ष)
सी०एस० नेहरू महाविद्यालय हरदोई

'राष्ट्रधर्म' का अक्टूबर ९९ अंक मिला। मुखपृष्ठ आकर्षक एवं समयानुकूल रहा। महिषासुर के चित्रांकन में नवीन दृष्टि से चलायी गयी तूलिका ने मन मोह लिया।

सम्पादकीय में व्यक्त विचारों का एक–एक शब्द ईसाई मिशनरियों की राष्ट्र एवं हिन्दू धर्म विरोधी काली करतूतों का पर्दाफाश करने में सक्षम है। स्वयंसेवकों का अपहरण करके उन्होंने विराट हिन्दू समाज के सामने चुनौती रखी है जिसे ईंट का जवाब पत्थर से दिया जायेगा।

वैसे तो सभी लेख पठनीय एवं मननीय हैं किन्तु 'हाँ, हम मनुवादी हैं' लेख समाज में फैलाये जा रहे कतिपय लोगों के भ्रमजाल को नष्ट करने मे समर्थ है। डॉ० नरेश चन्द्र एवं डॉ० शिवनन्दन कपूर के लेख भी रोचक और नव दिशा बोध कराने वाले रहे।

कहानियों में 'तीन मुलाकातें' ने समाज के उस विद्रूप चेहरे को अनावृत करने का प्रयास किया है जो व्यक्तिवादी सोच से ग्रस्त है। काश! समष्टि भाव का प्रस्फुटन हो। 'कफन की लाज' में कथाकार पाण्डेय जी उस आवेग एव संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करने में असफल रहे जिसके लिए वे जाने जाते हैं।

'बाल वाटिका' अच्छी लगी। किन्तु कहानी 'भय का भूत' में दो परस्पर विरोधी वाक्यों का आ जाना भूल कही जायेगी। क्योंकि जिस दृश्य की रचना की गयी वह बरसात का है, इस स्थिति में गाँव के खेतों के बीच से जाने वाले रास्ते में सूखे पत्ते मिलना उचित नहीं। मेरा आलोचक मन इसे स्वीकार नहीं कर पाता। इस अंक में पृष्ठ ३१ में विप्र के स्थान पर वित्र छपा होना प्रूफ की भूल मिली। कुल मिलाकर अंक ठीक है। विजयोत्सव की बधाई स्वीकारें।

– प्रमोद दीक्षित 'मलय'
भवानी गंज, अतर्रा, बाँदा

'वन्देमातरम् विषयक फतवे के प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि इबादत या सिज्दा करने के लिए मनुष्य को विधिवत् वजू करके एक विशिष्ट आसन–मुद्रा में एक विशेष तरीके से दण्डवत् भी करना होता है। अन्यथा, वह इबादत इबादत नहीं।

लेकिन, वन्देमातरम् गायन में ऐसा कुछ भी नहीं करना होता है। न तो वजू करना होता है, न ही इबादत वाली उस विशिष्ट मुद्रा में दण्डवत् ही करना होता है, जो कहा जा सके कि वन्देमातरम् पढ़ना ईश पूजा–पद्धति है और कि इस मंगलाचरण से इस्लामी एकेश्वरवाद दूषित हो जायेगा? यथा महात्मा गांधी आदि किसी व्यक्ति को या उसके चित्र, मूर्ति व समाधि (कब्र) को मुसलमानों द्वारा माल्यार्पण कर देने से इस्लामी एकेश्वरवाद भंग नहीं हो जाता है।

– हरिजन सोमनाथ त्यागी
कोट बाजार, अमरोहा–२४४२२१ (उ.प्र.)

(पृष्ठ ६४ का शेष) **विज्ञान और शिल्प के संवर्द्धन में...**

क्षय (Dissipation) को भी विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार पदार्थ का नाश नहीं होता, मात्र उसका रूप परिवर्त्तित हो जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी द्रव्य के नित्य होने के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इस दर्शन में यौगिक (Compound) की रचनाएँ अणु, परमाणु तथा त्रिस्रेणु का भी उल्लेख हुआ है। कणाद ऋषि के वैशेषिक दर्शन में परमाणुवाद के सिद्धान्त को अधिक स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप से प्रतिपादित किया गया है।

परमाणुवाद की यह अवधारणा दार्शनिकों के चिन्तन–मनन और अन्तः प्रज्ञा पर ही आधारित है। उन्होंने इसके लिए आधुनिक वैज्ञानिकों जैसे कोई प्रयोग किये हों, उसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में ब्रिटिश वैज्ञानिक डाल्टन को परमाणुवाद का प्रवर्त्तक बतलाया जाता है। वस्तुतः डाल्टन की आधुनिक एटामिक थ्योरी या परमाणुवाद के प्रवर्त्तन के लगभग हजारों वर्ष पूर्व भारत में परमाणुवाद का प्रवर्त्तन हो चुका था। महर्षि कणाद परमाणुवाद का प्रवर्त्तन करने वाले अग्रणी व्यक्ति थे। यूनानी दार्शनिक ल्यूसीप्पस और उसके शिष्य डिमोक्रिट्स द्वारा प्रतिपादित परमाणु की परिकल्पना भी कणाद ऋषि के बहुत बाद की है। कणाद ऋषि ने अपने वैशेषिक दर्शन में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० ए० एल० बाशम के अनुसार वैशेषिक दर्शन में कणाद द्वारा प्रतिपादित परमाणुवाद अत्यन्त उच्चकोटि का (Par Excellence) है। महर्षि कणाद ने अपने इस दर्शन में परमाणुवाद सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ ही संसार के पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध और उनकी विशेषताओं, समानताओं और विषमताओं (साधर्म्य और वैधर्म्य) का विस्तार से वर्णन किया है। वैशेषिक दार्शनिकों द्वारा जगत् की सभी वस्तुओं के लिए 'पदार्थ' शब्द का उपयोग किया गया है। पदार्थ की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि 'जो ज्ञेय हो, जिसका अस्तित्व हो और जिसका कोई नाम हो, उसे 'पदार्थ' कहते हैं। वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणु किसी पदार्थ का वह छोटे से छोटा भाग है, जिसके और अधिक अवयव न हो सकें। परमाणु पदार्थ का सूक्ष्मतम अवयव है। परमाणु से सूक्ष्म कुछ नहीं होता। कणाद ने परमाणुओं से पदार्थों की संरचना एवं पदार्थों के गुण–धर्म की विवेचना के साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि सभी पदार्थों में एक ऐसी सत्ता विद्यमान है, जो भौतिक नहीं है। आधुनिक भौतिक विज्ञान विशेषज्ञ भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं। उनके लिए यह परम आश्चर्य का विषय है कि जिस तथ्य तक आधुनिक विज्ञान सैकड़ों वर्षों के अनवरत प्रयास, नाना प्रकार के प्रयोगों, अतिसूक्ष्म और शक्तिशाली उपकरणों के माध्यम से अब पहुँच सका है, उसे भारतीय मनीषियों ने बिना किसी प्रयोग और उपकरणों के अभाव में कैसे जान लिया।

यहाँ केवल कुछ ही ऋषियों द्वारा संवर्द्धन हेतु किये गये योगदान की अति संक्षिप्त चर्चा की जा सकी है। वास्तव में वैदिक काल के और भी अनेक ऋषि 'परा' (ब्रह्म–विद्या) के साथ ही 'अपरा–विद्या' में भी निष्णात रहे हैं, इनमें विश्वामित्र, वसिष्ठ, अगस्त्य, अंगिरा तथा महर्षि अथर्वण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

□

— साहित्य निकेतन, शिवाला रोड, कानपुर–२०८००१
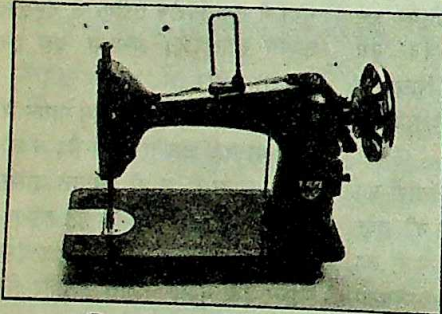
मधुरेण समापयेत्

भगवान् का भविष्य

– शंकर पुणतांबेकर

(हमारी संस्कृति में दरिद्र नारायण की कल्पना की गयी है। आज समाज में ढोंगी और पाखण्डी लोगों का जैसा बोलबाला दीखता है, उसमें दरिद्र नारायण के लिए भला कोई स्थान बचा है ? प्रस्तुत लेख में इसी पर व्यंग्य है।–सं०)

भगवान् मेरे यहाँ आयेगा और वह भी अपना भविष्य जानने के लिए, ऐसा किसी ने मेरा भविष्य बताया होता, तो मैं उसको बिगड़ा दिमाग ही करार कर देता; पर किसी ने ठीक ही कहा है कि फैक्ट इज़ स्ट्रेंजर दैन फिक्शन, भगवान् एक दिन मेरे यहाँ आया और मुझे विश्वास हो गया कि यथार्थ कल्पना से कहीं अधिक अजीब होता है।

बात यह हुई कि मेरे यहाँ मेरा एक ज्योतिषी दोस्त आया था। अरसा बीत चुका था, हम मिले नहीं थे। अहमदाबाद में बड़ा ऊँचा प्रैक्टिश्नर था वह। रेस के घोड़ों का भविष्य बताते–बताते राजनीति के वैशाखनन्दनों का भी भविष्य बताने लगा था और इस तरह वह काफी ऊँचा आदमी बन गया था।

मेरे यहाँ कोई बड़े–से–बड़ा तस्कर या आतकवादी चार दिनों के लिए आता और चला जाता, तो किसी को खबर तक न लगती और लगती भी, तो पुलिस भी अनसुनी कर देती; पर मेरे घर कोई ज्योतिषी मेहमान आया हुआ है, जानकर मेरे परिचितों के कान खड़े हो गये और इन विषाणुओं के द्वारा यह समाचार सारे नगर में फैल गया।

इस समाचार के साथ ही मैं नगर में एकदम महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बन गया। कई लोगों की तो प्रतिक्रिया थी इतना बड़ा ज्योतिषी मेरे यहाँ मेहमान आया है। मैं सचमुच कितना भाग्यशाली हूँ। उन्हें लगा जैसे सुदामा के यहाँ द्वारका से स्वयं कृष्ण चले आये हैं।

मेरे यहाँ कारें आकर रुकने लगीं। जिनके दरवाजे पर मैं कभी समय माँगता था, वे मेरे दरवाजे पर समय माँगने के लिए आ खड़े हुए।

मुझे याद है, मेरे यहाँ एक बार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आये थे। मैंने यह समाचार नगर–भर में जिस–तिस के हाथों फैलाया था, लेकिन कोई भी मेरे दरवाजे पर नहीं आया। मुझे इस बात का दुःख हुआ कि मैं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को पाकर महत्त्वपूर्ण नहीं बन सका। इसके विपरीत मेरे पड़ोसी के यहाँ एक बार फिल्म–ऐक्टर पेण्टल आया था। देखते–देखते वह नगर भर में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बन गया।

कारों की भीड़ देखकर मुझे लगा, जो लोग भविष्य जी रहे हैं वे ही अपने भविष्य के लिए कितने चिन्तित हैं। नेता है, सो मेरे यहाँ आ रहा है, सेठ है, सो मेरे यहाँ आ रहा है; अफसर आ रहा है, डॉक्टर आ रहा है; इंजीनियर आ रहा है, ठेकेदार आ रहा है, भ्रष्टाचारी आ रहा है; लुटेरा आ रहा है; डाकू आ रहा है।

अरे, देश तुम्हारे हाथ में है। मजे से उसे खा रहे हो। अब और क्या चाहते हो, जो भविष्य जानने के लिए ऐसे दौड़ पड़े हो ? तुममें से कोई भी माई का लाल ऐसा है, जो अपने नही, देश के भविष्य के लिए चिन्तित हुआ हो ?

एक नेताजी दोस्त से पूछ रहे थे, मैं दस रोटियाँ पचा लेता हूँ। बीस कब पचा पाऊँगा ? जब तक बीस नहीं लूट पाता, मैं मुख्यमन्त्री नहीं बन पाऊँगा। सो बताइए, बीस लूटने के अवसर मेरी जन्मकुण्डली में हैं या नहीं ?

पुल जितना कच्चा, भविष्य उतना ही पक्का, ऐसे इंजीनियर ने सवाल किया था, ज्योतिषीजी मुझे यह बताइए, मेरा दसवाँ मकान मेरे रिटायरमेंट से पहले बन जायेगा या नहीं ?

ऊँचे हृदय–रोग विशेषज्ञ डॉक्टर ने प्रश्न रखा था। मेरी हार्ट की बीमारी घातक तो नहीं सिद्ध होगी?

मेरे एक अफसर दोस्त ने मुझसे पूछा, तुमने अपना भविष्य तो जान लिया होगा। मैंने जवाब में कहा, नहीं, मेरा कोई भविष्य ही नहीं कि जानूँ। मेरे दोस्त ने मेरी कुण्डली देखे बगैर ही वर्षों पूर्व बता दिया था कि कभी भविष्य की उम्मीद न रखना। तुमने अपने हाथों अपने भविष्य को कुल्हाड़ी मारी है। बोला तुम्हें एम.ए. और वह भी भाषा में नहीं करना था। ऊपर से और लेखनी पकड़कर तुमने अपने भविष्य को बिलकुल मटियामेट कर दिया है।

हाँ, तो मैं बता रहा था कि एक दिन भगवान् मेरे यहाँ अपना भविष्य जानने के लिए आया।

वह पैदल ही आया था और कुछ थका–थका–सा था।

उसने जब कहा कि मुझे अपना भविष्य जानना है, तो मैंने कहा, मेरा दोस्त साधारण आदमियों का भविष्य नही देखता। वह ऊँचे नेता की भाँति ऐसा ऊँचा ज्योतिषी है, जो भविष्य में जीते लोगों का ही भविष्य देखता है। फिर उसकी फीस भी ऊँची है। दे सकोगे तुम?

मेरी बात सुनकर उसने एक लम्बी साँस छोडी और कहा, तुमने मुझे पहचाना नहीं। मैं भगवान् हूँ।

क्या भगवान्! सुनकर मैं हैरत में पड़ गया। कहा, अरे भाई! तुम तो दुनिया का भविष्य बनाते हो। तुम्हें अपना भविष्य जानने की जरूरत कैसे पड़ गयी?

भविष्य! अब भविष्य बनाने वाला मैं कहाँ रह गया हूँ भाई। भविष्य तो अब वे बनाते हैं जो बाजार में बैठे हैं, सत्ता में बैठे हैं, किसी निजी आश्रम में बैठे हैं, जातिवाद में बैठे हैं; भ्रष्टाचार में बैठे हैं; दलवाद में बैठे हैं।

तुम अपने कोप से इनकी खबर क्यों नहीं लेते?

कैसे लूँ। भगवान् ने लाचारी प्रकट करते हुए कहा, मुझे अन्ध विश्वासी लोग इतनी बुरी तरह से घेरे रहते हैं कि मैं उनकी नाकेबन्दी से छूट ही नहीं पाता। सच कहो, तो आदमी ने जो स्थल कभी मेरे निवास–स्थान थे, कैदखाने में बदल दिये हैं। आज तो मैं जैसे–तैसे भागकर आया हूँ।

खैर, तुम्हारी जो हालत देख रहा हूँ, मैने कहा, उससे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि तुम भगवान् ही हो। अब रहा सवाल तुम्हें मेरे दोस्त के पास ले जाने का। वह फीस के मामले में जरा भी रियायत नहीं करता तुम्हारे तथाकथित भक्तों की भाँति और मैं नहीं समझता कि एक सच्चे भगवान् के पास किसी अच्छे डॉक्टर को, वकील को, नेता को या ज्योतिषी को उसकी फीस देने की ताकत हो सकती है।

तुम ठीक कहते हो, मेरे पास फीस–वीस नहीं है। मेरी करोड़ों की सम्पत्ति है, लाखों की प्रतिदिन की आमदनी है; पर तब भी मैं नंगा–भूखा हूँ। मेरी सम्पत्ति के ट्रस्टियों ने मुझे ऐसा बना दिया है।

मेरा दोस्त सरकारी टैक्स लगाने वालों की भाँति कहता है कि चाहे जो करो; लेकिन मेरी फीस पहले रखो।

चोरी मैं कर नहीं सकता। भगवान् जो हूँ; उधार मुझे कोई देगा नहीं; क्योंकि वह विश्वास ही नहीं करेगा कि जो उधार माँग रहा है, वह भगवान् है; भीख कैसे माँगू। एक बार मेरे लिए बनाये गये घर के बाहर भीख माँगने बैठा था, सो बडी ग्लानि हुई थी। फिर तुम्हारे दोस्त की फीस–जितनी भीख पाने के लिए तो काफी समय चाहिए।

मुझे भगवान् पर दया आयी। सोचा, इसका काम तो करना ही है। दोस्त से कहूँगा, समझ लो, तुम्हारी एक–दो शराब की बोतलें तुम्हारे हाथ से टूट गयीं। यह भगवान् है, इस पर तरस खाओ, और इसका भविष्य बता दो।

मैं अन्दर गया। दोस्त से बात की। दोस्त जैसे–तैसे राजी हो गया।

भगवान् सुनकर खुश हुआ। मैं उसे अन्दर दोस्त के पास ले गया।

बाहर फिर अपनी जगह पर आकर मैं सोचने लगा, भगवान के राहु, केतु, शनि जैसे दुष्ट ग्रह प्रबल नहीं होंगे, तभी आज उसकी यह हालत हो गयी है।

कोई आध घंटे बाद भगवान् बाहर निकला। बाहर निकलकर वह सीधे अपने रास्ते चला गया; मुझसे कोई बात तक नहीं की। मैंने देखा उसका चेहरा पहले से ज्यादा गिरा हुआ था।

मैं समझ गया, भगवान् का भविष्य अन्धकारमय है। ☐

— २ माया देवीनगर,
जलगाँव– ४२५००२
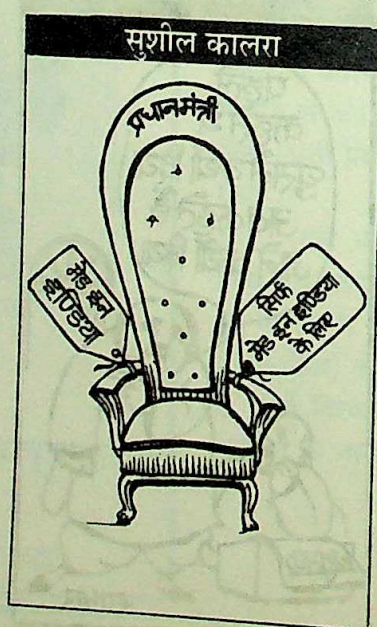
तुम्हें मौन रखने की आदत है। यह आदत कभी अखण्ड–मौन–व्रती भी बना देती है तुम्हें। यह भी कि कभी–कभी तुम्हारा यह मौन बहुत मुखर हो जाता है और तब लगता है कि यह मौन एक ओढ़ा हुआ लबादा है, बहुत मोटा लबादा। किन्तु जब–तब यह देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि यह मोटा लबादा भी तुम्हारे ओढ़े हुए मौन को इतना मुखरित कर देता है कि तुम्हारी असलियत भरे चौराहे पर निरावृत हो जाती है। तुम कितने नंगे हो, निर्वस्त्र हो, यह भी किसी से छिपा नहीं रह जाता; परन्तु तुम हो कि तुम्हारा मौन टूटने का नाम नहीं लेता। यदि धोखे से कहीं टूटने भी लगता है, तो तुम तुतलाने लगते हो; हकलाने लगते हो और तुम्हारी यह तुतलाहट, यह हकलाहट होती ही इसलिए है कि कहीं अनजाने में भी सच न निकल जाये मुँह से। वैसे तुम्हारा यह जानबूझकर ओढ़ा हुआ मौन लोगों को अपने भ्रमजाल में फँसाने के लिए चारे का काम भी करता है। लोग भ्रमित हो भी जाते हैं और जब तक उनका भ्रम टूटता है, तब तक गंगा–यमुना में बहुत पानी बह चुका होता है। फिर भी, कभी न कभी भ्रम टूटता जरूर है; क्योंकि उसकी भी आदत टूटने की जो ठहरी!

ऐसा नहीं है कि तुम हमेशा मौन ही रहते होओ। तुम्हारा मौन तब एकदम टूट जाता है, जब मामला तुम्हारे हिसाब से 'साम्प्रदायिक' हो या फिर तुम्हारी तथाकथित 'धर्म–निरपेक्षता' पर आँच आने की रञ्च–मात्र भी सम्भावना हो। देश की स्वाधीनता के पहले भी तुम्हारी यही आदत थी और बाद में भी यह आदत छूटी नहीं। उलटे हुआ यह कि तुम्हारी यह आदत धीरे–धीरे लत बन गयी। देश का विभाजन चाहे जितना भी दुःखद पूरी दुनिया की निगाह में रहा हो; पर तुम्हें जरा भी दुःख तो क्या, अफसोस तक नहीं हुआ। होता भी

तुम्हारे मौन का हम अर्थ क्या समझें!

कैसे! विभाजन का सैद्धान्तिक आधार भी तो तुम्हीं ने गढ़ा था अपने कुटिल मस्तिष्क से और जिसे शाब्दिक–स्वरूप दिया था तुम्हारे निखिल दा (निखिल चक्रवर्त्ती–अब दिवंगत) ने खैर, जाने दो उसे। उसके बाद तेलंगाना में सशस्त्र–विद्रोह की रचना कर डाली तुमने, रजाकारों तक से तुमने हाथ मिला लिये। भला हो सरदार पटेल का कि समय रहते उन्होंने 'फोड़े' का सफल 'आपरेशन' कर दिया। पटेल स्वर्गवासी क्या हुए, तुम्हारी बाछें खिल गयीं। नतीजा हुआ कि तिब्बत की स्वाधीनता तो चीन के हाथों (वास्तव में नेहरू के हाथों) छिनी ही, लगे हाथों भारत की उत्तरी सीमा पर लाल सेना का आक्रमण भी हो गया। भारत की उस अजेय सेना, जिसके बल पर अंग्रेजों ने दो–दो विश्व–युद्ध जीते थे, के माथे पर पराजय के कलंक का टीका लगवा दिया तुम्हारे चहेते वी०के० कृष्णमेनन ने। कृष्णमेनन जैसा तुम्हारा बिरादर और करवा भी क्या सकता था? नेहरू का हवाई किला ध्वस्त हुआ और वे मारे धक्के के परलोक सिधार गये। लेकिन १९६५ तक आते–आते भारत की सेना ऐसी सँभली, ऐसी सँभली कि पाकिस्तानी सेना के अजेय अमेरिकन पैटन टैंकों, सैबर जेटों के धुर्रे उड़ा दिये। खेमकरन में पैटन टैंकों का कब्रिस्तान ही बना दिया भारत के शूरवीरों ने; पर तुम्हें इस पर गर्व न होना था, न हुआ। फिर रच डाला गया एक षड्यन्त्र ताशकन्द में। भारत का जो प्रधानमन्त्री विजेता के रूप में जिन्दा गया था, वह वापस लौटा एक शव के रूप में, जिसे कन्धा दे रहा था तुम्हारे 'पितृदेश' का प्रधानमन्त्री कोसिजिन– धूर्त्तता और पाखण्ड और क्या होता है? बस, बन आयी तुम्हारी। 'गरीबी हटाओ', प्रिवी पर्स खत्म, राष्ट्रीयकरण का खेल शुरू। इन्दिरा जी के सहयोगी बनकर खूब नाम भी कमाया और 'नामा' भी। आखिर में आपातकाल भी लगवाकर ही माने। कलई खुली, तो ७७ में अपना भी सफाया करा बैठे अपनी 'चहेती सहेली' के साथ। इतने पर भी तुम अपनी हरकतों से बाज नहीं आये। अन्दर–अन्दर घात लगाये रहे और पहली बार विपक्षी पार्टी की बनी केन्द्रीय सरकार को भी गिरवाकर ही माने।

फिर, फिर जो राम–जन्मभूमि का आन्दोलन फिर बढ़ा, तो तुम सीधे ताल ठोककर सामने आ गये। तथाकथित 'नेशनल प्रेस' में घुसे तुम्हारे आजूजों–माजूजों ने अपनी लेखनी की स्याही तहाँ–तहाँ तक काली की कि राम–जन्मभूमि–आन्दोलन विश्व का अब तक का सबसे बड़ा, सबसे सुसंगठित, सबसे अहिंसक आन्दोलन बन गया; पर तुम तो ठहरे कालनेमि और भस्मासुर के अवतार, तो वही कराकर माने, जो 'होनहार' न होते हुए भी होकर ही रहा। बस, फिर क्या था ! 'बाबरी–मस्जिद', 'बाबरी–मस्जिद' की रट लगा दी और अब तक तुम्हारी 'काँव–काँव' में सिर्फ 'बाबरी–मस्जिद' ही गूँज रही है। तुम्हें भला इससे क्या लेना–देना कि उस भवन को न तो किसी न्यायालय ने और न तब तक के किसी प्रधानमन्त्री ने कभी भूलकर भी 'मस्जिद' कहा या माना। वह तो एक 'विवादित इमारत' या 'विवादित–ढाँचा' ही था। तुम्हें इससे भी क्या लेना–देना कि उसमें १९३४ के बाद से कभी नमाज नहीं पढ़ी गयी, १९४९ से ही उसमें रामलला विराजमान थे और तभी से अखण्ड राम–नाम–कीर्त्तन हो रहा था उसमें। तुम्हें इससे भी कुछ लेना–देना नहीं कि मुगल बादशाह अकबर ने भी उसे रामजन्मभूमि मानकर उसकी चहारदीवारी के अन्दर 'राम चबूतरा' बनवाकर पूजा–पाठ की अनुमति दी थी। तुम्हें तो बाबर से ऐसा प्रेम उमड़ा है कि राम का नाम तक तुम्हें बेगाना लगने लगा; राम–नाम से तुम्हें चिढ़–सी हो गयी; भगवा या केसरिया रंग तक से इस सीमा तक 'एलर्जी' है कि चाहे 'रामायण' हो या 'महाभारत' या फिर 'चाणक्य' ही क्यों न हो, केसरिया ध्वज उन धारावाहिकों में देखते ही तुम भड़क उठने लगे। नये–नये 'अपशब्द' भी तुमने गढ़ लिए अपने शब्द–कोश में– 'भगवा–ब्रिगेड', 'केसरिया ब्रिगेड', 'सैफ्रन क्रिमिनल्स' और न जाने क्या–क्या ? यहाँ तक संसद् तक में आये दिन हंगामा करने में भी तुम्हें शर्म नहीं आती। हिन्दू–हिन्दुत्व जैसे शब्द, तुम्हारा बस चलता, तो शब्दकोशों से ही निकलवा देते। पाकिस्तान, बांग्ला देश या फिर सुदूर चिली ही क्यों न हो, को लेकर पत्र–पत्रिकाओं के पन्ने पर पन्ने काले कर डालोगे; पर किसी हिन्दू पर हो रहे अन्याय–अत्याचार तुम्हारे लिए बेकार की बात। मुसलमान, ईसाई तुम्हारी घोर चिन्ता का विषय; परन्तु हिन्दू ! वह तो तुम्हारे लिए कीट–पतंग से भी गया–बीता। तुम्हारा अपलाप, प्रलाप, विलाप तब देखते ही बनता है, जब मामला गैर–हिन्दू से सम्बन्धित हो।

लेकिन पता नहीं, तुम्हें याद है कि नहीं उस जोगेन्द्रनाथ मण्डल की, जो पाकिस्तान की लियाकत अली सरकार में एकमात्र 'हिन्दू' मन्त्री था। उस पर बाद में क्या बीती ? बेचारे को अपने 'हिन्दुत्व' की रक्षा के लिए भागकर भारत आना पड़ा और यहीं कलकत्ता में स्वर्ग सिधारा। पाकिस्तान अपने उस 'शो ब्वॉय' को भी सहन नहीं कर सका। क्या तुम्हें याद है इन्द्र कुमार गुजराल (माननीय भूतपूर्व प्रधानमन्त्री) के उन पिताश्री की, जो पाकिस्तान की केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य होते हुए भी पाकिस्तान में टिक नहीं पाये थे ? क्या तुम उन कुलदीप नैयर को नहीं जानते, जो लाख चाहकर भी पाकिस्तान में टिक नहीं पाये। बेचारे हर साल बाघा सीमा पर १४–१५ अगस्त की आधी रात को पिछले कई साल से मोमबत्तियाँ जला–जलाकर मरे जा रहे हैं; पर अपनी जन्मभूमि में वापस नहीं जा सकते।

वैसे यह सब याद दिलाने की कोई जरूरत है भी नहीं; क्योंकि तुम्हें याद रखनेवाली बात याद रखने की आदत ही कब रही है ? जो भी हो; पर तुम हो कि चाहे कश्मीर से साढ़े तीन लाख कश्मीरी पण्डित मारकर भगा दिये जायें या मिजोरम से पचास हजार रियाङ्, चाहे लद्दाख में बौद्ध सताये जायें, चाहे चकमा बांग्लादेश से उजाड़े जायें, तुम्हें मौन रहना ही है। चाहे त्रिपुरा में रा०स्व०सं० के चार वरिष्ठ कार्यकर्त्ता बैप्टिस्ट मिशन के इशारे पर अपहृत कर लिये जायें, चाहे केरल में भाजपा या संघ कार्यकर्त्ता कत्ल किये जायें, तुम्हें मौन रहना ही रहना है। तुम्हारे इस निष्ठुर कठोर मौन को देखकर पूछना ही पड़ेगा–

तुम्हारे मौन का हम अर्थ क्या समझें
कि तुम पाषाण से भी बढ़ गये दस–बीस डग आगे।

□

– आनन्द मिश्र 'अभय'

किसका नव-वर्ष कैसा नव-वर्ष

- डॉ० शिव नन्दन कपूर

*[जनवरी को नव–वर्ष–दिवस मनाने की जैसी परम्परा इस देश में गत तीन दशकों से पड़ती देखी जा रही है, वह निश्चय ही ब्रिटिश राजनीतिक दासता की नित्य परिपुष्ट हो रही 'विकृति' का द्योतक है। क्या हमारा अपना नव–वर्ष–दिवस (वर्ष प्रतिपदा– चैत्र शुक्ल १) स्मरणीय तथा सोल्लास मनाने के लिए भी किसी आन्दोलन–अभियान की आवश्यकता है ! अंग्रेजियत के पीछे जो दीवानगी नव धनाढ्य वर्ग द्वारा प्रदर्शित की जा रही, उस पर अंकुश कैसे लगेगा, कौन लगायेगा, यह गम्भीर चिन्तन का विषय है क्योंकि संस्कृति के नाम पर विकृति का यह 'ज्वर' निरन्तर बढ़ता जा रहा है। — **सम्पादक**]*

मौसम तो कभी सम न रहा। बादल दबे पाँव सरके। विदाई में ओस के आँसू टपक पड़े। धरती के तन पर झुरझुरी छा गयी। उसने सिंघाड़े की आकृतियों वाली, बेल, बूटेदार हरी चादर और तान ली। प्रकृति के पन्ने फड़फड़ाते रहे। पर घरैतिन को परिवर्तन का पता बस कैलेण्डर के केंचुल उतरने से ही चलता है। नया वर्ष आ गया।

नये वर्ष में नया क्या होता है ? पुराने में पुराना क्या था ? यह तो मानव–मन की आशा भरी जिज्ञासा उसे गुदगुदाती है। एक भोला विश्वास है। उत्सुकता है, नव वर्ष के भानुमती के पिटारे से कुछ नवीन निकले। शायद जादूगर के आम के पौधे–सा, सहसा जादुई फल दिख जाये। इसीलिए वह नये साल का स्वागत नयी बहू वाले स्नेह तथा धूम से करता है। खुशियाँ मनाता है। अन्तर का आँगन सपनों से सजाता है। नयनों की देहरी पर अपेक्षा के दीप जलाता है। तीन सौ पैंसठ दिन तनाव की नाव में पड़े, बहते, थोड़ा–सा सुख पा जाता है। इसीलिए उस नये साल में अपनाव है।

विक्रम संवत्–प्रजा की पूर्ण ऋण–मुक्ति

भारत के ही विभिन्न प्रान्तों में नव–वर्ष के विभिन्न रूप हैं; किन्तु उनमें भारतीय संस्कृति का रूप निहित है। आस्था, कृषि एवं प्रकृति से निकटता, धार्मिक मान्यताएँ तथा घटनाएँ विद्यमान हैं। देश का हर पर्व कृषि से जुड़ा है। कृषि से जुड़ाव, भूमि को नमन है। भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ। पर्व परम–पुरुष के प्रति श्रद्धा भी व्यक्त करने का साधन है। भारतीय विचार से विधाता ने चैत्र सुदि या शुक्ल के प्रथम दिवस पर ही इस सृष्टि को साकार किया था। वही विश्व–संचार का प्रथम दिन था। इसी कारण आदि जनयिता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए भारतीय गुड़ी पड़वा पर पूजन करते हैं। ईख की नयी फसल का मण्डप बनाकर, उसमें फसल की अन्य उपज रखकर उत्सव मनाते हैं। उस अवसर पर गन्ना अवश्य प्रसाद रूप में चूसा जाता है। उत्तर भारत ही नहीं, दक्षिण में भी अनेक स्थानों पर चैत्र ही नव–वर्ष का आरम्भ माना गया है।

घटनाक्रम से देखें। शकारि विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर विक्रम संवत् का प्रचलन किया। भारत की पुरातन परम्परा के अनुसार, उन्होंने उस अवसर पर अपने राज्य के समस्त निवासियों का ऋण स्वयं चुकाया। ऋण–रहित होकर जीने का सुख अलग ही है।

आंग्ल–प्रभाव तथा कार्यालयों में चलन के कारण सामान्य–जन जनवरी से नव–वर्ष का प्रारम्भ मानते रहे; किन्तु भारत के विभिन्न भागों में नव–वर्ष मनाने का समय तथा सांस्कृतिक रूप भिन्न है। यद्यपि उसकी मूल आत्मा वही– धरती से कृषि के माध्यम से जुड़ाव, तथा ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ही है।

केरल में 'ओणम्'

केरल में सावन मास से नव वर्ष का आरम्भ भी घटना पर ही आधारित है। पाण्ड्य राजा सावन अथवा सिंह मास में विजयी होकर कोल्लम आये थे। इसीलिए सुनहले धान से घर भर कर आनन्द से 'ओणम्' मनाया जाता है। यहाँ कोल्लम या नव वर्ष पर एक दिन पूर्व ही समस्त शुभ शकुन वाली वस्तुएँ एक कक्ष में रख ली जाती हैं। दूसरे दिन प्रातः उन्हें देखा जाता है।

बिहार में चैत्र मास

बिहार में चैत्र मास से नव वर्ष का आगम मानते हैं। अन्न की सुनहली बालों से घर भरा रहता है। हृदय में होता है अपार उत्साह। महिलाएँ वासन्ती परिधान पहनती हैं। पुरुष भी नये वस्त्र धारण करते हैं। लोक–गीतों की धुन पर मन के पाँव थिरकते हैं। बंगाल में वैशाख–प्रतिपदा पर नववर्ष का आयोजन कर संगीत से सँवारा जाता है। असम में पशु–पूजन कर उनकी शोभा–यात्रा निकाली जाती है।

पंजाब की बैशाखी

पंजाब में नव वर्ष की अभ्यर्थना बैशाख मास में की जाती है। इसी कारण उसे 'बैशाखी' कहा गया है। इसकी पृष्ठभूमि में घटना–क्रम है। इसी अवसर पर गुरु गोविन्द सिंह जी ने खालसा–पन्थ को साकार किया था। इस दिन नदी–स्नान, मेले, लोक–गीत, भाँगड़ा का वीर–दर्प युक्त नृत्य तथा अन्य प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं। रूपसियों के पाँव 'गिद्धा' नाचते–थिरकते रहते हैं। अलगोजे के स्वर मेलों को रसमय बनाते रहते हैं। इसका सम्बन्ध भी फसल से है।

आन्ध्र में 'उगाडि'

आन्ध्र में 'उगाडि' या नव वर्षोत्सव पर (अभ्यंग) तेल मलने की प्रथा है। कच्चे आम तथा नीम की पत्तियों को गुड़ के साथ खाया जाता है। नीम की पत्तियाँ रोग–नाशक होती हैं। चेन्नई में इस अवसर पर नारियाँ नारियल, फूल, चन्दन तथा रजत–मुद्राओं से सजे थाल का दर्शन कराती हैं। यह आस्था से संलग्न होने के साथ सुख, समृद्धि एवं सौभाग्य की कल्पना से युक्त रहा। उड़ीसा के वनवासी इस अवसर पर पहले कपोत, फिर पशु–पक्षियों के रुप धारण कर मुखौटे लगाकर नाचते हैं।

कश्मीर का 'नवरेह'

कश्मीर में नवरेह या नव वर्ष के अवसर पर देवालयों में पूजन होता है। वसन्त का मोहक वातावरण मन का उल्लास बढ़ाता है। सुहागिन पुत्रियों के घर उपहार भेजे जाते हैं। वसन्त के साथ ही कश्मीरी नव वर्ष का आगम मानते हैं। अखरोट, बादाम तथा मिसरी की डली चखी जाती है। दर्पण में मुख देखा जाता है। उद्यानों में उत्सव आयोजित होते हैं। महाराष्ट्र–वासी भी चैत्र में ही नव वर्ष का उत्सव मानते हैं। इस अवसर पर फूलों से सजी पताकाएँ घरों पर सजायी जाती हैं। गुजरात में व्यापारी दीपावली से नव वर्ष का प्रारम्भ मानते तथा नया खाता खोलते हैं।

विदेशों में भी नव वर्ष का उत्सव विभिन्न स्थानों पर अलग रूप लिये है; किन्तु वहाँ भी कृषि से संलग्नता तथा ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भारतीय भाव परिलक्षित होता है।

जापान उगते सूर्य का देश

उगते सूर्य के देश जापान में नव वर्ष पहले फरवरी में मनाया जाता था। अब एक से तीन जनवरी तक आयोजित होता है। इस दिन भारत की तरह द्वार 'शिमेनावा' या वन्दनवार से सज्जित किया जाता है। जैसे आम एवं अशोक की पत्तियों से भारतीय मंगल–सज्जा करते हैं, वे 'फन' (घास) तथा 'दाई–दाई' (नारंगी) तथा मछली से भवन सँवारते हैं। मत्स्य भारत का ही पुरातन शुभ प्रतीक है। द्वार के दोनों ओर 'कोडोमात्सू' (देवदारु) शोभा पाते हैं। देवदारु भारत में पावन वृक्ष माने गये हैं। जापानी मित्रों और परिचितों को 'नेंगाजो' (अभिनन्दन–पत्र) भेजते हैं। विशेष जल से 'जोनि' नामक स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन प्रस्तुत करते हैं। कमल की जड़ एवं चावल से निर्मित 'मोर्चा' भी खाया जाता है। कमल–नाल भारत का प्रिय खाद्य है। विभिन्न आकृतियों वाली पतंगें आकाश में लहराती, उड़ती हैं। बच्चों से सुलेख का अभ्यास कराया जाता है। भारत में वसन्तागम पर पहले विद्यारम्भ होता था। इस प्रकार इसे भारतीय प्रभाव ही कहेंगे। मंगोलिया में ऐसे अवसर पर गले मिलते हैं, कुशल पूछने की प्रथा है।

म्यांमार का 'तिंजान'

पुरातन बर्मा या म्यांमार में नव वर्ष भारत की होली के समान मनाया जाता है। कई दिन पूर्व से तैयारी चलती है। चार दिन मनाये जाने वाले इस पर्व पर प्रथम दिन 'पगोडा' जाकर भगवान् बुद्ध की प्रतिमा को सुगन्धित जल से स्नान कराते हैं। फिर मार्गों के किनारे तम्बू तान कर आने–जाने वालों पर सुरभित जल डाला जाता है। परस्पर मिलने, बधाई देने, मुँह मीठा कराने का दृश्य पूर्णतः भारत की होली का स्मरण कराता है। दोपहर में दो घण्टे के अवकाश के बाद यह जल–वर्षण कम हो जाता है। सन्ध्या के समय ईश्वर– आराधन के साथ नृत्य–संगीत का समावेश भी होता है। इस उत्सव पर इन्द्र–पूजन की भी परम्परा रही।

थाईलैण्ड का 'महासुंगकर्ण'

सूर्य के कुम्भ–राशि में प्रवेश के साथ ही थाईलैण्ड में 'महासुंगकर्ण' अथवा नव वर्ष का उत्सव आयोजित होता है। यह काल लगभग अप्रैल मास के मध्य का होता है। वहाँ यह पर्व होली तथा दीपावली का मिला–जुला

(शेष पृष्ठ ७९ पर)

...न आँधी-पानी की दरकार है इस तेज उमस को

- हृदय नारायण दीक्षित
(भूतपूर्व संसदीय कार्यमन्त्री, उ०प्र० सरकार)

अंग्रेज संसदीय जनतन्त्र के जन्मदाता माने जाते हैं। एक सुनियोजित प्रचार के कारण जनतन्त्रीय ...त्रीय प्रणाली को पश्चिम की देन कहा जा रहा है। यों ...ण्ड की राज्य-व्यवस्था पहले राजतन्त्रीय थी। राजा ...भु था। राजा के अत्याचारों की प्रतिक्रिया से इंग्लैण्ड ...धीरे-धीरे जनतन्त्रीय पद्धति आयी। अंग्रेज परम्परावादी ...ते हैं। सो उन्होंने राजतन्त्र की पहचान के रूप में राजा ...पद बनाये रखा; किन्तु शासन की सारी शक्तियाँ ...द के हाथ में चली गयीं। अंग्रेज कहते हैं कि ब्रिटिश ...द सम्प्रभु है। पं० दीनदयाल उपाध्याय के लन्दन-प्रवास ...अंग्रेजों ने ब्रिटिश संसद् की सम्प्रभुता का यशोगान ...या। उन्होंने उपाध्याय जी से कहा "हमारी संसद् जो ...है, कर सकती है, सम्प्रभु है वह।" पण्डित जी ने कहा ...न्त! कोई संस्था सम्प्रभु नहीं हो सकती। क्या इंग्लैण्ड ...संसद् प्रत्येक नागरिक को रोजाना पुलिस थाने की ...जिरी का निर्देश दे सकती है। शायद नहीं। भारत में ...लिए कोई भी संस्था सम्प्रभु नहीं है। धर्म नियामक है। ...अच्छाई और बुराई का निर्णायक है।"

भारतीय लोकतन्त्र पश्चिम की 'डेमोक्रेसी' नहीं ...। 'डेमोक्रेसी' पश्चिम की राज्य-व्यवस्था है। लोकतन्त्र ...रत का जीवन-दर्शन है। डेमोक्रेसी (जनतन्त्र) में सिर्फ ...मतदाता ही हिस्सा लेते हैं। लोकतन्त्र भारत में मनुष्य, ...पशु, पक्षी, पेड़-पौधों और नदी-पर्वत को एकात्म ...समझनेवाली जीवन दृष्टि से आया है। लोकतन्त्र का ...लोक बड़ा प्यारा शब्द है। जनतन्त्र का जन सिर्फ मनुष्य ...क ही सीमित है। लोक में सृष्टि का कण-कण समाहित ...। जन भी, प्राणी भी और वनस्पतियाँ भी; धरती, आकाश ...और सूरज चाँद भी। लोक समझने और पूजने की हिन्दू ...अभीप्सा से ही "आलोक" शब्द आया। लोक देखने की ...खातिर आलोक चाहिए।

आलोक हिन्दुओं की सनातन अभीप्सा है। आलोक ...का मतलब खुली आँखों से देखने में सहायक दिन का प्रकाशमात्र नहीं। समग्र अस्तित्व को दिखाने में सक्षम परिपूर्ण प्रकाश का नाम पड़ा आलोक। सरकारी तन्त्र मे मनुष्य के साझे का नाम ही लोकतन्त्र नहीं है। पश्चिम के प्रख्यात राजनीति विज्ञानी डायसी ने डेमोक्रेसी (तन्त्र) की परिभाषा दी है, "ऐसी व्यवस्था, जिसमें जन-जन की साझेदारी हो।" मगर लोकतन्त्र सिर्फ जन-जन की साझेदारी वाली व्यवस्था नहीं है। बादल आते हैं। बरस जाते हैं। धरती हरीतिमा ओढ़ लेती है। पौधे उग आते हैं। तरुण होते हैं। कलियाँ खिलती हैं। यौवन आता है, फूल बन जाती हैं वे। फूल बूढ़े होते हैं; मगर जीने की इच्छा बनी रहती है। यही जिजीविषा बन जाती है बीज। बीज फिर पानी का रस और धरती का दुलार पाकर पेड़ बनते हैं। शीत आता है। पौधे पत्तियाँ छोड़ते हैं। सूरज तपता है। गर्मी आती है। एक शिशु जन्म लेता है अनन्त सम्भावनाएँ लेकर। जवान होता है। जीवन से लड़ता है। बूढ़ा होता है। सृष्टि नित्य नये गीत रचती है। कहीं कोई नया पौधा, कही कोई नया जीव। कहीं कोई नया शिशु, कहीं कोई नया तारा। कहीं कोई नया पक्षी। इस सारी व्यवस्था को कोई राज्य-व्यवस्था नहीं चलाती। अस्तित्व के अपने नियम हैं। मनुष्य बहुत चाहकर भी अपना बुढ़ापा नहीं रोक सकता। हिन्दू ऋषियों ने इसे 'ऋत' कहा। उन्होंने गाया **"ऋतस्य यथा प्रेतः"**। 'ऋत' अर्थात् जो जैसे है, वैसा ही। ऋत से बनीं ऋतुएँ। लोक सञ्चालन की नियमावली है ऋत।

भारत के ऋषियों ने ऋत को सिर झुकाया। सृष्टि के कण-कण की आराधना की उन्होंने। इसीलिए दुनिया में सबसे पहली लोकतन्त्रीय समझ बनी हिन्दुस्थान में। लोकतन्त्र केवल इन्सान नहीं चलाते। भारत के राजनीतिज्ञों ने पश्चिम की जूठन खा ली। वे लोकतन्त्र के बजाय डेमोक्रेसी के रास्ते चल निकले। लोक छूट गया, तन्त्र को सरकारी संस्थाओं ने हथिया लिया। राजनीति सत्ता अधिष्ठान पर कब्जा करने का उद्योग बन गया। वोट की ताकत

बढ़ाने की खातिर जाति, मजहब, भाषा और क्षेत्र की चेतनाएँ जगायी गयीं। लोक–चेतना खण्डित की गयी। तुलसी दास **"सीयराम सब जग जानी"** कह कर लोक–चेतना हीं जगा रहे थे।

जागी हुई लोक–चेतना में राज्य–व्यवस्था सहायक की भूमिका में होती है। सोये हुए लोगों के बीच राज्य–व्यवस्था मालिक बन जाती है। जाग्रत् समाज में अपराधियों को दण्ड देने की जरूरत नहीं पड़ती। अपराधी अपने आप दण्डित होते रहते हैं। भारतीय जीवन रचना में समाज को क्षति पहुँचाने वाले अपराधियों के सुधार के मोटे–मोटे तीन उपाय बताये गये हैं। पहला ग्लानि, दूसरा लज्जा और तीसरा दण्ड। जाग्रत् लोक–चेतना के वातावरण में गलती करने वाला व्यक्ति अपने अन्दर ही अन्दर तीव्र अपराध–भाव महसूस करता है। इसी अनुभूति का नाम पड़ा पश्चात्ताप अर्थात् बाद का ताप। यही ताप व्यक्ति की आन्तरिक कमजोरियाँ जला डालता है। जाग्रत् लोक–चेतना वाले समाज में निन्दा का भय तीव्र रहता है। गलत की निन्दा के डर से लोग गलती नहीं करते। समाज अँगुली उठाता है; मगर लोक–चेतना से शून्य समाज में ग्लानि शून्य होती है। लज्जा होती नहीं। इसी ग्लानि की चर्चा श्रीकृष्ण **"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति"** में करते हैं। ग्लानि–शून्यता का मतलब सोयी हुई लोक–चेतना।

संविधान लागू हुए ५० वर्ष बीत गये। संविधान में लोक–चेतना की जाग्रति की व्यवस्था नहीं। वर्ग–चेतना फन फैलाए खड़ी है। भारत में लोक जगाने का काम श्रद्धेय रहा है। गायत्री मन्त्र के दृष्टा ऋषि विश्वामित्र **"तत्सवितुर्वरेण्यम्"** गाकर सविता–देव से आलोक ही माँग रहे थे। दयानन्द, विवेकानन्द और योगिराज अरविन्द का अधिष्ठान लोक–जागरण ही था। फिर आये डा० हेडगेवार। उन्होंने निंद्रालु राष्ट्र की बीमारियों का समग्र परीक्षण करने के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नामक तन्त्र बनाया। लोक मौजूद था ही, तन्त्र की व्यवस्था डा० हेडगेवार ने की।

भारत की लोक–चेतना जाग रही है। वैसे अभी उमस नहीं घटी। राजनीति ने नींद की मीठी–मीठी गोलियाँ देकर जन–चेतना को सुलाया है। जाति की गोली की निद्रा, क्षेत्र और भाषा की गोली की तन्द्रा और मजहब की गोली की मरणान्तकता। इस उमस के बाद चाहिए आँधी। आँधी, जो अपनी तीव्र हरहराहट वाले झकोरों की गर्जना के साथ लोगों की तन्द्रा–निद्रा तोड़े। आँधी के साथ चाहिए पानी भी। हिन्दुत्व का अधिष्ठान ही ऐसा आँधी–पानी ला सकता है। आइए, आँधी पानी लाने वाले जागृत् समूह के साथ मिलकर हम सब लोक अराधन में जुट जायँ। ☐

– *'अक्षर वर्चस', एल–१५६२, सेक्टर आई, ल०वि०प्रा० कालोनी, कानपुर मार्ग, लखनऊ।*

अंग्रेजों को भी अंग्रेजी नहीं आती

ब्रिटेन में आधिकारिक रूप से यह स्वीकार किया गया है कि बड़ी तादाद में अंग्रेज पुरुष अपनी भाषा अंग्रेजी भी सही नहीं लिख सकते और बड़ी तादाद में जिन लड़कों से अंग्रेजी भाषा सीखने की अपेक्षा की जाती है, वे भी ऐसा नहीं करते।

शिक्षा पर निगरानी और नियन्त्रण रखने वाली ब्रिटिश सरकार की संस्था 'ऑफस्टेड' द्वारा जारी एक रिपोर्ट में इन तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि अंग्रेज पुरुषों और खासकर लड़कों के बीच अंग्रेजी लिखने में प्रगति चिन्ताजनक रूप से काफी कम है।

रिपोर्ट में चेतावनी दी गयी है कि अंग्रेज पुरुषों के बीच अंग्रेजी भाषा खोती जा रही है जबकि ब्रिटेन अंग्रेजी भाषा का जन्मस्थान रहा है। विभिन्न स्तरों पर होने वाली परीक्षाओं के परिणामों से पता चलता है कि ब्रिटेन में भारतीय मूल के छात्र अंग्रेजी में शानदार प्रदर्शन कर रहे हैं।

ऑफस्टेड की रिपोर्ट में लड़कों और लड़कियों के बीच अंग्रेजी भाषा के ज्ञान में भारी अन्तर होने का भी खुलासा किया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ सही अंग्रेजी लिखती और जानती हैं। ब्रिटेन के ३०० स्कूलों में सर्वेक्षण किये जाने पर लड़कों और लड़कियों के बीच अंग्रेजी भाषा के ज्ञान का अन्तर ८ से १५ प्रतिशत तक पाया गया। रिपोर्ट में शिक्षकों के बेहतर प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की सिफारिश की गयी है जिससे वे अपने छात्रों को अंग्रेजी पढ़ने और लिखने की शिक्षा दे सकें। ☐

ये खुदाई खिदमतगार

□ प्रो० शैलनाथ चतुर्वेदी

[अमेरिका में ईसाइयों का एक वर्ग इस बात से बहुत दुःखी है कि हिन्दू समाज घोर आध्यात्मिक ...ार में डूबा हुआ है। काजी जी शहर के अंदेसे से दुबले होते जा रहे हैं और परेशान हैं कि जल्दी से ... बेचारे हिन्दुओं को ईसाई धर्म की शरण प्राप्त हो, जिससे वे उजाले में पहुँच जायें। प्रस्तुत लेख में एक ...पूर्व प्रकाशित साहित्य के आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि उस समय भी ईसाईयों की मानसिकता ...ऐसी ही थी। साथ ही, तब से अब तक हिन्दू समाज में क्या और कैसे परिवर्तन हुए हैं, बदली हुई ...स्थितियों में धर्म–परिवर्तन अभियान शान्ति के लिए किस प्रकार खतरा बन सकता है, इन सब तत्वों की ...ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है। – सम्पादक]

अमेरिका के प्रसिद्ध समाचार पत्र **'वाशिंगटन पोस्ट'** ...नुसार **एक ईसाई संगठन 'सदर्न बैप्टिस्ट्स' ने** ...ओं को **'अन्धकार' से निकाल कर ईसाई धर्मके** ...श में लाने का अभियान आरम्भ किया है। अमेरिका ...ह ईसाइयों का दूसरा सबसे बड़ा संगठन है। १८४५ ...पित इस संगठन के केवल अमेरिका में डेढ़ करोड़ ...स्य हैं। **बेचारे हिन्दुओं की दुर्दशा पर विलाप करते** ...उनके **उद्धार के लिए संस्था ने एक विशेष प्रार्थना** ...पुस्तक **तैयार की है, जिसे दीपावली के अवसर पर** ...अक्टूबर **से ४०००० गिरजाघरों में वितरित किया** ...है। पुस्तक के पहले पृष्ठ पर ही घोषणा की गयी है ...० करोड़ व्यक्ति हिन्दूधर्म के निराशापूर्ण अँधेरे में ...हुए हैं। प्रार्थना कीजिए कि प्रकाश का पर्व मनानेवाले ...न्दुओं में यह सुबुद्धि आये कि उनके मन के अन्धकार ...दीपक का प्रकाश दूर नहीं कर सकता।' **इस पुस्तक** ...अनेकत्र **भारत और हिन्दुओं की 'दुर्दशा' पर दुःख** ...ट **किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि** ...ई **आध्यात्मिक अन्धकार का नगर है। इसके दस** ...रिकों **में आठ हिन्दू हैं, जो झूठे देवताओं के भय** ...परम्पराओं **के गुलाम हैं।" कलकत्ता पर काली और** ...हिन्दू **देवी–देवताओं के माध्यम से शैतान ने कब्जा** ...रखा **है। अब समय आ गया है कि ईसा का** ...र–**अभियान वहाँ क्रियाशील हो।"**

आश्चर्य की बात है कि पिछले सौ साल में दुनिया ...ाँ से कहाँ पहुँच गयी है; किन्तु ईसाइयों के कुछ ...ठन अभी भी १९वीं शताब्दी में ही जी रहे हैं। एक ...ाब्दी पूर्व भी हिन्दुओं की दयनीय दशा पर ईसाई ...–प्रचारकों को बड़ा दुःख था और अन्धकार में डूबे हिन्दुओं का उद्धार करने की उनमें वैसी ही ललक थी, जैसी आज 'सदर्न बैप्टिस्ट्स' को है। वे हिन्दू समुदाय को ईसाई बनाने के लिए विविध उपाय करते थे। साक्षर हिन्दुओं के लिए धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, यात्रा–वृत्तान्त, कथा आदि की पुस्तकें प्रकाशित की जाती थीं। इनका उद्देश्य अंग्रेजी राज्य का समर्थन और हिन्दू धर्म की आलोचना करना था, चाहे वह विषय के साथ प्रासंगिक हो या न हो। **इलाहाबाद की क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी ने उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित की थीं।** १८६६ में 'मिस्र देश की चित्रमाला' नामक पुस्तक में मिस्र के इतिहास, धर्म, समाज आदि सभी पक्षों का सचित्र वर्णन किया गया है। पुस्तक की भूमिका बड़ी रोचक है। उसमें **मिस्री सभ्यता की प्राचीनता के प्रसंग में हिन्दुस्तान के निवासियों को याद दिलाया गया है कि जब तुम्हारे पूर्वज जंगली अवस्था में थे, तब मिस्र में उच्चकोटि की सभ्यता थी।** बताया गया है कि मिस्र का वृत्तान्त भारतवासियों को दो कारणों से पढ़ना चाहिए– एक तो यह कि मिस्रियों में देव तथा नदी पूजा वैसे ही प्रचलित थी, जैसी भारत में है और दूसरे भारत की तरह मिस्र में भी अंग्रेजों का सुशासन है। जिस प्रकार बिच्छू का डंक शरीर के अन्त में होता है, उसी प्रकार पुस्तक के अन्त में अंग्रेजी शासन का गुणगान किया गया है और मिस्र के प्राचीन धर्म के साथ हिन्दू धर्म को लपेट कर दोनों की निन्दा की गयी है। इस बात पर सन्तोष भी व्यक्त किया गया कि जैसे मिस्र का धर्म समाप्त हो गया, वैसे ही भविष्य में हिन्दू धर्म भी समाप्त हो जायेगा।

पुस्तक के अन्तिम अंश का शीर्षक है **'मिस्र की**

नई दशा'। इसमें कहा गया है ....जब से अंग्रेज लोगों ने आकर.... अरबी पाशा और उसकी सेना के हाथ से छुड़ा दिया है, तब से मिस्र देश की बिलकुल नई दशा हो गयी है। आगे कथन है कि "...जैसी आजकल हिन्दुस्तान की दशा है वैसी ही पूर्वकाल में मिस्र की दशा थी....। जैसा प्राचीन मिस्र के लोग नील नदी को पूजते थे वैसा ही आजकल हिन्दू लोग गंगा, नर्बदा आदि नदियों को पूजते हैं; परन्तु जैसा नील की पूजा उठ गई है वैसा ही हिन्द की भी नदियों की पूजा उठ जायेगी। प्राचीन मिस्री अनेक देवी–देवताओं को भजते थे और साँड़, मगरमच्छ, कुत्ते, बिल्ली का बड़ा आदर सम्मान करते थे परन्तु अब मिस्रीवासी इस मूर्खता से छुटकारा पा गये हैं और वैसा ही हिन्दवासी भी गाय, बन्दर की पूजा से भूत भवानी के भजने से छूट जायेंगे। जैसा रा आसैरिस ऐसिस आदि के मन्दिर सूनसान पड़े हैं और उनमें कोई चढ़ावा चढ़ाया नहीं जाता है इसी रीति से शिव, विष्णु, काली आदि के मन्दिर भी हिन्दुस्तान में सूनसान हो जायेंगे।'

यह हाल है मिस्र के सम्बन्ध में प्रकाशित पुस्तक का, तब भारत के विषय में लिखी गयी पुस्तक कैसी है, इसका नमूना भी देख लें। १८८८ में सोसाइटी ने **'हिन्दुस्तान देश की यात्रा'** नामक पुस्तक प्रकाशित की। पुस्तक में भारत के विभिन्न नगरों और प्रदेशों का वर्णन किया गया है। पुस्तक की भूमिका में बड़े उदात्त भाव से कहा गया कि **'इस पुस्तक का प्रयोजन यह है कि पढ़नहारे अधिक अपने सुन्दर देश और अच्छी–अच्छी बस्तियों को जानें।'** यह पुस्तक **'उन करोड़ों हिन्दुओं के लिए उपयोगी होगी जो देशाटन नहीं कर पाते।'** निस्सन्देह आज से सौ वर्ष पूर्व ऐसी पुस्तक की बड़ी उपयोगिता थी, जिसमें सामान्य पाठक को देश के विभिन्न प्रदेशों, तीर्थस्थानों तथा बड़े नगरों का सचित्र (पुस्तक में बहुत से रेखाचित्र हैं) परिचय मिल जाय। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि यह पुस्तक केवल हिन्दुओं को लक्ष्य बनाकर तैयार की गयी है। **इस यात्रा–वृत्तान्त के लेखक ने बड़ी कुशलता से नगरों, प्रदेशों, भौगोलिक विशेषताओं के प्रसंग में अपने वास्तविक मंतव्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। जहाँ भी अवसर मिला उसने हिन्दूधर्म और समाज की निन्दा, अंग्रेजी शासन की प्रशंसा, हिन्दुओं के आदरणीय पुरुषों की आलोचना की है तथा देशभक्त नवयुवकों की खिल्ली उड़ायी है।**

कलकत्ता नगर के वर्णन में बताया गया है कि किस प्रकार अंग्रेजों ने जंगल और दलदल से भरे स्थान को सुन्दर नगर का रूप दिया, जो आज बड़ा सम्पन्न है। साथ ही इस बात पर खेद व्यक्त किया गया है कि अंग्रेजी शिक्षा के बावजूद बंगाल के युवक अपनी परम्पराएँ नहीं छोड़ रहे। पुस्तक में कहा गया है, **'चाहे वह विद्या प्राप्त करके जान जाये कि वह प्राचीन बातें झूठी हैं, तो भी उन्हें छोड़ने नहीं पाते हैं। परन्तु बहुत लोग यह कहेंगे कि चाहे विद्या की बातें ऋषि मुनि की बातों से विरुद्ध हों, तौ भी, विद्या नाश होय और ऋषि मुनि की बातें स्थिर रहे।'**

कलकत्ता के काली मन्दिर का वर्णन इस प्रकार किया गया, **"दुर्गापूजा....में अगणित यात्री यहाँ एकट्ठे होते हैं, जहाँ काली की डरावनी मूर्त्ति काले रंग की और भयंकर साँपों से लिपटी हुई मुण्डमाला लटकाये और लहू टपकाते हुए अपने पति पर नाच रही है। वह देवी नहीं बरन भूत की नाईं दिखाई देती है। कहावत है कि जैसी देवी तैसा पुजेरी और प्रगट है कि ऐसी पूजा से कभी किसी का भला न होगा।'**

मूर्त्ति–पूजा का विरोध करने के लिए राजा राममोहन राय की जहाँ प्रशंसा की गयी है, वहीं ब्रह्म समाज के दूसरे स्तम्भ केशवचन्द्र सेन की आलोचना की गयी है। उसका कारण बड़ा स्पष्ट है। कुछ समय तक ईसाई सम्प्रदाय के प्रति सेन महाशय की इतनी रुझान थी कि लगता था वे किसी दिन धर्म–परिवर्त्तन कर लेंगे; किन्तु इंग्लैंड जाकर उन्होंने ईसाई सम्प्रदाय का जो अध्यात्मविहीन घोर भौतिकतावादी रूप और परस्पर झगड़े देखे, तो उनका मोह भंग हो गया। उनके विषय में पुस्तक में कहा गया है, **'बाबू केशवचन्द्र सेन पहले यह उपदेश दिया करता था कि लोग आज देवताओं को त्याग कर केवल ईश्वर ही को भजें परन्तु पीछे जब रोग के कारण से निर्बल होने लगा तब उसकी मति में कुछ बिगाड़ हुई और प्रभु के और हिन्द माता के नाम में वह नये प्रकार का धर्म चलाने लगा।'**

उड़ीसा प्रान्त के वर्णन में **जगन्नाथ मन्दिर और रथयात्रा** मेले का विस्तार से विवरण दिया गया है। इस विवरण में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि भोजन की अव्यवस्था, पानी की गंदगी से यात्री रोगी होकर वापस जाता है। पंडे लोगों को भ्रमित कर पुरी–यात्रा पर बुलाते हैं। दूसरे शब्दों में हिन्दुओं को तीर्थयात्रा से

...करने की कोशिश की गयी है। नेपाल के बौद्धों में ...मंत्र–जाप के विषय में लेखक का कहना है '.... **...पर भरोसा रखना और आन देवों का नाम लेना ...और निष्फल है।'** गया के प्रसंग में श्राद्धकर्म के दोष ...ये गये हैं और कहा गया है कि **'यह सब शिक्षा झूठी ...कपटी लोगों ने धनवानों को लूटने के लिये श्राद्ध ...शिक्षा चलाई।'** बनारस के पता नहीं किस मन्दिर का ...इन शब्दों में दिया गया है, **'एक और मन्दिर है ...में बेचारी गाय पाली जाती हैं वहाँ बड़ी बेचैनी में ...रहती और लोग उनको पूजा करते हैं और तौभी ...लोग अपने ज्ञान और समझ पर फूलते हैं।'** महाराज ...सिंह द्वारा काशी विश्वनाथ मन्दिर के गुम्बज को ...के पत्तर से मण्डित कराने के सम्बन्ध में कहा गया ...न्होंने यह कार्य रोगमुक्त होने के लिए कराया था, ...उसे कुछ लाभ न हुआ।' *कानपुर नगर के उल्लेख ...ाना साहब के 'कपट और क्रूरता' का वर्णन है। यह ...ताया गया है कि उसके बाद ही क्रिश्चियन लिटरेचर ...साइटी स्थापित हुई जिसका 'मनोरथ यह है कि ...दुस्तान के लोग मसीही धर्म का ज्ञान पाकर जान लें ...यह धर्म्म हमारा बैरी नहीं है बरन इससे हमारे दोनों ...का लाभ है।'*

अवध के वर्णन में अयोध्या नरेश दशरथ और राम ...चर्चा करते हुए लेखक ने रामायण के विषय में अपनी ...इस प्रकार दी है *'यह हम मान नहीं सकते हैं कि ...मान नाम कोई बन्दर था जो चट्टानों को सिर पर ...सकता था और सूर्य को बगल में दबा सकता था ...यह जो लंका के विषय में लिखा है कि सोने का ...है जिसमें राक्षस निवास करते हैं सो बिलकुल झूठ ...लंका बहुत दिन से सरकार अंग्रेज के वश में है और ...के निवासी ऐसे लोग है जैसा हिन्दुस्तान में रहते हैं ...से प्रगट है कि रामायण के वृत्तान्त मन बहलाने की ...नी है।'* गंगा के सम्बन्ध में सूचनाएँ देने के बाद ...पणी की गयी है कि *'हिन्दुओं में यह दस्तूर है कि हर ...वस्तु को चाहे स्वर्ग में चाहे पृथ्वी में हो पूजने को ...ते हैं यहाँ लों कि बढ़ई अपने बसूले को और स्त्री ...नी हाँडी को पूजेगी सो कुछ आश्चर्य की बात नहीं ...गंगा को बहुत लाभदायक जानकर पूजते हैं।'* गंगा ...विषय में कुछ पौराणिक व्याख्यानों का उल्लेख करने ...बाद लेखक कहता है *'यह कहानियाँ केवल अज्ञानी ...मान सकेंगे।–...उसके जल में कुछ भी पवित्रता नहीं है। यदि कोई ईश्वर को त्याग के आम पाप काटने की इच्छा से गंगा की पूजा करे तो केवल अपने पाप को बहुत ही बढ़ा देता है।'*

हिमालय हिन्दुओं के लिए देवतात्मा है, किन्तु इस पुस्तक के लेखक को उनकी आस्था पर आघात करने में तनिक भी संकोच नहीं है। उसके विचार से *'आजकल बहुत से लोग यमुनोत्तरी गंगोत्तरी आदि तीर्थों के दर्शन करने के लिये बड़ी दौड़–धूप उठाते हैं और यह नहीं जानते कि परमेश्वर ऐसे दूर स्थानों में नहीं वरन् सत्य भक्त के मन में निवास करता है।.... जहाँ कहीं हम हैं वहाँ वह हमारी प्रार्थना सुनने को तैयार है तो दौड़–धूप करके पहाड़ों पर चढ़ना क्या जरूरी है। मथुरा के वर्णन में लेखक का निष्कर्ष है,* **'मथुरा और वृन्दावन में कृष्ण के नाम में अगणित मन्दिर बनाये गये हैं और यह बुरी पूजा वहाँ बहुत प्रचलित है।'**

'सिक्ख लोगों का विवरण' शीर्षक के अन्तर्गत गुरु नानक और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह का जीवन परिचय दिया गया है। सिख सम्प्रदाय का आकलन करते हुए टिप्पणी की गयी है कि *'सिक्ख लोग इस बात पर फूलते हैं कि हिन्दुओं के समान हम मूर्त्तिपूजा नहीं करते हैं, परन्तु सत्य पूछो तो ग्रन्थ की पुस्तक उनकी मूर्त्ति है। जैसा हिन्दू अपनी मूर्त्तों से करते हैं वैसे वे ग्रन्थ को पहनाते और सुलाते और पंखा करते और सब बातों में ऐसा करते हैं जैसा हिन्दू कृष्ण की मूर्त्ति से करते हैं। सिक्ख लोग जाति के भेद को मानते हैं और हिन्दू रीति व्यवहारों पर चलते हैं सो गुरुओं की शिक्षा बहुत बातों में व्यर्थ ठहरी है बरन् बहुत मिथ्या बातों में जैसाकि गाय के पूजने में हिन्दुओं से अधिक मूर्खता उनमें पाई जाती है।'*

१९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में स्वराज्य आन्दोलन प्रबल हो रहा था। महाराष्ट्र के नवयुवक अंग्रेजों के विरुद्ध कमर कस कर तैयार हो रहे थे। तिलक ने शिवाजी जयन्ती के माध्यम से देशभक्ति की लहर उत्पन्न कर दी थी। अंग्रेजी शासन के लिए यह अशुभ लक्षण था अतः प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने महाराष्ट्र के वर्णन में शिवाजी के चरित्र को गिराने और नवयुवकों की आलोचना करने का अवसर निकाल लिया। वह लिखता है *'शिवा जी एक कोट में उत्पन्न हुआ कोटों के द्वारा से उसका जोर बढ़ा और एक कोट में वह मर गया इसलिए औरंगजेब बादशाह उसे ठड्डों में*

उड़ा के कोट का चूहा कहता था परन्तु वहाँ के लोग विशेषकर शिवाजी का गुण गाते हैं उस विश्वासघात के कर्म से, जिससे उसने अपने बैरी को कपट से मारा।' लेखक का संकेत अफजल खाँ–शिवाजी प्रसंग की ओर है। वह दोनों की भेंट का उल्लेख करता है, *'अफजल खाँ के सन्मुख आके उसने डरने का बहुत बहाना किया सो उसके सन्देह को दूर करने के लिए अफजल खाँ ने अपने सेवकों को दूर किया तब कपट का प्रणाम करके शिवाजी ने अफजल खाँ के पेट में (बघनख) ऐसा मारा कि वह फट गया यहाँ लों कि वह मर गया। इस कपट के कारण से मरहठा लोग आजकल शिवाजी की बड़ी प्रशंसा करते हैं मानों उसने बड़ा धर्म कार्य किया।'*

महाराष्ट्र के सुशिक्षित देशभक्त युवावर्ग के विषय में यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है, *'बम्बई नगर में आजकल एक प्रकार के लोग बहुत विख्यात हैं जो जवान बम्बई वाले कहलाते हैं मानो कि और सब नगरवासी बूढ़े और निर्बुद्धि हैं और यही जवान अकेले समझहारे हैं और नई विद्या के पानेहारे हैं। सत्य पूछो तो ये जवान अंग्रेजी स्कूलों में पढ़े हुए हैं और वे बहुत बातों में ऐसा विचार नहीं करते जैसा उनके पुरखे करते थे तो भी वे अद्‌भुत रीति से पुरानी लीकों पर चलनहारे हैं सो उनके काम और हैं।'*

इन युवकों में स्वराज्य की भावना और अंग्रेजी सत्ता का विरोध ईसाई समुदाय को कैसे सहन हो सकता था। पुस्तक का यह अंश देखें, *'एक हिन्द की सैर नामक पुस्तक में भोलानाथ बोस साहब ने इन जवान बम्बई वालों के विषय में यों कहा है कि हमारे लोग आरम्भ में यह न जानते थे कि स्वाधीन होना क्या बात है न इसको जानना चाहते थे। जो राजा चाहे सो ही बात ठीक है सो अब किस अर्थ में राज्य कार्य में हाथ डालना चाहते हैं।'* आगे लिखा गया है, *'फिर वे जवान बम्बई वाले कहते हैं कि उत्तम हिन्दू हम ही हैं क्योंकि स्वदेश की भलाई हम ही ढूँढ़ते हैं। ....वे हर बात में अपने पुरखों की स्तुति गाते परन्तु यह जानते नहीं कि पुरखे कौन और कैसे थे। फिर वे अंग्रेजों की हर एक रीति को कितनी अच्छी क्यों न होवे बुरी कहते हैं। वे यह भी कहते हैं कि अंग्रेजों में कोई ज्ञान और विद्या ऐसी नहीं है जिसकों हमारे पुरखे न रखते थे ....हिन्दू समचारपत्र में यों लिखा है कि इस प्राचीन लोक की चिन्ता विशेषकर पूना नगर में पाई जाती है क्योंकि यह वह स्थान है जहाँ अंग्रेजी राज्य का बैर बहुत उत्पन्न होता है। वहाँ ब्राह्मणों का अधिकार अधिक है और उनका यह विचार है कि पुरखों के दिन अच्छे थे।'* पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में भारत की प्राचीन संस्कृति की निन्दा और अंग्रेजी शासन की प्रशंसा की गयी है। **'प्राचीन और नवीन हिन्दुस्तान की दशा'** शीर्षक अध्याय का आरम्भ इस वाक्य से होता है, *'ज्ञानी लोग जानते हैं कि प्राचीन हिन्दुओं की अपेक्षा आजकल के हिन्दवासियों की अच्छी दशा है परन्तु साधारण लोग इस उन्नति को नहीं जानते हैं।'* इसका कारण यह बताया गया है कि वास्तव में हिन्दू अपनी पुरानी दशा जानते ही नहीं क्योंकि, *'पूर्वकाल के हिन्दू लोग इतिहास का नाम तक नहीं जानते थे। वे काव्य की रचना को चाहते थे और कथा, कहानियों को जैसे रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण आदि हैं बहुत सुनते थे परन्तु यह बूझना कि यह बातें कहाँ तक सत्य और कहाँ तक झूठ हैं अथवा यह पूछना कि उन दिनों की सच्ची दशा कैसी थी ऐसी बात किसी के मन में न आई। सो प्राचीन दशा को ऐसी समझते हैं जैसी कि काव्यरचकों की मनमता से गाँठी गई है।'* परम्परा में अविश्वास उत्पन्न करने का कितना बारीक प्रयत्न है!

इस भूमिका के बाद अंग्रेज सरकार के प्रयत्न से भारत को होने वाले लाभों की गणना की गयी है, यथा राजाओं के आपसी युद्ध और विदेशी आक्रमण समाप्त हो गये, कानून–व्यवस्था स्थापित हुई, नहरों–रेल का निर्माण हुआ, पीने के पानी, विद्यालयों और अस्पतालों की व्यवस्था की गयी।

अगला अनुच्छेद है, **'हिन्दवासियों की दरिद्रता का क्या कारण है।'** इसमें सर्वप्रथम यह सिद्ध किया गया है कि अंग्रेज सरकार पर आर्थिक शोषण का आरोप लगाना अनुचित है। उन दिनों देशभक्त अंग्रेजों पर आक्षेप लगाते थे कि वे भारत का धन इंग्लैंड ले जाते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कविता (१८८०) 'भारत दुर्दशा' में यह स्वीकारोक्ति है कि अंग्रेजी शासन से लाभ अवश्य हुए किन्तु; इस बात पर गहरा खेद व्यक्त किया गया है कि भारत का धन विदेश जा रहा है–

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात रहै अति ख्वारी।।

प्रस्तुत पुस्तक में इस आरोप का स्पष्टीकरण देते

(शेष पृष्ठ ८७ पर)

विशेषाधिकारों का विस्तार : सिमटते नागरिक अधिकार

– राजीव चतुर्वेदी

आजादी की आधी सदी बीत जाने पर भी भारतीय नागरिक को सदियों पुराने विदेशी कानूनों से हाँका जा रहा है। यह किस "स्व" का "तन्त्र" है? जिस कानून से इस देश के नागरिकों को दण्डित किया जा रहा है, वह भारतीय दण्ड संहिता १८६० की है। इसे लार्ड मेकाले ने गुलाम भारत के लोगों को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाने के लिए लागू किया था। चूँकि उस समय नौकरशाह अंग्रेज या अंग्रेज–भक्त भारतीय होते थे, इसलिए उनको अत्याचार का अभियोग अंग्रेज नौकरशाहों पर न लगाया जा सके, इसकी व्यवस्था की गयी थी। नौकरशाही को संरक्षित करने वाली यह व्यवस्था आज भी भारतीय दण्ड संहिता में है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम १८७३ का है। १७८५ में इंग्लैण्ड की महान् क्रान्ति के पहले की परम्पराएँ और दो सौ वर्ष पहले के आयरलैण्ड के संविधान से बनाया गया कानून इस देश को व्यवस्था दे रहा है। यही कारण है कि भारत में कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका के विशेषाधिकार हैं। वह भी इस हद तक कि वे नागरिक अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। इंग्लैण्ड में राजतन्त्र के खिलाफ जेम्स द्वितीय के काल १७८५ में लोकतन्त्र की माँग को लेकर जो महान् क्रान्ति हुई थी, वह पूर्ण सफल नहीं रही, वहाँ राजशाही और लोकतन्त्र की एक मिलीजुली व्यवस्था लागू हो गयी और यहीं से नागरिकता के प्रति दोहरे मापदण्ड की कहानी प्रारम्भ हुई, जिसे आज 'विशेषाधिकार' कहा जाता है। आज कानून के समक्ष समानता बनाम विशेषाधिकार की बहस प्रारम्भ हो चुकी है और "लोक" अपने ही "तन्त्र" को मिलने वाली इन अतिरिक्त सुविधाओं को संशय और सन्देह की नजर से देख रहा है।

भले ही सामूहिक नरसंहार के दर्जनों मुकदमे दस–पन्द्रह सालों से लम्बित हों, भले ही बेहमई की विधवाएँ रोती हुई रहें, लेकिन उन पर कोई हलचल नहीं होती। संसद् पर व्यय होने वाला जनता का धन कितना सार्थक है, कितना निरर्थक या संसद् अथवा राज्य विधायिकाओं में जो कुछ, जिस तरह से होता है, उस पर सही, बेबाक टिप्पणी विशेषाधिकार हनन का मुद्दा बन सकती है। कोई मुख्यमन्त्री अभियुक्त होने के बावजूद कुर्सी से चिपके रहना अपना विशेषाधिकार समझता है, तो राज्यपाल का विशेषाधिकार है कि उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। उत्तर प्रदेश के एक पूर्व राज्यपाल हवाला के आरोप की हवा खा चुके हैं, तो हिमाचल प्रदेश की पूर्व राज्यपाल अपने केन्द्र के मन्त्रित्वकाल के घोटालों में प्रथम दृष्ट्या दोषी पायी गयी थीं। नौकरशाहों और सरकारी कर्मचारियों के विशेषाधिकार दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा १९७ में उल्लिखित हैं, तो भारतीय दण्ड संहिता की धारा ९९ के अनुसार सरकारी कार्यालय की रंगबाजी में किया गया काम अपराध ही नहीं है।

कुल मिलाकर, सांसद्, विधायक, सरकारी नौकर, सभी के पास विशेषाधिकार हैं और इस हद तक हैं कि वे नागरिक के सामान्य अधिकारों का भी अतिक्रमण करते हैं। जैसे, नागरिक को जानने का अधिकार नहीं है। जनसामान्य की लड़ाई लड़ने वालों को कोई भी विशेषाधिकार नहीं है। प्रेस को विशेषाधिकार नहीं है। सूचना के स्वतन्त्र प्रवाह का अधिकार नहीं है, बल्कि सूचना को सीमित करने के प्रावधान हैं। विडम्बना यह है कि देश में उन सभी को विशेषाधिकार प्राप्त है, जिनकी जनता के प्रति कोई जवाबदेही नहीं है। क्या ये विशेषाधिकार हमारी नागरिकता को पहले, दूसरे और तीसरे दर्जे में विभाजित नहीं करते? क्या यह कानूनी समानता के संवैधानिक वायदे के विरुद्ध नहीं है? "लोक" के अधिकारों का अतिक्रमण करके "तन्त्र ने विशेषाधिकारों का एक दुर्ग बना लिया है।" वर्ष १९८० में मैनपुरी जिले के देहुली गाँव में चर्चित सामूहिक नरसंहार हुआ था, जिसमें सत्ताइस लोग मारे गये थे, सात घायल हुए थे, पर यह सत्रहवाँ वर्ष है, वृद्ध गवाह मर चुके हैं, जवान गवाह बूढ़े हो गये और मुकदमा अभी भी चल रहा है। १९८१ के बेहमई–काण्ड में बाईस लोग मारे गये थे, जिसमें फूलन देवी अभियुक्त हैं। इसके अतिरिक्त उन पर पचपन अन्य मुकदमे, पन्द्रह वर्षों से लम्बित हैं; पर फूलन आज फिर सांसद्। न्याय से नागरिक की दूरी आखिर क्यों बढ़ रही है? उत्तर प्रदेश में तीन बार लगातार राष्ट्रपति शासन लगाना संवैधानिक था या

अंसवैधानिक, इसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। बसपा विधायकों के दलबदल का मामला भी अभी तक सर्वोच्च न्यायालय में लम्बित है, जिनके सहारे उत्तर प्रदेश की सरकार बहुमत से चल रही है।

देश के नौकरशाहों के पास अधिकार है कि उन पर आपराधिक मुकदमा चलाने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा १९७ के प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल या राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ९९ में भी एक व्यवस्था है कि यदि किसी सरकारी नौकर ने अपने कार्यालय के रौब या रंगबाजी में स्वयं या अपने आदेश से कोई ऐसी हिंसा की हो, जिससे मृत्यु, भय या गम्भीर चोट की आंशका न हो, तो इस स्थिति में नागरिक को आत्मरक्षा का अधिकार न होगा। इन प्रावधानों का लाभ विधायक, सांसद, राज्यपाल, राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री आदि को पद पर या उसके बाद भी मिलता है; जबकि सभी जानते हैं कि नागरिक और मानवाधिकारों का हनन इसी वर्ग द्वारा सर्वाधिक होता है। भारत में विधायिका के सदस्यों के आचरण, जिम्मेदारी और जवाबदेही की कोई आचार संहिता नहीं है। कोई घोषित नियम, कानून भी नहीं है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद १०५ संसद् सदस्यों और उसकी समितियों को कुछ शक्तियाँ, कुछ विशेषाधिकार देता है। राज्य विधायिकाओं के लिए ऐसी ही व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद १९४ में वर्णित है; पर विशेषाधिकार के नाम पर दी जाने वाली सुरक्षा, सुख, शक्तियाँ और सुविधाएँ कहीं भी सूचीबद्ध लिखित और सीमित नहीं हैं। परिणामस्वरूप इनका मनचाहे तरीके से इस्तेमाल होता है। अनुच्छेद १०५(३) या १९४ (३) में वर्णित "अन्य विषयों में वह सुविधा सुरक्षा और शक्तियाँ भी दी गयी हैं, जो समय–समय पर विधायिका द्वारा निर्धारित की गयी हैं। यह अन्य विषयों के बहाने अधिकारों को असीम और अपरिभाषित करने का दाँव ब्रिटिश हाउस ऑफ कामंस की शक्तियों और संसदीय व्यवस्था के विचारों की प्रामाणिक पुस्तक एर्सकिन मेय लिखित 'द ट्रीटाइज आन पार्लियामेण्टरी प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर' से लिया गया है।

ब्रिटेन की राजशाही के अनुग्रह से जो विशेषाधिकार वहाँ के हाउस आफ कामन्स को दिये गये, उसका भारत में अन्धानुकरण किया जा रहा है। इसके लिए यह जान लेना आवश्यक है कि खुद ब्रिटेन के समाज की विशेषाधिकारों में विस्तार की बात उठायी गयी, तो बहुमत ने इसका विरोध किया और इन्हें सीमित करने की बात उठायी। वहाँ के एक अखबार 'टाइम्स' ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा कि विशेषाधिकार तथा भारत की स्वतन्त्रता के परस्पर सम्बन्धों की विडम्बना यह है कि यदि विशेषाधिकार का विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग नहीं किया जाता, तो संसद् की गरिमा नागरिक स्वतन्त्रता की बलि चढ़ाकर ही प्राप्त की जा सकती है। विशेषाधिकारों का प्रयोग करने से संसद् की प्रतिष्ठा के कम होने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं।

वैसे भी इंग्लैण्ड के व्यवस्थागत प्रयोगों और प्रयासों को हम दृष्टान्त या नजीर की तरह भारत में लागू नहीं कर सकते; क्योंकि दोनों की व्यवस्थाओं और सम्प्रभुताओं में फर्क है। इंग्लैण्ड में जहाँ राजशाही और लोकतन्त्र का तालमेल है, वहीं हमारी व्यवस्था पूर्णतः लोकतान्त्रिक है। वहाँ सम्प्रभुता रानी में निहित है, जबकि हमारे देश में हम भारतवासी ही संविधान को स्वीकार करते हैं और उसे सम्प्रभु, समाजवादी गणराज्य बनाने का संकल्प लेते हैं। स्पष्ट है, हमारे यहाँ सम्प्रभुता का स्रोत इस देश का सामान्य नागरिक या लोक है। फिर विशेषाधिकार किस बात का ? यह तो राजशाही का अवशेष है। इस देश में विशेषाधिकारों की चर्चा पचास वर्षों से हो रही है, अब विशेष कर्तव्यों की बात भी होनी चाहिए, नहीं तो लोगों के दिलों में इकठ्ठा होती अवमानना को जबान पर आने से कोई नहीं रोक सकता। आखिर सम्प्रभुता के संवैधानिक स्रोत इस देश के वैभव सम्पन्न अभिजात्य नहीं, बल्कि भारत का सामान्य नागरिक है। □

– एम–१५०७, सेक्टर–आई, एल०डी०ए०, कानपुर रोड, लखनऊ–२२६०१२

चुनाव में बांग्लादेशियों ने किया मतदान

– कन्हैयालाल त्रिवेदी

हमारे कुछ राजनैतिक दलों का अपने पक्ष में मतदान कराने में कितना अधःपतन हो गया है, यह इसी से प्रकट है कि स्वयं (भूतपूर्व) चुनाव आयुक्त जी०वी०जी० कृष्णमूर्त्ति के अनुसार ५० लाख बांग्लादेशियों ने १९९९ के चुनाव में बाकायदा मतदान किया।

पूर्व चुनाव आयुक्त जी०वी०जी० ने स्वीकार किया है कि यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है, किन्तु साथ ही चुनाव आयोग की इसे रोकने में असमर्थता भी जतायी। कृष्णमूर्त्ति के अनुसार आयोग के पास यह तय करने का कोई अधिकार ही नहीं है कि कौन देश का नागरिक है और कौन नहीं। श्री टी०एन० शेषन ने प्रयास किया था और इस प्रयास पर करोड़ों का व्यय भी हुआ कि भारतीय नागरिक को चित्रित परिचय–पत्र दिये जायें, ताकि इस खतरनाक मामले में किसी हद तक रोक हो पाती; किन्तु दुर्भाग्य से कुछ राजनेताओं व दलों के आधे–अधूरे मन से किये परिचय–पत्र के महत्त्वपूर्ण कार्य की भी वही दशा हुई, जो हम विगत ५० वर्षों से बृहद् प्रचार और व्यय करने के बाद भी अन्य अनेक मामलों में देख चुके हैं। पूर्वोत्तर राज्यों विशेषकर त्रिपुरा तथा बिहार, असम और पश्चिम बंगाल में यह समस्या कितना विकराल रूप ले चुकी है यह इसी से स्पष्ट है कि चुनाव आयोग के वरिष्ठ अधिकारी को भी यह स्वीकार करने में संकोच नहीं है कि ५० लाख बांग्लादेशियों ने १९९९ के लोकसभा चुनावों में मत दिया। कृष्णमूर्त्ति भी उन राजनैतिक दलों पर आरोप लगा रहे हैं, जो वर्षों से किसी न किसी प्रकार सत्ता में बने रहने के लिए इस देशद्रोही काम को करने भी नहीं हिचकते। खेद है कि वोट के लिए इन्होंने विदेशियों को देश का वैध नागरिक तक बनाने में शर्म महसूस नहीं की।

कृष्णमूर्त्ति कहते हैं कि जब चौकीदार ही चोरी करे तो जिम्मेदारी किस पर डाली जाये ? कौन हैं ये चौकीदार ? पश्चिम बंगाल में यदि साम्यवादियों का गत दो दशक से अधिक से राज है, तो त्रिपुरा में भी या तो कम्यूनिस्ट ही सत्ता में रहे हैं अथवा कांग्रेसी। बिहार में लालू राज वर्षों से यही सब कर रहा है। उसके लिए तो न कोई कानून है न कायदा। रहा सवाल असम का, तो वहाँ हितेश्र सैकिया की भ्रष्ट सरकार से त्रस्त जनता ने असम गण परिषद् के सत्तासीन किया था, किन्तु अगप भी कालान्तर में उसी गन्दगी में फँस गयी, जिससे उबारने का स्वयं उसी ने जनता से वादा किया था। पश्चिम बंगाल की ज्योति बसु सरकार ने तो यहाँ तक हिमाकत की कि जब महाराष्ट्र की शिव– भाजपा सरकार ने बांग्लादेशियों को निकालना शुरू किया, तब उसमें रुकावटें डालीं। बांग्लादेशियों को भेजने वाली ट्रेन पर हमले किये गये, आरक्षकों से उग्र मार्क्सिस्ट भीड़ ने मारपीट की और जमकर कोशिशें हुईं कि उन्हें वापिस महाराष्ट्र लौटाया जा सके। जिन्हें तात्कालीन महाराष्ट्र शासन ने प्रमाण सहित महाराष्ट्र से विमुख किया, उन्हें बंगाल में लेने से इंकार किया गया, क्योंकि स्वयं पश्चिम बंगाल के हाथ दीर्घकाल से इस राष्ट्र विरोधी कार्य में रंगे हुए हैं, इसके बल पर उसने आबादी में अनुपात ही बदल कर रख दिया और अपनी सत्ता की जड़ें मजबूत करती चली आयी। इन्हीं साम्यवादियों से अगप नेता और असम के मुख्यमन्त्री प्रफुल्ल महन्तो ने गठजोड़ करके इस बार चुनाव लड़ा; किन्तु लाभ उसे तो कुछ भी नहीं मिला अलबत्ता साम्यवादियों की जड़ें असम से उखाड़ना जरूर समस्या बन गयी है।

कृष्णमूर्त्ति कहते हैं कि पश्चिम बंगाल और बिहार के कई हिस्सों में इन विदेशियों के खतरों से आगाह किया गया, जहाँ अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में किसी प्रत्याशी के भाग्य का फैसला करने में बांग्लादेशी निर्णायक साबित हुए हैं। पश्चिम बंगाल में मुस्लिम जनसंख्या लगभग २५ प्रतिशत हो गयी है; किन्तु माल्दा, जहाँ से लगातार कांग्रेसी प्रत्याशी जीतता रहा है अथवा खुलना, मुर्शिदाबाद

आदि में इस सम्प्रदाय की आबादी ४० प्रतिशत है, इसी भाँति किशनगंज (बिहार) में जनसंख्या प्रतिशत अत्यधिक गड़बड़ा गया है। मणिपुर, त्रिपुरा में तो हालत इतनी बदतर हो चुकी है कि केन्द्रीय सरकार की जनजातियों के विकास हेतु किये जा रहे केन्द्र-शासित-क्षेत्र की परिकल्पना को ही रंगीन चश्मे से देखा जा रहा है। यहाँ तक कि मार्क्सवादी वाजपेयी सरकार द्वारा नवनिर्मित जनजाति मामलों हेतु स्वतन्त्र मन्त्रालय और उसमें केबिनेट स्तर के मन्त्री श्री जुएल उराँव को लेकर ही हायतौबा मचाये जा रहे हैं। कांग्रेस समेत कुछ विपक्षी दल भी इसमें ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जा रहे बलात् धर्मान्तरण की रोकथाम के हौवे से विचलित हुए जा रहे हैं। जनजाति विकास हेतु गत ५ दशकों में धन तो अपार व्यय किया गया; किन्तु परिणाम नगण्य रहे। पहली बार पृथक् मन्त्रालय बनाकर वर्त्तमान सरकार द्वारा सक्षम प्रयास किया जा रहा है कि समाज के इस महत्त्वपूर्ण अंग को शेष समाज से समरस कर उनके सर्वतोमुखी विकास की कोशिश हो। जनजाति कल्याण हेतु बीसियों केन्द्रीय संगठन व एजेन्सियाँ विशाल धनराशि पाती रही हैं; किन्तु उनसे परस्पर सहकार और जवाबदेही के अभाव में वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाये। आदिम जाति कल्याण विभाग तो मानो भ्रष्टाचारियों के गढ़ ही बन गये हैं।

वाममार्गियों ने न केवल यूनियनों के जरिये बैंक, बीमा कम्पनियों और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों (यदि उनकी चलती, तो प्राइवेट प्रतिष्ठानों में भी वे छा जाते) को दूषित करके रख दिया; बल्कि राजनीतिक खेल में भी वोट के महत्त्व को भरपूर समझकर अपने थोक मत बढ़ाने के चक्कर में बांग्लादेशियों के लिए पश्चिम बंगाल, बिहार और पूर्वोत्तर राज्यों को चरागाह बना दिया, मानो देश एक धर्मशाला हो, जहाँ कोई भी निर्द्वन्द्व आकर ठहरे और धीरे-धीरे अपने पाँव पसार कर अपने और सहधर्मियों को बुलाने का रास्ता साफ कर दे। यह कितना बड़ा देशद्रोह है। इससे न केवल देश में जनसंख्या का भार बढ़ रहा है; बल्कि भारतीय नागरिकों के रोजगार के अवसर भी छिनते जा रहे हैं। इन्दौर में बांग्लादेशी स्वर्ण कारीगरों के आने से स्थानीय स्वर्णकर्मियों का घर बैठ जाना इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है, जिसका कारण है कम मजदूरी पर इन बांग्लादेशियों का काम करने को तैयार हो जाना। □

सत्यान्वेषण-चेतना

सुभाष-जयन्ती (२३ जनवरी) पर विशेष -

नेताजी सुभाष बोस की मृत्यु विमान-दुर्घटना में नहीं हुई

- वचनेश त्रिपाठी

हाल ही प्रमुख अखबारों में "तीसरे-जाँच-आयोग" की सहायता के लिए गत दिनों गठित "उच्च स्तरीय नेताजी सुभाष-जाँच समिति" ने अपने जाँच-निष्कर्ष को पुनः प्रकाशित कराया है, जिसमें कहा गया है कि, "नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हवाई-दुर्घटना में नहीं हुई। इस जाँच-समिति में जो ११ सदस्य हैं, उनमें "फारवर्ड ब्लाक" के सांसद उक्त समिति के महासचिव हैं, नाम है श्री देवेन्द्र विश्वास, इनके अतिरिक्त अन्य सदस्यों में दो महत्वपूर्ण सदस्य हैं, श्री वी० पी० सैनी, जो "नेताजी-अनुसन्धान-प्रतिष्ठान" के अध्यक्ष हैं तथा तीसरी सदस्या हैं, डॉ० पूर्वीराय, जो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के रहस्यमय तरीके से गायब होने के सन्दर्भ में अग्रणी अनुसन्धान कर्त्री हैं। इस समिति की बैठक हाल ही दो दिन चली। बैठक समाप्त होने के पश्चात् इन तीनों अनुसन्धान-कर्त्ताओं ने आरोप लगाया है कि नेताजी के विषय में पाँच दशक के काल-खण्ड में जो सरकारें आईं-गईं, इन सरकारों ने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के लापता होने सम्बन्धी रहस्य की गुत्थी सुलझाने के लिए आवश्यक रुचि नहीं दिखायी।' इस समिति के सदस्यों ने नेता जी सुभाष से सम्बन्धित तथाकथित विमान-दुर्घटना की जाँच के लिए पिछली सरकारों ने जो दो आयोग गठित किये, उनमें सन् १९५६ का "शाहनवाज-आयोग" है और दूसरा सन् १९७० में गठित किया गया "खोसला-आयोग" है- इन दोनों आयोगों की जाँच-रिपोर्टों को गलत बताया है; क्योंकि इन रिपोर्टों में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया था कि "सन् १९४५ के अगस्त में दक्षिण एशिया में एक हवाई दुर्घटना में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गयी थी।" उक्त समिति के महासचिव तथा अन्य दोनों सदस्यों का कहना है कि "उच्चस्तरीय नेताजी सुभाष-जाँच-सञ्चालन-समिति" के पास भारत और विदेश के अभिलेखागारों से एकत्र इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि देश का यह महान् नेता (सुभाषचन्द्र बोस) कथित विमान-दुर्घटना के बाद अधिक नहीं, तो सन् १९४६ के दौरान अवश्य जीवित थे।" विगत कई वर्षों से जिन्होंने इस सम्बन्ध में गहन अनुसन्धान-कार्य किया है, उन डा० पूर्वीराय ने दावा किया है कि "हम रूस-ब्रिटेन तथा भारत सहित विश्व के अनेक देशों के अभिलेखागारों से संप्राप्त दस्तावेजों से यह सिद्ध करने के लिए तैयार हैं कि नेता जी की मृत्यु हवाई-दुर्घटना में नहीं हुई, जैसा कि अधिकतर लोग मानते हैं। डा० पूर्वीराय का कहना है कि "हमारे द्वारा शीघ्र ही वे सभी दस्तावेज नये आयोग को सौंप दिये जायेंगे- यह नया आयोग केन्द्र सरकार ने सुभाष बोस की हवाई दुर्घटना में कथित मृत्यु के मामले की जाँच के लिए उच्चतम न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश न्याय-मूर्ति श्री मुखर्जी के रूप में विगत १४ मई (सन् १९९९) को तीसरे "एक सदस्यीय जाँच-आयोग" को गठित किया था।" इसीलिए सन् १९४६ में ही ये पंक्तियाँ कवि की लेखनी लिखे बिना नहीं रह सकी थी कि,

सुभाष चन्द्र बोस की कथित 'बेटी' अनीता

"लेखनी न आगे बढ़ पाती, कवि लिख सकता इतिहास नहीं।
अक्षर-अक्षर यह पूछ रहा, "क्या जीवित आज सुभाष नहीं?"

अब देखिये, अन्य प्रमाण इस सन्दर्भ में क्या कहते

हैं? सन् १९४६ में कलकत्ता से प्रकाशित "अमृतबाजार पत्रिका" में चिन्तामणि कर महाशय ने, जो सुभाष बोस द्वारा मंचूरिया से प्रसारित किये गये तीन भाषणों को छापा था, उन्हें बंगाल के तत्कालीन गवर्नर आर० सी० केसी के रेडियो मानीटर पी० सी० कर ने सुनते हुए लिखा था: उनमें सन् १९४५ के १९ दिसम्बर को जो भाषण नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने मंचूरिया से रेडियो द्वारा प्रसारित किया, वह यह था :–

"आमी सुभाष बोलची" (मैं सुभाष बोल रहा हूँ)

"हमें निराश नहीं होना चाहिये। लड़ाई का प्रथम राउण्ड असफल रहा। स्वाधीनता की लड़ाई आसान नहीं है। अमेरिका ने अपनी स्वतन्त्रता ७ साल लड़ने के बाद प्राप्त की। आयरलैण्ड ने अपनी स्वतन्त्रता ५ साल लड़कर पायी। हमें दो वर्ष के अन्दर ही सफल होने का विश्वास है।"

१९ जनवरी , सन् १९४६ को मंचूरिया से ही सुभाष बोस द्वारा रेडियो से प्रसारित दूसरा भाषण :–

"मैं एक छोटा–सा व्याख्यान भारत के अपने भाई–बहिनों के लिए "भारतीय राष्ट्रीय सप्ताह" के सम्बन्ध में देने जा रहा हूँ। हम दो वर्ष के भीतर आजादी पा लेंगे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद टूट रहा है और इसे भारत की आजादी अंगीकार करनी होगी। भारत अहिंसा के जरिये आजाद नहीं होगा; पर मैं मि० एम० के० गान्धी का बड़ा आदर करता हूँ। स्वाधीनता की लड़ाई आसान नहीं है; पर मैं विश्वास दिलाता हूँ कि हम भारत की स्वतन्त्रता को बहुत शीघ्र प्राप्त कर लेंगे। मैं जानता हूँ कि अनेक भारतवासी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे दो वर्ष के भीतर ही सफलता पा लेने का विश्वास है। कलकत्ते में पुलिस की ओर से की गई फायरिंग की मुझे सूचना मिल चुकी है। बहुत से विद्यार्थी मारे गये हैं। जब मैंने यह सुना, मेरी आँखों में आँसू भर आये। मैं जानता हूँ कि मनुष्य नाशवान् है और सबसे उत्तम मौत उस आदमी की होती है, जो अपने देश की रक्षा में जान देता है। भारतवासी, जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए खून बहाया है, मर नहीं सकते।"

इस भाषण में सुभाष बोस ने सच ही कवि की इन पंक्तियों को विस्तार दिया है कि,

"वतन पर जो फिदा होगा,
अमर वह नौजवाँ होगा।"

और अब मैं यहाँ सुभाष बोस का वह तीसरा भाषण भी उद्धृत करता हूँ, जिसे उन्होंने मंचूरिया से ही सन् १९४६ की १९ फरवरी को प्रसारित किया था–

"आमी सुभाष बोलची" (मैं सुभाष बोल रहा हूँ)। जय हिन्द ! जापान के आत्म–समर्पण के बाद यह तीसरा मौका है, जब मैं भारतीय भाई और बहिनों को सम्बोधित करता हुआ बोल रहा हूँ। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री पैथिक लारेन्स तथा दो अन्य मन्त्रियों को भेजने जा रहे हैं; जिनके सामने केवल एक ही उद्देश्य है कि भारत का सम्पूर्ण रक्तपान करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद एक स्थायी समझौता सारे साधनों पर कर ले। अब इन तीन लन्दनवासियों में एक व्यक्ति को कुछ ही महीने हुए भारत से घबड़ाए हृदय से जाना पड़ा है। सावधानी के बतौर मैं भारतीयों को सलाह दे रहा हूँ कि वे इन ठगो पर कोई ध्यान न दें। मुझे विश्वास है कि पैथिक लारेन्स को इस समय तक की भारत की सारी विपत्तियों और आपदाओं के लिए एक ठीक उत्तर देना पड़ेगा। इस प्रयत्न में इन तीनों की छिपी भावना इसके अलावा और कुछ नहीं है कि परतन्त्रता का एक नया जाल फैलाएँ, जिसमें भारत बहुत जल्द फँस जाय। अतः भारतवासियों से मेरी यह तत्पर अपील है कि वे किसी प्रकार भी इन लोगों की बात न सुनें, वरन् अपनी क्रान्ति उन बातों के खिलाफ जारी रखें, जो बातें स्वतन्त्रता–प्राप्ति में बाधक है। मेरा ख्याल है कि तमाम वायसराय और ब्रिटिश मन्त्रीगण यही मन्तव्य लेकर भारत की यात्रा करेंगे कि वे उसे परतन्त्रता के अँधेरे कमरे में रख सकें। पर मेरे भारतवासियों को उन अंग्रेजों की बात कभी नहीं सुननी चाहिये। फिर मैं घोषित कर रहा हूँ कि दो वर्ष के थोड़े से काल में ही भारत स्वतन्त्रता का प्रभात देखेगा।

"बहुत–से भारतीयों ने मुझे भारत के 'नेताजी' के नाम से घोषित किया है, किन्तु मैं उन्हें बता रहा हूँ कि मैं दूसरों की ही भाँति भारतमाता का एक साधारण पुत्र हूँ और मैं वह ('नेताजी') होने योग्य नहीं हूँ।" सुभाष बोस के ये तीन रेडियो–भाषण क्या काल्पनिक कहे जा सकते हैं? इसीलिए सुभाष बोस के अनुज सुरेश बोस का कहना था कि "मेरे भ्राता श्री सुभाषचन्द्र बोस सन् १९४४ के अक्तूबर में जापान सरकार पर यह जोर डाल रहे थे कि उन्हें (सुभाष बोस को) मंचूरिया जाने की अनुमति दी जाये। नेताजी (सुभाष बोस) ने जापानियों को बताया था कि "बर्मा के मार्ग से भारत में हमारी सेना का प्रवेश करना सम्भव नहीं है, इसलिए अब वे मास्को (रूस) के मार्ग से भारत में प्रवेश करके अंग्रेजों पर आक्रमण करेंगे। जब श्री सुभाष बोस सेगाँव पहुँचे, तो हिकारी के तार का हवाला दिया गया। इसौदा उस समय वहाँ उपस्थित न था और यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है कि हिकारी ककान के पास श्री बोस को वहाँ से बचाकर ले जाने के लिए कोई विमान न

था और श्री सुभाष बोस की मृत्यु की काल्पनिक कहानी प्रकाशित कर दी गयी। मेरी सुविचारित और निश्चित धारणा है कि मेरे समक्ष उपलब्ध समस्त प्रमाणों का एक मात्र न्यायोचित निष्कर्ष यही है कि नेता जी सुभाष की मृत्यु कथित विमान–दुर्घटना में नहीं हुई।"

और फिर सुरेश बोस ही नहीं, "एक सदस्यीय आयोग" के अध्यक्ष जस्टिस जी० टी० खोसला का भी कहना था कि "मैं शाहनवाज खाँ–समिति" की रिपोर्ट स्वीकार नहीं करता।" उधर १६ अक्तूबर, सन् १६७० को शाहनवाज खाँ ने "नेताजी जाँच–आयोग" के समक्ष अपनी गवाही देते हुए कहा था कि "मुझे देशद्रोही कहा जाता है और मेरी जाँच–रिपोर्ट को देश के प्रति अपराध की संज्ञा दी गयी है।" खाँ साहब जब गवाही दे रहे थे, तो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के भतीजे तत्कालीन संसद सदस्य श्री अभियनाथ बोस ने रोषपूर्वक शाहनवाज खाँ की तरफ इशारा करते हुए कहा कि "आपने नेताजी के साथ द्रोह किया।" उसी समय भोजनावकाश के पूर्व दिल्ली के वकील बलराज त्रिखा ने शाहनवाज खाँ की रिपोर्ट को 'देश के प्रति अपराध' की संज्ञा दी। अनन्तर जब पुनः कार्रवाई शुरू हुई, तो एक भगवाधारी बंगाली संन्यासी वहाँ आकर लगा चिल्लाने कि "शाहनवाज खाँ द्रोही है।" आयोग के प्रश्न करने पर शाहनवाज खाँ ने कहा कि "मैंने यह कभी नहीं सोचा कि जापान ने नेताजी को उनकी इच्छानुसार सोवियत संघ भेजा और उसके बाद उनकी वायुयान में दुर्घटना का समाचार प्रसारित कराया। ...हाँ, इस प्रकार की हल्की–सी बात मैंने सुनी थी, लेकिन मुझे इस खबर के स्रोत की जानकारी नहीं है। नेताजी की 'आजाद हिन्द सरकार' के मन्त्रिमण्डल की बैठक में, जिसका मैं भी एक सदस्य था, नेताजी (सुभाष) ने सोवियत रूस से सहायता लेने की चर्चा की थी। विमान–दुर्घटना में नेताजी की मृत्यु हो जाने की जानकारी मुझे लाल किले में रेडियो–समाचार से प्राप्त हुई थी।" नेताजी के भतीजे अभिय बोस ने जस्टिस खोसला के सामने अपने बयान में कहा कि, "शाहनवाज खाँ–समिति" की रिपोर्ट सर्वथा गलत है।" अनन्तर श्री देवनाथ दास ने बयान दिया कि " २२ अगस्त १६४५ को विमान–दुर्घटना में नेताजी की मृत्यु का समाचार सुनते ही हमें यकीन हो गया कि नेताजी को जापानियों ने सुरक्षित स्थान पर अपनी योजनानुसार पहुँचा दिया है।" यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये देवनाथ दास भी उन दिनों नेताजी के साथ ही थे और गवाही देते समय नेताजी के कई प्रसंगों को याद कर रो पड़े थे। गवाही देते समय उनका गला रुँध जाता था। उस समय वहाँ 'आयोग' की गवाही तथा कार्रवाई सुना रहे "आजाद हिन्द फौज" के जवान भी अश्रुपात करने लगे थे।

अटल हस्ताक्षर समय के

– मधुर गंजमुरादाबादी

गूँजते हैं हर दिशा में
गीत जिनकी दिग्विजय के।
एक नेता, युग–प्रणेता
'अटल' हस्ताक्षर समय के।।

एक मत छल छद्म ने ही
देश पर यह भार डाला,
पा चुके वर्षों वही फिर
चाहते पद का निवाला।
द्वेष में आकण्ठ डूबे
पृष्ठ अपठित हैं विनय के।

पोखरन या कारगिल पर
अलग हैं इनकी निगाहें,
देश कुछ भी चाहता हो
किन्तु ये कुछ और चाहें।
न्याय देता साथ सच का
दुर्ग टूटे हैं अनय के।

'मधुर' जिनका शीश हिमगिरि
चरण–तल सागर लहरता,
भारती के पुत्र बन जो
दे रहे युग को अमरता।
ये सतत् द्युतिमान गौरव
नव सदी के अभ्युदय के।

– गंजमुरादाबाद, उन्नाव– २४१५०२

अनन्तर संसद सदस्य मनोहरलाल गान्धी ने पत्रकार–गोष्ठी में कहा कि "शाहनवाज–आयोग" ने

तथाकथित वायुयान–दुर्घटना के स्थल का निरीक्षण न करके न्याय के विरुद्ध कार्य किया। भारत सरकार उस "तोक्यो–युद्ध–मुकदमे" को अमान्य घोषित करे, जिसमें नेताजी सुभाष को युद्ध–अपराधी करार दिया गया। नेताजी आजा भी जीवित हैं तथा अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी बड़े देश के यहाँ रह रहे हैं। अमेरिकी सरकार ने भी इस बारे में तथ्यों को छिपाया। अमेरिकी पत्रकार लुइस लचनर का नेताजी के बारे में प्रकाशित लेख सनसनीखेज तथ्यों से भरा है। मैंने फरमोसा जाकर देखा कि वहाँ तथाकथित यान–दुर्घटना–स्थल के पास रहने वाले लोगों के बयान परस्पर विरोधी हैं।"

'अनीता' की दास्तान उसी की जबानी

दूसरी ओर अपने को 'सुभाषचन्द्र बोस की बेटी' घोषित करने वाली अनीता, जो कि सन् १९७९ के जनवरी महीने में 'आग्सबर्ग' से कलकत्ता आयी थीं; 'गणतन्त्र–दिवस के दो दिन पूर्व २४ जनवरी को उन्होंने पत्रकारों से यह कहना प्रारम्भ किया कि "मेरी माँ (एमिली शेंकल) ने मुझे कुछ सीख दी। उन्होंने बचपन से ही मुझे सिखाया कि मैं कदापि यह प्रकट नहीं करूँ कि मैं नेताजी की पुत्री हूँ। मुझे पिता जी की याद आती थी, किन्तु मैंने सब कुछ मन में जब्त कर रखा, कभी अपने पिता (नेताजी सुभाष बोस) के बारे में कुछ प्रकट नहीं किया। मेरे पिताजी सन् १९३४ में चिकित्सा के लिए वियना आये थे। माँ उस समय वियना में ही डाक–तार–विभाग में एक साधारण नौकरी करती थीं। तभी उन्होंने सन् १९३४ में ही पिताजी (सुभाष बोस) के सेक्रेटरी के रूप में काम शुरू किया। वहीं से जर्मनी के विदेश विभाग ने मेरी माँ (एमिली) को बर्लिन भेज दिया, क्योंकि पिताजी (सुभाष बोस) जब जर्मनी के बर्लिन शहर गये, तो उन्होंने माँ को सेक्रेटरी रूप में साथ ले जाना चाहा था। मेरा जन्म सन् १९४२ के नवम्बर में वियना में हुआ– तब पिताजी (सुभाष बोस) माँ के पास ही थे, फिर सन् १९४३ की फरवरी में हम लोगों को वहीं छोड़कर पिता जी (सुभाष बोस) चले गये, तब मैं ४ महीने की भी नहीं थी। माँ ने बताया कि मेरा 'अनीता' नाम पिता जी का ही दिया हुआ है। पिताजी ने एक बार माँ से कहा था, "एमिली ! अगर हमारे लड़का हुआ, तो उसका नाम 'अरुण' रखेंगे और अगर लड़की हुई तो उसका नाम रखेंगे 'अनीता'। पिता जी की इस आशा को जीवित रखने के लिए मैंने, अपने बड़े लड़के का नाम 'पीटर अरुण' रखा। मेरी सहायता के लिए 'आइ० एन० ए०' की तरफ से एक ट्रस्ट बनाया गया, उसमें जवाहर लाल नेहरू, पश्चिम बंगाल के भू० पू० मुख्यमन्त्री डा० बी० सी० राय और तत्कालीन राज्यपाल डा० कैलाशनाथ काटजू थे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पिताजी (सुभाष बोस) अब जीवित नहीं है। विमान–दुर्घटना में ही उनकी मृत्यु हुई। सांसद् समर गुहा कहते हैं कि 'नेताजी आज भी जीवित हैं', यह समर बाबू के विश्वास की बात है। विदेश में अधिकांश लोग अब पिताजी (सुभाष बोस) को भूलते जा रहे हैं। आजकल वहाँ के लड़के–लड़कियों के मुँह से तो पिताजी के बारे में कुछ सुना नहीं जाता। हाँ, कुछ बुजुर्गों के मुँह से अब भी पिताजी के विषय में बहुत कुछ सुनने को मिलता है। पता नहीं, भारत में पिताजी का कितना सही मूल्यांकन किया गया है !"

यह विस्तृत आत्म–कथन अनीता का है और यहाँ इसलिए मैंने पुराने कागजातों से उद्घृत किया कि पाठक इस बात का मन्थन कर सकें कि क्यों कर अनीता ने सुभाष बोस को कथित 'विमान–दुर्घटना' में मृत्यु को प्राप्त होने की खबर पर इतना गहरा विश्वास न केवल स्वयं कर लिया वरन् उसे जनता में भी प्रचारित करना जरूरी समझा। उधर एक तथ्य यह भी है कि जापानी कर्नल नागासाकी भी उसी कथित दुर्घटना–ग्रस्त विमान में सुभाष बोस के साथ ही उनकी बगलवाली सीट पर बैठे थे और उसी विमान में 'आजाद हिन्दू फौज' के कर्नल हबीबुर्रहमान भी मौजूद थे, परन्तु ये दोनों ही कैसे साफ बच गये और जीवित रहे, जबकि उसी विमान को दुर्घटना–ग्रस्त घोषित कर सुभाष बोस की मृत्यु होने की भी खबर प्रचारित कर दी गयी। कर्नल नागासाकी तो जापान में बाद में भी जापानी सेना के स्टाफ अफसर रहे और कर्नल हबीबुर्रहमान जब बाद में भारत से पाकिस्तान चले गये तो वहाँ से उन्होंने अपने पूर्व बयान का खण्डन करते हुए यह घोषणा की कि 'नेताजी सुभाष बोस की मृत्यु उस विमान–दुर्घटना में नहीं हुई, परन्तु यदि मैं यह झूठ भारत में घोषित न करता, तो क्या अपनी मृत्यु बुलाता ?' यह भी सच है कि भारत सरकार के ही एक अधिकारी ने जो दक्षिण पूर्वी एशिया में नियुक्त रहा था, जब मुम्बई में यह घोषित किया कि "नेताजी सुभाष जीवित हैं, विमान–दुर्घटना में उनकी मृत्यु होने की बात नितान्त कल्पित है"– तो उसके बाद ही उस अधिकारी की लाश मुम्बई की एक सड़क पर पड़ी मिली। अतः स्वयं को सुभाष बोस की 'बेटी' बताने वाली अनीता का उक्त कथन भी क्या प्रमाण रखता है कि "सुभाष बोस की मृत्यु विमान–दुर्घटना में ही हुई थी ?"

☆

ढोंग

– मीनाक्षी दीक्षित

तृप्ता.. लगता है बान्धवी को कुछ होगया, उनके घर के सामने भीड़ लगी है, जरा उतर के देख

रसोई के वातायन से झाँकते हुए माँ ने कहा, लेकिन कार्यालयीय जटिलताओं के लेखे में उलझी तृप्ता को सम्भवतः पूरी बात सुनायी नहीं दी। ऊँ... हाँ... अनमने–से उसने कहा, लेकिन सिर कागजों पर ही झुकाये रही।

कुछ क्षण झाँकने और तृप्ता के उतरने की प्रतीक्षा करते हुए माँ कक्ष में आ गयी।

– तृप्ता... नीचे उतर कर देखो, मुझे लग रहा है कि बान्धवी को कुछ....

–ऑ... क्या हुआ होगा, असहज होकर तृप्ता ने कहा, और आगे जोड़ा अभी सोमवार को ही तो मुझे मिली थीं, पोते की उंगली पकड़े किसी का हिसाब करने जा रही थीं...

– सोमवार को मिली थी ना, बुध से तो चारपाई पर पड़ी है।

– मुझे नहीं बताया तुमने, कागज परे सरका कर उठते हुए तृप्ता ने कहा।

– तुम्हारे पास पिछले चार दिनों से कुछ सुनने का समय भी था ?

– लेकिन माँ... खैर, चप्पलों में पैर डालती तृप्ता नीचे उतर गयी। दो मकान पार कर ही बान्धवी का, नहीं उनके पुत्र और पुत्रवधू का घर था। बाहर एक दो पड़ोसी खड़े थे। तृप्ता ने अन्दर झाँका। उसको किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ी। बान्धवी जा चुकी थीं, वह समझ गयी। बान्धवी की पुत्रबधू रो रही थी। तृप्ता को उसके रोने का कारण समझ में नहीं आया। सम्भवतः रो-रोकर वह बान्धवी के प्रति अपने अन्तिम कर्त्तव्य का निर्वहन कर रही थी या फिर यह एक सामाजिक सरोकार था।

तृप्ता का मन हुआ, पास जाकर बान्धवी की देह को स्पर्श करे, बैठे कुछ क्षण। उनके साथ जिये क्षणों को स्मरण करे। वह बाहर ही खड़ी रही। बान्धवी ने बड़ा लाड दिया था तृप्ता को। तृप्ता अतीत के किसी पल में उतरने ही वाली थी कि उसके कानों में दो पड़ोसियों की बुदबुदाहट सुनायी दी।

– बहू को देखो, कैसे स्वाँग कर रही है, जिन्दा थी,तो पानी तक न पूछा।

– अच्छा ही हुआ चल बसी, कौन सेवा–टहल करता, मगर दोष बहू का भी नहीं, जब अपना बेटा ही...

– अचानक रुदन में तीव्रता आ गयी, तृप्ता ने देखा कुछ रिश्तेदार आ रहे थे।

– इनके जेवर तो बेटे ने पहले ही ले लिये थे शायद।

रुदन धीमा होने पर फुसफुसाहट फिर तृप्ता को सुनायी दी।

– हाँ और क्या, अपने पास कुछ बचा रखा होता, तो इज्जत थोड़ी बची रहती, न जाने क्यों, तृप्ता का मन अब उचाट हुआ। उसने सोचा माँ को भेजती हूँ और घर की ओर चल पड़ी।

तृप्ता को बान्धवी से बड़ा लगाव था। बान्धवी यों तो बस पड़ोसी ही थीं, लेकिन तृप्ता के लिए दादी, मौसी और कई बार दोस्त भी बन जाती थीं। आज बान्धवी की पार्थिव देह पड़ी थी, बान्धवी नहीं थीं।

तृप्ता को दुःख हो रहा था, लेकिन आँसुओं का नाम नहीं। सम्भवतः तृप्ता को बान्धवी की मृत्यु का नहीं, उसके जीवन के दुःखों का दुःख हो रहा था।

तृप्ता के बचपन को बान्धवी ने अपनी उँगली पकड़ायी थी। किशोरावस्था के अटपटे प्रश्नों के उत्तर में अपने अतीत के कई पृष्ठ खोले थे और परिपक्वता की ओर पग बढ़ाती तृप्ता के सामने विचार के कई–कई बिन्दु रखे थे, जिन्हें सुनकर तृप्ता को कई बार आश्चर्य भी होता था।

तृप्ता को जब से स्मरण है, माँ अपनी व्यस्तता के कारण बहुधा तृप्ता को बान्धवी के पास छोड़ देती थी। माँ ही क्यों, मोहल्ले के दूसरे बच्चों की माँएँ भी ऐसा ही किया करती थीं और बान्धवी सभी बच्चों का पूरा ध्यान रखती थी। किसे भूख लगी है, किसे दूध चाहिए, किसे पढ़ना है, किसका गृहकार्य पूरा नहीं हुआ सब बान्धवी जानती थीं।

'बान्धवी' यही उनका नाम था यही सम्बोधन।

बच्चों, बच्चों के माता–पिता, माता–पिता के माता–पिता सभी उन्हें बान्धवी कहते थे।

बान्धवी के घर में एक अशोक भैया थे, तृप्ता के थोड़ा बड़ा होते ही कहीं बाहर चले गये थे; पढ़ने।

– किशोरावस्था में जब तृप्ता कुछ समझने लगी तो उसे लगा, बान्धवी जैसे इस मोहल्ले की प्राण वायु है। हर परिवार के हर सुख हर दुख में निर्लिप्त भाव से एक पाँव पर खड़ी, उत्तरदायित्व समेटे। तृप्ता को आश्चर्य होता था– इनका अपना कोई....

एक दिन वह पूछ बैठी थी, तो बान्धवी ने बड़े लाड़ से कहा था।

– अरे बच्ची ! अपने तो मन से बनते हैं। नेह से बनते हैं। मानने से बनते हैं।

– लेकिन तुम्हारे परिवार के और लोग ?

– इतना बड़ा तो परिवार है, पूरा मोहल्ला

– मैं यह नहीं....

– अच्छा... सुन। हमारा गाँव था बंगाल में, अब तो बांग्ला देश हो गया।

– तो तुम विभाजन में....

– अरे नहीं...हम तो उसके कई साल पहले ही यहाँ आ गये थे। बन्धु जी क्रान्तिकारी थे ना।

– बन्धु जी कौन ?

– हमारे पति, बहुत छोटे थे जब हमारा ब्याह हो गया। पति क्रान्तिकारी। घर से कोई मोह नहीं, बस भारत माँ से नाता। हम भी उसी में रम गये; लेकिन तमाम परेशानियों के चलते क्रान्तिकारी दल टूट गया। अंग्रेज पीछे लग गये। बन्धुजी बंगाल छोड़कर आने लगे, तो हम भी साथ आ गये। उत्तर भारत में आज यहाँ– कल वहाँ करते–करते अन्ततः यहाँ डेरा जम गया। घर बस गया। परिवार हो गया।

– फिर कभी तुम लोग बंगाल नहीं गये ?

– नहीं... नाते रिश्तेदारों ने तो अंग्रेजों की दुश्मनी के चलते मुँह मोड़–सा लिया था। रही जमीन, तो भारत माँ की माटी, जैसी यहाँ, वैसी वहाँ...

बन्धुजी तो तृप्ता के जन्म से पहले ही नहीं रहे थे। बान्धवी कहती थीं, अशोक भैया उनके जैसे ही, लम्बे साँवले, सपनों भरी आँखों वाले।

– अन्तर था तो बस सपनों का।

यों तो बान्धवी को किसी ने उदास नहीं देखा था, लेकिन सभी को लगता था, कि स्नेहिल सौम्य बान्धवी के अन्तस् में कहीं उदासी की झील शान्त पड़ी है। जब अशोक भैया, बड़े अधिकारी बन गये, उनके विवाह की चर्चा होने लगी, तो सभी को लगा अब उस उदासी की झील का जल रंग बदल लेगा और उसमें प्रसन्नता की लहरें उठने लगेंगी।

ऐसा हुआ भी, लेकिन बस सपने भर।

– बान्धवी, आप क्या मोहल्ले भर के बच्चों की भीड़ लगाये रहती हैं। शोर मचाते हैं, सामान तोड़ते हैं, अरे ऐसा ही है तो क्रेश खोल लीजिये– चार पैसे बढ़ेंगे घर में

– ऐं !....बान्धवी ठगी–सी देखती रह गयी।

लेकिन बात यहाँ रुकी नहीं, तभी रुकी, जब बच्चों का आना रुका।

बान्धवी को लगता उनके जीवन में एक रिक्तता आ गयी है। पुत्र काम पर, पुत्रबधू अपने में व्यस्त। बान्धवी ने यहाँ–वहाँ अधिक देर बैठना प्रारम्भ कर दिया।

– बान्धवी आप को तो घूमने से ही अवकाश नहीं। कभी यहाँ बैठीं, कभी वहाँ, अरे उतनी देर घर के चार कामों में हाथ बँटा लेंगी, तो हाथ तो नहीं घिस जायेंगे।

घर में काम ही कितना था। आधे से अधिक तो सीता की अम्मा ही निबटाती थी, बचे–खुचे बान्धवी। वधू को तो बस... पर बान्धवी शान्त रही। लेकिन बान्धवी के शान्त रहने से क्या बात रुक गयी ? नहीं बात तो इस बार भी तभी रुकी, जब बान्धवी ने घर से बाहर निकलना लगभग बन्द कर दिया।

लोग कहते थे– वधू के मोह ने बान्धवी को जकड़ लिया। समय चक्र आगे चला। बान्धवी के आँगन में पोता–पोती भी आ गये। बान्धवी ने मोहल्ले के कई बच्चे पाले थे, लेकिन वधू का मानना था, अब पुराने तरीकों से बच्चे नहीं रखे जा सकते।

अशोक भैया अधिकारी थे। खाने–पीने की तो कमी न थी, लेकिन उपेक्षा और अकेलेपन ने बान्धवी को अस्वस्थ कर दिया था।

बच्चों, पति और स्वयं के लिए अलग–अलग व्यञ्जन बनाने वाली कुशल वधू को अस्वस्थ बान्धवी के लिए एक कटोरी खिचड़ी बनाना पहाड़ लगता।

– बान्धवी, यही खा लेना, हम बहुत थक गये हैं।

बान्धवी सूनी आँखों से वधू की तरफ देखतीं और मौन स्वीकृति दे देतीं।

–छोले में मसाला बहुत हैं; बान्धवी लाचारी से कहती। ये हमसे खाया नहीं जायेगा।

– तुम्हारे तो बुढ़ापे में नखरे ही नहीं मिलते। रात की रोटी रखी है, नमक से खा लो। काम धेले का नहीं

ती...
हतभाग्य ! जिस घर में धन–धान्य भरा पड़ा हो, उक्त वृद्धा को एक कटोरी खिचड़ी भी नहीं।

पड़ोसियों को अब स्थिति का अनुमान होने लगा। हर सुख–दुःख में बान्धवी ने उनका साथ दिया था। बान्धवी की सहायता करना चाहते थे, लेकिन ऊँचे सामाजिक स्तर वाली बान्धवी की बहू से कटुता मोल लेना उनके अपने स्वार्थों के हित में नहीं था।

ईश्वर ने इनकी पीड़ा समझी और बान्धवी की सेवा का मौका दे दिया।

पुत्र–पुत्रवधू पोता–पोती सब पहाड़ घूमने चले गये। इधर बान्धवी ज्यादा अस्वस्थ हो गयीं, तो सेवा की कमान पड़ोसियों ने सम्भाल ली। मरणासन्न हुई बान्धवी को उठा दिया। अब तक बान्धवी के घर वाले भी लौट आये। उनके लौटने के अगले दिन एक पड़ोसी ने द्वार खटखटाया।

– बान्धवी के लिए यह 'सूप' लाये थे।

पुत्रवधू ने द्वार पर खड़े पड़ोसी को घूरा और बान्धवी की कोठरी का रास्ता दिखा दिया।

इसके बाद का घटनाक्रम बान्धवी के पल–पल उनकी मृत्यु की प्रार्थना का कारण बना।

जाओ, उठो, चलो, यह करो, वह करो। पड़े–पड़े खाती हो, सोती हो। किसी काम की नहीं। बोझ बुढ़िया. कब पीछा छोड़ेगी।

हाँफती, जगह–जगह बैठकर चलती बान्धवी पोते की उँगली पकड़ गेहूँ, चावल खरीदती। घर में दाल बीनती, सब्जी काटती। थक जाती। शोर–मचाते पोती–पोतों को रोकती, तो डाँट खाती। बुढ़िया घर के बच्चों को देख नहीं सकती। बान्धवी की आँखों में आँसू तैरते, लेकिन नहीं रुक जाते।

सब कुछ सामान्य–सा हो गया। पड़ोसियों के पास भी बान्धवी के लिए इतना समय नहीं था फिर अपने बचाव का भी तर्क था– अपना परिवार है उनका जैसे चलाएँ। कभी–कभी लोग ठण्डी आह भी भरते थे– भगवान् भी...।

तृप्ता भी उन कई व्यस्त पड़ोसियों में एक थी। चार छह महीने में कभी ऐसा समय मिलता कि वधू की अनुपस्थिति में बान्धवी से बात हो जाये, तो चली जाती बान्धवी की आपबीती, उनकी लाचारी की कथा सुन लेती, वापिस आकर माँ के सामने वधू को भला–बुरा कहती और अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान अगले दिन कार्यालय में व्यस्त हो जाती।

आज तृप्ता को लग रहा था, वह और उसके जैसे कई लोग मिलकर बान्धवी के दुःखों को कम कर सकते थे। बान्धवी के पार्थिव शरीर के इर्द–गिर्द फुसफुसाते पड़ोसियों ने बान्धवी से अपने पुराने स्नेह के रिश्तों की बजाय पुत्रवधू से सामाजिक–स्तर पर आधारित रिश्तों को महत्त्वपूर्ण माना था। उनमें फुसफुसाहट थी– अगर जेवर बचा कर रखे होते, तो यह दशा न होती बान्धवी की।

बात कड़वी थी; पर सच थी।

क्या क्रान्तिकारी बन्धुजी का साथ निभाना, बन्धुजी के बाद अशोक के लिए सफलता की राह बनाना, एक मोहल्ले को परिवार की तरह अपना लेना, हानि–लाभ से परे सबके सुख–दुःख में खड़े रहना... क्या यह कोई जेवर नहीं– यह कोई थाती नहीं जिसके बदले किसी को समाज में अपनत्व और सत्कार मिल सके ?

तृप्ता ने आँखें मूँदकर सिर दीवार पर टिका दिया।

– अशोक अन्तिम संस्कार बहुत विधिवत् कर रहा है, 'चिता केवल चन्दन की लकड़ी से बनेगी.....'

हम मानवीयता का कैसा ढोंग करते हैं ? ❑

– १२३, फतेहगंज, गल्ला मण्डी, लखनऊ

बँटवारा

– महाराजकृष्ण भरत

(देश के बँटवारे के बाद अब जम्मू–कश्मीर के बँटवारे के स्वर गूँजने लगे हैं। शायद ये स्वर भूल गये हैं कि हर बँटवारा किसी भी समस्या का समाधान न होकर नयी–नयी समस्याओं का जनक बन जाता है। समय रहते बँटवारा के ऐसे स्वरों को सदा के लिए बन्द कराना लोक–चेतना की जागृति पर ही निर्भर है। – सम्पादक)

नहीं भाती है जिनको गन्ध
माटी की,
उन 'नेताओं' ने किया
देश का बँटवारा
जो देश को
'मात्र–भूमि' समझते हैं
और हमारे लिए है जो–
मातृ–भूमि !

– विस्थापित कैम्प नगरोटा क्वार्टर नं.– २८४, कण्डोली, नगरोटा, जम्मू– १८१२२१

...जिन्होंने लीगी झण्डा फाड़कर फेंक दिया था

– पुष्कर नाथ

सिख सन्त जसवन्त सिंह ने कहा है कि, "कब से यह हिन्दू जाति यहाँ (भारत में) रह रही है? हमारे अपने इतिहास के अनुसार हम इसे सतयुग से गिनते है। भगवान् श्री रामचन्द्र का अवतार हुए हमारे हिसाब से लगभग ११–१२ लाख वर्ष हो गये हैं और इस हिसाब से सारी दुनिया के आदि हम (हिन्दू) ही हैं।" गुरु नानक कहते थे–

"जो लोग गुरुद्वारों, मन्दिरों, तीर्थों में जाते हैं, वे अच्छा काम करते हैं।" और 'हिन्दू' शब्द के विषय में कभी स्वामी विवेकानन्द ने जो कहा था, वह भी हम न भूलें। स्वामी जी ने कहा था कि "आओ! हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि विश्वकी कोई भी भाषा इस (हिन्दू) शब्द से महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर पाई है।" क्या स्वामी विवेकानन्द, गुरु नानकदेव या सिख सन्त जसवन्तसिंह ही नहीं, मास्टर तारासिंह ने हिन्दू राष्ट्र को अपने शब्दों में वाणी नहीं प्रदान की? सन्त जसवन्तसिंह ने यह भी कहा है कि,

"यह हिन्दू जाति ही हमारा खेत है; इसमें फसल कभी सिखों की, कभी जैनियों की, कभी रामकृष्ण–मिशन (संन्यासियों) की होती है। बड़ी–बड़ी फसलें इसमें पैदा होती हैं, अतः इस खेत (हिन्दू जाति) को बनाये रखें।" वीर सावरकर ने लिखा कि "गदरपार्टी के सरदार भानसिंह जैसे शहीदों की हड्डियों पर अण्डमान बसा है।" महामना मालवीय जी ने लिखा कि,

"सिख कभी हिन्दू के विरुद्ध नहीं हैं, बल्कि वे हिन्दू जाति के लिए गौरव हैं और हमें उन पर गर्व है। जो भी दस्ता देश के रक्षार्थ आगे चलता है, सिख उसमें आगे रहते हैं। हिन्दू पर जब कोई विपदा आती है, तो सिख लोग उसका सामना करने के लिए आगे रहते हैं।"

भारत–पाकिस्तान–युद्ध–काल में भी सिखों के राष्ट्र–प्रेम का ऐसा ही दर्शन हुआ, जब छम्ब–जोरियां के मोर्चे पर अकेले सिख सैनिकों ने ७ हजार बलिदान दिये। वहाँ तीन दिन में युद्ध–रत भारतीय सेना के १० हजार सैनिक खेत रहे थे। और हम एक और ज्वलन्त मिसाल सिख नेता मास्टर तारासिंह की है, उनकी उस हिन्दुत्व–निष्ठ तेजस्विता को हम कैसे भूल सकते हैं कि जब पाकिस्तान बनते समय मोहम्मदअली जिन्ना ने मास्टर तारासिंह के सामने यह प्रलोभन भरा प्रस्ताव रखा कि "सिख हमारे साथ आ जायें, तो हम पंजाब का सारा राज–पाट सिखों के ही हाथों में सौंप देंगे– पंजाब का मुख्यमन्त्री हम सिख को ही बनायेंगे।" मतलब था कि जिन्ना मास्टर तारासिंह को पंजाब का मुख्यमंत्री बनाने का लालच दे रहा था; परन्तु मास्टर तारासिंह ने जिन्ना को इस प्रस्ताव के उत्तर में अपने पत्र में लिख भेजा कि,

"मैं हिन्दुओं के मल्होत्रा परिवार में पैदा हुआ। मेरा बाप अभी तक हिन्दू ही है। आगे जब मैं १६ साल की उम्र का हुआ तो मैंने सिख धर्म अपनाया। इसका मतलब यह नहीं कि मेरा बाप, जो अभी तक हिन्दू है– मेरा बाप नहीं, या मेरी हिन्दू माँ, मेरी माँ नहीं है।"

मास्टर तारासिंह का यह ऐतिहासिक उत्तर सिख समाज ही नहीं; अपितु अखिल राष्ट्र के लिए बहुमूल्य विरासत और एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज एवं सन्देश है। मास्टर तारासिंह के अभ्यन्तर से जो उस दिन बोल उठा, वही हिन्दू राष्ट्रीयता का मूल–मन्त्र है, अचूक तन्त्र है और निखिल हिन्दू समाज को, जैन–बौद्ध–सिख–शैव–शाक्त–वैष्णव–निराकार–साकार–मार्गियों, सभी को एकता–सूत्र में गुम्फित करने का स्वयंसिद्ध यन्त्र है। इन्हीं सरदार तारा सिंह एक दिन लाहौर किले पर जाकर उस पर लगा लीगी झण्डा फाड़ कर फेंक दिया था।

☆

अनोखा बरगद का पेड़ : जिसकी लटें जमीन पर नहीं आतीं

अयोध्या, (वार्ता) : त्याग और तपस्या का स्थल समझे जाने वाले नन्दीग्राम में एक ऐसा बरगद का पेड़ है जो सैकड़ों वर्ष पुराना होने के बावजूद उसकी लटें जमीन पर नहीं आतीं।

इस बरगद के पेड़ से निकलने वाली लटें पुनः उसी डाल में जाकर लिपट जाती हैं जिससे वह निकली होती हैं। मान्यताओं के मुताबिक नन्दीग्राम में ही भरत जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के वन चले जाने पर चौदह वर्षों तक उनकी खड़ाऊँ रखकर तपस्वी के रूप में रहकर राजपाट चलाया था।

श्रीराम के वन से लौटने के बाद नन्दीग्राम में ही भरत जी से उनका प्रथम मिलाप हुआ था। नन्दीग्राम को अब भरतकुण्ड भी कहा जाने लगा है। नन्दीग्राम स्थित भरतगुफा मन्दिर के पुजारी हनुमानदास के अनुसार यह पेड़ कई सौ वर्ष पुराना है। इसकी जो लटें जमीन की तरफ बढ़ने की कोशिश करती हैं, उनमें जाला लग जाता है और वे सूख जाती हैं।

इस पेड़ की एक और विशेषता है कि यह इतना पुराना होने के बावजूद इसकी डालें, तना तथा लटें पूरी की पूरी हमेशा हरी रहती हैं। लोग यहाँ इसे आज भी राम-भरत मिलाप का प्रतीक मानते हैं। (१८-५-९६, 'पंजाब केसरी', पृ० ८)

अंग्रेजों द्वारा भ्रष्ट किये गये इतिहास का पुनर्लेखन

- डॉ० बलराज शर्मा

अंग्रेजों ने भारत को छल-बल से अपने अधीन किया था। ...ता के रूप में वे कदाचित् नहीं ...हते थे कि भारतीय किसी भी क्षेत्र ...उनसे श्रेष्ठ सिद्ध हों। उनका भरसक ...त्न था कि वे भारतीयों को हीन ...द्ध करते रहें और उनके मन में यह ...अंकित कर दें कि वे सदा पराजित ...ते आये हैं, दास रहे हैं और दास ...रहना ही उनके भाग्य में बदा है। ...थ ही यह भी कि 'हिन्दू यहाँ के ...वासी नहीं हैं, वे बाहर से आये हैं। ...नके आगमन से पूर्व यहाँ रहनेवाले द्रविड़ भी विदेशी ...। जैसे द्रविड़ों ने कोल, भील और मुण्डा जातियों को ...देड़ा, वैसे ही आर्यों ने द्रविड़ों के नगरों, हड़प्पा, ...हनजोदडो आदि को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए मूल निवासियों ...ा कत्ले-आम किया और बचे हुए द्रविड़ों को दक्षिण में ...ा बसने पर मजबूर किया। आर्य इन्हें दास या दस्यु ...हते थे, जिनका वर्णन वेदों में है। भारतीय सभ्यता तो ...ूनान, मिस्र और चीन की सभ्यता से बहुत बाद की है; ...रन्तु **जब पश्चिमी विद्वानों ने महाकवि कालिदास के ...अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक और उपनिषदों को पढ़ा, ...तो वे अनायास ही कह उठे कि भारत तो मनुष्य जाति ...का और कम से कम मानव सभ्यता का उद्गम-स्थल ...है।**

भगवद्गीता के विषय में जर्मन विद्वान् हम्बोल्ट ने कहा कि- 'विश्व की सम्भवतः यह सबसे अगाध और उच्चतम वस्तु है।' फ्रान्सीसी लेखक और विद्वान् वोल्तेयर ने अपने निबन्ध, 'एस्से ऑन दी मोरल्ज एण्ड दी स्पिरिट ऑफ नेशन्ज' में जब यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म को कट्टरता के लिए उनकी आलोचना की और बताया कि- ...ये धर्म ही क्रूर युद्धों, जिहादों और धर्माधिकरणों के लिए ...हैं और चीन तथा भारत की पुरातन संस्कृतियाँ यहूदी और ईसाई मत से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं, तो उन्हें दूसरी बार फ्रान्स की सरकार द्वारा निष्कासित कर दिया गया। भारत की संस्कृति और साहित्य की अत्यधिक प्रशंसा से साम्राज्यवादी और कट्टर धर्मप्रचारक बौखला गये। उपनिषदों के तत्त्वज्ञान के मतवाले शोपनहावर, जिनकी मेज पर लैटिन औपनेखत् (उपनिषद्) सदा रखा रहता था, के विषय में विण्टरनित्ज, जो अपने ईसाई दर्शन-शास्त्र और धर्म की श्रेष्ठता के प्रति आस्थावान् था, के विषय में कह उठा- 'शोपनहावर का यह कथन तो अतिशयोक्ति मात्र है कि 'उपनिषद् की शिक्षा सर्वोच्च मानव-ज्ञान और प्रज्ञा का फल है, उनमें प्रायः मानवेतर विचार हैं, जिनके उद्गाता साधारण मानव नहीं हो सकते।'

मैक्समूलर के पूर्वाग्रह के कुछ उदाहरण तो द्रष्टव्य हैं। ऋग्वेद के अनुवाद के विषय में उनकी कुत्सित धारणा अपनी पत्नी को लिखे गये पत्र के इन शब्दों में प्रकट होती है- वेद के अनुवाद का मेरा यह संस्करण कुछ देर बाद भारत के भाग्य पर पर्याप्त प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल है। मैं निश्चयपूर्वक अनुभव करता हूँ कि गत तीन सहस्र वर्षों से जो कुछ भी वेदों से उद्भूत हुआ है, उसको उखाड़ने का एकमात्र उपाय है उन्हें उनके धर्म के मूल के विषय में बताना कि वह कैसा (निकृष्ट) है। वेदों को सब धर्मग्रन्थों से निम्नतम स्थान देते हुए वे अपने पुत्र को लिखते हैं- क्या तुम बताओगे कि वह एक कौन-सी पवित्र पुस्तक है, जो संसार की अन्य सभी पुस्तकों से श्रेष्ठ है... मैं कहता हूँ कि न्यू टैस्टामेण्ट ही ऐसा ग्रन्थ है। इसके पश्चात् मैं कुरान को स्थान देता हूँ... फिर क्रमशः ओल्ड टैस्टामेण्ट, दक्षिणीय बौद्ध त्रिपिटक... वेद और अवेस्ता हैं।

सात समुद्र पार से आये अंग्रेजों के लिए भारत पर अपने आधिपत्य को न्यायोचित सिद्ध करना कठिन था; परन्तु ब्रिटिश इतिहास-लेखकों ने यह करिश्मा भी कर दिखाया। हड़प्पा तथ मोहनजोदाड़ो के ध्वंसावशेषों के प्रकाश में आने पर उन्होंने इस मिथ्या धारणा का जोरदार प्रचार किया कि बाहर से आये आर्य आक्रमणकारियों ने इन नगरों के निवासी द्रविड़ लोगों का सामूहिक संहार किया और नगरों को जला दिया। वेदों में इन्हीं लोगों को दास और दस्यु कहा गया है, जिनके ९९ दुर्गों को नष्ट किया गया था। पादरी काल्डवैल ने अपनी पुस्तक- द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण में भी इसी बात पर जोर दिया कि आर्य और द्रविड़ दो भिन्न-भिन्न नृवंश हैं। इन द्रविड़ों ने पहले यहाँ के मूल निवासियों कोल,

भील, मुण्डा जातियों को खदेड़ा, बाद में आर्यों ने द्रविड़ों को भगाया। कुशाण, हूण, तुर्क, मुगल यहाँ शासन करते रहे हैं। अब हमारी बारी है। यहाँ के लोगों के भाग्य में दास रहना ही बदा है इसी में इनका कल्याण है। मार्शल, व्हीलर आदि पुरातत्त्वविदों ने इस धारणा का बढ़चढ़ कर प्रचार और प्रसार किया, जिससे भारतीयों में हीन–भावना पनपती रहे। दक्षिण में उत्तर के लोगों, संस्कृत और हिन्दी के प्रति जो द्वेष और कटुता की भावना आज है, वह अंग्रेजों की फैलायी हुई धारणाओं के कारण ही है, जिनका निराकरण किया जाना आवश्यक है।

आर्कबिशप उशर ने जब यह घोषणा (१६६४ ई०) की कि सृष्टि का निर्माण परमात्मा ने २३,१०,४००० ई०पू० को प्रातः ६ बजे किया था, तो सब ईसाइयों को यह मानना आवश्यक था कि इससे पहले संसार में कोई भी सभ्यता आविर्भूत नहीं हो सकती थी। एक लाख वर्ष पुराने उपलब्ध नर कंकाल भी उशर की घोषणा को निरस्त न कर सके। इसीलिए मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने आर्य सभ्यता और साहित्य को अधिक से अधिक ३५०० वर्ष पुराना मानते हुए सारे वैदिक साहित्य को १२०० ई०पू० से ६०० ई०पू० की समयसारिणी में बद्ध कर दिया। कुछ अन्य विद्वानों ने थोड़ी उदारता दिखाकर ५००–६०० वर्षों का समय और बढ़ा दिया। पुराणों की वंशावलियों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा महाभारतादि में वर्णित नक्षत्रों की स्थितियों से निकलने वाले निष्कर्षों को भी उन्होंने सृष्टि–उत्पत्ति–विषयक दुराग्रही धारणा के अनुसार परखा।

योरुप के कुछ न्यायप्रिय विद्वानों जैसे गोल्डस्कर आदि ने वैज्ञानिक विद्वानों का चोला पहले उपरिलिखित धर्मप्रचारक समूह की इन शब्दों में निन्दा की–

"जब मैं देखता हूँ कि अत्यन्त मूल्यवान् और प्राचीन भारत के हमारे समस्त ज्ञान के एकमात्र स्रोत ज्ञान–सम्पन्न हिन्दू विद्वानों और धर्मोपदेशकों के मत का तिरस्कार किया जाता है और वेदों का प्रचलित भावार्थ बताने की डींग इन संस्कृतज्ञों के गुट द्वारा हाँकी जाती है... तब मैं समझता हूँ कि संस्कृत–भाषा–विज्ञान के साथ मनमानी करनेवाले इन लोगों का यदि विरोध न किया गया, तो यह साहस का अभाव तथा कर्त्तव्य की अवहेलना होगी। दुःख का विषय है कि हमारे विश्वविद्यालयों में अब भी इन दुराग्रही धर्मप्रचारकों के ग्रन्थों को ही पढ़ाया जाता है जबकि निष्पक्ष न्यायप्रिय योरुपीय विद्वानों की उपेक्षा की जाती है।"

कुछ भारतीय विद्वानों ने फिर भी झण्डा उठाये रखा। प्रो० वी० रण्णचार्य ने इस प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहा कि प्रायः सभी अंग्रेज तथा अमरीकी विद्वानों की यह खतरनाक और मनगढ़न्त धारणा है कि मिस्र या मैसोपोटामिया के प्रारम्भिक काल की तिथि कम से कम ईसा से ५००० वर्ष पूर्व की है और प्राचीन भारत की अन्तिम सम्भावित तिथि भारत द्वारा उन देशों का अनुकरण करने के कारण बहुत पीछे की है। (हिस्टरी ऑफ प्री–मुसलमान इण्डिया, दूसरा भाग; वैदिक इण्डिया, भाग प्रथम, १६३७, पृष्ठ १४५)

भूतपूर्व शिलालेख विशेषज्ञ श्री सी०आर० कृष्णमाचारलु ने पाश्चात्य लेखकों के निहित प्रयोजनों को समझते हुए कहा– अभी कल की जातियों में जन्मे हुए ये पाश्चात्य ग्रन्थकार निहित उद्देश्य विशेष से जो इतिहास लिखते हैं, वह कई बातों में स्पष्ट ही जातीय दुराग्रह से परिपूर्ण है तथा पुरातन भारतीय इतिहास को यथार्थ से विपरीत रूप में अंकित करता है। (दी क्रेडल ऑफ इण्डियन हिस्टरी, पृष्ठ ३ आडयार लाईब्रेरी मद्रास, १६४७), प्रो० आर० सुब्बाराव भारतीय इतिहास कांग्रेस के वाल्टेयर के १६वें अधिवेशन (२६ दिसम्बर, १६५३) में अपने (विभागीय) अध्यक्ष पद से यह कहने पर बाध्य हो गये कि– दुर्भाग्य से पुराणों की ऐतिहासिकता तथा उनके साक्ष्यों को कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने गलत रूप में प्रस्तुत कर लिखा कि पुराण–काल ईसा से २००० वर्ष पूर्व के पहले नहीं जा सकता तथा महाभारत–युद्ध का काल भी ईसा से १४०० वर्ष पूर्व निश्चित करने की आवश्यकता नहीं है। अपनी प्राचीनता को और अधिक प्राचीन ठहराने के लिए लोगों ने ब्राह्मणों को दोषी ठहराया और हिन्दुओं की (खगोल विद्या सम्बन्धी ग्रन्थों की) ज्योतिष गणना की प्रामाणिकता को भी विवादास्पद बना दिया। (जे०ए०एच०आर० खण्ड १०, पृष्ठ १८७)।

लगभग ७८ वर्ष पहले १६२१ ई० में श्री अविनाश चन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'ऋग्वेदिक इण्डिया' में यह सुझाव दिया था कि पुरातन भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण करने के लिए ऐसे वैदिक विद्वानों की समिति का गठन किया जाये, जो ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधुनिक ढंग में निष्णात हों और जो अपने शोध का आधार वैदिक साहित्य को बनायें; क्योंकि इस दिशा में शोध तभी वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। लगभग पचास वर्ष पहले सरदार के० एम० पणिक्कर ने अपने लेख 'राईटिंग

इण्डियन हिस्टरी' में इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि भारत के सम्बन्धित ऐतिहासिक लेखनों में अंग्रेजों का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से राजनैतिक है; क्योंकि वह उनके अपने देशों के राष्ट्रीय इतिहासों से प्रभावित है। उदाहरण स्वरूप वह कहते हैं– "मकदूनिया के सिकन्दर ने ईरान के अधीन पंजाब की सूबेदारी पर, जिसे ईरान के लोग इण्डिया कहते थे, आक्रमण किया। उसके द्वारा स्थापित की गयी रक्षक सेनाएँ पाँच वर्ष से कम समय में या तो समूल नष्ट कर दी गयीं या भगा दी गयीं; परन्तु फिर भी ब्रिटिश इतिहासकारों ने यह माना कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य एक प्रकार से मकदूनिया–निवासियों के स्वप्न की पूर्त्ति है, इसे (सिकन्दर के आक्रमण को) भारतीय इतिहास में केन्द्रीय तथ्य स्थापित कर दिया।"

दिवंगत प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् श्री भगवद्दत्त जी का सुविचारित मत है कि 'हमने पाश्चात्य विद्वानों की कई पीढ़ियों द्वारा रचित लगभग सारे साहित्य का अध्ययन किया है... अच्छी प्रकार परीक्षण किया है। हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि अधिकतर इन विद्वानों के लेखों में ईसाई पक्षपात झलकता है, जो भारतवर्ष की सारी महानता को कलंकित करने के लिए उत्तरदायी है।... (मोतीलाल जालान, प्राचीन भारत में गोमांस : एक समीक्षा, गीता प्रेस, १६७०, पृष्ठ ४)

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि वह देश भाग्यशाली है, जो अपनी जातीय पहचान को अपने इतिहास में से जान लेते हैं। अंग्रेज बालक जानते हैं कि उनके पूर्वजों ने कई युद्ध जीते, कई देशों पर शासन किया और इस प्रकार अपने देश को समृद्ध किया। भारतीय बालक आजकल पढ़ाये जानेवाले इतिहास से केवल यह ही जानते हैं कि उनके पूर्वज घटिया थे। वे यह नहीं जानते कि उनकी क्या उपलब्धियाँ थीं।

विवेकानन्द के अनुसार 'भूत से ही भविष्य ढाला जा सकता है, यह भूत ही है, जो भविष्य बनता है। इसलिए भारतीय जितना अधिक अपने विगतकाल का अध्ययन करेंगे, उतना ही उज्ज्वल उनका भविष्य होगा और जो बीते हुए युगों को प्रत्येक नागरिक के द्वार पर ला खड़ा करेगा, वह जाति का उपकारक होगा।' (अद्वैत आश्रम, कलकत्ता १,७४ खण्ड १, पृष्ठ ३२४)

जार्ज सान्तायन के अनुसार "जो अपने इतिहास से कुछ नहीं सीखते, वे बार–बार अधोगति को प्राप्त करते हैं और दुःख पाते रहते हैं।"

लॉर्ड मैकाले भी मानता है कि "जो जाति अपने प्राचीन पूर्वजों की श्रेष्ठ उपलब्धियों के प्रति गर्व का अनुभव नहीं करती, वह ऐसी कोई उपलब्धि अर्जित नहीं कर सकेगी, जिसके लिए उसकी आनेवाली पीढ़ियाँ उन्हें याद करने के योग्य समझेंगी।"

५. (क) पुरुषोत्तम नागेश ओक तो इतिहास को जाति की नाड़ी मानते हैं। जैसे जब तक नाड़ी चलती रहती है, मनुष्य जीवित रहता है, उसी प्रकार जब तक जाति अपने सत्य इतिहास की खोज में जुटी रहती है, वह कभी मर नहीं सकती।

६. (ख) परमेश चौधरी का दृढ़ मत है कि वह सब कुछ जिसके लिए भारत अमूल्य है, विश्व में से लुप्त हो जायेगा, जब तक इस मातृभूमि के बालक भारत को महान् न समझें और इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए ही वे न जियें और न काम करें। यह जागृति तब होगी, जब इतिहास के अध्ययन के प्रति एक आन्दोलन का सूत्रपात होगा। राष्ट्रीय चरित्र राष्ट्रीय इतिहास का सार है। सत्य इतिहास भारत को प्रेरित करेगा कि वह महान् वैज्ञानिक पैदा करे, जो अन्वेषणों के लिए पश्चिम पर निर्भर न करें। अपनी मातृभूमि का मनोहारी गीत भारत की सन्तान ही गा सकती है। (दी आर्यन्ज – ए माडर्न मिथ, भूमिका पृष्ठ १)।

इसलिए पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे गये हमारे इतिहास, संस्कृति और साहित्य–सम्बन्धी ग्रन्थों का पुनः परीक्षण आवश्यक है; क्योंकि पश्चिमी विद्वान् अपनी धर्मान्धता, साम्राज्यवादी दृष्टिकोण और जातीय श्रेष्ठता के कारण इन ग्रन्थों को लिखते समय पक्षपात की भावना से मुक्त नहीं रह सके। फिर आधुनिकतम अन्वेषण और उपलब्धियों जैसे प्राक्हड़प्पा और पश्चहड़प्पा संस्कृति के अवशेषों का पश्चिमी भारत और यहाँ तक कि दक्षिण में भी पाया जाना समुद्र में द्वारका के अवशेष, जो महाभारत और हरिवंश पुराण में उल्लिखित वर्णन की सत्यता को प्रमाणित करते हैं, सरस्वती नदी की प्राचीनता, गीता के दो श्लोकों (१५/७–८) का अनुवाद ३००० ई०पू० के मिस्र के पिरामिड पर मिलना हमें बाध्य करते हैं कि पुरानी खण्डित मान्यताओं को त्याग कर हम अपने इतिहास का पुनः लेखन करें।

□

– *(स०वि०से०, चण्डीगढ़)*

करगिल का दोषी कौन ?

- खड़ग सिंह रावत

कोई अटल कोई जार्ज
के सिर मढ़ता है
सेना को भी वर्जित नहीं करता है
गुप्तचर की लापरवाही भी कहता है
ठोक छाती, दे ताल
दुश्मन हर दिन कहता फिरता है
लेके रहेंगे कश्मीर,
कश्मीरी हमारे भाई हैं
हिन्दू भारत का उससे
क्या लेना-देना है
फिर कैसी लापरवाही ?
कैसा दोषारोपण ?
सैंतालीस से यह सिलसिला
चलता आ रहा है
दुश्मन की इस चुनौती को
किसने स्वीकारा है
कौन जीता, कौन हारा है
किसने ललकारा है
सेना के बलिदान को
उसकी शान-बान को
उसके स्वाभिमान को
समझा नेताओं ने
घर की बपौती
जब चाहो बेच दो
चाहो दान में दे डालो
कर समझौता दुश्मन की
झोली में डाल दो
पहचानो उनको, समझा जिनने
वीरों के खून को पानी-बस पानी
याद करो अड़तालीस को
किया दुश्मन से समझौता
दिया लौटा जीता प्रदेश
रोक दिया वीरों की बढ़ती गति को
बात नहीं दो चार महीनों की थी
केवल दो एक हफ्तों की
निर्णय होता निर्णायक होता
आज न होता
यह करगिल का रक्तपात
न तोपों की बमबारी
देश की बरबादी
पूछो अपनी अन्तर आत्मा से
करगिल का दोषी कौन ?
मन नहीं भरा दुश्मन का
इस समझौते से
ललकारा दुश्मन ने फिर पैंसठ में,
सेना ने फिर शौर्यमय
फिर खदेड़ा दुश्मन को
दूर-दूर उस पार
लाहौर तक दुश्मन को
रौंद दिया
फौलादी हमारे वीरों ने।
विदेशी दबाव में,
फिर किया समझौता
जीता जो था, लौटा दिया
सफेद खद्दरधारियों ने
खींच नियन्त्रण रेखा
अपनी ही धरती पर
हाथ अपने, अपने आप
बाँध दिये,
वीरों के पैरों में
बेड़ियाँ डाल दीं
दुश्मन भारतीय नेतृत्व की
रीति-नीति पहचान गया
सेना की हमारी
लाचारी जान गया
फिर पूछो अपनी आत्मा से
करगिल का दोषी कौन ?
इकहत्तर में दुश्मन फिर गुर्राया
लड़ने को सीमा पर आया
नेताओं ने फिर सेना को झोंक दिया
समझ उसका खून पानी-बस पानी
तिरानवे हजार
दुश्मन के सैनिकों को
बना बन्दी,
किया फिर समझौता
खद्दर साड़ी वाली ने
लौटा दिया सब बन्दियों को
अपनी भी जीती धरा
लौटा दी
शिमला समझौता नाम दिया
दे मूछों पर ताव, हारा दुश्मन
घर लौट गया
हमारे वीरों का खौला खून
कर दिया फिर पानी का पानी
इन गान्धी टोपी वालों ने
बोलो कुछ बोलो
करगिल का दोषी कौन ?
यही कवायद चलती आ रही है
पिछले पचास वर्षों से
अब दुश्मन तुम्हें
भली भाँति पहचान गया
रीति नीति तुम्हारी
जान गया
अबके निन्यानबे में फिर उसने
अपने तम्बू तान दिये गुपचुप
बेचारे नेताओं को पता ही नहीं चला
वह कब आया ?
लगता है
अब के वह धोखा खा गया
कुर्सी जो यहाँ बदल गई थी
आँख के बदले आँख लेने वाले
देश की कुर्सी के स्वामी हैं
सिद्धान्तों के जो हामी हैं
जब तक एक भी दुश्मन रह जायेगा
न समझौता, न दोस्ती
यह सब हमारे थरमामीटर का पारा है
एक सिर के पीछे सौ सिर
देश का नारा है
एक बार फिर पूछो अपने से
करगिल का दोषी कौन ?

- १६/३६०, इन्दिरानगर, लखनऊ

गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी – विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि में (२)

– डॉ० रामशंकर द्विवेदी

गुरु गोविन्दसिंह

हमारे देश में बार–बार यही देखा गया है कि यहाँ शक्ति का तो उद्भव होता है; किन्तु उसमें धारावाहिकता नहीं रह पाती है। महापुरुष आते हैं और चले जाते हैं, उन लोगों के आविर्भाव को धारण करने का, पोषित करने का, उसे पूर्णता में रूपान्तरित करने का सहज अवसर यहाँ नहीं है।

इसका कारण है हमारा टुकड़ों में विभाजित होना, हमारी विच्छिन्नता। जिस मिट्टी में जरा भी दम या नमी नहीं है, वहाँ पर हवा अथवा पक्षियों के मुख से बीज आकर गिर पड़ता है, किन्तु वह अंकुरित नहीं होता है अथवा दो चार पत्ते बाहर आकर मुरझा जाते हैं। कारण, उस स्थान की मिट्टी आर्द्रता के रस को धारण नहीं कर पाती है। हमारे समाज में विभिन्नता का कहीं आदि–अन्त नहीं है। धर्म–कर्म, आहार–विहार, आदान–प्रदान सभी जगह विभेद हैं। इसीलिए भावों की बाढ़ आती है; किन्तु बालू में सूख जाती है, अग्नि शिखाएँ जल उठती हैं; किन्तु इधर–उधर थोड़ा धुआँ देकर बुझ जाती हैं। इसी कारण महत् प्रयत्न, विशाल प्रयत्न नहीं हो पाता है और महापुरुष देश के सर्वसाधारण जनों की अक्षमता को ही उज्ज्वल रूप से प्रमाणित कर निर्वाण प्राप्त करते जाते हैं।

शिवाजी

जो भी हो, मराठा और सिखों के उत्थान और पतन के कारणों की तुलना करके कहा जाय, तो यह कहना होगा कि सिख एक युग में एक अत्यन्त बड़े भाव के आह्वान से संघबद्ध हुए थे,– उन्होंने ऐसे एक सच्चे धर्म की वाणी सुनी थी, जो किसी स्थान विशेष की चिरपरम्परागत प्रथा में बँधी हुई नहीं थी और जो किसी काल विशेष की उत्तेजना से प्रसूत नहीं हुई थी– जो चिरकालीन और मानवमात्र के लिए थी, जो छोटे–बड़े सभी के अधिकारों को प्रशस्त करती थी, चित्त को मुक्त करती थी और जिसे अपनाने पर प्रत्येक मनुष्य मनुष्यत्व के पूर्णतम गौरव को उपलब्ध करता था। नानकदेव के इस उदार धर्म के आह्वान से अनेक शताब्दियों तक सिखों ने अनेक दुःखों को सहन करते हुए प्रसार लाभ किया था। इस धर्म–बोध और दुःख–भोग के गौरव से सिखों में अलक्षित रूप से एक महान् ऐक्य की भित्ति स्थापित हो गयी थी।

गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों के इसी धर्म–बोध की ऐक्यानुभूति को कर्म–साधना के सुयोग में रूपान्तरित कर डाला। उन्होंने एक विशेष सामयिक प्रयोजन के प्रति दृष्टि रखकर धार्मिक समाज की एकता को राष्ट्रोन्नयन के उपाय में लगाया; किन्तु इसी उपलक्ष्य से सम्प्रदाय को छोटा करके उसे और संगठित कर दिया, जो जातिभेद उनके मार्ग में प्रबल बाधा था, इसका उन्होंने समूल उत्पाटन कर दिया।

गुरु गोविन्द सिंह अपने सिख समाज में से इन भेद–भावों को जो एक ही उक्ति में दूर कर सके थे, उसका प्रमुख कारण यह था कि नानकदेव के उदार धर्म के प्रभाववश परस्पर भेद–बुद्धि का व्यवधान अपने आप ही अन्दर–ही–अन्दर क्षीण होता चला आ रहा था। गुरु गोविन्द सिंह के उस पर आघात करने मात्र से ही वह सौ–सौ टुकड़े होकर चूर्ण–विचूर्ण हो गया। पहले से ही गम्भीर रूप से अगर इसका आयोजन न होता रहा होता तो, सहस्र प्रयोजन होने पर भी गुरु गोविन्द सिंह कुछ न कर पाते। सिर्फ यही नहीं सभी कामों को मटियामेट कर देनेवाले इस कर्मनाशी भेद को दूर करना होगा, यह संकल्प ही उनके मन में आकार ग्रहण नहीं कर पाता।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

किन्तु गुरु गोविन्द सिंह

ने क्या किया ? एकता को ही मजबूत किया अथवा जिस महाभाव की शक्ति की सहायता से वैसा करना सम्भव हुआ उसे ही सिंहासन से हटा दिया, अन्ततः उसके सिंहासन पर और एक प्रबल भागीदार को बैठा दिया।

एकात्मता ही भावों की वाहिका होती है। इसी कारण महत् भाव–मात्र ही उस वाहन की सृष्टि करने के लिए अपनी शक्ति को नियोजित करता है। वाहन का गौरव तो उसके आरोही के महत्त्व के कारण ही होता है। गुरु गोविन्दसिंह ने सम–सामयिक क्रोध की उत्तेजना और आवश्यकता के कारण वाहन को ही शक्तिशाली बना डाला; किन्तु आरोही को खतम कर दिया।

उसका फल यह हुआ कि तत्काल तो कुछ कार्यसिद्धि हो गयी; किन्तु जो मुक्ति की ओर बढ़े थे, वे और बन्धन में पड़ गये। सिखों में परस्पर घनिष्ठ होने की व्यवस्था तो बरकरार रही; किन्तु आगे बढ़ने की गति नहीं रह गयी। इस कारण अनेक शताब्दियों से जो सिख परम गौरव से मनुष्य होने की जिस दिशा में चले जा रहे थे, वे लोग एकाएक एकबारगी रुककर केवल सैनिक हो उठे– और यहाँ पर ही उनका इतिहास निःशेष हो गया।

शिवाजी ने जिस लक्ष्य–भेदन के लिए अपने जीवन का प्रयोग किया था, वह किसी संकीर्ण, तात्कालिक प्रयोजन के लिए नहीं था एवं पूर्व से ही दाक्षिणात्य धर्मगुरुओं के प्रभाव से उनका क्षेत्र बहुत कुछ तैयार था। इसी कारण उनका उत्साह कुछ समय के लिए मानो समूची मराठा जाति में संचारित हो सका था।

फूटे पात्र में जल भर तो सकता है; किन्तु उसमें जल भरा नहीं रह सकता। क्षणिक भावोच्छ्वास की प्रबलता से लगता है सारी बुद्धि को छाप कर मानो हम एक हो गये हैं; किन्तु छिद्र का काम भीतर–ही–भीतर चलता रहता है। भारतीय समाज छिद्रों से भरा हुआ है, किसी भी भाव को वह टिकाये नहीं रख सकता है, इसी कारण समाज में प्राणमय भावों के बदले शुष्क, निर्जीव कर्मकाण्डों का ऐसा दारुण आविर्भाव होता है।

शिवाजी ने अपने समकालीन मराठा–हिन्दुओं में एक प्रबल भाव का प्रवर्त्तन इस सीमा तक किया था कि उनके न रहने पर भी कुछ दिन तक उसका वेग समाप्त नहीं हुआ; किन्तु शिवाजी उस भाव के आधार को पक्का नहीं बना पाते हैं, यहाँ तक के इसकी उन्होंने कोई चेष्टा तक नहीं की। समाज के बड़े–बड़े छिद्रों को न देखकर उन्हें लेकर क्षुब्ध समुद्र में तैरने लगे। इस समय छलाँग न लगाते अथवा उसी समय छलाँग लगाने का और कोई उपाय नहीं था इसलिए यह कार्य अकस्मात् किया था, ऐसा नहीं है। इस भेद को पार करना ही उनका उद्देश्य था। शिवाजी ने जिस हिन्दू समाज को मुगल–आक्रमण के विरुद्ध विजयी बनाने की चेष्टा की थी, आचार–विचार–गत भेदभाव ही उस समाज की मूल वस्तु है। उसी बँटे हुए धार्मिक समाज को ही उन्होंने पूरे भारतवर्ष में विजयी बनाने की चेष्टा की थी। इसी को कहते हैं रेत का बाँध बाँधना, यही है असाध्य साधना।

शिवाजी ने ऐसे किसी भाव का आश्रय अथवा प्रचार नहीं किया है, जो हिन्दू समाज के मूल छिद्रों को भर सकता था। अपना धर्म विधर्मियों के द्वारा पीड़ित, अपमानित हो रहा है, यही क्षोभ मन में लेकर, उसको भारतवर्ष भर में सर्वत्र विजयी बनाने की इच्छा स्वाभाविक होने पर भी वह सफल होने की नहीं है; कारण, धर्म जहाँ पर भीतर से ही पीड़ित हो रहा है। जहाँ पर उसके भीतर ही इस तरह की सभी बाधाएँ हैं, जो मनुष्य को केवल विच्छिन्न और अपमानित कर रही हैं, वहाँ पर उस ओर दृष्टिपात तक न करके, उस शतजीर्ण धर्म समाज के स्वराज्य को इस विशाल भारतवर्ष में स्थापित करना किसी भी मनुष्य के लिए साध्य नहीं है, कारण, वह विधाता के विधान से संगति नहीं खा सकता है। केवल आघात पाकर, क्रुद्ध होकर, अभिमान में भरकर कोई भी जाति बड़ी अथवा विजयी नहीं हो सकती है– जब तक उसकी धर्म बुद्धि के भीतर ही अखण्डता का तत्त्व कार्य करने का स्थान नहीं पा लेता है, जब तक एकात्मता की शक्ति किसी महत् भाव के अमृत–रस से चिर संजीवित होकर सम्पूर्ण दिशाओं से होकर अन्तर–बाह्य रूप से उसे एक करने की दिशा में अभिमुख नहीं होती है, तब तक बाहर का कोई भी आघात और प्रतिभाशाली व्यक्ति विशेष का किसी भी प्रकार का वीरत्व उसे दृढ़ता से ऐक्यबद्ध, सजीव, सचेतन नहीं कर सकता है। □

– १२६०, नया रामनगर, उरई–२८५००१

आप फरमाते हैं/लक्ष्मण

तुम लोग हमेशा पीने का पानी मांगते रहते हो। क्या तुम प्रगति नहीं करना चाहते? मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि मैं तुम्हें टेलीफोन दे रहा हूँ। (नभाटा से साभार)

'गर्दभ-सम्मेलन'

- संदीप सक्सेना

शहर के उस बड़े व खास मैदान में जो कि राजनैतिक सभाओं, रैलियों व जमावड़े वगैरा के लिए एक तरह से रिजर्व था, विशाल 'गर्दभ समाज' का जमावड़ा था। गदर्भ-सम्मेलन में छोटे-बड़े, मोटे-ताजे, बूढ़े-बूढ़े व जवान-कढ़ियल हर 'टाइप' के गधों की भीड़ लगी थी। खूब बढ़-चढ़ कर सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी गधों के चेहरे पर आक्रोश, तनाव व इन्सानी शोषण तथा अत्याचार के विरुद्ध विरोध के भाव थे। उनके सिर इस समय परम्परागत रूप में सीधाई से झुके हुए नहीं थे। आदमी नाम के दोपाया प्राणी के अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध इन चौपायों की सभा बुलाई गई थी। हर 'वैराइटी' के गधे बढ़-चढ़ कर सभा स्थल की ओर दौड़े आ रहे थे। अपनी-अपनी व्यथा-कथाएँ लिये तमाम उदास-मुखी गधे' चले आ रहे थे। एक बुजुर्ग-बुद्धिमान, गम्भीर व संयत प्रकृति के तथा अध्यक्ष पद के लिए आवश्यक गम्भीरता के गुण से सराबोर गधा महाशय को सभा का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। अध्यक्ष का चोंगा ओढ़ कर वह बुजुर्ग गधा गम्भीर व संयत ढंग से एक अध्यक्ष के धर्म को निभाते हुए मूर्ति रूप में मंच पर आसीन हो गया था। एक तेज-तर्रार, क्रान्ति के प्रतीक युवा गधे ने सभा के संचालन का कार्यभार सम्भाल लिया था। गधा समाज का वह युवा नेता एक पेशेवर संचालक की सी फुल 'फार्म' में आ गया था। वह 'क्रान्तिवीर गधा' पूरे जोश के साथ 'विशाल गधा समाज की जय' का नारा लगाते हुए पूरी ताकत से रेंका, "हमारे बुजुर्ग व सम्मानित गधों, भाईयों तथा प्रिय बन्धुवर, आप लोग अच्छी तरह से परिचित हैं कि हम लोग यहाँ पर क्यों एकत्रित हुए हैं। इन्सान नाम के इस विकट जीव ने हम पर जो जुल्म व अत्याचार ढाए हैं, उसने हमें आक्रोश व गुस्सा व्यक्त करने के लिए मजबूर कर दिया है। जी-तोड़ जम कर काम करते हैं और हम सिर झुकाए शालीनता का परिचय देते हुए उनका भरपूर सहयोग करते हैं, पर हमारी इस सिधाई व विनम्रता को हमारी कमजोरी समझ लिया गया है। इसके बावजूद भी हमें 'गधा' कहकर वे बेहद निकृष्ट व निम्न कोटि का होने की दृष्टि से देखते हैं। एतराज 'गधा' नाम देने का नहीं है, क्योंकि गधा कोई गाली नहीं, पर एतराज है तो उनकी दोषपूर्ण दृष्टि, व्यवहार व भाव का। यह तो हमारी विशाल बिरादरी का सरासर अपमान है। न भरपेट खाना देंगे और न स्नेह-प्यार। जैसा चाहें वैसा घुमा लो, बस यही फितरत है इन्सान की हमारे बारे में। जम कर काम लेंगे और उस पर मार खाओ व गाली सुनो, क्योंकि उनकी निगाह में तो हम गधे हैं, शुद्ध निरे गधे। आखिर हमारी गलती क्या है, हमने क्या ऐसा गुनाह किया है जो यह अत्याचार व शोषण झेलें, क्यों इस नारकीय माहौल को झेलें। सम्पूर्ण गधा समाज को इसके खिलाफ संघर्ष करना होगा। अपने सम्मान व स्वाभिमान की लड़ाई को आगे ले जाना होगा। 'जब तक सूरज-चाँद रहेगा, गर्दभ समाज तेरा नाम रहेगा', इस जोरदार नारे की सामूहिक रेंक के साथ यह जोशीली तकरीर खत्म हुई। गर्दभ दुलत्ती रूपी तालियों से मैदान गूँज उठा, उस युवा क्रान्तिकारी गधे की जय बोलते हुए सबने उसके जोशीले विचारों का पूर्ण समर्थन किया। 'गर्दभ समाज' जिन्दाबाद तथा 'आदमी मुर्दाबाद' के नारों की रेंक से मैदान गूँज उठा। फिर उसके बाद एक-एक पीड़ित गधे ने अपने दुखड़े को रोया, उनके साथ जो-कुछ गुजरी उसे बखाना। अनेक 'सूखे-दुर्बल गधों' ने अपने 'स्वर्णिम दिनों' को याद करते हुए अपनी वर्तमान दशा के लिए आदमी को जिम्मेदार ठहराया। सभा में शोक का गमगीन महौल बन गया था। बुजुर्ग गधों के चेहरे पर जहाँ दुःख व निराशा की रेखाएँ थीं, वहीं तेज-तर्रार व युवा गधों के भावों से आक्रोश व आन्दोलन का लावा फूट रहा था, गर्म खून उबाल खाने को आ पड़ा था। कुछ 'उग्रवादी प्रकृति' के युवा गधों ने 'दुलत्ती झाड़' हिसंक आन्दोलन छेड़ने का प्रस्ताव रखा, परन्तु शान्ति प्रिय बुजुर्ग गधों ने उन्हें अपनी शालीनता व 'सिर-झुकाऊ' परम्परागत छवि की मर्यादाओं का हवाला देते हुए अहिंसा के मार्ग पर चलने की सलाह दी और इसी तरह से विरोध प्रकट करने की आम सहमति बनी। अपने स्थानीय गधा समाज की शक्ति को बढ़ाने और प्रदेश तथा राष्ट्रीय स्तर पर संगठन की मजबूती के लिए कार्य करने का विचार रखा गया। युवा-किशोर गधों

ने जोश में भरकर 'गर्दभ समाज की जय' का नारा एक बार फिर से रेंक दिया था। इस बीच सभा में उपस्थित सभी गधों को ताजी-ताजी, नरम-नरम व हरी-हरी घास स्वल्पाहार स्वरूप चरने को प्रस्तुत की गई। जलपान व्यवस्था को देखकर कुछ उदास-मुखी गधों के चेहरे पर चमक व तरावट आ गई थी। गमगीन व शोकग्रस्त चेहरे फक्क से चमचमा उठे थे। सभी गधे तेजी से ध्यानमग्न होकर हरी-हरी घास के जलपान को उदरस्थ करने में लग पड़े थे। शायद उन्हें आदमी की उनके चारे पर भी हाथ साफ कर लेने की 'नई आदत' का पता लग चुका था, सो कोई मौका छोड़ना नहीं चाहते थे। जलपान से तृप्त होकर सभी ने एक लम्बी डकार ली और गर्दभ सम्मेलन पुनः दूसरे दौर में शुरू हो चुका था। नरम-गरम व आक्रोश से लबरेज अनेक तरह के सुझाव व विरोध-प्रदर्शन के तरीके विचार में आये। सभा में मौजूद एक छोटा-सा, बाल उम्र का गधा भी मौजूद था। सारी गतिविधियों को वह एक खेल-तमाशे की तरह विस्मय से देख रहा था। सभा-अध्यक्ष का यह सुपुत्र हरी-हरी घास के स्वादिष्ट आहार से तृप्त होकर 'टंच' हो चुका था। गमगीन माहौल व मौके से पूरी तरह बेखबर रहते उसने प्रसन्नता से एक ऊँची तान ली। कई 'नेतानुमा' गधों को उसके इस राग से यह आभास हुआ कि गर्दभ समाज व संगठन में एक नयांकुर फूटा है आशाओं का। सब गधों की निगाहों का केन्द्र बन गया था वह बाल-गधा। गर्दभ-समाज के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना मात्र से सबके चेहरों पर प्रसन्नता छा गई थी। उस बाल गधे को 'बाल-वाहिनी' का अध्यक्ष नियुक्त करने, अन्याय व अत्याचारों का विरोध करने के बाद 'अध्यक्षीय भाषण' के साथ ही सभा समाप्त हो गई थी। सब गधे दुलत्ती झाड़ते हुए वापस प्रस्थान करने लगे थे।

और अगले दिन... देखते क्या हैं कि गर्दभ समाज की सभा के अध्यक्ष महोदय पीठ पर बड़ा व भारी कपड़ों का गट्ठर लादे हाँफते-काँपते रपटे चले जा रहे थे और पीछे से मालिक की संटी व गालियाँ उन पर 'डबल अटैक' के रूप में बरस रही थीं। विवश से खड़े गधे गण इस दृश्य को हारी हुई दृष्टि से देख रहे थे, पूरी तरह से गधे बनकर। उनका स्वप्न-महल रेत के ढेर के मानिन्द चरमरा गया था, भरभरा कर ढेर हो गया था और शायद इन्सान नाम के दोपाया जीव से इन चौपायों ने पार पाना अपनी बस से बाहर की बात मान ली थी, और गधे बनकर रहना ही मन ही मन स्वीकार कर लिया था।

❐

— ६२, नारायण नगर, राम सागर मिश्रा नगर, लखनऊ— २२६०१६

कौन दिव्य प्यालों में कुत्सा भर जाता है!

— प्रो० रामकुमार रामार्य

किसके घर से,
किसके घर तक—
दर जाता है?
आँख खुले तो,
स्वप्न यहाँ क्यों—
मर जाता है?
पगलाई—सी घूम रही है
घृणा शहर में।
बहिष्कार है, तिरस्कार है—
दम्भ—नगर में।
बच्चों का भोलापन जिससे—
डर जाता है।
खाली, भरे हुए खोलों में
रात गूँजती।
स्वार्थ—साधना, प्रतिहिंसा,
प्रतिघात गूँथती।
विष—प्रातः में सुमन डाल से
झर जाता है।
मानव—मन में दहक रही,
यह ज्वाला कैसी?
सोऽहम् सोम—सुधा के बदले,
हाला कैसी?
कौन दिव्य—प्यालों में कुत्सा—
भर जाता है?
कुण्ठा से न कभी सर्जन के
गीत सजेंगे।
नव युग के नव—ताल, नवल—
संगीत रचेंगे।
कल—कल ही कृत—युग का कलरव
कर जाता है।

—साहित्य सन्दर्भ, सिविल लाइन्स, नैनपुर—४८१७७६

हमारा लोकतन्त्र : तब से अब तक

- रघोत्तम शुक्ल

समाज में सभ्यता के उदय के साथ ही शासन–प्रणाली को प्रवर्तित करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ, अन्यथा बलवान् निर्बल पर शासन करता रहता था। यह शिष्ट पद्धति नहीं थी, जिसे हम जंगल राज कहते हैं। प्रारम्भ में राजशाही ही प्रचलित हुई। जिसके आधार में शक्ति–सम्पन्नता होती है। विश्व समुदाय शनैः शनैः सभ्य और सुसंस्कृत हुआ और यह मान्यता बनी कि लोकशाही या लोकतन्त्र सर्वाधिक अच्छी शासन पद्धति है। संसार में आज भी लोकतन्त्र के अलावा साम्यवाद और राजाओं तथा सम्राटों का शासन विद्यमान है; किन्तु उत्तरोत्तर जनतन्त्र प्रणाली के ही सर्वत्र प्रसारित हो जाने के लक्षण स्पष्ट हैं।

भारत संसार का आदि सभ्य देश है। जब मिस्र के पिरामिड अस्तित्व में नहीं थे और आधुनिक तथा यूरोपीय सभ्यता–शिशु के 'पालने' यूनान और इटली बर्बर मानवों का ही पोषण कर रहे थे, तब हमारी वेदवाणी व्योम में गुञ्जार कर चुकी थी। हम सभ्य, सुसंस्कृत और सम्पन्न थे। आरम्भ से ही हमारे राजतन्त्र में जनतन्त्र पिरोया हुआ था। भारतीय चिन्तक और राजनीतिज्ञ लोक आकांक्षाओं का महत्त्व जानते थे। कबीलाई 'सरदार' भी वंशानुगत नहीं होता था, उसका निर्वाचन गुणानुसार होता था।

भारतीय लोकतन्त्र की जड़ें, मानव सभ्यता के आदि ग्रन्थ 'वेदों' में विद्यमान हैं। ऋग्वेद के सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि उस समय ग्राम का प्रधान 'ग्रामणी' होता था। कई ग्रामों का समूह 'विशः' और उसका स्वामी 'विशपति' कहलाता था। सम्पूर्ण राज्य ही 'राष्ट्र' था, जिसके लिए 'गण' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। इससे संघीय शासन–प्रणाली की पुष्टि होती है। राजा धर्मपूर्वक प्रजा–पालन की शपथ लेता था। 'सभा' और 'समिति'। प्रजापति की दो पुत्रियाँ मानी गयी हैं। इसमें वयोवृद्ध और सम्मानित व्यक्ति होते थे। ऋग्वेद के उल्लेखानुसार राज्य की समृद्धि हेतु राजा व समिति का एकमत होना आवश्यक था। अथर्ववेद के अनुसार राजा का निर्वाचन प्रजा और पञ्च अर्थात् 'समिति' करती थी :–

**"त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रा विभजा वसूनि।।"**

(अथर्व/तृतीय काण्ड/चतुर्थ सूक्त/मंत्र– २)

(अर्थात् राजा को सब प्रजाएँ और यह सब पञ्च चुनें। राज्य के ऐश्वर्ययुक्त शिखर पर राजा आश्रय ले। फिर वह 'तेजस्वी' प्रजा हेतु ऐश्वर्य, विद्या सुवर्णादि उपलब्ध कराता रहे।)

यही नहीं, राजा मनाता था कि समिति और सभा उस पर कृपालु रहें। राजा स्वच्छन्द नहीं था। इन सदनों से उसके हाथ बँधे थे। वह जन–समर्थन और लोकाशीर्वाद का मुखापेक्षी था। अथर्व १७/१३/१ में यह स्पष्ट किया गया है :–

"सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारुवदानि पितरः संगतेषु।"

(अर्थात् प्रजापति की दो पुत्रियों सभा और समिति की एकता मुझे प्राप्त हो। वे मुझे तृप्त करें, जिससे मैं मिलूँ, मेरा समर्थन करे। सम्मेलनों में मैं सही बोल सकूँ।)

हमारा आर्ष वाङ्मय, जिसमें हमारी संस्कृति समाहित है, प्रतिपादित करता है कि विराट् कल्याणकर अर्थात् 'शिव' का जब 'शक्ति' से संयोग होता है, तो पहले कार्तिकेय उत्पन्न होता है। वह तारकासुर अर्थात् आसुरी, असभ्य दुष्ट जनों से समष्टि को मुक्त कराता है। इस प्रकार समाज में सभ्यता का प्रसार होता है; फिर शासन सञ्चालनार्थ आविर्भूत होता है 'गणपति' या 'गणेश' जो गण अथवा जन की आकांक्षाओं के अनुसार लोक–प्रशासन देने का प्रतीक है। तभी वह समाज में आदि पूज्य है, मंगलमूर्त्ति है। भारतीय लोकतन्त्र का मूल इन सारगर्भित शास्त्र कथाओं में विद्यमान है।

वाल्मीकि रामायण के प्रसंगानुसार राजा दशरथ ने राम को परिवारवाद के आधार पर युवराज नहीं बनाना चाहा था; बल्कि अपने राज्य के विभिन्न नगरों में निवास करनेवाले प्रधान–प्रधान पुरुषों तथा अन्य जनपदों के सामन्तों की सभा बुलायी थी। उन सभी से अपने प्रस्ताव का अनुमोदन करवाया था। राजा ने सभा से 'अनुमति' माँगी थी। लोकशाही के साक्ष्य रूप रामायण का नीचे उद्धृत श्लोक आज भी पूर्ववत् प्रासंगिक हैं :–

**"नाना नगर वास्तव्यान् पृथग्जान पदानपि।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान् पृथिवीपतिः।।"**

(वा. रा./अयोध्याकाण्ड/१/४६)

"यदिदं मेऽनुरुपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्।।"

(अध्याय– २, श्लोक– ५)

जनमत का उस समय कितना आदर था, इसका पता इससे चलता है कि पवित्रता की अग्नि–परीक्षा में उत्तीर्ण हुई प्रियतमा पत्नी सीता का निर्वासन श्रीराम ने लोकापवाद के ही कारण किया था। एक ओर वे सीताजी को अतिशय प्रेम करते थे, दूसरी ओर उन्हें पूर्ण पावन भी स्वीकार करते थे, तथापि लोक चर्चाओं के कारण जनमत के आगे झुकते हुए उन्होंने सीता त्याग का निर्णय लिया। यही नहीं, लोकमत प्रतिकूल होने पर वे अपने प्राण न्यौछावर करने को भी तत्पर थे :–

"अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः।
अपवाद भयात् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।।"

(वाल्मीकि रामाण/उत्तरकाण्ड/४५/१४)

लोकतान्त्रिक मर्यादाओं को इस सीमा तक अक्षुण्ण रखनेवाला हमारा 'राम' था, जिसका नाम आज मोक्षकारक मन्त्र तथा राज्य मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होने वाला अब तक का आदर्श राज्य माना गया है।

पञ्चम वेद की श्रेणी में रखा जाने वाला "महाभारत" जनतान्त्रिक प्रणाली का प्रतिपादन करता है। "शान्तिपर्व" में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को राजधर्म के उपदेश दिये गये हैं। राजा के चयन में प्रजाजन का हाथ होता था तथा प्रजारञ्जन राजा का मूल कर्त्तव्य। शान्ति पर्व के ६७वें अध्याय में कहा गया है कि 'युधिष्ठिर! राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि वह किसी योग्य राजा का अभिषेक करे। भीष्म आगे कहते हैं कि– 'श्रुति कहती है, प्रजा, जो राजा का वरण करती है, वह मानो इन्द्र का ही वरण करती हैं'। 'इन्द्रमेव प्रवृणुते यद्राजानमिति श्रुतिः' (श्लोक –४) इसी पर्व के अध्याय– ५७ श्लोक– ११ में उल्लिखित है कि 'इस लोक में प्रजावर्ग को प्रसन्न रखना ही राजाओं का सनातन धर्म है। सत्य की रक्षा और व्यवहार की सरलता राजोचित कर्त्तव्य है। यथा–

लोक रञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम्।।

प्राचीन धर्मग्रन्थों में आये संदर्भों से तो हमारे लोकतन्त्र के पुरातन होने के प्रमाण मिलते ही हैं, साथ ही ऐसे ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध हैं, जो हमारे जनतन्त्र की दीर्घ वय को उजागर करते हैं। 'पाञ्चाल', 'मालव' और 'यौधेय' गणराज्यों का उल्लेख इतिहास के पृष्ठों पर है। महावीर स्वामी और बुद्ध बहुत प्रबल गणतन्त्र समर्थक थे। बिहार में 'बज्जिसंघ' था जिसमें ८ गणराज्य थे। संघ की राजधानी वैशाली थी। 'कुण्डग्राम' और 'लिच्छवि' इनमें विशेष वर्णित हैं। महावीर के ही प्रभाव का 'मल्लि' गणराज्य भी था। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित 'संघ' शब्द उनकी गणतन्त्रात्मक–प्रणाली के प्रति प्रेम का परिचायक था। उनकी धर्म–पद्धति भी लोकतन्त्र पर आधारित है। संघ की सभा का एक आसन प्रज्ञापक (अध्यक्ष या स्पीकर) होता था। बैठक का कोरम (गणपूर) पूरा होना चाहिए था, इसकी सदस्य संख्या २० होती थी। प्रस्ताव तीन बार पढ़ा जाता था। वाद–विवाद और मत–विभाजन होता था। मतदान गुप्त और प्रत्यक्ष होता था। गणराज्य–पद्धति में विश्वास रखनेवाली कुछ जातियाँ भी इतिहास में संदर्भित हैं। ये हैं 'भाग' 'मोरिय' तथा रामग्राम की 'कोलिय' जाति। गणराज्य प्रायः हिमालय की तलहटी में स्थित थे।

हमने अपने संविधान द्वारा संघात्मक तथा एकात्मक प्रणाली का मिश्रण अपनाया। हमारा लोकतन्त्र संसदीय है। यहाँ शक्ति केन्द्र मन्त्रि परिषद है, जिका शीर्ष–बिन्दु प्रधानमन्त्री होता है। संविधान के ४२वें संशोधन द्वारा ऐसा प्रावधानित किया गया कि राष्ट्रपति के लिए मन्त्रिमण्डल का परामर्श बाध्यकारी है। अनुच्छेद ७४ (१) में यह संशोधन इन्दिरा गान्धी के प्रधानमंत्रित्व काल में १९७६ में किया गया। सन् १९७८ में मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाले मंत्रिमण्डल ने ४४वें संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि वह मन्त्रिपरिषद् के परामर्श को पुनर्विचार हेतु वापस कर सकता है, किन्तु पुनर्विचारोपरान्त भेजे गये परामर्शानुसार कार्य करने हेतु वह आबद्ध है। तात्पर्य यह है कि वास्तविक कार्यपालक राष्ट्रपति नहीं है, प्रधानमन्त्री है।

देश में लोकतन्त्र का वृक्ष शिशु से किशोर और फिर युवक हुआ। परिपक्व होता गया। एक के बाद एक लोक सभाएँ चुनी जाती रहीं। दूसरी ओर कांग्रेसी शासनकाल में भ्रष्टाचार बढ़ता गया। नैतिक मूल्यों का क्षरण हुआ। नदियों पर पुल और बाँध बने; किन्तु चरित्र के बाँध टूटे। इन्दिरा गांधी और राजीव गान्धी की हत्याएँ हुईं। कानून–व्यवस्था खराब हुई। लोकतन्त्र के आवरण में परिवारवाद पनपा। प्रान्त के मुख्यमन्त्री प्रायः नामित किये जाने लगे, उन्हीं नामों का अनुमोदन राज्य विधायक दल करने लगा। कांग्रेस में आन्तरिक लोकतन्त्र समाप्त हो गया। किसी तरह परिवार का उत्तराधिकार क्रम टूटा, तो निस्तेज; किन्तु तिकड़मी नरसिंहराव प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर बैठे। रिश्वत के आधार पर अपने अल्पमत को बहुमत में बदलकर पाँच साल सरकार चलाई। 'यूरिया' सहित कई घोटाले हुए। फिर चला बाकायदा खण्डित जनादेशों का दौर। जातिवाद, भ्रष्टाचार, क्षेत्रीयता तथा अपराधीकरण राजनीति में दूध–मिश्री की भाँति घुल गये। खामियाजा

कहाँ जा रहा है यह भारत देश ?

– डॉ० गिरिजा नन्दन त्रिगुणायत 'आकुल'

स्वार्थ द्वेष ज्वाला में जल–जल।
छद्म और तिकड़म में पल–पल।
क्षण–क्षण उत्तर माँग रहा है यह आहत परिवेश।
किधर चला था, कहाँ जा रहा है यह भारत देश ?

वह थे कभी जिन्होंने भारत हित सर्वस्व गँवाया।
भारतमाता के चरणों में हँसकर शीश चढ़ाया।
भारत हो आजाद सोच कर सुख से कभी न सोये।
अन्यायों के चिह्न उबलते उष्ण रक्त से धोये।
क्यों सुख–भोगी आज बन गये जन–गण और जनेश ?

माताएँ थीं प्राणों से प्यारे बेटे दे डाले।
बहनें थीं भाई ही अपने न्यौछावर कर डाले।
थीं पत्नियाँ जिन्होंने निज सिन्दूर राख में बदला।
बेटे थे जो प्राण दे गये, निश्चय अटल न बदला।
हुए त्याग बलिदान–भाव अब क्यों कोरे उपदेश ?

नेता थे जिनके जीवन का लक्ष्य सर्वजन सुख था।
जनता का सुख ही उनका सुख, जनता का दुःख दुःख था
विभव वित्त क्या, अपना मासिक वेतन कभी न माँगा।
क्या बटोरते धन, अपना था वह भी सब कुछ त्यागा।
क्यों ऐसी नेतृत्व–शक्ति से वंचित आज स्वदेश ?

स्वार्थ सलिल में आज कण्ठ तक क्यों हर नेता डूबा ?
देश काटना ही क्यों कर हर नेता का मंसूबा ?
प्रबल प्रपञ्चों के पीछे क्यों हर जन भाग रहा है ?
घोटालों पर घोटालों का अनुक्रम जाग रहा है ?
क्यों स्वदेश से अच्छा लगता सबको आज विदेश ?

धर्म जोड़ने वाला अब क्यों सबको तोड़ रहा है ?
जाति–भेद अब क्यों जनता की बाँह मरोड़ रहा है ?
खींचो जितना खींच सको क्यों सबकी वृत्ति बनी है ?
पाप–पंक में क्यों सबकी काया आद्यन्त सनी है ?
डूब रहा क्यों बलिदानों का पूरा वित्त निवेश ?

अधिकारों की होड़ मची क्यों, क्यों कर्त्तव्य नहीं है ?
क्यों अन्तर्भावों का सूचक जन–वक्तव्य नहीं है ?
क्यों नियमन संयमन आज सब विशृंखल हो बैठे ?
क्यों स्वतन्त्र होकर जन इतने उच्छृंखल हो बैठे ?
क्यों न मानता आज कहीं जन शासन के निर्देश ?

अपराधी सामान्य, जहाँ तक चाहे पग फैलायें।
डाकू, कातिल, चोर लफंगे सब सांसद् बन जायें।
सीधा सज्जन डरे जहाँ, मत देने से घबराये।
जिसके हाथों में लाठी हो भैंस वही ले जाये।
ऐसी भारत–भू की रक्षा करना है देवेश !

– विवेक विहार (हुण्डाल खेल) शाहजहाँपुर (उ०प्र०)

जनता को ही भुगतना पड़ रहा है।

महाभारत कालीन पात्र 'अभिमन्यु' की भाँति कुटिल कौरव–विपक्ष ने सरकार गिरा तो दी; किन्तु विकल्प नहीं दे सके। सत्ता की भूखी राजीव गान्धी की इटालवी पत्नी 'सोनिया माइनो' (अब नकली गान्धी) दौड़ीं तो खूब; पर सरकार बना नहीं सकीं, यद्यपि राष्ट्रपति ने दो बार समय दिया कि जोड़–तोड़ कर लें। अतः विवश राष्ट्रपति ने अगले चुनाव तक अटल सरकार ही चलने दी। चुनाव भी भाजपा तो जून में ही करना चाहती थी किन्तु विपक्ष के प्रबल विरोध के चलते अधिकतम टाला गया; क्योंकि जन सहानुभूति अटल के साथ थी। इस तरह चल रही गिरी हुई सरकार की विपक्ष, ने फिर घेराबन्दी शुरू की। पदे–पदे अड़चनें। यह न करो, वह न करो। किसी सचिव का विभाग परिवर्तित किया गया, तो आलोचना, राष्ट्रपति से शिकायत। प्रधानमन्त्री ने राष्ट्र के नाम संदेश दिया, तो टोका–टोकी। इन तमाम स्थितियों का भरपूर लाभ उठाकर पाकिस्तान ने हम पर आक्रमण कर दिया। कारगिल घटित हुआ; पर सम्पूर्ण विपक्ष इसमें भी राजनीति करता रहा।

सावधान ! हमारा लोकतन्त्र लगातार खतरे में है। वर्तमान संसदीय प्रणाली, जाति और क्षेत्रवाद के विष से सिक्त है। अपराधी लोकसभा में पहुँच रहे हैं। कुकुरमुत्तों की तरह दलों/नेताओं की वृद्धि हो रही है। दल–बदल का बाज़ार लगातार चालू है। ऐसे में विवेकपूर्ण लोक–चेतना ही लोकतन्त्र की सुरक्षा की एकमात्र गारण्टी है। कौन देगा यह गारण्टी ? यही प्रश्न अनुत्तरित है। कब तक अनुत्तरित रहेगा यह प्रश्न ? यह भी एक बहुत बड़ा प्रश्न है।

❑

– 'शाम्भवी' सी– २१ सेक्टर– एम.,
अलीगंज हाउसिंग स्कीम, लखनऊ

अमृतवाणी

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्,
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत् सारभूतं तदुपासनीयम्,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्।।
(पञ्चतन्त्र, कथामुख, ६)

संसार में अनन्त शास्त्र हैं; किन्तु जीवन थोड़ा ही है और वह भी बहुत से विघ्नों से भरा हुआ है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह शास्त्रों में जो कुछ सारभूत है, केवल उसी का अनुशीलन करे, जैसे हंस दूध और जल के मिश्रण में से केवल दूध ही ग्रहण करता है।

विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम्।।
(हितोपदेश, ४/५२)

जो विश्वास करे, उसको ठग लेने में कौन सी चतुराई है? गोद में सिर रखकर सोनेवाले व्यक्ति की हत्या कर देना क्या कोई पौरुष है?

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्,
हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिम्,
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।।
(किरातार्जुनीय, १/५)

जो मन्त्री राजा को सही सलाह नहीं देता, वह दुष्ट मन्त्री होता है तथा जो राजा सही सलाह देनेवाले मन्त्री की बात नहीं सुनता, वह दुष्ट राजा होता है। जहाँ राजा और मन्त्री दोनों एक-दूसरे के अनुकूल होते हैं अर्थात् जहाँ राजा सही सलाह देनेवाले मन्त्री की बात मानता है और मन्त्री राजा को सदैव सही सलाह देता है, उस राज्य में सभी सम्पत्तियाँ निवास करती हैं।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यम्,
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः।।
(नीतिशतक, ५५)

प्राणियों की हिंसा न करना, दूसरों के धन का हरण करने से बचना, सच बोलना, समय पड़ने पर शक्ति के अनुसार दान देना, परायी स्त्रियों की चर्चा के समय चुप रहना, तृष्णा के प्रवाह को रोकना, गुरुजनों के प्रति विनम्र रहना और सभी जीवों पर दया करना- यह सर्वशास्त्र सम्मत कल्याणकारी मार्ग है।

क्रौर्येण कीर्त्तिः व्यसनेन लक्ष्मीः
द्वेषेण विद्या विनतिर्मदेन।
क्षमाति कोपेन धृतिर्भयेन
प्रयाति लोभेन च सर्वमेव।।
(दशावतारचरित, परशुरामावतार, १८)

क्रूरता से कीर्त्ति, बुरी लतों से लक्ष्मी, द्वेष से विद्या, घमण्ड से विनम्रता, अत्यन्त क्रोध से क्षमा, भय से धैर्य और लोभ से सब कुछ नष्ट हो जाता है। ❐

प्रस्तुति- डॉ० अम्बिकानन्द मिश्र

व्यंग्य कविता -

साहित्य में जातिवाद

- निरंजन कुमार 'निराकार'

मनुष्य की तरह-
साहित्य में भी हो गया
कई तरह का वर्ग-भेद।
जनवादी साहित्य।
इल्म का/फिल्म का।
सेक्स/अपराध का साहित्य/
धर्म का/ नक्सलवादी
बालसाहित्य/दलगत राजनीति का/
जातियाँ मनुष्य की/अब
जबकि सिमटकर/हो रही हैं एक/
सहित्य नित्यप्रति
करवटें बदल
धर रहा रूप/अनेक।

— १००, रामगढ़, रतलाम, म० प्र०

दाम्पत्य-चेतना

राष्ट्रभक्त कार्यशील एक आदर्श दम्पति-अभ्यंकर-दम्पति

– डॉ० शकुन्तला दवे

महाराष्ट्र के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रान्तकार्यवाह तथा प्रान्तसंघचालक की जिम्मेदारी अनेक वर्ष तक क्रियाशीलता से निभाने वाले श्री, प्रह्लाद अभ्यंकर गत १६–१०–१६६६ (शनिवार) को पुणे में दिवंगत हुए। वे तथा उनकी पत्नी सुशीला जी दोनों उसी दिन प्रातः औरंगाबाद से निकलकर जनता बैंक के सुवर्ण–महोत्सव के लिए पुणे गये थे, जहाँ उस कार्यक्रम के पश्चात् उनको हृदयाघात हुआ। इस दुःखद समय पर उनके विवाहित जीवन को देखकर मन में विचार आता है कि जो लोग आदर्शों को अपने श्वासों की ऊष्मा से पक्व कर यथार्थ में परिणत कर देते हैं, वे स्वयं भविष्य के आदर्श बन जाते हैं।

सुशीलाजी वर्तमान में राष्ट्र सेविका समिति की अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख हैं। सेविका, गटनायिका से आरम्भ कर अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख के दायित्व के साथ जीवन के अनेक रंगों को अपने हृदय–रक्त से आलोकित करनेवाले इस दम्पति का कुछ परिचय आज नवीन पीढ़ी के लिए उपयुक्त होगा।

सुशीलाजी, श्री, श्रीपाद साठे तथा श्रीमती सरस्वती साठे की सुपुत्री और सुविख्यात संघ प्रचारक तथा भारतीय दृष्टि से भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन करनेवाले श्रीराम साठेजी की बहन हैं।

श्रीराम साठेजी स० १६४२ से संघ प्रचारक हैं। पिता की इच्छा के विरुद्ध संघ प्रचारक होना उस समय के अधिकांश प्रचारकों की नियति थी। स्वेच्छा और प्रसन्नता से शायद ही कोई अपने पुत्र को इस माध्यम से राष्ट्रसेवा करने की अनुमति देता था। धनोपार्जन की वेला में जीवन को 'राष्ट्राय इदं न मम' कहकर स्वाहा करना पिता की दृष्टि में मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। भाई संघ–माध्यम से राष्ट्र–सेवा में जुटा था और उसके परोक्ष में बहन उसकी पिता द्वारा की जानेवाली प्रताड़ना सुना करती थी। बारह–तेरह वर्ष की अपनी आयु में सुशीलाजी जब समिति के संपर्क में आयीं और समिति शाखाओं में जाने लगीं, तो पिता के लिए यह दोहरा आघात था। एक तो मूर्ख था ही, यह दूसरी भी उसी मार्ग पर चल पड़ी है। नित्य भाई के लिए की जानेवाली प्रताड़ना, सुनते हुए भी इस मार्ग पर चलने का मनोगत–संकल्प, गहन निश्चयात्मिका–शक्ति का ही परिचायक है। भाई के कार्यों की अन्तर्मन से सराहना, भारतमाता के प्रति समर्पित जीवन और भाई के प्रति डाँट सुनते–सुनते परिपक्व हुए भावों का ही परिणाम यह निश्चयात्मिकता होगी।

प्रह्लादजी नगर जिला में स्थित अपना देहात नेवरगाँव छोड़कर अठारह वर्ष की आयु में सन् १६३६ में मुम्बई आये, जब संघ के स्वयंसेवक बने। प्रह्लाद जी ने पाँच वर्ष तक प्रचारक रहने का निर्णय किया था। दोनों १६४२ से १६६६ तक अभिन्न मित्र रहे। प्रचारक जीवन के अन्तिम वर्ष प्रह्लादजी को रजाकारों से त्रस्त हैदराबाद को भेजा गया था। वहाँ से १६४७ के जून में वे निवृत्त होकर मुम्बई आ गये।

श्रीमती सुशीला के पिता सेना में डाक्टर थे। सन् १६४२ में सेवा निवृत्त होकर अपने गाँव महाराष्ट्र के एक तहसील स्थान, वाई में अपने परिवार सहित रहने लगे। सुशीलाजी १६४६ में मैट्रिक उत्तीर्ण हो गयीं, और तब से उनके विवाह के प्रयत्न आरम्भ हुए। श्री साठे भी मुम्बई में कुछ प्रयत्न करते रहे। साठे, अभ्यंकर दोनों परिवार अपने–अपने गाँव में रहते थे और प्रह्लादजी, श्रीरामजी मुम्बई में। इन दोनों की एक दूसरे के परिवार जनों से कभी–कभी भेंट होती थी; किन्तु अभिन्न मित्रता के कारण एक दूसरे के परिवार की जानकारी दोनों को थी।

१६४७ के द्वितीयार्द्ध में एक दिन अचानक प्रह्लादजी ने श्रीराम साठे के पास आकर निराडम्बर निश्छल प्रश्न किया, 'क्या तुम्हारी बहन मुझसे विवाह करेगी?' इस अप्रत्याशित प्रश्न से साठे जी अवाक् रह गये। प्रह्लादजी की अत्यन्त आर्थिक सम्पन्नता, स्वयं उनकी और उनके समस्त कुटुम्बीजनों की गौरवर्णता, सुशीला साठे का सामान्य रंग आदि यह कुछ ऐसे बिन्दु थे, जिनको दृष्टि में रखकर यह प्रश्न ही अवास्तविक लगता था। एक प्रचारक का दूसरे प्रचारक से यह प्रश्न पूछना सचमुच ही हैरानी वाली

बात थी। साठेजी ने प्रतिप्रश्न किया, 'जो पूछ रहे हो, वह समझकर पूछ रहे हो ? मेरी बहन का रंग बहुत श्याम है। तुम सभी लोग अत्यन्त गौर वर्ण के हो।' उन्होंने कहा, 'मैं सब जानता हूँ, यदि तुम्हारी बहन को अथवा तुम लोगों को कोई आपत्ति न हो, तो मैं यह विवाह करना चाहता हूँ।' सामान्य परिचय में व्यक्ति के आन्तरिक गुणों की इतनी प्रगाढ़ परख सचमुच सराहनीय गुण हैं। बाह्य–रूप की श्यामलता में उज्ज्वल मन का प्रकाश देख पाने की कैसी अद्भुत दृष्टि रही होगी ? जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय में कोई झिझक नहीं, कोई आलोचना–प्रत्यालोचना नहीं, सीधा सरल प्रस्ताव।

साठेजी ने अपनी बहन से इस विषय में बात की और कहा, 'उतावली करने की अवश्यकता नहीं है। शान्तिपूर्वक दो दिन भली–भाँति विचारकर उत्तर देना।'

सुशीला जी ने इसे जीवन की चुनौती के रूप में लिया। चुनौती इसलिए कि सामान्य आर्थिक स्थिति से सम्पन्न घर में जाना, ६०–७० व्यक्तियों के विशाल सम्मिलित कुटुम्ब के उत्तरदायित्वों को निभाना, एक कर्तृत्ववान् व्यक्ति के कुटुम्ब को सँभालकर उसको राष्ट्रसेवा के लिए अधिकाधिक समय और अवसर देना यह सब एक साथ ही कर पाना सचमुच चुनौती थी। सुशीलाजी में सदैव जागरूक सेविका ने इस चुनौती को स्वीकार करने का निर्णय लिया।

दोनों का विवाह २२ अक्टूबर, १९४७ को वाई में सम्पन्न हुआ। दि. २३–१०–१९४७ को संघ के सरसंघचालक पू.पू. गुरुजी मुम्बई आनेवाले थे। तब वहाँ मुम्बई के स्वयंसेवकों का एक सार्वजनिक कार्यक्रम था। विवाह के तुरन्त पश्चात् श्रीरामजी व प्रह्लादजी दोनों मुम्बई चले गये। पश्चात् सुशीलाजी मुम्बई आयीं। तब नवविवाहित दम्पति पू.पू. गुरुजी का आशीर्वाद लेने पहुँचे। अनेक निवृत्त प्रचारक, विवाह के पश्चात् संघ–कार्य कम करते हैं, इस अनुभव के कारण प. पू. गुरुजी ने कहा कि यह दूसरा प्रसंग है, जहाँ संघ के कार्यकर्त्ता का विवाह समिति की कार्यकर्त्री दम्पति के साथ हो रहा है; किन्तु इस नव–दम्पति ने पहले से ही निर्णय कर लिया था कि इस सर्वसाधारण अनुभव को वे स्वयं अपवाद सिद्ध करेंगे, अहंमन्यता के अहंकार से नहीं, राष्ट्रकार्य के प्रति श्रद्धा के कारण।

इनके विवाह के सवा तीन माह पश्चात् गांधी हत्या का नाम लेकर ४ फरवरी १९४७ को संघ पर प्रतिबंन्ध लगाया गया। १९४८ के दिसम्बर में संघ का सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। इस अन्तराल में प्रह्लाद जी को दो तीन महीने हैदराबाद भेजा गया था। सत्याग्रह में सबसे पहले प्रह्लादजी जेल गये। उस समय सुशीलाजी अपने मायके नहीं लौट गयीं; अपितु मुम्बई में ही रहकर स्वावलम्बी बनने के प्रयास में जुट गयीं। उन्होंने जान लिया था कि गृहस्थी की गाड़ी को अकेल खींचने के लिए उन्हें अपने कन्धों को तैयार करना होगा, तभी उनका संकल्प पूर्ण हो सकेगा। १२ जुलाई १९४९ को संघ पर से प्रतिबन्ध हटा और प्रह्लादजी मुक्त किये गये। दाम्पत्य जीवन का आरम्भ यहीं से माना जाना चाहिए।

मुम्बई के कामाठीपुरा बस्ती में वे दोनों रहने लगे। तब तक उनको एक दूसरे का अधिक परिचय हुआ था। आगे चलकर आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बन आवश्यक मानकर स्वयं डी. एड. परीक्षा दने का अपना विचार सुशीलाजी ने प्रह्लादजी को बताया। इस पर प्रह्लादीजी ने वह परीक्षा देने के बदले राष्ट्रसेविका समिति का ही काम अधिक करने का सुझाव दिया, जो सुशीलाजी ने मानकर अपनी पढ़ाई की बात किनारे करते हुए समिति के काम में लग गयीं।

प्रह्लादजी के बचपन में ही उनकी माताजी का देहावसान हो गया था। अब तक एकत्र रहनेवाला अभ्यंकर परिवार विभक्त होने के कारण १९५६ में प्रह्लादजी सपरिवार अपने ग्राम नेवरगाँव में रहने गये। मुम्बई के नगर–जीवन के अभ्यास पर विजय पाकर सुशीला ने स्वयं को ग्रामीण जीवन के लिए भी ढाल लिया। उनके श्वसुर अण्णाजी गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गाँव के प्रमुख आधारस्तम्भ थे वे। स्वाभाविक ही उनके साथ निभना यह एक कठिन परीक्षा थी; किन्तु प्रह्लादजी का चयन कोई सामान्य चयन थोड़े ही था। सुशीलाजी ने अपनी कर्मठता, सूझबूझ, सहनशीलता तथा कुटुम्ब के प्रति समर्पण–भाव से 'श्वसुरे सम्राज्ञी भव' के वैदिक भावों को अक्षरशः सत्य कर दिखाया।

सुशीलाजी के कर्तव्यपरायणता आदि गुणों से संतुष्ट होकर अण्णाजी उससे अपनी कन्या जैसा व्यवहार करने लगे। वह उनके लिए एक बड़ा आधार बन गयी। एक बार वृद्धावस्था में अण्णाजी अपने बैठक के विशाल कमरे में बेहोश हो गये। उस समय उनके चचेरे भाई तथा कुछ प्रमुख ग्रामवासी वहाँ पर थे। सुशीलाजी थोड़ी दूर भोजनशाला में थीं। उस समय अण्णाजी के एक प्रमुख चचेरे भाई ने सुशीलाजी को बुलाने की सलाह दी। सुशीलाजी आ गयीं। थोड़े ही समय में अण्णाजी को होश आ गया और सुशीलाजी को देखकर उनके चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी।

एक बार श्री प्रह्लादजी का संघ के एक श्रेष्ठ

पदाधिकारी से किसी बात पर मतभेद हो गया। इस मतभेद ने इतना तीव्र रूप धारण कर लिया कि प्रह्लादजी संघ छोड़ने के लिए उद्यत हो गये। बात सुशीलाजी तक पहुँची। एक अच्छे कार्यकर्त्ता का संघ से हट जाना उन्हें कैसे सहन होता? उनके मन की नाराजी दूर कर पाना सरल नहीं था; किन्तु सुशीलाजी की राष्ट्र–समर्पित–बुद्धि ने मार्ग खोल ही लिया। उन्होंने अपने पति से कहा, 'आपका मतभेद अमुक व्यक्ति से है, संघ से तो नहीं ना?' प्रह्लादजी ने हामी भरी! तुरन्त सुशीलाजी ने कहा, 'तो फिर आपका संघ छोड़ने का प्रश्न ही कहाँ उठता है?' इस प्रकार कान्तासम्मत उपदेश से उन्होंने बिगड़ती बात सँवार ली।

बच्चों की पढ़ाई के कारण सुशीलाजी १९६३ में सेवरगाँव से ४० मील दूर औरंगाबाद आकर रहने लगीं। विद्याभ्यास के लिए एक विशिष्ट आयु अपेक्षित है; किन्तु सभी के लिए नहीं, यह बात सुशीलाजी ने चरितार्थ कर दिखायी। १९४७ में छुटा हुआ ज्ञान–सूत्र उन्होंने अपने मन से छूटने नहीं दिया था। इसलिए उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र जयन्त के साथ बी.ए. की परीक्षा दी, बी.एड. किया और कोविद परीक्षा में भारत भर में सर्वप्रथम रहीं। १९७५ से उन्होंने औरंगाबाद के सरस्वती भवन विद्यालय में अध्यापन का कार्य आरम्भ किया। सरस्वती भवन विद्यालय का संचालन समिति की विचारधारा के कट्टर विरोधी नेताओं के हाथ में था। अध्यापक नियुक्ति के समय हुए साक्षात्कार में ही सुशीलाजी ने राष्ट्रसेविका समिति का कार्य जीवनभर करते रहने के स्वयं के निर्णय की जानकारी उन नेताओं को दी थी। फिर भी उनके कर्तृत्व के कारण वहाँ उनकी नियुक्ति हुई थी। विरोधी विचारधारा वाले व्यक्तियों पर अपनी कार्यपद्धति की मुद्रा लगाना अदम्य साहस और आत्मविश्वास का काम है। विद्यालयवालों ने इनके संघटनात्मक गुणों के कारण इन्हें विद्यालय के संघटनात्मक कार्यों का उत्तरदायित्व भी सौंपा।

प्रह्लादजी महाराष्ट्र प्रान्त का संघ का दायित्व सँभाल रहे थे। स्वयंसेवकों तथा अन्यान्य लोगों का उनके घर पर आना–जाना चलता ही रहता था। सुशीलाजी का घर–गृहस्थी की व्यवस्था में बहुधा 'एकल अभिनय' हुआ करता था। अर्थात् घर के भीतरी बाहरी सभी प्रकार के उत्तरदायित्व उन्होंने स्वयं उठा लिये थे और व्यवस्था इतनी सुचारु और सुकर थी कि प्रह्लादजी को कभी किसी अव्यवस्था का सामना नहीं करना पड़ा। लगभग सब उत्तरदायित्व से मुक्त रहने के कारण चिन्तारहित देशसेवा करने का सौभाग्य उन्हें मिला, यह बात प्रह्लाद

> ## समस्या की जड़
>
> **आज की समस्या एक ही है– भ्रष्ट–चिन्तन और दुष्ट आचरण। इन्हीं दोनों ने अगणित प्रकार के अनर्थ सृजे और संकट खड़े किये हैं। मन:स्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदात्री होती है। चिन्तन ही चरित्र को निर्मित करता है और व्यवहार में उतरता है। यदि चिन्तन को बदला जा सके, तो भूतकाल की तरह अब भी कई कुपथगामी अपनी गतिविधियों को बदल कर सन्मार्गगामी बन सकते हैं और मकड़ी के जालें की तरह फैली हुई अनगढ़ समस्याओं को समेटने में समर्थ हो सकते हैं।**
>
> **– आचार्य श्रीराम शर्मा**

जी के सहयोगी, इष्ट–मित्र भी अनुभव करते थे। आपात्काल में जब बहुत से संघ कार्यकर्त्ता जेल में थे, तब उन लोगों को घर की चिन्ता सताती रहती थी, जब कि प्रह्लादजी घर से निश्चिन्त देश के प्रति चिन्तित रहते थे; तब उनके मित्र कहा करते थे, 'भाभी जैसी गृहिणी मिलने से तुम इस प्रकार एकाग्रता से देशकार्य कर पाते हो। ऐसी गृहिणी हमको भी मिली होती, तो हमारी भी राष्ट्रसेवा कुछ श्रेष्ठ रूप में हो पाती।'

सुशीलाजी ने घरगृहस्थी का काम, उसकी व्यवस्था सँभालते हुए भी सामाजिक कार्य से मुख नहीं मोड़ा था। गृहस्थी व नौकरी करते हुए समिति का कार्य पूरे मनोयोग से वे करती रहीं। अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख के दायित्वपूर्ण पदभार को भी वे उतनी ही क्षमता से निभाती रही हैं। समिति के सिद्धान्तों का आचरण कर ऊष्मा का स्रोत बहाया है। सुशीलाजी उत्तम वक्ता ही नहीं, एक सुलझी हुई लेखिका भी हैं। वे विषय का प्रतिपादन बहुत सरल ढंग से करती हैं। ज्ञान की गहनता, भावों की सुबोधता, भाषा की सरलता की त्रिवेणी इनके भाषण एवं लेखन में समानता से विलसती है। इनकी 'मातृशक्ति', 'वंदेमातरम्', 'वारस आम्ही विजयाचें', 'भारत की प्राचीनता एवं श्रेष्ठता' आदि पुस्तकें सर्वत्र सराही गयी हैं।

एक बार की घटना है। इन्दिरा गान्धी ने देश में आपात्काल की घोषणा की तथा संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सभी ओर से संघ पदाधिकारी तथा सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को पकड़–पकड़ कर जेल भेजा जाने लगा था। प्रह्लादजी छिपते रहे। किन्तु एक दिन जब वे सबसे छिपते हुए घर आये, तो उनकी ताक में बैठा सी.आई.डी. का एक व्यक्ति, जो उन्हें पहचानता था,

उन्हें गिरफ्तार करने उनके घर आया। प्रह्लादजी पर उसकी श्रद्धा थी, संघ के व्यक्ति के रूप में उनकी बातों पर अटूट विश्वास था। प्रह्लादजी ने उससे कहा, 'तुम चलो, मैं आता हूँ।' संघ का यह व्यक्ति झूठ नहीं बोलेगा, इस विश्वास के साथ वह अपने अधिकारी के पास चला गया। इधर प्रह्लादजी का मन बदल गया। उन्होंने अवसर का लाभ उठाकर भाग जाने का मन बना लिया। जेल में जाने से संघ के कार्य की हानि होगी, ऐसा विचार उनके मन में आया। महान् से महान् व्यक्ति के मन में भी कभी राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर ही क्यों न हो, कोई दुर्बलता आ जाती है। जब वे भागने की तैयारी कर रहे थे, तो सुशीलाजी ने उन्हें ऐसा करने से रोका। उन्होंने कहा, 'आप के जेल जाने से संघ के कार्य की हानि हो सकती है; किन्तु आप के भाग जाने से संघ की प्रतिष्ठा की हानि होगी, जिसकी पूर्त्ति नहीं की जा सकती। आपके जिस वचन पर विश्वास कर उसने अपनी नौकरी का जोखिम लिया है, उसके हृदय से आपके वचन पर का विश्वास उठ जायेगा, यह क्या कुछ छोटी हानि है? उस बेचारे की नौकरी चली जायेगी।' परिस्थिति का कैसा सटीक विश्लेषणात्मक विवेचन तथा कैसा दयामय भाव है। जेल की यातनाओं का परिचय होने पर भी पति को जेल जाने की प्रेरणा दे पाना एक सच्ची सेविका की ही सामर्थ्य है 'सुमार्ग प्रति प्रेरयंतीमिह'। प्रह्लादजी को अनर्थ से बचने का परम सन्तोष हुआ। जब वे थाने पहुँचे, तब उस व्यक्ति का अधिकारी उसको डाँट ही रहा था कि ऐसे कैसे वह अभ्यंकरजी की बातों पर विश्वास कर उन्हें छोड़ आया है। अभ्यंकरजी को स्वयं आया देखकर उस व्यक्ति के मुख पर अपने विश्वास के सत्य होने का अनुपम प्रकाश फैला देखकर अभ्यंकरजी गद्गद् हो उठे। संघ की कल्याण कामना से वे संघ का कितना बड़ा अकल्याण करने जा रहे थे, इस अपराध से बाल-बाल बच गये थे।

प्रह्लादजी ने अस्वस्थता के कारण ५-६ वर्ष पूर्व प्रान्तसंघचालक का पद छोड़ दिया। अस्वस्थता के ही कारण नेवरगाँव छोड़कर वे अपने भाई और सुशीलाजी के साथ औरंगाबाद अपने पुत्रों के पास रहने आये। इधर सुशीलाजी का उत्तरदायित्व कुछ और बढ़ गया। वे अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख हो गयीं। प्रवास अधिक हो गया; किन्तु प्रह्लादजी ने अपनी अस्वस्थता के कारण कभी भी उनको समिति के कार्यों से विरमित नहीं होने दिया। वे सदैव उन्हें समिति कार्यार्थ पर्यटन आदि पर जाने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे।

दाम्पत्य-जीवन में मतभेद न आये, ऐसा तो 'न भूतो न भविष्यति'। इस अभ्यंकर-दम्पति के जीवन में भी ऐसे अनेक अवसर आये, जब मतभेदों ने अपने को वामन से त्रिविक्रम बना कर प्रस्तुत किया; किन्तु इस दम्पति की यह विशेषता रही कि किसी भी परिस्थिति में, मतभेदों के कितने ही विकराल रूपों में भी उन्होंने बाह्य या अभ्यन्तर, किसी भी तीसरे व्यक्ति को बीच में आने की स्थिति उत्पन्न नहीं होने दी। मतभेदों की समस्याओं की कितनी भी ऊँची लहरें उठतीं, कुछ देर परिस्थिति से वे उद्विग्न हो उठते, किन्तु सहज गम्भीरता व परस्पर के विश्वास के आधार पर दोनों तट नदी की उत्तुंग तरंगों को पुनः अपने में समेट कर शान्त हो जाते।

मतभेद का मुख्य विषय होता था किसी की सहायता करना। प्रह्लाद जी को किसी की सहायता करनी होती तो वे छप्पर फाड़ कर उस पर सहायता बरसा देते। सुशीलाजी इसके विरुद्ध हैं। उनकी सहायता-पद्धति व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाने से आरम्भ होती है- स्वावलम्बी बना कर पूरी होती। **सहायता औषधि की भाँति हो, जो भीतर जाकर रोगों से लड़कर स्वस्थ होने की शक्ति प्रदान करे। बैसाखी बनकर व्यक्ति को निज दृष्टि में दीन न बनाये। यह सुशीलाजी की नारी सहज प्रकृति के कारण हो सकता है। नारी, प्रकृति के अधिक निकट है। प्रकृति जैसे पोषण करती है; पर पचाना स्वयं को पड़ता है। सूर्य प्रकाश और ऊष्मा देता है; माटी ऊर्जा देती है, जल सींचता है, वायु उसको गति देता है, आकाश आयाम देता है; इन सब की शक्तियों को पाकर भी बीज को आत्मशक्ति से ही अंकुरित होना पड़ता है, तभी वह बढ़ सकता है आत्मसम्मान के साथ।** जीवन के अन्त तक इस दम्पति की इस विषय पर चर्चा होती रही।

अति प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने भारतीय संस्कृति की चिरन्तनता के मौलिक सिद्धान्तों का चिंतन कर सुदीर्घ एवं सुखशान्तिमय समाज-व्यवस्था निर्माण की। उसके केन्द्र रूप में जिस कुटुम्ब-व्यवस्था की अवधारणा की थी, उसके सशक्त प्राणों के रूप में भारतीयों का दाम्पत्य-जीवन रहा है। प्रह्लादजी-सुशीलाजी का दाम्पत्य जीवन उसी भारतीय आदर्श पर अवलम्बित अन्योन्य परख, अन्योन्य विश्वास, अन्योन्यय सहकारिता, अन्योन्य सहधर्मचारिता तथा अन्योंन्य पूरकत्व पर आधारित था, जो आज के युग में इन गुणों के अभाव में बिखरते हुए दाम्पत्य-सूत्रों को अपने आचरित आदर्श के द्वारा जोड़े रखने की सामर्थ्य रखता है।

हर्ष के प्रारम्भिक जीवन में पैतृक संस्कारों की भूमिका

- डॉ० शैलेन्द्रनाथ कपूर

प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

(अपने परम्परागत संस्कारों के प्रति गत ५० वर्षों में लोक-चेतना प्रायः क्षीण होती चली गयी है। पैतृक ...कारों की यह क्षीणता क्या चिन्ताजनक नहीं? सम्राट् हर्षवर्द्धन के चरित्र को इसी प्ररिप्रेक्ष्य में दिखाने का ...त लेख में प्रयत्न है। - सम्पादक)

यह सौभाग्य का विषय है कि पुष्यभूति वंश के यशस्वी राजा हर्ष के राज्यकाल के विषय में ...भट्ट नामक संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान् ने, जो ...की सभा का रत्न था, अपनी लेखनी चलायी है। हर्ष ...ति उसकी अनुरक्ति थी। हर्ष के पूर्वजों के प्रति उसके ...य में आस्था का भाव था। उसके वर्णन में मात्र ...ुकारिता नहीं दिखायी देती। वह दूरदर्शी था। उसने ...ति, समाज एवं राजनीति को अत्यन्त निकट से देखा ...। सटीक उपमाओं द्वारा अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता ...। बाण के वर्णन से हर्ष के पैतृक संस्कारों पर बहुमूल्य ...श पड़ता है।

'हर्षचरित' के अतिरिक्त हर्ष के मधुबन (जनपद ...जमगढ़, उ०प्र०), बाँसखेड़ा (जनपद शाहजहाँपुर, उ०प्र०) ...था सोनपत (हरियाणा-जनपद सोनीपत-हरियाणा) से ...प्त ताम्रपत्र लेखों तथा नालन्दा (बिहार में गया के ...कट) से प्राप्त मृण्मुद्रा लेख के अनुसार 'परमभट्टारक ...हाराजाधिराज श्री हर्ष', पिता प्रभाकरवर्द्धन एवं माँ यशोमती ...सुयोग्य पुत्र थे। ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष की द्वादशी ...कृत्तिका नक्षत्र में रात्रि के प्रारम्भ में हर्ष का जन्म ...। सी.वी. वैद्य तथा कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार हर्ष ...जन्म चार जून, सन् पाँच सौ नब्बे ई० को हुआ था। ...ण के अनुसार हर्ष के जन्मोत्सव पर विविध मंगलाचार ...ए थे। ब्राह्मणों ने वेदोच्चार किया। पुरोहित शान्तिजल ...कर उपस्थित हुए। वृद्ध सम्बन्धी एकत्रित हुए। कारागार ...बन्दी मुक्त किये गये। यहाँ हर्ष के संस्कारों की झलक ...मिलती है, जिसके अनुसार जन्म के समय से ही उसे ...ह्मणों, कुलवृद्धों का आशीर्वाद, यहाँ तक की कृपा पाकर ...से किये गये बन्दी जनों की शुभकामनाएँ प्राप्त हुई होंगी। इसी सन्दर्भ में बाण का यह उल्लेख विचारणीय है कि प्रसन्न हुए लोगों ने बनियों की दुकानें लूट लीं। वस्तुतः प्रसन्नता के वातावरण में भीड़ की मनोवृत्ति का यह एक सहज अंग है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की धारणा है कि सम्भव है, राज्य की ओर से बनियों की हानि को पूरा किया गया हो।

बाण के 'हर्षचरित' से हर्ष के संस्कारगत गुणों का परिचय उस समय विशेष रूप से होता है, जब पिता प्रभाकरवर्द्धन मृत्युशय्या पर थे और हर्ष उनके पास खड़े थे। पिता ने पुत्र से कहा था-

'वत्स! तुम पितृ-प्रिय और मृदु हृदय के हो।... मेरे सुख, राज्य, वंश, प्राण परलोक सब तुम्ही में स्थित हैं। जिस तरह तुम मेरे हो, उसी तरह तुम समस्त प्रजा के हो। तुम अनेक जन्मों में किये गये पुण्यों का फल हो। तुम्हारे लक्षण बतलाते है कि चारों समुद्रों का आधिपत्य तुम्हारे करतल पर होगा। मैं तुम्हारे जन्म से ही कृत-कृत्य हूँ।'

वस्तुतः हर्ष जैसे सुयोग्य पुत्र ने अपने माता-पिता के सद्गुणों से प्रेरणा एवं शिक्षा लेकर उनका विकास किया होगा। बचपन में बालक अपने पारिवारिक वातावरण से जाने-अनजाने में ऐसे अनेक तत्त्व ग्रहण कर लेते हैं, जिनका प्रभाव उनके समग्र जीवन में प्रतिबिम्बित होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में गुप्त-वंशीय राजा समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ-लेख में उल्लिखित हरिषेण का वर्णन तुलनीय है, जिसमें पिता चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्रेमाश्रुओं से विकल होकर अपनी सुयोग्य सन्तान समुद्रगुप्त को भरी राजसभा में गले लगाकर कहा था कि तुम हर दृष्टि से योग्य हो, इस पृथिवी का पालन करो। मैं तुम्हें अपना उत्तराधिकारी

घोषित करता हूँ।

बाल्यावस्था में हर्ष को अपने बड़े भाई राज्यवर्द्धन तथा छोटी बहिन राज्यश्री के साथ खेलने का अवसर मिला था। 'हर्षचरित' के अनुसार हर्ष के ममेरे भाई भण्डि को भी दोनों राजकुमारों के साथ रहने हेतु नियुक्त किया गया था। सम्भवतः यशोमती का भतीजा भण्डि भी सत्संस्कारों से संयुक्त एवं विश्वासपात्र रहा होगा। बाल्यावस्था की मित्रता का भावी जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। यही कारण है कि पिता प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु एवं भाई राज्यवर्द्धन की हत्या के बाद हर्ष को सत्परामर्श देनेवाला भण्डि उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ।

हर्ष ने बचपन से ही अपनी हस्तिशाला एवं अश्वशाला की उपयोगिता देखी थी। बाण ने हर्ष के सर्वप्रिय हाथी 'दर्पशात' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यहाँ तक कि प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु पर दर्पशात की आँखों से अविरल अश्रु प्रवाहित हुए थे। 'हर्षचरित' के अनुसार हर्ष की सेना में हाथियों की संख्या अनेक 'अयुत' थी (अनेकनागायुत बलम्)। एक अयुत दस हजार के बराबर होता है। ह्वेन्सांग के वर्णन के अनुसार हर्ष की सेना में साठ हजार हाथी थे। सम्भवतः गुप्त-साम्राज्य के बिखरने के बाद पूरे देश में छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व बढ़ा, जिन्होंने अपनी सुरक्षा हेतु दुर्गों का निर्माण कराया होगा। इन दुर्गों को तोड़ने में हाथी अधिक सक्षम रहे होंगे। बाण ने हाथियों को फौलादी दीवार की संज्ञा दी है, जो शत्रु की बाण-वर्षा को झेल सकती थी (कृतानेकबाणविवरसहस्र लोहप्राकारम्)। हाथियों को युद्ध विद्या की समुचित शिक्षा दी जाती थी। हर्ष ने अपने पिता के समय से ही नये पकड़कर लाये हुए, अथवा भेंट में प्राप्त, अथवा कर रूप में प्राप्त, अथवा बलपूर्वक छीने हुए हाथियों को अपनी सेना में स्थान प्राप्त करते देखा था, जिसका प्रभाव कालान्तर में भी विद्यमान रहा होगा। वातापी के चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय के विरुद्ध हुए संघर्ष में हर्ष की सेना में विशाल संख्या में श्रेष्ठ हाथी थे। 'ऐहोल लेख' के लेखक रविकीर्त्ति ने लिखा है कि हर्ष इस युद्ध में मारे गये अपने हाथियों को देखकर हर्षरहित हो गया था।

हर्ष की अश्वसेना का अत्यन्त सुन्दर वर्णन बाण के हर्षचरित में मिलता है। बाँसखेड़ा ताम्रपत्र लेख में 'हस्त्यश्वविजयस्कन्धावार' पद आया है। विविध रंगों के उत्तम कोटि के अश्व भारत के अनेक अंचलों तथा विदेशों से मँगवाये जाते थे। लगभग चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में हर्ष अपनी प्रिय अश्व सेना के साथ हिमालय की तराई में आखेट हेतु गया था। एक श्रेष्ठ राजकुमार में जिन गुणों का समावेश होना चाहिए, हर्ष उनसे संयुक्त रहा होगा।

आहार-चेतना

शाकाहार क्यों?

– मोहन भटनागर

अखबारों, पत्रिकाओं में आजकल एक बहस बहुत देखने को मिल रही है। क्या बेहतर है– शाकाहार या मांसाहार? इस बहस का मुख्य कारण है– पश्चिमी देशों द्वारा नई-नई खोजों से यह साबित करना कि अण्डे, मांस से भयंकर बीमारियाँ जैसे कैंसर, एड्स, लकवा, हृदय रोग, पथरी आदि हो रही हैं। उनके अनुसार लाश में (अण्डा मृत भ्रूण है, तो माँस मरा हुआ जानवर) विषाणु, कीटाणु इतनी तेजी से पैदा होते व बढ़ते हैं कि उबालने या पकाने से भी वे पूर्णतया खत्म नहीं होते और उल्टा हमारे पाचन-तन्त्र तथा रोग-अवरोधी क्षमता को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। जार्ज बर्नार्ड शॉ की वह उक्ति प्रसिद्ध ही है कि मेरा पेट कोई कब्रिस्तान नहीं है कि मैं लाशों को खाऊँ! भारत में तो जो लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, वे तो वैसे ही बकरा, मुर्गा नहीं काटते कि अगले जन्म में वह कसाई बनकर बदला लेगा।

समय की चाल तो देखिये। वह शाकाहार, जो कल तक घास-फूस, दकियानूसीपन, रूढ़िवादिता कहा जाता था, आज सम्मान की वस्तु हो गया है। कोई शाकाहार वर्ष मना रहा है, तो कहीं शाकाहार परिषद् गठित हो रही है। ब्रिटेन, अमेरिका आदि के होटलों में, जो अण्डा-मांस न परोसने का वचन देते हैं, उन्हें सेल्स-टैक्स, अन्य करों में छूट दी जा रही है। पूर्ण शाकाहारी बनना व "हरे रामा, हरे कृष्णा" करना इनके युवाओं का आज आधुनिक फैशन है। भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध का देश भारत तो वैसे भी परम्परा से ही शाकाहारी है। अतः उसे शाकाहार-प्रचार में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। □

– "श्री हरि-धाम", १३६५, सेक्टर-१२, श्री रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-११००२२

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार विदेशी हूण जाति ...र एवं आक्रामक थी। मध्य एशिया में हूणों ने अपनी ...ता से अनगिनत लोगों की हत्या की थी। हूणों के ...मण को निष्फल करना किसी भी भारतीय राजा के ... गौरव की बात थी। स्कन्दगुप्त का नाम भारतीय ...हास में इसी कारण स्वर्णाक्षरों में अंकित है; क्योंकि ...ने हूणों के आक्रमण को निष्फल किया था। गाजीपुर ...े की सैदपुर तहसील के भितरी नामक स्थान से प्राप्त ... से इसकी पुष्टि होती है। राजा प्रभाकरवर्द्धन को ...रित में 'हूण हरिण केसरी' की संज्ञा दी गयी है। ...जित होने के बाद भी हूण उत्तरापथ में अपना राज्य ...ये हुए थे। प्रभाकरवर्द्धन की शारीरिक शक्ति शिथिल ... तथा राजकुमारों के छोटे होने का लाभ उठाकर हूणों ...तः थानेश्वर पर अधिकार करने का प्रयास किया होगा ...वा भावी आशंका को देखते हुए प्रभाकरवर्द्धन ने अपने ... पुत्र राज्यवर्द्धन को बड़ी सेना, अनुभवी मन्त्रियों एवं ...मिभक्त सामन्तों के साथ भेजा था। हर्ष भी भाई के ... गया था; किन्तु पहले ही हिमालय की तराई में रुक ... था। राष्ट्रभक्ति की भावना उसे अपने पिता से संस्कार ...रूप में प्राप्त हुई थी।

हर्ष के आरम्भिक जीवन में पैतृक संस्कारों की ...का को 'हर्षचरित' में वर्णित अंशों के आधार पर दो ...त्वपूर्ण समयों पर विशेष रूप से देखा जा सकता है–

पिता प्रभाकरवर्द्धन के मृत्यु–शय्या पर पड़े होने एवं माँ यशोमती के सती होने से पूर्व।

भाई राज्यवर्द्धन के राजसिंहासन अस्वीकार करने पर।

हर्ष को अपने श्रद्धेय पिता की अतिशय रुग्णावस्था ...की सूचना स्वामिभक्त कुरंगक से प्राप्त हुई थी। उस समय ...ह हिमालय की उपत्यका में आखेट में व्यस्त था। बिना ...लम्ब किये वह घोड़े पर सवार होकर घर लौटा। मार्ग ... उसने भोजन नहीं किया; वरन् रात में भी बराबर चलता ...। यह हृदय से पिता के प्रति उसकी श्रद्धामयी भावना ...का प्रतीक है। यहीं सर्वधर्मसमन्वय का एक सुन्दर दृश्य ...र्षचरित में वर्णित है। राजा प्रभाकरवर्द्धन की स्वास्थ्य ...कामना हेतु दान–दक्षिणा दी जा रही थी; कुल देवताओं ...का पूजन हो रहा था... षडाहुति होम हो रहा था। महामायूरी ...का पाठ चल रहा था। महामयूरी बौद्धों की विद्या थी। ...ग्रह-शान्ति का विधान चल रहा था और भूतों से रक्षा के ...लिए बलि दी जा रही थी। संयमी ब्राह्मण संहिता–मन्त्रों ...का जप करने में लगे थे। शिव के मन्दिर में रुद्र–एकादशी (यजुर्वेद के रुद्र सम्बन्धी ग्यारह अनुवाक्) का जप बैठा हुआ था। अत्यन्त पवित्र शैव भक्त विरूपाक्ष (शिव) को एक सहस्र दूध के कलशों से स्नान कराने में लगे थे। प्रस्तुत अंश से स्पष्ट है कि हर्ष को सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ था।

जीवन के अन्तिम क्षणों में पिता का हृदय पुत्र के प्रति कितना निर्मल एवं स्नेहसिक्त था; इसकी एक झलक निम्न अंशों से प्राप्त होती है– रोग की अधिकता के कारण प्रभाकरवर्द्धन बड़ी कठिनता से इतना कह पाये– 'हे वत्स! कृश जान पड़ते हो।' भण्डि ने सूचना दी कि हर्ष को भोजन किये हुए तीन दिन हो चुके हैं। यह सुन प्रभाकरवर्द्धन ने गदगद् होकर रोते हुए कहा– 'उठो, आवश्यक क्रियाएँ करो। तुम्हारे आहार करने के बाद ही मैं पथ्य लूँगा।'

हर्ष का तीन दिन तक पिता की अस्वस्थता से दुःखी होने के कारण भोजन न करना उसकी पिता के प्रति गहन समर्पित भावना का प्रतीक है। इस भावना के मूल में पिता प्रभाकरवर्द्धन का सहज पुत्र मोह एवं वे

कथ्य युधिष्ठिर से उनके...

– वीरेन्द्र खरे 'अकेला'

रूठा जब से सावन है;
उजड़ा–उजड़ा उपवन है।

शायद ही बरसें ये घन;
इनमें भारी गर्जन है।

पीड़ाओं का अनुबन्धन;
लगता मानो जीवन है।

सच को झुठलाया उसने;
कहता धुंधला दर्पण है।

कथ्य युधिष्ठिर से उनके;
लेकिन मन दुर्योधन है।

स्वार्थपरक प्रस्ताव सभी;
लोलुप हर अनुमोदन है।

भौतिकता ओढ़े हैं लोग;
खूँटी पर अपनापन है।

– जूनियर एच.आई.जी. २६, छत्रसाल नगर, नया पन्ना नाका, छतरपुर– ४७१००१ (म.प्र.)

संस्कार थे, जो एक श्रेष्ठ परिवार के लक्षण हैं। 'हर्षचरित' में बाण ने अपने कुल के अनेक लक्षणों का निम्न प्रकार उल्लेख किया है, जिनसे उस युग के सुसंस्कृत परिवार के लक्षणों पर प्रकाश पड़ता है–

'श्रौत आचारों का उन्होंने आश्रय लिया था। झूठ और दम्भ को वे पास न आने देते थे। कपट, कुटिलता और डींग हाँकने की आदत उनमें न थी। पापों से वे बचते थे। शठता को दूर करके अपने स्वभाव को प्रसन्न रखते थे। हीनता की कोई बात नहीं आने देते थे। दूसरे की निन्दा से अपने चित्त को विमुख रखते थे... सरस भाषण में प्रीति रखनेवाले, विदग्धों के अनुरूप हास–परिहास में चतुर, मिलने–जुलने में कुशल, नृत्य–गीत–वादित्र को अपने जीवन में स्थान देनेवाले, इतिहास में अतृप्त रुचि रखनेवाले, दयावान्, सत्य से निखरे हुए, साधुओं को इष्ट, सब तत्त्वों के प्रति सौहार्द और करुणा से द्रवित, रजोगुण से अस्पृष्ट, क्षमावन्त, कलाओं में विज्ञ, दक्ष एवं अन्य सब गुणों से युक्त... वे कुल असाधारण थे।

पिता के प्रति समर्पित निष्ठा की भावना का एक उदाहरण हर्ष विरचित नाटक 'नागानन्द' के एक अंश में भी प्राप्त होता है। इसमें नाटक के नायक जीमूतवाहन के मुख से निःसृत अंश निम्न प्रकार हैं–

'पिता के सामने जमीन पर बैठने में जैसी शोभा है, वैसी क्या राजसिंहासन पर बैठने में है? पिता के पैर दबाने में जो सुख है, वह क्या राज्य पाने में है? पिता की जूठन खाने से जो तृप्ति मिलती है, वह क्या त्रिभुवन को पालन करने तथा भोग्य वस्तु के मिलने में है?

हर्ष के सत्संस्कारों का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण उसकी माँ यशोवती (यशोमती) के साथ उसके संवाद में मिलता है। बाण के अनुसार रानी यशोवती सधवा रूप में मरना चाहती थी और प्रभाकरवर्द्धन का अन्तिम समय सन्निकट था। ऐसी स्थिति में यशोवती अपने पति का चित्रफलक दृढ़ता से लेकर अग्नि में प्राण अर्पित करने जा रही थी। भाई राज्यवर्द्धन युद्ध–भूमि में थे। बहिन राज्यश्री ससुराल में थी। हर्ष के सामने पिता के साथ–साथ माँ के वात्सल्य की छाया भी उठ रही थी। हर्ष की मनोदशा का चित्रण बाण की सूक्ष्म दृष्टि युक्त लेखनी ने निम्न प्रकार किया है–

अश्रुपूरित नेत्रों से हर्ष ने कहा– 'माँ, तुम भी मुझ मन्दभाग्य को छोड़ रही हो! कृपाकर इस विचार से निवृत्त होओ' यह कहकर, माँ के चरणों में गिर पड़ा। यशोवती शोक से विह्वल हो गयी। उसने हर्ष को स्नेह के साथ उठाया। बेटे के आँसू पोंछे और स्वयं अश्रुपूर्ण नेत्रों से हर्ष से कहा–

'मैं अविधवा ही मरना चाहती हूँ, आर्यपुत्र से विरहित हो जीना नहीं चाहती। हे पुत्र! ऐसी अवस्था में मैं ही तुम्हें मनाती हूँ। मेरे मनोरथ का विरोध कर मेरी कदर्थना मत करो' यह कहकर यशोवती हर्ष के चरणों में गिर पड़ी। हर्ष ने शीघ्र अपने पैर खींचे और झुककर माँ को उठाया। असह्य शोक से सन्तप्त दृढ़निश्चयी माँ की मनोदशा को देखकर वह चुप हो गया।

बाण ने माँ के सती हो जाने तथा पिता के दिवंगत होने के बाद हूणों को पराजित कर लौट कर आये राज्यवर्द्धन एवं हर्ष के बीच जिस संवाद का विवरण प्रस्तुत किया है, वह राम और भरत के भातृ–प्रेम का स्मरण दिलाता है। माता–पिता के वियोग से राज्यवर्द्धन जैसे सुयोग्य पुत्र का विचलित हो उठना स्वाभाविक ही था। राज्यवर्द्धन ने हर्ष से कहा था–

'जिस प्रकार पुरु ने पिता की आज्ञा से यौवन सुख छोड़कर जरा को अपनाया था, तुम मेरी राज्य–चिन्ता ग्रहण करो और कृष्ण के समान सकल बालक्रीड़ाओं को छोड़कर अपना वक्ष लक्ष्मी को दो। मैंने शस्त्र का परित्याग कर दिया है।'

यह राज्यवर्द्धन की त्यागगत भावना का प्रतीक है। उधर राज्यभोग हेतु भाई का आदेश हर्ष को ऐसा लगा मानो उन्हें कुल–कलत्र के समान व्यभिचार में लगाया जा रहा है और उन्हें ऐसा समझा जा रहा है, जैसे वे पुष्पभूति वंश में उत्पन्न नहीं, तात का पुत्र नहीं, भाई नहीं। भाई द्वारा उन्हें राज्य करने की आज्ञा देना हर्ष को दाहकारिणी अंगारवृष्टि के समान लगा था। हर्ष ने बड़े भाई को ही राजा माना था। यह भारतीय संस्कारों से सम्पन्न हर्ष के व्यक्तित्व की अनूठी विशेषता थी।

वस्तुतः संस्कार वे क्रियाएँ हैं, जो मनुष्य को योग्यता प्रदान करती हैं। इन्हीं संस्कारों की नींव पर हर्ष के व्यक्तित्व का अभेद्य–दुर्ग निर्मित हुआ था। बाण जैसे विद्वान् एवं कुशल व्यक्ति को अपने दरबार के रत्न के रूप में आसीन करने से पूर्व प्रारम्भ में ही हर्ष ने उसके मनस्वी व्यक्तित्व की परीक्षा ली थी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कारी महाराजाधिराज हर्ष न केवल आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व अपने काल की विभूति थे, वरन् वे वर्तमान एवं भविष्य की प्रेरणा के अजस्र–स्रोत भी हैं।

❐

– 'सुरेन्द्रालय', ए–३५४, इन्दिरानगर, लखनऊ–२२६०१६

यह भी तो था कृष्ण का एक रूप, जिसे भूलें नहीं

– डा. महीप सिंह

भारतीय जन–जीवन पर कृष्ण के अवतारी रूप का प्रभाव जितना व्यापक, गहन और बहुमुखी है, उतना कदाचित् किसी अन्य अवतार का नहीं है। यही कारण है कि उन्हें सोलह कला का पूर्णावतार माना जाता है। कृष्ण की इतनी लोकप्रियता का कारण उनके व्यक्तित्व में अनेक रूपों का अद्भुत सामंजस्य होना ही है; परन्तु हमारे देश की विभिन्न भाषाओं में कृष्ण भक्ति का जिन परिस्थितियों में विकास हुआ, उनमें उनके अन्य रूपों की अपेक्षा उनका मधुर रूप ही अधिक लोकप्रिय होता गया। परिणामस्वरूप कृष्ण के बहुमुखी व्यक्तित्व के अन्य पक्ष उपेक्षित होते गये, विशेष रूप से उनका वीर रूप तो लोग पूरी तरह भूल ही गये। गोपियों के साथ रासलीला करनेवाले, गौयें चराने, माखन चुराने तथा अपनी अन्य मधुर लीलाओं से सम्पूर्ण वायुमण्डल को रससिक्त कर देनेवाले मधुर, कोमल कृष्ण का रूप ही हमारे नेत्रों में समा गया।

परन्तु संकट के समय अवतारों और महापुरुषों का स्मरण पराधीन और उत्पीड़ित समाज में शक्ति और आत्म–विश्वास का संचार करनेवाला होता है। आज के तीन सौ वर्ष पूर्व भी ऐसे ही संकट की परिस्थिति थी। उस समय जब चारों ओर अत्याचार एवं अन्याय का अन्धड़ आया हुआ था, गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय शक्ति अँगड़ाइयाँ ले रही थी। उस उभरती हुई शक्ति का जीवन को स्पर्श देने के लिए गुरु गोबिन्द सिंह विविध प्रयास कर रहे थे। प्राचीन भारतीय आख्यानों का भाषानुवाद भी उस प्रयास का एक महत्त्वपूर्ण अंग था।

गुरु गोबिन्द सिंह रचित दशमग्रन्थ में सभी अवतारों की यश-कथा कही गयी है; किन्तु उनमें कृष्णावतार की कथा सबसे बड़ी है। इस कथा में लगभग २५०० छन्द हैं, जिनका बहुत बड़ा भाग युद्ध प्रसंगों से भरा हुआ है। इन युद्ध प्रसंगों के माध्यम से कृष्ण के उस वीर–स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई है, जो तत्कालीन ब्रज भाषा काव्य में दुर्लभ है।

जरासन्ध की विशाल वाहिनी मथुरा की ओर आक्रमण हेतु आ रही है। बड़े–बड़े शूरवीर क्षत्रिय भयभीत होकर भागने की तैयारी कर रहे हैं। महाराज उग्रसेन स्वयं घबड़ा गये हैं। ऐसे समय में कृष्ण उन्हें इन आत्मविश्वास पूरित शब्दों में ढाँढस बँधाते हैं–

राज न चिंत करौ मन में हम हूँ दोउ भ्रात सुजाइ लरेंगे।
बान कमान, कृपान, गदा गहिकै रण भीतर जुद्ध करेंगे।।
जो हम उमर कोप आइ है, ताहि कै अस्त्र सिंउ पान हरेंगे।
पै उनको मरिहैं, डरिहैं नहिं, आवह ते पग दुइ न टरेंगे।।

जब युद्धका अवसर आया, तो कृष्ण युद्ध–रत होकर शत्रु सेना का संहार करने लगे–

सउनत तरंगनी उठाइ कोप बलवीर,
मार–मार तीर रिप खंड कीए रन मै।
बाज, गज मारे, रथी ब्रिथी करि डारे,
कैसे पैदल बिदारे सिंह जैसे मृग बन मै।
जैसे सिव कोप कै जगत जीव पार प्रलै।
तैसे हरि अरियों संघारे आई मन मै
एक मार डारे एक छाइ छित पारे,
एक त्रसै एक हारे जाके ताकत न तन मै।

मोर मुकुट, वैजयन्तीमाला, हाथ में बाँसुरी धारण किये मधुर रूपवाले कृष्ण की चर्चा तो सदा होती रही है, परन्तु युद्धभूमि में विकराल भयावह रूप धारण करने–वाले कृष्ण को आज तक किसने देखा है–

श्री नन्दलाल सदा रिप घाल
कराल बिसाल जबै धनु लीनो।
इउ सर जाल चलै तिह काल
तबै अरिसाल रिसै इह कीनो।।
घाइन संगि गिरी चतरंग चमूँ
सभ को तन स्रउनत भीनो।
मानहु पन्द्रसवों विधने सु
रच्यो रंग आरन लोक नवीनो।

कृष्ण के धनुष से निकले हुए असंख्य बाणों से युद्ध–भूमि की अवस्था किस प्रकार की बन जाती है, इस का एक आलंकारिक चित्र–

जदुवीर कमान से बान छुटे अवसा[illegible] के।
गजराज मरे गिर भूमि परे मनो रूख कटे करवत्रन के।।
रिप कउन गनो जु हने तिह ठां मुरझाई गिरे सिर छत्रन के।
रन मानो सरोवर आधीं बहै तुट फूल परे सत पत्रन के।।

कृपाणपाणि कृष्ण युद्ध–भूमि में शत्रुओं का इस प्रकार संहार कर रहे हैं कि हाथियों, घोड़ों पर चढ़े सवार कट–कट कर नीचे गिर रहे हैं। किसी का सिर कट रहा है, किसी की छाती चिरती जा रही है। शत्रुओं के लिए कृष्ण का रूप काल का रूप बन गया है–

पान कृपान गही घनिस्याम बडै रिप ते बिन प्रान किए।
गज बाजन के असवार हजार मुरार संघारे बिदार दिए।।
अरु एकन के सिर काट दए इक वीरन के दए फार हिए।
मनो काल सरूप कराल लख्यो हरि सत्रु भजे इक मार लिए।।

कृष्ण युद्धभूमि में धनुष–बाण लेकर सिंह के समान दहाड़ रहे है। ऐसा बली पुरुष संसार में कौन है जो धैर्यपूर्वक युद्धभूमि में कृष्ण का सामना कर सके। तीनों लोकों में ऐसा कौन है, जो कृष्ण से शत्रुता मोल ले। यदि कोई हठपूर्वक उनसे युद्ध करता है, तो पल भर में वह कृष्ण द्वारा यमलोक को भेज दिया जाता है–

कान्ह कमान लिए कर में रन में जब केहरि जिउ भभकारे।
को प्रगटिउ भट ऐसो बली जग धीर धरे हरि सो रन पारे।।
अउर सु कउन तिहुँ पुर में बलि स्याम सिउ बैर को भाउ बिचारे।
जो हठ कै कोउ जुद्ध करै सु मरे पल में जम लोक सिधारे।।

युद्ध–भूमि में कृष्ण जिस तन्मयता से युद्ध कर रहे हैं, उसे देखकर शत्रुओं का धैर्य छूटता जा रहा है। कृष्ण के युद्ध–कौशल का यह कितना सजीव चित्र है–

काटत एकन के सिर चक्र गदा गहि दूजन के तन झारे।
तीजन नैन दिखाइ गिरावत चउथन चोप चपेटन मारे।।
चीर दिए अरि के उर श्री हरि सूरन के अंग अंग प्रहारे।
धीर तहाँ भट कउन धरै जदुबीर जबै तिह ओर सिधारे।।

अपने सेनापतियों के संहार के पश्चात् जरासंध स्वयं कृष्ण से युद्ध करने आया। अपने उच्च क्षत्रिय वंश का अभिमान करते हुए उसने कृष्ण से कहा– तू ग्वाला होकर भला क्षत्रियों से क्या युद्ध करेगा, यह गर्वोक्ति सुनकर कृष्ण ने बड़े विश्वास से उत्तर दिया–

छत्री कहावत आपन को भजिहौ तबहि जब जुद्ध मचैहों।।
धीर तबै लखिहौ तुमको जब भीर परै इक तीर चलैहों।।
मूरछ ह्वै अब ही छित में गिरहो नहि स्यंदन में ठहरैहो।।
एकह बान लगे हमरौ नभ मंडल अब ही उड जैहो।।

युवा कृष्ण ही शत्रुओं से युद्ध करते हों, ऐसी बात नहीं है। अपने बाल रूप में कृष्ण माखन चुराते, गोपियों को खिझाते हुए अनेक दैत्यों का संहार कर देते हैं। कंस ने बाल कृष्ण को मारने के लिए पहले पूतना भेजी; परन्तु कृष्ण ने उसे समाप्त कर दिया। यह सुनकर कंस ने तृणावर्त को भेजा। कृष्ण ने उसकी यह दशा की थी–

ज़उ हरिजी नभि बीच गयो कर तउ अपने बल को तन चट्टा।।
रूप भयानक को धरिकै निति जुद्ध कर्‍यो तब राछस फट्टा।।
फेरि संसार दसो अपने कैके तुरा सिर सत्रु को कट्टा।।
रुण्ड गिर्‍यो जनु पेडि गिरुओ इस मुंड पर्‍यो जन डारते खट्टा।।

युद्ध में कृष्ण ने बकासुर नामक दैत्य की चोंच इस तरह उखाड़कर फेंक दी, जैसे बच्चे जंगली घास को उखाड़ कर फेंक देते हैं–

जबै देते आयो महा मुखि चवरायो जब,
जानि हरि पायो मन कोनो वाकै नास को।
सिद्ध सुर जाप तिनै उखार डारि चौंच बाकी,
बली मार डारयौ महाबली नाम जास कौ।।
भूमि गिरि पर्‍यौ हवै दुटूक महा मुखि बाकौ,
ताकी छवि कहिबै को भयो मन दास कौ।
खैलबै को राज बन बीच गए बालक जिउ,
लै कै करि मद्धि चीर डारे लांबै घास कौ।।

कृष्ण के मधुर रूप में आत्म–विभोर होकर उस युग की पराधीन, शोषित और उत्पीड़ित जनता कुछ क्षणों के लिए अपने बाह्य सामाजिक, राजनीतिक दुःखों को भूल सकती थी, किन्तु दुःखों को भुला देनेवाली युक्ति दुःखों के विनाश का स्थायी साधन तो नहीं थी। कष्टों का विनाश कष्टों की ओर से आँखें मीचने में नहीं, उसका कारण ढूँढ़ कर विधिवत् उपचार करने से होता है। गुरु गोविन्द सिंह ने अपने समय के समाज के कष्टों का कारण ढूँढ़ा। उन्होंने अनुभव किया कि यदि समाज को उठना है, तो उनमें शक्ति का संचार करना होगा। शक्ति–संसार के लिए जन–जीवन में स्वीकृत अवतारों के वीर रूप की प्रतिष्ठा समाज के सम्मुख करनी होगी, जिससे उनके वे आदर्श बन सकें। अपने काव्य में कृष्ण के वीर रूप का गुरु गोबिन्द सिंह ने कदाचित् इसीलिए इतने आग्रह से चित्रण किया। युद्ध–वर्णन के अंश में कवि अपना उद्देश्य स्पष्ट करता हुआ कहता है–

क्रिसन जुद्ध जौ हउ कह्यो अति ही संग सनेह।।
जिह लालच इह मै रच्यो मौहि वहै वरु देहि।।

– एच. १०८, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली– ११००२६

भारत को नष्ट करने पर उतारू– इस्लाम और ईसाइयत

– डॉ० किशोरी लाल व्यास

भारतीय प्रजातन्त्र, भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जन–जीवन का मूल आधार हमारी उदारता, सहिष्णुता तथा सर्वधर्म समभाव है; पर यह उदारता हमारे लिए बड़ी मँहगी पड़ती जा रही है। मुसलमानों तथा ईसाइयों द्वारा लगातार धर्म–परिवर्त्तन कर, अपने ही घर में हिन्दू को अल्पसंख्यक बना डालने का भयंकर षड्यन्त्र गत अर्द्ध शताब्दी से चल रहा है। योजनाबद्ध ढंग से प्रलोभन, छल, यातना, आतंक आदि विविध साधनों का उपयोग कर बहुत बड़ी संख्या में हिन्दुओं को धर्मान्तरित किया जा रहा है। इस कार्य में सहस्रों मुल्ला–मौलवी और मिशनरी लगे हैं, जो पूर्णकालिक हैं तथा जिन्हें विपुल मात्रा में विदेशों से आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता प्राप्त होती है। ये संगठन बड़े ही व्यवस्थित हैं तथा अधुनातन सम्पर्क व सम्प्रेषण के संसाधनों से सम्पन्न हैं। इन संगठनों का कार्य गुप्त होता है, इनका एजेण्डा बड़ा स्पष्ट होता है; पर बाहरी दिखावा शिक्षा, स्वास्थ्य व स्वच्छता का प्रचार–प्रसार करना होता है। ये संगठन सुदूर वनवासी क्षेत्रों में कार्य करते हैं तथा उनके उत्थान के नाम पर उन भोले–भाले वनवासियों को ईसाइयत का पाठ पढ़ाते हैं। जब इनकी संख्या पर्याप्त हो जाती है, तब इनके माध्यम से ही अलगाव की लड़ाई छेड़ते हैं। इन्हें नवीनतम शस्त्रास्त्र प्रदान करते हैं तथा सैन्य–प्रशिक्षण देते हैं। अलगाव की यह आग हमारी पूर्वोत्तर सीमा पर नागालैण्ड, मिजोरम, त्रिपुरा, अरुणाचल, मेघालय आदि प्रदेशों में लग चुकी है। इन प्रदेशों के ईसाई अपने आप को भारतीय मानते ही नहीं और भारत से अलग हो जाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करते रहते हैं। दूसरी ओर मुसलमानों की योजना अधिक स्पष्ट, आक्रामक व भयंकर है। इस योजना के अनुसार बांगलादेश से पाकिस्तान के बीच के सारे प्रदेश को इस्लामिक बना दिया जाये। ताकि जिस भारत को तलवार के बल पर नहीं जीता जा सका, उसे जनसंख्या के बल पर जीत लिया जाये और इस विशाल राष्ट्र को इस्लाम के परचम के नीचे लाया जाये। जनसंख्या विस्तार, निकटस्थ राष्ट्रों से बड़ी संख्या में मुसलमानों का गैरकानूनी प्रवेश, आतंक, हिंसा आदि द्वारा लगातार हिन्दुओं का हनन तथा धर्म–परिवर्त्तन, गुप्त–संगठनों तथा कार्यकर्त्ताओं द्वारा इस्लामी प्रशिक्षण, झूठा प्रचार, तोड़–फोड़, हत्याएँ, आतंक आदि ऐसे हथकण्डे हैं, जिनके माध्यम से ये लोग बहुत कम समय में देश को इस्लामिक बनाने का सपना देखते हैं। दुःख की बात यह है कि धर्मान्तरण करते ही ये लोग भारतवर्ष की सुदीर्घ परम्परा, संस्कृति व इतिहास से अपने आपको काट लेते हैं और एक विदेशी आयातित विचारधारा से जुड़ जाते हैं। बांगलादेश से मुसलमानों का करोड़ों की संख्या में भारत में लगातार प्रवेश एक बृहत्तर षड्यन्त्र का अंग है। जिन्हें असम, त्रिपुरा, मेघालय, पश्चिम बंगाल आदि प्रदेशों में बसाने, उन्हें नागरिकता प्रदान करने तथा सारी सुविधाएँ मुहय्या कराने में हमारे पूर्व राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद, केन्द्रीय मन्त्री मुईनुद्दीन चौधरी (अब आँजहानी) मुख्यमन्त्री अनवरा तैमूर, पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री ज्योति बसु तथा अनेक नेताओं, प्रशासनिक अधिकारियों तथा गुप्त संगठनों का हाथ रहा है। असम में तो इन घुसपैठिये बांग्ला–मुसलमानों ने बड़े पैमाने पर हिन्दू किसानों की हत्या कर परिवार के परिवार गायब कर दिये, उनकी भूमि, मकान, सम्पत्ति पर रातोंरात कब्जा कर लिया और सरकारी कृपा से भारत के नागरिक बन गये। असम की जनसंख्या का सन्तुलन बिगड़ गया है और लगातार बिगड़ता जा रहा है। यही हाल पूर्वोत्तर सात प्रदेशों का है। कीड़े–मकोड़ों की तरह बढ़ते–फैलते इन बांग्लादेश के मुसलमानों द्वारा संगठित रूप से किया जा रहा षड्यन्त्र तथा हमारी सरकारों की लापरवाही, भ्रष्टाचार तथा उस योजना के अंग बने हुए अधिकारियों तथाकथित सेक्युलरिस्टों आदि के कारण सफलता प्राप्त करता जा रहा है। हिन्दुओं के पराभव का कारण गरीबी, अशिक्षा, उदासीनता, अतिरिक्त–अवाञ्छित उदारता तथा जागरूकता का अभाव है। वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि दो विशालकाय लहरें

उन्हें देखते–देखते लील जायेंगी और उनकी स्थिति पश्चिमी पाकिस्तान के सिन्ध, पंजाब तथा कश्मीर जैसी हो जायेगी। विपरीत इसके हैदराबाद राज्य उस जन–जागरण का प्रतीक है, जहाँ आर्य समाजियों हिन्दू सभाइयों तथा अन्य हिन्दू संगठनों ने धर्मान्ध रजाकारों का सामना करते हुए, निजाम के शासन को उखाड़ फेंका। सरदार पटेल की दृढ़ता और जनता का सहयोग इन दोनों ने मिलकर निजाम और आततायी रजाकारों के इरादों को सफल नहीं होने दिया। अतः केन्द्र सरकार की ईसाई धर्मान्तरण तथा इस्लामिक आतंकवादियों से निपटने में दृढ़ता युक्त नीति तथा जन–जागरण ये तत्त्व मिलकर ही इस राष्ट्र की हिन्दू–परम्परा की रक्षा कर सकते हैं।

हिन्दू धर्म की वैचारिक उदारता का इन दोनों ही सेमेटिक (पश्चिमी एशियाई) मजहबों में अभाव है। हिन्दू धर्म जहाँ सर्वजन हित की, सर्वजन–समभाव की बात करता है, वहाँ ये दोनों मजहब केवल उनके अनुयायियों के उत्थान की ही बात सोचते हैं। यहाँ तक कि प्रार्थना में भी वे अपने ईश्वर से 'न माननेवालों' (**Non-believers**) को नष्ट करने की कामना करते हैं। इन दोनों ही मजहबों का इतिहास रक्त–रञ्जित पन्नों से भरा पड़ा है। दोनों सेमेटिक मजहबों धर्मों ने भयंकर मजहबी युद्ध (जेहाद या क्रूसेड) किये– लाखों लोगों को मारा, गाँव, शहर जलाये और मजहब के नाम पर आतंक फैलाया।

अमरीका, कनाडा, मैक्सिको, आस्ट्रेलिया आदि देशों में ईसाइयों ने जिस निर्दयता से वहाँ के मूल निवासियों का संहार किया– उसका इतिहास में कोई सानी नहीं। सभ्यता और संस्कृति की बात करनेवाले अमरीकनों ने अपने देश के ९५ प्रतिशत मूल रेड इण्डियनों को समाप्त कर दिया। स्पेन के व पुर्तगाल के ईसाई लुटेरों ने मैक्सिको अजटेक (आस्तिक या आस्तीक) आदिवासियों को नेस्तनाबूद कर दिया। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का सफाया कर उस पर यूरोपीय–ईसाइयत का जाल–फैलाया। अफ्रीका के अनेक प्रदेशों को सभ्य बनाने के नाम पर, वहाँ के मूल निवासियों को समाप्त कर या गुलाम बनाकर उनका अमानुषिक शोषण किया। आज भी दुनिया में सर्वाधिक अस्त्र–शस्त्र बेचनेवाले राष्ट्र ईसाई राष्ट्र हैं। दुनिया के देशों को लड़ाने और हथियारों को बेचने का काम ये ईसाई देश लगातार करते हैं। ऐसी ईसाइयत जो पाप–बोध, हिंसा, उपभोग, शोषण, व्यक्तिवाद और रक्तपात पर टिकी हो, भारत जैसे परिपक्व देश को क्या सन्देश देगी ? टालस्टाय के शब्दों में– "ईसाइयों की यह मूर्खता और हिमाकत है कि वे विश्व भर को सभ्य बनाने का दम भरते हैं।"

सभ्यता क्या ईसाइयों की बपौती है ? कोई किसी को क्यों धर्मान्तरित करे ? अर्थात् उसके मन में यह दुरहंकार उपस्थित है कि उसका धर्म श्रेष्ठ है, सामनेवाले का निकृष्ट। यह भाव ही अ–प्रजातान्त्रिक है, अ–धर्म निरपेक्ष भाव है।

ईसाई मिशनरियों द्वारा देश में धर्म प्रचार हेतु जितना धन विदेशों से आ रहा है उसके सही आँकड़े हमारे गृह मन्त्रालय के पास उपलब्ध नहीं हैं और न इनकी गुप्त गतिविधियों का कोई प्रामाणिक लेखा–जोखा है। चर्च द्वारा संचालित स्कूलों, कॉलेजों, अनाथालयों, विकलांग अस्पतालों आदि के माध्यम से अपार धन इकट्ठा कर, उसे धर्मान्तरण हेतु खर्च किया जा रहा है। प्रशिक्षण, मेडिकल, इन्जीनियरिंग, बिजनेस, मैनेजमेण्ट, कम्प्यूटर आदि अधुनातन कोर्स करने की आसक्ति में छात्रों के अभिभावक लाखों रुपया प्रदान करते हैं। हैदराबाद में इन्जीनियरिंग सीट की कीमत पचास हजार से दो लाख, बी०एड० सीट की कीमत एक लाख तथा मेडिकल की कीमत पन्द्रह से बीस लाख रुपये है। मुस्लिम तथा ईसाई संगठन यह धन अधिकांशतः हिन्दू छात्रों से ही पाते हैं और इसका उपयोग हिन्दुओं के अहित में ही किया जाता है। अत्यन्त खेद की बात है कि ऐसे धन का न कोई हिसाब है, न इन पर कोई टैक्स लगता है, न इस धनराशि के खर्च का कोई विवरण दिया जाता है। एक–एक शहर में ऐसी हजारों शिक्षण संस्थाएँ हैं, जिनकी आमदनी करोड़ों में हैं; पर न तो केन्द्र सरकार, न प्रदेश सरकार, न हमारे गुप्तचर संगठनों के पास, न कर–विभाग के पास इसका विवरण उपलब्ध है। हैदराबाद की धर्मान्ध पार्टी एम०आई०एम० (इत्तिहादुल् मुसलमीन) की बेहिसाब कमाई का पता जनता को तब लगा, जब सलाउद्दीन ओएसी (एम०आई०एम० प्रमुख) तथा उन्हीं के पूर्व सहयोगी अमानुल्लाह खान (एम०बी०टी०) के मतभेद उभरकर सामने आये तथा दोनों ने एक–दूसरे की आय का भण्डाफोड़ किया। ऐसे धन का उपयोग धर्मान्धता के विष बीज बोने वाले मदरसों को चलाने, हथियारों के प्रशिक्षण हेतु तथा नफरत पैदा करने वाले प्रचार–प्रसार कार्यों व अपराधियों व मजहबी दंगे करनेवाली फौज की आर्थिक–कानूनी सहायतार्थ खर्च होता है। सरकारों के पास इसकी कोई जानकारी नहीं। एक ईसाई गिरोह का समाचार–पत्रों में भण्डाफोड़ हुआ, जो हैदराबाद में छोटे बच्चों का अवैध व्यापार करता था। इस सारे सन्दिग्ध मामले को रफा–दफा कर दिया गया।

सहिष्णुता के नाम पर हमारे देश की आन्तरिक

(शेष पृष्ठ ९८ पर)

बालवाटिका

क्रान्तिकारी बालक सुभाष का बचपन

भइया की चिट्ठी

जिसमें साहस, जोश, वीरता की थीं भरी उमंगें

– रामकुमार गुप्त

'शटअप ब्लैक हिन्डोस्टानी', कहकर उसने झकझोरा।
कालर पकड़े 'डैमडाग', बकता था बालक गोरा।।
सहम गया बिल्कुल बेचारा, उस गुस्से से डर कर।
लज्जित हो, नीची आँखें कर, काँप रहा था थर–थर।।
रोब देख कर गोरे का, कक्षा में सन्नाटा छाया।
रक्षा में भारतीय छात्र के, एक न आगे आया।।
किन्तु पास बैठे साथी की फड़क रही थी बाँहें।
ओठ काटता था गुस्से से, लोहित हुई निगाहें।
चुप्पी देख सभी की, गोरा अधिक बिगड़ता जाता।
साथी की बदले की ज्वाला और रहा भड़काता।।
कुछ ही क्षण में अध्यापक जी, उस कक्षा में आये।
किसी तरह वह बैठा था, सीने में आग दबाये।।
आज न लिखना–पढ़ना था, कुछ उसे समझ में आता।
'डैम–डाग' का शब्द कान में, बार–बार टकराता।।
सोच रहा था– गोरों का, कब तक अपमान सहेंगे।
कब तक हम सब भारतवासी, बुजदिल मौन रहेंगे।।
घण्टा बीता किसी तरह, कक्षा से बाहर आया।
अपमानित उस सहपाठी को, अपने पास बुलाया।।
बोला– मुझे न मालुम था, तुम होगे इतने कायर।
क्यों न पकड़कर उसे रख दिया फौरन वहीं मसलकर।।
मेरे साथ अगर उसने, की होती इतनी हिम्मत।
माँ दुर्गा की कसम वहीं, कर देता मैं क्षत–विक्षत।।
रोकर बालक बोला– "क्या, मैं वहाँ अकेले करता।"
कोई साथ न देगा मेरा, यही रहा मैं डरता।।
भाई मेरे एक अकेला भी, कर सकता सर्बस।
दृढ़ संकल्प सहित यदि, रखता अपने मन में साहस।।
अब तक जो कुछ हुआ न, उस पर घबड़ाओ पछताओ।
आगे क्या मैं अब करता, हूँ इसे देखते जाओ।।
'लेकिन भइया' डरते बालक, के मुँह से निकला स्वर।
'उसे गोरे का बाप शहर में, बहुत बड़ा है अफसर।।'
कितना भी हो बड़ा किन्तु वह तो भगवान् नहीं है।
नहीं सभ्यता आती जिसको, वह इन्सान नहीं है।।
अंग्रेजियत बड़प्पन का है, उसे नशा चढ़ आया।
बड़े बाप का बेटा बनकर, फिरता है इतराया।।
जो भी उसने किया, नहीं हम उसको माफ करेंगे।
कैसा हो परिणाम किन्तु, हम तो इन्साफ करेंगे।।
बालक बोला– धन्यवाद है आप सत्य कहते हैं।
बुजदिल, मुर्दा हैं वे जो, चुपचाप जुल्म सहते हैं।।
इसी हमारी कमजोरी को, गोरों ने पहिचाना।
सौदागर से शासक बन, कर रहे जुल्म मनमाना।।
अच्छा अब छुट्टी होने पर, तुम मेरे संग रहना।
और बताता हूँ जैसा बस, वही मानना कहना।।
गोरे दुष्ट हमारी इज्जत से ये खेल रहे हैं।
हम सब मूक बने, अत्याचारों को झेल रहे हैं।
घुमड़ रहे ये भाव तभी, छुट्टी की घण्टी बोली।
शोर मचाते कक्षा से बच्चों की निकली टोली।।
गोरा जब कुछ और निकल, कर दूर अकेले आया।
साथी ने आ पास लगाकर टँगड़ी उसे गिराया।।
टाई खींची झटक पैर से, दिया जोर का धक्का।
अब गोरे की सिट्टी–पिट्टी–गुम था, हक्का–बक्का।।
अबे दुष्ट, बदमाश विदेशी बना घूमता राजा।
हिम्मत हो तो अभी सामने, मुझसे भिड़ ले आजा।।
बोल मेरे साथी का तूने, क्यों अपमान किया है।
सुन ले अंगारों को तूने, न्यौता आज दिया है।।
आइन्दा यदि किसी छात्र, से दुर्व्यवहार करेगा।
इतना रखना याद, किसी कुत्ते की मौत मरेगा।।
तब तक लड़के बहुत दौड़ कर घटना स्थल पर आये।
यह रोमांचक दृश्य देख, आश्चर्यचकित घबराये।।
कालर पकड़ वीर बालक, ने उसको पुनः उठाया।
और पैर की तगड़ी ठोकर, देकर उसे भगाया।।
जिसमें साहस, जोश, वीरता की थी भरी उमंगें।
भारत माँ की आजादी की, मचली प्रबल तरंगें।।
'मुझे खून दो मैं आजादी दूँगा', जिसका नारा।
बचपन का वह वीर छात्र नेता सुभाष था प्यारा।।

– निकट मंगला देवी मन्दिर, गोला गोकर्णनाथ, खीरी

खजाने की खोज

नीलम राकेश

एक गाँव में एक किसान रहता था। उसका नाम था किसनू। उसके तीन बेटे थे। तीनों एक दूसरे से बढ़–चढ़कर आलसी थे। बेचारा किसान उन्हें समझाता; किन्तु उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। वे तीनों इधर–उधर बैठ कर, सोकर अपना समय गँवाते रहते।

किसान के पास काफी खेत था। उम्र बढ़ने के साथ–साथ उसकी शक्ति कम होती जा रही थी। उसके सामने दो बड़ी समस्याएँ थीं। एक तो अपने बेटों को सही रास्ते पर लाना। दूसरी समस्या थी पानी।

जमीन उसके पास बहुत थी किन्तु पानी बहुत दूर नहर से लेना पड़ता था। हमेशा बीच में पड़ने वाले किसान उसका पानी काट लेते थे। वह अकेला किस–किस से लड़ता ? जब शरीर साथ देता था वह अपने पानी की चौकीदारी कर लेता था, किन्तु आलसी बेटों के रहते उसका काफी खेत बिना जुते ही रह जाता था जिसके कारण घर में अनाज की कमी होने लगी।

बेचारा किसान बहुत चिन्तित रहता। एक दिन अचानक उसे एक उपाय सूझा। सुबह उठते ही उसने अपने तीनों बेटों को बुलाया और चारों ओर सतर्क निगाहों से देख कर बोला,

"बेटा कल रात मैंने एक सपना देखा है। सपना भोर में देखा है इसलिए सच ही होगा।"

"क्या सपना देखा पिताजी ?" बड़े बेटे ने पूछा।

"अरे धीरे बोलो ! कहीं कोई सुन न ले।" किसान ने उसे झिड़का। तीनों पिता के एकदम निकट सरक आये।

"क्या देखा था पिताजी ?" मझला बेटा फुसफुसा कर बोला।

"एक देव पुरुष आये और बोले– "तुमने जीवन भर बहुत मेहनत की है अब तुम्हारे आराम करने के दिन आ गये हैं इसलिए मैंने खजाना तुम्हारे खेत में गाड़ दिया है तुम खोद कर निकाल लो।" किसान ने बेटों को बताया।

"ये तो खुशी की बात है पिता जी हम मजदूर लगा कर पूरा खेत खुदवा देते हैं। खजाना मिल जायेगा।" छोटा बेटा बोला।

"अरे नहीं। इसमें एक तो यह खतरा है कि जिस मजदूर को खजाना मिले वो हमारी आँख बचा कर उसे उठा ले जाये और दूसरा खतरा ये है कि यदि खजाना हमें मिल भी जायेगा तो मजदूरों से खजाना मिलने की बात पूरे गाँव में फैल जायेगी फिर डकैत तुरन्त हमें लूट लेंगे।" किसान ने समझाया।

"फिर क्या करें पिताजी, खेत तो बहुत बड़ा है !" बड़े बेटे ने पूछा।

"मुझे लगता है कि जो स्थान देव पुरुष ने दिखाया था उसे मैं पहचान लूँगा। क्यों न हम चारों मिल कर उस स्थान को खोदें। खजाना मिल जाये तो मैं तुम तीनों में बाँट कर गंगा नहाऊँ।" किसान बोला।

खजाने के लालच में तीनों आलसियों की लार टपकने लगी।

"आपकी जैसी इच्छा पिताजी"। छोटा मन ही मन खुश होता हुआ बोला।

'ठीक है पिताजी हम स्वयं ही खेत की खुदाई करेंगे।" मझले ने पिता को खुश करने के लिए कहा।

"चलिये आप जगह पहचान दीजिये हम तीनों आज से ही खुदाई शुरू करते हैं।" बड़े को खजाना पाने की जल्दी थी।

चारों खेत पर पहुँचे। चारों ओर देखकर किसान

खेत के एक कोने में खड़ा हो गया और बोला—

"मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा। तुम रघु चाचा का ट्रैक्टर माँग लाओ और पूरे में ही चला दो।"

छोटा बेटा झटपट ट्रैक्टर माँग लाया। पूरा खेत जुत गया, किन्तु कहीं खजाना नहीं मिला। अचानक एक कोने पर एक ढेला उठाकर किसान बोला,

"मुझे लग रहा है इसी जगह की ओर देव पुरुष ने इशारा किया था।"

"ठीक है यहाँ खुदाई आरम्भ करते हैं" कहता हुआ बड़ा बेटा अपना फावड़ा चलाने लगा।

दोनों छोटे कब पीछे रहने वाले थे। आखिर खजाने की बात थी। काफी खुदाई करने के बाद छोटे का सब्र टूटने लगा, "हम लोग काफी खोद चुके हैं, लेकिन..."

"अरे बेटा, बड़ा खजाना होगा, तो गहराई में ही होगा न? कोई इन्सान ने तो रखा नहीं है कि ऊपर ही ऊपर हो। देव पुरुष की रखी चीज है।" बीच में ही बात काटते हुए किसान बोला।

बड़े खजाने के नाम पर तीनों पुनः नये जोश के साथ खोदने लगे। कई दिनों की खुदाई के बाद वे निराश होने लगे किन्तु इस डर से कोई भी अपना काम बन्द नहीं कर रहा था कि कहीं शेष दो भाइयों के खोदने पर खजाना मिल गया और पिताजी नाराज हो गये तो कहीं पूरा खजाना उन्हीं दोनों में न बाँट दें। उनकी उम्मीद अब टूटने ही लगी थी कि अचानक जमीन से पानी निकलने लगा।

किसान खुशी से उछल पड़ा, "वाह अब मिल गया खजाना।"

"खजाना? कहाँ है खजाना।" तीनों ने एक साथ पूछा।

"मुझे लगता है इसी पानी में छुपाकर रखा है देव पुरुष ने खजाना। तुम लोग जल्दी से अपने बैल लेकर आओ हम सारा पानी बाहर निकाल कर उसे ढूंढ लेंगे।"

बैलों की मदद से खूब पानी निकाला गया। पूरा खेत पानी से भर गया परन्तु खजाना नहीं मिला लड़के निराश हो चुके थे।

शाम को वे तीनों गाँव की चौपाल की ओर गये तो अचानक अपना नाम सुन कर उनके कान खड़े हो गये।

"अरे हम लोग तो किसनू के तीनों लड़कों को आलसी समझते थे, लेकिन गजब के मेहनती लड़के हैं।" मुखिया ने कहा।

"हाँ भाई, मानना पड़ेगा। दस दिन की रात–दिन की मेहनत से कुआँ खोद लेना कोई हँसी–खेल नहीं है।" रघु चाचा बोले।

"मैं तो कहता हूँ बेटे हों तो किसनू के लड़कों

...देश न टूटेगा!

— राम वचन सिंह 'आनन्द'

हम सबका देश न टूटेगा!
यह शिव का देश न टूटेगा!!

था लूटा हमें लुटेरों ने
कुछ–एक नहीं, बहुतेरों ने
अब और न कभी लुटेरा–दल
फिर आकर हमको लूटेगा।

हम हैं रण–बाँके वीरों में
पर थे सदियों जंजीरों में
सौभाग्य फूट से फूटा था
सौभाग्य नहीं अब फूटेगा।

हम अपनों से भी रूठे थे
पाले कुछ मान अनूठे थे
'राणा' से कोई 'अमर' नहीं
अब मरते दम तक रूठेगा।

हैं जन–जन एक न टूटेंगे,
हैं तन–मन एक, न टूटेंगे,
अब सँभले, चेते, जगे हुए,
हम सबका देश न टूटेगा।

नापाक इरादे हारेंगे
हम वैरी को संहारेंगे
अणु–अस्त्र दिखानेवाले पर
अणु–अस्त्र हमारा छूटेगा।

— थाना रोड, चक्रधरपुर–८६३१०२

जैसे।" बूढ़े काका बोले।

तीनों भाइयों ने एक दूसरे की ओर देखा और अपने घर की ओर दौड़ पड़े। पिता के पास पहुँचते ही बोले–

"पिताजी, पिताजी, हमें खजाना मिल गया।"

"कहाँ ?..." किसनू आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगा।

"आपने हमें मेहनत का खजाना दे दिया।" बड़ा बेटा बोला।

"पिताजी आज तक जो लोग हमें कामचोर और निखट्टू कह कर मजाक बनाते थे आज उनकी आँखों में हमारे लिए आदर और प्यार है।" मझला बेटा बोला।

"हमने हमेशा दूसरों से अपनी बुराई ही सुनी थी, परन्तु आज पहली बार गाँव के बुजुर्गों को अपनी प्रशंसा करते सुना है।" छोटा बेटा भावुक होकर बोला।

"पिताजी अब हमने मेहनत का फल चख लिया है। कल से हम तीनों भाई खेतों पर काम करेंगे। आप बस हमें रास्ता बताते जाइयेगा।" बड़ा बेटा बोला।

किसनू की आँखों में खुशी के आँसू आ गये। आज उसकी दोनों समस्याएँ हल हो गयीं थीं।

☆

– द्वारा श्री राकेश चन्द्र, अपर जिलाधिकारी (वि०/रा) गाजीपुर– २३३००१ (उ०प्र०)

अभिलाषा

– अखिलेश त्रिवेदी

माँ विद्या का दान चाहिए,
मिटे तमस, वह ज्ञान चाहिए।
प्यार करें हम प्राणिमात्र से,
ऐसा हृदय महान् चाहिए।।

मर्यादा का भान चाहिए,
सुख, वैभव, सम्मान चाहिए।
राम–चरित्र पले हर घर में,
ऐसा सुखद विहान चाहिए।।

जन गण मन का मान चाहिए,
वन्देमातरम् गान चाहिए।
राष्ट्र–भक्ति का भाव प्रबल हो,
माँ, ऐसा वरदान चाहिए।।

संस्कृति का अभिमान चाहिए,
मानव का उत्थान चाहिए।
चमके विश्व भाल पर फिर से,
ऐसा देश महान् चाहिए।।

– ई–४६६८, सेक्टर–११, राजाजीपुरम्, लखनऊ

क्या आप जानते हैं ?

- प्रताप नारायण मिश्र स्मृति युवा साहित्यकार सम्मान भाऊराव देवरस सेवा न्यास उ०प्र० द्वारा प्रति वर्ष ५ युवा साहित्यकारों को प्रदान किया जाता है।
- जल प्रदूषण से गैस्ट्रोएन ट्राइरिस, हैजा, टाय फाइड, हेपेटाइरिस, पीलिया जैसे रोग होते हैं।
- वायु प्रदूषण से साँस लेने में कठिनाई, फेफड़ों का कैंसर तथा श्वसन सम्बन्धी रोग होते हैं।
- ध्वनि प्रदूषण से श्रवण शक्ति का क्षय, चक्कर, अनिद्रा तथा थकान होती है।
- अन्दमान निकोबार द्वीप समूह में जनसंख्या का घनत्व ३४ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है।
- भारत में डाक बीमा योजना वर्ष १६८४ में प्रारम्भ हुई थी।
- लोक अदालत सर्वप्रथम गुजरात प्रान्त में आयोजित की गयी थी।
- भारत में महिला साक्षरता दर मात्र ३६.२६ प्रतिशत है।

– वेदिका

१९ वर्षीय छात्र हेमू कालाणी का बलिदान

– वागीश

वह अभी छात्र ही था, पढ़ रहा था सक्खर (सिन्ध प्रान्त) में १०वीं कक्षा में, नाम था, हेमू कालाणी। वह सक्खर के ही निवासी सिन्धी परिवार के श्री पेसूमल कालाणी का लाड़ला पुत्र था। जन्मा था, सन् १९२४ में ११ मार्च के दिन। आगे हाईस्कूल में मैट्रिक परीक्षा के तैयारी करते समय भारत भर में जब सन् १९४२ का 'अंग्रेजों! भारत छोड़ो' तथा "करो या मरो" ('डू आर डाई') के आग्नेय आन्दोलन की उग्र आँधी चली, तो हेमू कालाणी का मन देश को स्वतन्त्र कराने के लिए ब्रिटिश दासता को उखाड़ फेकने के लिए मचल उठा, व्यग्र और उतावला हो उठा। उन दिनों सक्खर में अंग्रेजों के खिलाफ कई दल बने थे जो सक्रिय थे, उनमें एक का नाम था–"स्वराज्स–सेना" ('स्वराज्य–सेना–मण्डल'); हेमू कालाणी इस संस्था के संस्थापक और नेतृत्व कर्त्ता डा० मंघाराम कालाणी से मिला और उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि "मैं भी देश की आजादी के लिए आपके साथ जुड़कर कुछ करना चाहता हूँ– आप मुझे भी "स्वराज्य–सेना" में भर्ती कर लें।" डा० मंघाराम कालाणी ने हेमू कालाणी को दल में भर्ती कर लिया। वस्तुतः डा० मंघाराम कालाणी ने छात्रों को एकत्र कर यह दल सिन्ध में युवावर्ग, विशेषकर छात्रों में स्वतन्त्रता की भावना जागृत करने के उद्देश्य से तथा साथ ही उन्हें आजादी की दिशा में सक्रिय करने के ध्येय से गठित किया था। हेमू कालाणी और उनके एक अन्य साथी विद्यार्थी माधव आदि प्रमुखता से दल के कार्यों में भाग लेने लगे।

ब्रिटिश सरकार के दमन के विरुद्ध हेमू कालाणी ने सक्खर में कई बार बुलेटिन (पत्रक) तथा इश्तहार बाँटे–चस्पा किये। इसी बीच एक दिन उन्हें पता चला कि उस स्वतन्त्रता–आन्दोलन का दमन करने–कुचलने के उद्देश्य से गोरों से भरी एक सैनिक ट्रेन सक्खर होकर गुजरने वाली है, इसमें जो अंग्रेज सैनिक जा रहे हैं, वे गोलियाँ चलाकर इस आन्दोलन का क्रूरतापूर्व दमन करने वाले हैं। इस खबर ने हेमूकालाणी के कलेजे में प्रतिकार की आग धधका दी और उसने तय किया कि हम यह ट्रेन सुरक्षित आगे पहुँचने ही नहीं देंगे। खबर थी कि अंग्रेज सैनिकों को भरकर ले जा रही यह गाड़ी २३ अक्तूबर की रात्रि में सक्खर होकर गुजरेगी– अतः हेमू कालाणी ने माधव और एक अन्य छात्र साथी साथ जुटाकर उस फौजी ट्रेन को उलट दने की योजना बनाली और जब घर के लोग सो गये तो ये तीनों छात्र रेलवे पटरियों की फिश प्लेटें आदि निकाल फेकने के लिए औजार लेकर रेलवे लाइन पर पहुँच गये; परन्तु अंग्रेजों ने उन दिनों बहुत कड़ाई से "मार्शल लॉ" लागू कर रखा था, जिसके अन्तर्गत स्टेशन और रेलवे लाइनों पर भी बन्दूकधारी सिपाही नियुक्त कर रखे थे, जो हर समय गश्त लगाकर पहरा दे रहे थे– हेमू कालाणी और उनके दोनों साथी छात्रों ने परिश्रम करके उस रात रेलवे पटरी की फिश प्लेटें औजारों द्वारा खोल डालीं– तभी हथियार बन्द गश्ती दल की नजर उन पर पड़ी और वे सिपाही उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ पड़े– तुरन्त मौका पाकर हेमू कालाणी के दो साथी तो भाग निकले और गिरफ्तार होने से बच गये, परन्तु हेमू कालाणी ने भागने का विचार ही नहीं किया, न जरा भी डरा। उसे वहीं रेल पटरी के पास गिरफ्तार कर लिया गया। उसका अविचल मन इस गिरफ्तारी से तनिक भी प्रभावित या आतंकित नहीं हुआ। जेल में हेमू से भेद उगलवाने तथा उनके साथियों के नामों की जानकारी करने के लिए पुलिस ने बहुत यातनाएँ दीं, परन्तु धन्य हेमू! उसने यातनाएँ झेलीं; परन्तु मुँह न खोला, अपने किसी भी साथी का नाम पुलिस को न बताया, जिससे वे पुलिस की गिरफ्त से बच गये। इन शेष दो छात्रों में से माधव से मेरी भेंट काशी, मिर्जापुर और दिल्ली में कई बार हुई– वे अपने शहीद साथी हेमू कालाणी

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

सागर पान

– डॉ० परशुराम शुक्ल

राक्षसराज वृत्रासुर के मरते ही उसके सैनिक कालकेय राक्षसों में भगदड़ मच गयी। देवतागण चुन–चुन कर कालकेयों को मारने लगे। कालकेयों को बचने और छुपने का कोई स्थान नहीं मिल रहा था। देवताओं के साथ युद्ध में बहुत से कालकेय मारे गये; किन्तु जो समुद्र में जाकर छिपे, वे बच गये।

कालकेय राक्षस कुछ समय तक सागर में छिपे रहे।

कालकेय राक्षसों के राजा वृत्रासुर का वध एक ऋषि की अस्थियों से बनाये गये वज्र से हुआ था, अतः कालकेय राक्षसों ने पृथ्वी के सभी ऋषियों–मुनियों का वध करने का निश्चय किया।

देवराज इन्द्र एवं अन्य देवताओं के भय से कालकेय तीन दिन तक सागर में छिपे रहे और ऋषियों का संहार करने की योजनाएँ बनाते रहे। अन्त में सभी ने मिलकर एक भयंकर विनाशकारी योजना बनायी।

चौथी रात्रि होते ही सभी कालकेय राक्षस सागर के बाहर निकले और उन्होंने आसपास के जंगलों में तप करने वाले बहुत से ऋषियों को मार डाला। प्रातःकाल होते ही वे लौट आये और पुनः सागर में छिप गये।

कालकेय राक्षसों का यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। इससे सम्पूर्ण पृथ्वी पर चारों ओर ऋषियों–मुनियों की अस्थियाँ नजर आने लगीं। तीनों लोकों में त्राहि–त्राहि मच गयी।

कालकेय राक्षसों के अत्याचार से दुःखी होकर ऋषियों ने देवराज इन्द्र से अपनी रक्षा की प्रार्थना की। इन्द्र में कालकेयों को नष्ट करने की शक्ति तो थी, किन्तु इतने विशाल सागर में उन्हें ढूँढ़ना उसकी शक्ति के बाहर था।

इधर धीरे–धीरे कालकेयों के अत्याचार और बढ़ने लगे। कालकेयों के अत्याचारों से ऐसा लग रहा था कि पृथ्वी से जप–तप करने वाले ऋषिगण समाप्त हो जायेंगे।

देवराज इन्द्र ऋषियों की रक्षा के लिए चिन्तित थे; किन्तु उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। जब उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया तो वह भगवान् विष्णु के पास पहुँचे।

भगवान् विष्णु ने देवराज इन्द्र की प्रार्थना सुनी तथा उन्हें अगस्त्य मुनि के पास भेजा।

भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर देवराज इन्द्र अगस्त्य मुनि के पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम किया।

मित्रावरुण के पुत्र, परम तेजस्वी अगस्त्य मुनि अपने सहयोगी ऋषियों के साथ एक यज्ञ कर रहे थे।

देवराज इन्द्र को देख कर उन्होंने उन्हें आदर सहित बैठाया और आने का कारण पूछा।

देवराज इन्द्र ने हाथ जोड़ कर अपनी विपदा कह सुनायी। अगस्त्य मुनि शान्तिपूर्वक इन्द्र की बात सुनते रहे।

"देवेन्द्र ! आप मुझसे क्या चाहते हैं ?" अगस्त्य मुनि ने मौन तोड़ा।

"मुनिवर ! आप परम तपस्वी हैं। इस समय तीनों लोकों में आपके समान तेजस्वी मुनि और कोई नहीं है। महासिन्धु भी आपसे भय खाता है। यदि आप समुद्र को सुखा दें, तो सभी कालकेय राक्षस सामने आने पर विवश हो जायेंगे। उनके सामने आते ही हम उनका वध कर डालेंगे। इस प्रकार आपके सहयोग से पृथ्वी पर ऋषियों का जीवन बचाया जा सकता है।" देवराज इन्द्र विनम्रतापूर्वक बोले।

"देवराज ! मैं तुम्हारी विनम्रता से अति प्रसन्न हूँ। पृथ्वी के ऋषियों–मुनियों पर आये इस विकट संकट को दूर करने में मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा।" कहते हुए अगस्त्य मुनि उठे और इन्द्र आदि देवों के साथ सागर तट पर पहुँचे।

"हे सागर ! मैं विश्व के कल्याण हेतु तुम्हारा

...न करता हूँ।" अगस्त्य मुनि सागर की ओर दोनों हाथ उठा कर बोले और अँजुरि बना कर समुद्र का सारा जल पी गये।

समुद्र का जल समाप्त होते ही कालकेय राक्षस सामने आ गये। देवताओं ने उन्हें देखते ही युद्ध के लिए ललकारा।

देवताओं और कालकेय राक्षसों में कई दिनों तक भयंकर युद्ध होता रहा। इस युद्ध में बहुत से कालकेय राक्षस मारे गये, जो बचे वे भूमि फाड़ कर पाताल में चले गये।

इस प्रकार देवराज इन्द्र की विजय हुई। उन्होंने ऋषियों-मुनियों को अभयदान दिया और स्वर्गलोक लौट गये। □

- १००, पंचशील नगर, दतिया–४७५६६१ (म०प्र०)

(पृष्ठ ५५ का शेष)

हेमू कालाणी...

के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनकी सराहना करते नहीं अघाते थे। जिन सिन्धी अध्यापक ने सक्खर में उन दिनों पढ़ाया था, पाकिस्तान बनने पर वे लखनऊ के हुसनेगंज मुहल्ले में रहते रहे– वे भी मुझे अपने छात्र हेमू के विषय में बताते थे कि "वह बहुत शर्मीले लजीजे स्वभाव का लड़का था और कक्षा में सिर पर टोपी पहन कर आता था। उसे देखकर कभी भी किन्हीं लोगों ने यह कल्पना तक नहीं की कि यह भोलाभाला, सरलमना, अल्प–भाषी, लज्जालु छात्र ऐसे साहस का काम करेगा और हँसते–हँसते फाँसी का फन्दा पुष्प–हार की भाँति पहन कर शहीद हो जायेगा।"

सक्खर के सैनिक न्यायालय (मार्शल लॉ–कोर्ट) ने पहले मुकदमा चलाकर हेमू को आजीवन करावास की सजा सुनाई, किन्तु बाद में हैदराबाद (सिन्ध) का जो उच्चतर सैनिक न्यायालय (मुख्यालय) था, उसने हेमू कालाणी की आजीवन कारावास की सजा को फाँसी की सजा में परिणत कर दिया। तदनुसार १६ वर्षीय सुन्दर-सुदर्शन और सुशील छात्र हेमू कालाणी २१ जनवरी (सन् १६४३) के दिन सक्खर के केन्द्रीय कारागार में अतीव प्रसन्नतापूर्व भारतमाता का जय-निनाद गुँजाता हुआ फाँसी चढ़ कर देशवासियों को यह प्रेरणा दे गया कि **"जिसे मरना नहीं आया, उसे जीना नहीं आया।"** □

चिरैया उड़ने को तैयार !

– कृष्ण शलभ

उड़ने को तैयार, चिरैया उड़ने को तैयार !
अभी यहाँ से फुर्र उड़ेगी,
कहाँ–कहाँ जायेगी।
दबा चोंच में दाना दुनका,
बच्चों को लायेगी।।
लाकर मुँह में चुग्घा देगी, खूब करेगी प्यार !
कल सरदी का मौसम होगा,
ठण्ड पड़ेगी भारी।
सोच रही है करनी होगी,
मुझको कुछ तैयारी।।
चलूँ धूप की चादर लाऊँ सूरज से उपहार !
हलवाई के पास चिरैया,
पहुँची दौड़ी–दौड़ी।
बच्चे कल से माँग रहे हैं,
गरमागरम पकौड़ी।।
दूँगी एक रुपैया, भैया लूँगी नहीं उधार !

– ५४२, नया आवास विकास, सहारनपुर (उ०प्र०)

हम रहें या न रहें देश रहे

– कमला मदन

जो है सोया उसे जगाना है !
ऐसा माहौल अब बनाना है !
कर्म–पूजा है ध्येय हो सबका,
ऐसी निष्ठा हमें सिखाना है !
हम रहें या न रहें, देश रहे,
दर्द दिल में यही समाना है !
कह रही हैं कथाएँ वीरों की,
लाज धरती की अब बचाना है !
अब हमें लक्ष्य–सिद्धि को लेकर,
चाँद–तारों के पार जाना है।।

– मदारबड़ मस्जिद के पास, तराना, जनपद–उज्जैन (म०प्र०)

देववाणी शिक्षण (२/६)

अब इस पाठ में आप कुछ श्लोक पढ़िये–

दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम्।

(महाभारत शान्ति० १३६/६१)

पदानि– दुःखात्। उद्विजते। सर्वः सर्वस्य। सुखं। ईप्सितम्।

अन्वय :– सर्वः दुःखात् उद्विजते। सर्वस्य सुखं ईप्सितम्।

अर्थ :– सब दुःख से दुःखी होते हैं, सबको सुख ही इष्ट है।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।

(महाभारत शांति० १७४/४८)

पदानि–यत्। च। काम+सुखं। लोके। यत्। च। दिव्यं। महत्। सुखम्। तृष्णा+क्षय+सुखस्य। एते कलां न। अर्हन्ति। षोडशीम्।

अन्वय :– लोके यत् काम+सुखं, यत् च दिव्यं महत् सुखं। एते तृष्णा+सुखस्य षोडशीं कलां न अर्हन्ति।

अर्थ – लोक में जो काम का सुख है और जो बड़ा दिव्य सुख है, वे इच्छा के नाश के सुख के सोलहवें भाग की भी योग्यता नहीं रखते।

प्रायेण च श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः।।

(महाभारत शांति० २८/२६)

पदानि– प्रायेण। च। श्रीमतां। लोके। भोक्तुं। शक्तिः। न। विद्यते। काष्ठानि। अपि। हि। जीर्यन्ते। दरिद्राणां। च। सर्वशः।।

अन्वय :– लोके प्रायेण श्रीमतां भोक्तुं शक्तिः न विद्यते। दरिद्राणां च सर्वशः काष्ठानि अपि हि जीर्यन्ते।।

अर्थ– जगत् में बहुधा श्रीमानों में भोग भोगने की शक्ति नहीं होती है। परन्तु दरिद्रों को सब लकड़ियाँ भी हजम हो जाती हैं।

भावार्थ– धनी मनुष्य उत्तम अन्न को भी पचा नहीं सकता; परन्तु दरिद्री मनुष्य को लकड़ियाँ भी खाने पर हजम हो जाती हैं।।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।

(मनुस्मृति ४/१६०)

पदानि– सर्वं। पर+वशं। दुःखं। सर्वं। आत्मवशं। सुखं। एतत् विद्यात् समासेन। लक्षणं सुखदुःखयोः।।

अन्वयः – पर+वशं सर्वं दुःखं। आत्म+वशं सर्वं सुखं। समासेन सुख+दुःखयोः एतत् लक्षणं विद्यात्।।

अर्थ – दूसरे के अधीन होना सब दुःख है और अपने अधीन रहना सब सुख है। सारांश से सुख और दुःख का यह लक्षण जान लें। पराधीनता दुःख और स्वाधीनता सुख है।।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनाऽपराजितः।।

(महाभारत शांति. २५/२६)

पदानि– सुखं। वा। यदि। वा। दुःखं। प्रियं। वा। यदि। वा। अप्रियं। प्राप्तं। प्राप्तं। उपासीत। हृदयेन। अपराजितः।।

अन्वय :– सुखं वा यदि वा दुःखं, प्रियं वा यदि वा अप्रियं, प्राप्तं प्राप्तं हृदयेन अपराजितः उपासीत।।

अर्थ – सुख किंवा दुःख, प्रिय किंवा अप्रिय जो प्राप्त होवे, उसको हृदय से पराजित न होते हुए स्वीकार करे।।

भावार्थ – सुख दुःख, प्रिय अप्रिय जो भी कुछ प्राप्त हो, उसको स्वीकार करता जाय, परन्तु कभी हृदय उत्साहहीन न बनावे।।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

(मनुस्मृति २/१२)

पदानि– वेदः। स्मृतिः। सत्+आचारः। स्वस्य। च। प्रियं। आत्मनः। एतत्। चतुर्विधं। प्राहुः। साक्षात् धर्मस्य। लक्षणम्।।

अन्वय :– वेदः स्मृतिः, सदाचारः, स्वस्य आत्मनः प्रियं च, एतत् चतुर्विधं धर्मस्य साक्षात् लक्षणं प्राहुः।।

अर्थ– श्रुति, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार तथा अपने आत्मा का प्रियाचरण यह चार प्रकार का धर्म का प्रत्यक्ष लक्षण है, ऐसा कहते हैं।।

सूचना

पाठक इन श्लोकों को बार–बार पढ़ें, इतनी बार पढ़ें कि अन्त में श्लोक पढ़ते ही उसका अर्थ ध्यान में आ जावे। इस रीति से पाठक पढ़ते जायेंगे, तो एक वर्ष में रामायण, महाभारत समझने योग्य संस्कृत उनको आ सकती है।

सन्धि किये हुए वाक्य

तस्य तडागस्य समीपे एको वृक्षोऽस्ति। तस्य तडागस्य जले शोभनं रक्तं कमलमस्ति। तद्रक्तं कमलं त्वमधुनात्रानय।

स भूप इदानीमश्वमारोहति। तस्य सेवक उष्ट्रमारोहति। तस्य देशस्यायं राजा धार्मिकोऽस्ति।

तवाश्वः कुत्रास्ति ममाश्वस्तस्य वृक्षस्य समीपमेवास्ति। कस्य वृक्षस्य समीपम्? तत्रोद्याने यो वृक्षोऽस्ति तस्य समीपं ममाश्व इदानीमस्ति। तत्रानेन मार्गेण गच्छ, पश्य च तमश्वं तत्र। तवाश्वस्य को वर्णोऽस्ति? ममाऽश्वस्य श्वेतो वर्णोऽस्ति। तर्हि श्वेतवर्णोऽश्वस्तस्मिन्नुद्याने इदानीं नास्त्येव। कुत्र गतो वा केन नीतो वा न जानामि।

भूल सुधार : अक्टूबर ९९ में छपा पाठ (२/४) नवम्बर ९९ में पुनः छप जाने के कारण दिसम्बर ९९ में छपे पाठ क्रमांक २/६ को २/५ पढ़ें। भूल के लिए खेद है।

चिट्ठी आई पेरिस से -

क्यों ? आखिर क्यों ?

– डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय

विभिन्न व्यक्तियों, स्थितियों और वस्तुओं के सम्पर्क में आने पर उनके मध्य तुलना करना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है– विशेषरूप से उस व्यक्ति के लिए, जो भारत से दूर रहने पर भी मन से भारत में ही रहता हो। आज पश्चिमी देशों में बसने के लिए लोग लालायित हैं, चाहे इसके लिए उन्हें कुछ भी क्यों न करना पड़े। ऐफिल टावर के पास खिलौने और मारू नामक फल को भून–भून कर बेचते हुए भारतीय युवकों से यह पूछने पर कि वे किस माध्यम से यहाँ आये हैं और इसमें उन्हें कितनी धनराशि खर्च करनी पड़ी है? बड़े विस्मयावह उत्तर मिलते हैं। यहाँ आने के लिए किसी ने भी तीन–चार लाख रुपयों से कम नहीं दिया है। ये सभी अच्छे–खासे खाते–पीते घरों के लड़के हैं। इनमें से कोई अमृतसर से आया है, तो कोई जालन्धर से या होशियारपुर से। शहरों के ये नाम यहाँ स्थाली–पुलाक–न्याय के अनुसार लिये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य दर्जनों शहरों से भी नौजवान यहाँ आये हैं और बराबर आते ही जा रहे हैं। इनमें से ज्यादातर फर्जी पासपोर्टों से आये हैं– कुछ असली पासपोर्टों से भी आये हैं; लेकिन उनमें दिये गये विवरण में भी बहुत हेर–बदल है। कोई तबलावादक बनकर आया है, तो कोई सितारवादक बनकर। अधिकतर पर्यटक वीसा लेकर आये थे– वीसा की अवधि समाप्त होने पर भी वापस नहीं गये। कभी कोई पुलिस की पकड़ में आ गया, तो उसने शरणार्थी होने का बहाना कर दिया। इन 'शरणार्थियों' के कथनानुसार भारत अशान्ति–ग्रस्त है। वहाँ रहने लायक मानवीय स्थितियाँ नहीं हैं। इनके साथ वहाँ की सरकार ने इतना बुरा बर्ताव किया कि इन्हें वहाँ से भागकर यहाँ शरण लेनी पड़ी। कुछ को न्यायालय से इस आधार पर स्थगनादेश भी मिल गया– एक को मिला स्थगनादेश, फोटो कापी में चित्र बदलकर दूसरे कितने ही लोगों का सहायक बन जाता है। इनमें से कुछ ऐसे भी भाग्यशाली भारतीय युवक हैं, जिन्हें यहाँ की सरकार ने 'शरणार्थी–भत्ता' भी स्वीकृत कर दिया है– ये मेट्रो ट्रेन में बिना टिकट चलना अपना अधिकार समझते हैं। भारत में, यहाँ आने के लिए, इनमें से बहुतों ने अपनी जमीनें बेची हैं, मकान गिरवीं रखे हैं, और उससे मिली लाखों की धनराशि उन फर्जी या असली ट्रेवेल एजेन्सियों अथवा उनके बेनामी मालिकों के हवाले कर दी हैं, जो भारत के सफेदपोश वर्ग में हैं। ये एजेन्सियाँ इन्हें

झूठे–सच्चे पासपोर्ट दे देती हैं– किसी में फोटो बदला रहता है, तो किसी में विवरण। इन एजेन्सियों के संरक्षक बड़े–बड़े अधिकारी हैं– कभी विमानपत्तन पर जाँच के दौरान कोई पासपोर्ट नकली पाया भी जाता है, तो उसे जारी करनेवाले लोगों पर कोई आँच नहीं आती। हाँ, पासपोर्ट धारक को जरूर कभी–कभी कानून के हवाले कर दिया जाता है। ट्रेवेल एजेन्सी के शुभेच्छुओं के हाथ बड़े लम्बे हैं। स्वदेश से विदेशों तक में इनका सुदृढ़ जाल बिछा है। विदेश मन्त्रालय के कर्मचारियों के अतिरिक्त विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों के अनेक अधिकारी–कर्मचारी भी इसमें संलिप्त हैं। लाखों की यह धनराशि खर्च करने के पश्चात् भी फ्रान्स या दूसरे देशों में पहुँचने के बाद इन बेरोजगार नौजवानों को कोई बड़ा सम्मानित या वैध रोजगार नहीं मिल जाता है। इनमें से अधिकांश खुले आसमान के नीचे ठिठुरन भरी ठण्ड, आँधी–पानी और पुलिस की धरपकड़ से जूझते हुए गुब्बारे, ऐफल के धातु–प्रतीक, चाभी के गुच्छे या पानी की छोटी बोतलें बेंचते हुए देखे जा सकते हैं। पुलिस की नजर से बचने के लिए इन्हें पार्कों की झाड़ियों में अपना सामान छिपाते हुए जिस भाग–दौड़ और जिल्लत का सामना करना पड़ता है, वह इनकी जिजीविषा और संघर्षशीलता का गहराई से अहसास कराती है। एक–एक कमरे में आठ–आठ लड़कों को रहना पड़ता है। सुबह से रात तक भाग–दौड़ की इस कशमकश से भरी जिन्दगी में, कड़ी मेहनत के बल पर ये जो कुछ कमाते हैं, उसे सही ढंग से अपने माता–पिता को नहीं, भेज सकते हैं। यहाँ का कोई बैंक, यहाँ तक कि बैंक आफ इण्डिया या स्टेट बैंक आफ इण्डिया भी इनके खाते नहीं खोलता, इन्हें बैंक ड्राफ्ट जारी नहीं करता और न इन्हें भारत में धनराशि भेजने में कोई मदद ही करता है। फिर इन्हें इस काम में भी गैरकानूनी संस्थाओं का सहारा लेना पड़ता है। इनके द्वारा प्रदत्त धनराशि इनके माता–पिता तक पहुँचती तो है गैर कानूनी ढंग से, लेकिन आधे–अधूरे रूप में। कभी–कभी कुछ नकली नोटों के रूप में भी। इनके द्वारा भेजी गई धनराशि भी इस तरह काली धनराशि ही सिद्ध होती है। अपने काम–धन्धे के सिलसिले में, प्रायः इन्हें जेल भी जाना पड़ता है। यहाँ की पुलिस के द्वारा पकड़े जाने पर इन्हें मारपीट का शिकार तो नहीं बनना

पड़ता, लेकिन अपमानित तो होना ही पड़ता है। पुलिस इनसे डाँट–फटकार करती है, सामान फेंक देती है और एक–दो या दो–चार दिन जेल में रखती है। यहाँ का राजदूतावास भी इस सन्दर्भ में इनकी कोई सहायता नहीं करता। कभी–कभी इन युवकों से अपनी तुलना करता हूँ। एक ये हैं, जो यहाँ रहने के लिए कितनी यातना झेलते हैं, और दूसरी ओर मैं हूँ, जो सारी सुख–सुविधाओं में रहते हुए भी यहाँ अनमनापन अनुभव करता हूँ। ऐसा भी नहीं है कि इनकी तुलना में मुझमें ज्यादा देशभक्ति है। ये भी सबके सब देशप्रेम से रहित नहीं हैं। इनमें से भी बहुतों को मैंने माँ–बाप के लिए या भाई–बहनों के लिए ही नहीं, स्वदेश में घटती हुई दुर्घटनाओं पर भी छटपटाते देखा है। इन्हें भी अपने मोहल्ले के साथियों या गाँव–जवार के स्वजनों की ललक कभी–कभी अनुभव होती है। फिर वह क्या चीज है, जो इन्हें यहाँ ले आयी है? वह कौन–सा दुर्निवार आकर्षण है, जो इन्हें विदेश की इस माटी पर अपना खून–पसीना बहाने के लिए विवश कर रहा है? ऐसा भी नहीं है कि ये वास्कोडिगामा या कोलम्बस की तरह 'नयी दुनिया' की खोज में निकले हों। जितनी धनराशि लुटाकर ये यहाँ पहुँचे हैं, उतने में ये भारत में क्या कोई काम–धन्धा नहीं खड़ा कर सकते थे? कभी–कभी सोचता हूँ, आज से २७–२८ वर्ष पूर्व यदि मुझे भारत में जीविका का मार्ग न मिला होता, आरक्षण के नाम पर इसी तरह की धींगामुश्ती या राजनैतिक ब्लैकमेल का वातावरण होता, जीवन को उत्साही ढंग से जीने का फिर भी भाव होता, तो मैं भी कुछ इसी तरह यहाँ आकर, यहीं कहीं मारू या खिलौने बेचता होता। मैं भाग्यशाली था, जो मुझे सही परामर्श सही समय पर मिल गया और मैं उस समय यहाँ आने से बच गया। उस उम्र में यहाँ आया होता, तो मैं भी इतना अनमनापन न अनुभव करता– इस मायानगरी के सुख–विलास में निश्चित ही डूब गया होता। लेकिन विचार का क्रम यहीं पर समाप्त नहीं होता है और इस प्रश्न की प्रासंगिकता हमें निरन्तर झकझोर रही है कि हमसे केवल दो वर्ष पहले स्वतन्त्र हुए फ्रान्स में ऐसा क्या है, जो हमारे होनहार युवकों को घर–द्वार बेंच करके भी यहाँ आने के लिए प्रेरित कर रहा है? इस देश में ऐसा क्या है, जिसके आकर्षण में निमग्न होकर वे प्रतिभाशाली पुरुष, जो कभी अपनी चढ़ती जवानी में यहाँ आये थे, यहाँ जिन्हें नौकरी मिली, नौकरी के साथ छोकरी मिली और अब जो सत्तर–पचहत्तर वर्ष के हो चुके हैं, वे भी, जो यहाँ रहते हुए भी भारत के लिए बेहद बेचैनी अनुभव कर रहे हैं, भारत नहीं जाना चाहते हैं। वे यहीं रहकर भारत को महसूस कराना चाहते हैं, 'इण्डिया टूडे' के पृष्ठों में भारत को टटोल रहे हैं और कम्प्यूटर के नेटवर्क में ज्यादातर समय भारत की खोज में लगे रहते हैं; लेकिन वे आकण्ठ भारतीय होने पर भी भारत वापस नहीं जाना चाहते। यह सही है कि भारत में कोई भी दुर्घटना होने पर उनका दिल–दिमाग बेचैन हो उठता है, करगिल के युद्ध में वीरगति–प्राप्त शूरों के परिवारों की सहायतार्थ वे उन्मुक्त दान करने में संकोच नहीं करते, उड़ीसा के भयानक तूफान के समाचार सुन–सुनकर उनके माथे पर लकीरें गहरी दिखने लगी हैं, लेकिन भारत के प्रति इतनी भक्ति होने पर भी वे वहाँ लौटना नहीं चाहते हैं– क्यों? आखिर क्यों? □

– अतिथि, सारबोन नूविल विश्वविद्यालय, पेरिस।

चिकित्सा–चेतना

ऐसा आदेश सारे देश में लागू हो

रोगी पहले तो अपने रोग से परेशान रहता है, उस पर डॉक्टर या अस्पताल का बिल रही–सही कमी पूरी कर देता है। निजी अस्पतालों–चिकित्सालयों में इलाज के नाम पर की जा रही लूट से आज कौन अछूता है! अस्पताल में भर्ती होने पर कमरे के किराये, सेवा–शुश्रूषा से लेकर एक गिलास पानी पिलाने तक के पैसे मरीजों से वसूले जाते हैं, दवाइयों के अधिकतम खुदरा मूल्य से दुगनी कीमत वसूल की जाती है। निजी अस्पतालों में साधारण कमरों के किराये किसी अच्छे होटल के वातानुकूलित कमरे के किराये के समकक्ष हैं। अगर आप विशेषज्ञ–चिकित्सा चाहते हैं तो यह सब बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। क्योंकि अधिकांश नामी विशेषज्ञों ने या तो अपना अस्पताल खोल लिया है या फिर किसी 'कॉरपोरेट अस्पताल' से सम्बद्ध हो गये हैं और मरीज या उसके रिश्तेदार इलाज के मामले में कोई 'रिस्क' नहीं लेना चाहते।

पिछले दिनों राजस्थान सरकार ने निजी अस्पतालों, नर्सिंग–होम और क्लिनिकों को निर्देश दिया है कि वे रोगियों को उपचार तथा अस्पताल से छुट्टी देते समय दिये जाने वाले एकमुश्त बिल में रोगी को दी गयी दवाइयों का मूल्य अलग से दर्शाएँ। निजी अस्पतालों द्वारा मरीजों को छुट्टी देते समय जो बिल दिया जाता है, उसमें दवा व अस्पताल का खर्चा शामिल कर दिया जाता है, जिससे दवा के वसूले गये मूल्य की जानकारी नहीं होती।

औषधि मूल्य नियन्त्रण आदेश–१९९५ के अन्तर्गत औषधि के लेबल पर अंकित मूल्य से अधिक नहीं लिया जा सकता। अन्य सभी राज्यों की सरकारें भी इस तरह का आदेश अपने राज्यों में जारी करें, तो रोगी और उसके तीमारदारों को कुछ हद तक राहत मिलेगी। □

सिद्धानां कपिलो मुनिः

- श्याम नारायण कपूर

सांख्य दर्शन भारत का प्राचीनतम दर्शन माना जाता है। महाभारत में इसे "सनातन" कहा गया है। इसके प्रवर्तक महर्षि कपिल को पुराणों में भगवान् का अवतार बतलाया गया है। भागवत पुराण में उन्हें विष्णु के चौबीस अवतारों में गिनाया गया है, रामायण–महाभारत में ब्रह्मा का मानस पुत्र, सांख्य प्रवचन सूत्र में उन्हें अग्नि का अवतार माना गया है। पौराणिक महापुरुष होने के साथ ही उनका ऐतिहासिक पुरुष भी होना असंदिग्ध है। महर्षि कर्दम उनके पिता थे और देवहूति उनकी माता। इस प्रकार अवतारी पुरुष उद्घोषित कर उन्हें महिमा मण्डित किये जाने से धर्म, दर्शन और अध्यात्म तथा ज्ञान–विज्ञान के संवर्द्धन में उनके योगदान के महत्त्व और उनकी लोकप्रियता की पुष्टि होती है।

प्राचीन काल में यह परम्परा थी कि ज्ञान–विज्ञान के चर्चित क्षेत्रों में विशिष्ट एवं असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति को अवतारी पुरुष मान कर सम्मानित किया जाता था। महर्षि कपिल को उनके द्वारा प्रवर्तित 'सांख्य दर्शन' के महत्त्व के अनुसार ही उन्हें अवतारी पुरुष माना जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। महर्षि की चर्चा करते हुए डा० राधाकृष्णन ने अपने 'भारतीय दर्शन' में लिखा है **कि महर्षि कपिल के पौराणिक होने की हम भले ही उपेक्षा कर दें परन्तु इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि कपिल ऐतिहासिक पुरुष थे और उन्होंने 'सांख्य दर्शन' प्रवर्त्तन किया था।**

और भी अनेक विद्वान् उनके पौराणिक वर्णन की उपेक्षा करते हुए उन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार करते हैं। कीथ प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों ने इसके विपरीत मत व्यक्त किया; परन्तु बहुमत उनको ऐतिहासिक व्यक्ति मानता है। उनके अनुसार कपिल के आविर्भाव का समय गौतम बुद्ध से पूर्व है। उनके द्वारा प्रवर्त्तित 'सांख्य दर्शन' भारत का प्राचीनतम दर्शन है। महाभारत ने सांख्य और योग दोनों को अति प्राचीन कहा है और सनातन कह कर भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के अतिरिक्त श्वेताश्वतर उपनिषद् और भगवद्गीता में बड़े आदर के साथ कपिल का उल्लेख किया गया है। गीता में तो सांख्य का उल्लेख अनेक बार हुआ है। गीता के अनुसार कपिल मुनि भगवान् की विभूति हैं।

सांख्य–दर्शन द्वारा कपिल मुनि ने प्रकृति के क्रमिक विकास के माध्यम से भौतिक जगत् की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस्– इन तीन गुणों की साम्यावस्था है। इस साम्यावस्था के भंग होने पर सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ होती है। प्रकृति अति सूक्ष्म है, इसी से उसे 'अव्यक्त' भी कहते हैं। उसके विकास–क्रम से उद्भूत तत्त्व 'व्यक्त' कहे जाते हैं। यह दर्शन ईश्वर को नहीं मानता। उसके अनुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति ही सृष्टि का मूल कारण है। जगत् का मूल कारण ईश्वर न होकर 'अचेतन' है। इस दर्शन में भौतिक जगत् का मूल कारण प्रकृति को माना गया है और प्रकृति को ही मूल भौतिक तत्त्व का नाम दिया गया है। इस मूल तत्त्व के तीन अंग या अवयव माने गये हैं। इन्हें गुण की संज्ञा दी गयी है। ये गुण हैं– सत्त्व, रजस् और तमस्।

सत्त्व मूल तत्त्व का वह अवयव है, जिसमें बुद्धि की क्षमता निहित है। रजस् में गति, ऊर्जा अथवा कर्म करने की शक्ति और तमस् से भार अथवा जड़ता की अभिव्यक्ति होती है। विश्व की सभी वस्तुएँ इन तीन गुणों के मिश्रण से बनी हैं। विविध वस्तुओं में ये तीन गुण विभिन्न अनुपातों में न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इन तीन गुणों से अतिसूक्ष्म पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। ये पाँच तन्मात्राएँ हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। ये तन्मात्राएँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के मूल तत्त्व है। इन तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज, अप् (जल) और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों की उत्पत्ति (विकास) होता है। इस प्रकार सभी पदार्थों में एक ही सत्ता विभिन्न अनुपातों और रूपों में विद्यमान है। इसी सत्ता को ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है। सृष्टि की उत्पत्ति और विकास की इस व्याख्या के साथ ही सांख्य दर्शन में ऊर्जा शक्ति (Energy) के स्थयित्व– Conservation उसके रूपान्तरण– Transformation की क्षमता के साथ उसके छितराव–अपव्यय अथवा क्षय Dissipation को भी विशेष महत्त्व दिया गया है।

सांख्य दर्शन के अनुसार पदार्थ का नाश नहीं होता, मात्र उसका रूप परिवर्त्तित होता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी द्रव्य (Matter) के नित्य होने को स्वीकार करते हैं। इस दर्शन में 'यौगिक' Compound की रचना में अणु, परमाणु और त्रिसेणु का भी उल्लेख हुआ है। वैशेषिक–दर्शन में कणाद ऋषि ने परमाणुवाद को अधिक स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है।

सांख्य–दर्शन का लक्ष्य मनुष्य को दुःखों से निवृत्त करना है। दुःख तीन प्रकार के हैं– आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। जो दुःख मनुष्य के निजी व्यक्तिगत कारण से होते हैं उन्हें आध्यात्मिक कहा जाता है। इनके भी दो भेद हैं– शारीरिक रोग और मानसिक चिन्ता, विषाद आदि। भूत–प्रेत, ग्रहों आदि से मिलने वाले कष्ट आधिदैविक कहलाते हैं। आधिभौतिक रोग– दूसरे प्राणियों– मनुष्यों, पशु–पक्षी, सर्प आदि से मिलने वाले कष्ट। इन दुःखों को लौकिक उपचार द्वारा दूर करने में आंशिक सफलता मिलती है। सांख्य के मत से दुःख–निवृत्ति तत्त्व–ज्ञान से सम्भव है। ज्ञान ही मुक्ति का साधन है।

ऋषियों से वार्त्ता करते हुए महर्षि ने कहा कि मनुष्य के हाथ–पैर, वाणी, उदर और उपस्थ ये चार द्वार हैं। इन द्वारों के द्वारपाल होने की इच्छा करे अर्थात् इन पर संयम रखे। वह संयमी मनुष्य शास्त्र वचनों के अनुसार इन चारों द्वारों के संयम से प्राप्य ऋक्, यजुः साम तथा अथर्व वेद इन चारों मुखों से युक्त परमात्मा को भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं अष्टांग योग– इन चारों उपायों से प्राप्त करता है। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह जुआ न खेले, दूसरों का धन न हड़पे, नीच व्यक्ति का संग न करे और क्रोध से पागल होकर किसी पर प्रहार न करे। ऐसा करने से उसके हाथ पैर सुरक्षित रहेंगे। बुद्धिमान् मनुष्य किसी को गाली न दे, असत्य न बोले, दूसरों की निन्दा या चुगली न करे, सदा सत्य बोले, कम बोले, सत्य वचन के पालन के लिए सदा सावधान रहे। ऐसा करने से वाक्–द्वार इन्द्रिय की रक्षा होती है। तीसरा द्वार है उदर। मनुष्य उपवास न करे, किन्तु बहुत अधिक भोजन भी न करे। सदैव भोजन के लिए लालायित भी न रहे। जीवन–निर्वाह के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही अन्न पेट में डाले, इससे उदर–द्वार सुरक्षित रहता है। चौथा द्वार है उपस्थ। अपनी धर्मपत्नी ही के साथ विहार करे, पराई स्त्री के साथ नहीं। हृदय से सदा एक पत्नीव्रत धारण करे। ऐसा करने से उपस्थ–द्वार की रक्षा होती है।

जिस मनीषी पुरुष के हाथ पैर, वाणी, उदर और उपस्थ ये सभी द्वार पूर्णतया रक्षित हैं, वही वास्तव में ब्राह्मण है। जिस पुरुष के ये सभी द्वार सुरक्षित नहीं हैं, उसके सम्पूर्ण कार्य निष्फल होते हैं। जो मुनि शीत–ऊष्ण, सुख–दुःख आदि द्वन्द्व रूपी उपद्रवों में शान्त रहता है, उसे ही ब्रह्म ज्ञानी कहा जाता है। शाश्वत सदाचार का आश्रय लेकर अपने कर्तव्य कर्मों में संलग्न व्यक्तियों की तपस्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। सन्मार्ग में रहकर उपासना का फल प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

महर्षि कपिल को उनकी माता देवहूति स्वयं भी भगवान् का अवतार मानती थीं और उसी मान्यता के अनुसार उनकी पूजा–अर्चना भी करती थीं। एक बार उन्होंने कपिल जी से कहा– प्रभो! दुष्ट इन्द्रियों की निरन्तर बढ़ती हुई विषय वासनाओं से मैं अब ऊब चुकी हूँ। इन चपल इन्द्रियों की अभिलाषा पूरी करते हुए मैं अज्ञान अन्धकार में डूब रही हूँ अब यही अज्ञान अन्धकार दूर होने वाला है आपकी कृपा से। आप जैसे नेत्र का आविर्भाव मेरे जीवन में हो चुका है। आप ही सम्पूर्ण सचराचर के स्वामी हैं। पुराण पुरुष परमेश्वर हैं। जो अज्ञान रूपी गाढ़े अन्धकार में डूबे हुए संसार के लिए नेत्र स्वरूप आप प्रकट हुए हैं, अब आप अपने दिव्य–ज्ञान से मेरे इस माया–मोह को छिन्न–भिन्न कर दीजिए। उन्होंने बतलाया कि सांसारिक विषयों में आसक्ति होने पर यही मन बन्धन का कारण बन जाता है और परमात्मा में अनुरक्त होने पर मोक्ष का साधन। संसार में जीव के बन्धन और मोक्ष का एकमात्र कारण मन ही है। अतएव बुद्धिमान मनुष्य को मन को सदैव संयमित रखने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने माता देवहूति को भक्तियोग का उपदेश दिया।

सांसारिक विषयों में आसक्ति होना ही बन्धन है। आसक्ति से निवृत्त होना ही मुक्ति है। आसक्ति या राग जब सन्त महापुरुषों में भगवद्भक्तों के प्रति हो जाती है, तो यही आसक्ति मुक्ति का द्वार बन जाती है।

इस प्रकार भगवान् कपिल ने अपनी माता को भक्ति का रहस्य समझाने के बाद सांख्य मत का उपदेश देते हुए कहा– पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि और पाँच महाभूत इन सब में परिवर्त्तन होते हैं, ये प्रकृति के अंग हैं; लेकिन जिसकी सत्ता से परिवर्त्तन होता है और जो परिवर्त्तन से रहित है वही आत्मा आत्मस्वरूप है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, देह, देह के सम्बन्ध आदि तो प्रकृति के अंग समझकर इनका सम्बन्ध विच्छेद करके जो अपने आत्म–स्वरूप को पा जाता है,

वह मुक्त हो जाता है।

भक्तियोग का उपदेश देते हुए कपिल ने अपनी माता से कहा कि यम, नियम आदि का पालन करते हुए मनुष्य को अपने मन और इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए।

माता देवहूति उनके उपदेश सुनकर अपने चित्त को परमात्मा में स्थिर करने में रत हो गयीं। इस प्रकार माता को उपदेश देने के बाद महर्षि कपिल अपने पिता कर्दम ऋषि के आश्रम से यात्रा करते हुए और मार्ग में उपदेश देते हुए गंगा जी जहाँ सागर में मिलती हैं, उस स्थान पर पहुँचे। वहाँ सागर ने उनका स्वागत किया। तीनों लोकों को शान्ति प्रदान करने के लिए योग मार्ग का उपदेश देकर समाधि में स्थिर हो गये। आज भी उनके सम्मान में उनकी पावन–स्मृति में प्रतिवर्ष मकर–संक्रान्ति पर गंगा सागर में मेला लगता है। मेले में लाखों नर–नारी उनके प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

महर्षि कपिल के पिता स्वनाम धन्य महर्षि कर्दम भी तपः सिद्ध योगी थे। उन्होंने भागवत धर्म का उपदेश देते हुए कहा था– तुम्हारा समय धन से बड़ा है। तुम्हारा जीवन रत्न–आभूषणों से कहीं बहुमूल्य है। तुम्हारा जीवन ऋद्धि–सिद्धि से भी कहीं ऊँचा है। तुम अपने इस अमूल्य जीवन को तू तू–मैं मैं में मत खपा देना, वरन् अपने जीवन को जीवन दाता के स्मरण में लगाकर अमर हो जाना।

कर्दम ऋषि ने अपने योग बल से 'कामाख्य' नामक दिव्य विमान बनाया था। इस विमान द्वारा उन्होंने देवहूति सहित समस्त तीर्थों की यात्रा की थी, परन्तु उन्होंने इसे भी तुच्छ समझा और त्याग दिया।

माता देवहूति भगवान् कपिल के उपदेश सुनकर ऋतम्भरा–प्रज्ञा के परम सुख में स्थिर हुईं। उनके नेत्रों से हर्ष के दो बूँद टपक पड़े। जिस सरोवर में ये बूँद गिरे उसका नाम है 'बिन्दु सरोवर'। उन्हें आत्म–शान्ति को जहाँ सिद्धि मिली, उस जगह का नाम है 'सिद्धपुर'। गुजरात में स्थित सिद्धपुर और सिद्धपुर में स्थित बिन्दु सरोवर आज भी माता देवहूति की पावन गाथा कह रहे हैं।

☆

– ३७/५०, शिवाला मार्ग, गिलिस बाजार, कानपुर–२०८००१

शाकाहार के लिए आसमान में भी संघर्ष

घटना गत २ नवम्बर की है। शाकाहार प्रेमियों ने अपने अधिकार के लिए आसमान में भी संघर्ष किया तथा मर्जी के खिलाफ परोसे गये मांसाहारी भोजन को लेने से इनकार कर दिया।

सीरियन एयर लाइन्स के एक यात्री-विमान में घटी इस घटना की जानकारी देते हुए मेरठ के व्यवसायी श्री विनोद सर्राफ ने बताया कि वे विगत २ नवम्बर को सीरियन एयर लाइन्स की फ्लाइट नं० ५०३ से लन्दन से मुम्बई आ रहे थे। विमान में लगभग ढाई सौ यात्री सवार थे। विमान लन्दन से उड़ान भरने के बाद थोड़ी देर सीरिया की राजधानी दमिश्क में रुका और वहाँ से अबूधावी की ओर चला। इस बीच लंच (दोपहर के भोजन) का समय हो गया। विमान परिचारकों ने यात्रियों को भोजन परोसना शुरू किया। जब श्री विनोद सर्राफ को भी भोजन परोसा गया, तो उन्होंने मांसाहारी भोजन लेने से इन्कार कर दिया। श्री विनोद ने मांसाहारी भोजन दिये जाने के खिलाफ जोर-जोर से बोलना शुरू किया, तो विमान में सवार अनेक अन्य शाकाहारी यात्री भी उनके साथ हो लिये।

आसमान में शाकाहारियों का अपनी तरह का यह अनोखा संघर्ष था। श्री विनोद सर्राफ के साथ लन्दन में आर्यसमाज के प्रचारक श्री सोने राव आचार्य के अलावा श्री जगदीश, श्री सुबोध, श्रीमती बीना व श्री किरन शाह (लन्दन निवासी) तथा पूनम सिंह, चन्द्रशेखर तथा वी०एन० रावल (राजस्थान निवासी) इत्यादि ने मिलकर पूरा हंगामा खड़ा किया और विमान परिचारकों को शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराने को मजबूर किया। इतना ही नहीं, तो इन यात्रियों ने शिकायत फार्म लेकर विमान सेवा की अन्य खामियों तथा टिकट पर शाकाहार स्पष्ट अंकित होने के बावजूद यात्रियों को भोजन में जबरदस्ती मांसाहारी भोजन परोसने की लिखित शिकायत भी विमान कम्पनी के बड़े अधिकारियों से की है।

- प्रस्तुति - रणजीत सिंह ज्याला, *'राष्ट्रदेव', शिवमन्दिर, रेलवे रोड चौराहा, मेरठ-२*

६ दिसम्बर पर विशेष

अयोध्या का मन्दिर

मूल : श्री ए०वी०एस० राजु
अनुवाद– डॉ० भीमसेन निर्मल

अयोध्या राम के मन्दिर का अध्ययन–अध्याय
नहीं होगा मिथ्या, है यह अकाट्य तथ्य।
वह है हिन्दू जाति का निखरा रत्न
जो भी हो बिना बाधा के सफल होगा वह यत्न।
आर्य हैं हम, नहीं बनमानुस
यह है हमारी धरती, युग–युग से हमारा निवास।
रुकेगी नहीं रोकने पर भी यह प्रयत्न
रोकोगे तो उछल–उछलकर
बढ़ेगा आगे, पैदा करेगा बवण्डर।
कमर कसकर न बढ़ें तो बनेंगे हम अबलाएँ
पार कर प्रारम्भ से कई अड़चनों को
प्रगति पथगामी बने हैं हम लोग।
अपने ही घर में दूसरों की अनुमति?
है यह अचरज की बात
क्या यह नहीं ललकार? क्या यह नहीं सामर्थ्य पर चोट?
न बने यह प्रयत्न अन्त में मजाक
अयोध्या–राम को मत बनाओ 'हाय राम'
न हो सकेगा यह काम हमसे (तो)
क्रुद्ध बन, कोदण्डराम कोदण्ड को हाथ में लेंगे।
शासक करें रोकने का प्रयास
(तो) दण्डकारण्य से कूद पड़ेगी
हजारों की संख्या में वानर सेना।
शर परम्पराओं के समान
शर रूपी शरीर धारण कर
चकनाचूर कर डालेगी अड़चनों को।
अपने इष्टदेव के मन्दिर–निर्माण–कार्य को पूरा कर
उड़ाकर हमारी मजाक कहेगी वह वाहिनी
'तुम तो हो पूँछ बिना वानर और बुद्धू।'
अयोध्या में मन्दिर का निर्माण न कर सकने वाला हिन्दू
है अभागा और अयोग्य।
अभ्यागत बनने के लिए
सभ्यता को भ्रम में डाल,
उसे मटियामेट कर रहे हो।
हैन्दव को सैंधव सम न रोककर,
हैन्दव को दीन–हीन न बनाकर
सेना सहित आगे बढ़कर
अपनी जाति को प्रीति, नीति और रीति दो।
स्तन्य पिलाकर पालने–पोसने वाली
माता की पीड़ाएँ दूर कर,
ऋण उसका चुकाने
बढ़ो, आगे बढ़ो।
हो जाये यह अन्तिम अध्याय
मन्दिर–निर्माण के लिए देह को भी छोड़ दो।

– १–१–४०५/७/१, गांधीनगर, हैदराबाद–५०००८०

कुषाणों के साथ आयी सलवार इस देश में

कुषाण–काल में लद्दाख व्यापार मार्ग पर पड़ता था और इतिहास में हमेशा व्यापार मार्ग ही संस्कृति के केन्द्र रहे हैं। इसलिए अलची के पास कनिष्क के काल का चैत्य है। कुषाणों ने हमें वह परिधान दिया, जिसे आज हम सलवार कहते हैं। लद्दाख दर्दी क्षेत्र है, तिब्बती नहीं। यहाँ की कला के केन्द्र में विरोचन हैं, ऐसा क्यों है? इस पर विद्वानों में मतभेद है। जो चित्रकला और गोम्पा कश्मीर में नष्ट हो गये, वे लद्दाख में सुरक्षित रहे। ◻

– डॉ० लोकेश चन्द्र

अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय तुलसी समारोह

हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका तथा वेव्स की ओर से मियामी यूनिवर्सिटी में तुलसी और उनके साहित्य पर अन्तर्राष्ट्रीय समारोह का आयोजन है। इसमें रामकथाओं के बहुभाषी विशेषज्ञ डॉ० रमानाथ त्रिपाठी को **विश्व तुलसी सम्मान** प्रदान करने का निश्चय किया गया है। जेवियर यूनिवर्सिटी के विद्वान् प्रोफेसर डॉ० भूदेव शर्मा के प्रयास से यह आयोजन हो रहा है। इसमें यूरोप, एशिया, अमेरिका और अफ्रीका के अनेक तुलसी विद्वान् भाग लेंगे। ◻

– रुक्मिणी

भारत का राष्ट्रीय संवत् कौन ?

– आचार्य डा० श्रीपति अवस्थी

भारत एक स्वतन्त्र सम्प्रभु एवं शक्तिशाली राष्ट्र है। अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुए अर्द्धशताब्दी बीत चुकी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति की स्वर्णजयन्ती–वर्ष बड़ी धूम से मनाया जा चुका है। यद्यपि अब भारत प्रौढ़ हो चला है; परन्तु वह अपनी पहचान शनैः–शनैः खोता जा रहा है। भारत में न राष्ट्रभाषा अपना स्थान पा सकी है और न ही अंग्रेजी की दासता दूर हो सकी है। वेषभूषा, भाषा, शिक्षा तथा राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बन्धित सारे प्रश्न पीछे छूट गये हैं अथवा इन्हें जानबूझ कर अनुत्तरित ही रहने दिया गया है। राष्ट्रीय इतिहास को जानने के लिए तथा प्रतिदिन के व्यवहार के तिथिक्रम तथा अपना संवत्सर होना तथा जानना आवश्यक है। क्या भारत अपने संवत्सर को बचा सका है? क्या कालगणना के लिए ईसाई संवत् ही भारत पर लदा रहेगा? क्या आसेतु हिमाचल प्रचलित भारतीय संवत्सरों की ओर किसी राजनेता की दृष्टि नहीं उठती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति मात्र, ५० वर्षों में ही उपस्थित होकर देश के सांस्कृतिक अनुबन्ध को तोड़ रही है। राष्ट्रीय एकता की आधारशिला विदेशी परम्परा और छद्म संस्कृति पर नहीं टिक सकती है। अपनी ही सांस्कृतिक धरोहर की मूलभित्ति पर राष्ट्र एक जुट रह सकता है। इस सन्दर्भ में भारतीय संवत् का प्रयोग करना भी महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ अनेक प्रकार के संवत् प्रचलित रहे हैं। इन संवत्सरों का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इन पंक्तियों में कुछ प्रमुख तथा प्राचीन संवतों का उल्लेख किया जा रहा है।

प्राचीन ग्रन्थों में सप्तर्षि संवत् का उल्लेख प्राप्त होता है। आकाश मण्डल में उत्तर दिशा की ओर जो सात नक्षत्रों का एक तारामण्डल दिखाई पड़ता है, वह सप्तर्षि मण्डल कहा जाता है। यह मण्डल अश्विनी नक्षत्र से रेवती नक्षत्र तक भ्रमण करता है। एक–एक नक्षत्र पर सप्तर्षि १००–१०० वर्षों तक भ्रमण करते हैं। इस प्रकार २७०० वर्षों में इनका एक चक्र पूरा होता है। इस सप्तर्षि संवत् का उल्लेख वायु पुराण के चौदहवें अध्याय में मिलता है। इस संवत् का प्रयोग काश्मीर, चम्बा तथा मण्डी (हिमाचल प्रदेश) में प्रचलित था। नेपाल से एक ग्रन्थ सुमति तन्त्र प्राप्त हुआ है। इसमें युधिष्ठिर संवत् का प्रयोग उल्लिखित है। शक संवत् का भी वर्णन किया गया है। सुमति तन्त्र की एक प्रति ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। श्री हर्ष संवत् भी प्रचलन में था। इस तथ्य का उल्लेख अल्बरूनी नामक यात्री ने अपने यात्रा वृत्तान्त में किया है।

मन्दसोर (गुजरात) शिलालेख में मालव संवत् का उल्लेख किया गया है। दक्षिण भारत में चेरि संवत्, कल्चुरि संवत् तथा पूर्वी भारत में भोज संवत् के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। डा० डी. आर. भण्डारकर ने साहसांक संवत् के प्रचलन का वर्णन किया है। शक संवत् २४२ में बलभी संवत् के प्रवृत्त होने की जानकारी मिलती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सभी संवत् एक देशीय रहे हैं। किसी क्षेत्र विशेष में इनका प्रचलन हुआ तथा संवत् प्रवर्त्तक राजाओं का राज्यकाल समाप्त होने के कुछ ही वर्षों में इनका भी प्रचलन समाप्त हो गया।

भारत का सर्वाधिक पुरातन संवत् कलि संवत् माना जा सकता है। यह कलि संवत् पूरे देश में प्रचलित रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण के दिवंगत होने के समय से ही कलि संवत् का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। महाभारत में इसके अनेकशः उल्लेख प्राप्त होते है। ज्ञातव्य है कि महाभारत का युद्ध द्वापर और कलियुग की सन्धि बेला में हुआ। महाभारत का युद्ध समाप्त होने के कुछ वर्षों तक महाराज युधिष्ठिर का शासन रहा। कृष्ण के देहावसान तथा कलियुग के आरम्भ होने की घटना का वर्णन महाभारत में इस प्रकार किया गया है–

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत।

महाभारत के पश्चात् अनेक ग्रन्थों में तथा शिलालेखों में कलि संवत् का उल्लेख मिलता है। कोचीन के राजा चेर के पत्र में कलि संवत् ३४१८ का उल्लेख किया गया है। तेलगू प्रदेश के नन्दि दुर्ग नामक ग्राम में कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित मन्दिर के दान–पत्र में कलि संवत् का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :–

नन्दि दुर्गाह्ये ग्रामे सोम शंकर रूपिणः
कल्यूतिं आगम गुणेष्वब्देषु जगती पतेः।

अर्थात् कलि संवत् ३४२६ में इस मन्दिर का निर्माण कराया गया। चालुक्य वंशी महाराज सत्याश्रय पुलकेशी के शिलालेख में ३३७५ कलि संवत् का उल्लेख किया है–

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादिनः।
सप्ताब्दशत युक्तेषु शतेष्वब्देषु पंचसु।।
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।।

इस उद्धरण में कलि संवत् ३३७५ के साथ ही ५५६

शक संवत् का भी उल्लेख आया है। पुरातत्त्वविद् कीलहार्न ने यही अर्थ किया है।

शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी ने लिखा है कि–

यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्त त्रिंशच्छतानि वै
चत्वारिंशत्समाश्चान्याः तदा भाष्यमिदं कृतम्।

इसी प्रकार प्राचीन पाण्ड्य देश के उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि :–

कलेः सहस्रजितयेब्दगोचरे
गतेष्टशत्यामपि सैक सप्ततौ।

कलि संवत् ३८७१ का वर्णन किया गया है। भविष्योत्तर पुराण के शिव रहस्य के १७वें अध्याय में 'कलि संवत् का इस प्रकार वर्णन किया गया है–

कल्यदेः च चतुः सहस्रसहिते यत्रैकविंशोनके।
पुष्पेकासि विलम्बि नाम्निरवम् अगादष्ट प्रजो मौद्गलः।
पंचभ्यां सितपक्षके भृगु दिने सह्यात्मजोदक्तटे।
कंस ग्राम निवासिभिः सुदर्शनः सार्धं विमानोज्ज्वलः।।

इस उद्धरण में ३६७६ का उल्लेख है। चोल देश से प्राप्त एक तमिल लेख में कलि संवत् ४०४४ उल्लिखित है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के मंगलोर के समीप कदरी के मंजीरनाथ मन्दिर की लोकेश्वर मूर्त्ति पर कलि संवत् ४०६८ को उत्कीर्ण किया गया है–

कलौवर्ष सहस्राणामतिक्रान्ते चतुष्टये
पुनरब्दे गते चैव अप्यष्टषष्ट्या समन्विते।
गतेषु नव मासेषु कन्यायां संस्थिते गुरौ
पश्चिमेऽहनि रोहिण्यां मूहूर्त्ते शुभ लक्षणे।

देवीशतक की विवृति टीका में प्रसिद्ध काव्यशास्त्री कैय्यट अपना कार्यकाल इस प्रकार लिखते हैं–

वसुमुनि गगनोदक समकाले याते कलेस्तथा लोके
द्वापंचाशे वर्षे रचितेयं भीम गुप्त नृपे।

कलि संवत् ४०७८ महाराज भीम गुप्त के राज्यकाल में यह टीका लिखी गयी। भाटेर, सिल्हट, असम से प्राप्त एक शिलालेख में–

पाण्डव कुलादि पालाब्द– ४१५१ का उल्लेख किया गया है। सर्वानन्द नामक विद्वान् ने अपनी अमर टीका सर्वस्व में कलि संवत् ४२६० का उल्लेख किया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में कलि संवत् के प्रयोग महाभारत काल से प्रारम्भ कर आधुनिक युग तक प्राप्त होते हैं। आज भी प्रत्येक कर्मकाण्ड, देवपूजन आदि संकल्प पढ़ते समय कलियुगे कलि प्रथम चरणे जम्बू द्वीपे भरत खण्डे– इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। अतः कलि संवत् ही भारत का प्राचीनतम संवत् है। ❐

– ५५१झ/१०८, रामनगर, आलमबाग, लखनऊ–५

यह हर जगह मिलता है

नमक गरीब या अमीर सबके लिए समान मात्रा में आवश्यक है। रोज के भोजन में १५० माक्रोग्राम आयोडीन यानी प्रतिवर्ष ६ किग्रा० आयोडीन भोजन में चाहिए। इतना। आयोडीन आलू, हरी शाक–सब्जियों, मछली और पानी द्वारा सामान्यतः मिल जाता है। हिमालय से लगे हुए तलहटी के क्षेत्रों में आयोडीन की कमी है और उसके कारण घेंघा रोग होता है। इतने छोटे से क्षेत्र के लिए जरूरी नियम क्या देशभर के लिए यानी ६६ प्रतिशत शेष लोगों के लिए अनिवार्य करना बुद्धिमानी होगी ? यह बात भी साफ है कि घेंघा रोग का कारण आयोडीन का अभाव ही है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। महाराष्ट्र में १६८६ में राष्ट्रीय घेंघा कार्यक्रम के अन्तर्गत किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार इस बीमारी का मुख्य कारण भुखमरी और कुपोषण है। जर्मनी और अमेरिका जैसे देशों में ऐसे रोगियों की संख्या भारत से गई गुना अधिक होने पर वहाँ आयोडीनयुक्त नमक की अनिवार्यता नहीं है। इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन, मुम्बई के अध्यक्ष डॉ० आनन्द का कहना है कि आयोडीनयुक्त नमक की अनिवार्यता करने की आवश्यकता नहीं है। यही बात श्रीमती लाजवन्ती गणात्रा ने और अन्य कई ख्यातनाम चिकित्सकों ने दुहरायी है। १६६४ में जब आयोडीनयुक्त नमक के बारे में सरकार ने आदेश निकाला था, तब देश में प्रमुख ६४ नागरिकों ने प्रधानमन्त्री को ज्ञापन देकर निवेदन किया था कि सादे नमक को प्रतिबन्धित न किया जाये। इस ज्ञापन पर हस्ताक्षर करनेवालों में करीब २५ चिकित्सक थे। एकेडमी ऑफ न्यूट्रीशन इम्प्रूवमेण्ट, नागपुर ने शोध किया है कि भोजन में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध आयोडीन के अतिरिक्त अन्य माध्यमों से आयोडीन का सेवन हानिकारक है। विश्व स्वास्थ्य संघटन ने भी इस खोज को स्वीकार किया है।

वैज्ञानिकों शोधों और यूनिसेफ के अनुसार आयोडीनयुक्त नमक के नित्य सेवन से टी०बी०, हाईपरथायरोडिज्म, मधुमेह, चिड़चिड़ापन, कैन्सर तथा हृदयरोग बढ़ रहे हैं। आयोडीनयुक्त नमक जहाँ अनिवार्य बनाया गया है वहाँ १६६० में ४० प्रतिशत रोगियों से २० साल बाद ६४ प्रतिशत घेंघा के रोगी चम्पारण में पाये गये, चण्डीगढ़ में ११ से ४५ प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश के मण्डी में २० से ३४ प्रतिशत और रोपड़ में ६ से ४५ प्रतिशत घेंघा रोगियों में बढ़ोतरी हुई। विश्व स्वास्थ्य संघटन की एक संस्था 'इण्टरनेशनल कौन्सिल फार कण्ट्रोल ऑफ आयोडीन डिफीसियन्सी डिसआर्डर' ने स्वीकार किया है कि आयोडीन की मात्रा को नमक में किसी भी स्तर पर स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित नहीं माना जा सकता। अतः सिर्फ आयोडीन की कमीवाले रोगियों को ही इसका सेवन करना चाहिए। यह भी स्मरण रहे कि आयोडीनयुक्त नमक बनाने की प्रक्रिया में नमक में मौजूद मैगनेशियम समाप्त हो जाता है, जो मनुष्य और पशुओं के लिए बहुत उपयोगी है। यह आयोडीन भी तीन महीने बाद उड़ जाता है और कई पैकटों पर निर्माण की तारीख छापी नहीं रहती है। ❐ **– ठाकुरदास बंग**

कहानी

बेटी की बात

– मदन मोहन पाण्डेय

दादी बड़बड़ाती हुई अपनी गठरी–मोठरी बाँधती जा रही थीं। बड़बड़ाना उनका स्वभाव था और बड़बड़ाते समय दूर रहना पोते–पोतियों का। उनकी समझ में यह नहीं आता था कि खाने–पीने की चीजें खुद न खाकर भी उन्हें खिलाने वाली दादी आखिर प्यारे बोल बोलने में क्यों कंजूसी बरतती हैं। इस बारे में शिकायत बहुओं को भी थी, मगर वे बेटों की वजह से कुछ कहती नहीं थीं। उनकी राय में जब बेटे माँ के खिलाफ कुछ कहना–सुनना चाहते ही नहीं, तो वे खामखाह क्यों किसी की बुरी बनें। फिर दादी यदि बहुओं पर रौब गालिब रखती हैं, तो उनके लिए किसी के कुछ कहने–सुनने पर उसका मुँह नोचने के लिए भी तैयार रहती हैं। बड़ी बहू तो उनके इसी गुण पर बलिहार रहती है। हालाँकि उन्हें बड़ी बहू पर दुलार आता है; पर इसे प्रकट होने का अवसर कभी–कभी ही आता है। तूल–तकरार होने पर छोटी बहू अपने पढ़ी–लिखी होने की बात कहकर एक बार बड़ी को सुनाती हुई बोली थी– "यहाँ तो जानवरों के बीच में पड़ गयी। बिना पढ़े आदमी और भैंस में कोई फर्क होता है?"

तब दादी ने फौरन् बड़ी बहू की तरफ से मोर्चा सँभाल लिया था– "चार अच्छर पढ़ने से ही कोई लायक नहीं बन जाता। पढ़-लिखकर भी लियाकत न आयी, तो पढ़े और अनपढ़ में अन्तर क्या रह गया? फिर बड़ी बहू ने किताबें भले ही न पढ़ी हों, पर घर चलाना उसने सीखा है। छोटे–छोटे देवरों को कभी बेटे से कम नहीं माना और जिस घर में पढ़ी–लिखी होने का गुमान पालनेवाली कलह–कोहराम मचाने को आजाद है, उसकी एक–एक ईंट में बड़ी बहू ने ही अपने बच्चों का हक मार कर कलई की है। वह न चाहती, तो बड़े बेटे के लाख चाहने पर भी मँझला विमल और पढ़ी–लिखी का जरखरीद गुलाम अजय, पढ़ना तो दूर, किसी की डलिया ढो रहे होते। सबके पास चाहे चार पैसे निकल भी आयें, इनके पास तो मरने–जीने के लिए भी एक पैसा नहीं निकलेगा। पाँच हजार पगार पाकर शहर से रोज साइकिल से २० किमी. खींच कर आता है इसका मरद, तो क्या अपने लिए? भाई–भतीजे सुखी रहें, इसीलिए तो वह अपना खून जलाता है। केवल दो लड़के हैं, मगर दिल देखो! भतीजियों की शादी हो या भाई–बहनों की, सारी फिक्र उसको ही रहती है। मैं सच कहूँ, तो मुझे तो इस बहू ने ही आजाद कर रखा है। यह बहू थोड़े ही है। मुझे तो लगता है, उस जनम की मेरी माँ है। छोटी बहू! तुझे जो कहना हो, मुझसे कह–सुन लिया कर, पर इस दुखिया का दिल न दुखाया कर। भाई नहीं, बहन नहीं, माँ–बाप कोई तो नहीं है। सबके तो सब हैं; मगर इसके लिए तो सब कुछ हम लोग ही हैं।" कहते–कहते दादी की वाणी रुँध गयी थी और उनके आँसू टप–टप चूने लगे थे।

छोटी बहू अवाक् रह गयी थी। हर समय भौंहें टेढ़ी रखनेवाली सास का हृदय इतना करुणा से लबालब होगा, यह उसने कब सोचा था। वह निरुपाय–निरुत्तर रह गयी थी और बड़ी बहू सास के महिमामय रूप को देखकर धन्य हो गयी थी। उसकी आँखें सास के चेहरे से हट नहीं रही थीं। अपनी सगी माँ को उसने देखा नहीं था, पर सोच रही थी, वे यदि होतीं तो ऐसी ही होतीं।

उनके अपनेपन की चाँदनी का ऐसा अनुभव केवल बड़ी बहू को ही हुआ हो, ऐसा भी नहीं है। बड़ी बहू के उन्हीं के दुलराये बेटे विजय ने कभी छोटी बहू के कुछ सौदा सुलुफ बाजार से लाने को कहने पर कहा था– "मँगवा लो, जिससे मँगवाना हो। दादी मुझे खाने को कुछ दे देती है, तब तो अपनी बेटियों को अनदेखा करने की बात कह कर तुम बड़बड़ाया करती हो।"

दादी ने तुरन्त विजय से कहा था– "हाँ, अब जवान हो रहे हो न। बड़े लायक हो, जो इतनी बढ़िया बातें सोंच लेते हो। पर कान खोलकर सुन लो। मेरे लिए सभी उँगलियाँ बराबर हैं। आज इसके बेटे नहीं है, तो क्या होंगे ही नहीं। सदा ध्यान रखना, मेरी और अपनी माँ की बात भले ही टाल देना, किन्तु छोटी चाची की नहीं। तू नहीं जानता है, अपना जो अंग कमजोर होता है, वही खलता है। अगर खुदा न खास्ता, मुझे मौत आ जाये, तो इसका दुःख देखकर मर कर भी मुझे चैन नहीं आयेगा। तुझे तो ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि इसे स्वप्न में भी अपनी कोख के बेटे न होने की बात न महसूस हो। जैसे तेरे सगी बहन न होने की बात इसकी बेटियाँ तुझे महसूस

नहीं होने देती हैं, उसी तरह तेरा बड़प्पन इसी में है कि इसकी बेटियाँ न समझे कि इनके सगा भाई नहीं है। उठ! चाची के पैरों पर मत्था रखकर माफी माँग।"

जब विजय छोटी चाची के पैरों पर माथा रखकर उनके पाँव भी दबाने लगा था, तो उनके हृदय का वात्सल्य नेत्रों में छलक उठा था और वे भी सास के करुणा भरे मुख मण्डल को निहारती रह गयी थीं।

दादी पोते-पोतियों को अनुशासन की कड़ी डोर से बाँध कर रखने की हिमायती थीं। उनके मुँह पर मुस्कान आती ही न हो, ऐसा नहीं था। हाँ, ऐसे अवसर कभी-कभी ही जरूर आते थे। वैसे पोती-पोते उनकी खीझ का भी बुरा कम ही मानते थे, मगर कभी-कभी उनकी खीझ का अध्याय ज्यादा लम्बा हो जाने पर वे ऊब जरूर जाते थे। कल की बात भी कुछ ऐसी ही थी, जिसकी वजह से दादी का गुस्सा उतरा नहीं था। दरअसल कल उनको गरमी कुछ अधिक लगी थी। गाँव-देहात में सरकारी घोषणाओं के बावजूद न तो आज तक बिजली पहुँच पाई है, न कल पहुँचने की गारण्टी है। नीम के पेड़ तले, गर्म हवा के झोंकों को छाया में शीतल होने के वहम में दोपहर काटती दादी ने जब दोपहर के खाने को मना कर दिया, तो कई लोगों के सामने विजय ने हँसकर दुलार में कह दिया था- "काहे खायेंगी। अभी-अभी तो संदूक से पेड़े निकाल कर खा रही थीं।"

विजय को उम्मीद थी कि दादी हँसकर उसके चपत लगायेंगी और खाने के लिए चल देंगी। किन्तु दादी पर विपरीत प्रभाव हो गया। मुहल्ले की दो एक औरतें वहाँ बैठी थीं। उन्होंने विजय की बात पर हँस दिया। दादी को सारी तकलीफें सहने की ताब थी, मगर अपना उपहास सहना उनके लिए मरण से भी कठिन था। विजय यह बात अकेले में कहता तो वे निहाल हो जातीं। और खुद खाये होते या नहीं, उसे मँगवाकर पेड़े खिला देती। लेकिन यहाँ तो बात शान पर अटक गई थी। बेटे बहुओं द्वारा झोटा पकड़कर घसीटी जाने वाली औरतें उनका उपहास करें और वे चुप रहें, ऐसा इस जनम में तो हो नहीं सकता है। विजय की ओर आँखें निकाल कर बोली- "पेड़ा तो मुझे तेरा बाप खिला जाता है न। जिसे हँसी अच्छी लगे, उससे ठिठोली करना। यह सुहाती बातें अपनी माँ को सुनाना या बाप को। मेरे लड़कों ने मेरे सामने कभी जुबान नहीं खोली, तू है किस खेत की मूली। बताये देती हूँ मैं अपना खाती हूँ, किसी के बाप का नहीं। खबरदार, जो मेरे मुँह लगा आगे से। बड़ा आया है कमाई वाला।"

"क्यों, क्या हुआ अम्मा जी। बच्चों की बात का बुरा नहीं मानती। अपने पास सुला-सुला कर इसे तुम्हीं सिखाती हो, वही यह कहता है। मेरा या किसी का इसमें क्या दोष?" बड़े बेटे आनन्द ने हँस कर कहा।

बेटे की विनोद में कही गई बात से दादी का गुस्सा और भड़क उठा। वे सोंचती थीं कि आनन्द विजय को मारने दौड़ेगा और वह भाग कर दादी के पास आयेगा। वे उसका पक्ष लेकर बेटे को डाटेंगी धौंस जमायेंगी। और बेटा बिना कान हिलाये सुन कर कहेगा- "तुम्हारी वजह से इसे छोड़ दिया। तुम न होती, तो इसकी ऐसी गत बनाता कि याद करता। बेशरम! बड़े बूढ़ों के मुँह लगता है।"

और दादी पड़ोसिनों की ओर दर्प भरी दृष्टि डालकर आँखों ही आँखों में कहतीं- "देखो! औलाद इसे कहते हैं, मालकिन का तुर्रा ऐसा होता है।" और पड़ोसिनें भी खिसिया कर खिसकने का जतन करतीं। मगर यहाँ तो बेटे ने उन्हें नसीहत देकर, जैसे सरे बाजार उन्हें अपमानित कर दिया था। वे बोलीं तो कुछ नहीं, पर क्रोध से उनका सर्वांग जैसे धधकने लगा। आनन्द जैसे श्रवण कुमार बेटे से उन्हें ऐसे असमय परिहास की आशा नहीं थी। इसी के बूते वे इतना गरूर करती थीं। मन ही मन कहा- "गरूर तो किसी का नहीं रहता है। उनका ही कैसे रह जाता? चलो, आज यह वहम भी टूट गया।"

इस विचार के आते ही वे स्वयं की दृष्टि में एक असहाय नारी हो गयीं, जिसको दूसरों की कृपा के सहारे ही जिन्दगी काटनी है। यह बात ही उन्हें असह्य लगी। घर, खेत, बेटे-बहू सब कुछ तो अपने ही लगते थे, पर आज यह सब मन का भ्रम साबित हुआ। उनकी तपस्या का शीशमहल इतनी जल्दी बिखर जायेगा, इसका तो उन्हें भान तक नहीं था। तब तक आनन्द भी जा चुका था। वहीं मौजूद होता, तो दो चार बाते कह सुनकर ही गम हल्का कर लेती, मगर अब यह सुयोग भी नहीं रहा था। डाह करने वाली पड़ोसिनों को हँसने का मौका न देकर वे स्वयं उठीं चली गयीं अपनी कोठरी की ओर।

कोठरी के दरवाजों की धड़धड़ाक से बड़ी बहू ने अन्दाज लगा लिया कि सास जी का पारा सातवें आसमान पर है। सारी बात वह जान चुकी थीं। आनन्द से बोली- "अम्मा जी का दिल दुखाकर तुम्हें क्या मिलेगा? सबको शिक्षा देते हो और खुद बड़े-बूढ़ों से ऐसी हँसी करते हो- जाकर उनसे कुछ कह-सुन आओ, नहीं तो वे रोटी तो हरगिज नहीं खायेंगी और उनके बिना खाये कम से कम मेरे मुँह में तो कौर चलेगा नहीं। बूढ़ों का आशीर्वाद ही लेना चाहिए। उन्हें कुंठित करके तुम्हें क्या मिलेगा?"

बड़ी बहू की बात में सास के हृदय की आहत

वनाएँ बोल रही थी, पर आनन्द उनकी [illegible] ने [illegible] का। वह भी खेत पर काम करके आया था। माँ के मने लिहाज से उत्तर नहीं देता था, पर माँ बेटे के बीच ली के हस्तक्षेप पर खीझ गया। बोला– "मैंने जिन्दगी में भी उनकी बात का जवाब नहीं दिया। अब कोई गुस्सा ने पर ही आमादा हो, तो किया भी क्या जा सकता ?"

"तो अब जवाब देकर बड़े हो जाओ।" उत्तर बड़ी हू के बजाय दादी की कोठरी से आया। वे अब भी सोंच हीं थीं कि बेटा अपनी गलती के लिए हमेशा की तरह नकी चिरौरी करेगा और बहू बेटों पोती–पोतों के बीच नका सिक्का बदस्तूर कायम रहेगा।

परन्तु ऐसा न हो सका। आनन्द ने खाना खाया । था कि चकबन्दी की तारीख का सम्मन पाकर उसे कबन्दी कार्यालय रवाना हो जाना पड़ा और दादी की नीभूत पीड़ा बाद में फूटी– "अब मैं इस घर में भार नकर नहीं रहूँगी। मँझले बेटे के पास शहर चली जाऊँगी। ोई बेटा यह न सोचे कि अम्मा उसी के आसरे हैं। अभी ी हाँथ–पाँव चलते ही हैं। नहीं चलेंगे और तीनों बेटे नालायक निकल जायेंगे, तब कोई न कोई कुआँ–ताल तो मेल ही जायेगा।"

तभी से वह खटर–पटर करती हुई अपना सामान–त्ता झोलों में डाल रही थीं। पोतियों को बुलाया तो नहीं, र चाहती थीं कि वे इस काम में हाथ बँटाये और साँझ ो पास के स्टेशन तक समय से पहुँच कर वे गाड़ी कड़ कर शहर पहुँच जायें। पोतियों को चलते समय दो चार रुपये देकर उनकी सूरत देखकर विदा हो जायेंगी। अब देखो, कब लौटना हो। न लौटना पड़े, तो और भी ठीक है। अब तो सारे सुख देख ही लिये। कौन सुख शेष है, जिसके लिए यहाँ लौटने की उम्मीद पाली जाये। मगर जब पोतियाँ उनकी चढ़ी आँखे देखकर विजय के साथ खेलने लगीं, तो वे और निराश हुईं। ये सब एक ही थैली के चट्ट–बट्टे हैं। जब अपनी औलाद ही धोखा दे रही है,तो यह सब तो यों ही पराया हाड़ हैं। न आओ। मेरे पास तुम्हें देने को कौन खजाना रखा है, जो आओगे।

दादी ने खुद दो जोड़ कपड़े झोले में रखे। गाय का मलाईदार दही एक डिब्बे में रखा। आम के अचार का कटर दूसरे झोले में रखकर दरवाजे पर निकल आयीं। उनके सिर पर पड़ी चादर देखकर दोनों बहुओं ने अनुमान लगा लिया कि आज वे रोके रुकने वाली नहीं हैं। बड़ी बहू ने मनाने की कोशिश की, तो बोली– "तू एक बार अपने बेटे और आदमी को नहीं कह पाती। मैं यहाँ एक मिनट नहीं रुकूँगी। मेरे यही दो बेटे नहीं है। मझले के [illegible] में भी मैंने इतनी ही दर्द–व्यथा झेली है। लोक–लाज को मरेगा, तो दो रोटियाँ देगा। कोई मेरा भाग्य नहीं है।

"आपके तो तीन–तीन बेटे, हैं, पर मेरे तो एक ही माँ है। और मैं उसे नहीं जाने दूँगी, चाहे दुनिया एक ओर हा जाये। आप जायेंगी तो मैं भी साथ चलूँगी।" कहकर बड़ी बहू ने चादर ओढ़ी।

दादी के दिल पर जैसे ठंडे पानी की फुहार पड़ी, किन्तु जलन इतनी थी कि इस फुहार के छन्न होने में देर न लगी। वे बोली– "मझले का घर कोई धर्मशाला नहीं है कि जिसका जी चाहे, वहाँ चला जाये। सबकी एक–एक नस से वाकिफ हूँ। तुम भी विजय की माँ और आनन्द की पत्नी हो। उन्हें काहे कुछ कहोगी। एक मेरा ही यहाँ कोई नहीं है।" दादी की वाणी में ह्रदय का दर्द लहरा उठा था।

"कौन कहता है, आपका कोई नहीं है। मैं आपकी बहूँ ही नहीं, बेटी भी हूँ। पर बेटों के आगे बेटी की बात किसी ने सुनी है जो तुम सुनोगी।" कहकर बड़ी बहू आँसू छलकाती हुई विजय को लेकर दादी के पैरों पर डालने लगी।

माँ का आहत ह्रदय जैसे उपचार पा गया था। बड़ी बहू के लिए सिर पर हाथ रखकर बोलीं– "सदा सुहागिन रहो, दूधो नहाओ, पूतों फलो। पर अब मुझे जाने दो, आखिर मँझला भी मेरा ही बेटा है। इसी बहाने वहाँ हो आऊँगी।"

"पूतों फलने का आशीष भी देती हो और पूतों पर इतना क्रोध भी करती हो। अगर ऐसे गयीं, तो आपका आशीष ऊपरी मन का मानूँगा।" विजय दादी के गले में बाँहे डालकर झूलने लगा।

दादी की हँसी छूट गई– "बदमाश कहीं के। पहले लड़कर बाद में सुलह की सूरत निकालता है। मैं अब नहीं रुकूँगी।"

"देखो–देखो, मेरी बात से दादी रुक गयीं।" विजय ने ताली बजाकर दादी के बदलते इरादे का ऐलान कर दिया।

छोटी बहू ने हँसकर कहा– "बहुओं को कौन मानता है। अम्मा जी रुकीं, तो पोते के ही रोके।"

"झूठ है। मैं रुकूँगी, तो अपनी बेटी की बात पर ही" कहकर उन्होंने बड़ी बहू का सिर सहला दिया, जो अब भी बिसूर रही थीं। दादी कह रही थीं– "दुनिया जो भी कहे या करे, मैं बेटी की बात से बाहर थोड़े ही हूँ, पगली।"

गरमी के तीसरे पहर भी घर में जैसे सर्वांग शीतल करनेवाली सावन की फुहारें पड़ने लगी थीं। ❑

– ग्राम–मसीत, पोस्ट–साण्डला, जिला–हरदोई (उ०प्र०)

भारत के संविधान में 'इण्डिया' क्यों है ?

– डॉ० राजेश अग्रवाल

भारत का नाम सिर्फ भारत, अंग्रेजी में भी भारत (BHARAT) क्यों नहीं है ? इण्डिया क्यों है ?

इण्डिया मूलतः फिरंगियों की देन है। गुलामी का प्रतीक है और आजादी के बाद आज भी इस शब्द का हमारे संविधान की प्रथम लाइन में होना हमारी गुलाम मानसिकता का प्रतीक है।

अंग्रेजी के हिमायती और अंग्रेजी सिद्धान्त भी कहते हैं कि संज्ञा कभी बदलती नहीं है। अतः अंग्रेजी के उपासकों द्वारा भी इसका समर्थन अनुचित ही है। भारत को अंग्रेजी में भी भारत (BHARAT) लिखा जाये। इससे हमारी यह मंशा भी साफ जाहिर होती है कि हम एक भाषा के रूप में अंग्रेजी के विरोधी नहीं हैं, क्योंकि भाषा एक वार्त्तालाप का माध्यम है और हम अंग्रेजी भाषा को अपना पढ़ने–लिखने एवं शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के खिलाफ हैं न कि अंग्रेजी भाषा के।

भारत नाम का हजारों वर्ष पुराना इतिहास है। महाभारत के पहले का इतिहास है और स्वर्णिम इतिहास है। परन्तु इण्डिया शब्द (नाम) की उत्पत्ति अंग्रेजों के आगमन के बाद हुई, जिन्होंने सिन्धु नदी के इस पार यानी आज के हिन्दुस्तान, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश वासियों को 'इण्डियन' और देश को 'इण्डिया' कहना शुरू किया जिसकी वजह थी सिन्धु नदी को ग्रीक भाषा में इण्डस एवं इण्डस के इस पार इण्डिया कहा गया। इस नाम को इतना तोड़ने, मोड़ने की आवश्यकता फिरंगियों को क्यों पड़ी यह समझ से परे है। वे इसे सीधा "भारत" भी तो कह सकते थे।

अब प्रश्न यह है कि उन्होंने कहा तो कहा; पर हम क्यों मान लें? हमने उन्हें फिरंगी कहा, तो उन्होंने तो अपने आपको फिरंगी स्वीकार नहीं किया; बल्कि हमारी आज की पीढ़ी को तो शायद फिरंगी क्या होता है, यह भी नहीं मालूम होगा।

हमारे संविधान में देश का नाम इण्डिया होना हमारे मुँह पर न सिर्फ एक करारा तमाचा है, बल्कि हमारे असंख्य हुतात्माओं का भी अपमान है, जिन्होंने 'भारतमाता की जय' कहते हुए अपने सीने पर गोलियाँ खायीं या हँसते–हँसते फाँसी के फन्दे पर झूल गये। इतिहास साक्षी है, न तो चन्द्रशेखर आजाद और न महान् हुतात्मा भगतसिंह, न रामप्रसाद बिस्मिल, न बाल गंगाधर तिलक, न गान्धी जी और न सरदार पटेल ने कभी 'जय इण्डिया माता की' कहा और न ही 'जय इण्डिया' के नारे लगाये।

कई लोग कहते है, इससे हमें अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में कठिनाई आयेगी। अरे ! कैसी कठिनाई ? हमारे सामने उदाहरण है, छोटे से श्रीलंका का जो पहले 'सीलोन' था, बर्मा का, जिसका नाम आज फिर से म्यांमार हो गया है। यदि कोई काम करना है, तो कोई कठिनाई नहीं है और नहीं करने के सौ बहाने। आज हर एक सच्चे भारतीय की यह अभिलाषा है कि हमारे संविधान में से इण्डिया शब्द हटे। इसके लिए जरूरत है संविधान संशोधन की और वह तभी हो सकता है, जब हमारे राजनेता इसके लिए इच्छुक हों। भारतीय जनता को जन प्रतिनिधियों से, चुनाव के अवसर पर वोट माँगते वक्त यह पूछना होगा कि वे यह संविधान संशोधन की बात संसद् में रखेंगे या नहीं।

कितने शर्म की बात है कि इतने पुराने देश की भारतीय संस्कृति की, भारत की पहचान इसके संविधान में "इण्डिया दैट इज भारत" है; क्योंकि इस संविधान के निर्माता जरूर भारतीय थे, पर संविधान में भारतीयता का अभाव–सा रहा; क्योंकि इसके पहले हमारा अपना कोई संविधान ही नहीं था। देश रियासतों में बँटा हुआ था। जब इसे भारतीय संविधान का जामा पहनाया गया, तो इसमें इण्डिया शब्द के लिए कोई जगह होनी ही नहीं चाहिए थी। कई लोग नाम बदलने के विरोधी हैं। कहते हैं, नाम से क्या फर्क पड़ता है। तो उनसे एक सवाल है क्या वे अपना नाम 'गधा राम' रख सकते हैं? (नाम से चूँकि कोई फर्क नहीं पड़ता) परन्तु नहीं, वे अपना नाम 'गधा राम' नहीं रख सकते हैं; क्योंकि 'गधा' मूर्खता का प्रतीक है। इण्डिया भी क्या इसी तरह गुलामी का प्रतीक नहीं है? संविधान को लागू हुए पचास वर्ष बीत रहे हैं। क्या यह शुभ अवसर इस प्रकार के संविधान–संशोधन के लिए सर्वथा उपयुक्त नहीं है ? सांसदो ! भारत की जनता के प्रतिनिधियो ! जरा एक बार सोचो, क्या यह तुम्हारा दायित्व नहीं है? क्या इसके लिए भी किसी विदेशी विशेषज्ञ का आयात करना होगा ? ❑

– ८०, पुराना अग्रवाल नगर, इन्दौर

बिनु पानी सब सून

– अनुपम मिश्र

बुरा समय आ गया था।

भोपा होते तो जरूर बताते कि तालाबों के लिए बुरा समय आ गया था। जो सरस परम्पराएँ, मान्यताएँ तालाब बनाती थीं, वे ही सूखने लगी थीं।

दूरी एक छोटा–सा शब्द है। लेकिन राज और समाज के बीच में इस शब्द के आने से समाज का कष्ट कितना बढ़ जाता है, इसका कोई हिसाब नहीं। फिर जब यह दूरी एक तालाब की नहीं, सात समुन्दर की हो जाए तो बखान के लिए क्या रह जाता है?

अंग्रेज सात समुन्दर पार से आये थे और अपने समाज के अनुभव लेकर आये थे। वहाँ वर्गों पर टिका समाज था, जिसमें स्वामी और दास के सम्बन्ध थे। वहाँ राज्य ही फैसला करता था कि समाज का हित किस में है। यहाँ जाति का समाज था और राजा जरूर थे पर राजा और प्रजा के सम्बन्ध अंग्रेजों के अपने अनुभवों से बिलकुल भिन्न थे। यहाँ समाज अपना हित स्वयं तय करता था और उसे अपनी शक्ति से, अपने संयोजन से पूरा करता था। राजा उसमें सहायक होता था।

पानी का प्रबन्ध, उसकी चिन्ता हमारे समाज के कर्तव्य–बोध के विशाल सागर की एक बूँद थी। सागर और बूँद एक दूसरे से जुड़े थे। बूँदें अलग हो जाएँ तो न सागर रहे, न बूँद बचे। सात समुन्दर पार से आये अंग्रेजों को समाज के कर्त्तव्य–बोध का न तो विशाल सागर दिख पाया, न उसकी बूँदें। उन्होंने अपने यहाँ के अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर यहाँ के राज में दस्तावेज जरूर खोजने की कोशिश की, लेकिन वैसे रिकार्ड राज में रखे नहीं जाते थे। इसलिए उन्होंने मान लिया कि यहाँ सारी व्यवस्था उन्हीं को करनी है। यहाँ तो कुछ है ही नहीं।

देश के अनेक भागों में घूम कर अंग्रेजों ने कुछ या काफी जानकारियाँ जरूर एकत्र कीं, लेकिन यह सारा अभ्यास कुतूहल से ज्यादा नहीं था। उसमें कर्त्तव्य के सागर और उसकी बूँदों को समझने की दृष्टि नहीं थी। इसलिए विपुल मात्रा में जानकारियाँ एकत्र करने के बाद भी जो नीतियाँ बनीं, उन्होंने तो इस सागर और बूँद को अलग–अलग ही किया।

उत्कर्ष का दौर भले ही बीत गया था, पर अंग्रेजों के बाद भी पतन का दौर प्रारम्भ नहीं हुआ था। उन्नीसवीं सदी के अन्त और तो और बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक अंग्रेज यहाँ घूमते–फिरते जो कुछ देख रहे थे, लिख रहे थे, जो गजेटियर बना रहे थे, उनमें कई जगहों पर छोटे ही नहीं, बड़े–बड़े तालाबों पर चल रहे काम का उल्लेख मिलता है।

मध्य प्रदेश के दुर्ग और राजनांद गाँव जैसे क्षेत्रों में सन् १९०७ तक भी "बहुत से बड़े तालाब बन रहे थे।" इनमें तांदुला नामक तालाब "ग्यारह वर्ष तक लगातार चले काम के बाद बन कर बस अभी तैयार ही हुआ था। इससे सिंचाई के लिए निकली नहरों–नालियों की लम्बाई ५१३ मील थी।"

जो नायक समाज को टिकाए रखने के लिए यह सब काम करते थे, उनमें से कुछ के मन में समाज को डिगाने–हिलाने वालीं नई व्यवस्था भला कैसे समा पाती? उनकी तरफ से अंग्रेजों को चुनौतियाँ भी मिलीं। सांसी, भील जैसी स्वाभिमानी जातियों को इसी टकराव के कारण अंग्रेजी राज ने ठग और अपराधी तक कहा। अब जब सब कुछ अंग्रजों को ही करना था तो उनसे पहले के पूरे ढाँचे को टूटना ही था। उस ढाँचे को दुतकारना, उसकी उपेक्षा करना कोई बहुत सोचा–विचारा गया कुटिल षड्यन्त्र नहीं था। वह तो इस नई दृष्टि का सहज परिणाम था और दुर्भाग्य से यह नई दृष्टि हमारे समाज के उन लोगों तक को भा गई थी, जो पूरे मन से अंग्रेजों का विरोध कर रहे थे और देश को आजाद करने के लिए लड़ रहे थे।

पिछले दौर के अभ्यस्त हाथ अब अकुशल कारीगरों में बदल दिए गये थे। ऐसे बहुत से लोग जो गुनीजनखाना यानी गुणी माने गये जनों की सूची में थे, वे अब अनपढ़, असभ्य, अप्रशिक्षित माने जाने लगे। उस नए राज और उसके प्रकाश के कारण चमकी नई सामाजिक संस्थाएँ, नये आन्दोलन भी अपने ही नायकों के शिक्षण–प्रशिक्षण में अंग्रेजों से भी आगे बढ़ गये थे। आजादी के बाद की सरकारों, सामाजिक संस्थाओं तथा ज्यादातर आन्दोलनों

में भी यही लज्जाजनक प्रवृत्ति जारी रही है।

उस गुणी समाज के हाथ से पानी का प्रबन्ध किस तरह छीना गया इसकी एक झलक तब के मैसूर राज में देखने को मिलती है।

सन् १८०० में मैसूर राज दीवान पूर्णैया देखते थे। तब राज्य भर में ३६,००० तालाब थे। कहा जाता था कि वहाँ किसी पहाड़ी की चोटी पर एक बूँद गिरे, आधी इस तरफ और आधी उस तरफ बहे तो दोनों तरफ इसे सहेज कर रखने वाले तालाब वहाँ मौजूद थे। समाज के अलावा राज भी इन उम्दा तालाबों की देखरेख के लिए हर साल कुछ लाख रुपये लगाता था।

राज बदला। अंग्रेज आये। सबसे पहले उन्होंने इस 'फिजूल खर्ची' को रोका और सन् १८३१ में राज की ओर से तालाबों के लिए दी जाने वाली राशि को काट कर एकदम आधा कर दिया। अगले ३२ बरस तक नये राज की कंजूसी को समाज अपनी उदारता से ढक कर रखे रहा। तालाब लोगों के थे, सो राज से मिलने वाली मदद के कम हो जाने, कहीं–कहीं बन्द हो जाने के बाद भी समाज तालाबों को सम्भाले रहा। बरसों पुरानी स्मृति ऐसे ही नहीं मिट जाती। लेकिन फिर ३२ बरस बाद यानी सन् १८६३ में वहाँ पहली बार पी.डब्ल्यू.डी. बना और सारे तालाब लोगों से छीन कर उसे सौंप दिये गये।

प्रतिष्ठा पहले ही हर ली थी। फिर धन, साधन छीने और अब स्वामित्व भी ले लिया गया था। सम्मान, सुविधा और अधिकारों के बिना समाज लाचार होने लगा था। ऐसे में उससे सिर्फ अपने कर्त्तव्य निभाने की उम्मीद कैसे की जाती?

मैसूर के ३६,००० तालाबों की दुर्दशा का किस्सा बहुत लम्बा है। पी.डब्ल्यू.डी. से काम नहीं चला तो फिर पहली बार सिंचाई विभाग बना। उसे तालाब सौंपे गये। वह भी कुछ नहीं कर पाया तो वापस पी.डब्ल्यू.डी. को। अंग्रेज विभागों की अदला–बदली के बीच तालाबों से मिलने वाला राजस्व बढ़ाते गये और रख–रखाव की राशि छाँटते–काटते गये। अंग्रेज इस काम के लिए चन्दा तक माँगने लगे जो फिर जबरन वसूली तक चला गया।

इधर दिल्ली तालाबों की दुर्दशा की नई राजधानी बन चली थी। अंग्रेजों के आने से पहले तक यहाँ ३५० तालाब थे। इन्हें भी राजस्व के लाभ–हानि की तराजू पर तोला गया और कमाई न दे पाने वाले तालाब राज के पलड़े से बाहर फेंक दिये गये।

उसी दौर में दिल्ली में नल लगने लगे थे। इसके विरोध की एक हल्की–सी सुरीली आवाज सन् १९०० के आसपास विवाहों के अवसर पर गाई जाने वाली 'गारियों', विवाह–गीतों में दिखी थी। बारात जब पंगत में बैठती तो स्त्रियाँ "फिरंगी नल मत लगवाय दियो" गीत गातीं। लेकिन नल लगते गये और जगह–जगह बने तालाब, कुएँ और बावड़ियों के बदले अंग्रेज द्वारा नियन्त्रित 'वाटर वर्क्स' से पानी आने लगा।

पहले सभी बड़े शहरों में और फिर धीरे–धीरे शहरों में भी यही स्वप्न साकार किया जाने लगा। पर केवल पाईप बिछाने और नल की टोंटी लगा देने से पानी नहीं आता। यह बात उस समय नहीं लेकिन आजादी के कुछ समय बाद धीरे–धीरे समझ में आने लगी थी। सन् १९७० के बाद तो यह डरावने सपने में बदलने लगी थी तब तक कई शहरों के तालाब उपेक्षा की गाद से पट चुके थे और उन पर नये मोहल्ले, बाजार, स्टेडियम खड़े हो चुके थे।

पर पानी अपना रास्ता नहीं भूलता। तालाब हथिया कर बनाये गये नये मोहल्लों में वर्षा के दिनों में पानी भर जाता है और फिर वर्षा बीती नहीं कि इन शहरों में जल संकट के बादल छाने लगते हैं।

जिन शहरों के पास फ़िलहाल थोड़ा पैसा है, थोड़ी ताकत है, वे किसी और के पानी को छीन कर अपने नलों को किसी तरह चला रहे हैं पर बाकी की हालत तो हर साल बिगड़ती ही जा रही है। कई शहरों के कलेक्टर फरवरी माह में आसपास के गाँवों के बड़े तालाबों का पानी सिंचाई के कामों से रोक कर शहरों के लिए सुरक्षित कर लेते हैं।

शहरों को पानी चाहिए पर पानी दे सकने वाले तालाब नहीं। तब पानी ट्यूबवेल से ही मिल सकता है पर इसके लिए बिजली, डीजल के साथ–साथ उसी शहर के नीचे पानी चाहिए। मद्रास जैसे कई शहरों का दुखद अनुभव यही बताता है कि लगातार गिरता जल–स्तर पैसे और सत्ता के बल पर थामा नहीं जा सकता। कुछ शहरों ने दूर बहने वाली किसी नदी से पानी उठा कर लाने के बेहद खर्चीले और अव्यावहारिक तरीके अपनाए हैं। लेकिन ऐसी नगरपालिकाओं पर करोड़ों रुपये के बिजली के बिल भी चढ़ चुके हैं।

इन्दौर का ऐसा ही उदाहरण आँख खोल सकता है। यहाँ दूर बह रही नर्मदा का पानी लाया गया था। योजना का पहला चरण छोटा पड़ा, तो एक स्वर से दूसरे चरण की माँग भी उठी और अब सन् १९९३ में तीसरे

रण के लिए भी आन्दोलन चल रहा है। इसमें कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, साम्यवादी दलों के अलावा शहर के पहलवान श्री अनोखीलाल भी एक पैर पर एक ही जगह ४ दिन तक खड़े रह कर 'सत्याग्रह' कर चुके हैं। इस इन्दौर में अभी कुछ ही पहले तक बिलावली जैसा तालाब था, जिसमें फ्लाइंग क्लब के जहाज के गिर जाने पर नौसेना के गोताखोर उतारे गये थे पर वे डूबे जहाज को आसानी से खोज नहीं पाये थे। आज बिलावली एक बड़ा सूखा मैदान है और इसमें फ्लाइंग क्लब के जहाज उड़ाए जा सकते हैं।

इन्दौर के पड़ोस में बसे देवास शहर का किस्सा तो और भी विचित्र है। पिछले ३० वर्ष में यहाँ के सभी छोटे-बड़े तालाब भर दिये गये और उन पर मकान और कारखाने खुल गये। लेकिन फिर 'पता' चला कि इन्हें पानी देने का कोई स्रोत ही नहीं बचा है। शहर के खाली होने तक की खबरें छपने लगी थीं। शहर के लिए पानी जुटाना था पर पानी कहाँ से लाएँ? देवास के तालाबों, कुओं के बदले रेलवे स्टेशन पर दस दिन तक दिन-रात काम चलता रहा।

२५ अप्रैल, १९९० को इंदौर के ५० टैंकर पानी लेकर रेलगाड़ी देवास आयी। स्थानीय शासन मंत्री की उपस्थिति में ढोल नगाड़े बजा कर पानी की रेल का स्वागत हुआ। मंत्रीजी ने इन्दौर स्टेशन आई 'नर्मदा' का पानी पीकर इस योजना का उद्घाटन किया। संकट के समय इससे पहले भी गुजरात और तमिलनाडु के कुछ शहरों में रेल से पानी पहुँचाया गया है पर देवास में तो अब हर सुबह पानी की रेल आती है, टैंकरों का पानी पम्पों के सहारे टंकियों में चढ़ता है और तब शहर में बँटता है।

रेल का भाड़ा हर रोज चालीस हजार रुपया है। बिजली से पानी ऊपर चढ़ाने का खर्च अलग और इन्दौर से मिलने वाले पानी का दाम भी लग जाए तो पूरी योजना दूध के भाव पड़ेगी। लेकिन अभी मध्य प्रदेश शासन केन्द्र शासन से रेल भाड़ा माफ करवाता जा रहा है। दिल्ली के लिए दूर गंगा का पानी उठा कर लाने वाला केन्द्र शासन अभी मध्य प्रदेश के प्रति उदारता बरत रहा है। श्री मनमोहन सिंह की नई 'उदारवादी' नीति रेल और बिजली के दाम चुकाने को कह बैठी तो देवास को नरकवास बनने में कितनी देरी लगेगी?

पानी के मामले में निपट बेवकूफी के उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। मध्य प्रदेश के ही सागर शहर को देखें। कोई ६०० बरस पहले लाखा बंजारे द्वारा बनाये गये सागर नामक एक विशाल तालाब के किनारे बसे इस शहर का नाम सागर ही हो गया था। आज यहाँ नये समाज की चार बड़ी प्रतिष्ठित संस्थाएँ हैं। पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र है, सेना के महार रेजिमेंट का मुख्यालय है, नगर पालिका है और सर हरिसिंह गौर के नाम पर बना विश्वविद्यालय है। एक बंजारा यहाँ आया और विशाल सागर बना कर चला गया लेकिन नये समाज की चार साधन सम्पन्न संस्थाएँ इस सागर की देखभाल तक नहीं कर पायीं। आज सागर तालाब पर ग्यारह शोध प्रबन्ध पूरे हो चुके हैं, डिग्रियाँ बँट चुकी हैं पर एक अनपढ़ माने गये बंजारे के हाथों बने सागर को पढ़ा-लिखा माना गया समाज बचा तक नहीं पा रहा है।

उपेक्षा की इस आँधी में कई तालाब फिर भी खड़े हैं। देश भर में कोई आठ से दस लाख तालाब आज भी भरे रहे हैं और वरुण देवता का प्रसाद सुपात्रों के साथ-साथ कुपात्रों में भी बाँट रहे हैं। उनकी मजबूत बनक इसका एक कारण है पर एकमात्र कारण नहीं। तब तो मजबूत पत्थर के बने पुराने किले खंडहरों में नहीं बदलते। कई तरफ से टूट चुके समाज में तालाबों की स्मृति अभी भी शेष है। स्मति की यह मजबूती पत्थर की मजबूती से ज्यादा मजबूत है।

छत्तीसगढ़ के गाँवों में आज भी छेर-छेरा के गीत गाये जाते हैं और उससे मिले अनाज से अपने तालाबों की टूट-फूट ठीक की जाती है। आज भी बुन्देलखण्ड में कजलियों के गीत में उसके आठों अंग डूब सकें- ऐसी कामना की जाती है। हरियाणा के नारनौल में जात उतारने के बाद माता-पिता तालाब की मिट्टी काटते हैं और पाल पर चढ़ाते हैं। न जाने कितने शहर, कितने सारे गाँव इन्हीं तालाबों के कारण टिके हुए हैं। बहुत-सी नगर पालिकाएँ आज भी इन्हीं तालाबों के कारण पल रही हैं और सिंचाई विभाग इन्हीं के दम पर खेतों को पानी दे पा रहे हैं। बीजा की डाह जैसे गाँवों में आज भी सागरों के वही नायक नये तालाब भी खोद रहे हैं और पहली बरसात में उन पर रात-रात भर पहरा दे रहे हैं। उधर रोज सुबह-शाम घड़सीसर में आज भी सूरज मन भर सोना उंड़ेलता है।

कुछ कानों में आज भी यह स्वर गूँजता है :

"अच्छे-अच्छे काम करते जाना।" ❐

— गान्धी शान्ति प्रतिष्ठान, २२१, दीनदयाल
उपाध्याय मार्ग, नयी दिल्ली- ११०००२

उसके आगे साम्राज्य भी बौने पड़ जाते हैं

– डॉ० राजकुमार शर्मा

उष्ण रक्त से सींची जाती जहाँ देश की माटी,
देकर प्राण राष्ट्र रक्षा की है जिसकी परिपाटी,
जहाँ राष्ट्र की बलिवेदी पर यौवन चढ़ जाता है;
उसी देश को आजादी का गौरव मिल पाता है।

देती हैं संदेश रक्त से अंकित युद्ध कथाएँ;
देश सुरक्षित तब तक जब तक बची रहें सीमाएँ;
सीमाएँ लक्ष्मण–रेखा सी पवित्रता रखती हैं,
जो रावण लाँघते उन्हें वह जला दिया करती हैं।

भारत के प्रहरी प्राणों का मोह नहीं करते हैं,
मातृभूमि के लिए प्राण उत्सर्ग किया करते हैं;
जब कोई अतिक्रमण नियन्त्रण–रेखा का करता है,
भारतीय वीरों का उस क्षण खून खौल उठता है।

पैटन टैंक, मिसाइल, तोपें हुँकारी भरती हैं,
संगीनें तब रुधिर–पान की तैयारी करती हैं;
क्रुद्ध–सिंहिनी सी अपनी सेना जब दहाड़ती है
दुश्मन की सेना तब आत्म–समर्पण कर जाती है।

अपने सुख को त्याग, जंग के लिए निकल पड़ते हैं,
सिर्फ देश के लिए डटे, सीमाओं पर रहते हैं;
भूखे, प्यासे रहकर भी, वह अपना देश बचाते,
चट्टानी छाती वाले चट्टानों पर सो जाते।

बर्फ ओढ़ते, बर्फ बिछाते, बम–गोलों पर सोते,
सुबह–शाम विश्रान्ति हेतु, मुँह रक्त–नदी में धोते;
जिन कष्टों को झेल, जीतकर विजय–श्री लाते हैं,
उसके आगे साम्राज्य भी बौने पड़ जाते हैं।

निर्भय इतने मौत देखकर इनको, घबराती है,
शक्ति और साहस ही तो इन वीरों की थाती है;
मरने को तो रोज हजारों–लाखों मर जाते हैं,
पर हुतात्मा होने का गौरव बिरले ही पाते हैं।

जिसके दिल का कोई टुकड़ा, डटा हुआ सीमा पर,
तनिक करो अनुमान, बीतती क्या होगी उस माँ पर;
एक साथ सैकड़ों गोलियाँ सीने पर खाती है,
बेटे के शहीद होने की जब चिट्ठी आती है।

सैनिक का था पत्र– लिखा था, मरने से कुछ पहले,
"मेरी अच्छी माँ, पहाड़–सा दुख है लेकिन सह ले;
बस अन्तिम प्रणाम, मेरी आँखें अब पथरायी हैं;
लेना देख गोलियाँ सब सीने पर ही खायी हैं।"

पूरा देश शपथ लेता है गंगाजली उठाकर,
जीती जो भी भूमि युद्ध में तुमने, खून बहाकर;
समझौते की भूलों को इस बार न दोहरायेंगे,
हो कुछ भी, पर एक इंच भी भूमि न लौटायेंगे।

जो शहीद हो गये देश पर उनको सदा नमन है,
जो सीमा पर डटे हुए हैं उनको पद–वन्दन है;
यो तो मर मिटने को आतुर अब जनता सारी है,
लेकिन एक शहीद अकेला, लाखों पर भारी है।

–जियाखेल, शाहजहाँपुर (उ०प्र०)

खुदाई में मिला सरस्वती नदी का जल

राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र में वैदिक कालीन सरस्वती नदी के अस्तित्व की वास्तविक जानकारी के लिए खुदाई में निकले पानी की उम्र का पता लगाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

केन्द्रीय भूमि जल प्राधिकरण के अध्यक्ष डॉ० डी०के० चढ्ढ़ा के अनुसार यह नदी राजस्थान के पश्चिमी रेगिस्तान में आठ सौ से एक हजार वर्ष पहले बहती थी तथा करीब दो हजार वर्ष तक इसका अस्तित्व समझा जाता है। इसकी वास्तविक जानकारी तभी पता चल सकेगी, जब उस क्षेत्र की खुदाई में निकले भूमिगत पानी की उम्र का पता चल जायेगा।

पश्चिम राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, बीकानेर तथा श्रीगंगानगर जिले में आठ स्थानों पर इस नदी की खोज का कार्य चल रहा है तथा इसमें अभी दो वर्ष और कार्य चलेगा। जैसलमेर जिले के जेसुराना, मलीनगरा, जैसलमेर शहर तथा तनोट, किशनगढ़ क्षेत्र में विशेष अध्ययन व शोध किया जा रहा है।

अब तक की खोज में लवणीय जल से घिरे ताजा जल स्रोत तथा मोटी तलछंट होने का पता चला है। इसके अलावा खुदाई में तीस से पचास मीटर के बीच पानी में घुली मिट्टी तथा पानी के बहाव के पुराने रास्तों की जानकारी भी हासिल हुई है। जैसलमेर जिले के तनोट, किशनगढ़, क्षेत्र में नौ कुएँ खोदे गये हैं तथा कई परीक्षण केन्द्र खोले गये हैं। इस खोज में भूमि जल प्राधिकरण, भाभा आणविक अनुसन्धान केन्द्र सहित कई अन्य संगठन सक्रिय हैं। □

पठनीय पुस्तक

– डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र

आलोच्य पुस्तक 'दक्षिणी भारत की सन्त परम्परा' की लेखिका डॉ० (श्रीमती) राधाकृष्णमूर्ति अहिन्दी भाषी होते हुए भी हिन्दी व संस्कृत में डाक्टरेट की उपाधियाँ प्राप्त कर चुकी हैं तथा अंग्रेजी, चारों दाक्षिणात्य भाषाओं– (तमिल, तेलुगु, मलयालम व कन्नड़) के ज्ञान व्यवसाय के परिणामस्वरूप वे इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को लिखने में सफल हुई हैं।

भारत की भावात्मक एकता के लिए इस देश के सन्तों का योगदान प्रशस्य रहा है। श्री परशुराम चतुर्वेदी की 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' के अनुकरण पर डॉ० ष्ठा कृष्णमूर्ति ने 'दक्षिणी भारत की सन्त परम्परा' को लिखने का बीड़ा उठाया और इस कार्य में उनको प्रशंसनीय सफलता भी प्राप्त हुई है।

> **पुस्तक : दक्षिणी भारत की सन्त परम्परा**
> **विधा :** शोधपरक ग्रन्थ,
> **लेखिका :** डॉ० (श्रीमती) राधा कृष्णमूर्त्ति
> **प्रकाशन :** कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बंगलोर–१८
> **मूल्य :** २०० रुपये, **पृष्ठ संख्या : ४७७**

हिन्दू साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर आदि निर्गुण उपासकों को सन्त तथा सूर, तुलसी, मीरा आदि सगुण उपासकों को भक्त नाम से अभिहित किया है; किन्तु दक्षिण भारत में निर्गुण तथा सगुण दोनों प्रकार के भक्तों को 'सन्त' कहने की परम्परा रही है।

प्रस्तुत पुस्तक में दस अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में पुराणों, गीता, संस्कृत काव्यों, हिन्दी और इतर भाषाओं के काव्यों के आधार पर 'सन्त' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए सन्त के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में तमिलनाडु के शैव सन्तों का अति प्राचीन काल से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक का परिचय, उनके दार्शनिक विचार, उनकी रचनाओं और उनके चमत्कारों का वर्णन बड़ी रोचक शैली में किया गया है। इसी प्रकार तृतीय अध्याय में तमिलनाडु के वैष्णव सन्तों का विशद वर्णन मिलता है। दक्षिण के वैष्णव सन्तों में मध्वाचार्य, निम्बार्क स्वामी, बल्लभाचार्य और रामानुजाचार्य ऐसे हैं, जिन्होंने उत्तरी भारत के सन्तों को भी बहुत प्रभावित किया। आण्डाल की रचनाओं का भी हिन्दी प्रदेशों में प्रभाव रहा है।

चतुर्थ अध्याय केरल के सन्तों से सम्बन्धित है तथा पञ्चम अध्याय में कर्नाटक के 'वीर शैव सन्तों' का विस्तार के साथ वर्णन मिलता है। षष्ठ अध्याय कर्नाटक के 'हरिदास सन्तों' पर प्रकाश डालता है। आचार्य मध्वाचार्य इन्हीं सन्तों में से थे। सप्तम अध्याय का सम्बन्ध आन्ध्र प्रदेश के सन्तों से है। अष्टम अध्याय का वर्ण्य–विषय है– महाराष्ट्र के सन्त, जिनमें सन्त ज्ञानेश्वर तथा नामदेव हिन्दी प्रदेश में, पंजाब और राजस्थान तक लोकप्रिय रहे। इस अध्याय में महाराष्ट्र के 'महानुभाव सम्प्रदाय' के सन्तों का वर्णन मिलता है। महाराष्ट्र के 'दत्त सम्प्रदाय' के सन्तों का उल्लेख नवम अध्याय का विषय है। इस परम्परा के सन्तों में एकनाथ, तुकाराम, समर्थ रामदास आदि अपनी हिन्दी रचनाओं के कारण हिन्दी प्रदेशों में भी लोकप्रिय रहे।

दशम अध्याय, 'उपसंहार' शीर्षक है। इसमें उदार भक्ति, नारी सन्त, ज्ञानोत्तर भक्ति, सगुण–निर्गुण में समन्वय, उलटवाँसियाँ, पहेली बुझौवल, सख्य–भक्ति, वात्सल्य–भक्ति, दास्य–भाव, मधुर–भक्तिभाव, प्रकृति–वर्णन, विष्णु–शिव की एकता, नैतिक आचरण की परमावश्यकता, सन्त और राजनीति, भाषा और साहित्य को सन्तों की देन, संगीत कला को सन्तों की देन तथा मनवतावादी दृष्टिकोण शीर्षकों पर अत्यन्त उपयोगी चर्चा की गयी है।

हिन्दी साहित्य में भक्ति विषयक यह एक गन्थ–रत्न है, जिसका सर्वत्र समादर होना चाहिए। मुखपृष्ठ आकर्षक है। कागज उत्तम है। मुद्रण–सम्बन्धी कुछ भूलें इतने विशाल ग्रन्थ के लिए डिठौना जैसी ही हैं। लेखिका विदुषी हैं, अहिन्दी भाषी होने के कारण कुछ लिंग सम्बन्धी भूलें अवश्य दृष्टिगोचर हो जाती हैं। ❐

नाम पुस्तक : ईसाइयत का विश्व व्यापी षड्यन्त्र
लेखक : अधीश कुमार,
प्रकाशक : विश्व संवाद केन्द्र , डी–२, पार्क रोड–६, लखनऊ–१, **मूल्य : ५ रु० मात्र**

'ईसाइयत का विश्वव्यापी षड्यन्त्र' पुस्तक को श्री अधीश कुमार ने बड़े परिश्रम से विभिन्न प्रामाणिक पुस्तकों के गम्भीर अध्ययन के उपरान्त प्रस्तुत किया है। इसके अध्ययन के उपरान्त धर्मनिरपेक्षतावादियों की आँखें खुल जानी चाहिए।

ईसा के जन्म और मृत्यु की घटनाओं का उल्लेख करते हुए लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि ईसा के जन्म दिन पर भी ईसाई एक मत नहीं हैं। इसराइल में पहले ६ जनवरी को उनका जन्म दिन मनाया जाता था। ग्रीक चर्च में आज भी ७ जनवरी को ईसा का जन्मदिन मनाया जाता है। बाद में रोमन सम्राट के सुझाव पर सन्त डायनीसियस एक्सीनस ने सन् ५३० ई० में २५ दिसम्बर को ईसा का जन्म घोषित किया। कारण यह कि जूलियन कलैण्डर के अनुसार २५ दिसम्बर को सूर्य का जन्म दिन होता है।

बाइबिल में केवल 'इसराइल के ईश्वर' की ही उपासना करने एवं पराये देवताओं का बहिष्कार करने के अनेक प्रसंग हैं। इसराइल का ईश्वर दूसरे राष्ट्रों पर, जहाँ उसकी उपासना नहीं होती है, आक्रमण के आदेश देता है।

फिलीस्तीन में लगभग ५० वर्ष पूर्व २००० वर्ष से भी शताब्दियों पूर्व के दस्तावेजी प्रमाण प्राप्त हुए हैं, जिनमें कट्टरपन्थी यहूदी पन्थ की गाथाएँ उल्लिखित हैं। इस प्रकार के प्रमाणों से सिद्ध हुआ है कि मसीहा शब्द और उसके द्वारा रोगियों को स्वस्थ करना, मुर्दों को जिलाना आदि चमत्कार' तथा क्रूस पर चढ़ाना, शिष्यों के साथ अन्तिम भोजन और न्यूटेस्टामेण्ट में दिये कुछ कथानक ईसा के कथित जन्म से शताब्दियों पहले से उस क्षेत्र में प्रचलित थे। इस समाचार से ईसई जगत में तहलका मच गया है और ईसा, बाइबिल और ईसाइयत की सत्यता पर प्रश्नचिह्न लग गये हैं।

१७ अगस्त, १९१७ ई० को कैम्ब्रिज में आयोजित माडर्न चर्चमैन्स कान्फ्रेन्स में 'क्या क्राइस्ट ने चर्च की स्थापना की थी ?' विषय पर चर्चा हुई थी, उसमें उस समय के प्रमुख पादरियों ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था– "ईसा ने न तो कभी अपने को परमेश्वर कहा और न ही यहूदियों से अलग कोई संस्था बनाने की इच्छा की।"

इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही कहा था कि "ईसाई चर्च ईसा को अपने मत के अनुसार गढ़ने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु स्वयं को ईसा के जीवनादर्श के अनुसार गढ़ने की चेष्टा नहीं करता।"

जर्मन विद्वान् होल्जर क्रेस्टेन की पुस्तक 'जीसस लिव्ड इन इण्डिया' १९३९ में मूल जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई, जिसके अन्त में विद्वान् लेखक ने लिखा है–

"आज जो कुछ हम ईसाइयत के नाम पर देख रहे हैं, उसका ईसा मसीह की मूल चेतना से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह मात्र 'चर्चेनिटी' है। ईसा का जो रूप चर्च द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है, वह उनके मूल रूप से भिन्न है। चर्च ईसा का जीवन उनके तीसवें वर्ष से आरम्भ करता है। उसके पहले के ३० वर्ष जब ईसा ने भगवान् बुद्ध का अवगाहन किया था, चर्च छोड़ देता है, ईसा का जीवन और उपदेश करुणा और सेवा पर अधिष्ठित है, जबकि चर्च प्रारम्भ से राज्य की छत्र–छाया में पला और हमेशा ही साम्राज्यवाद और युद्धों का दस्तक बना रहा।"

लेखक ने पुस्तक के 'ईसाइयत का इतिहास बनाम पोप की परम्परा' शीर्षक के अन्तर्गत साम्राज्यवाद के रूप में ईसाइयत और राजसत्ता में दखल का इतिहास प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। १८६७ ई० में इटली के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी गैरी वाल्डी ने रोम की जनता से पोप को रोम नगर के मध्य बहने वाली 'टाइबर' नदी में फिकवा दिया। फासिस्ट मुसोलिनी ने पोप का उद्धार किया तथा आज का पोप और उसका वैटिकन साम्राज्य उसी 'फासिस्ट' मुसोलिनी का फल है।

ध्यान देने की बात है कि इस वर्ष ७ नवम्बर १९९९ ई० में पोप के आगमन से भारतवर्ष में मतान्तरण के औचित्य पर आक्रोश उत्पन्न हो गया है। ठीक ५०० वर्ष पूर्व ७ नवम्बर १४९८ को पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा

(शेष पृष्ठ ८० पर)
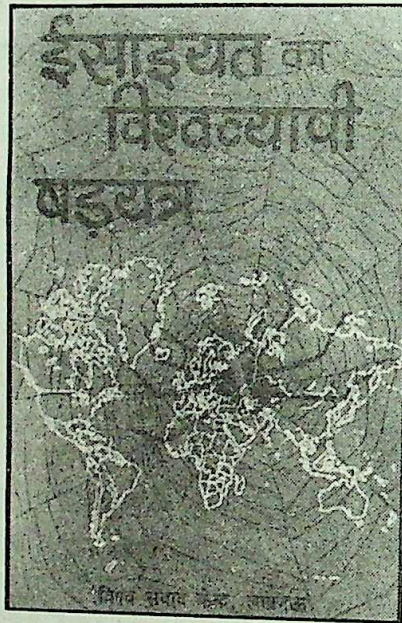
'मिलेनियम' का हंगामा आखिर क्यों ?

– डॉ० हिम्मत सिंह गुगालिया

(ईसा नाम का क्या कोई व्यक्ति कभी इस धरती पर पैदा भी हुआ था ? यह ...नेक पाश्चात्य ईसाई विद्वानों के मन–मस्तिष्क को लगातार मथता रहा है। ऐसे ...द्वानों की भी कमी नहीं है, जो ईसा को एक कपोल–कल्पित व्यक्ति और जॉन, मैथ्यू, ल्यूक और मार्क नाम ...चार अति धूर्त्त व्यक्तियों को इसका 'रचनाकार' मानते हैं। ईसा के कथित जन्म–दिन की कहानी कितनी ...नगढ़न्त है, इसकी एक झाँकी प्रस्तुत लेख में दी गयी है।– सम्पादक)

यीशु मसीह को ईसाई धर्म का संस्थापक निरूपित किया गया है, उनका जन्म पेलेस्टाईन के ...तलहम में रोमन साम्राज्य के प्रारम्भिक दिनों में हुआ था, ...ह परमात्मा का परम प्यारा पुत्र था जो मानव रूप में ...त्पन्न हुआ था, ऐसा ईसाईयों द्वारा कहा जाता है।

ऐसा समझा जाता है कि ईस्वी सन् के प्रथम वर्ष ...ईसा का जन्म हुआ था और आगामी वर्ष में उसकी ...००वाँ वर्ष की अवधि हो जावेगी। उसकी जीवनगाथा ...व उपदेश 'न्यू टेस्टामेण्ट' या सुसमाचारों में अभिलिखित ...। ईस्वी सन् का आरम्भ यीशु मसीह के जन्म वर्ष से ...ना जाता है। इसके पूर्व की कालावधि यीशु पूर्व B.C. (Before christ) कही जाती है, यानि वह यीशु के जन्म ...ने के पूर्व का समय होता है। यीशु के जन्म होने के ...श्चात का समय A. D. (anno Domini) यानि 'प्रभु के ...र्षों के रूप में कहा जाता है।

अब समस्या, जो हमारे समक्ष उपस्थित होती है कि क्या यीशु का जन्म का वर्ष अविवादित रूप से सही है? पुस्तकों में आये वर्णन के अनुसार तो ईस्वी सन् का आरम्भ 'हमारे प्रभु के जन्म के वर्ष' से होना बताया गया है। यदि जन्मावधि सही है तो anno Domini में सन्देह की कोई गुन्जाइश नहीं होगी।

ऐसी मान्यता है कि २४–२५ दिसम्बर की आधी रात के समय यीशु का जन्म हुआ था। इसी कारण से ...ईस्त समाज यीशु के जन्म दिन को 'बड़ा दिन' के रूप ...में मनाते हैं। यह दिन ईसाईयों का पर्व दिन होता है। ...ईस्वी सन् का प्रारम्भ सेन ओनिसियुस ने ५२७ ईस्वी में ...किया था। लेकिन ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जो ...कालगणना करके यीशु का जन्म वर्ष बताया था, उसमें ५ ...से ६ वर्षों की भूल कर दी थी, यानि जो वर्ष उन्होंने यीशु ...का जन्म वर्ष बताया था, वह त्रुटिपूर्ण है। वास्तव में वह अभी तक मान्यता प्राप्त वर्ष से ५ से ६ वर्ष पूर्व का है। कुछ विद्वान् यीशु मसीह का जन्म प्रचलित यीशु वर्ष– ईस्वी सन्– से तीन वर्ष पूर्व का होना दिग्दर्शित करते हैं। यानि जो प्रचलित मान्यता है कि यीशु का जन्म लगभग दो हजार पूर्व हुआ था, वह ठीक नहीं है। यह वर्ष ईस्वी सन् के पूर्व तीन से पाँच या छह वर्ष पूर्व का– कमी भी हो सकता है।

सृष्टि की उत्पत्ति और प्रथम मानव की उत्पत्ति से (anno Mundi) वर्ष की शुरूआत मानी जाती है। यह कालावधि यीशु के जन्म के ४००४ वर्ष पूर्व की मानी गयी है। जबकि anno Domini की कालगणना यीशुमसीह के जन्म वर्ष से की जाती है। किसी विद्वान के अनुसार यीशु के जन्म का वर्ष गिनने में कोई चार साल की भूल रह गयी है, जिसका पता उनके नाम से सन् आरम्भ होने के कई वर्षों बाद ज्ञात हुआ, यानि इसका यह अर्थ हुआ कि यीशु का जन्म ईस्वी सन् के पहले वर्ष में नहीं बल्कि उसके कोई चार वर्ष पहले हुआ था। कोई विद्वान् यीशु का जन्म ईस्वी सन् के आरम्भ के सात वर्ष पूर्व तक बताते हैं, तदनुसार विक्रम संवत् ४६ से ५२ के मध्य में। इस प्रकार यीशु का जन्म ईस्वी सन् के आरम्भ के निम्न किसी सन् में होना चाहिए–

१. ईस्वी सन् के आरम्भ के सात वर्ष पूर्व।
२. ईस्वी सन् के आरम्भ के पाँच वर्ष पूर्व।
३. ईस्वी सन् के आरम्भ के चार वर्ष पूर्व।
४. ईस्वी सन् के आरम्भ के तीन वर्ष पूर्व।
५. ईस्वी सन् के आरम्भ के एक वर्ष पूर्व।
६. ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में या दूसरी शताब्दी में।
७. ईस्वी पूर्व छठवीं या सातवीं शताब्दी में।

वैसे ईस्वी सन् की व्यवस्था पुरानी है, जिसमें समय–समय पर गणितीय संशोधन किये गये थे। वैसे यह

व्यवस्था रोमन कलेण्डर की है जो रोम के सम्राट् रोम्यूलस द्वारा आरम्भ की गयी थी, जिसमें जूलियस सीजर द्वारा ईस्वी सन् के ४६ वर्ष पूर्व में सुधार किया गया था। इस कलेण्डर में जनवरी एवं फरवरी के महीने नदारद थे, जो सीजर ने सम्मिलित किये थे, तब से यह 'जूलियन कलेण्डर' कहा जाने लगा। तब से जनवरी, वर्ष का प्रथम महीना हुआ। उसके पश्चात् पोप ग्रेगरी (१३) ने २ मार्च १५८२ को इसको संशोधित किया, जिससे जूलियन कलेण्डर के कारण बढ़े दस दिनों को कलेण्डर से कम करके, तारीखों का पुनर्निर्धारण किया गया। इसमें ५ अक्टूबर से १४ अक्टूबर सन् १५८२ तक दस दिनों को हटा दिये जाकर ४ अक्टूबर के बाद १५ अक्टूबर की तारीख तय करके, कलेण्डरों का सुधार किया गया था। वर्तमान में यही ग्रेगरी कलेण्डर समस्त विश्व में चालू है।

मत्ती– २:१ के अनुसार जिस समय हेरोदेस राजा थे तब यहूदा प्रदेश के बैतलहम गाँव में यीशु का जन्म हुआ था। राजा हेरोदेस शिशु–यीशु का वध करना चाहता था। तब एक दूत स्वप्न में यूसुफ को दिखलाई देता है और कहता है– 'बालक और उसकी माता को लेकर मिस्र देश को भाग जा। जब तक मैं न कहूँ, तब तक तू वहीं रहना; क्योंकि राजा हेरोदेस इस बालक को मार डालने के लिए खोज करेगा– मत्ती– २:१३। इस पर रात को ही अपनी पत्नी एवं बालक को लेकर यूसुफ मिस्र देश चला गया– मत्ती २:१४। राजा हेरोदेस की मृत्यु के बाद प्रभु का दूत मिस्र देश के यूसुफ को स्वप्न में दिखायी दिया। उसने यूसुफ को कहा– 'उठ! बालक और उसकी माता को लेकर इस्रायल देश को चला जा, क्योंकि जो लोग बालक के प्राण लेनेवाले थे, वे मर गये'–मत्ती २ : १९–२०। ऐसा माना जाता है कि हेरोदेस की मृत्यु ई. पूर्व तीसरी शताब्दी में हुई थी, तो इस मान से यीशु का जन्म तीसरी शताब्दी में होना चाहिए। लूका (ल्यूक) के अनुसार यीशु का जन्म ईस्वी सन् पूर्व पहली या दूसरी शताबदी में होना चाहिए। एक अन्य स्थान– २ : १–२ में लूका बताते हैं कि पहली जनगणना की जाने के समय क्विरिनियुस सीरिया का राज्यपाल था। तब सब लोग अपना नाम लिखाने जाते हैं और यूसुफ भी बैतलहम गया, जहाँ मरियम के पहिलौठे पुत्र का जन्म हुआ। ऐसी जनगणना जो क्विरिनियुस के समय हुई थी, ईस्वी पूर्व छठवीं या सातवीं शताब्दी में हुई थी। इस हिसाब से यीशु का जन्म ईस्वी सन् के आरम्भ से छह से सात शताब्दी पूर्व हुआ था।

इस प्रकार यीशु का जन्म ई.पू. ७०० वर्ष से ईस्वी सन् आरम्भ के एक वर्ष तक की कालावधि में कभी भी हुआ हो सकता है, जिसके बारे में कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है। बाइबिल में इस सम्बन्ध में तो कोई ठोस साक्ष्य है, न कोई उचित सन्दर्भ, इस कारण निश्चयात्मक रूप से यीशु के जन्मवर्ष का कोई कथन करना नितान्त असम्भव है। जब यीशु के जन्म वर्ष का ही अता–पता नहीं है, तो हम कैसे वर्ष २००० को निश्चयात्मक रूप से 'मिलेनियम' या सहस्राब्दी वर्ष कहेंगे। वैसे उपलब्ध साक्ष्य के मान से ऐसा वर्ष तो कई सौ वर्ष पूर्व या कई वर्ष पूर्व आया था, आज तो ऐसा कोई अवसर नहीं है कि 'मिलेनियम' का कोई हंगामा किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मिलेनियम' के नाम से एक षड्यन्त्री तमाशा लोगों को प्रभावित करने के लिए किया जा रहा है, जिसका किंचित् भी औचित्य नहीं है।

वर्तमान पोप जॉन पॉल (द्वितीय) इसे 'द ग्रेट जुबिली वर्ष' कहकर २४–१२–९९ से ६–१–२००१ तक मनाये जाने के लिए कहते हैं, इसका औचित्य ही भला क्या है, जब स्वयं ईसा का जन्म ही पूरी तरह सन्देहों के घेरे में है।

❑

– ५७९, स्नेह नगर, इन्दौर, म०प्र०– ४५२००१

एक हजार वर्ष पुराने शिव मन्दिर के शिखर का निर्माण

मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से लगभग तीस किलोमीटर दूर भोजपुर में एक हजार वर्ष पूर्व परमार राजा भोज द्वारा अर्द्ध–निर्मित्त शिव मन्दिर का जीर्णोद्धार का कार्य भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा किया जा रहा है।

परमारकालीन इस बासठ फुट ऊँचे शिव मन्दिर की छत अर्द्ध–निर्मित्त थी। इसकी छत पर ६–६ टन वजनी आठ शिलाएँ चढ़ायी गयी हैं। इस मन्दिर के पूर्ण जीर्णोद्धार में पाँच वर्ष का समय लगेगा। मन्दिर के मूल स्वरूप के अनुरूप शिलाओं का चयन, उन पर तदनुसार चित्रांकन का जटिल कार्य धार जिले के जीराबाद गाँव के कलाकारों से कराया गया, जो वंशानुगत रूप से यह कार्य करते आये हैं।

इस मन्दिर के निर्माण के समय मन्दिर के प्रांगण में शिलाओं पर मन्दिर का नक्शा बना हुआ है। पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के अभियन्ताओं ने उसी के अनुरूप कार्य किया। ❑

(वि०सं०के०, भोपाल)

(पृष्ठ ८ का शेष) किसका नव-वर्ष...

रूप लिये है। दीपावली के समान ही भवन को स्वच्छ किया जाता है। नये वस्त्र धारण किये जाते हैं। फिर होली के सदृश तीनों दिनों तक एक-दूसरे पर सादा पानी फेंकते हैं। यहाँ के अहिंसा-प्रिय बौद्ध-धर्म के अनुयायी इस अवसर पर पक्षियों को बन्धन-मुक्त करना पुण्य मानते हैं। जीवित मछलियाँ पानी में डाली जाती हैं। वे मंगल-प्रतीक हैं ही। भिक्षु घर-घर पधारते हैं। उनकी अभ्यर्थना कर आदर से भोजन कराया जाता है। उस समय संगीत भी वातावरण को पावन बनाता है। विदा के समय उन्हें दक्षिणा भी देते हैं।

ईरानी 'नौरोज'

ईरान कभी आर्य-स्थान माना जाता था। वहाँ नव वर्ष-पर्व 'नौरोज' पर भी भारतीय प्रभाव है। उस दिन परिवार के सभी जन भवन के एक कक्ष में एकत्र होते हैं। एक मेज पर दर्पण, रोटी तथा प्याले में जल रखा रहता है। जल में अंकुरित गेहूँ या जौ तैरता रहता है। भूमि या उपज से जुड़ी यह अन्न की 'बाली' मांगलिक-प्रतीक मानी जाती है। परस्पर गले मिलते हैं। रात्रि में दीपमालिका हर्ष के रंग बिखेरती है।

बाली द्वीप का 'गालुंगन'

बाली द्वीप का नव वर्षोत्सव 'गालुंगन' कहा जाता है। इस अवसर पर सभी जन सारे काम छोड़ कर परस्पर मिलते हैं। चार दिन चलने वाले इस उत्सव पर उपहार ही दिये जाते हैं। वैसे वे उपहार प्रायः चोरी के होते हैं। इस कारण वहाँ 'गालुंगन' पर चोरियाँ होती रहीं। एक परम्परा और भी अद्भुत है। इस अवसर पर तरुण-तरुणियाँ एक-दूसरे को आकर्षित करने का प्रयत्न भी करते हैं। विवाह-सम्बन्ध भी इसी तरह तय हो जाते हैं।

कोरिया में 'चौगेरी' धारण

कोरिया में नव वर्ष फरवरी में मनाया जाता है। वहाँ बालक इस अवसर पर चौगेरी या रंगीन कपड़े पहनते हैं। यह कपड़ा कई रंगीन टुकड़ों को जोड़ कर बनाया जाता है। बड़े लोग उजले कपड़े पहनते हैं। नृत्य-गीत की धूम मचती है। सिंगापुर में भी लोग रंगीन वस्त्र पहन कर, नाचते-गाते मार्ग पर उल्लास का प्रदर्शन करते हैं।

जेरुशलम का 'राशहशानह'

जेरुशलम में नव वर्ष का उत्सव शरद् ऋतु में मनाया जाता है। 'राशहशानह' नाम से प्रचलित इस पर्व पर देवालयों में प्रार्थना होती है। वहाँ के निवासियों का विश्वास है, मनुष्य इसी दिवस पर स्वर्ग से इस भूलोक में आया था। अतः यह उसके धरती पर पदार्पण या सृष्टि के प्रारम्भ का दिन है। मधु में लपेटे सेव-फल के टुकड़े वितरित कर खाये जाते हैं। किसी जलाशय के किनारे जाकर लोग उसके जल से स्वयं को पवित्र करते हैं। यह स्नान की क्रिया का ही दूसरा रूप है। फिर 'सेनागांग' या मन्दिर में आत्माओं का आवाहन किया जाता है। इसके लिए भेड़ के सींग परस्पर रगड़े जाते हैं।

स्काटलैण्ड में अतिथि-स्वागत

स्काटलैण्ड में नव वर्ष पर लोग परिचितों के यहाँ भोज्य-पदार्थों के उपहार लेकर जाते हैं। खाद्य-पदार्थ सभी को देकर अभिनन्दन करते हैं। वहाँ की मान्यता के अनुसार आधी रात के बाद आने वाला प्रथम अतिथि सौभाग्य का वाहक होता है। अतः ऐसे अभ्यागत का हृदय से स्वागत किया जाता है। अमेरिका में बारह बजते ही तोप दगती है। लोग रंगीन टोपियाँ पहने निकल कर अभिनन्दन करते हैं। भोज का, संगीत का क्रम चलता है। ३१ दिसम्बर की रात में ही कैथोलिक गिरजाघरों में होने वाले पूजन-समारोह को देखने भीड़ उमड़ पड़ती है।

इस प्रकार यह नव वर्ष का उत्सव स्थान प्रदेश की भिन्नता लिए होने पर भी मुख्यतः नयी फसल से सम्बद्ध है। अनेक स्थान पर इस आयोजन पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। □

— विट्ठलनगर, खण्डवा-४५०००१ (म०प्र०)

(पृष्ठ ७६ का शेष)

ने गोवा पहुँच कर अपने अत्याचारों का प्रारम्भ किया था। वैटिकन के कैथोलिक ईसाइयों ने भारत में रह रहे चौथी शताब्दी के शरणार्थी रूप में आये सीरियन ईसाइयों को भी अपने अत्याचार का निशाना बनाया। गोवा के हिन्दुओं को जो–जो यातनाएँ दी गयीं उनका वर्णन पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ईसाइयत के सहारे किस प्रकार भारत को गुलाम बनाया गया इसका मार्मिक इतिहास पढ़ने योग्य है। भोले–भाले वनवासियों को किस प्रकार बहला–फुसलाकर, मिशनरी स्कूलों के माध्यम से शिक्षा देकर, चिकित्सालयों की आड़ में गरीब जनता को भुलावा देकर किस प्रकार मतान्तर कराने में चर्च के लोग जुटे हैं इसका सजीव वर्णन इस पुस्तक की महान् उपलब्धि है। सेवा के नाम पर किस प्रकार ये चर्च भारतवासियों का मतान्तरण करा रहे हैं, इस रहस्य को उद्घाटित करने में इस पुस्तक का योगदान उल्लेखनीय है।

अंग्रेजों ने साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए यहाँ की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी कर दिया। उनकी सूझ–बूझ का पता तत्कालीन ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के शिक्षा सचिव, सर चार्ल्स ट्रेविलियन के एक भाषण के कुछ अंश पढ़कर लगता है, जिसके कुछ अंश का अनुवाद लेखक ने इस पुस्तक में उद्धृत किया है।

"अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव अंग्रेजी राज्य के लिए हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय युवक हमारे साहित्य द्वारा हमसे भली प्रकार परिचित हो जाते हैं, वे हमें विदेशी समझना प्रायः बन्द कर देते हैं। हमारी जैसी शिक्षा, हमारी ही जैसी रुचि और हमारे जैसे रहन–सहन के कारण इन लोगों में हिन्दुस्तानियत कम हो जाती है और अंग्रेजियत अधिक आ जाती है। फिर बजाय इसके कि वे हमारे तीव्र विरोधी हों वे हमारे जोशीले और चतुर मददगार बन जाते हैं।"

ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों की जाँच करने के लिए कई समितियाँ बनीं किन्तु भारत सरकार ने उनकी संस्तुतियों पर भी विचार नहीं किया। स्वतन्त्रता के उपरान्त ईसाई आबादी द्रुत गति से बढ़ रही है। इसका लेखा–जोखा प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के आँकड़ों के आधार पर लेखक में दिया है। पुस्तक वर्तमान सन्दर्भ में बहुत उपयोगी है। इसका सर्वत्र स्वागत होना चाहिए।

□

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' का कार्तिक २०५६ अंक विलम्ब से मिला। मुखपृष्ठ पर मा० अटल जी का विजयी मुद्रा में चित्र पाकर लगा कि मानो लंका विजय के पश्चात् प्रभु राम अयोध्या वापस आये हों।

सम्पादकीय में व्यक्त विचार अक्षरशः सत्य हैं। निश्चित रूप से आपके अनुभव का सार पढ़ने को मिलता है। कई तथ्य तो बिल्कुल पहली बार पढ़ने को मिलते हैं, जो आँखें खोल देते हैं। आगे भी ऐसे ही आग उगलते विचारोत्तेजक विचार पढ़ने को मिलते रहेंगे, ऐसा विश्वास है।

वैसे तो प्रत्येक अंक संग्रहणीय होता है। लेकिन प्रस्तुत अंक में मा० शेषाद्रि जी एवं पू० रज्जू भैया के समाहित उद्‌बोधन से अंक की उपादेयता बढ़ गयी है। लेखों में राजेन्द्र चड्ढ़ा, श्रीकान्त जोशी, हिम्मत सिंह गुगालिया, श्यामनारायण कपूर और शैलेन्द्र नाथ कपूर ने बार–बार पढ़ने को आकर्षित किया। शोधपूर्ण दृष्टि, तथ्यात्मक जानकारी एवं परम्परा के प्रति प्रेम इनकी विशेषता है। 'बालवाटिका' में कथा पुष्प 'मेहनत की कमाई' के माली का नाम न पाकर कष्ट हुआ। 'मूल्य नहीं मरता' अच्छी लगी। कविताएँ सरस, सुग्राह्य, गेय एवं बालोचित हैं।

सम्यक् आलोचना की दृष्टि से कहना चाहूँ कि पृष्ठ ४ पर 'अक्तूबर–१९९९' छपा है तो उचित ही होगा। 'पुस्तक समीक्षा' का अभाव खटका। अन्त में यही कहूँगा कि 'राष्ट्रधर्म' मानसिक तृप्ति तो देती है ही; बल्कि आध्यात्मिक शान्ति का दान भी करती है।

– प्रमोद दीक्षित 'मलय' अतर्रा, बाँदा

'राष्ट्रधर्म' का विजयदीप विशेषांक मिला, कृतज्ञ हूँ। पत्रिका निश्चित ही भारतीय संस्कृति की सच्ची संवाहक है, अंक की सभी रचनाएँ रेखांकित करने योग्य हैं, अपसंस्कृति के इस दौर में 'राष्ट्रधर्म' के माध्यम से जो अनुष्ठान हो रहा है वह स्तुत्य है।

– अशोक अंजुम, अलीगढ़

अक्तूबर ९९ की पत्रिका 'राष्ट्रधर्म' मेरे समक्ष है, एक बार पढ़ चुका हूँ, दुबारा पढ़ने की तैयारी है। इस अंक में अधिकांश लेख राष्ट्रवादी विचार धारा से ओतप्रोत, संस्कारप्रद एवं सराहनीय हैं। पृष्ठ ३ अमृतवाणी (डॉ० अम्बिका नन्द मिश्र), पृष्ठ ३० 'हाँ, हम मनुवादी हैं' (श्री परशुराम गोस्वामी), पृष्ठ ३३ 'लोकतन्त्र के तीन पाद– संविधान, सुशासन और सुरक्षा' (आचार्य डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री), पृष्ठ ४१ 'भारतीय धर्म निरपेक्षता' (श्री आनन्द शंकर पण्ड्या), पृष्ठ ४७ 'तरह–तरह की रोटियाँ' (डा० शिवनन्दन कपूर), पृष्ठ ५६ 'युद्धों में सिख वीरों की उच्च–शौर्य परम्परा' (डॉ० सीताराम शुक्ल), पृष्ठ ९ एवं पृष्ठ ६६ पर सोनिया गांधी और प्रधानमन्त्री पद एवं तीन मुलाकातें (डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल), पृष्ठ ६८ कहानी 'कफन की लाज' (मदन मोहन पाण्डेय), पृष्ठ ७४ कार्टून आदि बहुत अच्छे, प्रभावी एवं हृदयंगम करने योग्य लगे। वैसे तो सभी लेख, कथा, व्यंग्य, कविता, स्तम्भ पठनीय हैं।

– ओम प्रकाश शर्मा, आगरा

'वे अपनी रोशनी अपने धुएँ में छोड़ गये (श्री वचनेश जी), भारतीय ऋषियों का योगदान, (श्याम नारायण कपूर जी) तथा बेलाग सम्पादकीय मन को झंकृत करने वाले लेख हैं। वैसे तो पत्रिका सांगोपांग अत्यन्त उत्कृष्ट है। नरेन्द्र कोहली जी के 'महासमर' की रचना 'देवास्त्र' मन को विस्मित करने वाली है। कविताओं में श्री रामानुज त्रिपाठी, ओम प्रकाश बजाज, अशोक अंजुम की रचनाएँ श्रेष्ठ हैं। 'बालवाटिका' माताओं–बच्चों के लिए जानकारी से भरी है।

– हरि 'चन्दन' किदवई नगर, कानपुर

अक्तूबर के अंक को पढ़ा, विषय–वस्तु की दृष्टि से लेख लम्बे हैं। 'दुर्गादुर्गतिनाशिनी' अंक में माँ दुर्गा के किसी एक लेख को भी स्थान न मिलना अनपेक्षित है।

श्री परशुराम जी गोस्वामी का लेख 'हाँ, हम मनुवादी हैं' वास्तव में सामयिक है। समयानुकूल, मनुवादी व्यवस्था पर कीचड़ उछालने वालों को इसे कण्ठस्थ करना चाहिए।

– चन्द्रभान सिंह सेंगर, ललितपुर

'राष्ट्रधर्म' का नवम्बर ९९ का अंक मिला। 'यह विजयदीप विशेषांक' उत्कृष्ट, पठनीय लेखों, कहानियों, कविताओं तथा अन्य अनेक उपयोगी विवरणों से मण्डित है। सम्पादकीय में आपने युगानुरूप भाव व्यक्त कर भारतवासियों को सोचने, चिन्तन करने और ईसाइयत से देश के मानस को बचाने का जोरदार संकेत दिया है। वास्तव में आज मुसलमानी चुनौतियों से बढ़कर ईसाईकरण की कुनीति है। देश सावधान नहीं रहेगा, तो बाद में पछताना ही पड़ेगा। 'राष्ट्रधर्म' सही, सच्चे और बहुभाषी रूप में राष्ट्र के धर्म का पालन एवं रक्षण कर रहा है।

– श्रीराम सिंह 'उदय', बलिया

'राष्ट्रधर्म' का दिसम्बर ९९ अंक पढ़ा। लेख महत्त्वपूर्ण व राष्ट्रीयता के पोषक हैं।

पोप महोदय को भारत–शासन ने आमन्त्रित किया था। उनका धर्म–प्रचार का वक्तव्य अकथनीय है। क्या वेटिकन रोम में वे आर्य समाज या हिन्दू धर्म प्रचारकों को अनुमति देंगे ? चीन, अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस में कभी–कभी इस्कॉन पर रोक लग जाती है।

गुरु गोविन्दसिंह व शिवाजी पर विश्व कवि रवीन्द्रनाथ के विचार कवि के रूप में ठीक हो सकते हैं परन्तु राजनीति की दृष्टि से मान्य नहीं हैं। यदि गुरु गोविन्दसिंह व शिवाजी मुगलों के अत्याचारों का विरोध न करते तो पंजाब, महाराष्ट्र आदि मुस्लिम प्रान्त बन जाते। ३, ४ करोड़ हिन्दू जबरन मुसलमान बना लिये जाते। गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी, महाराणा प्रताप, छत्रसाल, वीर बन्दा आदि शूरवीरों ने बलिदान देकर भारत को भारत

बनाये रखा, नहीं तो आधा देश पाकिस्तान या इस्लामिस्तान हो जाता। कवीन्द्र रवीन्द्र का आधा स्वर्णमय बंगाल मुस्लिम देश बन ही गया।

– हरि किशोर शर्मा 'विशारद', लखनऊ

'राष्ट्रधर्म' प्रकाशित कर, सचमुच आप लोग राष्ट्र–जागरण, जन–जागरण का सराहनीय कार्य कर रहे हैं। आप लोगों के इस महान् कार्य की जितनी भी सराहना की जाये थोड़ी है।

– डॉ० आर.एन.पी. सिंह, जशपुर नगर

'राष्ट्रधर्म' बीस–पच्चीस वर्षों से मैं देख पढ़ रहा हूँ। एक अच्छी पत्रिका की समाज को आवश्यकता रहती ही है। 'राष्ट्रधर्म' इस अर्थ में एक सर्वोत्कृष्ट एवं सार्थक पत्रिका है। नये कलेवर में, रंग रूप में, सामग्री के संयोजन–सम्पादन में पठनीय और संग्रहणीय है। विशेषकर अक्तूबर अंक; लेख 'हाँ, हम मनुवादी हैं' श्री परशुराम गोस्वामी, 'तरह–तरह की रोटियाँ' डॉ० शिवनन्दन कपूर, लोकतन्त्र के तीन पाद– डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री, चिट्ठी आई पेरिस से स्तम्भ आदि अनेक रचनाएँ प्रभावित भी करती हैं, प्रेरित भी।

– प्रो० रा० रामार्य, नैनपुर

'राष्ट्रधर्म' का नवम्बर अंक पढ़ा, 'गुणों की पूजा करें धन या सत्ता की नहीं' शेषाद्रि जी का चिन्तन सम्बोधन श्रेष्ठ लगा। सचमुच गुण ही पूजनीय हैं। धन, देह की पूजा नहीं होती। पं० वचनेश त्रिपाठी का बलिदान दिवस पर क्रान्तिकारियों के जीवन संस्मरण तथा कारगिल पर श्रीकान्त जोशी का लेख मननीय लगे।

– नारायण मघवानी (उज्जैन)

'राष्ट्रधर्म' का 'विजयदीप विशेषांक' (नवम्बर १९९९) विशेषांकों की शृंखला में अविस्मरणीय है। सभी रुचियों के पाठक इस अंक से संतृप्त होंगे। गम्भीर पाठकों के लिए डॉ० श्याम नारायण कपूर, डॉ० शैलेन्द्र कपूर और राजेन्द्र चड्ढा के आलेख लुभाते हैं। प्रथम पंक्ति के कवि, कहानीकार और लेखकों का सहयोग प्राप्त करने में आपको अपूर्व सफलता मिली है। बधाई ! सुहृदवर ओम प्रकाश पाण्डेय की लेखमाला कभी गुदगुदाती है और कभी सोचने को विवश करती है।

– भगवान शरण भारद्वाज, बरेली

अमित बधाई पात्र है,
सम्पादक कृतिकार।
तथ्य कथ्य अभिमत सुरुच,
काव्य भाव शृंगार।।
'विजयदीप' यह अंक है,
शौर्य–ज्योति सम्पन्न।
राष्ट्रधर्म संस्कृति करे,
विविध ज्ञान उत्पन्न।।
विजय ज्योति के पर्व ये,
सबको दें सन्देश।
अमर अस्मिता राष्ट्र की,
बनी रहे 'अवधेश'।।

– अवधेश नारायण सिंह, जबलपुर

दिसम्बर ९९ का अंक मिला, पर काकोरी काण्ड के हुतात्माओं पर कोई सामग्री न मिलने से क्षोभ उत्पन्न हुआ।

भाई परमानन्द की जीवनी श्रेयस्कर और प्रेरणास्पद लगी, जिसने गांधीजी की मनोवृत्ति को परिष्कृत किया पर गांधीजी की कांग्रेसी मानसिकता को क्या कहा जाये कि जिस समय भारत विभाजन का काल अपने अन्तिम दौर में था भाई जी पूरे देश के हिन्दुओं को सचेत करते हुए घूम रहे थे उस समय गांधीजी के अनुयायी उनके ऊपर खड़े हुए अण्डे और टमाटर बरसा रहे थे। ईसाई समस्या और विश्वव्यापी इस्लामी आतंकवाद पर सामग्री सामयिक व अत्यावश्यक लगी। पाकिस्तानी मामलों के विशेषज्ञ जमनादास अख्तर के अनुसार पाकिस्तान का उग्रपन्थी नेता मौ० फजलुर्रहमान १९४७ के पहले कांग्रेसी नेता थे। उनका संगठन 'जमायत उल्मा ए इस्लाम' देवबन्द की संस्था जमायत उल्मा ए हिन्द की पाकिस्तानी शाखा मानी जा सकती है।

कम्युनिस्टों और इस्लामी उन्मादियों पर पढ़ने को बहुत मिला पर उन्हीं के सहोदर कांग्रेसियों के बारे में कम जानकारी मिलती है।

तिलक, सुभाष व राजर्षि टण्डन को कांग्रेसियों ने देशभक्त होने का दण्ड दिया ही है। कांग्रेसियों के राष्ट्रघाती कुकर्मों की जानकारी देने वाली कोई लेखमाला शुरू करें।

– विमल चन्द्र पाण्डे, गोरखपुर

'राष्ट्रधर्म' दिसम्बर १९९९ अंक के कलेवर ने मेरा मन मुग्ध एवं स्निग्ध किया है। डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल एवं श्री कौशलेन्द्र मिश्र 'कौशल' की लघु–कथाएँ सकारात्मक अभिवृत्तियों की ओर संवेदनशील पाठक को ले जाने में सफल हैं। श्री महेश चन्द्र सरल की कहानी वर्तमान का आइना है।

राजनीति–चर्च में सामयिक 'कल्याण–प्रसंग' पर सुस्पष्ट, सम्यक् एवं सारगर्भित विश्लेषण व समीक्षा के लिए श्री हृदय नारायण दीक्षित साधुवाद के पात्र हैं।

सरस्वती शिशु मन्दिरों के लाखों छात्रों के भविष्य को सुन्दर बनाने में लगे आचार्य वर्तमान केन्द्र सरकार से आशान्वित रहे हैं। विद्या भारती की स्वायत्तता को अनवरत रखते हुए शासकीय वित्तपोषण देने के सम्बन्ध में विचार–मन्थन होना चाहिए। सरस्वती शिशु मन्दिरों के सरकारीकरण के बजाय आचार्यों के वेतन–स्तर में सुधार लाने हेतु समान विचारधारा के संगठनों को सहयोग देना चाहिए। ऐसी स्थिति में भी तो ये विद्यालय पूर्ववत् अपनी असरकारी भूमिका को बनाये रखेंगे।

– रमेश प्रसाद द्विवेदी, गोरबी, सीधी

आप द्वारा प्रेषित 'राष्ट्रधर्म' अंक ६ प्राप्त हुआ। इतना सुन्दर 'विजय दीप विशेषांक' देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। चन्द्रशेखर शुक्ल, डॉ० दिलीप अग्निहोत्री, पुष्पा गोस्वामी, श्याम नारायण कपूर, डॉ० शैलेन्द्र नाथ कपूर, के आलेख ने प्रभावित किया। कथा/संस्मरण तथा व्यंग्य सभी अच्छे लगे, विशेषकर नरेन्द्र कोहली एवं मदन मोहन पाण्डेय के कथा/व्यंग्य, कविताओं में कमल किशोर 'भावुक', अशोक अंजुम, रामानुज त्रिपाठी, डॉ० तारा दत्त 'निर्विरोध' एवं हरि चन्दन की रचनाएँ बहुत अच्छी लगीं। बालवाटिका स्तम्भ ज्ञानवर्द्धक लगा। बच्चों को प्रेरणा प्रदान करने के साथ ही उनका मनोबल भी आप ऊँचा उठा रहे हैं।

– मुरलीधर पाण्डेय, मुम्बई

शिक्षा में 'भारत' कहाँ!

– डॉ० ओम प्रकाश मिश्र

*[हमारी वर्त्तमान शिक्षा–व्यवस्था के लिए लार्ड मेकाले को दोषी ठहराने की परम्परा–सी बन गयी; पर क्या हमने अपनी शिक्षा में 'अपना' कुछ भी करने की वास्तविक चिन्ता की है। 'सुधार' के नाम पर जितना खिलवाड़ शिक्षा के साथ इस देश के राजनीतिकों, तथाकथित शिक्षा विशेषज्ञों द्वारा गत पचास वर्षों में किया गया है, उस पर आज भी क्या किसी ने दृष्टिपात किया है? इतिहास, भूगोल, साहित्य, संस्कृति, अर्थशास्त्र, राजनीति–शास्त्र, भाषा–शास्त्र, भौतिकी, रसायन–शास्त्र आदि किसी भी विषय में कहीं भी 'भारतीयता' का पुट देखते ही 'साम्प्रदायिकता', 'केसरियाकरण', 'भगवाकरण', आदि शब्दों को अपशब्दों की तरह प्रयोग करने वाली तथाकथित 'धर्म–निरपेक्षता' ने इस देश के राष्ट्रीय गौरव, मानबिन्दुओं, यहाँ तक कि अस्मिता पर सतत घातक प्रहार करते रहना अपना धन्धा बना लिया है। 'ग' 'गणेश' के बजाय 'गधा' पढ़ाये जाने के पक्षधरों ने शिक्षा–क्षेत्र में भी जैसा माफिया–तन्त्र बना रखा है, वह आखिर कब हमारी चेतना को झकझोरेगा? यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहेगा क्या? — **सम्पादक**]*

शिक्षा में भारतीयता का केन्द्र में होना हमारी प्रथम, प्रमुख एवं तात्कालिक आवश्यकता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हमारी शिक्षा में देश–विदेश के विश्वविद्यालयों के उच्च स्तरीय ज्ञान एवं शोध को नकार दिया जाये; किन्तु ऐसा करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो शिक्षा दी जाये वह हमारे स्वधर्म, संस्कृति, परम्परा एवं आवश्यकताओं के अनुकूल हो। भारत पूर्वकाल में दूर–दूर तक प्रकाश फैला चुका है और इसीलिए इस क्रिया के आधार पर उसे भा = प्रकाश, र = देना तथा त = दूर तक की संज्ञा मिली। आज उसी को पुनर्जीवित करना है। परा–अपरा विद्या, प्रेय–श्रेय एवं अभ्युदय–निश्रेयस, जो भारतीयता के प्रमुख स्तम्भ हैं, 'सा विद्या या विमुक्तये' की शिक्षा देकर ही हम देश को अधोगति के गर्त्त में जाने से रोक सकते हैं। इसी शिक्षा में हमें अपने देश के प्राचीन ज्ञान–विज्ञान एवं उन पर रचित पुस्तकों को पाठ्यक्रम में रखना, सम्पूर्ण राष्ट्र से सम्पृक्त एवं प्रतिबद्ध होने के लिए देश के सर–सरिताओं, नदी–नालों, उत्तुंग, गिरिशृंगों, झुग्गी–झोपड़ियों को विभिन्न विषयों के पाठयक्रम एवं उनकी गाथाओं को शिशुओं एवं किशोरों के हृदय पटल पर अंकित करना, जगजीवन को स्वर देने के लिए हलचलाते किसानों, बेड़ी चलाते और गाते अल्हड़ भूमिपुत्रों, पत्थर तोड़ती मजदूर महिलाओं कारखानों के काम से छूटते हुए मजदूरों, शालाओं, स्कूलों एवं कालेजों में पढ़ते, उछलते–कूदते बच्चों एवं युवकों तथा उनके शिक्षकों के क्रियाकलापों को चित्रित करना आदि हमारे अध्ययन–अध्यापन का प्रमुख अंग होना चाहिए।

भारत के विगत वैभव का आधार यही था कि उसने अपनी आवश्यकताओं तथा प्रकृति के अनुकूल विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा तथा ज्ञानार्जन की व्यवस्था की थी। यही कारण था कि उस समय भारत भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में शिखरासीन था। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने "भारत भारती" में लिखा–

जब थे दिगम्बर रूप में वे जंगलों में घूमते।
प्रासाद के तन–पट हमारे चन्द्र को भी चूमते।।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान भिक्षा दान की।
आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की।।

प्राचीन शिक्षा के केन्द्रों में तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी, ओदान्तपुरी, नदिया, जगद्दला और मिथिला प्रमुख थे। वन शिक्षा केन्द्रों में परा विद्या–आत्मा, परमात्मा का ज्ञान और अपरा विद्या–हिसाब, सामाजिक विषय, विज्ञान, ८६ कलाएँ की शिक्षा से सम्पन्न विद्यार्थी आदर्श नागरिक बन कर निकलते थे। उनका मन, मस्तिष्क और तन सभी कुछ स्वस्थ हो, इस पर बल हुआ करता था। कुल मिलाकर उस शिक्षा के द्वारा बहुमुखी व्यक्तित्व के नागरिक पैदा होते रहते थे।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरु मानस पिता की भूमिका में होता था। उसका विद्वान् एवं चरित्रवान् होना आवश्यक था। चूँकि उस शिक्षा प्रक्रिया में शिष्य प्रश्न पूछता था, अपनी शंकाएँ गुरु के सामने रखता था,

इसलिए गुरु को सतत अध्ययनशील एवं मननशील रहना उसकी नियति हो गयी थी। अपने शिष्य को आगे बढ़ाने की उसमें इच्छा इतनी बलवती होती थी कि वह शिष्य से पराजित होने की कामना करता था। शिष्य भी गुरु के आदेशों को अक्षरशः पालन करने में अपना हित समझते थे। स्नेह एवं सम्मान की इस धारा में कलुष और कर्दम का ठहर पाना सम्भव ही कहाँ था।

गुरु दो प्रकार के थे– अपरिग्रही एवं वृत्तिभोगी। पहले प्रकार के गुरु अधिक सादे, सामान्य एवं जनसाधारणे के लिए उपयोगी होते थे। वृत्तिभोगी गुरु राजकुमारों को शिक्षा देने के कारण एक निश्चित परिधि में ही वन्दनीय थे। गुरु केवल ब्राह्मण ही नहीं; वरन् क्षत्रिय, शूद्र आदि भी होते थे। याज्ञवल्क्य ने जनक, क्षत्रिय को अपना गुरु बनाया था। लोमहर्षण, संजय, सौति आदि गुरु सूतजाति के थे। दत्तात्रेय के २४ गुरु थे और वे सभी वर्गों एवं वर्णों के थे। ऐसे गुरु विद्वान्, चरित्रवान् एवं सहृदय होने के कारण सर्वत्र स्वीकार्य होते थे।

गुरुकुल नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में होते थे। प्रकृति के सामीप्य के फलस्वरूप शिष्यों या अन्तेवासियों में प्रेम, दया, उदारता, मिलनसारिता आदि के गुण स्वतः विकसित होते रहते थे। उनके अभिभावक उनसे मिलने नहीं आ सकते थे, विद्यार्थियों एवं ब्रह्मचारियों को घर जाने का निषेध था। २५ वर्ष तक ज्ञानार्जन के बाद ही वे घर जा सकते थे। घर जाकर भी वे समाज एवं राष्ट्र की समस्याओं के समाधान में योग देने के लिए तत्पर रहते थे। समावर्तन संस्कार (आज के दीक्षान्त समारोह) में उन्हें वह सब करने के लिए आदेशित एवं उपदेशित किया जाता था, जिससे व्यष्टि एवं समष्टि का कल्याण हो। तैत्तिरीय उपनिषद् के शिक्षावल्ली खण्ड में जो लिखा है, वह तब जितना सामयिक एवं उपयोगी था, आज उससे कहीं अधिक है–

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्योयान्या प्रमदः। सत्यान्न प्रमदित– व्यम्। धर्मान प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यं। मातृ देवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। श्रद्धया देयं। अश्रद्धयादेयं। श्रिया देयम् हृिया देयं।। भिया देयम्...

एष आदेशः। एष उपदेशः ... अतद्नुशासनम्। एवमुपासितव्यम्।

इस संक्षिप्त विवेचन का उद्देश्य यही है कि प्राचीनकाल में जो शिक्षा थी, वह हमारे काम की थी। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद गौरांग प्रभुओं ने न केवल हमारे कुटीर उद्योगों को नष्ट किया; बल्कि शिक्षा के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक धरोहर को मिटा डालने का पूरा प्रयास किया। इस दिशा में लार्ड मैकाले (१८००–१८५६) ने जो कुछ किया है, उससे आज भी हमारी शिक्षा, संस्कृति एवं मानसिकता मुक्ति नहीं पा सकी है। उसे अपनी अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य पर इतना गर्व था कि एशिया के समस्त पुस्तकालयीय साहित्य को वह अपने यहाँ की एक अलमारी के खाने के बराबर मानता था। वस्तुतः वह अंग्रेज़ी भाषा साहित्य के अध्ययन अध्यापन के माध्यम से भारतीय संस्कृति को धूसरित करते हुए काले अंग्रेज और स्वाभिमान शून्य बाबू पैदा करना चाहता था। उसका सपना, बहुत कुछ साकार भी हुआ और तभी कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा–

सुनते रहो जो सर झुकाकर अफसरों की गालियाँ।
तो दे सकेंगी रात को दो रोटियाँ घरवालियाँ।।

लार्ड मैकाले के द्वारा चलायी गयी शिक्षा ने हमें अच्छे नागरिक नहीं दिये। उसने हमें रोटी, कपड़ा और मकान जुटाने वाले अर्थपिशाच दिये, भस्मासुर दिये, हम इस शिक्षा के द्वारा बटेश्वर, वराहमिहिर जैसे ज्योतिषी, भास्कराचार्य, आर्यभट, रामानुजम् जैसे गणितज्ञ, धन्वन्तरि जैसे चिकित्सक, कपिल, कणाद, गौतम, व्यास, पतंजलि जैसे दार्शनिक, महागोविन्द तथा मय जैसे वास्तुकलाविद्, पाणिनि जैसे वैयाकरण नहीं पा सके। इस शिक्षा–पद्धति
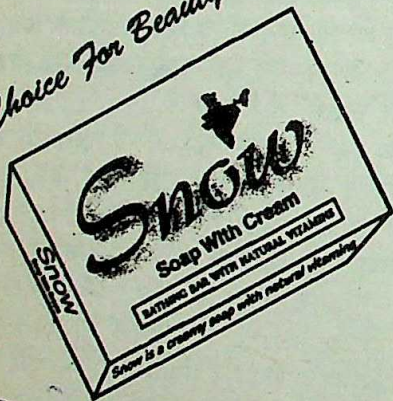
ने हमें चालाकी सिखायी है, भलमनसाहत नहीं। आज पहले से कहीं अधिक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय हैं; किन्तु दुर्भाग्यवश इससे इन्सानियत नहीं बढ़ी। इससे बढ़ी है धूर्तता, वैमनस्य, मुखौटेबाजी, अवसरवादिता, पाखण्ड, स्वार्थान्धता।

आज के शिक्षित व्यक्तियों से निरक्षर कहीं अधिक अच्छे हैं; क्योंकि वे अपनी गलतियों को ज्ञान के तर्क से नहीं छिपाते, कामचोरी करने के लिए उपाय खोजने में मेहनत नहीं करते और जबान पर कुछ और दिल में कुछ रखने का स्वाँग नहीं करते। ऐसी शिक्षा हमें मुक्ति नहीं दे रही है; मुक्ति तो विद्या देती है। इस शिक्षा से वही ज्यादा दुःखी भी हैं, जो इसे ढो रहे हैं। कबीर का कहा हुआ आज भी बहुत सटीक है–

कबिरा कोठी काठ की चहुँ दिसि लागी आग।
पण्डित पण्डित जरि मुए, मूरख निकरे भाग।।

पोथी और पगड़ीधारी कभी पण्डित नहीं हुए। वे सब ऐसे ही थे, जैसे आज के डिग्रीधारी हैं। इनका ज्ञान, विवेक, प्रज्ञा एवं प्रतिभा से कोई विशेष लगाव नहीं। ढाई आखर (पी–एच०डी०) पढ़कर जो पण्डित हो गये हैं, उनके पाण्डित्य से लाभान्वित होकर उनके विद्यार्थी अनिल : अनल, सकल : शकल, Childish; Childlike (चाइल्डिश, चाइल्डलाइक) में फर्क नहीं समझते। दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं विशिष्टीकरण के कारण जो विद्यार्थी महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से पढ़कर निकल रहे हैं, वे एकांगी एवं सीमित व्यक्तित्व के हैं। कला एवं साहित्य के विद्यार्थी विज्ञान से अनभिज्ञ एवं विज्ञान के स्नातक एवं परास्नातक कविता में शून्य पाये जा रहे हैं।

प्रचलित शिक्षा पद्धति में आचार्य प्रोफेसर हो गये हैं और उनका आचरण से सम्बन्ध ही टूटता जा रहा है। विद्यार्थी अश्रद्धालु एवं अनुशासनहीन होते जा रहे हैं। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय ज्ञान एवं शोध के केन्द्र कम, पुलिस थाने या छावनी अधिक दिखायी पड़ने लगे हैं।

आज के शिक्षा केन्द्रों में जो पढ़ायी हो रही है, वह परीक्षा पास करने तथा डिग्री लेने के लिए है। वहाँ ज्ञान के प्रति रुचि एवं इसके लिए सतत साधना के दर्शन नहीं होते। परिणाम यह है कि विश्वविद्यालय से साहित्य या विज्ञान पढ़कर जो युवक निकल रहे हैं, वे बाद में उसमें कुछ भी जोड़ नहीं पाते। इन शिक्षा केन्द्रों में विद्यार्थी की सुप्त शक्तियाँ निखर नहीं रही हैं, उसकी प्रतिभा चमक नहीं पा रही है, क्योंकि वहाँ डूबकर पढ़ाने और पढ़ने का काम नहीं हो रहा है। इस स्थिति में भी वे स्नातक तथा परास्नातक बधाई के पात्र हैं, जो महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ायी की समाप्ति के बावजूद अपनी प्रतिभा को नष्ट होने से बचा ले जाते हैं।

आज विज्ञान के क्षेत्र में जो कुछ यहाँ पढ़ाया जा रहा है, वह भारत से ही गया हुआ है। उसे अंग्रेजी भाषा में बदल कर नये रूप में अपना बनाकर हमें परोसा जा रहा है। प्राचीनकाल के वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, ज्योतिषियों, खगोलशास्त्रियों एवं गणितज्ञों की पुस्तकों में जो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी है, उसे समझा जाये। किंचित् हेरफेर (यदि आवश्यक हो) के साथ उसके अध्ययन–अध्यापन की आवश्यकता है। हमारी मानसिकता यह है कि हम आज के अपने वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों को महत्त्व तभी देते हैं, जब वे विदेशियों द्वारा स्वीकरण पा लेते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ० चन्द्रशेखर, वेंकटरामन, डॉ० हरगोविन्द खुराना, जयन्त नारलीकर आदि इसके उदाहरण हैं। हमारे वेदों, पुराणों, उपनिषदों, संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसे अनेक सिद्धान्त एवं सूत्र दिये हुए हैं, जिनके आधार पर हम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आज के विकसित देशों से कहीं आगे निकल सकते हैं। दुर्भाग्य एवं राष्ट्रीय ग्लानि का विषय तो यह है कि हम उन्हें पढ़कर अतीत प्रेमी, दकियानूसी एवं पिछड़े समझे जाने के भय से ऐसा नहीं करते। राष्ट्रीयता का तकाजा है कि हम अविलम्ब ऐसा करना प्रारम्भ करें।

क्या ख्याल है? मंत्रिमंडल के विस्तार और फेरबदल के लिए भी एक मंत्रालय बना दिया जाए? आखिर अब तो ये बार-बार होने ही हैं। (नभाटा से साभार)

सामाजिक विषयों में अर्थशास्त्र में हम आज भी एडमस्मिथ की पुस्तक 'An Enguiry into the Nature and causes of wealth of Nations' 1776 को आधार मानकर पढ़ते हैं। इसमें जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं, वे हमारी अर्थव्यवस्था के अनुकूल कभी नहीं रहे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वह सब कुछ है जो आज भी हमारी अर्थनीति एवं राजनीति के लिए वांछनीय है। कौटिल्य ने लिखा–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः
प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः
प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

प्रजा के सुख में राजा का सुख तथा उसके हित में ही राजा का हित निहित होता है। राजा को आत्महित नहीं, प्रजा का हित ही प्रिय होना चाहिए। क्या ऐसे उदात्त आदर्श की कल्पना पाश्चात्य ग्रन्थों में इतने स्पष्ट रूप में की गयी? कौटिल्य ने प्रतिरक्षा एवं विकास पर समान रूप से बल देते हुए कहा **"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चिन्ता प्रवर्त्तते"**। आधुनिक–काल में आर०सी० दत्त, महादेव गोविन्द रानडे, दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, वामन गोविन्द काले, व्रज नारायण, पं० दीनदयाल उपाध्याय, डॉ० वी०के०आर०वी० राव, सी०एन० वकील, पी०आर० ब्रह्मानन्द, डॉ० बोकरे आदि के ग्रन्थों को जितने उत्साह एवं प्रमुखता से पढ़ाया जायेगा, उतनी ही मात्रा में हम अपने देश की अर्थव्यवस्था को समझ सकेंगे, उसमें सुधार ला सकेंगे। पिछले वर्षों में हमने आर्थिक विकास के विदेशी माडलों को अपनाया। परिणाम यह हुआ कि बेकारों की फौज बढ़ी, हजूर एवं मजूर के बीच की खाई चौड़ी हुई।

साहित्य के क्षेत्र में भी आज हम पूर्व एवं वर्त्तमान साहित्यकारों की कृतियों का अध्ययन कम, विदेशी साहित्यकारों एवं समीक्षकों को अधिक पढ़ रहे हैं। वे ही हमारे प्रमाण बनते हैं। भरत, भामरु, मम्मट, आनन्दवर्द्धन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी आदि के मतों एवं विचारों पर मुहर तभी लगती है जब सन्दर्भित विषय पर विदेशी विद्वानों का हवाला दिया जाये। इससे बढ़कर मानसिक दासता का प्रमाण और क्या हो सकता?

स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा में 'हम' कम, 'विदेशी' अधिक है। उनके सिद्धान्तों, विचारों को पढ़कर, उनकी भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक स्थिति जानकर हम आगे नहीं बढ़ सकते। हाँ, उससे कहीं–कहीं प्रेरणा ले सकते हैं। हमारी शिक्षा में हमारा प्राचीन ज्ञान–विज्ञान समाहित हो, वर्त्तमान भारत व्यञ्जित हो और वे सभी संवेदनाएँ और भावनाएँ ध्वनित हों, जिनसे व्यक्ति सम्पूर्ण बनता है, हम राष्ट्र से जुड़ते हैं। जिस दिन हम स्वधर्म पर बल देंगे और शिक्षा में ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, जापान को हटाकर भारत ला सकेंगे, उस दिन हम कवीन्द्र रवीन्द्र की इस आकांक्षा को साकार कर सकेंगे–

जगते आनन्द जज्ञे आभार निमन्त्रण।
धन्य होलो, धन्य होलो, मानवजीवन।।

– प्राचार्य, सी०जी०एन०पी०जी० कालेज,
गोला गोकर्णनाथ, खीरी

(पृष्ठ १४ का शेष)

ये खुदाई खिदमतगार

हुए कहा गया है, *'आजकल कितने हिन्दू सर्कार अंग्रेज की निन्दा यह कहके करते हैं कि हिन्द के निवासियों की बड़ी दरिद्रता हो गई बरन बढ़ती भी जाती है और इसका कारण बताते कि साहिब लोगों को बड़े-बड़े मासिक दिये जाते हैं और इस कारण से हिन्द की उपज विलायत भेजी जाती है सो देश धनहीन होता जाता है। परन्तु इस बात के बहुत से प्रमाण हो सकते हैं कि हिन्द धनहीन नहीं वरन् धनवान होता जाता है और इस धन की बढ़ती उन साहिबों के द्वारा से होती है जो प्रजा को सुख-चैन से रखते हैं और उन्हें लड़ाइयों के कष्टों और लुटेरों के धावों से बचाते हैं।'* प्रमाण स्वरूप वे ही तर्क दिये गये हैं जो साम्राज्यवादी अंग्रेज लेखक-इतिहासकार प्रस्तुत किया करते थे। कहा गया है कि भारतीयों में अंग्रेजों की तरह प्रशासनिक क्षमता नहीं है, अंग्रेजों की सेनाके कारण हिन्दू-मुसलमान देश पर अधिकार के लिए नहीं लड़ते। इस प्रकार अंग्रेज शासन पर होने वाला व्यय वास्तव में भारतवासियों की सुरक्षा पर व्यय है। अंग्रेजों के कारण समुद्र-यात्रा का पुराना बन्धन समाप्त हो गया है और जाति-व्यवस्था शिथिल हो गयी जिससे लोग नये-नये व्यवसाय करने लगे हैं।

पुस्तक में आगे यह समझाया गया है कि देश की जो भलाई देशी राज्यों ने हजार वर्ष में की, वह अंग्रेजों ने सौ वर्ष में की है। आगे भी भलाई के नये उपाय किये जायेंगे। यदि सरकार का विरोध किया गया, तो वह अपने हाथ सिकोड़ लेगी, जिससे भारतवासियों की उन्नति अवरुद्ध हो जायेगी।

एक अन्य अनुच्छेद में वे उपाय बताये गये हैं जिनसे भारतवासी अपनी उन्नति कर सकते हैं। इनमें अन्य उपायों के अतिरिक्त सलाह दी गयी है कि हिन्दू विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त कर बैरिस्टर-वकील आदि नहीं बनना चाहिए; अपितु कारीगरी-काश्तकारी करनी चाहिए, जिससे उत्पादन बढ़े। *पुस्तक के अन्त में सगुणोपासक पौराणिक धर्म की जमकर आलोचना की गयी है।*

इस यात्रा-वृत्तान्त का वास्तविक उद्देश्य अन्तिम पृष्ठों में प्रकट होता है। वैसे तो पूरी पुस्तक हिन्दू धर्म और समाज की आलोचना से भरी है, परन्तु अन्त में खुलकर अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा और बहुसंख्यक हिन्दू समाज के विश्वासों की आलोचना इस ध्येय से की गयी है कि हिन्दू राजभक्त बनें, लोकमान्य तिलक के स्वाधीनता एवं स्वदेशी आन्दोलन की ओर आकृष्ट न हों और सबसे महत्त्वपूर्ण कि वे हिन्दूधर्म से विमुख हों। ईसाई धर्म-प्रचारकों को आशा थी कि ऐसा होने पर उन्हें ईसाई बनाना सरल होगा।

विश्व के जिन सम्प्रदायों में धर्म-परिवर्तन का विधान है, उनके अनुयायी इसे अपना अत्यन्त पवित्र कर्त्तव्य समझते हैं। भिन्न सम्प्रदाय के सम्पर्क में आते ही उनमें धर्म-परिवर्त्तन करने की प्रबल आकांक्षा जाग उठती है। दक्षिण भारत में ईसाई धर्म का प्रवेश बहुत पहले हो गया था, उत्तर में मुगलकाल में उसका आगमन हुआ और यहाँ मूर्त्तिपूजक हिन्दुओं और भोलेभाले वनवासियों में ईसाई धर्म प्रचारकों को बड़ी उर्वर भूमि दिखायी दी। उन्होंने इसके लिए विविध उपाय किये। **अनेक ईसाइयों ने संस्कृत का अध्ययन किया या उसे प्रोत्साहन दिया जिससे धर्म-प्रचार में सुविधा हो। १७वीं शताब्दी में एक जेसुइट राबर्टो दि नोबिलि ने संस्कृत का गहन अध्ययन किया। संस्कृत ज्ञान के कारण वह ब्राह्मण जेसुइट कहलाता था। इस धूर्त पादरी ने एक मन्त्र की रचना की, जिसमें ईसाई धर्म की प्रशंसा की गयी थी और उसे वैदिक मन्त्रों के बीच जोड़ दिया। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत की आचार्यपीठ (प्रोफेसरशिप) स्थापित करनेवाले कर्नल बोडेन ने अनुदानपत्र में अपना प्रयोजन स्पष्ट करते हुए लिखा कि इस अनुदान का विशेष उद्देश्य धर्मग्रन्थों के संस्कृत में अनुवाद को प्रोत्साहित करना है, जिससे हमारे देशवासी भारत के निवासियों को ईसाई बना सकें।** अंग्रेज प्रशासकों का एक वर्ग भारत के असंस्कृत लोगों को सभ्य बनाना अपना कर्त्तव्य समझता था और इसके लिए उसे दो ही कारगर उपाय दिखायी देते थे- भारत के निवासियों को अंग्रेजी शिक्षा देना और धर्म-परिवर्त्तन कर उन्हें ईसाई बनाना। १८वीं शताब्दी में इस वर्ग के प्रतिनिधि उदाहरण गवर्नर जनरल सर जॉन शोर और चार्ल्स ग्राण्ट हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में उपनिवेशवाद और औद्योगिक क्रान्ति से योरोप के देश और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सम्पन्न हो गये। उपनिवेशवाद के साथ जुड़े ईसाई धर्म-प्रचारकों ने विश्व के अनेक भागों में लाखों लोगों का धर्म-परिवर्त्तन किया। निश्चय ही राजसत्ता धर्म-प्रचार में अत्यन्त सहायक थी। अतः ईसाई धर्म-प्रचारक एक ओर धर्मप्रचार कर रहे थे और दूसरी ओर वे उपनिवेशवादी विदेशी सत्ता के समर्थक थे। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होते ईसाई

धर्म–प्रचारकों में अपने धर्म की सर्वश्रेष्ठता का भाव गहरा बैठ गया था। इसकी अभिव्यक्ति १८६३ में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर हुई। इस सम्मेलन के आयोजकों में कुछ वास्तव में विश्व के धर्मों के बीच सद्भाव उत्पन्न करने की भावना से प्रेरित थे किन्तु ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो इसे ईसाई धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने के अवसर के रूप में देख रहे थे। एशिया की भूमि पर पैदा होनेवाले ईसा का धर्म अन्ततः पश्चिमी सभ्यता का अभिन्न अंग बन गया था। भौतिक सम्पन्नता ने पश्चिमी सभ्यता में जिस श्रेष्ठता का अहंकार उत्पन्न कर दिया था, ईसाई धर्म भी उसका शिकार था। सम्मेलन की आयोजन समिति के अध्यक्ष **रेवरेंड जॉन हेनरी बरोज़** ने स्पष्ट शब्दों में कहा, *"हमारा विश्वास है कि ईसाई धर्म सभी धर्मों को समाप्त कर देगा क्योंकि उसमें वे सभी सत्य तो समाहित हैं ही जो अन्य धर्मों में हैं, वह एक ऐसे ईश्वर का प्रकटीकरण करता है जो उद्धार करता है।"* अनेक ईसाइयों ने इस बात पर आपत्ति की थी कि सम्मेलन में सभी धर्मों को एक ही मंच पर लाने का अर्थ होगा ईसाई धर्म को उनके समकक्ष मानना, जो सर्वथा अनुचित है। इंग्लैंड के ईसाई पादरी बिशप ऑफ केंटरबरी ने विश्वधर्म सम्मेलन की आयोजन समिति को एक पत्र में लिखा, **"मैं (सम्मेलन में सम्मिलित होने में) जिन कठिनाइयों का अनुभव कर रहा हूँ वे दूरी और सुविधा सम्बन्धी नहीं हैं, वे इस बात पर आधारित हैं कि ईसाई धर्म एक मात्र धर्म है। मैं यह नहीं समझ पाता कि बिना अन्य धर्मों को और उनके दावों को ईसाई धर्म के समकक्ष स्वीकार किये हमारा धर्म इस सम्मेलन में कैसे प्रतिभागी हो सकता है।"** भारत में प्रेस्बिटेरियन बोर्ड के एक धर्म–प्रचारक ने यह आशंका व्यक्त की कि जिस धर्म को हम प्यार करते हैं और जिस त्राता (ईसा) के उपदेशों की हम शिक्षा देते हैं, उनका कहीं इस सम्मेलन में अपमान न हो जाय। इन आपत्तियों का निराकरण करते हुए रेवरेंड बरोज़ ने कहा, **"यद्यपि प्रकाश और अन्धकार का साथ नहीं हो सकता किन्तु प्रकाश का साथ सान्ध्य प्रकाश से हो सकता है....।"** उन्होंने ईसाई धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए अन्य धर्मों के प्रति दयार्द्र होकर यह भी जोड़ा कि **'ईसाई धर्म के पूर्ण प्रकाश में रहने वालों को उनके लिए बन्धुत्व भाव रखना चाहिए जो क्षीण प्रकाश में भटक रहे हैं।'** और फिर डरने की क्या बात है, उन्होंने शंकालु ईसाइयों को आश्वस्त किया, **'सत्य (उनका तात्पर्य ईसाई धर्म से था) और असत्य की मुठभेड़ होने दी जाय। क्या कभी खुले और मुक्त संघर्ष में सत्य की पराजय हुई है?"** मेरी लुई बर्क ने 'स्वामी विवेकानन्द इन दि वेस्ट' नामक पुस्तक में लिखा है कि अमेरिका में कुछ व्यक्ति निश्चय ही खुले मन और मस्तिष्क से आध्यात्मिक सत्य की खोज का स्वागत करते थे; किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में इस विचार को ईसाई पादरियों और सभी सामान्यजन का समर्थन नहीं मिल सकता था। उन्होंने यह भी लिखा है कि यद्यपि इस सम्मेलन का आयोजन ईसाई धर्म प्रचार की उद्दाम भावना के अभाव में हो ही नहीं सकता था तथापि इसके बावजूद यह सम्मेलन कट्टरपंथियों के उच्छेद का अस्त्र बन गया।

धर्म–सम्मेलन में ईसाई धर्म–प्रचारकों की गतिविधियों और वक्तव्यों की चर्चा करना प्रासंगिक होगा। अमेरिका की खोज के चार सौ वर्ष पूरे होने पर १८६३ में शिकागो में आयोजित औद्योगिक मेले के साथ अनेक विषयों यथा महिलाओं की प्रगति, चिकित्सा, व्यापार एवं वित्त, संगीत आदि के अतिरिक्त विश्व के धर्मों का सम्मेलन भी आयोजित किया गया था। यह धर्म सम्मेलन ११ से २७ सितम्बर तक चला। सम्मेलन के पहले ही दिन स्वामी विवेकानन्द अपने ४–५ मिनट के प्रखर वक्तव्य से श्रोताओं के आकर्षण के केन्द्र बन गये थे। सम्मेलन के दौरान अनेक ईसाई पादरियों ने अपने पर्चों में ईसाई धर्म की श्रेष्ठता तथा ईसा की शरण में ही मुक्ति का एकमेव मार्ग सिद्ध करने का प्रयत्न किया और अन्य धर्मों विशेष रूप से हिन्दू धर्म की निन्दा की। उन्होंने यह दावा भी किया कि यदि विश्व में कोई सार्वदेशिक धर्म हो सकता है, तो वह ईसाई धर्म ही है। सम्मेलन में कुछ ऐसे ईसाई वक्ता भी थे, जिनका दृष्टिकोण उदार और व्यापक था; किन्तु उनकी संख्या अत्यल्प थी। सम्मेलन के तीसरे ही दिन लन्दन मिशनरी सोसाइटी के रेवरेंड टामस एबेनेजर स्लेटर के परचे से ईसाई कट्टरपंथियों का आक्रमण आरम्भ हो गया। उन्होंने वेदों की आलोचना करते हुए बाइबिल को ईश्वर की आराधना की एकमात्र पुस्तक घोषित किया। चौथे दिन बोस्टन के रेवरेंड जोसेफ कुक ने बड़े नाटकीय ढंग से गरजते और पैर पटकते हुए अन्य धर्मों की तुलना में ईसाई धर्म को श्रेष्ठ बताया और कहा कि पृथ्वी और स्वर्ग में केवल ईसाई धर्म ही आत्मा, ईश्वर और पाप में सामञ्जस्य स्थापित कर सकता है। इस भाषण ने सम्मेलन के सौहार्दपूर्ण वातावरण में कितनी कडुवाहट घोल दी, इसका आकलन साप्ताहिक पत्र 'आउट लुक' की इस सम्पादकीय टिप्पणी

से किया जा सकता है—

"उदार और सहिष्णु ईसाई जन के लिए यह अत्यन्त अपमानजनक बात थी कि विश्वधर्म सम्मेलन में पहला विसंवादी स्वर छेड़नेवाला, कट्टरपंथ और दुर्भावना की पहली अभिव्यक्ति करनेवाला कोई मूर्तिपूजक, मुसलमान या यहूदी नहीं अपितु एक ईसाई था। बोस्टन के रेवरेंड जोसेफ के मंच पर आने तक (सम्मेलन के) सभी प्रतिभागी अपने वक्तव्यों और व्यवहार में शिष्ट, सहिष्णु और उदार थे।" एक अन्य पादरी रेवरेंड ह्यूम ने भारत में ईसाई धर्म की प्रगति पर सन्तोष व्यक्त करते हुए बताया, "मद्रास नगर में धर्मपरिवर्तित कर ईसाई बननेवालों का स्तर ब्राह्मणों से ऊँचा है। ब्रिटिश सरकार की जनगणना के अनुसार १८७१—८१ के दशक में जब सामान्य जनसंख्या वृद्धि ६ प्रतिशत थी, ईसाइयों की संख्या में ३२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १८८१—८६ के बीच १० प्रतिशत वृद्धि के विपरीत ईसाइयों की संख्या ३३ प्रतिशत बढ़ी और यह अनुमान किया जाता है कि अगली पीढ़ी में प्रभाव और उत्तरदायित्व के सभी पद भारत के ईसाई समुदाय के हाथों में होंगे।" सम्मेलन के एक प्रतिभागी रेवरेंड जार्ज टी. पेंटकोस्ट ने दक्षिण के मन्दिरों में देवदासियों को अनैतिक और दुश्चरित्र बताते हुए हिन्दू धर्म पर कटु आक्षेप किये।

इन आरोपों का उत्तर अनेक सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों ने दिया। चीन के कन्फ्यूशियस मतावलम्बी युंग क्वांग चू और जापानी बौद्ध होरिन तोकी ने अत्यन्त शिष्ट शब्दों में किन्तु दृढ़तापूर्वक कहा कि ईसाई धर्म—प्रचारक अत्यन्त दम्भी और अशिक्षित हैं और हमारे देशों में उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। ब्रह्म समाज के प्रतिनिधि बम्बई के बी.बी. नागरकर ने इन धर्म—प्रचारकों की गतिविधियों की चर्चा करते हुए आरोप लगाया कि वे ईसाई धर्मान्धता, ईसाई कट्टरता, ईसाई दर्प और ईसाई अलगाव का प्रचार कर रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द सम्मेलन के पहले ही दिन अपने ज्ञान और बौद्धिक गाम्भीर्य की धाक जमा चुके थे। उस दिन से ही उन्हें इतनी ख्याति और प्रतिष्ठा मिल गयी थी कि उनका व्याख्यान सुनने के लिये श्रोता व्याकुल रहते थे। निर्धारित व्याख्यानों के अतिरिक्त स्वामी जी को कई बार सम्मेलन में टिप्पणियाँ करनी पड़ीं। ऐसा अवसर विशेषरूप से तब आता था जब कट्टरपंथी ईसाई धर्म—प्रचारक अन्य धर्मों पर आक्रमण करते थे। यह टिप्पणियाँ समाचारपत्रों में प्रकाशित होती रहती थीं, जिनमें से कुछ तो सम्मेलनके अनेक वर्षों बाद प्रकाश में आयीं। सम्मेलन के नवें दिन का विवरण प्रस्तुत करते हुए शिकागो ट्रिब्यून के २० सितम्बर १८९३ के अंक में ईसाई धर्म—प्रचारकों के प्रत्युत्तर में विवेकानन्द की यह टिप्पणी प्रकाशित की, **"पूर्व से आये हम लोगों को जो यहाँ कई दिनों से हैं, अनुग्रहपूर्वक यह बताया जा रहा है कि हमें ईसाई धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए क्योंकि ईसाई राष्ट्र ही सर्वाधिक समृद्ध हैं। हम जब चारों ओर दृष्टि डालते हैं तो हमारा ध्यान, संसार के ईसाई राष्ट्रों में सबसे समृद्ध इंग्लैंड की ओर जाता है जिसका पैर २५ करोड़ एशियावासियों की गर्दन पर रखा हुआ है। हम इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं और देखते हैं कि ईसाई योरोप की समृद्धि स्पेन से आरम्भ हुई थी। स्पेन की समृद्धि का आरम्भ मेक्सिको पर आक्रमण से हुआ था। ईसाई राष्ट्रों ने अपने सहचर मनुष्यों का गला काटकर सम्पन्नता उपलब्ध की है। इस मूल्य पर हिन्दू सम्पन्नता नहीं प्राप्त करना चाहता।"**

सम्मेलन के दसवें दिन मिस्टर हेडलैंड ने **'रिलिजन इन बाइजिंग'** शीर्षक पर्चा पढ़ा, जिसमें चीनवासियों के विश्वासों की आलोचना और उनके लिए ईसाई धर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया गया था। इस पर्चे पर स्वामी विवेकानन्द की टिप्पणी **'शिकागो इंटर ओशन'** नामक पत्र के २१ सितम्बर के अंक में प्रकाशित हुई, जिसकी खोज सम्मेलन के पचहत्तर वर्ष बाद हुई। पर्चा समाप्त होने पर स्वामी जी ने कहा, चीन जैसे गरीब देश में लोगों से अपना शताब्दियों पुराना धर्म त्यागने का आग्रह करने और भोजन प्राप्त करने के लिए ईसाई धर्म स्वीकार करने की शर्त लगाने से कहीं अच्छा होगा कि धर्म प्रचारक चीनवासियों की भुखमरी दूर करने का उपाय करें। आगे उन्होंने कहा,

"अमेरिका के ईसाई भाइयो! आपको प्रतिमा—पूजकों की आत्मा को मुक्ति दिलाने के लिए धर्म—प्रचारक भेजने में बड़ी रुचि है। मैं आपसे पूछता हूँ कि उनके शरीर को भूख से बचाने के लिए आपने क्या किया है और आप क्या कर रहे हैं? भारत में ३० करोड़ पुरुष—स्त्री ५० सेंट से कुछ अधिक प्रतिमास की आय पर जीवन—यापन कर रहे हैं। मैंने उन्हें वर्षों जंगली फूलों पर अपना जीवन काटते देखा है। जब कभी सीमित अकाल भी पड़ता है तो लाखों व्यक्ति भूख से मर जाते हैं। ईसाई धर्म—प्रचाकर आते हैं और इस शर्त पर उनकी प्राण—रक्षा करने का आश्वासन देते हैं कि अपने

पूर्वजों का धर्म छोड़कर हिन्दूजन ईसाई धर्म ग्रहण कर लें। क्या यह उचित है? सैकड़ों सदावर्त खोले गये हैं किन्तु यदि कोई मुसलमान या हिन्दू वहाँ पहुँच जाय तो उसे धक्का मारकर बाहर कर दिया जाता है। इसके विपरीत हिन्दुओं के बनवाये हजारों सदावर्तों में प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत किया जाता है। सैकड़ों ऐसे चर्च हैं जो हिन्दुओं के सहयोग से बनाये गये हैं किन्तु एक भी हिन्दू मन्दिर ऐसा नहीं है जिसके लिए किसी ईसाई ने एक पैसा भी दिया हो।

अमेरिका के बन्धुओ! पूर्वी देशों की ज्वलन्त समस्या धर्म नहीं है। हमारे पास धर्म का पर्याप्त ज्ञान है। पूर्व के निवासियों की आवश्यकता है रोटी जिसके स्थान पर उन्हें पत्थर दिया जाता है। भूख से तड़पते हुए व्यक्ति को धर्म का उपदेश देना उसका अपमान करना है। अतः यदि आप (ईसाई मान्यता के अनुसार) 'भ्रातृत्व' का भाव व्यक्त करना चाहते हैं तो हिन्दू के प्रति प्रेम की भावना रखिये, भले ही वह अपने धर्म के प्रति निष्ठावान हो। आप उनके बीच ऐसे प्रचारक भेजिये जो उन्हें रोटी कमाना सिखायें न कि निरर्थक धर्म का उपदेश दें।"

स्वामी विवेकानन्द के ये उद्‌गार ईसाई धर्म-प्रचारकों के धार्मिक उन्माद, अकारण श्रेष्ठता के भाव और अन्य धर्मों विशेषरूप से हिन्दू धर्म पर अनर्गल आक्षेपों की सहज युवकोचित प्रतिक्रिया थे।

स्वामी जी के इस आक्रामक रुख तथा अमेरिका प्रवास के दौरान कट्टरपंथी ईसाइयों द्वारा उन पर किये गये हमलों का उल्लेख प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यकार रोमां रोलां ने अपनी कृति 'विवेकानन्द' में किया है। उन्होंने लिखा है, "वे झूठी ईसाइयत और धार्मिक पाखण्ड से विशेषतया खिन्न थे- 'आप जितनी चाहें शेखी बघारें पर तलवार के बिना आपकी ईसाइयत कहीं सफल हुई है? आपका धर्म ऐश्वर्य का लोभ दिखाकर प्रचारित किया जाता है। इस देश में मैंने जो कुछ सुना, सब ढोंग है। यह सब समृद्धि-यही सब क्या खीष्ट की देन है? जो खीष्ट को पुकारते हैं क्या वे पैसा बटोरने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते? खीष्ट तुम्हारे घर में एक ईंट भी तकिया लगाने योग्य न पायेंगे। तुम ईसाई नहीं हो। खीष्ट की शरण में लौटो।'

"इस विद्रूपमूलक शिक्षा के उत्तर में क्रोध का विस्फोट हुआ और उसी दिन से पादरियों की एक टोली उनका पीछा करने लगी। जहाँ वह जाते पीछे से वे पहुँचकर कुत्सा और निन्दा का प्रचार करते- यहाँ तक कि अमरीका और भारत में उनके चरित्र और जीवन की मनगढ़ंत कलंक-कथाएँ भी उन्होंने फैलायीं।"

सम्मेलन के बाद स्वामी जी ने यह अनुभव किया कि उसके आयोजकों के हृदय में वह उदात्तता और निर्मलता नहीं थी, जो ऐसे आयोजन के लिए अपेक्षित है। उन्होंने एक पत्र में लिखा **"धर्म सम्मेलन ईसाई धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए आयोजित किया गया था।"** एक साक्षात्कार में उन्होंने यह भी कहा कि **'मुझे लगता है कि सम्मेलन का आयोजन विश्व के सामने मूर्तिपूजकों का तमाशा दिखाने के लिए किया गया था।'**

स्वामी विवेकानन्द द्वारा ईसाई धर्म-प्रचारकों के तीव्र प्रतिवाद को उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की विशेष परिस्थिति के सन्दर्भ में देखने की आवश्यकता है। इस काल में नवजागरण की किरणें प्रायः सम्पूर्ण भारत को आलोकित करने लगी थीं। भारतीय समाज के शिक्षित वर्ग में बौद्धिक हलचल हो रही थी। हिन्दू समाज को इस हलचल ने कितनी दूर तक झकझोरा, इसका ज्वलंत उदाहरण १८७५ में आर्य समाज की स्थापना और अगले ४-५ दशकों में उसकी लोकप्रियता है। (क्रमशः)

□

- ५३, खुर्शेद बाग, लखनऊ (उ०प्र०)

पाठकीयम्

मैं 'राष्ट्रधर्म' का '८६ से पाठक हूँ, मैं हमेशा हर माह के अंक का बेसब्री से इन्तजार करता रहता हूँ। इसके हर अंक में हमारे राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों को बड़े ही मार्मिक एवं तथ्यपरक शब्दों के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

'राष्ट्रधर्म' का सम्पादकीय राष्ट्र की घटित घटनाक्रमों पर समीक्षा कर पाठकों एवं जनता को सजग प्रहरी की भाँति जाग्रत कर सावचेत करता रहता है।

इसके मूर्धन्य साहित्यकार एवं विद्वान् अपनी पैनी एवं अनुभवी लेखनी से सम–सामयिक राजनैतिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों पर लेख प्रस्तुत करते रहते हैं। जिनमें मुख्यतः हैं श्री वचनेश त्रिपाठी जी, हृदय नारायण दीक्षित आदि।

इसमें लेख, बाल साहित्य, स्तम्भ अनुकरणीय एवं संग्रहणीय होते।

जुलाई अंक ९९ में छपा यह लेख "कारगिल घुसपैठ इस्लामी विस्तारवाद का एक चरण मात्र है" मा० श्री हृदय नारायण दीक्षित द्वारा प्रस्तुत एक कटु सत्य है।

कारगिल समस्या पर इस लेख के माध्यम से स्पष्ट किया है कि पाकिस्तान एक क्रूर एवं आतंकवादी राज्य है; क्योंकि पाक अपनी अन्दरूनी समस्याओं को दबाने के लिए आतंकवाद को बढ़ावा दे रहा है।

अपनी स्वयं की समस्याएँ आर्थिक, शिक्षा, विकास, प्रगति पर बहुत अधिक कुछ नहीं कर पाया है। जिस 'राष्ट्र पर २ खरब' रुपये का कर्जा हो, वह राष्ट्र अपनी जनता में शिक्षा–विकास की बात कहाँ कर सकता है। फिर तो वहाँ के राजनेता इन समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए "एक अलग समस्या को जन्म देते हैं जिसे वे कश्मीर समस्या मानते हैं जिससे वहाँ उग्रवाद को बढ़ावा देकर सारा जहर कश्मीर में उगलना चाहते थे। यह वहाँ के नेताओं की दिमागी कमजोरी का परिचायक है। इसीलिए तो वहाँ के मदरसों में मासूम बच्चों को कलम देने के बजाय बन्दूकें थमा देने की शिक्षा दी जाती है। ऐसे बालक युवा होने पर घर में या पड़ोस में उत्पात कर उग्रवाद ही पैदा करेंगे और इनको अन्ततः स्वयं को नष्ट करने की ओर प्रेरित करना है। यह सत्य भी है। बार–बार पराजित होकर भी युद्ध के लिए छेड़ना अपने सर्वनाश को आमन्त्रित करता है।"

जिस दिन भारत अपना संयम तोड़ देगा उस दिन पाक स्थान की बजाय सिन्ध स्थान हो जायेगा।

अब विशेष कर राष्ट्रवादी भारतीय राजनीतिज्ञों को हमारे टटपूँजे स्तरहीन निम्न विचारधारा के नेताओं जो अपनी कुर्सी (सत्ता) के खातिर गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं उनसे निजात पाकर एक सशक्त एवं कुशल नेतृत्व की आवश्यकता है। जो ऐसी आतंकवादी समस्याओं को जड़ से समाप्त कर सके ऐसे नेता की जरूरत है।

वर्त्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की कूटनीतिक विजय इस बात की द्योतक है कि अब दिशाहीन विदेशी मानसिकता वाले नेताओं से इस राष्ट्र का पोषण नहीं हो सकता। आवश्यक है सशक्त, मजबूत एवं राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित नेताओं की जो अपनी संस्कृति, अपना धर्म, अपने विचारों से राष्ट्र को नई दिशा दे सकें।

'राष्ट्रधर्म' को अपने अंकों में सामयिक समस्याओं पर फोटो फीचर पृष्ठ देने चाहिए क्योंकि चित्रों के माध्यम से वास्तविकता को जोड़ा जा सकता है। कारगिल समस्या पर वहाँ की जलवायु, सैनिक विजय–गाथा उनके शौर्यपूर्ण कार्यों पर फोटो के साथ रिपोर्टिंग का महत्त्व भी है साहित्य–सृजन तो आवश्यकता है ही परन्तु सामयिक राष्ट्रीय घटनाक्रमों पर राजनैतिक सैनिक, शैक्षिक, सह–शैक्षिक, घटनाक्रमों व अवसरों के रंगीन चित्र भी प्रकाशित होना चाहिए। वर्त्तमान में सभी पत्र–पत्रिकाओं ने बढ़–चढ़ कर कारगिल पर अपनी प्रस्तुति दी है। वहीं आप मात्र लेखों, विचारों, कहानियों से सन्तुष्ट कर रहे हैं। वर्त्तमान में जो सैनिक गतिविधियाँ संचालित हुईं, राजनैतिक उथल–पुथल हो रही हैं, उस पर अपने संवाददाताओं को तैयार कर महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय घटनाक्रमों पर ताजा समाचारों के स्तम्भ प्रकाशित होने चाहिए। माता जीजा पर डाक टिकट जारी हुआ, डॉ० साहब पर भी ऐसे समाचारों पर रिपोर्टिंग होनी चाहिए यह आवश्यक है। विदेशी मानसिकता वाले नेता अपने चमचों, सलाहकारों से घिरे उनकी बारीक माइक्रो रीडिंग कर उन्हें भी प्रकाशित करने की आवश्यकता है। हमारे पूर्व सम्पादकों, जो क्षितिज पर हैं पर विशेष इनसेट आना चाहिए; थोड़ा ग्लेमर से जोडें, समय की आवश्यकता है। ☐

– शंकर लाल सेन,
मनोहर थाना (राजस्थान)

कीर्तिशेष

गत १० नवम्बर ९९ को दिल्ली के सैनिक चिकित्सालय में १९६५ के भारत-पाकिस्तान-युद्ध के अप्रतिम विजेता, लेफ्टि. जनरल हरबख्श सिंह का ८५ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। पाकिस्तान के अजेय माने-जानेवाले अमेरिकी पैटन टैंकों का खेमकरन में 'कब्रिस्तान' बनवा डालनेवाले जनरल हरबख्श सिंह का नाम भारत ही नहीं, विश्व के विख्यातनामा सेनापतियों में सदैव अग्रगण्य रहेगा। 'राष्ट्रधर्म' देश के इस विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न सेनानायक की पुण्य-स्मृति को कोटिक प्रणाम करता है।

१९४६ में रा. स्व. संघ के प्रचारक के रूप में समर्पित जीवन प्रारम्भ कर पहले जनसंघ और फिर भा.ज.पा. के अखिल भारतीय उपाध्यक्ष के पद का श्रेष्ठतम प्रकार से दायित्व निर्वहन करनेवाले यथार्थतः कर्मयोगी श्री कृष्ण लाल शर्मा गत १७ दिस. ९९ को हृदयाघात से स्वर्गवासी हो गये। 'राष्ट्रधर्म' का राष्ट्र के इस जीवनदानी को कोटिशः नमन।

मधुरेण समापयेत्

आगमन नये साहब का

- सुधीर ओखदे

नये साहब के आगमन से कर्मचारियों के आहार–व्यवहार, रुचियों, खेल, राजनीति सभी विषयों में एकाएक परिवर्तन आने लगा है। पहले का साहब हाकी का रसिया था, सो स्टाफ भी हाकी दीवाना था।

बड़े बाबू फाइल पेश करते समय हाकी की नवीनतम जानकारी पेश कर दिया करते थे। कार्यालय के वही पुराने आँकड़े नये कवर के साथ हाकी की नवीनतम जानकारी से भरे हुए जब साहब के पास पहुँचते, तो विजयी गोल की तरह चल पड़ते थे।

हाकी का ऐसा वातावरण कार्यालय में व्याप्त था कि वर्मा तो एक दिन हॉफ पैण्ट में ही दफ्तर आ गया था। उसका दुर्भाग्य कि उसी दिन कार्यालय की आकस्मिक जाँच के दौरान साथ आया अधिकारी साहित्यप्रेमी था और हॉफ पैण्ट का सख्त विरोधी था। परिणाम बेचारे पुराने साहब को भुगतना पड़ा था।

मुझे लगता है सरकारी तन्त्र में नौकरशाही ने भी भारतीय जन को नपुंसकता की ओर ढकेलने में बड़ा योगदान दिया है।

नजर नहीं उठती, खून नहीं खौलता, गर्दन नहीं हिलती, जबान नहीं चलती। अच्छा भला आदमी भी जीभ लपलपाते, पूँछ हिलाते साहब के आगे–पीछे घूमता रहता है।

आज साहब दोपहर को खूब हँसे थे। हम सब भी खूब हँसे। उस वक्त तू मेम साहब के साथ सब्जी खरीदने और झोला पकड़ने की ड्यूटी पर था। यह पता चलते ही सब्जी कर्मचारी साहब के पास जा पहुँचता है और शिकायत करने लगता है कि साहब यह तो नाइंसाफी है।

मैं इधर मेम साहब के साथ सब्जी में व्यस्त था और उधर सब दोपहर में आपके साथ खूब हँसे। जिनकी औकात नहीं, वह भी हँसे।

पटवर्द्धन कभी आपका राशन लाता है? शर्मा कभी आपके बच्चों को बन्दर बनकर दिखाता है? पटैरिया कभी आपकी सब्जी खरीदने जाता है?

सब के सब ईमानदार कर्मचारी हैं साथ ही स्वाभिमानी भी। समय पर कार्यालय आते हैं, अपना–अपना कार्य करते हैं और समय से घर वापस चले जाते हैं। साहब मुझे बड़ा दुःख हुआ कि ऐसे लोग भी हँस लिये और मैं रह गया।

साहब समझ जाते हैं कि इसमें सम्भावना है। यह उच्चवर्ण का प्रतीत होता है। जीभ और पूँछ दोनों एक साथ हरकत कर रहे हैं। यह बहुत ऊँचा जाएगा। साहब उसके साथ भी हँसते हैं। वह सन्तुष्ट हो जाता है।

इधर साहब हँसे, उधर प्रजातन्त्र हँसा। राजतन्त्र हँसा। गणतन्त्र हँसा। कितना शक्तिशाली है यह साहब, देश को हँसा रहा है। विभाग जनकल्याण से जुड़ा हो, तो कर्मचारियों के साथ जनसामान्य भी हँसता है। जो साहब भारतीय आम इन्सान को हँसाने की ताकत रखता हो, उसे कम करके तो आँका ही नहीं जा सकता। साहब होकर हँसाता है तू राजनीतिज्ञ है कि नौकरशाह!

उस दिन पाण्डेय साहब के चुटकुले पर नहीं हँस सका था, तो तीन महीने रोता रहा था। रोज अपनी घरवाली को कोसता। कहता कितनी मनहूस है तू। तुझसे झगड़कर न गया होता, तो सबके साथ मैं भी हँसता। पर मैं तो मुन्ने की बीमारी में खोया था; बिटिया के ब्याह की चिन्ता में खोया था; घर के खर्चों में खोया था। साहब के चुटकुले को भी खो बैठा।

अब तो हालात ये हैं कि पूरे आफिस में मैं ही खोया–खोया सा रहता हूँ। बाकी सब ऐश करते हैं। मुझे हाकी नहीं पता, फिल्म नहीं पता, डिस्को नहीं पता। कैसा अहमक कर्मचारी हूँ मै। किसी मीटिंग में बोल ही नहीं पाता।

उस दिन बजट से सम्बन्धित मीटिंग में भी फेल रहा मैं। पूरी तैयारी करके गया था। सारे आँकड़े मेरे पास थे; पर मीटिंग में खेल, राजनीति, फिल्म पर ऐसी बहस चली कि मुझे बाद में मीटिंग से ही चलता कर दिया गया।

उधर वर्मा को देखो! साहब ने पूछा जनसंख्या का स्टेटमेण्ट तैयार है? उसने नई रिलीज फिल्म की कहानी बताते हुए दो टिकट साहब के हाथ में रख दिये। साहब ने कहा, ठीक है सही आँकड़े न सही, कुछ तो 'पुट–अप' कर ही देना।

नये साहब क्रिकेट के शौकीन हैं, यह खबर भी

माधव विद्या निकेतन, सी० सै० स्कूल

रणजीत ऐवेन्यु, ए-ब्लाक, अमृतसर

(एक विशिष्ट गैर सरकारी शिक्षण संस्थान सर्वहितकारी शिक्षा समिति चण्डीगढ़ द्वारा संचालित)

विशेषताएँ

1. लगभग 14000 गज में बना एक सुन्दर भवन।
2. खुले और हवादार कमरे।
3. योग्य, अनुभवी, परिश्रमी और उच्च शिक्षा प्राप्त अध्यापक-अध्यापिकाएँ।
4. विज्ञान की व्यावहारिक शिक्षा हेतु आवश्यक दृश्य-श्रव्य साधनों सहित एक सक्षम प्रयोगशाला।
5. लगभग 10000 पुस्तकों सहित एक पुस्तकालय।
6. सभी आधुनिक सुविधाओं सहित एक सुन्दर शिशु वाटिका।
7. बच्चों के सर्वांगीण विकास और चरित्र निर्माण के उद्देश्य से नैतिक शिक्षा, संस्कृत भाषा, संगीत शिक्षा योग और शारीरिक शिक्षा का विशेष प्रबन्ध।
8. बोर्ड की परीक्षाओं में प्रतिवर्ष शतप्रतिशत और शानदार परिणाम।

प्रधानाचार्या

श्रीमती चाँद पुष्करणा

With Best Compliments From :
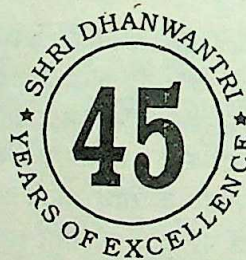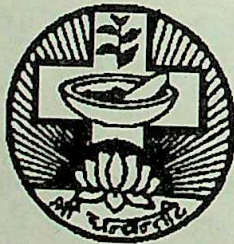
SHRI

DHANWANTRI

AYURVEDIC PHARMACY

277, East Mohan Nagar, AMRITSAR - 143 006
Phone : 0183-230824 Fax : 0183- 232899

Manufacturers of Classical & Patent/Proprietory Ayurvedic Medicines.

Trade Enquiries are Solicited

वर्मा लाया था। इस समय पूरा ऑफिस क्रिकेट स्टेडियम की तरह नजर आने लगा है। छोटे-छोटे ट्रांजिस्टरों ने कलम की जगह ले ली है। क्रिकेट पत्रिकाओं ने फाइलों पर अधिकार जमाना शुरू कर दिया है। वेलफेयर क्लब ने हॉकी का सामान स्टोर में रख दिया है और क्रिकेट के बैट खरीद लिये गये है। कार्यालय में हर तरफ सिर्फ चौके छक्कों की ही बहार है। लोग क्रिकेट की भाषा में ही बातें करते हैं।

परसों पाठक को अचानक दस्त की शिकायत हुई, तो वर्मा ने साहब से कहा क्वार्टर सेंचुरी में बस पाँच की कमी है। साहब समझ गये कि मामला गम्भीर है। उन्होंने उसे आउट करार दे कर पवेलियन वापस जाने को कहा। आजकल पूरा कार्यालय बस कोल्ड ड्रिंक ही पीता रहता है। 'पेप्सी' कार्यालय की हर साँस में समा गया है। स्टंप्स कार्यालय के प्रहरी, तो बॉल, कार्यालय की प्रगति का सूचक। महापुरुषों की तस्वीरों की जगह क्रिकेट खिलाड़ियों की तस्वीरें टँग गयी हैं। हर तरफ बस क्रिकेट ही क्रिकेट है।

नये साहब ने चार्ज सम्हालते ही कर्मचारियों पर नजर रखनी शुरू कर दी है। कौन कितनी पूँछ हिलाता है। कौन कितनी जीभ लपलपाता है। कौन पंजा देता है। कौन करतब दिखाता है।

सबसे पहले वर्मा प्रकाश में आया। साहब को प्यास लगी थी। घण्टी बजायी, पर चपरासी जगह पर नहीं था, सो वर्मा की बन आयी। वह चपरासी बन गया।

मैंने देखा है पद जब अपनी प्रतिष्ठा खोता है, तो सोना बन जाता है और जब अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा हेतु सिपाही की तरह तैनात हो जाता है, तो मिट्टी का ढेला बनकर रह जाता है।

देश अपनी प्रगति के आँकड़ों को क्यों नहीं छू पाता, यह प्रश्न अब विचारणीय रह ही नहीं गया है। जिस देश का कर्मचारी आगे जाने के बजाय रिवर्स गियर में चल रहा हो, वह देश भला क्यों कर प्रगति कर पायेगा।

देश की प्रगति से वर्मा को क्या? वह क्या कोई प्रवासी भारतीय है? उस दिन वह साहब का चपरासी क्या बना, बाकी स्टॉफ का तो साहब बन ही गया। सभी पूछने लगे, यार! सुना, तुमने आज तीर मार ही लिया। चपरासी को पहले से ही पटा कर रखा था क्या?

बता न यार! साहब को क्या-क्या पसन्द है। वह कौन सा खेल पसन्द करते हैं। किस ब्राण्ड की पीते हैं। किस कलाकार की फिल्म उन्हें ज्यादा अच्छी लगती है। खाना कैसा पसन्द करते हैं और भी कौन-कौन से शौक हैं उन्हें। बता भाई बता।

इधर वर्मा सबको नये साहब की रुचियाँ बताता जा रहा है और उधर एक-एक की पूँछ हिलती जा रही है। ❒

– III/२, आकाशवाणी कालोनी, जलगाँव– ४२५००१ (महाराष्ट्र)

(पृष्ठ ५० का शेष) **भारत को नष्ट...**

सुरक्षा पूरी तरह दाँव पर लगी है। निरीह असुरक्षित सामान्य हिन्दू नागरिक पर दोहरी मार पड़ रही है। गरीबी और उपेक्षा ने उसकी कमर तोड़ दी है। अपराधी तत्त्वों का जनसंख्या के हिसाब से अनुपात देखा जाये, तो चौंकानेवाले आँकड़े सामने आयेंगे। अनेक अपराधी मात्र इसीलिए छोड़ दिये जाते हैं कि वे अल्पसंख्यक समुदाय के हैं। ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू देवी-देवताओं का अपमान किया जाना, स्कूलों में तिलक वर्ज्य करना, ईसाई प्रार्थनाएँ करवाना, बस रोककर ईसु का नाम लेने पर बस स्टार्ट हो जाना, हाथ फेरने पर अन्धत्व, बधिरत्व तथा बीमारियाँ दूर करने जैसी बातों का प्रचार (चंगाई) करना, ईसाई लड़कियों द्वारा हिन्दू लड़कों को फाँसना, ऐसी सस्ती हिकमतों द्वारा लगातार ईसाइयत का प्रचार हो रहा है।

संविधान ने जिस आरक्षण का प्रावधान हिन्दू अन्त्यजों के जीवन-स्तर को उठाने के लिए किया था, उसे ईसाइयों को भी मुहय्या कराना, उनके दोनों हाथों में लड्डू देने जैसा होगा। ईसाई होने का लाभ और सरकारी आरक्षण दोनों सुविधाएँ मिलने से अनेक गरीब हिन्दू हरिजन स्वभावतः ईसाई बन जायेंगे। इस्लाम और ईसाई समानता का दावा करते हैं तब फिर उनके लिए आरक्षण कैसा?

हिन्दुओं ने सदैव स्वतन्त्रता की कीमत चुकायी है, पर इसके बदले उन्हें क्या मिला है? दक्षिण के जंगलों में रहनेवाले बंजारे (लंबाडे) वस्तुतः राजस्थान के वीर राजपूत हैं, जिन्होंने मुगलों से लोहा लिया और स्वधर्म बचाने दक्षिण के जंगलों में आ गये। आज वे अपने आपको भूलकर अनुसूचित जनजाति बन गये हैं। देश के अनेक क्षेत्रों में आज भी हिन्दू बने रहना सचमुच बड़े जोखिम का काम है। जिन्होंने समझौते किये, वे मजे में रहे, जिन्होंने राष्ट्र व धर्म के लिए बलिदान दिये– उन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी कष्ट झेले। हिन्दू की आज भी क्या यही नियति नहीं है? ❒

– फ्लैट नं०-११२, सौम्या अपार्टमेण्ट, हुडा काम्प्लेक्स, कोत्तापेट, हैदराबाद
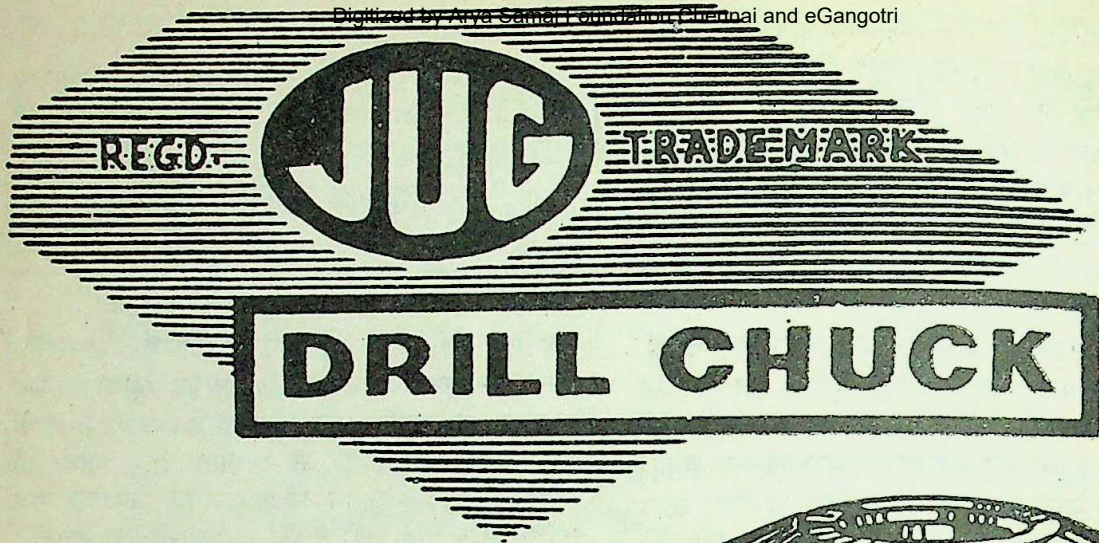
SUPPLIED
AS AN ORIGINAL
EQUIPMENT TO **Wolf** ELECTRIC TOOLS

IS : 2243
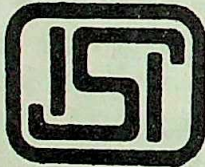
13 MM.
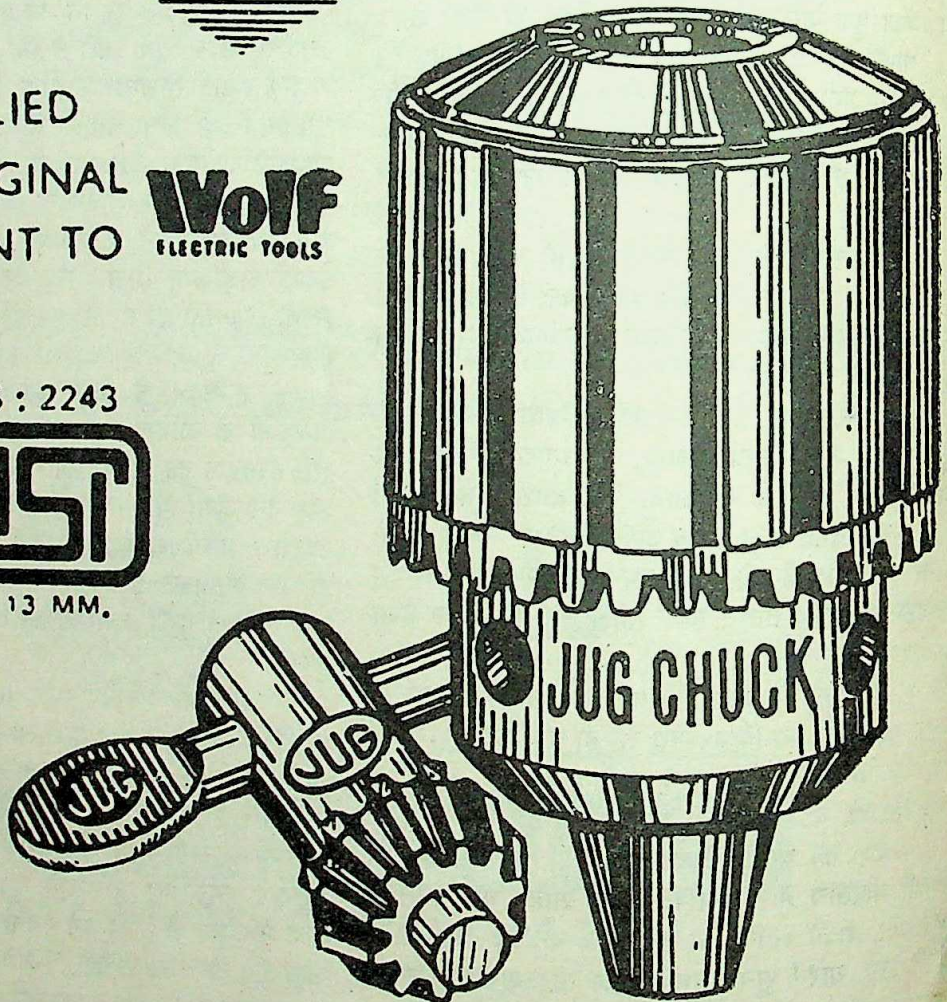
J.J. SOKHEY INDUSTRIES (Tools) Pvt. Ltd

SULTANWIND, AMRITSAR (India)

गुरु गोविन्दसिंह जी के चारों पुत्रों का बलिदान हो चुका था— दो समरभूमि में युद्ध करते हुए वीर–गति को प्राप्त हुए थे और दो को सरहिन्द में वहाँ के सूबेदार ने जिन्दा दीवार में चुनवा दिया था, अत्यन्त शोकग्रस्त गुरु–पत्नी बोल पड़ीं— "चार पुत्र और चारों ही नहीं रहे, अब मैं क्या करूँ ?" गुरुजी ने उन्हें बोध कराया— 'चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार।' अरे ! चार मर गये, तो इसमें दुःख की क्या बात ! देखो, ये हजारों सिख अभी जीवित हैं, क्या ये तुम्हारे बेटे नहीं हैं !' और फिर क्या हुआ ? गुरु जी दक्षिण जाते हैं और नान्देड़ में तपोरत लक्ष्मणदास बैरागी को तलवार प्रदान कर अपने ७४० सिख अनुयायी देकर पंजाब में युद्धाग्नि धधकाये रखने को भेज देते हैं। लक्ष्मणदास बैरागी 'वीर बन्दा बैरागी' बन जाता है और पंजाब में अत्याचारी इस्लामी मुगल–सत्ता को ध्वस्त कर देता है; सरहिन्द की ईंट से ईंट बजा देता है। लेकिन आज, जब ऐन होली के दिन जम्मू–कश्मीर के अनन्तनाग जिले के छत्तीसिंहपोरा गाँव में एक–दो नहीं, चालीस सिख गोलियों से भून दिये जाते हैं, तो स्वतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि बन्दा ने तो सरहिन्द की ईंट से ईंट बजाकर चार का बदला ले लिया था, इन चालीस का बदला लेने के लिए इस्लामाबाद की ईंट से ईंट बजाने को देखें, कौन 'बन्दा' आगे आता है ? धरना, जुलूस, सभाएँ, नारे क्या उन चालीस बलिदानियों को वापस ला सकते हैं ? ला सकेंगे ? ये गांधीवादी 'हथियार' क्या पहले भी कभी कारगर हुए थे, जो अब कारगर होंगे ? स्मरण रहे ब्रिटेन के निवर्त्तमान प्रधानमन्त्री लार्ड क्लीमेण्ट ऐटली ने कलकत्ता में कहा था— 'हमने चरखा, तकली से डरकर भारत नहीं छोड़ा। यह तो हमारी भारतीय सेना पर पड़े आजाद हिन्द फौज का प्रभाव था कि हमें भारत छोड़ने का निर्णय लेना पड़ा; क्योंकि विश्व–युद्ध के कारण हम इतने सशक्त नहीं रह गये थे कि दूसरा १८५७ झेल पाते।' आततायी शत्रु किसी गांधी या उसके द्वारा अपनाये गये 'नपुंसक हथियारों' से न कभी डरा था, न डरता है और न डरेगा, यह बात हमें गाँठ में बाँधकर रखनी चाहिए।

जम्मू–कश्मीर के भाग्य की भयंकर विडम्बना यह रही है कि अपने देश के कर्णधारों ने सनातन काल से चले

चालिस मरे तो क्या हुआ !

आ रहे अपने इस 'अभिन्न अंग' को कभी अभिन्न समझकर कोई नीति बनायी ही नहीं; क्योंकि जो 'अभिन्न' था, उसे उन्होंने पहले ही अभिन्न न मानते हुए अपने से भिन्न एक राष्ट्र मानकर एक देश बना देने में कोई आगा–पीछा नहीं सोचा। पाकिस्तान बनाकर एक भस्मासुर तैयार कर दिया, जो जहाँ चाहे, जब जाहे, जैसे चाहे, अपना हाथ रखकर हमें भस्म कर डालने को सदा आतुर रहता है; तत्पर रहता है और कभी चूकता नहीं। हम बस पुतला फूँककर, नारे लगाकर, जुलूस निकालकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। अब तक यही होता रहा है, अब भी यही हो रहा है, आगे भी कब तक यही होता रहेगा, कोई नहीं जानता। वैसे भी अनर्गल–प्रलाप और विधवा–विलाप का कोई प्रभाव कभी होता नहीं देखा गया, यह सहज अनुभव की बात है।

चूक पर चूक करते रहने की हमारी पुरानी आदत रही है। कश्मीर में तभी तो—

१. प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल ने महाराजा हरी सिंह के विलय प्रस्ताव को स्वीकार करने में लगभग दो महीने का समय लगा दिया और पाकिस्तान की 'जिन्नाती' सेना बारामूला तक जा धमकी।
२. विलय को स्वीकार करने के लिए शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को जेल से मुक्त कर जम्मू–कश्मीर की बागडोर उसके हाथ में सौंपने को महाराजा को बाध्य किया गया। इतना ही नहीं, निजाम जैसे देशद्रोही को तो अपनी रियासत हैदराबाद में राजप्रमुख बनाये रखा गया; किन्तु महाराजा हरीसिंह को (बम्बई में) निर्वासित जीवन बिताने के लिए विवश किया गया।
३. हारकर भागती हुई पाकिस्तानी फौज का पीछा कर रही भारतीय सेना को युद्ध–विराम के नाम पर आगे बढ़ने से रोक दिया गया और इस प्रकार एक तिहाई कश्मीर को पाकिस्तान के कब्जे में रहने दिया गया।
४. लार्ड माउण्टबैटन (गवर्नर–जनरल) के कहने पर कश्मीर को विवादित–क्षेत्र जैसा मानकर संयुक्त–राष्ट्र–संघ में ले जाया गया और इस प्रकार समस्या को जन्म देकर उसे एक प्रकार से 'हिरन के सींगों में फँसा दिया गया।' 'जनमत–संग्रह' का तुर्रा ऊपर से।
५. संविधान में पूर्णतः अस्थायी अनुच्छेद ३७० जोड़कर शेख अब्दुल्ला जैसे जाने–माने 'अलीगढ़ी' को कश्मीर में

सर्वाधिकार सम्पन्न बना दिया गया।

६. 'एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान' की व्यवस्था को जन्म देकर उसका विरोध करनेवाले देशभक्तों को लाठी, गोली और जेल की हवा खिलायी गयी और अन्ततः डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी को देश की एकता और अखण्डता के लिए अपना बलिदान देना पड़ा; परन्तु नेहरू जी की आँखें तब भी नहीं खुलीं। शेख को उदकमण्डलम् (ऊटी) के एक सुसज्जित डाकबँगले में राजसी ठाट–बाट के साथ (कहने को) 'नजरबन्द' रखा गया।

७. १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण के समय युद्ध में मुक्त कराये गये हाजीपीर दर्रा जैसे सामरिक महत्त्व के क्षेत्रों तक को ताशकन्द–समझौते के नाम पर पाकिस्तान को 'सप्रेम' वापस लौटा दिया गया। (किस मुँह से कोई जम्मू–कश्मीर को भारत का 'अभिन्न अंग' कह सकता है, इस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी।)

८. १९७१ के बांग्लादेश युद्ध में पूर्ण–विजय प्राप्त करके भी जम्मू–कश्मीर के उस युद्ध के समय मुक्त कराये गये क्षेत्र तो ताशकन्द–समझौते की तर्ज पर किये गये शिमला समझौते में वापस पाकिस्तान को लौटा ही दिये गये, छम्ब नदी के पार का भारतीय क्षेत्र भी उसके कब्जे में ही रहने दिया गया। ऊपर से ९३००० हत्यारे युद्धबन्दी पाकिस्तानी सैनिकों को भी उनके जनरल के साथ ससम्मान बरी कर दिया गया। अदूरदर्शिता की भी आखिर कोई सीमा तो होती!

ऐसी अनेकानेक जान–बूझकर की गयी मूर्खता की सीमा तक पहुँची अदूरदर्शिताओं का एक पूरा पोथा बनाया जा सकता है; लेकिन इसके मूल में गये विना; रोग का सही निदान किये विना इस 'आधाशीशी के दर्द' की सही चिकित्सा कदापि सम्भव नहीं है। देखा जाये, तो कश्मीर–समस्या का मूल पाकिस्तान में है; पाकिस्तान का मूल देश–विभाजन में है; देश–विभाजन का मूल मुस्लिम–तुष्टीकरण में है; मुस्लिम तुष्टीकरण का मूल कांग्रेस में है और कांग्रेस का मूल उसके जन्मदाता ए०ओ० ह्यूम में है, जो १८५७ में इटावा का कलेक्टर था और क्रान्तिकारियों के डर के मारे स्त्री–वेष में भागा था। देश का दुर्भाग्य कि ऐसी विदेशी पिता से जन्मी कांग्रेस के हाथ में खण्डित रूप में स्वतन्त्र हुए देश के शेष भूभाग की सत्ता आयी और उस सत्ता की बागडोर 'महात्मा' गांधी की बदौलत सरदार वल्लभभाई पटेल के बजाय पं० जवाहरलाल नेहरू के हाथ में आयी और नेहरू की बागडोर माउण्टबेटन–दम्पति के हाथ में थी। ऐसे में जम्मू–कश्मीर को तो रोना ही था, भारत को भी रोना ही बदा था। भारत को 'पं० नेहरू की बपौती' और जम्मू–कश्मीर को 'शेख अब्दुल्ला की बपौती' बना दिये जाने, समझ लिए जाने का जो फल होना था, वही तो हो रहा है। माउण्टबेटन से समझौता किया, तो पाकिस्तान बना दिया; पाकिस्तान से समझौता किया, तो एक तिहाई कश्मीर गँवा दिया; (फीरोज खाँ) नून–समझौता किया, तो बेरूवाड़ी गँवा दिया; कच्छ–समझौता किया, तो ७५० वर्गमील भूभाग गँवा दिया; ताशकन्द–समझौता किया, तो भूभाग तो भूभाग, प्रधानमन्त्री ही गँवा दिया; शिमला–समझौता किया; तो प्रकान्तर से 'हक' ही गँवा दिया; लाहौर–समझौता किया, तो 'बस' को करगिल पहुँचा दिया। अब और कौन–सा समझौता करने को बाकी रह गया है, जो 'बात' की जाय? बात, कैसी बात, किससे बात? इतना सब कुछ झेलने, झेलते रहने के बाद भी क्या 'कोई बात' बात करने को बची है? कब तक गिनेंगे हमले; कब तक गिनेंगे विस्फोट; कब तक गिनेंगे लाशें? लाशें! लाशें!! लाशें!!! देशभक्तों की लाशें; बाल–वृद्धों की लाशें; माताओं–बहनों के सतीत्व की लाशें; वीर सैनिकों की लाशें; सेनाधिकारियों की लाशें। लाशों के अम्बार पर अम्बार और बात करते हैं बात करने की। आततायियों से बात नहीं की जाती; दरिन्दों से बात नहीं की जाती और करनी हो तो बात गोलियों से करो; तोपों से करो; बमों से करो और आवश्यकता पड़े, तो परमाणु बमों से भी करो, हाइड्रोजन बमों से भी करो।

— आनन्द मिश्र 'अभय'

कीर्त्ति-शेष

विश्व हिन्दू परिषद् के केन्द्रीय मन्त्री (अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय) श्री माधव राव बनहट्टी का गत १ अप्रैल को पुणे में आकस्मिक निधन हो गया। १९ फरवरी, १९२७ को महाराष्ट्र के सतारा जिले में जन्मे श्री माधव बनहट्टी ने १९४५ में नागपुर से बी.एस-सी. परीक्षा उत्तीर्ण की। एक वर्ष तक डाक-तार विभाग में सेवा रत रहने के बाद १९४६ में उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बनकर अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को अर्पित कर दिया।

संघ-स्वयंसेवकों व अपने निकट परिचितों में 'माधवदा' के प्रिय नाम से प्रसिद्ध नितांत मृदु व्यवहार के धनी श्री बनहट्टी के संगठन-कौशल से प्रभावित होकर उन्हें संघ-प्रचारक के रूप में १९७७ में मॉरिशस भेजा गया। विहिप के पूर्वांचल संगठन मंत्री, संयुक्त मंत्री का दायित्व निर्वहन करते हुए अन्तिम समय में वे केन्द्रीय मंत्री (अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय) के दायित्व का निर्वहन कर रहे थे।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय ! युद्धाय कृतनिश्चयः

– हृदयनारायण दीक्षित

भारतीय जनसंघ (और अब भाजपा) के अलावा किसी भी राजनीतिक दल ने जम्मू–कश्मीर को अपने एजेण्डा में कभी नहीं रखा। जनसंघ के अतिरिक्त बाकी दलों के खाते में जम्मू–कश्मीर कभी प्रथम वरीयता का बिन्दु बना ही नहीं। कांग्रेसी सरकारें पं० जवाहरलाल नेहरू के समय से ही जम्मू–कश्मीर के साथ खिलवाड़ करती रहीं। अतः स्थिति बिगड़ती गयी और आज जम्मू–कश्मीर की समस्या भारत राष्ट्र की प्रथम चिन्ता बन चुकी है। भारत की राष्ट्रीय चेतना के प्राण अटक गये हैं कश्मीर पर।

विश्व के सबसे शक्तिशाली देश अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिण्टन और विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति के गौरवशाली राष्ट्र भारत के प्रधानमन्त्री ने आतंकवाद से लड़ने की साझा शपथ ली। "विजन २०००" नामक दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दोनों राजप्रमुखों के कलम रखते ही पाकिस्तानी आतंकियों ने ४० हिन्दू–सिख भून दिये। "विजन २०००" की भावभूमि खून से लाल हो गयी। बीते कई साल से हिन्दुओं का धारावाही कत्ले–आम जारी है। लड़ाई आमने–सामने की है नहीं। उन्हें किसी की भी हत्या करने की सुविधा है और सुरक्षा बलों के सामने पर्याप्त साक्ष्य जुटाने के पहले अपराधी को भी पकड़ने की द्विविधा है। जम्मू–कश्मीर के मामले में हुई राजनीतिक गलतियों की सूची लम्बी है। लार्ड माउण्टबैटन ने भारत विभाजन के समय (१९४७) प्रस्ताव रखा कि महाराजा हरी सिंह १४ अगस्त, १९४७ के पूर्व भारत या पाकिस्तान में रहने का विकल्प चुनें। महाराजा ने सम्प्रति न भारत न पाकिस्तान में मिलने का निर्णय लिया, जबकि माउण्टबैटन का पूरा दबाव उन पर पाकिस्तान में शामिल हो जाने का था। हरी सिंह ने चूक की। ठीक दो माह बाद कबीलाई घुसपैठ के नाम पर (अक्टूबर १९४७) पाकिस्तान ने हमला बोला। प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने सैनिक मदद नहीं की। अक्टूबर २६ को महाराजा हरीसिंह ने भारत के साथ विलय–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। अब जम्मू–कश्मीर भारत का अभिन्न अंग था। मगर नेहरू की जानबूझकर की गयी ढिठाई और ढिलाई के कारण इतिहास हमसे रुष्ट हो गया। पाक सेना आधा लाख थी लगभग। भारत के १६ हजार सैनिकों ने जान की बाजी लगा दी। पाक सेना भागी।

मगर जिन्ना की होशियारी माउण्टबैटन की साजिश और पं० नेहरू की महाराजा के प्रति व्यक्तिगत द्वेष तथा शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के प्रति व्यक्तिगत लगाव से जन्मी ढिलाई के कारण हम जीती बाजी हार गये। जिन्ना ने पं० नेहरू व माउण्टबैटन को लाहौर की दावत दी। माउण्टबैटन लाहौर गये। पं० नेहरू ने बीमारी का बहाना बनाया। इंग्लैण्ड और माउण्टबैटन की सलाह पर पं० नेहरू ने मध्यस्थता की खातिर संयुक्त राष्ट्र संघ में दरख्वास्त लगायी। अटल बिहारी वाजपेयी मध्यस्थता के सवाल पर उबल जाते हैं। नेहरू मध्यस्थता की खातिर उतावले थे। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद (६ जनवरी, १९४८) ने दोनों सरकारों से यथास्थिति बनाने की अपील की। मध्यस्थता के लिए अमेरिका, कोलम्बिया, बेल्जियम, अर्जेण्टीना और चेकोस्लोवाकिया सहित ५ देशों का आयोग बना। पाकिस्तान से सभी सैनिक हटाने और हिन्दुस्थान से सैनिक घटाने की अपील (१७ अप्रैल, १९४८) की गयी। जनमत संग्रह के आधार पर निर्णय करने का निश्चय हुआ। सुरक्षा परिषद् ने उभयपक्षीय वार्त्ता के लिए डिक्सन को प्रतिनिधि बनाया। डिक्सन ने जम्मू–कश्मीर को कागज पर तीन खण्डों में बाँटा। हालाँकि वह भारत का अभिन्न अंग था। मगर डिक्सन के अनुसार जम्मू–कश्मीर में तीन घटक थे। पहला– जो निस्संदेह भारत में रहना चाहता है; दूसरा– जो निस्सन्देह पाकिस्तान में जाना चाहता है और तीसरा जो संशय में है इसलिए इसी में जनमत संग्रह की सिफारिश की गयी। डिक्सन की कल्पना किसी ने नहीं सुनी। ग्राहमग्रीन दूसरे प्रतिनिधि बने। उनकी भी बातें नहीं मानी गयीं।

पं० नेहरू की सरकार पवित्र भारतभूमि की रक्षा नहीं कर सकी। मार्च १९४९ तक गिलगित, हुञ्जा, बाल्टिस्तान, लद्दाख और किशनगंजा के कुछ हिस्से सहित २८००० वर्गमील जमीन पाकिस्तान ने और हथिया ली। संयुक्त राष्ट्र संघ एकदम विकलांग सिद्ध हुआ और भारत सरकार चिरकुट। अक्साईचिन (लगभग ३७५५ वर्ग किलोमीटर) पर चीन

अमृतवाणी

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्।।

(वाल्मीकि रामायण, ४/१/१२१)

उत्साह में बड़ा बल है, उत्साह से बड़ा दूसरा बल नहीं है, उत्साह-सम्पन्न व्यक्ति के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते।।

(विदुरनीति, १/२४)

सर्दी, गर्मी, भय, प्रेम, सम्पन्नता अथवा विपन्नता ये सब जिसके कार्य में बाधक नहीं बनते, वही पण्डित कहा जाता है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

(मानव धर्मशास्त्र, ३/५६)

जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है, उस घर में देवता रमण करते हैं। जिस घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, उस घर में होने वाले यज्ञादि कर्म निष्फल हो जाते हैं।

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम्।।

(चाणक्यनीति दर्पण, ४/८)

गलत स्थान में निवास, नीच व्यक्ति की सेवा, कुत्सित भोजन, कलहकारिणी पत्नी, मूर्ख पुत्र और विधवा पुत्री— ये छह बातें बिना अग्नि के ही शरीर को जलाती रहती हैं।

यशोऽधिगन्तुं सुखलिप्सया वा मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा।
निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः।।

(किरातार्जुनीय, ३/४०)

यश की प्राप्ति के लिए, सुख की इच्छा से अथवा साधारण मनुष्यों की गणना का अतिक्रमण करने के लिए बिना आतुरता के प्रयत्न करने वालों के पास उत्सुकता के साथ मानो सफलता स्वयं उपस्थित हो जाती है। ◻

प्रस्तुति- डॉ० अम्बिकानन्द

कब्जा कर चुका था। पाकिस्तान ने ५००० वर्ग कि०मी० कश्मीरी भूमि चीन को ९९ वर्ष के पट्टे पर (१९६३) दी। आज हमारे कश्मीर का ७८००० वर्ग किलोमीटर हिस्सा पाकिस्तान के पास है। ४३००० वर्ग किलोमीटर पर चीन का कब्जा है। भारत के रक्षामन्त्री जार्ज ने लोकसभा को बताया (जून १९९८) कि चीन अक्साईचिन में लद्दाख से मुख्य चीन को जोड़नेवाला तथा पट्टे पर लिये गये क्षेत्र में पश्चिमी तिब्बत को पाक अधिकृत क्षेत्र से जोड़ने वाला मार्ग बना चुका है। भारत के पास जम्मू-कश्मीर का मात्र १ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र ही शेष है।

जम्मू-कश्मीर को आज दो हिस्सों में बाँट सकते हैं। पाक अधिकृत कश्मीर में कहने को स्वतन्त्र सरकार है। मगर बजट पाकिस्तान में पारित होता है। भारतीय हिस्से के जम्मू-कश्मीर में भारत का अपना सम्पूर्ण संविधान लागू नहीं। भारत के संविधान में कश्मीर विषयक (पूर्णतया अस्थायी) अनुच्छेद ३७० का प्रावधान पं० नेहरू ने जबर्दस्ती करवाया। डॉ० भीमराव अंबेडकर इस प्रावधान के विरोधी थे। जनसंघ संस्थापक डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान के विरोध में जम्मू-कश्मीर में घुसे। वहीं उनकी सन्दिग्ध परिस्थितियों में हत्या हुई। जनसंघ-भाजपा के लिए जम्मू-कश्मीर जीवन-श्रद्धा का प्रश्न है। जनसंघ के लिए वह राजनीतिक अभियान का हिस्सा मात्र कभी नहीं था।

लाहौर-समझौता दोनों देशों को निकट लाने का अद्भुत भारतीय प्रयास था; मगर पाकिस्तान नहीं माना। पाकिस्तान युद्ध चाहता है। युद्ध के अलावा उसे और कुछ स्वीकार्य है ही नहीं। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के चित्त में युद्ध की इच्छा नहीं थी। इसीलिए उसने श्रीकृष्ण से कहा— रथ वहाँ ले चलो, जहाँ से युद्ध की इच्छा के लिए तत्पर तैयार लोगों को देखा जा सके। ऐसा देखने के बावजूद अर्जुन युद्ध को तत्पर नहीं था। भारत भी ऐसा देखने के बावजूद युद्ध को तत्पर राष्ट्र कभी नहीं बना। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का मोह-तम काटा। युद्ध को तत्पर लोगों को सही फल मिला। वे मारे गये। पाकिस्तान युद्ध-पिपासु है। भारत युद्ध-पिपासु हो नहीं सकता। मगर अब सारे विकल्प बन्द हैं। वह युद्ध चाहता है, तो युद्ध हो। भारत को जम्मू-कश्मीर नाम की समस्या का खात्मा करना ही चाहिए— कूटनीति से; रणनीति से; ललकार कर बलिदान देकर भी। समय का यही सुस्पष्ट आह्वान है।

◻

— 'अक्षर वर्चस्', एल-१५६२, सेक्टर-आई, ल०वि०प्रा० कालोनी, कानपुर-मार्ग, लखनऊ

क्या कानून से ऊपर हैं मस्जिद और मदरसे ?

– राजीव चतुर्वेदी

अयोध्या में राम मन्दिर के निर्माण पर कानून की निगरानी है, लेकिन कोई परेशानी नहीं है। मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि का भी मामला एक लावारिस मस्जिद की वजह से विवाद में उलझा है, लेकिन कोई शोर नहीं। काशी में ज्ञानवापी का भी यही हाल है। यानी हिन्दुओं के धर्म–स्थलों का निर्माण और नियन्त्रण कानून से हो, लेकिन अन्य धर्मों के धर्म–स्थल देश के कानून से ऊपर रहें, यह मंशा है 'उत्तर प्रदेश धर्म स्थल विधेयक' के विरोधियों की। इन्हें शुक्रवार के दिन दोपहर को सरकारी कार्यालयों तक का मस्जिद बन जाना क्या दिखायी नहीं देता ? रेलवे स्टेशनों, सरकारी बस अड्डों, कचहरियों, यहाँ तक कि पुलिस लाइनों और सेना की छावनियों में कब्रिस्तान, मस्जिद और मजारें किस तरह रातोंरात कुकुरमुत्ते की तरह उग आती हैं, यह सभी जानते हैं। क्या इन पर नियन्त्रण लगाना अनुचित है ? नेपाल के सरहदी जिलों में करगिल युद्ध के दौरान जो मदरसे और मस्जिदें आनन–फानन बनायी गयी हैं, उनसे किस देश का कैसे प्रेम किया जा रहा है ? जिन्हें नहीं पता, उन ऊँघते हुए अज्ञानियों को राजनीति करने का कोई हक नहीं और जिन्हें पता है; पर फिर भी इस पर भारत का कानून लागू नहीं होने देना चाहते, वह देशद्रोही हैं। दरअसल उत्तर प्रदेश धर्म–स्थल विधेयक से भारतीय संप्रभुता में सेंध लगाने वालों की शिनाख्त हो सकेगी कि जिससे भयभीत लोग इसका विरोध कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश धर्म–स्थल विधेयक के बहाने भारतीय राजनीति के स्वयंभू सेक्यूलर अपने आपको अपनी हैसियत के अनुसार अकबर, मानसिंह, बीरबल, जयचंद जैसे किरदारों में फिट कर रहे हैं। बड़ी अजीब बात है कि अपने आपको धर्म–निरपेक्ष समझने समझाने वाली राजनीतिक पार्टियाँ, सेक्यूलर लोग धर्म स्थल को कानून से संचालित किये जाने का विरोध कर रहे हैं और यही लोग, जिन्हें साम्प्रदायिक कहते हैं, वह धर्म–स्थल को कानून से संचालित किये जाने की वकालत कर रहे हैं। इस समय देश के ग्यारह राज्यों में इस तरह के धर्म–स्थल विधेयक लागू हैं। सबसे पहले राजस्थान की कांग्रेस सरकार ने १९५४ में धर्म–स्थल विधेयक लागू किया था। कांग्रेस के अर्जुनसिंह किस मुँह से उत्तर प्रदेश के धर्म–स्थल विधेयक का विरोध कर रहे हैं ? १९८४ में जब मध्य प्रदेश में ऐसा ही कानून बना था, तब स्वयं अर्जुन सिंह ही मुख्यमंत्री थे। इसके ठीक एक साल के बाद ही पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार ने भी ठीक ऐसा ही कानून लागू किया था, जो आज भी जारी है। फिर किस मुँह से वामपंथी लोग इस कानून का विरोध कर सकते हैं ? अम्बेडकर की मूर्तियों की बाढ़ से कुढ़ कर मुलायम सिंह यादव ने भी ऐसे ही कानून की दरकार की थी। फिर आज यह कानून गलत और असंवैधानिक कैसे हो गया ? धर्म–स्थल से कानून चले, यह बुरा है, तो फिर अब कानून से धर्म–स्थल के चलाने की कोशिश की आलोचना क्यों ? वह, जो इसे अल्पसंख्यकों के मौलिक अधिकारों का हनन बता रहे हैं, क्या उन्हें अल्पसंख्यकों की कानूनी परिभाषा भी पता है ? अजीब बात है कि यह पता नहीं कि भारत के संविधान में क्या लिखा है, धर्मस्थल विधेयक पढ़ा नहीं, अल्पसंख्यक की परिभाषा भी पता नहीं और चले हैं उत्तर प्रदेश धर्म–स्थल विधेयक का विरोध करने।

उत्तर प्रदेश और नेपाल सीमा पर नियुक्त खुफिया विभाग का कहना है कि हमारे पास समुचित दस्तावेजी साक्ष्य हैं, जो सिद्ध करते हैं कि हबीब बैंक नेपाल की ८ मुस्लिम संस्थाओं का संचालन कर रहा है और उत्तर प्रदेश के १०० से अधिक मदरसों को आर्थिक सहायता दे रहा है। 'रिसर्च एण्ड एनेलेसिस विंग' (रॉ) का लखनऊ कार्यालय हबीब बैंक की गतिविधियों पर निगरानी रखे हुए है। करगिल युद्ध के दौरान हबीब बैंक का एक बड़ा अधिकारी आजमगढ़, मऊ, बहराइच, गोण्डा, सिद्धार्थ नगर, गोरखपुर और महाराजगंज के दौरे बराबर करता रहा। खुफिया विभाग ने हबीब बैंक के इस अफसर की पहचान मोहम्मद असगर के नाम से की, जो पाकिस्तान का नागरिक है। इसने आजमगढ़ में नेपाल की मुसलमान संस्थाओं के कट्टरपंथी नेताओं की गोपनीय बैठक भी आयोजित की थी। इस बीच रहस्यमय ढंग से उत्तर–प्रदेश सीमा पर मदरसों और मस्जिदों की बाढ़ आ गयी है। इस क्षेत्र में कुछ १२१ नये मदरसे और १४६ नई मस्जिदें बनाई गई हैं। महाराजगंज में २४ नये मदरसे खुले हैं, सिद्धार्थनागर में २२, बलरामपुर में २५, बहराइच २६, लखीमपुर खीरी १७ और ऊधमसिंह नगर में ७ नये मदरसे स्थापित किये गये हैं। इसी प्रकार महराजगंज में ३२ नयी मस्जिदें, सिद्धार्थ नगर में २६, बलरामपुर में ४७,

बहराइच में २२, लखीमपुर खीरी में १०, ऊधमसिंह नगर में ७ और पिथौरागढ़ में २ नई मस्जिदें बनायी गयी हैं। घोषित तौर पर तो इन मदरसों का काम इस्लामी तालीम देना है, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। वस्तुतः यह मदरसे इस्लामी आतंकियों के संरक्षण, प्रशिक्षण के अड्डे हैं। उत्तर प्रदेश में तो इन इस्लामिक मदरसों में आतंकवादी बनाने के कारखाने चल रहे हैं, जिनमें लश्कर–ए–तोइबा, हरकत–उल्–अन्सार, अल बर्क तंजीम, तंजीम–उल्–जेहाद, जम्मू–कश्मीर लिबरेशन फ्रंट और हिजबुल मुजाहिदीन जैसे खूँखार आतंकवादी संगठनों के सदस्यों को प्रशिक्षित किया जाता है। पाकिस्तान का हबीब बैंक भारत में इन इस्लामिक आतंकवादियों को प्रशिक्षित करने के लिए ऐसे इस्लामिक मदरसों को बड़ी रकम दे रहा है। यह सूचना बांग्लादेश के गृह विभाग ने भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की सुरक्षा के मद्देनजर कलकत्ता–ढाका बस यात्रा के पहले ही एहतियाती तौर पर दे दी थी। इस सूचना का मुख्य आधार बांग्लादेश में पकड़े गये खूँखार आतंकवादी मुनीरुल एहसान का वहाँ के खुफिया विभाग को दिया गया बयान माना जा रहा है, जिसमें उसने यह स्वीकार किया है कि आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए उसे दारुल, उलूम देवबन्द (उत्तर प्रदेश) में प्रशिक्षित किया गया था। भारत–बांग्लादेश के सम्बन्धों में कड़वाहट घोलने और कलकत्ता–ढाका बस सेवा को नाकाम करने के उद्देश्य से जैसोर (बांग्लादेश) में किये गये बम विस्फोट के मामले में मुनीरुल् एहसान मुख्य अभियुक्त है। भारतीय कलाकारों को निशाना बना कर किये गये इस बम–विस्फोट में एक दर्जन लोगों की मौत हो गयी थी। मुनीरुल एहसान ने अपने बयान में बंग्लादेश के आतंकवादी संगठन 'हरकत–उल्–जेहाद–अल्–बंग्लादेश' और 'लश्कर–ए–तोइबा' के एक सूत्र में बँधे होने की पुष्टि की है। बांग्लादेश के खुफिया विभाग द्वारा भेजी गयी इस सनसनीखेज सूचना का शेष बचा हिस्सा भारतीय खुफिया विभाग की फाइलों में पहले से ही दर्ज है।

"उत्तर प्रदेश सार्वजनिक धार्मिक भवनों और स्थलों का विनियमन विधेयक, २०००" कि जिसे 'धर्म–स्थल विधेयक' कह कर सम्बोधित किया जा रहा है की धारा २ में परिभाषाएँ हैं। धारा २ (घ) इस प्रकार है– "सार्वजनिक धार्मिक भवन का तात्पर्य ऐसे किसी भवन, उसे चाहे जिस नाम से वर्णित किया जाए, से है कि जिसे सामान्यतया किसी धार्मिक सम्प्रदाय या उसके वर्ग द्वारा साधिकार धार्मिक उपासना करने या धार्मिक मामलों से सम्बन्धित कोई क्रियाकलाप करने या धार्मिक शिक्षा देने या प्रार्थना करने के प्रयोजन के लिए, जिसके अन्तर्गत भजन कीर्तन स्तुति और नमाज भी सम्मिलित है या किसी धर्म, मत, पन्थ का पालन करने या वर्ग के या उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा किसी धार्मिक अनुष्ठान जैसे मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर, छतरी, दरगाह, मजार, खानकाह, मठ, तकिया तत्सदृश के लिए उपयोग किया जाता हो या उपयोग किये जाने के लिए

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

ऋणी रहेगा देश तुम्हारा

– ब्रजेश मिश्र

रक्षा अमृत दे हम सबको खुद पी लिया हलाहल सारा।
ओ सीमा के अमर शहीदो! ऋणी रहेगा देश तुम्हारा।।

तुमने माँ का कर्ज चुकाया देकर जीवन की कुर्बानी।
जन्म सार्थक हुआ तुम्हारा अमर तुम्हारी हुई कहानी।।
समय शिला पर लिखा रहेगा युगों युगों तक नाम तुम्हारा।
ओ सीमा के अमर शहीदो! ऋणी रहेगा देश तुम्हारा।।

जिनके घर वापस आने को गिन–गिन कर दिन रैन बिताये।
जिनके कन्धों पर जाना था वह कन्धों पर वापस आये।।
कोख तुम्हारी धन्य हो गयी धन्य हुआ मातृत्व तुम्हारा।
वीर शहीदों की माताओ! ऋणी रहेगा देश तुम्हारा।।

निर्जल व्रत करवा का रखकर जिनका लम्बा जीवन माँगा।
उस सुहाग की आहुति देकर मातृभूमि हित सब कुछ त्यागा।।
हिम के शिखरों पर चमकेगा सूरज सँग सिन्दूर तुम्हारा।।
वीर शहीदों की विधवाओ! ऋणी रहेगा देश तुम्हारा।।

बस्ता, कापी और किताबें पिस्टल गुड़िया खेल–खिलौने।
धूमिल हुए स्वप्न बचपन के किससे करें बाल हठ छौने।।
शूर पिता से गर्वित होकर मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा।
वीर शहीदों की सन्तानो! ऋणी रहेगा देश तुम्हारा।।

जन्म–मृत्यु जीवन का क्रम है जो जन्मा है वह मरता है।
किन्तु देश पर मरनेवाला मरकर अमर हुआ करता है।।
वंश तुम्हारा धन्य हो गया धन्य हुआ घर–द्वार तुम्हारा।
ओ सीमा के अमर शहीदो! ऋणी रहेगा देश तुम्हारा।।

– एडवोकेट, जजी कचहरी, शाहजहाँपुर

द्वितीय गुरु अंगददेव जी- जिन्होंने हुमायूँ को फटकारा था

- क्रान्तिकारी

(देवनागरी या शारदा लिपि में लिखी प्रत्येक पुस्तक को मुसलमान शासक जलवा डालते थे। अतः गुरु अंगददेव जी ने भारतीय वाङ्मय की रक्षा हेतु गुरुमुखी लिपि बनायी थी। इसलिए हम सभी को चाहिए कि गुरुमुखी-लिपि को सीखें और उसका अभ्यास करें।- सम्पादक)

प्रथम पातशाह गुरु नानकदेव जब ७० वर्ष की आयु में संवत् १५९६ विक्रमी में परमधाम प्रयाण कर गये, उसके पूर्व वे अपनी गद्दी गुरु अंगददेव को सौंप गये। गुरु नानक ने इन्हें अपना ही अंग माना, तभी भाई लहिणा का 'अंगद देव' नाम रखा। 'अंग' से ही 'अंगद' शब्द बनता है। यद्यपि स्वयं गुरु नानक के अपने दो पुत्र थे, नाम थे- श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र। इनमें से गुरु नानक ने किसी को भी गुरु-गद्दी नहीं दी। दी तो भाई लहिणा जी को, जो आगे दूसरे पातशाह गुरु अंगददेव के नाम से विख्यात हुए। यह सन्त स्वभाव की ही विशेषता है कि गुरु नानकदेव ने अपनी गद्दी का हकदार भाई लहिणा जी को माना, अपने किसी पुत्र को नहीं। कुनबा-परस्ती उन सन्तों को छू नहीं गयी थी- वे योग्यता, सुपात्रता को गुरु-गद्दी की कसौटी मानकर निर्णय करते थे। यद्यपि नानकदेव के बड़े पुत्र श्रीचन्द्र योगी थे और उनके भक्तों ने 'उदासी सम्प्रदाय' चलाया, जिसके हजारों लोग अनुयायी हुए तथा आज भी देश भर में उनके अनेक मठ हैं, परन्तु श्रीचन्द्र संसार से विरक्त योगी थे। गुरु-गद्दी सम्भालने के लिए त्यागी के साथ-साथ सक्रिय व्यक्ति की आवश्यकता थी।

दूसरे गुरु अंगददेव 'नांगे की सराय' नामक स्थान पर संवत् १५६१ विक्रमी के वैशाख कृष्ण १ के दिन जन्मे थे। यह स्थान पंजाब के फीरोजपुर जिले में है। वहाँ के निवासी भाई फेरू खत्री इनके पिता थे। माता थीं-निहाल कौर। पहले गुरु अंगददेव का नाम भाई लहिणा था। इनका विवाह विक्रमी संवत् १५७६ की माघ १६ को बीबी जीवी के साथ हुआ, जो खडूर साहिब के निवासी भाई देवीचन्द खत्री की पुत्री थीं। भाई लहिणा के घर में ४ सन्तानें जन्मीं, प्रथम पुत्र का नाम दास जी था। दूसरी सन्तान थी बीबी अमरो। बीबी अनोखी इनकी तीसरी सन्तान थीं तथा भाई लहिणा जी की चौथी सन्तान का नाम था दाता जी। उन दिनों भाई लहिणा खडूर साहिब में ही रहा करते थे और भगवती दुर्गा के परम उपासक थे। वे अहर्निश दुर्गाजी के स्मरण-ध्यान में मग्न रहा करते थे। तब तक उनकी भेंट गुरु नानक देव से नहीं हो सकी थी। खडूर साहिब में ही गुरुनानक देव के एक प्रिय भक्त रहते थे, नाम था उनका भाई जोधा जी। जोधा जी के ही साथ-सम्पर्क और माध्यम से भाई लहिणा को प्रथम बार गुरु नानक देव के दर्शन हुए और इन्होंने अनेक उपदेश सुने। फिर तो गुरु नानक देव के सत्संग और वाणी का जादुई आकर्षण ऐसा छा गया, कि खडूर साहिब में रहना छोड़कर ये गुरु नानकदेव के पास ननकाना साहिब में ही आकर रहने लगे। लगन कुछ ऐसी लगी कि शेष संसार, घर-परिवार सब कुछ बिसर गया। गुरु नानक की बड़ी सेवा करते, निष्काम सेवा, अपूर्व श्रद्धा थी गुरुजी में। आखिर ये गुरु नानकदेव जी के हृदय में स्थान पा गये। गुरु जी ने इनकी योग्यता, त्याग-साधना-निष्ठा परखी और परम धाम जाते-जाते इन्हें ही गुरु-गद्दी सौंप गये। इसके पहले भाई लहिणा जी की निष्ठा की कड़ी परीक्षा भी ली। कहते हैं, एक बार एक स्थान पर कफन से लिपटा मुर्दा पड़ा था। गुरु नानक ने कई शिष्यों से कहा- "आज तुम्हारा यही आहार है, खाओ इसे।" शिष्य मुँह बनाकर चुप रह गये। सोचा, 'क्या कह रहे हैं आज गुरुजी! कहीं मुर्दा भी खाया जाता है?' मन में गुरु जी के प्रति शंका उत्पन्न हो गयी। शंका जन्मी कि श्रद्धा-विश्वास सब गया। जब कोई तैयार न हुआ, तो गुरु नानक ने भाई लहिणा से भी वही कहा, मृतक का शव खाने को। भाई लाहिणा तत्काल तैयार हो गये। कफन हटाया और पूछा- 'इसे पेट की ओर से खाऊँ या पैरों की ओर से?' गुरु जी ने कहा- 'बस, हो गया। अब चाहे जिधर से खाओ।' कहते हैं तभी सबने देखा कि वहाँ कोई मरा हुआ व्यक्ति नहीं है, वरन् गुरु नानकदेव स्वयं लेटे हुए हैं। देखने वाले चमत्कार से अभिभूत थे। परीक्षा पूर्ण हुई। गुरु-गद्दी के उत्तराधिकारी का चुनाव मन ही मन गुरुजी ने कर लिया और समय आने पर भाई लहिणा को गुरु-गद्दी के साथ-साथ एक नया नाम 'अंगददेव' भी दिया। इस नाम का रहस्य यह था कि गुरु नानक इन्हें अपने ही 'अंग' के समान मानते थे।

दूसरे पातशाह गुरु अंगददेव के दिनानुदिन सैकड़ों शिष्य बनने लगे। शिष्य-समूह का विस्तार होता गया।

अंगददेव जी ने तीन विशेष कार्य किये। एक तो उन्होंने प्राचीन शारदा लिपि और सीमित उपयोग की एक स्थानीय लिपि को मिलाकर गुरुमुखी लिपि का विकास किया। विक्रमी संवत् १५९८ में यह कार्य सम्पन्न हुआ। इसी लिपि में उन्होंने गुरु नानकदेव जी की तथा अपनी भी समस्त वाणी लिखी। इससे पूर्व गुरु नानक जी की वाणी का बहुत–सा भाग तो केवल फारसी लिपि में उपलब्ध था। धीरे–धीरे पंजाबी भाषा के लिए गुरुमुखी लिपि प्रचलन में आ गयी। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में आकर जब स्वातन्त्र्य–चेतना के उभार के साथ एक राष्ट्रभाषा और समस्त राष्ट्रीय भाषाओं के लिए एक लिपि अपनाने का सुझाव अनेक विचारशील लोगों की ओर से आया, तो प्रसिद्ध स्वातन्त्र्य–योद्धा सरदार भगतसिंह ने भी लिखा कि "पंजाबी भाषा को देवनागरी लिपि में लिखा जाना चाहिए; क्योंकि वही राष्ट्रभाषा की लिपि है।" इस विचार को बल मिलने पर जो लोग गुरुमुखी के पक्ष में थे, उन्होंने उसे पान्थिक लिपि का स्थान दे दिया।

दूसरा कार्य गुरु अंगददेव ने यह किया कि पंजाबी गद्य की प्रथम पुस्तक 'जन्म सखी भाई बालेवाली' नाम से लिखवायी, जिसमें गुरु नानकदेव के जीवन–चरित का वर्णन है। इससे गुरु नानक की शिक्षाओं का व्यापक प्रसार हुआ।

गुरु अंगददेव का तीसरा विशेष कार्य था गुरुद्वारों में लंगर (भण्डारा) की प्रथा प्रचलित करना। इन लंगरों में बिना किसी जाति–भेद के ऊँच–नीच की विषमता भुलाकर हर छोटे–बड़े को भोजन दिया जाता है। परोपकारी स्वभाव था गुरु अंगददेव का।

हुमायूँ को फटकार

वे निर्भीक भी थे। बाबर का लड़का हुमायूँ शेरशाह सूरी से पराजित होकर जब भाग रहा था, तो मार्ग में गुरु अंगददेव के दर्शन करने इस आशा से गया कि शायद उनके आशीर्वाद (दुआ) से भाग्य पलट जाय। गुरु जी ध्यान में बैठे थे, हुमायूँ से कुछ भी बोले नहीं, न आँखें खोलीं बाबर के बेटे को बड़ा ताव आया। लाल–पीला होकर वह बोला– "तेरी आँखें बन्द ही रह जायेंगी।" और सर्र से तलवार खींचकर वह प्रहार करने ही वाला था कि गुरु अंगददेव ने आँखें खोलकर कहा– "मुगल! तूने किसी साधु पर चलाकर परखने के लिए ही यह तलवार रखी है क्या? जब तू शेरशाह के सामने से भागा था, तब तेरी यह बहादुरी और यह तलवार कहाँ गयी थी?" यह दो टूक निर्भीक लताड़ सुनकर हुमायूँ का घमण्ड जाता रहा और उसने गुरु अंगददेव के सामने सिर झुका दिया। गुरु जी थे महात्मा, कह दिया– "जा, तुझे बादशाहत मिलेगी।"

अपने शिष्यों (सिखों) को गुरु अंगददेव की शिक्षा थी कि "दूसरों के धन पर आँख न रखो, पराया धन खाना पाप है। भिखारी भी न बनो, कमाकर खाओ और अपने परिश्रम से जीवन–निर्वाह करो।"

कौन–कौन सी बातें मनुष्य को ठगती हैं? गुरु नानक जी की वाणी को दुहराते हुए अंगददेव कहते हैं–

'राजु मालु रूप जाति जोबन पंजे ठग्ग।
एनी ठग्गी जगु ठगिया, किनै न रक्खी लज्ज।।'

अर्थात् "पाँच वस्तुएँ मनुष्य को छलती हैं– (१) राज्य, (२) धन–सम्पत्ति, (३) रूप, (४) जाति का अभिमान और (५) यौवन (जवानी)। इन्हीं से संसार ठगा गया है और लाज गयी है।"

तो फिर सुख कहाँ है? कहते हैं–

'निरंकार के देस जहि ता सुख लहहि महल्लु।'

–"निराकार परमात्मा के देश चलो, वहीं सुख–सौध प्राप्त होगा।"

परन्तु वह यात्रा सत्य रूपी घोड़े पर सवार होकर ही की जा सकती है–

'सतु घोड़े लै चल्लु।'

गुरु नानक जी के स्वर में गुरु अंगददेव कहते हैं–

'बाबा माया साथ न होइ।
इन माया जगु मोहिया विरला बुज्झै कोइ।'

– "बाबा! यह माया तुम्हारा साथ नहीं देगी। इसने तो सारे संसार को मोह में डाल रखा है, विरला ही कोई इसे पहचान पाता है।"

गुरु अंगददेव जी की अपनी वाणी है–

'जिस प्यारे सिउ नेहु, तिसु आगै परि चल्लिए।
धृग जीवन, संसारि ताकै पाछै जावणा।।'

अर्थात् "जिस प्रिय शिव (परमात्मा) से प्रेम है, उसके आगे चलो। उस जीवन को धिक्कार है, जो परमेश्वर को छोड़कर संसार के पीछे भागता है।"

गुरु अंगददेव केवल ४८ वर्ष की आयु में संवत् १६०९ विक्रमी (१५५२ ई.) में परमधाम गये। उसी वर्ष माघ १ (संवत् १६०९) को उन्होंने बाबा बुड्ढा के शिष्य अमरदास को, जोकि उनके भाई के पुत्र के श्वसुर भी थे, गुरु–गद्दी के उत्तराधिकार का तिलक कराया। अतः आगे अमरदास ही तीसरे पातशाह हुए। यों तो गुरु अंगददेव के दो पुत्र थे; किन्तु इस सन्दर्भ में उन्होंने गुरु नानकदेव का ही अनुसरण किया– अपने किसी लड़के को गद्दी न देकर अमरदास को अपना उत्तराधिकारी बनाया। ❑

आता है राष्ट्र-जीवन में अवसर कभी-कभी

- धनराज यादव
(राज्य-मन्त्री, उ०प्र० सरकार)

कोई भी देश अपनी प्रगति राष्ट्रवाद के उफान (जिसे राष्ट्रीय ज्वार कहते हैं) से ही कर सकता है और राष्ट्रीय-ज्वार उत्पन्न होने के लिए उस देश में कोई न कोई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना अथवा महत्त्वपूर्ण प्रसंग उपस्थित होने की आवश्यकता होती है।

अपना भारत देश प्राचीन, गौरवशाली, सर्वोच्च, संस्कृति, सुनहरे-इतिहास तथा प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण देश है और दुनिया का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है; किन्तु स्वतन्त्रता के ५२ वर्ष बीत जाने के बाद भी यथोचित प्रगति का अभाव सभी लोग महसूस करते हैं।

ऐसा नहीं है कि इस देश में राष्ट्रीय-ज्वार उत्पन्न होने का अवसर नहीं आया। अवसर तो कई आये हैं; किन्तु किन्हीं न किन्हीं कारणों से उक्त राष्ट्रीय ज्वार ठण्डा पड़ गया और देश की प्रगति में कोई तीव्रता नहीं आयी।

पहला राष्ट्रीय ज्वार उत्पन्न होने का समय था १५ अगस्त, १९४७, जब यह महान् देश लगभग ७५० वर्ष की गुलामी की जञ्जीर को तोड़कर स्वतन्त्र हुआ था; किन्तु देशवासियों को जहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रसन्नता थी, वहीं भारत-विभाजन का हृदय-विदारक महादुःख भी था और विभाजन के दौर में व्यापक रूप से इस्लामी दंगा, लूट-पाट, हत्या, बलात्कार ने ऐसा वीभत्स रूप खड़ा किया कि स्वतन्त्रता एक शोक के रूप में ही परिलक्षित हुई। राष्ट्रीय-ज्वार तो कोसों दूर रहा।

एक दूसरा अवसर भी राष्ट्रीय-ज्वार उत्पन्न होने का आया, जब स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद पाकिस्तानी कबायलियों ने जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि देर से ही सही; किन्तु भारतीय सेना ने जम्मू-कश्मीर को बचाने के लिए अपना अभियान प्रारम्भ किया और पाकिस्तानी कबायली बुरी तरह से परास्त होने के लिए पीछे भागने को मजबूर हुए। उस समय भी अपनी विजयी-सेना के शौर्य की खबरों को सुन-सुन कर भारतीय जनता में एक लहर उत्पन्न हो रही थी; किन्तु अत्यधिक उदारता दिखाते हुए एकतरफा युद्ध- विराम की घोषणा कर (बिना पूरे कश्मीर को पाकिस्तान से मुक्त कराये) उठते हुए राष्ट्रीय-ज्वार पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा पानी फेर दिया गया।

तीसरा अवसर १९६२ में आया, जब पड़ोसी देश चीन ने अचानक नेफा और लद्दाख में अपनी सेनाएँ झोंककर हजारों किमी० भूमि पर कब्जा कर लिया। अपनी सेना जो सारी दुनिया में अपनी अलौकिक शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध है और अपराजेय मानी जाती है, शासन के खासकर तत्कालीन रक्षामन्त्री कृष्ण मेनन की लापरवाही के कारण बुरी तरह से पराजित हुई। इस पराजय के धक्के ने पूरे देशवासियों के दिलों पर गहरी चोट की और पूरे देश में अपनी सेना को साधन मुहैया कराकर एक शक्तिशाली सेना बनाने का अभियान (आन्दोलन) सा छिड़ गया था। उस समय सरकार की ओर से सुरक्षा-कोष में दान करने के लिए बाजार करने आये आम लोग अपने सारे पैसे दान कर देते थे और बिना सामान खरीदे घर वापस लौट जाने में गर्व महसूस करते थे, स्त्रियाँ अपने शरीर के जेवर उतार कर सुरक्षा-कोष में दान कर देती थीं; किन्तु उसका भी उपयोग राष्ट्र-निर्माण में देश के तत्कालीन नियन्ताओं ने नहीं किया। सन् १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर पुनः आक्रमण किया। फलतः भारत-पाकिस्तान के बीच बहुत भयंकर युद्ध हुआ। उस समय हमारे देश का नेतृत्व लाल बहादुर शास्त्री जी जैसे एक प्रखर राष्ट्रवादी नेता के हाथ में होने के कारण तथा सन् १९६२ की पराजय को ध्यान में रखते हुए भारतीय सेना द्वारा की गयी तैयारी ने पाकिस्तान को बुरी तरह पराजित ही नहीं किया; अपितु उसकी बहुत सारी भूमि पर कब्जा भी कर लिया। छम्ब-जोड़ियाँ के क्षेत्र में अमेरिका के निर्मित विश्व-प्रसिद्ध पैटन-टैंकों को हमारे देश के नौजवानों ने हथगोलों से चिथड़ा-चिथड़ा कर दिया था; किन्तु पाकिस्तान के शुभ-चिन्तक अमेरिका, ब्रिटेन आदि तथा कुछ अन्य देशों की मिलीभगत के कारण ताशकन्द में पाकिस्तान से समझौता करने के लिए भारत के प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री को मजबूर होना पड़ा और किसी भयंकर षड्यन्त्र के अन्तर्गत शास्त्री जी को क्रूर-काल का ग्रास भी बनना पड़ा, जिसका बहुत ही भयंकर परिणाम देशवासियों पर हुआ। जीती हुई बाजी ताशकन्द समझौते में वार्त्ता की मेज पर पाकिस्तान के हाथों गवाँ देनी पड़ी, यह एक प्रकार से एक नहीं दो-दो वज्रपात थे इस देश पर जो राष्ट्रीय उफान अपने चरम की ओर चल पड़ा था, वह पूर्णतया ठण्डा होता गया।

कुछ दिनों के बाद सन् १९७१ में पश्चिमी पाकिस्तान

के विरोध में शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में पूर्वी पाकिस्तान ने बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया, जिसे पश्चिमी पाकिस्तान ने अपनी सेना के बल पर पूरी तरह से रौंदने का दुष्प्रयास किया। पूर्वी पाकिस्तान की सम्पूर्ण जनता की बगावत तथा पश्चिमी पाकिस्तान की सेना का दमनचक्र देखकर उस समय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में भारत की जनता ने पूर्वी बंगाल की जनता का साथ दिया और पाकिस्तान सेना से भारत की सेना का भयंकर युद्ध हुआ। यद्यपि अमेरिका ब्रिटेन आदि बड़े देशों की पूरी सहानुभूति (भारत को सातवें बेड़े की धमकी के साथ) पाकिस्तानी सेना के साथ थी, तो भी भारतीय सेना ने मात्र १४ दिन के युद्ध में पूर्णतः पाकिस्तान को पराजित ही नहीं किया; अपितु पाकिस्तान की भी कुछ भूमि पर कब्जा किया और लगभग एक लाख सेना के साथ उसके जाने–माने जनरल नियाजी को गिरफ्तार कर लिया तथा अपनी शक्ति से एक स्वतन्त्र बंगला देश का निर्माण कर दिया। दुनिया के बड़े–बड़े देश हक्का–बक्का होकर देखते रहे, १६ दिसम्बर, १९७१ को जिस समय पूरे देश में विजय–दिवस मनाया जा रहा था राष्ट्रीयता की वह लहर पैदा हुई थी कि उसमें सारी बुराइयाँ (चोरी, बेईमानी, भ्रष्टाचार) बह जाती हुई दिखायी दे रही थी; किन्तु फिर दुनिया के बड़े देशों जैसे– अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि तथा अपने कुछ मित्र देशों के आग्रह पर शिमला में इन्दिरा गांधी और मियाँ भुट्टो के बीच में समझौता हुआ। उस समझौते में भारत को कुछ नहीं मिलना था, यहाँ तक कि जीती हुई भूमि भी वापस हो गयी। इस समझौते का इतना बुरा प्रभाव जनमानस पर पड़ा कि उसका अनुभव उस समय के लोगों ने बड़े कष्ट के साथ जिसे व्यक्त करने के लिए शब्द सक्षम नहीं हैं। शिमला समझौते के अन्तर्गत यदि कश्मीर की समस्या भी हल हो गयी होती, तो भी भारतीय जनता कुछ सन्तोष का अनुभव करती; किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। भारत युद्ध के मोर्चे पर जीत कर भी बात–चीत की मेज पर हार गया और पाकिस्तान युद्ध के मैदान में पराजित होकर भी वार्ता की मेज पर हारी हुई बाजी जीत गया।

बंगलादेश का निर्माण भारत के लिए इतनी बड़ी सफलता थी कि इस सफलता को श्रीमती इन्दिरा गांधी पचा नहीं पायीं, जिसका दुष्परिणाम था कि सन् १९७५ आते–आते स्वयं तानाशाह हो गयीं और भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में आपात्काल घोषित कर दिया। लगभग २० महीने आपात्काल की पीड़ा को जनता ने कराह–कराह कर झेला; किन्तु १९७७ में हुए संसदीय चुनाव में जनता ने कांग्रेस को ऐसा सबक सिखाया कि श्रीमती गांधी स्वयं चुनाव हार गयीं और लोकनायक जय प्रकाश के निर्देशन में (गैर कांग्रेसी दलों से) एक नयी बनी जनता पार्टी भारी बहुमत से जीत गयी और मुरार जी देसाई, चौधरी चरण सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी व आडवाणी के नेतृत्व में उसकी सरकार बनी और सम्भवतः अब तक की सभी सरकारों में जनता पार्टी की सरकार जनता के लिए सबसे बेहतर सरकार साबित हुई।

जनता पार्टी की सरकार की स्थापना के उपरान्त इस देश में एक जन–ज्वार उत्पन्न हुआ था और लोगों के अन्दर आशा और उमंग का संचार हुआ था कि देश प्रगति कर सकेगा; किन्तु जनता पार्टी में सम्मिलित घटक दलों (पहले की छोटी–छोटी पार्टियाँ) के नेताओं ने जनसंघ घटक के नेताओं के खिलाफ अनावश्यक विवाद खड़ा किया और अन्ततोगत्वा ढाई वर्ष में ही उस सरकार का पतन हो गया। जनता पार्टी की सरकार के पतन ने भी भारतीय जनता को निराशा के गर्त में डाल दिया और यहाँ भी देश के अन्दर उठती हुई राष्ट्रीय लहर रसातल की ओर चली गयी।

यद्यपि एक दल का संसद् में बहुमत नहीं था, लोकसभा भंग थी किन्तु श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में जो सरकार काम कर रही थी और जिसके नेतृत्व में कश्मीर की बर्फीली घाटियों में भारत की सेना ने अपनी अदम्य शक्ति एवं शौर्य के द्वारा पाकिस्तानी घुसपैठियों को खदेड़ मारा, वह अपने आप में अद्भुत कार्य है। यद्यपि देश के अन्दर राष्ट्रीय नेताओं का अभाव है, फिर भी अटल जी एक ऐसे नेता हैं, जिन्हें पूरे समाज का सामान्यतः समर्थन और सद्भावना प्राप्त है। कुछ छोटे–मोटे दलों के नेताओं द्वारा किये गये विरोध (द्वेषवश) कोई मायने नहीं रखते; क्योंकि उनके दल को वोट देनेवाले मतदाता भी अखिल भारतीय स्तर पर अटल जी को ही राष्ट्रीय नेतृत्व की मान्यता देते हैं। आज पाकिस्तानी सेना तथा इस्लामी आतंकवादी घुसपैठियों से घाटी व सीमा पर भयंकर युद्ध चल रहा है; परन्तु उनकी दाल ठीक से नहीं गल पा रही है।

कश्मीर में जो भी घटित हो रहा है, उसमें भारतीय नेतृत्व की दृढ़ इच्छा–शक्ति तथा सेना तथा अर्द्धसैनिक–बलों के जवानों के शौर्य–प्रदर्शन से भारतीय जनता अच्छी तरह से परिचित है और प्रभावित भी। देश के अन्दर राष्ट्रीय लहर उत्पन्न हो रही है। युद्ध के मोर्चे पर एक–एक इंच भूमि की रक्षा के लिए हमारे ही घर के बेटे अपनी जान की बाजी लगाये हुए हैं, सैकड़ों वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। ऐसे समय हमारा भी राष्ट्रीय कर्त्तव्य है कि अपने–अपने ऊपर निर्धारित उत्तरदायित्व को ईमानदारी तथा समर्पित भाव से पूरा करें, जिससे अपना देश प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की ऊँचाइयों को प्राप्त कर सके–

आता है जिन्दगी (राष्ट्र जीवन में) में अवसर कभी–कभी।

भगवान् गौतम बुद्ध ने कहा था...

- डॉ० शैलेन्द्र नाथ कपूर
(प्रो., प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ)

बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान् बुद्ध का जन्म भारतीय परम्परा के अनुसार ५६३ ई.पू. में (२५६२ वर्ष पूर्व) तथा श्रीलंका की साहित्यिक परम्परा के अनुसार ६२४ ई.पू. (२६२३ वर्ष पूर्व) में कपिलवस्तु के शाक्य क्षत्रिय गणराज्य के राजा शुद्धोदन की कोलियवंशीया पत्नी माया देवी के गर्भ से कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी वन में हुआ था। वर्तमान सिद्धार्थनगर जिले के पिपरहवा नामक स्थान से कुछ ही वर्षों पूर्व उत्खनन के फलस्वरूप लगभग तीन दर्जन मिट्टी के मुद्रा छाप मिले हैं। इन पर ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में निम्न अंश अंकित हैं :

'देवपुत्र विहारे कपिलवस्तु भिक्षुसंघस।'
(कपिलवस्तु के देवपुत्र विहार के भिक्षु संघ की)

वस्तुतः कुषाण राजा कनिष्क की एक उपाधि देवपुत्र थी। उसने प्रथम शती ई. में यहाँ एक विहार की स्थापना की थी। स्पष्ट है कि पिपरहवा ही प्राचीन कपिलवस्तु रहा होगा। बुद्ध की जन्म स्थली लुम्बिनी वर्त्तमान समय में नेपाल के अन्तर्गत है। यहाँ मौर्यवंशी राजा अशोक अपने राज्यकाल के बीसवें वर्ष गया था और उसने बुद्ध के जन्मस्थान की उपासना की थी। उसके स्तम्भ लेख में उल्लेख है :-

'हिद बुधे जाते साक्यमुनिति'
(यहाँ शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था।)

उनके जन्म के सातवें दिन माँ का शरीरान्त हो गया। उनकी मौसी महाप्रजापती गौतमी ने उनका लालन-पालन किया। बौद्ध साहित्य में उन्हें बुद्ध की 'क्षीरदायिका' कहा गया है। वस्तुतः बुद्ध के सबसे प्रिय शिष्य आनन्द ने महाप्रजापति गौतमी के प्रभाव से ही बुद्ध को भिक्षुणी संघ स्थापित करने के लिए सहमत किया था।

जिस प्रकार दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को 'रेखा' कहते हैं; उसी प्रकार जन्म एवं मृत्यु के बीच की दूरी को 'जीवन' कहते हैं। बुद्ध का महापरिनिर्वाण ८० वर्ष की आयु में हुआ था। बौद्ध साहित्य में उनके जन्म से परिनिर्वाण तक के ८० वर्षों की घटनाओं पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। सिद्धार्थ का यशोधरा या गोपा से उनकी १६ वर्ष की आयु में विवाह, उपरान्त बेटे राहुल का जन्म, गृह त्याग, बोधगया में 'अश्वत्थ' (पीपल) के पेड़ के नीचे सम्बोधि या प्रज्ञा की प्राप्ति, लोक-कल्याण के लिए सारनाथ से प्रथम उपदेश का प्रारम्भ (धम्मचक्कपबत्तन) एवं भ्रमण करते हुए वर्त्तमान उत्तर प्रदेश एवं बिहार प्रान्तों के अनेक स्थलों कोसल, श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली, पाटलिपुत्र आदि में उनके ज्ञान का अमृत विस्तीर्ण होता रहा। तत्कालीन राजाओं बिम्बिसार, अजातशत्रु, प्रसेनजित, व्यापारियों, विशेषकर अनाथपिण्डक तथा लिच्छवियों, मल्लों आदि के साथ-साथ अपार जन-समूह को बुद्ध के तर्क एवं ज्ञान प्रधान विचारों ने प्रभावित किया। वस्तुतः पुराहितों के कर्मकाण्ड तथा यज्ञ-तत्त्व की जटिलताओं एवं वर्ण-व्यवस्था में आये दोषों के विरुद्ध सामान्य जनों के लिए सरल जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा के वे स्रोत थे। बुद्ध ने सांसारिक माया-मोह को त्यागकर शीलप्रधान जीवन व्यतीत करने के लिए भिक्षु-धर्म तथा गृहस्थों के लिए उपासक-धर्म की व्यवस्था दी थी।

बुद्ध की शिक्षा चार आर्य सत्यों को समझने तथा आठ मार्गों के अनुपालन पर आधारित थी। चार आर्य सत्य हैं : दुःख, दुःख समुदय (कारण तृष्णा है।), दुःख निरोध तथा दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा। चौथे आर्य सत्य के अन्तर्गत आठ मार्ग निम्न हैं :- सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। शरीर, वाणी और

मन के सम्बन्ध में सदाचार के जो नियम हैं, वे ही बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग की आधारशिला हैं। सम्यक् का अर्थ है– 'मध्यम प्रतिपदा' अर्थात् बीच का मार्ग। विषय सुखों में अधिक लिप्त हो जाना या शरीर को अधिक कष्ट देना, ये दोनों अति हैं। जिनसे अनर्थ एवं दुःख होता है। बुद्ध ने अपने जीवन की प्रयोगशाला में कठिन तप किये थे। अतः उनका ज्ञान अनुभव पर आधारित था। भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था–

"परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्य, मद्वचो न तु गौरवात्।"

(हे भिक्षुओ! मेरे उपदेशों की परीक्षा करके ही उन्हें ग्रहण करना, मेरे गौरव के कारण नहीं।)

कुशीनगर में हिरण्यवती नदी के तट पर शाल वृक्षों के कुञ्ज में दो वृक्षों के मध्य बुद्ध ने अपने लिए शय्या तैयार करायी। अपने रोते हुए प्रिय शिष्य आनन्द से उन्होंने अन्तिम शब्द निम्न प्रकार कहे–

आनन्द! रोओ नहीं, शोक न करो। मनुष्य का अपनी सभी प्रिय वस्तुओं से वियोग, अवश्यम्भावी है। ऐसा कैसे सम्भव है कि जो जन्मा है, जो नश्वर है, उसका नाश न हो? सम्भवतः तुम यह सोच रहे हो कि अब हमें गुरु नहीं मिलेगा। आनन्द, ऐसा न सोचो, जो उपदेश मैंने तुम्हें दिये हैं, वही तुम्हारे गुरु हैं।

बुद्ध के अनुसार–

"छन्द दानि भिक्खवे आमन्तयामि वो वयधम्मा संखारा, अप्पमादेनसमपादेथ इति।"

"भिक्षुओ! मैं तुमसे कहता हूँ, सब वस्तुएँ नश्वर हैं, प्रमाद छोड़कर अपनी मुक्ति का प्रयत्न करो।"

ये बुद्ध के अन्तिम शब्द थे। वस्तुतः बुद्ध का ज्ञानयुक्त शील–प्रधान जीवन बौद्ध–धर्म का प्रमुख आकर्षण है। बुद्ध के जीवन में प्रज्ञा (आत्मबोध कराने वाला ज्ञान) एवं महाकरुणा इन दोनों आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। अपने लिए ज्ञान की प्राप्ति और उसके द्वारा विश्व कल्याण की साधना, यही बुद्ध के व्यक्तित्व और बौद्ध–धर्म का प्रमुख सूत्र है। सार रूप में कहा जा सकता है कि प्रज्ञा एवं महाकरुणा इन दोनों गुणों की समष्टि का नाम ही बुद्धत्व है।

मूल बौद्ध साहित्य त्रिपिटक (विनयपिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक) साहित्य के नाम से जाना जाता है। सुत्तपिटक के अन्तर्गत पाँच निकाय ग्रन्थ (दीघ, मज्झिम, संयुक्त, अंगुत्तर एवं खुद्दक) हैं। सम्बोधि से महापरिनिर्वाण तक के बुद्ध के जीवन–प्रसंग त्रिपिटकों में संगृहीत हैं। इनका संकलन भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरान्त भिक्षु महाकश्यप के प्रयास से राजगृह में आयोजित प्रथम बौद्ध महासम्मेलन में किया गया था। इसमें बौद्ध धर्म के अर्हतत्व प्राप्त ५०० भिक्षुओं ने भाग लिया था। अर्हत पद सांसारिक दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करके ही मिलता है।

अतीत दो प्रकार का होता है :–

१. मृत अतीत, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति एवं घटनाएँ आती हैं।
२. जीवन्त अतीत, जिसके अन्तर्गत परम्पराएँ आती हैं।

बौद्ध–धर्म से प्रभावित होकर काल की गति में अनेक उच्चकोटि के साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया। बौद्ध कलाकृतियाँ अपने में संदेशों को सँजोए अतीत को जीवन्त बनाने में सहायक हुईं। मौर्यवंशी राजा अशोक ने विदेशों में बौद्ध–धर्म के प्रचार में पर्याप्त रुचि ली। श्रीलंका के पालि भाषा में लिखे गए बौद्ध ग्रन्थ महावंश के अनुसार उसने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को भिक्षु एवं भिक्षुणी संघ की स्थापना हेतु श्रीलंका भेजा था। इसका प्रभाव श्रीलंका पर आज भी देखने को मिलता है। श्रीलंका की प्राचीन राजधानी अनुराधापुर में तत्कालीन राजा देवानांपिय तिस्स के राज्यकाल में बौद्ध–धर्म का प्रवेश हुआ था। त्रिपिटकों का संग्रह, स्तूपों का निर्माण, बोधिवृक्ष की एक शाखा का रोपण आदि इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। यह परम्परा सुदीर्घ काल तक न केवल चलती रही; वरन् आज भी जीवित है। वहाँ के राजनेता महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए आज भी अनुराधापुर जाकर बोधिवृक्ष तथा बुद्ध की उपासना करते हैं। बौद्ध धर्मानुयायियों के लिए बौद्ध–धर्म शान्ति का सन्देशवाहक है।

बर्मा में सोण एवं उत्तर को अशोक ने बौद्ध धर्म प्रचारार्थ भेजा था। इस देश में ग्यारहवीं शती ई. से अनेक बौद्ध राजाओं एवं बौद्ध धर्माचार्यों के नाम मिलते हैं, जिनमें अनब्रहत, क्यान्जिथ एवं एलौंगसिथु के नाम उल्लेखनीय हैं। विद्वान् शिनअर्हन् की भूमिका बर्मा में बौद्ध–धर्म के प्रसार का गौरव पूर्ण अध्याय है। यहाँ का विशाल आनन्द बौद्ध मन्दिर अपनी कलात्मक प्रतिभा के साथ–साथ शान्ति भावना का महान् केन्द्र है।

भारत में कुषाणों एवं गुप्तों के शासन काल में बौद्ध धर्म को प्रचुर प्रोत्साहन मिला। पूर्वकालिक मानवी बुद्ध का दैवीकरण देखने को मिलता है।

बौद्ध–धर्म की प्राचीन विचार–पद्धति अर्हत–यान या श्रावक–यान के नाम से प्रसिद्ध थी। उसे ही आगे चलकर हीनयान कहा गया। उसके अनुयायी थेरवादी भिक्षु कहलाते थे। यह व्यक्तिगत निर्वाण का मार्ग था। कुषाणों के काल में लोक–कल्याण की भावना का प्रसार बोधिसत्व यान या

महायान के नाम से हुआ। इसमें ज्ञान के विकास के साथ–साथ मन में करुणा के भाव के उद्दीपन पर बल दिया गया। इसे 'बोधिचित्त' कहा गया। बोधिचित्त के सम्यक् विकास होने पर बोधिसत्व की कल्पना साकार हो सकती है। बोधिसत्व को निम्न ६ गुणों का विकास करना आवश्यक है। इसे ६ परिमिताओं के नाम से जाना जाता है। दान (उदारता), शील (नैतिक विचार), क्षान्ति (सहिष्णुता), वीर्य (मनःशक्ति), ध्यान (मन की एकाग्रता) और प्रज्ञा (सत्य का ज्ञान)। एक ही जीवन में इन समस्त सद्गुणों को प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं था, अतः ६ पारमिताओं की प्राप्ति के लिए बोधिसत्व को अनेक जन्म लेने पड़ते थे। इन्हें जातक कथाओं एवं अवदानों में वर्णित किया गया है।

बोधिसत्व के आदर्शों की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में अलग–अलग स्थानों से प्राप्त शिल्पाकृतियों एवं चित्रों में मिलती है। अजन्ता की गुफाओं के चित्रों से लेकर अफगानिस्तान में बामियान मध्य एशिया में खोतान एवं मीरान, चीन में तुनहुआंग तथा तिब्बत के मठों में ये मानवता के सन्देशवाहक हैं। बुद्ध के जीवन की घटनाएँ, जातक कथाओं के दृश्य, प्रकृति का सौन्दर्य, ज्यामितीय संरचनाएँ, दैनिक जीवन के मनोहारी क्रिया–कलापों को लगभग ६–७ शताब्दियों तक बौद्ध कलाकारों ने कला के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। प्रायः सर्वत्र बुद्ध को बड़ा अंकित करने का प्रयास किया गया। आर्थिक दृष्टि से भारत के उद्योग एवं व्यापार का अतिशय महत्त्व था। दूसरी शती ई.पू. से सातवीं शती ई. तक भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अनेक देशों से था। दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में बर्मा, सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो स्याम देश (वर्ममान थाईलैण्ड) चम्पा (वर्तमान वियतनाम) तथा कम्बुज (वर्तमान कम्पूचिया) आदि से प्राप्त अभिलेखों से भारतीय संस्कृति के प्रसार की पुष्टि होती है। चीन के चीनांशुक (रेशमी वस्त्र) की रोम एवं मध्य–एशिया तथा भारत में बड़ी माँग थी। चीन के सिगान्फू (प्राचीन राजधानी) से तीन प्रमुख मार्ग मध्य एशिया होते हुए रोम तथा अफगानिस्तान होते हुए भारत आते थे। इनसे होकर व्यापारी तथा धर्म–प्रचारक आते–जाते रहे। रेशम के व्यापार की अधिकता के कारण इन मार्गों का नाम कौषेय–पथ (रेशम मार्ग) हो गया था। भारत के बने सूती वस्त्र, चन्दन, हाथी दाँत के सामान तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्धित खाद्य पदार्थों का निर्यात होता था। धन की अधिकता थी। दानवृत्ति की भावना थी। बुद्ध के शान्ति मैत्री एवं करुणा के सन्देशों के प्रति श्रद्धा थी। उन सन्देशों को कला ने जीवन दिया। प्रकृति के सौन्दर्य के बीच गुफाएँ काटी गयीं; मूर्त्तियाँ बनायी गयीं; चित्र बनाये गये, बौद्ध बिहारों का निर्माण हुआ। निर्माताओं के नाम तत्कालीन खरोष्ठ अथवा ब्राह्मी लिपियों में यत्र–तत्र अंकित हैं। अनेक चीनी यात्री फाह्यान, ह्वेंसांग, इत्सिंग आदि बौद्ध धर्म के ज्ञान तथा बुद्ध से सम्बन्धित पावन तीर्थों के दर्शनार्थ भारत आये। उनके विवरणों से महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। भारत के कुमारजीव, अतिश, कश्यप मातंग, बुद्धयश आदि सन्तों ने बुद्ध के शान्ति सन्देशों का एशिया के देशों में प्रसार किया।

बुद्ध के शब्दों में प्रेम वह सूक्ष्म भोजन है, जिसे खाकर मन देवों के समान प्रकाशवान् बन जाता है। मनुष्य का मनुष्य से बैर करना प्रेम के विरुद्ध है। जो द्वेष या वैर करते हैं, उनके प्रति भी अवैरी होकर रहना– यह मानवीय प्रज्ञा का और भी ऊँचे उठ जाना है।

"नहि वैरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेण च सम्मन्ती एस धम्मो सनतनो।।"

❐

– 'सुरेन्द्रालय', ए–३५४, इन्दिरा नगर,
लखनऊ–२२६०१६

पिछले एक सौ वर्ष से ग्रामीणों की सेवा में लगे हुए १२४ वर्षीय बुजुर्ग स्वामी कल्याण देव को पद्मभूषण देते हुए राष्ट्रपति के० आर० नारायणन

यादगार खो रहे हैं राजगढ़ के महल

– जगदीश प्रसाद साहनी
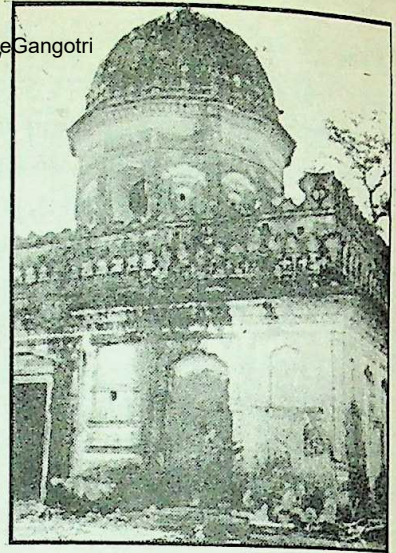
खजुराहो–पन्ना मार्ग पर राजगढ़ गोंड राजाओं की राजधानी रही है। जो खजुराहो से २४ किमी० दूर है। राजगढ़ की ऐतिहासिक हवेलियाँ राजगढ़ से २ किमी० की दूरी पर चन्द्रनगर की पहाड़ियों पर बनी हुई हैं। इस समय चन्द्रनगर की पहाड़ी पर बने दुर्ग और महलों के आस–पास घना जंगल है। काफी दूर तक मकान व आबादी नजर नहीं आती है।

चन्द्रनगर पहाड़ी पर बने महल और दुर्ग सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व के हैं। मध्ययुगीन स्थापत्य–कला के अवशेष रूप में हैं। दुर्ग पहुँचने के पहले ही महल और बारादरी बनी हुई है, जहाँ कचहरी लगती थी। महलों के निकट ही शिव–मन्दिर बना है। इससे स्पष्ट है कि गोंड राजा शिवोपासक थे। दुर्ग के पास तालाब बना है, जिसमें पक्के घाट हैं।

खजुराहो के आस–पास गोंड एवं भर भूल निवासी थे। जिनका आधिपत्य छतरपुर, खजुराहो एवं राजगढ़ तक था। इस क्षेत्र में चन्द्रवंशीय चन्देल शासकों ने भी लम्बे अर्से तक शासन किया। गोंड राजाओं के पूर्व राजगढ़ का क्षेत्र चन्देल राजाओं की राजधानी का मुख्य केन्द्र रहा है। राजगढ़ ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण रहा है; क्योंकि इस क्षेत्र को चन्देल राजाओं ने अपने राजनीतिक गढ़ के रूप में स्थान दिया था।

चन्देल शासकों द्वारा खजुराहो में मन्दिरों के निर्माण कराने से खजुराहो मुख्य–धारा से जुड़ गया, जबकि उस समय राजगढ़ का ऐतिहासिक महत्त्व कम न था। चन्देल वंश के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलता है, उसके अनुसार हेमावती (विधवा) के रूप यौवन पर चन्द्रमा आसक्त हो गया। जब हेमा सरोवर में स्नान करने के लिए गयी, तब चन्द्रमा ने पुरुष वेश में उससे परिणय का अनुरोध कर आलिंगन में ले लिया। जब हेमावती को चेतना आयी, तो उसने चन्द्रमा को शाप देना चाहा, जिस पर चन्द्रमा ने कहा– तुम्हारी कोख से जो पुत्र होगा, उसके यश और शौर्य की चर्चा हजारों वर्ष तक होती रहेगी।

हेमावती ने केन नदी के किनारे शरण ली, जहाँ चन्द्रमा के समान ही रूपवान् पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम चन्द्रवर्मन् रखा गया। चन्द्रवर्मन् इतना शक्तिशाली एवं पराक्रमी था कि उसने १६ वर्ष की आयु में लकड़ी से ही शेर को मार गिराया था। उसके सामने प्रमुख लक्ष्य कालंजर दुर्ग को जीतना था। अजेय कालंजर दुर्ग को जीतने के बाद चन्द्रवर्मन् खजुराहो आया और उस स्थल पर ८५ वेदियों के पास कुएँ बनवाये, जिनमें घी भरा गया। उन्हीं ८५ यज्ञवेदियों पर भांड्य–यज्ञ कराया गया। अन्तराल में इन्हीं ८५ वेदियों पर चन्देल राजाओं ने मन्दिर बनवाये। खजुराहो चन्देल राजाओं का धार्मिक केन्द्र भले रहा हो, राजधानी भिन्न–भिन्न स्थलों पर रही। चन्द्रवर्मन् ने अपनी राजधानी महोबा बनायी।

खजुराहो के प्रति उल्लेख मिलता है कि यह क्षेत्र पहले वत्स नाम से मध्यकाल में जैजाकभुक्ति नाम से तथा चौदहवीं शती में बुन्देलखण्ड नाम से विख्यात हुआ। चन्देल राजाओं का क्षेत्र अजयगढ़ (पन्ना) भी रहा है। इस प्रकार चन्देल राजाओं के राजधानी के प्रमुख अंग कालंजर, महोबा, राजगढ़, खजुराहो तथा अजयगढ़ रहे हैं।

चन्देल राजा परमर्दिदेव और पृथ्वीराज चौहान के बीच भीषण युद्ध हुआ, जिसमें चन्देल राजा को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए काफी क्षति उठानी पड़ी। पृथ्वीराज चौहान ने महोबा व कालंजर पर एक साथ चढ़ायी की, जिसमें चन्देल राजा को काफी क्षति उठानी पड़ी। परमर्दिदेव के बाद चन्देल राजाओं ने अजयगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।

खजुराहो को सबसे ज्यादा क्षति सन् १४९५ में सिकन्दर लोदी ने पहुँचायी। इसके हमले में खजुराहो के मन्दिरों की मूर्त्तियों को भी खण्डित किया गया।

पन्द्रहवीं शताब्दी में खजुराहो का महत्त्व इतना क्षीण हो चुका था कि उसकी पहचान भी सामान्य तौर पर न थी। सत्रहवीं शती में उस क्षेत्र के मूल निवासी गोंड छोटे–छोटे राज्यों में शासन करने लगे। राजगढ़ भी सत्रहवीं शती में गोंड राजाओं की राजधानी के रूप में उभर कर आया। □

– साहनी निकेतन, मलिहाबाद, लखनऊ

पुस्तक-परिचय

– डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र

लुप्त वैदिक सरस्वती की खोज और बोध

लेखक : श्री प्र० ग० सहस्रबुद्धे
पृष्ठ संख्या : १३०, मूल्य : रु० ५०.००

'लुप्त वैदिक सरस्वती' की खोज और बोध शीर्षक पुस्तक भारतीय पुरातन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को पलटने वाली एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रशस्य पुस्तक है। मराठी और हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक श्री प्र.ग. सहस्रबुद्धे इसके लेखक हैं। आपकी लेखनी ने भारत के अनेक प्रातःस्मरणीय महापुरुषों के प्रेरक प्रसंगों का उद्घाटन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने स्व० हरिभाऊ वाकणकर, श्री मोरोपन्त पिंगले तथा अन्य अनेक उत्साही विद्वानों, लेखकों, चित्रकारों आदि को लेकर एक यात्रा योजना के अन्तर्गत वेदों, पुराणों तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों में वर्णित सरस्वती नदी के उद्गम, प्रवाह एवं अन्तिम पड़ाव की खोज की। यह यात्रा २० नवम्बर ८५ ई. से प्रारम्भ होकर २२ दिसम्बर ८५ ई. को समाप्त हुई। इसी शोधपरक यात्रा का रोमांचक वर्णन करना इस पुस्तक के लेखन का प्रमुख उद्देश्य रहा है। भारतीय संस्कृति, विद्या और कला की प्रगति की साक्षी सरस्वती नदी आज देवी रूप में भारतीय धर्म और सामाजिक क्रियाओं की आराध्या हैं; यद्यपि प्रयागराज संगम में लुप्त हैं।

आज से दस हजार वर्ष पूर्व यह महानदी हिमालय के आदि बदरी स्थान से निकलकर हरियाणा, राजस्थान, गुजरात आदि राज्यों से प्रवाहित होते हुए सोरठी सोमनाथ के समीप समुद्र से मिलती है। ३२ दिनों तक इन शोधयात्रियों ने प्राचीन प्रेरणाप्रद स्थानों पर विचरण करते हुए अनेक ज्ञानसत्रों का संयोजन किया, अनेक प्रेरणादायक संस्मरणों को लिपिबद्ध किया। लेखक के अनुसार भारत का इतिहास सरस्वती से ही प्रारम्भ होता है। सरस्वती भारत के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं विद्या, कला विषयक प्रगति की साक्षी ही नहीं, प्रेरिका भी रही है।

सम्पूर्ण पुस्तक में ३० उपशीर्षक हैं, जिनके अन्तर्गत सम्पूर्ण यात्रा का रोचक वर्णन उपलब्ध है। १. प्रस्तावना, २. अर्पण पत्रिका, ३. अन्तस्सलिला सरस्वती का प्रवाहपात्र, ४. कौन सी सरस्वती ?, ५. भागवत, महाभारत तथा रामायण में, ६. बलराम जी की तीर्थयात्रा, ७. बलरामजी कृत सरस्वती वंदना, ८. भारत का विद्या केन्द्र, ९. इसे वैदिक क्यों कहें ?, १०. संशोधक यात्रियों की चमू, ११. दिल्ली से आगे बढ़े, १२. उद्गम स्थान, १३. प्लक्षप्रस्रविणी, १४, कुरुक्षेत्र १५. भ्नावशेष, १६. कुरुक्षेत्रे त्रिधामुक्ति, १७. सचेतन योद्धा चाहिए, १८. महाभारत के संदर्भ, १९. शुष्क पात्र और सरान्त ग्राम नाम, २०. साधु सन्तों की अद्भुत कथाएँ, २१. राजस्थान में पहुँचे, २२. क्या यहाँ कभी सागर होगा ? २३. एक प्रणय कथा (के अन्तर्गत अलाउद्दीन की पुत्री फिरोजा और जालौर के वीरमदेव की अद्भुत प्रेम कथा का वर्णन पठनीय है) २४. कुत्ते की कहानी (में कुत्ते की स्वामिभक्ति का अनोखा वर्णन है) २५. हमारे इतिहास का प्रतीक २६. रुद्रमहालय २७. छोटे में बड़ा संकट २८. अति प्राचीन बन्दरगाह, २९. यात्रा की समाप्ति तथा ३०. फल प्राप्ति के अन्तर्गत अंग्रेजों द्वारा विकृत किये गये भारतीय इतिहास को शुद्ध करने के अनेक मूल्यवान् सुझाव वर्णित हैं।

वरदहस्ता मत्स्यवाहिनी सरस्वती के चित्र के साथ पुस्तक का आवरण पृष्ठ आकर्षक, कागज उत्तम, मुद्रण साफ–सुथरा (पर मुद्रण सम्बन्धी अनेक भूलें भी) है। लेखक मराठी भाषी हैं, अतः अनेक स्थानों पर सम्बन्धवाची सर्वनामों के प्रयोग हिन्दी पाठकों को खटकने वाले हैं जैसे (पृष्ठ ११६ पर) १. हमने बड़े प्रेम से उसे हमारी जीप में बैठाया। यहाँ पर 'हमारी' के स्थान पर 'अपनी' शब्द का प्रयोग उपयुक्त था। २. हमने हमारे उपकारकर्ता को हमारे साथ जिमाया। यहाँ 'हमारे' के स्थान पर 'अपने' शब्द को होना चाहिए।

पुस्तक का कथ्य अति प्रशंसनीय है। इसे इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी तथा शिक्षक को अपने पास सन्दर्भ हेतु रखना चाहिए। विद्यालयों और सार्वजनिक पुस्तकालयों में इस पुस्तक की कम से कम दो प्रतियाँ अवश्य उपलब्ध होनी चाहिए। पुस्तक पठनीय ही नहीं, अपितु संग्रहणीय एवं मननीय भी है। सचित्र प्रवाह यात्रा–मार्ग ज्ञानवर्द्धक है।

★

जम्मू–कश्मीर–लद्दाख–जैसा मैंने देखा
लेखक : श्रीकान्त जोशी
मूल्य : २० रु०, **पृष्ठ संख्या : १००**

प्रस्तुत आलोच्य पुस्तक 'जम्मू–कश्मीर–लद्दाख–जैसा मैंने देखा'– १२ निबन्धों का संकलन है। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख श्री श्रीकान्त जोशी जी की लेखनी का यह प्रसाद हिन्दू के पाठकों के पूर्व गुजराती और उड़िया भाषी बन्धुओं को 'साप्ताहिक साधना' (गुजराती) तथा 'राष्ट्र दीप' उड़िया साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित होकर मिल चुका है। इन निबन्धों में 'कश्मीर' यात्रा का वर्णन है। इस यात्रा वर्णन में कश्मीर घाटी की छटा का ही वर्णन नहीं है, अपितु वहाँ की भयंकर परिस्थितियों का ऐतिहासिक सन्दर्भों, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक बातों के परिप्रेक्ष्य में आकलन करते हुए विदेशी मानसिकता और अलगाववाद को बढ़ावा देने वाले तत्वों के कुटिल इरादों को भी उजागर किया गया है।

मूलतः मुम्बई निवासी श्रीकांत जोशी जी को रा० स्व० संघ के प्रचारक के रूप में सम्पूर्ण भारत के दर्शन करने का सुयोग मिला है। असम में प्रान्त–प्रचारक के रूप में आपने सम्पूर्ण पूर्वांचल क्षेत्र में प्रचार कार्य करते हुए वहाँ की देश–विरोधी गतिविधियों का मुँह तोड़ जवाब दिया है। इस संदर्भ में उनकी लिखी हुई दो पुस्तकें– 'घुसपैठ–एक निःशब्द आक्रमण' तथा 'राष्ट्र–विरोधी षड्यन्त्र में उल्फा' पठनीय हैं। हिमगिरि प्रान्त के प्रान्त प्रचारक श्री इन्द्रेश कुमार ने 'कश्मीर–यात्रा' नामक उपर्युक्त पुस्तक की भूमिका ही नहीं लिखी; उनके प्रवास काल में भी साथ रहे थे।

अक्टूबर ४७ ई. से १९९९ ई. के करगिल–युद्ध तक जम्मू–कश्मीर की पवित्र भूमि तथा भारत की अखण्डता की रक्षार्थ अपने प्राणों का बलिदान करने वाले वीर सिपाहियों, नागरिकों और संघ के स्वयंसेवकों की स्मृति में यह पुस्तक श्रद्धापूर्वक समर्पित की गयी है। प्रस्तावना में श्री इन्द्रेश कुमार जी ने लिखा है "इस प्रवास में माता वैष्णौ, अनन्तनाग के मन्दिर, बेरीनाग स्थित झेलम का उद्गम, पत्थर साहब तथा बौद्ध गुफाओं के दर्शनों के साथ–साथ लेह के कीर्त्ति–भवन का केवल दर्शन ही नहीं, सिन्धु के किनारे दो दिन रहने का आनन्द व उसमें स्नान करने की एक विशेष अनुभूति भी लेखक को प्राप्त हुई। कारण स्पष्ट है कि पिछले हजारों वर्षों से सिन्धु से ही हिन्दू की पहचान विश्व में स्थापित हुई है।"

किस प्रकार जम्मू प्रदेश को जो हिन्दू–बहुल है, मुस्लिम–बहुल बनाने का कुचक्र चल रहा है, किस प्रकार माता वैष्णव देवी ट्रस्ट के संविधान में फेर–बदल करने का कुप्रयास हो रहा है, किस प्रकार बौद्ध धर्मावलम्बी हिन्दू–बहुल लद्दाख में लामाओं की जनसंख्या को घटाकर मुस्लिम धर्मावलम्बियों को बसाया जा रहा है और किस प्रकार कश्मीर के ४ लाख हिन्दू पंडितों को उत्पीड़न द्वारा वहाँ से भागकर शरणार्थी रूप में इधर–उधर भटकने के लिए बाध्य किया गया आदि प्रसंगों को पढ़कर रोमाञ्च हो जाता है। लेखक ने अपनी अनुभवी लेखनी से कुछ ठोस सुझाव भी दिये हैं, यदि केन्द्रीय सरकार उनका अनुगमन कर कुछ सार्थक कदम उठाने के लिए तत्पर हो, तो समस्या को सुलझाया जा सकता है।

प्राकृतिक सुषमा के वर्णनों में लेखों की भाषा में गद्य–काव्य का आनन्द आता है। अन्य वर्णनों में कथा–रस के साथ लेखक ने अपनी अनुभूतियों को बड़ी प्रभविष्णुता के साथ अभिव्यक्ति की है। अन्य भाषी हिन्दी लेखकों की भाँति मराठी–भाषी होने के कारण पुस्तक में लिंग वचन का प्रयोग, सम्बन्ध वाची सर्वनामों 'अपना', 'अपने' व 'अपनी' के स्थान पर 'हमारा', 'हमारे' व 'हमारी' का शिथिल प्रयोग तथा कहीं–कहीं पर कारक सूचक शब्दों का अशुद्ध प्रयोग हुआ है जैसे (पृष्ठ ५१ पर)– 'सहज भाव से मेजर साहब को पूछा कि यह कौन–सी देवता का मन्दिर है' में 'को' के स्थान में 'से' तथा 'सी' के स्थान पर भी 'से' कारक सूचक शब्द होना चाहिए।

वैसे पुस्तक बहुत उपयोगी, पठनीय एवं मननीय है। इस लेखमाला का अनुवाद अंग्रेजी साप्ताहिक 'आर्गनाइजर' तथा 'कन्नड़' और 'तमिल भाषा के पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। सभी ने इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

☆

बाल महाभारत
लेखक : श्री राणा प्रताप सिंह
मूल्य : १७.०० रुपये, **पृष्ठ संख्या : ६४**

द्वितीय आलोच्य पुस्तक है श्री राणाप्रताप सिंह की 'बाल महाभारत।' पुस्तक के माध्यम से भारत की युवा पीढ़ी को भारतीय जीवन की मान्यताओं के अनुरूप उदात्त मानवीय आदर्शों को ग्रहण करने की शिक्षा प्रदान की गयी है।

जीवन में यज्ञमय भाव, पारिवारिक एकात्मता, विविधता में एकता, धर्म तथा संस्कृति के प्रति असीम श्रद्धाभाव, पूर्वजों के लिए गौरव का अनुभव तथा असीम राष्ट्र–भक्ति के साथ समाज सेवा के उत्तम संस्कारों का भावी नागरिकों में आकर्षण उत्पन्न करने के लिए इस पुस्तक का लेखन किया गया है।

सम्पूर्ण महाभारत की कथा को संक्षेप में २५ उपशीर्षकों के अन्तर्गत बड़ी कुशलता के साथ समेटा गया है।

मुखपृष्ठ आकर्षक, मुद्रण सुन्दर किन्तु भूलें भी हैं।

थावर्णन में एक विसंगति भी है, यथा पाठ ७ में पाण्डवों द्वारा इन्द्रप्रस्थ राजधानी में राजसूय यज्ञ के अवसर पर पृष्ठ ८ पर शिशुपाल के शीश को श्रीकृष्ण द्वारा काटना लिखा गया है तथा पुनः पाठ ११ के 'जरासन्ध वध' पाठ में पृष्ठ ८ पर युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण जी ने राजसूय यज्ञ करने का अधिकारी बतलाते हुए इस कार्य में (जरासंघ का वध) शिशुपाल को प्रबल बाधा बतलाया है– शिशुपाल उसी का आश्रय लेकर सेनापति का काम कर रहा है– मरणोपरांत पुनः शिशुपाल का उल्लेख असंगत है।

इसके अतिरिक्त सामान्य व्याकरण सम्बन्धी भूलों के कारण अनेक वाक्य शिथिल एवं त्रुटिपूर्ण हो गये हैं। एक उदाहरण "धृतराष्ट्र के मंत्री संजय पाण्डवों से वार्त्ता करने आया।" (पृष्ठ ४३) शुद्ध वाक्य इस प्रकार होगा "धृतराष्ट्र के मंत्री संजय पाण्डवों से वार्त्ता करने आये।" अथवा "धृतराष्ट्र का मंत्री संजय पाण्डवों से वार्त्ता करने आया।"

सम्बोधन कारक में बहुवचन शब्दों को बहुवचन सूचक अनुस्वार (ं) से युक्त करके लिखने की भूल प्रायः लेखकों द्वारा हो जाती है, जबकि ऐसा करना व्याकरण के नियमों के विरुद्ध है। एक उदाहरण (पृष्ठ २६)– बलराम ने कहा, "यदुवंशियो! श्रीकृष्ण की बात सुने बिना तुम लोग ऐसा काम क्यों कर रहे हो।" यहाँ पर "यदुवंशियो!" होना चाहिए– बहुवचन सूचक अनुस्वार लगाना भयंकर भूल है।

प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्नावलि का समावेश विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। पुस्तक पठनीय है तथा विद्यार्थी समाज के लिए संग्रहणीय तथा रक्षणीय है।

☆

भारत-विभाजन का दुःखान्त और संघ भाग-३
लेखक : श्री मदन लाल विरमानी
मूल्य : २० रु० मात्र, पृष्ठ संख्या : ९८

'भारत–विभाजन का दुःखान्त और संघ भाग–३' श्री मदन लाल विरमानी की पुस्तक है। इसमें रावलपिण्डी क्षेत्र, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा अन्य भागों की दुर्घटनाओं का हृदय–विदारक वर्णन किया गया है। यह एक विभाजन का रोमांचकारी इतिहास है। रा० स्वं० सं०, धर्म जागरण विभाग के अखिल भारतीय प्रमुख श्री विश्वनाथ जी ने पुस्तक की भूमिका में ठीक ही लिखा है–

"मुस्लिम सेना का आम मुसलमानों के साथ मिलकर क्रूरतम अत्याचार करना आदि यह सब उनके पुराने अत्याचारों की स्मरण कराने वाला इतिहास है। इन सब घटनाओं को लिखने का श्री विरमानी जी का हेतु यही है कि हिन्दू समाज जाग्रत हो तथा अपने कर्त्तव्य को पहचाने।"

विरमानी जी ने इस पुस्तक के प्रथम दो भागों में १०–१० घटनाओं का संकलन किया है तथा इस तीसरे भाग में १३ घटनाओं का संकलन है। चौथे भाग की घटनाओं के संकलन में वे आजकल प्रयत्नशील हैं। अपने लेखकीय वक्तव्य में उन्होंने ठीक ही लिखा है, "उस संकट–वेला में हिन्दू समाज ने संघ के स्वयंसेवकों के ही रूप में अपनी जीवन–शक्ति का प्रकटीकरण किया। यह सब हमारे इतिहास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है, ऐसे ज्वलन्त प्रसंग हैं, जो आगामी पीढ़ियों के लिए प्रेरणाप्रद हो सकते हैं।"

पुस्तक में चार विभाग हैं– (१) रावल पिंडी विभाग (२) उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त (३) मुलतान विभाग तथा (४) जालंधर विभाग। अन्त में परिशिष्ट है, जिसमें विभाजन काल में पाक सेना और पुलिस द्वारा किये गये १५६ कुकृत्यों का उल्लेख करते हुए संक्षिप्त विवरण घटनास्थल, जिला, घटना तिथि के साथ दुष्कृत्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मुद्रण सुन्दर, शुद्ध, भाषा साफ–सुथरी और कागज उत्तम है। ९८ पृष्ठीय यह पुस्तक हिन्दू समाज की आँखें खोलने के लिए पर्याप्त, महत्त्वपूर्ण एवं संग्रहणीय हैं। ❒

(ये सभी पुस्तकें 'लोकहित प्रकाशन' संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ द्वारा प्रकाशित की गयी हैं।)

– सद्भावना नगर, बिरहाना, लखनऊ

विश्व का सबसे छोटा अखबार

ब्रासीलिया, ब्राजील की एक प्रकाशक ने विश्व का सबसे छोटा अखबार निकाला है। जिसकी लम्बाई मात्र एक इंच और चौड़ाई १.४ इंच है।

डोलोरेस न्यूनेस स्क्वीन्डट ने १६ पृष्ठों के इस मासिक अखबार 'योर आनर' के बारे में कहा कि यह उनके परिवार का ७५ वर्षों पुराना सपना था।

पाठकों को यह अखबार पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं होगी। उनके पिता ने १९३५ में गोइयास प्रान्त में अखबार निकालना शुरू किया था और १९४६ में मिनास गेराइस चले आये। उस समय इस अखबार की लम्बाई-चौड़ाई १० सेंटीमीटर और ७ सेंटीमीटर थी। वर्षों की मेहनत के बाद वह इस अखबार का आकार घटाकर इस स्तर तक ला पाने में सफल हुई हैं।

राजधानी ब्रासीलिया से ८५० किलोमीटर पूरब की ओर डिविनोपोलिस की रहने वाली इस प्रकाशक ने कहा कि इस अखबार में उनके शहर के श्रेष्ठ लेखकों, कानून विशेषज्ञों और ग्रामीण समाज शास्त्रियों द्वारा लिखित सामग्री छपती है। ५००० की प्रसार संख्या वाला यह अखबार पूरे ब्राजील में उपलब्ध है। योर आनर उनके प्रकाशन संस्थान का इकलौता अखबार नहीं है। वह दूसरे अखबार भी निकालती है, जिनका आकार भी लघु है। उनके द्वारा प्रकाशित एक अखबार ४.८ सेंटीमीटर लम्बा और ६.५ सेंटीमीटर चौड़ा है। ❒

संसार के प्राचीनतम लोहे के धरण

- वीरेन्द्रनाथ भार्गव

विश्व के सर्वप्रथम जंग रहित लोहे–इस्पात के धरणों (गर्डर) का निर्माण और उपयोग भारतीयों ने ही कोणार्क के सूर्य मन्दिर सहित स्वर्ण त्रिभुज के अन्य मन्दिरों में ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी के बीच किया था। विश्व के अन्य देशों ने इसकी तुलना में जंग रहित इस्पात का निर्माण लगभग पचास वर्ष पहले ही किया था। लगभग एक हजार वर्ष पहले भारत में धातु–शिल्प कितना उन्नत था, उसका यह प्रमाण है। सूर्य मन्दिर के शिखर पर चुम्बक लौह धरण की कल्पना, निर्माण और सफलतापूर्वक उपयोग का कारण आज तक अनसुलझी पहेली है। कोणार्क मन्दिर में २९ लोहे के धरण हैं। इनमें सबसे लम्बा धरण लगभग ३५ फीट लम्बा है। वजन में सबसे भारी धरण ३००० किलो का है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ "बयचकड़ा" में इन धरणों के निर्माण की विस्तृत सूचना पायी जाती है। इस जानकारी के अनुसार मयूरभंज के राजा ने पाँच गाड़ियाँ भरकर लौहपिण्ड भेजे। मयूरभंज की लोहे की खान बहुत प्रसिद्ध है। माधव ओझा, सौराष्ट्र मूल का मनुष्य धरण बनाने के कार्य का प्रमुख था। लोहे के धरण का साँचा मिट्टी से बनाकर उन्हें अग्नि से पकाते थे। चक्रधर मृदुली ने चालीस हस्त लम्बे मिट्टी के साँचे बनाये और पकाये। यह साँचे बालू में दो हस्त की गहराई में रखे। इन साँचों में नारियल का कत्था भर दिया, परन्तु इनके मुँह के पास एक हस्त लम्बाई मोम से भर दी। चार–चार हस्त लम्बाई पर पिघला लोहा डालने के लिए ऐसे मुँह बनाये गये। इस मोम में ताँबे की नलिकाएँ बैठा दीं। लोहा प्रद्रावित करने के लिए भट्टी तैयार की और इस भट्टी में कोयला भर दिया। कोयले की आग का तापमान बढ़ाने के लिए बारह धौंकनियाँ थीं और वे ताँबे की नालियों से भट्टी से जोड़ी गयी थीं। पिघला हुआ लोहा लेने के लिए ताँबे की ऐसी मूषिकाएँ बनायीं, जिन्हें दो आदमी उठा सकें। इन मूषिकाओं को अन्दर से मिट्टी, गोबर तथा भूसी के मिश्रण का पलस्तर लगा दिया। लोहे की सुघट्यता बढ़ाने के लिए पिघले हुए लोहे में पिघला हुआ सीसा डाला गया। भट्टी में लोहा जल्दी प्रद्रावित होने के लिए लौहपिण्ड के साथ सुहागा डाला, जो उत्प्रेरक का काम करता है। द्रवीभूत सीसा की मूषिकाएँ तथा लोहे की मूषाएँ रखने के लिए पत्थर के खम्भे जमीन में गाड़ दिये गये। मूषाओं से द्रवीभूत लोहा और सीसा का मिश्रण ताँबे की नलिकाओं से साँचे में डाला गया। इस पद्धति से सात अंगुल व्यास के लोहे के १८ धरण बनाये गये। इसी प्रकार अन्य धरणों का भी निर्माण हुआ।
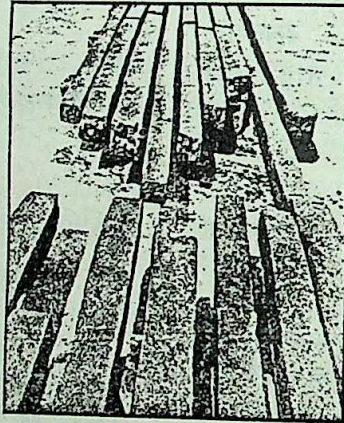
कोणार्क मन्दिर परिसर में रखे लोहे के धरण (गर्डर) ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी

कोणार्क सूर्य मन्दिर के बारे में यह भी उल्लेख मिलता है कि मन्दिर के शिखर पर स्वर्ण–मण्डित ताँबे के भारी कलश 'पद्मध्वज' को चुम्बकीय धरण के उपयोग से टिकाया गया था, जिससे कलश का तथा मन्दिर का सन्तुलन बना था। गर्मी अथवा शीतकाल में धातुओं के आकार में वृद्धि अथवा सिकुड़न होने के कारण लोहे के धरण, कलश तथा पत्थरों के जोड़ों में दरार आ सकती है, कदाचित् इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए संसार में ऐसा चुम्बकीय धरण पहली बार उपयोग में लिया गया था। इतने बड़े चुम्बक का निर्माण किया जाना भी अभियान्त्रिकी का एक आश्चर्य माना जा सकता है। यह भी माना जाता था कि इस विशाल चुम्बक से समुद्र में भटके हुए जहाज/नौकाएँ खिंच कर चले आते थे। सन् १५६६ ईस्वी के लगभग मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस कलश को उखाड़ लिया था, जिससे मन्दिर के शिखर का संतुलन बिगड़ गया और वह धराशायी हो गया था। इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अनुमानों–किंवदन्तियों का उल्लेख पाया जाता है।

इन लोहे के धरणों की रासायनिक संरचना का विश्लेषण अनेक परीक्षणशालाओं में किया गया था तथा इसमें लोहे की शुद्धता ९९ प्रतिशत से अधिक पायी गयी। आज भी कोणार्क की विश्वव्यापी संस्था यूनेस्को ने विश्व–धरोहर (वर्ल्ड हेरिटेज) घोषित किया हुआ है। ऐसे लोहे के धरणों का उपयोग विख्यात जगन्नाथपुरी के मन्दिर में भी किया गया है। ❐

– १२, महावीर नगर, जयपुर– ३०२०१८

रहस्य- एक सौ आठ की संख्या का

– डॉ० शिवनन्दन कपूर

भारतीय संस्कृति में एक सौ आठ की संख्या अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। जप–माला में एक सौ आठ मणियों अथवा मनके हुआ करते हैं। उपनिषदों की संख्या भी एक सौ आठ है। समस्त रामायण भी गणना में इतने ही हैं। अत्यन्त पवित्र मान्य होने से विशिष्ट धर्म–गुरुओं के नाम के पूर्व इस संख्या को लिखने की परम्परा रही है। तन्त्र में उल्लिखित देवी के अनुष्ठान भी एक सौ आठ है; किन्तु इस प्रतीकात्मक संख्या का रहस्य, इसकी महानता के कारण से अधिकांश जन अपरिचित हैं।

हिन्दु धर्म में सर्वत्र एक सौ आठ की प्रधानता है। माला के अतिरिक्त, जप करने के लिए भी एक सौ आठ की ही संख्या निर्धारित की गयी है। जाग्रत् अवस्था में शरीर से कुल दस हजार आठ सौ श्वास निकलने की कल्पना की गयी है। सहज समाधि में उठते–बैठते प्रतिपल श्वास–उच्छ्वास की माला बनाकर इतनी ही बार आराध्य का स्मरण करना अपेक्षित है। यदि मनुष्य इतना करने में सक्षम नहीं तो अन्तिम दो शून्य त्याग कर, एक सौ आठ बार तो नाम–जप करना ही चाहिए। इसी स्वाभाविक उपासना को कबीर ने 'सहज–समाधि' का नाम दिया।

रहस्य

एक सौ आठ की संख्या परब्रह्म का प्रतीक है। नौ का अंक भी ब्रह्म का प्रतीक है। सूर्य द्वादश कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं– 'धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, तथा विष्णु। बारहवें आदित्य विष्णु हैं। विष्णु एवं सूर्य की एकात्मता वेद में भी वर्णित है। विष्णु ही नहीं रुद्र भी चतुर्थ आदित्य हैं। इसी कारण उन्हें एकरूप मान कर स्तुति की जाती है–

त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्माविष्णु महेश्वरं।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।

ब्रह्म के नौ अंक तथा आदित्य के बारह अंक इन दोनों का गुणन एक सौ आठ ही होता है। इसलिए एक सौ आठ की संख्या परब्रह्म की पयार्य तथा पावन मानी जाती है।

मानव–जीवन की बारह राशियाँ भी नव ग्रहों के चक्र–व्यूह में हैं। बारह राशियाँ ये हैं– मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धेनु, मकर, कुम्भ, तथा मीन। नव ग्रह ये हैं– सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु। इनके गुणन की संख्या भी १०८ होती है। विष्णु तथा सूर्य की एकरूपता के कारण ही विष्णु का नाम–जप एक सौ आठ बार करने का विधान है। नभ के सत्ताइस नक्षत्रों के एक सौ आठ पाद कहे गये हैं। कारण, सत्ताइस नक्षत्र सूर्य की परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक नक्षत्र के चार चरण माने गये हैं। सत्ताइस की संख्या को चार से गुणन करने पर १०८ ही आता है। मानव जीवन की बारह राशियाँ भी नव ग्रहों के चक्र–व्यूह में है। अतः ज्योतिष में उनके गुणन से उत्पन्न एक सौ आठ महादशाओं की चर्चा की गयी है।

कृष्ण से भी संबद्ध

एक सौ आठ की संख्या का सम्बन्ध महापुरुष श्रीकृष्ण से भी है। नटनागर कृष्ण की लीला–स्थली के रूप में बारह वनों का वर्णन किया गया है। राधिका की आठ सखियाँ हैं– चंपक लता, चन्द्रभागा, विशाखा, ललिता, पद्मा, भामा, विमला एवं चन्द्ररेखा। राधा तथा उनकी आठ सखियाँ इन नवों के संग कृष्ण ने अनेक लीलायें बारह वनों में कीं। बारह में नौ का गुणित करने पर एक सौ आठ की ही संख्या प्राप्त होती है। इस प्रकार कृष्ण–लीला से भी सम्बद्ध होने से यह पवित्र है।

वेद–ऋचाओं से सूत्रता

"ऋग्वेद" में ऋचाओं की संख्या १०,८०० मानी गयी है। अन्तिम दो शून्य हटा देने पर मुख्य संख्या एक सौ आठ ही शेष रहती है। शाण्डिल्य–विद्या के अनुसार, यज्ञ–वेदी के निर्माण में इसी कारण दस हजार आठ सौ इष्टिकाओं अथवा ईंटों की आवश्यकता बतायी गयी है। तदनुसार भी दो शून्य कम करने के उपरान्त एक सौ आठ की ही संख्या शेष रह

(शेष पृष्ठ २४ पर)

श्वान-वृत्ति

– डॉ० रमेश चन्द्र नागपाल

एक आदमी को एक रास्ते से होकर कहीं जाना पड़ता था। वहाँ एक स्थान पर बहुत से कुत्ते थे जो उसे काटने दौड़ते। पहले दिन तो उसे मालूम नहीं था। उसने भागकर अपनी जान बचायी। दूसरे दिन से वह एक डण्डा ले जाने लगा। कुत्तों को डण्डे से डरा–डरा कर रास्ता पार करता; परन्तु तब भी खतरा बना रहता; क्योंकि कुत्ते बहुत से थे और एक तरफ से डण्डे से भगाओ, तो दूसरी ओर से कुछ कुत्ते काटने आ जाते। वह स्थान अधिक लम्बा नहीं था। मात्र दो या तीन मिनट पार करने में लगते थे। लेकिन आते–जाते समय वे दो मिनट घण्टों के सफर से भी भारी लगते। तब एक दिन उसने अपनी यह व्यथा अपने मित्र को बतायी।

"मित्र ने कहा, घबड़ाओ नहीं।" कल जाते समय मुझसे मिलते जाना।

दूसरे दिन वह आदमी जाने से पहले अपने मित्र के पास गया। मित्र ने उसे एक थैले में कुछ दिया और कहा, जब कुत्ते तुम्हारी तरफ भौंकते हुए आयें, तो इस थैले की वस्तु तुम उनको दिखा–दिखा कर दूर करके फेंक देना। इतना ध्यान रखना कि जितनी संख्या कुत्तों की है, उससे कम संख्या में ही ये टुकड़े फेंकना।

उस आदमी ने वैसा ही किया, तो उसने देखा कि कुत्ते उस वस्तु की ओर झपटे और एक दूसरे से छीनने के लिए आपस में ही लड़ने लगे। काफी दूर तक उनके लड़ने की आवाज उसे आती रही।

लौटते समय उसने देखा कि जो कुत्ते पहले उसकी ओर दुम तान कर और भौंकते हुए दौड़ते थे, वही अब दुम हिलाते कुर–कुर करते हुए उसके पास आये और उचक–उचक कर उसके थैले को छीनने का प्रयास करने लगे। उसने यह भी देखा कि कुछ कुत्तों के मुँह जख्मी हो गये थे।

उसने फिर उस थैले की वस्तु निकाल कर कुत्तों को दिखाकर दूर फेंक दी। कुत्ते उधर लपके और उस वस्तु को छीनने के लिए एक दूसरे से जंग करने लगे।

दूसरे दिन भी उस आदमी ने अपने मित्र से थैले में वह वस्तु ले ली। जब वह कुत्तों के क्षेत्र में आया, तो फिर कुत्ते दुम हिलाते–हिलाते कुर–कुर उसके पास आये, जैसे कि उसके पालतू जानवर हों। आज उनके मुँह और भी जख्मी लग रहे थे। उसे वह चीज थैले से निकाल कर दूर फेंक दी। कुत्ते उधर दौड़ गये। उनमें फिर एक जंग शुरू हो गयी।

इस तरह उसे कुत्तों से मुक्ति मिल गयी।

किसी ने उस आदमी से पूछा, "वह क्या वस्तु थी?"

उसने उत्तर दिया, "सूखी हड्डियाँ।" ▭

– ७–ए, विश्वविद्यालय परिसर, लखनऊ–२२६००७

(पृष्ठ २३ का शेष) **रहस्य- एक सौ आठ...**

जाती है। इस प्रकार वेद तथा यज्ञ–वेदी से संबद्ध होने से यह पवित्र संख्या मान्य है। तन्त्र–सिद्धि में एक स्थान पर एक सौ आठ धतूरों की आहुति का उल्लेख है।

महापुरुष ईश्वर रूप माने जाते हैं। इस कारण उनके नाम के पूर्व उक्त संख्या अंकित करने की प्रथा है।

जैन–मत के अनुसार

जैन मत में भी अक्ष–माला में एक सौ आठ दाने रखने का विधान है। अन्तर इतना ही है कि वहाँ एक सौ आठ की संख्या गुणों पर आधारित है। जैन–परम्परा में अर्हन्त के बारह गुण सिद्ध के आठ गुण आचार्य के छत्तीस गुण, उपाध्याय के पचीस गुण एवं साधु के सत्ताइस गुण माने गये हैं। उन सबका योग एक सौ आठ होता है–

बारह गुण अरिहन्ता, सिद्ध अट्ठे च सूरि छत्तीसं।
उज्झाया पणवीसं साहु सत्र बीसं अट्ठसयं।।

पंच परमेष्टि के एक सौ आठ गुण होने के कारण ही, माला में एक सौ आठ दाने रखे जाते हैं। तीर्थंकर अवतार के एक सौ आठ नाम स्मरण रूप जपे जाते हैं। इन सब कारणों से जैन मत में भी एक सौ आठ की पवित्र मान्यता है।

▢

– विट्ठल नगर, खण्डवा– ४५०००१ (म.प्र.)

प्रचण्ड गर्मी में बीमारियों से कैसे निबटें

– डा० अनामिका प्रकाश

प्रचण्ड गर्मी के इस मौसम में धूल–मिट्टी, लू और मच्छर, मक्खी का जैसे ताण्डव होता है। इन दिनों बीमारियाँ तो फैलती ही हैं, मन में घबराहट की–सी स्थिति बनी रहती है। वैसे हर मौसम अपने साथ कुछ खूबियाँ और कुछ परेशानियाँ लाता है, लेकिन यह हम पर निर्भर है कि हम किस तरह हर मौसम की स्थितियों में अपने को स्वस्थ और सुन्दर बनाये रखें। गर्मियों के इस मौसम में कई प्रकार की बीमारियों से बचने के लिए हमें सबसे पहले स्वास्थ्य के सामान्य नियमों के अनुसार चलना पड़ेगा। स्वच्छता पर अधिक ध्यान देना होगा जैसे– दोनों समय नहाना, पसीने के कपड़े बदलना, नींद, विश्राम व सिर का भी ध्यान रखना, साथ ही खान–पान पर विशेष ध्यान देना।

इन दिनों हल्के रंगों के पसीना सोखने वाले, शरीर को हवा पहुँचाने वाले तथा ढीले–ढाले वस्त्रों को धारण करना अच्छा होता है। मच्छर, मक्खी से बचने के उपाय के लिए आस–पास पानी के गड्ढ़े हों, तो उसमें डीडीटी छिड़कें, खाने–पीने की वस्तुएँ ढककर रखें। ताजगी व शीतलता देने वाले पेय लें। गरम तासीर वाली वस्तुएँ बिल्कुल ही न लें।

लू से बचाव के लिए आम का पना लें। घर से बाहर खाली पेट न निकलें। इससे लू लगने का खतरा है। लू लगना बहुत खतरनाक है। इससे रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। घर से बाहर निकलना हो, तो खूब पानी पीकर निकलें। प्याज का रस पीकर भी निकल सकते हैं। धूप के लिए छाते व चश्मे का प्रयोग करें। कुछ समय धूप में रहने की अनिवार्यता हो, तो सिर पर सुखाया गीला तौलिया रखें।

घर को ठण्डा रखने के लिए फर्श पर पानी का छिड़काव अच्छा होता है। खस की टट्टी व कूलर का प्रयोग सुविधानुसार करें। पेट की बीमारियों से बचने के लिए स्वच्छता के साथ पेट को हलका रखना भी जरूरी है। सर्दी के दिनों की तरह तले व गरम पदार्थों का सेवन बिल्कुल नहीं करना चाहिए। साथ ही ठूँस–ठूँस कर खाने के बजाय भूख से जरा कम खाने की आदत डालनी चाहिए। इन दिनों छोटे बच्चों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि ये बड़ी जल्दी रोग का शिकार हो जाते हैं। छोटे बच्चों को नियम से रखने तथा स्वास्थ्य के नियम सिखाने से माता–पिता गरमी के रोगों से उनका बचाव कर सकेंगे। यदि फिर भी लापरवाही, छूत से या अन्य किसी कारणवश रोगों का सामना करना पड़े, तो घबराने की बजाय साहस, बुद्धिमानी व धीरज से काम लें। मलेरिया, टाइफाइड, चेचक, खसरा, हैजा, पेचिश व घमौरियाँ इस मौसम के मुख्य रोग हैं।

मलेरिया

यह रोग एनोफलीज जाति के मादा मच्छर के काटने से होता है। इससे बचने के लिए मच्छरदानी, अगरबत्ती या किसी अच्छी कंपनी की मच्छरनाशक लगाकर सोना अच्छा रहता है। सोते समय हल्के वस्त्र ही पहनें। गहरे रंग के (काले, नीले) वस्त्रों पर मच्छर अधिक मँडराते हैं। नीम्बू की शिकंजी का प्रयोग इन दिनों लाभकारी होता है, लेकिन मलेरिया के रोगी को यह न दें। जब घर में किसी को खूब जाड़ा लगकर बुखार आये, तो यह मलेरिया का प्रमुख लक्षण है। तुरन्त डाक्टर को सूचना दें। घरेलू उपाय में तुलसी व काली मिर्च की चाय लाभकारी मानी जाती है, पर सफाई, स्वच्छता, मच्छरों से बचाव व रोग के छूत से बचाव के उपाय करने चाहिए, हाँ, एक बात ध्यान देने योग्य है, जब तक बहुत अनुभवी न हों, चिकित्सा को अपने हाथ में कतई न लें।

टाईफाइड

इस रोग का कारण दूषित वायु और भोजन है। इसमें ज्वर सुबह से दोपहर व रात तक क्रमशः बढ़ता है ज्वर तीन या चार हफ्ते भी चल सकता है। रोगी थकावट अनुभव करता है तथा वह अशक्त हो जाता है। हालत बिगड़ने पर तेज सिरदर्द व उल्टी की शिकायत हो सकती है। अतः रोगी को अतिशीघ्र डॉक्टरी चिकित्सा दिलानी चाहिए बचाव के रोकथाम के लिए स्वच्छता के उपाय सभी संक्रामक रोगों की तरह किये जाने चाहिए।

चेचक, खसरा

भारत में तो अब चेचक पर विजय पा ली गयी है,

लेकिन चिकेन पॉक्स अब भी होता है। छोटे बच्चों में खसरा आम बात है इसमें जुकाम के साथ तेज बुखार होता है। फिर शरीर छोटे–छोटे लाल दानों से भर जाता है। बच्चा बहुत बेचैनी अनुभव करता है। यहाँ भी इन दोनों बीमारियों को डॉक्टर पर छोड़कर सामान्य बचाव व रोकथाम के उपाय करने चाहिए।

दूसरे बच्चों को रोगी बच्चे से बचाएँ। रोगी को अलग कमरे में रखें। रोगी के चादर के नीचे व नहाने के पानी में नीम के पत्ते डालें। कमरे में भी नीम के पत्ते गुच्छों के रूप में लटका दें। रोगी बच्चे के ठीक हो जाने के बाद भी उसे कुछ दिन डॉक्टर के निर्देशन में रखें। रोग के बाद बच्चा जिद्दी व चिड़चिड़ा हो जाता है। उससे प्यार, सहानुभूति व कौशल से काम लें. व सावधानी से उसे सम्हाले रहें। ठण्डी हवा से बचायें अन्यथा न्युमोनिया हो सकता है। तब रोगी को बचाना प्रायः असाध्य हो जाता है।

हैजा

यह एक संक्रामक रोग है, जो दूषित खाद्य पदार्थों से मक्खियों द्वारा फैलता है। एक बार फैल जाने पर कई व्यक्ति इसके चंगुल में आ सकते हैं। अतः हैजा न हो, इसके बचाव के साथ, हैजा हो जाने पर व अन्य व्यक्तियों में न फैले, इसका बचाव करना भी बहुत आवश्यक है। इसके लिए खाद्य पदार्थ हमेशा ढक कर रखें। पानी उबालकर, ठंडा करके पियें अथवा फिल्टर का प्रयोग करें। बाजार की खाने की वस्तुएँ बिल्कुल न खायें। भोजन ताजा, शुद्ध व हल्का करें। नालियों, कूड़ेदान में कीटनाशक दवा अवश्य छिड़कें। हैजे का संप्राप्तिकाल कुछ घंटे ही होता है। इसलिए डॉक्टर को तुरन्त सूचना दें। इस बीमारी में पतले दस्त व उलटियाँ होती हैं। प्यास अधिक लगती है, मूत्र कम आता है। बेचैनी बढ़ती है और नाड़ी मन्द होने लगती है। रोगी एकदम कमजोर हो जाता है। चिकित्सा तुरन्त न की जाए तो जान जाने का डर रहता है। रोगी की सेवा करनेवाले को भी बचाव का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

पेचिश

यह रोग भी दूषित खान–पान से या अपच से होता है। इस रोग में दर्द व मरोड़ के साथ रुक–रुक कर शौच होना, उसके साथ आँव व रोग बढ़ने पर खून भी गिरता है। बचाव के लिए पानी उबालकर पियें। रोगी को डॉक्टरी चिकित्सा दें। रोग के हल्के आक्रमण में घरेलू चिकित्सा के रूप में ईसबगोल की भूसी दही में मिलाकर दें। नमक व भुना जीरा व सोंठ का चूर्ण मिलाकर छाछ पीने को दें। मक्खियों से बचाव का विशेष ध्यान रखें।

घमौरियाँ

इन सब रोगों के अलावा गरमी में शरीर पर घमौरियाँ निकलती हैं। उमस वाली गरमी से बचने का उपाय करने या हवा में रहने पर इनसे बचा जा सकता है। घमौरियाँ निकल आयें तो उन पर चिकनी मिट्टी का लेप करें या बर्फ मलें एवं ठंडे पानी से नहाकर व पोंछ कर बदन पर टलकम पाउडर छिड़कें।

घमौरियाँ निकल आये तो नहाने के पानी में नीम की पत्तियाँ डालें। आधे घण्टे बाद उसी पानी से नहायें। नीम की नरम कोंपलों को पीसकर उसका रस निकाल कर एक चम्मच रोज पियें। ऐसा १५ दिन तक करें। इस दौरान नमक कम से कम खायें। नमक न खाएँ, तो बेहतर है। गरमी के दिनों में बच्चों को फोड़े–फुन्सियाँ भी अधिक निकलती हैं।

नीम की पत्ती के सेवन से लाभ होगा। इन दिनों चाय, कॉफी जैसे गरम पेय व मिठाइयों का सेवन न करें। पेट साफ व हल्का रखने की कोशिश करें। यदि फोड़े, फुन्सी ज्यादा निकल रहे हों, तो डाक्टर को अवश्य दिखायें। बड़े फोड़ों पर पुल्टिस का प्रयोग लाभकारी होता है, लेकिन पेट सफाई का ध्यान हर हालत में जरूरी है ताकि और फोडे–फुन्सियाँ न निकलें। ☐

– आर०बी०– २जी.एफ.बी रेलवे कालोनी, बाद (मथुरा)–६

पीसा की मीनार का झुकना घटा

विश्व के सात आश्चर्यों में से एक पीसा की मीनार के झुकाव की रफ्तार में आयी कमी को देखते हुए वर्ष २००१ के जून माह में इसे आम दर्शकों के लिए खोल दिया जायेगा। १२वीं सदी में निर्मित इस इमारत को दस साल पहले दर्शकों के लिए बन्द कर दिया गया था। इसके बाद इसे सीधा करने का प्रयास किया गया। इसकी स्थिति में सुधार का काम अब अन्तिम चरण में है। विशेषज्ञों ने स्मारक की नींव के नीचे से लगभग सौ टन मिट्टी निकाली है। मुख्य इंजीनियर पाओलो हेनीगर के अनुसार सुधार का काम पूरा होने पर इमारत २० इंच कम झुकेगी। दर्शकों के लिए खोलने से पहले इमारत को मजबूती प्रदान करने के लिए लगाये गये दस इस्पात के घेरों को हटा लिया जायेगा। ☐

समझ

– मदन मोहन पाण्डेय

रवि की समझ में कमला आज भी अबूझ पहेली थी। वह बिटर-बिटर कमला को निहार रहा था। साँवली औसत कद काठी की कमला सफेद बूटेदार साड़ी पहने चाय की भट्ठी पर से केतली उतारकर सामने बैठे ग्राहकों को देती जाती थी और गद्दी पर बैठा रवि बिस्कुट या डबल रोटी माँगने वाले ग्राहकों को निबटाने के साथ-साथ पैसे भी लेता जाता था। कमला की उम्र करीब ३० साल की होगी। भरी-भरी देह और मोती जैसे चमकते दाँतों में भी कोई आकर्षण हो सकता है और आकर्षण साँवले रंग या खुद से ही दो चार बरस अधिक उम्र पर हावी हो सकता है, आज से पहले रवि जान ही न सका था। किसी ने ठीक ही कहा है, किसी वस्तु का लगातार ध्यान करने से उसके प्रति लगाव हो जाता है, कामनाएँ जाग जाती हैं। क्या कमला के विषय में उसके साथ कुछ ऐसा ही तो नहीं हो रहा है? पहले तो ऐसी आकर्षक वह कभी लगी नहीं। यह भी नहीं है कि कमला ने अपना बनाव-सिंगार कुछ बढ़ाया हो। बस, वही सीधा-सादा जूड़ा, वही फुर्तीला शरीर, वही मेहनत की दिनचर्या। हाँ, अब वह रवि को हौसला बँधानेवाली बातें जरूर जब-तब कर देती है। उन बातों का सम्बल थकी जिन्दगी की डगर में जीने की कितनी ललक भर देता है, इसका रवि से अधिक प्रमाण और कौन होगा?

रवि के दिमाग में बीती घटनाएँ एक-एक कर कौंधने लगीं। अभी साल भर पहले वह इस शहर में आया था एक प्राइवेट कम्पनी में नौकरी पाकर। पगार ज्यादा नहीं, परन्तु खर्चा भी अकेले उसका था, इसलिए कम भी नहीं कही जा सकती। अच्छा खाने-पहनने के अलावा सुबह शाम आ जानेवाले मित्रों के चाय-पानी का ही खर्च था, जो आसानी से चल जाता था। बर्तन वगैरह साफ करने के लिए पड़ोस में ही रहने वाली कमला से कहा गया था और वह खुशी-खुशी तैयार होती हुई बोली थी– "मुझे क्या, जैसे चार घरों में काम करती हूँ, आपका भी कर दिया करूँगी।"

लेकिन कमला को रवि के यहाँ काम करने में कुछ विशेष लगाव-सा हो गया था। वह झाड़ू-बुहारू, बर्तनों की सफाई वगैरह करके, हाथ पाँव साफ करके कभी-कभी नल के पास बैठी-बैठी कमरे में होने वाली बहसों को देखा-सुना करती। जब रवि बोलता, तो उसे उसके बात करने का ढंग बड़ा अच्छा लगता। हालाँकि रवि ने इस बात पर कभी गौर नहीं किया था, न कमला को ज्यादा भाव दिया था। हाँ, इतना जरूर कहा जा सकता है कि कमला रवि के काम को तरजीह देती थी। किसी दूसरे का काम करने में भले ही देर हो जाये; किन्तु रवि को कभी शिकायत का मौका नहीं मिला था। हारी-बीमारी में वह खाना भी बना देती थी।

महीने दो महीने बीत जाने पर उसने रवि से कहा था– "थोड़ी फिजूलखर्ची बन्द करो। गाढ़े वक्त के लिए चार पैसे बचाकर रखने चाहिए। यहाँ तुम्हारा कौन बैठा है, जो जरूरत पर काम आयेगा? यार दोस्त और दुनिया तभी तक सुहानी लगती है, जब तक अपनी गाँठ में चार पैसे हों। हाथ खाली होने पर कोई मुँह नहीं बोलता। दुनियाँ तुरन्त आँखें फेर लेती है। बड़े-बड़े सगे मुँह बचाकर निकल जाते हैं।

रवि-कमला की बात पर हँस भर देता था। वह सोचता था, घर-घर में काम-काज करनेवालों को दूसरों को ऐसे उपदेश देने की सनक रहती है; उसी झोंक में कमला भी ऐसा कह रही है। प्रकट में कहता– "तुम्हारी बात ठीक है, लेकिन आदमी जिस समाज में रहता है, उसी के हिसाब से जीना पड़ता है। फिर अभी जिन्दगी भर कमाना ही है। कौन खर्चे लगे हैं? अकेला ठूँठ आदमी, आगे नाथ न पीछे पगहा। जब कोई खाने-पीने वाला होगा, कंजूसी भी कर लूँगा।"

कमला कहती– "जो मेरी समझ में आया, कह दिया, बाकी जैसी आपकी मर्जी। मैं कौन होती हूँ कहने-सुनने वाली?" बात पूरी होते-होते कमला की आँखें तरल हो जातीं; परन्तु रवि को यह देखने की फुर्सत कहाँ थी। साड़ी से चेहरा पोंछते-पोंछते कमला नम आँखें पोंछ लेती और बात आयी-गयी हो जाती।

रवि को कमला की बात सही तो उस दिन लगी, जब बड़े साहब के एक रिश्तेदार को नौकरी देने के लिए

झूठे–सच्चे आरोप लगाकर रवि को नौकरी से किनारे कर दिया गया।

अब रवि के सामने दुनिया अंधेरी थी। वह कुछ बचा पाया नहीं था। साल भर की नौकरी में जिन भैया–भाभी को एक पैसा नहीं दिया, उनके पास लौटने को मन नहीं कर रहा था। खाने–पीने वाले दोस्तों से कोई उम्मीद रह नहीं गयी थी; क्योंकि वे उसके निकाले जाने की बात सुनकर उससे मिलने से भी कन्नी काटते रहे। साँझ को जब वह घर आया, तो उसके पाँव जैसे पराये हो रहे थे। लग रहा था, वह जिन्दगी की बाजी हार गया हो। उसके आने के साथ ही कमला भी घर आयी थी और बिना कपड़े बदले, चारपाई पर कटे पेड़ की तरह ढहते रवि को देखकर उसे किसी अनहोनी का अहसास हो गया था। रवि दुबला–पतला तो पहले से ही था, उस दिन उसके चेहरे की चमक भी गायब थी। लग रहा था जैसे उसे पाला मार गया हो। कमला ने पूछा– "क्या सिर दर्द कर रहा है? चाय बना दूँ?"

रवि के चुप रहने पर जब उसने दोबारा यही प्रश्न किया और कहा– "कोई दवा वगैरह ले आऊँ।" तो रवि ने कहा था– "कमला, मुझे ऐसा सिर दर्द है, जिसकी दवा किसी के पास नहीं है। तुम्हारी बात मानी होती, तो आज यह दिन देखना नहीं पड़ता। नौकरी चली गयी थी, कोई बात नहीं। गाँठ में चार पैसे होते, तो कोई काम किया जा सकता था। एक मुश्किल यह है कि कोई छोटा–मोटा काम यहाँ करना मुझे अच्छा नहीं लगेगा। और पैसे उतने भर को भी नहीं हैं।"

कमला ने साफ–साफ देखा, हर समय काफी मजबूत दिखने वाला रवि जैसे इस समय टूटकर बिखर रहा था। जिसने उसकी नम आँखों पर कभी ध्यान नहीं दिया, आज खुद उसकी आँखें नम हो रही थीं। वह धीरे–धीरे रवि का सिर सहलाने लगी थी। रवि को लग रहा था, इस स्पर्श में ऐसा अपनापन है, जैसा उसने कभी अनुभव नहीं किया। माँ के हाथ की छुवन तो उसे पता नहीं है; क्योंकि वे उसके छुटपन में ही मर गयी थीं। पत्नी या प्रेमिका का स्पर्श समझने का कभी योग ही नहीं आया और बहन उसके थी नहीं। उसकी कल्पना में सारे बिम्ब एक दूसरे में मिल गये। उसे लगा, कमला का स्पर्श अपनेपन का स्पर्श है। वह कुछ देर आँखें बन्द किये पड़ा रहा। उसे लग रहा था, मतलबी दोस्तों से कई गुनी अच्छी यह मेहनतकश औरत है, जो पढ़ी–लिखी भले ही कम हो, पर मानवीय संवेदना से भरी है।

वह यह सोच ही रहा था कि कमला ने चाय का प्याला सामने स्टूल पर रख दिया और एक दर्द–निवारक गोली देती हुई बोली– "उठो, चाय पी लो। आगे जो होगा, ठीक ही होगा।"

रवि का मन नहीं था; किन्तु वह चाय का प्याला उठाते हुए बोला– "ठीक क्या होगा? मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है, जिन्दगी कैसे कटेगी?"

"अपने पर विश्वास रखो। इनसानी हाथ ऐसे रत्न हैं, जिनका कोई मोल नहीं। तुम्हारे पास हाथ–पाँव हैं, जहाँ चलाओगे, कुछ न कुछ पैदा करोगे। दिल छोटा करने से जिन्दगी का हौसला जाता रहता है। काम करोगे, तो कुछ न कुछ कमाओगे ही। नौकरी में क्या कोई मुफ्त में दे देता था" कमला बोली।

उस दिन कमला ने रवि के लिए खिचड़ी बना दी। खाते समय भी रवि के चेहरे पर दर्द और अवसाद की लकीरें साफ झलक रहीं थीं। उसका मन अधीर हो रहा था। वह बोला– "कमला! मेरा दुनिया में कोई नहीं है। किसी से कोई उम्मीद नहीं है। मन करता है लाचार जिन्दगी से तोबा करके मौत को गले लगा लूँ।"

"खबरदार! अगर दोबारा ऐसी बात भी की। मैं भी अकेली हूँ, आगे–पीछे कोई नहीं। तो क्या मैं जान दे दूँगी। बापू बचपन में ही नहीं रहे। माँ मेरी शादी के सपने देखते–देखते बस के पहिए के नीचे आ गयी, तब जान नहीं दी। जवान भाई मरा, तब जान नहीं दी। मैंने औरत होकर हिम्मत नहीं हारी और तुम मर्द होकर हिम्मत हार रहे हो?" कमला ने उसे ऐसे झिड़कते हुए समझाया जैसे नासमझ बच्चे को समझाया जाता है।

"फिर आखिर मैं करूँगा क्या? बिना पूँजी के कोई काम तो होगा नहीं।" रवि ने अपनी लाचारी प्रकट की।

"काम होगा और होकर रहेगा। पहली बात तो यह कि तुम अपने मन से काम के छोटे या बड़े होने का वहम निकाल दो। मेरे पास कुछ जमा–पूँजी है। एक लकड़ी का खोखा किराये पर लेकर चाय की दूकान खोल दूँगी। तुमसे जो हो सके, हाथ बँटाना। बाकी काम मैं कर लूँगी। यों ही जूठे बर्तन धोती हूँ, ग्राहकों के धोने में भी मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। बल्कि यहाँ चार घरों में चार बातें सुननी पड़ती हैं। वहाँ अपना काम होगा। मन आया, उतनी देर दुकान चलायी, मन हुआ तब बन्द कर दी। तुम सिर्फ हिसाब–किताब ही देख लेना बैठे–बैठे, बाकी सब मैं देख लूँगी। मैं समझती हूँ, इस तरह हम दोनों के खाने भर का इन्तजाम हो जायेगा। हम किसी के नौकर नहीं होंगे। अपना काम पहले छोटा

होगा, बाद में बड़ा भी हो जायेगा" कमला ने अपनी योजना समझायी।

रवि को प्रतीत हुआ, कमला की बात में काफी दम है। बात करते हुए उसके चेहरे पर जो आत्म-विश्वास था, अपनी निराशा में वह उसे भला लगा। वह आश्वस्त होकर सोया।

अगले दिन वास्तव में कमला एक खोखा तय कर आयी थी। जरूरी बर्तन और सामान खरीद कर दूसरे दिन उसने काम शुरू कर दिया। दुकान पर ही दो टूटी-फूटी बेन्चें मिल गयी थीं और काम चल निकला था। आस-पास केवल बिरंची की चाय की दूकान थी, जो नकचढ़ा और चिड़चिड़ा होने के साथ-साथ चाय भी अचछी नहीं बना पाता था। आफिस के लोगों ने उम्दा चाय तथा बैठने की सही व्यवस्था देखी, तो कमला की दुकान पर ही आना शुरू कर दिया। यद्यपि इन लोगों में ऐसे लोग भी थे, जो कमला को घूरने से भी बाज नहीं आते थे और रवि को भी यह बात अच्छी नहीं लगती थी, परन्तु कमला ऐसे लोगों को भाव नहीं देती थी। इस बात से रवि को खुशी होती थी।

रवि को लगा, कमला में भी कोई आकर्षण है, जो मैली नजरवाले बाबुओं को उसकी ओर ताकने पर मजबूर करता है। उसे कहीं यह भी लगा की कमला उससे प्रेम करती है। नहीं तो उसे क्या फिक्र थी रवि के लिए इतनी भागदौड़ करने की। यह अविवाहित है। किसी बाहरी आदमी के साथ इतना गहरे तक जुड़ना औरत के हृदय में छिपी हुई चाहत का ही नतीजा हो सकता है। उसके प्रति अपने रूखे मन पर अफसोस हुआ, जो औरत उसके लिए इतना सब कुछ कर रही है, उसके लिए रवि को भी कुछ सोचना चाहिए। कमला स्वर्ग की अप्सरा न सही, लेकिन औसत कद-काठी की मजबूत और औसत से अधिक गठे शरीर की स्वामिनी है। तन का रंग भले ही साँवला है, लेकिन मन कितना उजला है? सुलज्ज इतनी कि अपने आकर्षण को कभी प्रकट नहीं होने दिया। अब उसका फर्ज है कि वह कमला के मौन की भाषा समझे। कमला जैसी गम्भीर औरत अपने मुँह से ऐसी बात थोड़े ही कह सकती है।

यह सोचते ही रवि का मन हल्का हो गया। वह कमला की खुशी का कारण बन सकता है, यह सोचकर उसे तसल्ली हुई।

साँझ को उसने कमला से कहा- "हम लोग अलग-अलग रह कर बेकार ही किराया दे रहे हैं। एक घर में मजे से गुजर हो सकती है। कुछ पैसा भी बचेगा। तुम्हें भी दो जगह खटर-पटर नहीं करनी पड़ेगी। खाना तो पहले ही यहाँ बनता है।"

उसकी बात पर कमला हँसी, चाँदनी जैसी महमहाती हँसी-हँसती हुई वह बोली- "अब तो तुम खासे समझदार हो गये हो। मुझे तो यह बात पहले ही सोच लेनी चाहिए थी। इस तरह वाकई चार पैसे बचाये जा सकते हैं और उन पैसों से ब्याह-वाह का खर्च चल सकता है।"

रवि उसकी हँसी से तरंगित हो उठा था। वह बात का अर्थ अपने अनुकूल लगाता हुआ बोला- "जब हम लोग एक घर में रहने लगेंगे, तो शादी के बखेड़े की क्या जरूरत है? मन मिल जाये, तो जन्म-पत्री मिलाने की क्या जरूरत है? मैं तो यो ही तुम्हारा गुलाम बन गया हूँ। तुमसे ब्याह के लिए न दहेज की जरूरत है, न ताम-झाम के खर्च की। हमारी शादी तो यों हो गयी समझो।" कहते हुए रवि ने चुटकी बजाई और कमला का हाथ पकड़ कर उसे अपनी बाँहों के घेरे में लेने को उतावला हो उठा।

रवि के हाथ को बिजली का-सा झटका लगा। कमला उसे छिटक कर कमरे के दरवाजे पर जा खड़ी हुई। उसका मुँह तमतमा रहा था। आँखों में आँसू भरे थे और वह कह रही थी- "रवि! तुम कभी यह मत समझना कि मैं तुम्हारी जवानी पर मर मिटी हूँ। इस तरह मर मिटने के लिए सोचने का वक्त ही मुझे नहीं मिला। मैं तो तुम्हारी ओर इसलिए खिंच आयी कि तुम्हारी शक्ल मेरे भाई से हूबहू मिलती है और अब वह इस दुनिया में नहीं है। वह भी तुम्हारी ही तरह अलमस्त था। मुझे लगा, तुम्हारे रूप में मुझे अपना भाई ही मिल गया है। इसीलिए तुम्हें फिजूलखर्ची से रोकती थी और इसीलिए चाय की दुकान पर मैली नजरों का सामना करती हूँ। मुझे अपनी नहीं तुम्हारी शादी की फिक्र है। समझती थी, तुम्हें सेहरा बाँधे देखकर अपने भाई को सेहरा बाँधे देख लूँगी; परन्तु तुम बात का गलत अर्थ लगा बैठे।" कहती हुई कमला रसोई में जाकर खटर-पटर करने लगी।

रवि सोच रहा था कि कमला की ममता की छाँह किसी भी रूप में उसे मिलती रहे। कमला का यह रूप उसे और महिमामय लगा। कमला जैसी साधारण स्त्री के मन में ऐसे भावों का खजाना है, जो उसे इन्सानियत की दौलत से मालामाल कर गया है। उसे अपनी क्षुद्रता पर हँसी आयी और तरस भी, और लगा, कमला उसकी नादानी को जरूर माफ कर देगी। ❑

– ग्राम-मसीत, डाकघर- साण्डला, जनपद-हरदोई

हिन्दी को समृद्ध करने में जीवन लगाया था डा. बाहरी ने

गत ३१ मार्च को ६१ वर्षीय डॉ. बाहरी नहीं रहे। एक जनवरी १६०७ को पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान में) के कस्बे तलागंज में जन्में थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा अपने पैतृक कस्बे में ही हुई। माध्यमिक स्तर की शिक्षा रावलपिण्डी में पूरी करने के बाद वे उच्च शिक्षा के लिए लाहौर आ गये। लाहौर के पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक, स्नातकोत्तर (इतिहास) और संस्कृत में एम.ओ.एल. (मास्टर ऑफ ओरियन्टल लर्निंग) करने के बाद १६४१ में उन्होंने इसी विश्वविद्यालय से पी–एच.डी. की डिग्री प्राप्त की।

१६४३ में डॉ. बाहरी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डी.लिट् के लिए पंजीयन कराया। इस दौरान १६३१ से हीवेट लाहौर के चीपस कालेज में शिक्षण कार्य भी करते रहे। १६४५ में उनको इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी.लिट् की उपाधि मिली। तब तक वे लाहौर में ही रहे, मगर १६४७ में देश के बँटवारे के समय आखिरकार उन्हें लाहौर छोड़ना पड़ा और वे इलाहाबाद आ गये। यहाँ आने के कुछ समय बाद ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उन्हें प्रवक्ता के रूप में नियुक्ति मिली और यहीं से १६७७ में उन्होंने एक प्रोफेसर के रूप में अवकाश ग्रहण किया। इस बीच १६६१ से ६३ तक वे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष भी रहे, लेकिन उन्हें यह विश्वविद्यालय भाया नहीं, अतः वे पुनः इलाहाबाद विश्वविद्यालय आ गये। डॉ. बाहरी का मूल शोधकार्य ध्वनि–विज्ञान और बोलियों का अध्ययन है, लेकिन उन्होंने एक कोशकार के रूप में जितना विस्तृत, व्यापक और असाध्य कार्य किया, उसकी तुलना सिर्फ फादर कामिल बुल्के से ही की जा सकती है। डॉ. बाहरी ने हिन्दी को न केवल एक समृद्ध भाषा का दर्जा दिलाया; वरन् उन्होंने अपनी द्विभाषी कोशों से हिन्दी को भी अंग्रेजी, रूसी, जर्मन आदि समृद्ध कही जाने वाली भाषाओं के समकक्ष ला खड़ा किया। डॉ. बाहरी ने भाषा, साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी करीब दो दर्जन पुस्तकों की रचना कीं और विभिन्न भाषा बोलियों के करीब ढाई दर्जन कोश तैयार किये। इन कोशों में रूसी–हिन्दी शब्द कोश, जर्मन–हिन्दी तथा हिन्दी जर्मन–कोश भी शामिल हैं। इसके अलावा तीन शब्दकोश निर्माणाधीन थे। साथ ही डॉ. बाहरी के सौ से अधिक शोध निबन्धों और पर्चों का प्रकाशन हो चुका है। डा. बाहरी पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष परिमल के संयोजक और हिन्दुस्तानी एकेडेमी के उपसचिव रहे। उन्होंने 'अग्रहणी', 'अनुशीलन' तथा 'हिन्दुस्तानी' का संपादन भी किया। उनके द्वारा हिन्दी भाषा समृद्ध करने की दिशा में किये गये उत्कृष्ट कार्यों, विशेष रूप से कोशकारी के लिए १६८२ में पंजाब सरकार ने उन्हें 'शिरोमणि साहित्यकार' की उपाधि दी। १६८३ में उनको 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि मिली। १६८३ में ही बिहार सरकार ने नकद पुरस्कार से सम्मानित किया। १६८६ में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा १६६० में उत्तर प्रदेश सरकार ने भी नकद पुरस्कारों से डॉ. बाहरी का सम्मान किया। पिछले वर्ष मार्च में भारतीय परिषद ने डा. बाहरी के नब्बे वर्ष की आयु पूरी होने पर उनका भव्य अभिनन्दन और सौष्ठव पूजन किया था। हिन्दी की समृद्धि में आजीवन संलग्न रहे इस महान कोशकार को 'राष्ट्रधर्म' शतशः नमन करता है।

हाकी ओलंपियन ऊधम सिंह नहीं रहे

भारतीय हाकी के जाने–माने खिलाड़ी ओलंपियन ऊधम सिंह का गत मार्च में उनके गाँव संसारपुर में हृदयगति रुक जाने से निधन हो गया। वह ७२ वर्ष के थे।

१६५२ से १६६४ तक हेलसिंकी, मेलबोर्न, रोम और टोक्यो में भारतीय हाकी टीम में फारवर्ड के रूप में खेल चुके ऊधम सिंह के गाँव संसारपुर को हाकी की पौधशाला माना जाता है, क्योंकि इस गाँव ने अनेक ओलंपिक खिलाड़ी निकाले हैं।

अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित होने वाले पहले खिलाड़ी ऊधम सिंह चार ओलंपिक में खेलने वाले दूसरे भारतीय थे लेकिन हाथ में चोट के कारण पाँचवें ओलंपिक में भाग नहीं ले सके थे। 'राष्ट्रधर्म' का हाकी के इस वरिष्ठ ओलम्पिक खिलाड़ी की स्मृति को सादर प्रणाम। ❑

जब श्रीलंका में प्रथम चैत्य बना

– जनार्दन सिंह

'मैं तो बुद्ध की शरण में आ गया हूँ, मैं धर्म की शरण में आ गया हूँ, मैं संघ की शरण में आ गया हूँ। मैंने शाक्य पुत्र के धर्म का अनुयायी बनने की प्रतिज्ञा कर ली है। ऐ मनुष्यों के शासक! तुम भी अपने मन को त्रिरत्न की शरण (बुद्ध, धर्म, संघ) लेने के लिए तैयार करो। यह शब्द आज से लगभग दो हजार दो सौ पैंतीस वर्ष पूर्व मगध के सम्राट् अशोक ने ताम्रपर्णी (श्रीलंका) की राजधानी अनुराधापुर से आए शिष्टमण्डल के प्रधान महाअरिष्ट से ताम्रपर्णी के सम्राट् देवानांप्रिय तिष्य" को संदेश रूप में भेजे।

कहा जाता है कि इससे पूर्व दोनों सम्राटों ने एक दूसरे को कभी देखा न था; पर अशोक के महान् क्रिया–कलापों ने ताम्रपर्णी के सम्राट् को उसका भक्त बना दिया। अशोक को वह अपना आदर्श मानता था। देवानांप्रिय तिष्य नाम भी उसने उसके गुणों से प्रभावित होकर अपनाया। इन दोनों में परस्पर अमित सौहार्द भाव विद्यमान था। अपना और अपनी प्रजा का मार्गदर्शन करने हेतु ही उसने एक दूत–मण्डल मगध की राजधानी पाटलिपुत्र भेजा था।

मित्रता को राजनैतिक मोहरा समझकर प्रयोग करने वाले सम्राट् संसार में उस काल में भी थे। उस समय बन्दूक की नली से न सही, तलवार की नोक से शक्ति पैदा होती थी। यूनान का सिकन्दर तलवार की तीखी धार से ही राजनैतिक और धार्मिक विश्व विजय प्राप्त करना चाहता था। अशोक भी अपने शासन के प्रारम्भिक काल में उक्त विचारों को ही अपने मन–मस्तिष्क में पाले हुए था। कलिंग के युद्ध की बिभीषिका एवं नरसंहार ने उसके कठोरतम ह्रदय को पिघला दिया। कलिंग घटना के बाद पाटलिपुत्र की गंगा और सोन नदियों से जो पयस्विनी निर्झरणी बही, उसने भारतवर्ष के आसपास के राज्यों एवं उनके निवासियों को अभिभूत कर दिया। पयस्विनी का मूल स्रोत था भगवान् तथागत की अमृतमयी वाणी और विश्वबन्धुत्व के अमर उपदेश, जिनका संवाहक बना सम्राट् अशोक और उसका पुत्र व पुत्री।

जिस समय लंकाधिपति देवानांप्रिय तिष्य ने अशोक की सेवा में एक दूत मण्डल भेजा था। ठीक उसी समय पाटलिपुत्र में बौद्धों की तृतीय संगति का आयोजन हुआ था। संगति के अध्यक्ष पद पर मोदगलिपुत्र आसीन थे। सम्राट् अशोक ने अपने गुरु मोदगलिपुत्र को ताम्रपर्णी से आये दूत–मण्डल की आकांक्षाओं से अवगत कराया। इसी समय निश्चित हुआ कि महात्मा बुद्ध का सन्देश ले जाने के लिए विविध देशों में भिक्षुक भेजे जायें। इसी के अनुसार नौ प्रचारक मण्डल तैयार किये गये। इन मण्डलों के नेताओं के नाम 'दीपवंश' और 'महावंश' दोनों में संगृहीत हैं। नवें मण्डल का नेता महिन्द (महेन्द्र–अशोक का पुत्र) को बनाया गया, जिसका क्षेत्र श्रीलंका था।

लंका जाने से पूर्व महेन्द्र वेद–गिरि में अपनी माता से मिला और उसके भतीजे "भन्दु" को धर्म में दीक्षित कर श्रीलंका ले गया। महावंश में इस प्रकार की कथा आती है। महेन्द्र अपने चार साथियों सहित लंका में मिश्रक (फलीरूप मिस्सक) पर्वत पर पहुँचा। इस समय देवानांप्रिय तिष्य अपने ४००० अनुयायियों के साथ हरिण के शिकार करने में लगा हुआ था। यह हरिण भागते–भागते मिश्रक पर्वत पर पहुँचा, उसके पीछे सम्राट् और उसके अनुयायी भी, पर यहाँ आकर हरिण लुप्त हो गया। तिष्य को देखकर महेन्द्र कहने लगा "तिष्य! हम भगवान् तथागत का सत्य संदेश सुनाने के लिए आपके पास पहुँचे हैं।" राजा ने और कई प्रश्न पूछे। महेन्द्र ने उनका उत्तर बड़ी बुद्धिमत्ता से दिया। महेन्द्र के उपदेश से प्रभावित होकर तिष्य और उसके ४००० साथियों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

अगले दिन तिष्य ने महेन्द्र को राजधानी अनुराधापुर आने का निमन्त्रण दिया। राजधानी में जहाँ महेन्द्र ठहरे, व्रहाँ बौद्धों का प्रथम चैत्य बनवाया गया। इसे आज भी "दागोबा" कहा जाता है (सर्वप्रथम चैत्यको दगोबा कहते हैं) राजमहल की स्त्रियों के साथ राजकुमारी ने बौद्ध संघ में प्रविष्ट होने की इच्छा प्रकट की। महेन्द्र ने इस सम्बन्ध में राजा को स्पष्ट किया, महाराज! भिक्षुस्त्रियों को दीक्षा नहीं दे सकते। भिक्षुणियाँ ही स्त्रियों को दीक्षित कर सकती हैं। पाटलिपुत्र में मेरी बहिन सम्राट् अशोक की पुत्री संघमित्रा विदुषी भिक्षुणी है। यदि आप सम्राट् से प्रार्थना करें, तो वह यहाँ आकर अनुला को संघ में प्रविष्ट कर सकती है।

मित्रता की भित्ति को दृढ़ता प्रदान करने के लिए तिष्य के सन्देश पर सम्राट अशोक ने अपनी एकमात्र पुत्री संघमित्रा को भी श्रीलंका भेज दिया। तिष्य ने इस बार भारतवर्ष के दूतमण्डल से बोधिद्रुम की शाखा लाने को भी कहा था। अशोक ने बहुत सावधानी एवं सत्कार के साथ

बोधिद्रुम की शाखा श्रीलंका को रवाना की और उनके ही आदर से तिष्य ने उसे स्वीकार किया। टोरनर्स लिखित ग्रन्थ "महावंश" के पृष्ठ ७७ पर इसका इस प्रकार वर्णन है– "सुवर्ण कुठार से बड़े समारम्भ के साथ बोधिद्रुम की शाखा काटी गयी। फिर सोने के एक गमले में इसे रखकर जहाज पर रखा गया। जब जहाज चलने लगा, तो एक योजन की परिधि तक समुद्र में लहरें शान्त हो गयीं। चारों ओर पाँच रंग के फूल खिले हुए थे। वायु में विविध प्रकार की रागिनियाँ गूँज रही थीं। असंख्य देवता असंख्यों उपहार भेंट कर रहे थे, परन्तु नागों ने अपने चमत्कार द्वारा बोधिद्रुम की शाखा पर अधिकार करना चाहा। तब संघमित्रा ने सुपर्ण बनकर सबको डरा दिया। सब नागों ने मिलकर उसका सत्कार किया और नागों के राजा ने उसे बहुत से उपहार भेंट किये।"

इस शाखा को श्रीलंका के महाविहार में स्थापित किया गया। इस अवसर पर बहुत बड़ा उत्सव किया गया, जिसमें सार्वजनिक रूप से भारत के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गयी। भगवान् तथागत तथा पवित्र बोधिद्रुम को साक्षी मानकर तिष्य और राजधानी के नागरिकों ने अपने हाथों को ऊँचा उठाकर यह शपथ ली कि हम सन्मार्ग पर चलेंगे, संघ की गणतन्त्र प्रणाली का अनुसरण करेंगे, अहिंसा हमारे शासन का कवच होगा, पड़ोसी हमारा सहोदर और हम उसके अनुयायी बने। "जयमहाबोधि" के रूप में अनुराधापुर में यह आज भी अपनी पावन मित्रता का संदेश व उस काल की प्रतिज्ञा लंकावासियों को सुना रहा है। यह लंका में सबसे पुराना ऐतिहासिक वृक्ष है। देश–देशान्तरों के तीर्थ–यात्री इसके दर्शन करने यहाँ आते हैं। फाह्यान ने श्रीलंका की यात्रा के समय इसके दर्शन किये थे। श्रीलंका व भारत की मित्रता को दृढ़ता प्रदान करने के लिए अनेक दूतमण्डलों का आदान–प्रदान हुआ।
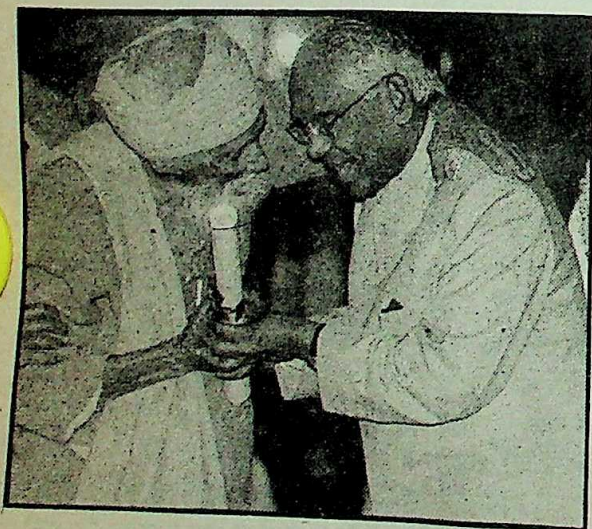
१२४ वर्षीय वयोवृद्ध स्वामी कल्याणदेव को पद्मभूषण देते हुए राष्ट्रपति के०आर० नारायणन। श्री देव पिछले एक सौ वर्ष से ग्रामीणों की सेवा में लगे हुए हैं।

संघमित्रा ने लंका पहुँचकर अनुला और उसकी ५०० सहेलियों को बौद्ध–धर्म में दीक्षित किया। संघमित्रा के लिए सम्राट् ने एक "उपासिका बिहार" बनवाया। २०७ ईसा पूर्व ३८ वर्ष की अवस्था में तिष्य की मृत्यु हो गयी। बाद में उसका भाई उत्तीय सम्राट् बना। उत्तीय के राजसिंहासन पर बैठने के आठवें वर्ष धर्म–प्रचार करते–करते महेन्द्र परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इसके एक ही वर्ष बाद संघमित्रा का देहावसान हो गया। कितने जानते हैं कि महेन्द्र और संघमित्रा भारत और श्रीलंका की मित्रता की नींव के प्रथम प्रस्तर थे।

भिक्षु महेन्द्र एवं भिक्षुणी संघमित्रा के देहावसान के बाद श्रीलंका के सिंहली एवं तमिल सम्राटों व दोनों वर्ग की जनता ने दिल खोल कर धन देकर आम्रस्थल (पाली रूप पब्बत) तथा अम्बमालक में मन्दिर (यहीं महेन्द्र का अन्तिम संस्कार किया गया था) बनवाये। उन मन्दिरों में इन दोनों की स्वर्ण प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं। प्रति वर्ष कार्त्तिक मास के आठवें दिन महेन्द्र व संघमित्रा की मूर्त्तियों की पूर्ण समारोह के साथ शोभा–यात्रा निकाली जाती है। भगवान् बुद्ध एवं महेन्द्र के उपदेशों का पाठ होता है। प्रत्येक बौद्ध मतावलम्बी, वह चाहे सिंहली हो या तमिल, 'सवा दो हजार साल पहले मित्रता के सूत्र में बँधे दो देश' यह यादकर नतमस्तक होता है, उन मूर्तियों के सामने। श्रीलंका के सिंहली एवं तमिल नागरिक देश में छाए जातीय द्वेष के भ्रम के मेघों को फाड़कर कार्त्तिक मास के आठवें दिन का पर्व बुद्ध एवं महेन्द्र को उचित श्रद्धांजलि देने के लिए समारोह से मिलकर मनाएँ और अटूट मित्रता की शपथ, जो अनुराधापुर में पवित्र बोधिद्रुम की स्थापना के समय सर्वजातीय लोगों ने ली, उसका निर्वाह करें। "भगवान् तथागत का यह प्रथम उपदेश कोई भूलने न पाये, जो श्रीलंका के प्रत्येक चैत्य व विहार में अंकित हैं–

"भिक्षुओ! अब तुम लोग जाओ और बहुतों के कुशल के लिए संसार पर दया के निमित्त देवताओं और मनुष्यों की भलाई, कल्याण हित के लिए भ्रमण करो। तुम उस सिद्धान्त का प्रचार करो, जो आदि में उत्तम है, मध्य में उत्तम है और अन्त में उत्तम है। सम्पन्न पूर्ण तथा पवित्र जीवन का प्रचार करो।" (महावग्ग– १.२.३) ❐

– १२ बी, दारुलशफा, लखनऊ

नई सहस्त्राब्दि के नये प्रयास सबका हो अपना आवास।

वर्ष 1999-2000 की उपलब्धियाँ

आपकी आकांक्षाओं को सकारात्मक रूप देने के लिए दृढ़ संकल्प

- नई आवासी योजनाओं हेतु भूमि अर्जन:- लखनऊ महानगर के दक्षिण की ओर लखनऊ-रायबरेली राष्ट्रीय मार्ग पर उ0प्र0 आवास एवं विकास परिषद द्वारा "वृन्दावन" नाम का एक उप नगर विकसित किया जा रहा है। जिसके अन्तर्गत चार योजनाओं में 2607 एकड़ भूमि अर्जित की जानी प्रस्तावित है। जिसमें से दो योजनाओं के अन्तर्गत 1135.73 एकड़ भूमि का कब्जा प्राप्त हो चुका है। पाण्डेयपुर योजना वाराणसी में 57 एकड़, फैजाबाद रोड योजना आजमगढ़ में 22 एकड़, भरौली बाजार योजना, देवरिया में 20 एकड़ भूमि पर कार्य शीघ्र प्रारम्भ किया जा रहा है। वर्तमान में परिषद के कार्य क्षेत्र में 137 नगर अधिसूचित किये गये हैं जिसमें से 78 नगरों में परिषद द्वारा आवासीय योजना में भूमि अध्याप्ति की कार्यवाही की गई है। जिसके विरुद्ध 71 नगरों में भूमि का भौतिक कब्जा प्राप्त हो चुका है तथा 7 नगरों में भूमि अध्याप्ति की कार्यवाही प्रगति पर है।
- विभिन्न शहरों में पंजीकरण की स्थिति:- वर्तमान में परिषद की विभिन्न 47 योजनाओं में सामान्य पंजीकरण के अन्तर्गत माह दिसम्बर, 99 के अन्त तक विभिन्न श्रेणी के भवनों/भूखण्डों हेतु कुल 8168वैध पंजीकरण अवशेष रह गये हैं। इन व्यक्तियों को केन्द्रवार भवन/भूखण्ड उपलब्ध कराने हेतु कार्यक्रम निर्धारित कर लिया गया है। दिसम्बर, 99 तक परिषद द्वारा 1,94,551 सम्पत्तियाँ तैयार की गई जिसमें से 1,80,431 सम्पत्तियों का आवंटन किया जा चुका है।
- आश्रय योजना:- प्रदेश सरकार की नयी आवास नीति के अंतर्गत समाज के ऐसे गरीब एवं निर्बल लोगों को जिन्हें उनकी क्रय क्षमता के अनुसार अभी तक आश्रय नहीं उपलब्ध हो पाये हैं और वह सड़कों की पटरियों, नदियों एवं नालों के किनारे सार्वजनिक भूमि अथवा प्रदूषित वातावरण में रह रहे हैं, उन्हें रु. 5.00, रु.10.00, रु.15.00 प्रतिदिन के भुगतान पर आश्रय उपलब्ध कराने की योजना माननीय श्री लालजी टण्डन, मंत्री, आवास एवं नगर विकास, उ0प्र0 के कुशल मार्गदर्शन में बनायी गयी है।

  वित्तीय वर्ष 99-2000 के 20000 नग भवनों/भूखण्डों के निर्माण/विकास के लक्ष्य में से 10000 भवनों को इस योजना के अन्तर्गत लक्ष्य रखा गया है इसके सापेक्ष 7000 नग दुर्बल आय वर्ग एवं 450 नग अल्प आय वर्ग कुल 7450 नग भवनों को 20 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्तमान वित्तीय वर्ष के लिए लक्ष्य बनाया गया है। इसके विरुद्ध माह दिसम्बर, 99 तक 974 नग भवन पूर्ण/प्रगति पर हैं।
- भाउराव देवरस योजना:- वित्तीय वर्ष 99-2000 के 20000 नग भवनों/भूखण्डों के निर्माण/विकास के लक्ष्य में 5000 भवनों को इस योजना के अन्तर्गत लक्ष्य में रखा गया है। जिसके विरुद्ध माह दिसम्बर, 99 तक 3783 नग भवन पूर्ण/प्रगति पर हैं। अन्य योजनाओं से प्राप्त 557 नग भवन पूर्ण घोषित किये जा चुके हैं एवं 2273 नग भवन/भूखण्डों का आवंटन भी किया जा चुका है। इसके विरुद्ध माह दिसम्बर, 99 तक 26 नग भवन/भूखण्डों का कब्जा भी दिया जा चुका है।
- गोकुल ग्राम योजना:- आवास परिषद प्रदेश की प्रथम ऐसी संस्था है जिसके द्वारा गोकुल ग्राम योजना का क्रियान्वयन प्राथमिकता के आधार पर सम्पन्न किया गया है। शहर के व्यस्त सड़कों पर पशुओं के आवागमन से उत्पन्न हो रही कठिनाईयों के निराकरण की दिशा में परिषद द्वारा प्रयास करके शहर से बाहर कैटिल कालोनी (गोकुल ग्राम) का निर्माण कराया गया है। परिषद द्वारा ग्राम तकरोही एवं देवपुर पारा में क्रमशः 82 व 804 भूखण्ड विकसित कर आवंटित किये जा चुके हैं।
- पटरी दुकानदारों के व्यवसाय हेतु छोटे भूखण्डों का विकास:- परिषद द्वारा सर्वप्रथम इन्दिरा नगर योजना लखनऊ में पटरी दुकानदारों के लिए 252 छोटे व्यवसायिक भूखण्डों का विकास करके उन्हें पटरी दुकानदारों को आवंटित किया गया तथा भविष्य में प्रस्तावित सभी योजनाओं में छोटे व्यवसायों के लिए भी छोटे व्यवसायिक भूखण्डों, छोटी दुकानों का प्राविधान किया जायेगा।
- अन्य वर्ग के भवन:- परिषद द्वारा विभिन्न योजनाओं में उक्त योजनाओं के अतिरिक्त दुर्बल आय वर्ग, अल्प आय वर्ग, मध्यम आय वर्ग, उच्च आय वर्ग, स्वयं वित्त पोषित भवन तथा भूखण्ड एवं विभिन्न संस्थाओं के डिपाजिट कार्यों का सम्पादन किया जा रहा है जिसमें माह दिसम्बर 99 तक कुल 6133 नग भवन/भूखण्डों पर निर्माण/विकास कार्य प्रगति पर है।
- डिपाजिट कार्य:- परिषद द्वारा विभिन्न विभागों के निर्माण संबंधी कार्य डिपाजिट कार्य के रूप में सम्पादित किये जा रहे हैं मार्च-99 तक डिपाजिट कार्यों के अन्तर्गत 5032 इकाइयाँ निर्मित/विकसित की जा चुकी हैं। वित्तीय वर्ष 99-2000 में 561 इकाईयों के लक्ष्य के सापेक्ष दिसम्बर, 99 तक 448 इकाईयाँ निर्मित/विकसित की जा चुकी हैं।
- माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी के संसदीय क्षेत्र लखनऊ के सौन्दर्यीकरण के अन्तर्गत पार्कों का विकास:- परिषद द्वारा पूर्व में विकसित पार्क जो कि वर्तमान में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है उनका पुनः जीर्णोद्धार करने का संकल्प लिया गया है। इसके अन्तर्गत प्रथम चरण में 20 पार्कों का जीर्णोद्धार करके उन्हें पुनः विकसित किया गया तथा रखरखाव हेतु इन पार्कों को योजना के आवंटियों की समितियों को सौंपा गया है। चालू वित्तीय वर्ष में परिषद द्वारा पूर्व में हस्तान्तरित योजनाओं के 31 पार्कों का पुनः विकास एवं सौंदर्यीकरण किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त रु. 100.00 लाख लागत से नया "स्वर्ण जयन्ती पार्क स्मृति विहार" जो इन्दिरा नगर विस्तार के सेक्टर 25 में लगभग 8 एकड़ भूमि पर विकसित किया गया, मा0 मुख्य मंत्री के कर कमलों द्वारा दिनांक 13.3.99 को लोकार्पित किया गया।
- उपभोक्ताओं के हित में जनाधिकार पत्रक:- उपभोक्ताओं के प्रति परिषद का दायित्व तथा उपभोक्ताओं के अधिकार एवं उनके कर्तव्यों की जानकारी कराने हेतु जनाधिकार पत्रक जारी किया गया है और उसमें दी गयी समय सारणी के अनुसार प्रकरणों के निस्तारण के प्रयास किये गये हैं।
- आधुनिक प्रबन्ध व्यवस्या एवं कम्प्यूटरीकरण:- परिषद के कार्यों के गुणात्मक नियोजन, क्रियान्वयन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन सुनिश्चित करने के लिए आधुनिक प्रबन्ध प्रणाली लागू करने के लिए सभी सम्बन्धित अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। जन शिकायतों के निस्तारण हेतु प्रभावी अनुश्रवण के लिए परिषद मुख्यालय पर एक कम्प्यूटर स्थापित किया गया है जिसके माध्यम से सिंगल विन्डो के आधार पर कम्प्यूटर के माध्यम से शिकायतों का शीघ्र निस्तारण सुनिश्चित किया जा रहा है। परिषद की समस्त गतिविधियों को कम्प्यूटर के माध्यम से सम्पादित करने हेतु साफ्टवेयर का विकास किया जा रहा है।

उ. प्र. आवास एवं विकास परिषद्

104 महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

Website : http://www.upavp.com E-Mail : upavp@lw1.vsnl.net.in

(पृष्ठ १० का शेष) **क्या कानून से ...**

आशयित हो या उपयोग किये जाने के लिए समर्पित हो..।" इसके अतिरिक्त धारा तीन किसी संस्कारगत समारोह जैसे जन्म, मृत्यु या विवाह के आयोजनों को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर रखता है। इस कानून के तहत कोई नया 'सार्वजनिक धार्मिक भवन' बनाने के लिए जिलाधिकारी के माध्यम से सरकार की अनुमति लेना आवश्यक होगा बिल्कुल वैसे ही, जैसे भवन–निर्माण के पहले नक्शा पास करवाना जरूरी होता है। जिलाधिकारी के इस सम्बन्ध में आचरण से क्षुब्ध व्यक्ति के मंडलायुक्त (कमिश्नर) के यहाँ अपील करने की व्यवस्था भी दी गयी है। इस विधेयक की किसी व्यवस्था की अवज्ञा करने पर एक वर्ष तक की सजा या पाँच हजार रुपयों का जुर्माना या दोनों की व्यवस्था है। स्पष्ट है कि सभी धर्मों के प्रति समभाव रखते हुए यह विधेयक तैयार किया गया है, फिर मुसलमानों को क्यों भड़काया जा रहा है कि यह कानून संविधान में वर्णित अल्संख्यकों के मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है? क्या अभी भी इस देश में मुसलमान 'अल्पसंख्यक' कहे जा सकते हैं? क्या इस देश में हिन्दुओं को छोड़ कर शेष सभी अल्पसंख्यक हैं? क्या मुसलमान (हिन्दू के बाद) दूसरे नम्बर का बहुसंख्यक सम्प्रदाय नहीं है?

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार– "वह सम्प्रदाय, जो किसी देश में कुल आबादी का दस प्रतिशत से अधिक हो, अल्पसंख्यक नहीं है।" तथ्य यह है कि भारत में अब मुसलमान कुल आबादी का १५ प्रतिशत से भी अधिक है। चूँकि भारत के किसी अन्य कानून या संविधान में अल्पसंख्यक की कोई परिभाषा ही नहीं दी गयी है, इसलिए संयुक्त राष्ट्र की ही परिभाषा मान्य है। अब जरा भारत के संविधान पर गौर करें कि जिसमें 'धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार' अनुच्छेद २५ से २८ तक वर्णित है। इन अनुच्छेदों में धर्म की स्वतन्त्रता को "लोक–व्यवस्था, सदाचार और अन्य उपबन्धों के अधीन" माना गया है। क्या लोक–व्यवस्था के तहत किसी सरकार को यह जानने का अधिकार नहीं है कि किसके धन से, किस उद्देश्य से कौन बनवा और चला रहा है कोई धार्मिक–स्थल? वैसे भी धर्म–स्थल सम्बन्धी ऐसे ही कानून इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मन, इजराइल और आस्ट्रेलिया में तो हैं ही, साथ ही प्रायः सभी कम्यूनिस्ट देशों में भी हैं। यही नहीं पाकिस्तान, ईरान, इराक, संयुक्त अरब अमीरात, लीबिया, सीरिया और सूडान जैसे मुसलमान देशों में भी कमोबेश ऐसे ही धर्म–स्थल कानून है। लेकिन यह उत्तर प्रदेश का दुर्भाग्य ही है कि उत्तर प्रदेश विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बावजूद धर्म–स्थल विधेयक को अनुमति देने में राज्यपाल सूरजभान का विवेक काम नहीं आ सका और उन्होंने राष्ट्रपति के विचार के लिए उसे अनुच्छेद २०१ में आरक्षित रख कर ठंडे बस्ते में डाल दिया है। इस प्रकार देश की सुरक्षा के एहतियाती उपायों के लिए बनाया गया विधेयक राज्यपाल के उपलब्ध विवेक से कुछ बड़ा होने के कारण राष्ट्रपति के दरबार में महीनों से हाथ जोड़े खड़ा है। ❑

– एम १५०७, सेक्टर आई, एल.डी.ए. कॉलोनी, कानपुर रोड, लखनऊ– २२६०१२

दरिन्दों ने हिन्दुओं का खून भी पिया था

जम्मू के राजकीय मेडिकल कालेज अस्पताल के डायलसिस विभाग में जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहे २२ वर्षीय ओमप्रकाश अभी भी उस घटना को याद कर सिहर उठते हैं जब ८ और ९ मार्च की मध्य रात्रि को राज्य पुलिस के हेड कांस्टेबल शौकत अली और विशेष कार्यबल (एसटीएफ) के जवानों समेत करीब २५ लोगों ने उसे छह अन्य लोगों के साथ डोडा जिले की ठाठरी तहसील के गाँव बोलियां से उठाकर उन पर इतना जुल्म ढाया कि सात लोगों में से दयाकृष्ण यातनाएँ न सह पाने के कारण दम तोड़ गया। २६ राष्ट्रीय राइफल की डेल्टा फोर्स में एसपीओ के रूप में कार्यरत ओमप्रकाश के अनुसार राज्य पुलिस के सेलेक्शन ग्रेड हेड कांस्टेबल शौकत अली ने सारी मानवीय हदों को पार कर न केवल उनका मांस तल कर खाया बल्कि दरिन्दों की तरह उसने पकड़े लोगों का खून पी कर अपनी प्यास भी बुझाई। चोरी के इल्जाम में पकड़ कर हम लोगों को गाँव बोलियाँ से दो कि०मी० दूर जंगल में स्थित दो घरों में ले गये और पाँच दिन तक सभी को कैद रख कर यातनाएँ देने का जो सिलसिला शुरू किया, उसका परिणाम दयाकृष्ण की मौत के रूप में ही सामने आया। शौकत अली ने उनके गुप्तांग को काट कर जलाया और फिर उसका खून पिया। इस पर भी उसकी प्यास नहीं बुझी तो उसने पकड़े लोगों को मांस काटकर तल कर खाया। यातनाओं के शिकार सात लोगों में से तीन ठाठरी के अस्पताल और वह जम्मू के मेडिकल कालेज अस्पताल में उपचाराधीन हैं। ८ मार्च को शौकत अली के साथ जाने से पहले उसके और उसके साथियों के हथियार राष्ट्रीय राइफल के पास जमा करवाये गये। सबसे ज्यादा यातनाएँ शौकत अली और रज्जाक नामक एक व्यक्ति ने दीं। ▫

एक अत्यन्त शोधपूर्ण चिन्तन–परक लेख

अर्जुन के तीन विवाह

– नरेन्द्र कोहली
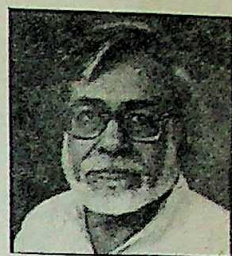
अर्जुन और उलूपी के सम्बन्ध में यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि पहले उलूपी ही अर्जुन पर मुग्ध हुई थी। वह एक प्रकार से उसका अपहरण कर उसे अपने प्रासाद में ले गयी थी। यह भी स्पष्ट है कि उसने प्रेम–निवेदन ही नहीं, काम–निवेदन भी किया था। उसने अर्जुन से कहा था कि यदि वह उसे रतिदान नहीं करेगा, तो उसके प्राण निकल जायेंगे। एक वीर क्षत्रिय के रूप में उसे अबला उलूपी की रक्षा करनी चाहिए। अर्जुन पहले उससे सहमत नहीं हुआ था और उसने अपने ब्रह्मचर्यव्रत की चर्चा की थी; किन्तु थोड़ी ही देर में उसने चतुर उलूपी से यह भी कहा था कि वह कुछ ऐसा करे कि अर्जुन का व्रत भी बना रहे और उलूपी की कामना भी पूरी हो जाये।

इस सारे प्रसंग में वे एक प्रेमी–युगल के रूप में दिखायी पड़ते हैं और इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि उन्होंने एक दूसरे का वरण किया। स्वयं को एक दूसरे के पति–पत्नी के रूप में स्वीकार किया। उलूपी का महाभारत के अन्त तक, अर्जुन की पत्नी के रूप में ही चित्रण हुआ है। यदि वह मात्र अस्थायी सम्बन्ध अथवा क्षणिक आकर्षण होता, तो जहाँ अर्जुन की विदाई के पश्चात् उसे भूल जाना उलूपी के लिए स्वाभाविक होता, वहाँ उसके दूसरे विवाह की भी चर्चा हो सकती थी; किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उलूपी न केवल अर्जुन को अपना पति स्वीकार करती है, वरन् अर्जुन की पत्नी होने के नाते, अपनी सपत्नी के पुत्र बभ्रुवाहन को अपना पुत्र भी मानती है।

इस सारी चर्चा के कारण, जो प्रश्न मुझे उद्विग्न करता है, वह यह है कि इस जीवनव्यापी सघन सम्बन्ध के बावजूद, अर्जुन ने कभी भी उलूपी को इन्द्रप्रस्थ लाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? क्यों उलूपी आजीवन अर्जुन की पत्नी के रूप में गंगाद्वार में ही बैठी रही। यदि अर्जुन ने उसे नहीं बुलाया था, तो उसने ही इन्द्रप्रस्थ आने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? वह आजीवन उसकी पत्नी बनी, उसकी प्रतीक्षा करती रही— यह तो समझ में आता है; किन्तु वह क्या कारण था, जिससे बाध्य होकर वह आजीवन अपने प्रियतम से दूर रही?

यदि अर्जुन की ओर से सोचें तो यह कहा जा सकता है कि वह उलूपी पर मुग्ध नहीं हुआ था, उलूपी ही उस पर मुग्ध हुई थी। हाँ! उस समय अर्जुन भी एक क्षणिक लोभ में बँध कर, काम के दुर्निवार वेग से बाध्य होकर, उलूपी को स्वीकार कर बैठा था। वहाँ से आगे बढ़ते ही उसे चित्रांगदा मिल गयी थी। चित्रांगदा के पश्चात् वह सुभद्रा के सम्पर्क में आया था। इस प्रकार उसके काम की तृप्ति होती रही, उसे नारी–संग मिलता रहा, वह अपने परिवार, समाज तथा राज्य के कार्यों में उलझा रहा। न कभी उसे उलूपी का स्मरण आया, न कभी वह उसके विरह में तड़पा, न कभी उसे उसकी आवश्यकता का अनुभव हुआ। अर्जुन की यह स्थिति भी मैं तर्क के लिए ही स्वीकार कर रहा हूँ। अन्यथा अर्जुन का चरित्र ऐसा नहीं है कि वह काम के क्षणिक वेग में बहकर, किसी युवती से अस्थायी सम्बन्ध स्थापित करे, उसे अपनी पत्नी माने, उससे पुत्र को जन्म दे और फिर उसे सदा के लिए भूल जाये।

उलूपी की ओर से इस प्रकार कोई तर्क भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसे न तो कोई अन्य साथी मिला, न ही उसकी पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी थीं, जो उसे इस सीमा तक उलझाये रखतीं कि उसे अर्जुन की स्मृति ही न आती। स्पष्ट ही उसने कष्टदायक, एकांगी, परित्यक्ता का जीवन व्यतीत किया है। ऐसा भी नहीं है कि अर्जुन का एक बार संग करने के पश्चात् उसकी कामेच्छा समाप्त हो गयी हो। उसे फिर अर्जुन को पाने की इच्छा न हुई हो अथवा उसकी स्मृति में उसने कष्ट का अनुभव न किया हो।

मेरा ध्यान बार–बार इस बात की ओर जाता है कि कृष्ण ने कालिय नाग को नाथा और अपने क्षेत्र से बाहर निकल जाने के लिए बाध्य किया था। महाभारत में यह भी स्पष्ट रूप से वर्णित है कि तक्षक नाग पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ के सर्वथा निकट खाण्डव वन में छिपा बैठा था। वहाँ इन्द्र उसकी रक्षा कर रहा था। तक्षक तथा ऐसे ही अन्य शत्रुओं से मुक्ति पाने के लिए अर्जुन और कृष्ण ने खाण्डव वन का दाह किया था। इन्द्र से युद्ध ठाना था और खाण्डव वन से निकलने वाले प्रत्येक जीव को यमलोक

में धकेल दिया था। तक्षक बच गया था; क्योंकि संयोग से वह उस समय खाण्डव वन में उपस्थित नहीं था। उसके पुत्र अश्वसेन को अपने प्राण बचाने के लिए अत्यन्त चातुर्यपूर्वक अपनी माँ की ओट लेनी पड़ी थी। स्पष्ट ही इन घटनाओं को तक्षक कभी भी भुला नहीं पाया होगा। महाभारत की कथा भी साक्षी है कि आगे चलकर तक्षक ने ही अभिमन्युपुत्र परीक्षित् को डसा था और उसका प्रतिशोध लेने के लिए जनमेजय ने नागयज्ञ किया था। ये सारी घटनाएँ क्या इस ओर संकेत नहीं करतीं कि पाण्डवों के नागों से कभी भी अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे। जब भी अवसर मिला, उन्होंने एक दूसरे पर आक्रमण किया।

इस पृष्ठभूमि में यदि हम उलूपी प्रसंग को देखें, तो हमें कुछ संकेत मिलते हैं। उलूपी नागकन्या है। युवती है, कामिनी है। स्वतन्त्र परिवेश में पली है। इसीलिए अर्जुन पर अनुरक्त होने पर सहज रूप से उसे अपने प्रासाद में ले आयी। उसके मन में पाण्डवों के लिए पूर्वग्रह, दुराग्रह अथवा विरोध नहीं है। इसीलिए वह अर्जुन को पति रूप में अंगीकार करती है; किन्तु हमें ध्यान देना चाहिए कि उस समय उसके पिता कौरव्य वहाँ उपस्थित नहीं थे। बहुत सम्भव है कि पिता की अनुपस्थिति में विवाह कर लेने और रति–प्रसंग में संलग्न होने के बावजूद वह अर्जुन के साथ केवल इसलिए न गयी हो कि पिता की अनुपस्थिति में इस प्रकार घर छोड़ कर निकल जाना अनुचित था। सम्भव है कि पिता की अनुमति के लिए ही पीछे रुक गयी हो। ध्यातव्य है कि विवाह के लिए उसने पिता की अनुमति की प्रतीक्षा नहीं की; किन्तु गृहत्याग के लिए पिता की अनुमति अनिवार्य थी। बहुत सम्भव है कि कौरव्य नाग के घर लौटने पर वह स्थिति कुछ बदल गयी हो। काम सम्बन्धों में नाग अधिक स्वच्छन्द थे। इसीलिए उलूपी के व्यवहार में कहीं कोई संकोच नहीं है।

इस प्रसंग की तुलना हम, महाभारत के शकुन्तला और दुष्यन्त प्रसंग से करें, तो हमें कुछ समानताएँ और विषमताएँ मिलती हैं। शकुंतला जानती थी कि वह पिता की इच्छा के अधीन है। उसे उनकी अनुमति के बिना आत्मसमर्पण का कोई अधिकार नहीं है। उसने गन्धर्व–विवाह तो किया, किन्तु पिता की ओर से तनिक भी निश्चित नहीं थी। उसके ठीक विपरीत, उलूपी उन सारे प्रसंगों में सर्वथा, स्वच्छन्द और निःसंकोच दिखायी पड़ती है। कण्व घर लौटते हैं, तो इस प्रसंग को जानकर शकुंतला को दुष्यन्त के पास भेज देते हैं। उन्हें इस सम्बन्ध से कोई विरोध नहीं है। कौरव्य के घर लौटने के पश्चात् उलूपी कभी अर्जुन के पास नहीं भेजी गयी। यह विचित्र बात है कि पिता की इच्छा के अधीन रहने वाली युवती स्वच्छन्द व्यवहार करती भी है, तो पिता उसकी इच्छा का विरोध नहीं करते और स्वच्छन्द युवती जब अपने मनभावन से सम्बन्ध स्थापित करती है तो पिता के लौटने पर वह अपने पति को प्राप्त नहीं कर सकती। इसका एक ही कारण हो सकता है कि कौरव्य का इस सम्बन्ध के प्रति कोई न कोई विरोध रहा हो। यह विरोध व्यक्गित नहीं हो सकता; क्योंकि कौरव्य की अर्जुन से कभी भेंट नहीं हुई, उनका साक्षात्कार नहीं हुआ। उनका परस्पर कोई व्यवहार ही नहीं रहा, तो कौरव्य के लिए, अर्जुन अप्रिय क्यों होगा? स्पष्टतः उनका विरोध, जातीय विरोध ही रहा होगा, जिसके कारण कौरव्य अपनी पुत्री को कण्व के समान, उसके पति के पास नहीं भेज पाये।

यदि कौरव्य के मन में क्षत्रियों या पाण्डवों के प्रति इतना ही विरोध रहा होता, तो उसका आभास उलूपी को भी होना चाहिए था। उलूपी अर्जुन के प्रति अपने व्यवहार से तनिक भी आशंकित नहीं है। यह जानते हुए भी कि अर्जुन कौन है, उसके प्रति उलूपी का यह व्यवहार स्पष्ट बताता है कि अपने पिता के पाण्डव विरोधी होने का उसे आभास तक नहीं है। तो फिर यह विरोध कहाँ से जन्मा?

जिस समय उलूपी अर्जुन को प्रासाद में लायी थी, उस समय कौरव्य प्रासाद में नहीं थे। अन्यथा उसी समय उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता और उलूपी तथा अर्जुन दोनों को ही ज्ञात हो जाता। कौरव्य इस समय बाहर से लौटे हैं बहुत सम्भव है कि नाग शासकों के किसी सम्मेलन से लौटे हों। यह भी सम्भव है कि वे तक्षक से निर्देश लेकर लौटे हों। बहुत सम्भव है कि वे तक्षक की राजनीति के अंग न होते हुए भी उसकी राजनीति के शिकार हुए हों।

तक्षक की कार्यपद्धति बहुत कुछ आज के आतंकवादियों के समान है। वह छिप कर रहता है। इस समय उसने खाण्डव वन में एक गुप्त दुर्ग बना रखा है। उसके पास अनेक विषधर हैं, जो किसी भी व्यक्ति को खोज कर किसी भी समय उसे डँस सकते हैं। परीक्षित सारी सुरक्षा के बावजूद, अपने प्रासाद में भी तक्षक से बच नहीं पाया। मुझे लगता है कि तक्षक का यह आतंक केवल अन्य लोगों के लिए ही नहीं था— नाग जाति भी उससे अवश्य आतंकित रही होगी। इसलिए चाहते या न चाहते हुए भी लोग, उसके निर्देशों का पालन करते रहे होंगे। कौरव्य भी सम्भवतः तक्षक की इसी राजनीति के

प्रकार हुए होंगे, जिसमें संकीर्ण जातीयता का बहुत महत्त्व है। जाति से बाहर के लोगों के लिए केवल घृणा है। तक्षक के इस प्रकार के जातीय निषेध के कारण, भयभीत होकर उलूपी ने इन्द्रप्रस्थ आने का साहस नहीं किया होगा।

अर्जुन की ओर से उलूपी को इन्द्रप्रस्थ बुलाने का कोई प्रयत्न क्यों नहीं है ? क्या उसकी भी इच्छा यही थी कि अब उलूपी से उसका कोई सम्बन्ध न रहे ? महाभारत के युद्ध के पश्चात् जिस प्रकार उलूपी, अर्जुन की पत्नी के रूप में अन्य पाण्डव वधुओं के साथ दिखायी देती है, उससे यह नहीं लगता कि अर्जुन का उससे कोई विरोध रहा होगा। उलूपी ने अपने पुत्र इरावान को महाभारत के युद्ध में लड़ने के लिए भेजा था, जहाँ वह अलंबुष से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अर्जुन और उलूपी का कोई मतभेद सामने नहीं आता। किन्तु वे आजीवन एक दूसरे से पृथक् ही रहे, जो कदाचित् कौरव्य की बाध्यता के कारण ही था और वह बाध्यता तक्षक की राजनीति से प्रेरित आतंक ही हो सकता है।

महाभारत की कथा में लगभग यही स्थिति चित्रांगदा

क्या है लोक-गान 'पंडवानी'

पंडवानी छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख कला रूप है। म.प्र. के बिलासपुर, रायपुर, बस्तर संभाग व मण्डला जिला इस गायन–अभिनय शैली का प्रमुख क्षेत्र हैं। पंडवानी की गायन बोली मुख्यतः छत्तीसगढ़ी व गोंडी है, परन्तु गोंडी में यह विधा प्रायः विलुप्त हो गयी है। पंडवानी, परधान जाति की वंशानुगत गायकी है। ये पीढ़ियों से पंडवानी का गायन अपने आसपास के क्षेत्रों में करते रहे हैं। परधान व देवार पंडवानी गायन की कथा और शैली समान है। अन्तर इनकी बोली और वाद्य में है। दोनों ही गाने के लिए पालथी लगाकर बैठते हैं और वाद्य को कन्धे से दबाकर लयबद्ध तरीके से गायन करते हैं। परन्तु पंडवानी का एक अन्य रूप जो कि अब खासा लोकप्रिय हो चुका है और पंडवानी सम्भवतः अब इसी रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है, वह है उसका वर्त्तमान स्वरूप। इस स्वरूप में पंडवानी का एक मुख्य गायक होता है। साथ ही एक हुँकारी भरने वाला रागी होता है और तबला, ढोलक, हारमोनियम, मंजीरों, बैंजो और करताल पर संगत की जाती है। गायक स्वयं तंबूरा व करताल बजाता है।

पंडवानी के मूलतः दो स्वरूप पाये जाते हैं– वेदमती व कापालिक। पंडवानी की वेदमती शाखा का उदय कापालिक शाखा की परम्परागत दन्त–कथाओं पर आधारित पंडवानी गायन के विरोधस्वरूप हुआ। दूसरी ओर अब प्रचलित वेदमती गायनशैली में तीन प्रकार की गायकी प्रचलन में है, जिसको कि पंडवानी के विकास की प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इसके पहले रूप में गायक प्रचलित रूप में बैठकर गायकी करता है। साथ ही घुटनों के बल बैठकर तंबूरे के माध्यम से समस्त अभिनय कार्य को संपादित करता है। इस प्रक्रिया में दर्शक को इस बात का भान नहीं होता कि कब उसका और पंडवानी गायक का संगीत, भाव अभिनय व व्याख्या से तारतम्य हो गया। इस तरह के पंडवानी गायन व अभिनय के श्रेष्ठतम कलाकार झाडूराम देवांगन हैं। दूसरी प्रकार की पंडवानी में गायक घुटनों पर न रहकर पैरों पर खड़ा होता है। वह कुछ कदम चलता है, नृत्य करता है और अभिनय से परिस्थिति को मूर्त्त रूप देता है। इस शाखा में भाव व अभिनय की जगह व्याख्या पहले से ज्यादा सक्षम रूप में सामने आती है। संगीत दोनों में न्यूनाधिक एक–सा ही होता है। देखने में यह मालूम होता है कि यह पहले की अपेक्षा अधिक विकसित स्वरूप है। इस विधा की सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं तीजनबाई।

तीसरे प्रकार की पंडवानी में संवाद पक्ष मुख्य रूप से सामने आता है। इसमें भाव व गायन पक्ष कमजोर हो जाता है; परन्तु नाट्य के क्षेत्र में यह दोनों विधाओं से आगे निकलता है। इसमें रागी कुछ–कुछ छत्तीसगढ़ी नाचा के विदूषक जैसा व्यवहार करता है। यहाँ गायकों की जगह रागी ले लेता है। इस विधा के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं रेवा राम गंजीर।

पंडवानी ने भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य पर अपने को जिस तरह स्थापित किया है वह एक अनूठी घटना है। इसके लिए झाडूराम देवांगन व तीजनबाई को विशेष श्रेय है। तीजनबाई तो इस विधा को लेकर एक जीवित किवदंती बन चुकी हैं। वे देश–विदेश में पंडवानी के कई कार्यक्रम प्रस्तुत कर सराहना प्राप्त कर चुकी हैं। ऋतु वर्मा इस परम्परा को आगे बढ़ा रही हैं। ❐

प्रस्तुति – **चिन्मय मिश्र**

की भी है। वह भी विवाह के पश्चात् कभी इन्द्रप्रस्थ नहीं आयी। न उसने स्वयं आने का प्रयत्न किया, न ही अर्जुन ने उसे बुलाया। चित्रांगदा की विवाह–सम्बन्धी परिस्थितियाँ उलूपी से कुछ भिन्न हैं। उलूपी ने स्वयं मुग्ध होकर अर्जुन से कामयाचना की थी; चित्रांगदा पर अर्जुन आसक्त हुआ था। उसने उसके पिता चित्रवाहन से उसे माँगा था और उन्हीं की शर्तों पर उसे प्राप्त किया था। चित्रवाहन की शर्त ही वह मुख्य कारण थी, जिसने अर्जुन और चित्रांगदा को कभी एक साथ नहीं रहने दिया। चित्रवाहन की शर्त थी कि चूँकि उसका कोई पुत्र नहीं है, इसलिए हेतु विधि से वह चित्रांगदा को ही अपने पुत्र के स्थान पर मानता है। इसलिए मणिपुर के राजसिंहासन पर चित्रांगदा का पुत्र बैठेगा। अतः वह मणिपुर में ही रहेगा। इसका अर्थ प्रकारांतर से यह हुआ कि चित्रांगदा को अपने पति और पुत्र में से किसी एक को चुन लेना होगा। उसका पुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर में रहेगा और पति अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में। अब यह निर्णय चित्रांगदा को करना था कि वह पुत्र के साथ रहेगी अथवा पति के साथ।

जिस समय अर्जुन मणिपुर से चला, उस समय तक बभ्रुवाहन बहुत छोटा बालक था। बहुत सम्भव है कि उनमें कोई ऐसा समझौता हुआ हो। चित्रांगदा छोटे बभ्रुवाहन को मणिपुर में अकेला छोड़कर, अर्जुन के साथ वन में कहाँ–कहाँ भटकेगी। अर्जुन की अनुपस्थिति में बभ्रुवाहन के बिना वह इन्द्रप्रस्थ में भी क्या करेगी ? जब तक अर्जुन इन्द्रप्रस्थ नहीं पहुँचता, तब तक वह मणिपुर में रहकर बभ्रुवाहन का पालन–पोषण करे, तो चित्रवाहन को सुविधा होगी। शिशु बभ्रु को माँ की देखभाल और प्रेम मिलेगा तथा चित्रांगदा स्वयं को अकेला अनुभव नहीं करेगी। यदि इस स्थिति को हम स्वीकार कर लें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किन्हीं तर्कों के अधीन हो, किन्तु यह पुत्र का मोह ही था, जिसने चित्रांगदा को अर्जुन के साथ जाने से रोका था। जैसे–तैसे समय बीतता गया होगा, अर्जुन चित्रांगदा के लिए अजनबी होता गया होगा, और बभ्रुवाहन के प्रति चित्रांगदा का मोह बढ़ता गया होगा। उसके लिए अपने एकमात्र पुत्र को मणिपुर में छोड़ कर सपत्नियों वाले ससुराल में जाकर रहना कठिन होता गया होगा। थोड़ा–सा योगदान इसमें चित्रवाहन का भी हो सकता है। चित्रांगदा, चित्रवाहन की एकमात्र सन्तान थी, उसके मन में पिता के प्रति भी मोह रहा होगा। जैसे–जैसे पिता असमर्थ और वृद्ध होते गये होंगे, वह मोह भी बढ़ता गया होगा। ऐसे में

लायक राम 'मानव' की दो कविताएँ

बहस मत कोई चलाओ चुप रहो

जो हुआ, वह भूल जाओ चुप रहो!
बात मत आगे बढ़ाओ चुप रहो!!
आम को इमली अगर हमने कहा,
है वही सच, मान जाओ, चुप रहो!
आँसुओं की है यहाँ कीमत नहीं,
व्यर्थ मत इनको बहाओ चुप रहो!
हम सबल हैं अपने बल से जो करें,
उस पे मत उँगली उठाओ चुप रहो!
मन में चाहे कुछ कहो मेरे खिलाफ,
उसे ओंठों पर न लाओ चुप रहो!
उचित–अनुचित न्याय या अन्याय पर,
बहस मत कोई चलाओ चुप रहो!
हो चुके हैं लोग बहरे सब यहाँ
शोर इतना मत मचाओ, चुप रहो!

... ऐसा कभी कुसूर न करना

हम सीधे–सादे हैं लेकिन इतना भी मजबूर न करना।
हमको भी गुस्सा आ जाये ऐसा गजब हुजूर न करना।।
माना हम राहों के पत्थर हैं, कोई अस्तित्व न, लेकिन,
बन जायें किरकिरी आँख की इतना चकनाचूर न करना।
ऐसा कठिन दौर है इसमें सुख वैभव दुर्लभ है फिर भी,
स्वाभिमान की कीमत देकर कोई सुख मंजूर न करना।
यश पाने में उमर गुज़रती, अपयश मिल जाता है पल में,
खुद की नजरों में गिर जाओ ऐसा कभी कुसूर न करना।
यों तो मिलते हैं बहुतेरे मन का मीत नहीं मिलता है,
मिल जाये मन मीत कभी तो उसको मन से दूर न करना।
बादल कितना गरजे–तरजे बूँद–बूँद कर मिट जाता है,
मिट जाये पहचान तुम्हारी इतना कभी गुरूर न करना।
इतनी ऊँचाई मत देना नीचे झुक कर देख न पायें,
अपनों को पहचान न पायें ऐसा भी मशहूर न करना।

– राज्य संसाधन केन्द्र, साक्षरता निकेतन, मानस नगर, लखनऊ–२२६०२३

वृद्ध और असहाय पिता तथा बालक पुत्र को छोड़कर अपने पति के पास जाना चित्रांगदा के लिए असम्भव होता गया होगा। पति भी ऐसा जिसकी अन्य पत्नियाँ थीं और जो अपने भाइयों तथा राज्य के लिए सर्वथा अनिवार्य था। वह अपनी पत्नी के बिना तो रह सकता था; किन्तु अपनी माँ और भाइयों को त्याग नहीं सकता था। चित्रांगदा की दृष्टि से देखें, तो यह पुत्र के मोह की कथा भी हो सकती है और अपने पति के संयुक्त–परिवार में रहने की अनिच्छा भी।

यह पूछा जा सकता है कि मैं इन सारे सम्बन्धों में अर्जुन को दोषी ठहराना क्यों नहीं चाहता? यह क्यों नहीं मान लेता कि उलूपी तथा चित्रांगदा के लिए अर्जुन का मोह क्षणिक था? अपने उस वनवास काल में काम के हाथों पीड़ित होकर उसने उनसे विवाह तो कर लिया था; किन्तु इन्द्रप्रस्थ लौटकर सुभद्रा और द्रौपदी की उपस्थिति में, अपने उस संयुक्त–परिवार में अर्जुन को उलूपी और चित्रांगदा कभी स्मरण नहीं आयीं। उसका यह व्यवहार वैसा ही था, जैसा भीम का हिडिंबा के साथ था। यदि महाभारत की कथा में कहीं भी लेखक के द्वारा हिडिंबा, उलूपी तथा चित्रांगदा के माध्यम से किसी प्रकार की कोई शिकायत वर्णित की गयी होती, तो इस सम्भावना पर भी विचार किया जा सकता था; किन्तु महाभारत की कथा यह कहती है कि इन तीनों स्त्रियों को अपने पतियों से किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं थी। पाण्डवों को जब–जब आवश्यकता पड़ी, घटोत्कच उनके काम आया, अपने पिता तथा उसके भाइयों के प्रति उसका व्यवहार उस पुत्र के समान नहीं है, जिसकी माँ अपने पति द्वारा त्याग दी गयी हो अथवा पीड़ित की गयी हो। अन्ततः घटोत्कच ने पाण्डव पक्ष से लड़ते हुए ही अपने प्राण दिये। यही स्थिति उलूपी के पुत्र इरावान की है। बभ्रुवाहन की स्थिति थोड़ी–सी भिन्न है। यह आश्चर्यजनक है कि उसने महाभारत के युद्ध में भाग नहीं लिया; किन्तु मणिपुर आने पर अर्जुन के साथ उसका व्यवहार यह बताता है कि उसके मन में अर्जुन के प्रति तनिक भी विरोध नहीं था। यही कारण है कि मैं इस सारी स्थिति के लिए अर्जुन को उत्तरदायी नहीं मानता। अतः उलूपी तथा चित्रांगदा दोनों ही अपने कारणों से इन्द्रप्रस्थ नहीं पहुँची।

मणिपुर से चलकर अर्जुन प्रभास–क्षेत्र में पहुँचता है। यहाँ उसकी स्थिति पहले से पर्याप्त भिन्न है। यहाँ न वह अकेला है, न असहाय। प्रभास–क्षेत्र में पहुँचते ही कृष्ण उसका स्वागत करते हैं, जैसे उन्हें पहले से ही उसके आगमन की सूचना हो। कृष्ण मातुलपुत्र तथा मित्र हैं ही, द्वारका में उसके मामा वसुदेव भी हैं तथा अन्य सम्बन्धियों

की भी कमी नहीं है। द्वारका में सबसे बड़ी घटना सुभद्राहरण है। महाभारतकार ने अर्जुन का सुभद्रा पर मुग्ध होना चित्रित अवश्य किया है, किन्तु अर्जुन के मन में सुभद्रा से विवाह की कामना स्वतः नहीं जागती। उसकी प्रेरणा उसे कृष्ण से ही मिली है। सुभद्रा का परिचय देकर कृष्ण उससे पूछते हैं कि क्या वह सुभद्रा से विवाह करना चाहेगा? उसकी सहमति मिलने पर यह प्रस्ताव भी रखते हैं कि वे इस सन्दर्भ में अपने पिता वसुदेव से बात करेंगे; किन्तु अगले ही क्षण हम देखते हैं कि वे अर्जुन को सुभद्रा का हरण करने का परामर्श दे रहे हैं। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि वे प्रस्ताव रखकर भी वसुदेव से बात नहीं करते, वरन् सुभद्राहरण की योजना को कार्यान्वित करने के लिए सक्रिय हो जाते हैं। उससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि अर्जुन तो युधिष्ठिर से दूत के माध्यम से विधिवत् इस हरण की अनुमति माँगता है; किन्तु द्वारका में रहते हुए भी वसुदेव और बलराम से न कृष्ण चर्चा करते हैं, न अर्जुन। यहाँ तक कि सुभद्रा को भी इसका कोई आभास नहीं है। इस व्यवहार का एक ही अर्थ हो सकता है कि कृष्ण और उनके माध्यम से अर्जुन— यह जानते थे कि वसुदेव और बलराम को यह सम्बन्ध मान्य नहीं होगा। सुभद्रा की भी अर्जुन के प्रति कोई आसक्ति दिखायी नहीं देती। कृष्ण की उक्तियाँ स्पष्ट संकेत करती हैं कि वे इस सम्बन्ध में सुभद्रा के निर्णय को स्वीकार नहीं कर सकते। वे उसकी बुद्धि को अनिश्चित मानते हैं।

सुभद्रा के विषय में जो भी संकेत मिलते हैं, वे उसके स्वावलम्बी व्यक्तित्व की छवि आँकते हैं। यहाँ तक कि कृष्ण भी उसके विवाह विषयक निश्चय के सम्बन्ध में आश्वस्त नहीं है। यदि सुभद्रा कृष्ण के कहने में नहीं है, तो निश्चय ही वह किसी के भी कहने में नहीं है। ऐसी कन्या क्षत्रियों की परम्परा के अनुसार, स्वयंवर की कामना करेगी और स्वयंवर में उसका चयन क्या होगा, इसके विषय में कोई भी पहले से आश्वस्त नहीं हो सकता। कृष्ण के व्यवहार से हम एक ही स्पष्ट निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वे सुभद्रा को स्वयंवर का अवसर नहीं देना चाहते। इसलिए नहीं कि वे सुभद्रा से प्रेम नहीं करते अथवा अपना निर्णय उस पर थोपना चाहते थे; वरन् इसलिए कि सुभद्रा की निर्णायक बुद्धि पर उनको विश्वास नहीं था। उन्होंने सुभद्रा के वर के रूप में अर्जुन को चुना था और वे मानते थे कि उससे श्रेष्ठतर वर सुभद्रा के लिए हो नहीं सकता था; किन्तु इस सन्दर्भ में वे सुभद्रा को समझा-बुझा नहीं सकते थे, उसे बाध्य ही कर सकते थे, जो उन्होंने किया। सुभद्रा से इस विषय में चर्चा न कर सकने के दो ही कारण हो सकते हैं— या तो सुभद्रा अभी विवाह ही नहीं करना चाहती थी या फिर उसने अपने लिए कोई अन्य पुरुष चुन रखा था। महाभारत के चित्रण में न तो कहीं सुभद्रा का विवाह–सम्बन्धी विरोध प्रकट होता है और न ही किसी अन्य पुरुष के चुनाव का ही कोई प्रमाण मिलता है। इसलिए इस प्रश्न का समाधान मुझे सुभद्रा के चरित्र की स्वतन्त्रता तथा स्वावलम्बिता में ही झलकता दिखायी पड़ता है। बहुत सम्भव है कि उसका आग्रह स्वयं निर्वाचन करने पर ही हो और वह स्वयंवर के माध्यम से ही हो सकता है। यदि उसने कोई पूर्व चयन किया होता, तो उसके विषय में कृष्ण को सूचना अवश्य होती और वे उस सन्दर्भ में अपनी इच्छा–अनिच्छा प्रकट करते; किन्तु जब सुभद्रा ने ही स्वयं अपने मन में कोई निर्णय नहीं किया है और वह स्वयंवर के अन्तिम क्षणों में ही वहाँ उपस्थित राजाओं में से किसी को चुन लेने का मन बनाये हुए थी, तो कृष्ण उस विषय में निश्चिन्त कैसे हो सकते थे?

सुभद्रा का अर्जुन सम्बन्धी कोई विरोधी भी दिखायी नहीं पड़ता; किन्तु आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि कृष्ण इस सम्बन्ध को लेकर वसुदेव और बलराम की ओर से भी निश्चिन्त नहीं हैं। अन्यथा वे वसुदेव से चर्चा करने का प्रस्ताव करके भी उसे टाल नहीं जाते और वसुदेव को अन्धकार में रख, सुभद्राहरण की योजना नहीं बनाते। वसुदेव अर्जुन के मामा हैं, वे अपनी बहन कुन्ती से पर्याप्त प्रेम करते हैं और समय–समय पर उसकी सहायता करने के इच्छुक रहते हैं। अर्जुन उसी कुन्ती का योग्य पुत्र है। सुदर्शन और प्रियदर्शन है। धनुर्वेद में पारंगत हैं शूरवीर है और चरित्र की दृष्टि से भी असाधारण है। वैसे तो पाँचों पाण्डव सुरूप और सुदर्शन बताये गये हैं; किन्तु नारी मन के लिए अर्जुन ही सर्वाधिक आकर्षक रहा है। फिर भी उस अर्जुन से वसुदेव अपनी पुत्री का विवाह न करना चाहें, तो उसके अवश्य ही कुछ कारण होने चाहिए।

हम इस समस्या पर अर्जुन के मातुल की दृष्टि से नहीं, कन्या के पिता की दृष्टि से विचार करें। मुझे लगता है कि सबसे पहले कन्या की अवस्था पर ध्यान दिया जाना चाहिए। हमारे पुराणों में एक बड़ी परेशानी यह है कि किसी भी पात्र के जन्म का ठीक–ठीक काल नहीं मिलता। जहाँ कृष्ण के रुक्मिणी के साथ विवाह की चर्चा होती है, वहीं प्रद्युम्न का जन्म भी होता है। प्रद्युम्न युवा भी हो जाता है। उसका विवाह भी हो जाता है। शेष सारी कथा वहीं की वहीं ठहरी रहती है। इस प्रकार भागवत और महाभारत में वसुदेव या देवकी की सन्तानों की गणना में

...जिन्हें विश्वकर्मा की पुत्री ब्याही थी

- पुष्कर नाथ

मनु के पुत्र थे प्रियव्रत। बड़े ही निःस्पृह–वृत्ति के परम विरक्त। वे परिवार त्याग कर नारद के पास गन्धमादन पर्वत पर रहा करते थे और परब्रह्म के चिन्तन में लीन रहते थे। एक दिन उनके पिता मनु ने उन्हें गन्धमादन पर्वत से बुलाकर कहा, "पुत्र! मैं तो चला अब ब्रह्म सत्र की दीक्षा लेने, यह राज्य तुम सँभालो।" तो प्रियव्रत ने राजा बनना स्वीकार न किया। राज–पाट और राज्य– वैभव उन्हें रास न आया, तब ब्रह्मा जी पधारे उन्हें समझाने। कहा, "वैराग्य अच्छा है, वह भाव तुम जीवन में बरतते रहो तो संसार के प्रपञ्च तुम्हें फँसा न सकेंगे।" आखिर प्रियव्रत ने उनकी बात मानकर राज्यकर्त्ता होना स्वीकार कर लिया। गन्धमादन पर्वत से राजधानी आ गये। राज्य सँभाला और साथ ही उन्होंने विश्वकर्मा की बेटी बर्हिष्मती से विवाह भी किया। गृहस्थ हो गये।

कहते हैं, जब प्रियव्रत ने देखा कि समग्र भू–मण्डल पर उसके अर्द्धभाग में तो दिन रहता है; किन्तु शेष अर्द्ध भाग में रात्रि का अन्धकार छाया रहता है, तो उन्हें यह अच्छा न लगा। उन्होंने कहा, "मैं पृथिवी के उस अर्द्धभाग में भी दिन का प्रकाश फैला दूँगा।" उनका रथ प्रकाशमय ही था– वे उस पर आरूढ़ होकर उस अन्धकारमय भाग में भ्रमण करने लगे और उनका यह भ्रमण पूरे ७ दिन और ७ रात्रियों तक चलता रहा। उतने समय तक समग्र भू–मण्डल पर दिन ही दृश्यमान रहा। रात्रि न हुई तब ब्रह्माजी ने उन्हें प्रबोधा, कहा– "प्रियव्रत! इस काम से दूर रहो विश्व–व्यवस्था में बाधक न बनो।" प्रियव्रत ने फिर यह उथल–पुथल करना छोड़ दिया। परन्तु जहाँ–जहाँ पृथिवी पर उनके रथ के पहियों ने चक्कर लगाया था वहाँ–वहाँ सात टापू बन गये और सात समुद्र भी। जिससे पृथिवी 'सप्त–सागरा' कहलायी और 'सप्तद्वीपा' भी। उन सातों द्वीपों में प्रत्येक की व्यवस्था का दायित्व प्रियव्रत ने अपने एक–एक पुत्र को सौंपा। उनके १० पुत्र थे और एक पुत्री थी। उन सात द्वीपों में से जम्बूद्वीप, जिसके अन्तर्गत भारत भी आता था का शासन आग्नीध्र को प्रदान किया। प्लक्ष द्वीप का शासक इध्मजिह्व को बनाया। शाल्मलिद्वीप की व्यवस्था सौंपी यज्ञबाहु को। हिरण्यरेता को कुशद्वीप का शासन प्रदान किया। अन्य पुत्र घृतपृष्ठः को क्रौञ्चद्वीप का शासक बनाया और मेधातिथि को शाकद्वीप का शासन प्रदान किया। सातवें द्वीप पुष्कर द्वीप का शासक नियुक्त किया अपने पुत्र वीतिहोत्र को। अब शेष रहे उनके जो अन्य ३ पुत्र, जिनके नाम हैं, १. कवि, २. महावीर, और ३. सवन। ये तीनों परमज्ञानी और आजन्म ब्रह्मचर्य–व्रत–धारी रहे। सांसारिक बन्धनों से दूर ही रहे। वे आत्मज्ञानी थे। अनन्तर स्वयं मनु पुत्र प्रियव्रत धन–वैभव, माया–मोह से मुक्त होकर उसी गन्धमादन पर्वत पर जा रहे, जहाँ पहले उनका पुत्र प्रियव्रत विरक्त होकर रहता था। अब परमार्थ साधन ही जीवनान्त तक उनका ध्येय बना रहा। पुनः राजमहलों में वे कभी नहीं लौटे। ऐसे थे प्रियव्रत।

□

सुभद्रा का नाम तो गिना दिया जाता है; किन्तु उसके जन्म का काल निश्चित रूप से नहीं बताया जाता। यद्यपि भागवत में सुभद्रा को देवकी की पुत्री कहा गया है; किन्तु महाभारत में कृष्ण उसे वसुदेव की पुत्री, अपनी भगिनी तथा सारण की सहोदरा बताते हैं। सारण की माता देवकी नहीं है। अर्थात् सारण रोहिणी अथवा वसुदेव की किसी अन्य रानी का पुत्र है। अतः सुभद्रा भी रोहिणी की ही पुत्री हुई। रोहिणी कारागार में वसुदेव के साथ नहीं थीं। इसलिए सुभद्रा का जन्म वसुदेव के कारागार से छूटने के पश्चात् ही होना चाहिए। यदि सुभद्रा को देवकी की पुत्री मान ही लिया जाये, तो कंस–वध तक उसका जन्म नहीं हुआ था। कृष्ण को कंस–वध के समय कम से कम सोलह वर्षों का अवश्य माना गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब वसुदेव कारागार से छूटे, तो कृष्ण सोलह वर्ष के अवश्य थे। रोहिणी ने उसके पश्चात् सारण को जन्म दिया और तब सुभद्रा का जन्म माना जाये, तो सुभद्रा कृष्ण से कम से कम बीस वर्ष छोटी ठहरती है। कृष्ण और अर्जुन को लगभग समवयस्क माना गया है। इस दृष्टि से अर्जुन और सुभद्रा की अवस्था में कम से कम अट्ठारह–बीस वर्षों का अन्तराल होना चाहिए। यह एक बड़ा कारण हो सकता है जिसके आधार पर वसुदेव अर्जुन को जामाता के रूप में स्वीकार न करना चाहते हों; किन्तु अवस्था का यह अन्तर, महाभारत के अन्य पात्रों के सन्दर्भ में कोई बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। अंबा, अम्बिका और अम्बालिका– तीनों छोटी–बड़ी बहिनों को भीष्म विचित्रवीर्य

के योग्य पत्नियाँ मानते हैं। द्रौपदी युधिष्ठिर की भी समवयस्क पत्नी मानी जाती है और सहदेव की भी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि विराट अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के साथ करना चाहते हैं, जो वस्तुतः वय की दृष्टि से अभिमन्यु की पत्नी बनने योग्य थी। अभिमन्यु उस समय सोलह वर्षों से भी कम अवस्था का बालक था। अर्जुन अपने विवाह के पश्चात् बारह वर्षों के वनवास, एक वर्ष का अज्ञातवास तथा अनेक वर्षों का राज्यभोग कर चुका है। किसी भी गणित से उसकी अवस्था पचास–पचपन वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। यदि पचास–पचपन वर्ष के पुरुष से विराट अपनी पन्द्रह वर्ष की कन्या का विवाह सहर्ष कर रहे थे, तो समाज में अर्जुन और सुभद्रा के वय का अन्तर बहुत गम्भीर अन्तर नहीं था; किन्तु वे समवयस्क दम्पति तो नहीं ही हो सकते थे। इसलिए वसुदेव इस सम्बन्ध को बिना किसी आपत्ति के कैसे स्वीकार कर सकते थे ?

महाभारत की सारी कथा में बलराम पाण्डवों के विरुद्ध कभी नहीं गये; किन्तु कौरवों के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत विरोध का नहीं दिखायी देता। दुर्योधन को बलराम का शिष्य माना गया है और अनेक स्थानों पर ऐसा लगता है कि शिष्य के रूप में दुर्योधन बलराम को भीम से भी अधिक प्रिय है। महाभारत के युद्ध में भी जहाँ कृष्ण पूरी तरह से न केवल पाण्डवों के साथ थे, वरन् उनका सारा सैन्य–अभियान संचालित भी कर रहे थे, बलराम उस युद्ध में दिखायी ही नहीं दिये। उसका कारण भी यही प्रतीत होता है कि बलराम पाण्डव सेना की ओर से लड़ना नहीं चाहते थे और दुर्योधन की ओर से लड़ना कृष्ण के विरुद्ध लड़ने के समान था। वे बाद की बातें हैं। सुभद्रा– विवाह के प्रसंग में भी ऐसा लगता है कि बलराम सुभद्रा के वर के रूप में किसी और को चुन चुके थे या चुनना चाहते थे।

एक बात और भी सम्भव है। तब तक इन्द्रप्रस्थ एक छोटा–सा राज्य था। जो खाण्डव वन में छिपे बैठे अपने शत्रुओं से भी निपट नहीं पा रहा था। उसे जब–जब धन की आवश्यकता होती थी, कृष्ण पाण्डवों की आर्थिक सहायता करते थे। इन तथ्यों को ध्यान में रखें, तो निश्चित रूप से पाण्डव उस समय तक यादवों से कम प्रतिष्ठा वाले, निर्बल तथा निर्धन सम्बन्धी थे। ऐसे सम्बन्धियों की सहानुभूतिवश सहायता तो की जा सकती है; किन्तु उन्हें अपने समकक्ष, बराबर का व्यक्ति स्वीकार नहीं किया जा सकता। सम्भव है, वसुदेव और बलराम के लिए, अर्जुन निर्धन बहन अथवा निर्धन बुआ का पुत्र हो। उसे अपने समान मानकर जामाता के रूप में तो अंगीकार नहीं किया जा सकता।

यदि इन निष्कर्षों को हम कुछ भी महत्त्व दें, तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपनी सम्पन्नता तथा शक्ति के मद में यादव, धर्म के लिए उतने उत्सुक नहीं रह गये थे, जितने कि कृष्ण थे। इसके प्रमाण महाभारत, हरिवंश पुराण तथा भागवत महापुराण में वर्तमान हैं कि यादवों की विलासिता की मात्रा बहुत बढ़ गयी थी। बलराम को तो प्रायः उन्मत्त अथवा क्षीव के रूप में चित्रित किया गया है। यादवों में विलासिता का इतना महत्त्व हो चुका था, तो उनके आदर्श भी वे नहीं रह गये होंगे, जो कृष्ण तथा पाण्डवों को प्रिय थे। ऐसी स्थिति में उनकी दृष्टि वर की धर्मपरायणता पर न जाकर उसकी अर्थ– सम्पन्नता पर ठहरती होगी। इस दृष्टि से अर्जुन से कहीं योग्य वर उनकी दृष्टि में रहे होंगे। कुल मिलाकर लगता है कि सिवाय कृष्ण के शायद ही किसी परिवारजन का चुनाव अर्जुन होता। इन सब बातों को कृष्ण जानते और समझते थे। इसीलिए उन्होंने अपने पिता, माता अथवा भाई से इस सम्बन्ध में चर्चा करने के स्थान पर अर्जुन को सुभद्राहरण करने का परामर्श दिया।

निश्चित रूप से यह जोखिम भरा कार्य था। यादवों की नगरी से उनकी प्रिय कन्या का हरण कर ले जाना कोई छोटी–मोटी घटना नहीं थी। यह बात इससे भी प्रमाणित होती है कि कृष्ण ने उस कार्य के लिए अर्जुन को अपना रथ तथा घोड़े दिये। यह रथ सामान्य सवारी का रथ नहीं है। यह कृष्ण का रथ है, जो शस्त्रास्त्रों से भरा हुआ है, जो युद्ध के काम आता है और जिसमें तीव्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। महाभारत के अनुसार उस रथ में स्थान–स्थान पर छोटी–छोटी घंटिकाएँ तथा झालरें लगा दी थीं और सुग्रीव आदि अश्व भी उसमें जोत दिये थे। उस रथ के भीतर सब प्रकार के अस्त्र–शस्त्र वर्त्तमान थे। उसकी घरघराहट से मेघ की गर्जना के समान आवाज होती थी। वह प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी जान पड़ता था। उसे देखते ही शत्रुओं का हर्ष हवा हो जाता था। (महाभारत, ३–४/२१९, आदिपर्व) अर्जुन भी कवच और तलवार बाँधकर तथा हाथों में दस्ताने पहनकर युद्ध के लिए पूर्णतः सज्जित होकर इस साहसपूर्ण कार्य के लिए गया था।

यद्यपि महाभारत में कन्याहरण की अनेक घटनाएँ वर्णित हैं; किन्तु उसका प्रचलन होने पर भी वह क्षत्रियों को स्वीकार्य नहीं था, इसीलिए उसकी प्रतिक्रिया भी बड़ी भयंकर होती थी। इस प्रसंग में भी यही हुआ। सारे यादव वीर अर्जुन से लड़ने के लिए सन्नद्ध हो गये। उन सबके नेता थे बलराम। उनमें से किसी ने भी यह नहीं कहा कि अर्जुन सुभद्रा के लिए उपयुक्त वर है। अतः इस सम्बन्ध को

गतांक में नव–संवत्सर से सम्बन्धित सूचनाओं के क्रम में यह महत्त्वपूर्ण विशेष सूचना प्रकाशित होने से रह गयी थी। – *सम्पादक*

ऋतुएँ

एक वर्ष में छह ऋतुएँ होती हैं; किन्तु उनका विभाग दो प्रकार का है। १. ज्योतिष की रीति से, २. बैद्यक की रीति से।

ज्योतिष की रीति से चैत्र, वैशाख = वसन्त
ज्येष्ठ, आषाढ़ = ग्रीष्म
श्रावण, भाद्रपद = वर्षा
आश्विन, कार्तिक = शरद्
मार्गशीर्ष पौष = हेमन्त
माघ फाल्गुन = शिशिर

वैद्यक की रीति से वैशाख, ज्येष्ठ = वसन्त
आषाढ़, श्रावण = ग्रीष्म
भाद्रपद, आश्विन = वर्षा
कार्तिक, मार्गशीर्ष = शरद्
पौष, माघ = हेमन्त
फाल्गुन, चैत्र = शिशिर

ज्योतिष की रीति वृक्षादि के फूलने–फलने की दृष्टि से उपयुक्त है और वैद्यक की रीति वात, पित्त, कफ, दोषों के संचय, कोप, शमन के निमित्त है। इसीलिए अन्तर है।

"ब्रह्मा के द्वितीय परार्द्ध के श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के २८वें कलियुग के प्रथम चतुर्थांश भाग में"

इस वर्ष प्रतिपदा (चैत्र शुक्ल–१) से प्रारम्भ

प्रमुख संवत्

सृष्टि संवत्	:	१,९५,५८,८५,१०२
युधिष्ठिर संवत्	:	५,१३८
कलि संवत् (युगाब्द)	:	५,१०२
विक्रम संवत्	:	२०५७
शालिवाहन संवत् (शाके शालिवाहने)	:	१९२२

१. ब्रह्माजी द्वारा काल–गणना प्रारम्भ
२. वासन्तिक नवरात्र प्रारम्भ
३. श्रीराम का राज्याभिषेक
४. युगाब्द प्रारम्भ
५. शकारि विक्रमादित्य–विजयोत्सव
६. आर्य समाज–स्थापना–दिवस
७. डॉ० केशवराव बलिराम हेडगेवार का जन्म–दिवस

स्वीकृति दे दी जाये। वे सब लोग अर्जुन को नीच और कृतघ्न बता रहे थे, जिसने जिस बर्तन में खाया था, उसी में छेद किया था। वे लोग न केवल सुभद्रा को लौटा लाना चाहते थे; वरन् अर्जुन को इस कृत्य के लिए दण्डित भी करना चाहते थे। ऐसे में यह कृष्ण का ही कौशल था कि उन्होंने अपने तर्कों से यह सारी स्थित बदल दी और उस युद्ध–अभियान को न केवल स्थगित करवा दिया; वरन् यादवों को इस बात के लिए भी मनवा लिया कि वे लोग अर्जुन के पीछे जायेंगे और उसे लौटा लायेंगे। द्वारका में अर्जुन और सुभद्रा का पूरे सम्मान के साथ विवाह होगा और अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर दहेज का सामान भी इन्द्रप्रस्थ पहुँचा दिया जायेगा।

इसके लिए कृष्ण ने पहले तो यह तर्क दिये कि अर्जुन ने उनके कुल का अपमान नहीं किया है; वरन् उनके प्रति सम्मान का भाव ही प्रकट किया है। उन्होंने कहा कि यादव धन लेकर अपनी कन्या नहीं देते। दान में कन्या को प्राप्त करना क्षत्रियों के लिए सम्मानजनक नहीं है। इसलिए अर्जुन न तो दान में सुभद्रा को स्वीकार करता और न ही उस दान की प्रतीक्षा में वह निष्क्रिय बैठा रह सकता था। उसने एक वीर क्षत्रिय के समान बलपूर्वक कन्या का हरण किया। कृष्ण का अभिप्राय कुछ ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे कहना चाहते हों कि अर्जुन ने सुभद्रा को अपनी पत्नी होने योग्य समझा, इससे सुभद्रा का वंश सम्मानित ही हुआ है और इस हरण से अर्जुन ने अपनी वीरता भी प्रमाणित की है। बलराम तथा अन्य यादव जब बार–बार अर्जुन से लड़ने और उसे मारने की धमकी देते हैं, तो कृष्ण कहते हैं, "इन्द्रलोक तथा रुद्रलोक सहित सम्पूर्ण लोकों में कामदेव का नाश करनेवाले विकराल नेत्रों से युक्त भगवान् रुद्र को छोड़ कर दूसरे किसी को मैं ऐसा नहीं देखता, जो संग्राम में बलपूर्वक पार्थ को परास्त कर सके। इस समय अर्जुन के पास मेरा सुप्रसिद्ध रथ है। मेरे ही अद्भुत घोड़े हैं और स्वयं अर्जुन शीघ्रतापूर्वक शस्त्रास्त्र चलानेवाले योद्धा हैं। यदि अर्जुन आप लोगों को बलपूर्वक हराकर अपने नगर में चले गये, तब तो आप लोगों का सारा यश ही नष्ट हो जायेगा और सान्त्वनापूर्वक उन्हें ले आने में अपनी पराजय नहीं है।" (८–१२/२२०, आदिपर्व, महाभारत)

रामसेवक शर्मा की दो कविताएँ—

अगर न आते दुःख

समझ न पाती आँगन भाई
बजती सुख शहनाई।
अगर न आते दुख, रह जातीं
पीड़ाएँ अनगाई।।
साँस—साँस जब हुई सुहागिन
थे अनगिन बाराती।
साँसों के विधवा होने पर
जली नहीं सँझवाती।।
दुर्दिन तम के आते—आते
छोड़ गयी परछाईं।
अपना और पराया क्या है
हरा न चश्मा जाने।
दुख ने चश्मे को उतार कर
रंग सभी पहचाने।।
पग नीचे कितनी फिसलन है
समझाये यह काई।
धन्यवाद है व्यथा—कथाओ,
धन्यवाद विपदाओ!
सच का भान कराया तुमने,
धन्यवाद पीड़ाओ!!
स्वारथ वाली प्रीत—रीत ने
खोली भरम सचाई।

☆

घर से अलग आँगन हुआ

भोर के उगते क्षणों में
शाम आ ठहरी।
अलग आँगन हुआ घर से
द्वार से देहरी।।
हैं नहीं संवेदनाएँ
शेष जीवन में।
आग ही लगने लगी जब
प्राण—चन्दन में।।
पीर जो मरहम लगी थी
हो गयी गहरी।
पेड़ बरगद का खड़ा था
छाँव थी शीतल।
काट ही डाला न जाने
क्या मिला है हल।।
बेशरम की झाड़ियाँ तन
ताल में लहरी।
खून का रिश्ता न लगता
खून का अपना।
रह गया दो—चार मुट्ठी
चून का सपना।।
बोलियाँ सम्बन्धवाली
मौन हैं बहरी।

— १४/४१, बिरलानगर, ग्वालियर—४७४००४ (म०प्र०)

यहाँ कृष्ण ने न केवल यह स्पष्ट कर दिया कि इस युद्ध में वे यादवों की ओर से नहीं लड़ेंगे, वरन् यह भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वे लोग अर्जुन को पराजित नहीं कर पायेंगे। यह चेतावनी थी, जिसके कारण बलराम तक का साहस नहीं हुआ कि वे अर्जुन से जा भिड़ते और उसे पराजित कर सुभद्रा को लौटा लाते।

एक और प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि क्या कृष्ण के लिए अपने विवाह के सन्दर्भ में सुभद्रा की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था? क्या वे उसकी इच्छा के विरुद्ध अपना मनोनीत वर बलात् उस पर थोप देना चाहते थे? जिस कृष्ण ने भीष्मक द्वारा रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध शिशुपाल से उसके विवाह का विरोध किया और वे रुक्मिणी का हरण कर लाये, उस कृष्ण के लिए अपनी बहन की इच्छा क्या कोई अर्थ नहीं रखती? इस प्रश्न का उत्तर यह कहकर बहुत सुविधा से दिया जा सकता है कि कृष्ण जानते थे कि सुभद्रा अर्जुन के साथ सुखी रहेगी; किन्तु ऐसा दावा तो प्रत्येक कन्या के अभिभावक द्वारा किया जाता है। कृष्ण ने सुभद्रा को अपने लिए अपना जीवन साथी चुनने का अवसर क्यों नहीं दिया?

कृष्ण का व्यक्तित्व जिस रूप में हमारे सामने आता है, उससे ऐसा नहीं लगता कि वे किसी व्यक्ति की न्यायपूर्ण स्वतन्त्रता का दमन कर अपनी इच्छा उस पर आरोपित करने के अभ्यस्त रहे हों; किन्तु उनकी कार्य—प्रणाली सदा सीधी और सरल हो, यह भी आवश्यक नहीं है। प्रायः उनके

नाम की ऊपरी सतह और उसकी भीतरी तह में पर्याप्त अन्तर होता है और सामान्यतः ऊपर से दिखायी पड़नेवाली स्थिति भ्रामक होती है। शायद इसीलिए कृष्ण को प्रायः प्यार से 'छलिया' कहा जाता है। माया उनकी कार्य–प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी प्रकाश में यदि हम सुभद्रा के चरित्र को देखें तो कुछ महत्त्वपूर्ण अनुमान हमारे हाथ लगते हैं। सुभद्रा निश्चित रूप से स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर कन्या थी। वह द्वारका के यादवों के स्वतन्त्र वातावरण में पली थी। घर में सबसे छोटी होने के कारण उसकी छवि वसुदेव की लाड़ली पुत्री तथा कृष्ण की लाड़ली बहन की है। कहा जाता है कि वह अश्वसंचालन तथा शस्त्र–परिचालन में भी सिद्धहस्त थी। बहुत सम्भव है कि पूछे जाने पर किसी वर के विषय में स्वीकृति न देने के कारण ही कृष्ण ने उसके साथ यह चाल चली हो। अर्जुन द्वारा उठाकर रथ में बैठा लिये जाने के पश्चात् विवाह तथा वर के चयन का प्रश्न टल नहीं सकता था। उसे तत्काल यह निर्णय करना था कि हरण के माध्यम से अर्जुन द्वारा किये गये विवाह–प्रस्ताव को वह स्वीकार करे या न करे। यदि उसे अर्जुन अपने पति के रूप में स्वीकार्य था, तो उसे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी। इस हरण का स्वाभाविक अर्थ विवाह ही था; किन्तु यदि अर्जुन उसे इस सीमा तक नापसन्द था कि वह उसे किसी भी स्थिति में पति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती थी, तो वह इस हरण का विरोध करने के लिए स्वतन्त्र थी। अर्जुन रथ का सारथ्य कर रहा था, सुभद्रा के रक्षकों तथा सामान्य यादव सैनिकों से युद्ध कर रहा था और सुभद्रा उसी रथ में स्वतन्त्र रूप से बैठी हुई थी। उसके हाथ बँधे हुए नहीं थे। रथ में अनेक शस्त्रास्त्र रखे हुए थे, उन शस्त्रों को चलाने में वह सक्षम थी। यदि उसे अर्जुन का तिरस्कार करना था, तो शस्त्र उठाकर अर्जुन का प्रतिरोध मात्र करना था। शेष यादव सैनिक स्वयं ही कर लेते। अर्जुन भी कृष्ण की बहन को मार–पीट कर, बाँधकर अथवा शस्त्रबल से भयभीत कर उसकी असहायता का लाभ उठाकर उसे अपने साथ न तो इन्द्रप्रस्थ ले जा सकता था और न वह ले जाना चाहता ही। कृष्ण उसके कितने भी प्रिय मित्र हों, वे उसकी कितनी ही सहायता क्यों न कर रहे हों, किन्तु वे उसे इस बात की अनुमति किसी भी स्थिति में नहीं देते कि वह सुभद्रा को पशुवत् बाँधकर शस्त्रबल के सहारे अपने साथ ले जाता और उससे विवाह कर लेता।

सुभद्रा ने इस हरण का विरोध नहीं किया। यह इस बात का पर्याप्त संकेत था कि अब तक चाहे उसने अर्जुन के प्रति अपना आकर्षण नहीं दिखाया था; किन्तु चुनाव की स्थिति आ जाने पर वह उसका तिरस्कार भी नहीं कर पायी थी। इसी सन्दर्भ में एक और घटना द्रष्टव्य है। इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर जब अर्जुन द्रौपदी से मिलने जाता है, तो द्रौपदी, सुभद्रा से विवाह करने के कारण अर्जुन के प्रति अपना रोष प्रकट करती है और कहती है कि उसके पास क्या करने आया है? वहीं जाये, जहाँ "वह सात्वत वंश की कन्या सुभद्रा है। सच है बोझ को कितना ही कस कर बाँधा गया हो, जब उसे दूसरी बार बाँधते हैं, तब पहला बन्धन ढीला पड़ जाता है। (महाभारत, १७/२२०, आदिपर्व) इस रोष को जीतने के लिए अर्जुन और सुभद्रा मिलकर योजना बनाते हैं। सुभद्रा का ग्वालिन का–सा वेष बनाकर अर्जुन उसे बहुत उतावली से द्रौपदी के पास भेजता है।" पूर्ण चन्द्रमा के सदृश्य मनोहर मुख वाली सुभद्रा ने तुरन्त जाकर महारानी द्रौपदी के चरण छुए और कहा, 'देवि! मैं आपकी दासी हूँ।' यह घटना एक प्रकार से सुभद्रा की उस कामना की द्योतक है, जो अर्जुन के साथ सुखी दाम्पत्य–जीवन व्यतीत करने के लिए उसके मन में जन्मी थी।

सुभद्राहरण की इस घटना को अम्बा–हरण के प्रकाश में भी देखा जा सकता है। भीष्म ने अम्बा का हरण किया था। जब तक अम्बा ने उसका विरोध नहीं किया, तब तक भीष्म उस पर अपना अधिकार समझते रहे। यही मानते रहे कि उसका विवाह वे जिससे चाहें, कर दे सकते हैं; किन्तु जिस क्षण अम्बा ने यह कहा कि उसने मन ही मन शाल्व का वरण कर रखा है और उसकी वाग्दत्ता है– भीष्म ने तत्काल उसे ससम्मान शाल्व के पास भिजवा दिया। सुभद्रा के सन्दर्भ में भी अपने विवाह तथा पति के चयन–सम्बन्धी निर्णय की प्रक्रिया को तीव्र करने और तत्काल निश्चय करने के लिए उसे बाध्य करने का यह सबसे सरल और सुविधाजनक मार्ग था। अर्जुन ने सुभद्रा को प्राप्त करने का यह अत्यन्त जोखिम भरा मार्ग अपनाया था। चाहे वह स्वयं कृष्ण द्वारा ही निर्देशित था। यदि सुभद्रा अर्जुन का तिरस्कार कर देती, तो अर्जुन न केवल अपमानित होता, वह यादवों के द्वारा दण्डित भी होता। पाण्डवों और यादवों के सम्बन्ध बिगड़ जाते और पाण्डवों का एक शक्तिशाली राजनीतिक सहयोगी उनसे पृथक् हो जाता।

कृष्ण ने अर्जुन को इतने बड़े संकट में क्यों डाला? हम जानते हैं कि कृष्ण अर्जुन से इतना प्रेम करते थे कि वे उसे किसी संकट में डाल नहीं सकते थे। इसका अर्थ यह है कि किन्हीं अज्ञात कारणों से कृष्ण को पहले से ही यह विश्वास रहा होगा कि सुभद्रा अर्जुन का तिरस्कार नहीं करेगी। अर्जुन अपमानित और दण्डित नहीं होगा तथा यादवों और पाण्डवों के सम्बन्ध नहीं बिगड़ेंगे; किन्तु कृष्ण यह कैसे जानते थे, यह सूचना प्राप्त करने का मुझे कोई साधन दिखाई नहीं पड़ता। □

– १७५, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली–११००३४

धर्म क्या ? अधर्म क्या ?

– पुरुषोत्तम नागेश ओक

वर्तमान सार्वजनिक जीवन में आंग्ल (Religion) शब्द 'रिलिजन' का अर्थ 'धर्म' समझकर उसके उदाहरण स्वरूप हिन्दू, ईसाई, बौद्ध, मुसलमान, सिख आदि नाम लिये जाते हैं, जो वास्तव में आजकल के सारे विद्वानों की बड़ी भारी भूल है; क्योंकि संस्कृत 'धर्म' शब्द कर्त्तव्य का द्योतक है, यथा पुत्रधर्म, मानवधर्म, शरीरधर्म इत्यादि। अतः मानवधर्म एक समान सारे मानवों को पालने के नियमों को कहा जाता है। उदाहरणार्थ प्रातः सूर्योदय से पूर्व (लगभग ४ बजे) उठना, तत्पश्चात् शौच तथा मुखप्रक्षालन, स्नान, व्यायाम करना तथा लौकिक व्यवहार के लिए घर से बाहर निकलने से पूर्व 'सत्यं वदामि, धर्मं चरामि....' (मैं सर्वदा सत्य ही बोलूँगा, अपना कर्त्तव्य करूँगा" इत्यादि।

व्यक्ति के लिए सारे मानव समाज का तथा पशु, पक्षी आदि सारे जीवों का जीवन सुख तथा शान्ति से बीते – इस हेतु से जिन नियमों को पालना अच्छा होता है, उन्हें धर्म कहा जाता है। हिन्दू अर्थात् सनातन धर्म में ठीक ऐसे ही नियमों का पालन आवश्यक समझा जाता है।

अतः सनातन धर्म, अर्थात् मानव धर्म अर्थात् हिन्दू धर्म ही केवल धर्म कहलाने योग्य जीवनप्रणाली है। 'सनातन' का अर्थ है कि पृथ्वीभर के किसी भी प्रदेश में, किसी भी काल में जो भी मानव रहते हों, उन सबका सुखी, शान्त, निरोगी, दीर्घायु समाधानी सार्वजनिक जीवन व्यतीत हो, इस हेतु सारे व्यक्तियों ने आचार–व्यवहार के जो भी नियम बनाये, वे सनातन हैं।

अतः धर्म सारे मानवों पर समान लागू होना चाहिए। कोई व्यक्ति ईसाई हो, या मुसलमान हो, तो भी ऊपर कहे नियमों का उसे पालन करना आवश्यक होता है।

मूर्त्ति पूजा, जप आदि आवश्यक नहीं

जन–सामान्य में ऐसी एक गलत धारणा है कि हिन्दू कहलाना हो, तो मूर्त्तिपूजा, परमात्मा के नाम का जप, धार्मिक ग्रन्थ– पठन इत्यादि आवश्यक होता है। यह धारणा निर्मूल है; निराधार है। ये केवल साधन मात्र हैं। कोई इनका आधार ले या न ले। जैसे घूमने जाते समय हाथ में बेंत, डण्डा, लाठी आदि का होना आवश्यक नहीं। फिर भी कई लोग चलते–फिरते छड़ी हाथ में रखते हैं। इस कारण कि शरीर को आधार मिले या चोर, लुटेरे या कुत्ता आदि को मार भगाया जाय।

उसी प्रकार वेद, उपनिषद्, रामायण, भगवद्गीता आदि चाहे कोई पढ़े या न पढ़े, उनकी प्रशंसा करे या न करे, फिर भी वह सनातन धर्म, यानि सभ्य मानव समाज का सदस्य माना जाता है, यदि वह शान्ति से निजी कर्त्तव्य करता है।

सनातन हिन्दू परम्परा ही 'धर्म' संज्ञा की पात्र है, क्योंकि वह 'पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना' यानि प्रत्येक व्यक्ति का सोचने का ढंग भिन्न होता है तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यानि सारे धरती पर रहने वाले सारे मानव एक ही मानव–कुटुम्ब के सदस्य हैं, इस प्रकार की विशाल, तर्कशुद्ध सर्वसमावेशक प्रणाली सनातन धर्म कहलाती है।

विपरीत ईसाई, इस्लामी प्रथाएँ

सनातन, हिन्दू, वैदिक धर्म का जो व्यक्ति–स्वातन्त्र्य का मुख्य लक्षण ऊपर कहा है उससे पूर्णतया विपरीत ईसाई तथा इस्लामी आचार–विचार–प्रणाली है। मध्यपूर्व तथा जावा–सुमात्रा आदि सुदूर पूर्व में सारे मुसलमान कैसे बने? इसका रहस्य यही है कि जो ईसाई या मुसलमान कहलाने के लिए तैयार नहीं हुए, उन्हें मार डाला गया। अतः विश्वभर के समस्त ईसाई तथा मुसलमान हिन्दू सनातनधर्मियों के वंशज हैं; क्योंकि सन् ३१२ से पूर्व ईसाई पन्थ था ही नहीं तथा सन् ६२२ से पूर्व इस्लामी पन्थ भी नहीं था।

इस्लाम के तत्त्व पूर्णतया विरोधी हैं; क्योंकि सारे मानवों में मोहमद ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है और 'कुरान' ही सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, इसे कबूल न करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को या तो मुसलमान बनने को बाध्य करो या कत्ल करो– यह इस्लाम की परम्परा सर्वज्ञात है।

दिन में पाँच बार नमाज पढ़ने की प्रथा का भी कोई तार्किक आधार नहीं है। पाँच बार ही नमाज क्यों अदा की जाए? दस बार क्यों नहीं? या दो बार क्यों नहीं? ☐

–भूखण्ड क्रमांक १०, गुडविल सोसायटी, औंध, पुणे– ४११००७

...जब भाऊराव जी हाफलाङ् पहुँचे

– श्रीकान्त जोशी

जुलाई १९८५ की बात है। भाऊराव जी को पक्षाघात तथा हृदयविकार का सौम्य झटका पड़े प्रायः दो वर्ष पूर्ण हो रहे थे। वैसे उनका फिर से प्रवास भी आरम्भ हो गया था।

सुबह के समय केशव–कुंज की पहली मंजिल के बरामदे में भाऊरावजी टहल रहे थे। मुझे देखकर बोल उठे, "अरे श्रीकान्त ! मेरा हॉफलाङ् आने का कार्यक्रम हो रहा है, तुझे मालूम है ना ?"

मुझे यह बात सुनकर आश्चर्य लगा तथा हैरानी भी हुई कि अभी भाऊराव जी का स्वास्थ्य इतना लम्बा प्रवास करने लायक तो हुआ नहीं है और न तो मैंने उनसे हाफलाङ् आने के बारे में कहीं कुछ बात चलायी थी, तो फिर आज अचानक यह बात उन्होंने मुझसे कैसी कही।

मैं सोच में पड़ गया तथा चिन्तित भी हुआ। तब वे बोले, अरे ! वो तुम्हारा गांधी (श्री कृष्ण चन्द्र गांधी) तो मेरे पीछे पड़ा है। उसका कहना है कि "भाऊराव जी ! आपका एक बार आकर अपने सरस्वती विद्या मन्दिर का छात्रावास देखना आवश्यक है। मेरी भी बहुत इच्छा है कि तुम्हारा वह हाफलाङ् का विद्यालय व छात्रावास देख लूँ।"

आसाम प्रान्त में हॉफलाङ् का यह सरस्वती विद्या मन्दिर तथा उसका छात्रावास एक अनोखा प्रयोग ही कहना होगा। १९८२ में इस विद्या मन्दिर का कार्य आरम्भ हुआ था। हॉफलाङ् दक्षिण असम के उत्तर कछार जिले का मुख्यालय का शहर है। प्रायः ४००० फिट ऊँचाई पर बसा अतीव रमणीय यह गाँव लुमडिङ्–सिल्चर रेलपथ पर ठीक मध्य में है। चारों ओर घने जंगल तथा पहाड़ियों से घिरा यह स्थान एक अजीब सी शान्ति व आनन्द प्रदान करता है। विद्या मन्दिर के कार्य का प्रारम्भ भी बड़ी आश्चर्यजनक रीति से हुआ था।

हॉफलाङ् का गाँवबूढ़ा नामदा जेमी

हॉफलाङ् से २ किमी० के अन्तर पर एक छोटी सी जेमी नागाओं की बस्ती है। उस बस्ती का नाम है 'न्युपुलो' (Pnupulo) लेकिन वहाँ के लोग इस क्षेत्र को 'बड़ा हॉफलाङ्' नाम से पुकारते हैं। वैसे गुवाहाटी से लुमडिङ् होकर रेलगाड़ी जब पहाड़ी मार्ग से बदरपुर–सिल्चर की ओर आती है, तब लोअर हाफलाङ् स्टेशन पर काफी देर तक रुकती है। यह स्टेशन हॉफलाङ् गाँव से नीचे उतार पर है। स्टेशन से हाफलाङ् पहुँचने के लिए ४ किमी० जीप या बस से अथवा पैदल ही पहाड़ चढ़ कर आना पड़ता है। रास्ता अच्छा है। इसके बाद का स्टेशन है 'बड़ा हॉफलाङ्'। यहाँ से हॉफलाङ् प्रायः डेढ़ किमी० पड़ता है। सरस्वती विद्यालय जिस बस्ती में है, वह भी बड़ा हॉफलाङ् स्टेशन से प्रायः एक डेढ़ किमी० अन्तर पर ही है। अतः इस विद्यालय में आना हो, तो बड़ा हांफलाङ् स्टेशन ही निकट पड़ता है। वैसे यह बस्ती सिल्चर–हॉफलाङ् मुख्य सड़क के किनारे पर ही होने के कारण सिल्चर से बस या कार से भी आना सुविधाजनक होता है। लेकिन सिल्चर से हॉफलाङ् प्रायः १०० किमी० अन्तर पर है। यह रास्ता भी अच्छा है। जेमी नागाओं की इस छोटी–सी बस्ती के 'गाँवबूढ़ा' थे नामदा जेमी। 'गाँवबूढ़ा' गाँव के केवल मुखिया या सरपंच ही नहीं होते, उस गाँव के सभी लोगों के वे पालक, अभिभावक या पितास्वरूप ही होते हैं। नामदा जेमी को बड़ा दुःख होता था कि आसपास की नागा बस्तियों तथा गाँव के बच्चों के लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। इसका अनुचित फायदा क्रिश्चियन मिशनरी उठाते रहते हैं। अनेक बस्तियों के छोटे–छोटे बच्चों को ये मिशनरी पढ़ाने की सुविधाएँ उपलब्ध कराने का लोभ दिखाकर हॉफलाङ् ले आते हैं। वहाँ के कॉन्वेण्ट के छात्रावास में भरती करके उनको खिश्चन मतावलम्बी बनाते हैं। अतः श्री नामदा जेमी विश्व हिन्दू परिषद् तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं से आकर मिलता था और अपना दुःख व्यक्त कर बार–बार आग्रह करता था कि इन नागा बच्चों के लिए कोई विद्यालय शुरू किया जाये ताकि उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध हो तथा खिश्चन होने से वे बचेंगे और अपनी पारम्परिक पूजा–पद्धति, संस्कृति, बोली–भाषा, वेषभूषा आदि की भी रक्षा कर सकेंगे। नामदा का यह आग्रह और ही विशेष जोर से होने लगा था; क्योंकि उसने देखा कि हॉफलाङ् में ही विश्व हिन्दू

परिषद् द्वारा एक छात्रावास बड़े अच्छे ढंग से चल रहा था। उस छात्रावास में अनेक जनजातियों के छोटे–छोटे बच्चे एक साथ रहते थे। अपनी–अपनी पूजा–पद्धतियों, मान्यताओं तथा विश्वास व श्रद्धा के अनुसार अपनी परम्परा व संस्कृति की रक्षा करके पास के सरकारी विद्यालय में जाकर शिक्षा भी ग्रहण करते थे। उनका किसी भी प्रकार का 'मतान्तरण' नहीं किया जाता है। उलटा अपने कुल, संस्कृति व परम्परा तथा महापुरुषों के विषय में तथा इतिहास के बारे में अभिमान धारण करते हुए वहाँ के सभी जातिजमात के लोगों से बड़े आत्मविश्वास के साथ मेलमिलाप करने में किसी भी तरह का संकोच अथवा हीनता–ग्रन्थि का वे अनुभव नहीं करते थे।

सरस्वती विद्या मन्दिर का प्रारम्भ

१९७९ में पहली बार असम प्रान्त में गुवाहाटी में और मणिपुर में इम्फाल में विद्याभारती से संलग्न विद्यालय प्रारम्भ किये गये थे। उनकी शीघ्र गति से ही रही प्रगति तथा लोगों से प्राप्त अनुकूल प्रतिसाद से असम के कार्यकर्त्ता उत्साहित हुए थे। उसी समय यह भी अनुभव किया जा रहा था कि जनजाति–क्षेत्र में भी ऐसे विद्यालय प्रारम्भ करने चाहिए। तब विद्याभारती के ज्येष्ठ तथा अनुभवी कार्यकर्त्ता के नाते भाऊराव जी ने कृष्णचन्द्र गांधी को असम में जनजाति क्षेत्र में विद्यालय प्रारम्भ करने का प्रयास करने के लिए कहा। श्री गांधी ने भी असम के कार्यकर्त्ताओं से परामर्श करके हॉफलाङ् के पास ही एक ऐसा विद्यालय शुरू करने का निश्चय किया।

बड़ा हाफलाङ् के श्री नामदा को जब यह बात ज्ञात हुई, तो वे स्वयं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा विश्व हिन्दू परिषद् के कार्यकर्त्ताओं से मिलने आये और कहने लगे कि आप हमारी बस्ती में विद्यालय व छात्रावास प्रारम्भ कीजिए। वहाँ पर हम आपको आवश्यक जमीन व पूरा सहयोग देंगे। बहुत आग्रह से वे श्री गांधी तथा श्री रामानन्द को जगह दिखाने ले गये थे। यह उत्तर कछार जिला स्वायत्त–शासी जिला परिषद् से संचालित होता है। अतः गाँव की जमीन पूरी ग्रामपंचायत के अधीन ही रहती है। श्री नामदा गाँवबूढ़ा (सरपंच) तो थे ही तथा रानी गाईडिन्लू के पक्के भक्त भी थे। अतः उनके सहयोग से यह कार्य करना सुविधाजनक ही था। लेकिन क्या और भी कहीं अच्छी सुविधाजनक जगह प्राप्त हो सकती है, यह भी सोचा जा रहा था तथा विद्यालय और छात्रावास प्रारम्भ करने की दृष्टि से अन्य भी सब तैयारियाँ करनी आवश्यक थीं। अतः निर्णय होने में कुछ विलम्ब हो रहा था। इसी समय जो जमीन श्री नामदा ने विद्यालय व छात्रावास के लिए दिखायी थी, उससे लगी हुई जमीन में, सन्तरे का रस डिब्बा बन्द करनेवाली फैक्टरी भी थी। यह फैक्टरी तो असम सरकार द्वारा प्रायोजित एक उद्योग था। उसका विस्तार करने के लिए और अधिक जगह की उन्हें आवश्यकता भी थी। अतः शासन के अधिकारी भी गाँवबूढ़े के पास बार–बार आ रहे थे। नाना प्रकार के प्रलोभन दिखा रहे थे। पैसे का प्रलोभन भी दिखा रहे थे। कभी–कभी धमकाते भी थे। लेकिन श्री नामदा ने दृढ़ निश्चय करके रखा था कि यह जमीन 'हिन्दू मिशन' को ही देनी है और गाँव में विद्यालय तथा छात्रावास आरम्भ करना ही है, क्योंकि आसपास के गाँव के जेमी नागाओं के बच्चे वहाँ पर आकर शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

राज्यपाल भी खाली हाथ लौटे

निर्णय को जब विलम्ब हो रहा था, तब शासन के द्वारा श्रीनामदा पर दबाव बढ़ने लगा और एक दिन असम के तत्कालीन राज्यपाल हाफलाङ् आये। तब उन्होंने नामदा को बुलाकर कहा कि तुम अपने गाँव की वह जमीन सन्तरे का रस डिब्बा बन्द करनेवाली फैक्टरी के लिए छोड़ दो। उससे उद्योग बढ़ेगा। गाँव के लोगों को फैक्टरी में नौकरी दिलायी जायेगी। गाँव के सन्तरे दूर नहीं भेजने पड़ेंगे। और तो और, उसको भी कुछ आर्थिक लाभ होगा। हॉफलाङ् के क्षेत्र में अच्छे सन्तरे होते हैं। लेकिन नामदा टस से मस नहीं हुए। उन्होंने राज्यपाल महोदय को साफ शब्दों में बता दिया कि वह जमीन वे हिन्दू मिशन को ही देंगे और वहाँ पर विद्यालय व छात्रावास होगा, क्योंकि उसमें आसपास के गाँवों के जनजातियों के बच्चे पढ़ने आयेंगे; शिक्षा प्राप्त करके अच्छे नागरिक बनेंगे। उसके इस जवाब में सभी लोग आश्चर्य–मुग्ध हो गये। राज्यपाल को भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

तब श्री नामदा ने विद्याभारती व संघ के कार्यकर्ताओं से कहा कि अब तक तो उसने गाँव की इस जमीन को बचाया है; लेकिन अब वह बूढ़ा हो गया है पता नहीं आगे क्या होगा ? अतः शीघ्रता से वहाँ पर विद्यालय व छात्रावास प्रारम्भ किया जाये। उसके इस आग्रहपूर्ण निवेदन के बाद श्री गांधी ने पंकज सिन्हा को बिहार से असम बुलाया तथा यह दायित्व उन्हें सौंप दिया। कुछ ही दिनों बाद वहाँ पर बाँस की झोपड़ी खड़ी की गयी और छात्रावास प्रारम्भ किया गया। शुरू में तो केवल १२–१३ छात्रों को लेकर यह कार्य आरम्भ हुआ था। श्री नामदा ने बड़ी उदारता से इस बात को स्वीकार किया था कि विद्यालय में तथा छात्रावास में केवल जेमी नागाओं के बच्चे ही नहीं पढ़ेंगे तो अन्य भी विभिन्न जनजातियों के बच्चों को भी उसमें प्रवेश मिलेगा तथा सभी सुविधाएँ उनको भी प्राप्त होंगी।

शिशु मन्दिरों के प्रजा पिता

जब भाऊरावजी के वहाँ आने का कार्यक्रम बन रहा

था, तब उस छात्रावास में असम के विभिन्न भागों के प्रायः १२–१३ जनजातियों के कुल ४० बच्चे रहने लगे थे; आस–पास के गाँवों के छात्र प्रतिदिन पैदल आने लगे थे। और विद्यालय के अपने भवन के भी ५–६ कमरे तथा एक विशाल कक्ष (सभागृह) तैयार हो गया था। अतः श्री गांधी की यह इच्छा होना स्वाभाविक भी था कि भाऊरावजी की चरण–धूलि का स्पर्श इस पवित्र स्थान को मिल जाये। जब भाऊरावजी अस्वस्थ थे, तब अनेक बार वे श्री गांधी से इस प्रकल्प के बारे में पूछताँछ करते थे; क्योंकि यह तो सारे पूर्वांचल के जनजातीय क्षेत्र के कार्य की दिशा निर्देशित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण प्रकल्प था। जब उनको यह जानकारी मिली कि स्वयं श्री बालासाहेब भी हॉफलाङ् हो आये हैं और उन्होंने भी मुक्तकण्ठ से उसकी सराहना की है, तो ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य में थोड़ा–सा सुधार होते ही हॉफलाङ् जाने का एक अतिसाहसी निर्णय उन्होंने लिया था। वैसे भी भाऊरावजी तो देशभर में चलनेवाले शिशु मन्दिरों के प्रजापिता थे। फिर वे हॉफलाङ् विद्यालय को अपने बहुमूल्य मार्गदर्शन से वंचित कैसे कर सकते थे ?

विजयादशमी के दिन हाफलाङ् का कार्यक्रम

जब भाऊरावजी ने कहा कि उनका हाफलाङ् जाने का कार्यक्रम तय हो रहा है, तब मैंने उनसे निश्चित तिथियों के बारे में पूछा। उन्होंने बताया कि आगामी विजयादशमी के दिन वे हाफलाङ् के सरस्वती विद्यामंदिर के कार्यक्रम में उपस्थित रहने का कार्यक्रम बना रहे हैं। मुझसे रहा नहीं गया, मैंने कहा कि वह समय मौसम की दृष्टि से ठीक नहीं होगा; क्योंकि प्रतिवर्ष दुर्गापूजा के समय आसाम में बारिश होती है, ऐसा अनुभव है और हॉफलाङ् तो पहाड़ी क्षेत्र है। वहाँ पर तो बारिश प्रायः दीपावली तक चलती है। वहाँ यदि जाना हो तो दिसम्बर या जनवरी में जाना सुविधाजनक है। इस वर्ष दुर्गापूजा जो अक्टूबर के शुरू में है और उस समय तक बारिश के कारण खराब हुए रास्तों की दुरुस्ती भी नहीं हो सकती है। हॉफलॉङ् जाने वाली रेलगाड़ियाँ बड़ी अनियमित रहती हैं। पहाड़ी–क्षेत्र होने के कारण रेलमार्ग पर अनेक बार जमीन धँसती है, पत्थर गिरते हैं और यातायात अवरुद्ध होने की सम्भावना रहती है।

मेरी यह बात सुनकर वे बोले, यह सब मुझे कुछ भी मालूम नहीं। तुम गांधीजी से बात करो। मैं तुरन्त गांधीजी से भी मिला। उन्होंने बताया कि भाऊरावजी की तो हॉफलॉङ् जल्दी जाने की इच्छा है। इसलिए वर्षाऋतु समाप्त होते ही वे वहाँ आना चाहते हैं और बाद में तो उनके अन्य भी कार्यक्रम निश्चित हुए हैं, अतः यही समय उपलब्ध है। हमें इसी कार्यक्रम को पूर्ण करना उचित होगा। यह प्रवास

घरेलू डाक्टर- हरा पुदीना व इसकी चटनी

उत्तर भारत के लोग लौकी मिलाकर चने की दाल या अरहर की दाल के साथ हरे पुदीने की चटनी बड़े शौक से खाते हैं। कच्चे आम या अनारदाना व प्याज डालकर बनाई गई यह चटनी होती भी बड़ी स्वादिष्ट और पौष्टिक है। ठंडी तासीर वाले इस हरे पुदीने के और क्या उपयोग हैं, आइए देखते हैं–

हरा पुदीना पेट की बीमारियों जैसे पेट दर्द, बदहजमी, खट्टे डकार, साधारण दस्त आदि के लिए अति उपयोगी है। इन सब प्रकार की शिकायत होने पर ताजे पानी में पुदीने का रस डालकर पीना चाहिए, राहत मिलेगी।

गैस ट्रबल, एसिडिटी आदि में होने वाली जलन को शान्त रखता है। पेट गैस की बीमारियों के लिए डाक्टरों द्वारा दी जाने वाली सोडा मिंट या जिंजर मिंट गोलियों में भी सत् पुदीना, मीठा सोडा और सत् अदरक ही होता है, जिसे एक चम्मच मीठा सोडा, आधा चम्मच पुदीने का रस और चौथा हिस्सा अदरक का रस मिलाकर घर पर भी तैयार किया जा सकता है।(स्वास्थ्य दर्पण)

निर्विघ्नता से हो सके, इसका विचार करके रचना बनायी गयी। भाऊराव जी हाफलाङ् आने वाले हैं, इसका तो मुझे बड़ा आनन्द हुआ लेकिन उस समय मौसम कैसा रहेगा और प्रवास में कौन–कौन सी व्यवस्थाएँ करनी होंगी, उस चिंता में निमग्न हो गया क्योंकि इतनी बीमारी के बाद उनका यह प्रवास बड़ा कष्टकारक तथा जोखिम भरा ही तो था।

बाद में सितम्बर में मैंने स्वयं उत्तर काछाड़ जिले का प्रवास किया। उस समय हाफलाङ् तथा मायबाङ् तथा लुमडिङ् आदि स्थानों पर प्रत्यक्ष जाकर वहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भाऊराव जी के प्रवास के बारे में सूचित किया। वे सब तो आनन्द से विभोर हो उठे, क्योंकि २–३ वर्षों में, अस्वस्थता के कारण भाऊराव जी से मिलने का अवसर ही उनको नहीं मिला था। उनकी हृदय विकार की शिकायत तथा सौम्य आघात की खबरें पाकर तो वे सब हतोत्साह ही रहे थे। लेकिन जब उनको पता चला कि भाऊराव जी हाफलाङ् जाते समय होजाई, लुमडिङ् होकर, उनकी रेलगाड़ी जाएगी, तब उनको फिर से मिलने का सौभाग्य व आनन्द प्राप्त होगा, इस आशा से वे भी बड़े उत्साहित हुए।

विजयादशमी के दो दिन पूर्व से ही घनघोर वर्षा शुरू

सर्वत्र दुर्गापूजा का माहौल था। भाद्रपद अमावस्या

महालय के दिन सुमधुर चंडीपाठ बड़े सबेरे से ही जोरशोर से ध्वनिवर्धकों पर सुनायी दे रहे थे और उसी दिन जोरदार बारिश भी होने लगी थी। लेकिन दो दिन बाद बारिश थम गयी। लगा, ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली। हाँफलाङ् जाने का कार्यक्रम निश्चित किया गया। अष्टमी के दिन ही रात की रेलगाड़ी से चलकर नवमी के दिन सुबह हाँफलाङ् पहुँचना यह कार्यक्रम तय हुआ। लेकिन फिर षष्ठी के दिन से जोरदार बारिश शुरू हो गयी। हांफलाङ् से फोन आया कि वहाँ पर तो अमावस्या के दिन से ही मूसलाधार वृष्टि हो रही है और रेल–यातायात अनियमित हो गया है।

ये सारी बातें सुनकर सभी को बड़ी चिन्ता हुई कि अब भाऊरावजी का हाफलाङ् का प्रवास कैसे संभव हो सकेगा ? सभी बातें अनिश्चित सी हो गयीं। लेकिन पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार अष्टमी के दिन सुबह दिल्ली से विमान से मा० भाऊरावजी तो गुवाहाटी पहुँच ही गये। उस समय बारिश धीमी–धीमी हो रही थी। शाम को तो सूर्य–दर्शन भी हुआ। हम सभी की आशाएँ पल्लवित हुई। तभी उसी दिन जानकारी मिली कि पहाड़ों में सात दिनों से चल रही बारिश के कारण अनेक स्थानों पर पहाड़ टूटने से रेल–यातायात ठप है तथा दो दिनों से कोई भी गाड़ी लुमडिङ् से बदरपुर के लिए जा नहीं सकी है तथा बदरपुर से भी कोई गाड़ी लुमडिङ् नहीं आयी है। जब यह बात रात में ज्ञात हुई, तभी से अन्य पर्यायी प्रबंधों के बारे में विचार करना आरम्भ भी किया गया। उसमें यह भी बात थी कि गुवाहाटी से सिल्चर विमान से जाना और फिर वहाँ से यदि रेल चलती है तो, बदरपुर होकर हाँफलॉङ् जाना अन्यथा सिल्चर से कार से सड़क से हाँफलॉङ् पहुँच जाना, लेकिन पता करने पर मालूम हुआ कि गुवाहाटी–सिल्चर–विमान–सेवा बंद है और सिल्चर–हाँफलॉङ् का सड़क यातायात भी पहाड़ धँसने के कारण अवरुद्ध है।

जोखिम भरा निर्णय

अब केवल एक ही पर्याय बचा था। गुवाहाटी से कार से चलकर नौगाँव–डबका–जमुनामुख–लुमडिङ् होकर हाँफलॉङ् जाना। लेकिन सतत बारिश के कारण इस रास्ते के बारे में भी कोई निश्चिन्तता नहीं थी; क्योंकि इस रास्ते में आने वाली सभी नदियों व नालों में बाढ़ आयी थी और रास्ता जोखिम भरा था। बहुत समय तक विचार–विमर्श करके अन्त में यही सोचा गया कि ईश्वर पर भरोसा करके कार से ही हाफलाङ् जाने की कोशिश की जाय और यदि रास्ता बन्द ही रहा, तो पास के किसी सुरक्षित स्थान पर विश्राम किया जाये। यह तो एक बड़ा जोखिम भरा निर्णय ही कहना होगा, क्योंकि हांफलाङ् में श्री गांधी जी, श्री पंकजजी, श्री नीमदी, श्री रामानंद जी तथा आसपास के गाँवों के अनेक प्रमुख लोग, जिनमें ज्यादातर जेमी, झेलियाँग, रोंग्मयी, दिमाछा, सभा, कछारी, आदि जनजातियों के गाँव–बूढ़े बड़े उत्साह से पहले से ही जमा हुए थे। वे तो अपने–अपने गाँवों से पैदल ही चलकर आये थे। घनघोर वर्षा होते हुए भी ये तीन–तीन दिन पैदल चलकर वहाँ पर पहुँच गये थे। अतः किसी भी तरह से हाफलाङ् पहुँचना भाऊरावजी के लिए एक आवश्यक कर्त्तव्य भी था।

प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः

सुबह ८.३० बजे दो टैक्सियाँ लेकर हम गुवाहाटी से चल पड़े। हमारे साथ हापुड़ के गुप्ता दम्पति भी इसी कार्यक्रम में भाग लेने के लिए गांधीजी के निमन्त्रण पर विशेष रूप से आये थे। अतः दो गाड़ियों में मिलकर हम १० लोग गुवाहाटी से चल पड़े। गुवाहाटी से ३४ मील पर जब जागी रोड गाँव पहुँचे, तो हमारे टैक्सी के चक्के का टायर फट गया। उसको दुरुस्त करके आगे चले, तो गुवाहाटी–नौगाँव राजमार्ग पर स्थान–स्थान पर बड़े–बड़े वृक्ष पड़े हुए दिखायी दे रहे थे। अनेक नालों का उफनाता पानी रास्ते में बह रहा था। रास्ते में दिखायी दे रहा था कि प्रायः सभी लोग विपरीत दिशा से आ रहे थे। जो भी गाड़ी सामने से आती थी उनसे आगे के रास्ते की परिस्थिति की जानकारी हम पूछते रहते थे। तब वे कहते थे, आगे सब रास्ते बन्द हैं। अतः गुवाहाटी ही लौटना चाहिए। लेकिन हम बड़े धैर्य से आगे बढ़ते रहे। साढ़े तीन घंटों की यात्रा के बाद नौगाँव पहुँचे। वहाँ पर अपने एक स्वयंसेवक कार्यकर्त्ता के घर भोजन किया तथा आगे के रास्ते की स्थिति के बारे में जानकारी लेते रहे। दोनों तरह की बातें लोग बताते थे। कोई कहता था, आगे रास्ता ठीक है, लेकिन केवल डबका तक की ही जानकारी है। डबका से आगे जमुनामुख जाने के रास्ते पर कल से जमुना नदी का पानी बह रहा है। इसलिए उस रास्ते से आगे जाना खतरे से खाली नहीं है। हमने सोचा, चलें, डबका तक तो जाया जायेगा। नौगाँव से एक घंटे के बाद डबका पहुँचे, तब पता चला कि जमुनामुख जाने का रास्ता बन्द है। जमुना नदी की बाढ़ का पानी रास्ते पर से बह रहा है। अतः ऐसे रास्ते पर वाहन चलाना कठिन है और पुलिस ने भी सभी वाहन रोक रखे हैं।

आखिर में हम लुमडिङ् पहुँच ही गये

अब एक ही पर्याय रहा कि डबका से कारबी आंग्लांग जिले के पहाड़ी व जंगलों से भरे मार्ग से आगे बढ़ना लेकिन उससे हमारा लुमडिङ् का अन्तर प्रायः १०० किलोमीटर से

(शेष पृष्ठ ६८ पर)

जब राजकुमार सिद्धार्थ को 'बोध' हुआ

-डॉ. हिम्मत सिंह गुगालिया

कपिलवस्तु का राजकुमार सिद्धार्थ अपनी सर्वांग सुन्दरी पत्नी एवं अपने दुधमुँहे लाडले का मोह तज कर तप हेतु रात में ही किसी को बिना बताये निकल पड़े। वह राजगृह पहुँचे और वहाँ भिक्षा माँगी। योगसाधना एवं समाधि की क्रियाएँ सीखीं और कठोर तपस्या भी की, किन्तु उन्हें शान्ति प्राप्त नहीं हुई। फिर उन्होंने निराहार तप किया। छह वर्ष बीतने पर भी उनकी साधना असफल रही और तन कंकाल मात्र रह गया। एक दिवस कुछ नारियाँ नगर से लौटती हुई सिद्धार्थ के पास से गुजरीं। वे एक मधुर गीत गा रही थी, जिसका आशय था- 'वीणा के तारों को ढीला छोड़ दोगे तो उसमें से मधुर स्वर निनाद नहीं होगा और खूब कस कर रखोगे, तो वे टूट जायेंगे।' सिद्धार्थ का विचार-मन्थन चला और उन्हें यह अनुभव हुआ कि साधना का मध्यम मार्ग ही उपयुक्त है और उसमें नियमित आहार-विहार आवश्यक है।

एक सुजाता नाम स्त्री ने वट वृक्ष से उसको पुत्र होने की मनौती मानी थी, उसकी मनोकामना पूर्ण होने के उपलक्ष्य में वह स्वर्णथाल में दूध की खीर चढ़ाने बैशाख पूर्णिमा के दिन उस वट वृक्ष के निकट पहुँची। सिद्धार्थ वहाँ ध्यानमग्न था। सुजाता ने यह समझकर कि वृक्ष देवता साक्षात् शरीर धारण कर उसका चढ़ावा लेने बैठे हैं, वह खीर उनको अर्पित की और बोली- 'जैसी मेरी इच्छा पूर्ण हुई, आपकी भी हो।' सिद्धार्थ उस खीर को लेकर निरंजना नदी के किनारे पहुँचे और स्नान करके खीर का सेवन कर थाली को नदी में फेंक दिया। उसी रात्रि में ध्यानस्थ सिद्धार्थ की तपस्या फलीभूत हुई और उन्हें सही बोध हुआ और वे बुद्ध हो गये। ईसा के ५२८ वर्ष पूर्व बोधगया के जिस वट वृक्ष के नीचे यह चमत्कार हुआ, वह बोधिवृक्ष के रूप में प्रसिद्ध हुआ। बुद्ध होने के चार सप्ताह बाद तक वे उसी बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए धर्म के स्वरूप का चिन्तन करते रहे, फिर वे धर्मोपदेश हेतु निकल पड़े। काशी के निकट सारनाथ में उनका प्रथम धर्मोपदेश हुआ और उनके ऐसे धर्म-प्रवचन आगामी ४० वर्षों तक चलते रहे और अस्सी वर्ष की उम्र में बैशाखी पूर्णिमा के दिन ईसा से ४८३ वर्ष पूर्व उनका परिनिर्वाण हुआ।

बैशाखी पूर्णिमा के दिन ही सिद्धार्थ-गौतम का जन्म हुआ था। इसी दिन उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ था और इसी दिन उनका निर्वाण हुआ था। इसी कारण वैशाखी पूर्णिमा को बुद्ध पूर्णिमा कहा जाता है।

भगवान बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश में कहा है- 'चार आर्य सत्य है नामतः प्रथम- दुःख का अस्तित्व, दूसरा दुःख का कारण, इच्छाओं या तृष्णाओं का होना, तीसरा दुःख का निरोध तृष्णा की समाप्ति में सम्भव है, चौथा दुःख निरोध का मार्ग जो निर्वाण की ओर ले जा सकता है, वह है अष्टांगिक मार्ग। अष्टांगिक मार्ग यह है :-

१. सम्यक् ज्ञान- आर्य सत्यों का पूरा ज्ञान।
२. सम्यक् संकल्प- दृढ़ निश्चय। अनासक्ति, अहिंसा और बकवाद छोड़ने का दृढ़ निश्चय करना।
३. सम्यक् वचन- सदैव सत्य कहना। चुगलखोरी, कटुवचन का त्याग करना।
४. सम्यक् कर्मान्त- द्वेष, हिंसा एवं दुराचरण का पूर्ण त्याग। प्राणी हिंसा, अदत्तवस्तु न लेना, कामवासना का त्याग करना।
५. सम्यक् आजीव- न्यायपूर्वक अपना जीवनयापन करना।
६. सम्यक् व्यायाम- सत्य कार्य में सदैव संलग्न रहना एवं पाप कर्मों को उत्पन्न ही नहीं होने देना।
७. सम्यक् स्मृति- लोभ, मोह, क्रोध आदि मन के आवेगों को दूर रखना। जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मों का

अनुभव करके लोभ, मोह आदि से विरत होना।

८. सम्यक् समाधि– राग एवं द्वेष आदि का सर्वथा त्याग कर चित्त को एकाग्र करना।

'दुःखों से पूर्ण छुटकारा पाना ही निर्वाण है, तब ही तृष्णा एवं वासनाओं का अन्त होता है। यह अष्टांगिक मार्ग मृत्यु से अमृत की ओर ले जाने वाला मंगल मार्ग है। मानव अपना खुद स्वामी है, यदि उसने मन की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाकर संयम में रहकर उसको जीत लिया तो स्वयं को जीत लिया। किसी को मत सताओ, न उससे वैर करो। क्योंकि–

'नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीघ कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।'

– यमकवग्गो

'वैर करने से बैर कभी नहीं मिटता है। वैर न करने से, मित्रता करने से वैर मिटता है, यही सनातन धर्म सिद्धान्त है।' मनुष्य को क्रोध को प्यार से जीतना चाहिए। हिंसा करनेवाला, झूठा, बिना दिये किसी भी वस्तु को लेने वाला, परस्त्रीगामी, शराबी को नरक में जाना पड़ता है। दूसरों के दोष दर्शन न करो, अन्यथा मन मैला होगा। सदा सत्य बोलो और जो बोलो वह करो। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मन, वचन, कर्म का संयम करो। तृष्णा का कोई अन्त नहीं, उसका त्याग कर, दान दो। भोग–विलास एवं काम लोलुपता में न फँसते हुए प्रमादरहित हो, तो आप मृत्यु को जीत लेंगे।'

'मैले कपड़े को लाख रंगवाओ वह बदरंग ही रहेगा वैसी ही स्थिति मैले मन की है। क्रोध, अमर्ष, निष्ठुरता, ईर्ष्या, मात्सर्य, जड़ता, हिंसा, मद, प्रमाद, अतिमान, मान, विषम लोभ, द्रोह, पाखंड, शठता एवं ठगना चित्त के उपक्लेश हैं, इनके रहते सद्गति हो ही नहीं सकती। इनको सदैव दूर करते रहें।'

'क्रोध करने वाला चाहता है कि उसका शत्रु कुरूप हो, पीड़ा पाये, धन–सम्मान न रहे, मित्र हीन रहे और प्रसिद्ध न हो तथा उसकी दुर्गति हो। क्रोध नरक का पंथ है, इसको मैत्री, करुणा, उपेक्षा, मुदिता तथा जो जैसा करेगा वैसा भरेगा की भावना से जीतो। हँसी–ठट्टे में भी झूठ न बोलो। नशा करना, जुआ खेलना, नाच–तमाशे में शरीक होना, दुष्टों की संगत में रहना एवं आलस्य करना, निर्वाण मार्ग के पथिक के भयंकर व्यवधान हैं, इनसे दूर रहना ही बुद्धिमानी है।'

बौद्ध दीक्षा का परम मंत्र है :

बुद्धं शरणं गच्छामि– मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ।
धम्मं सरणं गच्छामि– मैं धर्म की शरण लेता हूँ।
संघं सरणं गच्छामि– मैं संघ की शरण लेता हूँ।

बौद्धधर्म की मुख्य दो शाखाएँ हैं– हीनयान जो निवृत्ति पर जोर देकर शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार की वासनाओं का त्याग करते हैं। जबकि महायान शाखा वाले अशुभ वासनाओं का त्याग कर शुभ वासनाओं के विकास पर ध्यान देते हैं। ◘

– ५७६, स्नेह नगर, इन्दौर, म.प्र.

असम

– रामवचन सिंह 'आनन्द'

बिहू–पर्व, गीतों–नाचों का,
रंग–रँगीला राज्य असम।

घिरी पहाड़ी, घने वनों से,
हरी–भरी सुन्दर घाटी।
ब्रह्मपुत्र की तेज धार से,
सींची, उपजाऊ माटी।
भरी हाथियों, गैंडों से है,
नगरी यहाँ गुवाहाटी।
सीढ़ी–नुमा बगान लुटाते,
गमक चाय की गम–गम–गम।
रंग–रँगीला राज्य असम।

कामाख्या देवी का मन्दिर
शिव–सागर की हद फैली।
यहीं माजुली में झंकृत है,
विविध कलाओं की शैली।
यहाँ रूप का जादू चलता,
हर गोरी चञ्चल छैली
प्रेम–भरा कितना सुखकर है,
विविध जातियों का संगम।
रंग–रँगीला राज्य असम।।

"माधव, शंकरदेव अतुल की,
बहती कविता–रस–धारा।
"ओ! मोर–आपनार देश" का,
गूँज रहा घर–घर नारा।
कनक अली ने भी चूमा था,
फाँसी का फन्दा प्यारा।
तेल उगलती यही भूमि है,
गगन वृष्टि रे झम्मा–झम।
रंग–रँगीला राज्य असम।।

– थाना रोड, चक्रधरपुर– ८३३१०२,
जिला– सिंहभूमि पश्चिमी बिहार

लालच का फल

– नीलम राकेश

एक गाँव में एक किसान रहता था। उसका एक पुत्र था जिसे वह प्यार से पवन कहता था। पवन जब भी खेलने जाता तो गाँव के बच्चों से उसका झगड़ा हो जाता। वह हमेशा रोता–रोता माँ के पास आता। माँ फिर से उसकी दोस्ती कराकर उसे बहला देती।

एक दिन पवन की माँ अपने छोटे से कच्चे आँगन में झाड़ू लगा रही थी अचानक उनकी नजर आम की दो कोपलों पर पड़ी। दो नन्हें–नन्हें देसी आम के वृक्ष उसके आँगन में उग आये थे। उसी समय रोता हुआ पवन माँ के पास आया। माँ ने प्यार से उसे आम के नन्हें पौधे दिखाये और बोलीं,

"देख पवन, ये हैं तेरे सच्चे मित्र। तुम आज से इनकी देखभाल करो और इन्हीं के साथ खेला करो ये तुम्हारे साथ कभी झगड़ा नहीं करेंगे।"

नन्हा पवन पौधों को देखकर खुश हो गया। अब वह हर समय अपने पौधों में ही लगा रहता। पवन के साथ–साथ आम के वृक्ष भी जवान हो गये। अब पवन रोजी–रोजी के चक्कर में मजदूरी करने जाने लगा। बूढ़े माँ–बाप का साया अब उसके ऊपर से उठ चुका था।

एक दिन वृक्ष ने देखा पवन बहुत थका–थका सा वापस आ रहा था। वृक्ष ने आवाज देकर उसे अपने पास बुलाया और पूछा,

"दोस्त अब तुम हमारे पास बहुत कम बैठते हो। हमें बहुत अकेलापन लगता है। आज तुम कुछ परेशान भी लग रहे हो, बात क्या है ?"
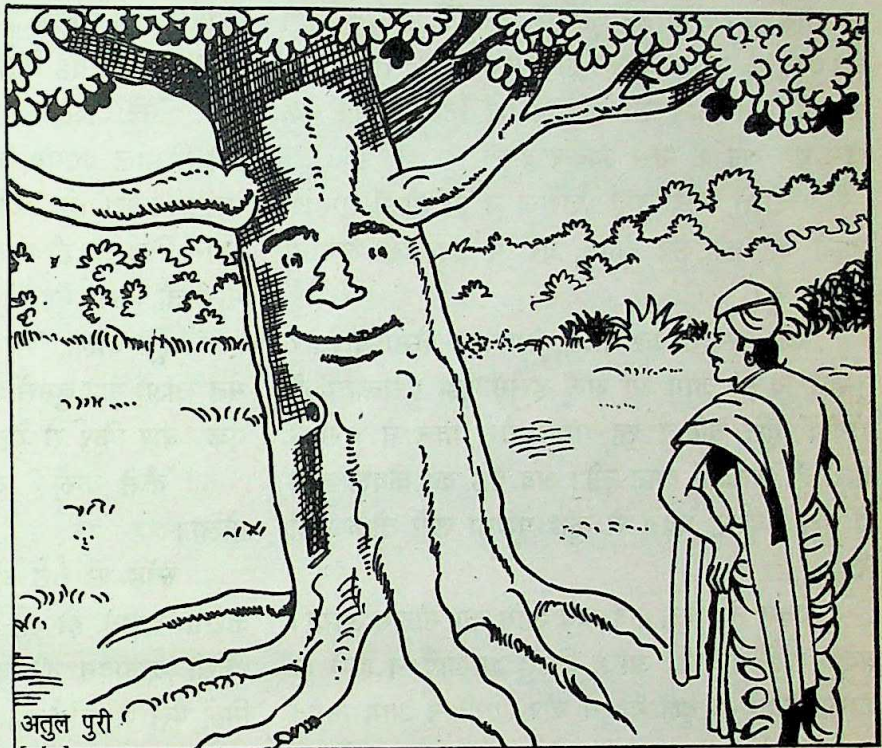
पवन हँस कर बोला, "दोस्त ! क्या करूँ मजबूरी है। पेट भरने के लिए मजदूरी तो करनी पड़ेगी और आज तो भूखे पेट ही सोना होगा कहीं मजदूरी भी नहीं मिली। बस इसी से थोड़ा परेशान हूँ। मेरा ही मन तुम्हारे बिना कहाँ लगता है।"

वृक्ष खुश होकर बोला, "बस इतनी सी बात ! दोस्त तुम तो अपने में ही इतना डूब गये कि हमारी ओर देखा भी नहीं। जरा सिर उठाकर हमारी ओर देखो। हम फलों से कैसे लदे हुए हैं। तुम कल से इन आमों को बेचना आरम्भ कर दो। तुम्हारी समस्या हल हो जायेगी।"

पवन को अपने दोस्तों पर नाज हो आया। अगले दिन से ही वह मण्डी में जाकर आम बेचने लगा। इस काम में उसे मजा आने लगा। कोई मेहनत नहीं, दिन भर गप्पें मारो साँझ ढले पैसे इकट्ठा करके

चले आओ। आम की फसल खत्म होते–होते पवन ने काफी पैसे जोड़ लिये थे। इतने दिनों तक मेहनत न करने के कारण वह आलसी हो गया। अब खेतों में जाकर मेहनत करने की उसकी इच्छा नहीं होती। अतः वह जमा पैसे ही खर्च करने लगा। मन में लालच के प्रवेश करते ही वह वृक्ष को मित्र से अधिक लाभ की वस्तु के रूप में देखने लगा। फल समाप्त होते ही उसकी नजर पेड़ की लकड़ी पर टिक गयी। एक दिन वह वृक्ष के पास आकर बोला,

"दोस्त, यदि तुम्हें एतराज न हो तो मैं तुम्हारी डालों को काटकर अपने घर में दरवाजा लगाना चाहता हूँ।"

वृक्ष मुस्करा कर बोला, "एतराज कैसा दोस्त? तुम्हारे किसी काम आ सकूँ इसमें मुझे प्रसन्नता ही होगी।" वृक्ष चकित रह गया और पवन ने उसकी सारी ही शाखाएँ काट लीं। अब पेड़ का केवल तना ही बचा। परन्तु पवन से कुछ पूछना उसे ठीक नहीं लगा।

पवन तो चेता तब जब आम का मौसम आया। सबके पेड़ों पर बौर आयी किन्तु शाखाएँ न होने के कारण पवन के वृक्ष पर न बौर आयी न आम लगे। पवन ने तो यह सोचा ही नहीं था वह तो फलों की प्रतीक्षा में था किन्तु अब क्या हो सकता था। मेहनत करना तो पवन अब भूल ही चुका था। अब तो पेट भरने की समस्या उसके सामने थी। पवन एक लकड़ी के व्यापारी के पास जाकर आम के तनों का सौदा तो कर आया। हिचकता हुआ पवन वृक्ष के पास जाकर बोला,

"दोस्त क्या करूँ मजबूरी में तुम्हारे तने को बेंचना पड़ा रहा है। घर में खाने को दाना नहीं है।"

तना बेंच कर पवन के कुछ महीने तो आराम से कट गये; किन्तु फिर वही समस्या सामने आ खड़ी हुई। अब तो पेड़ के स्थान पर ठूँठ खड़ा था। पवन स्वयं को बहुत अकेला महसूस कर रहा था। वह ठूँठ के पास जाकर बैठ गया। आम का ठूँठ अपने दोस्त के दुःख से द्रवित हो गया और बोला,

"दोस्त मेरे पास जो कुछ था मैंने तुम्हें दे दिया। मेरा जीवन सार्थक हुआ। मुझे खुशी है कि मेरा अंग–अंग मेरे दोस्त के काम आया। काश, मैं तुम्हारे लिए कुछ और कर सकता।"

ठूँठ की बात सुनकर पवन अपने किये पर शर्मिन्दा हो उठा। अब उसे अपनी भूल का एहसास हो रहा था। वह रोता हुआ बोला,

"मेरे दोस्त, तुम तो महान् हो। तुमने तो दोस्ती की मिसाल कायम की है। किन्तु मैं मूर्ख लालच में इतना अन्धा हो गया था कि अपने स्वार्थ के लिए अपने मित्र को ही नष्ट कर बैठा। अब मैं तुमसे माफी माँगू तो किस मुँह से?"

ठूँठ बोला, "मेरे दोस्त, तुम मन में कोई ग्लानि मत लाओ मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। बस तुम एक बार फिर से मेहनत करने लग जाओ।"

"कैसे करूँ? क्या करूँ?" निराशा से पवन बोला।

स्नेह से ठूँठ बोला, "तुम अगर सचमुच कुछ करना चाहते हो तो हमारी जड़ों को निकाल कर किसी जलावन की दुकान पर बेच दो और उससे मिले पैसे से कोई काम शुरू करो। आलस को त्याग दो। हमारी जगह पर दूसरे वृक्ष लगाकर उनकी देखभाल करो तुम्हारे बच्चों के काम आयेंगे।"

आँसू पोछता हुआ पवन बोला, "दोस्त मैं तुमसे वादा करता हूँ मैं एक नहीं अनेक वृक्ष लगाऊँगा और उनकी देख–रेख करूँगा। अपनी गलती अब मैं दोहराऊँगा नहीं। मेहनत से अब कभी दूर नहीं भागूँगा। लालच का फल मैं चख चुका हूँ। इसी आलस और लालच के कारण ही मैंने अपना सच्चा मित्र खोया है। तुमने तो अपने अन्तिम समय में भी मुझे कर्म का पाठ पढ़ाकर और सच्चाई का रास्ता दिखाकर दोस्ती का आदर्श कायम किया है। मैं आजीवन इसका मान रखूँगा।"

– द्वारा श्री राकेश चन्द्रा, अपर जिलाधिकारी (वित्त/राजस्व), गाजीपुर–२३३००१ (उत्तर प्रदेश)

तीर्थाटन आलेख–

बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल ओरछा

– ज्योति खरे

ओरछा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतीक है। यहाँ प्रकृति ने आनन्द विभोर होकर अपना सारा सौन्दर्य उँड़ेल दिया है। यह पुण्य उज्ज्वलता का आधार है। इसे प्रकृति का वरदान प्राप्त है। प्रकृति ने स्वयं अपने हाथों से ओरछा को सजाया एवं सँवारा है। यह एक ऐसा पवित्र–स्थल है, जहाँ धर्म की उद्दीप्त दीपशिखा विगत साढ़े तीन सौ वर्षों से प्रज्वलित हो रही है। ओरछा बेतवा (प्राचीन नाम वेत्रवती) नदी के किनारे स्थित है। बुन्देलखण्ड की राजधानी ओरछा ही बुन्देलखण्ड एवं बुन्देलों की प्रथम नगरी है। बुन्देला क्षत्रिय ओरछा को प्राणों से भी ज्यादा प्रिय एवं श्रेष्ठ तीर्थ मानते थे। ओरछा की पवित्रता के पीछे एक महत्त्वपूर्ण रोचक कहानी छिपी है।

ओरछा के राजा मधुकर शाह कृष्ण के उपासक थे। भगवान् कृष्ण में आस्था होने के कारण वे कृष्ण को ही सर्वस्व मानते थे, जिससे उन्हें सारा संसार कृष्णमय लगता था। इसके विपरीत मधुकर शाह की रानी कुँवरि दे राम की भक्ति में दिन–रात मग्न रहती थीं। राजा मधुकर शाह के परिवार में आराध्य देवता की भक्ति में विचित्र विभिन्नता थी। महाराज वृन्दावन–तीर्थ की यात्रा करना चाहते थे, लेकिन उनकी रानी कुँवरि दे अपने आराध्य देवता राम की नगरी अयोध्या जाना चाहती थीं।

इसी कारण एक बार राजा मधुकर शाह व रानी में अनबन हो गयी और राजा ने कुछ कठोर शब्द भी रानी से कह दिये। महाराज ने कहा कि यदि तुम्हें राम से इतना ही प्रेम है, तो राम को अपने साथ ओरछा ले आओ; यह सुनकर रानी बहुत चिन्तित हुईं; लेकिन उनकी भक्ति व साधना वास्तव में अटूट थी। वे भगवान् राम को लेने अयोध्या जी पहुँचीं। अयोध्या में पहुँचने पर रानी ने भगवान् से ओरछा चलने की प्रार्थना की। एक दिन सरयू नदी में स्नान करते समय रानी के आँचल में भगवान् राम की मूर्त्ति आ गयी। इस मूर्त्ति को पुष्य–नक्षत्र में रानी पैदल चलकर ओरछा ले आयीं।

भगवान् राजा राम के लिए चतुर्भुज जी का मन्दिर बनवाया गया था, लेकिन मूर्त्ति रानी की गोद के समीप ही एक स्थान पर खिसक कर रम गयी और फिर वहाँ से टस से मस नहीं हुई। राजा राम के ओरछा पधारने की खुशियाँ मनायी गयीं और इसी स्थान पर विशाल मन्दिर का निर्माण कराया गया। भगवान् रामराजा का यह विशाल मन्दिर पवित्रता एवं उज्ज्वलता का प्रतीक है।

इसके पश्चात् इसी परिप्रेक्ष्य में एक और अलौकिक एवं आश्चर्यजनक घटना का समावेश है, जिस मूर्त्ति को रानी अयोध्या जी से लायीं थीं, वह रामजी की मूर्त्ति खड़ी थी, इसी कारण महारानी भी खड़े–खड़े ही सब सेवा–पूजन अपने हाथ से करती थीं। चार–चार घण्टे खड़े रहने से रानी के कष्ट को देखकर भगवान् ने पूजा करते समय रानी से कहा, "तुम बैठकर पूजा–अर्चना किया करो, तुम्हारा कष्ट मुझसे सहा नहीं जाता।" महारानी ने उत्तर दिया, "भगवन्! आप जब खड़े हैं, तो मैं आपके सामने कैसे बैठ सकती हूँ? स्वामी खड़े रहें व सेविका बैठे, यह

कैसे हो सकता है, यह अनुचित है"। भगवान् श्रीराम ने कहा, "अच्छा, तो हम बैठ जाते हैं" ऐसा कहकर श्रीराम जी की मूर्ति जो खड़ी थी, वह आसन लगाकर बैठ गयी। इस रहस्यमयी कहानी का विवरण मन्दिर में ताम्रपत्र पर अंकित है।

धार्मिक दृष्टि से ओरछा में अनेक मन्दिर हैं, जिनमें चतुर्भुज मन्दिर, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, हरसिद्धि देवी मन्दिर, आदि प्रमुख हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से दर्शनीय जहाँगीर महल (पूर्व नाम सूर्य महल) शीश महल, राजमहल तथा दो स्तम्भ, जिन्हें 'सावन भादौं' कहते हैं। यह धार्मिक युगल-उपासक के स्तम्भ माने जाते हैं। कहा जाता है कि सावन-भादौ की रात्रि में यह स्तम्भ आपस में मिलते हैं। इन स्तम्भों के नीचे विशाल तहखाना है।

ओरछा में रामनवमी, केशव-जयन्ती, गंगा दशहरा, श्रावण तीज, विवाह पंचमी, मकर संक्रान्ति, होली आदि पर्वों पर विशाल धार्मिक मेलों का आयोजन किया जाता है।

ओरछा मध्य रेलवे झाँसी-मानिकपुर लाइन पर प्रथम स्टेशन है। झाँसी से ओरछा जाने के लिए बस, टैम्पो आदि वाहन आसानी से उपलब्ध होते हैं। □

— आर०बी०-२/६६६/सी,
रानी लक्ष्मी नगर,
झाँसी-२८४००३ (उ०प्र०)

अद्भुत न्याय

— गणेश 'चंचल'

ग्राम पिथौड़ा में करती थी, बुढ़िया कोई एक निवास।
एक गाय के सिवा नहीं था, धन या जन कुछ उसके पास।
दूध बेचने को जाती थी, रोज-रोज वह गढ़ बाजार।
पानी मिला दूध में देती, बुढ़िया बहुत चतुर हुशियार।।

बहुत दिनों से ही चलता आता था उसका यह व्यापार।
लेकिन नहीं समझ पाते थे, ग्राहक उसका यह व्यवहार।
धीरे-धीरे काफी पैसे जमा हो गये उसके पास।
पैसे रखती साथ सदा ही, था न किसी पर भी विश्वास।।

घर में रखने से भी डर था, शायद कोई ताला तोड़।
पीछे से गायब कर देते अगल-बगल के गुंडे-चोर।
इसीलिए पैसे की गठरी रखती हरदम अपने साथ।
वजह यही थी, चोर-उचक्के, मार नहीं सकते थे हाथ।।

मगर एक दिन लौट रही थी, बुढ़िया चतुर बेच कर दुग्ध।
देख-देख गठरी के पैसे, वह होती थी मन में मुग्ध।
दिन काफी चढ़ आया था, वह पहुँच गयी पोखर के तीर।
हुई नहा लेने की इच्छा, देख ताल का निर्मल नीर।।

गठरी रख तालाब किनारे, करने लगी मगन हो स्नान।
पास पेड़ पर के बन्दर का पहुँच गया गठरी पर ध्यान।
उसने समझा गठरी में है, शायद खाने का सामान।
उतरा और शीघ्र ले भागा-गठरी, जैसे तीर समान।।

जल से निकल पेड़ के नीचे, बुढ़िया लगी मचाने शोर।
रोयी, कलपी, सिर धुन-धुनकर और मिन्नतें की कर जोड़।
लेकिन तब तक बैठ डाल पर बन्दर गाँठ चुका था खोल।
चकित होगया, देखा उसमें उजले-उजले सिक्के गोल।।

क्रम से, बन्दर चतुर भूमि पर देता लुढ़का सिक्का एक।
और दूसरे को पानी में, वह देता था सीधे फेंक।
खतम किया गठरी का पैसा न्यायी बन्दर इसी प्रकार।
उधर रो रही थी वह बुढ़िया, निज छाती में मुक्के मार।।

'पानी का पैसा पानी में, भू पर रहा दूध का मोल'।
चुनकर धरती पर के पैसे, बुढ़िया चली गयी यह बोल।
लोगों को ठग कर जो जग में, धन संग्रह करते हैं ढेर।
होता है पर न्याय, देर हो भले, नहीं होता अन्धेर।।

— ग्राम व पत्रालय— सोहा, जनपद— सहरसा-८५२१२६ (बिहार)

गुल्लक फूटा

- अभिषेक गौरव

राजन नवीं कक्षा का छात्र था। उसके घर में उसके माता–पिता, छोटी बहन और एक प्यारा कुत्ता पम्मी था। राजन पम्मी को बहुत प्यार करता था। कभी–कभी तो वह पम्मी को पुचकारते उसी के साथ सो जाता था।

शाम को अपने मित्रों के साथ खेलने चला जाता था और सूर्यास्त के पश्चात् ही घर आकर गृहकार्य करता और खाना खाकर दस बजे तक सो जाता था। ऐसी थी राजन की रोज की दिनचर्या। एक दिन राजन के पिता उसके लिए एक बल्ला ले आये। बैट देखकर राजन की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। शाम को अपने बल्ले के साथ राजन खेल–मैदान में उपस्थित हुआ। उसके नये बल्ले को देखकर उसके दोस्तों ने उस बल्ले से खेलने की इच्छा व्यक्त की। राजन ने इसकी अनुमति दे दी।

अभी एक महीना ही हुआ था कि शाम को जब वह घर लौटा तो उसकी आँखों में आँसू थे। सबने देखा उसके एक हाथ में बल्ला और दूसरे में उसका हत्था है। राजन की उदासी का कारण सबकी समझ में आ गया। राजन के पिता ने नाराज होते हुए कहा "तोड़ दिया न"। दो साल में यह चौथा बल्ला है जो तुम्हारे मैदान पर शहीद हो गया। आखिर तुम बल्ले से खेलते हो कि गदा चलाते हो जो एक महीने में ही टूट गया। अब मैं तुम्हें कोई बल्ला नहीं लाकर दूँगा।

पिता की डाँट खाने के बाद नाराज राजन ने सोचा कि अब वह बल्ला नहीं माँगेगा। बल्कि अपने पैसे जोड़कर वह उससे एक बढ़िया–सा बल्ला लेगा यह सोचकर अगले दिन विद्यालय से लौटते समय एक मिट्टी का गुल्लक खरीदा और घर पर लाकर छुपाकर रख दिया। राजन को दो रुपये प्रतिदिन उसके पिता देते थे। राजन ने वह दो रुपये रोज अपने गुल्लक में जमा करने लगा एक महीना में उसने साठ रुपये जोड़ लिए। बढ़िया बल्ला खरीदने के लिए उसे कम से कम ढाई सौ रुपये चाहिए थे। चार महीने के अथक प्रयास के बाद आज का दिन उसके लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण दिन था। स्कूल से लौटते समय वह बड़ा ही खुश था लेकिन घर आकर वह दंग रह गया कि उसके घर में पम्मी लेटा हुआ है और पास ही में एक डॉक्टर बैठे हुए हैं। राजन ने डॉक्टर के पास आकर पूछा कि क्या हुआ है पम्मी को ? डॉक्टर ने बताया कि इसे किसी बाहरी कुत्ते ने काट लिया है। राजन बोला, डॉक्टर साहब मेरे पम्मी को ठीक कर दो ! डॉक्टर ने कहा कि यह इन्जेक्शन बाजार से ले आओ यह लगभग ढाई सौ रुपये के मिलेंगे।"

राजन पर्चा लेकर माँ के पास गया और पैसे माँगे। माँ ने कहा मेरे पास तो केवल ५० रुपये ही हैं।

राजन उदास हो गया; किन्तु अचानक उसकी आँखों में चमक तैर गयी और वह दौड़कर अपने कमरे में गया और गुल्लक उठा लाया और माँ के सामने उसे फोड़ दिया। माँ ने आश्चर्यचकित होकर पूछा इतने पैसे तुमने कहाँ से इकट्ठे किये। तो राजन ने सारी कहानी बता दी। अब राजन वह रुपये लेकर बाजार की ओर दौड़ा और जल्दी से इन्जेक्शन लाकर डॉक्टर को दिया।

डॉक्टर से पम्मी को इन्जेक्शन लगा दिया। घण्टे भर में पम्मी ठीक हो गया और पूँछ हिलाकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगा। राजन के चेहरे पर सन्तोष का भाव उभर आया।

राजन के पिता रोज ६ बजे तक घर आ जाते थे आज ८ बज गये थे सभी चिन्ता कर रहे थे। तभी दरवाजे पर स्कूटर रुका राजन दौड़कर बाहर आया तो देखा पिताजी के हाथ में नया बल्ला है। वह आश्चर्यचकित हो गया। उसके पिता ने कहा तुम्हारा गुल्लक फूट गया तो क्या हुआ यह पूरे ढाई सौ का है।

राजन ने कहा आपको कैसे पता चला तो वे बोले तुम्हारी माँ ने फोन पर सब कुछ बता दिया है। आज तुमने बहुत ही समझदारी का कार्य किया है मुझे तुम पर गर्व है। राजन के हाथ में बल्ला था और पम्मी उनके पैरों से अपना शरीर रगड़कर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था। ◘

— २६४/३, राजेन्द्र नगर, दसवाँ मार्ग, सोहन लाल स्कूल के सामने, लखनऊ–२२६००४

देववाणी शिक्षण - (२/१०)

अब निम्नलिखित वाक्य पढ़िये।

संस्कृत–वाचन–पाठः

सः पुरुषः पण्डितः अस्ति। सः तत्वज्ञः योगज्ञः उपायज्ञः च अस्ति? यः स्व अर्थं न जानाति, सः कदापि पंडितः न भवति। यः मित्रस्य अर्थे मिथ्या वदति, सः नरः शोभनः न भवति। यः मूढः जनः अस्ति, सः पण्डितः कथं भवति? पण्डितः प्रातःकाले शीतेन जलेन स्नानं करोति। मूढः मध्याह्ने अपि स्नानं न करोति। यः मनुष्यः अमित्रं मित्रं करोति, स चतुरः। यः मित्रं अमित्रं करोति, सः मूढः। यः पुरुषः स्वमित्रं द्वेष्टि, सः मूढः। स कदापि स्वमित्रं न द्वेष्टि, न च तं हिनस्ति। मूढः। मनुष्यः मित्रं हिनस्ति। अधुना सः दुष्टं कर्म आरभते। तस्य एकः एव दोषः अस्ति, न मम। तस्य कः दोषः? मम न कः कपि दोषः। सः तस्य एषः दोषः तत्र मम कः अपि दोषः नास्ति। तस्य एकः एव दोषः। न द्वितीयः। तस्य एकं एव पुस्तकं अत्र अस्ति मम एकं एव वस्त्रं तत्र अस्ति। तव एकं एव आभूषणं मम गृहे अस्ति। सः बलिष्ठं अपि पुरुषं अशक्तं मन्यते। सः जन अशक्तं अपि पुरुषं बलिष्ठं मन्यते। अस्य सः दोषः त्वया न मंतव्यः। तस्य सः दोषः नास्ति किम्? अशक्तस्य गुणः क्षमा एव अस्ति। वीरस्य भूषणं क्षमा भवति। तस्य परमं बलं क्षमा एव अस्ति।

यदा त्वं तत्र गमिष्यसि, तदा तं पश्य। कः तस्य गुणः अस्ति? इदानीं सः कुत्र अस्ति? सः अत्र न अस्ति किम्? तस्य ज्ञानं एव बलं अस्ति। तस्य पुस्तकं कुत्र अस्ति? यत्र तस्य वस्त्रं अस्ति, तत्र एव पुस्तकं अस्ति। त्वं तस्य वृक्षस्य शोभनं फलं खादसि किम्? अहं वृक्षस्य शोभनं फलं खादामि। सः मूढः मनुष्यः तत्र किं करोति? पश्य, अस्य वृक्षस्य शोभनं पत्रम्। अद्य सूर्यस्य शोभनः प्रकाशः अस्ति। त्वं पंडितः असि किम्? त्वं इदानीं एव कुत्र गच्छसि? सः प्रातर एव कुत्र धावति? तव पुत्रः इदानीं एव किमर्थं धावति? यथा त्वं धावसि तथा सः अपि धावति। यथा विष्णुमित्रः वदति, तथा गणेशः अपि वदति। गणेशस्य गृहं कुत्र अस्ति? कानपूरनगरे पंडितस्य गणेशस्य गृहं अस्ति। कथं पंडितः गणेशदत्तः वदति? यत्र पंडितः गणेशदत्तः गच्छति, तत्र एव पंडितः गोपालः अपि गच्छति।

सः इदानीं हरिद्वारं प्रति गतः। त्वं कुत्र इदानीं एव गच्छसि? यत्र फलं भवति, तत्र अन्नं जलं च भवति। यत्र जलं न भवति, तत्र अन्नं भवति किम्? यत्र जलं नास्ति, तत्र अन्नं न एव भवति। तस्मिन् कूपे जलं नास्ति किम्? तस्मिन् कूपे इदानीं प्रभूतं जलं अस्ति। तस्य गृहे धनं नास्ति, परन्तु अन्नं अस्ति। तव गृहं अन्नं नास्ति, परन्तु धनं अस्ति। मम गृहे अन्नं अस्ति, तथा धनं च अपि अस्ति। तस्य पुत्रः इदानीं एव मम पुस्तकं पठति। तब पुत्रः इदानीं किं न पठति? त्वं मूढः न असि। सः मूढः नास्ति। अहं न मूढः अस्मि, परन्तु अहं पंडितः अस्मि। विष्णुमित्रः इदानीं अत्र पत्रं लिखति। देवदत्तः कदापि पत्रं न लिखति। यज्ञसेनः वने किं करोति? त्वं नगरे किं करोषि! वद, इदानीं एव। कथं स शीघ्रं एव युक्तं वदति। तथा त्वं न शीघ्रं शोभनं च वदसि। यथा त्वं वदसि तथा अहं अपि वदामि। रामचन्द्रः सदा एव सत्यं वदति। भूमित्रः कदापि मिथ्या न वदति। स सर्वदा एव मिथ्या न वदति। स अद्य वृक्षात् फलं न आनयति। यथा रामचन्द्रः अन्नं पचति तथा त्वं अपि पचसि किम्? यदा देवापिः वनं गतः तदा कः अन्यः वनं गतः? तत्र वानरः फलं खादति।

इस ढंग से आप अनेक वाक्य बना सकते हैं और बोल तथा लिख सकते हैं। इस रीति से वाक्य बनाने योग्य अब आपका अभ्यास हुआ है।

प्रयत्न ३

हिन्दी में अनुवाद कीजिये और अधोरेखित शब्दों की सन्धि तोड़िये–

मनोजवं, मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये।।१।।
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा।।३।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।४।।
पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषात्।
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धारिता वैरिणी मे।।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तम्।
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलसदनं नाथ नित्यं त्यजामि।।५।।
यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।६।।
भोजनान्ते च किं पेयं जयन्तः कस्य वै सुतः।
कथं विष्णुपदं प्रोक्तं तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्।।७।।
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।८।।

अप्रैल माह में पाठ संख्या २/८ छपा है। कृपया उसे २/९ पढ़ें।

'मनुस्मृति' आदि मनु ने नहीं, वैवस्वत मनु के पुत्र 'भृगु' ने लिखी

- वचनेश त्रिपाठी

मनुस्मृति में 'शैख' शब्द भी

सम्प्रति प्रायः कई राजनीतिक दल 'मनुवाद' 'मनुवादी', 'मनुवादियों' जैसे शब्दों और 'मनुस्मृति' को अपने राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित होकर आलोचना का विषय बनाया करते हैं और जहाँ तक 'मनुस्मृति' के स्वायम्भुव मनु द्वारा लिखे जाने की बात है, इस परिप्रेक्ष्य में अधिकांश पण्डित समुदाय तथा 'मनुस्मृति' का पाठकवृन्द भी कम भ्रम में नहीं है। वस्तुतः आज जो 'मनुस्मृति' प्राप्य है– उसका लेखन प्रथम मनु (स्वायम्भुव) द्वारा नहीं किया गया; वरन् वह लिखी और फिर सुनायी गयी मनु–पुत्र भृगु द्वारा। जो 'मनुस्मृति' आज प्रचलित और प्रकाशित है, यह वर्त्तमान ७वें वैवस्वत मनु के मन्वन्तर–काल में लिखी गयी। उसके लेखक रहे थे भृगु। उस समय प्रथम मनु अर्थात् स्वायम्भुव मनु के होने का प्रश्न ही नहीं उठता। 'मनु स्मृति' के लिखे जाने के समय तक छह मनु हो चुके थे। 'मनुस्मृति' के प्रथम अध्याय में ही भृगु पण्डित कहते हैं कि–

"स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे"

अर्थ है कि "इस स्वायंभुव मनु के वंश में ही छह मनु अन्य भी जन्मे।"

पश्चात् भृगु का कथन है 'मनुस्मृति' में ही कि–

"स्वायंभुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः।"
स्वेस्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्याऽपुश्चराचरम्।।

अर्थ है कि "स्वायंभुव आदि प्रखर तेजस्वी इन ७ मनुओं ने अपने–अपने मन्वन्तरों में स्थावर–जंगम सृष्टि की रचना करके उसका संरक्षण किया।" स्वायंभुव ने सर्वप्रथम १० प्रजापति पैदा किये, जिनसे सात मनु अस्तित्व में आये; परन्तु इस कथन में स्पष्ट ही विरोधाभास व्यक्त है। प्रश्न उठेगा कि 'मनुस्मृति' में क्या कहीं 'भृगु' का नाम आया भी है? तो देखिये, उसी अध्याय के ५९वें श्लोक में लिखा है कि–

"एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यश्यत्यशेषतः" ।।५९।।

अर्थ है कि, "यह भृगु ही आप सब (ऋषियों) को यह समग्र शास्त्र ('मनुस्मृति') सुनायेगा।" इससे सिद्ध होता है कि प्रथम मनु ने जिस ग्रन्थ की रचना की थी, प्रणयन किया था, उसे वैवस्वत मनु के पुत्र भृगु ने समस्त ऋषि–मुनियों को सुनाया अर्थात् प्रथम मनु–प्रणीत ग्रन्थ का स्मरण किया। उसका श्रवण किया गया और वह भृगु के द्वारा। तभी उसका नाम पड़ा– 'मनुस्मृति'। स्वायंभुव मनु का स्मरण करने से ही 'मनुस्मृति' शीर्षक में 'स्मृति' शब्द संयुक्त हुआ, परन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि काल–क्रमेण जैसे–जैसे नये–नये मनीषी समय के सोपानों पर चढ़ते गये, वैसे–वैसे उन विद्वज्जनों ने समय–समय पर स्व–स्व मतानुसार 'मनुस्मृति' में विविध नियम–उपनियम संयुक्त किये। इसी कारण स्वयं 'मनुस्मृति' के ही कई श्लोकों या मतों में विरोधाभास दृष्टिगत होता है। यथा पिता की जमीन–जायदाद में जिन पुत्रों को अधिकारी 'मनुस्मृति' में माना गया, उनमें पत्नी से किसी अन्य पुरुष (पति के अतिरिक्त) से उत्पन्न पुत्र को भी भागीदार लिखा गया। पत्नी यदि पुत्र–रहित हो, तो उसे नियोग द्वारा (पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से) सन्तान पैदा करने की स्वीकृति प्रदान की गयी है। श्राद्ध–कर्म में ब्राह्मण न मिलें, तो श्राद्धकर्त्ता अपने श्वसुर, नाना, मामा को जिवाँने का न्यौता दे दे। ये सब बातें उस युग की परम्पराओं एवं प्रथाओं से मेल नहीं खातीं। अवश्य 'मनुस्मृति' की कल्पना या निर्माणकर्त्ता स्वायंभुव मनु ही थे, उसे लिखकर नहीं रख गये मनु, जैसा कि 'मनुस्मृति' के प्रथम अध्याय में ही कहा गया है कि–

"स्वायंभुवोमनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्" ।।१०२।।

अर्थ है कि "धीमान (मनीषी) स्वायंभुव मनु ने इस (स्मृति) की कल्पना की थी।"

इसी अध्याय के ३४वें श्लोक में स्वायंभुव मनु कहते हैं कि,

"पतीन प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश" ।।३४।।

अर्थ है कि, "सर्वप्रथम मैंने इन्हीं प्रजापति रूपी महर्षियों को पैदा किया।" फिर आगे ३९वें श्लोक में कहते हैं कि–

"एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः"।।३६।।

अर्थ है कि "फिर इन्हीं प्रजापतियों द्वारा अन्य सप्त (७) तेजवान् मनु उत्पन्न हुए। वर्त्तमान युग में ७वाँ मन्वन्तर चल रहा है।" इसके अतिरिक्त 'मनुस्मृति' के १०वें अध्याय में जिन अनेक जातियों के भारत में मौजूद होने का वर्णन प्राप्य है, उनके यहाँ आने का समय तो बहुत बाद का है। इससे भी सिद्ध है कि वर्त्तमान 'मनुस्मृति' प्रथम मनु (स्वायंभुव मनु) ने नहीं लिखी, उन जातियों या वर्गों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं— 'मनुस्मृति' में

"शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणाऽदर्शनेन च।।
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः"।।४४।।

अर्थ है कि, "आगे स्थिति वश क्षत्रिय जातियाँ ही १. पौण्ड्रक, २. चौड्र, ३. द्रविड़, ४. काम्बोज, ५. यवन, ६. शक, ७ पारद, ८. पह्लव, ९. चीनी, १०. किरात, ११. दरद तथा १२. खश जातियों में बट गयीं।" यह नामावली प्रश्न उठाती है कि क्या जब इन चीनी यवन शक प्रभृति जातियों का प्रवेश भारत में हो गया, तभी 'मनुस्मृति' लिखी गयी? परन्तु यह इतिहास–सम्मत नहीं लगता। यही नहीं 'मनुस्मृति' के एक श्लोक में तो 'शेख' ('शैख') शब्द का भी समावेश हुआ है, जो मुस्लिम मत में माना गया है, यथा—

"व्रात्यात्तुजायते विप्रात्पापात्माभूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ चपुष्पधः शैख एव च"।।२१।।

अर्थ है कि "जो सावित्रि आदि से वर्जित व्रात्यों से पैदा हुए—वही 'भूर्जकण्टक' और वही देश–काल–भेदवशात् 'आवन्त्य', वाटधान, पुष्पध तथा **शैख (वर्तमान शेख मुसलमान)** नामों से अभिहित हुए। यह यहाँ जो संस्कृत का **'शैख'** शब्द है, वह वर्तमान 'शेख' से भिन्न नहीं है। जो मुसलमान सिन्ध व सौराष्ट्र में विक्रम की ८वीं शताब्दी में आये, उनका वर्णन 'मनुस्मृति' में होना क्या बताता है कि यह ग्रन्थ प्रथम मनु–विरचित हो सकता है? वस्तुतः यह प्रश्न किंवा विषय तो विद्वानों की शोध पर ही निर्भर करता है। कहने का तात्पर्य यह कि जो लोग राजनीतिक उद्देश्यों से चालित होकर कथित 'मनुवाद', 'मनुवादियों' किंवा वर्त्तमान पोथी 'मनुस्मृति' के नाम पर वितण्डावाद को बढ़ावा या आन्दोलन का रूप देते हैं, वे किञ्चित् उक्त प्रश्नों पर भी ठण्डे दिल से विचार करें, तभी तो निषाद को छाती से लगाकर राम ने कहा था कि "यह मेरा भाई लक्ष्मण तुम्हारा भाई है और मेरी यह भार्या सीता तुम्हारी भाभी।" दक्षिण के एक भिन्न मतावलम्बी सन्त पुरुष मात्र राम का यही कथन तमिल रामायण (कम्बन–कृत) में पढ़कर पूर्वगृहीत मत त्यागकर राम–भक्त हो गये। यही राम दक्षिण में अनेक ऋषि–मुनियों के आश्रमों पर जाने के बजाय पूछते फिरते थे, "भीलनी शबरी कहाँ रहती है?" जब कि इसी शबरी के कारण कई ऋषियों ने मतंग ऋषि का आश्रम ही त्याग दिया था। 'मनुस्मृति' राम को शबरी के यहाँ जाने, उससे मिलने में बाधा नहीं बन सकी थी। ◻

उदयपुर का पोलियो चिकित्सालय

भारत सरकार की लगातार गहन पल्स पोलियो मुहिम से भविष्य में इस भयंकर कष्टकारी रोग का देश से पूरी तरह उन्मूलन होना प्रायः सुनिश्चित हो चुका है; किन्तु इस सुखद सुनहरी तस्वीर का दूसरा दर्दनाक पहलू यह भी है कि वर्तमान में भारत में लगभग ७५ लाख बच्चे और किशोर पूर्व से ही पोलियोग्रस्त होकर चलने-फिरने में असमर्थ हैं। पोलियो चिकित्सा में इतनी प्रगति हो चुकी है कि इनमें से आधे मरीजों को सर्जरी (आपरेशन) व अन्य चिकित्सा से चलता-फिरता बनाया जा सकता है।

वर्तमान में श्री नारायण सेवा संस्थान द्वारा संचालित पोलियो हॉस्पिटल, हीरण मगरी, सेक्टर-४ ए, उदयपुर, (राजस्थान, फोन नं० ०२९४-४६२४००) देश का सर्वोत्तम पोलियो हॉस्पिटल है। यह संस्था सर्वोच्च निःस्वार्थ सेवाभावना और कुशल कार्यक्षमता के गुणों से सम्पन्न है। १९९७ में चालू हुए इस चिकित्सालय में अभी तक पोलियो के ७ हजार से भी अधिक जटिल ऑपरेशन हो चुके हैं, जिनमें ८० प्रतिशत सफलता मिली है। पोलियोग्रस्त हजारों बच्चे और किशोर जो हाथ-पैर के सहारे जमीन पर रेंगते और घसीटते हुए चलते थे, अब अपने पैरों पर खड़े होकर चल रहे हैं।

इस हॉस्पिटल में देशभर के विशेषज्ञ सर्जन डॉक्टरों की टीमें जटिल पोलियो के आपरेशन करती रहती हैं। रोज लगभग ६-७ और महीने में एक या दो बार मासिक व पाक्षिक कैम्प में १००-१२५ आपरेशन एक साथ किये जाते हैं। यहाँ चिकित्सा व्यय काफी किफायती है और मरीजों व उसके सहायकों के ठहरने व खाने-पीने की पूरी सुविधा है। साधन विहीन व गरीब व्यक्तियों का रियायती और निःशुल्क उपचार भी किया जाता है। ◻

स्वधर्मे निधनं श्रेयः

– डॉ० ओम प्रकाश मिश्र

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दार्शनिक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अनुसार "हम इस शती के जिस चरण में रह रहे हैं, वह तनावों, खतरों तथा अवसरवादिता पूर्ण क्रियाकलापों का है।" प्रश्न उठता है कि इस दुखदायी स्थिति का कारण क्या है? इस दुर्गति के मूल में हमारे धर्म और संस्कृति का वह रूप है जो समय प्रवाह तथा अनेकानेक स्वार्थों के प्रसार से विकृत या विनष्ट हो गया है। धर्म के अतिरिक्त हमारी संस्कृति भी संस्कारच्युत होकर आज विकृति का पर्याय हो गयी है। ऐसे में सद्व्यवहार, सौमनस्य, शील तथा वास्तविक साहित्य, संगीत और कला की समुन्नति की आशा क्षीण हो चुकी है। धर्म और संस्कृति के इस स्वरूप ने हमारी राष्ट्रीय एकता को भी कुप्रभावित किये बिना नहीं छोड़ा है।

धर्म के अर्थ या मर्म को समझना सीधा सरल कार्य है; किन्तु कुटिल व्यक्तियों द्वारा इसे दुर्गम और दुर्बोध कर दिया गया है। धर्म का अर्थ है धारण करना या स्वधर्मानुकूल कर्तव्यों का सम्पादन करना। इस प्रकार कर्तव्य–पालन, पवित्रता, नैतिक आचरण, परोपकार, विवेक, सहयोग, प्यार आदि समस्त मानवीय उदात्त गुण धर्म से सम्बद्ध हैं। भय, लोभ, घृणा आदि धर्म के पतित–तत्त्व हैं। उपासना, आराधना, संस्कार, कल्प, कर्मकाण्ड आदि धर्म के बाह्य–पक्ष हैं। मानव जाति का यह दुर्भाग्य रहा है कि धर्म के इस बाहरी रूप को जो महत्त्व और मान्यता दी गयी, वह उसके भीतरी रूप को नहीं; आवरण प्रधान और अन्तर गौण हो गया। स्मृतिकार मनु ने धर्म के दस लक्षण– धैर्य, क्षमा, संयम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध बताये हैं। धर्म के इन लक्षणों का पालन करते हुए कोई व्यक्ति और समाज अपनी अभिलाषाओं को अभिव्यक्ति दे सकता है, मुक्ति के निकट जा सकता है और निराशा के क्षणों में सान्त्वना की अनुभूति कर सकता है। धर्म कोई ऐसा अनुभव नहीं है, जिसे पुस्तकों, उपदेशकों तथा शिक्षकों से प्राप्त किया जाये, बल्कि यह मानवीय आत्मा की वह अभिकांक्षा है, जो भीतर ही प्रस्फुटित होती है और जो अपने ही जीवन–रक्त से निर्मित है। इस प्रकार धर्म अपने उत्कृष्ट रूप में व्यवहार पर जितना बल देता है, उतना विश्वास पर नहीं। यह एक ऐसा वाहन है, जो हमें लोक और परलोक की सुख, शान्ति एवं समृद्धि की त्रिवेणी में ले जाकर खड़ा करता है। जब धर्म कर्मकाण्ड और कथनी प्रधान हो जाता है, तब धर्म का वह स्वरूप हमें अभिनय से अधिक नहीं लगता। ऐसे धर्म से न व्यक्ति का कल्याण होता है और न समाज का, क्योंकि पाखण्ड, संकीर्णता, अन्धविश्वास, धर्मान्धता, अहंमन्यता आदि दुर्गुण प्रोत्साहन पाकर हमें विनाश के कगार पर लाकर खड़ा करते हैं। ऐसी धर्म–विकृति की निन्दा जितनी सीधी सपाट भाषा में कबीर ने की है, उतनी किसी ने नहीं। पाथर पूजन एवं अजान के विषय में कबीर ने जो कहा है वह प्रभावोत्पादक, मर्मस्पर्शी तथा प्रेरणाप्रद है। भीतर के प्रकाश पर उनका बल उल्लेख्य है–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
बस अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहिं।।

और यह प्रकाश धर्म के आवरण से नहीं, आचरण से आता है।

धर्म का सार एक है और उसका लक्ष्य भी एक है। धर्म अपने मतावलम्बियों को असत्य भाषण करने, चोरी करने, दूसरों को सताने तथा वर्त्तमान और भविष्य को बिगाड़ने की शिक्षा नहीं देता। धर्म सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, संयम, परोपकार और मुक्ति की सीख देता है।

संस्कृति शब्द इतना व्यापक है कि इसमें धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, संगीत सभी कुछ समाहित है। मनुष्य ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था से लेकर आज तक इन क्षेत्रों में जो सोचा–समझा है, संस्कार पाये और डाले हैं, विश्वासों, रीति–रिवाजों, सदाचार आदि का निर्वाह किया है, उसे हम संस्कृति कह सकते हैं। वस्तुतः संस्कृति मानव के आन्तरिक गुणों की द्योतक है जबकि सभ्यता से मानव के बाह्य निर्माण–कार्य का बोध होता है। संस्कृति के कतिपय ऐसे सर्वमान्य तथ्य हैं, जो संसार के प्रत्येक मानव समूह के जीवन में मिलते हैं। इन तत्त्वों में मुख्य हैं– आयु के आधार पर समूह– विभाजन, समुदाय संगठन, परिवार शासन तन्त्र, निकट सम्बन्धियों से यौन सम्बन्ध निषेध, रक्त सम्बन्ध, विवाह, उत्तराधिकार के नियम, सामाजिक स्तर–भेद, खेल–कूद, शरीर–सज्जा, गीत, नृत्य, कला, शिक्षा, नीति, शिष्टाचार, कथाएँ, पाक विद्या, भोजन के निश्चित समय, अतिथि सत्कार के नियम, पुरा–निर्माण कला, व्यक्तिगत नाम, जन्म–मरण के संस्कार, अदृश्य

जगत्– सम्बन्धी भावनाएँ, अदृश्य जगत् की शक्तियों पर अधिकार स्थापित करने के साधन, धार्मिक उत्सव, जादू–टोने सम्बन्धी विश्वासों द्वारा जाति क्रियाएँ सम्पत्ति व्यापार आदि। मानव मात्र के प्रत्येक समूह में इन तत्त्वों को केन्द्र बिन्दु मानकर उनके चारों ओर जिन भावनाओं, विचारों, विश्वासों और व्यवहार–प्रकारों का विस्तार होता है, उसकी पूर्णता को हम संस्कृति कहते हैं। इस प्रकार संस्कृति एक गतिशील एवं प्रवहमान मानव–क्रिया है।

राष्ट्रीय एकता उस भावना की सामूहिक संज्ञा है, जिसके अन्तर्गत राष्ट्र के प्रति निष्ठा और भक्ति अपने उच्चतम तथा उत्कृष्ट रूप में होती है। उस राष्ट्र के निवासी क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषा, धर्म, सम्प्रदाय आदि के विवादों में न उलझकर ऐसा आचरण करते हैं, जिससे राष्ट्र की एकता, अखण्डता तथा प्रभुसत्ता को किसी प्रकार आघात नहीं लगता। इस देश की संस्कृति से ही नहीं, वरन् वन, सरिताएँ, उत्तुंग गिरि शृंग, मरुद्यान, मरुस्थल, पशु–पक्षी आदि सभी से सभी का अपनत्व होता है।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि धर्म का हमारे जीवन पर प्रभाव ह्रासोन्मुख है। आज विश्वास, आडम्बर, कर्मकाण्ड आदि का महत्त्व अधिक हो गया है; किन्तु धर्म के दस लक्षण उपेक्षित हो चले हैं। इन्हें केवल धर्म के पवित्र ग्रन्थों में देखा जा सकता है, संसारी व्यक्तियों के आचरण में नहीं। फलतः धर्म का यह स्वरूप न तो व्यक्ति की आत्मा का उन्नयन कर रहा है और न समाज को जोड़ने में ही सफल हो रहा है। व्यक्ति की आत्मा और अन्तरात्मा कुण्ठित और समाज विशृंखलित हो गया है। सभी कंचन

राष्ट्र के प्रति समर्पित साहित्यकार सम्मानित

कलकत्ता की प्रतिष्ठित साहित्यक संस्था 'बड़ा बाजार लाइब्रेरी' के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित एक भव्य कार्यक्रम में भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पित गण्यमान्य साहित्यकार श्री शिवकुमार गोयल को 'भाईजी श्री हनुमान् प्रसाद पोद्दार राष्ट्र सेवा सम्मान–१९९९' से हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री तथा गुजरात के राज्यपाल श्री सुन्दर सिंह भण्डारी द्वारा ताम्र पत्र, शाल एवं श्रीफल भेंटकर अलंकृत किया गया। आर०आर० चित्तलांगिया फाउण्डेशन की ओर से उन्हें पुरुषोत्तम दास चित्तलांगिया ने एक लाख रुपये का चेक प्रदान किया।

गुजरात के राज्यपाल श्री सुन्दर सिंह भण्डारी ने कहा कि जिस दौर में कलमकार धर्म व संस्कृति की उपेक्षा करते थे, उस समय श्री गोयल ने भारतीयता के शाश्वत तत्त्वों के महत्त्व को प्रदर्शित करने का ऐतिहासिक कार्य शुरू किया और तभी से निरन्तर, धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता की अलख जगा रहे हैं। यह बहुत दुःख की बात है कि आज प्रगतिशीलता तथा विकृत धर्म–निरपेक्षता की आड़ में भारतीयता के मान बिन्दुओं पर आघात किये जा रहे हैं।

हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री ने कहा कि श्री शिवकुमार गोयल महान् आध्यात्मिक विभूति भाई श्री हनुमान् प्रसाद पोद्दार तथा अपने महान् सन्त–हृदय पिताश्री भक्त रामशरण दास जी से प्रेरणा लेकर भारतीय संस्कृति, धर्म तथा राष्ट्रवाद के प्रचार–प्रसार में समर्पित भाव से सक्रिय हैं। उन्होंने देश के सदपुरुषों, स्वाधीनता, सेनानियों तथा राष्ट्रवीरों पर जो लेख तथा पुस्तकें लिखीं, वे नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करने तथा जन–जन में राष्ट्रीय भावनाएँ भरने में सक्षम हैं।

इस अवसर पर पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री विमल लाठ, श्री जुगल किशोर जैथलिया, महावीर प्रसाद अग्रवाल, जयगोपाल गुप्ता, डॉ० प्रेम शंकर त्रिपाठी, नेमचन्द कन्दोई आदि ने शिवकुमार गोयल तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीमती सत्या गोयल का अभिनन्दन किया।

समारोह में भारी संख्या में कलकत्ता के साहित्यकार, पत्रकार, रंगकर्मी तथा अन्य बुद्धिजीवी उपस्थित थे। □

को त्याग का काँच की श्रेष्ठता सिद्ध करने में संलग्न हैं।

सरकार की धर्म–निरपेक्षता की नीति ने न केवल धर्म के ह्रास में अपना योगदान किया है; अपितु भेदभाव–जन्य दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप मतान्धता व असहिष्णुता भी बढ़ी है। हिन्दू धर्म के अनुयायियों के प्रति धर्मविहीनता का भाव तथा मुसलमान और ईसाई मतावलम्बियों को शह देने से उन के माननेवाले लोगों के मध्य सन्देह और कटुता के वातावरण की सृष्टि हुई है। अल्पसंख्यक होने की आड़ में उनकी सुरक्षा ही नहीं की गयी है, बल्कि तुष्टीकरण नीति के अन्तर्गत उन्हें मजहब के नाम पर सब कुछ करने की छूट यहाँ तक दी गयी है कि हिन्दू बहुसंख्यक होकर भी अपने को भारत में उपेक्षित, असुरक्षित और आतंकित अनुभव कर रहे हैं। कश्मीर से लाखों हिन्दुओं के पलायन के बाद यह धारणा और सुदृढ़ हुई है। हिन्दुओं को भय है कि यदि ऐसा ही रहा, तो एक दिन वे अल्पसंख्यक की कोटि में आ जायेंगे, किन्तु तब उनको कोई पूछने वाला नहीं होगा।

धर्म में कई नये सम्प्रदाय और पन्थ उग आये हैं। इन नवीन सम्प्रदायों और पंथों के अपने–अपने "भगवान्" हैं जो खलीफाओं की तरह अपने चेलों और पट्ठों को लड़ने का विधिवत् प्रशिक्षण दे रहे हैं। कलियुगी भगवानों का काम धर्म से सम्बद्ध न होकर धर्म की आड़ में व्यापार करना, यदा–कदा दूसरे देशों के लिए जासूसी करना और जीवन के समस्त सुखों का भोग करना है। इनके दरबार "कामिनी, कांचन और कादम्ब" के नवीनतम संस्करण हैं। इस कुप्रवृत्ति जिससे धर्म के भाग और उपभाग हो रहे हैं, ने विघटनकारी तत्त्वों को बढ़ावा देकर हमारी राष्ट्रीय एकता पर कुठाराघात किया है। अतः आवश्यक है कि धर्म के वास्तविक स्वरूप का प्रचार–प्रसार किया जाय, ताकि सौहार्द तथा सौमनस्य का वातावरण बना रहे।

हमारी संस्कृति, जिसका प्रतिपादन अरण्यों में और चरमोत्कर्ष गीता में हुआ, की कई प्रमुख विशेषताएँ हैं जैसे चाक्रिक अस्तित्व, जीवन में सामञ्जस्य तथा समरसता (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) प्रज्ञावाद, शुचिता तथा अशुचिता का संबोध, अहिंसा आदि। भारतीय संस्कृति पर अनेक संस्कृतियों का आक्रमण तथा संक्रामक प्रभाव पड़ने का परिणाम यह हुआ है कि हमारी संस्कृति या तो संक्रमण के दौर से गुजर रही है या वह विकृति के निकट पहुँच चुकी है। संस्कार, सदाशयता, अहिंसा, स्नेह, सम्मान, मैत्री, सामञ्जस्य के गुण उपेक्षित हैं और कुसंस्कार, हिंसा, प्रतियोगिता, अर्थ तथा काम की प्रधानता की विकृतियाँ बढ़कर सराहना एवं सम्मान का विषय हो गयी हैं। अपने से बड़ों के लिए "आदरणीय" सम्बोधन अप्रिय होने लगा है, नास्तिकता एक फैशन हो गयी है, पंच सितारा होटलों में पश्चिमी ढंग का संगीत और नृत्य जितना लोकप्रिय है उतना भारतीय संगीत और नृत्य नहीं। हमारे अपने घरों में बोलचाल, सम्बोधन, मिलन, व्यवहार के ढंग भारतीयता खो रहे हैं। खानपान, जन्मदिन, विवाह के अवसर पर आयोजित समारोहों में लोगों का व्यवहार देखकर ऐसा लगता है कि वे न तो भारत के निवासी हैं और न इंग्लैण्ड के। हमारी स्थिति त्रिशंकु की हो गयी है यानी भारतीय हम रहे नहीं और अंग्रेज हम बन नहीं पाए। यह अपसंस्कृति हमें अपने देश से अलग कर रही है। जब हम अपनी संस्कृति से दूर होने लगते हैं, तब शिक्षा, दर्शन, धर्म, साहित्य, कला आदि से परायापन इस कदर बढ़ जाता है कि कालान्तर में अपना देश भी पराया लगने लगता है।

भारतीय संस्कृति में नारी सम्मान पर बड़ा बल रहा है। इसीलिए कहा गया है कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" किन्तु आज नारी 'व्यक्ति' कम, 'वस्तु' अधिक हो गयी है और इसी कारण आये दिन उसके साथ दुर्व्यवहार, बलात्कार एवं हत्या की घटनाएँ हो रही हैं। प्रतिदिन द्रौपदी के चीर–हरण को देखकर भी कोई कृष्ण उसकी रक्षा को नहीं आ रहा है और न कोई कवि और लेखक उसके दर्द को गाकर, लिखकर जनमानस को झकझोरना चाहता है।

स्पष्टवादी

कल रद्दीवाले से बात हुई, तो बोला कि आप तौल कर देंगे, तो तीन रुपये किलो का भाव होगा। मैं तौलूँगा, तो साढ़े चार रुपये किलो। कैसी साफ स्पष्ट दो टूक बात!

आज डेयरी वाले से दूध पतला होने की शिकायत की, तो जवाब मिला कि सोलह रुपये लीटर में तो ऐसा ही दूध आता है। अट्ठारह रुपये के भाव लें, तो आप के लिए भी अलग से ले आया करूँगा।

कुछ दिन पूर्व एक सरकारी दफ्तर में मामूली–सा काम था। बाहर ही एक सज्जन मिले। समझाया कि महीनों चक्कर काटने पड़ेंगे। जूतों के तल्ले घिस जाएँगे। २०० रुपये खर्च करें, तो काम अभी खड़े–खड़े हो जाएगा। ❐

प्रस्तुति – **ओम प्रकाश बजाज**
इंद्राणी अपार्टमेंट्स, २१६१–एफ., मदन महल,
जबलपुर– ४८२००१ (म.प्र.)

भले कारण बदले हों; किन्तु नारी सम्मान इतना कम और उनका दर्द इतना अधिक कभी नहीं था, जितना आज है। उक्त दुर्घटनाओं से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण ही नहीं, अपितु विज्ञापनों में नारी के शरीर का प्रदर्शन जिस अश्लील ढंग से हो रहा है, वह कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र सहन नहीं कर सकता। आज नारी घर–गृहस्थी के उतना काम नहीं आ रही है, जितना उसका प्रयोग व्यापार, नियुक्ति और प्रोन्नति के मामलों में किया जा रहा है।

राष्ट्र को भावी क्षरण से बचाने के लिए हमें संस्कृति के इस विचलन को रोकना होगा। हमें अपने स्वधर्म के अनुकूल संस्कृति, जो हजारों वर्षों से हमारे पास धरोहर के रूप में रही है, से फिर से जुड़ना होगा। भारत के असंख्य गाँवों में प्रचलित "जय राम" तथा नगरों का 'नमस्कार' भले ही "हलो" तथा हाथ मिलाने के सामने कितना फीका लगे; किन्तु उससे न केवल हम अपने सामने वाले व्यक्ति से मिलते हैं; अपितु राम और उनके आदर्शों से मिलते हैं और प्रत्येक व्यक्ति में बैठे हुए ईश्वर अंश या उसकी सत्ता को नमस्कार करते हैं। अब भी समय है, जब हम गीता के इस श्लोक का मर्म समझकर तदनुकूल आचरण करें–

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। – ७

(ऊँचे सुलभ पर धर्म से निज विगुण धर्म महान् है।
परधर्म भयप्रद, मृत्यु भी निज धर्म में कल्याण है।।)

❒

– प्राचार्य, सी.जी.एन. (पी.जी.) कालेज,
गोलागोकर्णनाथ

प्रेरक–प्रसंग

ऐसे उदार थे ज्ञानी जैल सिंह

– वागीश

जिन दिनों देश के पराधीनताकाल में रजवाड़ों, रियासतों में प्रजातन्त्री व्यवस्था लाने के लिए राजस्थान, पंजाब आदि अनेक प्रान्तों में आन्दोलन चल रहा था। उन्हीं दिनों राजस्थान के विजय सिंह 'पथिक', पं० अर्जुन लाल सेठी, टिहरी–गढ़वाल के शहीद देवसुमान कोटा की भाँति पंजाब में ज्ञानी जैल सिंह भी प्रजातन्त्र–आन्दोलन में सक्रिय थे। इसी सिलसिले में जब वे वहाँ की एक रियासत फरीदकोट पहुँचे, तो वहाँ का राजा नरेन्द्रसिंह उन पर बहुत कुपित हुआ। यहाँ तक कि उसने ज्ञानी जैल सिंह को पकड़वाकर उनको अपनी जीप के पीछे केशों से बँधवा दिया। केशधारी सिखों के केश लम्बे होते हैं। उस अत्याचारी राजा ने तय किया कि ज्ञानी जैल सिंह, जिनके केश जीप के पिछले हिस्से में रस्सी की तरह फँसाकर बाँध दिये गये हैं, उन्हें जीप चलाकर सड़कों पर घसीटा जायेगा। परन्तु वहाँ जब उसी समय राजा के कुछ सैनिक आये और उन्होंने जो इस तरह क्रूरतापूर्वक ज्ञानी जैल सिंह को अपने ही राजा की जीप से केशों के जरिये बँधा देखा और देखा कि वे जमीन पर पड़े हैं। जीप चलने वाली है, तो उन सुहृदय सैनिकों ने इस क्रूरता का विरोध करते हुए राजा से कहा कि "जीप चलाकर घसीटे जाने से इस आदमी की मौत हो जायेगी। जो अच्छा न होगा। इसे खुलवा दीजिये।" राजा ने उन सैनिकों की बात पर ध्यान देकर ज्ञानी जैल सिंह को जीप से खोल देने का आदेश दे दिया और इस प्रकार वे उस दिन मृत्यु से बच गये।

काफी वर्षों बाद जब भारत स्वतन्त्र हुआ और एक समय ऐसा आया जब वही ज्ञानी जैल सिंह राष्ट्रपति बने, तो क्या हुआ कि फरीदकोट का वही राजा नरेन्द्र सिंह बुरी तरह बीमार हो गया और उसकी दशा ऐसी हो गयी कि लगा, उसकी मृत्यु निकट है, जब यह खबर तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह को हुई, तो उन्होंने उसकी चिन्ता करते हुए उसे दिल्ली में उठवा लाकर उसका औषधोपचार करवाया। राष्ट्रपति ने जब उस रोगी राजा की चिन्ता की तो उसका इलाज भी डॉक्टरों ने खांस ध्यान देकर किया और वह चंगा होकर फरीदकोट लौटा। वह स्वयं यह देखकर चकित और बहुत लज्जित हुआ कि जिस आदमी को एक दिन उसने जीप से केशों से बँधवाकर घसीटवाना चाहा था उसी ने उसकी इतनी रुचि लेकर दिल्ली में इलाज करवाया। अपने मन में शत्रु भाव फटकने नहीं दिया, बहुत बड़ी बात थी यह। ▭

हिन्दु विजय-युग प्रवर्त्तक

हिन्दु विजय–युग–प्रवर्त्तक–एक अनुपम इतिहास– ग्रन्थ

इतिहास का साधारण अर्थ है, इति–ह–आस अर्थात् 'यह ऐसा हुआ'। इसीलिए घटनाओं का यथार्थ वर्णन इतिहास की प्रथम आवश्यकता है। उसमें कुछ घटाना या बढ़ाना सर्वथा वर्जित है; परन्तु कभी–कभी यह भी होता है कि निहित स्वार्थों के कारण कुछ लोगों द्वारा इतिहास को पूरी तरह उलट–पलट दिया जाता है और प्रामाणिकता के लिए नितान्त कल्पित प्रमाण भी गढ़ लिये जाते हैं। भारतीय इतिहास के साथ विदेशी व देशी इतिहासकारों ने कुछ इसी प्रकार का अनर्थ किया है। इन इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास में नितान्त मनगढ़न्त और झूठी बातों का इतना समावेश कर दिया कि सही अर्थों में यह इतिहास रह ही नहीं गया। इनके द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि आर्य इस देश के निवासी नहीं हैं, वे किसी अन्य देश से यहाँ आकर बस गये हैं। आर्य मनीषा की अन्यतम देन वेद इनकी दृष्टि में गड़रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत हैं और भारतीय क्षत्रिय अधिकांशतः शक, सीथियन व हूणों से उद्भूत हुए हैं। इसी प्रकार छत्रपति शिवाजी को 'लुटेरा' एवं 'पहाड़ी चूहा' कहकर उनके महत्त्व को नकारा गया। सन् १८५७ ई० के महान् स्वाधीनता संग्राम को 'सिपाही विद्रोह' या स्वार्थी राजाओं और नवाबों का विद्रोह बताकर निरस्त किया गया। ईसा पूर्व के समस्त इतिहास को अप्रामाणिक करार देकर मिथक घोषित किया गया। ऐसी परिस्थिति में अपने इतिहास को सम्यक् यथार्थवादी दृष्टि से देखने की महती आवश्यकता है। श्री हो०वे० शेषाद्रि का 'हिन्दु विजय–युग–प्रवर्त्तक' नामक इतिहास ग्रन्थ भारतीय समाज को इसी महती आवश्यकता की पूर्त्ति की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक प्रयास है। विद्वान् लेखक ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में
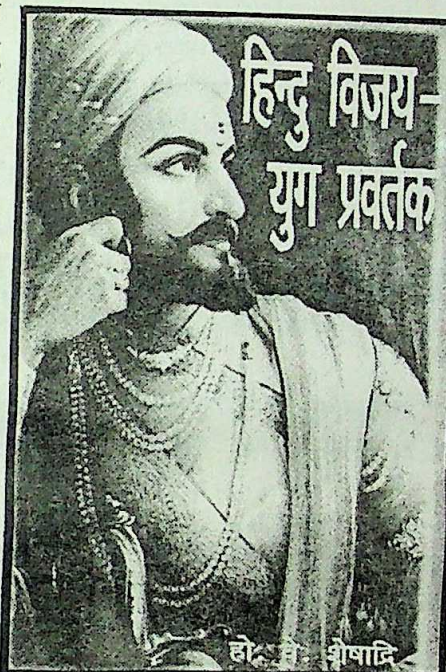
लेखक	:	हो० वे० शेषाद्रि
प्रकाशक	:	सुरुचि प्रकाशन देशबन्धु गुप्त मार्ग, झण्डे वाला, नई दिल्ली
मूल्य	:	रु० १००/–
पृष्ठ	:	२८०

अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है।

"रंग–बिरंगे कल्पना–विलास या उत्प्रेक्षा अलंकार की सहायता के बिना ही निजी महानता के बलबूते खड़े होने की क्षमता रखनेवाले एक जीवनाश्चर्य की यह सत्य कथा है। निष्पक्ष इतिहास संशोधकों द्वारा शोध कर परिष्कृत की हुई वास्तविक घटना ही इस कथा का आधार है। यहाँ पूर्वाग्रहों को स्थान नहीं है। विदेशी विधर्मी चरित्रकर्त्ताओं द्वारा प्रस्तुत निराधार तथा खोखले दोषों अथवा विकृत अर्थों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।"

इस कृति के चरित्र नायक शिवाजी महाराज की भाँति ही लेखक की ध्येय निष्ठा ग्रन्थ में आदि से अन्त तक विद्यमान है। एतदर्थ रचनाकार ने शिवाजी महाराज के सम्पूर्ण जीवन–वृत्त को आठ अध्यायों में रूपायित किया है। अध्यायों का नामकरण कथा नायक के जीवन की विशिष्ट घटनाओं के आधार पर किया गया है। 'शिवावतार' नामक प्रथम अध्याय में शिवाजी के जन्म, बाल्यकाल, सैन्य–प्रशिक्षण एवं उनके प्रारम्भिक विजय अभियानों का चित्रण अत्यन्त भावपूर्ण शैली में किया गया है। तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में उभरती हुई शिवाजी महाराज की यशोगाथा के दिव्यालोक की स्वर्ण–रश्मियाँ भारतीय जनमानस के नैराश्य को विदीर्ण कर उसके चैतन्य को जाग्रत् करती जान पड़ती हैं। जिससे निर्धन और अशिक्षित मावला युवकों में भी वीरत्व का सञ्चरण होता है और वे सैनिक बनकर अपनी तलवारों से स्वराज्य के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करते हैं। 'प्राणसंकट' शीर्षक द्वितीय अध्याय में शिवाजी द्वारा अफजल खान के वध से सम्बन्धित घटनाक्रम का वर्णन है। अफजल खान शिवाजी महाराज को उत्तेजित करने के उद्देश्य से उनकी कुलदेवी तुलजापुर की भवानी के मन्दिर को ध्वस्त करता है तथा पण्ढरपुर और कोल्हापुर में भारी तबाही

मचाता है; परन्तु शिवाजी इससे विचलित नहीं होते। वे दिखावटी अनुनय–विनय करके उसे 'जावली' तक ले आते हैं और उससे भेंट करते समय ही उसका काम तमाम कर देते हैं। ग्रन्थ का तीसरा अध्याय है 'पन्हालगढ़'। इस अध्याय में बीजापुर के दूसरे सिपहसलार सिद्दी जौहर द्वारा पन्हालगढ़ में घिर जाने पर शिवाजी महाराज अपनी सूझ–बूझ एवं कूटनीतिक कौशल का अभूतपूर्व परिचय देते हैं और सफलतापूर्वक पन्हालगढ़ से निकल कर विशालगढ़ पहुँच जाते हैं। सिद्दी जौहर हाथ मलता रह जाता है। 'शाइस्ताखान का शासन' नामक अगले अध्याय में शिवाजी महाराज मुगल सम्राट् औरंगजेब द्वारा नियुक्त दक्षिण के सूबेदार शइस्ताखान पर निर्णायक विजय प्राप्त करते हैं। लालमहल में प्रवेश करके वे शाइस्ताखान के हाथ की तीन उँगलियों को काट डालते हैं। शिवाजी की इस विजय से घबड़ाकर औरंगजेब शाइस्ताखान को हटाकर अपने पुत्र मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त करता है। इससे शिवाजी महाराज का कार्य और अधिक सुगम हो जाता है। अपने अद्भुत पराक्रम से वे सूरत और अहमदनगर को लूट कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करते हैं तथा आदिलशाह के सुप्रसिद्ध जलदुर्ग को जीतकर पश्चिमी समुद्र के एक द्वीप पर सिन्धु–दुर्ग का निर्माण करते हैं। ग्रन्थ का अगला महत्त्वपूर्ण अध्याय है 'जयसिंह की दक्षिण मुहिम'। शिवाजी महाराज की बढ़ती शक्ति से चिन्तित होकर औरंगजेब 'मिर्जा' राजा जयसिह को दक्षिण की मुहिम पर भेजता है। शिवाजी महाराज जयसिंह से युद्ध नहीं करते; अपितु जयसिंह के परामर्श एवं आश्वासन पर औरंगजेब से मिलने दिल्ली चले जाते हैं। औरंगजेब उन्हें बड़ी चालाकी से आगरा में बन्दी बना लेता है और उनको समाप्त करने की योजना बनाता है। तभी मुगल सेना की कड़ी नाकेबन्दी को तोड़कर वे अपने पुत्र शम्भाजी के साथ आगरे से फरार हो जाते हैं और दक्षिण पहुँचकर फिर से स्वराज्य के निर्माण में संलग्न होते हैं। 'राज्य विस्तार' नामक ८०वें अध्याय में शिवाजी अपने खोये हुए किलों पर पुनः अधिकार करके विधिवत् हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करते हैं। यद्यपि शिवाजी महाराज महाराणा प्रताप की भाँति ही सीसोदिया वंशोद्भूत क्षत्रिय थे; परन्तु मुसलमानी प्रभुत्व वाले क्षेत्र में रहने के कारण उनके कुल के अनेक संस्कार लुप्त हो गये थे। कर्मकाण्डी विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा शास्त्रोक्त विधि से सभी संस्कार पूर्ण करने के उपरान्त उनका विधिवत् राज्या–भिषेक किया गया और इस प्रकार वे हिन्दू साम्राज्य के सम्प्रभुता सम्पन्न राजा बने। 'दक्षिण दिग्विजय' ग्रन्थ का सातवाँ अध्याय है जिसमें शिवाजी महाराज की दक्षिण विजय की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। राज्याभिषेक के बाद सन् १६७६ ई० में विजयदशमी के शुभ मुहूर्त पर वे रायगढ़ से प्रस्थान करते हैं तथा कावेरी पट्टन, [illegible]चलम्, चिदम्बरम् आदि स्थानों पर अपना अधिकार करते हुए बेंगलूर, होसकोटे, कोलार, शिरा इत्यादि दुर्गों को स्वतन्त्र हिन्दू राज्य में शामिल कर लेते हैं। इसी अध्याय में शिवाजी महाराज पचास वर्ष की आयु में ही चैत्र पूर्णमासी सन् १६८० ई० को गम्भीर रूप से बीमार होते हैं और उनका महादिव्य तेज शरीर बन्धनों का त्याग कर अनन्त तेजस् में विलीन हो जाता है। अन्तिम अध्याय 'युगावतार' में प्रसिद्ध इतिहासकारों की शिवाजी विषयक प्रामाणिक सामग्री को साक्षी के रूप में जोड़कर लेखक ने अपनी बात को प्रामाणिकता प्रदान की है।

इस प्रकार शिवाजी महाराज की सच्ची जीवनगाथा प्रस्तुत करना ही इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य नहीं है। इसका मूल वैशिष्ट्य तो मूल लेखक की उस राष्ट्रवादी दृष्टि में निहित है, जिसके सहारे उसने शिवाजी महाराज के जीवन के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राष्ट्रहित में जनसामान्य के लिए प्रस्तुत किया है। धर्मान्तरण, शत्रु मित्र सम्बन्ध, स्वामि–निष्ठा, वचन–बद्धता, युद्धनीति एवं ध्येय–निष्ठा जैसे शब्दों को लेखक ने सर्वथा नये व सन्दर्भ सापेक्ष अर्थों में प्रस्तुत किया है। शिवाजी के समय तक यही समझा जाता था कि एक बार जो हिन्दू से मुसलमान हो गया, उसे फिर हिन्दू धर्म में वापस लेना सम्भव नहीं हो सकता; परन्तु बीजापुर के बादशाह द्वारा धर्मान्तरित बालाजी निंबालकर तथा औरंगजेब द्वारा धर्मान्तरित नेताजी पालकर का शुद्धीकरण करके शिवाजी महाराज ने विशाल हिन्दू समाज को एक नयी धर्मदृष्टि प्रदान की, जो आज की परिस्थितियों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमारे देश में क्षत्रिय नरेश यदि किसी को अपनी मित्रता का वचन दे देते थे, तो उसे प्राण देकर भी निभाते थे, भले ही वह हिन्दू समाज या राष्ट्र का प्रबल शत्रु ही क्यों न हो। 'मिर्जा' राजा जयसिंह तथा महाराजा जसवन्त सिंह इसी थोथे आदर्श को लेकर मुगलों की सहायता करते रहे। शिवाजी महाराज ने यह प्रतिपादित किया कि परकीय तुर्कों के साथ हाथ मिलाना अधर्म है। इसके विपरीत स्वराज्य–सेवा ही ईश्वरीय कार्य है, धर्म–कार्य है। इसी प्रकार स्वामिभक्ति एवं स्वामिनिष्ठा की आत्मघाती परिपाटी यहाँ के लोगों ने अपना रखी थी। स्वामिभक्ति की इस भ्रान्त धारणा को दूर कर स्वदेश–स्वधर्म के लिए जीवन अर्पित करनेवाले स्वामी के प्रति दर्शायी जाने वाली ध्येयनिष्ठा को ही अपनाने का उदाहरण उन्होंने लोगों के समक्ष रखा। राजपूत राजाओं में इसी प्रकार स्वाभिमान अर्थात् व्यक्तिगत अभिमान की विचित्र भावना भी उस समय दृढ़मूल हो गयी थी, जिसके कारण वे आपस में ही लड़ते रहते थे। शिवाजी महाराज ने यह आदर्श रखा कि क्षमा, दया, प्रीति, स्नेह, सहकार्य और वचनबद्धता केवल स्वजनों के साथ व्यवहार में लानी चाहिए, शत्रुओं के साथ नहीं। शत्रु के साथ तो 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' नीति का ही पालन किया जाना चाहिए। युद्ध नीति का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि ईमानदारी के साथ युद्ध लड़ा जाये; वरन् युद्ध में विजय–प्राप्ति का मार्ग अपनाना ही सही युद्ध नीति है। अपने ध्येय के प्रति एकनिष्ठ भाव से समर्पित होना ही एक अच्छे योद्धा का लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने ऐसी नूतन युद्ध कला का विकास किया, जो 'गनिमी कावा' अथवा गुरिल्ला–युद्ध पद्धति के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार शिवाजी महाराज का जीवन–वृत्त हमारे राष्ट्र जीवन को एक ऐसी दृष्टि प्रदान करने की सामर्थ्य से युक्त है, जिसके द्वारा हम आधुनिक युग की चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए अपनी सम्प्रभुता को अक्षुण्ण रख सकते हैं।

इस इतिहास ग्रन्थ का एक अन्य वैशिष्ट्य है, इसकी विलक्षण भाषा शैली। इतिहास का शायद ही ऐसा कोई ग्रन्थ हो, जो इतना सरस प्रेरक एवं भावपूर्ण हो। लेखक ने उपन्यासों की साहित्यिक शैली में शिवाजी महाराज के इतिहास को लिखकर अपनी रचना–धर्मिता के अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। इससे यह कृति अत्यन्त मनोरंजक व ग्राह्य हो गयी है। शिवाजी महाराज के महान् व्यक्तित्व की भाँति ही यह ग्रन्थ भावी पीढ़ियों के लिए शाश्वत प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना रहेगा।

प्रो० नेत्रपाल सिंह

एफ–३०६८/१, राजाजीपुरम्, लखनऊ

अपराधों के हाथ

– डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध'

धूप–पृष्ठ पर किरण नोक से
दिन ने पत्र लिखा,
शाम ने पढ़ा नहीं।
घण्टों ही गरमाया सूरज थककर बैठ गया,
और उजाला चलते–चलते तम में पैठ गया।
माटी का वह रूप हल्दिया
यहाँ–वहाँ उभरा,
किसी पर चढ़ा नहीं।
बहुत दिया श्रम को दाता ने घर में नहीं बचा,
समय–सृष्टिकर्त्ता ने मनु के क्षण को नहीं रचा।
उजली तस्वीरों में हमने
सुख को कैद किया,
हृदय को मढ़ा नहीं।
अपराधों के हाथ देह को पूरी काट गये,
छोटे–छोटे टुकड़ों में फिर हमको बाँट गये।
कच्चेपन को छुआ सभी ने
कोई रूप नया
किसी ने गढ़ा नहीं।

– २५४, पद्मावती कालोनी 'ए', अजमेर–मार्ग, जयपुर–३०२०१६ (राजस्थान)

(पृष्ठ ५० का शेष) **...जब भाऊराव जी ...**

भी अधिक होगा और उस पहाड़ी रास्ते की भी क्या हालत है, यह कहना कठिन ही था। कारबी आग्लांग जिले के इस पहाड़ी रास्ते में विश्व हिन्दू परिषद् का छात्रावास व दवाखाना फुलनी नाम के गाँव में था। सोचा गया कि चलो वहाँ तक जाकर देखे। आगे रास्ता जहाँ पर अवरुद्ध होता दिखायी देता, तो वही पर रात गुजारेंगे और सुबह जल्दी लुमडिंग की ओर आगे कूच करेंगे।

लेकिन फुलनी पहुँचे, तो ज्ञात हुआ कि मांजिया तिनाली (तीन रास्ते) तक रास्ता ठीक ही है। बारिश भी रुक गयी थी। लेकिन माँजिया से आगे २० किलोमीटर पर दिफू (कारबी आँग्लांग जिले का मुख्यालय) जाने के रास्ते में लगने वाली नदी पर के पुल पर से पानी बहने के कारण यातायात बन्द है, ऐसी जानकारी प्राप्त हुई थी। फिर भी ईश्वर का नाम लेकर हम लोग मांजिया तिनाली पहुँच ही गये। वहाँ पर शाम के ५ बजे थे। अँधेरा होने लगा था। इतने में देखा कि एक जीप व एक अम्बेसडॉर गाड़ी दिफू की ओर से आ रही है। उनको रोक कर पूछा, तो पता चला कि, पुल पर से पानी उतर गया है और अब रास्ता खुल गया है और हम लोग दिफू जा सकेंगे अन्यथा हमें माँजिया तिनाली से दीमापुर, जो केवल २० किमी. अन्तर पर ही था, जाना पड़ता। दीमापुर तो नागालैंड का प्रवेशद्वार ही कहलाता है। वहाँ पर एक छोटी-सी शाखा भी चलती थी और अनेक व्यवसायी स्वयंसेवक भी रहते थे। अतः रात में वहाँ पर विश्राम हो सकता था।

लेकिन जब ज्ञात हुआ कि दिफू का रास्ता खुल गया है, तो हम सभी ने तुरन्त दीफू की ओर प्रस्थान कर दिया। रास्ते में अनेक स्थानों पर पहाड़ धँसे हुए मिले, लेकिन एक गाड़ी जाने आने के लिए आवश्यक जितनी जगह मिलती गयी और हम आगे बढ़ते गये। फिर दिफू से संरक्षित जंगल में से पहाड़ी रास्ते से, जो प्रायः कच्चा ही था, ईश्वर का नाम लेते-लेते लुमडिंग पहुँच ही गये। तब रात के ८ बजे थे। वहाँ पर स्वयंसेवकों से सम्पर्क किया। उन्होंने भी बड़ी फुर्ती से खाने-पीने का प्रबन्ध किया। दोनों गाड़ी के ड्राईवरों ने थोड़ा सा आराम किया। खाना खाकर ताजेतवाने हो गये।

लुमडिंग के कार्यकर्ताओं ने कहा कि गत ४ दिनों से हाफलाङ् से कोई रेलगाड़ी आयी नहीं है और रास्ता भी अच्छा नहीं है। अब तो रात भी हो गयी है। कल से बारिश तो रुकी है, लेकिन पता नहीं, बीच रास्ते में पहाड़ों में कहाँ बारिश होती होगी, तो जानकारी मिलना भी कठिन है। हाँ; एक बात है कि सरकारी इंजीनियर दिन-रात रास्ता ठीक करने के काम में लगे है। बुलडोजर चलाकर रास्ता ठीक करने की कोशिश कर ही रहे है; लेकिन कहाँ तक आगे जा सकेंगे, यह कहना कठिन है।

हम सभी दिन भर के कष्टप्रद, तनावपूर्ण वातावरण में प्रायः ३५० किमी. का रास्ता पार करके थके-भागे थे; लेकिन सबके सामने एक ही लक्ष्य था- किसी भी तरह से, कितने भी कष्ट हों; तो भी विजयादशमी की सुबह तक हाँफलाङ् पहुँचना ही है और अब तो केवल ८० किमी. रास्ता ही बाकी रहा है। रात को ६.३० बजे भगवान् का नाम लेकर हमने फिर से जंगलों से भरे पहाड़ी रास्ते पर चलना आरम्भ किया। लेकिन थोड़े से अन्तर चलने पर ही ध्यान में आया कि अब रास्ता बड़ा खराब है, अनेक स्थानों पर जमीन धँसने से और सतत बारिश होने के कारण कीचड़ से भरा हुआ था, लेकिन दुर्दम्य इच्छा तथा हाफलाङ् को विजयादशमी के दिन पहुँचने के अडिग निश्चय ने इन सब परिस्थितियों पर मात कर दी। चलते-चलते, रात के करीब ११.३० बजे हम लोग मायबाँग तक पहुँच गये। अब तो केवल २५-३० कि०मी० का ही फासला रहा था। मायबाँग हमने छोड़ दिया।

मायबाँग यह दिमाछः कछारी राजाओं की एक समय की राजधानी का गाँव था। वहाँ पर वनवासी-कल्याण-आश्रम की ओर से एक महिला-छात्रावास तथा एक औषधालय का प्रकल्प भी चलाया जा रहा था।

इतने पास लेकिन कितने दूर

मायबाँग जैसे ही हमने पीछे छोड़ा तो फिर से बारिश शुरू हो गयी। इससे मन में बड़ा संदेह उत्पन्न हुआ, तो भी हम आगे बढ़ते गये। अब केवल २-३ किलोमीटर का अन्तर बचा था। उतना पार करने से हम माहुर पहुँच सकते थे और वहाँ से हाफलाङ् का रास्ता अच्छा ही था, लेकिन यहीं पर हमें रुकना पड़ा। बारिश जोर से चलने के कारण जमीन धँस गयी थी और बड़े-बड़े पत्थर रास्ते पर लुढ़कने के कारण रास्ता कीचड़ से व पत्थरों से भरा हुआ था। अब आगे जाना असम्भव था। लक्ष्य के इतने निकट, इतने सभी तरह के कष्ट व प्रयास करने पर पहुँचकर भी, हम फिर लक्ष्य तक पहुँच नहीं सके, इसका बहुत बड़ा दुःख हुआ, लेकिन 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' यही सोचकर हम फिर से मायबाँग लौट आये। लक्ष्य के इतने पास होकर फिर भी कितनी दूरी पर रहे हम।

सरकारी विद्यालय में रात बितानी पड़ी

जब मैंने सितम्बर में इस क्षेत्र का प्रवास किया था

तब मायबाँग के वनवासी कल्याण आश्रम के केन्द्र में कुछ समय रुका था। वहाँ पर मुजफ्फर नगर के डा० गुप्ता और उनकी नवपरिणीता पत्नी केन्द्र की देखभाल करते थे। उनसे भेंट हुई थी। उनको भी मैंने मा. भाऊरावजी के कार्यक्रम की सूचना दी थी तथा वहाँ के सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रिन्सिपल से भी भेंट की थी। उनका कुछ समय पूर्व ही संघकार्य से सम्पर्क हुआ था। अतः उनको भी मैंने हाफलाङ् के कार्यक्रम में उपस्थित रहने तथा प्रत्यक्ष मा. भाऊरावजी से भेंट परिचय करने का सुअवसर प्राप्त करने का निवेदन भी किया था।

प्रधानाध्यापक के घर में मा. भाऊरावजी का विश्राम

अब इस समय इन सब पूर्व बातों का उपयोग हो सका, क्योंकि जब हम रास्ता बन्द देखकर वहाँ लौट आए तब रात के ११.३० बजे थे। आकाश मेघाच्छन्न था। बारिश की रिमझिम चल रही थी। गाँव में अँधेरा था। रास्ते पानी से भरे हुए थे। रास्ते कच्चे थे। प्रथम सरकारी विद्यालय के पास पहुँचना आवश्यक था; क्योंकि उसके पास ही विद्यालय के प्रधानाध्यापक का मकान था। गाँव छोटा होने के कारण अन्य किसी स्थान पर रुकना सम्भव भी नहीं था। हेडमास्टर के घर के निकट ही कल्याण–आश्रम का छात्रावास तथा औषधालय भी था। वहाँ तक पहुँचते समय घुटने तक पानी से जाना पड़ा। आगे तो रास्ता पूर्णतः कीचड़ से भरा हुआ था। लेकिन डॉ० गुप्ता का मकान खोजने में बहुत देरी नहीं लगी। उनको जगाया तथा सारी परिस्थिति समझायी। वे और उनकी पत्नी दोनों ही बड़े आश्चर्य चकित हुए थे। उन्होंने सोचा था कि ५–६ दिनों से सतत चल रही वर्षा से रास्ते बंद हुए है, रेलगाड़ी भी तो बन्द हुई है अतः अब मा० भाऊरावजी का हाफलाङ् आना संभव नहीं होगा। इसलिए विजयादशमी का कार्यक्रम नहीं होगा, इसी धारणा से ही वे अपने स्थान पर ही रहे थे। ४–५ दिनों से कोई भी रेल चली नहीं थी और जमीन धँसने के कारण रास्ते भी तो बन्द ही थे। कहीं भी गये नहीं थे। मा० भाऊरावजी के लिए रात भर के लिए विश्राम की व्यवस्था करना अति आवश्यक व महत्त्वपूर्ण दायित्व था। अतः वे दोनों हमारे साथ घुटने भर पानी वाले रास्ते से चल पड़े। सरकारी विद्यालय के प्रधानाध्यापक को मध्यरात्रि में जगाया, उनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन समझाने पर उन्होंने बड़ी आत्मीयता से अपने घर में एक कमरा तुरन्त मा० भाऊरावजी के लिए खाली करके दिया। वैसे उनका मकान भी तो केवल तीन परिवाला ही था। वहाँ पर मा० भाऊराव जी की सोने की व्यवस्था की गयी। वे इतने थके थे और ठंड हवा से इतने परेशान हुए थे कि जब वहाँ पर लेटने के लिए जगह मिल गयी, तक एकदम सो ही गये। वैसे उनको नींद नहीं आती थी और नींद की गोली लेनी होती थी। लेकिन आज गोली की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

विद्यालय के लेबोरेटरी में रात गुजारी

फिर हम सभी ७ लोग हेडमास्टर से अनुमति लेकर विद्यालय के लेबोरेटरी के कमरे में आकर सोये; क्योंकि वहाँ की बेंचें बड़ी आकार की थीं। बाहर कड़कड़ाती ठंड थी। ओढ़ने के लिए बहुत थोड़ा सा ही कपड़ा साथ में था। गरम कपड़े पहने हुए थे; लेकिन जब गाड़ी से निकलकर डाक्टर गुप्ता का मकान खोजने गये थे तब चल रही बारिश में हम सभी पूरे भीग गये थे। वैसी ही स्थिति में हम सो गये। लकड़ी के बेंचों पर पीठ लगते ही सबको जरा आराम महसूस होने लगा। नींद तो लेना संभव ही नहीं था। रात के डेढ़–दो बजे दूर से रेलगाड़ी के इंजन की सीटी सुनायी दी। हम हड़बड़ करके उठे। स्टेशन नजदीक ही था। वैसे ही स्टेशन पहुँच गये। स्टेशन मास्टर को पूछा, क्या रेलगाड़ी आ रही है? रेल का रास्ता खुल गया है? उसने कहा कि देखिए गत ३–४ दिनों से कोई भी गाड़ी चली नहीं अतः रेलमार्ग ठीक है या नहीं, यह देखने के लिए इंजन भेजा गया है। वह हाफलाङ् तक जाएगा। यदि रेल मार्ग में कोई अवरोध न हो तो सुबह लुमडिंग से गाड़ी आने की संभावना है। आप और दो घंटे बाद खबर कीजिए, तब मैं आपको सही स्थिति बता सकूँगा। हमने अपनी घड़ी में देखा, उस समय रात के ढाई बजे थे, फिर हम लोग विद्यालय आकर कमरे में ही पड़े रहे और करते भी क्या?

भोर ४.३० बते फिर एक को स्टेशन पर भेजा, तो वह स्टेशन मास्टर से खबर लाया कि एक मालगाड़ी लुमडिंग से आ रही है। इसका मतलब था कि अब लुमडिंग–हाफलाङ् रेलमार्ग खुल गया है। हम सभी को बड़ा आनन्द हुआ; क्योंकि अब हम यहाँ से रेल से हाफलाङ् पहुँच सकेंगे। मायबाँग से हाफलाङ् केवल ३० कि.मी. ही तो रहा था और एक घंटे में गाड़ी यह प्रवास तय करती है। हम सभी के मन में फिर से उत्साह संचारित हुआ। हममे से एक स्वयंसेवक स्टेशन पर ही रह गया। उसको यह सूचना थी कि वह स्टेशनमास्टर से संपर्क रखे और जैसे ही लुमडिंग से गाड़ी आने की निश्चित जानकारी प्राप्त होगी, तो तुरन्त हमें खबर दे। स्टेशन मास्टर को भी हमने मा० भाऊरावजी के बारे में तथा हाफलाङ् विद्यालय के कार्यक्रम के विषय में जानकारी दे रखी थी। अतः उसने भी हमें पूर्ण सहयोग देना स्वीकार

किया था।

रेलगाड़ी नहीं, यह तो दौड़ता हुआ जुलूस ही

सुबह ६ बजे स्वयंसेवक स्टेशन से दौड़ता हुआ आया और उसने खबर दी कि पहली रेलगाड़ी आ रही है। करीब १५-२० मिनिट में वह पहुँचनेवाली है, ऐसा स्टेशन मास्टर ने कहा है। स्टेशन पर अनेक यात्री गाड़ी की प्रतीक्षा में दो-तीन दिनों से पड़े हुए थे। प्लेटफॉर्म पर अब वे सब हलचल करने लगे है। स्टेशन के निकट अड़ोस-पड़ोस के मकानों में आश्रय लेकर रहे हुए लोग भी अब स्टेशन की ओर हड़बड़ी से आने लगे हैं। भीड़ बढ़ रही है। ये सब जानकारी उस स्वयंसेवक ने दी। हमने भी मा. भाऊरावजी को जाकर जगाया। वे तो ऐसे सोये थे, इतने थके थे कि उनको आँखें खोलकर बोलना भी मुश्किल लग रहा था। ऐसी स्थिति में उनको दो-तीन बार जगाना पड़ा और जैसे-तैसे मुँह धो कर वहाँ से स्टेशन पर चले आये। तब सुबह के ६.३० बजे थे। ६.३५ बजे गाड़ी आयी। जब दूर से गाड़ी दिखायी दी। वह तो एक दौड़ता हुआ जुलूस जैसी ही दिखायी पड़ी। क्योंकि इंजन के चप्पे चप्पे पर आदमी चिपके थे। डिब्बों के छतों पर लोग बैठे थे। कहीं भी जगह नहीं थी। अतः ऐसी भीड़ भरी ट्रेन में मा. भाऊरावजी को चढ़ना असम्भव ही था। जैसे-तैसे हममें से एक स्वयंसेवक को हमने गाड़ी पर चढ़ाया, वह तो छत पर जाकर बैठा। उसको हाफलाङ् में खबर देने के लिए कह दिया की मा० भाऊरावजी मायबाँग तक पहुँच गये हैं। इसके बाद जो भी गाड़ी आएगी, उससे हाफलाङ् आ जायेंगे। वह गाड़ी चली गयी। स्टेशन मास्टर ने कहा की चिन्ता की कोई बात नहीं, अब रेलमार्ग खुल गया है। लुमडिंग से दूसरी गाड़ी भी एक घंटे बाद यहाँ पहुँच जाएगी; क्योंकि लुमडिंग स्टेशन पर तीन गाड़ियाँ अटकी पड़ी हैं। उनमें से यह तो पहली आयी है, इसलिए इसमें इतनी भीड़ है।

मा० भाऊरावजी को खिड़की से अंदर चढ़ाया

मा. भाऊरावजी को हम फिर से प्रधानाध्यापक के

दुर्दान्त दस्यु : जो कवि हुए

संस्कृत के आदिकवि वाल्मीकि पहले रत्नाकर नामक एक दुर्दान्त दस्यु थे, जो हत्या, अपहरण और लूटपाट से अपनी जीविका चलाते थे। कालान्तर में उनमें सद्वृत्ति जागी और तपस्वी हो गये। वे जीव-हत्या से इतने कारुणिक बन गये थे कि एक बार तमसा नदी के तट पर बहेलिए द्वारा क्रौंच पक्षी के मारे जाने पर उनका कण्ठ मुखरित हो गया था- 'मा निषाद' यही अनुष्टुप आगे चलकर आदिश्लोक बन गया। इस सद्वृत्ति के पीछे वाल्मीकि की सहृदयता थी। कवि-कर्म के लिए रसज्ञता प्रथम कारिका मानी जाती है, जो सत्संगति और चारु विचार से मिलती है। तुलसीदास ने रामचरित मानस में कहा है 'सठ सुधरहिं सत्संगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई' अर्थात् पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। आगे चलकर वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना की और यशस्वी हो गये।

'राम रामेति रामेति मधुरं मधुराक्षरम्, आरुह्य कविताशाखां, बन्दे वाल्मीकि कोंकिलम्।।'

चौदहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी कवि फ्रेंकस विलियन पहले एक दुर्दान्त दस्यु थे, जो अनेक हत्या, अपहरण और डकैती के अभियुक्त थे। विलियन कई बार कारागार से फरार हो गये थे। ये पकड़े नहीं जा सके थे। बाद में कवियों के सम्पर्क में आकर कवि बन गये। 'द लिटिल टेस्टामेण्ट', इनकी काव्य रचना है। फ्रेंकस की मृत्यु कहाँ हुई? इस रहस्य को आज तक किसी ने जाना तक नहीं। आज भी फ्रांस के लोग अपने देश के इस वाल्मीकि को याद किया करते हैं।

सोलहवीं शताब्दी में डीडवाणा, राजस्थान में हरिदास एक दुर्दान्त दस्यु थे। हत्या, चोरी, लूटपाट आदि से ये अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। एकाएक इनकी सद्वृत्ति जाग पड़ी और सन्त हो गये। देवी के मन्दिरों में हो रही पशुबलि को रोकवाने के लिए इन्होंने सत्याग्रह किया, जिससे मूक प्राणियों का संहार रुक गया। आगे चलकर हरिदास 'निरंजनी सम्प्रदाय' के सन्त कवि कहलाए। इनकी रचनाएँ आज भी बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ पढ़ी जाती हैं।

'जन हरिदास भज राम, सकल जन घेरिया,
हरि हौ मुनि जाय, बसै दरबार तहाँ ते फेरिया।'

इन दुर्दान्तु दस्यु के सुधारवादी दृष्टिकोण से आज के 'सफेदपोश' दस्युओं को प्रेरणा लेनी चाहिए-

'हरिभज, साफल जीवना, पर उपगार समाई।
'दादू' मरणा तहँ भला, जहाँ पसु पच्छी खाई।

प्रस्तुति- **बनवारी लाल ऊमर वैश्य,**
डंकीन गंज, मीरजापुर- २३१००१

घर ले आये। अब तक सवासात बजे थे। वहाँ पर हाथ–मुँह धोये। चायपान व नाश्ता किया। गाड़ी की राह देख ही रहे थे, इतने में स्वयंसेवक खबर लेकर आया कि कछार एक्सप्रेस आ रही है; दस मिनट में पहुँच जाएगी। अब हम तैयार भी थे और चाय जलपान के कारण कुछ तरोताजा भी हो गये थे। मा. भाऊरावजी को फिर से स्टेशन ले आये। स्टेशन निकट ही था पैदल ही चलकर आना पड़ता था क्योंकि कार का रास्ता स्टेशन तक नहीं था। पहाड़ी क्षेत्र के स्टेशन पर प्लेटफार्म ऊपर–नीचे भी तो रहते हैं। हम स्टेशन पर पहुँचे और वहाँ पर देखा पहले से अधिक लोग इकट्ठा हुए हैं। पहली गाड़ी जाने से लोगों को पता चला था कि रेलगाड़ी जाने लगी है। अतः गाँव के लोग भी अब पहुँचने लगे थे। स्टेशन मास्टर ने कहा कि इस गाड़ी में जगह मिलना असम्भव ही है। तो भी प्रयत्न तो करना ही होगा। उसने कहा कि वह स्वयं कोशिश करेगा। इस गाड़ी में आर.एम.एस. का डिब्बा रहता है, उसमें मा. भाऊरावजी को बैठाना संभव हो सकेगा। साधारणतः यह डिब्बा इंजन से तीसरा या चौथा होता है। अतः हम लोग मा. भाऊरावजी और हापुड़ के दम्पति को लेकर आगे की ओर आकर रुक गये। इतने में गाड़ी आती हुई दिखायी देने लगी। हम सब तैयार ही थे। गाड़ी आयी। इसके पूर्व सुबह में पहली गाड़ी जैसी ही इसकी भी स्थिति थी। इंजन से लेकर गार्ड के डिब्बे तक गाड़ी के चारों और आदमी लटके हुए थे। लेकिन अब हम तैयार थे। मा. भाऊरावजी भी मानसिक दृष्टि से प्रस्तुत थे। कुछ तरोताजा थे। और यह भी जानते थे कि इस गाड़ी से जाने से ही हाफलाङ् का आज का (विजयादशमी का) कार्यक्रम देरी से ही क्यों नहीं, लेकिन पूर्ण हो सकेगा। अतः हम लोगों ने गाड़ी रुकते ही आर.एम.एस. के डिब्बे में चढ़ने की कोशिश की, लेकिन अंदर के पोस्टल सर्विस के लोगों ने 'ये आर.एम.एस. का डिब्बा है', ऐसा कहकर सब को रोक दिया। इतने में स्टेशन मास्टर स्वयं वहाँ आए और उन्होंने केवल दो लोगों को उस डिब्बे में लेने के लिए अन्दर के आदमी को कहा। उनके कहने पर आर.एम.एस. के आदमी ने अन्दर से दरवाजा खोलने की कोशिश की। दरवाजा खुल रहा है, यह देखकर डिब्बे के पास के अन्य लोग भी उसकी ओर दौड़ पड़े। मा. भाऊरावजी को तो चढ़ना भी मुश्किल हो रहा था। चढ़ना तो कठिन ही था। अन्य लोग जब दरवाजे में घुस गये, तो और भी कठिनाई हुई। इतने में इंजन ने सीटी बजायी, अब गाड़ी छूटने ही वाली थी। तब मैंने मा. भाऊरावजी को दरवाजे की कड़ी पकड़कर जो सीढ़ी है, उस पर खड़ा करवाकर नीचे से दोनों हाथों से कंधे पर उठाकर दरवाजे के पास की खिड़की से गाड़ी में ढकेल दिया। उस समय अन्य एक कार्यकर्त्ता ने भी मेरी मदद की। हम दोनों ने मिलकर मा. भाऊरावजी को खिड़की से अन्दर घुसाया और अन्दर के आर.एम.एस. वालों को उनको जगह देने के लिए कहा। उसने उनको बैठने के लिए जगह दी। मैं तो गाड़ी के बाहर ही लटका हुआ था। दूसरे स्वयंसेवक को तथा हापुड़ से आए दम्पति को भी इसी तरह अन्दर ठूँस दिया। इतने में गाड़ी चल पड़ी। मैं और मेरा सामान आदि स्टेशन पर ही रह गये। लेकिन अब मिशन पूर्ण होने का आनन्द था। यहाँ से एक घंटे में बड़ा हाफलाङ् स्टेशन आएगा और फिर वहाँ से हाफलाङ् पहुँचना बहुत कठिन बात तो नहीं होगी। मौसम भी अच्छा था। धूप निकली थी। हाँफलाँग के लोगों ने पाँच–छह दिनों के बाद सूर्य–दर्शन तथा गाड़ी का भी दर्शन किया था।

अब मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ

मा. भाऊरावजी करीब १०.३० बजे विद्यालय पहुँचे। सबको आनन्द हुआ। विजयादशमी का कार्यक्रम अच्छी तरह सम्पन्न हुआ। बाद में दोपहर को लुमडिंग से एक अधिक गाड़ी चली। उसी से हम तीन चार स्वयंसेवक सब सामान आदि लेकर हाफलाङ् पहुँचे। तब शाम के ४ बजे थे। शाम के मनोरंजन के कार्यक्रम में हम सभी सम्मिलित हो सके। मा. भाऊरावजी तो कभी से हम सभी के सुखरूप सुखरूप पहुँचने की वहाँ पर प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही उन्होंने हमें आते देखा वे बड़े आनन्दित हुए। बाद में रात में गपशप करते समय बोले, "मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि अब मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। अब मैं सब प्रकार का प्रवास करने लायक हो गया हूँ। यही मेरे इस हाफलाङ् यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि कहनी होगी।" पक्षाघात तथा हृदयविकार की बीमारी के बाद मैं इतनी कठिन, थकाने वाली लम्बी, कष्टदायक यात्रा कर सका हूँ। इतना ही नहीं, तो यहाँ हाफलाङ् पहुँचने पर यहाँ का प्राकृतिक दृश्य तथा विद्यामंदिर का कार्य देखकर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई है। मन भावविभोर हो गया है। अपने कार्यकर्त्ता कितने परिश्रम करके जनजातीय क्षेत्र में कितनी विपरीत स्थिति में कार्यरत हैं। कितनी कठिनाइयों से उन्हें जूझना पड़ता है, इसका एक चिरस्मरणीय, हृदय थर्राने वाला अनुभव ही मुझे इस यात्रा में मिला है। यदि आज मैं यहाँ नहीं पहुँचता तो इन सभी को कितना दुःख होता, उनको कितनी निराशा होती। लेकिन आखिर मैं यहाँ पहुँच ही गया। ईश्वर ने भी हम सभी की परीक्षा ही ली, ऐसा कहना होगा और मुझे भी विश्वास हुआ कि मैं अब पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। अब मैं कितना भी कष्टप्रद प्रवास करने लायक हो गया हूँ। अब मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। ❑

अभिमत

'राष्ट्रधर्म' के जनवरी, २००० के अंक में प्रकाशित लेख 'शिक्षा में भारत कहाँ' के लिए **आपने मुझे पत्र-पुष्प के रूप में रु० १५०.०० भेजे। मैंने अनिच्छा-पूर्वक स्वीकार कर लिये हैं। मुझे यह गरीब राष्ट्र प्रतिमास २६५०० रु० वेतन के रूप में दे रहा है।** मेरे लिए यह कुछ कम नहीं है। **'राष्ट्रधर्म'** से मैं धन पाने की यदि आशा करूँ, तो इसमें न राष्ट्र की सुगन्ध आयेगी और न धर्म की। कृपया भविष्य में यदि मेरे लेख/कविता/संस्मरण आदि प्रकाशित करें, तो पत्र-पुष्प भेजने का कष्ट न करें। यदि देना ही चाहें, तो वहाँ के किसी निर्धनतम कर्मचारी को मेरी ओर से दे दें। आशा है मेरा यह निवेदन स्वीकार करेंगे।

— डॉ० ओमप्रकाश मिश्र, खीरी

'राष्ट्रधर्म' का लोकचेतना विशेषांक भावप्रवण, संग्रहणीय, मननीय लगा। दीक्षित जी का लेख प्रेरक है। सचमुच लोकचेतना कई विषमताओं का हल ही साबित होगी। करगिल का दोषी कौन : खडगसिंह रावत, वीरेन्द्र खरे, रामवचन सिंह आनन्द, अखिलेश त्रिवेदी आदि की कविताएँ राष्ट्रीय व भावप्रधान लगीं।

अन्य सभी लेख श्रेष्ठ ज्ञानवर्धक लगे। डॉ० पाण्डेय की 'चिट्ठी पेरिस से' सही मननीय लगी। सचमुच ही हमारे मूल भारतीयों का मन यहाँ से जुड़ा है। डॉ० पाण्डेय से निवेदन है कि वे वहाँ मूल भारतीय, संस्कृति गरिमा कितनी है, आस्था है, उस पर भी संस्मरण लिखें।

— नारायण मघवानी, उज्जैन

'राष्ट्रधर्म' का 'लोकचेतना विशेषांक' सम्पूर्ण सारगर्भित है, किन्तु सम्पादकीय 'तुम्हारे मौन का हम अर्थ क्या समझें?' विचारोत्तेजक और दुधारी सा मारक, लाग लपेट से कोसों दूर सम्पादकीय मात्र मेरे द्वारा ही नहीं, अन्य पाठक बुद्धिजीवियों द्वारा प्रशंसित हैं।

— राममोहन शर्मा, जालौन

मैं 'राष्ट्रधर्म' का नियमित पाठक (ग्रा०सं० १७६८६) हूँ। जनवरी २००० का अंक पढ़ने को मिला। पृष्ठ २३ पर कहानी 'ढोंग' लेखक मीनाक्षी दीक्षित एवं ६७ पर 'बेटी की बात' लेखक मदनमोहन पाण्डेय बहुत अच्छी एवं संस्कारप्रद है। दोनों लेखिका एवं लेखक को बधाई।

साथ ही पृष्ठ ३६ पर राष्ट्र-भक्त कार्यशील एक आदर्श दम्पति- अभ्यंकर-दम्पति ने संघ के उच्च आदर्श अपने जीवन में धारण करके वर्तमान पीढ़ी को जो प्रेरणा दी है, वह प्रशंसनीय है। लेखिका डॉ० शकुन्तला दवे को उनके लेखन शैली हेतु साधुवाद एवं बधाई। इसके अलावा इसी लेख में पृष्ठ ४० पर नीचे से चौथी पंक्ति में संघ पर प्रतिबन्ध की तारीख ४ फरवरी १६४७ जो दी है वह गलत प्रतीत होती है। कृपया सुधारने की कृपा करें।

— ओमप्रकाश शर्मा, आगरा

'राष्ट्रधर्म' का जनवरी, २००० अंक (लोकचेतना विशेषांक) हस्तगत हुआ। मिलते ही बिना रुके एक ही बैठक में आद्योपान्त पढ़ गया। विशेषांक के नाम के अनुकूल ही बन पड़ा है यह अंक। कविताएँ, कहानियाँ, विचारोत्तेजक-निबन्ध, पौराणिक प्रसंग, ऐतिहासिक-उच्चकोटि की हैं। सोने में सुहागा सा है आपका सम्पादकीय! साधु! साधु!!

— राजेन जयपुरिया, कानपुर

'राष्ट्रधर्म' के जनवरी अंक में वचनेश जी का लेख 'सुभाष चन्द्र बोस की मृत्यु विमान दुर्घटना में नहीं हुई' पढ़ा। तमाम अन्वेषणों से लगता है कि विमान दुर्घटना में नेताजी की मृत्यु की कहानी झूठी है। फिर क्या कारण था कि १५ अगस्त, १६४७ के बाद भी नेताजी प्रकट नहीं हुए? लगता है कि आजादी के बाद सुभाष बाबू अगर प्रकट हो गये होते, तो देश की जनता उनकी दीवानी हो जाती, तब निश्चय ही देश-विभाजन करनेवाले तत्कालीन सत्ताधीशों का राजनीतिक पतन हो जाता। जिन लोगों ने नेताजी को १६३० में कांग्रेस का राष्ट्रीय अध्यक्ष नहीं बनने दिया, वे १६४७ के समय नेताजी के प्राणों के दुश्मन होंगे, यह नेताजी जानते होंगे। शायद यही उनके अज्ञातवास का कारण हो सकता है। इतिहास जानता है कि १६३० और १६४७ में नेताजी को पीछे धकेलने वालों के वंशज की राह में जब लालबहादुर शास्त्री आ गये, तो ताशकन्द में रहस्यमय ढंग से उनका निधन हो गया।

— अशोक वर्मा, इन्दौर, म०प्र०

'राष्ट्रधर्म' का पौष २०५६ (जनवरी, २०००) अंक पढ़ा। 'राष्ट्रधर्म' का प्रत्येक लेख अत्यन्त अनुकरणीय है। इस अंक में 'ढोंग', 'अभ्यंकर दम्पति', 'बेटी की बात', 'हम रहें या न रहें' आदि रचनाओं ने मानस पटल को बारम्बार झंकृत किया। आज के भौतिकवादी युग में, जहाँ नैतिक मूल्यों का प्रतिक्षण हनन हो रहा है, ऐसे समय में 'राष्ट्रधर्म' एक सच्चे मार्गदर्शक का कार्य कर रहा है।

— विवेक कुमार बरनवाल, देवरिया

मैं 'राष्ट्रधर्म' का कई वर्षों से पाठक हूँ। हर महीने बेसब्री से इन्तजार रहता है। 'राष्ट्रधर्म' का जनवरी २००० अंक मिला। राजीव चतुर्वेदी का लेख 'विशेषाधिकारों का विस्तार, सिमटते नागरिक अधिकार' पढ़ा।

आजादी की आधी सदी बीत जाने पर भी भारतीय नागरिक को सदियों पुराने विदेशी कानूनों से हाँका जा रहा है। सांसद, विधायक, सरकारी नौकर सभी के पास विशेषाधिकार हैं और इस हद तक हैं कि वे नागरिक के सामान्य अधिकारों का भी अतिक्रमण करते हैं।

न्यायालयों में मुकदमे लम्बित पड़े रहते हैं, आदमी की पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं मुकदमें लड़ते; परन्तु फैसले नहीं हो पाते हैं। जो भी सरकार बनती है, वह पहले तो लम्बे-चौड़े आश्वासन देती है; परन्तु फिर वही 'ढाक के तीन पात' वाली बात साबित होती है।

आज समय आ गया है पुराने कानूनों की एवं संविधान की समीक्षा करने का एवं उनमें संशोधन करने का, ताकि आम नागरिक को राहत मिल सके।

— एम०सी० जोशी, बहादुरगढ़, हरियाणा

एक किताब का नाम लो

–शंकर पुणतांबेकर

एक जाति का भविष्य–कथन यह भी है कि "तुम एक फूल का नाम लो" और आगामी जिन्दगी को जान लो। जिस किसी ने इस विधि को खोज निकाला है, वह या तो माली रहा होगा या कवि। माली या कवि दोनों का ही फूलों से वास्ता, सो अपना भविष्य अन्धकारमय पाकर उसने उप व्यवसाय (साइड बिजिनेस) स्वरूप यह शरारत खोज निकाली हो। तब नेता इतने कॉमन गली–गली में कुत्तों– जैसे न रहे होंगे कि जिनकी मौत भी फूलों की शूली बनती है। फूल धरे रह जाते होंगे और केवल भगवान् पर चढ़ते होंगे। इस दशा में माली भूखों मरता होगा। कैसी विचित्र बात कि भगवान् के दिनों में माली भूखों मरता था। भगवान् की जगह नेता के दिनों में वह मूँछों पर ताव देता है। तब मंच इतने 'कॉमन', गली–गली में कूड़ा–खानों जैसे न रहे होंगे कि चल भाई, आज वैशाखनन्दन का या उल्लू का जन्मदिन है, सो हो जाने दो कवि–सम्मेलन और पैसा–लुटाई। कविता धरी रह जाती होगी और केवल मानस पर चढ़ती होगी, वाहवाही पर नहीं। इस दशा में कवि भूखों मरता होगा। कैसी विचित्र बात कि मानस के दिनों में कवि भूखों मरता था। मानस की जगह वाहवाही के दिनों में वह मूछों पर ताव देता है।

"एक फूल का नाम लो" की तर्ज पर "एक किताब का नाम लो" और 'भविष्य जानो' चल पड़ा है, यह मुझे नहीं मालूम था। तब जाना, जब ऐसे भविष्यवक्ता के बारे में मैंने एक साहित्य–सम्मेलन में सुना। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

आश्चर्य मुझे इस बात का भी हुआ कि पूरे सम्मेलन में वह ज्योतिषी अलग चमक रहा था। उस पर जो रौनक थी, वह अच्छे–से–अच्छे लेखक के चेहरे पर नहीं थी। कैसी विचित्र बात की जिसकी एक–एक पंक्ति मानव–जीवन का यथार्थ थी, वह लेखक उस ज्योतिषी के मुकाबले निष्प्रभ था, जिसकी एक–एक उक्ति व्यक्ति–जीवन की कल्पना मात्र थी।

सम्मेलन में लोगों का ध्यान ऊँचे से ऊँचे लेखक की ओर इतना नहीं था, जितना इस ज्योतिषी की ओर। किसी लेखक को सुने...मंच पर से बोलते लेखक को, इसकी बजाय वे इस ज्योतिषी को सुनने को लालायित थे।

लोग ज्योतिषी को ऐसे घेरे रहते और भविष्य जानने के लिए ऐसी चिल्लपों मचाते कि एक लेखक ने, जो मंच पर भाषण कर रहा था, कहा कि उस निरर्थक ज्योतिषी को पण्डाल के बाहर करो, यह विक्षेप ही नहीं कर रहा है, हमारी मानसिकता को प्रदूषित भी कर रहा है। समाज जब धरती के अक्षरों की बजाय आकाश के नक्षत्रों से परिचालित होता है, तो समझ लीजिए, वह अधोगति को प्राप्त हो रहा है।

इस प्रताड़ना का असर हुआ भी और नहीं भी, किन्तु मैं तब दंग रह गया, जब मैंने प्रताड़ना करनेवाले उस लेखक को उसी रात ज्योतिषी के कमरे में अपना भविष्य जानने के लिए बैठा देखा।

भविष्य तो मैं भी अपना जानना चाहता था।

औरों की तरह मैं भी सम्मेलन की बहसों–मुबाहिसों की ओर से उदासीन हो गया और इस कोशिश में रहा कि किसी तरह ज्योतिषी को पकडूँ। साथ ही मन–ही–मन यह सोच रहा था कि 'एक किताब का नाम लो' में किस किताब का नाम लूँ।

"एक फूल का नाम लो" में फूल का नाम लेने में बड़ी आसानी है। फूलों को पढ़ने का सवाल नहीं है न। मुझे याद है, मेरे पड़ोसी ने एक बार इस तरह के भविष्य का विज्ञापन अखबार में

देख फौरन बिना सोचे–विचारे चमेली का नाम लिख भेजा और उस फूल पर से उसका जो भविष्य लिखकर आया, उसे देख पड़ोसी दंग रह गया। लिखा था कि चूँकि आप गन्धहीन गेंदे को नहीं चाहते, शुभ्र–सुगन्धित चमेली के प्रेमी हैं, सो आपकी जिन्दगी संघर्षों से भरी रही है, आगे भी रहेगी। संघर्षों से बचना हो तो गेंदे पर निछावर होना सीखें, स्वयं गन्धहीन गेंदा बनने का प्रयास करें।

मैं दूसरे या तीसरे दिन एक दोपहर जब लोग सम्मेलन का चकाचक खाना खाकर मजे से खर्राटे भर रहे थे, ज्योतिषी के कमरे में पहुँचा।

ज्योतिषी अकेला नहीं था, तथापि भीड़ ज्यादा नहीं थी।

ज्योतिषी औरों का जो भविष्य बता रहा था, उसे मैं बड़े चाव से सुनने लगा।

एक व्यक्ति ने जैनेन्द्र के "त्यागपत्र" उपन्यास का नाम लिया। ज्योतिषी ने कहा, सेक्स–सेक्स। तुम 'सेक्स' में अधिक रुचि लेते हो। इस तरह तुम समाज के उन मनहूस लोगों में से नहीं हो, जो अपने कपड़ों की ओर ध्यान नहीं देते; चेहरे–मोहरे का ख्याल नहीं रखते; व्यर्थ साहित्य करते रहते हैं। तुम उन नसीबवान् लोगों में से हो, जिन पर कभी किताबें पढ़ने की नौबत नहीं आती। गपशप, वीडिओ, टीवी आदि में समय का सदुपयोग करते हो। चूँकि किताबों से पाला नहीं पड़ता, तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।

एक ने गुलशन नंदा की पालेखाँ पॉकेटबुक का नाम लिया। ज्योतिषी ने कहा, तुम भाग्यवान् हो। खूब नाम पाओगे, खूब पैसा लूटोगे। चूँकि तुमने एक पॉकेट–बुक का नाम लिया है, उससे जाहिर है कि तुम छोटे साइज में से ही छोटे साइज की करनियों, छोटे साइज की विशेषताओं में से ही सब कुछ हासिल कर लेना चाहते हो। तुम हासिल कर लोगे, पर मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि तुम्हारी उपलब्धि किसी भी मन्त्री की भाँति या किसी भी मंचीय कवि की भाँति भरी–पूरी रहकर भी शून्य–सी होगी, नष्टभ्रष्ट हो जाने वाली।

एक सज्जन ने मुक्तिबोध की कविता पुस्तक "चाँद का मुँह टेढ़ा" का नाम लिया। ज्योतिषी सुनकर एकदम प्रसन्न हो उठा और दूसरे ही क्षण उदास भी। बोला, आदमी तो बस तुम हो। तुम्हारे हाथों ऐसा कुछ होगा कि जो अच्छों–अच्छों से सम्भव नहीं होता। तुम बहुत गहरे हो, दुनिया को गहरे पैठकर देखते हो। पर मुझे दुख है बताते हुए कि तुम्हारी उपलब्धि उच्च रहते भी तुम दुनिया से उपेक्षा और उपेक्षा पाओगे। यह हमारी विडम्बना है कि सस्ता गुलशन नन्दा हँसता है और हँसता है और गहरा मुक्तिबोध रोता है और रोता है।

एक श्रीमान् जी ने विक्की आनन्द के जासूसी उपन्यास "धुन्ध" का नाम लिया। सुनकर ज्योतिषी एकदम खिल उठा और बोला, इसे कहते हैं चुनाव किताब का। बल्कि जिन्दगी का। जो धुन्ध में रहता है, जो धुन्ध पैदा करता है, स्वयं उसकी जिन्दगी से धुन्ध हटती जाती है और एक प्रकार से वह 'स्टार' की जिन्दगी जीता है। आनन्द और आनन्द का वह हकदार बनता है। "हलकी किताब, ठोस आनन्द"– यह हमारे ज्योतिष शास्त्र का सिद्ध नियम है।

एक महोदय ने सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के "बकरी" नाटक का नाम लिया, जिसे सुनकर ज्योतिषी का चेहरा लटक गया। बोला, क्षमा करें, आप बिलकुल दकियानूसी किस्म के आदमी हैं। दुनिया "भैंस संस्कृति" की ओर बढ़ी जा रही है और आप हैं कि बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की बकरी में ही अटके हुए हैं। आप नाम खूब पायेंगे, आपको जिन्दगी में अन्ततः सफलता भी मिलेगी; पर आपकी सफलता अखण्ड नही टूटी–फूटी सफलता होगी। तथापि इससे आपके नाम, आपकी गाथा में कोई टूट–फूट नहीं आयेगी। वह अखण्ड रहेगी

इस तरह और भी कुछ लोगों के भविष्य।

जब मेरी बारी आयी और मैंने हरिशंकर परसाई की व्यंग्य पुस्तक "ठिठुरता हुआ गणतन्त्र" का नाम लिया, तो ज्योतिषी ने कहा, तुम्हारा भविष्य क्या बताएँ, तुम्हारा कोई भविष्य ही नहीं है।

मैं बस सुनता रह गया।

– २, मायादेवी नगर, जलगाँव– ४२५००२